पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतन, अचेतन और सुपर चेतन मन

सम्पादक

ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८
www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ । नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था ।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं । औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है । हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी । वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया ।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में । उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं । चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था । २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना ।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया । पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ । दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी । वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया । सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा ।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी । उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं । इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था । १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी गयं । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतः स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

मानवी काया एक विलक्षणताओं का समुच्चय है । यदि इस रहस्यमय अद्‌भुत कायपिंजर को समझा जा सके व तदनुसार जीवन-साधना सम्पन्न करते हुए अपने जीवन की रीति-नीति बनायी जा सके तो व्यक्तित्त्व सम्पन्न, ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न बना जा सकता है । इसके लिए अपने स्वयं के मन को ही साधने की व्यवस्था बनानी पड़ेगी । यदि यह सम्भव हो सके कि व्यक्ति अपने चेतन, अचेतन व सुपरचेतन मस्तिष्कीय परतों की एनाटॉमी समझकर तदनुसार अपना व्यक्तित्त्व विकसित करने की व्यवस्था बना ले तो उसके लिए सब कुछ हस्तगत करना सम्भव है । यह एक विज्ञान सम्मत तथ्य है, यह मानवी मनोविज्ञान को समझाते हुए पूज्यवर बड़े विस्तार से इस गूढ़ विषय को विवेचन करते इसमें पाठकों को नजर आयेंगे ।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूपी अन्तःकरण चतुष्टय की सत्ता से हमारा निर्माण हुआ है । यदि विचारों की व्यापकता और सशक्तता का स्वरूप समझा जा सके व तदनुसार अपने व्यक्तित्त्व के निर्माण का सूत्र समझा जा सके तो इस अन्तःकरण चतुष्टय को प्रखर, समर्थ और बलवान बनाया जा सकता है ।

ऐसा कहा गया है कि जैसा हम सोचते हैं, वैसा ही हमारे मुँह से शब्द निकलते हैं । जैसा हम बोलते हैं, वैसा ही हमारा कर्तृत्व होता है । जैसा हम करते हैं, वैसी ही हमारी आदतें बनती चली जाती हैं जो संस्कारों के रूप में चित्त में प्रतिष्ठापित होती चली जाती हैं । चित्त में विद्यमान ये संस्कार ही चरित्र का निर्माण करते हैं । इस प्रकार हमारे चिन्तन से ही हमारे चरित्र का निर्माण होता है, यह कोई अत्युक्ति नहीं है । यह कहाँ होता है ? इसे पूज्यवर चेतन मन की चमत्कृति बताते हैं । उत्थान-पतन की पृष्ठभूमि यहीं बनती है । यदि अचेतन का परिष्कार किया जा सके, आत्महीनता की महाव्याधि से मुक्त हुआ जा सके तो हर व्यक्ति अपने विकास का पथ स्वयं प्रशस्त कर सकता है । उत्कृष्टता से ओतप्रोत मानवी सत्ता ही मनुष्य के वैचारिक विकास की अन्तिम नियति है । यदि चिन्तन उत्कृष्ट स्तर का होगा तो कार्य भी वैसे बन पड़ेंगे एवं मानव से महामानव, चेतन से सुपरचेतन के विकास की, अतिचेतन के विकास की आधारशिला रखी जा सकेगी ।

पूज्यवर अचेतन की एनाटॉमी विस्तार से समझाते हुए कहते हैं कि मानवी व्यक्तित्त्व की धुरी, इस अचेतन के परिष्कार-सुधार-सम्वर्धन पर टिकी हुई है । वृत्तियों का परिमार्जन कर उदात्तीकरण की दिशा में बढ़ा जा सकता है । अपनी आत्मसत्ता के विकास की इस प्रक्रिया को जानना-समझना हर किसी के लिए अनिवार्य है । सुपरचेतन की वास्तविक संरचना कैसे की जाती है, कैसे हर व्यक्ति चेतन सत्ता का परिष्कार कर सकने की स्थिति में है । इसके लिए पूज्यवर लिखते हैं कि अपने को जान-पहचान कर, अपने अन्दर छिपी पड़ी असीम सम्भावनाओं को जगा-सुविकसित कर, व्यक्ति जीवनमुक्त स्थिति में जा सकता है । जहाँ अचेतन हमारी संचित पशु-प्रवृत्तियों व श्रेष्ठता की ओर ले जाने वाले विचार प्रवाहों दोनों का ही सम्मिश्रित स्वरूप है एवं यदा-कदा स्वप्नों पूर्वाभासों के माध्यम से अपनी झलक दिखाता रहता है, वहाँ चेतनमन एक समुद्र की तरह है, जहाँ यह सब अभिव्यक्त होता रहता है, लहरों के थपेड़ों के रूप में ।

अन्तराल की प्रचण्ड ऊर्जा को जगाकर सुपरचेतन को विकसित कर हममें से हर कोई चेतन की विकसित अवस्था में पहुँच सकता है । अन्तःकरण की पवित्रता तथा प्रेमभाव सुपरचेतन के विकास के लिए अनिवार्य हैं । व्यक्ति यदि यह समझ ले कि यह विकास उसके अपने हाथ में है- अपने शुष्क नीरस पड़े स्रोतों को जगाना उसके अपने बस की बात है तो वह चाहे जो कुछ कर गुजर सकता है । महामानवों का इतिहास वर्णित कर परमपूज्य गुरुदेव ने स्थान-स्थान पर सुपरचेतन को ही विकसित मानव की संज्ञा दी है व लिखा है कि हर महापुरुष ने यही साधना की है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट मन ही इस विश्व का नियामक है । समष्टि की सत्ता से सम्बन्ध स्थापित कर वह विकास सम्भव है जिसे श्री अरविन्द ने अतिचेतन का-महत्त्व चेतना का-अतिमानस का अवतरण कहा है । यह अतिमानस-सुपरमाइण्ड ही वह लक्ष्य है जो जीवनमुक्ति की दिशा में हर व्यक्ति को ले जाता है । अन्दर की अलौकिक इस सामर्थ्य को पहचान कर अपने सुपर चेतन को विनिर्मित करना-चेतनात्मक विकास की पराकाष्ठा तक स्वयं को पहुँचाना, यही इस वाङ्मय का उद्देश्य है । हम इस वाङ्मय के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव की विचार विज्ञान-मनोविज्ञान पर गहरी पैनी पकड़ पाते हैं व यह देखते हैं कि उनने हरेक के लिए आत्मिक विकास का राजमार्ग तैयार करके रख दिया है । चयन हमारे हाथ में है । हम क्या बनना चाहते हैं- यह विवेचन निश्चित ही पाठक को चिन्तन की श्रेष्ठतम ऊँचाई पर ले जायेगा ।

-ब्रह्मवर्चस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. चेतन मन और उसका सुनियोजन १.१

विचारों की व्यापकता और सशक्तता १.१

विचार प्रवाहों से विनिर्मित होता है प्रखर व्यक्तित्व १.२

विचार शक्ति की अनन्त सामर्थ्य १.४

चिन्तन की धारा बदलकर तो देखें १.६

विचारों में निहित रचनात्मक शक्ति १.७

विचारणा को कुमार्गगामी न बनने दें १.८

विचार चेतना के महत्व को समझें १.११

विचार शक्ति का सदुपयोग करें १.१३

चिन्तन गढ़ता है, हमारा-आचरण १.१५

विचार-विज्ञान को समझें १.१६

आकांक्षाओं को आदर्शवादी मोड़ दिया जाय १.१८

विधेयात्मक चिन्तन की फलदायी परिणतियाँ १.१९

आत्मविश्वास की महती शक्ति सामर्थ्य १.२१

विचार शक्ति की परिणति और प्रतिक्रिया १.२२

विचार विभ्रम के दुष्परिणाम १.२३

सुलझे विचार-सुख का द्वार १.२६

विचारधारा का प्रगतिशील परिष्कार १.२७

प्रवृत्तियों का विवेकपूर्वक उपयोग करें १.२९

कल्पना लोक की रंगीनियों में न खोयें १.३०

निरर्थक नहीं, सारगर्भित कल्पनायें करें १.३१

शेखचिल्ली न बनें १.३२

कुकल्पनाओं के नरक से हम स्वयं ही उबरें १.३६

अपना कल्पना जगत हम स्वयं बनाते हैं १.३८

ऊँची उड़ान न उड़ें, धरती पर चलें १.४०

पलकों की हलचल है मन का दर्पण १.४०

लाख छिपायें, अन्दर के भाव छिप नहीं सकते १.४२

पहले मन को संस्कारित कीजिए १.४४

मनोमय कोश, अर्थ और साधना १.४५

मन को कैसे वश में किया जाय ? १.५०

मानसिक सन्तुलन सर्वोपरि—कला-कौशल १.५१

मन को मनाइये— अपना सहयोगी बनाइये १.५३

मन का बचकानापन एवं विवेक बुद्धि का दायित्व १.५६

शरीर मन के नियन्त्रण पर चलता है १.५७

मन को शासक नहीं, सेवक बनाया जाय १.५९

समस्त सफलताओं का हेतु—'मन' १.६०

मन को समुन्नत बनाने का एकमात्र राजमार्ग १.६२

मन एक सूक्ष्म प्राकृतिक शक्ति १.६३

मन की अपार शक्ति और उसका उपयोग १.६४

मन का गुप्त रेडियो १.६५

मन की चमत्कारिक शक्तियाँ १.६६

मनोमय कोश-मस्तिष्कीय परिष्कार १.६८

शरीर और मन का संचालन करने वाली जीवसत्ता १.७१

परिस्थितियों पर नहीं मनःस्थिति पर प्रसन्नता निर्भर है १.७३

मानसिक परिष्कार और सुखी समुन्नत जीवन १.७५

उत्थान और पतन स्वयं साध्य १.७७

प्रसन्नता सम्पन्नता पर निर्भर नहीं १.७९

अपनी अनुभूतियों के सृष्टा-हम स्वयं १.८१

इच्छा शक्ति का सुनियोजन कैसे करें ? १.८३

उत्थान-पतन की कुंजियाँ अपने हाथ में १.८६

चेतना के तीन चरण १.९०

चेतना को अन्तर्मुखी बनायें १.९२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना का विकास-संवेदना के स्तर पर निर्भर १.९४
कहाँ उगे योग का वट वृक्ष ? १.९५
व्यक्तित्व परिष्कार का मूलभूत आधार १.९७
व्यक्तित्व के विकास का उद्गम केन्द्र १.९९
आकर्षण और आभा का स्रोत १.१००
मनस्वी—तेजस्वी १.१०१
व्यक्तित्व की रहस्यमय परतें १.१०२
समस्त सम्भावनाओं से परिपूर्ण मानवीय व्यक्तित्व १.१०४
वास्तविक प्रगति व्यक्तित्व की उत्कृष्टता १.१०६
व्यक्तित्व का स्तर गिरायें नहीं, ऊँचा रखें १.१०८
व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण जादुई कायाकल्प १.१११
सर्वांगीण विकास का साधन व्यावहारिक वेदान्त १.११२
तनकर खड़े रहो जीत तुम्हारी है १.११४
स्वस्थ मनोरंजन-मनुष्य की एक नैसर्गिक आवश्यकता १.११५
कलात्मक अभिरुचि भी अनिवार्य है १.११७
स्फूर्ति व मस्ती पाने की सही विधि १.११७
''प्रिय'' और ''अप्रिय'' का मनोविज्ञान १.११९
चेतना का हाथी भौतिकी की सुतली से बाँधे १.१२१
हम शरीर नहीं, आत्मा हैं १.१२३
आत्मा की खुराक भी अनिवार्य १.१२५
उत्कृष्टता से ओतप्रोत है, मानवी सत्ता १.१२६
आत्मसत्ता-आत्मिकी की सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला १.१२७
चेतना के विकास में परिवेश का महत्व १.१३०
जीव चेतना की सात भूमिकाएँ १.१३२
जीवात्मा की सत्ता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण १.१३६
मनोविज्ञान को नीति विरोधी न बनने दिया जाय १.१३८
आधुनिक मनोविज्ञान का उपनयन संस्कार किया जाय १.१४२

२. अचेतन का परिवर्धन-परिष्कार २.१

अचेतन मन की विकृति ही रोग-शोक का कारण है २.१
मनःसंस्थान का समूची जीवन सत्ता पर प्रभाव २.४
अपने सबसे निकटवर्ती शत्रुओं से जूझिए २.७
अतिवादी चिन्तन और बढ़ता पागलपन २.९
भावनाओं को परिष्कृत रखें २.११
भावनाशील तो बनें, पर भावातिरेक से बचें २.११
कहीं ! हमें भी सनकने का रोग तो नहीं ? २.१४
मस्तिष्क को असन्तुलित न रहने दें २.१५
आत्महत्या अर्थात् अचेतन की विकृति २.१७
मनःस्थिति को सुव्यवस्थित बनायें २.२०
आत्महीनता की महाव्याधि २.२२
भय का मनोविज्ञान २.२४
मानसिक उद्वेग जीवन विनाश के प्रमुख कारण २.२६
महत्वाकांक्षाएँ और असन्तोष २.२९
उत्तेजना—आवेग और आहार २.३२
चेतना क्षेत्र की अराजकता २.३३
क्या मानवी सत्ता मात्र रसायनों की पोटली है ? २.३५
दुर्बल मनःस्थिति पर पड़ने वाले आघात और उनकी प्रतिक्रिया २.३८
मनोविकारों का अवरोध हमें अपंग बना देता है २.४२
मन को कुसंस्कारी न रहने दिया जाय २.४३
मानसिक रोग कितने विचित्र, कितने भयावह २.४५
उपचार जड़ों का हो पत्तियों का नहीं २.४९
अनीति का अन्तर्द्वन्द्व २.५०
आत्महीनता की ग्रंथि से मुक्ति पाइए २.५१
मानसिक विकृतियाँ जीवन को नरक बनाती हैं २.५३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःशक्ति की विकृति और विनाश एक ही है २.५५
शांति मन की एक स्थिति का नाम २.५७
मानसिक रोगों का प्रेमोपचार २.५८
मानसोपचार की कुंजी अपने ही हाथ में २.५९
उपयुक्त रंग चुनिये, मनोविकारों से बचिये २.६१
बढ़ते हुए मनोरोग—कारण और निवारण २.६३
हास्य चिकित्सा को भी अपनाकर देखें २.६४
यमलोक का चित्रगुप्त हमारा अचेतन मन ही है २.६६
अपने मन को साधिये- सुसंस्कारी बनाइए २.७०
अचेतन को प्रभावित-परिष्कृत करने का विज्ञान का प्रयास २.७१
तृप्ति-तुष्टि-शान्ति २.७४
मनःक्षेत्र की ढलाई-वास्तविक पुरुषार्थ २.७७
जाइये, पहले रूठे मन को मनाइये २.७७
अचेतन मन की व्याधियाँ और उनका निराकरण २.८०
मानसिक तनाव बुरा तो है ही, उपयोगी भी २.८२
समस्याओं का समाधान दृष्टिकोण के परिष्कार पर निर्भर २.८४
मन पृथक नहीं है शरीर से २.८६
मनोभावों का स्वास्थ्य पर प्रभाव २.८८
वास्तविक और अवास्तविक हित साधन २.८९ २.९०
रोग निवारण हेतु मनोबल का उपयोग २.९२
आत्म-हत्या पलायन ही नहीं प्रतिशोध भी २.९४
आधुनिकता के अभिशाप २.९६
अंतरंग को परखें, बहिरंग से प्रभावित न हों २.९८
विक्षिप्तता और उसका स्थायी समाधान २.१००
अन्तरंग को स्वस्थ व निर्मल बनायें २.१०३
अवांछनीय अभिवृद्धि के दुष्परिणाम २.१०४
सुखाकांक्षा में भटकती अविकसित मनःस्थिति २.१०५
सुख पाना हो तो मन को प्रशिक्षित करें २.१०८
संतुलित उल्लसित जीवन कैसे जियें? २.१०९
अचेतन की अभिव्यक्ति है आभामण्डल २.१११
अन्तरंग को सुधारें, बहिरंग सुविकसित होगा २.११४
क्या मनुष्य स्वभावतः आक्रामक है ? २.११६
यह 'मूड' क्यों ऑफ हो जाता है ? २.११७
जीवन पद्धति वही ठीक, जो ''मूड'' को सही रखे २.११८
विघातक इरादे बदल भी सकते हैं २.१२१
हमारी महत्वाकांक्षाएँ—निकृष्ट न हों २.१२२
महत्वाकांक्षा की सनक से खड़े ये अजूबे २.१२४
दोषारोपण से घृणा,घृणा से युयुत्सा २.१२६
विचार परिष्कार ही अचेतन का अनावरण है २.१२९
मानवी काया का अदृश्य अस्तित्व २.१३१
भावनात्मक परिष्कार ही एकमात्र समाधान २.१३३
दोष जाने और हटाये बिना स्वयं को शुद्ध न मान लें २.१३५
अन्तःकरणों का मर्म स्थल अपनी दिशा बदले २.१३८
व्यक्तित्व परिष्कार के निमित्त किये जाने वाले उपक्रम २.१४३
असंस्कृत अचेतन से सुसंस्कृत अतिचेतन की ओर २.१४४
अन्तः का परिमार्जन-परिष्कार २.१४६
वृत्तियों का परिमार्जन, व्यक्तित्व का उदात्तीकरण २.१४८
शरीर का ही नहीं आत्मा का भी ध्यान रखें २.१५०
विलक्षण, अद्भुत प्रेम का रसायन शास्त्र ? २.१५०
अचेतन का परिष्कार ही परम् लक्ष्य २.१५१
आगत की झाँकी, अचेतन के झरोखे से २.१५४
अहन्ता के नागपाश से जीवन मुक्ति २.१५५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम माया के बन्धन में कब तक जकड़े रहेंगे २.१५७
माया अथवा भ्रम का निमित्त अपरिष्कृत मनःचेतना २.१५९
चित्तवृत्तियाँ सधें तो क्षमताएँ जगें २.१६१
आत्मिक ऊर्जा उत्पादन के लिए अनवरत् संघर्ष २.१६३
देवत्व का अभिवर्धन-प्रवृत्तियों के शोधन से २.१६५
नर-वानर देव मानव कैसे बने ? २.१६७
आनन्द कहाँ ? अपनी ही मुट्ठी में २.१६८
मनःशक्ति संवर्धन में योग निद्रा का उपयोग २.१६९
मनः क्षेत्र में निहित परोक्ष संसार २.१७२
आत्मिक प्रगति के तीन अवरोध २.१७४
आत्मिक प्रगति में बाधक-अवरोधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण २.१७७
आत्मिक प्रगति का राजमार्ग २.१७९
चेतना क्षेत्र की सुधि ली जाय २.१८०
दिव्य संकतों का आधार—अचेतन का उभार २.१८२
जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या २.१८४
चेतना की परतें व उनका रहस्योद्घाटन २.१८५
चेतना जगत के अदृश्य संदेश वाहक २.१८७
मनुष्य तुच्छ और घृणित है किन्तु दिव्यतम भी २.१८९
आत्मदेव परामर्श नहीं मानता २.१८९
आत्मा को उत्कृष्ट वातावरण का लाभ दिया जाय २.१९०
अन्तराल की सम्पदा खोज निकालने का उपयुक्त समय २.१९३
यह उत्तरदायित्व आत्मिका वहन करे २.१९५
आत्मिकी का परिष्कार एवं उसकी चमत्कारी परिणतियाँ २.१९८

३. सुपर चेतन और जीवन-मुक्ति ३.१

अपने को जानो ३.१
हम आत्म-गरिमा का अनुभव करें और किसी से न डरें ३.२
भीतर की दुनिया हर हालत में सही रहे ३.३
व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो ३.४
व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की धुरी—अध्यात्म ३.५
आदर्शवादी धारणाएँ ही मानवी उत्कर्ष में सहायक ३.६
प्रेम की विराट् परिधि ३.८
आत्मोत्कर्ष की अवांछनीय उपेक्षा ३.९
व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली अति सूक्ष्म शक्तियाँ ३.११
व्यक्ति में महानता का अवतरण ऐसे होगा ३.१३
देवत्व का विकास ही अन्तिम समाधान ! ३.१५
कैसे हो अंतस् में सत्य का अवतरण ? ३.१६
मानव के परिष्कार एवं उत्कर्ष की भावी सम्भावनाएँ ३.१७
आत्म-विकास के आधार स्तम्भ ३.१९
मूलभूत है, अपने अंदर का देवत्व ३.२२
देव मानव बनने का आह्वान ३.२४
महामानवों की ढलाई करने वाला उच्चस्तरीय मनोविज्ञान ३.२६
महामानवों की मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक ''एनाटॉमी'' ३.२८
अंतःकरण ही वास्तविक भाग्य निर्माता है ३.३०
अन्तःकरण पवित्र भावों से अनुप्राणित हो ३.३२
अन्तःकरण का विकास और उज्ज्वल भविष्य ३.३३
हम अंतःकरण की वाणी सुनें और उसका अनुकरण करें ३.३५
अन्तराल के उच्च स्तर का विकास ३.३६
अन्तःकरण ही वास्तविक भाग्य-विधाता ३.३८
अन्तःकरण की उत्कृष्ट भाव संवेदना ३.४०
भाव संवेदनाओं की गंगोत्री सूखने न पाए ३.४१
भावात्मक चेतना जीवन की सर्वोपरि सत्ता ३.४४
भावनाओं का अमृत यों ही न बहायें ३.४५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावनाओं को ऊर्ध्वगामी बनाया जाय ३.४७
आत्म-शक्ति का उपार्जन एवं सुनियोजन ३.४९
मानवी अन्तराल में प्रसुप्त दिव्य-क्षमता ३.५१
मनश्चेतना के उच्चस्तरीय आयाम ३.५४
सामर्थ्य सम्पदा से भरा-पूरा मानवी अन्तराल ३.५६
अन्तराल की प्रचण्ड ऊर्जा ३.५८
अन्तराल में निहित सिद्धि वैभव ३.६०
विशिष्ट क्षमताओं हेतु अन्तः का परिशोधन अनिवार्य ३.६१
अंतःशक्ति की विलक्षणता के तथ्य-प्रमाण ३.६२
शस्त्रों से भी अधिक सामर्थ्यवान मन की शक्ति ३.६४
इनका कारण ढूँढ़ना अभी शेष है ३.६६
मानव में अन्तर्निहित रहस्यमय शक्तियाँ ३.६७
विलक्षण मानसिक शक्तियाँ और उनका आधार ३.६९
ऊर्ध्वगामी मन की सामर्थ्य ३.७२
बड़ा विलक्षण-अद्भुत है, मानवी मन ३.७३
मन में निहित विलक्षण अतीन्द्रिय सामर्थ्य ३.७४
मनोनिग्रह और आत्मिक उत्कर्ष ३.७५
मणि-मुक्तकों से भरा चेतन शक्ति का भाण्डागार-मानव मन ३.७७
विराट् मन ही इस विश्व का नियामक ३.८०
चेतना की उदात्तीकरण प्रक्रिया ३.८१
मन में निहित विकास की उच्चतर अवस्थाएँ ३.८३
योगी अरविन्द का अतिमानस और धरती पर स्वर्ग ३.८४
हमें प्रज्ञा का आश्रय लेना पड़ेगा ३.८७
चेतना का सर्वोच्च आयाम एवं उसकी प्राप्ति ३.८८
चेतना क्षेत्र में विज्ञान का प्रवेश हो ३.९१
अविज्ञात को मिलेगी अब विज्ञान की मान्यता ३.९३
भौतिकी का सूक्ष्मीकरण-चेतन सत्ता से एकीकरण ३.९५
पदार्थ और चेतना—दो भिन्न अस्तित्व ३.९७
सच क्या है— चेतना या पदार्थ? ३.१००
चेतना का पदार्थ जगत् पर नियंत्रण ३.१०१
गहन अन्तःचेतना को प्रभावित करने की आवश्यकता ३.१०२
परिष्कृत चेतन तत्त्व की अनुभूतियाँ ३.१०५
अविज्ञात को जानने के लिए, चलें चेतना के सर्वोच्च आयाम में ३.१०७
परिष्कृत अंतरंग चेतना की उपलब्धियाँ ३.११०
अविज्ञात रहस्यों से भरी मानवी चेतना ३.११२
चेतना के महासागर में दबी विलक्षण संभावनाएँ ३.११४
मनुष्य की बलिष्ठ आत्म चेतना ३.११५
अतिमानवी चेतना की उपलब्धि ३.११८
प्रत्यक्ष ही सब कुछ नहीं है ३.१२१
आत्मा क्या है ? ३.१२३
आत्मा का अस्तित्व झुठलाया न जाय ३.१२४
मन से छीनकर प्रधानता आत्मा को दीजिये ३.१२८
अपनी ही आत्मा सर्वत्र बिखरी पड़ी है ३.१३०
आत्म-शक्ति का अकूत भण्डार ३.१३१
परमाणु शक्ति से बढ़कर है आत्मसत्ता ३.१३३
मानवी सत्ता ब्रह्माण्डीय सत्ता की प्रतिकृति है ३.१३५
मानवी चेतना में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ ३.१३६
चेतना को प्रखर बनायें और सामर्थ्यवान बनें ३.१३८
अन्तर्सत्ता का प्रचण्ड सूक्ष्मीकरण पुरुषार्थ ३.१४०
मानवी सत्ता -हर दृष्टि से अनुपम, अद्भुत एवं आश्चर्यजनक ३.१४२
अन्दर छिपा वैभव का जखीरा ३.१४४
अलौकिक शक्तियों का उद्गम-अन्तराल में ३.१४५
परिष्कृत अन्तराल विभूतियों का भाण्डागार ३.१४७
अन्दर छिपी पड़ी अलौकिक सामर्थ्य ३.१४९
न ज्ञान न विज्ञान फिर भी निर्बाध आदान-प्रदान ३.१५१
आत्मचेतना विराट की प्रतिनिधि ३.१५३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखने वाली आत्मा को आँखें आवश्यक नहीं ३.१५५
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ३.१५८
न यंत्र न विज्ञान फिर भी दूरवर्ती का ज्ञान ३.१६०
रहस्यमयी आत्मविद्या के अन्वेषण की आवश्यकता ३.१६२
अद्वैत आत्मा का अद्वैत अनुभूतियाँ ३.१६३
मन की परतों में छिपी विलक्षणताएँ ३.१६५
मनुष्य की सूक्ष्म आध्यात्मिक संरचना एक वैज्ञानिक विवेचन ३.१६५
सूक्ष्म शरीर की सामर्थ्य को समझें ३.१६९
सूक्ष्म शरीर का आणविक विश्लेषण ३.१७१
सूक्ष्म शरीर विज्ञान की दृष्टि में ३.१७३
सूक्ष्म शरीर की अति समर्थ सूक्ष्म शक्तियाँ ३.१७५
भाव चेतना को प्रभावित करे, ऐसी विधा की खोज हो ३.१७७
आत्मिकी का अवलम्बन एवं उसके प्रतिफल ३.१८०
आत्मिकी की प्रगति एवं सुनियोजन की आवश्यकता ३.१८२
हे मानव! तू पहले अपनी आत्मा को पहिचान ३.१८५
अपने को जानें, भव बन्धनों से छूटें ३.१८७
मानव जीवन का परम पुरुषार्थ—आत्मज्ञान ३.१८९
आत्मज्ञान से ही दुःखों की निवृत्ति संभव है ३.१९१
आत्म-ज्ञान की आवश्यकता ३.१९३
आत्मज्ञान जीवन की महानतम् उपलब्धि ३.१९५
आत्म-ज्ञान का तत्व दर्शन ३.१९८
पूर्णत्व की प्राप्ति का एक ही राजपथ ३.२००
समर्थ सत्ता को देखें, सुनें, प्राप्त करें ३.२०३
आत्मा में परमात्मा की निकटतम अनुभूति ३.२०५
आत्मा की परमात्मा से गुहार ३.२०६
परमात्मा को जानने के लिए अपने आपको जानो ३.२०९
अन्तरात्मा की प्यास और तृप्ति ३.२१०
सच्चिदानन्द स्वरूप—अन्तरात्मा ३.२१३
आनन्द की गंगोत्री अपने ही भीतर ३.२१४
अजस्र शान्ति के बीज अन्तःभूमि में उगते हैं ३.२१७
स्रोत अन्दर है, बाहर नहीं ३.२१८
आत्म विस्तार—अखण्ड आनन्द का एकमात्र साधन ३.२१९
शाश्वत आनन्द का अनुसंधान ३.२२१
आत्मानुसधान देगा सहजानन्द ३.२२२
अन्तकरण की पुकार अनसुनी न करें ३.२२४
प्रभु दर्शन की पूर्व-भूमिका ३.२२६
ग्राह रूपी जीवात्मा की बंधनमुक्ति ३.२२८
ईश्वर विकास का चरम बिन्दु है ३.२२९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

चेतन मन और उसका सुनियोजन

विचारों की व्यापकता और सशक्तता

जिस क्षेत्र में जिस प्रकार के लोग बहुलता से रहते हैं अथवा जहाँ का चिन्तन एक स्तर का चलता रहता है वहाँ का वातावरण एक विशेष प्रकार की विशेषता से अनुप्राणित हो जाता है। सामूहिकता की शक्ति अपने आप में एक विशेष प्रकार की क्षमता से भर जाती है। संयुक्त शक्ति की महिमा से सभी लोग परिचित हैं। इसके चमत्कार देखना हो तो एक स्वभाव के एक जैसे लोगों के एक साथ रहने पर जो प्रभाव बनता है उसका अवलोकन करना चाहिए।

मरघट में डरावना वातावरण रहता है। वहाँ आये दिन मुर्दे जलते हैं। ऐसा भी होता है कि दाह-संस्कार के लिए जो लोग आते हैं उनमें अधिकांश के मन में बिछोह, वेदना और शोकभरी भावना रहती है। मुर्दे के जल जाने और उस कृत्य में सम्मिलित होने के लिए आये लोगों के चले जाने पर भी विशेष संवेदनाओं का प्रभाव उस भूमि पर बना रहता है। बहुत समय वही क्रम चलते रहने पर वह भूमि, वहाँ के पेड़-पौधे उन संस्कारों को अपने में धारण कर लेते हैं। फल यह होता है कि जो भी वहाँ पहुँचता है वह अपने में एक विशेष प्रकार की सनसनी अनुभव करता है और भयभीत जैसी मन:स्थिति बनते जाने का अनुभव करता है।

कसाईखानों में जहाँ जानवर कटते रहते हैं वहाँ अस्वच्छता तो रहती है, तनाव भी ऐसा ही होता है कि कटने वाले प्राणियों की छटपटाहट उस क्षेत्र पर हावी हो जाती है। आसपास रहने वालों के चित्त में उद्विग्नता पैदा करती है। न उन्हें चैन से बैठने देती है और न शान्ति अनुभव करने देती है।

वेश्यालयों के मुहल्लों में, नशेबाजों का जमघट जुटने वाले स्थानों से भी कुछ ऐसी ही उद्विग्न करने वाली स्थिति रहती है। कोई कुछ कहे सुनाये तो भी मन में उन गतिविधियों में भागीदार बनने के लिए ललक उठने लगती है। धीरे-धीरे विचार जोर पकड़ते जाते हैं और मन ललचाकर वहाँ चल रही प्रवृत्तियों में भागीदार बनने के लिए कदम बढ़ाने लगता है। यह सामूहिक शक्ति से उत्पन्न हुआ प्रतिफल है। इसे काटने में कोई प्रबल मनस्वी ही सफल होते हैं, अन्यथा देखा यही गया है कि बड़े प्रवाह में छोड़ा गया जल भी उसी प्रवाह में पड़कर उसी दिशा में बहने लगता है।

सिपाहियों की सेना के सम्पर्क में रहने पर दुर्बल मन वालों की भी भुजाएँ फड़कने लगती हैं। नृत्य, गायन, वाद्य की कलोल में अपना मन भी तरंगित हो उठता है। मेले-ठेले में, उत्सव-आयोजन में जहाँ अधिक भीड़ जमती है, वहाँ अपना मन भी सम्मिलित होने के लिए मचलने लगता है। अश्लीलता के वातावरण में अच्छे भले लोग भी कामुकता की दिशा में चलने की बात सोचने लगते हैं। ऐसे कम ही लोग होते हैं जो अपने दृढ़ निश्चय पर अटल बने रहें और वातावरण को अपने ऊपर हावी न होने दें। आँधी चलती है तो पत्तियाँ, टहनियाँ हिलने लगती हैं। कमजोर पेड़-पौधे तो उखड़ भी जाते हैं पर ऐसे सुदृढ़ वट-वृक्ष जहाँ-तहाँ ही होते हैं जिन पर ऋतुओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो न केवल चट्टान की तरह अपने स्थान पर अटल खड़े रहते हैं, वरन् एकाकी होते हुए भी आत्मविश्वास के सहारे अपने कर्त्तव्य पथ पर बिना चूके चलते रहते हैं। अन्यथा मध्यवर्ती लोग हवा का रुख बदलने पर अपना तरीका भी बदल लेते हैं। कुछेक व्यक्ति ही दृढ़ निश्चय और अविचल प्रयास वाले होते हैं अन्यथा अधिकांश लोग बहाव के साथ बहते देखे जाते हैं।

वातावरण जब युद्धोन्माद की विचारधारा से अभिप्रेरित हो जाता है, अनेकों का मन सेना में भर्ती होने और मोर्चे पर जाने के लिए करने लगता है। यह सामूहिक विचारों की संयुक्त शक्ति का प्रतिफल है। तेज धार में बहती हुई नदी में जो कुछ भी कूड़ा-कचरा गिर पड़ता है वह उसी के साथ बहता चला जाता है। अंधड़ अपने साथ पत्तों को धूलि-कणों को भी उड़ा ले जाता है। बहाव को, रोककर बाँध बाँधना और पानी को अभीष्ट दिशा में मोड़ देना संभव तो है पर है कठिन।

कठिन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रखर प्रतिभा की आवश्यकता होती है साथ ही प्रबल प्रयत्नों की भी। इसके लिए आवश्यक साधन भी जुटाने पड़ते हैं। नीचे की दिशा में बहते प्रवाह को बाँध के रूप में जो लोग रोक सकते हैं। उनके लिए यह भी संभव हो जाता है कि उस निरर्थक दौड़ने वाले पानी का सदुपयोग करके बिजलीघर बना सकें, पनचक्कियाँ चला सकें। यह श्रम साध्य प्रक्रिया जिनसे बन पड़ती है, वे अपनी मनस्विता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहाते चलते हैं। अपनी विशिष्टता से अनेकों को अनुप्राणित करते हुए अपने साथ घसीटते ले चलते हैं। एक साहसी के साथ अनेकों साहसी बनते हैं, जबकि एक कायर के साथ अनेकों को कायर बनने में भी देर नहीं लगती। विचारों की शक्ति अपार है, वह ऊँचा भी उठा सकती है और नीचे गिराने में भी समर्थ है। इस शक्ति की महिमा असीम और अपार है। उसकी क्षमता को अपनाया और कर्म रूप में परिणित किया जाना चाहिए।

मनुष्य अनेक प्रकार के कार्य करता है। करने से पूर्व वह प्रक्रिया विचार रूप में विकसित होती है। विचार तब बनते हैं, जब अनगढ़ कल्पनाओं का बुद्धि द्वारा इतना परिमार्जन कर लिया जाता है कि वे व्यवहार में उतारने योग्य बन जायँ। विचारों का शरीर के समस्त अंग अवयवों पर आधिपत्य है। कठपुतली को धागों के सहारे बाजीगर नचाता है। मन के निर्देशन पर ही शरीर के विभिन्न अवयव निर्देशित प्रक्रिया पूर्ण करते हैं। इसी का नाम कर्म है। वे मात्र विचारों की परिणति हैं।

अपने भले-बुरे कृत्यों के लिए तो विचार उत्तरदायी हैं ही, इसके अतिरिक्त वे समीपवर्ती लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। एक-दो विचारशील व्यक्ति ही मिल-जुलकर समूचे परिवार का स्तर एवं भविष्य विनिर्मित करते हैं। बालकों पर अभिभावकों और अध्यापकों का विशेष प्रभाव पड़ता है। बालक विशेष रूप से और बड़े सामान्य रूप से उन प्रभावों से प्रेरणा लेते हैं और अपने लिए कर्त्तव्य निर्धारित करते हैं।

एक प्रकार के विचारों वाले जब मिल-जुलकर रहने लगते हैं, एक दिशा में सोचते और कदम उठाते हैं तो वह संगठन बन जाता है। जब तक विचारों में एकता और घनिष्ठता नहीं, तब तक भारी भीड़ भी कहीं जमा होती है तो उनका स्वरूप मात्र मेले-ठेले जैसा बनेगा। प्लेटफार्मों, सड़कों बसों, रेलों में अनेक बैठे और चलते-फिरते दीखते हैं। पर उनके उद्देश्यों की एकता न होने से वे मात्र भीड़ बनकर रह जाते हैं। एक-दूसरे की सहायता तक नहीं कर पाते। पर जब भावनात्मक एकता और क्रिया पद्धति में एकरूपता होती है तो छोटा समुदाय भी बड़े चमत्कार दिखाने लगता है।

विचारों की विद्युतशक्ति मात्र संबद्ध व्यक्तियों तक सीमित नहीं रहती, वरन् वह समूचे अन्तरिक्ष में बिखर जाती है। वे हवा की तरह उड़ते रहते हैं और जहाँ भी अपनी अनुरूपता देखते हैं, वहाँ डेरा डाल बैठते हैं। धातुओं की खदानें भी इसी प्रकार जमा होती हैं। दूर-दूर तक रेत में बिखरे हुए कणों में किसी जगह एकत्रित हुआ ढेर अपने चुम्बकत्व द्वारा बिखरे कणों को समीप घसीटता रहता है और छोटे से बड़ा बनता रहता है। विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे जब भी, जहाँ भी एकत्रित होते है, वहाँ अपना समुदाय बना लेते हैं। विभिन्न प्रकार के वर्ग इसी प्रकार बनते हैं। उनमें प्रौढ़ता, परिपक्वता आती-जाती है तो क्षमता और भी अधिक बढ़ती है। अपने प्रभाव शक्ति से वे अनेकों का लपेट में लेते हैं और छोटे समुदाय को बड़ा बनाते हैं। इसी प्रकार संसार में अनेकानेक विचारधाराएँ बनती और वर्ग बनते रहे हैं। यदि कोई आदर्शवादी विचारधारा समूचे अन्तरिक्ष को आच्छादित कर ले तो एकता-समता का वातावरण सहज ही बन सकता है। इक्कीसवीं सदी ऐसे ही कुछ विचार पुंज लिए साथ आ रही है।

विचार प्रवाहों से विनिर्मित होता है प्रखर व्यक्तित्व

विचारणाओं—भावनाओं की उत्कृष्टता ही मानवी उत्कर्ष का अभ्युदय का प्रमुख आधार है। जो इस तथ्य से भली-भाँति अवगत हैं, वे अपनी चिन्तन चेतना को सदैव ऊर्ध्वगामी बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। विचार-शक्ति की महिमा से अनभिज्ञ व्यक्तियों को जिस-तिस प्रकार अस्त-व्यस्त जीवन जीने को विवश होते और अविकसित मनःस्थिति में ही दम तोड़ते देखा जाता है। विचारों का स्तर विधेयात्मक या निषेधात्मक जैसा भी होगा, व्यक्तित्व भी तदनुरूप ढलता चला जायेगा।

मनःचिकित्सक डॉ. जार्ज आर. बैच ने निषेधात्मक प्रकार की विचारधारा को मनुष्य का सबसे बड़ा आन्तरिक शत्रु बताया है। अपनी कृति-''द इनर एनिमी'' में उनने लिखा है कि संसार में इससे बढ़कर हानिप्रद दुश्मन और कोई नहीं। बाहरी शत्रु मात्र आर्थिक या शारीरिक हानि पहुँचा सकते हैं और यदि सतर्कता बरती जाय, सावधान रहा जाय, तो उनसे लोहा लिया और निपटा भी जा सकता है, किन्तु आन्तरिक दुश्मन तो अन्तराल में पनपने और मन मस्तिष्क में उमड़ने-घुमड़ने वाले हेय विचार हैं, जिन्हें असावधान व्यक्ति न तो पहचान पाते हैं और न उनसे बचने या पीछा छुड़ाने का प्रयत्न ही करते हैं। उनने इसे 'हैण्डसम डेविल' के नाम से सम्बोधित किया है, कारण कि यह सुन्दर, लुभावने सपने दिखाते और अपने मोहपाश में फँसाकर अन्ततः पतन के गर्त में जा धकेलते हैं। जीवनक्रम को अस्त-व्यस्त करके रख देने वाली इस विचार प्रक्रिया को दैत्य की श्रेणी में रखा गया है। विचार तन्त्र का परिष्कार ही इससे त्राण पाने का सरलतम् उपाय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधेयात्मक विचार प्रक्रिया को अपनाकर ही आगे बढ़ा और ऊँचे उठा जा सकता है। प्रगति एवं व्यक्तित्व की प्रखरता का सूत्र सादा जीवन व उच्च चिन्तन में ही निहित है। विश्व प्रसिद्ध लेखक डॉ. वेने डायर ने 'द स्काई इज द लिमिट' नामक पुस्तक में विचारणा की इस श्रेष्ठतम् स्थिति कोटॉन्सेडिंग ऑथोरीटेरियन थिंकिंग अर्थात् उत्कृष्ट प्रामाणिक चिंतन के नाम से सम्बोधित किया है और इस तरह की विचार प्रक्रिया को अपनाने वाले व्यक्ति को 'नो लिमिट परसन'—अर्थात् असीम एवं असाधारण व्यक्तित्व वाला बताया है। ऐसे व्यक्ति सामान्यजनों की अपेक्षा अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं ढूढ़ने तथा अपने बारे में निर्णय ले सकने की क्षमता से पूर्ण होते हैं और साथ ही परिस्थितियों के अनुरूप मन:स्थिति को ढालने की कला में भी पारंगत होते हैं। उनके चिन्तन की परिधि ससीम न रहकर असीम हो जाती है। स्वतन्त्र एवं व्यवस्थित सूझबूझ वाले व्यक्तियों के निर्णय सही और सार्थक सिद्ध होकर रहते हैं।

रेन दैकार्ते को आधुनिक दर्शन का जन्मदाता कहा जाता है। उनके कथनानुसार मनुष्य में 'कीजीटो' नामक एक विशिष्ट प्रकार की विचार ऊर्जा सतत् प्रवाहित होती रहती है। यदि उसे विधेयात्मक एवं रचनात्मक दिशा में मोड़ा-मरोड़ा जा सके तो मनुष्य सीमित एवं संकुचित दायरे से निकलकर अपने विराट स्वरूप की झाँकी आसानी से कर सकता है। जीवन दर्शन की समस्त संभावनाएँ इसी ऊर्जा प्रवाह पर निर्भर करती हैं। सामान्य से असामान्य बना सकने वाला जीवन तत्व इसी में विद्यमान है। डॉ. वेने डायर ने 'कीजीटो' को ही 'नो लिमिट-थिंकिंग' अर्थात् असीम चिन्तन से सम्बोधित किया और बताया है कि यह मानवी चिन्तन की वह अवस्था है जिसमें ज्ञान-कर्म और विचार की चिन्तन-चरित्र व्यवहार की तीनों धाराओं का सामंजस्य-समन्वय सरलतापूर्वक बैठ जाता है। केवल विचारणा मात्र ही मानवी व्यक्तित्व का प्रतीक नहीं होती वरन् समग्र व्यक्तित्व का निर्धारण आचार और विचार दोनों से मिलकर बनता है। चरित्र का निर्माण इन्हीं से होता है। संसार में ऐसे कितने ही व्यक्ति पाये जा सकते हैं, जिनके विचार बड़े ही उदात्त, महान और आदर्शपूर्ण होते हैं, किन्तु उनकी क्रियाएँ उनके अनुरूप नहीं होतीं। विचार पवित्र हों और कार्य अपावन, तो यह व्यक्तित्व की श्रेष्ठता कहाँ हुई ? इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि कोई ऊपर से बड़े ही सत्यवादी, आदर्शवादी और धर्मपरायण दीखते हों, किन्तु भीतर कलुषपूर्ण विचारधारा ही प्रवाहित हो रही हो। दोहरे जीवन जीने वाले ऐसे व्यक्ति खरे व्यक्तित्व वाले नहीं माने जा सकते। चरित्रवान उसे ही माना जायेगा और वास्तव में वही होता भी है जो विचार और व्यवहार दोनों को समान रूप से उच्चस्तरीय और पवित्र रखकर चलता है।

काय-कलेवर, जिससे आचरण और क्रियायें प्रतिपादित होती हैं, विचारों द्वारा ही संचालित होता है। उनके स्तर के अनुरूप ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। जो व्यक्ति रचनात्मक विचारणाओं को जिस अनुपात में अपनाता, सँजोता और सक्रिय करता चलता है, उतना ही वह सदाचारी, पुरुषार्थी और परामार्थी बनता जाता है। इसी आधार पर सुख-शान्ति के अक्षुण्ण बने रहने का आधार खड़ा होता है। विचार प्रवाह के निम्नगामी होने पर व्यक्तित्व के विकास में विघ्न पहुँचता है। इस तरह की विचारधारा को 'डिकोटोमस,' अर्थात् विकृत एवं विघटनकारी प्रवाह के नाम से भी जाना जाता है। इस मानसिक रुग्णता की स्थिति में अचिन्त्य चिन्तन एवं अनौचित्यपूर्ण क्रियाकलापों के जाल में फँस जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अज्ञानता-अबोधतावश और असावधानी से ऐसा हो सकता है, किन्तु तथाकथित सभ्यों को जब ऐसा सोचते और आचरण करते देखा जाता है जो मानवी गरिमा और सभ्यता के अनुकूल नहीं होता तब और भी अधिक आश्चर्य होता है।

वस्तुत: 'नो लिमिट परसन' अर्थात् विशाल व्यक्तित्व का अर्थ है—संकीर्णताजन्य स्वार्थपरता के भव-बन्धनों का परित्याग करने वाली उत्कृष्ट चिन्तन की रीति-नीति को अपनाकर अपने को लोकोपकारी, आदर्शवादी विचारधारा के साथ जोड़ना। इस विधा को जानने वालों के जीवन में सदैव प्रसन्नता और प्रशंसा ही दृष्टिगोचर होती है। निन्दा, आलोचनाओं से वह सदा अपने को दूर रखते हैं। राल्फबाल्डो इमर्सन जैसे अध्यात्मवेत्ता और आइन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक अपने उत्कृष्ट प्रामाणिक चिन्तन के कारण ही दुनिया को नयी और रचनात्मक दिशाधारा दे सकने में सफल हो सके। यह सभी इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि मानवी शक्तियों में विचार शक्ति का बहुत महत्व है। एक विचारवान व्यक्ति लाखों, करोड़ों का नेतृत्व कर सकता है। इस क्षमता से सम्पन्न व्यक्ति साधनहीन होने पर भी अपनी उन्नति और प्रगति का मार्ग निकाल लेते हैं। विधेयात्मक दिशाधारा अपनाकर ही महापुरुष समाज और राष्ट्र का निर्माण किया करते हैं। इस सामर्थ्य के बल पर आध्यात्मिक व्यक्ति कठिन से कठिन भव-बन्धनों को पारकर आत्म-साक्षात्कार करते एवं परमात्म सत्ता से जुड़ते हैं। ऐसे व्यक्तियों निर्माण किसी स्कूली पढ़ाई अथवा ऊपर के थोपे हुए ज्ञान से नहीं अपितु चिन्तन-चेतना के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिष्कार से ही संभव है। तपश्चर्या का योग- साधनाओं का अवलम्बन इसी प्रयोजन की पूर्ति करता है। शिक्षा का अर्थ भौतिक जानकारी देने वाली स्कूली पढ़ाई तक सीमित हो गया है। उसके द्वारा बहुज्ञता, कुशलता एवं अधिक उपार्जन क्षमता के लाभ तो मिल सकते हैं किन्तु उच्चस्तरीय व्यक्तियों का निर्माण विचार परिष्कार से ही संभव है। चिन्तन की उत्कृष्टता जहाँ होगी वहाँ जीवन में स्नेह-सौजन्य का, सौमनस्य का बाहुल्य मिलेगा। इसी प्रकार सम्पर्क क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग-सद्भाव उमड़ रहा होगा।

सामान्य लोगों की अपेक्षा दार्शनिक, विचारक, संत, मनीषी एवं कलाकार अधिक निर्धन और अभावग्रस्त स्थिति में होते हैं, पर उन्हें सम्पन्नों की तुलना में कहीं अधिक संतुष्ट, सुखी और शांत समुन्नत देखा जाता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि सामान्यजन सुख-शान्ति के लिए जहाँ लौकिक और भौतिक सुविधा-साधन जुटाने में निरत रहते हैं, वहीं महामानव मानसिक साधना अथवा वैचारिक साधना के अभ्यासी होते हैं, विकृत एवं विघटनकारी चिन्तन के दुष्परिणामों को भलीभाँति समझने और उत्कृष्ट चिंतन की रीति-नीति अपनाकर कष्ट-कठिनाइयों से छुटकारा पाने में समर्थ होते हैं। वस्तुत: मनुष्य की संरचना समन्वयवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर परमात्मा ने की है। इस तरह की विचारणा को मनीषियों ने कल्पवृक्ष की उपमा दी है, जो व्यक्ति की हर आवश्यकता को पूरी करने की क्षमता रखती और उसे सन्मार्ग पर चलने के लिए अभिप्रेरित करती है।

शुभ और दृढ़ विचार मन में धारण करने और उत्कृष्ट चिन्तन-मनन करते रहने से सात्विक भावों की अभिवृद्धि होती है। आचरण उदात्त और उन्नत बनता है। मानसिक शक्ति का विकास होता और सद्गुणों की प्राप्ति होती है। अत: यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है कि अपने सोचने-विचारने की प्रक्रिया पर नये सिरे से मंथन किया जाय और उसमें से खोज-खोजकर निकृष्ट एवं हेय स्तर के विचारों को निकाल फेंका जाय। साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा के उपाय-उपचारों द्वारा सद्विचारों का आरोपण सहज संभव हो जाता है। प्रखर, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का निर्माण एवं उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण इसी आधार पर संभव हो सकेगा।

विचार शक्ति की अनन्त सामर्थ्य

समुन्नत जीवन की व्यापक-विस्तृत सम्भावनाओं का आधार सद्विचार ही हैं। विचारों की तरंगें प्रकाश, ताप, ध्वनि एवं विद्युत की अपेक्षा अधिक ही शक्तिशाली हैं, कम नहीं।

शिकागोवासी टेड सीरियस द्वारा कल्पनाओं के फोटो खींच सकने की बात अब विश्वविदित है। टेड की इस शक्ति से विचार-तरंगों की शक्ति व गति का ही संकेत मिलता है।

विचार हैं क्या ? प्राण-शक्ति (वाइटल फोर्स) की स्फुरणा (डिस्चार्ज) ही विचार हैं। फोटोन कण प्रकाशवेग से चलते हैं, इसीलिए वे अनन्त यात्रा कर सकते हैं। समय फोटोन के लिए गतिशून्य हो जाता है। विचार-शक्ति भी कालातीत है; क्योंकि उसकी गति प्रकाशवेग से भी अधिक है। सैकिंड के करोड़वें हिस्से से भी कम समय में हम विश्व के किसी भी बिन्दु पर विचार-शक्ति द्वारा पहुँचकर वापस आ सकते हैं।

सामान्यत: मनुष्य अपनी विचार-शक्ति का उपयोग नहीं करता। विचार-शक्ति में प्राण-शक्ति के स्फुरण वेग के अनुसार ही शक्ति होती है। उसकी तीव्रता (इन्टेन्सिटी) के आधार पर उसे मन्द, मध्यम और गहन-प्रचण्ड इन तीन वर्गों में बाँट सकते हैं। अनियमित टूटे-फूटे विचारों में बल व वेग मन्द होता है। उनका सम्प्रेषण थोड़ी ही दूर तक किया जा सकता है और उनमें प्रभावित कर सकने की सामर्थ्य भी अत्यल्प होती है। अविकसित व्यक्तियों की विचार-शक्ति मन्द ही होती है।

सामान्य औसत व्यक्तियों की विचार-शक्ति मध्यम होती है। शिक्षा व सम्पत्ति के अर्जन में यही यथेष्ट सहायिका होती है। मध्यम विचार-शक्ति वाले लोगों की बुद्धि पल्लवग्राही होती है, मूलग्राही नहीं। बन्दर इस डाल से उस डाल पर पत्तियों को छूता, पकड़ता, गाता, कूदता रहता है। यही पल्लवग्राहिता है। सामान्य व्यक्ति विविध जीवन-क्षेत्रों की सतही जानकारी रखते हैं तथा उसके सहारे व्यवहार-कौशल का कार्य सम्पादित करते हैं।

किसी विषय में गहरे पैठने की प्रवृत्ति को मूल-ग्राही प्रवृत्ति कहते हैं। गहनता से विचार करने हेतु अपनी सम्पूर्ण ध्यान-शक्ति नियोजित करनी होती है। इससे प्राण-शक्ति का विशेष स्फुरण होता है। देर तक एक ही विषय से सम्बद्ध विचार मस्तिष्क में बना रहने पर उसमें संवेग (मूमेन्टम) बढ़ता रहता है। विकसित इच्छा-शक्ति से जुड़े विचारों में मस्तिष्क एवं हृदय, दोनों का बल काम करता है। इससे उनकी गति तीव्र और प्रभाव गहन हो जाता है। वे अत्यधिक शक्तिशाली हो जाते हैं और उनका परिणाम भी शीघ्र ही प्राप्त होता है। प्रचण्ड, प्रभावशाली और साकार विचारधारा में प्राण-शक्ति का ही प्रभाव होता है। जब मन को अन्य सभी दिशाओं से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हटाकर किसी विशेष बिन्दु पर, किसी आदर्श विशेष में या विषय-विशेष में केन्द्रीकृत किया जाता है, तो चिन्तन और आकांक्षाओं का केन्द्र-बिन्दु वही एक हो जाता है। मनुष्य उसी उधेड़बुन में लगा रहता है। उसी प्रयोजन के लिए प्रतिपल सक्रिय, जागरूक एवं गतिशील रहता है। आस्था उसी आदर्श में दृढ़ होती है। विचारों का केन्द्र वही होता है और गतिविधियों का प्रेरणासूत्र भी वही होता है। आस्था, चिन्तन और कर्म की त्रिवेणी प्रचण्ड मस्तिष्कीय ऊर्जा के रूप में प्रवाहित होती है। वह सृजनात्मक गतिविधियों और अनुभूतियों का आधार बनती है। प्रबल अवरोधों से टकराकर भी टिके रहने और प्रवाहित रहने की शक्ति उसमें आ जाती है। यह त्रिवेणी व्यक्तित्व को दिव्य, पवित्र बनाती है। वस्तुतः श्रेष्ठ व्यक्तित्व उस स्थिति का ही नाम है, जहाँ मध्य में होती है, प्रखर उत्कृष्ट विचार-शक्ति और उसमें भावना, निष्ठा-आस्था की हृदय-शक्ति तथा तदनुरूप आचरण व्यवहार की क्रियाशक्ति का समन्वय होता है।

प्राण-शक्ति का चुम्बकीय विद्युत-प्रवाह ही विचारों को प्रचण्ड बनाता है। प्राण को मानवी-व्यक्तित्व के आधार पर ढली हुई विशिष्ट ऊर्जा कह सकते हैं। इस ऊर्जा को जब निर्धारित लक्ष्य की एक ही दिशा में नियोजित किया जाता है, तब उसका विशिष्ट प्रभाव स्वाभाविक ही है। प्राण की विद्युत के अनुपात से विचार-तंरगों में प्रखरता आती है। एम्प्लीफायर के माध्यम से हलकी-सी आवाज को इतना शक्तिशाली बना दिया जाता है कि उसे सैकड़ों-हजारों मील दूर-दूर तक बैठे लाखों व्यक्ति सुन सकते हैं। परिष्कृत सघन प्राण-शक्ति की सूक्ष्मता का सदुपयोग विचारों को भी ऐसी ही प्रभावोत्पादकता से सम्पन्न बनाता है।

इससे स्पष्ट है कि विचार-शक्ति के घटने-बढ़ने का सम्बन्ध प्राण-शक्ति की विशिष्ट ऊर्जा से है। अन्यमनस्कता, आलस्य, अस्तव्यस्तता, अवसाद, उपेक्षा और उत्साहहीनता की मनोभूमि में शिथिल, शक्तिहीन विचार ही उत्पन्न होते हैं और मुरझा जाते हैं। स्वयं के जीवन में ही उनका कोई प्रभावशाली परिणाम नहीं परिलक्षित होता, फिर दूसरों को प्रेरणा दे पाना उनसे कहाँ तक सम्भव हो सकेगा? सामान्य भाषणकर्त्ताओं, प्रवचनकारों, कथाकारों, वक्ताओं की मनोभूमि ऐसी ही होती है। थोड़ी-सी रटी हुई बातें घुमा-फिराकर-दुहराई जाती रहती हैं। मस्तिष्क के उथले स्तर से ही ये निकलते हैं। कण्ठ को और जिह्वा के अग्रभाग को साध लेने पर ऐसे भाषण आदि सुनने में सुहावने लग सकते हैं। समझते समय भी वे आकर्षक प्रतीत हो सकते हैं। इससे आगे उनकी प्रभाव गति नहीं होती। प्राण-शक्ति की न्यूनता उनको प्रभाव परिपुष्ट नहीं बना पाती। दूसरी ओर उत्कृष्ट, प्रखर प्राण-शक्ति से निकले शब्दों में भले ही लच्छेदार प्रभाव न हो, पर आस्था, अनुभूति और आचरण का आधार उन्हें मर्मस्पर्शी और स्थायी प्रभाव पैदा कर सकने योग्य बना देता है। महामानवों की वाणी में लोक-मानस की जकड़न को समाप्त कर उसका दिशा-निर्देश कर सकने की क्षमता इसी आधार के कारण होती है।

एकाग्रतापूर्वक तीव्र इच्छा-शक्ति के साथ किये गये विचारों की शक्ति आचरण से जुड़ जाने पर प्रभावपूर्ण हो ही जाती है। यह सम्मिलित शक्ति सद्भाव-प्रेरित हुई तो सत्प्रवृत्तियों को प्रदीप्त करती है। दुर्भावनाओं से जुड़ी हुई हो तो वहाँ पतन के लिए आकर्षित करने वाला प्रभाव पैदा करती है। श्मशान में चिता न जल रही हो, तो भी वातावरण की वीभत्सता की अनुभूति वहाँ पहुँचने पर होती ही है। कसाईखाना साफ-सुथरा पड़ा हो, तो भी उसमें घुसते ही आतंककारी का प्रभाव मन पर पड़े बिना नहीं रहता। सामूहिक रूप से जहाँ भी अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों की परिस्थितियाँ पाली-पोसी जाती हैं, वहाँ पतन की सम्मोहन-शक्ति प्रचण्ड हो उठती है।

सत्प्रवृत्तियों के लिए इसी सम्मिलित-शक्ति का उपयोग उत्कर्ष की प्रेरणा उत्पन्न करता है। सामूहिक सर्त्-सम्मेलनों और धर्मानुष्ठानों के पीछे एक बड़ा प्रयोजन ऐसी प्रेरणा उत्पन्न करना भी होता है। साधु-संस्थाओं का जन्म इसी सदुद्देश्य के लिए हुआ। एकत्र रहकर वे प्रखर प्रेरणा का प्रभावी वातावरण विनिर्मित करते थे। सत्कर्मों के सामूहिक आयोजनों की यही महिमा इसी प्रयोजन को पूरा कर सकने के कारण है। देवालयों की प्रभाव-शक्ति का यही रहस्य है। मनस्वी-महामानवों के निवास-स्थान इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं, उनको दिव्य स्मारकों के रूप में सुरक्षित रखने का प्रयोजन वे सूक्ष्म प्रेरणाएँ प्राप्त कर सकना ही होता है, जो वहाँ बिखरी होती हैं।

एकाग्रता और मनोयोग तभी सम्भव है, जब अपनी आन्तरिक अभिरुचि उससे जुड़ जाये। दार्शनिक और वैज्ञानिक अपने एक ही विषय-बिन्दु पर देर तक गहराई से विचारकर सकने की प्रवृत्ति और सामर्थ्य के कारण ही समुद्र में गहरे उतरने वाले गोताखोरों की तरह मणि-मुक्ता ढूँढ़ लाते हैं। इसीलिए महत्वपूर्ण है उत्कृष्ट लक्ष्यों के प्रति आन्तरिक अभिरुचि का उत्पन्न होना। वैसी रुचि जाग गई, तो फिर विचार शक्ति की अनन्त सामर्थ्य अपना चमत्कारी परिणाम दिखाती ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्तन की धारा बदलकर तो देखें

वियना के मन:चिकित्सा विशेषज्ञ डा. विक्टर ई. फ्रेंकल ने अपने 50 वर्षों के चिकित्सा अनुभवों का सार बताते हुए लिखा है कि "जो मनुष्य यह अनुभव करेगा कि उसका जीवन निरर्थक है, उसका मन और शरीर कभी स्वस्थ न रहेगा। सार्थकता की अनुभूति न होने पर मनुष्य जिन्दगी को लाश की तरह ढोता है और उस नीरस, निरानन्द स्थिति में सचमुच ही जीवन बहुत भारी पड़ता है। उस दबाव से इतनी थकान आती है कि कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता। मानसिक पराधीनता व्यक्तित्व विकास के सभी द्वार बन्द कर देती है। विवेक को विकसित होने का अवसर न मिलने के कारण अवांछित स्थिति में रहने और उसी में दम तोड़ने को विवश होते प्राय: ऐसों को ही देखा जाता है।

वैज्ञानिकों ने जब जीवन से निराश व्यक्तियों का अध्ययन किया, जिनमें अधिकांश विधुर एवं विधवाएँ थीं, तो ज्ञात हुआ कि मृत्युजन्य गहरा आघात उनके प्रतिरक्षा प्रणाली को भी प्रभावित करता है। तीन महीने बाद तक एक ही मन:स्थिति बनी रहने के कारण शरीर प्रतिरक्षा तंत्र के महत्वपूर्ण घटक 'टी' तथा 'बी' लिम्फोसाइट कोशिकाएँ संख्या में कम तथा सक्रियता में मन्द पड़ जाती हैं। यह भी पाया गया है कि प्रियजनों की मृत्यु के पश्चात् जीवन के प्रति लगाव समाप्त हो जाने के कारण ऐसे व्यक्ति रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके रक्त में कार्टिजोल नामक विषैले रसायन की अभिवृद्धि भी देखी जाती है। यह हारमोन इम्यून सिस्टम को तहस-नहस करके रख देता है।

वस्तुत: मन एवं शारीरिक फिजियोलॉजी परस्पर सम्बद्ध है। निराशा या निषेधात्मक भाव तरंगें रक्त, हार्मोन आदि कायिक रसायनों में उथल-पुथल मचा देती हैं तथा सभी प्रकार की अनैच्छिक क्रियाओं यथा—चयापचय, हृदयगति श्वाँस-प्रश्वाँस, रक्तचाप आदि को भारी क्षति पहुँचाती हैं। इन सभी तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् नोबेल पुरस्कार से सम्मानित विख्यात वैज्ञानिक वाल्टर हैस ने निष्कर्ष निकाला है कि जब निषेधात्मक एवं निराशावादी चिन्तन शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल सकते हैं, व्यक्तित्व को गया-गुजरा स्तर का बना सकते हैं, तो कोई कारण नहीं कि आशा एवं उत्साहवर्धक विधेयात्मक चिन्तन अनुकूल परिणाम प्रस्तुत न कर सकें। स्वास्थ्य सम्वर्धन के साथ व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय गति प्रदान न कर सकें। इसकी पुष्टि के लिए वाशिंगटन यूनिवर्सिटी के मूर्धन्य विज्ञानी निकोलस हाल ने ऑटोसजेशन का प्रयोग कैंसरग्रस्त रोगियों पर किया। इसमें उन्हें आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। देखा गया कि एन्ना जैसी मरणासन्न रोगी भी विधेयात्मक दिशा धारा अपनाकर पूर्णत: स्वस्थ हो गई।

एन्ना कैंसर की अन्तिम अवस्था से गुजर रही थी, जिसे चिकित्सकों ने दुसाध्य घोषित कर दिया था। उसके बायें हाथ को लकवा मार गया था। सिर में भी असह्य वेदना रहती थी। उसके लिए डाक्टरों की सलाह थी कि अब वह अपने जीवन की चिन्ता छोड़ शेष बचे थोड़े समय में अपने बच्चों के निर्वाह की उपयुक्त व्यवस्था करे।

एन्ना लगभग निराश हो चुकी थी। कैंसर का जहर पूरे शरीर में फैलता जा रहा था कि इसी बीच उसकी मुलाकात डा. हाल से हुई। उन्होंने उसे विस्तारपूर्वक ओटोसजेशन द्वारा विधेयात्मक चिन्तन से अपने को परिपूरित करने की कला से अवगत कराया और उसे पूर्ण स्वस्थ हो जाने का विश्वास दिलाया।

नियमित रूप से एन्ना उक्त क्रिया को करने लगी। इससे उसे आश्चर्यजनक लाभ हुआ। एक वर्ष बाद जब चिकित्सकों ने उसका परीक्षण किया तो वह पूर्णत: स्वस्थ हो चुकी थी। कैंसर एवं पक्षाघात समूल नष्ट हो गये थे।

श्रुति कहती है—"**यो यच्छ्रद्ध: स एव स:** अर्थात्—मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बनता चला जाता है। चिकित्सा जगत में अब इसी सिद्धान्त का प्रयोग होने लगा है। ऐसी अनेकों बीमारियाँ हैं, जिनका उपयुक्त उपचार अभी तक खोजा नहीं जा सका है। उनकी गिरफ्त में आने का अर्थ ही होता है, रोगी की मृत्यु। ऐसी स्थिति में अध्यात्म विज्ञान की यह पद्धति, जिसे सेल्फ इमेजिंग, ऑटोसजेशन अथवा विधेयात्मक चिन्तन आदि नामों से जाना जाता है, बहुत ही कारगर एवं प्रभावपूर्ण सिद्ध हुई है।

विचारों में निहित रचनात्मक शक्ति

विचार स्वयं में एक सामर्थ्य है। ये अपनी निर्धारित रीति-नीति से स्वयं के लिए तथा दूसरों के लिए परिणाम-प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। प्राण शक्ति के चुम्बकीय विद्युत-प्रवाह से जुड़ जाने पर इनकी प्रखरता और अधिक हो जाती है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति में मौलिक रूप से यह सामर्थ्य विद्यमान होती है। किन्तु इतने पर भी इने-गिने लोग ही ऐसे होते हैं, जिन्होंने इसका सही व सन्तुलित उपयोग करने की कला का मर्म जाना हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दार्शनिकों ने विचारों की क्षमता पर विशद् चिन्तन किया है। आचार्य शंकर का इस सन्दर्भ में मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना मानसिक जगत होता है। इसे विचारों एवम् कल्पनाओं का संसार कह सकते हैं। यद्यपि विचार की प्रक्रिया में बुद्धि की प्रधानता होती है। पर व्यापक अर्थों में दोनों ही मानसिक चेतना के अन्तर्गत आते हैं।

बौद्ध मत के अनुसार भी प्रत्येक मनुष्य अपने ही जगत में रहता एवं विचरण करता है उसका यह संसार दूसरे मनुष्य के संसार से भिन्न होता है। इन विभिन्न जगतों में एक प्रकार का सामंजस्य होने पर ही ये एक-दूसरे में अन्त: प्रविष्ट हो सकते हैं। इसी स्थिति में व्यक्ति एक-दूसरे के सम्पर्क में आता है। इसी तरह पारस्परिक विचारों को समझा जा सकता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी उपयुक्त दार्शनिक चिन्तन को अपनी प्रयोगात्मक कसौटी पर खरा सिद्ध किया है। उनके अनुसार जब कोई बात किसी समूह में कही जाती है तो प्रत्येक व्यक्ति उसे अलग ढंग से समझता है। वक्ता ने अपने कथन को जिस भाव से कहा है, उसे ठीक उसी तरह ग्रहण नहीं किया जाता। इसके स्थान पर ऐसी चीज को ग्रहण किया जाता है, जो उसके मन में पहले से भरी हो। वस्तुत: मन विचारों को गढ़ने एवं आकार देने का कारण है। यह ज्ञान का कारण नहीं है। इसके द्वारा प्रत्येक क्षण इन आकारों की रचना की जाती है। विचार आकारमय होते हैं।

मन:शास्त्री पीफेन बरगर ने अपनी रचना ''प्रिन्सिपल्स ऑफ अप्लाइड साइकोलॉजी'' में इन विचारमय आकारों को विवेचित किया है। उनका अपने इस अध्ययन में मानना है कि इनका अस्तित्व विचारमय आकारों को जगत में भेज देता है, तो ये अपने अस्तित्व के प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए जगत में विचरण करने लगते हैं।

ड्यूक विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा. जे. बी. राइन के अनुसार परामनोविज्ञान में विचार संचरण प्रणाली का आधार यही है। विचारों का गठन हमारे द्वारा किसी व्यक्ति का विषय-वस्तु पर चिन्तन करने पर होता है। यह सृजित विचार एक आकार धारण करके उसे खोजने के लिए निकल जाता है। यदि इस विचार के पीछे कोई संकल्प नियोजित है, तो मानसिक क्षेत्र से निकला यह विचारमय आकार अपने को चरितार्थ करने की चेष्टा करता है।

मनोअध्येता राबर्टो असागिओली का अपनी कृति ''साइको-सिन्थेसिस'' में मानना है कि ''जब इन विचारमय आकारों का फल प्राप्त होता है, तब हम उस विषय की इच्छा या परवाह छोड़ चुके होते हैं। इस तरह की अव्यवस्थित विचार प्रणाली को वैचारिक परिपक्वता में एक कमी के रूप में जाना जा सकता है।''

इस कमी की श्रेणी एच. ए. रूगर ने ''द-साइकोलॉजी ऑफ एफिसिएन्सी'' में भली प्रकार स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि कुछ लोगों की रचना शक्ति अत्यन्त सशक्त होती है। यही कारण है कि उनकी मनोरचनाएँ सदा कार्यान्वित होती हैं। पर अधिकांश व्यक्तियों की मनोमय व प्राणमय सत्ता सधी हुई नहीं होती। इसी कारण वे कभी एक चीज पर विचार करते हैं—कभी उसकी विरोधी चीज पर। अतएव उनकी ये विरोधी रचनाएँ तथा उनके परिणाम एक-दूसरे से टकराते और भिड़ते रहते हैं। श्री रूगर इस सन्दर्भ में एक तथ्य और उद्घाटित करते हैं कि निषेधात्मक विचारों की रचना करके भी हम स्वयं विरोधी परिणामों को आमन्त्रित करते हैं।

उनका मत है कि उपर्युक्त तथ्य को विस्तृत कर देने की ही परिणति है कि बहुसंख्य व्यक्ति अपनी दुर्व्यवस्था पर आश्चर्यचकित होते हैं। उन्हें अपने जीवन में इतनी अधिक अव्यवस्था और असामंजस्य का कारण ही नहीं समझ में आता। वे इस तथ्य को अनुभूत नहीं कर पाते कि उनकी परिस्थितियों की विषमता स्वयं के विचारों एवं इच्छाओं की ही उपज है। बेमेल और विरोधी जान पड़ने वाली यह स्थितियाँ व्यक्ति के जीवन को असह्य प्राय: बना देती है।

परामनोविज्ञान का यह अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। किन्तु इसकी समग्र महत्ता तभी है, जब जीवन में इसके सदुपयोग के रहस्य को जाना जाय। श्री अरविन्द अपने योग विषयक पत्रों में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि साधारणतया मनुष्य अपने विचारों की प्रभावोत्पादकता जाने बिना इनका बेतुका सृजन करते रहते हैं। उनको इसका तनिक भी पता नहीं है कि उनकी विचार रचनाएँ किस प्रकार गति एवं क्रिया करती हैं। इस प्रकार की अज्ञानमय व विशृंखल अवस्था में गढ़े हुए विचार परस्पर टकराते रहते हैं। इनकी टकराहट मानसिक श्रम, भार व थकान के रूप में अनुभूत होती है।

आत्म-विश्लेषण व आत्म-परीक्षण की विधि द्वारा स्वयं के विचारों का अध्ययन किया जा सकता है। तत्पश्चात् संकल्पपूर्वक अनवरत् उन पर नियन्त्रण द्वारा इनको गढ़ा जा सकता है। आत्मानुशासन द्वारा इनका गठन तथा संकल्प द्वारा प्राण शक्ति का नियोजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारमय आकार को पूर्ण शक्ति और सफलता प्रदान कराता है।

श्री अरविन्द के द्वारा उपदिष्ट उपरोक्त प्रणाली को मनोवेत्ता ''थॉट प्रॉसेस'' के नाम से बताते हैं। शास्त्रों में इसे ही 'निदिध्यासन' कहकर बताया गया है। विभिन्न चिन्तक और विज्ञानवेत्ता देर तक एक ही विषय वस्तु पर विचार करते रहने की रुचि एवं आदत उत्पन्न करते हैं। फलतः वे समुद्र में गहरे उतरने वाले गोताखोरों की भाँति बहुत-से मणि-मुक्तक खोजने में सफल हो जाते हैं। किनारों पर टहलने वाले दर्शकों को तो सीप और घोंघे जैसी चीजें ही हाथ लगती हैं।

आन्तरिक अभिरुचि को इस ओर मोड़ देने से सहजतापूर्वक निषेधात्मक कुविचारों से छुटकारा पाया जा सकता है। इस तरह छुटकारा पा जाने वाले गहरे व आदर्शोन्मुख होते हैं। उथले लोगों की वैचारिकता हवा में उड़ते तिनके की भाँति है। ये हवा के रुख को देखकर अपनी गतिविधियाँ परिवर्तित कर देते हैं। जबकि विचार साधना के धनी आदर्शपूर्ण लक्ष्य पर चट्टान की तरह अटल रहते हैं।

विचारों की यह साधना अपने आप में सम्पूर्ण व समग्र है। आचार्य शंकर अपनी रचना ''अपरोक्षानुभूति'' में इसका महत्व बताते हैं कि जिस प्रकार प्रकाश के बिना कभी पदार्थ का भान नहीं होता, उसी प्रकार बिना विचार साधना के जीवन जीने की कला का बोध सम्भव नहीं।

निःसन्देह इसका महत्व हमारे बहुआयामी जीवन के प्रत्येक आयाम में है। इसको हृदयंगम कर ही मन व प्राण को आत्मानुशासन द्वारा संचालित कर विचारों के सुगठन तथा उनके सदुपयोग का मार्ग अपनाया जा सकता है। इस तरह सफल और समुन्नत जीवन की मंगलमयी उपलब्धियाँ प्रचुर परिणाम में प्राप्त की जा सकती हैं।

विचारणा को कुमार्गगामी न बनने दें

सुख-साधनों से भरा विश्व—बुद्धि और शक्ति का धनी मनुष्य—इन दोनों का समन्वय तो स्वर्ग ही सृजन कर सकता है। फिर यह नारकीय वातावरण कैसे बन गया? इस आश्चर्य पर गम्भीरता से विचार करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि मनुष्य ने अपनी विचारणा, आकांक्षा, दिशा और आस्था को उत्कृष्टता से विरतकर निकृष्टता से जोड़ दिया। इस एक ही भूल ने सब कुछ उल्टा कर दिया। विचारों की निकृष्टता ने नीच कर्म करने की प्रेरणा दी और दुर्बुद्धि को दुष्प्रवृत्तियों के समन्वय ने इस स्वर्ग संसार को नरक बनाकर रख दिया। मानवीय विचारणाएँ और प्रवृत्तियाँ ही अपने अनुरूप परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। इन दिनों जो विग्रह और विनाश का नग्न नृत्य हो रहा है, उसके पीछे जन-भावना से आसुरी तत्वों की अभिवृद्धि ही एकमात्र कारण है।

यह सोचना ठीक नहीं है कि धन या साधनों के अभाव में परिस्थितियाँ दुःखदायी बनती हैं। ऐसा होता तो सभी अमीर और साधन-सम्पन्न मनुष्य सुखी पाये जाते। पर देखते हैं कि सम्पन्नता के साथ भी असीम दुश्चिन्ताएँ जुड़ी रहती हैं। निर्धनता और साधन रहित परिस्थितियों में रहने वाले सन्त महात्माओं ने यह सिद्ध करके दिखा दिया था कि यदि मनुष्य आन्तरिक दृष्टि से स्वस्थ हो तो स्वल्प भौतिक साधनों के सहारे भी सुखी और समुन्नत रह सकता है। वस्तुतः जीवन की वास्तविक निर्वाह आवश्यकताएँ बहुत स्वल्प हैं, वे थोड़े सामान और थोड़े साधन से सहज ही उपलब्ध की जा सकती हैं। अतृप्ति और उद्विग्नता तो तृष्णा-वासना की होती है। इसे ही माया, अन्ध-तमिस्रा आदि नामों से पुकारते हैं। इन अनावश्यक और अवांछनीय असुर तत्वों के प्रति अपना जितना सम्मान बढ़ता चलता है मनुष्य उतना ही उद्विग्न और कुमार्गगामी बनता चला जाता है।

सारी विकृतियों और विपत्तियों का आधार केवल मात्र एक ही है। यदि आदर्शवादिता की आस्थाओं को विकसित कर मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार करले तो भौतिक समृद्धियाँ और सफलतायें इतनी अधिक प्राप्त कर सकता है, जो उसके लिए ही नहीं वरन् अन्य अनेकों की भी आवश्यकतायें पूरी कर सकें। आत्मिक सद्गुण सम्पन्न मनुष्य स्वयं सुखी, सन्तुष्ट रहेगा और अपने साथी-सम्बन्धियों को आनन्द उल्लास मग्न रखेगा। बौद्धिक विकृतियों का जैसे-जैसे समाधान होता चलेगा और आत्मिक विभूतियाँ जैसे-जैसे सजग होती चलेंगी, वैसे ही वैसे व्यक्ति और समाज को दुःखद परिस्थितियों से छुटकारा प्राप्त कर सुख शान्ति के वातावरण में प्रवेश करने का द्वार खुलता जावेगा।

इस तथ्य को जितनी अच्छी तरह, जितनी गहराई तक समझ लिया जाय, उतनी ही जल्दी वर्तमान उलझनों के सुलझने और सुख-शान्ति के वातावरण में रहने की सम्भावना बढ़ती चली जायेगी। हमें सबसे पहले सबसे महत्वपूर्ण मोर्चे को सँभालना चाहिए। मानवीय मान्यताओं, विचारणाओं और प्रवृत्तियों को दिशा देने वाले, प्रभावित करने वाले सभी साधनों को परिष्कृत करने की ओर सारा ध्यान केन्द्रित रखना चाहिये। विचार अपने आप में एक शक्ति है। इतनी बड़ी शक्ति जिसकी तुलना में संसार को समस्त शक्तियों का समन्वय भी हल्का पड़ता है। इसका दुरुपयोग विश्व का विनाश कर सकता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका सदुपयोग संसार को नव-जीवन प्रदान करने में समर्थ है। यह तथ्य यदि हम ठीक तरह समझ लें तो परमाणु अस्त्रों से भी अधिक उसकी सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिये दत्त-चित रहने लगेंगे।

शारीरिक दृष्टि से अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत पिछड़ा हुआ-मानव प्राणी-विश्व का मुकुटमणि बना हुआ है, उसका एकमात्र श्रेय उसकी विचारशीलता को है। उसका सत्प्रयोग करके ही अगणित सुविधाएँ, सम्पत्तियाँ, विभूतियाँ और सिद्धियाँ अर्जित की गई हैं। मानवीय प्रगति का सारा इतिहास उसकी विचारशक्ति के ही गुणगान करता है। जब-जब जहाँ-जहाँ इसका सदुपयोग हुआ है, तब-तब वहाँ-वहाँ समृद्धियाँ और विभूतियाँ बरसी हैं और जब इसका दुरुपयोग किया गया है तभी संकट और शोक-संताप के बादल घुमड़-घुमड़कर आये हैं। जिस शक्ति के ऊपर विकास और विनाश की सारी सम्भावनाएँ केन्द्रित हैं, उसकी सुरक्षा और सुव्यवस्था पर जितना अधिक ध्यान दिया जा सके उतना ही कम है।

पिछले दिनों एक दुर्भाग्यपूर्ण भूल यह होती रही है कि विचार शक्ति को प्रभावित करने वाली—भावनाओं को दिशा देने वाली—कुंजी उन हाथों में चली गई जिनमें नहीं जानी चाहिये थी। बारूद की पेटी बालकों को थमा दी जाय, तलवार बन्दर को मिल जाय, सशक्त औषधियों का उपयोग कोई अनाड़ी करने लगे, खजाने की व्यवस्था पागल सँभाले तो उसका परिणाम अहितकर ही होगा। विचारों को प्रभावित करना एक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है, जिस पर पूर्णतया संसार का भाग्य और भविष्य जुड़ा हुआ है इसलिये इसको प्रयुक्त करने का अधिकार परखे हुए अधिकारियों और मनीषियों को ही मिलना चाहिए। प्राचीनकाल में इसका अधिकार सत्पात्रता की आग में पूर्णतया तपे हुए साधु, ब्राह्मणों के हाथों में यह कुंजी सौंपी जाती थी। ये बहुत ही समझ-बूझकर ही लेखनी और वाणी का उपयोग करते थे और संगीत, साहित्य कला के माध्यमों से लोक-मानस को स्वस्थ दिशा देने में संलग्न रहते थे। रचनात्मक और संघर्षात्मक अनेक सत्प्रवृत्तियों का संस्थान, अभिवर्धन और परिपोषण उन्हीं के हाथ में रहता था। शिक्षा का संचालन वे स्वयं करते थे और लोक-मानस को दिशा देने वाले समस्त साधन उन्हीं के हाथों सुरक्षित छोड़ दिये गये थे। जब तक यह व्यवस्था बनी रही तब तक विश्व में सर्वत्र सतयुगी—स्वर्गीय सुख-शान्ति विराजती रही।

जब से विचारों को प्रभावित करने वाले माध्यम कुपात्रों के हाथों चले गये और उनने उनका उपयोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये करना आरम्भ किया तभी से मनुष्य जाति का दुःख दुर्भाग्य आरम्भ हो गया। यही भूल हमारे अधःपतन के लिये सर्वाधिक उत्तरदायी है। शोक-सन्ताप, अपराध, अनाचार, विग्रह, अभाव, क्लेश-कलह की जितनी भी विष-बल्लरियाँ आज फैली दीखती हैं, उनका बीज उस बौद्धिक व्यभिचार में सन्निहित है जो हेय व्यक्तियों द्वारा अपनी प्रतिभा के बलबूते व्यापक रूप में फैलाकर रख दिया है।

हम देखते हैं कि आज हेय व्यक्तियों ने व्यवस्थित स्वतन्त्रता की आड़ में किस प्रकार उद्धत तरीके अपनाकर लोक-मानस को प्रभावित करने वाले माध्यमों को कितनी निष्ठुरता के साथ विषाक्त कर दिया है। लेखनी का इस सम्बन्ध में पूरा-पूरा दुरुपयोग हुआ है। पिछली शताब्दी में विज्ञान ने प्रेस का आविष्कार किया। मुद्रण कला ने लेखनी की शक्ति को करोड़ों गुनी बढ़ा दिया। अतीत में ग्रन्थों का लेखन कलम से होता था, उनकी प्रतियाँ हाथ से थोड़ी और धीरे लिखी जाती थीं, इसीलिये उनका पठन, श्रवण भी सीमित मात्रा में होता था पर जब होता था तब उसमें उत्कृष्ट आदर्शों का परिपूर्ण समन्वय रहता था। कोई ऐसा दुस्साहस न करता था कि जन मानस को दूषित करने के लिये कलम उठाई जाय। जो कुछ लिखा जाता था, पढ़ा जाता था, सुना जाता था, लोक-मंगल की दृष्टि से ही होता था।

आज सब कुछ उल्टा हो गया। बाजार में जाकर बुकसेलरों की दुकानें उलट डालिये, प्रकाशकों से सूचीपत्र माँग लीजिये, प्रेसों में छपने की सामिग्री का लेखा-जोखा लीजिये, लेखकों की पाण्डुलिपियाँ इकट्ठी कीजिये। इन सबको इकट्ठा करके उसका निष्कर्ष निकालिये और देखिये कि विचारों को प्रभावित करने वाला इतना बड़ा कलेवर आखिर क्या कर रहा है, किसलिये कर रहा है। इस साहित्य लेखन, मुद्रण, प्रकाशन, विक्रय की गतिविधियों के पीछे निहित स्वार्थों के पूँजीवाद व्यक्तिगत स्वार्थ साधन ही प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होंगे। इतना सब शुद्ध स्वार्थ के लिये किया जाता तो भी क्षम्य था, पर जब उसे लोगों की पशु-प्रवृत्ति भड़काने वाले पाठकों को पतन के गर्त में धकेलने वाले तरीके अपनाकर कमाया जाता है तब निःसन्देह वह बहुत ही गर्हित कर्म हो जाता है।

लुटेरों, जेबकटों, डाकुओं, हत्याओं का धक्का उतना बुरा नहीं, जितना बुरा लोक-मानस को गर्हित बनाने की कीमत पर अपना स्वार्थ सिद्ध करना है। चोर धन का अपहरण करते हैं। इससे लुटने वाले को पैसे की तंगी पड़ती है। उसे अधिक उपार्जन बचत, किफायत, तंगी दूसरों के सहयोग आदि तरीकों से किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है। डाकू घायल करते या मार डालते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। मरने पर नया शरीर मिल जाता है या घाव थोड़ा कष्ट देकर अच्छे हो जाते हैं। मौत के घाट उतार दे तो उसकी हानि उसके कुटुम्बियों तक सीमित रहती है। चोर, डाकू, एक सीमित हानि ही पहुँचा सकते हैं। पर जिनने साहित्य के माध्यम से दुष्प्रवृत्तियों को फैलाया उनने एक ऐसी विष बेल बोई जिसका दुष्परिणाम असंख्य व्यक्तियों तक एक से दूसरे को प्रभावित करता हुआ फैलता ही जायेगा और आत्मिक पतन का पथ-प्रशस्त करके इतनी बड़ी हानि पहुँचायेगा जिसकी क्षति-पूर्ति आसानी से नहीं हो सकती। इस प्रकार एक अत्याचारी डाकू की अपेक्षा अनाचारी साहित्य सृजनकर्त्ता अधिक अनाचारी है क्योंकि उनकी बुद्धि और प्रक्रिया ने असंख्य मनुष्यों के आत्मिक पतन की खाई खोदी।

हम देखते हैं कि उपलब्ध साहित्य में दो तिहाई साहित्य ऐसा मिलेगा जिसका उद्देश्य मनुष्य की पशु प्रवृत्तियों को भड़काना मात्र है क्योंकि मनुष्य के भीतर पशुता और असुरता का भी एक बड़ा अंश विद्यमान रहता है और उससे आसानी से भड़काया जा सकता है। ऐसा पशुता भड़काने वाला साहित्य लोगों को रुचता है। उसे माँगा, चाहा और खरीदा जाता है। इसलिये व्यवसाइयों को इसी में लाभ दीखता है कि जैसी माँग है वैसी ही चीजें प्रस्तुत करके अधिक बिक्री बढ़ाई जाय और अधिक लाभ कमाया जाय। इसी नीति को साहित्य के क्षेत्र में जब से अपनाया गया तब से गर्हित, कुत्सित, घृणित और वीभत्स साहित्य की बाढ़ आती चली गई और बाजार पटता चला गया। जिस भावनात्मक विकृति भड़काने वाले व्यवसाय में अरबों रुपये की पूँजी, लाखों मनुष्यो का श्रम, हजारों प्रतिभाशालियों की प्रतिभा नियोजित हो रही हो उसका परिणाम ऐसा क्यों नहीं होगा, जिस प्रयोजन के लिये यह सब किया जा रहा है उसका परिणाम हाथों- हाथ सामने आ रहा है। लोक-मानस दिन-दिन निकृष्टतम होता चला जा रहा है।

स्कूली पुस्तकों को छोड़कर शेष सारा प्रकाशन, लेखन, कामुकता भड़ाकने वाला, अज्ञान, भ्रम फैलाने वाला एवं जासूसी, तिलस्मी, खूनी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने वाला ही पाया जायेगा। धर्म, नीति, सदाचार, विवेक, अध्यात्म, दर्शन की कसौटी पर खरा उतरने वाला साहित्य मुश्किल से ही कहीं दीख पड़ेगा। निकृष्टता के नक्कारखाने में उस तूती की नन्हीं आवाज को सुनेगा कौन ? गन्दे उपन्यास आँधी की तरह छपते और तूफान की तरह बिकते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में अश्लीलता भड़काने वाले, उछृंखलता के समर्थन करने वाले, कुत्साओं को उभारने वाले तत्व दिन-दिन बढ़ते जा रहे हैं। लगता है साहित्य-सृजन का एक ही प्रयोजन रह गया है, कुत्साओं को भड़काकर मनुष्य को पतन के गर्त में धकेल देना और उन मुर्दों का कफन खरीदकर अपना उल्लू सीधा करना। जिनके ऊपर यह बात लागू नहीं होती, ऐसे सदुद्देश्य सम्पन्न लेखक, प्रकाशक, विक्रेता यत्र-तत्र ही मुश्किल से ढूँढ़ने को मिलेंगे।

साहित्य के बाद संगीत और कला का नम्बर आता है। इस क्षेत्र पर भी असुरता की काली छाया और भी दो कदम आगे बढ़ गई है, अब आत्मा को उद्‌बोधन करने वाले, जीवन तत्व का स्वरूप और प्रयोजन समझने वाले, श्रद्धा और करुणा जगाने वाले, त्याग और बलिदान की प्रेरणा देने वाले, गीत आपको बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं पढ़ने-सुनने को न मिलेंगे। उस स्तर की कविताओं की पुस्तकें मुश्किल से ही कही दिखाई पड़ती हैं। लगता है कि कविता क्षेत्र से इन तत्वों को अनावश्यक समझकर बहिष्कृत कर दिया गया है। कवि अब ऐसा कुछ लिखने का कष्ट नहीं उठाना चाहते। अब प्रेयसी ही एकमात्र आराध्य है। नयन बाणों से घायल, पायलों की झन्कार पर मुग्ध, अधरामृत पाने को व्याकुल, विरह-वियोगी, रूपसी के बिना बेचैन, हाला-मधुशाला में उन्मत कवियों की रचनाएँ ही अधिकांश पढ़ने को मिलेंगी। बिकती भी वही हैं। प्रसिद्धि भी उन्हीं से होती है, पैसा भी उन्हीं से मिलता है फिर उनके भले-बुरे प्रयास, परिणाम का विचार कौन करे ? बहती गंगा में हाथ पखारने से जब कोई नहीं चूक रहा है तो कवि ही क्यों चूके ?

संगीत का नेतृत्व अब फिल्मी गाने कर रहे हैं। उन्हीं के रिकार्ड लाउडस्पीकरों पर बजते हैं, सीलोन रेडियो से लेकर दिल्ली रेडियो तक पर उन्हीं की भरमार रहती है। सिनेमा देखकर आने वाले लोग रूपवती, कोकिल कंठी नर्तकियों के मुख से निकले हुए इन गायनों की ध्वनियों को दुहराते हुए उसी मादक नशे में झूमते देखे जाते हैं, जिसे वे पर्दे पर देख-सुनकर आये थे। व्यक्तिगत गुन-गुनाने में, मिल बैठकर गाने में, संगीत सम्मेलन में, उत्सव आयोजनों में अब फिल्मी गीत, फिल्मी ध्वनि, फिल्मी भावनाओं का ही बाहुल्य मिलेगा। तर्ज निकालने वाले, ध्वनियाँ बजाने वाले, गीत गाने वाले, संगीत सिखाने वाले, धीरे-धीरे फिल्मी वर्चस्व के आगे नत-मस्तक होते और आत्म-समर्पण करते चले जा रहे हैं। कुछ दिन में लगता है कि फिल्म गीतों के अतिरिक्त संगीत क्षेत्र में और कुछ शेष ही नहीं रहने वाला है। इन गीतों में किन भावनाओं को भड़काया जाता है और क्या बनने, क्या करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसे पूछने की जरूरत नहीं, उन्हें सुनने वाला सहज ही यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि आज का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायन, वाद्य, संगीत, अभिनय जन-मानस को कहाँ से कहाँ घसीटकर लिये जा रहा है।

सिनेमा इस युग का चमत्कार है। उसने मनोरंजन के अन्य सारे साधनों को पैरों तले कुचलकर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया है। किसी जमाने में नट, बाजीगर, कठपुतली, रीछ, बन्दर, साँप आदि के माध्यमों से लोक-रंजन की आवश्यकता पूरी होती थी। नाटक, प्रहसन, अभिनय, नृत्य और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्य कई तरीके चलते थे। रसिया, कजली, लोकगीत जीवित थे। रासलीला, रामलीला आदि में लोक रुचि मौजूद थी। अब वह सब धीरे-धीरे मरणासन्न स्थिति को पहुँचता चला जा रहा है। अब लोक-रंजन का बहुत कुछ काम सिनेमा करता है। जब जिसे मनोरंजन की इच्छा होती है, सीधा सिनेमा पहुँचता है। लाखों लोग उसमें प्रतिदिन फिल्में देखते हैं। इस उद्योग में अरबों-खरबों रुपये की पूँजी लगी है। कलाकार, प्रतिभाशाली, चतुर, बुद्धिमान सभी उस क्षेत्र में घुसते-धँसते चले जा रहे हैं। यह कहने-सुनने की बात नहीं कि इस शताब्दी में सिनेमा ने हमें क्या दिया है ? वहाँ क्या सुनाया, दिखाया, समझाया, बताया जाता है, इसे कोई भी व्यक्ति कुछ दिन सिनेमा देखकर स्वयं अनुभव कर सकता है। नीति और सदाचार सिखाने वाली, उत्कृष्टता और आदर्शवादिता का समर्थन करने वाली फिल्में जब कभी ही देखने, सुनने में आती हैं। अधिकांश में तो वही भरा रहता है जो मनुष्य को नीचे गिरने की प्रेरणा अति प्रभावशाली ढंग से दे सके।

फिल्म उद्योग में लगी हुई विशाल जन-शक्ति, धन-शक्ति, कला-शक्ति यदि लोक-रंजन के साथ लोक-मंगल को भी जोड़कर रख सकी होती तो वह जन-जीवन को ऊँचा उठाने में महान योगदान कर सकती थी। पर जबकि उसका दुरुपयोग करने की ठान ठान ली गई तो विनाश और पतन के अतिरिक्त और क्या मिलेगा? नई पीढ़ी का भावनात्मक प्रशिक्षण आज वस्तुतः सिनेमा ही कर रहा है और उसने जैसा चाहा वैसा ही समाज को स्वरूप बनता ढलता चला जा रहा है।

कला के अन्तर्गत और भी कई प्रक्रियाएँ आती हैं। उनमें चित्रकला भी एक है। तस्वीरें बनाने वाले, छापने वाले, बेचने वाले भी अपनी रीति-नीति दूसरे कलाबाजों की तरह अपनाने में पीछे नहीं रह रहे हैं। तरुण नारी के लज्जा अवयवों को उघारने, उनकी भाव-भंगिमा में वेश्यावृत्ति सँजोने के गर्हित प्रयोजन पर अब चित्रकला भी केन्द्रित होती चली जाती है। नटनियों, वेश्याओं और नर्तकियों के चित्र इतनी बड़ी संख्या में छपते बिकते हैं मानो इस युग की सारी श्रद्धा उन्हीं के चरणों में लोट रही हो। घर-घर में ऐसे ही कलेण्डर टँगे हैं। तस्वीरों की दुकानें उन्हीं से पटी पड़ी हैं। चित्रकारों, मुद्रकों, प्रकाशकों और विक्रेताओं का समूह इसी आधार पर सम्पन्न बनता चला जा रहा है। किसी को इस बात की चिन्ता नहीं कि कामुकता और अश्लीलता की दुष्प्रवृत्तियाँ इन चित्रों के माध्यम से भड़का देने के उपरान्त उसका जन-साधारण में शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? समाज में कितनी अवांछनीय गतिविधियाँ उत्पन्न होंगी। कहते लज्जा आती है कि देवी-देवताओं के चित्रों में जहाँ श्रद्धा उत्पन्न करने वाली भाव-भंगिमा रखी जानी चाहिए थी- यहाँ आज का चित्र व्यवसाय उनमें भी कुत्साएँ ही भरने का दुस्साहस कर रहा है।

संगीत, साहित्य, कला इन तीन माध्यमों को सरस्वती कहा गया है। सरस्वती बुद्धि की देवी है। बुद्धि ही मनुष्य की शक्ति है। शक्ति की अधि-पति बुद्धि, बुद्धि की प्रेरणा-दात्री सरस्वती है। उसके त्रिविधि माध्यमों से यदि गर्हित प्रयोजन के लिए जोत दिया जाय तो उसका परिणाम सर्वनाश ही हो सकता है। सो धीरे-धीरे सरकता हुआ निकट ही आता चला जा रहा है।

लोक-मानस को प्रभावित करने वाले उपरोक्त माध्यमों को यदि इसी प्रकार कुमार्गगामी, दुष्प्रवृत्ति पोषक बना रहने दिया गया, उन्हें रोका, सुधारा, सँभाला न गया तो हमारा भविष्य सर्वथा अन्धकारमय है। इस तथ्य को हमें समझ ही लेना चाहिए और यदि लोक-मंगल की वस्तुतः आकांक्षा हो तो लोक-मानस को विकृत करने वाली इन दुष्प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करना ही चाहिए, जिसने कि माता सरस्वती को व्यभिचारिणी, वेश्या के स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है।

विचार चेतना के महत्व को समझें

शक्ति की साधारणतः व्याख्या प्रकृति पदार्थों की हलचलों के रूप में की जाती हैं। समझा जाता है कि पदार्थों के अन्तराल में काम करने वाली हलचलें ही इस दृश्य जगत की अगणित गतिविधियों का सूत्र संचालन करती हैं। मनुष्य के द्वारा भी जो कृत्य होते हैं, वे उसकी शारीरिक गतिविधियों द्वारा सम्पन्न होते प्रतीत होते हैं। यह विज्ञान मान्यता आंशिक रूप से ही सही है। इसमें इतना और जुड़ना चाहिए कि मानवी चेतना की विचार क्षमता भी एक शक्ति है। वह न केवल शारीरिक हलचलों को जन्म देती है वरन् व्यक्ति, पदार्थ एवं वातावरण पर भी अपना प्रभाव डालती है और उन्हें बदलने तक में अपनी आश्चर्यजनक भूमिका सम्पन्न करती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। अब विचारों को भी 'विद्युत' के समतुल्य ही प्रभावोत्पादक माना जाने लगा है। कभी उन्हें चिन्तन क्षेत्र में घुमड़ती रहने और मस्तिष्क भर को कुछ काम देने वाली एक विशेषता भर समझा जाता था।

विचार-निर्माण में मनुष्य स्वतन्त्र है किन्तु उन्हें अपने ही कैदखाने में—मस्तिष्कीय पिटारी में जकड़े रहना उसके लिए सम्भव नहीं। दूसरों के बारे में हमारे विचार भाव शीघ्र ही उन तक गुप्त रूप से पहुँच जाते हैं। इनमें भी सज्जनोचित भाव तो पिछड़ जाते हैं किन्तु दुर्भावना युक्त विचार अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से पहुँचकर अपना भेद उसे बता देते हैं। परिणामस्वरूप अविज्ञात रूप से दूसरों के मन में अपने प्रति भी मनोमालिन्य के बीज अंकुरित होने लगते हैं। यही कारण है कि मित्र भावना के अभ्यासी विचारशील सज्जन व्यक्ति अपना स्वभाव ही कुछ इस प्रकार का बना लेते हैं कि अपरिचितों को भी वह प्रिय लगने लगते हैं। नाममात्र के व्यवहार से ही मित्रता के निष्कर्ष निकलने लगते हैं। इसके विपरीत कलुषित विचारों वाले व्यक्ति आगन्तुकों से चाहे कितने कुशलतापूर्वक मिलें, उनका शंकालु हृदय प्रकट हो ही जाता है। प्रयत्न न करने पर भी नव्य परिचित व्यक्ति पहले उदासीन तत्पश्चात् शत्रु बन जाता है। यह सारा खेल अपने विचारों के कारण ही शक्य होता है।

रूस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एनारेबीन ने अपने अनुसन्धान निष्कर्ष में बताया है कि मनुष्य के विचार एवं भाव-तरंगों के अनुरूप मस्तिष्क से दो प्रकार के रस स्रवित होते हैं, जिनकी प्रमुख भूमिका व्यक्तित्व विकास के निर्धारण में होती है। यह रस शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं को उत्तेजित कर व्यक्ति को सुख-दुख, शांति-अशांति, आशा-निराशा, प्रफुल्लता- उद्विग्नता प्रदान करते तथा उन्नति अथवा अवनति की ओर धकेलते हैं। इन रसों का निर्माण पूर्णतया अच्छे या बुरे विचारों और भावनाओं पर निर्भर रहता है। इससे स्पष्ट है कि विचारणा एवं भावना के प्रचण्ड प्रवाह के अनुसार ही मनुष्य के व्यवहार एवं उसकी आदतों का निर्माण होता है।

मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक जे. बी. राइन ने विचारों की शक्ति की परख विभिन्न प्रयोग-परीक्षणों की शृंखलाओं के आधार पर करने में सफलता पाई है। उन्होंने विशेष प्रयोगों द्वारा केन्द्रित विचारों के प्रभाव प्रदर्शित करके सिद्ध कर दिया है कि प्रयोगकर्त्ता के विचार निर्जीव-सजीव सभी पर अपनी छाप छोड़ते हैं। इन प्रभावों की प्रगाढ़ता एवं सत्यता की परख वैज्ञानिक विधियों द्वारा बारम्बार हुई है।

प्राचीन ज्ञान में विचार का स्वभाव बिजली के अनुरूप कहा गया है, जिसका गहन अध्ययन अभी भी भौतिकी एवं आत्मिकी के क्षेत्र में होना है। विश्व के अनेक वैज्ञानिक, परामनोवैज्ञानिक इस क्षेत्र में अनुसन्धानरत हैं। विचारों के विद्युत प्रवाह दूरस्थ व्यक्ति को उसी प्रकार से प्रभावित करते हैं जैसा कि चाहा जाता है। जब मानव विचार एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक भेजे जाते हैं तो उसे 'टेलीपैथी' कहते हैं। जीवन की अनन्त शक्तियों पर पूर्ण विश्वास करने वाला सफल मनोचिकित्सक इस विधि द्वारा रोगी पर अपने विचार आरोपित करता है। यदि दोनों के विचारों का तारतम्य ठीक बैठ जाता है तो रोगी भी उन्हीं विचारों में डूब जाता है जिनमें मनो-चिकित्सक का विश्वास होता है। ऐसी स्थिति में रोगी चेतन अथवा अचेतन मन से उन्हीं अनन्त शक्तियों पर अपना विश्वास जमाकर लाभान्वित होता है।

परामनोविज्ञानियों का कहना है कि विचार सम्प्रेषण मात्र चिकित्साविदों तक ही सीमित नहीं। कोई भी व्यक्ति कहीं भी इसका प्रयोग कर सकता है क्योंकि विचार-संसार आइडियोस्फियर में सभी प्रकार के विचार-प्रवाह निरन्तर गतिमान हैं। उनमें से अपने अनुकूल विचार-तरंगों को आकर्षित किया और लाभान्वित हुआ जा सकता है। साथी ही दूसरों तक प्रवाहित भी किया जा सकता है। विश्व में प्रबल, स्वतन्त्र, कल्याणकारी तथा प्रभावी विचारक बहुत थोड़े-से हैं, अतः उनके द्वारा प्रवाहित आवृत्ति कम पड़ जाती है, जो मात्र लड़खड़ाती, गिरती पड़ती चलती रहती है, फिर भी सांसारिक लोगों पर वह अपना न्यूनाधिक प्रभाव तो छोड़ती ही रहती है और आशा-उत्साह, करुणा, दया एवं सद्भावनात्मक जल की वर्षा करके सिंचाई करती रहती है। यदि उनके द्वारा यह वर्षा बन्द हो गई होती तो सदाशयता कभी की सूख गई होती।

'थियॉसोफिकल शोध-संस्थान' लन्दन में अनुसन्धानरत वैज्ञानिकों के अनुसार आधुनिक अनुसन्धानों के द्वारा अब इस तथ्य को अधिकाधिक प्रकटीकरण होता जा रहा है कि प्रकृति में विचार एक विशेष प्रकार की प्रचण्ड शक्ति है। व्यक्तिगत रूप से यह भौतिक शरीर को निरन्तर प्रभावित करते-रहते हैं। व्यक्ति के विचार उसके अपने सहयोगी और वातावरण को सदैव प्रभाव से अनुप्राणित करते रहते हैं। विचार जगत् में प्रवाहित अच्छी-बुरी सभी प्रकार की तरंगें शंका, दुःख, क्रूरता, करुणा, दया, स्नेह, सहानुभूति फैलाती फिरती रहती हैं। यही कारण है कि कुवे एवं वर्नहम जैसे मूर्धन्य मनोचिकित्सकों ने विधेयात्मक चिन्तन की दिशा धारा को प्रोत्साहन दिया है। प्रो. सोरोकिन ने हारवर्ड अस्पताल के चिकित्सकों द्वारा सहानुभूतिपूर्वक सद्व्यवहार से रोगियों में संतोषजनक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आशावादिता बढ़ाने में सफलता प्राप्त की है। उनका कहना है कि कोई भी टॉनिक मूल रूप से उतना प्रभावकारी नहीं सिद्ध हो सकता जितना अच्छा किसी चिकित्सक द्वारा रोगी को प्रेरक विचारों के टॉनिक से एवं उसे समझाने और प्रोत्साहित किये जाने से मिलता है। महामारी जैसे प्रकृति प्रकोपों में बचे हुए लोगों को चाहे ''भाग्यवान'' कह लें किन्तु प्रकारान्तर से वे 'समर्थ विचारवान' व्यक्ति ही होते हैं जो सर्व-समर्थ उस जीवन धारा से सतत् शक्ति संचित करते रहते हैं।

सामान्यतया विचार शक्ति बिखरकर नष्ट होती रहती है। उसे केन्द्रित करने एवं मानसिक शक्ति सम्पन्न बनने के लिए हमें उत्कृष्ट विचारों की सम्पदा बढ़ाने के साथ ही अपने 'स्वार्थ' का विकास करना होगा। हमारा स्वार्थ जितना व्यापक होगा, हमारी शक्ति उतनी ही बढ़ती चली जायेगी। यदि स्वार्थ के साथ लोकोपकार का समावेश हो जाय तो यह शक्ति अपरिमितता की ओर अग्रसर होने लगेगी। अहंभाव के विनाश से ही सशक्त मनोबल का सृजन होता है। सैद्धान्तिक प्रतिकूलताओं से लोहा लेने पर मनुष्य की इच्छा-शक्ति में वृद्धि हो जाती है। ऐसा आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है कि उसके सामने अशुभ विचार टिक ही नहीं सकते।

मानसिक शक्तियों के विकास में सहायक होता है—सरल एवं सदाचारी जीवन। चालाक एवं व्यवहार-कुशल प्रदर्शन-पटु लोग अपने मन को चिंता एवं संशय का आश्रय बना लेते हैं। ऐसे चापलूस मित्रों द्वारा सद्मार्ग पर चलने का प्रोत्साहन कभी भी नहीं मिलता। इसके विपरीत सदाचारी व्यक्ति व्यवहार एवं विचार में सरल होता है। ऐसे स्वार्थविहीन व्यक्ति के उद्गार बड़े-बड़े विद्वानों से अधिक प्रभावी पाये गये हैं।

अपने आपको प्रगति पथ पर अग्रसर करने और सुखी, सुसंस्कृत बनाने के लिए सद्विचारों का अवलम्बन लेना ही पड़ता है। इसका और कोई विकल्प नहीं। यही बात दूसरों के सम्बन्ध में भी है। दूसरों को सहयोगपरक सहायता का अपना महत्व है। पर किसी को रचनात्मक विचार देकर उसे स्वावलम्बी और समुन्नत बनाया जा सके तो निश्चय ही उससे बढ़कर और कोई पुण्य-परमार्थ हो नहीं सकता।

विचार शक्ति का सदुपयोग करें

कोई व्यक्ति भले ही चुपचाप बैठा रहे, कुछ न करे फिर भी उस स्थिति में भी उसे पूर्णतया निष्क्रिय नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस स्थिति में भी मस्तिष्क कुछ न कुछ सोचता रहता है। जो कुछ वह सोचता या विचार करता है, वह भले ही अप्रासंगिक, असम्बद्ध और अस्त-व्यस्त हो। लेकिन यह अनावश्यक, अप्रासंगिक और अस्त-व्यस्त विचार भी अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहते हैं। यद्यपि यह चिन्तन मस्तिष्क में थोड़ी-सी हलचल उत्पन्न करके अन्तरिक्ष में विलीन हो जाता है पर मनोविदों के अनुसार यह निरर्थक होते हुए भी चिन्तन तन्त्र पर एक अनावश्यक भार छोड़ जाता है। सोचना और विचार करना निश्चित रूप से एक बहुमूल्य प्रक्रिया है।

यद्यपि विचार और चिन्तन की क्रियाएँ दिखाई नहीं देतीं। वे अदृश्य ही रहती हैं। किन्तु मनुष्य जितने भी कर्म करता है उन सब की जड़ें होती इसी क्षेत्र में हैं। दिखाई देने वाले सभी क्रिया-कलाप इस अदृश्य प्रक्रिया के फलस्वरूप ही आकार धारण करने में समर्थ होते हैं। जो कुछ किया जाता है, वह ऐसे ही अनायास ही नहीं हो जाता। बहुत पहले से उनका ताना-बाना मस्तिष्क में बुना जाता है। किस काम को करने से क्या लाभ हो सकता है ? तथा हानि की कहाँ, क्या सम्भावना है ? आदि बातों का सम्भव- असम्भव का पता मस्तिष्क क्षेत्र में ही लगता है और उसी क्षेत्र में निर्णय कर साधनों के साथ प्रस्तुत आकांक्षा का तालमेल बिठाया जाता है।

इतना विचार मंथन हो चुकने के बाद ही किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति आती है। जब मस्तिष्क में कोई विचार पूरी तरह बनकर सुनिश्चित संकल्प के रूप में परिणित हो जाता है, तब उसके लिए साधन जुटाने और सक्रिय कदम बढ़ाने की स्थिति आती है। मस्तिष्क में विचारों की इतनी खिचड़ी पके बिना किसी भी कार्य का आरम्भ नहीं हो सकता। चलते हुए कामों का ढर्रा सहज प्रक्रिया से अभ्यस्त हुआ स्वभाव बहुत कुछ सोचे बिना भी सम्पन्न होता रहता है। किन्तु किसी कार्य का प्रारम्भ तो बिना विचार मंथन के हो ही नहीं सकता। दैनिक कार्य पद्धति में भी गुण-दोष देखने, हानि लाभ परखने और परिवर्धन की व्यवस्था करने वाली विचार प्रक्रिया को सजग रखकर ही चलना पड़ता है। अन्यथा चलते हुए क्रिया-कलाप का अभ्यस्त ढर्रा भी लड़खड़ाने लगेगा और काम का स्तर गिरने लगेगा।

जो लोग निरर्थक कामों में अपना समय और श्रम बर्बाद करते हैं, उनकी भर्त्सना की जाती है और उन्हें नासमझ तथा मूर्ख ही समझा जाता है क्योंकि वह कर्तृत्व शक्ति को उपयोगी प्रयत्नों में लगाने के स्थान पर उसे बर्बाद ही करता है। इससे समय एवं श्रम शक्ति नष्ट होती है। उस समय और श्रम से जो लाभ उठाया जा सकता था, उस लाभ से वंचित रहना पड़ता है। ठीक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार विचार-शक्ति की बर्बादी को भी हानिकारक एवं अबुद्धिमतापूर्ण ही ठहराया जा सकता है और ठहराया जाना भी चाहिए। क्रिया शक्ति को बर्बाद करना और विचार शक्ति को निरर्थक बखेरना वस्तुतः एक ही भूल के दो रूप हैं।

विचार शक्ति का सदुपयोग हो सके, वह उत्पादक प्रयोजनों में लगे इसके लिए क्या किया जाना चाहिए? मनीषियों का एक ही सुझाव है कि विचारों को क्रमबद्ध एवं योजनाबद्ध बनाया जाय। योग साधना के अन्तर्गत मनोनिग्रह की बात बार-बार कही जाती है। एकाग्रता की इतनी महिमा गाई जाती है और उसे पढ़ाने के लिए ध्यान-साधना को अतीव उपयोगी सिद्ध किया जाता है। इन सब क्रियाओं और निर्देशों का उद्देश्य विचारों के उत्पादन या प्रवाह को रोक देना कदापि नहीं है। वैसा तो हो भी नहीं सकता। मानवी मस्तिष्क की संरचना ही ऐसी है कि उसके कारण हर घड़ी अगणित विचार तरंगें उठते रहने का क्रम चलता ही रहता है और उसे किसी भी प्रकार रोका नहीं जा सकता। एकाग्रता अथवा मनोनिग्रह का कुल मतलब यही है कि अस्त-व्यस्त ढंग से सोचने की बुरी आदत को क्रमबद्ध एवं सुसंस्कृत बनाया जाए। यदि इतना अभ्यास हो सके तो एक सुनिश्चित दिशा में विचारों का प्रवाह चलने लगेगा। विचार शक्ति के सदुपयोग की संभावना बनेगी और इसके आश्चर्यजनक सत्परिणाम भी सामने आने लगेंगे।

छोटे-से आतिशी शीशे के घेरे में बिखरी हुई सूर्य किरणों को जब एक केन्द्रबिन्दु पर एकत्रित कर लिया जाता है तो इससे प्रचण्ड गर्मी उत्पन्न होती है और आग लगने लगती है। ठीक यही बात विचारों के केन्द्रीकरण के सम्बन्ध में भी लागू होती है। यदि किसी निर्धारित लक्ष्य पर देर तक गम्भीरतापूर्वक चिन्तन कर सकने की आदत पड़ जाय तो इस सन्दर्भ में आशातीत और आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। वैज्ञानिक, कलाकार, दार्शनिक, विचारक एवं बुद्धिजीवी भी तो सामान्य मनुष्यों की तरह ही होते हैं। परन्तु वे असामान्य क्यों दीखते हैं ? इसका एक ही कारण है कि वे अपने अभीष्ट प्रयोजन पर समग्र चिंतन को एकत्रित कर लेते हैं।

विचार शक्ति का सदुपयोग किया जा सके, इसके लिए हमें अपने विचार तन्त्र का गहराई के साथ निरीक्षण करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि कहीं निष्प्रयोजन, निरर्थक तथा असंबद्ध और अस्त-व्यस्त सोच-विचार करने की आदत तो नहीं लग गई ? यदि ऐसा कुछ भी हो तो उस बर्बादी को रोकने के लिए सक्रिय कदम बढ़ाने चाहिए। जीवन के साथ जुड़ी हुई असंख्य दिशाएँ एवं समस्याएँ सामने होती हैं। उन पर क्रमबद्ध रूप से विचार किया जाए और किसी उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए तर्क, तथ्य और प्रमाणों का पक्ष-विपक्ष सामने रखकर सोचने का अभ्यास करें तो कुछ ही समय में ऐसे निष्कर्ष ढूँढ़े, निकाले जा सकेंगे, जिन्हें कार्यान्वित करके वर्तमान स्थिति में सुधार कर सकना सम्भव हो सके।

अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बन्ध में निजी जीवन से सम्बन्धित विविध पक्ष-पहलुओं के विषय पर स्वास्थ्य संवर्धन, ज्ञान संपादन, परिवार निर्माण, अर्थ संतुलन, समय का क्रमबद्ध विभाजन जैसे अनेकानेक विषय हो सकते हैं, जिन पर लगातार गहराई तक गम्भीरता के साथ विचार करते रहा जा सकता है। उन पर विचार करते हुए स्थिति के हर पहलू का निरीक्षण करते रहें तो ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, जिनके आधार पर आज की अपेक्षा कल कहीं अधिक अच्छी रीति अपनाई जा सकती है। इन सभी महत्वपूर्ण विषयों में विचार करने पर सुधार करने की काफी गुंजाइश मिल सकती है। जो इन दिनों किया जा रहा है, वह सर्वथा ठीक ही हो और उसमें परिष्कार या सुधार करने की कोई आवश्यकता नहीं हो, ऐसी बात नहीं है। वर्तमान गतिविधियों में उपयोगी हेर-फेर करके कल अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करने की संभावना सदैव विद्यमान रहती है।

अपनी व्यक्तिगत समस्याओं में ही निरन्तर उलझे रहा जाये यह कोई आवश्यक नहीं है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के व्यक्तित्व को अपेक्षाकृत अधिक विकसित करने का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि अपने उत्कर्ष का। प्रत्येक के सम्बन्ध में अनेकों विकल्प हो सकते हैं। कितनी ही सामाजिक समस्याएँ, प्रथा-परम्परा तथा परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हमें प्रभावित करती हैं। उन पर विचार किया जा सकता है और समाधान के उपाय खोजे जा सकते हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक प्रचलनों में ऐसे कितने ही हैं जिन पर नये सिरे से विचार किया जाना चाहिए? बदलती परिस्थितियाँ पुराने ढर्रे में पग-पग नये मूल्यों की स्थापना चाहती हैं। यह सब किस प्रकार सम्भव हो सकता है? इस विषय में भी विचार किया जा सकता है।

इस तरह की अनेकानेक धारणाएँ हैं, जिन पर यदि विचार शक्ति को केन्द्रित रखा जा सके तो उसके परिणाम सुनिश्चित रूप से श्रेयस्कर सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब अस्त-व्यस्त रीति से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्बद्ध विचार करते रहने की आदत के कारण होती रहने वाली क्षति को समझा व रोका जाय तथा विचार शक्ति के सदुपयोग का साहसिक कदम उठाया जाए।

चिन्तन गढ़ता है, हमारा-आचरण

जीवन एक बहुमूल्य यन्त्र के सदृश है। इसे सुघढ़ता के साथ इस्तेमाल करना एक महती कला है। जो इस कला में विज्ञ हैं वे सुखपूर्वक रहते और अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। पर जिन्हें इसे इस्तेमाल करना नहीं आया वे उपकरण के बिगाड़ के साथ अपनी भी हाथ-पैर तोड़ लेते हैं। अस्वस्थ शरीर, उद्विग्न मन, पारिवारिक कलह, आर्थिक असन्तुलन, शत्रुओं के उपद्रव, लोकापवाद एवम् असफलताजन्य शोक-सन्ताप इस बात के चिन्ह हैं कि जीवन यन्त्र के कल-पुर्जे दुर्घटनाग्रस्त होकर टूट-फूट गए हैं। जिसका सुस्पष्ट तात्पर्य है कि संचालक अनाड़ी है वही इस प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है अन्यथा जीवन प्रत्येक प्राणी के लिए हर घड़ी आनन्द देते रहने वाला ईश्वरीय वरदान है। इसे अभिशाप में बदलने का दोष न तो इसके निर्माता को है, नहीं वातावरण को, अपितु उस संचालक को है जिसने सही संचालन की कला नहीं सीखी।

बाह्यतः शरीर के विभिन्न अंग-अवयव अपना काम करते दिखाई देते हैं किन्तु गहराई में झाँकने पर प्रतीत होता है कि उनका संचालन करने वाली प्राण चेतना है, अभ्यस्त मन शरीर की समस्त गतिविधियों का संचालक और नियामक है। प्राण के शरीर में न रहने पर काया के समस्त घटक एवम् पदार्थ यथावत् बने रहने पर भी स्तब्ध हो जाते तथा सड़ने लगते हैं। हाथ-पैर चलाने, बोलने आदि की क्रियाएँ तो चेतन मन द्वारा संचालित होती हैं पर रक्त संवाहन, श्वाँस-प्रश्वाँस, आकुंचन-प्रकुंचन आदि कार्य अचेतन की प्रेरणा से अनायास होते दीखते हैं, उनके पीछे अव्यक्त मन की स्वसंचालित प्रक्रिया ही है।

इस समूची प्रक्रिया का यदि ग्राफ बनाया जाय तो इसमें स्पष्टतया उतार-चढ़ाव के विविध स्वरूप दीख पड़ेंगे। मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि यह स्वरूप की विधियाँ ठीक हमारे विचारों के अनुरूप होती हैं। भले ही हमारी पूर्व मान्यता में इनका कोई स्थान न रहा हो। किन्तु वास्तविकता यही है कि ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं.।

सुप्रसिद्ध विद्वान प्राध्यापक एलीशाग्रे ने अपनी कृति ''मिरैकिल्स ऑफ नेचर'' में लिखा है कि प्रकाश की तुलना में विचार विद्युत की प्रवाह गति कहीं अधिक है। अभी यन्त्रों के द्वारा पूर्णतया नापा न जा सकने पर भी यह एक तथ्य है कि विचार मात्र कल्पनाओं का उभार न होकर एक शक्तिशाली पदार्थ है, उसकी गति तथा क्षमता ज्ञात भौतिक शक्तियों में सबसे अधिक है। कुछ विज्ञानविदों ने इसे सूक्ष्म भौतिक भी कहा है। वैज्ञानिकों के इस सूक्ष्म विज्ञान को श्री अरविन्द अतिभौतिक (सुप्राफिजिकल) कहकर निरूपित करते हैं।

प्रख्यात अध्येता राबर्ट. जे. फ्लेमिंग ने भी अपनी पुस्तक ''आइडिया एण्ड इट्स प्रापर्टीज'' में लिखा है कि ताप, विद्युत आदि की ऊर्जा मात्र भौतिक पदार्थों को ही नरम-गरम करती है तथा उनके स्वरूप को परिवर्तित करती है। पर विचार विद्युत न केवल व्यक्ति विशेष वरन् समूचे वातावरण को ही आश्चर्यजनक मात्रा में परिवर्तित कर सकती है। चेतना से सर्वाधिक घनिष्ट तथा इसे प्रभावित कर सकने वाली क्षमताओं में विचारों को ही शीर्षस्थ माना गया है। वे अपने उद्गम स्थल-विचारक को सर्वाधिक प्रभावित करते और फिर अपने समीपवर्ती क्षेत्र पर असर डालते हुए निस्सीम दूरी तक बढ़ते चले जाते हैं। प्रेरक व्यक्तित्व की प्रतिभा के अनुरूप ही उसकी सामर्थ्य का स्तर रहता है। तद्नुरूप अन्यान्य व्यक्तियों और प्राणियों पर उनका प्रभाव पड़ता है।

विचारणा को यदि सुगठित तथा उच्चस्तरीय उत्कृष्टता सम्पन्न बनाया जा सके तो जीवन भी उसी के अनुरूप परिचालित हो सकेगा। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को इसी विधा का अनुगमन कर रखा जा सकता है। पर इसके विपरीत यदि मानसिक क्षेत्र को अवांछनीय कूड़े-करकट से भर दिया गया, हेय विचारों से परिपूरित कर लिया गया तो उसकी सड़न से जीवन के समूचे अणु–परमाणु विषाक्त हो जाएँगे और सामान्य दैनन्दिन जीवन की समस्याओं का हल ढूँढ़ निकालना भी सम्भव न बन पड़ेगा। मानसिक चेतना की यह विषाक्त स्थिति जीवन के लक्ष्य एवं स्वरूप दोनों पर कुठाराघात करती तथा स्वयं भी कुंठित हो जाती है। जिस जीवन के द्वारा शिवत्व व सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होनी थी सत्ता के मूल सत् को पाना था, कुरूपता ही पल्ले बँध जाती है। इस कुरूपता को हटाने तथा सौन्दर्य को प्रतिष्ठित करने के लिए आवश्यक है कि विचारों के स्वरूप को समझा जाय। विचार ही मनुष्य को ऊँचा उठाते अथवा पतन के गर्त में धकेलते हैं।

विचार-तरंगों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम सृजनात्मक एवम् द्वितीय विध्वंसात्मक। सृजनात्मक विचारणाएँ अपनी अभिव्यक्ति प्रसन्नता, संतुष्टि, आशा, हिम्मत, करुणा, सहृदयता, सहानुभूति आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावों के रूप में करती हैं। ध्वंसात्मक विचारणाओं की अभिव्यक्ति क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि के रूप में होती है। विचारों के सृजनात्मक स्वरूप का शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव उत्साहवर्धक होता है। इसके विपरीत ध्वंसात्मक चिन्तन मानसिक ऊर्जा का क्षय कर अपनी कार्यक्षमता नष्ट कर डालता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और संकट से उबरने की राह पाने में अपंग असमर्थ बन जाता है। ऐसी स्थिति में उलटे विचारों की शृंखला नई उलझनें पैदा कर अधिकाधिक दल-दल में डुबोती जाती हैं।

सृजनात्मक चिन्तन हमारे आचरण व्यवहार को गढ़कर उसको सौन्दर्यवान बनाने वाला होता है। इससे व्यक्तित्व में प्रभाविकता आती है। विख्यात् मनोविद् जे.जे. मैकडरमॉट ने अपने अध्ययन ''द रायटिंग्स ऑफ विलियम जेम्स कम्परहेन्सिव एडिशन'' में कहा है कि विचारों से ही जीवन को गढ़ा जाता है। इसी के अनुरूप जीवन की अभिव्यक्ति तत्सम्बन्धी क्रियाकलापों गतिविधियों के रूप में ही होती है। उसकी उत्कृष्टता-निकृष्टता, प्रेम, उदारता, सहानुभूति अथवा परपीड़न घृणा आदि के रूप में दृष्टिगत होती है।

इनको परिष्कृत करने तथा चेतना के उच्चतम आयामों को प्राप्त करने के लिए भारतीय मनीषियों के विविध अध्यात्म उपचार ढूँढ़ निकाले थे। इसके लिए एक सर्वांगीण व्यवस्थित विचार-विज्ञान को सृजित किया गया। जिसके अनुसार पहले उन्नत विचारों से मन में जमे गँदले विचारों को साफ किया जाता है। रामकृष्ण परमहंस इसे पहली और अनिवार्य आवश्यकता मानते हुए अपनी सरल भाषा में बताते हैं कि संसार में कहीं कष्ट नहीं है। अनुभूत होने वाला कष्ट हमारे अपने कुविचारों का है। कुविचारों का काँटा चुभ गया है, उसी के कारण सारा कष्ट है। इसको दूर करने के लिए सुविचारों का एक दूसरा काँटा लेकर इससे चुभे हुए काँटे को बाहर निकालकर फेंक दिया जाता है। निकाल फेंकने की यह विधा-स्वाध्याय है। यही वह बुहारी है जिससे मन की समस्त गंदगी को बुहारा जाता है। श्री अरविन्द ''लैटर्स ऑन योग'' में स्वाध्याय की प्रभावोत्पादकता के बारे में कहते हैं कि इससे उच्चमन का परिक्षेत्र खुलता है। जिससे चेतना के उन्नत स्तरों से विचारों का अवतरण होता है। इसे विचारों के प्रकाशमान संसार का उदय कह सकते हैं।

महर्षि पतंजलि योगदर्शन के प्रथम पाठ के १७वें सूत्र में इसके अन्य आयामों का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि ''किसी पवित्र विचार पर लगातार निदिध्यासन करने पर विवेकपूर्ण तर्क प्रवणता से आनन्द मिलता और अहं के आभासी भाव से छुटकारा हो इन्द्रिय विषयों से अहं का तादात्म्य छूट जाता है और सम्प्रज्ञात स्थिति की गति होती है।'' महर्षि के उपरोक्त सूत्र से स्पष्ट है कि विचारों का सुगठन न केवल बाह्य जीवन को परिष्कृत, प्रखर और तेजस्वी बनाता है अपितु चेतना के उन्नत स्तरों के द्वार भी उन्मुक्त करने वाला है इसका अवलम्बन ग्रहण कर हममे से प्रत्येक अपने जीवन का बहुआयामी विकास सहजता-पूर्वक कर सकता है।

विचार-विज्ञान को समझें

विचारों की शक्ति पर अपने समय में काफी विचार हुआ है और यह माना गया है कि ध्वनि, प्रकाश और ताप की तरह चेतना क्षेत्र में विचारों की भी एक जीवन्त शक्ति है। इसकी महत्ता मानते हुए अध्ययन का क्रम चला है। स्वाध्याय और सत्संग की व्यवस्था हुई है। परामर्श और प्रवचन की शैली का विकास हुआ है। सही सोचने के सत्परिणाम और गलत ढंग से सोचने के दुष्परिणामों का विस्तारपूर्वक विवेचन हुआ है।

विचारों ने विचारों को काटा है और विचारों ने विचारों का समर्थन एवं पोषण किया है। एकता और विग्रह के मूल में सशक्त विचारों को ही काम करते पाया है। व्यक्तियों और समाजों को ऊँचा उठाने और नीचे गिराने में विचारों की असाधारण भूमिका रही है। पिछली शताब्दी में दो महान क्रान्तियाँ हुई हैं। एक में राजतंत्र की अनुपयुक्तता सिद्ध करके उसके स्थान पर जनतंत्र की महत्ता प्रतिपादित की है। रूसो के इस प्रतिपादन को समस्त संसार में आँधी-तूफान जैसी मान्यता मिली। इसके थोड़े ही समय उपरान्त शासन का स्वरूप साम्यवादपरक हो, इसकी वकालत कार्लमार्क्स ने की और वे विचार आज आधे से अधिक जन समूह में मान्यता प्राप्त कर चुके हैं। शासन को छोड़कर समाज का स्वरूप निर्धारण करने में विचारों की प्रचण्ड लहरें अपना जादुई प्रभाव प्रस्तुत करती रही हैं। दास प्रथा का उन्मूलन, नारी को समानता के अधिकार, जन साधारण के मौलिक अधिकारों की मान्यता विचारों की प्रचण्ड लहरों के फलस्वरूप ही संभव हो सकी। कारखानों में मजदूरों के अधिकारों की मान्यता जैसे परिवर्तन इन्हीं दिनों व्यवहार में आये हैं। नर-नारी की समानता, जमींदारी उन्मूलन जैसे कार्यों के तीव्र प्रवाह ने ही इन्हें सहज संभव कर दिखाया। सहकारी आन्दोलन की स्थापना और प्रगति ने जमींदारी, साहूकारी प्रथाओं को उखाड़ फेंका। छूत-अछूत का भेदभाव समाप्त होना प्रगतिशील विचारों का ही प्रतिफल है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ समय पहले तक मान्यता थी कि धनबल, बाहुबल और शस्त्रबल ही किसी की प्रगति का आधार हैं। अब वह सामन्ती विचारणा पीछे पड़ गई और माना जाने लगा है कि व्यक्तिगत जीवन का उत्थान-पतन विचारों की उत्कृष्टता, निकृष्टता पर निर्भर है। अब समाज सैन्यबल पर नहीं विचार बल पर समर्थ और दुर्बल बनते हैं। विचार-विनिमय अब कूटनीति का भी एक महत्वपूर्ण पहलू बन गया है। राष्ट्रों और जातियों की मजबूती और कमजोरी में विचारधारा की, प्रमुखता की प्रधान भूमिका रहती है। व्यक्ति निजी जीवन में किस कारण उठता, गिरता है इसे अब विचारों के आधार पर निर्भर मान लिया गया है। शासन सत्ताएँ इसी आधार पर आये दिन उलट-पुलट होती रहती हैं। जन मानस को दिशा दे सकने में समर्थ व्यक्तियों को अब सच्चे अर्थों में बलवान माना जाने लगा है। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को अब मनोरंजन का विषय नहीं सामर्थ्य का पुंज माना जाने लगा है।

विचार-माध्यम से ही विज्ञान का आविर्भाव हुआ है। विज्ञान की अनेकानेक शाखा-प्रशाखाओं का आज प्रचलन है। उसके प्रयोग, परीक्षण के लिए यंत्र उपकरणों का निर्माण हुआ है किन्तु उसके मौलिक आविष्कार की रूपरेखा चिन्तन के माध्यम से ही संभव हुई है। विज्ञान का प्रयोग मशीनों के माध्यम से होता है। पर उन मशीनों का आविष्कार, आविर्भाव मनुष्य के बुद्धिबल से ही हुआ है। आकाशगमन, उपग्रह, कम्प्यूटर, अणु शक्ति आदि अनेकों, एक से एक विचित्र विज्ञान की शाखाएँ कार्यरत दिखाई पड़ती हैं। पर यह सब आकाश से नहीं टपका है। मनुष्य के चिन्तन ने ही इनका सूत्रपात किया है और उन्हें क्रियारत होने की स्थिति तक पहुँचाया है।

विचार विज्ञान की ही एक शाखा श्रद्धा है। इसके वैज्ञानिक प्रयोग हिप्नोटिज्म माध्यम से होते हैं। व्यक्ति को सम्मोहित करके उसके बिना दर्द के आपरेशन होने लगे हैं। दाँत उखाड़ने में तो यह कला बहुत आगे बढ़ गई है। सुन्न करके दाँत उखाड़ने की अब आवश्यकता नहीं पड़ती। जादुई खेलों में इसका अच्छा खासा उपयोग होता है। दर्शकों के समूह में मतिभ्रम उत्पन्न करके कुछ के बदले कुछ दृश्य दिखाये जाते हैं। रस्सी पर मनुष्य का चढ़ जाना और ऊपर से शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके गिराना। बाद में असली शरीर को ज्यों का त्यों दिखा देना, हिप्नोटिज्म का खेल है। इस दिशा में अब भारी प्रगति हो चुकी है।

यह साधारण खेल-खिलवाड़ जैसी बात हुई। शारीरिक और मानसिक चिकित्सा में अब इस विधा के महत्वपूर्ण प्रयोग होने लगे हैं। यह श्रद्धा विज्ञान का एक अंश है। भूत, प्रेत और देवी-देवताओं द्वारा विचित्रताएँ प्रदर्शित होने और लाभ-हानि के प्रतिफल सामने आने की घटनाएँ श्रद्धा पर अवलम्बित हैं। ''शंका डाकिन मनसा भूत'' की उक्ति शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है। रात्रि के अँधेरे में डरपोक व्यक्तियों को झाड़ी भूत बनकर दिखाई देती है। पीपल के पत्तों की खड़खड़ाहट में ऐसा डर लगता है जिससे भयभीत होकर कई व्यक्ति बीमार पड़ जाते और हृदय की धड़कन बन्द हो जाने जैसी विपत्ति के ग्रास बन जाते हैं।

पारिवारिक सम्बन्धों में छोटों को बड़ों के प्रति जो विश्वास, प्रेम होता है, उसे भी श्रद्धा कहते हैं। बच्चों का अभिभावकों के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, छात्रों का गुरुजनों के प्रति जो गहरा सद्भाव है वह श्रद्धा कहा जाता है। यह अनुशासन के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह सद्गुण है। इसका परिणाम दोनों पक्षों के लिए श्रेयस्कर होता है। यदि छोटे-बड़ों के प्रति श्रद्धा रखेंगे तो उसके कार्यों के प्रति गहरी सद्भावना रहेगी। जो कहा गया है, पढ़ा गया है उस पर गहरी आस्था रहेगी और कथन हृदयंगम होता चला जायेगा। बदले में बड़ों का सहज वात्सल्य भी मिलेगा। दोनों ओर का वह आदान-प्रदान शिक्षा की सफलता के लिए श्रेयस्कर है। इसका प्रतिफल अनुशासन के रूप में दृष्टिगोचर होगा। ऐसे परिवारों में सद्भाव का सहज आदान-प्रदान होता रहता है और दोनो पक्ष एक-दूसरे के लिए असाधारण सहायक सिद्ध होंगे। इसमें दोनों पक्षों का हित है।

महापुरुषों के सम्बन्ध में श्रद्धा होने का अर्थ है उनके जीवन से प्रभावित होना। उनकी शिक्षाओं का हृदयंगम करना, उसके निर्देशों और क्रिया-कलापों में हाथ बँटाना। इससे परोक्षतः महापुरुषों को भी अपने मिशन का विस्तार करने में सहायता मिलती है। उनकी शिक्षाओं से लोग अधिक लाभ उठा पाते हैं। श्रद्धा दो व्यक्तियों को परस्पर जोड़ने का सर्वोत्तम माध्यम है। मित्रों के बीच-छोटे बड़े का अन्तर रहने पर भी गुणों के आधार पर गहरी श्रद्धा हो सकती है। यह सामान्य मित्रता से बहुत आगे की चीज है।

आदर्शों के प्रति श्रद्धा होने का अर्थ है कि इनका परिपालन भली प्रकार से हो सकेगा और निभ सकेगा। आदर्शों की सामान्य जानकारी समझना और औचित्य मानना एक बात है और श्रद्धा होना दूसरी। जिन सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा होगी व्यक्ति उन्हें तोड़ने के लिए ललचायेगा नहीं वरन् दृढ़तापूर्वक उनका निर्वाह करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहेगा। यदि मान्यता उथली है तो कहा नहीं जा सकता कि परीक्षा की घड़ी आने पर वह निभेगा या नहीं।

अध्यात्म क्षेत्र में तो श्रद्धा ही सफलता का मूलभूत आधार है। किसी देवता या मंत्र के प्रति श्रद्धा है तो उसकी सामान्य साधना बन पड़ने पर भी उसके चमत्कारी परिणाम होते हैं। इसके विपरीत श्रद्धा के अभाव में कोई उपासनात्मक कर्म-काण्ड ढेरों समय लगाकर करते रहने पर भी कहने लायक प्रतिफल नहीं होता।

रामायण में श्रद्धा को भवानी और शिव को विश्वास की उपमा दी है और कहा गया है कि इन दोनों के बिना हृदय में विराजमान होते हुए भी इष्टदेव का दर्शन, अनुग्रह नहीं होता। इससे प्रकट होता है कि जितनी किसी देवता या मंत्र में शक्ति है उसकी तुलना में सघन श्रद्धा किसी प्रकार कम नहीं पड़ती।

किसी कार्य की गरिमा के प्रति श्रद्धा रखते हुए सच्चे मन और पूरे परिश्रम के साथ जुड़ जाना सफलता का सुनिश्चित पथ-प्रशस्त करना है।

आकांक्षाओं को आदर्शवादी मोड़ दिया जाय

मनुष्य की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं में मूलतः उसकी प्रेरक शक्तियाँ समायी हैं। इच्छाओं का उफान जिस दिशा में उमड़ता है उसी ओर मस्तिष्क चल पड़ता है। सोचने का ढर्रा उसी पटरी पर लुढ़कता और बुद्धि उसी स्तर के साधन-सरंजाम जुटाने का ताना-बाना बुनने लगती है। शरीर की क्रियाएँ उसी दायरे में अग्रसर होती हैं और साधन, सहयोग, वातावरण उसी प्रकार के जुटने शुरू हो जाते हैं। अपने बनाये जाल में मकड़ी पूरी तरह फँस जाती है। मनुष्य अपनी इच्छाओं द्वार विनिर्मित परिस्थितियों के जाल-जंजाल में जकड़ा रहता है। उसे इतना शारीरिक एवं मानसिक अवकाश ही नहीं मिलता कि जीवनोद्देश्य की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम बढ़ा सके।

आकांक्षाओं का महत्व समझा जाना चाहिए और उनकी दिशा निर्धारित करने के सम्बन्ध में समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। मानवी सुख-शान्ति और सामाजिक प्रगति की कुंजी यहीं छुपी पड़ी है। पिछले समय में हुए वैयक्तिक अधोपतन और सामाजिक दुर्गति का यदि तात्विक लेखा-जोखा लिया जाय, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि लोगों के सोचने का स्तर घटिया बन गया। उनकी महत्वाकांक्षाएँ संकीर्ण प्रयोजनों में अटककर विकृतियाँ ही विकृतियाँ पैदा करती रह गईं।

मानवी अन्तःकरण के विश्लेषक आर. डी. लेंग के ग्रन्थ ''द डिवाइडेड सेल्फ'' के पन्ने पलटने पर पता चलता है—इच्छाएँ सोचने को प्रेरित करती हैं। मस्तिष्क वह जादू का पिटारा है कि जिधर चलेगा उसी प्रकार के साधन और अवसर प्राप्त कर लेगा। यदि विलासी और संग्रही बनने की अभिरुचि भड़क उठे तो व्यक्ति उन्हीं के लिए रात-दिन सोचेगा और करेगा। पिछले दिनों यही हुआ है। व्यक्ति संकीर्ण स्वार्थों की परिधि में स्वयं को सीमाबद्ध रखता रहा है। वह लोभ-मोह को परम-प्रिय विषय बनाये बैठा रहा और काम-क्रोध की आग बुझाने के सरंजाम इकट्ठे करता रहा।

इस तरह की प्रवृत्तियों ने यदि उसे नर-पशु जैसा जीवन प्रदान किया तो आश्चर्य क्या ? कुत्सिग लालसाएँ जब-जब भड़कती हैं तो अपनी उग्रता के कारण मानवीय मर्यादाओं को तोड़-फोड़कर रख देती हैं। नैतिकता का कोई मूल्य उस प्रवाह के सामने टिक नहीं पाता। किसी भी प्रकार अपनी हविस पूरी करने की उतावली इतनी बेचैनी उत्पन्न करती है कि नीति और सदाचार, न्याय और औचित्य का ध्यान ही नहीं रहता। तृष्णाओं से, समस्त वासनाओं से पीड़ित, अहंकार से उन्मत्त व्यक्ति जो कुछ भी न कर डाले वही कम है।

मनोविद एरिक फ्राम के ग्रन्थ ''द एनाटमी ऑव ह्यूमन डिस्ट्रक्टिवनेस'' के अनुसार इच्छाओं का केन्द्र यदि पशु प्रवृत्ति से भरा रहे और मनुष्य अपने शारीरिक सुखों को पाने, अहंकार को सँजोने और लालच को बढ़ाने में लगा रहे तो उस सन्दर्भ में कुछ भी अनर्थ करने में तत्पर हो सकता है। व्यक्तियों का निखार और उत्कर्ष आदर्शवादी विचारणा और कार्य-पद्धति पर निर्भर है। जो लोग नीचा सोचते और ओछा करते हैं, वे सम्पन्नता एकत्रित कर लेने पर भी किसी की या अपनी आँखों में अपना सम्मान सुरक्षित नहीं रख सकते। कोई बड़ा काम नहीं कर सकते और मूर्धन्य, प्रामाणिक एवम् गणमान्य लोगों की पंक्ति में नहीं बैठ सकते। धन-शिक्षा-सौन्दर्य, कला-कौशल में कुछ प्रगति कर लेने पर भी उनके व्यक्तित्व निखर न सकेंगे और उनमें आत्मबल की न्यूनता ही बनी रहेगी।

विकासवान व्यक्तित्व की आधारशिला मनुष्य की आन्तरिक अभिलाषाओं और आकांक्षाओं पर निर्भर रहती है। वस्तुतः यही केन्द्र-बिन्दु व्यक्तित्व का सार तत्व है। मनुष्य वस्तुतः क्या है ? यदि उसकी असलियत परखनी हो तो उसके अन्तरंग में घुसकर यह ढूँढ़ना होगा कि वह वस्तुतः चाहता क्या है ? सामाजिक दबाव या लोक-लाज के कारण बहुधा बाहर से वह प्रदर्शित किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है—वह कहा जाता है जो सामाजिक सम्मान बनाए रखे। वास्तविक इच्छाएँ कई बार इस बाह्य प्रदर्शन से सर्वथा प्रतिकूल होती हैं। यह अन्तर सामान्य व्यक्तियों में ही नहीं नेताओं, धर्म-ध्वजियों और दूसरे ख्यातिनामा व्यक्तियों में भी देखा जा सकता है। जब उनकी मनोदशा तथा करतूतों का नग्न स्वरूप छन-छन कर बाहर आता है तो उस सड़े मवाद की दुर्गन्ध से नाक फटने लगती है। बाहर से आदमी कुछ भी कहता-बताता रहे, असल में वही रहेगा जो स्वरूप अन्तरंग में विनिर्मित किए बैठा है।

यह अन्तरंग की अभिलाषाएँ ही जीवन का सार तत्व हैं। इसी बीज के अनुरूप परिस्थितियों के अंकुर उगते और साधनों के पत्ते जुटते हैं और उन्हीं के अनुरूप क्रिया-कलापों के पुष्प और परिणामों के फल सामने आकर उपस्थित हो जाते हैं। एक शब्द में यों कह सकते हैं कि आंतरिक अभिलाषाएँ ही जीवन का सर्वस्व हैं। वे जिधर बहेंगी उधर ही मन, शरीर, कर्तृत्व और वातावरण सहज ही बढ़ता-ढलता चला जाएगा। इस प्रवाह के आगे कोई अवरोध ठहर नहीं सकता। समस्त प्रतिकूलताओं को चीरता हुआ वह प्रवाह अपने लिए रास्ता बना लेता है और उन साधनों को प्राप्त कर लेता है—उन स्थानों तक पहुँच जाता है, जिनकी प्रारम्भिक स्थिति में कल्पना कर सकना भी कठिन था।

मनोविज्ञान के इस रहस्य को हमें इसलिए समझना चाहिए क्योंकि विचार क्रान्ति की प्रक्रिया इसी मर्मस्थल को छूती है। उसका आरम्भ यहीं से होता है। हम साधनों का निर्माण करने नहीं चले हैं, क्योंकि अपनी दृष्टि में वे बार-बार झड़ने उगने वाले पत्र-पल्लव मात्र हैं। निकृष्ट मनोभूमि के रहते अच्छी परिस्थितियाँ निरर्थक सिद्ध होती हैं और देखते-देखते पलायन कर जाती हैं। इसके विपरीत उत्कृष्ट मनोभूमि गई-गुजरी परिस्थितियों में भी आनन्द-उल्लास का बाहुल्य अनुभव करती है और क्रमशः अनुकूल साधनों को जुटाती चली जाती है।

यह मनोवैज्ञानिक अनुभूति हमें बताती है कि सामाजिक विकास और नव निर्माण के लिए व्यक्तियों का विकास अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। इसलिए हमें जन-इच्छाओं को परिष्कृत करने की दिशा में सारा ध्यान केन्द्रित और प्रयत्नों को समवेत करना चाहिए। आज का इन्सान बाहर से कुछ भी बकता या बनता हो, भीतर से बहुत ही लोभी, स्वार्थी, संकीर्ण, अनुदार और कामुक प्रवृत्ति का बन गया है। यदि पोस्टमार्टम करने चलें तो भावना शरीर का शवोच्छेद लगभग एक ही प्रकार का निष्कर्ष प्रस्तुत करेगा। हर आदमी अमीरी के आधार पर विलासिता, कामुकता और अहमन्यता का मजा उठाने के लिए व्याकुल है। उसे ऐश चाहिए, शान-शौकत चाहिए, वाह-वाही चाहिए, इसके अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं चाहिए। ये चीजें उसे अति विशाल मात्रा में और अति शीघ्र चाहिए। इसी धुरी पर आज के व्यक्ति का सारा जीवन घूम रहा है।

इस प्रवाह को उलट सकना कैसे सम्भव हो सकता है? इसका उत्तर एक ही है कि अंतरंग की आकांक्षा मर्मस्थल में आदर्शवादिता पैदा की जाय। ऐसा हो सके तो मन, मस्तिष्क समय श्रम सभी उस दिशा में मुड़ चलें और साधन, सुविधा, परिस्थिति, सहयोग आदि के सारे सरंजाम उसी स्तर के सहज ही जुटने लगें। जो लोग निन्दा, व्यंग्य, उपहास, लांछन एवं अवरोध उत्पन्न करने में आज लगे हुए हैं वे कल अपनी हार मानलें और पत्थर से सिर फोड़ना छोड़कर उस अतिमानवी साहस के चरणों पर श्रद्धा सुमन बिछाने लगें।

महत्वाकांक्षाओं को तृष्णा-वासना-लोभ मोह के पाप-पिशाचों से बचाकर लोक मंगल के लिए बड़े से बड़ा त्याग, बलिदान, पुरुषार्थ एवं अनुदान देने में लगाया जा सके तो सामान्य स्तर का मनुष्य भी धीरे-धीरे इतने महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है कि उसका लेखा-जोखा तथाकथित संत महात्माओं से हजारों गुना अधिक आगे ठहराया जाय। मनीषी गोपीनाथ कविराज के ग्रन्थ ''भारतीय संस्कृति और साधना'' के शब्दों में कहें तो—''जब तक मनुष्य लेने की लिप्सा में डूबा रहता है—उसे अपने चारों ओर अभाव और दारिद्रय ही घिरा दीखता है। पर जब वह अपनी मनोदशा देने में रस लेने वाली बना लेता है तो धन न रहते हुए भी शारीरिक, मानसिक सम्पदाएँ इतनी बहुमूल्य दीखने लगती हैं, जिनके आधार पर लोक मंगल के लिए बहुत कुछ किया जा सकना सम्भव हो सके।''

नव-निर्माण के लिए उत्कृष्ट भाव सम्पन्न व्यक्तियों की आवश्यकता है। लक्ष्मी और विद्या न होने से किसी को रंज नहीं करना चाहिए। जिन्होंने अपनी अभिलाषाओं, आकांक्षाओं को आदर्शवादी बनाया है उन्हीं के द्वारा विश्व के भावनात्मक नव निर्माण का महान अभियान संभव है।

विधेयात्मक चिन्तन की फलदायी परिणतियाँ

जीवन की अन्यान्य बातों की अपेक्षा सोचने की प्रक्रिया पर सामान्यतः कम ध्यान दिया गया है जबकि मानवी सफलताओं, असफलताओं में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। विचारणा की शुरूआत मान्यताओं अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारणाओं से होती है, जिन्हें या तो मनुष्य स्वयं बनाता है अथवा किन्हीं दूसरे से ग्रहण करता है अथवा वे पढ़ने-सुनने और अन्यान्य अनुभवों के आधार पर बनती हैं। अपनी अभिरुचि के अनुरूप विचारों को मानव मस्तिष्क में प्रविष्ट होने देता है, जबकि जिन्हें पसन्द नहीं करता उन्हें निरस्त भी कर सकता है। जिन विचारों का वह चयन करता है उन्हीं के अनुरूप चिन्तन की प्रक्रिया भी चलती है। चयन किये गये विचारों के अनुरूप भी दृष्टिकोण का विकास होता है जो विश्वास को जन्म देता है। वह परिपक्व होकर पूर्व धारणा बन जाता है। व्यक्तियों की प्रकृति एवं अभिरुचि की भिन्नता के कारण मनुष्य मनुष्य के विश्वासों, मान्यताओं एवं धारणाओं में भारी अन्तर पाया जाता है।

चिन्तन पद्धति में अर्जित की गयी भली-बुरी आदतों की भी भूमिका होती है। स्वभाव चिन्तन को अपने ढर्रे में घुसा भर देने में समर्थ हो जाता है। स्वस्थ और उपयोगी चिन्तन के लिए उस स्वभावगत ढर्रे को भी तोड़ना आवश्यक है जो मानवी गरिमा के प्रतिकूल है अथवा आत्म-विकास में बाधक है।

प्रायः अधिकांश व्यक्तियों का ऐसा विश्वास है कि विशिष्ट परिस्थिति में मन द्वारा विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करना मानवी प्रकृति का स्वभाव है पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। अभ्यास द्वारा उस ढर्रे को तोड़ना हर किसी के लिए सम्भव है। परिस्थिति विशेष में लोग प्रायः जिस ढंग से सोचते एवं दृष्टिकोण अपनाते हैं, उससे भिन्न स्तर का चिन्तन करने के लिए भी अपने मन को अभ्यस्त किया जा सकता है। मानसिक विकास के लिए अभीष्ट दिशा में सोचने के लिए अपनी प्रकृति को मोड़ा भी जा सकता है।

मन विभिन्न प्रकार के विचारों को ग्रहण करता है, पर जिनमें उसकी अभिरुचि रहती है, चयन उन्हीं का करता है। यह रुचि पूर्वानुभवों के आधार पर बनी हो सकती है। प्रयत्नपूर्वक नयी अभिरुचियाँ भी पैदा की जा सकती हैं।

प्रायः मन एक विशेष प्रकार की ढर्रे वाली प्रतिक्रियाएँ मात्र दर्शाता है, पर इच्छित दिशा में उसे कार्य करने के लिए नियन्त्रित और विवश भी किया जा सकता है। बन्दरों की तरह उछल-कूद मचाना उसका स्वभाव है। एक दिशा अथवा विचार विशेष पर एकाग्र नहीं होना चाहिए। नवीन विचारों की ओर आकर्षित तो होता है, पर उपयोगी होते हुए भी उन पर टिका नहीं रह पाता। कुछ ही समय बाद उसकी एकाग्रता भंग हो जाती तथा वह परिवर्तन चाहने लगता है, पर अभ्यास एवं नियन्त्रण द्वारा उसके अन्दर स्वभाव को बदला भी जा सकता है। यह प्रक्रिया समय साध्य होते हुए भी असम्भव नहीं है। एक बार एकाग्रता का अभ्यास बन जाने से जीवनपर्यन्त के लिए लाभकारी सिद्ध होता है।

सोचने की प्रक्रिया में विषयों पर एकाग्रता ही नहीं स्वस्थ और सही दृष्टिकोण का होना भी आवश्यक है। किसी भी विषय पर दो प्रकार से सोचा जा सकता है—विधेयात्मक और निषेधात्मक भी। परस्पर विरोधी दोनों ही दिशाओं में एकाग्रता का अभ्यास किया जा सकता है। इस महत्वपूर्ण तथ्य को हर व्यक्ति जानता है कि निषेधात्मक चिन्तन से मनुष्य की वैचारिक क्षमताओं में ह्रास होता है। विधेयात्मक दृष्टिकोण से ही चिन्तन का सही लाभ लिया जा सकता है।

निषेधात्मक चिन्तन से बचने का एक तरीका यह भी हो सकता है कि अपनी गरिमा पर विचार करते रहा जाय तथा यह अनुभव किया जाय कि मानव जीवन एक महान उपलब्धि है, जिसका उपयोग श्रेष्ठ कार्यों में होना चाहिए। निकृष्ट चिन्तन मनुष्य को उसकी गरिमामय स्थित से गिराता है, यह विश्वास जितना सुदृढ़ होता चला जायेगा, विधेय चिन्तन को उतना ही अधिक अवसर मिलेगा।

पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने पर भी सही चिन्तन बन नहीं पड़ता। किसी विचारक का यह कथन शत-प्रतिशत सच है कि "जो जितना पूर्वाग्रही हो वह चिन्तन की दृष्टि से उतना ही पिछड़ा होगा।" परिवर्तनशील इस संसार में मान्यताओं एवं तथ्यों के बदलते देरी नहीं लगती। अतएव मन-मस्तिष्क को सदा खुला रहना चाहिए ताकि यथार्थता से वंचित न रहना पड़े। खुले मन से हर औचित्य को बिना किसी ननुनच के स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। तथ्यों की ओर से आँखें बन्द रखने पर कितनी ही जीवनोपयोगी बातों से वंचित रह जाना पड़ता है।

किसी विषय पर एकाकी चिन्तन भी सही निष्कर्षों पर नहीं पहुँचने देता। उस चिन्तन में मनुष्य की पूर्व मान्यताओं का भी योगदान होता है। सही विचारणा के लिए यह भी आवश्यक है कि अपनी पूर्व मान्यताओं, आग्रहों तथा धारणाओं का भी गम्भीरता से पक्षपातरहित होकर विश्लेषण किया जाय। पक्ष और विपक्ष दोनों पर ही सोचा जाय। किसी विषय पर एक तरह से सोचने की अपेक्षा विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर चिन्तन किया जाय। स्वस्थ और यथार्थ चिन्तन तभी बन पड़ता है। एकांकी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को तोड़ना सम्भव हो सके तो सर्वांगीण प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारों का सही विश्लेषण सतही स्तर पर कर सकना सम्भव नहीं है। घटना अथवा विषय विशेष की परिस्थिति की गहराई में जाये बिना विचारणा के निष्कर्ष भी अधूरे, एकाकी और कभी-कभी गलत होते हैं। उल्लेखनीय बात यह भी है कि विचार विश्लेषण की सही प्रक्रिया अपने ही बलबूते पर सम्पन्न की जा सकती है, न कि दूसरे के सहयोग से। सामाजिक रूप से कोई वैचारिक सहयोग सुझाव एवं परामर्श दे भी सकता है पर हर क्षण अपने विचारों का निरीक्षण मात्र मनुष्य स्वयं ही कर सकता है। सही ढंग से उचित-अनुचित का विश्लेषण एवं चयन भी वही कर सकता है। कहा जा चुका है कि विचारणा में पूर्व अनुभवों एवं आदतों की भी पृष्ठभूमि होती है। इस तथ्य से दूसरे व्यक्ति नहीं परिचित होते। अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि हर व्यक्ति थोड़े प्रयत्नों से स्वयं पता लगाकर उसमें आवश्यक हेर-फेर कर सकता है। आत्म-विश्लेषण के लिए मन एवं उसकी प्रवृत्तियों को विवेक के नेत्रों से देखना पड़ता है। कठिन होते हुए भी यह कार्य असम्भव नहीं है।

क्या उचित है और क्या अनुचित? कौन-सा कार्य औचित्यपूर्ण है, कौन-सा अनौचित्य से भरा इसका पता लगाना असम्भव नहीं है। हर कोई थोड़े प्रयास से इसमें अपने को दक्ष कर सकता है?

एक समय में एक से अधिक विषयों पर चिन्तन करने से भी उथले परिणाम हाथ लगते हैं। एकाग्रवान बन पाने से विषय की गहराई में जाना सम्भव नहीं हो पाता। एक से अधिक विषयों पर एक साथ विचार करने से विचारों में भटकाव आता है, किसी उपयोगी परिणाम की आशा नहीं रहती है। कई बातों से विचारों को भटकने देने की खुली छूट देने की अपेक्षा उपयोगी यह है कि एक समय में एक विषय पर सोचा जाय और जितना सोचा जाय पूरे मनोयोगपूर्वक। मनीषी, विचारक, वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार कुछ महत्वपूर्ण समाज को इसीलिए दे पाते हैं कि वे अपने विचारों को भटकने-बिखरने नहीं देते। एक ही विषय के इर्द-गिर्द पूरी तन्मयता के साथ उन्हें घूमने देते हैं। सार्थक परिणति भी इसीलिए होती है।

कर्म, विचारों के गर्भ में ही पकते हैं। जैसे भी विचार होंगे, उसी ढंग की गतिविधि मनुष्य अपनायेगा। जो प्रयास को सफल उपयोगी और कल्याणकारी बनाना चाहते हैं, उन्हें सर्वप्रथम अपनी विचारणा की प्रक्रिया से अवगत होना चाहिए। अनुपयोगी, निषेधात्मक को सुधारने, बदलने तथा उपयोगी को बिना किसी असमंजस के स्वीकारने के लिए सतत् तैयार रहना चाहिए।

आत्म-विश्वास की महती शक्ति सामर्थ्य

मन से हारा हुआ व्यक्ति आमतौर से हारता है। पर जिसे अपनी जीत पर पूरा विश्वास है वह देखता है कि अपने में इतनी क्षमता का भण्डार भरा पड़ा था, जिसे कभी जाना-पहचाना नहीं गया और वैसा सोचने का भी अवसर नहीं आया। वस्तुत: मनुष्य का मनोबल ही उच्चस्तरीय वैभव है। उसी के सहारे लोग साधारण से असाधारण बनते हैं और कम योग्यता होते हुए भी कथित समर्थ कहे जाने वालों के कान काटते हैं। आत्म-विश्वासी कछुआ अस्थिर मन वाले खरगोश से बाजी मार ले गया था यह सर्वविदित है।

अपने आपको दीन-हीन, कमजोर मानने वालों का अनायास ही मनोबल गिरा रहता है। वह आज की अपेक्षा कल को अधिक अच्छा बनाने की बात सोच तक नहीं पाता। कहते हैं कि जो अपनी सहायता आप नहीं करता, उसकी सहायता करने के लिए ईश्वर भी आगे नहीं आता। भ्रूण जब आवश्यक शक्ति अर्जित कर लेता है तो बाहर निकलने का प्रयत्न करता है। कठिनाइयों से जूझने का नाम ही ''प्रसव पीड़ा'' है। इसके बाद ही कभी बालक का जन्म संभव होता है। यदि वह अत्यधिक दुर्बल हो और बाहर आने का पुरुषार्थ न अपनाए तो कदाचित उसे सही स्थिति में जन्म लेने का अवसर ही न मिले। अण्डा जब खोल के भीतर पकता है और बाहर निकलने की आवश्यकता अनुभव करता है तो छिलके को तोड़ने की भीतर से ही शक्ति निकालता है। अण्डे में दरारें पड़तीं, हलचल होती और चूजा बाहर निकल आता है। आत्म-विश्वास और पराक्रम की यह शिक्षा जन्म से पहले ही मिल चुकी होती है ताकि उसे जीवन भर भुलाया न जाय और कठिनाई से निपटने तथा प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए हर पल ध्यान में रखा जा सके। ऐसी ही मन:स्थिति में स्वतन्त्र निर्णय बन पड़ते हैं। अपनी स्थिति के अनुरूप अभीष्ट प्रयोजनों के लिए साहस भरे कदम उठाते बन पड़ते हैं, जिनमें इस मौलिक क्षमता का अभाव है वे दूसरों का मुँह ताकते रहते हैं। अवसर आकर उन्हें स्वयं गोदी में उठाए, सफलता का छप्पर फाड़कर आँगन में आ टपके, इसी का इन्तजार करते रहते हैं। ऐसी हतप्रभ मनोभूमि वाले या तो निराश होकर भाग्यवादी बन जाते हैं या फिर शेखचिल्ली जैसे इस प्रकार के सपने देखते रहते हैं, जिनका वास्तविकता के रूप में विकसित होने का कभी-अवसर आता ही नहीं। तार में बिजली होने पर बल्ब जलते और पंखे घूमते हैं। पर यदि बिजली गुल हो जाय तो न पंखे चलते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न बल्ब जलते हैं। आत्म-विश्वास एक प्रकार की बिजली है, जो मनुष्यों की अनेक विशेषताओं को उभारता और प्रस्तुत क्षमताओं को जगाकर इस योग्य बनाता है कि व्यक्ति कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सके और अपने क्रिया-कलापों से अनेकों को प्रभावित करके उन्हें प्रतिभावान बनाने में समर्थ हो सके। समझना चाहिए कि मनुष्य में आधी क्षमता शरीर और कौशल के साथ जुड़ी होती है और शेष आधी आत्म-विश्वास आत्म-गौरव पर अवलम्बित रहती है।

आत्म-विश्वास आत्म-गौरव को विकसित करता है और अपने अनुरूप मन:स्थिति एवं परिस्थिति बनाकर रहता है। भूमि की उर्वरता और बीज की सशक्तता मिलकर जिस अंकुर को उगाते हैं उसमें अपनी निज की सशक्तता भरी रहती है और उसके सहारे पौधा, झाड़ तथा वृक्ष बनता है वृक्ष बनने में बहुत दिन लगते हैं। एक दिन का अंकुर ही विकास क्रम पर ठीक प्रकार चलते हुए फूलों, फलों से लदा सघन छाया और विशाल कलेवर वाला वृक्ष बन जाता है। विकास का यही क्रम उन पर भी लागू होता है। जो आत्म-बिश्वास के धनी होते हैं, वे न तो हेय परिस्थितियों में पड़े रह सकते हैं और न सामान्यजनों जैसा निर्वाह-उपार्जन तक सीमित जीवन जी पाते हैं। यही है आत्म-विश्वास का चमत्कार एवं उसकी महती सामर्थ्य।

विचार शक्ति की परिणति और प्रतिक्रिया

विचारों का असाधारण प्रभाव मनुष्यों एवं समीपवर्ती वातावरण पर पड़ता है। मन:संस्थान से उठने वाले प्रत्येक विचार अदृश्य तंरगों के रूप में सूक्ष्म जगत में प्रवाहित होते रहते हैं तथा सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं। भले-बुरे दोनों ही प्रकार के विचार अपने उद्‌गम स्रोत के निकट वातावरण में छाये रहते हैं। सानिध्य में आने वाले व्यक्ति जाने-अनजाने उनकी प्रतिक्रियाओं को अनुभव करते हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि विचार कभी भी नष्ट नहीं होते। विचार-कम्पन ईथर में होता है। ईथर के परमाणु अति सूक्ष्म होते हैं। इनकी सूक्ष्मता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 'सोने' जैसे घने पदार्थ में ईथर के लाखों परमाणु पाये जाते हैं। अर्थात् 'सोना' भी विचारों के प्रवाह में अवरोध नहीं बन सकता। उसमें विद्यमान ईथर 'तत्व' विचार-तरंगों के प्रवाह का माध्यम बनता है। विज्ञान की नई शोधों द्वारा ज्ञात हुआ है कि विचारों की आकृति भी सूक्ष्म ईथर से बनती है किन्तु सूक्ष्मता के कारण दिखायी नहीं पड़ती है।

विचारों की आकृति को देखने के लिए अनेक प्रयास भी हुए हैं। जर्मनी के प्रख्यात डाक्टर बेंडक ने ईथर में उत्पन्न होने वाली आकृतियों की प्लेटें लेने में सफलता पायी है। एक बार एक युवक अपनी पत्नी के शोक में चिन्तित था। डा. बेंडक को उसकी जानकारी न थी। उन्होंने ईथर से विचारों के माध्यम से जो चित्र उतारा वह उसकी पत्नी का था। इस प्रकार के अनेकों चित्र लेने में डॉ. ब्रेडक ने सफलता पायी। किर्लियन फोटोग्राफी कुछ वर्षों से बहुर्चिचत हुई है। किर्लियन से विचार तरंगों के माध्यम से चित्र लेने में सफलता पायी है। अब इस तथ्य को स्वीकार किया जा रहा है कि जल में उत्पन्न हुई लहरें तो मिट जाती हैं—वायुमण्डल का कम्पन भी नष्ट हो जाता है किन्तु ईथर में उत्पन्न हुआ कम्पन, विचार आकृतियाँ अमर रहती हैं।

विचार आन्तरिक प्रकृति ही नहीं, बाह्य आकृति को भी प्रभावित करते हैं। प्राणियों के स्वभाव एवं बाह्य स्वरूप के निर्माण में मन:शक्ति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उनके शारीरिक अवयवों का उत्पन्न होना अथवा किसी अंग का क्रमश: लुप्त होना मन:शक्ति पर ही अवलम्बित है। इस तथ्य को आधुनिक विकासवाद के मानक 'डार्विन' ने भी स्वीकार किया है। प्राणियों के आन्तरिक प्रकृति के अनुरूप ही उनकी बाह्य आकृति भी दिखायी पड़ती है। शेर खूँखार एवं उग्र अपने स्वभाव के कारण लगता है शान्त स्वभाव के कारण 'गौ' की शक्ल सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती है। किसी को भय नहीं होता। मनुष्यों में भी कितने व्यक्तियों की आकृति को देखकर सहज ही आकर्षण पैदा हो जाता है, जबकि कितनों को देखते ही भय का संचार होने लगता है। यह उनके आन्तरिक विचारों का प्रभाव है। जो निकट आने वाले व्यक्तियों को अपने अनुरूप प्रभावित करते हैं।

मन:शक्ति ही मानवी आकृति एवं प्रकृति का निर्माण करती है। स्वभाव ही नहीं शरीर के निर्माण में भी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। गर्भावस्था में विकसित हो रहा शिशु माता-पिता के स्वभाव, आचरण एवं विचारों के अनुरूप ही संस्कार ग्रहण करता है। संस्कारों के बीजारोपण की महत्वपूर्ण अवधि तो यही होती है। बाद में वही परिपक्व होते तथा व्यक्तित्व को गढ़ते हैं। इतिहास के अधिकांश महामानवों के इतिहास पढ़ने पर पता चलता है। उनके निर्माण में माताओं की प्रमुख भूमिका रही है। गुण, कर्म, स्वभाव का बीजारोपण गर्भकाल में ही हुआ। गर्भावस्था में चलने वाले विचारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की प्रतिक्रिया का असाधारण प्रभाव शिशु पर पड़ा और उसी के अनुरूप वे बनते-ढलते चले गये।

नेपोलियन बोनापार्ट की साहसिकता विश्व-विख्यात है। सामान्य व्यक्ति उसे ईश्वर के वरदान के रूप में मानते हैं। पर इतिहास मर्मज्ञ जानते हैं कि इस गुण के पीछे उसमें माँ का कितना बड़ा योगदान था। उसके जीवन परिचय को पढ़ने पर पता चलता है कि जिस समय नेपोलियन गर्भ में था, उसकी माँ प्रसिद्ध लेखक 'प्लूटार्क' के लिखे वीर पुरुषों के जीवन चरित तथा ग्रशियन के वीर रस के साहित्य के अध्ययन में अपना अधिकांश समय गुजारती थी। वह स्वयं भी बड़ी साहसी थी। घोड़े की सवारी करती तथा एक शासक की भाँति अपने पति के अधीन कार्य करने वाले सैनिकों को निर्देश देती थी। उसका समूचा व्यक्तित्व ही साहस, शौर्य एवं पराक्रम से भरा-पूरा था। विचारों में वीर रस की तरंगें ही उठती थीं। इन्हीं सबका सूक्ष्म प्रभाव नेपोलियन पर पड़ा। जन्म के उपरान्त भी नेपोलियन को वैसा ही वातावरण मिला। फलतः बीजारोपित संस्कार पुन्य परिपक्व होते गये और इन गुणों के कारण वह सफल एवं विश्व-विख्यात हुआ।

माँ के रहन-सहन, विचारणा का कितना बड़ा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है, इसके उदाहरणों से इतिहास-पुराण भरे पड़े हैं। मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को स्वेच्छा से ब्रह्मज्ञानी बनाया। पति के अनुरोध पर गर्भ में आये चौथे पुत्र को राजा के योग्य-संस्कार देकर इच्छा पूरी की। बिनोवा की माँ ने अपने तीनों बच्चों को ब्रह्मज्ञानी बनाने का संकल्प लिया और सफल हुई। गर्भकाल से ही उन्हें ढालने के लिए संस्कार देने आरम्भ किए। साध्वी-जीवन एवं श्रेष्ठ विचारणा का चमत्कार प्रभाव बच्चों पर पड़ा।

मनचाही सन्तान भी पैदा की जा सकती है यदि इसके अनुरूप अपनी विचारणा एवं गतिविधियों को ढाल लिया जाय।'मेरी विनीशिया' नामक एक अमेरिकन महिला अपनी एक पुस्तक में लिखती है कि मनःशक्ति एवं विचारों का सन्तान पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में मैंने एक पुस्तक पढ़ी। इस समय मेरा दूसरा पुत्र गर्भ में था। इच्छा हुई कि उसे चित्रकारी में प्रवीण बनाऊँ इसके लिए मैं अमेरिका के प्रसिद्ध चित्रालयों में जाती, चित्रों को ध्यान से देखती तथा उनमें खो जाती। उसका चमत्कारी प्रभाव बच्चे पर पड़ा और वह महान चित्रकार बना।

शोक, उद्वेग, चिन्ता, आवेश, क्रोध का हानिकारक प्रभाव गर्भ के शिशु पर पड़ता है। डा० 'फार्वलर' अपनी पुस्तक में एक महिला रोगी का वर्णन करते हैं कि वह अपने बच्चे को निद्रा की औषधि देकर कहीं बाहर चली गई। औषधि की मात्रा अधिक होने पर बच्चा मर गया। उसका शोक दिनों-दिन बढ़ता गया। शोकावस्था में ही वह दूसरी बार गर्भवती हुई। परिणामस्वरूप बच्चा रोगी उत्पन्न हुआ और दो वर्षों के बाद मर गया इसका और भी भयंकर प्रभाव पड़ा। तीसरा बच्चा अधिक रोगी उत्पन्न हुआ और मात्र छः मास बाद चल बसा। इस शोक को सहन न कर सकने के कारण स्त्री भी चल बसी।

गर्भस्थ शिशु ही नहीं भले-बुरे विचारणा का प्रभाव व्यक्तियों एवं वातावरण पर भी पड़ता है। सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति उसके अनुरूप प्रभाव ग्रहण करते हैं। देवालय, मन्दिर, गिरजाघर, मजिस्द आदि के निकट पहुँचने पर शान्ति मिलती है। भाव संवेदनाएँ उमड़ने लगती हैं। यह उस वातावरण में छाये धार्मिक विचारों, भावनाओं का ही प्रभाव है, जो सम्पर्क में आने वाले को प्रभावित करते हैं। कसाई खाने, मदिरालय आदि के निकट से होकर गुजरने पर एक विचित्र प्रकार की घृणा एवं उत्तेजना पैदा होती है। जीव-जन्तुओं की हत्या के समय किये गये क्रन्दन उक्त वातावरण में छाये रहते हैं, जिसके कारण इस प्रकार की अनुभूति होती है।

ऋषियों ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को जानते हुए मन को सदा पवित्र एवं शान्त बनाये रखने तथा उसके अनुरूप आचरण करने की प्रेरणा दी है। विचारणा व्यक्ति को ही नहीं, वातावरण को भी प्रभावित करती है। इस तथ्य को समझते हुए सद् विचारणा को ही जीवन में स्थान देना श्रेयष्कर है।

विचार विभ्रम के दुष्परिणाम

मनःस्थिति से परिस्थितियाँ पैदा होती हैं। मन जिधर भी ढलता है, जीवन का उत्थान-पतन उसी दिशा में देखा जाता है। विचार ही कालान्तर में कर्म बनते हैं और उन भले-बुरे कर्मों के अनुरूप ही मनुष्य को सुखद या दुःखद परिस्थिति को सुधारने का शुभारम्भ मनःस्थिति का परिमार्जन करने के साथ करना चाहिये।

एक जैसी परिस्थितियों में जन्मे, पले या रहने वाले व्यक्ति कई बार एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न पाये जाते हैं। दरिद्रता से अभावग्रस्त, दुःखी और विपन्न रहना स्वभाविक है, किन्तु उदारमना, ऋषिकल्प व्यक्ति साधनों की दृष्टि से निर्धनों की अपेक्षा और अधिक असुविधाओं में रहते हुए स्वयं आनन्दमग्न रहते और असंख्य दुःखीजनों को आनन्द के मार्ग पर चलाते देखे गये हैं। सम्पन्नता को सुख-सुविधा का प्रधान कारण माना जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, पर ऐसा भी होता है कि सुसम्पन्न व्यक्ति कुसंग में पड़कर दुर्व्यसनों के शिकार होकर ऐसी विपत्तियाँ में फँसकर त्रास पाते हैं, जैसी कि गरीबों को भी परेशानी नहीं रहती। सम्पन्नता का दुरुपयोग होने लगे तो वह विपन्नता से भी अधिक कष्टसाध्य होती है।

क्रियायें तो शरीर से बन पड़ती हैं, पर उनका संचालन मानसिक चेतना के ही माध्यम से बन पड़ता है। अंग-अवयव वही करते हैं जो मन का रुझान अपना आदेश देता है। बात इससे भी बड़ी है। चिकित्सा की नवीनतम शोधों ने सिद्ध किया है कि विभिन्न रोगों की जड़ें मन:क्षेत्र में होती हैं। दुश्चिन्तन से उत्पन्न मनोविकार ऐसा ताना-बाना बुनते हैं कि उसके कारण शरीर रोगी और मन उद्विग्न, शिथिल रहने लगता है। दवा-दारू का इलाज प्राय: इसलिये सफल नहीं होता है कि रोगों की जड़ मनोविकारों में जमी होती हैं। वहाँ से उसे उखाड़ने या समझने का प्रयत्न किया नहीं जाता। शरीर की औषधियाँ चलती रहती हैं। जिनकी उत्तेजना और विषाक्तता थोड़े दिन जादू-चमत्कार दिखाती हैं। इसके बाद बीमारी कोई दूसरा रूप बनाकर उभर आती है। अधिकांश लोगों को जीवनभर रुग्णता से ग्रस्त रहकर पापड़ बेलने पड़ते हैं। आरोग्यशास्त्री सोचते हैं कि रुग्णता से यदि सचमुच पीछा छुड़ाना है तो रोगी को तनावमुक्त, हल्का-फुल्का, हँसता-हँसाता जीवन जीना चाहिये। मनोविकार के खरपतवार को मानसिक क्षेत्र में उगने, बढ़ने या फलने-फूलने नहीं देना चाहिये।

शरीर की तरह मन के अपने रोग हैं, जो प्रत्यक्ष तो दिखाई नहीं पड़ते, भीतर ही भीतर न केवल शरीर को वरन् मन समेत सारे व्यक्तित्व को खोखला करते रहते हैं। अनुपयुक्त चिन्तन, आवेश, उद्विग्नता, चिन्ता, भय, संदेह, सनक आदि की व्यथायें उत्पन्न करते रहते हैं। इस घुटन में मनुष्य शारीरिक सूजन, दर्द, जलन आदि से भी अधिक व्यथित रहता है। ऐसे लोगों को अनिद्रा से लेकर भ्रान्तियों का जंजाल घेरे रहता है और अनुपयुक्त चिन्तन से प्राय: अनैतिक, अवांछनीय, अनुपयुक्त, उल्टी, अस्वाभाविक कल्पनायें छाई रहती हैं। फलत: किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचना और सही कदम उठाना दोनों ही कठिन पड़ जाते हैं। गुण, कर्म स्वभाव में विकृतियों के भर जाने के कारण हँसते-खेलते जिया जाने वाला जीवन भारभूत होकर किसी प्रकार जिन्दगी के दिन पूरे करता है। ऐसे लोग प्राय: आधी जिन्दगी ही जी पाते हैं और आधी को अनुपयुक्त रहन-सहन के कारण अकाल मृत्यु के सुपुर्द कर देते हैं।

मन मालिक और शरीर सेवक। उसके लिये मालिक के इशारे पर चलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। आलस्य, प्रमाद से लेकर अभाव-पिछड़ेपन की परिस्थिति मात्र दुश्चिन्तन से उत्पन्न बुरी आदतों की ही प्रतिक्रिया होती है। इन्हीं से ग्रस्त व्यक्ति दरिद्रता, गन्दगी और असभ्यता का जीवन जीता है। यदि आदतें सुधरे हुए स्तर की रही होतीं, स्वभाव को सभ्य सुसंस्कृत बनाया गया होता तो परिस्थिति सुधरने में देर न लगती। दूसरे लोग अपनी जिम्मेदारी भी समझते-प्रगति के लिये अनेक बातें सोचते और अनेक उपाय करते रहते हैं, पर वे कभी पार नहीं पड़ते। कारण कि जीवन तंत्र की संचालक पद्धति गड़बड़ा रही हो तो फिर ऊपर से की गयी लीपापोती कितना काम चला सकेगी। पैंदे में छिद्रों वाले घड़े में पानी बराबर भरते रहने पर भी टिक कब तक सकेगा।

जीवन में आये दिन अनेकानेक समस्यायें आती रहती हैं। उनका समाधान दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने पर ही सही रूप से निकल सकता है। मन के अदूरदर्शी कुसंस्कारी होने पर जो भी उपाय कठिनाइयों के समाधान या प्रगति-पथ पर आगे बढ़ने के लिये सूझते हैं, वे सभी प्राय: उल्टे पड़ते हैं। अनुपयुक्त निधार्रण, अनुपयुक्त क्रिया-कृत्य करने के लिये ही बाधित करते हैं। जिनके परिणाम सुख चाहते हुए भी दु:ख के रूप में सामने आते हैं। भ्रष्ट चिन्तन की प्रतिक्रिया प्राय: चिन्ता के रूप में ही सामने आती है। आँखों पर जिस रंग का चश्मा पहना जाता है, बाहर की सभी वस्तुयें उसी रंग में रंगी हुई दीखती हैं। कान बहरे हों तो सुनाई कैसे दे?आँखें अंधी हों तो बाहर के सुन्दर दृश्य भी कैसे दीख पड़ें। मस्तिष्क की स्थिति उल्टी होने पर संसार में जो कुछ हो रहा है, उल्टा ही उल्टा दीखता है। सही वस्तुस्थिति का भान न होने पर सही समाधान सोच सकना और सही मार्ग पर चल सकना संभव न होगा। यही कारण है कि गुत्थियाँ, समस्यायें, विकृतियाँ, विपत्तियाँ घटने के स्थान पर निरन्तर अधिकाधिक बढ़ती ही रहती हैं।

जिनका दृष्टिकोण परिष्कृत है, उन्हें सज्जनोचित निर्णय करने में देर नहीं लगती। ऐसी दशा में समस्याओं में से अधिकांश तो सुलझ जाती हैं। जो शेष रह जाती हैं, उन्हें धैर्य और साहस के सहारे परास्त कर सकना भी कठिन नहीं होता।

आर्थिक चिन्ताओं में दोनों प्रकार के लोग फँसे हुए पाये जाते हैं-गरीब भी और अमीर भी। गरीब इसलिये हेय जीवन जीने के लिये बाधित होते हैं कि वे अपनी संपदा और दक्षता बढ़ाने में रुचि नहीं लेते। पूर्वाग्रहों और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुराग्रहों से ग्रस्त ढर्रे का जीवन ही उन्हें इतना रास आता है कि बदलने की उमंग उठती ही नहीं। वर्तमान परिस्थितियों में भी विकास के किन आधारों का अवलम्बन लिया जा सकता है, यह सोचना भी अनगढ़ मानसिकता के रहते कठिन पड़ता है। फिर परिवर्तन का आवश्यक सरंजाम जुटाने के लिये जिस रचनात्मक प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है उसके अभाव में कुछ करते धरते नहीं बनता। मनसूबे कल्पना मात्र बनकर ही रह जाते हैं।

मनुष्य भटका हुआ देवता है। यह भटकाव और कुछ नहीं मात्र विचारों की विकृति है। यदि सही चिन्तन, तथ्य, तर्क और प्रमाणों की खोज करते हुए अपने लिये सही मार्ग अपनाये तो साधारण से साधारण मनुष्य हँसी-खुशी का जीवन जीते हुए अपने लिये प्रगति का पथ प्रशस्त कर सकता है और दूसरों के लिये इतना उपयोगी हो सकता है कि उसकी उपस्थिति-समीपता भर से आनन्द की अनुभूति हो, भले ही कोई प्रत्यक्ष सहयोग-सहायता का सुयोग उस सान्निध्य में न बन पड़े।

इसके विपरीत दुर्गुणी व्यक्ति अपने निज की दुरभिसंधियों से अपने लिये तो विपत्ति निमंत्रित करता ही है, साथ ही देखने-सुनने वालों तक के मन में विक्षोभ पैदा करता है। अकारण उन्हें दु:खी एवं उद्वेलित करता है। दुर्घटनाओं की प्रतिक्रिया हर किसी पर विक्षोभकारी होती है। इसलिये दुर्गुणी और दुराचारी व्यक्ति अपने और दूसरों के लिये अभिशाप बनकर ही रहता है। प्रकारान्तर से दूर-दूर तक का वातावरण उसके कारण आक्रोश, उद्वेग से भरने लगता है। छूत की बीमारी जिस क्षेत्र में फैलती है, उसमें रहने वाले प्राय: सभी लोग चपेट में आते हैं, चाहे वे व्यवहार में स्वच्छ एवं सावधान ही क्यों न रहते हों? समूचा समाज एक बड़े जलाशय की तरह है, इसमें एक जगह ढेला फेंक देने पर उसमें उठने वाली लहरें हर दिशा में फैल जाती हैं और उठने वाली लहरें उसकी स्थिरता में बाधक बनती हैं।

साधनों की महिमा, महत्ता विचारपूर्वक गाई-बताई जाती है। लोक मान्यता भी ऐसी ही बन गयी है। वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा समझा जाना भी किसी कदर सही भी है, क्योंकि सुविधाओं से लेकर सम्मान की परिस्थितियाँ धन के आधार पर ही खरीदी जाने लगी हैं। इसलिये सम्पदा के प्रति अत्यधिक आकर्षित-उत्साहित व्यक्ति उस उतावली में उचित-अनुचित का अन्तर भी भूल जाते हैं और भ्रष्ट आचरण अपनाकर भी पैसा बटोरने लगते हैं। यह प्रचलन बढ़ते जाने पर भी एक बात निश्चित है कि अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त यथावत् ही रहेंगे। आर्थिक आदान-प्रदान एवं लोक व्यवहार भी स्थायित्व तभी पकड़ते हैं, जब प्रामाणिकता और उपयोगिता का गहरा पुट होता है। अन्यथा उच्छृंखलपन के अभ्यस्त लोग आये दिन एक स्थान से बिस्तर बदल करके ही पोल खुलती है, अविश्वास छा जाता है और फिर ऐसे व्यक्ति के साथ कोई साधारण व्यक्ति भी सम्पर्क साधने में कतराते हैं। ऐसी दशा में वह अविश्वस्त व्यक्ति कोई स्थायी या बड़ी सफलता अर्जित नहीं कर पाता।

जब तक माया-जाल फैलाने में धूर्तता काम करती है तभी तक भोले लोग चिड़ियों और मछलियों की तरह फँसते रहते हैं, पर जैसे ही वस्तुस्थिति प्रकट होती है उस खतरे से सभी लोग सावधान हो जाते हैं और किसी प्रकार दूर रहने में ही खैर समझते हैं। ऐसे लोग जीवन में कभी भी कोई बड़ी सफलता अर्जित नहीं कर सकते। कारण कि आदान-प्रदान में विश्वसनीयता अतीव आवश्यक है। उसके बिना इस हाथ दे, उस हाथ ले की नीति अपनाते समय भी फूँक-फूँक कर कदम उठाया जाता है। संदेह यही बना रहता है कि सतर्कता बरतने पर भी कहीं न कहीं कुछ जालसाजी का समावेश न कर लिया हो। ऐसे व्यक्ति जिस क्षेत्र में भी सम्पर्क बनाते हैं, उसमें थोड़े ही दिनों में अपनी प्रामाणिकता खो बैठते हैं और सर्वत्र घृणा, तिरस्कार, अविश्वास बरतने के कारण देर तक पैर जमाये रहने में असमर्थ हो जाते हैं। देखा भी जाता है कि चोर, उचक्के, जालसाज आये दिन अच्छी कमाई कर लेने पर भी खाली हाथ ही रहते हैं। अनाचार की कमाई देर तक ठहरती ही नहीं। वह अपव्ययों के, दुर्व्यसनों के अनेक नये रास्ते खोलकर उनसे होते हुए पलायन कर जाती है। अन्ततः ऐसे लोगों की अपनी इस भूल का पता चलता है कि अप्रामाणिकता का परिणाम वह नहीं होता जो आरम्भ में सोचा गया था। अब तक न कोई गलत कमाई करने वाला प्रतिष्ठित धनवानों में अपनी गणना करा सका है और न भविष्य में ऐसे लोगों को कोई चिरस्थायी सफलता हाथ लगने वाली है।

यह विचार विभ्रम का ही दुष्परिणाम है कि शालीनता का राजमार्ग छोड़कर लोग अनाचार पर उतरते हैं और बहुत पाने के, जल्दी बटोरने के लालच में अपनी साख गँवा बैठते हैं। अविश्वस्त लोगों को दरिद्रता और भर्त्सना का भाजन ही बने रहना पड़ता है। ऐसी दशा में लक्ष्मी उनके यहाँ टिके भी कैसे ? हराम का पैसा गुनाहों में खर्च होता है और प्रकृति के नियमानुसार भी बीमारी, मुकदमेबाजी, प्रतिशोध, ईर्ष्या, घृणा, तिरस्कारजन्य अन्यान्य अवांछनीय घटनाओं के माध्यम से वह सब कुछ गँवा बैठता है, जो अतिशय लालच के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वशीभूत होकर अवांछनीय अपनाकर किसी प्रकार संग्रह किया गया था।

धन के प्रति भी जिन्हें असाधारण मोह है, उन्हें भी यह ध्यान रखना चाहिये कि इस संदर्भ में बरती जाने वाली अधीरता घातक ही सिद्ध होती है। प्रामाणिक व्यक्ति ही उधार देन-लेन की सुविधा प्राप्त कर पाते हैं और कम पूँजी होने पर भी बढ़ा-चढ़ा कारोबार कर सकने में सफलता अर्जित कर लेते हैं। कुविचार ही आर्थिक क्षेत्र के अनाचारों में परिणित होते देख गये हैं।

सुलझे विचार-सुख का द्वार

मनुष्य का जीवन उसके विचारों का प्रतिबिम्ब है। व्यक्तित्व विकास एवं भाग्य निर्माण में इन्हीं की महती भूमिका होती है। सफलता-असफलता, उन्नति-अवनति, सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति आदि सभी मनुष्य के अपने विचारों पर निर्भर करते हैं। किसी भी व्यक्ति के विचार जानकर उसके जीवन के स्वरूप को सहज ही मालूम किया जा सकता है। मनुष्य को कायर-वीर, स्वस्थ-अस्वस्थ, प्रसन्न- अप्रसन्न कुछ भी बनाने में उसके विचारों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। स्पष्ट है कि विचारों के अनुरूप ही मानव जीवन का निर्धारण होता है। अच्छे विचार उसे उन्नत बनायेंगे तो उनकी निकृष्टता उसे गर्त में धकेलेगी।

विचार-चेतना क्षेत्र की एक विशिष्ट सम्पदा है। इसी के आधार पर मनुष्य जीवन का उपयोग करता, योजनाएँ बनाता और उन्हें पूरी करता है। विचारशील व्यक्ति सामर्थ्यवान माने जाते हैं। इसके विपरीत विचारहीनों की गणना नर-पशुओं में की जाती है। विचारक्षमता को बढ़ाने के लिए स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, सत्परामर्श आदि उपाय काम में लाये जाते हैं। यह उपाय साधन जिन्हें उपलब्ध नहीं होते वे कूपमण्डूक बने रहते हैं। वे जीवन का भार ढोने के अतिरिक्त और कुछ कर नहीं पाते। इसीलिए जहाँ चेतना की शक्ति पर विचार किया जाता है, वहाँ प्रकारान्तर से उसे विचार शक्ति का विशेष सुनियोजन किया जाना कहा जाता है। विचारशील ही महत्वपूर्ण योजनाएँ बनाते, महत्वपूर्ण कार्य करते और सफल महापुरुष कहलाते हैं।

विचारों को कभी चिन्तन क्षेत्र में घुमड़ते रहने और मस्तिष्क को कुछ काम देने वाली एक विशेषताभर समझा जाता था, परन्तु अब इसे भी विद्युत के समतुल्य ही प्रभावोत्पादक शक्ति माना जाने लगा है। यह न केवल शारीरिक हलचलों को जन्म देती है वरन् व्यक्ति, पदार्थ एवं वातावरण पर भी अपना प्रभाव डालती है और उन्हें बदलने तक में अपनी आश्चर्यजनक भूमिका सम्पन्न करती है। विचारों के विद्युत प्रवाह दूरस्थ व्यक्ति को उसी प्रकार प्रभावित करते हैं जैसा कि चाहा जाता है। जब मानव विचार एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक भेजे जाते हैं तो उसे ''टेलीपैथी'' या ''विचार संप्रेषण'' कहते हैं। विश्व के अनेक वैज्ञानिक एवं परामनो वैज्ञानिक इस क्षेत्र में अनुसंधानरत हैं।

प्रख्यात मनोविज्ञानी डा० अप्टान सिन्कलेयर ने अपनी पुस्तक ''मेण्टल रेडियो'' में बताया है कि मानवी मस्तिष्क में यदि उत्कृष्ट स्तर के विचार विद्यमान रहें तो वह उनका प्रसारण करता रह सकता है और अनेकों मस्तिष्कों को अपने जैसा सोचने वाला बना सकता है। विचारशील व्यक्तियों की एक और श्रेष्ठता होती है कि संसार में जो श्रेष्ठ विचार कहीं भी किसी के पास भी विद्यमान हैं, उन्हें आकर्षित कर वह अपने ज्ञान भण्डार को विस्तृत कर लेते हैं। परामनोविज्ञानी जैम्बिस मोनार्ड का भी कहना है कि ''आइडियोस्फियर'' अर्थात् विचारों के प्रभामण्डल में सभी प्रकार के विचार-प्रवाह निरन्तर गतिमान हैं। उनमें से अपने अनुकूल विचार तरंगों को आकर्षित किया और तदनुरूप लाभान्वित हुआ जा सकता है। साथ ही दूसरों तक प्रवाहित करके उन्हें अपनी इच्छानुरूप मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। वस्तुतः अपनी प्रबल चुम्बकत्व शक्ति के कारण ही विचार शक्ति सहायक साधनों को अपने अनुरूप वातावरण में से घसीट लाती है। इस विश्व-ब्रह्माण्ड में सब कुछ विद्यमान है। मनुष्य चाहे जिसका चुनाव कर सकता है और तदनुरूप उस ढाँचे में ढलकर अपना विकास या विनाश कर सकता है।

''साइकोलॉजी ऑफ रिलीजन'' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में मनोविज्ञानवेत्ता डा० यूथेस ने लिखा है कि मनुष्य की विचारणा जिस भी प्रयोजन में लग जाती है उसी में उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है। उसके मनःसंस्थान एवं अन्यान्य अवयव भी तदनुरूप ही कार्य करने लगते हैं। इसी तरह की मान्यता मनःशास्त्री डा० हेनरी लिडनहर की है। उन्होंने अपनी पुस्तक—''प्रैक्टिस ऑफ नेचुरल थेरैप्यूटिक्स'' में कहा है कि विचारों का स्वास्थ्य पर गहन प्रभाव पड़ता है। महापुरुषों अथवा महान सुद्गुणों के साथ एकात्मकता स्थापित करने से मनुष्य की अनेकानेक शारीरिक, मानसिक व्यथायें दूर हो जाती हैं। व्यक्तित्व को प्रभावोत्पादक बनाने में उत्कृष्ट विचारों की महान भूमिका होती है। विचारशक्ति ही कर्म की प्रेरणा देती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारों की छाया आचरण में प्रवेश किये बिना उभरे बिना रह नहीं सकती। निषेधात्मक चिंतन वाला व्यक्ति जहाँ जाता है, वहीं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तिरस्कार का भाजन बनता है। उसके मिलन की किसी को प्रसन्नता नहीं होती और चले जाने से न दुःख लगता है न आघात लगता है। उसकी निज के जीवन की समस्यायें ही इतनी उलझ जाती हैं, जिन्हें सुलझाते नहीं बनता और ऐसे ही परेशानियों में डूबता-उतरता है। जिनसे मन मिलता है उनके सामने अपनी विपन्नता का रोना रोने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बन पड़ता है। मानवी विचार चेतना के विपरीत प्रवाहों का ही यह परिणाम है कि आज पर्याप्त सुख-सुविधा, समृद्धि, ऐश्वर्य, वैज्ञानिक साधनों से युक्त जीवन बिताकर भी वह अधिक अशान्ति दुःख व उद्विग्नता से परेशान है। अँग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान लेखक डा० स्विफ्ट अपने प्रत्येक जन्म दिन पर काले और भद्दे कपड़े पहनकर शोक मनाया करते थे। वह कहते थे—''अच्छा होता यह जीवन मुझे न मिलता, मैं दुनिया में न आता।'' इसके ठीक विपरीत अन्धे कवि मिल्टन कहा करते थे—''भगवान का शुक्रिया है जिसने मुझे जीवन का अमूल्य वरदान दिया।'' नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने अन्तिम दिनों में कहा था—''अफसोस है—मैंने जीवन का एक सप्ताह भी सुख-शान्तिपूर्वक नहीं बिताया।'' जबकि उसे समृद्धि, ऐश्वर्य, सम्पत्ति यश आदि की कोई कमी नहीं रही। सिकन्दर महान भी अपने अन्तिम जीवन में पश्चाताप करता हुआ ही मरा। जीवन में सुख-शान्ति, प्रसन्नता अथवा दुःख, क्लेश, अशान्ति, पश्चाताप आदि का आधार मनुष्य के अपने विचार हैं—अन्य कोई नहीं। साधन सम्पन्न जीवन में भी व्यक्ति गलत विचारों के कारण दुःखी रहेगा और उत्कृष्ट विचारों से अभावग्रस्त जीवन में भी सुख-शान्ति, प्रसन्नता अनुभव करेगा।

संसार एक दर्पण है। इस पर हमारे विचारों की जैसी छाया पड़ेगी वैसा ही प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। इसके आधार पर ही सुखमय अथवा दुःखमय सृष्टि का सृजन होता है। संसार के समस्त विचारकों ने एक स्वर से उसकी शक्ति और असाधारण महत्ता को स्वीकार किया है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था—''मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही उसका जीवन बनता है।'' स्वामी विवेकानन्द के अनुसार—''स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं इनका निवास हमारे चिन्तन-चेतना में ही है।'' भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा था—''भिक्षुओ ! वर्तमान में हम जो कुछ हैं अपने विचारों के ही कारण हैं और भविष्य में जो कुछ भी बनेंगे वह इसी के कारण।''

शेक्सपियर ने लिखा है—''कोई वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है। अच्छाई और बुराई का आधार हमारे विचार ही हैं।'' ईसा ने कहा था—''मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही वह बन जाता है। प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक डेलकार्नेगी ने अपने अनुभवों पर आधारित तथ्य प्रकट करते हुए लिखा है कि—''जीवन में मैंने सबसे महत्वपूर्ण कोई बात सीखी है तो वह है विचारों की अपूर्व शक्ति और महत्ता। विचारों की शक्ति सर्वोच्च तथा अपार है।''

संक्षेप में जीवन की विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने में हमारे विचारों का ही प्रमुख हाथ रहता है। यद्यपि देखने में वह मस्तिष्क को बिना पर वाली रंगीली उड़ान भर मालूम होते हैं। मस्तिष्क को बिना पैसे का सिनेमा भर दिखाते रहते हैं। किन्तु यदि उन्हें उद्देश्यपूर्ण दिशा में ही प्रवाहित रहने की आदत डाली जाय तो वह दृष्टिकोण को परिष्कृत कर सकते हैं। जीवन जीने की संजीवनी विद्या जैसी कला में प्रवीण कर सकते हैं। व्यक्तित्व को इस स्तर का उभार सकते हैं, जिसे देवोपम कहा जा सके, जिसके साथ चिरस्थायी सुख शान्ति जुड़ी रहे।

विचारधारा का प्रगतिशील परिष्कार

छोटे बच्चे भूत-पलीतों की, परियों की, पशु-पक्षियों की कथा गाथाएँ चावपूर्वक सुनते हैं। कल्पनालोक में विचरण उन्हें बहुत सुहाता है। अनगढ़ विचार हवा के साथ उड़ने वाले पत्तों, तिनकों एवं रेतकणों की तरह उछाल भरते रहते हैं। अनियन्त्रित विचार जिन पर स्वछन्द कल्पनाएँ सवार रहती है, मस्तिष्क को व्यस्त तो बनाये रहते हैं पर उनसे किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती।

शेखचिल्ली की कहानी प्रसिद्ध है। उसने कल्पना के स्वेच्छाचारी घोड़े पर सवार होकर ऐसी मनगढंत कहानी गढ़नी शुरू कर दी थीं, जो न व्यावहारिक थी न संभव। अन्त में घाटा भी उठाना पड़ा और तिरस्कार भी सहना पड़ा। इतने पर भी देर तक उसका मन तो रंगीले दिवास्वप्नों में डूबे रहने का मनोविनोद मात्र ही तो करता रहा। कितने ही व्यक्ति भावावेश की अधिकता और व्यावहारिक अनुभव की कमी के कारण कई प्रकार की कल्पनाएँ-जल्पनाएँ करते रहते हैं पर समयक्षेप के अतिरिक्त पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। असफलताओं की खीज और सम्पर्क वालों का उपहास तिरस्कार ही उनके ऊपर लदता है।

एक और प्रकार की मानसिकता होती है, जिसमें शारीरिक आलस और मानसिक प्रमाद ही प्रेरणा स्रोत होता है। वे झंझटों से बचना चाहते हैं, जो हैं उसी में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संतुष्ट रहते हैं और ऐसा कुछ नहीं सोचते जिसमें परिवर्तन की बात उठती हो, कुछ नया सोचने कुछ नया करने की आवश्यकता पड़ती हो। किसी तरह दिन गुजारना, काम चलाना ही उन्हें पर्याप्त लगता है। ऐसे लोगों की, नर पामरों की बहुलता सर्वत्र देखी जाती है अन्यथा गई-गुजरी स्थिति में जीने वाले लोग अपने उत्कर्ष—अभ्युदय की बात सोचते और संकल्प उभारते हुए, योजना बनाते हुए, परिपक्व पुरुषार्थ के सहारे कुछ न कुछ कर गुजरते और अनगढ़ स्थिति से उबरकर कहीं से कहीं जा पहुँचते। लम्बे समय से पिछड़ी हुई परिस्थितियों में पड़े रहने का एक ही कारण है कि परिवर्तन के लिए उत्साह न उभरना। प्रयासों में उत्कर्ष की पक्षधर प्रेरणाओं का समावेश न होना। यदि ऐसा न रहा होता तो कोई कारण नहीं कि संसार का अकाट्य नियम ''अग्रगमन'' इस प्रकार कुंठित होकर न पड़ा रहता।

विचार एक प्रकार की हलचल है। शरीर के भीतरी सभी अंग-अवयव निरन्तर गतिशील रहते हैं। बाहर से भी इन्द्रियों की कुछ न कुछ क्रिया होती ही रहती है। मनःसंस्थान की भी अपनी हलचलें हैं, जो विचारों के रूप में जानी जाती हैं। यह सार्थक भी हो सकते हैं और निरर्थक भी। उनके पीछे योजनाएँ भी रह सकती हैं और बेतुकी हरकतें हलचलें भी। कई बार उपयोगी सृजनात्मक विचार भी उठ सकते हैं और कई बार पतनोन्मुख, ऐसे भी जो अपने और दूसरों के लिए मात्र अनर्थ ही प्रस्तुत करें। ऐसे दोनों ही प्रकार के विचार सशक्त स्तर के होते हैं। इसलिए उनकी प्रेरणा शक्ति के नाम से जानी जाती है। किसी दिशा में प्रगति भी उसी आधार पर होती है और भले-बुरे स्तर की प्रतिभा के निखरने का आधार भी उसी के सहारे बढ़ता, परिपक्व होता है।

अन्तिम-निर्णय अपनी बुद्धिमता पर निर्भर रहता है। यदि वह कुत्साग्रस्त हुई तो उस मार्ग को अपनाती है, जिसमें तत्काल अधिक लाभ मिलने की संभावना प्रतीत होती है। भले ही कुछ समय उपरान्त उसके भयानक दुष्परिणाम सामने आवें। अनाचारी, अतिवादी, अपराधी, दुर्व्यसनी इसी मन को अपनाते हैं। तात्कालिक लाभ उसकी दुर्बुद्धि का समर्थन ही करता है पर यह नहीं समझा जाता है कि अनैतिक को अपनाकर जो सफलता हस्तगत की जाती है। वह कुछ ही समय ही उपरान्त व्यक्तित्व की प्रामाणिकता समाप्त कर देती है और भविष्य की सुखद संभावनाओं का द्वार स्थायी रूप से बन्द कर देती है। ''जाल में फँसने वाली चिड़ियाँ, मछलियाँ ऐसे ही अदूरदर्शी लालच के फेर में पड़कर बहेलियों के हाथ पड़ती, और अपना सर्वनाश करती हैं। यह विचारों की अधोगामिता का ही प्रतिफल है। कितने ही तथाकथित समझदार, सुशिक्षित भी इसी मार्ग पर चल पड़ते हैं, उन्हें नीतिमत्ता की गरिमा और उसे अपनाने पर उपलब्ध होने वाली सुखद संभावना का ज्ञान नहीं होता। इस विडम्बना को ''समझदारों की नासमझी'' ही कह सकते हैं। फुलझड़ी घुमाकर हाथ जला लेने वाले प्रायः इसी स्तर के अदूरदर्शी होते हैं।

प्रतिभा के पीछे आस्थाएँ और मान्यताएँ काम करती हैं। किसी भले-बुरे तथ्य पर सघन विश्वास जमा लेना एक संकल्प शक्ति का प्रवाह उत्पन्न करता है। जिसमें कुछ कर गुजरने की क्षमता होती है। तस्कर, लुटेरे, ठग, आततायी प्रायः इसी प्रकार की निकृष्ट स्तर की प्रतिभा से सम्पन्न होते हैं। दुस्साहस भी उनका बढ़ा-चढ़ा होता है। यदि इसका अभाव रहता तो वे आगा-पीछा सोचते और करने न करने की उधेड़बुन में फँसे रहते। साहसिक पुरुषार्थ करने की क्षमता जिस आधार पर उत्पन्न होती है, उसे भी प्रतिभा कहते हैं, भले ही वह अनैतिक या अनर्थ मूलक ही क्यों न हो ?

प्रतिभा का उज्ज्वल पक्ष वह है, जिसमें व्यक्ति मानवी गरिमा के स्तर को अक्षुण्ण बनाये रहने को सर्वोपरि महत्व देता है। आदर्श अपनाने पर श्रेष्ठ, वरिष्ठ बनने की उमंग आती रहती हैं। वैसा ही कुछ कर गुजरने की योजना बनती है और उस राह पर चल पड़ने की तैयारी होने लगती है। उसके सामने ऐसे लोगों के जीवन-चरित्र एवं संस्मरण सामने रहते हैं, जिन्होंने उत्कृष्टता के पक्षधर विचारों को अपनाया। उन्होंने अपने स्तर को बढ़ाने और प्रगति-पथ पर चल पड़ने का राजमार्ग पाया।

आमतौर पर अपने स्वास्थ्य, धन और क्षमता सम्वर्धन के क्षेत्रों पर ध्यान रखा जाता है। कहीं कोई छेद नहीं उभर रहा है। समर्थता का अपव्यय तो नहीं रहा है इसके लिए अपनी अपनी मनःस्थिति के अनुरूप सभी ध्यान रखते हैं। प्रत्यक्ष को बनाने और बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है पर वह भुला दिया जाता है कि समय एवं चिन्तन जैसी सर्वोपरि सम्पदा का सही नियोजन हो रहा है या नहीं। इन दोनों का अपव्यय उससे कहीं अधिक घातक है जितना कि वैभव को क्षति पहुँचने पर होता है। इन दोनों में भी विचारों के सदुपयोग, दुरुपयोग का महत्व सर्वोपरि है। यदि चिन्तन प्रवाह गड़बड़ाने लगे तो स्थिति अर्धविक्षिप्त जैसी बन जाती है। अनगढ़ स्थिति में लोग मात्र इसी एक कारण में पड़े रहते हैं कि उन्हें प्रगति-पथ पर चलने की आकांक्षा जगा सकने का अवसर नहीं मिलता। वे यह नहीं सोचते कि अबकी अपेक्षा भविष्य में अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारों में क्या परिवर्तन करना चाहिए और तदनुरूप अवसर ढूँढ़ने के लिए क्रियाकलाप को किस दिशा में मोड़ना-मरोड़ना ,धकेलना चाहिए ?

बीज आधारभूत कारण है, वृक्ष उसका प्रगति परिणाम। विचारों की प्रगतिशीलता, उमंग भरी साहसिकता उस बीज के समान है जो मनुष्य में उमंग उभारती, उकसाती और ऐसा कुछ करने के लिए बाधित करती है जो अब की अपेक्षा भविष्य को अधिक सुन्दर, समुन्नत, व्यवस्थित एवं अग्रगामी बना सके। इस तथ्य को समझ लेना और आधार को अपना लेना उन्नतिशील भविष्य के निर्माण का सुनिश्चित मार्ग है।

प्रवृत्तियों का विवेकपूर्वक उपयोग करें

मनुष्य के अन्दर कई प्रकार की वृत्तियाँ कार्य करती हैं। उपयोगी भी और अनुपयोगी भी, भली भी, बुरी भी। वे अनगढ़ एवं अव्यवस्थित हैं। उन्हें सुगढ़, परिष्कृत और सुसंगत करना आवश्यक है। व्यक्तित्व का विकास इस परिष्कार प्रक्रिया पर ही निर्भर करता है। जो जितने अंशों में इन्हें परिष्कृत, सुसंगत कर लेता है, उतने अंशों में उसका व्यक्तित्व आकर्षक एवं श्रेष्ठ बन जाता है। प्रवृत्तियाँ दानवी स्तर की भी हैं और मानवी स्तर की भी। उनमें देवत्व के तत्व भी विद्यमान हैं और नर-पिशाच बनने के बीज भी। इनमें किसे कितने अंशों में उभारा जाये? किसे संयमित किया जाये? यह परिस्थितियों के ऊपर निर्भर करता है। इसके लिए विवेक का प्रयोग आवश्यक है अन्यथा उचित समय एवं परिस्थितियों के अध्ययन का विवेक न हो तो उपयोगी वृत्तियाँ भी हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं।

समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप हँसना, प्रसन्न रहना, उत्तेजित होना, क्रोध करना, साहस एवं शौर्य का प्रदर्शन करना, परामर्श देना, दया सिखाना, दूसरों के दुःखों में हिस्सा बटाना, सहयोग करना, दुःखी होना, रोना, पढ़ना, श्रम करना सभी आवश्यक है। किस समय किसको अपनाना चाहिए इसकी विवेक बुद्धि बने रहने से प्रत्येक वृत्ति उपयोगी एवं व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सकती है। यदि विवेक न हो एवं परिस्थितियों का ध्यान न हो तो वही वृत्ति अवगुण का रूप ले सकती है और सहायक के स्थान पर दुश्मन सिद्ध हो सकती है।

हँसना, मुस्कराना, प्रसन्न रहना अच्छी बात है। शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक भी है। पर समय-कुसमय का ध्यान न हो, प्रस्तुत प्रसंग पर विचार न किया जाय तो इसका बुरा प्रभाव सामने वालों के ऊपर पड़ता है। गम्भीर प्रसंगों में गम्भीरता बनाए रखना भी उतना ही आवश्यक है। समयानुसार दुःख प्रकट करना भी जरूरी है। निकटवर्ती, सम्बन्धी, मित्रों के दुःखों में यदि संवेदनायें न व्यक्त की जायँ तो वहाँ भी हँसने-मुस्कराने की वृत्ति का परिचय दिया जाय तो उल्टी प्रतिक्रिया सामने वाले पर पड़ सकती है। कई व्यक्ति दूसरों की गलतियों पर भी हँसते देखे जाते हैं। इससे सामने वाले का आक्रोश उभरता तथा व्यंग्य कसने, दयनीय स्थिति पर हँसने वाले को अपना दुश्मन मान बैठता है। अपनी इस छोटी-सी भूल से मित्र भी बैरी बन जाते हैं। महाभारत की कथा प्रख्यात है। भ्रमवश जल को थल मानकर दुर्योधन के गिर पड़ने तथा द्रौपदी द्वारा हँसकर अंधे के अंधे शब्द कहने मात्र से इतिहास का सबसे बड़ा युद्ध महाभारत खड़ा हो गया। अपनी वृत्तियों पर विवेक के अंकुश के अभाव से लाखों व्यक्ति महाभारत युद्ध की बलिवेदी पर चढ़े। उपहास करने की इस प्रकार की प्रवृत्ति अनेकों व्यक्तियों में पाई जाती है। पर जहाँ किसी के स्वाभिमान पर आघात पहुँचता हो ऐसा उपहास सदा संकट का कारण बनता है। कब, कहाँ और किस सीमा तक प्रसन्नता व्यक्त की जाय, यह विवेक बुद्धि रहनी आवश्यक है। परिस्थितियाँ क्या हैं और दूसरों पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यह भी ध्यान देने योग्य है।

दुःखी होने के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। दूसरों के दुःख, पीड़ा, कष्ट के अवसरों पर द्रवित होना अपनी संवेदनाएँ व्यक्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यथासम्भव सहयोग के लिए प्रयत्नशील भी रहना चाहिए पर उनसे इतना अधिक प्रभावित नहीं होना चाहिए कि अपना ही संतुलन बिगड़ जाय। इससे तो दुहरी हानि होगी। असन्तुलन की स्थिति में सहयोग करते तो बनेगा नहीं उल्टे अपनी मनःस्थिति अस्त-व्यस्त होगी। कितने व्यक्ति किसी स्नेहपात्र के बिछुड़ जाने, दिवंगत हो जाने, आर्थिक विपन्नता आ जाने अथवा किसी से वाद-विवाद हो जाने पर अपना सन्तुलन खो बैठते हैं। बीती घटनाओं को अपने अनुकूल नहीं बनाया जा सकता, न ही दिवंगत हुए व्यक्तियों को वापस बुलाया जा सकता है। इन अवसरों पर अपनी सहज संवेदना व्यक्त करना तो आवश्यक है पर वह अनियन्त्रित न हो। प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए सदा दुःखित बने रहने से भी कोई समाधान नहीं निकलता। इसके लिए तो प्रचण्ड पुरुषार्थ करना होता है।

आवश्यकता नियंत्रण एवं सदुपयोग करने की है। वे अनगढ़ हैं। वृत्तियों में भली-बुरी का विचित्र सामंजस्य है पर उपयोगिता दोनों ही की है। क्रोध को निन्दित ठहराया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया है किन्तु हर परिस्थितियों में नहीं स्वाभिमान की रक्षा के लिए, शौर्य जाग्रत करने के लिए क्रोध करना भी आवश्यक है। अवांछनीयताओं से लड़ने के लिए 'मन्यु' न हो तो असामाजिक तत्व हावी हो जायेंगे तथा सदा क्षति पहुँचाते रहेंगे। उचित कारणों पर विवेकसंगत क्रोध व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए लाभप्रद है।

नियन्त्रण के अभाव में तो हर प्रवृत्ति हानिकारक ही सिद्ध होगी। 'कामवृत्ति' को ही लें तो पता चलता है कि यह प्रकृति प्रदत्त प्राणियों की एक सहज प्रवृत्ति है। प्राणियों की रेस बनाए रखने के लिए परमात्मा ने दी है। जीवों की वंश परम्परा न टूटे, सहकारिता बनी रहे इस दृष्टि से 'काम' का भी अपना महत्व है। पर जब यह उच्छृंखल होकर कामुकता का रूप ले लेती है तो व्यक्ति एवं समाज दोनों ही के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। कामशक्ति का दुरुपयोग शारीरिक अस्वस्थता एवं मानसिक दुर्बलता लेकर आता है। अस्वस्थ शरीर एवं निर्बल मन द्वारा कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सकता। सुसंयत एवं नियन्त्रित रहने पर स्वास्थ्य एवं मनोबल का संवर्धन होता है।

ईश्वर प्रदत्त कोई भी वृत्ति अपने में बुरी नहीं है। सभी उपयोगी एवं मनुष्य के लिए कल्याणकारी हैं। अनुपयोगी तो दुरुपयोग के कारण होती हैं। निन्दनीय हेय तो उस स्थिति में ठहराई जाती हैं- जब उनसे व्यक्ति एवं समाज को हानि होने लगती है। यह स्थिति विवेक के अंकुश न रहने से आती है।

उदारता को श्रेष्ठ मानवीय गुण ठहराया गया है। आदान-प्रदान एवं सहयोग की प्रवृत्ति पर समाज की सुव्यवस्था गतिशील रहती है। जो समर्थ एवं सम्पन्न हैं उनके अनुदान समाज में पीड़ित एवं अभावग्रस्त व्यक्तियों को मिलने चाहिए पर कभी-कभी विवेक का अंकुश न रहने पर कितने चालाक एवं धूर्त किस्म के व्यक्ति ऐसे उदारपूर्ण व्यक्तियों से अवांछनीय लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

भाव संवेदनाएँ मानवी गरिमा की मेरुदण्ड हैं। यह सुसंयम ही मनुष्य एवं समाज के लिए विशेष लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। पर भावातिरेक से तो अनेकों हानियाँ हैं। उचित, अनुचित के बीच विवेक बुद्धि न रहने तथा भावावेश में व्यक्ति एवं घटनाओं से प्रभावित होकर उनके प्रवाह में बह जाने से तो संकट उपस्थित हो जाते हैं। परोपकार, करुणा, दया, सेवा की वृत्तियों से भरे-पूरे होने पर ही मानवी गरिमा सुशोभित होती है। पर इनके उपयोग को विवेक-बुद्धि परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए। अन्यथा चालाक, धूर्त किस्म के लोग व्यक्तियों की भावना को उभार कर अपना उल्लू सीधा करते देखे जाते हैं।

मनुष्य को जन्मजात मिली प्रत्येक वृत्ति उपयोगी है किसको, कब, किस सीमा तक उभारा एवं प्रयोग किया जाय इस पर ही उनकी उपयोगिता निर्भर करती है। उन्हें संयमित एवं परिष्कृत करने की आवश्यकता है।

कल्पना लोक की रंगीनियों में न खोयें

कल्पना शक्ति की क्षमता सर्वविदित है। क्रिया से पूर्व कल्पना न हो तो कार्य की सफलता संदिग्ध बनी रहती है। छोटे-बड़े हर कार्य के लिए यह जितना उपयोगी है, उतना ही हानिकारक इसकी अतिशयता है। काल्पनिक जगत में सैर करना मनोरंजक तो होता है, किन्तु इससे न तो व्यक्ति का जीवन विकास संभव है, न कोई कहने लायक उपलब्धि ही। उल्टे समय और शक्ति नष्ट करते रहने से प्रतिगामिता पल्ले बँधती और दीन-हीन स्थिति सामने आती है।

कल्पना करना बुरी बात नहीं है, पर हर वस्तु की तरह उसकी भी एक सीमा है। उस सीमा के अन्तर्गत ही यह सार्थक-सोद्देश्य होती है और तदनुरूप परिणाम उत्पन्न करती है। वैसे तो कल्पना दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग है, मगर वहीं तक यह आवश्यक और लाभकारी है, जहाँ तक हम उसे साकार रूप प्रदान कर सकें। यदि हमारी क्षमता और स्थिति वैसी नहीं कि हम उन्हें कार्य रूप में परिणति कर सकें, तो ऐसी कल्पनायें निरर्थक ही नहीं, हर प्रकार से कष्टकारी-अनिष्टकारी साबित होती हैं। फिर यह कल्पनायें, कल्पनाएँ न रहकर हवाई उड़ान बनती और शेखचिल्ली का खयाली पुलाव साबित होती हैं। शेखचिल्ली की स्थिति वैसी थी नहीं, जैसी वह जीवन में बनने-करने की सोचा करते थे, किन्तु फिर भी उनकी योजनायें चलती रहतीं और हर समय वे दिवा-स्वप्न में खोये रहते।

एक दिन शेखचिल्ली मर्त्तबान में मधु सिर पर रखकर बाजार बेचने जा रहे थे और सोचते जा रहे थे कि इनसे पैसे मिलेंगे उनसे और मधुमक्खियाँ पालूँगा। फिर उनसे जो आय होगी, उससे एक छोटी दुकान खोलूँगा। धीरे-धीरे दुकान का विस्तार कर उसे बड़ा बनाऊँगा। अन्त में एक बड़ी दुकान का मालिक बन जाऊँगा। इससे जो आमदनी होगी, उससे एक भव्य महल खड़ा करूँगा। बीबी-बच्चे होंगे। उन्हें पढ़ा-लिखा कर बड़ा आदमी बनाऊँगा, फिर आराम की जिन्दगी गुजारूँगा। ऐसा सोचकर उनने ज्यों ही अँगड़ाई ली, संतुलन बिगड़ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से मर्त्तबान जमीन पर गिर पड़ा और सारा मधु चारों ओर गिर गया। उनका सारा सपना चकनाचूर हो गया।

बेसिर-पैर की अनावश्यक कल्पनाओं का ऐसा ही अन्तः परिणाम होता है। अतः सामान्य जीवन में अपनी स्थिति और परिस्थिति को देखते हुए ही कल्पनाएँ और योजनाएँ बनाने में भलाई है। जब कल्पनाएँ औकात से बहुत आगे की बात सोचने और सुन्दर-सुन्दर योजनाएँ बनाने लगती हैं, तो इनकी रंगीनियों में खोकर व्यक्ति को मजा आने लगता है एवं सदा इसी दुनिया में बना रहना चाहता है। यह जानते हुए भी कि वास्तविक जगत में इन सपनों से ही कोई कार्य तब तक सिद्ध नहीं होता, जब तक इसके लिए प्रयत्न-पुरुषार्थ न किये जायें, फिर भी वह मन की इस वृत्ति को त्यागने की कोशिश नहीं कर पाता और जाने-अनजाने समय और विचार रूपी बहुमूल्य सम्पदा गँवाता रहता है।

प्रगति की बात सोचना बुरा नहीं है। वह बुरा तो तब हो जाता है, जब व्यक्ति मूल प्रयोजन को भूलकर कल्पना लोक को ही यथार्थ मान बैठता है और उसी में विचरण करने लगता है। यह सही है कि कार्य सम्पादन से पूर्व योजना निर्धारण आवश्यक होता है, किन्तु यदि कोई जीवन भर योजनाएँ ही बनाता रहे, अच्छी-अच्छी बातें ही सोचता रहे, उनके क्रियान्वयन की ओर ध्यान न दे, तो क्या वह अपने जीवन में सफल हो सकेगा ? तब तो वह उल्टे पिछड़ा कहलायेगा और आलसी-अकर्मण्य बना रहने का दोष सिर मढ़ा जायेगा। सफल-समुन्नत जीवन जीने के लिए व्यक्ति को कल्पना लोक में नहीं वास्तविक संसार में रहना पड़ता है और चिन्तन के साथ-साथ उसके क्रिया रूप की बात भी सोचनी पड़ती है। इसी में हर किसी की प्रगति-समृद्धि निहित है।

नशीली दवाओं का सेवन करने वालों की स्थिति ऐसी हो जाती है कि उन्हें हर वक्त रंगीन सपने दिखाई पड़ते हैं, जिससे वे इस आनन्द की दुनिया से पृथक् होना नहीं चाहते। कल्पनाशीलों की स्थिति भी ऐसी ही होती है। वे हर समय कल्पना की दुनिया में उड़ानें भरते और उसी में खोये रहते हैं। यह कल्पना का अतिरेक हुआ, जो व्यक्ति को अकर्मण्य जैसी अवस्था में पहुँचा देता है, पर सामान्य स्थिति में कल्पनाशील व्यक्ति सृजनशील होता है। इन्जीनियरों को मशीनों के मॉडेल तैयार करने से पूर्व कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। चित्रकार यदि कल्पना जगत की यात्रा न करें, तो वह सुन्दर-सुन्दर चित्र कदापि नहीं बना सकते। अच्छा निबन्ध लिखने के लिए साहित्यकार को उसकी काल्पनिक रूपरेखा तैयार करनी पड़ती है। भवन निर्माताओं को निर्माण कार्य से पहले इमारत का कल्पना चित्र बनाना पड़ता है, तब कहीं जाकर सृजन-कार्य आरम्भ हो पाता है। बरतन, उपकरण, खिलौने, यान, उपग्रह, रॉकेट सभी के निर्माताओं को इसी प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। तात्पर्य यह कि क्रियान्वयन से पूर्व अधिकांश कार्य मस्तिष्क में कल्पना रूप में उभरते हैं, तभी उनका सफल सम्पादन हो पाता है। यदि इसकी उपेक्षा कर दी जाय, तो कार्य आधे-अधूरे, काने-कुबड़े ही हो पावेंगे, क्योंकि तब किसी प्रकार का मानसिक प्रारूप न बन पड़ने की स्थिति में कार्य में सुधार-परिवर्तन की तनिक भी गुंजाइश न रह जायेगी और उसे सीधे कार्य रूप में परिणति करना पड़ेगा, किन्तु इससे बड़ी कठिनाई तब एक और पैदा होगी, वह यह कि इस दशा में फिर किसी प्रकार मॉडेल तैयार कर सकना संभव ही नहीं हो पायेगा। यदि हुआ भी तो अनेक प्रयत्नों के बाद भी वह निम्नस्तरीय ही होगा और परिष्कृत रूप तैयार करने में अनेकानेक सुधार, परिवर्तन और वर्ष अपेक्षित होंगे। इस प्रकार अत्यधिक समय, श्रम और सम्पदा गँवाने के बावजूद भी वस्तु स्तरीय नहीं बन पायेगी और अपनी आदिम अवस्था के आस-पास ही पड़ी रहेगी। उसमें उन्नयन-विकास अत्यन्त मन्द गति से होगा।

यह सत्य है कि सदा कल्पना की उड़ानें भरते रहने में न तो व्यक्ति का कल्याण है, न समय और समाज का। कार्य को क्रियान्वित करने के लिए निस्संदेह कल्पना आवश्यक है, पर वह उसी स्तर पर, उसी परिमाण में होनी चाहिए, जितने से कार्य का श्रेष्ठ निष्पादन हो जाय। अनावश्यक कल्पना-जल्पना में उलझे रहने से हम प्रगति के उन अवसरों को भी गँवाते चले जाते हैं, जो हमें जीवन में प्राप्त होते हैं, साथ ही मानसिक शक्ति को नष्ट करते रहते हैं। अस्तु, विवेकशीलता इसी में है कि हम सदा सामान्य धरातल पर रहते हुए क्रिया के अनुरूप कल्पना को महत्व दें। न तो अनावश्यक कल्पना में डूबें न कल्पना लोक की रंगीनियों में खोयें।

निरर्थक नहीं, सारगर्भित कल्पनायें करें

मन ही मन लम्बी-चौड़ी योजना बना लेना जितना सरल है उतना सरल उनको मूर्तिमान करना नहीं है। जहाँ कल्पना में नित्य ही बीसियों योजनायें बनकर सरलता पूर्वक कार्यान्वित हो सकती हैं, वहाँ यथार्थ में किसी योजना का एक अंश भी सफल होना मुश्किल हो जाता है। उसके लिये वह कार्य क्षमता, वह सहिष्णुता और वह दक्षता, जो किसी कार्य को करने के लिए आवश्यक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती है, कल्पना-शील व्यक्ति में नहीं होती है। उसकी सारी शक्ति ही काल्पनिक योजनाओं में विनिष्ट होती रहती है।

यह बात गलत नहीं है कि संसार के किसी भी सृजन की योजना पहले विचार क्षेत्र में बनती, उसकी कल्पना ही मस्तिष्क में उठती है, उसके बाद वह बाह्य क्षेत्र में व्यक्त होती है। किन्तु मस्तिष्क के वे विचार यों ही अपने आप अभिव्यक्त अथवा मूर्तिमान नहीं हो जाते। उनके लिये ठोस कार्य करना होता है। पसीना बहाना और संघर्ष करना होता है। अपने में इतनी सहिष्णुता तथा धैर्य उत्पन्न करना होता है, जिससे कि असफलता के प्रभाव से बचा जा सके।

संसार के सारे महापुरुष जिन्होंने बड़े-बड़े काम करके दिखलाये हैं, कल्पनाशील रहे हैं। यदि इनके मानस में अपनी योजना न बनती, आगामी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार न होती हो तो वे व्यवस्थित रूप से किस प्रकार काम कर सकते। पहले योजना ही बनती है, उसकी रूपरेखा तैयार होती है और तब उसके अनुसार कदम-कदम चल कर लक्ष्य तक पहुँचना होता है। यदि ऐसा न किया जाये और बिना सोचे-विचारे किसी ओर चल पड़ा जाये तो यह गलती ही होगी। जिस गति का कोई लक्ष्य नहीं, कोई उद्देश्य अथवा निश्चित मार्ग नहीं उसकी यात्रा तो व्यर्थ ही होती है। किन्तु वे महापुरुष केवल काल्पनिक अथवा मनोरथी भर ही न थे। विचार के साथ कार्य का समुचित समन्वय करना भी जानते थे। बैठे-बैठे विचार करते रहने अथवा योजनाओं के मानस चित्र बनाते रहने की जगह वे ज्यों ही कोई विचार दृढ़ कर लेते थे, उसको कार्यान्वित करने के लिये जी जान से जुट पड़ते थे। एक विचार अथवा योजना का एक अंश पूरा करने के बाद ही वे दूसरा विचार मस्तिष्क में लाया करते थे।

निर्माण का आधार क्रिया ही है, केवल विचार नहीं। शिल्पी का विचार उसे किसी मूर्ति का एक रूप ही देता है। किन्तु उसको यथार्थ में उसके हाथ तथा औजार ही लाते हैं। यदि वह अपनी मानसिक मूर्ति को देख-देखकर ही संतुष्ट होता रहे और अपने को शिल्पी मानता रहे तो इससे संसार का क्या काम चल सकता है, वह अपने के लिये शिल्पी अथवा कलाकार हो सकता है, संसार के लिए वह कुछ नहीं होता है। संसार तो उसका मूल्यांकन उसकी उस रचना के आधार पर करेगा। जिसका निर्माण वह यथार्थ के ठोस धरातल पर पत्थर से करेगा, कोई अपनी कल्पनाओं, इच्छाओं तथा मनोरथों में कितना महान है इसका सम्बन्ध संसार से नहीं रहता। संसार तो उसे उस रूप में जानता है जो रूप वह अपनी रचना द्वारा उसके सामने उपस्थित करता है।

क्रिया का आधार विचार ही होते हैं, किन्तु मनुष्य के सारे विचार इस कोटि में नहीं आते। बहुत-से विचार व्यर्थ तथा निरुपयोगी होते हैं। यों तो मनुष्य के अन्तःकरण में विचारों का वृहत् भण्डार भरा है। वे क्षण-क्षण पर उत्पन्न तथा विनष्ट होते रहते हैं। ऐसे क्षण-क्षण पर उठने वाले और बिगड़ने वाले विचार सृजनात्मक नहीं होते। सृजनात्मक विचार केवल वही होते हैं, जिनका मनुष्य की आत्मा से गहरा सम्बन्ध रहता है। जो किसी परिस्थिति से प्रभावित होकर बदलते नहीं और अभिव्यक्ति पाने के लिए हृदय में उथल-पुथल मचाये रहते हैं और जब तक उन्हें सृजनात्मक मार्ग पर लगा नहीं दिया जाता चैन से नहीं बैठने देते। ऐसे प्रौढ़ तथा परिपक्व विचार बहुसंख्यक नहीं होते। मनुष्य के नित्य-प्रति उठने वाले विचारों में ही कोई एक-आध विचार ही इस कोटि का होता है। जिस विचार के पीछे एक उत्कंठा, लगन तथा व्यग्रता काम कर रही हो, जिसमें प्रेरणा तथा सृजन का आन्दोलन चल रहा हो, वही विचार मनुष्य का मूल विचार होता है। अन्य सारे विचार तो मानस की साधारण तरंगें होती हैं, जो हवा के रुख पर बनती-बिगड़ती रहती हैं। उनका न तो कोई मूल्य महत्व ही होता है और न उन सबको मूर्तिमान ही किया जा सकता है।

मनुष्य को चाहिए कि वह विचारों की भीड़ में से अपने इस मूल तथा स्थायी विचार को परखकर अलग कर ले, उसी को विकसित करे और उसी के आधार पर जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उसे मूर्तिमान करने में लग जाये। क्षण-क्षण पर उठने वाले विचारों के माया-जाल में पड़ा रहने वाला जीवन में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। बहुधा मनुष्य किसी का अध्यात्मिक प्रवचन सुनकर प्रभावित हो जाता है और मोक्ष प्राप्ति की ओर विचार करने लगता है, कभी किसी राजनीतिज्ञ की उक्तियाँ सुनकर प्रभावित होता और राजनीति में बढ़ने का विचार करने लगता है। कभी किसी का कारोबार देखकर व्यापारी बनने की सोचता है तो किसी की रचना देखकर चित्रकार, साहित्यकार अथवा शिल्पी बनने की इच्छा करने लगता है। इस प्रकार के अनुक्षण आने वाले विचारों को विचारों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। यह केवल बाह्य प्रभाव अथवा विकार ही होते हैं, इनमें कोई मौलिकता नहीं होती। मौलिक विचार वही होता है जो अपनी आत्मा की प्रेरणा से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रबुद्ध होता है, और मूर्तिमान होने के लिए मस्तिष्क में आन्दोलन संचार करता है।

अनेक बार लोगों में मौलिक विचार नहीं भी होते। किन्तु उन्हें जीवन में कुछ कर जाने की इच्छा जरूर होती है। ऐसी दशा में वह यह नहीं समझ पाता कि वह क्या करे अथवा उसे क्या करना चाहिये, ऐसी दशा में विचार उधार भी लिये जा सकते हैं अथवा यों कह लिया जाये कि दूसरों से ग्रहण किये जा सकते हैं। दूसरे विचार-ग्रहण करने में एक सावधानी यह रखनी होगी कि कोई ऐसा विचार ग्रहण न किया जाये, जो अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुरूप न हो। मान लीजिए किसी की प्रवृत्ति तो स्वाभाविक है और वह किसी की सफलता अथवा उन्नति देखकर विचार-ग्रहण कर लेता है। राजनीतिक और जीवन में नेता बनने की सोचने लगता है, तो वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सकेगा। उसकी प्रवृत्तियाँ क्षण-क्षण पर उसका विरोध करती रहेंगी। उसकी क्रियायें अपनी पूर्ण क्षमता के साथ आगे नहीं बढ़ सकतीं। कोई कार्य सफल तभी होता है, जब उसके साथ तन-मन तथा मूल प्रवृत्तियों का भी सहयोग हो। केवल क्रिया ही कोई सफलता ला सकती है, यह सम्भव नहीं।

किसी को अपना जीवन लक्ष्य बनाने के लिये किसी से कौन-सा विचार ग्रहण करना चाहिये? इसी परख के लिये आवश्यक है कि वह विचार सुने और उनमें से अच्छे-अच्छे जो सबसे अधिक आकर्षक लगें अपने पास इकट्ठे कर ले और बाद में उनको अपनी बुद्धि तथा प्रवृत्तियों की तुलना पर बार-बार तोलता रहे। जिस विचार के साथ उसकी प्रवृत्तियों का सबसे अधिक तालमेल बैठे उसी को स्थायी रूप से ग्रहण कर लेना चाहिए और सब विचारों को छोड़ देना चाहिए। किन विचारों से किसका तालमेल सबसे अधिक होता है? यह समझ सकना कोई मुश्किल नहीं। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ अपने सामंजस्य अथवा असामंजस्य को बड़ी जल्दी प्रकट कर देती हैं। इस परख के लिये एक उपाय यह भी है कि जिस ग्रहण किये विचार के साथ उसकी स्वयं की विचारधारा मिलकर बह चले, वह विचार भी उसी लिये ग्राह्य है। अर्थात् जिस ग्रहीत विचार को हमारा अन्तःकरण सरलतापूर्वक विकसित एवं पल्लवित कर सकता है, उसमें शाखाएँ-प्रशाखायें उत्पन्न कर सकता है, उसे अपने चिन्तन के बल पर रूपान्तर कर सकता है, सर्वथा ग्राह्य है।

लक्ष्य बनाने लिए किसी से विचार ग्रहण करते समय एक यह बात भी विचारणीय है कि जिस विचार को हम ग्रहण कर रहे हैं, साथ ही हमारी मूल-प्रवृत्तियों से जिसका सामंजस्य भी है, क्या उसके अनुसार हमारी क्षमता अथवा परिस्थितियाँ भी हैं अथवा नहीं। मानिए हम एक विचार ऐसा ग्रहण कर लेते हैं, जिसका सम्बन्ध एक विशाल आध्यात्मक साधना से है और उसको सफल करने के लिये बहुत बड़े संयम अथवा त्याग की आवश्यकता है, हमारी प्रवृत्ति भी उसके अनुकूल है। किन्तु परिस्थिति इस योग्य नहीं है कि सब कुछ त्यागकर साधना में लग जाया जाय। घर गृहस्थी, कारोबार और छोटे-छोटे बच्चों का उत्तरदायित्व का भार सिर पर है, जिसका त्याग करने से बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। परिवार तथा बच्चों का भविष्य अन्धकारमय में हो सकता है, तो वह विचार ग्राह्य होते हुये भी अग्रहणीय हैं। इसको क्रियान्वित करने के लिये समय की प्रतीक्षा करनी होगी और तब तक करनी होगी, जब तक परिस्थिति उसके अनुकूल न हो जाये। विचार-ग्रहण करके उसे अपनी आत्मा में सँजो लेना होगा और धीरे-धीरे अन्दर मन में चिन्तन करते हुये उसे दृढ़ से दृढ़तर बनाते रहना होगा। साधना पथ पर धीरे-धीरे परिस्थिति से सामंजस्य करते हुये चलना होगा। सहसा कोई बड़ा कदम उठा लेना उचित न होगा। ऐसा करने से हित के स्थान पर अहित होने की सम्भावना रहती है।

तो इस प्रकार विचारों की भीड़ से अपने मूल-विचार को छाँट लेना चाहिये और यदि मूल विचार न हो तो अनुकूल विचार कहीं से ग्रहण करके अपना जीवन लक्ष्य तथा पथ निर्धारित कर उस पर योजनाबद्ध गति से चलना चाहिये। विचार को केवल विचार-मात्र बनाए रखने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। सिद्धि के लिये विचारों तथा क्रियाओं का समुचित समन्वय भी करना होगा। जो केवल विचार ही विचार करता रहता है और उनको मूर्तिमान करने के लिये क्रियाशील नहीं होता और उसके विचार मस्तिस्कीय विचार बनकर उसे निष्क्रिय एवं निरर्थक बना देते हैं। विचार-सृजन की आधारशिला जरूर है किन्तु तब ही जब वे मौलिक दृढ़ तथा कार्यान्वित हों, अन्यथा वे केवल कल्पना बनकर अपने विचारों पर उसे लिये उड़ते फिरेंगे और कही का न रखेंगे। जो निष्क्रिय विचारों के जाल में फँस जाया करता है, उसका जीवन बहुधा असफल ही रहा करता है। फिर भले ही उसके विचार कितने ही महान्, सुन्दर और कल्याणपूर्ण ही क्यों न हों और क्यों न वह उनके विभ्रम में अपने को महान्, महापुरुष अथवा आदर्श व्यक्ति समझता रहे। वास्तव में वह एक कल्पक के सिवाय और कुछ नहीं एक साधारण कर्मठ व्यक्ति भी नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शेखचिल्ली न बनें

इच्छाओं, आकांक्षाओं की भाँति मनःसंस्थान से पैदा होने वाली तीसरी विशेषता है, कल्पनाओं का आविर्भाव। विचारणा और तर्क की तरह यह एक मनःशक्ति धारा है, जिसके सही दिशा में नियोजन और सदुपयोग द्वारा महत्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित की जा सकती हैं। अन्यान्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विशेषताओं की भाँति यह क्षमता मनुष्य मात्र को प्राप्त है पर कोई-कोई ही कल्पना शक्ति का महत्व समझते और उससे लाभ उठा पाते हैं अन्यथा अधिकांश व्यक्तियों की कल्पनाएँ अस्त-व्यस्त बनी रहती हैं और कोई विशेष प्रयोजन नहीं पूरा कर पातीं।

वैचारिक क्षेत्र में आने और क्रिया में परिवर्तित होने के पूर्व कोई भी महत्वपूर्ण विचार सर्वप्रथम कल्पना क्षेत्र में ही उमड़ते हैं तथा कालान्तर में उपयोगी दिशा मिल जाने पर चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करते हैं। संसार भर में अब तक जितने भी आविष्कार अनुसन्धान हुए हैं, वे सर्वप्रथम कल्पना क्षेत्र में ही अवतरित हुए विचारों के रूप में अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित होकर क्रिया का सम्बल पाकर उपलब्धियों के रूप में फलित होते चले गये।

कुशल माली और चतुर किसान की भाँति कल्पनाओं की भी खेती करनी पड़ती है। माली उद्यान में उग आये झाड़-झंकाड़ की काट-छाँट करता और उपयोगी पौधों में पानी खाद देने के व्यवस्था जुटाता है। कृषक को भी खाद-पानी देने निराई-गुड़ाई आदि की प्रक्रिया अपनानी होती है। दोनों यह क्रम न अपनायें तो बीजांकुरित पौधों को बढ़ने-फूलने और फलने का अवसर न मिल सकेगा। मनःक्षेत्र में भी कितनी ही प्रकार की उपयोगी, अनुपयोगी कल्पना घूमती रहती हैं। यह चुनाव मनुष्य को स्वयं ठीक कृषक और माली की भाँति करना होता है कि कल्पनाओं में से कौन-सी व्यावहारिक और कौन-सी अव्यावहारिक। किसको पोषण देना चाहिए और कौन निरस्त करने योग्य है? उपयोगी का चुनाव और परिपोषण ही चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करता है। इस कला के अभाव में अधिकांश व्यक्ति कल्पना शक्ति का लाभ नहीं उठा पाते और महत्वपूर्ण उपलब्धियों से वंचित रह जाते हैं।

सजीव कल्पना का अर्थ है कि मन में चलने वाली अनेकानेक कल्पनाओं में से उनका ही चयन किया जाना, जो अपनी परिस्थितियों से तालमेल खाती हों। हवाई कल्पना करने से कोई बात नहीं बनती उल्टे अपनी क्षमता नष्ट होती, अव्यावहारिक होने और साकार न हो सकने के कारण निराशा और खीझ उत्पन्न करती है। अस्तु कौन-सी कल्पना साकार करने योग्य है, इसके लिए अपनी क्षमता और स्थिति पर भी विचार करना आवश्यक है।

अशिक्षित व्यक्ति डाक्टर बनने, इंजीनियर का पद सँभालने अथवा सरकारी क्षेत्र में महत्वपूर्ण पद हासिल करने की हवाई कल्पना करता रहे तो उपहास का ही पात्र बनेगा। शरीर निर्माण की निर्धारित आयु बीत जाने के बाद कोई बलिष्ठता में विश्व चैम्पियन बनने का ख्वाब देखता रहे तो कभी यह कल्पना साकार नहीं हो पाती। अतएव कल्पना के चयन के साथ-साथ यह विचार करना भी जरूरी है कि उसे व्यावहारिकता के धरातल पर उतार सकना सम्भव है अथवा नहीं। अधिकांश व्यक्ति जीवनपर्यन्त जैसी-तैसी गई-गुजरी स्थिति में इसलिए पड़े रहते हैं। अपने लिए उपयोगी कल्पनाओं का चयन नहीं करते और अनुपयोगी, अव्यावहारिक कल्पनाओं के किले बाँधे रहते हैं। इस असामंजस्य से असफलता ही हाथ लगती है।

यदि रचनात्मक दिशा दी जा सके तो कल्पना शक्ति के गर्भ में से बढ़कर एक सम्भावनाएँ सन्निहित होती हैं। वैज्ञानिक इसी से सफल होते हैं। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण, डार्विन का विकासवाद, आइन्स्टीन का सापेक्षवाद जैसे अनेकानेक आविष्कार कल्पना की ही उपज हैं। साहित्य, कविता, कला, संगीत आदि क्षेत्रों में तो कल्पना के बिना एक कदम आगे बढ़ पाना सम्भव नहीं है। इन विषयों के मर्मज्ञ विशेषज्ञ कल्पनाओं के पुंज होते हैं और इसी के बलबूते गम्भीर से गम्भीर विचारों और मर्मस्थल को छूने वाले भावों को अभिव्यक्ति कर पाने में समर्थ होते हैं। नाटक, गायन, वादन, साहित्य, कविता-कला की प्रभावोत्पादक क्षमता कल्पनाओं की ही सजीव, सार्थक और उच्चस्तरीय अभिव्यक्ति है। कल्पना शक्ति न रही होती तो न तो ज्ञान का विकास सम्भव था और न ही विज्ञान का आविष्कार, न संगीत की झंकार सुनाई पड़ती औन न कला सजीव हो पाती, न साहित्य का सृजन हो पाता और न कविता की उत्पत्ति। विश्व भर में आज विविध विषयों पर जितनी भी वैचारिक सम्पदा संग्रहीत है, उसकी उत्पत्ति कल्पना के गर्भ से ही हुई है।

साम्यवाद की एक धुँधली कल्पना एक दिन एक सामान्य व्यक्ति के मन में आई। उसे साकार करने में अपनी क्षमताएँ उसने नियोजित कर दीं। साम्यवाद की प्रचण्ड विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसने कार्लमार्क्स को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमर बना दिया। ऐसी ही एक कल्पना रूसो के मन में उपजी। वैचारिक क्षमता का सम्बल पाकर वह कल्पना रूपी बीज प्रजातन्त्र के रूप में प्रस्फुटित हुआ। नेपोलियन ने एक दिन विश्व विजय का सपना देखा। मन की उस कल्पना ने ही उसे विश्व-विजय के लिए प्रेरित किया। हिटलर को तानाशाह और विश्वविख्यात बनाने में उसकी कल्पनाओं का बहुत बड़ा योगदान था। मन की कल्पना का साकार रूप देने के लिए वह सदा ताना-बाना बुनता तथा शरीर मन और मस्तिष्क को उसी में नियोजित रखता था।

विश्व के मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मनुष्य को बनाने-बिगाड़ने, उत्कर्ष-अपकर्ष में सार्थक-निरर्थक कल्पनाओं की महती भूमिका होती है। किसी विचारक ने कहा भी है ''मनुष्य जिन कल्पनाओं को मन में स्थान देता है, वैसी ही विचारणाएँ उठती और गतिविधियाँ चल पड़ती हैं और अन्ततः वह अपनी कल्पना के अनुरूप बन जाता है।''

''राबर्ट थियोबाल्डा'' जैसे विचारक का कहना है कि ''सृजनात्मक विचारधाराओं की उत्पत्ति कल्पना क्षेत्र में ही हुआ करती है पर कम ही व्यक्ति हैं जो इस तथ्य को समझते और लाभ उठा पाते हैं। कारण यह है कि अधिकांशतः व्यक्ति अपने अनुरूप कल्पना का चुनाव नहीं कर पाते और निरर्थक में उलझे रहते हैं। सफलता की दिशा में अग्रसर होने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है। सजीव सार्थक और सृजनात्मक कल्पनाओं को ही मन में स्थान देने और निरर्थक को निकाल बाहर कर देने की।

इस दिशा में एक महत्वपूर्ण बात और याद रखने के योग्य है कि कल्पना करने और उपयोगी का चुनाव करते समय अपनी सामर्थ्य, परिस्थिति एवं साधनों का निरीक्षण भी कर लिया जाय। तदनुरूप लक्ष्य निर्धारित किया जाय। उसे साकार करने के लिए व्यवस्थित कार्यक्रम बनाया जाय। अपनी परिस्थितियों, साधनों और क्षमताओं का ध्यान न रहे और हवाई कल्पनाएँ करते रहा जाय तो शेखचिल्ली की भाँति उपहास का ही पात्र बनना होगा। अन्ततः निराश, खीझ से भरी असफलता ही हाथ लगेगी।

सर्वविदित है कि शारीरिक और मस्तिष्कीय अवयवों की दृष्टि से समता होते हुए भी मनुष्य-मनुष्य के बीच भी मौलिक गुणों और जन्मजात प्राप्त विशेषताओं की दृष्टि से भिन्नता होती है। कुछ आनुवंशिक विशेषताएँ होती हैं तो कुछ जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार। कुछ को अनुकूल परिस्थितियाँ सहज ही उपलब्ध रहती हैं, जिनके सहारे एक निश्चित दिशा में पुरुषार्थ करने पर आशातीत सफलता मिलती है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सहज अभिरुचि का किसी लक्ष्य विशेष की ओर होना इस बात का परिचायक है कि अभिरुचि की दिशा में प्रवृत्त होकर विशेष सफलता सम्पादित की जा सकती है। पश्चिमी देशों में बच्चों की शिक्षण पद्धति में इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का भली-भाँति ध्यान रखा जाता है। उनका रुझान और मनोयोग की दिशाधारा किन विषयों की ओर है, उसी के अनुरूप उनकी शिक्षण व्यवस्था बनायी जाती है।

इस तथ्य को और भी भली-भाँति इस तरह समझा जा सकता है जैसे कि गला अच्छा होते हुए भी हर व्यक्ति गायन विद्या में पारंगत नहीं हो सकता। यह तभी सम्भव है जब कंठ मधुर हो। पर यह विशेषता अभ्यास द्वारा नहीं जन्मजात प्राप्त होती है। कंठ मधुर न होते हुए भी कोई तानसेन बनने की कल्पना करता रहे तो इस दिशा में प्रयत्न करते हुए भी असफलता ही हाथ लगेगी। विकलांगता से ग्रस्त व्यक्ति गामा पहलवान बनने की कल्पना करे तो प्रयास करते हुए भी असफल ही रहेगा। पूँजी न होते हुए भी बड़ा उद्योग करने और लाभ कमाने की कल्पना अव्यावहारिक ही कही जायेगी। चाँद और सितारों पर सैर करने की कल्पना लुभावनी और मनोरंजक हो सकती है। पर उसके लिए साधन और अभीष्ट योग्यता न हो तो वह कभी भी पूरी नहीं हो सकती। अस्तु, सृजनात्मक कल्पनाओं का चुनाव करते समय अपनी आज की स्थिति सामर्थ्य और साधनों पर विचार करना आवश्यक है। दोनों के बीच सामंजस्य न हो तो कल्पना कभी साकार नहीं हो पाती। सार्थक कल्पना वस्तुतः वही है जिसमें इस व्यावहारिक दृष्टि का समावेश है।

कवि, कलाकार, साहित्यकार जैसी-प्रतिभाएँ भी अपने साथ अभीष्ट तरह की विशेषता के बीज लेकर पैदा होते हैं। बाद में अनुकूल परिस्थितियाँ मिलते ही वे अंकुरित और विकसित होते हैं। मौलिक प्रतिभा के बीज न हों तो चाहकर भी कोई मात्र अभ्यास और प्रशिक्षण के बलबूते काव्य, कला और साहित्य के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता।

किसी भी क्षेत्र में असफलता हाथ लगने का एक प्रमुख कारण यही होता है कि कल्पना के साथ व्यावहारिक दृष्टि नहीं रहती, अपने उपलब्ध साधनों और सामर्थ्यों के अनुरूप कल्पना का चयन नहीं हो पाता। यह तालमेल बन जाय तो कोई कारण नहीं कि असफलता का मुँह देखना पड़े।

एक दिशा एक निश्चित लक्ष्य के प्रति कल्पना शक्ति का नियोजन सम्भव हो सके तो विभिन्न क्षेत्रों में सफल हुए व्यक्तियों की तरह ही हर व्यक्ति अपने-अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुरूप सफलताएँ प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता इतनी भरी है कि कल्पना शक्ति की उपादेयता को भली-भाँति समझा जाय और उसका सही उपयोग किया जाय।

कुकल्पनाओं के नरक से हम स्वयं ही उबरें

डर उसे लगता है जो अँधेरे में भटकता है। अनिश्चितता और आशंका का सम्मिश्रित स्वरूप ही भय है। जहाँ सुनिश्चितता हो, स्पष्टता हो वहाँ भय लगने का कोई कारण नहीं।

भय के कारण ही मनुष्य उद्विग्न रहता है। अमुक व्यक्ति या अमुक परिस्थिति अथवा अमुक सम्भावना हमारी अमुक प्रकार की हानि करेगी—इस आशंका को बढ़े-चढ़े रूप में देखने से हमें एक भयानक संकट सामने खड़ा दीखता है। मस्तिष्क की संरचना विचित्र है। वह अन्तरंग की मान्यताओं की पुष्टि करने में एक के बाद एक तर्क प्रस्तुत करता चला जाता है। पहले जो आशंका या सम्भावना की कल्पना मात्र थी वह पीछे मस्तिष्क की कसरत द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर इतने भयंकर रूप में गढ़ ली जाती है मानो वह यथार्थता ही हो। दूसरों की सामान्य गतिविधियाँ भी ऐसी लगती हैं मानो वे अपने अनर्थ के लिए जान-बूझकर की गई दुरभिसंधियाँ ही हों। कुकल्पाएँ तिल को ताड़ बनाती चलती हैं और हमें विभीषिकाओं के ऐसे भयानक जंगल में ले जाकर अकेला छोड़ देती हैं, जहाँ अनर्थ और संकट के भूत-पिशाच नृत्य कर रहे होते हैं।

कल्पना की, मान्यता की शक्ति अद्भुत है। उसे निषेधात्मक दिशा में चलने दें तो फिर विपत्ति की घटाएँ ही इर्द-गिर्द घुमड़ती रहेंगी। भले ही वे कुकल्पनाएँ कभी भी साकार न बन सकें, पर डराते रहने के लिए तो उनका अवास्तविक अस्तित्व ही पर्याप्त है।

चिन्तन की दिशा मोड़कर यदि मान्यताओं को शुभ सम्भावनाओं की दिशा में चलने के लिए प्रोत्साहित करें, विधेयात्मक चिन्तन का अभ्यास करें तो प्रतीत होगा कि अपने लिए देवता लोग दिव्य वरदानों के उपहार लिए सामने खड़े हैं और आकाश से अब अपने ऊपर पुष्प वर्षा होने ही वाली है। उज्ज्वल भविष्य के प्रति यदि आशा और आस्था सँजोई जाय तो मस्तिष्क उस सम्भावना के समर्थन में अनेकानेक तर्क, कारण, उदाहरण प्रस्तुत करेगा और भावी घटनाक्रम का ऐसा सुनहरा चित्र उपस्थित करेगा मानो वह सब अगले ही दिनों मूर्तिमान होने जा रहा हो। इस सुखद पृष्ठभूमि के सहारे हमें सदा प्रमुदित रहने का अवसर मिलता रहेगा, भले ही वें सुखद कल्पनाएँ कभी भी वास्तविकता न बन सकें।

वस्तुतः घटनाएँ छोटी होती हैं और उनकी वास्तविक प्रक्रिया अत्यन्त तुच्छ और क्षणिक होती है। यह संसार ऐसे ही अपने ढर्रे पर चल रहा है। क्षति की पूर्ति दूसरे ही क्षण हो जाती है और हर चमक क्षणभर उपरांत भूतकाल के गर्त में विलीन हो जाती है। इसलिए कोई भी घटना न तो अपने वास्तविक रूप में अत्याधिक प्रभावशाली होती है और न कोई बहुत बड़ी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। संसार चक्र बड़ी सरलता से अपनी धुरी पर घूमता रहता है। यहाँ कोई भी बात महत्वपूर्ण नहीं। न किसी उपलब्धि का बहुत बड़ा लाभ है और न किसी क्षति के कारण कहीं किसी पर वज्रपात होता है। महत्व केवल कल्पनाओं का है। वे ही हमें बेतरह डराती हैं अथवा उन्हीं का चक्र हमारी मनोभूमि को सुखद सम्भावनाओं के सपने दिखाकर आनन्द-विभोर रखे रहता है।

विवाह होने पर पत्नी कितनी मनोरम मिलेगी? उसके साथ गृहस्थ जीवन कितना सुखद बीतेगा?यह कल्पना विवाह के प्रति उत्सुकता और आकांक्षा में चमक उत्पन्न करेगी। जब तक विवाह न होगा, मन बहुत ही उल्लसित रहेगा पर विवाह होने के कुछ दिन उपरान्त ही प्रतीत होने लगेगा कि सामान्य रूप से एक घर में रहने वाले दो व्यक्तियों के स्वाभाविक क्रम से एक ढर्रा चल पड़ा। सुनहरी कल्पनाएँ अपने लोक को चली गईं। हर किसी का गृहस्थ ऐसे ही एक ढर्रा बनकर रह जाता है। किन्तु यदि वे पति-पत्नी भविष्य में अधिक सुखद स्थिति की कल्पना गढ़ने लगें तो फिर नये सिरे से आनन्द की एक लहर मन में उठने लगेगी। पुत्र उत्पन्न होगा, वह सुनहरी सपना जितना आकर्षक होता है, उससे हजारवाँ भाग भी पुत्र प्राप्ति का परिणाम सुखद नहीं होता। बेटा इतनी समस्याएँ साथ लेकर आता है कि पूर्व कल्पना सर्वथा निरर्थक प्रतीत होती है। इतने पर भी यदि नये सिरे से यह सोचने लगें कि बड़ा होने पर यह हमारी अमुक प्रकार सेवा सहायता करेगा तो भरण-पोषण की कष्ट साध्य-प्रक्रिया के रहते हुए भी शिशु पालन फिर एक सुखद क्रिया-कलाप बन जायेगा।

इन्द्रिय-लिप्सा का अधिकांश आनन्द उसकी पूर्व कल्पना तक सीमित रहता है। अमुक दिन, अमुक दावत में, अमुक प्रकार के व्यंजन मिलेंगे, उनका कल्पित स्वाद जितना मधुर होता है, उतना उन व्यंजनों के सामने आने पर नहीं रहता। रहता भी है तो वह कुछ ही क्षणों में भूख शान्त होने पर पूरी तरह समाप्त हो जाता है। यहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक कि आग्रह करने पर भी उन्हें अस्वीकार करना पड़ता है। काम तृप्ति के बारे में भी यही बात है। रमणी की स्वप्निल कल्पनाएँ ही उत्तेजना प्रदान करती हैं, रमण की कल्पना ही उद्विग्न करती है। यौनकर्म तो कुछ ही क्षणों में निस्सार और थकान भरा अनुभव होने लगता है।

एम० ए० की डिग्री जब तक नहीं मिली है, उन सपनों की तुलना यदि डिग्री को शीशे में गढ़कर कमरे में टाँग देने की मनःस्थिति के साथ करें तो प्रतीत होगा कि एक गहरा नशा उतर गया और कुछ अद्भुत परिणाम सामने नहीं आया जैसा कि शिक्षण अवधि में वर्षों तक सोचते रह गया था।

चुनाव जीतने के बाद प्रतीत होता है कि लोक सम्मान के आकाश में उड़ने की रंगीली बेकार थी। एम० एल० ए० बन जाने और मामूली अध्यापक का पद पा जाने में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं था। लोग अपने काम में व्यस्त हैं, अपनी समस्याओं में उलझे हैं, उन्हें इतनी फुरसत कहाँ है कि किसी के चुनाव जीतने पर उसे आकाश में उड़ने वाला देवता मानने और उसके गुण गाते रहने में ही लगे रहें। जीत का समाचार छपने के कुछ ही समय बात सब कुछ विस्मृत हो जाता है और विजेता ऊँची गरदन करके चलता तो है, पर देखता है कि उसकी इस विजय में किसी को कोई दिलचस्पी नहीं है। जीत का सम्मान एक कल्पना मात्र था। काम निकालने के लिए तो लोग पत्थर के पास भी जाते हैं। छोटे चपरासी की भी खुशामद करते हैं, चुनाव जीते व्यक्ति के पास भी जा टकरायें तो उसमें क्या बड़ी बात हो गई ?

विवाह-शादियों में अनाप-शनाप पैसा खर्च करने वाले सोचते हैं कि हमारी धाक जमेगी और शान बढ़ेगी, पर वस्तुस्थिति यह है कि इस बेकार की बदतमीजी को गौर से देखने तक के लिए किसी का मन नहीं होता। चापलूस लोग तो मुँह देखकर किसी की भी बड़ाई कर सकते हैं। इसी प्रकार सजधज बनाने वाले—ठाट-बाट रोपने वाले अपनी कष्ट उपार्जित कमाई को न जाने क्या-क्या सोचकर बेकार की चीजों में खर्च करते हैं, पर पीछे जब वे बारीकी से देखते हैं तो पता चलता है कि दर्शकों को इसमें तनिक भी रुचि नहीं है। कौतूहलवश रास्ता चलते कोई ऐसे ही तनिक आँखें उठाकर देखले तो बात दूसरी है।

यह विधेयात्मक विचारों की बात हुई, निषेधात्मक विचारों के आधार पर गढ़ी गई कुकल्पनाओं की भयंकरता भी वस्तुतः अवास्तविक हो होती है। यदि आशंकित दुर्घटना घट भी जाय तो भी उससे कोई पहाड़ नहीं टूटता। परिवर्तन के समय कुछ अड़चन तो जरूर पड़ती है, पर कुछ ही समय बाद दूसरी स्थिति उसका स्थान ग्रहण कर लेती है और क्षति-पूर्ति का नया रास्ता निकल आता है। पिता के मर जाने पर सारा बोझ अपने कन्धे पर आ जायेगा और वह सँभाल न सकेगा—ऐसी कल्पना करके डरते रहने वाले पिता के मरने पर देखते हैं कि वैसी कोई आपत्ति खड़ी नहीं हुई। थोड़ी अड़चन के बाद ढर्रा नये ढंग से चलने लगा। पति-पत्नी, पुत्र, भाई आदि के मरने की बात सोचते ही कलेजा काँपता था और लगता था कि इस क्षति को सहन न किया जा सकेगा किन्तु उनके मरने के बाद भी कोई वज्रपात नहीं होता। थोड़ी हलचल और उथल-पुथल के बाद गाड़ी दूसरी पटरी पर चलती रहती है और उस अभाव को सहन करने अथवा दूसरे ढंग से उसे पूरा करने का रास्ता निकल आता है।

प्रचलित मान्यता यह है कि पति-पत्नी के बीच दाम्पत्य प्रेम में किसी तीसरे को सम्मिलित नहीं होना चाहिए अन्यथा प्रेम बँट जायेगा और अनर्थ उपस्थिति होगा। किन्तु उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले में जौनसार बाबर इलाके में बहु-पति प्रथा का प्रचलन बहुत ही शान्तिपूर्वक चलता है। बड़े भाई का विवाह होता है, शेष सभी भाई उसी पत्नी का हिल-मिलकर उपभोग करते हैं। इसमें न स्त्री को आपत्ति होती है न पति को। परिवार न बँटने देने, संयुक्त कुटुम्ब बना रहने और अर्थ-व्यवस्था सही रहने की दृष्टि से वे लोग इस प्रचलन की गर्वपूर्वक उपयोगिता सिद्ध करते हैं। ठीक इसी प्रकार अफ्रीकी स्त्रियाँ अपने पतियों पर दबाव डालती हैं कि कई अन्य पत्नियाँ और लाई जायँ ताकि परिवार का काम मिल-जुलकर अच्छी तरह चले और अर्थ-व्यवस्था सुधरे। जो पति वैसा नहीं कर पाते उन्हें छोड़कर वे स्त्रियाँ उनके यहाँ चली जाती हैं जिनके यहाँ पहले से ही कई पत्नियाँ रह रही होती हैं। अकेलेपन की अपेक्षा वे इस सह-निर्वाह को कहीं अधिक सुविधाजनक मानती हैं।

यह सब कल्पनाओं को मोड़ देने भर का खेल है। भविष्य की आशंका एवं सुखद संभावना का विचार करते हुए सुख और दुःख में अपना जीवन बीतता है। वास्तविकता को नगण्य ही होती है और उसकी प्रतिक्रिया इतनी स्वल्प होती है, जिसे तुच्छ अथवा उपेक्षणीय कहा जा सके। दूसरों को शत्रु मानते रहने की अपेक्षा यह कहीं अधिक लाभदायक है कि उन्हें मित्र मानकर चलें। भले ही इसमें कुछ हानि ही क्यों न उठानी पड़े?

निर्धन लोगों की कल्पना में धनी बनने की स्थिति बहुत सुखद होती है और वे इसके लिए बहुत प्रयत्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं, किन्तु जो धनी हैं, वे इस स्थिति के साथ जुड़ी हुई समस्याओं में न उलझकर अपना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य खो बैठते हैं। इतना ही नहीं साधु की महत्ता मन में जम जाय तो सारे सुविधा-साधन छोड़कर अभावग्रस्त तपस्वी जीवन क्रम अपनाने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। सन्तान के न होने पर दुःखी रहने वाले लोगों की कमी नहीं और ऐसे भी बहुत हैं, जो सन्तान के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर आत्म-हत्या तक कर बैठते हैं। सुख क्या है ? दुःख क्या है ? इसका मापदण्ड यही है कि हमारी कल्पना यदि सुखद सम्भावनाओं के साथ लेकर चलती रहे, तो मनुष्य हर स्थिति में सुखी रहेगा और यदि उसकी कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ दुर्घटनाओं के भयानक चित्र गढ़ने में लगी रहें तो उसके लिए हर घड़ी दुःखी बने रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

सुख-साधनों को बाहर तलाश करना भी उचित है और सुविधाजनक वस्तुएँ तथा परिस्थितियाँ प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक है। पुरुषार्थ की सार्थकता के लिए प्रगतिशील होना चाहिए और इसलिए अधिक अच्छे साधनों का उपार्जन करना चाहिए। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि सुख-साधन कितनी ही बड़ी मात्रा में सम्पादित क्यों न कर लिए जायँ यदि चिन्तन की धारा निषेधात्मक रहेगी तो उसकी गढ़ी हुई विभीषिकाएँ हमें हर घड़ी नरक में डुबोये रहेंगी। व्यक्ति डरावने लगेंगे और आशंकाएँ शूल भोंकने जैसे कष्ट प्रदान करती रहेंगी। इस नरक से और कोई हमें बचा नहीं सकता क्योंकि यह अपने द्वारा ही विनिर्मित किया गया है। यदि चाहें तो हम स्वयं ही इस स्थिति से उबर सकते हैं और सामने खुले पड़े स्वर्ग द्वार में प्रवेश कर सकते हैं।

सुखद कल्पनाएँ, सुसम्भावनाएँ, उज्ज्वल भविष्य की रेखाएँ जोड़कर सुखद भविष्य का सुनहरा चित्र गढ़ा जा सकता है और मात्र उन आस्थाओं के आधार पर अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी प्रसन्न, प्रमुदित रहते हुए जिया जा सकता है। कुकुल्पनाओं की भयंकरता भी कहाँ शत-प्रतिशत सही उतरती हैं। उन आशंकाओं में से अधिकांश निर्मूल ही सिद्ध होती हैं। यदि सुकल्पनाएँ मूर्तिमान न हो सकें, वे आकाश-कुसुम बनकर ही रह जायँ तो भी लाभ उन्हीं के सँजोये रहने में है। जब चिन्तन की दिशा ही मानव जीवन की अनुभूतियों का आधार है तो फिर अँधेरे में भटकने वाले चित्र गढ़ने की अपेक्षा उज्ज्वल आलोक का आह्वान करने के लिए ही अपने आपको तैयार क्यों न करे?

अपना कल्पना जगत हम स्वयं बनाते हैं

मनुष्य के मन में गतिविधियों का यदि ग्राफ बनाया जा सके तो उसमें बहुत से उतार-चढ़ाव दिखाई देंगे। ये उठाव-गिराव यह प्रदर्शित करते हैं कि व्यक्ति के मन में हलचलों की एक निरन्तरता बनी रहती है। दार्शनिकों ने इसी कारण मन की तुलना तालाब से की है। जिस तरह जलाशय के पानी में वायुमण्डल की हवा के संयोग से लगातार हलचलों-हिलोरों का क्रम बना रहता है, ठीक इसी तरह हमारे मन में प्रकृति व परिवेश के उद्दीपनों के कारण लगातार हिलोरें उठती रहती हैं। फिर यह उद्दीपन चाहे बाह्य प्रकृति के हों या अन्तः प्रकृति के, उनका सातत्य सदा बना ही रहता है।

इन हलचलों को ही मनोवैज्ञानिकों ने "कल्पना शक्ति" का नाम दिया है। कल्पना ही विचारों की जड़ है। मानसिक स्तर पर उठने वाले इन स्पन्दनों को जब बुद्धि के द्वारा गढ़ा जाता है, प्राण के द्वारा ताकत दी जाती है, तो यही विचार कहलाते हैं, पर इन सबकी जड़ कल्पना है। इसकी अपनी महत्ता है। मनुष्य के अपने उत्थान-पतन में कल्पनाओं की-विचारों की अहम् भूमिका होती है क्योंकि मनुष्य एक कल्पनाशील प्राणी है। वह अपनी जिन्दगी को योजनापूर्वक चलाना चाहता है। इसकी सन्तुष्टि इस-उस वृत्ति को पूरा करने सुखाभोग भोगने भर से नहीं होती। एक ओर वह समूचे संसार, जिसमें वह रहता है। खाका बनाना चाहता है। दूसरी ओर वह अपनी निजी जिन्दगी की ऊँची कल्पनीय या प्रतीत होने वाली सम्भावनाओं के उजाले में सारे जीवन का कार्यक्रम बना लेना चाहता है। इस तरह उसका दायरा सीमित न होकर असीम है। उसे मात्र एक सामाजिक प्राणी कहलाने भर से सन्तुष्टि नहीं मिलती। मिले भी कैसे? दीमक, चींटी, खरगोश, मधुमक्खी जैसे प्राणी भी तो सामाजिक हैं। यह भी अपने समाज की समस्याओं का निपटारा करने में जुटे रहते हैं। यदि मनुष्य को सिर्फ सामाजिक मान लिया जाय, तो उसे भी इन्हीं की कतार में खड़ा करना पड़ेगा। किन्तु वह स्वभावतः कल्पनाशील है, अतः अपने समूचे जीवन की प्रगति का चित्र सामने रखते हुए चलता है, उसका भी जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक है और इस लोक से सम्बंधित है तथा उसका भी जिसका सम्बन्ध परलोक से है।

कल्पनाओं की सीमा केवल व्यक्तिगत जीवन को आदर्श रूप में विकसित करने तक सिमटी नहीं है। इसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्श समाज व्यवस्था एवं सामाजिक सम्बन्ध सँजोए और समाए हैं। इसका क्षेत्र बहुत विशाल है।

इस विशालता की बात हममें से कितनों को ज्ञात है, कुछ कहा नहीं जा सकता, पर मनोवैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में एक आश्चर्यजनक तथ्य खोजा है, वह यह कि इसमें शक्ति भी है, एक ऐसी शक्ति, जिसका सही ढंग से उपयोग करने पर हम न केवल समस्त मानसिक झंझटों से छुटकारा पा सकते हैं, वरन् व्यावहारिक जीवन को कहीं अधिक सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है। मनोविदों की इस बात को श्री अरविन्द ने भी प्रमाणित किया है। उनके अनुसार यदि इसको जीवन के उत्कर्ष में जुटाया जा सके, तो यह केवल मानसिक रचनाएँ गढ़ने तक सीमित नहीं रहेगी बल्कि सृजनशीलता के रूप में भी इसे देखा जा सकेगा।

मनोविज्ञानी आर० एस० बुडवर्थ ने ''ए रिव्यू ऑफ इमेजलेस थॉट'' में इस सम्बन्ध में अपने अध्ययन व अनुभव का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। उनके अनुसार प्रत्येक कल्पना मानसिक धरातल पर सच होती है। उदाहरण के लिए किसी उपन्यास की समूची कहानी मन के धरातल पर स्वतन्त्र रूप से विराजमान रहती है। उनका मानना है कि हम में से हर कोई किसी न-किसी हद तक उपन्यासकार है, उसमें मानसिक स्तर पर आकार बनाने की क्षमता है।

अनेक दार्शनिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमारे जीवन का बहुत-सा भाग खुद की कल्पनाओं का मूर्त रूप है। परामनोवैज्ञानिकों ने अपने लगातार किए गए प्रयोग-परीक्षणों के आधार पर इसे सही प्रमाणित किया है। उनके अनुसार प्रत्येक बार जब हम किसी अस्वस्थ कल्पना में रस लेने लगते हैं, तब अपने भयों की रूपरेखा बनाकर, दुर्घटनाओं, विपत्तियों की आशंका कर भावी परेशानियों की खाई खोद लेते हैं इसके विपरीत यदि हम आशापूर्ण अच्छी सुखद कल्पना करें, तो लक्ष्य को पूराकर सकना उतना ही अधिक सम्भव और सरल बन पड़ेगा, जितना फिल्म कहानी अथवा उपन्यास में।

क्रिश्चियन साइंस के विशेषज्ञों ने इस रहस्य के आधार पर कल्पना शक्ति को एक निर्माणकारी व जीवनोपयोगी शक्ति के रूप में विकसित करने का अच्छा प्रयास किया है। फेथहीलिंग के नाम पर इसे चिकित्सा विधि के रूप में भी अपनाया गया है इसी के विशेषज्ञ मि० कुए ने सैकड़ों लोगों को केवल यह सिखाकर अच्छा कर दिया कि अपनी कष्ट मुक्ति की भाव कल्पना करें। एक घटना का विवरण प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि एक स्त्री के बाल झड़ते जा रहे थे। इनकी सलाह पर उसने स्वयं को सुझाव देना शुरू किया कि मैं दिन-रात अच्छी हो रही हूँ। मेरे बाल निश्चय ही बढ़ रहे हैं। लगातार ऐसी कल्पना करने से उसके बाल सचमुच बढ़ने लगे। यहाँ तक कि अधिक आत्म-प्रेरणा से वह जितना चाहती थी उतने लम्बे हो गए।

मन की इस शक्ति का प्रयोग आश्चर्यजनक लगने पर भी सही है। इसी कारण मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवम् अध्यात्मविज्ञानी सभी निषेधात्मक चिन्तन रोकने का समर्थन करते हैं। स्वामी अखिलानन्द का ''मेण्टल हैल्थ एण्ड हिन्द साइकोलॉजी'' में कहना है कि कल्पनाशक्ति की क्षमता को न समझ पाने के कारण ही कई बार हम स्वयं को अवसाद एवं चिन्ताओं में डाल लेते हैं। मन की ऐसी प्रकृति ही है कि उसे जिस दिशा में प्रवाहित किया जाय, उसी दिशा में तब तक बढ़ता चला जाएगा, जब तक उसे रोका न जाय। गलत दिशा अर्थात् निराशापूर्ण कल्पनाएँ करने का नतीजा है कि हम अधिकाधिक मानसिक सन्तप्त व निराश-हताश होते चले जाते हैं। इस स्थिति से उबरने का तरीका बिजली के झटके नहीं है। भले ही वह थोड़ी देर के लिए आराम दें। इसका सही तरीका कल्पनाओं के उल्टे-प्रवाह को सीधा करना है।

ये अपने में चाकू की तरह हैं। जिस तरह चाकू से कोई तरकारी काटकर उसका सदुपयोग कर सकता है। अनाड़ी आदमी उससे अपना हाथ भी काट सकता है। हमें परमेश्वर द्वारा दी गई इस शक्ति का सदुपयोग सीखना चाहिए। सामान्यतया अधिकांश लोग इस मौलिक शक्ति का दुरुपयोग ही करते हैं। यदि उच्च भावों एवम् आदर्शों में निवास किया जाय तो यह समग्र विकास में सहायक होगा। इसके विपरीत यदि उदास रहकर यह रोना रोया जाय कि हम असमर्थ और अयोग्य हैं, तो हम खुद ही अपनी जिन्दगी में जहर भरते चले जायेंगे।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पी० टी० यंग ने ''द रिलेशन ऑफ बाइट एण्ड डल प्रेशर टू एक्विटी'' में इसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि किसी भी परिस्थिति में न तो उदास रहा जाय और न ही निषेधात्मक, निराशावादी कल्पनाओं को जगह दी जाय। दूसरे शब्दों में हम अपनी कल्पना को आशापूर्ण स्वरूप प्रदानकर उन्नत भावों में लगाएँ। ऐसा करने पर उसकी निर्माणकारी शक्ति से हम स्वयं को इच्छित दिशा में कवि-मनीषी, दार्शनिक कलाकार आदि के रूप ढाल सकेंगे।

हर व्यक्ति के अन्दर दिव्यता का खजाना छुपा हुआ है। इसको खोदकर बाहर निकालने के लिए जरूरी है कि मानसिक हलचलों को सृजनात्मक स्वरूप प्रदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाय। इसके लिए ऐसे जीवन दर्शन को प्रोत्साहन देना चाहिए, जो दोनों बातों पर ध्यान रखें। एक ओर मानव स्वभाव तथा उसके परिष्कार पर, तो दूसरी ओर व्यावहारिक क्रियाकलापों को सुधारने, सँवारने पर। ऐसा करने पर हर कोई खुद की जिन्दगी को शुभ व सुन्दर बना सकेगा।

ऊँची उड़ान न उड़ें, धरती पर चलें

सफलताएँ अनायास ही उत्पन्न नहीं होतीं, उन्हें क्रियाशीलता की प्रतिक्रिया कह सकते हैं। यह क्रिया भी अकारण उत्पन्न नहीं होती। उसके पीछे इच्छा शक्ति की प्रबल प्रेरणा काम कर रही होती है। सरल शब्दों में कहें तो इच्छा से क्रिया-क्रिया से साधन और साधन से परिस्थिति का क्रम चल रहा दिखाई पड़ेगा।

बड़ी-बड़ी सफलताएँ चाहने के लिए न जाने कौन-कौन कितने-कितने सपने देखता रहता है। सोते में चित्र-विचित्र स्वप्नों की कथायें, जगने पर कई लोग सुनाते हैं और जाग्रत अवस्था में अपने असफल अरमानों का सँजोया हुआ श्मशान देखते दिखाई देते हैं। उन्हें दुःख होता है कि इतनी मनोकामनाएँ उनने सँजोई, पर एक भी पूरी न हुई। इन दिवास्वप्न देखने वालों को निशास्वप्न देखने वालों की पंक्ति में बिठाया जा सकता है। अन्तर इतना ही होता है कि सपने में राजा बनने और बाद में गद्दी छिन जाने का जागने पर इतना उतना दुःख नहीं होता, जितना कि अरमानों के महल खड़े करने वालों को उनके उजड़ जाने का होता है।

कल्पनाओं की उपयोगिता तो है पर उससे दिशा मिलमे मात्र का प्रयोजन सिद्ध होता है। सोचने भर से चाही वस्तु मिल जाना सम्भव नहीं। उसके लिए साधन जुटाने होते हैं और परिस्थितियाँ उत्पन्न करती पड़ती हैं। इसके लिये प्रचण्ड पुरुषार्थ करने की आवश्यकता पड़ती है। बिना थके, बिना हारे चलते रहने और कठिनाइयों से पग-पग पर जूझने का साहस ही लम्बी मंजिल पूरी करा सकने में सफल होता है। उचित परिश्रम के मूल्य पर ही अनुकूलताएँ उत्पन्न होती हैं और उन्हीं के सहारे सफलताओं की सम्भावना दृष्टिगोचर होती है। यह अथक परिश्रम व साहस भरे संकल्पों पर निर्भर है। देर तक टिका रहने वाला और प्रतिकूलताओं से जूझने वाला साहस ही सकंल्प कहलाता है। कल्पना से नहीं, संकल्प शक्ति से मनोरथ पूरा करने की परिस्थितियाँ बनती हैं।

बच्चे भविष्य के मधुर सपने देखने में निरत रहते हैं, बूढ़ों को भूतकाल की स्मृतियों में उलझे रहना सुहाता है किन्तु तरुण को वर्तमान से जूझना पड़ता है। बच्चों को स्वप्नदर्शी कहते हैं, वे कल्पनाओं के आकाश में उड़ते हैं और परियों के साथ खेलते हैं। मनोरथ रचने वाले और सहज ही उनको सिद्ध सामने खड़े देखने वाले मानसिक दृष्टि से ऐसे बालक है जिनकी आयु भर बड़ी हुई है, मनःस्थिति पूर्णतया बचकानी है। यहाँ सपनों का कोई मोल नहीं। संसार के बाजार में पुरुषार्थ से योग्यता भी बढ़ती है और साधन भी जुटते हैं। इन दुहरी उपलब्धियों के सहारे ही प्रगति के पथ पर दो पहिये की गाड़ी लुढ़कती है। स्वप्नों के पंख लगाकर सुनहरे आकाश में दौड़ तो कितनी ही लम्बी लगाई जा सकती है पर पहुँचा कहीं नहीं जा सकता।

ऊँची उड़ान उड़ने की अपेक्षा यह अच्छा है कि आज की स्थिति का सही मूल्यांकन करें और उतनी बड़ी योजना बनायें जिसे आज के साधनों आज पूरा कर सकना सम्भव है। कल साधन बढ़ें तो कल्पना को विस्तार करने में कुछ भी कठिनाई न होगी। मंजिल एक-एक कदम उठाते हुए पूरी की जाती है। लम्बी छलाँग आश्चर्य भर उत्पन्न करती है, मंजिल तक नहीं पहुँचती। कल्पना की समीक्षा करें और उन्हें आज की परिस्थिति के साथ चल सकने योग्य बनायें। गुण-दोषों का, सम्भव-असम्भव का भली प्रकार विचार करें। पक्ष-विपक्ष का ध्यान रखते हुए जो विवेकपूर्ण निर्णय किया जाय, उसे पूरा करने के लिए अटूट साहस और प्रबल पुरुषार्थ के लिए जुट पड़ा जाय तो विश्वास किया जा सकता है कि सफलता का वृक्ष अपने समय पर अवश्य ही फूलेगा और फल देगा।

पलकों की हलचल है मन का दर्पण

यों पलकें तो आँखों की समीक्षा के लिए होती हैं और सेकेण्ड के दसवें हिस्से से भी कम समय में झपकती रहती हैं, पर यदा-कदा इनका उठना-गिरना और तेज अथवा मन्द हो सकता है। ऐसी दशा में वह व्यक्ति की उस स्थिति एवं परिस्थिति का परिचायक होती है, जिससे वह उस समय गुजर रहा होता है। दूसरे शब्दों में सामने वाले की मनोदशा जानने-समझने का वह महत्वपूर्ण माध्यम है और एक हद तक व्यक्ति की तात्कालिक अवस्था का पता उनसे लगाया जा सकता है।

वैसे तो पलकों का खुलना-बन्द होना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें आँखों की सुरक्षा और सफाई ही प्रमुख होती है; पर देखा यह भी गया है कि जब व्यक्ति असामान्य अवस्था से गुजर रहा होता है, तो उस पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता है। उदाहरण के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए, जब व्यक्ति आवश्यकता से अधिक सावधान या सचेत होता है, तो उसकी पलकें कम झपकती हैं। रुचिकर विषय अथवा वस्तु को पढ़ते-देखते समय भी यह गति स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है। ऐसे समय इसकी रफ्तार प्रति मिनट लगभग छः बार होती है, किन्तु जब विषय-वस्तु सामने वाले के मन पसन्द की न हो यह क्रिया तीव्र हो सकती है। वार्तालाप कर रहे दो व्यक्तियों में से कौन कितना एक दूसरे की बातों में रस ले रहा है? यह उनकी पलकों की गिरने-उठने की गति से जाना जा सकता है। जो ऊब या आलस्य महसूस कर रहा होगा, उसकी अत्यधिक गतिवान पलकें यह बता देंगी कि श्रोता को वक्ता एवं उसकी बातों में कोई रुचि नहीं है।

इसी आशय का एक प्रयोग बर्लिन यूनिवर्सिटी के मनोवैज्ञानिकों ने किया। उन्होंने कुछ लोगों को संगीत की कुछ उबाऊ धुनें सुनायीं। आधे घंटे के इस प्रयोग के दौरान देखा गया कि सामान्य स्थिति में उनकी पलकें जितनी बार झपकती थीं, उसकी आवृत्ति इस मध्य बढ़ गई। परीक्षण को पुनः दोहराया गया; किन्तु इस बार धुन बदल दी गई। अबकी बार का संगीत सरस और सुरीला था, अतः इसका परिणाम भी पहले से विपरीत प्राप्त हुआ। पाया गया कि इस मध्य श्रोताओं की पलकें असाधारण रूप से कम झपकीं। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि रुचि-अभिरुचि, पसन्द-नापसन्द का कितना कैसा प्रभाव हमारी दृश्येन्द्रिय पर पड़ता है? इस आधार पर सामने वाले का मनोभाव आसानी से जाना जा सकता है।

शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि कार्य के दौरान बरती गई एकाग्रता एवं तन्मयता का स्पष्ट आभास आँख के खुलने-बन्द होने की गति से सरलतापूर्वक मिल जाता है। उदाहरण के लिए चित्र बनाते समय चित्रकारों की पलकें, अपेक्षाकृत कम उठती-गिरती हैं। यह उसके एकाग्र चित्त का द्योतक है। कवि जब अपनी कल्पना की दुनिया में खोता है, साहित्यकार अपने विचार-प्रवाह में बहता है, कर्मयोगी किसी काम में निष्ठापूर्वक निमग्न होता है, संगीतकार किसी नई धुन की रचना कर रहा होता है, तब भी उनकी पलकों के झपकने की गति कम होती है।

इसके विपरीत परेशान व्यक्ति की पलकें जल्दी-जल्दी उठती-गिरती हैं। यदि व्यक्ति समस्याग्रस्त हो, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो, असमंजस की दुविधाजनक स्थिति में हो, तो भी आँखों के खुलने-बन्द होने की रफ्तार तीव्र होती है। पलकों का गिरना-उठना यह भी दर्शाता है कि व्यक्ति में कितना आत्मविश्वास है। एक आत्मविश्वासी अपनी बात को प्रकट करते समय अपेक्षाकृत न्यून पलकें झपकाता है, जबकि उस व्यक्ति की जिसका कथन अनिश्चय युक्त हो अथवा उसमें दृढ़ता का अभाव हो, तो उसके नेत्र जल्दी-जल्दी खुलते-बन्द होते हैं। साक्षात्कार के समय इस बात को स्पष्ट रूप से देखा अथवा अनुभव किया जा सकता है। वैसे परीक्षार्थी जिनकी तैयारी अच्छी होती है अथवा जो आत्मविश्वास के धनी होते हैं, मौखिक परीक्षा के दौरान जबाव देते समय परीक्षक के आगे कम आँखें मुलमुलाते हैं, जबकि जिनकी तैयारी ठीक नहीं होती, जिन्हें स्वयं पर, अपने उत्तर पर भरोसा नहीं होता, उनमें यह क्रिया अधिक तीव्र होती देखी गई है।

पलक के झपकने की गति व्यक्ति के दबंगपन को भी अभिव्यक्त करती है। पाया गया है कि झेंपू या संकोची प्रकृति के लोगों में पलकों की रफ्तार अधिक तेज होती है, वहीं दबंग व्यक्तित्व की यह सुनिश्चित पहचान है कि उसकी पलकें किसी भी व्यक्ति के समक्ष प्रति मिनट कम झपकती हैं। डरपोक स्वभाव वाले लोगों की भी यही निशानी है कि उनमें आँख मुलमुलाने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है। कुछ हद तक झूठ और सच की पहचान भी इससे की जा सकती है। झूठ बोलने और सच्चाई को छिपाने का प्रयास करने वालों में पलक-संचालन की क्रिया ज्यादा तीव्र होती है। दूसरी ओर सत्यवादियों, न्याय के पक्षधरों में इसकी गति मन्द होती है। देखा गया है कि जो झूठ को सच का रंग चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं, समय आने पर न्याय के दरबार में उनकी निगाहें नीची हो जाती हैं। जो थोड़ा साहस कर उसे ऊपर उठाते भी हैं, तो उनके पलकों की तीव्र गति उनकी पोल खोल देती है। ऐसा व्यक्ति फिर प्रामाणिक और प्रेम का पात्र नहीं कहा जाता। उसे पग-पग पर अपमान और अपयश उठाना पड़ता है। अप्रामाणिकता का कलंक सिर चढ़ता है, सो अलग।

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में प्रशिक्षक और प्रशिक्षार्थी के बीच के सम्बन्ध एवं प्रशिक्षार्थी के विषय सम्बन्धी पकड़ को भी उक्त क्रिया एक सीमा तक बोलती-बताती है। अध्ययनों के दौरान स्पष्ट परिलक्षित हुआ है कि जिस शिक्षार्थी में विषय सम्बन्धी गहराई एवं उसे पकड़ने का माद्दा कम होता है, उसकी पलकें अधिक झपकती हैं। यह भी देखने में आया है कि जब दोनों के बीच खुलापन का अभाव होता है, तब भी अध्येता की आँखें जल्दी-जल्दी खुलती-बन्द होती हैं। इसके विपरीत जब शिक्षक और छात्र के बीच स्नेह-सौमनस्य जैसा मधुर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध और खुलापन होता है, तो अध्ययन करने वाले छात्र की पलकें कम झपकती हैं।

उपरोक्त मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर ही भाषण का अभ्यास करने वाले अभ्यासी को आरम्भ में इसका अभ्यास निर्जन स्थानों में, निकुंजों अथवा नदी-तटों के पत्थरों एवं पेड़-पौधों जैसे जड़ पदार्थों को सजीव श्रोता मानते हुए सलाह दी जाती है। इस प्रारम्भिक प्रयास से जैसे-जैसे उनका मानस परिपक्व होने लगता है, वैसे-ही-वैसे उसकी झिझक मिटती और पलक संचालन की गति घटती जाती है। फिर भी शुरू-शुरू में उन्हें व्याख्यान देते समय श्रोताओं से सीधे आँख मिलाने की मनाही की जाती है और जहाँ तक संभव हो सके, इससे बचने की बात कही जाती है। कुछ इसी प्रकार की हिदायत टेलीविजन के समाचार वाचकों को भी दी जाती है और कहा जाता है कि समाचार पढ़ते समय किसी प्रकार की उच्चारण सम्बन्धी कोई त्रुटि अथवा सूचना सम्बन्धी कोई त्रुटि अथवा सूचना सम्बन्धी गलती हो जाय, तो भी वे आत्म नियंत्रण खोये न अपने को संयत व शान्तिचित बनाये रखकर सदा यह प्रदर्शित करने की कोशिश करें कि वह एकदम सामान्य स्थिति में है। अशुद्धि के समय उनकी बढ़ी-चढ़ी पलक की रफ्तार उनकी त्रुटि को और उजागर कर सकती है, इसी को देखते हुए उन्हें इस प्रकार की चेतावनी दी जाती है।

स्मरण रखने और पलक झपकने के बीच भी सीधा सम्बन्ध है। यदि किसी से किसी लम्बे-चौड़े शब्द शृंखला को याद करने के लिए कहा जाय, तो सम्भव है कि सम्पूर्ण शृंखला को स्मरण करने के बाद ही वह पलकें गिराये। मूर्धन्य मनोविज्ञानी सेली ने अपने गहन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला है। कि यदि व्यक्ति से शब्द-शृंखला के बाद और अक्षर याद करने को कहा जाय, तो पलक झपकाने के बीच की अवधि और अधिक बढ़ जायेगी।

संक्षेप में पलक का उठना-गिरना व्यक्तित्व का दर्पण है। जानकार व्यक्ति इस आधार पर सामने वाले के बारे में काफी कुछ पता लगा सकता है कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है, अतः पलक झपकाने में सावधानी बरती जाय। कहीं ऐसा न हो कि वह हमारी कमी और कमजोरी को दूसरों के आगे प्रकट कर दे।

लाख छिपायें, अन्दर के भाव छिप नहीं सकते

कई बार मनुष्य नकली भाव-भंगिमा बनाकर असली भाव संवेदना को छिपा ले जाता है, जैसे वह बिल्कुल सच्चा अभिनय कर रहा हो, पर कोई उसकी आँखों में झाँककर देखे, तो पता चलेगा कि कुछ भी उससे छिपा नहीं। वह सच-झूठ को सदा उसी प्रकार प्रकट करती रहती है, जिस प्रकार मुकदमे का कोई चश्मदीद गवाह अपराधी की सत्यता-असत्यता का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

पिछले दिनों आँख और पुतलियों पर हुई शोध से ज्ञात हुआ है कि अनेक अवसरों पर जहाँ व्यक्ति की बनावटी मुख-मुद्रा सत्य पर सामान्य रूप से पर्दा डालने में सफल हो जाती है, वहीं उसकी पुतलियाँ भेद खोलती रहती हैं। इस रहस्य को जानने वाला कोई भी व्यक्ति तथ्य को देखकर सत्य का पता लगा सकता है, भले ही उस बनावटीपन का कितना ही मुलम्मा क्यों न चढ़ा हो? आमतौर पर देखा यह जाता है कि जब किसी व्यक्ति को वर्षों का बिछुड़ा उसका प्रियजन मिलता है, आकस्मिक संपदा अथवा मनोवांछित वस्तु प्राप्त होती है, किसी ऐसे कार्य में सफलता मिलती है, जिसमें आशा नगण्य जितनी की गई थी, तो वह भाव-विभोर हो उठता है, प्रसन्नता से उसकी आँखें चमक उठती हैं। इस दौरान उसकी पलकें थोड़ी चौड़ी हो जाती हैं और आँखें कुछ बड़ी दीखने लगती हैं। आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों स्थितियों में यह क्रिया समान रूप से होती है। इसी प्रकार जब कोई बुरी खबर, प्रतिकूलता, भय, विषाद जैसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, तो आँखें निस्तेज, बुझी-बुझी सी दिखाई पड़ने लगती हैं। यह अनुकूलता-प्रतिकूलता, प्रसन्नता, विपन्नता के अभिव्यक्ति पाने का स्वाभाविक ढंग है, पर अनेक बार व्यक्ति सच्चाई का ढोंग रचकर तथ्य को सामने वाले से छिपाने का प्रयत्न करता है। अभिनय में वह बहुत हद तक सफल भी हो जाता है, इतने पर भी उसकी पुतलियाँ उसके अन्दर के भाव को बिना किसी दुराव-छिपाव के, सही-सही बताती रहती हैं, इस दृष्टि से यह एक प्रकार की ''लाई डिटेक्टर'' हैं। इसी कारण इन दिनों इनका इस्तेमाल अपराध-जगत में सही-गलत अपराधियों को पहचानने, परखने में किया जा रहा है।

यों शरीरशास्त्र में पुतलियों का कार्य उपयुक्त परिमाण में प्रकाश के प्रवेश करने और अनावश्यक को भीतर जाने से रोकने तक ही सीमित हैं, पर मनोविज्ञानवेत्ता बताते हैं कि यह तो इसका अत्यन्त स्थूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्य हुआ। सूक्ष्म और महत्वपूर्ण तो वह है, जो मनोभावों को बताता है। इन दिनों पुतलियों के इसी पक्ष पर अनुसंधान हो रहे हैं, जिसमें अन्वेषणकर्त्ता यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि पुतलियाँ इस कार्य को किस प्रकार कितनी दक्षता से करती हैं।

एक प्रयोग के दौरान देखा गया कि तब कुछ छात्रों को गणित सम्बन्धी जटिल प्रश्न हल करने को दिये गये, तो पाया गया कि उनकी पुतलियाँ फैल गई हैं और जब तक इसी अवस्था में बनी रहीं जब तक छात्रों ने सवाल हल न कर लिये। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसे शारीरिक लक्षण भी उस दौरान उनमें देखे गये, जो प्रकट करते थे कि छात्र घबराहट की स्थिति से गुजर रहे हैं।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि स्वाद और गंध भी पुतलियों को समान रूप में प्रभावित करते हैं। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने एक प्रयोग किया, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह कथन किस हद तक सही है? शोध के दौरान उन्होंने कुछ लोगों को मृदु पेय पीने को दिया। उसके प्रथम घूँट के साथ ही स्वाद के सम्बन्ध में लोगों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ सामने आयीं। यह प्रतिक्रियाएँ उनके बोलने से पूर्व ही उनकी पुतलियों ने फैल और सिकुड़कर जाहिर कर दीं। उल्लेखनीय है कि खुशी अच्छे स्वाद अथवा सुगन्ध की स्थिति में पुतलियाँ फैलकर इसकी अभिव्यक्ति करती हैं, जबकि दुर्गन्ध, बेस्वाद एवं विषाद अथवा भय के अवसर पर वह अत्यन्त सिकुड़ जाती हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि व्यक्ति अच्छा अनुभव नहीं कर रहा है। मन:शास्त्रियों का कहना है कि पुतलियों का अध्ययन कर और भी गहरी और सूक्ष्म स्तर की जानकारी अर्जित की जा सकती है—इतनी सूक्ष्म जो कि गहन अन्तराल में अवस्थित हो और जिसकी स्थूल अभिव्यंजना छिपायी जा रही हो, किन्तु यह अवयव अन्तस् से उस भाव को भी पकड़ने और प्रकट करने में सक्षम है। आवश्यकता इस आशय के विस्तृत अन्वेषण की है, ताकि यह जाना जा सके कि किस भाव को प्रकट करने के लिए यह कैसा प्रदर्शन करती हैं? मनोविशारदों का कहना है कि चूँकि मनुष्य का अपनी पुतलियों पर कोई नियंत्रण नहीं है, अस्तु इस माध्यम से उन संवेदनाओं को भलीभाँति समझा जा सकता है, जो उनके स्थूल अवयव गुप्त रखने में सफल हो जाते हैं। इस अध्ययन से पूर्व तक मान्यता यह थी कि नारी की पुतलियाँ पुरुषों के प्रति कोई भाव प्रकट नहीं करतीं। अतएव एक प्रयोग द्वारा इस बात की जाँच करने का निश्चय किया गया कि उपरोक्त कथन किस सीमा तक सत्य है, प्रयोग के दौरान जब एक महिला के समक्ष एक आकर्षक व्यक्ति का चित्र रखा गया, तो पुतलियाँ अचानक फैल गईं, यद्यपि उसने प्रकट रूप में इस प्रकार का कोई भाव व्यक्त नहीं किया था, जिससे तत्संबंधी किसी मान्यता पर पहुँचा जा सके, पर पुतलियों का फैलना इस बात की साक्षी थी कि नारी को तस्वीर देखकर खुशी हुई है। निष्कर्ष को और अधिक स्पष्ट और पुष्ट करने के लिए दूसरी बार उसी नारी के सम्मुख एक अन्य नर का चित्र प्रस्तुत किया गया, पर इस बार की तस्वीर एक ऐसे व्यक्ति की थी, जो बड़ा ही कुरूप भौंडे नाक-नक्शयुक्त और डरावना था। तस्वीर के सामने आते ही उसकी पुतलियाँ सिकुड़कर अत्यन्त छोटी हो गईं, जो इस बात को सिद्ध कर रही थीं कि महिला के मन में घृणा उपज रही है। इस प्रकार उस सम्बन्ध में प्रयोगार्थी के बिना कुछ कहे भी उसकी आँखें बहुत कुछ कह रही थीं।

भय के संदर्भ में पुतली की प्रतिक्रिया कैसी होती है? यह जानने के लिए प्लास्टिक के एक नकली साँप को असली जैसा बनाया गया और उसे एक व्यक्ति के सामने अचानक रख दिया गया। उसकी चीख निकल गई, साथ ही आँखों की पुतलियाँ सिकुड़कर संकीर्ण बन गईं।

मनोविज्ञानियों का मानना है कि यदि इस कला में निपुणता हासिल की जा सके, तो अनेक मौकों पर ऐसे करतब दिखाये जा सकते है, जो जनसाधारण को चमत्कार जैसा लगे। उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि अनेक तमाशेबाज ऐसे होते हैं, जो अपनी विद्या में निष्णात नहीं होते, फिर भी ताश के खेल में वे कई बार ऐसे कौशल दिखा जाते हैं, जो सामने वालों को चमत्कृत कर जाते हैं। उनका कहना है कि ऐसे बाजीगर ऐसे क्षणों में पुतली की हलचलों द्वारा ही ऐसा कुछ कर सकने में सफल होते हैं। इस दौरान वे सामने वाले की आँखों पर अपना अधिकांश ध्यान केन्द्रित रखते हैं और बड़ी सूक्ष्मता से पुतलियों की गतिविधियों का अध्ययन करते रहते हैं। उनके अचानक फैलने, संकुचित होने के आधार पर ही वे भविष्यवाणी करते हैं। जब वे सही सिद्ध होती हैं, तो उपस्थित जन आश्चर्य में पड़ जाते हैं और उन्हें तरह-तरह के नाम-उपनाम दे डालते हैं, बहुत बड़ा जादूगर मान बैठते हैं, पर यथार्थता इतनी ही है कि आँख की वह खिड़की ही सब कुछ देखती-दिखाती, बोलती-बताती रहती हैं। उससे कुछ भी तो छिपा नहीं है।

हम इस संसार में रहते हैं और तरह-तरह के भले-बुरे, उचित-अनुचित काम करते रहते हैं। इन्हें छिपाने में भी प्राय: सफल हो जाते हैं। स्वयं गलत करते और उसका दोष दूसरों के सिर मढ़ देते हैं। बुद्धिबल और चतुरता के आधार पर प्रमाण भी जुटा लेते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्दोष को न्यायालय के कटघरे में खड़ा कर देते हैं। समझते हैं हम बदनामी से, पाप से अन्याय-अत्याचार से दूसरों की नजर से बच गये। कई बार यह चाल सफल भी हो जाती है। समाज और संसार उसे निष्पाप एवं निर्दोष मानने लगते हैं और निर्दोष को दोषी, पर हमें यह भुला देना चाहिए कि उस सर्वदृष्टा, न्यायकारी सत्ता से कुछ भी छिपा नहीं। कुछ समय के लिए हम समाज और उसके लोगों को भुलावे और छलावे में रख सकते हैं, पर सही-गलत, दोष-निर्दोष, न्याय-अन्याय के निर्णय में निष्णात, कण-कण में संव्याप्त उस ''सहस्र शीर्षा:'' पुरुष की आँखों को धोखा नहीं दे सकते। उसकी तीक्ष्ण आँखें सब कुछ देखती व उचित-अनुचित का सूक्ष्म हिसाब रखती हैं। इसी के आधार पर व्यक्ति को लोक एवं परलोक में पुण्य का पारितोषिक मिलता तथा पाप का दण्ड भोगना पड़ता है। अगले जन्म में वही प्रारब्ध भोग बनता एवं आनन्द-ऐश्वर्य तथा रोग-शोक बनकर प्रकट होता है। अस्तु हमें धोखाधड़ी की धारणा को न सिर्फ त्याग देना चाहिए, वरन् अन्याय-अत्याचार को पोषण देने वाले कार्यों से भी बचना चाहिए। समझदारी इसी में है और सर्वोपरि मनुष्य की गरिमा भी।

पहले मन को संस्कारित कीजिए

मन की दो सर्वज्ञात विशेषताएँ हैं—चंचलता एवं सुख-लिप्सा। बन्दर जैसी उछल-कूद, आवारा छोकरों जैसी मटरगश्ती, चिड़ियों की तरह यहाँ-वहाँ फुदकते फिरना, उसकी चपलवृत्ति को सन्तुष्टि पहुँचाते हैं। कल्पना के महलों की सृष्टि, कल्पना लोकों का तीव्र भ्रमण-विचारणा, उसकी शक्ति का बड़ा अंश तो इन्हीं भटकनों, जंजालों में नष्ट हो जाते हैं। शक्ति का यह व्यर्थ छीजन रोककर उसे सुनिश्चित एवं सार्थक प्रयोजन में केन्द्रित करना ही योगाभ्यास है। शक्तियों का यह सही उपयोग जीवन में स्पष्ट और आश्चर्यजनक परिणाम सामने लाता है। पिछड़ेपन के स्थान पर प्रगतिशीलता आ जाती है। दरिद्रता समृद्धि में परिणत हो जाती है। भटकाव की जगह प्रचण्ड पुरुषार्थ प्रवृत्ति पनपने पर परिस्थितियाँ अनुकूल बनने लगती हैं और साधन संचित होने लगते हैं। लौकिक सफलताएँ भी लक्ष्य केन्द्रित पुरुषार्थ का ही परिणाम होती हैं। मन की भटकन रोककर ही उसे लक्ष्योन्मुख बनाया जा सकता है।

यही सधा हुआ मन आत्मिक क्षेत्र में लगाये जाने पर सुषुप्त शक्ति केन्द्रों को जाग्रत व क्रियाशील बनाता है और दिव्य क्षमताएँ प्रकाश में आती हैं। अन्तश्चेतना का परिष्कार सामान्य व्यक्ति को महामानव स्तर पर ले जाकर ही रहता है। प्रगति का सम्पूर्ण इतिहास मन:शक्ति के पुंजीभूत लक्ष्य केन्द्रित पुरुषार्थ की ही यश गाथा है। चंचलता की प्रवृत्ति को पुरुषार्थ की प्रवृत्ति में परिवर्तित करने का पराक्रम ही प्रगति का सार्वभौम आधार रहा है।

मन की दूसरी प्रवृत्ति है—सुख-लिप्सा। शारीरिक सुखों के भोग का माध्यम है—इन्द्रियाँ। उनके द्वारा विभिन्न वासनाओं को स्वाद मिलता है। पेट और प्रजनन के सम्बन्धित सुखों के लिए तरह-तरह की चेष्टाओं में ही मन उलझा रहता है और इन सुखों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा ही नहीं देता, बल्कि इनकी मात्र कल्पनाएँ करने की में भी बहुत अधिक समय नष्ट करता है। फिर इन भौतिक सुखों के लिए साधन जुटाने में भी मन को जाने कितने ताने-बाने बुनने पड़ते हैं। इन्द्रियों की प्रिय वस्तु या व्यक्ति देखने, सुनने, छूने, सूँघने अथवा स्वाद लेने की लिप्साएँ मन को ललक से भर देती हैं और वह उसी दिशा में लगा रहता है। अहंकार की पूर्ति के लिए मन औरों पर प्रभाव डालने हेतु तरह-तरह की चेष्टाएँ करता है और व्यक्ति भाँति-भाँति के ठाट-बाट बनाता है। संग्रह और स्वामित्व की इच्छाएँ भी अनेक विधि प्रयत्नों का कारण बनती हैं। इन सभी इच्छाएँ, आकांक्षाओं की प्यास को व्यक्त करने के लिए ही तृष्णा शब्द का प्रयोग होता है। अहं-भावना पर आघात पहुँचते ही प्रतिशोध की उत्तेजना प्रबल हो उठती है। इच्छित विषय पर अपना हक मान लेना और फिर उसके न प्राप्त होने या प्राप्ति में बाधा पड़ने पर भड़क उठना भी, अहंता पर आघात के ही कारण होता है। यह उत्तेजना ही क्रोध है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि सम्पूर्ण विकारी-समूह वस्तुत: मन में उठने वाली प्रतिक्रियाएँ मात्र हैं, जो भौतिक सुख की लिप्साओं के कारण उठती रहते हैं। लिप्सा की इस ललक की दिशा को उलट देना ही 'तप' है। वह दूसरी दिशा भौतिक सुखों की वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति से होने वाले क्षणिक सुखों की नहीं है। वरन् आनन्द की है। आनन्द उपभोग से नहीं, उत्कर्ष और उत्सर्ग से प्राप्त होता है। सुख मन का विषय है, जबकि आनन्द और आत्म-संतोष आत्मा का। सुख-लिप्सा का अभ्यस्त मन आनन्द के अस्वाद को नहीं जान पाता और जिसे जाना ही नहीं, उसके प्रति गहरी स्थायी प्रीति, सच्चा आकर्षण सम्भव नहीं। आनन्द की आकांक्षा विषय-लोलुप मन में प्रगाढ़ नहीं होती। उसके लिए तो मन का प्रशिक्षण आवश्यक है। यह प्रशिक्षण-प्रक्रिया ही तप है। तपस्वी को कष्ट इसी अर्थ में सहना पड़ता है, कि अभ्यस्त सुख का अवसर जाता रहता है। शारीरिक सुख-सुविधाएँ सिमटती हैं, मानसिक आमाद-प्रमोद का भी अवकाश नहीं रहता है और आदर्श निष्ठ आचरण आर्थिक समृद्धि के भी आड़े ही आता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्यक्ष तीर पर तो, ऐसे परिणामें के लिए किया जाने वाला प्रयास मूर्खता ही प्रतीत होगा। लेकिन श्रेष्ठ उपलब्धियों का राज-मार्ग यही है।

किसान, विद्यार्थी, पहलवान, श्रमिक, व्यवसायी, कलाकार आदि को भी अपनी प्रगति व उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए बाल-चंचलता से मन को विरत ही करना पड़ता है और अपने नीरस प्रयोजनों में ही मन:शक्ति नियोजित करनी पड़ती है। शौक-मौज के अभ्यस्त उनके संगी उन लोगों की ऐसी लक्ष्योन्मुख प्रवृत्तियों का मजाक भी उड़ाते हैं। लेकिन सभी जानते हैं कि अन्तत: बुद्धिमान और प्रगतिशील ऐसे ही लोगों को माना जाता है, जो चित्त की चपलता को नियन्त्रित कर उसे अपने लक्ष्य की ओर ही लगाये रहते हैं—वह कृषि का क्षेत्र हो या शिक्षा का शरीर-सौष्ठव का हो या आर्थिक समृद्धि का, कला-कौशल का हो या वैज्ञानिक आविष्कार का अथवा दार्शनिक चिन्तन-मनन का।

भारतीयों मनीषियों के मन को संस्कारित व परिष्कृत करने लिए पंचकोशीय साधना विधान में मानवीय कोश की साधना का एक स्वतन्त्र चरण हा रखा है। मनोमय कोश का अर्थ है, विचारशीलता विवेक बुद्धि।

मनोमय कोश, अर्थ और साधना

मन कोई ऐसा तत्व नहीं है जो केवल मनुष्य के पास ही है। वह हर जीवित प्राणी के पास होता है। कीट-पतंग भी उससे रहित नहीं हैं। परन्तु मनोमय कोश के व्याख्याकारों ने उसे दूरदर्शिता, तर्क प्रखरता एवं विवेकशीलता के रूप में विस्तारपूर्वक समझाया है। मन की स्थिति हवा की तरह है वह दिशा विशेष तक सीमित न रहकर स्वेच्छाचारी वन्य-पशु की तरह किधर भी उछलता-कूदता है? पक्षियों की तरह किसी भी दिशा में चल पड़ता है। इसे दिशा देना, चिन्तन को अनुपयोगी प्रवाह में बहने से बचाकर उपयुक्त मार्ग पर सुनियोजित करना मनस्वी होने का प्रधान चिन्ह है। मनोनिग्रह-मनोजय इसी का नाम है। जंगली हाथी को पकड़कर अनुशासित बनाने का काम तो कठिन है; पर इसकी उपयोगिता अत्यधिक है। जंगली हाथी फसलें उजाड़ते और झोपड़ियाँ तोड़ते हैं और भूखे-प्यासे अनिश्चित स्थिति में भटकते हैं किन्तु पालतू बन जाने पर उनकी जीवनचर्या भी सुनिश्चित हो जाती है और साथ ही वे अपने मालिक का भी बहुत हित साधन करते हैं। सधे हुए मन की तुलना पालतू हाथी से की जा सकती है और अनियन्त्रित मन को उन्मत जंगली हाथी कहा जा सकता है।

आवेग और आवेशग्रस्त होकर उन उत्तेजनाओं से प्रेरित मनुष्य कुछ भी सोच सकता है और कुछ भी कर गुजर सकता है। वह चिन्तन और कर्त्तव्य इतना असंगत हो सकता है कि फलस्वरूप जीवन भर पश्चाताप करना पड़े और असीम हानि उठानी पड़े। किन्तु आवेगों के प्रवाह में बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और कुछ सूझ नहीं पड़ता। उन्मत्तों की तरह दूसरों की हत्या, आत्म-हत्या न सही ऐसे काम तो सहज ही बन पड़ते हैं जिन पर शान्त: मन:स्थिति में विचार करने पर स्वयं ही अपने घर क्रोध आता है। असंख्य मनुष्य ऐसे ही उद्धत कर्म करते हैं अथवा मरे हुए मन से अकर्मण्य बने हुए जीवन की लाश ढोते हैं। स्थिति से उबरने का कोई प्रकाश भी उन्हें नहीं मिलता।

प्राय: एक समय में एक प्रकार के निचार एक ही दिशा में दौड़ते हैं। यह प्रवाह जिधर भी चलता है, उधर लाभ ही लाभ, औचित्य ही औचित्य दिखाई पड़ता है, जबकि वास्तविकता कुछ और ही होती है। प्रवाह को रोककर, धारा द्वारा उससे बाँध या बिजली-घर बनाये जाते हैं। मन के प्रवाह को जिस दूसरी प्रतिरोध शक्ति से रोका जाता है, उचित अनुचित के मंथन से उलट-पुलटकर नवनीत निकाला जाता है, तब पता चलता है कि क्या सोचना सार्थक है क्या निरर्थक ? लाभ किसमें हैं और हानि किसमें ? तत्काल के क्षणिक लाभ को ही सब कुछ न मानकर भविष्य के चिरस्थायी परिणाम का विचार करने में समर्थ एवं परिपक्व बुद्धि मन के प्रवाह को अवांछनीय दिशा में रोक सकती, उसे उचित में नियोजित कर सकती है। इस परिष्कृत चिन्तन-प्रक्रिया को मनोमय कोश की उपलब्धि कह सकते हैं।

महामनीषी, तत्वदर्शी, शोधकर्ता एवं मनस्वी व्यक्ति ही महामानवों की पंक्ति में बैठ सकने में समर्थ हुए हैं। उनने संसार का नेतृत्व किया है और अपने महान कर्त्तव्यों से इतिहास को यशस्वी किया है। इन सभी की यह प्रमुख विशेषता रही है कि उन्होंने अपने मन पर अंकुश करना और उसे दिशा देना सीखा। सामान्य लोगों का मन हवा के साथ उड़ते-फिरते-वाले तिनके की तरह अपनी मानसिक चेतना को निरर्थक अथवा अनर्थ मूलक स्थिति में भटकने देता है, जबकि मनस्वी व्यक्ति उसकी प्रत्येक लहर को सुनियोजित करता है। उचित और अनुचित की कसौटी का अंकुश रखकर मन को उसी दशा में, उसी गति से चलने देता है, जिससे कुछ महत्वपूर्ण हित साधन हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इच्छाओं को मोड़ने में, चिन्तन को सुनियोजित करने में सफलता प्रखर-तर्क बुद्धि से उत्पन्न होती है और आत्म-दमन कर सकने की साहसिकता से मनोनिग्रह बन पड़ता है। एकाग्रता का, चित्त-वृत्ति निरोध का बहुत माहात्म्य योगशास्त्रों में बताया गया है। इसका अर्थ चिन्तन प्रक्रिया को ठप्प कर देना, एक ही ध्यान में निमग्न रहना नहीं, वरन् यह है कि विचारों का प्रवाह नियत निर्धारित प्रयोजन से ही पूर्वत: लगा रहे। यह कुशलता जिनकी करतलगत हो जाती है और वे जो भी लक्ष्य निश्चित करते हैं उसमें प्राय: अभीष्ट सफलता ही प्राप्त करके रहते हैं। बिखराव की दशा में चिन्तन की गहराई में उतरने का अवसर नहीं मिलता। अस्तु किसी विषय में प्रवीणता और पारंगतता भी हाथ नहीं लगती। संसार में विशेषज्ञों का स्वागत होता है, यहाँ हर क्षेत्र में 'ए-वन' की माँग है और यह उपलब्धि कुशाग्र बुद्धि पर नहीं, सघन मनोयोग के साथ सम्बद्ध है। यह मनोयोग का वरदान प्राप्त करने के लिए जो प्रयास व्यायाम करने पड़ते हैं, उन्हें ही मनोमय कोश की साधना कहते हैं।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र में घुसे मनोविकारों को दुष्प्रवृत्तियों को निरस्त करने के लिए लड़ा जाने वाला महाभारत हो, साथ ही इसमें धर्म राज्य की—राम राज्य की स्थापना का लक्ष्य संकल्प भी जुड़ा हुआ हो।

इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक अनुशीलन प्रयत्न ध्यान देने योग्य हैं। बहुत समय पहले शारीरिक रोगों का कारण, वात पित्त, कफ, अपच, मलाव-रोध, ऋतु, प्रभाव, विषाणुओं का आक्रमण आदि माना जाता है। नवीनतम शोधों शरीर पर पूरी तरह मन:सत्ता का अधिकार मानती हैं और बताती हैं कि बाह्य कारणों से उत्पन्न हुए रोग तो शरीर की जीवनी शक्ति स्वयं ही अच्छे कर लेती है अथवा मामूली से उपचार से वे अच्छे हो सकते हैं। जटिल रोग तो आमतौर से मनोविकारों के ही परिणाम होते हैं। उनका निराकरण दवा-दारू से नहीं, मानसिक परिशोधन से ही सम्भव हो सकता है।

शारीरिक ही नहीं मानसिक रोगों का भी यही प्रधान कारण है। दुष्कर्म अथवा दुर्बुद्विग्रस्त व्यक्ति शारीरिक ही नहीं मानसिक रोगों से भी ग्रसित रहते हैं। उन्माद विस्फोट की स्थिति न आये तो भी असन्तुलन से ग्रस्त व्यक्ति अर्ध-विक्षिप्त स्थिति में पड़े रहते हैं। अकारण दु:ख पाते और अकारण दु:ख देते हैं। इनकी मन:स्थिति कितनी दयनीय होती है यह देखने भर से बड़ा कष्ट होता है। शारीरिक व्यथाओं से पीड़ितों की अपेक्षा मनोरोगों से ग्रस्त लोगों की संख्या ही नहीं पीड़ा भी अधिक है। इन व्यथाओं से छुटकारे का उपाय अस्पतालों में नहीं, मानसिक संशोधन की साधनाओं पर ही अवलम्बित है। वे उपाय, उपचार अन्य प्रकार भी हो सकते हैं, पर अध्यात्म विज्ञान के आधार पर उसे मनोमय कोश से, साधना से अधिक सुविधापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है।

काय-विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि मस्तिष्क के साथ जुड़े हुए ज्ञान तन्तु सारे शरीर में फैले हैं। उन्हीं के माध्यम से इस जटिल यन्त्र का संचालन होता है। इन्द्रियों की क्रियाशक्ति, अनुभूतियाँ, सरसताएँ मस्तिष्क में ही जाकर खुलती हैं। इन्द्रिय गोलक तो मात्र सूचनाएँ संग्रह करने और उन्हें मस्तिष्कीय केन्द्रों तक पहुँचाने भर का काम करते हैं। कोई मानसिक कष्ट होने पर सारा शरीर शिथिल हो जाता है और क्रियाशक्ति में स्पष्टत: अस्त-व्यस्तता दीखने लगती है। भय, चिन्ता, शोक, निराशा जैसे प्रसंगों पर किसी भी मनुष्य का चेहरा उदास और सारा शरीर शिथिल देखा जा सकता है। क्रोध, अपमान, द्वेष, प्रतिशोध की स्थिति में किस प्रकार अंग-प्रत्यंगों में उत्तेजना दीख जाती है, इसे किसी आवेशग्रस्त पर छाये हुए भावोन्माद को देख कर सहज ही देखा, समझा जा सकता है। प्रसन्न और निश्चिन्त रहने वाले स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी बनते हैं। इसके विपरीत क्षुब्ध रहने वाले अकारण दुर्बल होते जाते हैं और अकाल मृत्यु से असमय मरते हैं। यह तथ्य स्पष्ट करते हैं कि शरीर-संस्थान पर आहार-विहार का, जलवायु का जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक भाव-संस्थान का होता है।

शरीर में स्नायुमण्डल द्वारा तथा नलिकाविहीन ग्रन्थियों द्वारा भावनाएँ क्रियाशील होती हैं। हमारे सम्पूर्ण शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। सामान्यत: स्नायु उज्ज्वलवर्णी होते हैं और तार की तरह ठोस होते हैं। हमारी सभी पेशियाँ स्नायुओं के ही आधार पर चलती हैं। प्रत्येक पेशी में पहुँचने वाला मुख्य स्नायु सुतली की तरह मोटा होता है। फिर उसकी शाखा-प्रशाखाएँ अधिकाधिक पतली होती चली जाती हैं। कई प्रशाखाएँ तो बारीक सूत जैसी पतली होती हैं।

सम्पूर्ण स्नायुमण्डल के दो भाग हैं—(१) ऐच्छिक (२) अनैच्छिक। चलने-फिरने, झुकने-मुड़ने, वस्तुएँ उठाने, रखने आदि की क्रियाओं में हम अपने हाथ-पैर आदि की इच्छानुसार हिलाते हैं। यह ऐच्छिक स्नायुओं के ही कारण है। अनैच्छिक स्नायुओं पर हमारा ऐसा अधिकार नहीं होता। वे शरीर की आन्तरिक क्रियाएँ सम्पादित करते हैं जैसे—हृदय की धड़कनें, साँसों का आना-जाना आदि।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनैच्छिक स्नायुमण्डल का केन्द्र मस्तिष्क का एक लघु अंश हाइपोथेलामस होता है। यही 'हाइपोथेलामस' नारी व पौरुष ग्रन्थियों को भी नियन्त्रित करता है। साथ ही 'मोनोएमीन आक्सीडेज' नामक किण्वज (एन्जाइम) भी सम्पूर्ण शरीर में विकीर्ण होते हुए भी केन्द्रीय स्नायविक प्रणाली में विशेष रूप से जमा रहता है। 'हाइपोथेलामस' द्वारा पिट्यूटरी ग्रन्थि भी उत्तेजित होती है और उनसे विभिन्न हार्मोन्स निकलते हैं जो भावनाओं का परिणाम भी होते हैं और नई भावनाओं का कारण भी। किसी नई परिस्थिति के उपस्थित होने पर नलिकाविहीन ग्रन्थियों पर दबाव पड़ता है और वे विभिन्न ह्यारमोनों को स्रावित करती हैं। इन हारमोनों की शरीर में प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया उसी के अनुरूप भावना समूहों को जन्म देती है। जैसे किसी रोग के कीटाणुओं के संक्रमण-दबाव से पिट्यूटरी ग्रन्थि ने कोई हारमोन छोड़ा, इससे शरीर में तेज हलचल मच गई, व्यक्ति को अस्वथता महसूस होने लगी और वह खाट पर पड़ गया। अब बीमारी की दशा में तरह-तरह की भावनाएँ जो अचेतन में दबी थीं, उभरने लगीं। उनके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक प्रतिक्रियाएँ भी पैदा होने लगती हैं।

मनोमय कोश का निवास मस्तिष्क में बताये जाने का अर्थ केवल इतना ही है कि उसका केन्द्रीय कार्यालय वहीं है। उसके सूक्ष्म अवयव उसकी शाखा-प्रशाखायें तो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त-विस्तृत हैं। मस्तिष्क के जीवाणु अन्य जीवाणुओं से अधिक समझदार और अधिक अनुभवी होते हैं; इसीलिए वे शेष जीवाणुओं के अगुआ नेता कहे जाते हैं। वे जिस दिशा में चलते हैं, शेष जीवाणु भी उसी दिशा में, धारा में बहने लगते हैं। सम्पूर्ण सूक्ष्म शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न, उल्लसित, प्रगतिशील बनाये रखने के लिए मस्तिष्कीय-स्थिति वैसी होनी जरूरी है। नेता ही निराश-हताश, कुण्ठित-त्रस्त हुआ, तो प्रगति की क्या आशा की जा सकती है। नेता का संवेग समस्त अनुयायियों को प्रभावित करता है।

वियना के मनोचिकित्सक डा० फैंकल का मत है कि मानसिक धरातल ही शारीरिक स्वास्थ्य का आधार है। मानसिक असन्तुलन का कारण जीवन की सार्थकता को न समझना है। इसीलिए उन्होंने 'लौगोथैरेपी' या 'अर्थबोध चिकित्सा' नाम की चिकित्सा पद्धति विकसित की है। डा० फैंकल की मान्यता है कि जिस व्यक्ति को अपने जीवन और कार्य की सार्थकता का बोध नहीं वह स्वस्थ नहीं रह सकता। मनुष्य जीवन में लक्ष्य और उनकी सिद्धि ही आनन्द का आधार है। डा० फैंकल की चिकित्सा पद्धति में रोगी से प्रिय-अप्रिय सभी विषयों पर चर्चा कर, उसे जीवन की सार्थकता की तलाश की प्रेरणा दी जाती है। व्यक्ति को जैसे ही जीवन में सार्थकता की अनूभूति हो उठती है, वह अपने भीतर निहित शक्तियों का स्मरण कर आत्मविश्वास से भर उठता है और धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगता है। मनःक्षेत्र की स्वस्थता उसके स्थूल शरीर को भी स्वस्थ बना देती है।

सूक्ष्म शरीर की हलचलों का स्थूल शरीर पर स्पष्ट एवं निश्चित परिणाम होता है। तन्त्रकीय रोगों का कारण दबे हुए गन्दे विचार ही होते हैं। शरीर-शास्त्रियों का भी मत है कि मात्र मानसिक-चित्रों के आधार पर ही अनेक शारीरिक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ''इन्फ्लुएन्स ऑफ द माइन्ड अपान द बॉडी'' नामक पुस्तक के लेखक डा० डुके ने लिखा है—'' विक्षिप्तता, मूढ़ता, अंगों का निकम्मा हो जाना, पित्त, पाण्डुरोग, केश-पतन, रक्ताल्पता, घबराहट, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय में बच्चे का अंग-भंग हो जाना, चर्मरोग, फुन्सियाँ, फोड़े, एग्जिमा आदि अनेक स्वास्थ्यनाशक रोग मात्र मानसिक क्षोभ तथा भावनात्मक उद्वेलन, निषेधात्मक चिन्तन, सूक्ष्म शरीर की विकृतियाँ हैं, जिनका स्थूल शरीर पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार परिष्कृत दृष्टिकोण, स्वस्थ-उदात्त चिन्तन, आदर्शवादी विचारधारा सूक्ष्म शरीर को तेजस्वी, प्रखर बनाती है और उसका श्रेष्ठ प्रभाव स्थूल शरीर पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

विधेयात्मक विचारों की, ऊर्ध्वमुखी चिन्तन की आश्चर्यजनक महत्ता के प्रतिपादन में डा० बैनेट ने स्वयं को ही प्रस्तुत किया है। ५० वर्ष की आयु तक डा० बैनेट निराशा और अवांछनीय चिन्तन के कारण अपना स्वास्थ्य पूरी तरह गँवा बैठे। उन्हें जब ऊर्ध्वगामी चिन्तन की इस असीम उपादेयता का पता चला तो उन्होंने अपना जीवन-क्रम ही बदल डाला। मन की जड़ता और विषय-विचारों का जुआ उनने उतार फेंका, हृदय को श्रद्धा आस्था से भरा, सदैव प्रसन्न प्रफुल्ल रहने की आदत बना ली। २० वर्षों के अपने इस जीवन का स्वर्गीय सुख से ओत-प्रोत बनाते हुए डा० बैनेट ने अपनी ५० वर्षीय फोटो तथा ७० वर्षीय फोटो भी इस पुस्तक में छापी है। पहली में उनका चेहरा झुर्रियों से पिचके गाल, धँसी आँखों के कारण मनहूस दिखाई देता है, जबकि ७० वर्ष की आयु में वे स्वस्थ सशक्त दिखाई देते हैं, झुर्रियाँ न जाने कहाँ चली गईं, चेहरे में उद्दीप्ति है और युवकों जैसी सक्रियता।

अब तक किये गये ऐसे ही विविध आधुनिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि मन का, मस्तिष्क का कष्ट प्रत्येक जीवाणु को कष्ट में डाल देता है। घृणा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईर्ष्या, क्रोध का अनिष्ट प्रभाव समस्त जीवाणुओं में तुरन्त दौड़ जाता है, झलक उठता है। मस्तिष्क में प्रसन्नता का भाव आते ही प्रत्येक जीवाणु प्रसन्न पुलकित हो उठता है। ये सभी जीवाणु परस्पर गहन आत्मीयता और अभिन्नता का भाव रखते हैं। प्रत्येक जीवाणु की दशा से सभी प्रभावित होते हैं, इनका सुख-दुःख मिला-जुला ही होता है। इनका पारस्पारिक सौहार्द्र-सद्भावना अनूठा है। सच्ची मैत्री, प्रगाढ़ आत्मीयता सहानुभूति के ये अनूठे उदाहरण हैं। कल्पना करें कि एक व्यक्ति को तेज भूख लगी है। सुस्वादु भोजन का थाल सामने है, उसी समय किसी प्रियजन की मृत्यु का तार मिलता है। उसे पढ़ते ही मस्तिष्क में उस प्रियजन की संचित स्मृति सहसा जाग्रत हो उठती है। मन में आत्मीय संवेदना उमड़ पड़ती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं की इस प्रतिक्रिया का तत्काल सम्पूर्ण शरीर के जीवाणुओं पर प्रभाव पड़ता है। जीभ सूखने लगती है। भूख बढ़ाने वाले जीवाणु जो उछल-कूद मचा रहे थे, चीख-चीखकर भोजन की माँग कर रहे थे, सहमकर शान्त, निष्क्रिय, दुबके से बैठ जाते हैं। हृदय और दूसरे अंग भी निष्प्राण से हो चलते हैं। दिल-डूबने लगता है, आँखों के सामने अन्धेरा छा जाता है, शरीर निढाल हो जाता है। समस्त अंगों पर यह प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि मस्तिष्कीय जीवाणुओं की भावदशा का तत्काल प्रभाव सम्पूर्ण शरीरस्थ जीवाणु-समूहों पर पड़ता है।

'ओल्ड एज:इट्स काफ एण्ड प्रिवेन्शन' नामक पुस्तक में उसके रचयिता सुप्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक तथा लेखक डा० बैनेट ने एक बहुत ही मनोरंजक किन्तु शिक्षाप्रद घटना दी है। एक १९ वर्षीय फ्रान्सीसी युवती ने एक अमेरिकन नव-युवक से विवाह का निश्चय किया। युवक निर्धन था सो यह तय हुआ कि पहले वह अमेरिका जाकर धन कमायेगा और लौटकर शादी करेगा। युवक ने ३ वर्ष में पर्याप्त धन कमा लिया, पर दुर्भाग्य से कोई मुकद्दमा लग जाने के कारण वह १५ वर्ष तक फ्रान्स नहीं लौट सका। १५ वर्ष बाद जब वह वापस लौटा तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसकी मँगेतर का स्वास्थ्य, सौन्दर्य बिलकुल वैसा ही है जैसा वह १९ वर्ष पूर्व था। ३४ वर्ष की अधेड़ अवस्था हो जाने पर उसमें १९ वर्षीय नव-युवती के गुण विद्यमान थे।

घटना का विवेचन करते हुये बैनेट महोदय लिखते हैं—प्रकृति ने मनुष्य शरीर की संचालन प्रक्रिया इस प्रकार रखी है कि शरीर का प्रत्येक कोश (सैल) ८० दिन पीछे पुराना होकर मैल के रूप में उसी प्रकार बाहर निकल जाता है, जिस प्रकार समुद्री लहरों में निरन्तर ज्वार-भाटे से समुद्र की गन्दगी तटों पर जमा होती रहती है। कोश-परिवर्तन की यह प्रक्रिया आयु बढ़ने के साथ क्षीण होती रहती है, उसी का नाम वृद्धावस्था है किन्तु इस घटना ने इस प्राकृतिक व्यवस्था को ही उलट दिया, ऐसा क्यों ?

इसका उत्तर युवती के मुँह से दिलवाते हुये श्री बैनेट लिखते हैं कि—मैं प्रतिदिन प्रातःकाल एक आदमकद शीशे के सम्मुख खड़ी होकर अपना चेहरा देखती और मन ही मन अनुभव करती कि मैं ठीक वैसी ही हूँ जैसी कल थी। दिन के परिवर्तन ने मेरे शरीर में कोई प्रभाव नहीं डाला। इच्छा शक्ति की यह दृढ़ता मुझे दिन भर पुलकित और प्रसन्न बनाये रखती। उसी का फल है जो मैं जैसी १५ वर्ष पूर्व थी वैसी ही आज भी हूँ।'' सूक्ष्म शरीर के शोधन के विचारों को ऊँचा उठाने की संकल्प की महत्ता उन्होंने अमरीका के अध्यात्म-परायण व्यक्ति डा० मारडन की पुस्तक ''लौह इच्छा शक्ति'' (एन आइरन विल) से समझी, जिसमें बताया गया है—मनुष्य अपने विचार नये कर ले, चरित्र को ऊँचा उठाले तो अपना शरीर ही बदल सकता है।'' यह स्वाध्याय उनके लिये तो औषधि बना ही, सैकड़ों को नया जीवन देने वाला है। प्रेम, मैत्री, दया, करुणा और परोपकारी विचारों को धारण कर कोई भी इसका प्रत्यक्ष लाभ ले सकता है।

खोपड़ी के ऊपर या नीचे की रक्तवाहिनियों की पेशियाँ भावनाओं के अनुसार फैलती-सिकुड़ती व तीव्र सम्वेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करती हैं।

अस्वस्थ भावनाएँ विभिन्न शारीरिक रोगों का कारण बनती हैं। सामान्य सिर-दर्द से लेकर ''माइग्रेन'' नामक कठिन सिर-दर्द भावनात्मक तनाव से होता है। इस तनाव से खोपड़ी की रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ती हैं और इससे सिर दर्द शुरू हो जाता है। आज तो यह पाया जाता है कि सिर-दर्द की, सी घटनाओं में से पचासी का कारण भावनात्मक तनाव होता है।

भावना-क्षोभ के कारण पेशियों में उत्पन्न तनाव के कारण कई बार लोग भोजन के बाद ऐसा अनुभव करते हैं कि कलेजे पर बोझ आ पड़ा है और भोजन नीचे सरक ही नहीं रहा है। अधिक तनाव होने पर उबकाई आने लगती हैं, जी मिचलाने लगता है।

भावनात्मक तनाव से उत्पन्न स्नायु-रोगों में डकारें आना, पेट में ऐंठन होना, विभिन्न वायु-विकार, अनेक त्वचा-विकार, एग्जिमा, खुजली आदि होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमर-दर्द के बारे में अब ऐसा ज्ञात हुआ है कि अधिकांश मामलों में इसका कारण भावनात्मक तनाव ही होता है।

यह जान लेने पर कि भावनात्मक तनावों एवं विकृतियों से ही अधिकांश रोग पैदा होते हैं, यह प्रश्न अनेकों को कचोटता है कि भावनाओं पर नियन्त्रण कैसे हो ? इसका एक ही सरल मार्ग है—समझदारी भरे दृष्टिकोण का नित्य-प्रति के जीवन में अभ्यास। बिना अभ्यास के यह दृष्टिकोण व्यावहारिक जीवन में नहीं उतरता। जिन्दगी को बोझ न मानते हुए, खेल-भावना से जीना, अभ्यास द्वारा ही सम्भव है। अपनी सीमाओं को पहचानना, शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग की व्यवस्था करना, 'मैं-मैं' की चीख-पुकार से मुक्त होकर अपने दायित्वों को समझना और निभाना तथा सृजनात्मक वृत्तियों का जीवन में निरन्तर विकास करना ही एकमेव राजमार्ग है।

सामान्यतः कठोरता, क्रोध, बात-बात में लड़ बैठने आदि को हम भ्रान्तिवश शक्ति का पर्याय मान बैठते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक इस सबको 'बचकानी हरकतें' मानते हैं। ये दुर्बलता के प्रतीक हैं। शक्तिशाली व्यक्ति विनम्र एवं दृढ़ होता है। क्रोध और झगड़ालूपन तो शक्तिहीनता की उपज हैं। सादगी-संयम का अभ्यास ही शक्ति का स्रोत है। किन्तु अपनी दुर्बलताओं पर व्यर्थ की खीज भी लाभकर न होगी। धीरे-धीरे ही कुसंस्कार चित्त तल पर जमते हैं और धीरे-धीरे ही उनका उन्मूलन सम्भव है। सतत् अभ्यास ही सर्वोत्तम उपचार है। इस बात को सदा ध्यान में रखा जाय कि मन की कुटिलता और अनैतिक कर्म ही रोग का आधार हैं तथा मन की शुचिता, स्नेह, करुणा और व्यापक मानवीय प्रेम द्वारा इन रोगों को मिटा सकना सरलता से सम्भव है।

मस्तिष्क की धुलाई-सफाई वैज्ञानिक उपकरणों से भी सम्भव हो सकती है। फिर अध्यात्म साधना के उपचार तो उससे अधिक ही सशक्त-समर्थ होते हैं। उनका प्रभाव तो और भी अधिक होना चाहिये।

इलेक्ट्रिकल स्टीम्यूलेशन आफब्रेन (ई. एस. बी.) पद्धति के अनुसार कई एशियन विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से मस्तिष्क की धुलाई (ब्रेन वाशिंग) में सफलता प्राप्त कर ली है। अभी यह बन्दर, कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, चूहे जैसे छोटे स्तर के जीवों पर ही प्रयोग किये गये हैं। आहार की रुचि, शत्रुता, मित्रता, भय, आक्रमण आदि के सामान्य स्वभाव को जिस प्रकार चरितार्थ किया जाना चाहिए, उसे वे बिलकुल भूल जाते हैं और विचित्र प्रकार का आचरण करते हैं। बिल्ली के सामने चूहा छोड़ा गया तो वह आक्रमण करना तो दूर उससे डरकर एक कोने में जा छिपी। क्षणभर में एक-दूसरे पर खूनी आक्रमण करना, एक आध मिनट बाद परस्पर लिपटकर प्यार करना, यह परिवर्तन उस विद्युत क्रिया से होता है, जो उनके मस्तिष्कीय कोषों के साथ सम्बद्ध रहती है। यही बात मनुष्यों पर भी लागू हो सकती है। मानव मस्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होता है, उसमें प्रतिरोधक शक्ति भी अधिक होती है इसलिए उसमें हेर-फेर करने के लिए प्रयास भी कुछ अधिक करने पड़ेंगे और सफलता प्राप्त करने में देरी भी लगेगी, पर जो सिद्धान्त स्पष्ट हो गये हैं उनके आधार पर यह निश्चित हो गया है कि मनुष्य को भी जैसा चाहे सोचने, मान्यता बनाने और गतिविधियाँ अपनाने के लिए विवश किया जा सकता है।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र की धुलाई सफाई ही नहीं करता, वरन् उसे समुन्नत सुसज्जित एवं सुसंस्कृत बनाने का काम भी बहुत हद तक पूरा कर सकती है।

मनोमय कोश शरीर और मस्तिष्क के समूचे क्षेत्र को अपने अंचल में समेटे हुए है। वह इन दोनों क्षेत्रों को प्रभावित करता है। अन्तःकरण के अस्त-व्यस्त और विकृत स्थिति से बने रहने पर उसकी प्रतिक्रिया शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालती है। व्यक्तित्व लड़खड़ा जाने पर दृष्टिकोण और व्यवहार दोनों ही गड़बड़ाते हैं। फलतः गतिविधियाँ अवांछनीयता से भर जाती हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में विपत्तियाँ ही उत्पन्न होंगी। अवरोध ही खड़े होंगे। कलह और संकट आक्रमण करेंगे। समूचा जीवन ही नरक बन जायेगा। इस नारकीय यन्त्रणा से छुटकारा कोई और नहीं दिला सकता क्योंकि इस विपत्ति का दोष भले ही किसी पर थोपा जा सके उसका कारण अपना आपा ही होता है। मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थिति बनने का तथ्य इतना स्पष्ट है कि उसे झुठलाये जाने की कहीं कोई गुंजायश नहीं है। अपने आप में परिवर्तन किये बिना हम इस नरक से अन्य किसी तरह उबर नहीं सकते। जीवनक्रम में उत्पन्न विविध-विधि अवरोधों से छुटकारा पाये बिना हमारा उद्धार हो नहीं सकता, समस्याओं और विपन्नताओं से त्राण मिल नहीं सकता।

समृद्धि, प्रगति और सुख-शान्ति की समस्त सम्भावनाएँ बीज रूप में अपने ही भीतर भरी पड़ी हैं। सत्प्रवृत्तियों की देवी और सद्भावनाओं के देवता ही हमें दिव्य वरदानों से सुसम्पन्न बनाते हैं। अन्तरंग की विभूतियाँ ही बहिरंग की सिद्धियाँ बनकर सामने आती हैं। आत्म-शोधन और आत्म-परिष्कार जीवन का सबसे बड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरुषार्थ माना गया है। इसे प्रत्यक्ष कल्प-वृक्ष की उपमा दी जा सकती है।

मनोमय कोश का विज्ञान और साधन हमारी मानसिक स्थिति के परिष्कार का ऋषि प्रणीत उपाय है। इस दिशा में कदम बढ़ाने पर हम हर दृष्टि से लाभान्वित ही होते हैं।

मन को कैसे वश में किया जाय?

साधारण मनुष्यों के मन में सांसारिक विषयों के संकल्प सदैव उठा करते हैं, पर आध्यात्मिक विचारों को ग्रहण करने को वह शीघ्र प्रस्तुत नहीं हो सकता। इसका कारण यही है कि हमारा मन विकारों से भरा रहता है। उसे शुद्ध करना आसान काम नहीं है। निष्काम कर्म, जप, प्राणायाम आदि जैसे साधनों द्वारा उसे विकारों से मुक्त करना पड़ता है, तब उसकी प्रवृत्ति स्वभावतः अध्यात्म की ओर जाती है।

मन दर्पण के समान है। यदि दर्पण गन्दा हो तो आप अपना मुँह साफ नहीं देख सकते। जब मन मलीन हो तो उसमें ईश्वर को साफ नहीं देखा जा सकता। जब आध्यात्मिक प्रयत्नों द्वारा उसे शुद्ध बना लिया जाता है, तो ईश्वर का साक्षात्कार अवश्य होता है। यदि शुद्ध होकर मनुष्य का मन शास्त्रों के अध्ययन, ज्ञानियों के सत्सङ्ग और ध्यान के अभ्यास में निरन्तर लगे तो ज्ञान की वृद्धि होगी और दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जायेगी, जिससे परब्रह्म का सत्य ज्ञान होना सम्भव होगा। यज्ञ, दान, दया, वेदाध्ययन, सत्यभाषण—ये पाँचों मन को शुद्ध करने वाले हैं, छठी तपस्या है। तीर्थ-यात्रा भी मन को शुद्ध करती है। इसके द्वारा महात्माओं का सत्सङ्ग प्राप्त हो सकता है। जप निष्काम कर्म, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्य, सन्ध्या, तीर्थ-यात्रा, शम, दम, यम, नियम, स्वाध्याय, तप, व्रत, साधु-सेवा से सभी मन को शुद्ध करने के साधन हैं। निश्चय ही ऐसे शुद्ध हुए मन में पूर्ण आनन्द रहेगा। मन्त्र भी मन को शुद्ध करता है, पर तोते की तरह मन्त्र को केवल रटने से बहुत कम फल होता है। मन्त्र को भाव के साथ कहने से उसका आश्चर्यजनक फल होता है। जब तक मन्त्र में अपने ही मन की पूर्ण इच्छा-शक्ति नहीं भरी जायेगी, तब तक उसका बहुत ज्यादा प्रभाव नहीं हो सकता। सत्य भाषण और दया का अभ्यास मन को बहुत शुद्ध करने वाले व्यवहार हैं।

हमारी आँखें केवल देख सकती हैं। कान केवल सुन सकते हैं। जीभ केवल स्वाद ले सकती है। त्वचा केवल स्पर्श कर सकती है। नाक केवल सूँघ सकती है। परन्तु मन देख सकता है, सुन सकता है, स्वाद भी ले सकता है, स्पर्श कर सकता है, सूँघ भी सकता है। सब इन्द्रियों की शक्तियाँ मन में निहित हैं। योगाभ्यास से आप मन के द्वारा देख और सुन सकते हैं। मन और इन्द्रियाँ एक हैं। मन का विकास इन्द्रिय है। मन इन्द्रियों का समूह है। मन में खाने की साधना से जिह्वा, दाँत और उदर की प्रवृत्ति होती है। यदि मन को वश में कर लिया जाये तो इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। जो इन्द्रियों को वश में करता है वह मन को पहले ही वश में कर चुका होता है।

पंच महाभूतों के प्रभाव से उत्पन्न पाँचों इन्द्रियों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। नासिका और गुदा की उत्पत्ति पृथ्वी तत्व से है। नाक सात्विक भाग से और गुदा राजसिक भाग से। ये दोनों आपस में सम्बन्धित इन्द्रियाँ हैं। ये दोनों सब से कम दुःख देती हैं और इनका संयम भी जल्दी हो जाता है। जिह्वा और उपस्थ (लिंगेन्द्रिय) जल-तत्व से बनी हैं। पहली सात्विक भाग से और दूसरी राजसिक भाग से। इनमें भी आपस में सम्बन्ध है। भोजन से जननेन्द्रिय को शक्ति मिलती है। यदि जिह्वा को वश में कर लिया जाय तो अन्य इन्द्रियाँ सहज ही वश में आ जाती हैं। सबसे ज्यादा चंचल और दुखदायी जननेन्द्रिय है, उससे कम जिह्वा, उससे कम वाक्येन्द्रिय (बोलना), फिर कान और आँख। आँखें तथा पैर अग्नि तत्व से हैं। आँखें सात्विक भाग से और पैर राजसिक भाग से। आँखें देखना पसन्द करती हैं और पैर उसे वहाँ ले जाने को तैयार रहते हैं। त्वचा और हाथ वायु तत्व से बने हैं। वाक्येन्द्रिय और कान दोनों आकाश तत्व से हैं।

जिस प्रकार समुद्र नदियों से भरा जाता है, बिना नदियों के समुद्र की स्थिति नहीं है। इसी प्रकार मन इन्द्रियों द्वारा पूर्ण होता है, बिना इन्द्रियों के मन का अस्तित्व नहीं रह सकता। आँख, कान और जिह्वा—ये तीनों इन्द्रियाँ मन को बहिर्मुखी कर देती हैं और मनुष्य को सांसारिक विषयों में फँसा देती हैं। इसलिए किसी भी आध्यात्मिक साधना में इन तीनों इन्द्रियों को वश में करके ही मन को अन्तर्मुखी बनाया जा सकता है। मन की शान्ति के लिए शम और दम जरूरी हैं। इन्द्रियाँ यदि प्रबल हों तो अच्छे-अच्छे साधकों के मन भी इस तरह चलायमान हो जाते हैं। सब इन्द्रियों को भड़काने वाला मन है। इन्द्रियों और मन के द्वारा माया भी अपना मोह-जाल फैलाती है। इसलिए साधक को सदा सचेत रहना चाहिए। वैराग्य और वासना के द्वारा दम का अभ्यास करें। उदाहरणार्थ मिठाई के बाजार में खूब पैसा लेकर जाओ। तरह-तरह की मिठाइयों को खूब ललचाई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निगाह से देखो। पर कोई चीज खरीदो मत और घर को वापिस आ जाओ। उस दिन घर पर यदि उत्तम भोजन भी दिये जायँ तो उन्हें ग्रहण मत करो। सादा भोजन करो। ऐसा करने से जिह्वा वश में आ सकेगी और आपकी इच्छा-शक्ति भी बढ़ेगी। यदि आप चाय छोड़ने का संकल्प करलें तो आपने जिह्वा को कुछ अंश तक वश में कर लिया। सारे बढ़िया भोजन छोड़ दो और इन्द्रियों के उपभोग के सारे पदार्थ त्याग दो। तीव्र तप का अभ्यास करो। तप से इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं और मन वश में हो जाता है।

कुछ समय तक मौन रहने से वाक् इन्द्रिय का संयम होता है। इससे मन के चंचल रहने का एक बड़ा कारण दूर हो जायेगा और आपको शान्ति का अनुभव होगा। अब दृढ़ निश्चय के साथ ब्रह्म का ध्यान करो। बोलने से पहले अपने शब्दों के चुनने में सतर्क रहो। बोलने से पहले दो-तीन बार सोच लो। विचार करो कि आपके शब्द दूसरे पर क्या असर डालेंगे? धीरे-धीरे मौन का समय बढ़ाते रहो यहाँ तक कि महीनों तक बिना बोले तुम्हारा काम चल जाय। मन का अनुमान सदा बात को बढ़ाया करता है। इससे बचना चाहिए। शब्दों को ठीक-ठीक तोलकर बोलना चाहिए। मन का मौन वाणी के मौन से भी उत्तम है। जबर्दस्ती वाणी का मौन करने से मन के साथ बड़ा झगड़ना पड़ता है, प्रयत्न करना पड़ता है। इसलिए ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि मौन स्वाभाविक हो जाय। वह अपने आप भीतर से उत्पन्न होना चाहिए तब ही पूर्ण शान्ति मिल सकती है।

एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'मन जीता तो जगत जीता।' एक ओर प्रकृति है दूसरी ओर ब्रह्म है। मन इन दोनों के बीच में पुल का काम करता है। पुल पार करके आप ब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं। इच्छाओं, संकल्पों और अहंकार के नाश का तात्पर्य मन को पूर्णतः वशीभूत कर लेने से ही है। किले में से निकलते सिपाहियों को एक-एक करके मार दो तो आप किले पर कब्जा कर लेंगे। ऐसे ही ज्यों-ज्यों विचार उठते जायें एक-एक करके उनका नाश कर दो। आखिर को मन का भी नाश हो जायेगा। बराबर परमात्मा का विचार करते रहो आप बड़ी सुगमता से मन को जीत सकोगे।

जैसे श्वेत वस्त्र पर गुलाबी रंग अच्छा फैलता है, इसी प्रकार जब मन शान्त होवे, सारे लोगों की तरफ से उदासीन होवे, सारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जावें और मन के अज्ञान का नाश हो गया हो, तभी सद्गुरु के उपदेश शिष्ट के मन में प्रवेश करके प्रभाव दिखायेंगे। मन का पूर्ण संयम केवल ब्रह्म विचार द्वारा ही हो सकता है। दूसरे साधन तो सहायक हैं।

यदि मन वश में रहे तो इसमें कुछ भी भेद नहीं होता कि आप महल में रहें या पहाड़ की गुफा में। मन का संयम होने से शरीर का भी संयम हो जाता है। शरीर तो मन की छाया है। मनोनिरोध में कोई वृत्ति या विचार नहीं रहता, परन्तु शून्यवृत्ति रहती है। संस्कारों का नाश नहीं होता। जिसने मन को जीत लिया है, वही सच्चा विजयी और महाराजा है जिसने इच्छाओं और मन को वश में कर लिया है वही सच्चा वीर है।

मानसिक सन्तुलन

सर्वोपरि—कला-कौशल

मनुष्य की सारी गतिविधियाँ और क्रिया-कलापों का संचालन केन्द्र मनःसंस्थान है। सागर की लहरों की भाँति मनः क्षेत्र में भी कितने ही उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। कभी तो वह समुद्र-सा शान्त, आकाश जैसा नीरव और शीतल वायु का स्पर्श करता हुआ बहता है तो कभी समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे जैसा उफनता-उबलता रहता है। इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, विचारणाएँ, भावनाएँ मन में ही उठती हैं तथा उन्हें पूरा करने की योजना बनाने का कार्य भी उसके जिम्मे आता है। स्वस्थ मनोभाव ही व्यक्ति के जीवन को सुयोग्य, सुसंस्कारी और हृष्ट-पुष्ट बनाने में सक्षम है। मानसिक सन्तुलन-सामंजस्य ही वस्तुतः स्वास्थ्य के चिह्न हैं।

चेतन प्राणियों की चेतन सत्ता ही नहीं वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति की दशा भी सदैव एक जैसी नहीं रहती। प्रकृति जड़ वस्तुओं को भी नचाती रहती है। प्रकृति चक्र के अनुसार समय-समय पर उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। व्यक्तियों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है और वह प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। यह व्यक्ति की अपनी मनोदशा एवं मानसिक बनावट पर निर्भर है कि वह इन परिवर्तनों का क्या प्रभाव ग्रहण करे और क्या न करे ? जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाने से ही व्यक्ति मानसिक संक्षोभों, संवेगों को तटस्थ या संतुलित भाव से ग्रहण कर सकता है।

सन्तुलन के चार पक्ष हैं—(१) सतर्कता-सजगता, (२) विचार-प्रवाह कल्पना, (३)व्यवहार-अभ्यास, (४) रुझान उत्साह। इन चारों का सुव्यवस्थित क्रम चल पड़ने से मनुष्य मानसिक दृष्टि से समर्थ एवं सुविकसित बनता है।

मानसिक सन्तुलन न केवल जीवन की एक अनमोल निधि है, वरन् यह जीवन जीने की एक कला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी है। इस कला के द्वारा जीवन को हरा-भरा, पल्लवित-पुष्पित और सुखी-शान्त बनाया जा सकता है। मन की गरिमा एवं विशालता पर विचार करने से प्रतीत होता है कि जीवन का अस्तित्व, स्वरूप, स्तर और भविष्य उसी केन्द्रबिन्दु के साथ जुड़ा हुआ है। देखने में जो कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता है उसमें शरीर की भूमिका प्रमुख दृष्टिगोचर होती है। पर वास्तविकता दूसरी ही है। मन ही पूरी तरह शरीर पर छाया हुआ है, उसके भीतर भी वही रमा है। पर्दे के पीछे बैठे बाजीगर मन की अँगुलियाँ ही व्यक्ति के अन्दर से अपनी करामात दिखाती रहती हैं।

सन्तुलन और सामंजस्य ही स्वस्थ रहने तथा तनाव मुक्त जीवन जीने का चिह्न है। तनाव तभी उत्पन्न होता है जब विचार-प्रवाह में गड़बड़ी पड़ जाने से कल्पनाएँ अनियन्त्रित हो जाती हैं। क्या सोचना और करना उपयुक्त है, क्या नहीं, क्या सम्भव है या असम्भव, साधन और परिस्थितियाँ क्या हैं ? इन सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद ही कोई ठोस या अन्तिम निर्णय करना उपयुक्त होता है।

शान्तिमय एवं तनावमुक्त जीवन जीने के लिए यह आवश्यक है कि अस्त-व्यस्त बहुत-सी बातें सोचने और बेसिलसिले काम करने की बजाय पूरे दिन की एक योजना बनाकर यह निर्धारित कर लिया जाय कि कौन-कौन से कार्य सबसे जरूरी हैं? निर्धारित कार्यक्रमों पर ही चित्त को एकाग्र कर लिया जाय एवं बाकी चीजों को दिमाग से निकाल दिया जाय तो उस दिन का कार्य आसानी से निबटाया जा सकता है। समय और शक्ति, जो तमाम चीजों के सोचते रहने, आधे-अधूरे मन से काम करते रहने में अपव्यय हो रही थी, आसानी से बचाया जा सकता है और यही वह रहस्य है जिस पर चलकर महापुरुषों ने अनेकों महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

एक साथ बहुत सारे काम निबटाने के चक्कर में मनोयोग से कोई कार्य पूरा नहीं हो पाता। आधा-अधूरा कार्य छोड़कर मन दूसरे कामों की ओर दौड़ने लगता है। यहीं से श्रम और समय की बर्बादी प्रारम्भ होती तथा मन में खीझ उत्पन्न होती है। विचार और कार्य सीमित एवं संतुलित कर लेने से श्रम और शक्ति का अपव्यय रुक जाता है और व्यक्ति सफलता के सोपानों पर चढ़ता चला जाता है।

महत्वाकांक्षी होना प्रगतिशीलता की निशानी है। उनका होना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है। पर वे मात्र संकीर्ण स्वार्थपरता पर ही सीमित नहीं होनी चाहिए। 'स्व' के साथ पर का भी समन्वय होना चाहिए महत्वाकांक्षाएँ जब समाज कल्याण एवं परोपकार की भावना से प्रेरित होती हैं, तब व्यक्ति के मार्ग में आने वाले अवरोध क्षोभ, तनाव, खीझ जैसे उत्पात पैदा नहीं कर पाते बल्कि प्रस्तुत अवरोध स्वयं आगे बढ़कर उस व्यक्ति का पथ-प्रशस्त करने लगते हैं। तुरन्त सफलता मिल जाने का भूत सवार होना, अपने बन्धु मित्र और परिचितों के सिर पर पैर रखकर आगे निकलने का नशा चढ़ जाना व्यक्ति को परेशान करके रख देता है। जब आतुर इच्छाओं के अनुकूल कार्य योग्यताओं, साधनों एवं परिस्थितियों के अभाव में ही नहीं हो पाता और असफलता मिलने लगती है, बाधाएँ सामने खड़ी दीखती हैं, तब मन तनावग्रस्त होने लगता है और सारी महत्वाकांक्षाएँ धूल में मिलने लगती हैं।

महत्वाकांक्षाओं को कम करके ईमानदारी से इस बात पर विचार किया जाय कि हम क्या-क्या काम कर सकते हैं, अपनी वर्तमान परिस्थितियों, साधनों और योग्यताओं के आधार पर क्या कार्य, कितनी मात्रा में, किस तरह कर सकते हैं? इस आधार पर किये गए निर्णय प्रायः असफल नहीं रहते। फलतः निरर्थक उद्विग्नता का भी सामना नहीं करना पड़ता। युक्ति-युक्ति महत्वाकांक्षाओं को सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

इन दिनों दूसरों की उन्नति को देखकर ईर्ष्या-डाह में झुलसते रहने की आम आदत बन गई है। ईर्ष्या का यह भूत मानिसक तनाव उत्पन्न करने से प्रधान रूप से अपनी भूमिका अदा करता है। पराई उन्नति देखकर उसकी बराबरी करने के लिए लालायित होकर दौड़ने की बजाय यदि हम उसकी विशेषताओं से सीख ग्रहण करने लग जायें और उनकी खुशी में अपनी खुशी मिला लें तो जीवन की आधी समस्या हँसते-हँसते हल हो जायेगी। दूसरों से यह अपेक्षा करना कि सभी हमसे होंगे और हमारे कहे चाहे अनुसार चलेंगे, मानसिक तनाव बने रहने का निरर्थक उलझनों में फँसे रहने का मुख्य कारण है। इससे छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि हम चुपचाप शान्तिपूर्वक अपना काम करते चलें और लोगों को अपने हिसाब से चलने दें। किसी व्यक्ति पर हावी होने की कोशिश न करें और न ही हर किसी को खुश रखने के चक्कर में अपने अमूल्य समय और शक्ति का अपव्यय करें।

सबको प्रसन्न रखना असम्भव है। इससे व्यर्थ में ही मन में अशान्ति, चिन्ता और क्षुब्धता बढ़ती है। शिष्ट, सहृदय, निष्कपट और मित्रतापूर्ण व्यवहार ही प्रसन्न बने रहने-तनाव मुक्त होने के लिये पर्याप्त है। दूसरों से केवल सीमित अपेक्षाएँ ही की जा सकती हैं। हर व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की अपनी परिस्थिति, मनःस्थिति, दृष्टि रुचि, मान्यता एवं आदतें हैं। उसे कोई हमारे चाहने मात्र से बदल देगा, यह सोचना निरर्थक है। कोई हमारी ही बात माने, उसी के अनुसार चलें, हममें ही रुचि ले और हमारी ही सहायता करे—ये चाहनाएँ गलत भी और हानिकारक भी। दूसरों पर भावनात्मक रूप से आश्रित न होना ही श्रेयस्कर है।

अस्त-व्यस्त जीवन जीना, जल्दबाजी करना, रात-दिन व्यस्त रहना, हर पल-क्षण को काम-काज में ही ठूँसते रहना भी मनःक्षेत्र में भारी तनाव पैदा करते हैं। अतः यहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि अपनी जीवन-विधि दैनिक जीवन को विवेकपूर्ण बनाकर चलें। ईमानदारी, सज्जनता, संयमशीलता, नियमितता, सुव्यवस्था से भरा-पूरा हल्का-फुल्का जीवन जीने से ही मनःशक्ति का सदुपयोग होता है और उस ईश्वर प्रदत्त क्षमता से समुचित लाभ उठा सकने का सुयोग बनता है।

मन को मनाइये—अपना सहयोगी बनाइये

बुद्धिमान उसे कहा जाता है जो 'टूटे' को बनाना और रूठे को मनाना जानता है। कपड़े, बर्तन, फर्नीचर, मकान आदि की टूट-फूट होती रहती है। उसकी मरम्मत की जाती है। जो टूटा उसे फेंक दिया जाय, ऐसा कैसे हो सकता है? सब कुछ नया ही नया हो यह कैसे सम्भव है ? इसी प्रकार जो रूठ जाय उससे खुद भी रूठ बैठें, तो घर परिवार का चलाना कठिन है ? कभी पत्नी से अनबन हो जाती है, कभी बच्चों से, कभी भाई से मनचाल हो जाती है तो कभी पड़ौसी से मन-मुटाव बन जाता है, इस स्थिति को ऐसे ही रहने दिया जाय अथवा गाँठ को और कड़ी करते रहा जाय, तो काम नहीं चलेगा। उलझन बढ़ती चली जायेगी। जिनके साथ रहना है उनसे मीठे सम्बन्ध बनाये रहने में ही लाभ है।

मन हमारा सबसे निकट का सम्बन्धी है। पत्नी, बच्चे, भाई, पड़ौसी तो दूर वह शरीर से भी अधिक समीप रहने वाला स्वजन है। शरीर से तो सोते समय सम्बन्ध ढीले हो जाते हैं, मरने पर पर साथ छूट जाता है पर मन तो जन्म-जन्मान्तरों का साथी है और तब तक अपना अस्तित्व रहेगा, तब तक उसका साथ भी छूटने वाला नहीं। मन मुख्य और शरीर गौण है। मन की मर्जी पर आत्महत्या आदि से शरीर छोड़ा जा सकता है। शरीर की मर्जी से मन नहीं छूट सकता। मन की समझदारी से शरीर की अस्त-व्यस्तता दूर हो सकती है। शरीर परिपुष्ट होने से मनोविकार दूर नहीं किये जा सकते। शरीर की सामर्थ्य तुच्छ है, मन की महान। मन का शासन शरीर पर ही नहीं—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर है। उत्थान-पतन का वही सूत्राधार है। निन्दा और प्रशंसा उसी की गतिविधियों की होती है। किसी को सन्त, ऋषि, देवदूत और महापुरुष बना देना यह मन की सज्जनता का ही चमत्कार है।

ऐसे उपयोगी और सामर्थ्यवान साथी को रूठने नहीं देना चाहिए। रूठ जाय तो मनाना चाहिए। हमारी आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है। अन्य काम छोड़कर भी इस ओर ध्यान देना चाहिए और जितनी जल्दी हो सके मन को मना लेना चाहिए।

मन आँख से दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए उसका रूठना भी नहीं दीखता, पर विवेक की आँख से देखें तो वह रूठा हुआ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगा। रूठने वाले की पहचान है—साथ न देना, कहना न मानना, सहयोग न करना, नुकसान करना। बच्चा रूठ जाता है तो ऐसे ही उपद्रव करता है। घर का सामान तोड़ता-फोड़ता है और अपने हाथ-पैर पीटता है। घर को नुकसान पहुँचाता है और स्वयं कष्ट पाता है। रूठी हुई पत्नी भोजन करना, बोलना बन्द कर देती है। मन को पुष्ट करने में उपयुक्त स्वाध्याय सत्संग की खुराक लेनी उसने बन्द कर दी है। आत्मा के पास बैठकर कभी विचार नहीं करता कि घर का बनाव बिगाड़ किसमें है ? कुमार्गगामी होकर रूठे बच्चे की तरह सबलता के साधन सद्गुणों को तोड़त-फोड़ता रतहा है और स्वयं निन्दा, तिरस्कार, अभाव, दारिद्रय, शोक-संताप का भागी बनकर कष्ट पाता है। रूठा हुआ नौकर या तो काम करता ही नहीं, करता है तो ऐसे ढंग से कि मालिक को और उलटा नुकसान पड़े। मन ने आत्मोन्नति के सारे प्रयास अवरुद्ध कर रखे हैं, कुछ करता है तो ऐसा विलक्षण जिससे इस लोक और परलोक में भविष्य अन्धकारमय ही बनता चला जाय। यह रूठने के प्रत्यक्ष चिन्ह हैं।

यह असहयोग-अवरोध देर तक नहीं चलने देना चाहिए। वह अपना भाई है उसके साथ राम-भरत जैसे मधुर सम्बन्ध बनाने चाहिए, रावण-विभीषण की तरह—सुन्द उपसुन्द की तरह परस्पर द्रोही-विद्रोही बनकर रहने में क्या आनन्द ?

मन ने यदि साथ दिया होता तो शरीर की ऐसी दुर्गति न होती जैसी आज है। उसने काया को स्वस्थ और समर्थ रखने के लिए संयम बरता होता। लिप्सा के फेर में न पड़ा होता। जीभ को, कामेन्द्रिय को व्यवस्थित में रखा होता। आहार-विहार की नियमितता बरती होती तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काया गुलाब के फूल की तरह खिली हुई और गेंद की तरह उछलने वाली रही होती। बीमारी और कमजोरी की इस घर में घुसने की हिम्मत ही न पड़ती। मन रूठा बैठा रहा, शरीर को देखा सम्भाला ही नहीं, रुग्णता, ने घेरा डाल लिया। शरीर टूटा, आत्मा को अशान्ति रही और मन स्वयं ही उस रुग्ण काया में रहकर टूटे मकान में रहने वाले किरायेदार की तरह उद्विग्न बना रहा।

मन यदि रूठा हुआ न होता तो उसने अपने आपको सँभाल लिया होता। अपने को गुण, धर्म, कर्म, स्वभाव से सुसज्जित सुसंस्कृत रखा होता, पर वह तो कोपभवन में बैठा था। कपड़े फाड़े, बाल बिखेरे, बिना नहाये-धोये, ऐसा ही गन्दा पड़ा रहा। अपना वेष बिगाड़ा, सम्मान खोया और बाप का काम बिगाड़ा। आत्मा को सहयोग देना तो सुसंस्कृत स्थिति में ही हो सकता था। मलीनता और कुत्सा का कलेवर ओढ़ लेने पर तो वह भारभूत ही रह सकता था, सो ही रह भी रहा है।

जीवन-क्षेत्र को सँभालने का उत्तरदायित्व यदि उसने सँभाला होता तो आज इस उद्यान की शोभा देखते ही बनती। शिक्षा से यदि उसने प्यार किया होता और एक-दो घण्टे रोज भी पढ़ने के लिए उत्सुकता प्रकट की होती तो अन्धाधुन्ध अपव्यय होने वाले समय में से थोड़ा-सा शिक्षा के लिए भी लगा सकता था और पिछले जो दिन ऐसे ही बर्बाद हो गये अब तक अपनी स्थिति उच्चकोटि के विद्वान जैसी हो गई होती। पर उसने विद्या में रस लिया कब ? रूठा जो बैठा रहा।

देवत्व के सारे उपकरण अपने भीतर विद्यमान थे। एक उँगली के सहारे यह सारा साज झंकृत हो सकता था। अपने भीतर बैठा सन्त, ऋषि, देव प्रतीक्षा करता रहा, जरा-सा सहारा मिले तो ऊपर उभरकर आये। पर मन को फुरसत ही नहीं मिली। वह रूठा रहा, भटकता रहा और अँगूठा दिखाता रहा, समय की निधि चुकती चली गई। अवसर हाथ से निकलता रहा। जीवन सन्ध्या निकट आ गई तो भी हाय रे मन, तेरा सहयोग न मिल सका।

मन से अपनी दयनीय दुर्दशा का वर्णन करना चाहिए। परमात्मा का राजकुमार—सकल साधनों से सम्पन्न इस प्रकार दीन-हीन, निन्दित, तिरस्कृत असफल, असहाय बना फिरे यह कितने दुःख की बात है? यह दुर्दशा केवल एक ही कारण से हुई है कि गाड़ी के दो पहियों में सहयोग नहीं रहा। आत्मा के गौरवशाली वर्चस्व की उपलब्धियों के लिए यह जीवन मिला है। यदि मन साथ दे तो महामानव की गरिमामयी स्थिति में प्रकाश और उल्लास भरा जीवन अब भी जिया जा सकता है। जो गया सो बहुत था पर जो बचा है सो भी कम नहीं। यदि उतने में भी परस्पर सहयोग रह सके तो अभी भी उतना अवसर है कि अभिशाप को वरदान में बदला जा सके।

मन कुचाल छोड़, इन्द्रिय में भटकना छोड़। वासना आग की तरह है, भोग उपभोग से यह शान्त होने वाली नहीं है। इन्हें तृप्त करने के जितने ही साधन जुटायेगा उतनी ही अतृप्ति भड़केगी। फिर उनके कुचक्र में जितना ही फँस जाय उतनी ही क्षमता, आयु, प्रतिभा घटती है। क्षणिक चटोरेपन के पीछे समर्थता की समाप्ति को गँवाने और दिन-दिन दुर्बल होते जाने से क्या लाभ ? बता मन, तू कोयलों के ऊपर मुहरें निछावर करने में क्या बुद्धिमत्ता अनुभव कर रहा है ?

आत्मा रोती बिलखती रही, उसके सन्तोष, उत्थान, कल्याण के लिए एक कदम नहीं बढ़ाया गया, एक प्रयत्न नहीं किया गया। अन्तरात्मा की सहचरी सत्प्रवृत्तियाँ कुम्हलाईं, मुरझायीं और सूख गयीं, उन्हें सींचने को एक लोटा पानी नहीं डाला जा सका। सद्भाव के बालक अपने पोषण की पुकार करते रहे, उनकी आवश्यकताएँ जुटाने से मुँह मोड़े रहा गया, पर दुर्बुद्धि, दुष्प्रवृत्ति और दुर्भावनाओं के पोषण के लिए तरह-तरह के साज-सरंजाम जुटाये जाते रहे। परिवार का पोषण विकास करना पर्याप्त था। पर उन्हें विलासी और धन, कुबेर बताकर छोड़ जाने के मोह से सारी ममता उन्हीं पर उड़ेल दी गई। उन्हें ही अपना समझा गया। जो कुछ किया जाये उन्हीं के लिए, जो कुछ सोचा जाय उन्हीं के लिए—सम्पन्न बनाया जाय तो उन्हीं को, समृद्ध बनें तो वे ही। उस छोटे से दायरे में अपनी सारी ममता समेटकर मन तू ठगा गया। इस मोहग्रस्तता ने लोक भी बिगाड़ा और परलोक भी। बता मन, तू इसी चाल पर कब तक चलता रहेगा ? विश्व परिवार की ओर से कब तक आँखें बन्द कराये रहेगा ?

मन तू शरीर का मित्र बना और आत्मा का शत्रु। शरीर को ठाठ-बाट जुटाने में, बड़प्पन दिलाने में, सत्ताधारी बनाने में लगा रहा, उसी के ताने-बाने बुनता रहा। पर इससे मात्र अहंकार बढ़ा। शरीर पर चिन्ता का भार बढ़ा और इस गधे पर इतना बोझ लादा कि कमर ही टूट गई। बाहर वाले बड़प्पन देखकर चौंधियाते जरूर हैं पर भीतर ही भीतर सब कुछ खोखला पड़ा है। मन तू खुद भी मरा और अपने मित्र शरीर को भी मारा। यदि तू आत्मा का मित्र बन गया होता और जितना श्रम शरीर के लिए किया है उतना आत्मा के लिए करता, तो आनन्द आ जाता। आत्मा ऊँची उठकर परमात्मा बन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती और तू यशस्वी होता-धन्य हो जाता। पर हाय रे कुचाली, तू तो रूठा बैठा रहा-उलटा ही चलता रहा-घर को खोखला किया और अपनों को चौपट कर दिया। जिन विरानों को अपना सब कुछ समझ रहा था, उनकी करतूतें तो देख-अहसान मानना तो दूर-अधिक शोषण के लिए उतावले और कृतघ्नता से बावले बने फिर रहे हैं। तेरे सारे प्रयास एक तरह से निरर्थक और निष्फल ही चले गये।

जीवन-लक्ष्य की बात सोचने के लिए तुझे फुरसत ही नहीं मिली, कर्त्तव्य का ध्यान कभी आया ही नहीं, ईश्वर के दरवार में जाकर लेखा-जोखा देना पड़ेगा, यह कभी सूझा ही नहीं, स्वार्थपरता की संकीर्ण परिधि में कीचड़ के कीड़े की तरह कुलबुलाता, बिलखता रह गया अभागे। अपने को ज्वलन्त दीपक की तरह प्रकाशवान बनाकर सबको प्रकाश देते और स्वयं प्रकाशपुञ्ज कहलाता, यह मार्ग तुझे क्यों नहीं सूझा? विश्व भगवान की सेवा साधना के लिए भीतर से हुलास क्यों नहीं उठी—पत्थर के टुकड़ों पर सिर पटककर ईश्वर भक्ति की विडम्बना तो रचता रहा पर प्रेम के अमृत की एक बूँद भी सच्ची भक्ति के रूप में कभी नहीं उपजी। आस्तिकता का कलेवर ओढ़े फिरने वाले नास्तिक बता, तेरी इस बाल-क्रीड़ा से ईश्वरीय अनुग्रह का एक भी कण कैसे मिल सकेगा ?

भूलें, बहुत चुकीं। बहुत क्या-यों कहना चाहिए कि अब तक का सारा जीवन भूल-भुलैयों में भटकते हुए ही बीत गया। जब वस्तुस्थिति पर विचार आता है, हानि का लेखा-जोखा सामने आता है, तो छाती फटती है। जितना समय, श्रम और प्रयत्न मृग तृष्णा में भटकते बीता, यदि वह सही दिशा में, राजमार्ग पर चलने में लगा होता तो अब तक कितनी मंजिलें पार हो गई होतीं। कितने ऊँचे पहुँचे होते, कितने आगे बढ़े होते। पर कोल्हू के बैल की तरह, बालू में से रेत निकालने की तरह हाथ कुछ नहीं आया। खीज, क्षीणता, जलन और पछतावे के सिवाय इस भूल भरे मार्ग पर और मिलना ही क्या था? सब कुछ गँवा बैठने पर भी तृष्णा और वासना के शूल अभी भी वैसा ही दर्द करते रहते हैं और चैन नहीं मिलने देते।

शिक्षा, विनोद, व्यायाम, मैत्री, खर्च, सम्भाषण, परामर्श, चिन्तन आदि सामान्य दैनिक कार्यों में वह औचित्य और मनुष्यत्व को बनाये रखता है। फलस्वरूप यही रोज मर्रा के काम एक प्रकार से योग साधना बन जाते हैं। इसका प्रभाव मानसिक स्थिति पर पड़ता है। यह विहार क्रम जिसे सात्विक मिला है, उसका मन न कुमार्गगामी होगा, न उच्छृंखल। वह उद्धत आचरण नहीं करता। जानता है, मुझे अस्तित्व की सहायता करनी है। मुझे कोई ऐसा काम न करना चाहिए जससे जीवात्मा के जीवन-लक्ष्य में बाधा-व्यवधान उत्पन्न हो। ऐसा समझदार मन मर्यादा तोड़कर सेवक से शासक बनने का प्रयत्न स्वतः ही नहीं करता औरक उसके उच्छृंखल बनने की आशंका नहीं रहती।

मन पर देख-रेख न रखी जाय, उसे दुनिया की भेड़चाल में चलने दिया जाय तो वह भी अन्य चोर नौकरियों की तरह भोले मालिकों की हजामत बनाने का ढर्रा अपना लेगा। यदि मालिक सावधान हो और यह जानता हो कि इस दुमुँहे सर्प को कैसे बरता जाय तो वह खतरे से बच जायेगा। सरकस के शेर की तरह सधा हुआ मन मालिक का हित साधता और दर्शकों का मनोरंजन करता है पर यदि वह उजड्ड और अनियन्त्रित हो तो मालिकों से लेकर दर्शकों तक सभी के लिए संकट सिद्ध होगा। मन रूपी दुधारी तलवार से जहाँ शत्रु को समाप्त किया जा सकता है, वहाँ उलटा प्रयोग होने पर अपना भी सर्वनाश हो सकता है।

मन को साध लिया जाय तो वह पारद से रसायन बनने की तरह उपयोगी भी अत्यधिक है। उसका कुसंस्कारी रूप तो विषैले पारे की तरह है, जो जिस शरीर में भी जायेगा उसे तोड़-फोड़कर बाहर निकलेगा। मन को निग्रह के लिए जहाँ उसे सत्परामर्श देना, समझाना-बुझाना, मनन, चिन्तन के आधार पर परिष्कृत करना, स्वाध्याय, सत्संग से सन्मार्गगामी बनाया जाना चाहिए, वहाँ यह भी आवश्यक है कि उसके लिए आहार-विहार की ऐसी व्यवस्था बनाई जाय, जिससे वह स्वयं उच्छृंखलता छोड़कर शालीनता को स्वीकार करने के लिए सहमत हो जाय।

मन, तेरे हाथ जोड़ते हैं, तेरे पैर छूते हैं, तेरे चरणों पर लोटते हैं, तू जीता हम हारे। पर अब कृपाकर, रूठना छोड़ दे। कुचाल मत चल, सही रास्ते पर आ जा। आत्मा का बन, उसी के साथ रह—उसी की सहायता कर, उसी के काम आ। आखिर तू आत्मा का ही तो पुत्र है। माता के साथ दुष्टता, माया के साथ रास-विलास। बच्चे इस रास्ते से पीछे लौट। बाप अब तो कृपा कर। तेरी शरण में आये—शरणागत को अब और आगे मत सता। तू रूठना छोड़ दे, मन जाय, तो जीवन सन्ध्या की इन घड़ियों में भी अन्धकार को प्रकाश में बदला जा सकता है। देवता, अब तू प्रसन्न हो, वरदान दे तभी नाव पार उतरेगी अन्यथा अब डूबे-तब डूबे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा चिन्तन, मनन हमें नित्य ही एकान्त में करना चाहिए। मन के साथ वार्तालाप करने का नाम ही चिन्तन है। उसी को स्वाध्याय सत्संग की उच्च भूमिका भी कहते हैं।

मन का बचकानापन एवं विवेक बुद्धि का दायित्व

चिन्तन का एक स्वरूप है अपने चिन्तन और चरित्र का वर्गीकरण करना, विचारों की विकृतियों का निष्कासन एवं सुधार करना। दूसरा अपनी सत्ता और क्षमता का वास्तविक स्वरूप समझना और उसे प्रगतिशीलता के मार्ग पर बढ़ाते चलना।

हवा के साथ उड़ती हुई धूल हमारे शरीर, वस्त्र, फर्श, बर्तन आदि को रोज मलीन करती है। अतएव इन सबको नहाने, धोने, बुहारने, माँजने का नित्य कर्म करना पड़ता है। यह सफाई चिन्तन एवं चरित्र की भी होनी चाहिये। संसार का प्रचलन प्रवाह यों अच्छा भी है और बुरा, पर उसमें से अच्छा बहुत ढूँढ़ने पर मिलता है। चन्दन, मोती, केशर, कस्तूरी आदि कहीं-कहीं मिलते हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिये कष्टसाध्य प्रयत्न करने पड़ते हैं, पर पैर में चुभने वाले कंकड़ और काँटे तो हर जगह बिछे मिल जाते हैं। राह में उनसे बचने के लिये जूते पहनने पड़ते हैं और हर घड़ी सामने निगाह रखकर चलना पड़ता है। चूक होने पर उसके प्रभाव से पैर लहूलुहान हो जाता है। यही बात संसार में फैली हुई अच्छाइयों और बुराइयों के सम्बन्ध में भी है। श्रेष्ठता से सम्पर्क जब-तब जहाँ-तहाँ ही हो पाता है। किन्तु बुराई से पाला पग-पग पर पल-पल में पड़ता है। वातावरण में जो तत्व बहुलता से भरे हैं, वे आसानी से ऊपर चढ़ दौड़ते हैं। मन का रुझान भी पानी की तरह नीचे की ओर बहता है। बुराइयों से तात्कालिक तुष्टि होती है। फिर चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो ? परिणाम देर से मिलता है पर दुष्कर्म के साथ जुड़ा हुआ रसास्वादन तो हाथों-हाथ मिल जाता है। इसलिये उसे अपनाने को मन मचलता और हाथ बढ़ना अनायास ही हो जाता है। कोई बुद्धिमान ही आगा-पीछा सोचते हैं। अधिकांश लोगों की बाल-बुद्धि तत्काल लाभ के लिये ही मचलती रहती है।

छोटा बच्चा आग और साँप की चमक देखता है और उसे पकड़ने दौड़ता है। इसे पकड़ने का क्या परिणाम होगा? यह सोचने की बुद्धि समझदारी आने पर ही विकसित होती है। बच्चा कोई कीड़ा-मकोड़ा, कील-पत्थर आदि मुँह में डाल सकता है। इससे उसका प्राण संकट में पड़ सकता है, पर वह करे क्या ? बालक जो ठहरा। उचित और अनुचित का भेद करने और दोनों में से किसे अपनाना है, यह विवेक देर से आता है। इसलिये बच्चे पर अभिभावक निगाह रखते हैं कि वह घुटनों चलने लगा सो तो ठीक पर कुछ ऐसा न कर डाले जिससे संकट खड़ा हो जाय। वे उसे बराबर रोकते, टोकते, सिखाते और बचाते रहते हैं। यही स्थिति हर व्यक्ति की होती है। मनुष्य आयु की दृष्टि से बड़ा हो जाता है, पर उसका बचपना बना ही रहता है, जिनके अभिभावक बेखबर रहते हैं, वे बच्चे को संकट में डालते और स्वयं पछताते हैं। यह व्यवहार मन के साथ भी होना चाहिये।

विवेक बुद्धि को अभिभावक की भूमिका निभानी चाहिये और उसे अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। बच्चा जब तक समर्थ समझदार नहीं हो जाता, तब तक बड़े उसका बराबर ध्यान रखते हैं। विवेक बुद्धि को अभिभावक जैसी भूमिका निभानी चाहिये। उस पर तिरछी निगाह रखनी चाहिये कि कोई अटपटा काम तो नहीं कर रहा है। गलती करने पर रोकते। साथ ही पढ़ाने, लिखाने, सफाई रखने, शिष्टाचार बरतने की शिक्षा भी देते रहते हैं, इन प्रसंगों में अभिभावकों की सतर्कता आगे चलकर बड़ा काम करती है। भले ही रोकते समय बच्चा जिद करे या मचले। भले ही सिखावन की ओर उपेक्षा बरते, पर बच्चे का भरण-पोषण करते हुए भी उसकी मर्जी नहीं चलने देते। जब हैरान करता है तो आँखें दिखाने से लेकर, झल्लाने और चपत लगाने का उपक्रम करते हैं।

झूठे लाड़-प्यार में बच्चे बिगड़ जाते हैं। रोक नहीं करते। बच्चे को नाराजी न हो इसलिये उसकी गतिविधियों पर रोक नहीं लगाते। फलतः वह धीरे-धीरे बुरी आदतें अपनाता रहता है और जब बड़ा हो जाता तब समझाने-बुझाने का समय निकल जाता है। बुरी आदतें परिपक्व होने पर छूटती नहीं। अच्छी आदतों को कई प्रतिभाशाली बहकाकर छुड़ा भी देते हैं।

विवेक बुद्धि की सुयोग्यता इसी में है कि वह मन के ऊपर नियन्त्रण भी रखे और प्रशिक्षण भी करे। इसी को कहते हैं एक आँख प्यार की एक आँख सुधार की रखना।

शरीर की आयु बड़ी हो जाने पर भी मन का बचकानापन जाता नहीं। उसकी कल्पना पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि वह जो उड़ानें उड़ता है, उसमें उपयोगिता का अंश कम और अनुपयोगिता का ज्यादा होता है। इसीलिये कहा गया है कि ''खाली दिमाग शैतान की दुकान होती है।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

छोटे बच्चे को गोदी में लेकर मेला देखने जाया जाय और उससे पूछा जाय कि क्या चाहिए ? तो हर चमकीली वस्तु की ओर इशारा करेगा। किसी-किसी को लेने के लिये वह मचलेगा भी। उसे इस बात का ज्ञान कहाँ होता है कि हर चमकीली चीज आकर्षक भले ही लगे पर काम की नहीं होती। यदि बच्चे को फुसलाया धमकाया न जाय तो वह सारा मेला खरीदकर रहे। जहाँ कहीं सुख-सुविधा, ऐश्वर्य, ठाठ-बाट, सौन्दर्य दीख जाता है वहीं अटक जाता है और संसार का सारा वैभव समेटकर अपनी झोली में ले चलने के लिये ललचाता, पैर फैलाता है। उसे यह ज्ञान नहीं होता कि संसार की वस्तुयें मूल्य देकर खरीदनी पड़ती हैं। क्षमता, योग्यता, पात्रता अर्जित किये बिना धन, वैभव, ठाठ-बाट एवं वासनाओं का उपयोग सम्भव नहीं है। क्षमताओं का सम्पादन न करके जो किसी भी मूल्य पर वैभव के लिये मचलते हैं, उन्हें अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ अपनानी पड़ती हैं। साथ ही उनका दुष्परिणाम भी भुगतना पड़ता है। यह सब मन की बाल बुद्धि है। इसके हानि-लाभ समझना विवेक बुद्धि का काम है। यदि वह अंकुश न रखे, रोकथाम न करे, समझाने से लेकर प्रताड़ित करने तक काम न करें तो समझना चाहिए कि बुद्धि ने पैर फैला दिये और मन को स्वेच्छाचार बरतने की छूट मिल गयी। इसका परिणाम पश्चात्ताप ही हो सकता है। जब अनौचित्य का दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है तब मन की और बुद्धि की आर्थिक निन्दा होती है। दोषारोपण भी उसी पर होता है। कुछ अनर्थ कर बैठने पर यही कहा जाता है कि तेरी बुद्धि मारी गयी थी क्या ?

स्मरण रहे मनुष्य का शरीर बड़ा हो जाने पर भी मन बच्चा ही बना रहता है। वह सदा ऊटपटांग ही सोचता रहता है। असम्भव और निरर्थक कल्पनाओं में ही उलझा रहता है। अवसर मिल जाये तो कुकृत्य करने और विपत्ति में फँसने में भी नहीं चूकता।

हाथी को सही राह पर चलाना महावत का काम है। घोड़े की सामर्थ्य का किस प्रकार क्या उपयोग करना है यह सवार का काम है। वह यदि अपना दायित्व निभाने में प्रमाद करे तो मनुष्य आलसी, प्रमादी, दुर्व्यसनी, दुर्गुणी, कुमार्गगामी कुछ भी हो सकता है। इसलिये अभिभावक और बच्चे का उदाहरण ध्यान में रखते हुए विवेक बुद्धि को अपनी गरिमा के अनुरूप मन को सुधारने के लिये जिम्मेदारी भी निबाहनी चाहिये और कड़ाई भी बरतनी चाहिये।

शरीर मन के नियन्त्रण पर चलता है

मन और शरीर ऊपर से देखने में दो अलग-अलग वस्तुएँ प्रतीत होती हैं पर वस्तुतः इनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। केवल रूप में भिन्नता है। विशुद्ध रूप से इन दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे पर टिका हुआ है। मन शरीर के बिना कुछ कर नहीं सकता और शरीर मन के बिना किसी भी कार्य को कर सकने में असमर्थ होता है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि शरीर और मन का एक-दूसरे से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है?

शरीर मन की रक्षा करने वाला ऊपरी आवरण है। इस जड़ शरीर का निर्माण जड़ और चेतन तत्वों के मिश्रण से हुआ है। उन्हीं तत्वों के सूक्ष्म और अदृश्य स्वरूप से हमारे सूक्ष्म शरीर की रचना हुई है। अतः शरीर और मन में मात्र इतनी ही भिन्नता है कि एक दृश्य है और दूसरा अदृश्य, एक स्थूल है दूसरा सूक्ष्म। उदाहरणार्थ—पानी का साधारण रूप जड़ और उसका दूसरा रूप सूक्ष्म है जो दिखाई नहीं पड़ता है, जिसे हम भाप कहते हैं। जिस प्रकार पानी और भाप के स्वरूप में भिन्नता भर है गुण दोनों के समान है, उसी प्रकार सूक्ष्म और स्थूल शरीर के बारे में भी है। स्वरूप में भिन्नता है गुण दोनों के ही समान हैं। मन में विचार उत्पन्न होते हैं। शरीर उन्हें क्रिया रूप में परिणित कर देता है। मनुष्य के मन में उदित होने वाले विचार शरीर को प्रभावित करते हैं। उससे प्रभावित होकर ही व्यक्ति का शरीर क्रियाशील बनता है। प्रायः लोगों को ऐसा कहते सुना जाता है कि 'मेरा मन ठीक नहीं है' इस समय हर काम नहीं कर सकते हैं। कारण कि मन दुःखी, चिन्तित एवं असन्तुष्ट होता है तो उसका प्रभाव हमारे शरीर पर भी पड़ता है।

मनुष्य वर्तमान समय में जो कुछ भी है अपने मन में निहित विचारों के ही कारण है। मन में व्यक्ति जिस बात का विचार कर लेता है वैसा ही आचार-व्यवहार करता है। फलतः उसका जीवन उसी ढाँचे में ढल जाता है। जब कभी हमारे ऊपर कोई विपत्ति आ पड़ती है तो हम उसका पूरी तरह से सामना करते हैं तथा सफल हो जाते हैं। ऐसे ही क्षणों में मन की उस दिव्य एवं अमोघ शक्ति का हमें आभास होता है। यह विराट शक्ति सबके अन्दर सुप्तावस्था में छुपी हुई है। इसकी तुलना अग्नि से कर सकते हैं, उसे हम कुछ प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करके जला सकते हैं। मन की इसी प्रचण्ड शक्ति के सहारे मनुष्य बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को पार कर जाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कभी-कभी तो इतने बड़े-बड़े काम कर दिखता है कि जिसकी कभी आशा भी नहीं की जा सकती थी।

कार्य के प्रति सच्चा प्रेम मन में उत्पन्न हो जाय तो व्यक्ति निठल्ले बैठ रहना पसन्द न करेगा। आलसी और दरिद्री लोग बेकार पड़े रहने में सुख अनुभव करते हैं किन्तु कामकाजी वास्तविक कार्य करने में ही सुख पाते हैं। कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों के जीवन में ऐसे अनेक अवसर उत्पन्न होते हैं कि यदि आलसियों के जीवन में यह अवसर आ जाए तो वह बीमार ही पड़ जायें, किन्तु कर्मठ व्यक्तियों के मन और शरीर पर उनकी कर्त्तव्यपराणता के कारण इन साधारण कष्टों का कुछ असर नहीं पड़ता है।

घर में आग लग जाने के कारण अपना बचाव करने के लिए कई महीनों से बीमार पड़ा हुआ व्यक्ति उठकर भाग निकलता है। रोगी में वह विलक्षण परिवर्तन उसके अन्दर छुपी हुई शक्ति के कारण हुआ था। उसी अद्‌भुत शक्ति से प्रेरित होकर व्यक्ति दुरुह कार्यों को भी कर दिखाता है। जब तक कोई कठिन परिस्थिति नहीं होती है तब तक उसे अपनी सहनशीलता एवं सामर्थ्य का सही अनुमान नहीं लग पाता।

कई भयंकर रोगियों की स्थिति देखकर देखने वाला यह सोचने लगता है कि न जाने इसके प्राण कहाँ रुके हुए हैं। इस कठोर यातना को वह कैसे सह रहा होगा किन्तु जब ऐसी स्थिति उसकी हो जाती है तो वह जैसे-तैसे उसे सहन कर लेता है। अभिप्राय यह है कि मनुष्य सशक्त मन के द्वारा शरीर से हर कठिनाई का सामना कर लेता है। मन में जिस तरह के विचार उठते हैं। शरीर पर उनका ही प्रभाव पड़ता है। मन रोगी है तो शरीर भी रोगी हो जाता है। भावी संकट की कल्पना मात्र करके मनुष्य इतना भयभीत हो जाता है कि उसकी सारी शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। यह सब उनके मन की दुर्बलता का द्योतक है। मन की दुर्बलता ही व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य एवं सुख का नाश करती है। विपत्ति जितनी ज्यादा भयानक नहीं होती उससे अधिक मन की अस्त-व्यस्तता हमें दुःखी एवं असन्तुष्ट बना देती है। मनुष्य जो कुछ भी अच्छा-बुरा कार्य करता है, वह सब सूक्ष्म शरीर की अकथनीय एवं अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर ही करता है।

मन में उत्पन्न हुई शक्ति से शरीर कार्य करता है। शरीर में कभी कोई कष्ट होता भी है किन्तु मन उत्साह एवं प्रसन्नता से पूरित होता है, तब शारीरिक कष्ट भी थोड़ी देर के लिए विस्मृत हो जाते हैं। हम उस अमोघ शक्ति का नाश करते जा रहे हैं, जो दुःखों, रोगों एवं विपत्तियों में भी धैर्यपूर्वक सामना करने की हमें प्रेरणा देती है। यह शक्ति जब मन से प्रस्फुटित होती है तभी शरीर उसके सहारे कार्य कर दिखाता है। व्यक्ति अनेक समस्याओं से उलझा हुआ मन में चिन्तित रहता है और उसका असर अवश्य पड़ता है। मन खिन्न है तो शरीर पर उसका असर अवश्य पड़ेगा। आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और मन के अविछिन्न सम्बन्ध के विषय में ध्यान रखते हुए मन को शुद्ध एवं संतुलित रखें। तभी हम स्वस्थ रह सकेंगे और मन की दिव्य शक्ति के सहारे प्रगतिशील बन सकेंगे।

मनुष्य ईश्वर की सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसकी रचना में उसने अपना सारा कौशल लगा डाला है, इतना ही नहीं सुखी एवं समृद्धि बनाने वाली शक्ति भी प्रदान की है। जिसके सहारे मनुष्य दुःख-कष्ट की ज्वाला को मन रूपी प्रचण्ड शक्ति के माध्यम से शान्त करता चलता है। जीवन की दिव्य से दिव्यतम् बना देने की शक्ति इसी के अन्दर छुपी रहती है।

मनुष्य के शरीर के अन्दर सभी सुख-सुविधा एवं प्रगति के साधन छुपे हुए हैं। मनुष्य को सुख बाहरी किसी वस्तु से नहीं मिल सकता है। वह तो तभी मिल सकता है जब वह अपनी आन्तरिक शक्ति से परिचित हो। उन साधनों के उपयोग से वह स्वास्थ्य, सुख एवं शान्ति प्राप्त कर सकता है। यह मार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुला हुआ है। मनुष्य के अन्दर एक दैवी शक्ति निवास करती है। यदि यह शक्ति विकसित हो जाय तो शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के दुःख खत्म हो जाते हैं।

गीता में कहा गया है 'मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है।' व्यक्ति का मन अगर भव-बन्धनों अर्थात् काम-क्रोध, मद-लोभ, दम्भ, दुर्भाव, दोष आदि पर विजय प्राप्त कर लेता है तो वही मोक्ष की स्थिति होती है, तभी बन्धनों से व्यक्ति छुटकारा पा जाता है। हमारा मन ही बन्धन का कारण है क्योंकि हमारे मन में दूषित विचारों का बाहुल्य हो तो शरीर भी अवांछनीय कार्यों को करेगा और फलस्वरूप दुःख भोगने पड़ेंगे। शरीर मन की प्रेरणा से कार्य करता है। मन में विचार उत्पन्न न हों तो शरीर तो जड़ वस्तु है, वह कैसे कोई कार्य कर सकता है।

शरीर और मन के अटूट सम्बन्ध पर विचार करते हुए हमें अपने अन्दर छुपी हुई मनःशक्ति को जानना चाहिए, जो कि हमारे शरीर को नियन्त्रण में रखती है और दिव्य एवं आलौकिक बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन को शासक नहीं, सेवक बनाया जाय

मन हमारे शासक और सेवक के दोनों काम कर सकता है। यदि हम उसे ढीला छोड़ दें, स्वछन्द विचरने दें, उसके कहने पर चलें और अपना आत्म-समर्पण उसे करदें तो मन शासक है। इसके विपरीत यदि हम उसे कसे रहें, नियन्त्रण में रखें, अभीष्ट मार्ग पर चलायें, आदेश दें और उसे उपकरण या वाहन की तरह इस्तेमाल करें तो वह सेवक है। शासक की दृष्टि से वह बुरा शासक है। अपना भी नाश करता है और अपने प्रदेश, शरीर, प्रजा कायिक उपकरणों का भी सत्यानाश करके रख देता है। ऐसे चंचल मर्कट को शासक नियुक्त करने की जो भी भूल करेगा पछतायेगा। पर वह सेवक के स्थान पर बहुत ही उपयुक्त, योग्य, सामर्थ्यवान् कुशल, सब कुछ है। इससे बढ़िया, सस्ता, अहर्निशि साथ रहने वाला वाला, वफादार नौकर इस दुनिया में और कोई मिल ही नहीं सकता, हो ही नहीं सकता।

मन की खुराक दो हैं—आहार और विहार। जैसा हम अन्न खाते हैं उसका स्थूल रूप शरीर के उपयोग में आता है और सूक्ष्म भाग मन को खुराक बन जाता है। प्रोटीन, स्टार्च, शर्करा, खनिज विटामिन, वसा, कार्बोहाइड्रेट आदि तत्वों के सन्तुलन पर शारीरिक खुराक की उत्कृष्टता निकृष्टता रहती है। खराब भोजन हमें दुर्बल और रुग्ण करता है, अच्छा भोजन नीरोग और बलिष्ठ। आहार का सूक्ष्म भाग उसके साथ अविछिन्न रूप से जुड़ी हुई सात्विकता है। मिर्च, मसाले, तले, भुने, नशीले पदार्थ तामसिक हैं, यह गुण मन को प्रभावित करता है और ऐसा आहार करने वाले, क्रोधी तामसी, कामुक, चंचल और पतनोन्मुख प्रवृत्तियों से घिर जाते हैं। बेईमानी से दूसरों को दुःख या धोखा देकर, अनीतिपूर्वक बिना परिश्रम कमाया हुआ पैसा जब पेट में जाता है तो उससे मन अतीव उच्छृंखल, उद्दण्ड हो जाता है। तब वह न शास्त्र की बात मानता है और न सन्त की। अपनी तानाशाही चलाता है और सर्वनाश करने वाले नृशंस शासक का घिनौना उदाहरण प्रस्तुत करता है।

पोषण का दूसरा माध्यम है-विहार। जल, वायु, वस्त्र, निवास, सोना, उठना, श्रम, विनोद, संयम, स्वच्छता, सङ्गति, परिस्थिति, वातावरण आदि की मिली-जुली व्यवस्था को विहार कहते हैं। इन बातों का शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अवांछनीय विहार करने वाले उच्छृंखल लोग कभी स्वस्थ नहीं रह सकते। अकेला आहार अच्छा होने से ही काम नहीं चलता, विहार भी ठीक होना चाहिए। तभी गाड़ी के दोनों पहिये ठीक तरह लुढ़केंगे और स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

विहार का सूक्ष्म रूप भी है जो मन का पोषण करता है। यह है काम करते समय रखा जाने वाला दृष्टिकोण। सामान्य जीवनयापन भी उच्च दृष्टिकोण युक्त हो सकता है और उसी को निकृष्ट भावना से किया जा सकता है। काम का बाहरी स्वरूप एक जैसा रहते हुए भी उसका सूक्ष्म प्रभाव सर्वथा विपरीत होगा और मन का पोषण उसी एक जैसे काम से भिन्न व्यक्तियों को भिन्न प्रकार का मिलेगा।

काम सेवन इन्द्रिय लिप्सा के लिए या समाज को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने के लिए, इन दोनों दृष्टिकोणों में जमीन-आसमान का अन्तर है। पत्नी नौकरानी, चौकीदारिन, महाराजिन और काम-पिपासा एवं मनोरंजन के लिए अथवा जीवन सहचरी, धर्म पत्नी का प्रयोजन पूरा करने के लिए ? विवाह दाम्पत्य जीवन एक समान रहते हुए भी दोनों की दिशायें विपरीत हैं। एक दृष्टिकोण से किया गया विवाह मनुष्य को सदा असन्तोष और संताप ही देता रहेगा दूसरे दृष्टिकोण से बनाया गया दाम्पत्य जीवन एक वरदान की तरह प्रतीत होगा।

जीवन के लिए भोजन अथवा भोजन के लिए जीवन इनकी प्रतिक्रिया सर्वथा भिन्न होती है। दो व्यक्ति एक साथ, एक समय, एक जैसा भोजन करते हैं। पर उनके परिणाम मन के ऊपर भिन्न प्रकार की छाप डालते हैं। भोजन सम्बन्धी रुचि और मर्यादा में अन्तर उपस्थित करते हैं। खाते समय जो छाप मन पर पड़ती है, उसमें भारी अन्तर रहता है। भोजन को औषधि, ईश्वर का प्रसाद समझकर ग्रहण करने वाला व्यक्ति उसे अमृत समझकर श्रद्धा और प्रसन्नतापूर्वक उतनी मात्रा में खाता है, जितना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। वस्तुओं के चुनाव में उसे पोषक तत्वों और गुणों का ध्यान रहता है। जबकि भोजन के लिए जीने वाला स्वाद के पीछे पड़ा रहता है। मनचाहा स्वाद न मिलने पर आहार को फेंके-फेंके फिरता है, नाक-भौं सिकोड़ता है और स्वादिष्ट वस्तु मिलने पर पेट में अधिक ठूँसता चला जाता है। ऐसा आहार मन पर कुत्सित प्रभाव ही डालेगा, उसे कुसंस्कारी ही बनायेगा।

व्यापार, कृषि, नौकरी आदि आजीविका के माध्यमों में दृष्टिकोण की भिन्नता रहती है। एक व्यक्ति इन माध्यमों से बिना नीति-अनीति का विचार किये जितना भी, जैसे भी सम्भव हो अधिक उपार्जन का प्रयत्न करता है। ग्राहक के, मालिक के, साथियों के अधिकारों का अपहरण करता है और किसी भी सूरत से अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पन्नता बटोरने में लगा रहता है। दूसरा व्यक्ति दूसरों का प्रयोजन सिद्ध करने के फलस्वरूप निर्वाह की व्यवस्था रखने के लिए उपार्जन करता है। अपनी ही तरह वह उनके स्वार्थों का भी ध्यान रखता है, जिनके माध्यम से वह आजीविका उपार्जित की गई। किसान है तो बैलों के, मजदूरों के हितों को हानि नहीं पहुँचने देता। नौकर है तो मालिक के प्रति ईमानदारी और वफादारी बरतता है। व्यापारी है तो ग्राहक को ठगता नहीं, वरन् उसकी आवश्यकता का ध्यान रखते हुए अपने और दोनों के स्वार्थों में उचित समन्वय स्थापित करता है।

शिक्षा, विनोद, व्यायाम, मैत्री, खर्च, सम्भाषण, परामर्श, चिन्तन आदि सामान्य दैनिक कार्यों में वह औचित्य और मनुष्यत्व को बनाये रखता है। फलस्वरूप यही रोजमर्रा के काम एक प्रकार से योग साधन बन जाते हैं। इसका प्रभाव मानसिक स्थिति पर पड़ता है। यह विहार क्रम जिसे सात्विक मिला है उसका मन न कुमार्गगामी होगा न उच्छृंखल होगा। वह उद्धत आचरण नहीं करता। जानता है मेरा अस्तित्व सेवा करना है। मुझे सेवक के रूप में बनाया गया है मेरा कर्त्तव्य आत्मा की सहायता करना है। मुझे कोई ऐसा काम न करना चाहिये, जिससे जीवात्मा के जीवन लक्ष्य में बाधा व्यवधान उत्पन्न होता है। ऐसा समझदार मन मर्यादा तोड़कर सेवक से शासक बनने का प्रयत्न स्वतः ही नहीं करता और उसके उच्छृंखल बनने की आशङ्का नहीं रहती।

सतोगुणी, न्यायोपार्जित सज्जनों के सम्पर्क में बना हुआ आहार मन की सत्प्रवृत्तियों का समन्वय रखने से क्रिया-कलाप की छाप मन पर ऐसी सुसंस्कार युक्त डालता है, जिसे परिष्कृत विहार कहा जा सकेगा। शरीर को स्वस्थ रखने की तरह ही मन को सुसंस्कारी रखने के लिए भी उपयुक्त आहार-विहार की व्यवस्था रखी जानी चाहिए। तभी वह आत्मा का शासक बनने की कुचेष्टा न करके एक सदाचारी, सहयोगी की तरह सेवक बना रहने के लिए सहमत रह सकेगा।

समस्त सफलताओं का हेतु—'मन'

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो हर मनुष्य को अपने जीवन में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेंगे कि एक बार उसका किया हुआ काम बड़ा सुन्दर होता है और दूसरी बार वही काम बिगड़ जाता है। एक ही काम, एक ही कर्त्ता और एक ही समय, फिर भला कार्य की यह निकृष्टता, उत्कृष्टता क्यों? ऐसा तो हो नहीं सकता कि पहली बार जब उसने काम को सुन्दरतापूर्वक किया तब उसकी योग्यता अधिक थी और दूसरी बार जब, काम बिगड़ता है, तब उसकी योग्यता कुछ कम हो गई थी। पहली बार की अपेक्षा अभ्यास और अनुभव के कारण योग्यता में बढ़ोत्तरी ही होनी चाहिए न कि कमी।

एक ही काम में लगे दो समान व्यक्तियों को देख लीजिये। एक अधिक दक्ष है, दूसरा नहीं । एक ही कक्षा के विषय के दो विद्यार्थियों को ले लीजिए एक अधिक अंक लाता है, दूसरा कम। कलाकार, कवि, शिल्पी, वैज्ञानिक, विद्वान, लेखक, दार्शनिक, किन्हीं को भी क्यों न ले लीजिए, अनेकों में उन्नीस-बीस का अन्तर मिलेगा ही। एक की कृतियाँ दूसरे की अपेक्षा कुछ न कुछ न्यूनाधिक सुन्दर होंगी।

इस अन्तर का एकमात्र कारण एकाग्रता, तल्लीनता एवं तन्मयता ही है। जो जिस समय अपने काम में जितना अधिक एकाग्र, तल्लीन और तन्मय होगा उसका काम उस समय उतना ही सुचारु एवं सुन्दर होगा। जो जितनी अधिक एकाग्रता से चिन्तन करेगा उसके विचार उतने ही स्पष्ट एवं उन्नत होंगे।तन्मयता दक्षता का मूलमन्त्र है।

तन्मयता जितनी तीव्र, तल्लीनता जितनी स्थायी और एकाग्रता जितनी सूक्ष्म होगी, कार्य का सम्पादन उतना ही शीघ्र और सुन्दर होगा। किसी कला-कौशल अथवा कार्य के सीखने में दो आदमियों के समय और सीमा में जो अन्तर रहता है, वह भी इस एकाग्रता की मात्रा का ही अन्तर होता है। वैसे सामान्यतः एक ही क्षेत्र में रुचि रखने वालों की योग्यता में कोई विशेष अन्तर नहीं होता।

मन की स्थिरता, केन्द्रीयता एवं समाविष्टि को ही एकाग्रता, तन्मयता सथा तल्लीनता कहा जाता है। संसार की समग्र क्रियाओं का वास्तविक कर्त्ता तो मन है शरीर तो साधन मात्र, उपादान भर ही है। बहुत बार देखा जा सकता है कि एक शरीर से हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ एवं सम्पन्न व्यक्ति किसी कार्य को उस खूबी के साथ नहीं कर पाता है जिस खूबी से एक दुबला-पतला और निर्बल दीखने वाला व्यक्ति कर दिखाता है। यदि शरीर ही वास्तविक कर्त्ता होता तो शारीरिक सम्पन्नता वाले व्यक्ति का कार्य दूसरे दुर्बल शरीर व्यक्ति से अवश्य ही सुघड़ एवं सुन्दर होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होने का कारण यही है कि एक का वास्तविक कर्त्ता मन स्वस्थ एवं सशक्त है और दूसरे का नहीं।

संसार की समस्त सफलताएँ वास्तविक कर्त्ता मन की क्षमताओं पर निर्भर करती हैं और मन की शक्ति है उसकी एकाग्रता। जिस समय मन तन्मय होकर किसी कार्य में नियोजित होता है, तब असम्भव को भी सम्भव करके रख देता है। मनुष्य की मन-मंजूषा में क्या लौकिक और क्या पारलौकिक सारी शक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं। मन की स्थिरता का अर्थ है-सब प्रकार की शक्तियों की उपस्थिति और शक्तियों की उपस्थिति का अर्थ है, सफलता। मन के परिभ्रमण का अर्थ है शक्तियों का अनुपस्थिति। जिसका अर्थ है—असफलता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार का प्रत्येक व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में सफलताओं के दर्शन चाहता है। क्या आर्थिक क्या पारिवारिक, क्या सामाजिक, क्या सार्वजनिक, क्या बौद्धिक, क्या भौतिक और क्या आत्मिक ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसमें मनुष्य सफलता का आकांक्षी न हो। बहुत-से सफलता पाते भी हैं और बहुत-से असफल रह जाते हैं।

जीवन में निश्चित सफलता पान के लिए मन में एकाग्रता का स्वभाव उत्पन्न करना बहुत आवश्यक है। मन की वृत्ति कुछ उल्टी होती है। वह जितना ही मुक्त, निर्भीक एवं निर्विकार होता है उतना ही स्थिर रहता है और जितना ही यह बोझिल एवं बंधित होता है उतना ही चञ्चल एवं प्रथमनशील रहता है। मन को स्थिर एवं शक्तिशाली बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे हर प्रकार से मुक्त और निर्भर स्खा जाये।

जिस प्रकार स्थिरता के सम्बन्ध में मन की वृत्ति कुछ उल्टी-सी है, उसी प्रकार चंचलता के विषय में कुछ अनुकूल सी है। आप जिस दिशा में इसको संकेत कर देंगे। यह उसी दिशा में दौड़ जायेगा, जिस विषय से परिचय करा देंगे उसके घनिष्टता पैदा कर लेगा। विषय विशेषों की ओर एक बार मार्ग दिखा भर देने से फिर वह सजातीय हजारों विषयों का मार्ग स्वयं खोज लेता है और फिर बिना प्रेरणा के ही विषय-पथ पर दौड़ा-दौड़ा फिरता है। थोड़ी-सी भी छूट पाने पर यह उच्छृंखल ही नहीं निरंकुश हो जाता है और तब मनमानी करता हुआ जल्दी हाथ नहीं आता।

बेहाल हुआ मन भयानक प्रेत की तरह मनुष्य को लग जाता है और उसे एक असहाय की तरह पतन के गर्तों में गिराता और कष्ट देता रहता है। उसकी विवेक, बुद्धि को ग्रसित कर विपरीत बना देता है। जिससे ईश्वर अंश का सगुण स्वरूप मनुष्य नारकीय यन्त्रणाओं को भोगा करता है। मन की दो ही गतियाँ हैं। या तो यह मनुष्य का स्वयं दास बनकर उसका आज्ञाकारी रहेगा अथवा मनुष्य को अपना दास बनाकर उस पर विविध अत्याचार करेगा। निरंकुश मन के वशीभूत मनुष्य की वही दशा होती है जो भागते हुए घोड़े की दुम में बँधे किसी अपराधी की। घोड़ा बुरी तरह ऊँचे-नीचे, कँकरीले, पथरीले, सँकरे, गन्दे मार्गों को लाँघता, कूदता चला जाता है और पूँछ में बँधा मनुष्य, घसिटता-खिचता और मरता, मिटता दुःसह कष्ट पाता रहता है।

जिससे मन को स्वाधीन बना लिया है, उसने मानो त्रयलोक की सुख-सम्पत्ति अपनी मुट्ठी में बन्द करली है। जब मन निर्विकार होकर स्थिर हो जाता है तब अपने दिव्य चमत्कारों की पिटारी खोलता है। एक से एक सुन्दर स्वर्गों की रचना करके मनुष्य को सुख-शान्ति से परिपूर्ण कर देता है।

निर्बल मन क्षण-क्षण पर बुरे-भले मनोरथ करता रहता है किन्तु अधिकतर वह जाता बुराई की तरफ ही है। इसका कारण उसकी वह दुर्बलता है जो उसे सुन्दर और पवित्र जीवन का आकर्षण ही उत्पन्न नहीं होने देती है।

मन में ईश्वर ने एक प्रचण्ड शक्ति भर दी है जो स्फुरित होते ही सारे संसार को प्रभावित कर सकती है। बड़े-बड़े आन्दोलनों का संचालन तथा जन नेतृत्व मनोबल से ही किये जाते हैं। मन को अपने कार्यों एवं इच्छाओं के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहना होता। स्वयं ही वह इच्छायें कर लेता है और स्वयं ही अपनी आकर्षण शक्ति से उसकी पूर्ति के साधन जुटा लेता है।

जीवन में अभ्युदय की इच्छा रखने वालों को कुछ और न करके पहले अपने मन की महान शक्तियों का उद्घाटन करना चाहिये। मन की शक्तियों का उद्घाटन करने के लिए उसे अपने अनुकूल बनाना बहुत आवश्यक है। मन के अनुकूल होते ही उसकी सारी शक्तियाँ कल्याण कर कार्यों की ओर लग जाती हैं और मनुष्य के जीवन में एक से एक बढ़कर फल लाती हैं।

मन को अनुकूल बनाने का एक ही उपाय है कि इसे बुरी भावनाओं, अवांछनीय इच्छाओं और अकल्याण कर मनोरथों से बचाये रखा जाये। विषय-वासनाओं तथा भोग-विलास की प्रमादी प्रवृत्तियों का बोझ इस पर न डाला जाये। विकारों से थका हुआ मन विद्रोही होकर अनिष्टकारी दिशाओं में ही भागता है। उसकी सत्चेतना का ह्रास हो जाता है और वह एक बदहवास मद्यप की तरह बनकर मनुष्य का घोरतम अहित किया जाता है।

अधिक कामनायें, लिप्सायें एवं तृष्णायें मनुष्य के मन को जर्जर कर डालती हैं। जिससे उसकी शक्ति स्वयं मनुष्य पर आक्रमण करके उसे हानि पहुँचाया करती हैं।

संयम एवं साधना का सहारा लेकर मनुष्य को अपने मन का परिष्कार करना चाहिए। यह एक महान तप है। जिसने इस तप की सिद्धि करली, मन को मुट्ठी में कर लिया मानो उसने संसार की समस्त सफलताओं एवम् उन्नतियों की कुंजी ही पा ली।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन को समुन्नत बनाने का एकमात्र राजमार्ग

प्रत्येक पिता की इच्छा होती है कि हमारा पुत्र हमारी तुलना में अधिक सम्पन्नता, ख्याति, पदवी, प्रतिष्ठा प्राप्त करे। गुरु भी अपने शिष्य को अपने से बढ़कर देखना चाहते हैं क्योंकि गढ़ी हुई प्रतिमा का श्रेय अन्तत: उसके सृजनकर्त्ता को ही जाता है।

हमारा 'स्व' वस्तुत: आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। हमारे दो पुत्र हैं—एक मन दूसरा शरीर। इन दोनों के द्वारा ही गाड़ी के दो पहियों की तरह जीवन की रीति-नीति बनाई और चलाई जाती है। गाड़ी में दो बैल जुतते हैं उनके बीच ठीक तालमेल बना रहे तो राह आसानी से कटती है और गाड़ी लक्ष्य तक जा पहुँचती है।

आत्मा का कर्तव्य है कि वह अपनी वरिष्ठता-विशिष्टता इस बात से सिद्ध करे कि वह अपने इन दोनों पुत्रों, शिष्यों को कितनी समुन्नत स्थिति तक पहुँचा सका। लक्ष्य को कितना ऊँचा रखने और उसे प्राप्त कर लेने की प्रतिज्ञा कितनी लगन और प्रतिष्ठापूर्वक सम्पादित की जा सकी।

अनुकरणीय, अभिनन्दनीय, महामानवों की तरह जीवनयापन कर सकना, किसी के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। उसके उपरान्त मेधा, प्रतिभा, क्षमता और साधन-सुविधा हर किसी को मिली है। प्रश्न इतना भर है कि उनका सही रीति से सही प्रयोजन के लिए, सही समय पर उपयोग कर सकना जाना गया या नहीं।

जीवन का आयुष्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भाग उठती आयु से लेकर-प्रौढ़ता बनी रहने तक का है। बचपन ऐसे ही बचकानेपन में बीत जाता है। ढलती आयु में थके माँदे दिन कटते हैं। जो कुछ भी कहने लायक पुरुषार्थ किसी से बन पड़े हैं वे उसी शक्ति और स्फूर्ति वाली अवधि में सम्पन्न हुए हैं। जिनने यह समय वासना, तृष्णा, के चंगुल में कसे-कसे गँवा दिया। समझना चाहिए कि उसने बहुत भारी घाटा उठाया। इस तथ्य को प्रत्येक आत्मा स्वयं समझे और दोनों भुजाओं की तरह प्रयासों को सफल बनाने वाले मन और शरीर को समझायें।

मनुष्य स्वभावत: बहुत महत्वाकाँक्षी हैं। अबोध स्थिति से ही उसे मान और प्यार पाने की इच्छा होती है। तनिक सी आयु बढ़ते ही विलास, वैभव और बढ़प्पन की ललक जगती है। यही हैं वे ग्राह जो गज को सरोवर में घसीट ले जाते हैं। यही है वे कौरव जो द्रोपदी को भरी सभा में निर्वस्त्र करते हैं। सतर्कता इस बात की रहनी चाहिए कि शत्रुओं से बचा जाय। सज्जनों के साथ मित्रता का निर्वाह इसके उपरान्त ही बन पड़ता है। दल-दल में कंठ तक फँसा हुआ मनुष्य प्रगति पथ पर अग्रसर कैसे हो ? पहला प्रयास डूबने की स्थिति से उबरने का होना चाहिए। मन को तृष्णाओं से और शरीर को वासनाओं के गर्त में गिरने से बचाया जाना चाहिए। उन्हें कहा जाना चाहिए कि कुसंग से पहले निकला जाय, सत्संग का लाभ इसके उपरान्त ही मिलेगा। हेय पशु प्रवृत्तियों से पीछा पहले छुड़ाया जाय। ऊँचा उठने की चेष्टा तभी बन पड़ेगी।

पतन में गिरने से बचना और ऊँचा उठने का सुयोग बनना तभी सम्भव है जब सांसारिक ऐष्णाओं की ओर सरपट दौड़ने की आदत बदली जाय और उलटकर उन महत्वाकांक्षाओं के मार्ग पर चला जाय तो महानता के लक्ष्य तक पहुँचाता है।

परिवर्तन की यह सन्धि बेला आई या नहीं, इसकी एक ही कसौटी है कि औसत भारतीय स्तर का निर्वाह स्वीकार हुआ या नहीं। ''सादा जीवन उच्च विचार'' के आदर्श की महत्ता मानी गई या नहीं। अमीरी का बढ़प्पन निरर्थक मानकर महानता का गौरव गले उतरा या नहीं । यदि इतना बन पड़े तो जीवन वस्तुत: नितान्त हल्का-फुल्का हो जायगा। उसकी राई-रत्ती जितनी आवश्यकता है, तनिक सी सूझ-बूझ और मेहनत के सहारे पूरी होती चलेंगी। सांसारिक समस्याएँ और कठिनाइयाँ सरलतापूर्वक हल होती चलेंगी। अनसुलझी कोई गुत्थी रहेगी नहीं। जहाँ सन्तोष और सादगी का रसास्वादन हुआ नहीं कि वह परिस्थितियाँ देखते-देखते बदल जायेंगी जो व्यस्त रखती और त्रस्त करती थीं।

समस्याओं के समाधान के सौ उपाय हैं। हम हठ पूर्वक एक को ही पकड़ बैठते हैं और सोचते हैं कि काम इसी प्रकार बनना चाहिए। अपनाया हुआ रास्ता छूटना नहीं चाहिए। जिस प्रकार सोचा जाता रहा है, उसी प्रकार पूरा होना चाहिए। यदि इस दुराग्रह को छोड़ दिया जाय तो जीवनयापन के सम्बन्ध में दूसरे उपाय-उपचार सोचे जायें तो ऐसे अनेकों मार्ग मिल सकते हैं जिन्हें अपनाकर शरीर की आवश्यकताएँ सरलतापूर्वक पूरी की जा सकें।

महत्त्वाकांक्षाएँ वही श्रेयस्कर हैं, जो बड़ा नहीं महान बनायें। महान बनने का एक ही उपाय है कि दृष्टिकोण और कार्यक्रम महान बनाया जाय। उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और शालीन व्यवहार, यह तीन ही ऐसे त्रिभुज हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो मिलकर महानता की समग्र आकृति बनाते हैं। इन्हीं का समन्वय त्रिवेणी संगम बनाता है।

महान जीवन मात्र अपने लिए नहीं जिया जा सकता। वह संकीर्ण स्वार्थपरता की सीमा में आबद्ध नहीं हो सकता। उदात्त दृष्टिकोण अपनाते ही सब अपने प्रतीत होते हैं। **''आत्मवत् सर्वभूतेषु''** का शास्त्र वचन जीवन व्यवहार में उतर जाता है तब जैसी चिन्ता अपने लिए करनी पड़ती है, वैसी ही सबके लिए उठ खड़ी होती है। जैसा व्यवहार दूसरों से अपने लिए चाहते हैं, उसी प्रकार का दूसरों के साथ बन पड़ता है। दुर्गुण हटते ही सद्गुण उनका स्थान ग्रहण करने लगते हैं। आलस्य और प्रमाद गया नहीं कि पराक्रम और साहस जगा नहीं। मूढ़ता से पीछा छूटते ही सतर्कता व्यक्तित्व में समा जाती है। जो विवेक की कसौटी पर कसकर वस्तुएँ खरीदता है- नीतियाँ अपनाता है, उसे खोटा खरीद लाने की शिकायत नहीं करनी पड़ती।

बल्ब बिजली के तार में सटते ही चमकने लगता है। आत्मा की गरिमा उसी क्षण प्रकाशवान हो उठती है, जिस क्षण कि वह प्रचलन की कीचड़ से निकलकर भगवान के चरणों में जा बैठता है। आत्माओं का समुच्चय ही परमात्मा है। विराट् विश्व को ही परब्रह्म कहते हैं। सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन ही वह प्रयास है, जिसे ईश्वर की सर्वोपरि आराधना कहा जा सकता है। उसके उद्यान को सुरम्य, सुविकसित बनाने में ईमानदार और परिश्रमी माली की तरह जुट पड़ना ही भगवान को प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय है। इस तथ्य को स्मरण रखने के लिए ही बार-बार राम नाम रटा जाता है ताकि राम का सौंपा हुआ काम दृष्टि से ओझल न होने पावे।

इस संसार की समस्त समस्याओं का समाधान लोक-मानस के परिष्कार और सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन से है। इन्हीं प्रयासों में निरत रहकर समूचे वातावरण को बदला जा सकता है। इस प्रयास में निरत रहकर अपनी दबी सत्प्रवृत्तियों को उभारा जा सकता है और महामानवों की गणना में अपने को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तित्व को पुण्यमय और क्रिया-कलाप को परमार्थ परायण बनाकर ही हम अपना और साथ ही अगणित अन्यान्यों का भला कर सकते हैं। नाविक अपनी नाव को भुजबल से चम्पू चलाकर किनारे लगाता है और उसमें बिठाकर असंख्यों को पार लगाता है। यह कार्य किसी को धन या सुविधा साधन देकर नहीं किया जा सकता है। इसका उपाय तो एक ही है कि व्यक्ति की स्वतन्त्र चेतना को जगाया जाय और सन्मार्ग अपनाने के लिए उसे मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और साहस प्रदान किया जाय। प्रत्यक्ष सहायता तो सामयिक आवश्यकता पूर्ति के लिए सहानुभूति अर्जित करके विश्वासपात्र बनने भर के लिए अर्जित करने के निमित्त की जाती है। वास्तविक हित साधन तो स्वावलम्बन और सुसंस्कार से ही बन पड़ता है। मन को यही पाठ हर घड़ी पढ़ाया जाय और उस हेतु व्यावहारिक कार्यक्रम बनाकर उन दोनों को दिया जाय, तो समझना चाहिए कि आत्मा का शरीर और मन के प्रति जो कर्तव्य है, वह पूरा हुआ।

मन एक सूक्ष्म प्राकृतिक शक्ति

इंग्लैण्ड के एक रसायन शास्त्री आहार सम्बन्धी परीक्षण कर रहे थे। चूहों के एक पिंजरे में से एक चूहे को निकाला गया और उसे सामान्य भोजन न देकर असामान्य मिर्च, मसाले और माँस व शराब से बना आहार दिया गया। चूहा जिसकी प्रकृति अब तक शान्त और शीतल थी, इस आहार को ग्रहण करने के बाद से ही उद्दंड और आक्रामक बन गया। पिंजरे के दूसरे चूहों को उस अकेले ने बुरी तरह सताया और यह सिद्ध कर दिया कि लोग जैसा अन्न खाते हैं उनका मन सचमुच वैसा ही बनता है।

इसके बाद उस चूहे को फिर से सरल, शुद्ध और सात्विक भोजन दिया गया अब वह फिर से अपने दैनिक जीवन में विनीत और शान्त हो गया। इससे यह पता चलता है कि आज जो मानसिक जटिलता देखने में आ रही है, वह सब अन्न के दूषित होने, आहार के अप्राकृतिक और अपवित्र होने का ही परिणाम है। शास्त्रकार का कथन है, सृष्टि के कण-कण में ''मन'' (चेतन विद्युत) विद्यमान है। आहार ग्रहण करते समय तक तो यह निश्चित रूप से ध्यान रखना चाहिये कि कोई ऐसा पदार्थ न लिया जाय जिससे ''मन'' कलुषित और क्रूर हो। माँस जीवों को निर्दयतापूर्वक काटकर बनाया जाता है, उसके अणुओं में उस जीव के प्रतिशोध और अभिशाप के भाव अवश्य भरे होंगे उस प्रकार का आहार ग्रहण करने वाला न तो उस प्रतिशोध की ज्वाला से बच सकेगा और न ही अभिशाप से। धीरे-धीरे यह बातें वैज्ञानिक ढंग से स्पष्ट होती जा रही हैं।

आत्मचेतना या ब्राह्मीचेतना मन से कहीं बहुत अधिक सूक्ष्म और पवित्र स्तर की चेतना है। उसे पाने के लिए मन को भी वैसा ही सूक्ष्म और पवित्र होना आवश्यक है जिस ''किलो साइकिल'' पर रेडियो स्टेशन बोल रहा है। रेडियो को उसी ''किलो साइकिल'' पर-उसी बेण्ड में लगाकर ही उसका प्रसारण सुना जा सकता है। मानसिक चेतना द्वारा ब्राह्मी चेतना की अनुभूति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसके क्रिया-कलापों के ज्ञान के लिए भी ठीक उसी प्रकार मन का पूर्ण पवित्र और प्राकृत होना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब वैसा ही शुद्ध और सात्विक आहार भी लिया जाय। इसीलिये योग के दस लक्षणों में ध्यान-धारण समाधि आदि के साथ ''प्रत्याहार'' को भी आवश्यक माना गया है।

आमतौर से लोग सांसारिकता में पड़े लड़ते-झगड़ते रहते हैं। उसका वैज्ञानिक कारण आहार का दूषण ही है इस सम्बन्ध में फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने परीक्षण किया। उन्होंने ब्रिटिश वैज्ञानिकों द्वारा किये गये परीक्षण को मनुष्यों पर प्रयोग किया और पाया कि चिड़चिड़े और मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त लोगों को विशेष प्रकार के आहार से ठीक किया जा सकता है। १० सितम्बर, १९७० के नवभारत टाइम्स में इन डॉक्टरों का हवाला देते हुये लिखा है कि एक चिड़चिड़े व्यक्ति को कार्बोहाइड्रेट पथ्य के साथ गाय का दूध ही पीने को दिया गया और उन्हें गहरी साँस लेने को कहा गया। उससे उनका चिड़चिड़ापन ठीक हो गया। ईर्ष्या, द्वेषवृत्ति वाले लोगों को हल्का गरम पानी बार-बार पिलाया गया और खुले मैदान में घूमने और व्यायाम करने को कहा गया उससे वह ठीक हो गया। इसी प्रकार सोवियत वैज्ञानिक और एम० एम० अरब व ए० डब्ल्यू० अयूब नामक दो अरब वैज्ञानिक उपवास पर प्रयोग कर यह पा रहे हैं कि उपवास और एक खास प्रकार के आहार से जटिल से जटिल मानसिक रोगों का इलाज हो सकता है। लगता है, विश्व शांति के वैज्ञानिक उपाय की कभी खोज हुई तो लोग उसका उपाय शुद्ध शाकाहार ही पायेंगे। यह भारतीय आहार पद्धति की एक और विजय है, सफलता है।

मन की अपार शक्ति और उसका उपयोग

जब कोई साधक ईश्वर की खोज में आगे बढ़ता है तो सबसे अधिक कठिनाई अपने मन को रोकने में होती है। जो मन को रोकने का अभ्यास कर रहे हैं, वे ही इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। जब हम विचारों का संयम करने बैठते हैं, तो हमें मालूम होता है कि हमारा मन कितना स्वच्छन्द और निरंकुश रहा करता है तथा उसमें सब प्रकारों के विचारों को ग्रहण करने की भी कितनी अपार शक्ति रहती है। हमें यह स्मरण करके बड़ा दु:ख और आश्चर्य होता है कि हमने इधर-उधर की निरर्थक बातों में अपना कितना अमूल्य समय नष्ट किया है। अगर इसी समय को हम किसी विशेष लक्ष्य की ओर, जीवन ऊपर उठाने वाले विचारों की ओर लगाते तो हमारा चरित्रबल कितना अधिक बढ़ जाता, हमारा हृदय कितना शुद्ध हो जाता, हमारा प्रभाव कितना बढ़ जाता और हमारी आत्मिक-उन्नति कितनी अधिक हो गई होती।

यदि उपरोक्त कथन की सच्चाई किसी दिन किसी की समझ में आ जाय, तो उस दिन को उसके जीवन का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन समझना चाहिये।

मन पहिले-पहल अपने ऊपर हाथ नहीं रखने देता। उसकी अवस्था उस बछेड़े की सी होती है जो मुँह में पड़ी लगाम तोड़कर स्वतन्त्र होना चाहता है। वास्तव में यदि हम मन को वश में करना चाहते हैं, तो हमें बडे धैर्य से काम लेना होगा और उसको इधर-उधर जाने से बार-बार रोकना होगा। सम्भव है निराश होकर हम उसे रोकने का प्रयत्न बन्द कर दें, पर ऐसा करना हमारे लिये बहुत घातक होगा।

मन को रोकने के लिए सबसे पहले धैर्य धारण करने की आवश्कता है। शीघ्रता करने से सिवाय हानि के लाभ नहीं है। धीरे-धीरे काम करके सफलता प्राप्त करना अच्छा है, किन्तु शीघ्रता करके असफल हो जाना बुरा है, अतएव मन को प्रारम्भ में तंग करने का अधिक प्रयत्न न करो और न उसे एकाग्र करने में अधिक समय लगाओ। सम्भव है, इस प्रकार के व्यवहार में अभ्यस्त न होने के कारण वह थम जाय और अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर सके। सच्चा मनुष्य वही है जो धीरे-धीरे मन को वश में कर लेता है।

मन को एक स्थान पर लगाने का अभ्यास करो। प्रात:काल का समय इसके लिये सबसे उत्तम समय है। दस मिनट से प्रारम्भ करो और फिर बीस मिनट कर दो। एक या दो सप्ताह के बाद आध घण्टे तक ले जाओ इस प्रकार धीरे-धीरे मन किसी स्थान पर आपसे आप एकाग्र होने लगेगा।

आत्मा की उन्नति के लिए एक आदर्श की अत्यन्त आवश्कता है। यह आदर्श तभी फलदायक हो सकता है जब मन उस पर एकाग्र हो जाय। पहले परीक्षा करके अपने आपको जानना चाहिए। मनुष्य का मन बड़ा ही दुर्ज्ञेय है। पर अपने को जानना उतना सुगम नहीं जितना कि जान पड़ता है। तो भी यदि हम मन को वश में करना चाहते हैं तो सबसे पहले अपने आपको जानना चाहिए। हम अपनी गहरी जाँच-पड़ताल करें, अपनी कामनाओं का विश्लेषण करें, अपनी इच्छाओं को तौलें और फिर यह विचार करें कि हमने अमुक बात क्यों कही थी अथवा हमने अमुक कार्य क्यों किया था ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिदिन हम अपने कामों का निरीक्षण करते रहें और यदि कोई भूल हमसे हुई हो तो उसको मानने में न हिचकें। अपनी अन्तरात्मा से अपने दोष कहने में किसी प्रकार का भय न करो। इससे तुम्हारी आत्मा निरन्तर उन्नति करती जायगी। इस प्रकार उद्योग करते हुए धीरे-धीरे हम अपने लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायेंगे और अन्त में अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल मनोरथी होंगे।

मन का गुप्त रेडियो

बाह्य स्पर्श के कारण कम्पन उत्पन्न होते ही सदा तत्काल इनका असर अन्तर मन पर नहीं पड़ता और बोध भी नहीं होता। जब कोई साधारण विचार बाहर से हमारे मन में आता है तो तत्काल उसका ज्ञान हमें नहीं होता-परंतु कभी-कभी इनका प्रभाव हम पर वैसा ही होता है जैसा सूर्य, वर्षा, खाद का असर उस बीज पर होता है जो पृथ्वी में दबा पड़ा हुआ है। पहले-पहिल उन कम्पनों का कोई दृष्टिगोचर परिणाम नहीं होता जो उस बीज पर विहार कर रहे हैं किन्तु उसके अन्तर में एक ऐसा मन्द स्पन्दन होता रहता है जो शनैः-शनैः प्रबल होते-होते इतना तीव्र हो जाता है कि वह उस बीज के छिलके को फाड़कर नन्हीं-नन्हीं जड़ों को निकालता है और उसका विकास करता है।

ठीक ऐसी ही गति मन की भी है। प्रज्ञा, अन्तर में धीरे-धीरे स्फुरित होती रहती है। बाह्य स्पर्शों का बाह्य ज्ञान होने के पूर्व हमारे अन्तर में एक ऐसी स्फुरणा हो रही है जिसका हमें मानसिक ज्ञान नहीं है। किसी महापुरुष की संगति से जब हम लौटते हैं तो हमारी मन-मानसिक महाप्रवाह के साथ-अर्थात् उस महापुरुष के तेजस् मण्डल के साथ, पहले से अधिक सन्निहित होकर आता है। पहले हमारा मन महापुरुष की संगति में प्रवेश करते समय उसके तेजोमण्डल अथवा विचार-प्रवाह की परिधि के इतने समीप नहीं होता, जितना कि सत्संग से लौटते समय होता है। अतः हमारे अन्तर में तथा हमारे चारों ओर वायुमण्डल में-आकाश में स्थित संकल्प के परमाणु उत्तेजित हो जाते हैं और हमारे मन की उन्नति में सहायता मिलती है। हमारे मन की उन्नति बहुत कुछ बाह्य स्पर्श से हो सकती है।

विचार शक्ति शनैः-शनैः बढ़कर हमारे वश में आती है और उसका उपयोग विशेष प्रयोजनों की सिद्धि के निमित्त किया जा सकता है। आजकल प्रायः प्रत्येक व्यक्ति 'वेतार का तार' का नाम जानता है और आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करते ही उसकी यह आन्तरिक कामना रहती है कि वह किसी स्थूल यंत्र के बिना अपने मानसिक रेडियो द्वारा ही विचार प्रेषण कर सके और डाक अथवा तार की सहायता के बिना ही अपने दूरस्थ मित्रों अथवा कुटुम्बियों से घर बैठे ही वार्तालाप किया करें तो बड़ा ही आनन्द आवेगा। बहुतों का यह विचार हुआ करता है कि थोड़े प्रयत्न से ही साधन की सिद्धि प्राप्त हो सकती है किन्तु जब वे अपने प्रयत्न को सर्वथा व्यर्थ पाते हैं तो आश्चर्य होता है। स्पष्ट बात तो यह है कि संकल्प भेजने के लिए शक्ति प्राप्त करने के पूर्व वे लोग मनन करने की शक्ति प्राप्त कर लें। विचार की तरंगें स्थानान्तर भेजने के लिए स्थिर मनन करने की शक्ति प्राप्त करना आवश्यक है। बहुतों की निर्बल और चपलवृत्ति के कारण संकल्पों से केवल अस्थायी कंपन उत्पन्न होते हैं जो क्षण भर में उत्पन्न होकर पुनः विलीन हो जाते हैं तथा उनका चित्र भी क्षण भंगुर होता है। अतः जब तक मनन शक्ति दृढ़ न होगी, विचारों का कंपन भी स्थायी नहीं होगा। मनुष्य चाहे कितना पढ़े, उसकी मानसिक उन्नति उसके विचारों की न्यूनाधिकता के अनुपात से होगी। जब तक वह उस विचार को लेकर उस पर कुछ समय तक मनन न करे तब तक उससे क्षणिक लाभ और बहुत थोड़ा लाभ होगा। अभ्यास से ही पूर्णता अथवा सिद्धि प्राप्त होती है। यह कथन मन के लिए उतना ही सत्य है जितना कि देह के लिए। खाने से पेट भरता है, किन्तु जैसे जब तक आहार पचे नहीं तब तक वह शरीर के लिए व्यर्थ होता है। उसी प्रकार मन भी पठन द्वारा भरा जा सकता है किन्तु जब तक उसका मनन न हो तब तक पाठ पचकर मानसिक प्रकृति के साथ एकीभूत नहीं होता। इसी से मन की बुद्धि नहीं होती और सफलता भी नहीं प्राप्त होती। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारा मन उत्कृष्ट हो और हमारी बुद्धि विकसित हो तो हमें पढ़ना कम, और मनन अधिक करने की आवश्यकता है। पाँच मिनट तक पढ़कर दस मिनट तक मनन करना चाहिए।

संकल्प को स्थानान्तर भेजने की दो रीतियाँ हैं। एक तो आधिभौतिक और दूसरी आधिदैविक। पहली का संबंध मन और मस्तिष्क से है और दूसरी का कार्य केवल मन से होता है। संकल्प उत्पन्न होकर प्रथम मानसिक क्षेत्र में, फिर एस्ट्रल (सूक्ष्म) क्षेत्र में कंपन उत्पन्न करते हैं। इससे ईथर व आकाश तत्व में और फिर स्थूल मस्तिष्क में तरंगें उत्पन्न होती हैं। इन मानसिक कम्पनों से आकाश तत्व प्रभावित होता है और तरंगें आकाश तत्व द्वारा जाती-जाती दूसरे के मस्तिष्क में पहुँच जाती हैं और प्रेषक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क तक पहुँच जाती हैं और उसके स्थूल तथा आकाश तत्व के कणों में कम्पन उत्पन्न करती हैं। मस्तिष्क में एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोटी सी इन्द्रिय है जिसको पीनियल ग्लैण्ड (Pineal Gland) अथवा दिव्य चक्षु कहते हैं। इसको उन्नत करके हम ऐसी अवस्था में ला सकते हैं जिससे यह मनचाहा कार्य हो सकता है। यदि कोई मनुष्य दृढ़ता पूर्वक एक ही विषय पर लगातार सावधानी से गूढ़ विचार करे तो उसे पीनियल ग्लैण्ड अथवा दिव्य चक्षु में एक प्रकार के मन्द कम्पन का अनुभव होगा जैसे उसके मस्तिष्क के अन्दर उस विशेष स्थान में चींटी चलती हो। यह कम्पन एक हल्की सी चुम्बक धारा उत्पन्न कर देता है जिससे दिव्य चक्षु के स्थूल कणों में कम्पन का अनुभव होता है। यदि विचार इतना तीव्र हो जाय कि उससे चुम्बकीय क्षेत्र बन जाय और साधक को उस कम्पन्न का अनुभव होने लगे तो साधक जान जाता है कि उसे संकल्प को एकाग्र करने और स्थानान्तर भेजने के योग्य बलवान बनाने में सिद्धि प्राप्त हुई है।

दिव्य चक्षु के आकाश का कम्पन आसपास के आकाश में प्रकाश की तरंगें उत्पन्न करता है। ये तरंगें प्रकाश की तरंगों की अपेक्षा बहुत छोटी, सूक्ष्म और बहुत ही तीव्र गति वाली होती हैं तथा एक साधक के मस्तिष्क से संकल्पों को दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में जाने के लिए किसी प्रकार से पर्वत अथवा दीवालों द्वारा रुकावट नहीं हो सकती। दिन के समय सूर्य के प्रकाश और गर्मी तथा सांसारिक चहल-पहल के कारण संकल्प के कंपन मार्ग से कुछ विचलित हो जाते हैं परन्तु रात के समय जब अंधकार रहता है और संसार में आकाश शान्त रहता है तब विचार बड़ी तीव्रगति से चलते हैं। चाहे साधक चारों ओर से बन्द गुप्त कमरे के अन्दर से विचार प्रेषण किसी भी दिशा को करे, मार्ग में कोई भी जबरदस्त पदार्थ रुकावट डाले, कुछ असर नहीं पड़ सकता और विचार अवश्य अपने निश्चित स्थान को, जहाँ के लिए उनको प्रेरित किया गया है जायेंगे। यदि दूसरे व्यक्ति का मन इतना उन्नत नहीं है और उसके दिव्य चक्षु में कम्पन का अनुभव नहीं होता तो-साधक के मस्तिष्क से निकले हुए संकल्प दूसरे व्यक्ति के पास जाकर वहाँ से वापिस अपने प्रेषक के पास लौट आवेंगे और दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रेषित संकल्पों का कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा जैसे कि प्रकाश की तरंगों का कोई प्रभाव अन्धे मनुष्य के चक्षु पर नहीं पड़ता।

संकल्प को दूसरी रीति से स्थानान्तर में मननकर्त्ता अपने मानसिक क्षेत्र में दूसरे व्यक्ति का चित्र बनाकर उसके मस्तिष्क तक संकल्प नहीं भेजता किन्तु उसे सीधा दूसरे मननकर्त्ता की ओर मानसिक क्षेत्र में प्रेरित करता है। इस प्रकार की क्रिया सावधानी से करके सामर्थ्यवान, होने के लिए प्रथम रीति की अपेक्षा अधिक मानसिक उन्नति और एकाग्रता की आवश्यकता है क्योंकि यह साधन करने के लिए संकल्प प्रेरक को मानसिक क्षेत्र पर आत्मदृष्टा होना आवश्यक है। किन्तु संकल्प की स्थानान्तर प्रेरणा शक्ति को हम सब लोग अप्रत्यक्ष और अज्ञात रीति से काम में लाते रहते हैं क्योंकि हमारे सब विचार मानसिक क्षेत्र में कम्पन उत्पन्न करते हैं और नियमानुसार इन कम्पनों का प्रभाव मानसिक प्रकृति पर अवश्य होता है। प्राय: प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग रीति से विचार करते हैं। उसका अपना प्रभाव अपनी मानसिक उन्नति करने में अन्य मनुष्यों को अपेक्षा अधिक बलवान है। वह अपने मन की साधारण कम्पन गति को आप ही नियत करता है। जो विचार उसके कम्पनों के सजातीय नहीं होते वे आप ही लौट जाते हैं। यदि कोई मनुष्य सत्य का मनन करता है तो उसके मन में झूठ के विचार नहीं आ सकते, आते ही लौट जायेंगे। यदि वह प्रेम पर मनन करता है तो 'घृणा' उसके मन पर प्रभाव नहीं डाल सकती। यदि वह विज्ञान का विचार करता है तो अज्ञानता उसे जड़ीभूत नहीं कर सकती।

केवल इसी नियम में दृढ होकर हमें शक्ति प्राप्त होती है। मनोभूमि को ऊसर पृथ्वी समझकर कभी खाली न पड़ी रहने देना चाहिए। उसमें कोई संकल्प बीज पड़कर वह उगकर वृद्धि पा सकता है। यदि कोई सूक्ष्म जगत के इन नियमों का अभ्यास और पालन करे तो उसका मूल्य और महत्त्व ज्ञात हो जायेगा, जिससे विश्वास हो जायगा कि विचार द्वारा जीवन अधिक शुभ, सुखी और आनन्दमय बनाया जा सकता है।

मन की चमत्कारिक शक्तियाँ

हम अपने विचारों को साधारणत: बोलकर व्यक्त करते हैं। जब हम किसी दूर रहने वाले व्यक्ति को अपने विचार बताना चाहते हैं तो हम उसे पत्र अथवा तार द्वारा सूचित करते हैं। बिना भौतिक साधन के विचार किसी दूर रहने वाले व्यक्ति तक पहुँच सकते हैं, इस बात पर हमारा कदापि विश्वास नहीं होता। किन्तु हम यदि अपने व्यावहारिक जीवन की सूक्ष्मता से देखें तो हम भौतिक साधनों के बिना विचारों को अपने मित्रों तक पहुँचने के बहुत कुछ प्रमाण पायेंगे। हाल ही की बात है, लेखक अपने एक मित्र के बारे में और उसके प्रेम-सम्बन्ध में कुछ कह रहा था। उस मित्र से कई दिनों से पत्र व्यवहार बन्द हो रहा था। ठीक उसी समय पर उस मित्र ने भी लेखक के विषय में सोचा और उसने लेखक को पत्र लिखा। इसी प्रकार जब लेखक एक दूसरे मित्र के बारे में चिन्ता कर रहा था। लेखक का वह मित्र भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेखक के बारे में चिन्ता करने लगा। लेखक उसके घर गया और इस अनुभव की सत्यता ज्ञात की।

हमारे विचार प्रकाशित न होने पर भी जिस व्यक्ति के प्रति जैसे होते हैं वे उसको ज्ञात हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने मन को एकाग्र करके किसी व्यक्ति की अपने प्रति धारणा के विषय में यदि जानना चाहे तो वह जान सकता है। यदि वह व्यक्ति आपके सामने है तो उसकी धारणा का जानना सरल ही है, पर दूर रहने पर भी उसकी मुखाकृति को कल्पना में लाकर उसके विषय में चिन्तन करें और जो विचार उस समय उसके मन में उठें उन्हें ध्यान में रखे। यह देखना कि विचार उस व्यक्ति की धारणाओं को व्यक्त करते हैं। जो व्यक्ति हमसे वास्तविक प्रेम करता है उसके विषय में चिन्तन करते हैं हमारे हृदय में प्रेमोद्‌गार उदय होने लगता है और जो व्यक्ति हमें नहीं चाहता उसके विषय में सोचते ही मन में क्षोभ उत्पन्न होने लगता है। इस प्रेमोद्‌गार और क्षोभ को भली-भाँति समझने से दूसरे व्यक्ति के हृदय की स्थिति तथा उसकी अपने प्रति धारणा का पता चल सकता है।

हम अपने स्थान में रहकर भी दूर रहने वाले व्यक्ति के हृदय की धारणा बदल सकते हैं। दूसरे व्यक्ति के विचारों को बदलना, अपने चित्त की एकाग्रता पर निर्भर रहता है। एक व्यक्ति यदि दूसरे व्यक्ति को कोरे तर्क के बल पर प्रभावित करना चाहे तो वह देखेगा कि उसका प्रयत्न व्यर्थ गया। जब तक तर्क करने वाले व्यक्ति के प्रति किसी व्यक्ति की श्रद्धा नहीं होती, युक्तियों को सुनने वाले के मन पर कोई भी अनकूल असर नहीं होता। तर्क करने से कभी-कभी प्रतिकूल परिणाम होता है। मनुष्य की बुद्धि उसके हृदय की दासी है। जब तक हम मनुष्य के हृदय पर अधिकार नहीं करते, उसकी बुद्धि को भी प्रभावित नहीं कर सकते। दूसरे के हृदय पर अधिकार मन की साधना अर्थात् एकाग्रता से होता है, हृदय के प्रभावित हो जाने से बौद्धिक परिवर्तन सरलता से हो जाता है। हृदय का परिवर्तन अपनी सद्‌भावना के दर्शाने से होता है। इसके लिए अधिक बकबास करने की भी आवश्यकता नहीं होती। किसी को दो-चार शब्दों से भी प्रभावित करके उसके हृदय को परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता यह है कि हम उसके प्रति वास्तविक सद्‌भावना रखें। सद्‌भावना के लिए अपने ही स्थान में रहकर उसके शुभ-चिन्तन की आवश्यकता है।

शारीरिक और मानसिक रोगों के उपचार में सद्‌भावना का महत्त्व भली-भाँति देखा जाता है। रोगी के प्रति सद्‌भावना प्रकट करने से रोग नष्ट होता है। शारीरिक रोगों के उपचार में जितनी भौतिक औषधि कार्य करती हैं उससे कहीं अधिक डॉक्टर की रोगी के प्रति सद्‌भावना कार्य करती है। देखा गया है कि पैसे की दृष्टि से रोजगार करने वाले व्यक्ति रोगी की योग्य चिकित्सा नहीं कर सकते। जो वैद्य जितना ही अधिक पैसे का साथी होता है, वह रोगियों की चिकित्सा करने में उतना ही अयोग्य होता है। लोभी वैद्य रोगी को स्वस्थ नहीं करना चाहता क्योंकि इससे उसकी आमदनी का जरिया चला जाता है। वह आन्तरिक मन से रोगी को रोगी ही बनाये रखना चाहता है ताकि वह बार-बार उसे बुलावे और उसे फीस तथा दवा का दाम भी दे। इससे उसकी आन्तरिक भावना उसकी दवाइयों की अपेक्षा अधिक कार्य करती हैं और रोगी बीमार ही बना रहता है। देखा गया है कि कुछ वैद्य पहले सफल चिकित्सक रहकर भी बाद में अपने रोगियों को आरोग्य प्रदान करने की शक्ति खो बैठते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन का कारण उनके विचारों में दोष उत्पन्न हो जाना ही होता है।

चिकित्सक अपने घर रहकर भी रोगी को आरोग्य प्रदान करने में सफल हो सकता है। यदि चिकित्सक निःस्वार्थ भाव से किसी रोगी को चंगा करने की सोचे तो उस रोगी को अवश्य लाभ होगा। यहाँ चित्त की एकाग्रता और चिकित्सक की सद्‌भावना कार्य करती है। हम चित्त को एकाग्र करके दूर से ही किसी व्यक्ति के विचारों को बदल सकते हैं। जब किसी रोगी के हृदय की तन्त्री किसी आरोग्यवान् व्यक्ति से जुड़ जाती है तो उसे सफलता से आरोग्य लाभ हो जाता है। रोगों के विचार आरोग्यवान् व्यक्ति के विषय में चिन्तन करने से बदल जाते हैं। उसके आत्मभर्त्सना के भाव भी विनष्ट हो जाते हैं और आशा का संचार हो जाता है। मन के आशान्वित होने पर रोग का नष्ट होना अनिवार्य है।

रोगी के विचारों को आशान्वित बनाने में चिकित्सक भारी काम करता है। स्वयं रोगी के विचारों में किसी प्रकार की स्थिरता नहीं रहती। नैराश्ययुक्त रहता है और रोग से मुक्त होना चाहता है पर उसे मुक्त हो सकने का विश्वास नहीं होता। स्वयं चिकित्सक को ऐसी अवस्था में प्रयत्न करना पड़ता है, उसे मानो दल-दल से हाथ पकड़कर निकालना पड़ता है। इस कार्य में चिकित्सक का रोगी से बातचीत कराना आवश्यक नहीं होता। जितना उसके विषय में चिन्तन करना और उसी सेवा करना लाभदायक होता है। निःस्वार्थ सेवा करने से रोगी के हृदय पर चिकित्सक का अधिकार हो जाता है और फिर उसके विचार बदल देना सरल हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम जितनी एकाग्रता के साथ दूसरे व्यक्ति के बारे में सोचते हैं। वह उतना ही अधिक हमारे विषय में चिन्तन करता है। मरते समय मनुष्य दूर रहने वाले अपने प्रियजन का बड़ी एकाग्रता से चिंतन करता है। देखा गया है कि जिस व्यक्ति के बारे में मनुष्य ऐसा सोचता है, वह उद्विग्न मन हो गया है। या तो उसे जाग्रत अवस्था में ही उसका स्मरण आने लगता है अथवा वह उसके विषय में स्वप्न देखने लगता है। इस प्रकार के कितने ही स्वप्न सत्य होते पाये गये हैं। लेखक के एक छात्र ने एक बार अपने पिता की मृत्यु का स्वप्न देखा और दूसरे दिन उसकी मृत्यु का तार आया। सत्य होने वाले और साधारण स्वप्नों में अन्तर यह होता है कि स्वप्नावस्था के पूर्व ही मनुष्य उद्विग्नमन रहता है। यदि एकाग्र चित्त होकर इस उद्विग्नता का पता लगाना चाहे तो वह होने वाली घटना का पता लगा सकेगा।

जो मनुष्य अपने भीतर जितना ही अधिक अपने मन को ले जाता है, वह दूसरों की घटनाओं के जानने की उतनी ही अधिक शक्ति प्राप्त कर लेता है। दूसरे मनुष्यों के विचारों को प्रभावित करने की शक्ति तथा अपने संकल्प को सफल बनाने की शक्ति भी अपने मन को अपने भीतर ले जाने से आती है। कई दिनों के उपवास से इस प्रकार की शक्ति का उदय होता है। संसार के अनेक विद्वान और सभी महात्माओं ने अपने विचारों को प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक प्रकार की तपस्याएँ की हैं। जो व्यक्ति जितनी तपस्या करता है उसके विचार उतने ही प्रभावशाली होते हैं। सत्य और शक्ति दोनों को ही प्राप्त करने के लिए तपस्या की आवश्यकता है। हमारा आन्तरिक मन कल्पनातीत शक्तियों का केन्द्र है।

हम जिस प्रकार की शक्ति का साक्षात्कार करना चाहते हैं, मन की एकाग्रता के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। अपने स्वार्थ को त्यागने से शक्ति की असीम वृद्धि हो जाती है। जो व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति को अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कामना में नहीं लाता है वह उतना ही अधिक उस शक्ति को भली बना लेता है। हम इस तरह देखते हैं कि तप और नि:स्वार्थ भावना के कार्य मनुष्य को अपार शक्ति प्रदान करते हैं। हमारी मानसिक शक्ति हमारे विश्वास पर निर्भर है। जैसा मनुष्य का अपनी शक्ति के विषय में निश्चय होता है, उसके मन में उसी प्रकार की शक्ति का उदय होने लगता है। पर निश्चय की दृढ़ता तप का परिणाम है। तप और योग में मौलिक भेद नहीं, दोनों में ही मन को रोकना पड़ता है। मन की एकाग्रता से ही निश्चय की दृढ़ता अर्थात् विश्वास आता है। विश्वास सिद्धि का कारण होता है। मनुष्य जितनी ही अधिक तपस्या करता है मानसिक शक्ति को उतना ही अधिक बढ़ा लेता है। पर यह बढ़ी हुई शक्ति अपने ही काम में लाने से नष्ट हो जाती है। इस शक्ति को लोकोपकार में लगा देने से चिरस्थायी हो जाती है। शक्ति का उदय, तप अर्थात् चित्त की एकाग्रता से होता है और उसका स्थायी रहना उसके उपयोग से।

हमारे वैयक्तिक मन के परे समष्टि मन है। यही मन-शक्ति और प्रतिभा का केन्द्र है। चित्त की एकाग्रता से मनुष्य अपने आपको समष्टि मन से मिला देता है। तपस्या का यही परिणाम है। इस मनुष्य का वैयक्तिक मन शक्तिशाली हो जाता है। जब तक मनुष्य के वैयक्तिक मन और समष्टि मन में एकता रहती है। मनुष्य शक्तिशाली बना रहता है, जब मनुष्य अपने आपको समष्टि-मन से अलग कर लेता है तो उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। शक्ति समष्टि मन अर्थात् विराट पुरुषों से, जो कि हमारा अन्तर्यामी है, आती है। जब हम विराट पुरुष से प्राप्त शक्ति उसी के काम में लाते हैं तो वह नष्ट नहीं होती। जितना ही अधिक हम अपनी शक्ति को लोकोपचार में खर्च करते हैं हमारी शक्ति उतनी ही अधिक बढ़ती है। अपने स्वार्थ की सिद्धि वाले कार्यों में खर्च करने से उसका ह्रास होता है।

मानसिक शक्ति का सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक शक्ति से प्राय: स्थापित किया जाता है। कहा जाता है कि मनुष्य की जैसी शारीरिक शक्ति होती है, उसी अनुसार उसकी मानसिक शक्ति भी होती है इस प्रकार की धारणा भ्रमात्मक है। देखा गया कि मोटे-ताजे मनुष्य का मानसिक बल नहीं के बराबर होता है और दुर्बल मनुष्य के मानसिक बल से संसार डरता है। अपढ़ और पढ़े-लिखे लोगों के मानसिक बल को ही देखें। सुशिक्षित मनुष्य का मानसिक बल सदा अशिक्षित से अधिक होता है। जितना आत्म विश्वास शिक्षित में पाया जाता है उतना अशिक्षित व्यक्ति में नहीं। उसमें न तो उतना विश्वास होता है न मानसिक दृढ़ता ही। इस कारण ही चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करना पड़ता है। व्यक्ति किसी विषय को लेकर जितना ही अधिक मानसिक एकाग्रता का अभ्यास करता है उसमें उतना ही अधिक मानसिक दृढ़ता और आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है।

मनोमय कोश-मस्तिष्कीय परिष्कार

मनोमय कोश की साधना में एकाग्रता की शक्ति का सम्पादन एवं अभिवर्धन प्रमुख है। सर्वविदित है कि बिखराव से समर्थता भी छिन्न-भिन्न हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असंगठित होने पर समर्थ लोग भी कुछ कर नहीं पाते, जबकि थोड़े से छोटे लोग मिलकर भी बड़े-बड़े कार्य पूरे कर लेते हैं। यही बात मन:शक्ति के सम्बन्ध में भी है, वह बिखरी रहे तो मस्तिष्क यन्त्र के पूर्ण समर्थ होते हुए भी उसकी क्षमता गये-गुजरे स्तर पर पड़ी रहेगी और वह बौद्धिक दुर्बलता के साथ-साथ प्रगति के हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ ही बना रहेगा।

ध्यान-योग में एकाग्रता की शक्ति को ही विकसित किया जाता है। इसके कई लाभ हैं। बिखराव दूर करके यदि चिन्तन एवं संकल्प को एकत्रित करने की कला सीख ली जाय और उसे मन:संस्थान में अवस्थित विभिन्न क्षमता केन्द्रों पर इकट्ठा कर लिया जाये, तो वे संस्थान जाग्रत होंगे और जो विशेषताएँ अपने भीतर पहले नहीं थीं वे समुन्नत होने लगेंगी। इस आधार पर स्मरण शक्ति जैसी कितनी ही क्षमताएँ विकसित की जा सकती हैं।

आतिशी शीशे के माध्यम से कुछ इन्च के घेरे में फैली हुई सूर्य किरणों को यदि एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जा सके तो उतने भर से तत्काल अग्नि प्रज्ज्वलित हो जायेगी। उसका उपयोग करके विकराल दावानल उत्पन्न किया जा सकता है। मनुष्य की शारीरिक श्रम शक्ति और मानसिक चिन्तन शक्ति की अस्त-व्यस्तता ही उसे गई गुजरी स्थिति में डाले रखने के लिए जिम्मेदार है। यदि इन क्षमताओं का सदुपयोग सम्भव हो सके तो उसका सत्परिणाम देखते ही बनेगा। सांसारिक जीवन में अनायास ही आकस्मिक सफलताएँ तो कदाचित ही किसी को मिलती होंगी। सामान्यतया हर प्रगतिशील व्यक्ति को अपनी क्षमताओं को बिखराव से रोककर अभीष्ट लक्ष्य के लिए नियोजित करना पड़ता है। प्रगति की सम्भावना का मार्ग इसी उपाय से प्रशस्त होता है। जो अपने श्रम, समय चिन्तन, मनोयोग दिशा धारा को किसी लक्ष्य विशेष पर नियोजित न कर सके, तो वे सुयोग्य एवं साधन सम्पन्न होने पर भी कुछ कहने लायक सफलता प्राप्त न कर सकेंगे। इसके विपरीत स्वल्प बुद्धि और स्वल्प साधन होते हुए भी कितने ही व्यक्ति उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचते देखे गये हैं। सफलताओं में से अधिकांश का श्रेय कर्त्ता की तत्परता एवं तन्मयता पर ही निर्भर रहता है। इसी को एकाग्रता भी कहते हैं।

चूल्हे पर पानी गरम करते समय ढेरों भाप ऐसे ही उड़ती रहती है। पर यदि दो छटांक पानी की भाप प्रेशर कुकर में ठीक ढंग से प्रयुक्त की जाय तो उतने भर से कई आदमियों का भोजन तुर्त-फुर्त पक सकता है। यदि उतने पानी में गर्मी बढ़ती रहे और भाप को निकलने का अवसर न मिले तो कुकर फट सकता है और एक छोटा बम फटने जैसा उपद्रव खड़ा हो सकता है। भाप का बिखराव परिणाम उत्पन्न करता है। रेलगाड़ी के इन्जन में बनने वाली थोड़ी सी भाप कितना बड़ा काम करती है। जबकि जहाँ-तहाँ फैले पानी की ढेरों भाप ऐसे ही हवा में उड़ती और निरर्थक नष्ट होती रहती है।

सेरों बारूद जमीन पर फैलाकर आग लगा दी जाय तो उससे थोड़ी-सी लपट भर उठेगी-जरा-सी रोशनी भर चमकेगी, किन्तु यदि उसमें से तनिक सी मात्रा बन्दूक की नली में बन्द करके चलाई जाय तो वह किसी मोटे आवरण को चीरती हुई पार जा सकती है। बाँध में पानी भरा रहता है, पर उसमें एक छोटा छेद करके उसे नीचे गिराया जाय तो उतने से दबाव के कारण बिजलीघर बनने जैसे बड़े काम हो सकते हैं। ऊपर से गिरने वाले झरनों से पनचक्कियाँ तथा दूसरी मशीनें चल सकती हैं। बिखराब को रोकने और उसे केन्द्रीयकरण की दिशा में मोड़ने से कितने चमत्कारी परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं, इसे सहज ही कभी भी देखा जा सकता है। मोटी छड़ दूँसने से उतनी आसानी से गहरा छेद नहीं हो सकता, जितना कि उसमें पैनी नोक निकाल लेने पर हो सकता है। नोक में यही विशेषता है कि एक छोटे से आधार पर दबाव की अधिक शक्ति केन्द्रीभूत होती है। सुई से लेकर छेद करने के बरमे तक इसी सिद्धान्त पर बने हैं कि दबाव को पतली नोक पर केन्द्रित करने से उसकी शक्ति बिखराव की तुलना में अनेक गुनी बढ़ जाती है।

आमतौर से जीवन की असंख्य घटनाएँ विस्मृति के गर्त में चली जाती हैं, पर कभी-कभी कोई मन में चुभने वाले प्रसंग ऐसे होते हैं जो आजीवन स्मरण बने रहते हैं। कारण एक ही कि उस घटना को गम्भीरतापूर्वक लिया गया। उस पर मस्तिष्क का सारा ध्यान केन्द्रित हो गया। भुलक्कड़पन में मस्तिष्क की कमजोरी प्रधान कारण नहीं होती, वरन् उपेक्षापूर्वक पढ़ने की अन्यमनस्कता ही निमित्त होती है। यदि किसी विषय को बारीकी से, दिलचस्पी से, सावधानी के साथ पढ़ा जाय तो वह सहज ही विस्मरण न होगा। स्मरण शक्ति की कमी की शिकायतों पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो उसके पीछे उदासीनता-उपेक्षा एवं अन्यमनस्कता का दोष ही उभरा हुआ दिखाई देगा।

कछुए और खरगोश की प्रतिस्पर्धा में कछुए का बाजी जीत लेना इसी कारण सम्भव हुआ कि वह एक निष्ठा भाव से अपनी राह चलता रहा जबकि खरगोश अधिक समर्थ होते हुए भी अस्त-व्यस्त, उछल-कूद करते रहने के कारण लक्ष्य स्थान तक पीछे पहुँचा और बाजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हार गया। नित्य एक घण्टा विदेशी भाषाएँ सीखने में लगाते रहने के कारण विनोबा भावे तेईस भाषाओं के विद्वान बन सके। जबकि हमारा घण्टों का समय अस्त-व्यस्तता में ऐसे ही नष्ट होता रहता है और उसका कुछ भी लाभ मिल सकना सम्भव नहीं होता।

प्रवीणता, पारंगतता, सफलता जैसी अनेकों उत्साहवर्धक विभूतियाँ वस्तुत: एकाग्रता की ही उपलब्धियाँ होती हैं। रुचिपूर्वक, उत्साहपूर्वक, मनोयोगपूर्वक, निष्ठापूर्वक जो भी काम करते रहा जायेगा उसमें स्वभावत: प्रवीणता उत्पन्न होती चली जायगी। योग्यता और क्षमता सभी में लगभग एक जैसे स्तर की होती है। अन्तर थोड़ा सा ही रहता है, उसे प्रयत्नपूर्वक दूर किया जा सकता है। असफलताओं का और कोई कारण उतना नहीं होता जितना कि अनुत्साह। उपेक्षापूर्वक आधे-अधूरे मन से किये गये कामों का परिणाम असफलता के रूप में ही सामने आवेगा।

कभी-कभी किन्हीं विशेष व्यक्तियों में विलक्षण मानसिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। किन्हीं की स्मरण शक्ति इतनी विकसित होती है कि सामान्य लोगों के साथ उसकी तुलना करने पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। किन्हीं में कला-कौशल की इतनी पारंगतता आरम्भिक जीवन में ही पाई जाती है जिनके कारण वे एक आश्चर्य की तरह दर्शनीय और ख्याति प्राप्त बनते हैं।

इन अद्‌भुत घटनाओं के मूल में रहस्य इतना ही होता है कि उनका मानसिक बिखराव संयोगवश एकाग्र बन गया होता है। संयोग भी एक नियम विशेष के आधार पर बनते हैं। पूर्व जन्मों की उपलब्धियाँ ही ऐसे कारणों में प्रधान भूमिका निभा रही होती हैं। मनुष्य पिछले जन्म के असंख्य संस्कार अपने साथ लेकर आता है। उन्हीं में एक मस्तिष्कीय विकास का होना भी एक हो सकता है।

मस्तिष्कीय विकास मात्र उस शिक्षण पर निर्भर नहीं, जो स्कूलों में या समीपवर्ती लोगों से मिलता है। वह जानकारी बढ़ाना मात्र है। बलिष्ठ मस्तिष्क की विद्युत शक्ति का प्रवाह यदि दुर्बल मस्तिष्कों की ओर मुड़ जाय तो उनकी तीक्ष्णता में भारी परिवर्तन हो सकता है और उसका परिचय विशेष प्रोटीनों की मात्रा की वृद्धि के रूप में सहज ही देखा जा सकता है। मस्तिष्कीय पोषण के लिए सुविकसित चेतना सम्पन्न मनस्वी लोगों का सान्निध्य अत्यन्त उपयोगी है, उनकी बढ़ी-चढ़ी प्राण शक्ति दुर्बल मन:चेतना की अभाव पूर्ति कर सकती है। प्रयोगशालाओं में मामूली बिजली को कुछ विशेष कोष्टकों में पहुँचाकर प्राणियों की प्रकृति कुछ समय के लिए बदलना सम्भव हो सकता है। प्रतिभाशाली लोगों का प्राण-दुर्बल मन:स्थिति को बदलने में स्थायी उपचार का प्रयोजन पूरा कर सकता है।

येल यूनिवर्सिटी के मस्तिष्क विज्ञानी डॉ० जोजे डेलगाडो ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि मस्तिष्क में बाहर से बिजली पहुँचाकर उसका कार्य केन्द्रों को उद्‌दीप्त एवं प्रसुप्त किया जा सकता है। तद्‌नुसार उस प्राणी को इच्छित कार्य कराने और आज्ञा पालन के लिए विवश किया जा सकता है।

डॉ० जोजे ने अपने प्रयोगों की सार्वजनिक प्रदर्शनी करके दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया। उनके हाथ में एक विद्युत संचालक था और कुछ प्राणियों को खोपड़ी पर अमुक स्थान एवं अमुक संख्या में इलेक्ट्रोड लगा रखे गये थे। इस प्रकार यन्त्र और प्राणी के बीच रेडियो सम्पर्क स्थापित हुआ। प्रेरित सूचनाओं के अनुसार प्राणी ऐसे काम करने लगे जो उनकी सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत थे। नम्र प्राणी उद्धत हो उठे और उद्धत प्रकृति वाले पूर्ण शान्त होकर एक कोने में जा बैठे। साँड़, बन्दर, कुत्ते, चूहे, बिल्ली आदि प्राणियों ने इस विद्युत संचार प्रणाली से प्रभावित होकर वे काम किये जिसकी आशा प्रदर्शन में उपस्थित जनता ने कभी भी नहीं की थी।

मनुष्यों पर भी यह प्रयोग किये गये हैं और उनकी इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति पर नियन्त्रण करके अमुक प्रकार से सोचने और अमुक प्रकार के काम करने को उन्हें विवश कर दिया गया है।

स्मरण शक्ति की विलक्षणता कई व्यक्तियों में इतनी अधिक मात्रा में विकसित पाई जाती है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। लिथुयानिया का रैवी एलिजा दो हजार पुस्तकें कण्ठाग्र रखने के लिए प्रसिद्ध था। कितनी ही बार उलट-पुलटकर उसकी परीक्षा की गई और वह सदा खरा उतरा। फ्रांस का राजनेता लिआन गैम्वाटा को विक्टर ह्यूगो की रचनाएँ बहुत पसन्द थीं। उनमें से उसने हजारों सन्दर्भ के पृष्ठ याद कर रखे थे और उन्हें आवश्यकतानुसार घड़ल्ले के साथ घण्टों दुहराता रहता था। इसमें एक भी शब्द आगे-पीछे नहीं होता था। पृष्ठ संख्या तक वह सही-सही बताता चलता था।

ग्रीक विद्वान रिचार्ड पोरसन को भी पढ़ी हुई पुस्तकें महीनों याद रहती थीं। जो उन्होंने आज पढ़ा है उसे एक महीने तक कभी भी पूछा जा सकता था और वे उसे ऐसे सुनाते थे मानो अभी-अभी रट कर आये हों।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शतरंज का जादूगर नाम से प्रख्यात अमेरिकी नागरिक हैरी नेलसन पिलस्परी एक साथ बीस शतरंज खिलाड़ियों की चाल का स्मरण रखकर उनका मार्ग-दर्शन करता था। यह सब काम पूरी मुस्तएदी और फुर्ती से चलता था, बीसों खिलाड़ी उसका मार्गदर्शन पाते और खेल की तेजी बनाये रखते थे। जर्मनी का लायब्रेरियन मैथुरिन वे सिरे दूसरों के कहे शब्दों की हू-बहू पुनरावृत्ति कर देता था। जिन भाषाओं का उसे ज्ञान नहीं था उनमें वार्तालाप करने वालों की बिना चूक नकल उतार देने की उसे अद्भुत शक्ति थी। एक बार बारह भाषा-भाषी लोगों ने अपनी बोली में साथियों से वार्तालाप किये। मथुरिन ने क्रमशः बारहों के वार्तालाप को यथावत् दुहरा कर सुना दिया। वरमान्य का आठ वर्षीय वालक जेरा कोलवर्न गणित के अति कठिन प्रश्न को बिना कागज-कलम का सहारा लिए मौखिक रूप से हल कर देता था। लन्दन के गणितज्ञों के सम्मुख उसने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन करके सबको चकित कर दिया था। हम्बर्ग निवासी जान मार्टिन डेस भी अति कठिन गणित प्रश्नों को मौखिक रूप से हल करने में प्रसिद्ध था। उन दिनों उसके दिमाग की गणित क्षमता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि आज के गणित कम्प्यूटर भी उससे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते थे।

मस्तिष्क की अनौखी हलचलों का विश्लेषण अणु जैविकी-मोलिक्यूलर वायोलाजी के आधार पर करते हुए स्वीडन की गोटन वर्ग युनिवर्सिटी के जीव विज्ञानी होल्गर हाइडेन इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि मस्तिष्क को दक्ष बनाने वाले शिक्षण एवं चिन्तन कार्य कोशिकाओं में महत्त्वपूर्ण रासायनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ा देते हैं और वे अधिक सम्वेदनशील बनकर बुद्धिमत्ता का क्षेत्र विस्तार करते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि मस्तिष्कीय क्षमताओं को विकसित करने की प्रक्रिया न केवल अपने ही बौद्धिक संस्थान को परिष्कृत करती है, वरन् उससे दूसरों को भी प्रभावित किया जा सकता है। प्रतिभा इसी का नाम है। बुद्धिमत्ता और प्रतिभा दोनों को मानसिक दक्षता का ही एक अंग कह सकते हैं। यह दक्षता जन्म-जात रूप में-पूर्व संचित सम्पदा के रूप में-अनायास उपलब्ध भी दीख सकती है और उसे साधनात्मक प्रयत्नों द्वारा योजनाबद्ध रूप से बढ़ाया भी जा सकता है। मनोमय कोश के परिष्कार की साधना अपनाकर क्रमशः इसी क्षेत्र में पदार्पण करना सम्भव होता है।

शरीर और मन का संचालन करने वाली जीवसत्ता

नृतत्व विज्ञान अब एक से एक गहरी एवं रहस्यमय ऐसी परतों का उद्घाटन करता जा रहा है जिनसे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर की हरकतें स्वेच्छया संचालित नहीं हैं उनका नियन्त्रण कोई अतीन्द्रिय शक्ति करती है।

कुछ समय पूर्व रक्त-माँस के पिण्ड को आहार-विहार द्वारा संचालित माना जाता था और कहा जाता था कि रुग्णता एवं स्वस्थता का आधार आहार-विहार है। पीछे मालूम पड़ा कि आहार शरीर रूपी इंजन को गरम बनाये रखने के लिए मात्र ईंधन का काम करता है। निर्जीव आहार को सजीव रक्त में परिणत करने की अतिमहत्वपूर्ण रासायनिक प्रक्रियायें पाचन यन्त्रों से संचित होने वाले रसों के द्वारा सम्पन्न होती हैं। स्वसंचालित मानव-शरीर भोजन से मात्र ईंधन प्राप्त करता है। यदि ऐसा न होता तो दुम्बामेंढ़ा और सुअर के शरीर में इतनी बड़ी मात्रा में चर्बी कैसे जमा हो जाती, जबकि उनके आहार में चिकनाई का अंश नाम मात्र ही होता है। असल में उनके पाचन स्राव उन रासायनिक विशेषताओं से परिपूर्ण होते हैं जिनके कारण सामान्य घास को ही चर्बी के रूप में परिणत किया जा सके। यह तथ्य सामने आने पर भोजन विश्लेषण सम्बन्धी अत्यधिक आग्रह में शिथिलता आई और इतना ही पर्याप्त माना जाने लगा कि यदि शरीर पर अनावश्यक दबाव न डालें, अपनी प्रकृति के अनुरूप ही भोजन संतुलित मात्रा में लेते रहें तो स्वास्थ्य रक्षा एवं शरीर पुष्टि का प्रयोजन भली प्रकार पूरा होता रह सकता है।

शरीर संचालन की शोध में आगे बढ़ने पर पाया गया कि पेट, हृदय और फेफड़ों को संचालक तत्व नहीं माना जा सकता। शरीर के समस्त क्रिया-कलापों का संचालन मूलतः चेतन और अचेतन मस्तिष्कों द्वारा होता है, उन्हीं की प्रेरणा से विविध अंग अपना-अपना काम चलाते हैं। अस्तु, स्वास्थ्य बल एवं बुद्धिबल को विकसित करने के लिए मस्तिष्क विद्या के गहरे पर्तों का अध्ययन आवश्यक समझा गया है और अभीष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए उसी क्षेत्र को प्रधानता दी गई। पिछले दिनों जीवविज्ञानियों ने शरीर शोध अन्वेषण की ओर से विरत होकर अपना मुँह मनःशास्त्र की ऊहापोह पर केन्द्रित किया है।

अब एक और नया रहस्य सामने आ खड़ा हुआ है-हार्मोन ग्रन्थियों का। उनसे अत्यन्त स्वल्प मात्रा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकलते रहने वाले स्राव ऐसे महत्वपूर्ण हैं जो केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करते हैं और उनमें आश्चर्यचकित करने वाले उतार-चढ़ाव उत्पन्न करते हैं। यह हारमोन चेतन या अचेतन मस्तिष्क से भी प्रभावित नहीं होते। इनको घटाने-बढ़ाने में एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँचाने के परम्परागत प्रयास प्राय: असफल ही हो चुके हैं। एक शरीर से निकाल कर दूसरे शरीर में प्रवेश कराने में भी इन हारमोंनों में वृद्धि, न्यूनता अथवा नियन्त्रण सन्तुलन प्राप्त नहीं किया जा सकता। लगता है वे शरीर और मस्तिष्क के अतिरिक्त अन्य किसी ऐसे तत्व से प्रभावित होते हैं जिसे अतीन्द्रिय संज्ञा दी जा सके।

मस्तिष्क के निचले भाग में मटर के दाने के बराबर लटकी हुई पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाले हारमोंन गोनेडोट्रोफिक का ही कमाल है कि वह साधारण किशोरों को नवयुवती के रूप में परिणत करने वाले सारे साधन अनायास ही जुटा देता है।

गोनेडोट्रोफिक रक्त में मिलकर अण्डाशय को जागृत करता है और उस जाग्रति के फलस्वरूप वहाँ एक नये हारमोन 'एस्ट्रोजन' की उत्पत्ति होने लगती है। एक दिन में उसकी मात्रा चीनी के दाने के हजारवें भाग की बराबर नगण्य जितनी होती है पर उतने से ही प्रजनन अवयवों का द्रुतगति से विकास होता है और प्राय: दो वर्ष पूर्व की किशोरी, युवती के सभी चिन्हों से सुसज्जित हो जाती है।

अण्डाशय यों प्राय: ४ लाख कोशिकाओं का बना होता है पर उसमें से ४-५सौ ही विकसित होकर अण्ड बनता है। ग्यारह से लेकर चौदह वर्ष की आयु में क्रमश: एक-एक अण्ड विकसित होता है। उसके आधार पर प्राय: २८वें दिन रजो धर्म होने लगता है। जो तीन से लेकर आठ दिन तक स्रवित होता रहता है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय के डॉ० एडगर एलन तथा एडवर्ड ए० डौजी ने पीयूष ग्रन्थि के प्रभाव से अण्डाशय में उत्पन्न होने वाली ऐसी अनेक संवेदनाओं का पता लगाया है जो यौन आकांक्षाओं के उतार-चढ़ाव के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका उत्पन्न करती हैं। उनके प्रभाव से मस्तिष्क और प्रजनन अंगों में ऐसी उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिसके कारण यौन आकांक्षा में तीव्रता, मन्दता अथवा मध्यवर्ती स्थिति बनी रहती है। दोष अथवा श्रेय प्रजनन अंगों की संरचना को दिया जाता है पर इन मानसिक संवेदनाओं के पीछे वस्तुत: पीयूष ग्रन्थि का सूत्र संचालन ही काम करता है।

पीयूष ग्रन्थि का एक हारमोन है—पोलेक्टिव, यह स्तनों को प्रभावित करता है, उनका विस्तार करता है एवं दुग्ध उत्पादन प्रणाली को गतिशील बनाता है। इसकी न्यूनता रहे तो न तो स्तनों का विकास होगा और दुग्ध का उत्पादन भी स्वल्प ही होगा।

यदि पीयूष ग्रन्थि में थोड़ी सी खराबी रह जाय और एस्ट्रोन तथा प्रोजेस्टेरोन हारमोंन समुचित मात्रा में न बने तो अण्ड का विकास न हो सकेगा और नारी वन्ध्या ही बनी रहेगी। गर्भाशय की स्थानीय खराबी से तो बहुत ही कम संख्या में सन्तान रहित रहती हैं वे खराबियाँ तो मामूली उपचार से ठीक हो जाती हैं पर पीयूष ग्रन्थि के किसी अंग के अविकसित रहने पर हारमोंन उपचार ही सफल हो सकता है। नपुंसकता नर की हो या नारी की प्रधानतया पीयूष ग्रन्थि की खराबी के कारण ही होती है। जननेन्द्रिय की स्थानीय कमी वासना अथवा प्रजनन को अधिक प्रभावित नहीं करती। सन्तान के प्रति माता का प्यार क्यों कम या ज्यादा पाया जाता है, इसका स्रोत भी पीयूष ग्रन्थि से स्रावित होने वाले प्रोलेक्टिन हारमोन में पाया गया है।

पिछले दिनों यौन संवेदना को मन:शास्त्रियों ने मनुष्य की प्रेरक शक्ति माना था और कहा था मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्थान-पतन इसी केन्द्र से होता है। शूर, साहसी, कायर निराश, प्रसन्न, दुखी, आदर्शवादी, ईश्वर भक्त, अपराधी, अविकसित स्तर का निर्माण इसी केन्द्र से होता है। पर अब नया सिद्धान्त कायम हुआ है कि हारमोंन ही यौन संवेदनाओं के लिए उत्तरदायी हैं। अब सबसे जटिल प्रश्न यह उत्पन्न हुआ है कि यह हारमोंन किससे नियन्त्रित होते हैं ? उनके स्रावों में उतार-चढ़ाव कौन लाता है?

इस अनबूझ पहेली का समाधान शरीर और मस्तिष्क की समस्त संरचना की उलट-पुलट कर डालने पर भी खोजा न जा सकेगा। इसका आधार ढूँढ़ने पर वह जीव चेतना के साथ जुड़े हुए जन्म-जन्मान्तरों के संग्रहीत संस्कारों एवं उसकी प्रबल संकल्प शक्ति में ही मिलेगा। जीव सत्ता का स्वतन्त्र अस्तित्व मानने में अभी जो हिचकिचाहट विज्ञान के क्षेत्र में चल रही है उस पर से अगले दिनों पर्दा उठने ही वाला है। जीव-चेतना का, अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और उसकी भावनात्मक, चिन्तनात्मक, अभ्यस्त प्रवृत्तियों की सम्पदा से सुसज्जित होना जब मान लिया जायगा तो इस प्रश्न का समाधान होगा कि हारमोंन ग्रन्थियों से निकले वाले अत्यन्त स्वल्प किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली स्रावों की न्यूनाधिकता जो विभिन्न व्यक्तियों में पाई जाती है उसका कारण क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है ? और उनमें कुछ परिवर्तन करना हो तो उसके लिए ताला खोलने की चाबी कहाँ मिलेगी। जीवन का स्वतन्त्र अस्तित्व शरीर में ऊपर भी विद्यमान है और उसकी अपनी उपार्जित विभूतियाँ भी रहती है यह मान लेने पर हारमोन अन्वेषण में जो गतिरोध इन दिनों उत्पन्न हो गया है इस प्रश्नवाचक चिन्ह का सहज समाधान निकल आवेगा।

परिस्थितियों पर नहीं मन:स्थिति पर प्रसन्नता निर्भर है

गरम हवा के साथ उड़कर धूलि आसमान में छा जाती है, जाड़े के दिनों में वह धरती पर लुढ़कती है और वर्षा होते ही कीचड़ की तरह दिखाई पड़ती है। ऐसा इसलिए होता है कि वह हल्की, तुच्छ और नगण्य है। भारी चट्टानों की स्थिति धूलि से भिन्न होती है, वे आँधी-तूफानों में भी यथास्थान बनी रहती हैं और वर्षा, गर्मी से उनकी स्थिति में कोई खास अन्तर नहीं आता। चट्टानों का गौरव, उनकी अविचल एवं भारी-भरकम होने के कारण ही है।

मनुष्य की गरिमा उसकी भारी-भरकम काया में नहीं, वरन् उसकी सन्तुलित मन:स्थिति में है। परिस्थितियाँ सदा एक जैसी नहीं रह सकतीं, उनका बदलना और पलटना नितान्त स्वाभाविक है। सृष्टि के नियमानुसार संसार की हर वस्तु और हर परिस्थिति बदलती रहती है। यह परिवर्तन ही संसार में गतिशीलता का चक्र चला रहा है। स्थिरता का अर्थ जड़ता ही हो सकता है। यदि पृथ्वी का घूमना, हवा का चलना और रात-दिन का बदलना बन्द हो जाय तो यहाँ भयंकर निस्तब्धता छा जायगी।

किसी को भी यह आशा नहीं करनी चाहिए कि कोई वस्तु, व्यक्ति तथा परिस्थिति सदा एक स्थिति में बने रह सकते हैं। आज का बच्चा कल किशोर, परसों तरुण, अगले दिन अधेड़, फिर बूढ़ा और अन्तत: मृतक बनेगा ही, इस व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। कोई व्यक्ति सदा एक जैसी स्थिति में रहना चाहे, तो उसकी यह इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकती। पौधे उगते, बढ़ते, परिपक्व होते और वृक्ष बनकर नष्ट हो जाते हैं। घर में कभी जन्म होता है, कभी मरण। दुकान में किसी दिन घाटा पड़ता है, किसी दिन लाभ होता है। ऋतुएँ बदलती हैं, अपना-अपना प्रभाव दिखाती हैं और फिर नई के आने के लिए स्थान खाली करके स्वयं चली जाती हैं। जो इस काल-चक्र की सुनिश्चितता को समझते हैं वे पहले से ही यह समझ लेते हैं कि इन परिवर्तनों के लिए तैयार रहना चाहिए और जब अनुकूल स्थिति बदलकर प्रतिकूलता का अवसर सामने आये तो उसे अप्रत्याशित न समझकर सहज स्वाभाविक मानें और अपने चित्त को बेतरह असन्तुलित न करें। धैर्यवानों की, विवेकशीलों की मन:स्थिति ऐसी ही होती है। वे न तो अनुकूलता में हर्षोन्मत्त होते हैं और न प्रतिकूलता में सिर धुन-धुनकर रोते हैं। परिवर्तनों का प्रभाव तो हर किसी पर पड़ता है, पर वह विवेकवानों को उतना ही प्रभावित करते हैं जितना कि ऋतुओं का बदलाव। सर्दी की ऋतु में जो ढर्रा था, गर्मी आने पर अभ्यस्त प्रक्रिया बदलने की अड़चन तो पड़ती है, पर कुसमुस करके ढर्रा भी बदल लिया जाता है। दिनचर्या, कपड़े-लत्ते, सोना-जगाना बहुत कुछ बदलना पड़ता है, पर इसे अनिवार्य मानकर बिना बहुत गड़बड़ाये सहज स्वभाव से सँभाल लिया जाता है।

समझदारी का तकाजा है कि संसार चक्र के बदलते क्रम के अनुरूप अपनी मन:स्थिति को तैयार रखें। लाभ, सुख, सफलता, प्रगति, वैभव, पद आदि मिलने पर अहंकार से ऐंठने की जरूरत नहीं है। कहा नहीं जा सकता वह स्थिति कब तक रहेगी। स्थिति कभी भी बदल और उलट सकती है, ऐसी दशा में रोने, झींकने, खीजने, निराश होने में शक्ति नष्ट करना व्यर्थ है। परिवर्तन के अनुरूप अपने को ढालने में, विपन्नता को सुधारने में, उपाय सोचने, हल निकालने और ताल-मेल बिठाने में यदि मस्तिष्क को लगाया जाय तो वह प्रयत्न रोने, सिर धुनने की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होगा।

दूरदर्शी लोग समझते हैं कि हर परिवार का यह स्वाभाविक क्रम है, कि कुछ जन्मते रहेंगे, कुछ मरते रहेंगे। यह अनिवार्य और अपरिहार्य है। राजी से, बिना राजी से इन परिस्थितियों का सामना करना ही पड़ेगा। अस्तु, बुद्धिमत्ता इसी में है कि हर्ष, शोक की प्रतिक्रिया की सीमित रखा जाये, उसे इतना अनियन्त्रित न होने दिया जाय कि मस्तिष्क विक्षिप्त जैसा बन जाय और उल्टे रास्ते अपनाकर हाथ के कामों को भी चौपट बनाते हुए दुहरी हानि खड़ी कर दें। यदि सन्तुलन बनाये रखने का अभ्यास हो तो, जो क्षति हुई उतने से ही बीतेगी। शोकाकुल विक्षिप्तता से रो-रोकर आँखें खराब कर लेना सम्बन्धित लोगों को अपने समझाने-बुझाने में उलझा लेना, आवश्यक कामों को अस्त-व्यस्त करके नई हानि उत्पन्न करना जैसे स्वनिर्मित संकटों से बचा जा सकता है। बुद्धिमान दैवी विपत्ति को ही पर्याप्त मानते हैं, अपनी ओर से नई विपत्तियाँ आमन्त्रित नहीं करते। धैर्यवानों की समझदारी ऐसे ही प्रसंगों पर परखी जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन लाभ सदा होता रहे तो कोई भी व्यक्ति लखपति, करोड़पति बन सकता है। एक का लाभ दूसरे का घाटा, दूसरे का लाभ एक का घाटा, यही अनवरत क्रम इस संसार में अनादिकाल से चल रहा है। यह सब बन्द हो जाय तो निर्धन, निर्धन ही बने रहेंगे और धनी, धनपति स्थायी हो जायेंगे। तब धनी को अपनी स्थिति नीरस लगेगी और निर्धनता की आशंका से उसे सतर्क रहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। ऐसी स्थिति में वह सोने की शिला जैसा जड़ बन जायेगा। इसके विपरीत निर्धन को प्रगति की आशा ही न रहेगी तो वह भी निराश, निष्क्रिय बनकर बैठ जायेगा। हानि और लाभ का चक्र यों बड़ा अटपटा और बेतुका लगता है, विचार बुद्धि से देखने पर प्रतीत होता है कि सृष्टि में सजीवता बनाये रखने के लिए वह कितना अधिक आवश्यक है। ईश्वर ने अपना यह विधान कितना समझ-सोचकर रखा है। जो वस्तुस्थिति को समझते हैं वे ज्वार-भाटों के साथ उछलते-गिरते नहीं, वरन् समुद्र तट पर बैठकर उस प्रकृति कौशल का विनोद भरा आनन्द लूटते हैं।

संयोग-वियोग, हानि-लाभ, सुख-दुख, जन्म-मरण, सफलता-असफलता जैसे परस्पर विरोधी अवसर दिन और रात की तरह आते और चले जाते हैं। इन्होंने बड़े-बड़ों को प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ा। राम का बनवास, सीताहरण, कृष्ण का गोपी विछोह, वंश नाश, व्याध वाण से मरण, पाण्डवों का अज्ञातवास, ईसा को शूली, सुकरात को विषपान, गाँधी को गोली, शंकराचार्य को भगंदर, रामतीर्थ की जल समाधि जैसे घटना-क्रमों को देखते हुए लगता है कि धर्मात्मा और बुद्धिमान भी सदा सुखी ही नहीं बने रहते, उन्हें भी विपत्तियाँ घेरती, झकझोरती हैं। अन्तर इतना ही रहता है कि ओछे स्तर के मनुष्य तुच्छ धूलि का अनुकरण करते हैं, गर्मी आते ही आकाश छूते और चक्रवात के साथ घूमते हैं किन्तु वर्षा की बूँदें आते ही कीचड़ की तरह खाई-खड्डों में पड़े दुर्गति का रोना रोते हैं। भारी भरकम चट्टानें इन उतार-चढ़ावों को धैर्यपूर्वक सहती और अपना सन्तुलन बनाये रखती हैं।

उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना उचित है आज की अपेक्षा कल का दिन अधिक सुखद और अधिक साधन सम्पन्न हो, इसके लिए उत्साहपूर्वक पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए अनावश्यक रूप से लम्बी-चौड़ी महत्वाकांक्षाएँ गढ़ना और उनके तत्काल पूरी न होने पर बेतरह दुःखी होना व्यर्थ है। इच्छाओं के अनुरूप सफलताएँ मिल ही जायें यह आवश्यक नहीं, मनुष्य का एकाकी प्रयत्न ही सब कुछ नहीं होता, दूसरों का सहयोग और परिस्थितियों की अनुकूलता मिलकर ही अमुक सीमा में-अमुक अवधि में अभीष्ट सफलताएँ उत्पन्न होती हैं। इसके लिए धैर्य रखना और अनवरत गति से प्रयत्नरत रहना पड़ता है। जो इतना नहीं कर पाते-मनोरथों की पूर्ति के लिए अधीर आतुरता प्रकट करते हैं, विलम्ब लगने या आंशिक सफलता मिलने पर भाग्य को कोसते, दुःख पाते हैं, उन्हें प्रकृति चक्र से अपरिचित ही कहा जा सकता है।

बुद्धिमानी इसमें है कि जो उपलब्ध है उसका आनन्द लिया जाय और सन्तोष भरा सन्तुलन कायम रखा जाय और आगे प्रगति करने के लिए प्रयास तो जारी रखें पर वह सब कुछ खिलाड़ी की मनोभूमि रखकर किया जाना चाहिए। अच्छे खिलाड़ी रोज हारते-जीतते हैं पर वे न तो सफलता पर उन्मत्त होते हैं और न असफलता पर सिर धुनते हैं। दोनों ही परिस्थितियों में वे खट्टे-मीठे विनोद का आनन्द लेते हैं। यही प्रौढ़ मनोभूमि है। जो ऐसी स्थिरता बनाये रहते हैं वे ही जीवन का आनन्द लेते हैं। महत्त्वाकांक्षाओं के लिए आतुर उद्विग्नता तो एक प्रकार की मानसिक रुग्णता है, जिससे ग्रसित मनुष्य सदा अशान्त, व्यथित, खिन्न और विक्षुब्ध ही पाये जाते हैं। इस प्रकार की मनोभूमि के लोग पाने का सुख लेने की अपेक्षा अतृप्ति का दुःख अधिक पाते हैं और हर हालत में अपनी ही क्षति करते हैं। इसी स्थिति को तृष्णा कहा गया है और उसे अबुद्धिमत्ता पूर्ण ठहराया गया है।

सम्बद्ध व्यक्ति, साधन पदार्थ एवं परिस्थितियाँ यह सब अनुकूल हों तो मनुष्य अपने आपको सुखी मानता है, पर वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है। हर मनुष्य की वास्तविक दुनिया उसकी मान्यताओं और कल्पनाओं की बनी हुई है। कल्पनाओं का गठन जिस स्तर का होता है उसी स्तर की अनुभूतियाँ होती रहती हैं और उसी आधार पर चित्त प्रसन्न एवं उद्विग्न बना रहता है। बाहर के पदार्थ बहुत कम मात्रा में ही सुख-दुःख दे पाते हैं। सम्पन्नताएँ एवं विपन्नताएँ सापेक्ष हैं। किसी धनी के साथ तुलना करने पर लगता है हम घोर दरिद्र हैं और निर्धनों के साथ तुलना करने पर लगता है, हमें लाखों, करोड़ों की तुलना में कहीं अधिक मिला हुआ है। तुलना का मापदण्ड ही हमें दरिद्र अथवा धनी होने का निश्चिय कराता है और दुःखी रहने अथवा प्रसन्न रहने का अवसर देता है। इच्छित परिस्थिति पाना कठिन है, पर अपना तुलनात्मक मापदण्ड आसानी से बदला जा सकता है और हर स्थिति में जो प्रस्तुत है उसका सौभाग्य मनाते हुए प्रसन्न रहा जा सकता है। यही तरीका सही और सरल है, इस दृष्टिकोण को अपनाकर हर व्यक्ति हर समय हँसता-मुसकाता, सुखी, सन्तुष्ट रह सकता है। जो उपलब्ध है उसकी महत्ता को समझने का प्रयत्न करें तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर को हजार धन्यवाद देने का जी करेगा कि जो लाखों-करोड़ों को नहीं मिल सका वह हमें मिला हुआ है। जो मिला नहीं है उसकी कमी का अन्त नहीं। पर्वत से तुलना करने पर चट्टान अपने आपको सदा दीन-दयनीय ही मानेगी, पर यदि किसी ढेले की तुलना में अपना मूल्यांकन करेगी तो प्रतीत होगा कि जो है उसे नगण्य नहीं समझा जा सकता। छोटी योनियों में जी रहे प्राणियों की तुलना में दरिद्र मनुष्य को भी इतना अधिक मिला है कि वह उनका लेखा-जोखा हर घड़ी अपना सौभाग्य सराहता रह सकता है।

व्यक्तियों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। साथियों के दोष ढूँढ़े तो लगेगा कि हमारे कुटुम्बी, मित्र, स्वजन सभी घटिया स्तर के हैं। त्रुटियाँ सब में हैं-सब में कुछ न कुछ अपूर्णता है। पूर्ण तो एक परमेश्वर है। यदि दोष दृष्टि अपनाये रहें, छिद्रान्वेषण करते रहे तो हर किसी को दुष्ट मानने और रुष्ट रहने की मन:स्थिति बनी रहेगी। इसके विपरीत यदि गुण देखने, ढूँढ़ने का स्वभाव हो तो हर व्यक्ति में ढेरों अच्छाइयाँ दिखाई पड़ेंगी। दोष-दर्शन का परिणाम यह है कि जिसे भी ध्यान से देखें वही अनुपयुक्त, हानिकारक और असन्तोषजनक लगेगा। ऐसी दशा में अपना जी जलता ही रहेगा। यदि सोचने का तरीका बदल दिया जाय और उसी व्यक्ति की अच्छाइयों, सहायताओं और समय-समय पर मिली सद्भावनाओं की सूची तैयार की जाय, तो वही बहुत उपयोगी प्रतीत होगा और प्रिय लगने लगेगा। गुण, कर्म, स्वभाव की सभी कसौटियों पर खरे व्यक्ति ढूँढ़े जायें तो निराशा ही हाथ लगेगी और सारा संसार मात्र दोष, दुर्गुणों से पटा मिलेगा। गुण ग्राहकता की नीति से तो अपूर्णताएँ रहते हुए भी श्रेष्ठताओं की मात्रा इतनी मिल जायगी जिस पर सन्तोष किया जा सके और प्रसन्न रहा जा सके। परिस्थितियों की उतनी महत्ता नहीं जितनी मन:स्थिति की। गई-गुजरी परिस्थितियों में भी लोग हँसते-हँसाते जिन्दगी काट लेते हैं, इसके विपरीत हर दृष्टि से साधन सम्पन्न व्यक्ति भी रोते-कलपते, झल्लाते, खीजते पाये जाते हैं। हमें अच्छी परिस्थितियाँ पाने और अच्छे-व्यक्तियों का साथ ढूँढ़ने का तो प्रयत्न करना ही चाहिए, पर यह नहीं भूल जाना चाहिए कि जब तक अपना दृष्टिकोण गुणग्राही न बनाया जायगा तब तक असन्तोष से पीछा छुड़ाना और प्रसन्न रहने का अवसर पाना असम्भव ही बना रहेगा। हमें सबसे अधिक ध्यान अपना मानसिक सन्तुलन एवं स्तर सही बनाने पर देना चाहिए ताकि संसार का परिवर्तन चक्र एवं विविधतापूर्ण निर्माण उद्विग्न बनाने की अपेक्षा प्रसन्न, प्रमुदित रहने का निमित्त बन सके।

मानसिक परिष्कार और सुखी-समुन्नत जीवन

साथियों के साथ अपने आदान-प्रदान, सहयोग समर्थन पर भी प्रसन्नता एवं प्रगति का बहुत कुछ आधार निर्भर रहता है। उस क्षेत्र की प्रतिकूलताओं के लिए आमतौर से दूसरों को दोष दिया जाता है किन्तु गम्भीरतापूर्वक खोजने से प्रतीत होता है कि अपनी ही कुरूपता दर्पण में भयावह होकर प्रतिबिम्बित हो रही है।

इस तथ्य को सिद्ध करने वाले अगणित प्रमाण उदाहरण यह बताते हैं कि सुखी और समुन्नत जीवनयापन के लिए मन:संस्थान का परिष्कृत होना आवश्यक है। यह कार्य उतना कठिन नहीं जितना कि समझा जाता है। आत्मनिरीक्षण और सुधार परिवर्तन का क्रम चलता रहे तो हर कोई अपने चिन्तन को सुनियोजित एवं प्रभावोत्पादक बना सकता है।

इसके अतिरिक्त ऐसे वैज्ञानिक आध्यात्मिक उपाय उपचार भी हैं जो अपने-अपने ढंग से मानसिक क्षमता को सुविकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। हमें दोनों ही क्षेत्रों के सफल प्रयोगों को गम्भीरतापूर्वक समझना चाहिए और उन्हें अपनाने के लिए दुराग्रह त्यागकर उत्साहपूर्वक तत्पर रहना चाहिए।

व्यक्तित्व का साथियों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं। पार्मा इटली के पाइट्रो जुक्की ने अपने बालकों को धर्म सेवी बनाने के लिए आरम्भ से ही प्रयत्न किया। उसकी ७ सन्तानें थीं। इनमें से १ इसाई पादरी, ३ बौद्ध भिक्षु और ३ धर्मोपदेशिका का काम करने लगे। सभी आजीवन ब्रह्मचारी रहे और धर्म सेवा में संलग्न रहे। यह उनके पिता की श्रद्धा और लगन और चेष्टा की ही परिणति थी। विनोबा की माँ मदालसा ने जिस तरह अपनी-अपनी सन्तानों को गढ़ा, उसका आधुनिक संस्करण इसे माना जा सकता है।

फ्रान्स के फ्रेन्कीइस फाडक्वेट ने सन्तानें तो कई जनीं पर साथ ही उसने यह भी निश्चय रखा कि उसके सभी बालक धर्मपरायण जीवन जियेंगे। इसी के लिए उसने आरम्भ से अन्त तक प्रयत्न किया। फलत: २ विशप (बडे पादरी) , १ प्रोष्ट (छोटा पादरी) बने और छहों कन्याओं ने नन्स (भिक्षुणियों) की दीक्षा लेकर धर्म परायण जीवन जिया।

सेन्टपाल अलावर्टा की धर्म सेविका कोराइलजानी ने अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक को धर्म सेवक बनाने का आग्रह किया और सफल रही। वह ४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पादरियों की बहिन ४ भिक्षुणियों की माता, ६ पादरियों की नानी और ३ पादरियों की दीदी बनकर संसार से विदा हुई।

हाइना-जर्मनी का एक कलाकार हैनरिच टिचवेन अपने परिवारियों तथा सम्बन्धियों को कलाकारिता का चस्का लगाता रहा। उन्हें सिखाने और सफल बनाने में भी उसने पूरी-पूरी रुचि ली। फलत: उसका निजी परिवार तो जर्मनी के इतिहास में कलाकारों की खदान के नाम से प्रख्यात हुआ ही। उसके पड़ौसी, सम्बन्धी भी पीछे न रहे। हेनरिच ७ प्रख्यात चित्रकारों का पिता, १६ कलाकारों का दादा और ३४ कलाकारों का परदादा था।

वेस्लेस (फ्रांस) का विक्टर चाओ सीनेन्ड एक ऐसे परिवार में जन्मा, पला और जिसमें सभी धर्म परायण लोग थे। उसने अपनी सन्तानों को भी उसी ढाँचे में ढाला। वह ४ पादरियों का भाई, ३ पादरियों का भतीजा और ४ पादरियों का पिता था। लान पम्प सेन्ट वेल्स के एक परिवार में जन्मे पाँचों सगे भाई सन्त बने। उनके नाम पर बना पाँच सन्तों का गिरजा अभी भी प्रख्यात है। उसी गिरजे की भूमि पर वे पाँचों भाई सेन्ट ग्वाइन, सेन्ट सीथो, सेन्ट सेलाइमन, सेन्ट ग्वाइनो, सेन्ट ग्वाई नीरो की समाधि बनी है। ट्यूक्सवटी का प्रसिद्ध चिकित्सक बैजामिन किटुज अपने व्यवसाय के प्रति अत्यन्त निष्ठावान था। उसने अपनी प्रत्येक सन्तान को चिकित्सक बनाने का लक्ष्य रखा, वैसा ही उत्साह बढ़ाया और वातावरण बनाया।

अमेरिकी चित्रकार चार्ल्स पीले अपनी कला में इतना तन्मय एवं सफल था कि उसका समूचा परिवार भी उसी ढाँचे में ढल गया। वह उस देश के प्रख्यात आठ चित्रकारों का पिता तथा दादा था।

एडम मोल्ट (डेनमार्क) का फेडरिक २२ सन्तानों का पिता था। उसने हर सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य निवाहा और उन्हें गुणवान, चरित्रवान, प्रतिभावान, बनाने में कोई कसर न रहने दी, फलत: उसकी सन्तानों में से ४ राजदूत, २ सेनाध्यक्ष, ५ राज्य मन्त्री तथा ११ महापौर, राज्यपाल जैसे उच्च पदों पर आसीन हुए।

शरीर अपना है। उसकी सचेतन और अचेतन गतिविधियों पर नियन्त्रण रख सकने की क्षमता यदि उपलब्ध कर ली जाय तो आत्म नियन्त्रण के आधार पर अपनी समूची क्षमता को अभीष्ट प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जा सकता है। जबकि सामान्यत: ७० प्रतिशत चिन्तन और क्रिया-कलाप व्यर्थ निरर्थक ही नहीं जाता, अनर्थ सँजोने में भी लगा रहता है। साधने से मन सध जाता है। मन सध जाने से शरीर में ऐसी एक भी अस्त व्यस्तता शेष नहीं रहती जो प्रकारान्तर से अनेकानेक कष्ट संकटों का निमित्त कारण बनी रहे।

प्रगति की दिशा में पुरुषार्थ मात्र परिश्रम एवं साधन संचय का भी नहीं समझना चाहिए। उसका एक कारगर उपाय अचेतन मन के सहारे शरीर की विभिन्न क्षमताओं को समृद्ध बनाना भी है। इमें इस क्षेत्र का भी महत्त्व समझना चाहिए कि समय उत्कर्ष के लिए इन सम्भावनाओं को समझने, कार्यान्वित करने की ओर जुड़ना चाहिए।

विश्व प्रसिद्ध अमेरिकी डॉ० पेनफील्ड ने मस्तिष्क के अग्रभाग में लगभग ढाई वर्ग इंच और १/१० इंच मोटे एक ऐसे क्षेत्र का पता लगाया था, जहाँ दो काली पट्टियाँ हैं- जिन्हें टेम्पोरल कारटेक्स कहा जाता है। ये कनपटी के नीचे मस्तिष्क को चारों ओर छल्लानुमा घेरे हुए हैं। यही वे पट्टियाँ हैं जहाँ मानसिक विद्युत का प्रवेश होते ही अच्छी-बुरी स्मृतियाँ उभरती हैं। इसी में स्मृतियों के भण्डार भरे पड़े हैं। यदि इनमें विद्युत आवेश प्रवाहित किया जाये तो इतनी-सी पट्टी ही उस व्यक्ति के ज्ञात-अज्ञात सारे रहस्यों को उगल सकती है। जिसे भयवश, लोक-लाज अथवा संकोचवश मनुष्य व्यक्त नहीं कर पाता। जो जन्म-जन्मान्तरों से संस्कार रूप में मनुष्य के साथ संचित बने रहते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि मस्तिष्क की ये पट्टियाँ किसी केन्द्रक तत्व (न्यूक्लिक एलीमेन्ट) से बनी हैं। जब इनमें लहरें उठती हैं तो इनसे प्रभावित नलिकाविहीन नसों (डक्टलेस ग्लैण्डस्) से एक प्रकार के हारमोन्स निकलते हैं। जो क्रोध, घृणा, काम-वासना भय, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, दया, करुणा, उदारता, सहिष्णुता आदि भावों के जनक कह जाते हैं। हारमोन्स के कारण ही मनुष्य स्वस्थ या रोगी बनता है। यदि अच्छे गुण होते हैं तो अच्छे हारमोन्स और बुरे गुण तो बुरे हारमोन्स के द्योतक हैं। अच्छे हारमोन्स का सीक्रिशन स्निग्धता, हल्कापन, प्रसन्नता, प्रफुल्लता, अच्छे विचार उत्पन्न करता है। बुरे हारमोन्स ठीक इसके विपरीत प्रभाव दिखाते हैं।

उदाहरण के लिए डॉ० पेनफील्ड ने एक व्यक्ति की इस काली पट्टी में विद्युत प्रवाहित की तो वह एक गीत गुनगुनाने लगा जो न तो वह अमेरिकन था न जर्मनी, उपस्थित कोई भी व्यक्ति उसे समझ न सका उस गीत को टेप कर लिया गया और भाषा शास्त्रियों की मदद ली गई तो पता चला कि वह भाषा किसी आदिवासी क्षेत्र की थी और वह गाना सचमुच ही उस क्षेत्र के लोग गाया करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा के क्षेत्र में इन प्रयोगों को अधिक उत्साह के साथ अपनाने की बात सोची जा रही है। इसमें कम समय में, कम परिश्रम में अधिक मात्रा में उच्चस्तरीय लाभ प्राप्त करने की सम्भावना नये रूप से सामने आती जा रही हैं।

मनोविज्ञान ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि भावनाओं द्वारा कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। साथ ही मस्तिष्क के ठीक ढंग से प्रशिक्षण एवं विचारणा और भावनाओं के नियन्त्रण द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।

विगत कुछ वर्षों में हुई स्नायु विज्ञान सम्बन्धी खोजों से विदित हुआ है कि भावनाएँ मानवीय मस्तिष्क को अनेक प्रकार से प्रभावित करती हैं। इनसे मस्तिष्क में विष तुल्य एवं जीवनरस जैसे दोनों ही प्रकार के रसायन उत्पन्न होते हैं। इसके आधार पर जब ऐसे प्रयास भी किये जा रहे हैं कि भावनाओं और रसायनों का सम्बन्ध खोजकर, विशिष्ट रसायन को मस्तिष्क के अमुक भाग में पहुँचाकर मनोरोगों, दर्द, आदि की चिकित्सा की जा सके और मस्तिष्कीय क्षमता को प्रखर बनाया जा सके।

यह अब पता लगाया जा चुका है कि एक स्वस्थ और सुविकसित मस्तिष्क में प्राय: एक करोड़ ग्रन्थों में लिखी जा सकने जितनी सामग्री संग्रह करके रखी जा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर इस क्षमता में सहज ही दूनी अभिवृद्धि भी की जा सकती है। किसी कारणवश आधा मस्तिष्क नष्ट हो जाय तो शेष आधे से भी पूरे का काम चल सकता है।

फ्रान्सीसी वैज्ञानिक देल्गादो के अनुसार मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों को बिजली का झटका देकर आदतों एवं अभ्यासों को बदला जा सकता है और स्मृति केन्द्रों की क्षमता को जाग्रत किया जाना शक्य है।

मैकगिल विश्वविद्यालय माण्ट्रियल (कनाडा) के डॉ० विल्डर पेनफील्ड ने दृश्य ध्वनि और विचार का सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह सम्भावना व्यक्त की है कि लोगों के मस्तिष्कों को इच्छानुसार चिन्तन करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है।

कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी के डॉ० रोगरस्पेरी ने चिरसंचित आदतों को भुला देने और अनायास ही नये अभ्यास के आदी बना देने में सफलता प्राप्त की है।

मस्तिष्क के लिए उपयोगी रासायनिक पदार्थ उपलब्ध करने के लिए आहार में आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन किया जाय। इस प्रयोजन को साधने में समर्थ दिव्यौषधियों का प्रयोग किया जाय। जैसा कि इन दिनों शान्तिकुंज की 'कल्प साधना' प्रक्रिया में समाविष्ट किया जाता है।

दिव्य ऊर्जा को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए प्राणवान व्यक्तियों के सान्निध्य एवं अनुदान का सुयोग बिठाना चाहिए। आवश्यक नहीं कि इसके लिए इलेक्ट्रोड ही प्रयुक्त करने पड़ें या बिजली के झटके लगाने पड़ें। यह कार्य कोई प्राण प्रत्यावर्तन का अभ्यासी आध्यात्मिक क्षेत्र का प्रयोक्ता भी अपनी सामर्थ्य का एक अंश देकर कर सकता है।

उत्थान और पतन स्वयं साध्य

अपने आप को उठाना और गिराना मनुष्य के अपने हाथ की बात है। साहस, उत्साह, पराक्रम और विश्वास के आधार पर मनुष्य ऊँचा उठता है। यह उसका उत्कर्षजन्य प्रयास है। इसके विपरीत यदि कोई हीनता की भावनाओं से ग्रसित हो। भय, निराश, उद्विग्नता, अविश्वास, आशंका से घिरा रहे तो उसका भौतिक एवं आत्मिक पतन होता चलता है। साधन और अवसर सामने होने पर भी उसे अधोगामी मार्ग ही पकड़ना पड़ता है।

आन्तरिक उल्लास का, शान्ति का अक्षय स्रोत मनुष्य के अपने अन्तस्तल में सदा विद्यमान होने पर भी प्राय: देखा जाता है कि लोग अपनी चिन्तन चेतना को गड़बड़ाते और अनेकानेक मानसिक बीमारियों के शिकार बनते हैं। इसका दुष्प्रभाव न केवल मनुष्य की कार्यक्षमता पर पड़ता है वरन् वह शारीरिक अक्षमता-रुग्णता को भी जन्म देता है। सुप्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञानी डॉ० डेविड बर्न्स के अनुसार मानसिक अवसाद के कारण प्रतिवर्ष लाखों व्यक्तियों को तद्जन्य बीमारियों का शिकार होते देखा गया है। उसके शमन के लिए लोग ट्रैंक्युलाइजर जैसी नशीली दवाइयों का सेवन करते और अपनी शारीरिक मानसिक क्षमता गँवाते रहते हैं। अपनी पुस्तक "फीलिंग गुड" में उन्होंने मानसिक अवसाद का प्रमुख कारण भ्रांतिपूर्ण चिन्तन का माना है। उनका कहना है कि व्यक्ति अपने दोषपूर्ण चिन्तन और विकृत मन:स्थिति के कारण इसे स्वयं उत्पन्न करता है क्योंकि अंतर्मन की आत्म घृणा और अशुभ चिन्तन से ही इसका स्वरूप बनता है। इससे न केवल जीवनी शक्ति का क्षरण होता है वरन् प्रतिभा एवं सृजनात्मक गुणों के विकास का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है और व्यक्तित्व हेय बनकर रह जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''हाऊ टू बी हैपी टू बि ह्यूमन'' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में मनोविज्ञानी अल्फवेरान ने कहा है कि ''अवसाद मात्र एक धुएँ का पर्दा है और कुछ नहीं। इस अभिवृत्ति से ग्रस्त व्यक्ति स्वकेन्द्रित हो जाता है। ऐसे व्यक्ति न तो कोई महत्त्वपूर्ण काम कर पाते हैं और न ही जटिल समस्याओं का सामना कर पाते हैं। ईमानदारी और जिम्मेदारी भी उनसे नहीं निभ पाती क्योंकि वे स्वयं के बारे में सोचते हैं कि वह एक निरर्थक व्यक्ति है इसे अधिक स्पष्ट करते हुए वियना के मूर्धन्य मन:चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ० विक्टर ई० फेंक्ले ने लिखा है 'जो मनुष्य यह अनुभव करेगा कि उसका जीवन निरर्थक है, उसका मन और शरीर कभी स्वस्थ न रहेगा। सार्थकता की अनुभूति न होने पर मनुष्य जिन्दगी को लाश की तरह ढोता है और उस नीरस निरानन्द स्थिति में सचमुच ही जीवन बहुत भारी पड़ता है। उस दबाव से इतनी थकान आती है कि कुछ करते-धरते नहीं बनता। हारा-थका आदमी धीरे-धीरे गिरता घुलता जाता है और मरण के निकट बुलाने वाली बीमारियों को निमन्त्रण देकर स्वेच्छा संकल्प के आधार पर कष्ट ग्रसित रहने लगता है।

''अवसाद से उन्मुक्त व्यक्तित्व की ओर'' जैसा मार्ग निर्देशन करने वाले प्रख्यात मनोविज्ञानी एडलर ने उदासीनता को मानवी मन की एक बड़ी दुर्बलता माना है। प्रगति-पथ का यह एक बहुत बड़ा रोड़ा है। जिसे मनुष्य स्वयं अपने चिन्तन-मनन से उत्पन्न करता है। इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है कि ऐसे व्यक्ति उन कारणों का पता लगाकर प्रयास करने पर स्वयमेव इस स्थिति से छुटकारा पा सकते हैं। विचारों को विचारों से काटा जाता है। उदासीनता के स्थान पर शान्ति और समस्वरता उत्पन्न करने वाले सृजनात्मक विचारों को आमंत्रित करना चाहिए तथा ऐसी रीति-नीति अपनानी चाहिए, जो ध्यान बँटा सके, उत्साह बढ़ा सके। जीवन लक्ष्य सामने होने एवं सतत् उसके उज्ज्वल पक्ष की ओर दृष्टिपात करते रहने से क्रियाएँ भी तदनुरूप चल पड़ती हैं। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य को समाज के अधिक समीप होना चाहिए अर्थात् उसे सामाजिक उत्तरदायित्वों जिम्मेदारियों को अधिक सजगतापूर्वक वहन करना चाहिए। इससे जहाँ विचारों को उत्कृष्टता का पक्षधर बनाने का अवसर मिलता है वहीं व्यस्तता के कारण नकारात्मक चिन्तन से भी छुटकारा मिलता है। एडलर के अनुसार, विधेयात्मक चिन्तन से मानव मन की समस्त दुर्बलताएँ क्रमश: दूर होती जाती हैं और वह नूतन ज्ञान से जुड़ जाता है। इसी तरह के विचार मनोविज्ञानी जुंग ने भी प्रकट किये हैं। उनका कथन है कि हीन भावना के शोधन और परिष्कार के लिए विवेकशीलता को जाग्रत करना अनिवार्य है। सकारात्मक विचार एवं दृढ़ संकल्प शक्ति ही इन परिस्थितियों से मनुष्य को उबारते हैं।

इस संदर्भ में मनोविज्ञानी वेरन वुल्फ का कहना है कि जीवन की असम्बद्ध रीति-नीति, एकांगी जीवन और स्वार्थपरता ही मानसिक अवसाद के प्रमुख कारण हैं। हीन भावना का शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता से घनिष्ट सम्बन्ध है। इससे छुटकारा पाने के लिए आवश्यक है कि जीवन की रीति-नीति बदली जाय। अपना स्वाभिमान बनाये रखते हुए दूसरों के गुणों की प्रशंसा की जाय। नि:स्वार्थ भाव से सामाजिक उत्थान के लिए किये गये कार्यों से जीवन में श्रेष्ठता के तत्वों का समावेश होता है। यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवानिया के प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री डॉ० ऐरोन बैक ने अवसादग्रस्त रोगियों के उपचार हेतु एक मन:चकित्सा पद्धति का आविष्कार किया है। जिसका नाम है ''काग्नीटिव थैरेपी।'' उनकी यह चिकित्सा प्रणाली पूर्णत: मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। विभिन्न परीक्षणों के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि भौतिक मृग मरीचिका के चंगुल में फँसा हुआ व्यक्ति अपनी मनोदशा को असंतुलित कर बैठता है जिसके कारण उसे उदासी अथवा अवसाद का शिकार बनना पड़ता है। उपचार के समय उन्होंने पाया है कि ऐसे व्यक्ति एक ओर तो किसी की भर्त्सना करते, बड़बड़ाते रहते हैं तो दूसरी तरफ वह स्वयं की समीक्षा भी करते जाते हैं। रोगियों द्वारा किये गये समीक्षात्मक विचारों का गहन विश्लेषण करने के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि निषेधात्मक विचारधाराओं की बहुलता के कारण ही यह मनोविकार उत्पन्न होता है और इससे आत्मचिन्तन की मौलिकता नष्ट होती चली जाती है। ''काग्नीटिव थैरेपी एण्ड दि इमोशनल डिसार्डर'' नामक अपनी पुस्तक में डॉ० बैक ने बताया है कि चिन्तन की विकृति के कारण ही मानसिक अवसाद उत्पन्न होता है। उनके अनुसार मनोवृत्तियाँ विचार जगत को प्रभावित करती हैं। उस पर संव्याप्त निषेधात्मक चिन्तन मनुष्य के पतन-पराभव का कारण बनता है। विचार परिवर्तन के द्वारा ही उस पर विजय पाई जाती है। चिकित्सकों ने संयुक्त प्रयासों के आधार पर कुछ और तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उसके अनुसार व्यक्ति की मनोदशा विचारों का नियन्त्रण नहीं कर सकती वरन् विचारों द्वारा मनोदशा का निर्धारण होता है।

वस्तुत: मानवी मस्तिष्क एक यंत्र की तरह कार्य करता है। उसमें उत्पन्न हुई कोई भी योजना कार्य रूप में परिणत होना चाहती है। यह विवेक बुद्धि का काम है कि वह किन विचारों को रोकती है और किन्हें कार्य रूप में परिणत होने का दिशा निर्देश देती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अत: आरंभ से ही इस सम्बन्ध में सतर्कता बरतनी चाहिए कि मस्तिष्क में उत्कृष्ट विचारों का ही उद्‌भव हो। निषेधात्मक चिन्तन से सदैव बचे रहना ही श्रेयष्कर है।

जिन विचारों के कारण आशंका, निराशा, भीति या उदासीनता उत्पन्न हुई हो, ठीक उसके प्रतिकूल विचारों को उत्पन्न करना चाहिए। सोचना चाहिए कि विपत्ति टल गई या टलने जा रही है। बादल साफ होने पर जिस प्रकार आकाश स्वच्छ होता है, समझना चाहिए कि उसी प्रकार अपने को दबोची हुई हीनता, विपन्नता का वातावरण बदल जायेगा। सृजनात्मक, सुखद, उज्ज्वल भविष्य के अनुकूलता से भरे मानस चित्र बनाना एक ऐसी कला है जिसका अभ्यास होने पर वास्तविक कठिनाइयों के बीच भी मनुष्य अपना शौर्य-साहस बनाये रह सकता है। वह उपाय ढूँढ़ सकता है जो ऐसी दशा में प्रगति दिशा में बढ़ने में सहायक सिद्ध हो सके।

अपना अस्तित्व और भविष्य ईश्वर के हाथों सुरक्षित मानने की भावना ऐसी है जिसे अपनाये रहने और बढ़ते चलने में हर कोई निश्चिन्तता प्राप्त कर सकता है। उल्लसित होने की कला ऐसी है जो बहुमूल्य औषधियों की तुलना में अधिक सन्तोषप्रद परिणाम प्रस्तुत कर सकती है। अवसादग्रस्त व्यक्तियों के मित्रों, सम्बन्धियों का भी कर्तव्य है कि वे ऐसे लोगों में जीवन के प्रति सरसता उत्पन्न करें। ऐसे लोगों का सच्चा मित्र एवं सहायक वही हो सकता है जो उत्साह भरे, आशा दिखाये और साहस जगाकर हँसते-हँसाते जीने की मन:स्थिति उत्पन्न करे।

प्रसन्नता सम्पन्नता पर निर्भर नहीं

सम्पन्नता के साथ प्रसन्न रहने की बात एक सीमा तक ही सच है। प्रसन्न का अर्थ, सामयिक, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो तो उसके साथ कुछ क्षण के लिए प्रसन्नता मिलने की बात समझ में भी आती है, पर यदि उसे आन्तरिक सन्तोष एवं उल्लास आनन्द के साथ जोड़ा जायेगा तो उत्तर नहीं में ही देना पड़ेगा। शरीर की आवश्यकताएँ कृत्रिम भी हो सकती हैं और वास्तविक भी कृत्रिम वे हैं-जिनमें पेट भरा होने पर भी स्वादिष्ट वस्तुओं की ललक उठती रहती है। वास्तविक वे जिनमें भूख लगने पर खाली पेट को भरने की आवश्यकता पड़ती है। कृत्रिम की पूर्ति चखते ही हो जाती है क्योंकि पेट भरा होने पर गले से नीचे कुछ उतरता ही नहीं। वास्तविक की पूर्ति में कुछ मिनट लगते हैं। जैसे-जैसे पेट भरता जाता है वैसे-वैसे आहार से तृप्ति नहीं, अरुचि भी उत्पन्न होने लगती है और फिर बहुत आग्रह होने पर भी स्पष्ट इन्कार करना पड़ता है। यही बात अन्य इन्द्रियों के सम्बन्ध में भी है। उनमें से प्रत्येक की तृप्ति में तनिक सा समय लगता है और वस्तु प्राप्त होने पर उस प्रसन्नता का भी अन्त हो जाता है जो कुछ समय पहले उद्विग्न कर रही थी। फिर यह प्रसन्नता वस्तुओं के स्तर से भी सम्बन्धित है। घटिया मिलने पर कम और बढ़िया मिलने पर कुछ अधिक होती है। पर हैं दोनों ही सामयिक क्षणिक। कुछ ही समय में थकान, ऊब आने लगती है और फिर हट जाने या हटा देने को जी करता है।

यह इन्द्रियजन्य वासना का विषय हुआ। मन भी ग्यारहवीं इन्द्री है, उसका स्तर कुछ ऊँचा है। उसे अहंता की पूर्ति में रस आता है। वस्तुओं का संग्रह, व्यक्तियों पर आधिपत्य अन्यान्यों की तुलना में वरिष्ठता जैसे प्रसंग मन को बहुत सुहाते हैं। ठाट-बाट, प्रदर्शन, प्रशंसा आदि के द्वारा दूसरों पर धाक जमाने की ललक मन में छिपी रहती है। ऐसे अवसर जब भी आते हैं तब प्रसन्नता होती है। किन्तु है वह भी क्षणिक ही। जब तक इच्छित वस्तु नहीं मिली तभी तक उत्कण्ठा रहती है। मिलने पर सुरक्षा, ईर्ष्या जैसी कितनी ही नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और दुरुपयोग चल पड़ने पर तो उनकी बड़ी भयावह प्रतिक्रिया होती है। दुर्व्यसनों से प्राय: समय और धन फालतू होने पर ही मनुष्य घिरता है। दुर्व्यसनी किस प्रकार स्वयं डूबते और साथियों को डुबाते हैं, यह आये दिन की घटनाएँ हर किसी के सामने घटती रहती हैं। यह तथाकथित सम्पन्नता-अहंता-का ही प्रतिफल है जो मन में तृष्णा बनकर निरन्तर कोलाहल मचाये रहती है।

तृष्णा को न बुझने वाली आग कहा गया है। एक की पूर्ति होते-होते ही उससे भी बड़ी-नयी आवश्यकता बनकर सामने आ खड़ी होती है। जो मिला, उसकी सुखानुभूति में कुछ ही क्षण व्यतीत होते हैं कि वह नगण्य लगने लगता है और दूसरे सुसम्पन्नों की तुलना में अपना भी वैभव बढ़ाने की उत्कण्ठा उभरती है। स्थिति ज्यों की त्यों, जो मिला था वह एक प्रकार से बेकार चला गया। न मिलने से पूर्व जो अभिलाषा थी उसी ने नये रूप में फिर उसी स्थान पर आकर अड्डा जमा लिया।

वासना-तृष्णा का कुचक्र ही आमतौर से आँख-मिचौनी खेलता रहता है। सम्पन्नता कितनी ही क्यों न बढ़ती रहे, अतृप्ति से छुटकारा मिलने वाला नहीं। जब जो मिला वह या तो कम पड़ा या फिर अरुचिकर ही हो गया। इसके अतिरिक्त एक और बात भी है कि अभाव-ग्रस्त स्थिति में मनुष्य जो नितान्त आवश्यक है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसी के उपार्जन में व्यस्त रहता है और समयव श्रम खाली न रहने पर उन बुराइयों से बच जाता है जो खाली दिमाग को ''शैतान की दुकान'' सिद्ध करती है और ठलुआ लोगों को आवारागर्दी के कुसंग से दुर्व्यसनों के गर्त में गिराकर वर्तमान को बदनाम और भविष्य को अन्धकारमय बनाती है। इस दृष्टि से अभावग्रस्तों को सुसम्पन्नों की तुलना में अधिक भाग्यवान कहा जा सकता है। जबकि दूसरों की आँखें चौंधियाने की दृष्टि से धन वालों का ही पलड़ा भारी रहता है।

बात प्रसन्नता की चल रही थी। गम्भीर पर्यवेक्षण करने पर वह एक विशेष प्रकार की मन:स्थिति ही समझी जा सकती है ऐसी मन:स्थिति जिसे शालीन, सभ्य, सुसंस्कृत एवं उदात्त भी कहा जा सके। वह जिसे जितनी मात्रा में उपलब्ध है वह अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत करता है और वस्तुओं तथा व्यक्तियों के साथ तालमेल बिठाने का प्रयत्न करता है। अमुक वस्तु मिलने की उपयोगिता हो सकती है। अमुक व्यक्ति का अनुग्रह, सहयोग लाभदायक माना जा सकता है पर ऐसा कुछ नहीं कि यदि वे उपलब्ध न हों तो काम चले ही नहीं या प्रसन्नता से सर्वथा वंचित रहना पड़े। यदि ऐसा होता तो निर्धनों में ये अधिकांश दु:खी पाये जाते और धनवानों को प्रसन्नता से भरी-पूरी स्थिति में रहते देखा जाता। पर वैसा होता नहीं सच तो यह है कि वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत पाई जाती है। अनुपात की दृष्टि से सम्पन्नों को चिन्ताग्रस्त, असन्तुष्ट, रुग्ण एवं विपन्न पाया जाता है। दबाव और तनाव के बीच घिसते हुए वे वेमौत मरते हैं जबकि अभावों में दिन गुजारने वाले सन्तोष की साँस लेते और गहरी नींद सोते देखे गये हैं। जितनी गहराई में उतरा जाय, उतना ही यह तथ्य स्पष्ट होता जाता है कि सम्पन्नता और प्रसन्नता में घनिष्ठता दीखती भर है। वस्तुत: वे हैं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न। प्रसन्न रहने के लिए सम्पन्नता अनिवार्य नहीं। इसी प्रकार यह भी नहीं माना जा सकता कि जिसके पास सम्पन्नता होगी, वह प्रसन्न रहेगा ही। इतने पर भी सुविधा-साधनों की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता वे जहाँ होंगे अपनी अहिंसा का परिचय देंगे ही।

मनोविज्ञानी जेम्स ऐरिक ने प्रसन्नता की व्याख्या करते हुए लिखा है- ''खुशी में खुशहाली एक सीमा तक ही सहायता कर सकती है। दोनों को एक-दूसरे के साथ जोड़ा नहीं जा सकता। खुशी एक मनोदशा है जो तथ्यानुयायी चिन्तन एवं परिपक्व व्यक्तित्व के आधार पर स्वयं उपार्जित करनी पड़ती है। इसका जीने की कला के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जो यह जानता है कि जीना किसे कहते हैं और उसके लिए किस स्तर का दृष्टिकोण तथा व्यवहार अपनाया जाना चाहिए, वही अपने भीतर प्रसन्नता उगा सकता है और उसके सुगन्ध भरे सौन्दर्य से समीपवर्ती वातावरण में अनुकूलता तथा सहानुभूति भरा आकर्षण उत्पन्न कर सकता है।''

श्रीमती नोरा जानसन ने अपने ग्रन्थ 'प्रसन्नता का मनोविज्ञान' में लिखा है-दूसरे लोग एक सीमा तक की हमें सुख या दु:ख दे सकते हैं। इसी प्रकार सुविधा-साधनों का बाहुल्य या अभाव भी इस सम्बन्ध में तनिक सा ही सहयोग देने या व्यवधान उत्पन्न कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। मानसिक दृष्टि से पराधीन व्यक्ति ही यह सोचते हैं कि अनुकूलता होने पर प्रसन्न रहा जा सकेगा। जबकि आत्म-निर्भरों की मान्यता यह होती है कि हर स्थिति के साथ तालमेल बिठाकर सन्तोष एवं उल्लास का मार्ग खोज निकाला जा सकता है।

हर्बर्ट स्पेन्सर कहते थे ''मनुष्य अपनी गरिमा समझे और उभारे तो उसे इस बात का अनुभव होने लगेगा कि परिस्थिति नहीं, मन:स्थिति ही किसी की प्रसन्नता-अप्रसन्नता का आधारभूत कारण होती है। जो अपने को महत्त्वपूर्ण मानता है, अपने क्रिया-कलाप में रस लेता है और दूसरों से सीमित आशा-अपेक्षा रखता है उसे किसी भी परिस्थिति में उत्साह बनाये रहने का अवसर मिलता रहेगा। जो उपलब्ध है उसमें मोद मनाने और भविष्य के लिए आशान्वित रहने की आदत डाली जा सके तो फिर अपनी प्रसन्नता मुट्ठी में रहेगी और उसे कोई अन्य छीन नहीं सकेगा।''

अरस्तु अपने शिष्यों से कहा करते थे—प्रसन्नता एक आदत है, जिसे सुरुचि सम्पन्न दैनिक अभ्यास में प्रयुक्त करते रहने पर निरन्तर आगे बढ़ाते रह सकते हैं। अपने भीतर और बाहर इतना कुछ भरा पड़ा है कि उसकी शोभा निरखते और अनुकूलता का अनुमान लगाया जाय तो हर व्यक्ति अपने वर्तमान को सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा अनुभव कर सकता है। कठिनाइयाँ होती तो हैं, पर उन्हें जागरूकता और तत्परता उभारने वाली चुनौती भी तो समझा जा सकता है। चुनौतियाँ स्वीकार करने और उस बहाने प्रबल पुरुषार्थ करने से मनुष्य घाटे में नहीं रहता। इस प्रकार कठिनाइयों को दु:ख में नहीं, सुयोग में गिना जा सकता है।''

दार्शनिक नीत्से कहते हैं- ''व्यक्तित्व की प्रखरता ही किसी में उत्साह भरे रह सकती है। मनोबल गिरा रहे तो मनुष्य आशंका और असफलता की कल्पना करता रहेगा। जिस-तिस पर दोषारोपण करके अपने को असहाय, निर्दोष सिद्ध करने की प्रवंचना से कोई मन हल्का भले ही कर ले, पर उससे कुछ बनता नहीं। जिन्दगी खिलाड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की तरह जीनी चाहिए। हर प्रतिकूलता से दूने उत्साह के साथ जूझना चाहिए और विश्वास करके चलना चाहिए कि मन से हार न मानने वाला अन्ततः जीत कर ही रहता है। असफलताएँ तो अधिक तत्परता अपनाने का उद्‌बोधन मात्र हैं उनमें ऐसा कुछ नहीं जिससे निराश होना या अप्रसन्न रहना पड़े।''

फ्रायड ने लिखा है- ''दैनिक जीवन में कितनी ही छोटी-छोटी सफलताएँ आती रहती हैं। उपलब्धियाँ हस्तगत होती रहती हैं। प्रसन्नतादायक घड़ियाँ आती रहती हैं। यदि इन सब पर गौर किया जाय तो प्रतीत होगा कि अपने सौभाग्य में कोई कमी नहीं। बड़ी सफलताओं की योजना बनाने में हर्ज नहीं, पर आरम्भ से ही यह मानकर चलना चाहिए कि अपने हाथ में मात्र पुरुषार्थ है। जो चाहा गया है उसका मिलना बहुत कुछ उन परिस्थितियों पर निर्भर है जिन पर अपना काबू नहीं। इसलिए हर महत्त्वाकांक्षी को जहाँ आशावादी होना चाहिए वहाँ प्रतिकूलता और असफलता की सम्भावना को भी स्वीकारना चाहिए। इन उतार-चढ़ावों में जो अपना मनोबल बनाये रहते हैं उनकी प्रसन्नता कभी हाथ में जाती नहीं है।''

अभावों से किसी को छुटकारा नहीं। अपने से अधिक सम्पन्नों के साथ तुलना करने पर हर कोई अपने को अभावग्रस्त समझेगा। इसके विपरीत यदि अधिक कठिनाइयों से घिरे हुए लोगों के साथ तुलना की जाय तो प्रतीत होगा कि जो मिला हुआ है वह भी कम नहीं, उसके लिए भी असंख्यों तरसते हैं। ऐसी दशा में क्यों अपने को अभावग्रस्त माना जाय ? क्यों न अपने सौभाग्य को सराहा जाय।

हर उत्तरदायित्व को महत्व दिया जाय और उसे यथासंभव पूरी समझदारी एवं ईमानदारी के साथ निभाया जाय। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखा जाय कि परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव तो धूप-छाँव की तरह है। उनका कौतूहल भर देखा जाय, पर यह मानकर न चला जाय कि उन्हीं पर अपनी प्रसन्नता-अप्रसन्नता निर्भर है। अधिक साधन, सुविधाओं के उपार्जन, सदुपयोग का प्रयत्न तो किया जाय, पर साथ ही यह भी गिरह बाँधकर रखा जाय कि सीमित या स्वल्प साधनों में भी सन्तुलन बिठाया और हँसता-हँसाता जीवन क्रम चलाया जा सकता है।

अपनी अनुभूतियों के सृष्टा-हम स्वयं

ज्ञान का अस्तित्व ज्ञाता की सत्ता के भीतर ही होता है। हम जो कुछ जितनी दूर तक देख-सुन सकते हैं या कल्पना कर सकते हैं, वह सब आत्म-सत्ता का ही क्षेत्र होता है। आत्मेत्तर का अनुभव असम्भव है। अतः सम्पूर्ण अनुभव आत्म तत्व की ही बहुरंगी झाँकियाँ हैं। आत्म चेतना का जैसा स्तर एवं स्वरूप होता है, उसके ही अनुसार दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य जगत का अनुभव होता रहता है।

इसका यह अर्थ नहीं कि जगत की स्वतंत्र में कोई सत्ता नहीं। वह निश्चित ही है। जो लोग यह कहते हैं कि जगत की कोई सत्ता ही नहीं है, उन्हें फिर आत्मसत्ता को भी अस्वीकार करना चाहिए, क्योंकि आत्मसत्ता ही तो जगत का अनुभव करती है। जगत की सत्ता को अस्वीकार करना ऐसा ही है जैसे नित्य रात्रि को स्वप्न देखने वाला व्यक्ति यह कहे कि स्वप्न की कहीं कोई सत्ता ही नहीं है। बिना सत्ता के अनुभूति असम्भव है। हाँ, यह जरूर है कि आत्म चेतना के स्तर के अनुसार, अनुभूति का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। एक बच्चे के लिए स्वप्न भी उतना ही यथार्थ है, जितना जाग्रति के अनुभव। सामान्य वयस्क व्यक्ति स्वप्न के यथार्थ से दिन के या जाग्रति-काल के यथार्थ को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। मनोवैज्ञानिक स्वप्नों को भी यथार्थ का ही अंग मानते हैं। हाँ, उनका यथार्थ जाग्रत दशा के यथार्थ से भिन्न होता है, यह वे अवश्य मानते हैं। इस अन्तर को समझते हुए वे स्वप्न की अनुभूतियों का इस प्रकार लाभ उठा लेते हैं कि वह जाग्रति काल के यथार्थ को सँवारने, सन्तुलित बनाने में सहायक बन जाती है। स्वप्न-प्रतीकों, स्वप्न-संकेतों की भाषा एवं अर्थ समझकर वे उस प्रकाश में अपने जाग्रत सत्य के आचरण में वांछित हेर-फेर कर लेते हैं। इसी प्रकार जाग्रति-काल की दिनचर्या में संशोधन-परिवर्धन करने पर स्वप्नों के स्वरूप में भी परिवर्तन आ सकता है, यह भी वे जानते हैं और ऐसा ही करते हैं। एक गंभीर मनोवैज्ञानिक के लिए जाग्रति एवं स्वप्न, दोनों की ही अनुभूतियाँ अपने-अपने ढंग से यथार्थ ही हैं।

आत्म-वैज्ञानिक, तत्वज्ञ, दार्शनिक इस यथार्थ जगत को भी स्वप्न ही मानते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यथार्थ जगत की जो अनुभूति, व्यष्टि चेतना की सामान्य स्थिति में होती है, वह दृष्टा की चेतना के स्वरूप पर ही आधारित है उससे भिन्न नहीं। अपने निरपेक्ष स्वरूप में जगत मात्र 'सत्' का विराट् सत्ता का अंग है। किन्तु प्रत्येक प्राणी को उसकी सापेक्ष अनुभूति ही होती है और यह सापेक्ष अनुभूति वस्तुतः स्वप्न तुल्य यथार्थ ही होती है। आधुनिकतम वैज्ञानिक अन्वेषण भी इसी निष्कर्ष तक आ पहुँचे हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों का यह सर्वमान्य निष्कर्ष है कि आकर्षक रंगों की, सम्मोहक सौन्दर्य की चिन्तार्षक ध्वनियों की, परिव्याप्त प्रकाश की, तापमयी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊष्मा की, सुहाने संगीत की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, वे तरंगों और गतियों के भिन्न-भिन्न क्रमों के समुच्चय मात्र हैं। ऊष्मा क्या है?वातावरण की तरंगों का संघात। प्रकाश एवं वर्ण ? ये इलेक्ट्रोमैग्नेटिक स्पेक्ट्रम में विभिन्न फ्रीक्वेन्सीज की 'वेवलेन्थ' के अलग-अलग 'सेट' ही तो हैं, और क्या ? प्रत्येक रंग प्रकाश खंड में कुछ निश्चित 'फ्रीक्वेन्सी' तथा 'वेवलेन्थ' की तरंगों का परिणाम है। प्रख्यात वैज्ञानिक एडिंगटन के अनुसार- ''तरंग है पदार्थ और जो रंग हम देखते हैं, वह हमारी दिमागी बनावट हैं।'' इस प्रकार जगत का यथार्थ निरपेक्ष रूप में माप है (अस्ति); किन्तु वस्तु सत्य के रूप में हम जो भी अनुभव करते हैं, वह हमारा ही ''आत्मपरक सृजन'' है हमारी जो अनुभूति क्षमताएँ हैं, उनके अपने ढाँचे और स्तर के ही अनुसार हमें वस्तु सत्य का अनुभव होता है।

तनिक हम कल्पना करें कि यदि विश्व का कोई भी चेतन प्राणी पाँच ज्ञानेन्द्रियों में से एक की भी शक्ति से समर्थ न होता यानी किसी में भी देखने, सुनने, सूँघने, स्पर्शानुभव करने और स्वाद ले सकने की ऐन्द्रिक क्षमताएँ नहीं होती, तब यह शेष संसार रहता तो ऐसा ही किन्तु इसकी विविध रूपाकृतियों, विविध गंधों का, नाना स्वादों का, ध्वनियों एवं संगीत का क्या अनुभव होता और क्या प्रमाण होता ? वस्तु-सत्ता तो तब भी होती; किन्तु अनुभूतियों का वर्तमान स्वरूप तब कदापि कहीं होता ही नहीं।

हम वस्तु-सत्य को जब भी देखते या उसका अनुभव करते हैं उसमें हमारे अपने संस्कार अपने पूर्व संचित संवेदन और उनकी क्षमता-विशेष झुकाव-विशेष का भी प्रभाव घुला-मिला रहता है। क्योंकि हम चेतन दर्शक, चेतन भोक्ता हैं।

कैमरे की देखने की क्रिया और चेतन प्राणी के देखने की क्रिया में भेद चेतना की उपस्थति से ही होता है। नेत्र से भी किसी प्रकाशित वस्तु को उस वस्तु से विकीर्ण प्रकाश की किरणों के द्वारा ही देखा जाता है । वे ही प्रकाश-किरणें पुतलियों में प्रविष्ट होती हैं और नेत्रवीक्ष उसके द्वारा नेत्र पटल पर उल्टा प्रतिबिम्ब बनता है। किन्तु इससे आगे की क्रिया कैमरें की क्रिया से बिल्कुल भिन्न है। नेत्र पटल पर उभरे प्रतिबिम्बों का प्रभाव संवेदन-नाड़ियाँ मस्तिष्क तक ले जाती हैं; वहाँ संचित बोध अनुभवों के आधार पर वस्तु के स्वरूप के अनुभव के साथ ही, उसके प्रति संवेदनात्मक प्रतिक्रिया भी उत्पन्न होती है। सुन्दर प्रीतिकर दृश्यों से प्रसन्नता-उल्लास की; अरुचिकर दृश्यों से जुगुप्सा-अप्रसन्नता, कष्ट की; सामान्य अनुभव से सर्वथा भिन्न दृश्यों से विस्मय की और आत्म सत्ता के द्वारा अपने लिए अनुकूल मानी गई परिस्थितियों को क्षति पहुँचा सकने का संकेत देने वाले या उनकी स्मृति उभारने वाले दृश्यों से भय की अनुभूतियाँ होती हैं। इन अनुभूतियों के समय मस्तिष्क की कोशिकाओं में या मज्जागत पदार्थ में किस तरह के कम्पन होते हैं इसका यदि भौतिकी या रसायनशाला की दृष्टि से अध्ययन-विश्लेषण कर भी लिया जाय तो भी उस विश्लेषणात्मक अध्ययन की तुलना उस समय की वास्तविक मानसिक अनुभूति से पूरी तरह नहीं की जा सकती। भौतिक-रासायनिक परिवर्तनों के अध्ययन से यथार्थ मानसिक अनुभूतियों का संकेत मात्र ही हो सकता है। यह अध्ययन वास्तविक अनुभूति के समतुल्य कभी भी नहीं हो सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि वस्तु की जो अनुभूति है वह मूलत: व्यक्ति-चेतना की, स्वत: की क्रिया विशेष है। वस्तु सत्ता की निरपेक्ष अनुभूति चेतन व्यक्ति को नहीं हो पाती।

आज इस तथ्य को वैज्ञानिक भी स्वीकार कर रहे हैं। पदार्थ की सत्ता की खोज में आगे बढ़ते-बढ़ते वैज्ञानिक सृष्टि के मूलकणों से भी आगे बढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे प्राथमिक कण भी विद्युत तरंगों के संघात मात्र हैं और आगे बढ़ने पर नतीजा यह निकला कि ये विद्युत तरंगें भी अज्ञात, अवर्ण्य, अविवेच्य तरंग समूहों का अंश मात्र हैं और उनका मूल रूप जानना भौतिक उपकरणों से सम्भव नहीं। क्योंकि उन उपकरणों और उनके संचालक नियमों की हम जो भी गणना एवं विधि-व्यवस्था बनाते हैं, वह अंतत: हमारी ही मानसिक संरचना का परिणाम है। जिसे हम प्रकृति की कार्यविधि समझते हैं, वह प्रकृति के क्रिया-कलापों की हमारी अपनी मानसिक संकल्पनाओं के आधार पर व्याख्या भर है। हमारा सम्पूर्ण अवलोकन-विश्लेषण और परीक्षण हमारी अवधारणाओं पर आधारित रहता है। उसे स्वप्नवत् ही सत्य माना जा सकता है।

सामान्य दिनचर्या के अनुभवों-संवेदनों से मन पर जो प्रभाव पड़ते रहते हैं, उनके संस्कार एवं तज्जन्य वासनाएँ संचित होती रहती हैं। उसी आधार पर सुषुप्तावस्था में मन-मस्तिष्क स्वप्न की सृष्टि करता है। चेतन और अचेतन मस्तिष्क के अनुभवों से भिन्न स्वप्न-सृष्टि असंभव है। उसी प्रकार जन्म-जन्मातंरों से संचित संस्कारों, एवं तद्नुरूप आत्म-चेतना के स्वरूप के अनुसार ही इस जगत का बोध प्राणी को होता रहता है। इसलिए इस जागतिक बोध की, उसके विविध नाम वर्ण, दृश्य, स्पृश्य, स्वाद, गंध, शब्द आदि के अनुभव-संघातों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की स्वप्न से तुलना पूर्णत: वास्तविक है। सुषुप्ति काल में उदित वासना के अनुसार स्वप्न होता है। भिन्न-भिन्न वासनाएँ भिन्न-भिन्न स्वप्नों का बोध कराती हैं। उसी प्रकार, भिन्न-भिन्न वासनाओं की उदितावस्था में इस नाम रूपात्मक सृष्टि की भिन्न-भिन्न अनुभूतियों का स्वरूप बनता-बिगड़ता रहता है। एक मन:अवस्था में जो दृश्य मधुर, शीतल आकर्षक, संगति योग्य, हितावह, सुन्दर प्रतीत होते हैं, दूसरी मन:अवस्था में वे ही दोषपूर्ण, विकृत, परित्यज्य, हानिकर प्रतीत होते देखे जाते हैं। कभी जो अनुभव नितान्त सत्य प्रतीत होता है, बाद में कभी वही पूरी तरह भ्रान्त ज्ञात होता है।

वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ भी हमारे अपने अनुभव संघातों के सहारे ही निर्धारित की जाती हैं। वैज्ञानिक विश्लेषण और प्रयोग की पद्धतियाँ एवं नियम-सूत्र वैज्ञानिकों के चेतन-अचेतन मस्तिष्क के अनुभवों द्वारा ही निर्धारित होते हैं। इसीलिए वे परिवर्तित भी होते रहते हैं। आज जो वैज्ञानिक निष्पति, निभ्रान्त सिद्ध होती है, कल वही भ्रान्त सिद्ध हो जाती है।

ज्ञान चाहे भौतिक वस्तुओं का हो, चाहे देह का, चाहे मन का वह सदैव ज्ञाता की चेतना के स्वरूप एवं स्तर पर निर्भर करता है। ज्ञाता की सत्ता से बाहर ज्ञान का अस्तित्व नहीं होता। वस्तु-सत्ता के बाहर ज्ञान का अस्तित्व नहीं होता। वस्तु-सत्ता भले ही ज्ञात की सत्ता से बाहर हो, किन्तु उसका जो ज्ञान होगा, वह ज्ञाता की सत्ता के ही भीतर उत्पन्न प्रतिक्रिया होगा। इसी प्रकार स्वयं की देह का अनुभव ही दृष्टा के अनुभव से स्वरूप पर आधारित होता है। प्रयोगशाला में सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों-उपकरणों से सज्जित-सक्रिय एक वैज्ञानिक जब देह को देखने-जानने को उद्यत होता है तो उसे देह असंख्य जीवाणुओं से भरी जीव-कोशाओं का संघात और प्राणविद्युत तथा शरीर-विद्युत की त्वरित हलचलों का विचित्र क्रीडांगन प्रतीत होगा।

जबकि अपने या दूसरे की चमड़ी के सौन्दर्य पर मुग्ध रागी को उस देह में जाने कितना माधु उसकी चेष्टाओं में सम्मोहन भाव और रहस्यमय आकर्षण भरा दीखता है। वैज्ञानिक के लिए प्रयोगशाला का सत्य जितना वास्तविक है, मुग्ध व्यक्ति के लिए अपना मुग्धता भाव भी उतना ही वास्तविक है। मूर्ति-पूजा से विरक्त व्यक्ति के लिए प्रतिमा वस्तुत: निष्प्राण पाषाण खंड मात्र है तो किसी सच्चे भक्त के लिए वही प्रतिमा वस्तुत: दिव्य प्रेरणाओं और गहन अनुभूतियों का जीवन्त स्रोत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्ति-चेतना के स्तर एवं स्वरूप के अनुसार ही इस दृश्य जगत (जो स्पृश्य जगत एवं श्रव्य जगत भी है) के अनुभव होते हैं। आत्म-सत्ता ही अनुभूति का आधारभूत तत्व हैं।

इस तथ्य को समझ लेने पर श्रेष्ठ जीवन-दर्शन की, उत्कृष्ट दृष्टिकोण की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। निकृष्ट दृष्टिकोण अपनाने पर, अन्त:करण में घटियापन भर लेने पर चारों तरफ घटिया स्वरूप ही दृष्टिगत होगा। वस्तुत: यह संसार आत्म सत्ता का ही प्रतिबिम्ब है। आत्मसत्ता का स्तर ही चारों ओर प्रतिबिम्ब होता है, वस्तु-जगत में हर व्यक्ति आत्म- सत्ता को आरोपित करता रहता है। घटिया दृष्टिकोण वाला इसी आरोपण के कारण चारों ओर घटियापन का ही अनुभव करता है। संत कबीर ने इसलिए इस संसार को दर्पणों की गुफा कहा था; अर्थात् ऐसी गुफा, जिसमें चारों ओर दर्पण ही दर्पण हों और उसमें हर व्यक्ति को सभी तरफ अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़े। इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा था-

''दर्पण केरा गुफा में, श्वनहा पइठा धाय।

देखि के प्रतिमा आपनी, भूँकि-भूँकि मरि जाय।।''

अर्थात्- मनुष्य उस कुत्ते के समान है, जो दर्पण गुफा में सहसा दौड़कर घुस जाय और चतुर्दिक अपनी ही प्रतिमाएँ देख-देखकर भौंक-भौंककर दम तोड़ दे।

यह मनुष्य की यथार्थ स्थिति है। अपनी ही आत्मसत्ता के प्रतिबिम्ब को देख-देखकर मनुष्य विचलित, विक्षुब्ध-व्यग्र होता रहता है और जीवन में क्षण भर को भी सच्ची शान्ति, संतोष एवं तृप्ति का अनुभव नहीं कर पाता। अध्यात्म दर्शन का प्रयोजन इस तथ्य को सामने लाकर प्रत्येक मनुष्य को अपना स्वयं का स्तर उत्कृष्ट बनाने की अपना दृष्टिकोण उन्नत, श्रेष्ठ बनाने की प्रेरणा देना है। उसी के द्वारा मनुष्य की उत्कृष्टता, पवित्रता और प्रकाश के अनुभव एवं दर्शन हो सकते हैं तथा आनन्द-उल्लास की स्थायी अनुभूति हो सकती है।

इच्छाशक्ति का सुनियोजन कैसे करें ?

आधुनिक प्रगतिशीलता का प्रतिपादन है कि मनुष्य की उत्कंठा, अभिलाषा, इच्छा जिस दिशा में जितनी प्रबल होगी, उसे उतना ही उस क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर मिलेगा। बुद्धि काम करेगी। योजना बनेगी। साधन जुटेंगे और सहयोगी मिलेंगे। फलत: जो चाहा गया है उसके अनुरूप बानिक बनता चला जायगा। प्रवाह चल पड़ने पर मंजिल तक पहुँचने में सुविधा होती है। सफलता प्राप्त होने की परिस्थितियाँ निकट आती जाती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी ढेरों पुस्तकें इन दिनों छपी हैं, जिसमें इच्छा शक्ति का महत्त्व और माहात्म्य उदाहरणों समेत विस्तारपूर्वक बताया गया है। भौतिक क्षेत्र में जिनने भी जिस प्रकार की भी, उन्नति की है, उनके पास आरम्भ से इच्छित प्रसंग की जानकारी तथा सुविधा भले ही न रही हो पर उत्कंठा ने कदम उठाये तो प्रतिकूलताएँ अनुकूलता में बदलती चली गईं। अपने स्वभाव के अन्य सहचर भी मिल जाते हैं। उन्हें भी मिले और मिलजुलकर खोजने तथा करने में मार्ग और भी अधिक सरल हो गया।

आवश्यक नहीं कि सभी महत्त्वाकांक्षी अपनी कामनाएँ पूरी कर ही लेते हों, पर इतना आवश्यक है कि अन्तर की अकुलाहट रास्ता वहाँ भी बना लेती है जहाँ वह आरम्भ में रुका हुआ प्रतीत होता था। इच्छा शक्ति को मानवी अन्तराल की ऊर्जा माना गया है। उसके कारण शक्ति मिलती है। गरमी आती है और हलचल मचती है। यह उत्तेजना निरर्थक नहीं जाती। कुछ न कुछ कर ही गुजरती है। इस प्रतिपादन के पक्ष में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं। ढूँढ़ने पर वे अपने इर्द-गिर्द ही ढेरों मिल जाते हैं। अस्तु कथन, प्रतिपादन और प्रोत्साहन में अभिलाषी लोगों को इसकी स्वीकृति में आपत्ति भी नहीं होती।

यहाँ एक नया प्रश्न उत्पन्न होता है कि महत्त्वाकांक्षा की दिशाधारा क्या हो ? आमतौर से लोग विलास, वैभव और बड़प्पन प्रदर्शन के आकांक्षी पाये जाते हैं। मन की जैसी बनावट है और बहुजनों को जैसा करते देखा जाता है उसी का अनुकरण करने की अपनी भी इच्छा होती है। दूसरों को समृद्ध, सम्पन्न देखकर अपना भी मन चलता है कि ऐसा ही सुयोग अपने को भी क्यों न मिले ? परामर्श दाता मिल जाने पर भी अधिकांश ऐसे होते हैं जो सरल शुभेच्छा से प्रेरित होकर ऐसे ही परामर्श देते हैं। जिनसे सुखी-समृद्ध होने तथा बड़ा आदमी कहलाने का श्रेय मिले।

आवेश धीमी गति से चलता है, तब तक तो न्याय, विवेक और औचित्य का अंकुश बना रहता है और उसी सीमा तक उत्कर्ष की इच्छा की जाती है, जहाँ तक अन्याय अपनाने और अपराध करने का अवसर न आये। पर बाँध महत्त्वाकांक्षाओं के प्रबल होते ही दरारें देने, रिसने लगता है। एक स्थिति वैसी भी आती है कि मर्यादाओं और वर्जनाओं का बाँध पूरी तरह टूट जाता है और दुष्टता-भ्रष्टता अपनाने में कोई संकोच नहीं लगता। बड़प्पन मिलता रहे, किन्तु साथ ही बदनामी होती रहे। घृणा, तिरस्कार की वर्षा होती रहे तो जो आनन्द प्रतिभाशीलता में सोचा गया था वह घटने और मिटने लगता है। बड़प्पन की अनुभूति बदनामी से हल्की नहीं होती, भारी ही पड़ती है।

आमतौर से कामना, धन, वैभव, बड़प्पन और प्रदर्शन की होती है। इन्हें उपार्जित करके मनुष्य सोचता है कि वह असंख्यों से ऊँचा हो गया। लोग इसे प्रबल पुरुषार्थ और चातुर्य-कौशल का प्रतिफल मानेंगे और सौभाग्यशाली भी कहेंगे। पर देखा गया है कि वैसा होता नहीं। मित्र, पड़ौसियों और सम्बन्धियों में से हर एक के सामने अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। उनका मन पूरी तरह उन्हीं के सुलझाने में रहता है। दूसरों की ओर रास्ता चलते नजर ही डाली जाती रहती है। किसी को बड़प्पन का इतिहास पढ़ने और धन कमाने की सफलता को सराहने के लिए किसके पास फालतू समय खाली होता है। दुनिया में एक से एक बढ़कर सुसम्पन्न और प्रगतिशील पड़े हैं। इनकी विरदावली गाने में कौन समय निकाले ?

फिर यह समय ईर्ष्या प्रधान भी हो गया है। किसी की बढ़ोत्तरी देखकर लोग प्रसन्न नहीं होते वरन् जलते हैं। ईर्ष्या करते हैं। चोर, बेईमान बतलाकर भर्त्सना करते हैं और अवसर मिलता है तो नीचा दिखाने में भी नहीं चूकते। एक-दूसरे की प्रशंसा स्वार्थवश ही की जाती है। अन्यथा निन्दा, उपहास, छिद्रान्वेषण करना ही इन दिनों का आम रिवाज है। धन के अनावश्यक संग्रह से उसे झपटने वाले, अपने को उत्तराधिकारी समझने वाले, चापलूसी की कीमत चाहने वाले इस फिक्र में भी रहते हैं कि इस भण्डार में से जितनी जल्दी जितना ले भागा जाय, उसके लिए कोई पक्ष या विपक्ष का कौतुक खड़ा किया जाय। जो प्रशंसा से काबू में न आये, उनके सामने भय, आतंक का कोई ऐसा खेल खड़ा किया जाय, जिससे डरकर वह कुछ उगले और संपदा का एक भाग उसे भी दे। ऐसे लोगों के षड़यंत्र कई बार बड़े दुरूह होते हैं और उनकी चोट कई बार बड़ी करारी बैठती है।

सम्पन्नता, बड़प्पन और वाहवाही लूटने की ललक में एक खराबी यह है कि वह जितना परिश्रम कराती, जितना कुचक्र रचाती है, उसका एक छोटा अंश भी अपने निज के काम नहीं आता। जमाखोरी का अधिकांश अपव्यय में उड़ जाता है। चमचे, चापलूस बे बिना मूल्य से नहीं खरीदे जाते। वे हर घड़ी कुछ चाहते हैं। आड़े वक्त पर तो अपनी तथाकथित वफादारी की पूरी कीमत वसूल लेते हैं। इस प्रकार की समस्याओं में से कुछ तो उनकी बुनी हुई या खड़ी की हुई ही होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो पैसा पूरी ईमानदारी और मेहनत से कमाया जाता है, उसी का सदुपयोग भी बन पड़ता है। अन्यथा उसमें से अधिकांश अपव्यय में चला जाता है। ठाट-बाट खड़ा करना कम खर्चीला नहीं है। बातूनी मित्रों को साथ रखना हो और उनके मुँह प्रशंसाएँ सुननी हों तो इसकी कीमत चुकाने में भी निरन्तर उनका मुँह मीठा करना पड़ता है। बड़प्पन लूटने के लिए अपव्यय आवश्यक है। यह अपव्यय दुर्व्यसनों और कुकर्मों में ही होता है। मुक्त हस्त से लूटने वालों को असंयमजन्य अनेकों आधि व्याधियाँ होती हैं। पेट खराब होने से लेकर अनिद्रा जैसे अनेकों रोग घेरते हैं और दवा दारू में, महँगी परिचर्या में ढेरों खर्च हो जाता है। नशेबाजी, व्यभिचार, यारबासी, आवारागर्दी जैसे दुर्व्यसन उस फालतू कमाई का अधिकांश अपव्यय करा देते हैं जो भड़काई गई महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए छल- बलपूर्वक इकट्ठा किया गया था।

महत्त्वाकांक्षाओं का चालू अर्थ अधिकाधिक मात्रा में धन, वैभव समेटना और लोगों पर अमीरी की, चतुरता की छाप डालना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय, श्रम, बुद्धिबल, मनोबल को दाँव पर लगाना पड़ता है। इतना ही नहीं नीति मर्यादा तक को तिलांजलि देनी पड़ती है। इतना कर गुजरने में जिन्दगी खपा देने पर भी लेखा-जोखा लेने पर प्रतीत होता है कि पल्ले कुछ नहीं पड़ा। जो कमाया गया था उसे मसखरे उड़ा ले गये।

महत्त्वाकांक्षाओं की सही दिशा वह है जिसमें आत्म-गौरव बढ़ाने और लोक मंगल के लिए कुछ कर गुजरने की उमंग उठती है। संसार में अगणित ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनकी चरित्र-निष्ठा और सेवा भावना चिरकाल तक असंख्यों के लिए अभिनन्दनीय और अनुकरणीय बनी रही है। सेवा और सुधार के लिए सदा ही माँग रहती है। पिछड़ों को उठाने और भटकों को राह पर लाने की आवश्यकता हर समय हर क्षेत्र में अनुभव की जाती है। इस संदर्भ में अवांछनीयताओं से जूझना और सदाशयता के लिए पथ प्रशस्त करना पड़ता है। यह सब तो करना ही होता है, दूसरों को भी उसी राह पर चलने के लिए ऐड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है। यह उसी से बन पड़ेगा जो अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाएँ एवं आवश्यकताएँ कम रखे। स्वल्प संतोषी बनकर 'सादा जीवन उच्च विचार' की कार्य पद्धति अपनाये।

आदर्शवादी व्यक्ति भूखे-नंगे नहीं रहते। वे हरामखोरी नहीं करते। इसलिए यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि अपनी आवश्यकता कम रखें। वस्तुत: इतनी कम हों कि यदि उन्हें काम चलाऊ कसौटी पर कसकर जमा संग्रहीत किया जाय तो उन्हें कुछ ही घण्टे के परिश्रम से कमाया जा सकता है। यदि उत्तराधिकारियों के लिए मुफ्त का ब्याज उपहार में देना नहीं है तो वह भी काम चलाऊ मात्रा में सरलतापूर्वक संग्रह किया जा सकता है। संतोषी वृत्ति धारण करने पर साधारण गुजारा भी निर्वाह तथा सम्मान के लिए पर्याप्त हो सकता है। इसके उपरान्त जो समय, श्रम, चिन्तन एवं कौशल बच जाता है, उन्हें उन कार्यों में लगाया जा सकता है, जिनसे जीवन की सफलता का आधार बन सके।

शरीर को विलास चाहिए। मन को वैभव से प्रसन्नता होती है। पर अपनी आत्म-सत्ता तो शरीर से भिन्न है साथ ही काया का यह ठिकाना भी नहीं कि वह कितने समय साथ देगी। शरीर छूट जाने के उपरान्त तो बड़प्पन और गरीबी का गुणगान या उपेक्षा का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। जो व्यक्ति इस जन्म में राजा है, वही कर्मवश गधा या कुम्हार बन जाता है जो इस परिवर्तन के बाद पूर्व जन्म के राजा की ख्याति उसके लिए किस काम आई। आत्मा की अमरता का सिद्धान्त यदि स्वीकारा जाय और शरीरों को वस्त्र बदलने की तरह आये दिन का झंझट माना जाय तो फिर ख्याति की महत्त्वाकांक्षा बहुत ही छोटी घटिया और अस्थायी वस्तु रह जाती है। वह सामयिक भी है, अस्थिर और क्षणिक भी। जब पूर्व जन्मों के यश, अपयश इन दिनों हमारे किसी काम नहीं आते उस निन्दा, प्रशंसा का आज कोई प्रभाव नहीं रहा तो इस जन्म में हो रही निन्दा, प्रशंसा का शरीर बदल जाने पर कोई प्रभाव न रहेगा। जब आज हमें पूर्वजन्मों की ख्याति, कुख्याति का कोई असर अपने ऊपर नहीं है तो भविष्य में उसके बने रहने की क्या आशा की जाय ?

बदलते क्षणों की तरह शरीरों के धारण करने और उतारने का सिलसिला भी चलता ही रहता है। यश-अपयश शरीरों तक सीमित है। यह सोचते हुए वाहवाही लूटने, शान बघारने, शेखी दिखाने, प्रशंसा सुनने के लिए ओछे हथकंडे अपनाना दूरदर्शिता नहीं है। मिथ्या प्रदर्शन तो रंग-मंचों के नट-नटनियाँ भी कर लेते हैं, वे क्षण भर के लिए राजा, मंत्री, तपस्वी, भिखारी कुछ भी बन जाते हैं। पर प्रदर्शन समाप्त होते ही अपने सादे कपड़े पहन लेते हैं और सादे कर्मचारी की तरह रहते हैं।

इच्छा शक्ति का नियोजन और प्रगति का मूल्यांकन भौतिक वैभव के संपादन या लोगों को बीच बड़े कहलाने के लिए नहीं करना चाहिए। वरन् यदि विवेक जागे तो विचारणा और साहसिकता और ऐसे उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए, जिन्हें तुच्छ अस्थायी एवं बचकानी बुद्धि का चुनाव न कहा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्थान-पतन की कुंजियाँ अपने हाथ में

मनुष्य के कायिक और मानसिक संयत्र में अद्‌भुत क्षमताओं के एक से एक भण्डार भरे पड़े हैं। उनका सुव्यवस्थित सदुपयोग बन पड़े तो सामान्य समझा जाने वाला व्यक्ति भी ऐसी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है, जिन्हें चमत्कारी देव वरदानों की तरह गिना जाने लगे। दुर्भाग्य इसी बात का है कि मनुष्य बाहर की वस्तुओं का मूल्य और उपयोग तो जानता है, पर अपनी सामर्थ्य को उभारने तथा उसका सदुपयोग करने की जानकारी से प्रायः वंचित ही रहता है। पिछड़ी हुई दीन-दयनीय परिस्थिति में पड़े रहने का प्रायः यही प्रधान कारण होता है।

अभीष्ट प्रगति के लिए साधन, परिस्थिति एवं सहयोग की भी आवश्यकता पड़ती है, पर उनका जुटाया जाना तथा जो उपलब्ध है, उसे ठीक से काम में लाया जाना उन्हीं से बन पड़ता है जो अपने व्यक्तित्व को व्यवस्थित बनाने और अपनी क्षमताओं को परिष्कृत करने में सफल होते हैं। इतनी बात बने बिना सभी अनुकूलताएँ निरर्थक चली जाती हैं। कई बार तो सुविधा-साधनों का दुरुपयोग ही होता रहता है और उत्थान की अपेक्षा पतन का ही पथ-प्रशस्त होता है।

जितना ध्यान धन-उपार्जन और वैभव प्रदर्शन का ताना-बाना बुनने पर दिया जाता है, उतना ही यदि आत्म-चिन्तन, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया पर दिया जा सके तो निश्चय ही आत्म-विश्वास की मात्रा अनेकों गुनी बढ़ सकती है। प्रसुप्त शक्तियों को जगाने और बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित हो सके, अपने से लड़-झगड़कर शरीर और मन को आलस्य, प्रमाद त्यागने के लिए सहमत किया जा सके तो प्रतीत होगा कि किसी नये देव-दानव की सामर्थ्य अपने साथ जुड़ गई। बिखराव की बाल चंचलता यदि छोड़ी जा सके और निर्धारित लक्ष्य पर एकाग्र भाव से चला जा सके तो कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो सकते हैं।

आत्म-ज्ञान की सामान्य भूमिका में जागृत होने वाले सामान्य मनुष्य आत्म-विश्वासी, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी पाये जाते हैं। अहंकारी होना एक बात है और आत्म-विश्वासी होना बिल्कुल दूसरी। अहंकारी उद्धत होता है, दूसरों को अपने से तुच्छ समझता है, आत्म-प्रशंसा के लिए आतुर होने के कारण चापलूसों द्वारा ठगा जाता रहता है, मतभेद अथवा असहमति को सहन कर सकना उसके लिए संभव नहीं होता उसे बात-बात में आग-बबूला होते और दूसरों के साथ उद्धत व्यवहार करते देखा जा सकता है। आत्म-विश्वासी में इस प्रकार की एक भी विकृति नहीं होती। उसका आत्मबोध सिखाता है कि ईश्वर की तरह ही उसके पुत्र मनुष्य को भी शालीनता, सज्जनता, पवित्रता, सरलता, नम्रता, सहिष्णुता जैसी सत्प्रवृत्तियों का उत्तराधिकारी होना चाहिए। इतना ही नहीं आत्म-विश्वासी सोचता है कि किसी भी दिशा में बढ़ चलने की प्रचण्ड सामर्थ्य मानवी सत्ता में भरी पड़ी है, उसका उपयोग ठीक से न बन पड़ना ही पिछड़ापन है। मनोयोग और एकाग्र पुरुषार्थ का समन्वय हो सका तो फिर हाथ में लिए हुए कार्य उत्कृष्ट स्तर के बनते चले जायेंगे और क्रम का चलते रहना एक दिन उच्चस्तरीय सफलता प्रस्तुत किये बिना रहेगा नहीं। अहंकारी केवल उन्हीं कार्यों में रस लेता है जो सस्ती वाहवाही दिला सके। आत्म-विश्वासी, आत्म-गौरव को ध्यान में रखकर उन आदर्शवादी प्रयत्नों को अपनाता है जिनसे आत्मा-परमात्मा और विश्वात्मा को सन्तोष मिल सके। इसी अन्तर को देखते हुए अहंकारी की निन्दा और आत्म-विश्वासी की प्रशंसा होती है। यों अन्तर बारीकी से ही पकड़ में आता है अन्यथा कई बार मोटी दृष्टि से देखने वालों को अहंकारी एवं आत्म-विश्वासी एक जैसे दीखने लगते हैं।

उच्चस्तरीय आत्मबोध में मनुष्य अपने आपको ईश्वर का तेजस्वी अंश-विश्वात्मा का एक घटक समझता है और सुर-दुर्लभ मानव जन्म का लक्ष्य पूरा करने वाले व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने वाले-लोक-मंगल का प्रयोजन पूरा करने वाले कार्यों में ही हाथ डालता है। अन्य किसी भटकाव में उसका मन नहीं फिसलता। सामान्य स्तर का आत्म-विश्वास भी इस आत्मबोध का प्रथम चरण है। इस प्रवेश द्वार में पैर रखते ही मनुष्य उत्थान और पतन के उत्तरदायित्वों को अपने कन्धे पर ओढ़ता है। दूसरों को दोष देने अथवा दूसरों से याचना करने की ओछी दृष्टि उसके पास नहीं फटकती। वह सोचता है, संसार में शुभ-अशुभ सभी कुछ है, उसमें अपना चुम्बकत्व अनुकूल स्तर के व्यक्तियों तथा साधनों को एकत्रित करेगा। यदि अपना स्तर सुधार लिया जाय तो दूसरों के दोषों से अपनी हानि न्यूनतम मात्रा में ही होगी। इसी प्रकार अन्यों का सहकार तभी मिलेगा जब वे पात्रता की परख कर लेंगे। कुपात्रों और अप्रामाणिक व्यक्तियों को न तो कहने लायक संसार का सहयोग मिलता है और न दैवी अनुग्रह। इस तथ्य को समझते हुए वह अपने में वे विशेषताएँ उत्पन्न करने में संलग्न होता है, जिनके कारण सफलता खिंचती चली आती है, उन दुर्बलताओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से जूझता है जो अवरोधों और संकटों का प्रधान कारण बनी होती हैं।

आत्म-हीनता की ग्रन्थि से ग्रसित व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को समझने और उन्हें निरस्त करने का साहस नहीं जुटा पाते। गहराई में प्रवेश करके आत्म-निरीक्षण करना उनसे बन नहीं पड़ता, अस्तु सामने प्रस्तुत प्रतिकूलताओं का सारा दोष किन्हीं अन्य व्यक्तियों या परिस्थितियों पर थोपकर जी हल्का करते हैं। कोई और नहीं दीखता तो बेचारे ग्रह-नक्षत्रों को, भाग्य को, दैवी प्रकोप को, समय की विपरीतता को कोसने की आत्म-प्रवंचना अपनाने लगते हैं। दूसरा काम उनका यह होता है कि अभीष्ट सफलताओं के लिए जिस-तिस की कृपा प्राप्त करने के लिए उसके सामने दीनता भरी याचना करते फिरें। अपने पौरुष पर जिन्हें विश्वास नहीं उन्हीं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भिक्षावृत्ति का आश्रय लेते पाया जाता है। रोटी, पैसा आदि माँगने वाले समर्थ भिक्षुकों की निन्दा होती है यह जानते हुए भी कितने ही लोग सम्पन्न लोगों की चापलूसी अथवा देव-दानवों की पूजा-पत्री में कई प्रकार के अनुदान-वरदान पाने की अपेक्षा करते रहते हैं। ऐसे लोगों का कितना मनोरथ पूरा होता है यह कहना कठिन है, पर यह निश्चित है कि इससे आत्म-गौरव और आत्म-विश्वास को भारी क्षति पहुँचती है। दीनताग्रस्त व्यक्ति यदि कहीं से कुछ प्राप्त कर भी ले तो परावलम्बन अपनाने के कारण अन्ततः घाटे में ही रहता है। प्रगति की अगणित सम्भावनाएँ, आत्म-विश्वास के साथ जुड़ी होती हैं, यदि उस गरिमा को दुर्बल बना दिया गया तो फिर छुट-पुट उपलब्धियों का क्या मूल्य रह गया? सुविधाएँ आती और चली जाती हैं, पर जो भावनात्मक क्षति पहुँचती है उसकी तुलना में अनुदान, वरदान का लाभ तुच्छ ही बैठता है।

संसार में आदान-प्रदान का नियम तर्क संगत, नैतिक और व्यावहारिक है। पात्रता के अनुरूप सफलताएँ और उपलब्धियाँ मिलने का शाश्वत नियम अनादिकाल से चलता आ रहा है, हमें उतने से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए। किसी से कुछ पाना हो तो उसका मूल्य चुकाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। सेवा के बदले में यश पाया जाय तो हर्ज नहीं। ऐसे ही धक्केशाही के बल पर नेता बन बैठना अनुचित है। अपनी योग्यता, कुशलता और श्रमशीलता का स्तर बढ़ाते हुए धन उपार्जन का औचित्य है, पर यदि जेबकटी का धन्धा अपनाया जा रहा हो तो उसे उपार्जन नहीं कह सकते। इसी प्रकार व्यक्तित्व के परिष्कार एवं लोक-मंगल में निरत रहने की ऋषि भूमिका निवाहने वाले दैवी अनुग्रह के अधिकारी हो सकते हैं, पर मन्त्र-तन्त्र की तरकीबें भिड़ाकर जो दैवी शक्तियों की अनुकम्पा चाहते हैं, वे यथार्थता को समझते नहीं और सस्ते जादुई लाभ का सपना देखते हैं। यही बात सिद्ध पुरुषों का अनुग्रह, आशीर्वाद प्राप्त करने के सम्बन्ध में भी है। रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को, समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को, चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को, गाँधी ने जवाहरलाल को अपना सच्चा आशीर्वाद दिया था, पर देने से पहले उन्होंने यह विश्वास भली प्रकार कर लिया था कि उनके अनुदान का उपयोग किसी कुपात्र द्वारा व्यक्तिगत स्वार्थ साधन के लिए तो नहीं किया जायेगा। कहना न होगा कि परिष्कृत व्यक्तित्व से कम कीमत पर कभी किसी समर्थ सिद्ध पुरुष की वास्तविक अनुकम्पा मिल नहीं सकती।

इन तथ्यों पर जितना अधिक विचार किया जाय उतना ही यह निष्कर्ष निकलेगा कि अपनी भावनात्मक, बौद्धिक एवं क्रियापरक स्थिति को जितना प्रखर बनाया जा सकेगा उसी अनुपात से जन-साधारण का अथवा दैव शक्तियों का सहयोग मिलता चला जायेगा। संसार में जितने भी ऐतिहासिक महामानव हुए हैं उनमें से प्रत्येक की प्रगति एवं महानता का विश्लेषण करने पर इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उनने अपने गुण, कर्म, स्वभाव में असाधारण उत्कृष्टताएँ उत्पन्न कीं और साथियों की तुलना में अपने को अधिक सत्पात्र सिद्ध करके विशिष्ट जन सहयोग एवं सम्मान प्राप्त कर सके। यही है उन सब की प्रगति का प्रधान रहस्य।

अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग करके दुष्प्रवृत्तियों से ग्रसित होकर ही हम अनेकानेक कठिनाइयों के शिकार बनते हैं। चटोरेपन, असंयम और अस्त-व्यस्त रहन-सहन अपनाने पर ही पाचन तन्त्र और रक्त शुद्धि का सन्तुलन बिगड़ता है। यहीं से अनेकानेक शरीरगत रोगों का सिलसिला चल पड़ता है। सृष्टि के प्रकृति अनुगामी जीव-जन्तुओं की मृत्यु तो समयानुसार होती है, पर उन्हें बीमारियों की व्यथा नहीं भोगनी पड़ती। असंयम की कीमत पर रुग्णता खरीदी जाती है। यदि आहार-विहार की अस्त-व्यस्तता सुधार ली जाय तो खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः वापस लौटाया जा सकता है। इस मोटी बात को मानने के लिए लोग तैयार नहीं होते, असंयम नहीं छोड़ते मात्र दवादारू के जादुई प्रयोगों से स्वस्थ रहने की अपेक्षा करते हैं । राजमार्ग को छोड़कर सस्ते में बड़े लाभ पाने के इच्छुक पगडंडियों में भटकते तो रहते हैं पर पाते कुछ नहीं।

चिन्तन का सही तरीका मालूम न होने से लोग जीवन समस्याओं पर उथले, ओछे और गलत ढंग से विचार करते हैं, फलतः कठिनाइयों के समाधान तो मिलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं, उल्टे चिन्तन की विकृति से ऐसी गतिविधियाँ बन पड़ती हैं जो विपत्ति को और अधिक बढ़ा देती हैं। चिन्ता, निराशा, उद्वेग, आवेश, भय, आशंका, सनक जैसे विकृत चिन्तन एवं काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर जैसे दुर्गुण मिलकर किसी का भी मस्तिष्क अर्ध विक्षिप्त जैसा बना सकते हैं, ऐसे व्यक्तियों का सोचना और करना प्रायः अनुपयुक्त ही होता है। फलतः उनके व्यवहार एवं प्रयासों की उल्टी प्रतिक्रिया होती है। खीज और झल्लाहट से ग्रसित व्यक्ति प्रायः इसी प्रकार के गड़बड़ाये मानसिक स्तर से होते हैं।

अच्छी मोटर भी अनाड़ी ड्राइवर के हाथ में जाकर दुर्घटना ग्रसित हो जाती है और उसमें बैठे सवार को यात्रा जल्दी और सुविधापूर्वक पूरी करने के स्थान पर उल्टे चोट खाने का संकट सहना पड़ता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक स्तर पर आये दिन जो संकट सामने खड़े रहते हैं, उनमें से संयोगवश तो कुछ अपवाद स्वरूप ही आते हैं। अधिकांश ऐसे होते हैं, जिन्हें दुर्बुद्धि जन्य ही पाया जायेगा। यदि पारस्परिक सद्व्यवहार निर्वाह के सूत्र अभ्यास में रह सके होते तो प्रत्येक गृहस्थ में पारस्परिक स्नेह सद्भाव का स्वर्गीय वातावरण बना हुआ होता और सब लोग स्वल्प साधनों में भी प्रचुर आनन्द, उल्लास का लाभ ले रहे होते। यदि दोनों पक्ष सज्जन हों तब तो कहना ही क्या, पर यदि एक समझदार हो तो दूसरे नासमझ को निभा सकता है। पारिवारिक स्नेह, सौजन्य के निर्वाह में प्रायः शालीन सज्जनता का अभाव ही कलह बन कर खड़ा रहता है और उस आग में घर के हर सदस्य को जलना पड़ता है। गरीबी या दूसरे कारण उतने विक्षोभकारी नहीं होते जितना कि उच्चस्तरीय दृष्टिकोण एवं व्यक्तित्व का अभाव।

सन्तानों के सम्बन्ध में आमतौर से लोगों को यही शिकायत रहती है कि उनके बालक कुसंस्कारी सिद्ध हो रहे हैं उनके कारण समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। आयु-वृद्धि के साथ बच्चे घरवालों की सहायता करने के स्थान पर उल्टे संकट खड़े करते हैं। इसमें अन्य कारण कम और घरेलू वातावरण में भ्रष्ट परम्पराओं का घुसे होना मुख्य होता है। बच्चे उपदेश नहीं सुनते, अनुकरण करते हैं। उनमें वातावरण के भीतर काम कर रही विचारणाओं और भावनाओं को पकड़ने की अद्भुत क्षमता होती है। परिवार के लिए कितने ही सुविधा-साधन एकत्रित कर दिये जायें पर यदि कुसंस्कारी वातावरण भरा पड़ा है तो दुष्टता ही पनपेगी और उससे अन्ततः कौटुम्बिक विनाश के दृश्य ही सामने आवेंगें।

यही बात अर्थ सन्तुलन के सम्बन्ध में है। आलसी एवं अयोग्य व्यक्ति थोड़ा सा ही कमा पाते हैं जो कमाते हैं उसे भी अनुपयुक्त ढंग से खर्च करते हैं, फलतः दरिद्रता सदा ही घेरे रहती है। अधिक उपार्जन करने वाले भी दुर्बुद्धिग्रस्त होने के कारण प्राप्त धन का अपव्यय एवं दुरुपयोग करते हैं और सम्पत्ति का सुख पाने की अपेक्षा उल्टे उससे विपत्ति खरीदते हैं।

कुशलता, कला, प्रतिभा, उच्चपद आदि पाने पर भी दुष्प्रवृत्तिग्रस्त व्यक्ति उन विभूतियों का समुचित लाभ नहीं ले सकता वरन् अपना और दूसरों का विनाश ही अधिक करता है। स्पष्ट है कि आन्तरिक स्थिति गई-गुजरी हो तो साधन-सुविधाओं की प्रचुरता भी सुख-शान्ति नहीं दे सकती, इसके विपरीत सद्गुणी व्यक्ति स्वल्प साधन होने पर भी उनके सदुपयोग से प्रगति का पथ-प्रशस्त करते चलते हैं।

शारीरिक असमर्थता के कारण व्यक्ति उतने दुःखी नहीं रहते जितने कि आन्तरिक दुर्बलताओं से ग्रस्त होने पर। कितने ही दुर्बल, रुग्ण एवं अपंग व्यक्ति आन्तरिक प्रखरता के कारण उतना कार्य कर सके, जितना सशक्त शरीर वालों के लिए भी सम्भव नहीं। वस्तुतः अन्धे वे हैं जिन्हें अज्ञान अविवेक ने घेर रखा है। अहंकारी और दीर्घसूत्री ही बहरे हैं जो अन्तःकरण की पुकार और इतिहास के निष्कर्षों पर कान नहीं धरते। गूँगे वे हैं जो कुण्ठाग्रस्त हैं, जो आन्तरिक अभिव्यक्तियों को व्यक्त नहीं कर सकते। दूसरों के सहारे जीने वाले परावलम्बी व्यक्ति मृतक कहे जा सकते हैं। जीवित तो अपने पैरों खड़े होते-अपने सहारे चलते हैं तथा दूसरों का बोझ भी अपने कन्धों पर उठाकर चलते हैं, जो अपने बोझ को आप न उठा सकें दूसरों का सहारा तकें उन्हें तात्त्विक दृष्टि से मृतक समझा जा सकता है। शरीरों का अन्तर कोई अन्तर नहीं, साधनों के न्यूनाधिक होने से भी कुछ बनता बिगड़ता नहीं। वास्तविक अन्तर तो मनःस्थिति का है। तुच्छता और महानता उसी पर अवलंबित रहती है।

कस्तूरी का हिरन सुगन्ध की तलाश में चारों ओर दौड़ता है, पर समाधान तभी होता है जब उसका केन्द्र अपनी ही नाभि में होने की बात समझ में आ जाती है। संसार में सौन्दर्य और देखने योग्य बहुत कुछ है, पर अपनी आँख की पुतली सही होने पर ही यह सारे दृश्य देखे जा सकते हैं। संसार में प्रेरक और आकर्षक शब्दों की कमी नहीं, पर वे सुने तभी जा सकते हैं जब अपने कानों की झिल्ली सही हो। अपना मस्तिष्क खराब हो जाय तो फिर संसार में सब कुछ बेतुका और अट-पटा ही लगेगा। यह तथ्य बताते हैं कि बाहर बहुत कुछ होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए भी उसका लाभ उसी को मिल सकता है, जिसकी अपनी गृहण शक्ति ठीक हो।

संसार में कौन व्यक्ति या पदार्थ प्रिय हैं ? इसका कोई निर्णय नहीं हो सकता। अपनी आत्मीयता एवं रुचि जिस पर भी आरोपित हो जायेगी वही प्रिय लगने लगेगा। टार्च की रोशनी जिस पर भी फेंकी जाती है, वही चमकने लगती है। अपनापन जिस पर भी आरोपित कर दिया जाय, वही प्रिय लगने लगेगा। इसे समेट लेने पर वही सब कुछ उपेक्षणीय लगने लगेगा।

घास खाकर गाय दूध बनाती है, घोड़ा लीद बनाता है, सुअर चर्बी उत्पन्न करता है। एक ही वस्तु कई तरह के परिणाम उत्पन्न करती है, यह उन प्राणियों की पाचन तन्त्र की स्थिति में भिन्नता के कारण ही होता है। बीमारियों के बारे में सोचा जाता है कि वे बाहर से आती हैं, पर वास्तविकता यह है कि वे भीतरी सड़न एवं गतिरोध के कारण ही पैदा होती और पनपती हैं। जीवनी-शक्ति से भरे पूरे लोग छूत वाले विषाणुओं के सम्पर्क में रहते हुए भी निरोग बने रहते हैं।

परमात्मा अपनी विशाल दुनिया का मालिक है, पर आत्मा को भी अपने सत्ता क्षेत्र में पूर्ण आधिपत्य प्राप्त है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है अपनी दुर्बुद्धि से उसे बिगाड़ सकता है और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाकर बना भी सकता है। अपने कमरे में सूर्य की धूप एवं पवन देव अपनी मर्जी के बिना प्रवेश नहीं कर सकते। यदि दरवाजे, खिड़कियाँ बन्द कर दिये जायें तो प्रचण्ड धूप एवं तेज हवा का प्रवेश भी भीतर न हो सकेगा। केवल वही स्टेशन अपने रेडियो पर सुना जाता है जिस पर हम सुई लगाते हैं। अन्य स्टेशनों के ब्राडकास्ट हमारे कानों तक नहीं आ सकते भले ही वे कितने ही जोरदार प्रसारण चला रहे हों।

इतिहास के पृष्ठ ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि आन्तरिक प्रखरता के बल पर लोगों ने अभावग्रस्त एवं विपरीत परिस्थितियों को चीरते हुए प्रगति के पथ-प्रशस्त किये हैं और अनेकानेक अवरोधों को चीरते हुए उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचे हैं। इसके विपरीत हर प्रकार की सुविधाएँ होते हुए भी ऊपर उठने की बात तो दूर उल्टे नीचे ही गिरते चले गये हैं।

एक साधक अपनी श्रद्धा के बल पर धातु और पत्थर से बनी प्रतिमाओं से चमत्कारी प्रतिक्रिया उत्पन्न कर लेता है, दूसरा अपनी अनास्था के कारण जीवन्त देव मानवों के अति समीप रहने पर भी कोई लाभ नहीं ले पाता। एकलव्य ने मिट्टी से बनी द्रोणाचार्य प्रतिमा से वह अनुदान प्राप्त कर लिया था जो पाण्डव सचमुच के द्रोणाचार्य से भी प्राप्त नहीं कर सके थे। मीरा के 'गिरधर गोपाल' और राम कृष्ण परमहंस की 'काली' में जो चमत्कारी शक्ति थी वह उनके श्रद्धारोपण से ही उत्पन्न हुई थी और उन्हीं के लिए फलप्रद सिद्ध होती रही। उन्हीं प्रतिमाओं से अन्य वैसा लाभ नहीं उठा सकते। यन्त्र-तन्त्रों की सिद्धि में विधि-विधानों की इतनी भूमिका नहीं होती, जितनी साधक के श्रद्धा, विश्वास की। भूतप्रेतों से लेकर देवी-देवताओं तक के जो परिचय सामने आते हैं उनमें व्यक्ति के अपने विश्वास ही फलित हुए पाये जाते हैं। अमुक चिकित्सा से लाभ होना अथवा अमुक चिकित्सक का सफल होना बहुत करके रोगी के विश्वास पर निर्भर रहता है।

विपुल वर्षा होने पर भी पत्थर की चट्टानें एक बूँद पानी भी नहीं सोख पातीं। इसके विपरीत रेगिस्तानी गर्मी में हरे रहने वाले पेड़-पौधे कहीं से भी अपने निर्वाह के लिए आवश्यक नमी उसी उष्ण वातावरण में से उपलब्ध करते रहते हैं। स्वाँति की वर्षा से केवल वे ही सीपें लाभ उठा पाते हैं जिनके मुँह खुले होते हैं। सरकारी छात्र-वृत्ति उन्हीं को मिलती है जो परिश्रमपूर्वक पढ़ते और अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते हैं। बाहरी सहायता उपलब्ध होना न होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि व्यक्ति की निजी पात्रता एवं प्रखरता का होना।

आत्मबोध का तात्पर्य है, अपने में सन्निहित शक्ति एवं सम्भावना से परिचित होना। आत्मिक प्रगति का अर्थ है, आन्तरिक दोष, दुर्गुणों को निरस्त करके सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को समुन्नत बनाने के उपक्रम में निरन्तर निरत रहता। इन सत्प्रयत्नों से मानवी और दैवी दोनों प्रकार की सहायताएँ अनायास ही उपलब्ध होती रहती है।

ब्रह्म-विद्या का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्देश यह है कि अपने आपको जानो, अपने को समझो और अपने को सुधारो। **'आत्मा वारे श्रोतव्य ज्ञातव्य, निदिध्यासितव्य'** की उक्ति में यही उद्बोधन भरा पड़ा है। गीता कहती है- ''अपना उद्धार आप करो'' अपने आपको गिराओ मत। **'उद्धरेत् आत्मनात्मनं-नात्मानं अवसादयेत्'** की सूक्ति में यही ब्रह्म वाक्य गूँजता है। मित्रों को ढूँढ़ने और शत्रुओं को भगाने के लिए अन्यत्र कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है वे अपने ही भीतर डेरा डाले बैठे हैं—**''आत्मैव आत्मन बन्धु आत्मैव रिपुरात्मन''** का गीता कथन अक्षरशः सत्य है। अपने पौरुष पुरुषार्थ से, अपनी विवेकशीलता और दूरदर्शिता से ही प्रगति के द्वार खुलते हैं। अपनी ही अकर्मण्यता, अदूरदर्शिता और अनास्था ही हमें ले डूबती है। अपने उत्थान परिष्कार की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा पतन पराभव की कुंजियाँ अपने ही हाथों में हैं, दोनों में से चाहें जिसका द्वार स्वेच्छापूर्वक खोला जा सकता है। यह तथ्य समझ में आ सके तो प्रतीत होगा कि अपना आपा ही कल्प-वृक्ष है जिसकी जिस कामना से उपासना की जाय, उसी के अनुरूप वरदान मिलते चले जायेंगे। अन्य किसी देवता की उपासना भले ही निष्फल चली जाय पर जीवन देवता की, आत्म-निर्माण साधना निश्चित रूप से अभीष्ट सिद्धि देकर ही रहती है।

चेतना के तीन चरण

मनुष्य शरीर अनेक प्रकार के क्रिया-कलाप करता दीखता है। पर शरीर भी जड़ पदार्थों का बना है। उसमें निजी क्षमता नगण्य है। वह भी तभी तक बनी रहती है जब तक कि उसमें प्राण विद्यमान है। प्राण के विलग होते ही शरीर न केवल नि:चेष्ट हो जाता है वरन् सड़ने भी लगता है। इससे स्पष्ट है कि शरीर का आधार प्राण पर अवलम्बित है। प्राण की शक्ति शरीर के स्वसंचालित क्रिया-कलापों को गतिशील रखती है। रक्ताभिषरण, श्वाँस प्रश्वाँस, चयापचय, निमेष-उन्मेष आदि का क्रम प्राण ही चलाता है। प्राण जीव चेतना का वह भाग है जिसे सचेतन विद्युत की संज्ञा दी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त चेतना के दो और भाग हैं—एक विचार और दूसरा भाव। जब तक शरीर प्राण शक्ति से सिंचित रहता है तब तक वे दोनों अपना काम करते रहते हैं। एक स्थिति ऐसी भी आती है जब शरीर को मूर्छा घेर लेती है। रात को सोते समय शरीर तो जीवित रहता है, पर मस्तिष्क निद्राग्रस्त होने से स्थिति अर्धमृत जैसी हो जाती है। शल्य चिकित्सा औषधियों द्वारा भी ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। इन मूर्च्छित परिस्थितियों को छोड़कर सजग स्थिति में चेतना के महत्त्वपूर्ण पक्ष काम करते रहते हैं, जिन्हें विचार और भाव के नाम से जाना जाता है। चेतना का प्रमुख पक्ष यही है।

भावनाएँ असाधारण स्थिति की परिस्थितियों के आधार पर उत्पन्न हुए उभार हैं। प्रेम, मिलन, विछोह, क्रोध, भय जैसी असाधारण स्थिति सामने आने पर भी मनुष्य भाव-विभोर होता है और दूसरों को संकटग्रस्त देखकर भी दया-करुणा जैसी भावनाएँ उठती और सेवा सहायता के लिए प्रेरित करती हैं। प्रत्यक्ष दृश्य देखने वाली घटना स्थिति में तो संवेदनाएँ उठती ही हैं। ऐसा भी होता है कि उनकी भाव स्मृति तीव्रतापूर्वक उभरने पर भी विह्वलता की स्थिति आ जाती है। ऐसा संवेदनशील भावुक जनों में ही प्राय: बहुलता से होता है। कुछ निष्ठुर प्रकृति के परमहंस प्रकृति के ऐसे भी होते हैं जो भावशून्य मन:स्थिति के होते हैं उन्हें केवल अपनी निजी कठिनाई ही दु:खी करती है। दूसरों के ऊपर क्या बीतती है ? इससे उनका कोई लगाव नहीं होता। भावुकता एक शक्ति है, जिसमें सहृदय व्यक्ति असाधारण वेदना अनुभव करता है। उसके आवेश में कभी-कभी स्वयं उद्विग्न हो उठता है। कभी दूसरों की सहायता के लिए अपना बहुत कुछ निछावर कर देता है। इसी को अध्यात्म संवेदनाओं में भक्ति नाम से जाना जाता है। भक्ति की महत्ता बताने वालों ने यहाँ तक कहा है कि उससे भगवान मिलते हैं। वस्तुत: भावुकता की शक्ति असाधारण है। आदर्शवादियों को महान त्याग-बलिदान कर गुजरने की प्रेरणा इसी से मिलती है। निष्ठुर प्रकृति के स्वार्थी एवं संकीर्ण स्तर के होते हैं उन्हें अपने सिवाय और किसी से लगाव नहीं होता।

भावनाओं का उभार शरीर और मन को भाव विभोर कर देता है। यह संवेदनशीलता चरित्रनिष्ठा की रीढ़ है। जिसे दूसरे का कष्ट अपने कष्ट के समान लगता है। वह परपीड़न वाला कोई काम नहीं कर सकता। **'आत्मवत् सर्व भूतेषु'** की मन:स्थिति जिनकी भी होती है उन्हें सेवा, सहायता, करुणा, दया को संवेदनाएँ सहज उमंग जाती हैं, उन्हें परपीड़ा अपनी जितनी पीडा के समतुल्य लगने लगती है। इस स्तर के लोगों को सन्त कहा गया है। सन्त की व्याखा करते हुए उन्हें नवनीत से भी बढ़कर बताया गया। मक्खन अपने ऊपर ताप का प्रभाव पड़ने से पिघलता है, पर सन्त हृदय व्यक्ति दूसरों का दु:ख भी सहन नहीं कर सकते, वे ऐसे अवसरों पर रुदन करते चुप नहीं बैठ जाते वरन् बढ़-चढ़कर सहायता भी करते हैं। सेवा उनका धर्म बन जाता है। वे अपनी चिन्ता कम और दूसरों की अधिक करते हैं। दूसरों की सहायता करते हुए उन्हें अपने निजी लाभ से बढ़कर प्रसन्नता होती है।

प्राण सजीवता का ही नहीं, यह साहसिकता का भी चिन्ह है। यह सचेतन विद्युत शक्ति है। इसे जीवट, शौर्य, पराक्रम, स्फूर्ति आदि के रूप में भी देखा जाता है। इससे समूचा व्यक्तित्व प्रभावित होता है। प्रतिभा इसी की बहुलता से निखरती है। यह शरीर और मन को कार्य करने योग्य क्षमता प्रदान करती है। सूक्ष्म साधनों से इन्हें शरीर के इर्द-गिर्द विशेषतया चेहरे और हाथों के आस-पास तेजोवलय के रूप में देखा जा सकता है। प्राणवान व्यक्ति दूसरों को अपने प्रभाव से आच्छादित कर लेते हैं। दुर्बल प्राण दूसरे सामर्थ्यवानों के प्रभाव में आसानी से आ जाते हैं। यह शरीर की जड़ता और आत्मा की चेतना का संयुक्त सम्मिश्रण है। इसी के आधार पर जीवन की गाड़ी गतिशील रहती है। उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्बल पड़ जाने से मनुष्य दुर्बल, रुग्ण, निस्तेज, कातर स्तर का हो जाता है। आत्म विश्वास गवाँ बैठता है। परावलम्बी स्वभाव अपना लेता है। इसका दुर्बल शरीर से पलायन होने लगता है। जीर्णता छा जाती है और उसका अभाव हो जाने पर मृत्यु आ धमकती है। प्राण के कारण उमंगें उठती रहती हैं। प्रतिस्पर्धा में उतरने को मन करता है। ऊँचा उठने, आगे बढ़ने की इच्छा शक्ति सजीव हो उठती है। यह प्राण आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, व्रत, संकल्प आदि उपायों से बढ़ाया भी जा सकता है। शरीर की तरह इसकी अभिवृद्धि भी संभव है।

भावना, प्राण प्रतिभा के अतिरिक्त चेतना की तीसरी धारा है—विचारणा। वह आरम्भ में अभिरुचि के क्षेत्र में कल्पना रूप में उभरती है। मन की चंचलता प्रसिद्ध है। मस्तिष्क तंत्र की संरचना ही ऐसी है कि उसमें से निरन्तर तरंगें उठती रहती हैं। इन तरंगों के साथ कोई भूतकालीन स्मृति अथवा भविष्य की सम्भावना का मानसिक चित्र जुड़ जाता है। यदि वह अनायास ही अनिच्छापूर्वक उभरा है तो देर तक न टिकेगा। जल्दी ही समाप्त हो जायगा। पर यदि आकांक्षा, अभिलाषा के आधार पर कल्पना उठी है तो उसके साथ कड़ियाँ जुड़ती जाती हैं और एक कथा कहानी जैसी बन जाती है। मन इसी कल्पना लोक में रमण करता रहता है। यह बच्चों की खिलवाड़ जैसा दृश्य है।

मन के ऊपर अंकुश है—बुद्धि का। बुद्धि यह निरीक्षण-परीक्षण करती रहती है कि कल्पनाओं में से कौन-सी कार्य में आने योग्य है और कौन अव्यावहारिक ? मन की चेतनाओं में से उन्हें कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है ? कौन साधनों के, परिस्थितियों के, योग्यताओं के विपरीत है ? असंबद्ध कल्पनाओं को बुद्धि रोकती टोकती रहती है जिन्हें बुद्धि का समर्थन नहीं मिलता वे कल्पनाएँ धुँधली पड़ती जाती हैं और समाप्त हो जाती हैं। जिन्हें बुद्धि की मान्यता मिलती है जो उत्साहवर्धक प्रतीत होती हैं उनका ताना-बाना बुना जाना आरम्भ हो जाता है। योजनाएँ बनती हैं और सोचा जाता है कि इच्छा पूर्ति के लिए किन-किन विकल्पों को प्रयुक्त किया जा सकता है। बात आगे बढ़ती जाती है और वह समय समीप आ जाता है जब मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए बुद्धि संगत प्रयास चल पड़ते हैं और वह व्यवधानों से टकराता हुआ अभीष्ट निर्धारण तक जा पहुँचने के लिए पग-पग पर कल्पना और बुद्धिमत्ता का मिला-जुला योगदान लेना पड़ता है।

विचारों का एक भाग वह है जो अपनी इच्छापूर्ति के लिए निरत रहता है, पर वह एक मात्र मन है। इससे आगे भी मन तंत्र के कई विभाग हैं। एक ऐसा है, जो सम्पर्क क्षेत्र की दूरी तक विचार करता रहता है। देश की, समाज की, समुदाय की परिस्थितियों के सम्बन्ध में जानकारियाँ प्राप्त करता है। यह कार्य पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, दूरदर्शन, गोष्ठी-कथन आदि द्वारा विदित होता है। साथ ही उसके कारण-निराकरण, औचित्य-समाधान आदि का स्वरूप भी जानने को मिलता है। विश्वकोष जैसी पुस्तकें भी वैसी जानकारियाँ उपलब्ध कराती हैं। स्कूली कक्षाओं में भी विभिन्न विषयों के ज्ञान कराये जाते हैं। पुस्तकालयों से भी वह लाभ मिलता है विचारशील, विद्वान, बहुश्रुत बनने का लाभ इन्हीं आधारों के सहारे मिलता है। हर विषय पर निजी कल्पनाएँ करने से भी उसकी गहराई में पहुँचने का अवसर निजी मेधा बुद्धि के सहारे मिलता है। जिसके पास विचार सम्पदा जितनी अधिक है उसे उसी स्तर का मनीषी माना जाता है।

विचारों में एक शक्ति सामर्थ्य भी है। वह दूसरों को कथन, श्रवण, पठन के माध्यम से जानकारियों का विस्तार तो करती ही है। साथ ही सम्पर्क में आने वालों को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित भी करती है। हर स्तर के व्यक्ति की अपनी-अपनी विशेषताओं से भरी हुई विद्युत चुम्बक शक्ति होती है जो समीपवर्ती लोगों पर अपना प्रभाव डालती है। सत्संग से किसी को विचारों द्वारा अवगत और प्रभावित किया जाता है। किन्तु ऐसा भी होता है कि प्रतिभावानों की प्रभाव शक्ति अनायास ही दूसरों पर अपनी छाप छोड़ती है। जिन्हें जिस प्रकार के लोगों के साथ रहना पड़ता है वे वैसे ही साँचे में ढलने लगते हैं। बुरे लोगों का जहाँ बहुमत या प्रभाव होता है वहाँ भी यही प्रतिक्रिया होती देखी गई है। यह विचारों का ही चमत्कार है, जिनमें जितनी प्रतिभा होती है वे उतने ही अधिक प्रभावशाली होते हैं। यह प्रभाव उत्तम स्तर का भी हो सकता है और निकृष्ट स्तर का भी। सामान्य लोग उस प्रवाह में बहने लगते हैं। किन्तु साथ ही यह भी देखा गया है कि जिनका व्यक्तित्व सामर्थ्यवान है वे दूसरों के प्रभाव को अस्वीकार कर देते हैं। उन्हें कोई समझा नहीं सकता है। उन्हें बदला भी नहीं जा सकता है। आग्रही हठवादी इसी प्रकार के होते हैं। वे अपने को सबसे बड़ा मानते हैं। अहंकार से उनका स्वभाव भरा होता है। ऐसे लोग अपनी मान्यता को सर्वोपरि ठहराते हैं और दूसरों के अभिमत पर विचार करने तक को तैयार नहीं होते। ऐसे लोगों को मूढ़-मति की संज्ञा दी जाती है। ऐसे जिद्दी पढ़े लिखे लोगों में भी हो सकते हैं और बिना पढ़े में भी। जिनके स्वभाव में लोच होता है वे दूसरों के द्वारा दी गई जानकारियों पर विचार करते हैं और उसमें जितना अंश औचित्यपूर्ण लगता है, उतना ग्रहण कर लेते हैं। कुछ अधिक भावुक या कोमल अथवा सहज विश्वासी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकृति के होते हैं। उन्हें कोई भी बहका सकता है। तर्क और संदेह का अभाव होने से वे किसी के भी फुसलाने से उसी ओर लुढ़क जाते हैं। ठग और प्रपंची ऐसे ही लोगों को अपना शिकार बनाते और उल्टे उस्तरे से हजामत बनाते हैं।

विचारों में परिपक्वता काफी चिन्तन, मनन के बाद आती है। इसके लिए पक्ष-विपक्ष के तर्क तथा प्रमाण, उदाहरण ढूँढ़े जाते हैं और उनका तुलनात्मक विवेचन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि कौन-सा पक्ष अधिक वजनदार है। न्यायाधीशों को यही करना पड़ता है। वे वादी और प्रतिवादी के कथनों और प्रस्तुत किये गये प्रमाणों की वास्तविकता, अवास्तविकता का विचार करते हैं और जिस ओर से प्रतिपादन अधिक वजनदार प्रतीत होता है उसी पक्ष में फैसला देते हैं। सामान्य जीवन में भी ऐसी स्थिति बार-बार आती है। जब एक ही प्रसंग पर दो प्रकार के या कई प्रकार के मतभेद होते हैं, विचारक को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व उन सभी तथ्यों की गहराई में उतरना पड़ता है जो सामने प्रस्तुत हैं। उनमें जिसमें जितना विश्वस्त और जितना अविश्वस्त होता है उसी के आधार पर अपना मत बनाया और निर्णय किया जाता है। तर्क का आश्रय लिये बिना प्रमाणों की अपेक्षा किये बिना किसी के भी कथन पर जो भरोसा कर लेते हैं वे अक्सर धोखा खाते हैं।

कभी-कभी कुछ अपवाद ऐसे भी देखे जाते हैं जिनमें मानस तंत्र अविकसित रहने पर मूढ़ता छाई रहती है। इसके विपरीत कुछ लोग आरम्भ से ही तीक्ष्ण बुद्धि होते हैं। इन अपवादों को छोड़कर सामान्य जनों में मध्यम स्तर की विचारशीलता होती है। पर उसका विकास किस सीमा तक हो सका, यह इस बात पर निर्भर है कि बुद्धि का उपयोग किस सीमा तक किया गया। यदि कल्पना ही अपनी उड़ानें उड़ती रही तो उसे बचकानापन कहा जायगा। ऐसे लोग वास्तविकता तक नहीं पहुँच पाते और बेपर की उड़ानें उड़ते रहते हैं। यही बात अतिवादियों के सम्बन्ध में भी है। अतिभावुक या अति आदर्शवादी भी व्यावहारिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते और पग-पग पर चूक करते रहते हैं। व्यावहारिकता ही विचारशीलता की कसौटी है। किसी कथन या उल्लेख को ही सब कुछ नहीं मान बैठना चाहिए वरन् देखना चाहिए कि न्याय औचित्य कहाँ है ? परिस्थितियों के साथ किस प्रतिपादन का ताल-मेल खाता है। इस प्रकार विचार करते रहने पर समयानुसार हर व्यक्ति बुद्धिमान, विचारवान बन सकता है।

चेतना को अन्तर्मुखी बनायें

व्यक्तित्व गठन का तात्पर्य है, अपने समूचे जीवन क्रम को सँवारना। यह तभी सम्भव है जब जिन्दगी के प्रत्येक हिस्से को ध्यान से देखा जाय। कहाँ पर कौन कमी है। इस पर गौर किया जाय। तभी इन कमियों को दूर कर पाना सम्भव बन पड़ेगा।

सामान्यतः हमें अपने दोष दिखाई नहीं पड़ते। हमें अपने चिन्तन के सामने मार्क्स, गाँधी फीके लगते हैं। स्वयं की चरित्र निष्ठा विवेकानन्द, दयानन्द से बढ़कर आँकी जाती है। व्यावहारिक क्रिया-कलापों के सामने राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बौने लगते हैं। अपने में कहीं कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता। भूले-भटके कोई-कोई कमियाँ दिखाने का प्रयास भी करे तो उसे ईर्षालु या शत्रु की संज्ञा प्रदान की जाती है। परिणाम यह होता है कि हमारा समूचा व्यक्तित्व भौंड़ा बनकर रह जाता है।

अपने दोष देखने की जगह दूसरों की कमियाँ देखने में रस मिलता है। अच्छी से अच्छी चीज में कोई न कोई कमी खटकती है। यहाँ तक कि परमात्मा में दोष निकाल लिया जाता है। अपने शक्ति व समय की खपत इसी में होती रहती है।

परछिद्रान्वेषण की प्रवृति संसार में कहीं सुन्दरता नहीं देखने देती। महापुरुषों, समाज सेवियों, लोकनायकों आदि के दर्शन कराकर उनकी महानता की चर्चा करने पर चित्त खिन्न हो जाता है। यही नहीं मौका पाकर उनके दोष गिनाने शुरू कर देते हैं। उन्हें भी अहंकारी, स्वार्थी आदि अवगुणों से ग्रसित कहकर दोषी सिद्ध कर दिया जाता है।

सृष्टि में गुण हैं और दोष भी। हर स्थान, हर पदार्थ हर व्यक्ति में किसी न किसी मात्रा में ये दोनों रहते हैं। सही कहा जाय तो दोनों की ही अपने-अपने स्थान पर उपयोगिता भी है। जो एक स्थान पर गुण है वही दूसरे स्थान पर दोष हो सकता है। संसार में दुग्ध, फल, मेवा, जैसी पोषक चीजें हैं तो जहर जैसी मारक भी। प्रत्यक्ष में पोषक वस्तुएँ गुणवान लगती हैं जहर जैसी चीजों में दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। किन्तु वास्तविकता इससे अलग है। अधिक खा लेने पर पोषक मारक में बदल जाती है और संखिया आदि जहरीली चीजों को औषधि के रूप में प्रयुक्त कर किसी की जान भी बचाई जा सकती है। पर यह काम तभी सम्भव है जब उपयोग करने वाला उनको विवेक सम्मत ढंग से प्रयोग में लाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार में शायद ही ऐसा कोई प्रमाण मिले कि किसी व्यक्ति ने दूषित दृष्टिकोण और पर-निन्दा की वृत्ति को पाले रखकर जीवन में कोई सफलता पाई हो। विश्व का इतिहास इस बात की अनेक गवाहियों से भरा पड़ा है कि घोर निन्दा, आलोचना और विरोध होने पर भी जिन सत्पुरुषों ने किसी की निन्दा नहीं की और गुणग्राहिका वृत्ति में विश्वास बनाये रखा, उन्होंने अपने साथ दूसरों का भी कल्याण किया।

आवश्यकता बाहर के दोषों को न देखकर अपने में निहित कमियों-बुराइयों को निहारने की है। मनोविज्ञान ने इस प्रक्रिया को आत्म-निरीक्षण का नाम दिया है। दर्शन की भाषा में यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो केवल मानव को मिली है मनुष्य आत्म चेतन है, जबकि पशु सिर्फ चेतन। इसका मतलब है कि आदमी के पास वह सामर्थ्य है, जिसके द्वारा अपने को जान सकता है। स्वयं अपने दोष-दुर्गुणों को जानकर उन्हें दूर कर सकता है। जबकि पशु इन्द्रिय संवेदनों द्वारा बाहरी चीजों के बारे में तो जान सकते हैं पर स्वयं को जानना उनके बस की बात नहीं है।

इस विशिष्ट सामर्थ्य की गरिमा तभी है, जब उसका उपयोग कर स्वयं को निहारा जाय। दोष-दुर्गुणों, विकृतियों को देख समझकर उन्हें उखाड़ फेंका जाय।

मनोवैज्ञानिक जे० एस० लैशले ने अपने शोध निबन्ध ''द विहैविअरिस्टिक इण्टरप्रिटेशन ऑफ कांशसनेस'' में इस आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया को दो चरणों में समझा है। पहला अपने व्यावहारिक क्रियाकलापों का अध्ययन। इसको पहले नम्बर पर रखने का कारण यह है कि हमारी दृष्टि स्वाभाविक बहिर्मुखी है। शुरू-शुरू में यह सम्भव नहीं कि अन्दर गोता लगाकर कमियाँ टटोली जायँ। यदि नित्यप्रति व्यावहारिक गतिविधियों का बारीकी से अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि स्वयं द्वारा किये गये क्रियाकलापों में लगभग ३०-४० प्रतिशत ऐसे बचकाने हैं। जो स्वयं की गरिमा के अनुकूल नहीं हैं।

इनको सम्हालने के लिए स्वयं के चिन्तन को निहारना होगा। यह प्रक्रिया का दूसरा चरण है। कठिन होने के बावजूद इसकी जरूरत है। बिना इसके काम नहीं चलता। व्यवहार के बीज चिन्तन में मौजूद रहते हैं। अपने सोच-विचार के तौर-तरीके पर ध्यान देना होगा। जैसे-जैसे दृष्टि अन्तर्मुखी होगी, पता चलेगा कि हमारा बहुत सारा समय निरुपयोगी चीजों को सोचने में चला जाता है। कभी किसी की बुराई सोचते हैं। कभी बिना मतलब की कल्पनाएँ करते हैं। इनमें कोई तारतम्य नहीं। मानसिक उर्जा की यों ही बरबादी होती रहती है। दूसरों की बुराइयाँ उन्हें परेशान करने के तौर-तरीके सोचने की जगह चिन्तन को सुसम्बद्ध करना होगा।

मन:शास्त्री आर० अर्नहेम का ''द क्रिएटिव प्रॉसेस'' में मानना है कि आत्मनिरीक्षण का क्रम तब तक अधूरा है, जब तक इसके साथ आत्मसुधार की विधि न जुड़ी हो। इसका मतलब है ईर्ष्या, डाह, द्वेष आदि तमाम दोषों को हटाकर इसमें सत्प्रवृत्तियों की पूरी फसल उगाना। यह काम ठीक किसान जैसा है। वह खेत में बुवाई के पहले से खरपतवार निकालना शुरू करता है और फसल उग जाने के बाद भी अपना यह निराई का कार्यक्रम नहीं छोड़ता। प्रक्रिया के इस पहलू में लगभग ऐसा ही करना होता है। व्यावहारिक जीवनक्रम में दया, करुणा, सेवा, सहृदयता का किस स्तर पर कैसे समावेश हो। इसके लिए चिन्तन के स्तर पर पूरी योजना तैयार करनी होगी। प्रयत्नपूर्वक इन्हें व्यवहार में उतारने के प्रयास करने होंगे।

जैसे-जैसे इनका अभ्यास क्रम शुरू होगा अपने दोष साफ-साफ दिखाई पड़ने लगेंगे। स्थिति बिल्कुल बदल जायेगी। जहाँ पहले दूसरों के दोष दिखाई देते थे और अपने गुण। वहाँ अब दूसरों में गुण दिखाई देने लगेंगे और अपने में दोष।

मन चतुर किसान की तरह इसी में व्यस्त रहेगा कि अपने अवगुण निकालकर कैसे बाहर करें और दूसरों में जो गुण झलक रहे हैं, उन्हें अपने में किस तरह आरोपित किया जाय। महर्षि दत्तात्रेय ने यही क्रम अपनाया था। उन्होंने जब अपनी दोष दृष्टि त्यागकर श्रेष्ठता ढूँढ़कर अपने में रोपित करने की वृत्ति जगाई तो तब उन्हें चील, कुत्ते, मकडी, मछली, भृंग जैसे तुच्छ प्राणी भी गुणों के भण्डार दीखने लगे। यही नहीं उन्होंने इन्हें गुरु के स्थान पर सुशोभित किया। उनसे शिक्षा ग्रहण करते गये। हम चाहें तो चोरों से भी सावधानी, सतर्कता आदि अनेक गुणों को सीख सकते हैं। अपने दोष और दूसरों के गुण तलाशने को यदि हम ठीक-ठीक अपना लें तो न केवल अपना व्यक्तित्व सँवरेगा बल्कि सारी दुनिया हमारे लिए उपकार, सद्भावना का उपहार लिये खड़ी दिखाई देगी। उपयुक्त यही है कि अपनी सारी चेतना को आत्मसुधार की प्रक्रिया में केन्द्रित किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना का विकास संवेदना के स्तर पर निर्भर

चेतना का क्रमिक विकास हलचल, इच्छा एवं भावना के रूप में होता है। जीवन की स्वल्प मात्रा तो जड़ कहे जाने वाले पदार्थों में भी होती है। प्रकृति के दबाव से कुछ न कुछ हलचल तो वे भी करते रहते हैं। उत्पादन, अभिवर्धन और विघटन की दिशा में उनके क्रिया-कलाप भी चलते रहते हैं। इतने पर भी उन्हें जड़ तथा पिछड़ी स्थिति का कहा-समझा जाता है। यह जीव चेतना की प्रारम्भिक अथवा अनगढ़ स्थिति है।

इससे आगे इच्छा शक्ति उभरती है। वह अधिक विकसित होने अधिक सुविधाजनक स्थिति में पहुँचने की ललक से प्रेरित होती है। इसी आधार पर जीवधारियों का क्रमिक विकास भी बन पड़ा है। कृमि-कीटकों की गई-गुजरी स्थिति से आगे बढ़ते-बढ़ते जीव पशु स्तर का बन पड़ा है और डार्विन के कथनानुसार मनुष्य बन्दर का ही विकसित रूप है। इसी उपक्रम को मनुष्य की स्थिति के साथ जोड़ा जाय तो उसे भी नर-कीटक-नर-पशु कह सकते हैं जिसे भूख, वासना, ऋतु प्रभाव जैसे दबावों से प्रेरित होने पर ही कुछ अतिरिक्त करना और अतिरिक्त सोचना पड़ता है। आकांक्षाओं की पूर्ति ही उसे कुछ सोचने करने के लिए बाधित करती है, किन्तु सीमित उतनी ही परिधि में रहती है जिसमें कि संकीर्ण स्वार्थपरता का साधन जुटता रहे।

अनगढ़ों को शैशव स्तर का कहा जा सकता है जो अधिकांश समय सोते, उनींदे पड़े रहने में ही बिताते हैं। आलसी-प्रमादी प्रायः इसी स्थिति में रहते हैं। चिन्तन का विकास न होने के कारण वे मात्र उसका अनुकरण भर कर पाते हैं, जो सामने दृष्टिगोचर होती है। उचित-अनुचित का भेद और मर्यादा-वर्जना का अन्तर भी वे नहीं कर पाते, इसलिए उनके सामने प्रचलन ही प्रमुख होता है। विवेक की अविकसित स्थिति में उन्हें चतुर लोग आसानी से बहकाने, फुसलाने और दबाने-दबोचने में भी सफल होते रहते हैं। वे अपने को नियति के बन्धनों से जकड़े हुए ही मानते हैं। यथास्थिति बनाये रहने में ही उन्हें संतोष करना पड़ता है। अन्धी भेडें एक के पीछें एक चलती ही जाती हैं। भले ही आगे चलकर उन्हें किसी खाई-खन्दक में ही क्यों न गिरना पड़े।

बचपन के बाद किशोरवस्था आती है। बच्चे अबोध रहते और शरीरगत आवश्यकताओं के लिए ही हाथ-पैर पीटते हैं। किशोरावस्था की स्थिति इससे भिन्न है। उसमें जोश तो बहुत रहता है पर होश की कमी ही पाई जाती है। इस स्तर की मानसिकता वाले व्यक्ति महत्त्वाकांक्षाएँ तो सँजोये रहते हैं पर यह नहीं समझ पाते कि उनकी पूर्ति का सही मार्ग क्या हो सकता है ? आवेग कई बार उन्हें भटका भी देता है, कुमार्ग तक अपनाने तक के लिए भड़का देता है। यही कारण है कि बच्चों के पालन-पोषण की अपेक्षा किशोरों को नियंत्रित करना और सुसंस्कृत बनाना काफी कठिन पड़ता है।

इसके आगे की स्थिति तरुणाई है, जिसमें प्रौढ़ता-परिपक्वता का समावेश होता चलता है साथ ही समझदारी का इतना अभिवर्धन भी होता है कि भले-बुरे का अन्तर होता रह सके। अनुभव के आधार पर यह अनुमान लग सके कि किये जा रहे कृत्यों का भावी परिणाम क्या हो सकता है। उसी आधार पर वे अपना नियमन भी करते हैं और ऐसे कदम भी उठाते हैं जो आरंभ में भले ही कष्टसाध्य लगें, पर भविष्य में सुखद-संभावनाएँ विनिर्मित कर सकें। किसान, विद्यार्थी, व्यवसायी, कलाकार जैसे समुन्नत बनने वाले लोग इसी रीति-नीति को अपनाते हैं। वे विश्वास करते हैं कि बोने-सींचने के उपरान्त ही वैभव काटा-बटोरा जा सकता है।

नासमझी से लेकर समझदार बनने तक की प्रगति में प्रायः यही मंजिलें पार करनी पड़ती हैं। शिशु स्तर के वे हैं, जिन्हें शरीर पर पड़ने वाली प्रकृति एवं परिस्थितियों के दबाव ही कुछ करने के लिए उकसाते हैं, अन्यथा उन्हें अपनी मर्जी से किसी प्रकार समय गुजारने के अतिरिक्त और कुछ सोचते-करते बन ही नहीं पड़ता। इसे आदिम परम्परा भी कह सकते हैं, जिसे इस सभ्यताभिमानी युग में भी असंख्यों पर छाया हुआ देखा जा सकता है।

आज का किशोर समुदाय वह है जिसे सुख-सुविधाओं को हस्तगत करने की ललक असाधारण रूप से आकुल-व्याकुल करती है। वे यह तो सोच नहीं पाते कि उसके लिए योग्यता, क्षमता, पात्रता और पुरुषार्थ-परायणता अपनाते हुए क्रमिक विकास का क्रम धैर्यपूर्वक अपनाना चाहिए। उद्यान लगाकर माली की तरह धैर्य रखते हुए समयानुसार सुस्थिर प्रगति का प्रतिफल उपलब्ध करना चाहिए। किन्तु बहुधा वे दूरदर्शिता और प्रगति परम्परा के अनुशासन को तोड़-फोड़ करके ऊँची छलाँगे लगाते हैं। तात्कालिक लाभ के लिए इतने अधीर हो जाते हैं कि उन्हें अनाचार अपनाने में भी कोई हिचक-झिझक नहीं लगती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपक्वता का लक्षण है-भाव संवेदनाओं का उभार। आत्म-संयम और दूसरों को अनुदान प्रस्तुत करने का संतजनों जैसा अभीष्ट उत्साह। पेड़ पर फल जब पक जाते हैं तो वे नीचे अनायास ही टपक पड़ते हैं ताकि बालक और दुर्बल भी उनका लाभ सरलतापूर्वक उठा सकें। बादलों के पास जब प्रचुर जल सम्पदा जुट जाती है तो वे उसकी सार्थकता इसी में समझते हैं कि बरस कर प्यास बुझाने और हरीतिमा उगाने की रीति-नीति अपनाई जाय। मोर अपने लम्बे पंखों को समय-समय पर झाड़ते रहते हैं ताकि उनसे शोभा-सज्जा के कई प्रयोजन पूरे किये जा सकें। मनुष्य समुदाय में भी साधु-ब्राह्मण, वानप्रस्थ, परिव्राजक अपनी क्षमता का अधिकांश भाग लोकमंगल के लिए समर्पित करने में ही अपने को कृत कृत्य हुआ अनुभव करते हैं। उनके कार्यक्रमों में बाल विकास और किशोरों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया की प्रखरता रहती है। इसी के लिए वे गुरुकुल चलाने और तीर्थ यात्रा जैसे धर्म प्रचार के परिभ्रमण के लिए निकलते हैं।

विकासक्रम, हलचलें, समझदारी की मंजिलें पार करते हुए भाव संवेदना के उच्च शिखर पर पहुँचाता है। यही चेतना के परिष्कार का स्वाभाविक क्रम और सराहनीय सदुपयोग है। संवेदनशीलों को ही महामानव कहते हैं क्योंकि विकसित करुणा का उपयोग गिरों को उठाने और उठों को शालीनता अपनाने के लिए बाधित करने पर ही संभव होता है।

कहाँ उगे योग का वट वृक्ष ?

जिन्दगी अनुभूतियों का पिटारा है। कड़वे-कसैले, मुदु-सुस्वादु सभी तरह की अनुभूतियों से भरे क्षण हरेक की जिन्दगी में आते हैं अथवा यों कहें कि जीवन इन मनोरम और डरावनी पगडंडियों से गुजरता है या उसे गुजरने के लिए मजबूर होना पड़ता है। एक की हमें अभिलाषा रहती है, दूसरे से हम कतराना चाहते हैं। एक प्रिय लगता है दूसरा अप्रिय। एक को बिना देखें हम चुनना चाहते हैं, दूसरे को देखकर भी आँखें मींच ली जाती हैं। सुख की राहों पर चलते हुए सोचते हैं जीवन ठहर जाय। विषाद के क्षण भी युगों का भारी-भरकम बोझ लगते हैं। लाख तिरस्कार-अनपेक्षा, उपेक्षा के बावजूद ये क्षण हम में से प्रत्येक की नियति बनकर आ ही जाते हैं। क्यों ? क्या इनकी भी कुछ उपयोगिता है ? या सृष्टि के कुशल सृजेता से यह अकुशल भूल रह गई।

सवाल बड़ा अहम् है और कौतुकपूर्ण भी। विषाद के क्षणों की उपयोगिता सुनने से पहले जी चाहेगा, कान बन्द कर लें, पाँव उधर बढ़ने से स्वत: इन्कार कर बैठेंगे। कहीं यह मानसिकता हमारी अपनी भ्रान्ति तो नहीं ! अन्यथा जिसके द्वारा ऐसी अनुपमेय सृष्टि गढ़ी गई, जहाँ प्रत्येक वस्तु-घटना अपने उचित स्थान पर ठीक और उपयोगी है, वहाँ विषाद के बारे में बिना सोचे-समझे निर्णय ले डालना ठीक नहीं मालूम पड़ता है।

प्रीतिकर क्षणों में हमारा अपना जीवक्रम बँधे-बँधाए ढर्रे में चलता रहता है। बहुत कुछ अर्थों में हम बेहोशी जैसा समय गुजारते हैं। क्रियाशीलता और बेहोशी में विरोधाभास लगता जरूर है पर बेहोश आदमी भी क्रियाशील रहता है। दिल की धड़कन, फेफड़ों की साँय-साँय, रगों में खून की भाग-दौड़ यह क्रियाशीलता नहीं तो और क्या है ? क्रिया के घेरे के उठने-बैठने, खाने-पीने, सोने तक तो सीमित नहीं किया जा सकता। मनोवैज्ञानिकों ने अपनी नई-नई प्रायोगिक छान-बीन के द्वारा यह सूचित किया है कि इन्सान की क्रियाएँ दो तरह की मानसिकता की उपज हैं। एक जिसे अचेतन मन कहते हैं, अर्थात् संस्कार, आदतों, यादों, पूर्वाभ्यासों के जखीरे के संकेतों द्वारा। दूसरा सचेतन मन, जो सोचने-समझने, विवेकपूर्ण निर्णय लेकर काम करने में भलाई समझता है।

पहले के द्वारा संचालित क्रियाओं में हमें सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। उठने-बैठने, खाने-सोने में भला सोचने की क्या जरूरत, आदत पड़ गई है, सब निभ जाता है। दिल-गुर्दे, फेफड़े भी तो इस तरह आदत के मुताबिक जिम्मेदारी निभाते रहते हैं। सोच-विचार का क्या काम ? जहाँ सोच-विचार न हो, उचित-अनुचित का विवेक न रह जाय, उस दशा का नाम बेहोशी ही तो है। बेहोश आदमी कैसे बैठा है, पड़ा है, अर्धनग्न अथवा निर्वसन, उसे इसकी कोई चिन्ता नहीं। आखिर वह बेहोश जो ठहरा।

मनोवेत्ता एच० जी० अर्नहीम ने किताब लिखी है "कांशस लिविंग"। इस पुस्तक में उसने लम्बे-चौड़े सर्वेक्षण के बाद सांख्यिकीय आकलन प्रस्तुत किए हैं। उसके अनुसार बहुसंख्यक समुदाय ऐसा है जो सचेतन मन कम से कम इस्तेमाल करता है। जिन में जीवन के प्रति स्वयं की जागरूकता है उनकी संख्या गिनी-चुनी है। अपनी आदतों के मुताबिक एक ढर्रे जैसे जीवन-जीने वाले इस बहुसंख्यक समुदाय को नाम दिया है—बेहोश दुनिया। जब कभी यह बेहोशी अपनी सीमा को तोड़ती हुई ज्यादा गहरी होने लगती है तब आते हैं, विषाद के क्षण। इनका आगमन हमारी चेतना को झकझोरता है। हमारे आन्तरिक पौरुष को चैतन्य करने की कोशिश करता है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोशिश से हम कितना फायदा उठाते हैं। यह हमारी अपनी स्थिति पर निर्भर है। घर-परिवार में मित्रों के साथ बैठकर आमोद मनाया जा रहा हो तो अपना तक ध्यान नहीं रहता। सब कुछ अनजाने में यन्त्र की तरह चलता रहता है। किन्तु वहीं यदि हिंस्र पशुओं से भरे जंगल से गुजरना पड़े तो अनजाने भय से मन संतप्त रहता है। यह विषाद-पूर्ण संतप्तता निरन्तर चौकन्ना बनाए रखती है। सब ओर जाँच-परखकर एक-एक कदम सोच समझकर रखे जाते हैं।

विषाद की स्थिति आरम्भिक विचारशीलता की उपज है। जहाँ बिल्कुल विचार न हो अथवा सँवरे हुए परिपक्व विचार हों, वहाँ विषाद नहीं होगा। पशु-विषाद ग्रस्त नहीं होता क्योंकि वहाँ विचार नहीं है। मनुष्य राह है, पशु और देवता के बीच की। यहाँ विचार हैं, विषाद हैं और विषाद को पार करने की तकनीकें भी। पश्चिम में एक विचारक हुआ है जे बर्टलेट। उसने एक पुस्तक लिखी है। ''डायमेंशन ऑफ मैन''। बर्टलेट अपने इस चिन्तन कोश में कहता है—मनुष्य सेतु है, पशु और देवता के बीच का। इस सेतु को पार करने का शुल्क है विषाद। इससे जूझकर इससे उबरा जा सकता है। पलायन करने वाले फिर पशुता के कुएँ में जा गिरेंगे। आज का आदमी विषादग्रस्तता से उबरने की तकनीक भुलाकर पशुता की ओर मुड़ चला है। वह नशे का सहारा लेकर, कामुकता में डूबकर पशु की तरफ जाने को आतुर है। पशु की गहरी जड़ता में उसे विषाद की कोई अनुभूति नहीं। विषाद और पीड़ा को प्रायः एक समझने की भूल की जाती है। किन्तु इन दोनों में उतना ही अन्तर है जितना शरीर और मन में। पीड़ा पशु भी अनुभव करते हैं। पर विषाद का अनुभव उन्हीं को होता है जिनका मन सक्रिय और सचेतन है। जिनमें परिस्थितियों का विश्लेषण करने की क्षमता है। पीड़ा इसका कारण हो सकती है, पर इसके अलावा ऐसे अनेकों कारण हैं जब हमें किसी तरह के शारीरिक कष्ट के बिना शोक-विह्वल होना पड़े। संवेदनाजन्य विचारशीलता की शुरूआत इस अनुभूति को उपजाती है।

मानव मन के जानकारों ने इस स्थिति का विवेचन किया है। मनोवैज्ञानिक आर० हाइमन ने ''क्रिएटिविटी एण्ड प्रिपेयर्ड माइन्ड'' में बताया है, यद्यपि प्रारम्भिक विचारशील मानसिकता विषादग्रस्त होगी किन्तु विचारों को उद्वेलित करने वाली परिस्थितियों में अनश्चियात्मकता तथा स्वयं के ऊपर अविश्वास को वे प्रधान कारण मानते हैं। जिस किसी परिस्थिति का सामना होने पर ये दो कारण सामने आते हैं, इस मनोदशा का बोझ उठाना पड़ता है।

समाज के वर्तमान स्वरूप को परखने पर बहुसंख्यक व्यक्तियों की मनोदशा इस चहारदीवारी में कैद देखी जा सकती है यहाँ तक कि चिन्तकों में अस्तित्ववादियों का पूरा कुनबा ही विषादग्रस्त है। सार्त्र अनामुनो-जेस्पर, हाइडेगर पश्चिम के जो भी अस्तित्ववादी विचारक हैं इसी मनःस्थति में हैं। यहाँ सवाल उपजता है कि लगातार ये विषाद के अवसर क्यों ? यदि यह हमारी चेतना को झकझोरता है, उसकी बेहोशी तोड़कर सोचने-समझने के लिए मजबूर करता है, तो हमारी यात्रा यहाँ से चलकर एक नव जीवन की शुरूआत तक होनी चाहिए, घटित होनी चाहिए—एक आत्म क्रान्ति। यदि यह आत्मक्रान्ति घटित होते नहीं दीख रही, तब हमारी विचार प्रणाली में कहीं-कहीं जरूर भारी भरकम भूल है। अवश्य कहीं-कहीं हमारा विचारतन्त्र दोष ग्रस्त है।

यूनानी कथाकारों ने अपनी कथाओं में इस दोषग्रस्त को स्पष्ट किया है। ऐसी ही एक कथा पर कामू ने एक ग्रन्थ लिखा है ''द मिथ ऑफ सिसिफस''। सिसिफस को सजा दी है, देवताओं ने कि वह पत्थर को पहाड़ तक खींच ले जाए और सजा का दूसरा हिस्सा यह है कि जैसे ही वह शिखर पर पहुँचेगा, वैसे ही पत्थर उसके हाथ से लुढ़क जाएगा। फिर से वह नीचे जाए और पत्थर खींचे और चोटी तक जाए फिर यही होगा, फिर-फिर यही होता रहेगा। कथा का उल्लेख करते हुए कामू कहता है। हम सिसिफस हैं, जो अपने विचारों के दोष से विषादग्रस्त हैं। कहानी अलग-अलग हो सकती हैं। पहाड़ अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन सिसिफस हम सब हैं, जो मुनष्यता के सेतु को पार कर देवत्व की ओर नहीं बढ़ रहे। अनेकानेक परिस्थितियों की छान-बीन करने वाले हम सब उनका स्वयं की मनःस्थिति के सापेक्ष विश्लेषण करने में असमर्थ रहते हैं। कामू के अनुसार परिवर्तनशील परिस्थितियों का निर्माण इसीलिए हुआ कि हमारी मनःस्थिति का प्रत्येक पहलू-तराश कर, खराद कर चमकदार बनाया जा सके।

पर दोषपूर्ण विचार प्रणाली ऐसा करने कहाँ देती है ? यही कारण है विषाद की उपयोगिता हमारे अपने जीवन में सिद्ध नहीं हो पाती। अनेकों अवसर आ चुकने के बावजूद आज भी हमें पहले की दशा में, पहले की तरह पछताने, हाथ मलने, सिर धुनने के अलावा और क्या मिला है ? हमारी विचार प्रणाली का प्रधान दोष यह है कि हम प्रत्येक अनुभूति का कारण बाहर तलाशते हैं। इस ढूँढ़-खोज के बाद उसमें फेर-बदल करने की कोशिश करते हैं। वह प्रक्रिया पूरी तरह गलत तो नहीं पर त्रुटिपूर्ण जरूर है। अनुभूति सिर्फ बाह्य दशा पर निर्भर नहीं होती। यह कैसी और कितनी क्यों न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो ? पदार्थ का अस्तित्व होते हुए भी इन्द्रिय संवेदना के बिना उसका अनुभव नहीं हो सकता और मन के बिना अनुभव पर विचार कर सकना सम्भव नहीं। मन की वकीली जिरह का तब तक कोई समाधान नहीं जब तक बुद्धि कुशल न्यायाधीश की तरह निर्णय न करे। यानि कि बात गहरी है पदार्थ तक सीमित नहीं और भी अनेकों चीजें हैं जो छान-बीन के योग्य हैं।

यह छान-बीन यदि की जा सके तो आश्चर्यजनक तथ्य हाथ लगेंगे। तब पता चल सकेगा दोषी बेचारे पदार्थ, परिस्थिति नहीं हम स्वयं हैं। इनमें यदि कहीं कोई दोष है, भी तो बहुत मामूली क्योंकि ये तो लम्बी शृंखला की एक कड़ी भर हैं। एक सुदीर्घ प्रक्रिया के घटक मात्र हैं और सर्वविदित तथ्य है कि मात्र एक घटक से प्रक्रिया की समग्र छान-बीन नहीं होती है। जहाँ इस छान-बीन की समग्रता हमारे जीवन में शुरू होती है, घटित होने लगती है एक आत्मक्रान्ति। विषाद के क्षण-सीखने के अवसर बनने लगते हैं।

गीताकार के अनुसार अर्जुन की जीवनव्यापी क्रान्ति की शुरूआत ऐसे ही अलभ्य अवसर से हुई। इसी कारण प्रथम अध्याय का नामकरण ही विषादयोग कर दिया। प्रकारान्तर से अन्य योग इसी से निकले। विषाद गीता की ज्ञान गंगा का गोमुख सिद्ध हुआ। स्थिति पर मनन करने से पता चलता है कि अर्जुन को कोई शरीर कष्ट न था। कष्ट था मानसिक कारण से बनी सामने आयी परिस्थिति। उसने भी पहले बाह्य परिस्थिति का विवेचन करके निर्णय लिया भाग चलो। पलायन वाद का जामा सिर्फ इसलिए ओढ़ा गया क्योंकि विचारप्रणाली दोषपूर्ण थी। भगवान गुरु ने इसे सुधारा ''आत्मनं विद्धि'' उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत'' अर्थात् विचार न कर पाने के दोष स्वयं की सत्ता को निरन्तर अवसाद में मत डालो। तथ्य समझ में आने पर घटित हुई एक आत्मक्रान्ति। जिसके हाथ गांडीव का बोझ नहीं सँभाल पर रहे थे। जो खड़े होने में असमर्थ हो रहा था। उसी की वीरतापूर्ण हुँकार ने युगक्रान्ति कर डाली। धरती पर स्वर्गिकता मुसकराने लगी।

इस आत्मक्रान्ति के अनेक अवसर हमने भी पाए हैं, पा रहे हैं, पाएँगे। यदि इन महत्त्वपूर्ण अवसरों को पहचानना सीख जाएँ। स्वयं के मन को, दोषों को समझ सकें, इनका निवारण कर सकें। मन:स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले का सूत्र धारण कर पाएँ तो हमारे जीवन में भी विषाद योग हो जाएगा। विषाद से संतप्त मनोभूमि से उगा योग का यह वट वृक्ष स्वयं के साथ अनेकों को अपनी शीतलता से त्राण दिलाएगा। अनुभूतियों का पिटारा बनी जिन्दगी में यह एक ऐसी चिरस्थाई अनुभूति डाल जाएगा, जिसको पाकर न केवल जीवन मुसकरायेगा बल्कि पार्थ की तरह भगवान के यन्त्र बनकर अनेकों को खोई मुसकान दे सकेंगे।

व्यक्तित्व परिष्कार का मूलभूत आधार

शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से संयमित एवं सन्तुलित व्यक्तित्व ही सुखी एवम् सफल जीवन का आधार बनता है। कार्ल गुस्तेव, जुंग आदि आधुनिक मनोवैज्ञानिक इसी को ''मैच्योर पर्सनालिटी'' कहते हैं। इसको परिभाषित करते हुए इन मन:शास्त्रियों का मानना है कि चिन्तन की दृष्टि से प्रौढ़ और स्वस्थ व्यक्तित्व उसी को माना जाना चाहिए जो समस्त परिस्थितियों में शान्त होकर कार्य करे। इस तरह ऐसा व्यक्ति भली प्रकार समंजित होता है और उसमें भावात्मक तथा सामाजिक परिपक्वता होती है।

व्यक्तित्व का गठन विचारों पर निर्भर है। चिन्तन मन को ही नहीं शरीर को भी प्रभावित करता है। मनोकायिक गड़बड़ियाँ चिन्तन की गिरावट का ही परिणाम हैं। इस बात को प्राय: सभी मनोवैज्ञानिक एकमत से स्वीकार करते हैं। चिन्तन की उत्कृष्टता को अपनाने तथा उसे व्यावहारिक जगत में उतारने से ही भावात्मक तथा सामाजिक समंजन प्राप्त हो सकना सम्भव है।

इस प्रकार के समंजन की सरल किन्तु सक्षम प्रक्रिया बता पाने में आधुनिक मन:शास्त्री असमर्थ पाये जाते हैं। इस विषय पर वे आपसी खींचतान के अतिरिक्त कुछ उपादेय दे पाने में अक्षम ही दिखाई देते हैं। मनोविज्ञान की जाह्नवी का गोमुख सदृश उद्गम स्थल उपनिषद् है। इनमें विशेषतया श्वेताश्वर उपनिषद् में ऋषियों ने इस प्रकार के भावात्मक एवम् सामाजिक समंजन स्थापित करने राग-द्वेष आदि विरोधी भावों से ऊपर उठने हेतु एक पूर्णतया सक्षम सशक्त प्रक्रिया उदधृत की है जिसे 'उपासना' कहते हैं।

नि:सन्देह उपासना श्रेष्ठ चिन्तन एवं उत्कृष्ट व्यक्तित्व के निर्माण का सशक्त माध्यम है। मन की बनावट कुछ ऐसी है, वह चिन्तन के लिए आधार ढूँढ़ता है। जैसा माध्यम होगा उसी स्तर का चिन्तन चल पड़ेगा। तदनुरूप क्रिया-कलाप होंगे। निम्न स्तरीय चिन्तन वाले व्यक्ति के क्रिया-कलाप भी घटिया होना स्वाभाविक है। ऐसा व्यक्ति अपने जैसे दुराचारी-अनाचारी व्यक्ति विनिर्मित करने में ही सहायक सिद्ध होगा, जबकि उच्चस्तरीय चिन्तन करने वाले सन्त-मनीषी महात्माओं के चिन्तन के अनुरूप उनके क्रिया-कलाप भी उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। तदनुरूप उनके सान्निध्य में रहने वाले व्यक्तियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व भी उसी साँचे में ढलकर सुघड़ स्वरूप प्राप्त करता है।

वर्तमान समय में श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्तियों का अभाव है। बहुलता हेय, गए-गुजरों की है। इनसे सामाजिक समंजन की उपेक्षा करना एक विडम्बना है। इन परिस्थितियों में समस्या यह खड़ी होती है कि मानवी व्यक्तित्व को श्रेष्ठ कैसे बनाया जाय ? विचार करने पर एक ही रास्ता दिखाई पड़ता है 'उपासना का अवलम्बन'।

उपासना से जुड़ी आदर्शवादी मान्यताएँ एवं प्रेरणाएँ ही चिन्तन को श्रेष्ठ एवं व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बना सकने में समर्थ हो सकती हैं। उपासना की समग्रता एवं उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को भली-भाँति समझा जा सके तो व्यक्तित्व निर्माण का सबल आधार मिल सकता है। उपासना का लक्ष्य है, व्यक्तित्व का परिष्कार। इसके निर्धारण से उससे जुड़े आदर्शों एवम् उच्चस्तरीय सिद्धान्तों द्वारा उपासक को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। उपास्य में तन्मय होने का अभिप्राय है, उच्चस्तरीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों में लीन हो जाना और उनके अनुरूप आचरण करना। उपासना द्वारा निर्माण की यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया चलती रहती है। इसमें तन्मयता की पराकाष्ठा उपास्य और उपासक के बीच विभेद को समाप्त कर देती है। द्वैत से उठकर अद्वैत की स्थिति हो जाती है। परमहंस रामकृष्ण देव का सर्वत्र काली का दर्शन करना, महाप्रभु चैतन्य का कृष्ण से एकाकार हो जाना, स्वामी रामतीर्थ का ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित हो अपने अस्तित्व को भूल जाना, उपासना की तन्मयता एवम् उसकी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव है। यह असामान्य स्थिति न भी हो तो भी उपासक के विचारों का परिशोधन, परिष्कृतीकरण होता जाता है। भाव-संवदेनाओं में आदर्शवादिता जुड़ने लगती है।

उपासना निराकार की करें या साकार की। इष्ट निर्धारण क्या है ? यह व्यक्तिगत अभिरुचि एवम् मनःस्थिति के ऊपर निर्भर करता है। चिन्तन को लक्ष्य की ओर नियोजित किए रखने के लिए साकार अथवा निराकार कोई भी अवलम्बन लिया जा सकता है। यह आवश्यक है और उपयोगी भी। इस प्रक्रिया के साथ जुड़े चिन्तन-प्रवाह में आदर्शवादिता का जितना अधिक पुट होगा, उसी स्तर की सफलता प्राप्त होगी। इष्ट से तादात्म्य और उससे मिलने वाले दिव्य अनुदानों से वह आधार बन जाता है। जिससे उपासक अपने चिन्तन एवं गतिविधियों को श्रेष्ठता की ओर मोड़ सकें।

आधुनिक मनोविज्ञान ने जिन नये तथ्यों का उद्घाटन किया है, वे आध्यात्मिक मूल्यों की पुष्टि करते हैं। चिन्तन को व्यक्तित्व का मूल आधार माना जाने लगा है। इस संदर्भ में हुए शोध प्रयास यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य का जैसा आदर्श होगा उसी के अनुरूप उसका व्यक्तित्व विनिर्मित होगा। आदर्श यदि श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट है तो चिन्तन एवं गतिविधियों में श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता समायेगी। इसके विपरीत निकृष्ट आदर्श, निम्नगामी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देंगे, हेय व्यक्तित्व गढ़ेंगे। उपासना में इष्ट निर्धारण परोक्ष रूप से श्रेष्ठ आदर्शों की प्रतिष्ठापना है, जिसके निकट आने, तादात्म्य स्थापित करने वाला भी उसी के अनुरूप ढलता-बनता चला जाता है।

एरिक फ्रॉम, हैरी स्टैक, सुलीवान एवम् डॉ० हेनरी लिंडलहर का मानना है कि हम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को किसी दिव्य सत्ता, देवदूत अथवा सर्वव्यापी चेतना से एकत्व स्थापित करके निश्चयपूर्वक सुधार सकते हैं। उनका कहना है कि हम जिस प्रकार की सत्ता का चिन्तन करते हैं उससे हमारा सम्पर्क उसी प्रकार स्थापित हो जाता है, जिस प्रकार माइक्रोवेव्स द्वारा संसार के विविध रेडियो स्टेशनों से सम्पर्क हो जाता है। दिव्य सत्ताओं से सम्पर्क एवं उनसे मिलने वाली प्रेरणाओं से आध्यात्मिक ही नहीं शारीरिक, मानसिक लाभ भी प्राप्त किए जा सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य का मस्तिष्क वायरलेस के रिसीवर की तरह ही है जो हर समय भले-बुरे विचारों को ग्रहण करता रहता है। मन में किस प्रकार के विचार उत्पन्न होंगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम किससे अपना सम्पर्क जोड़ रहे हैं ?

परिष्कृत एवं परिपक्व विचार आस-पास के वातावरण को भी तदनुरूप बनाने में सहायक होते हैं। प्रख्यात विचारक अपटॉन सिंक्लेयर अपनी पुस्तक "मेन्टल रेडियो" में स्पष्ट करते हैं कि उपासना व्यक्तित्व निर्माण की एक समग्र प्रक्रिया है, जिसका अवलम्बन लेने वाला स्वयं श्रेष्ठ बनता तथा अन्यों को भी प्रभावित करता है। वह अपने विचारों का प्रसारण अभौतिक माध्यमों से अन्य लोगों तक कर सकता है। इसमें व्यक्ति एवं वातावरण को अनुवर्ती बनाने के सभी तत्व विद्यमान हैं।

प्रसिद्ध मनःशास्त्री 'जुंग'—उपासना को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार "सभी धर्मों में प्रचलित उपासनाएँ मानव के स्वास्थ्य एवम् सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं।" उनकी मान्यता के अनुसार "संसार के सभी मानसिक चिकित्सक मिलकर भी जितने रोगियों को आरोग्य नहीं प्रदान कर पाते जितना कि छोटी से छोटी धार्मिक उपासनाएँ कर देती हैं।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व के अधःपतन एवं चिन्तन-चरित्र व्यवहार की त्रिवेणी में बढ़ते जा रहे प्रदूषण को रोकने तथा इसको परिशोधन कर निर्मल-परिष्कृत एवं उर्ध्वगामी बनाने में उपासना की आवश्यकता ही नहीं अनिवार्यता भी है। पुरातन काल के ऋषियों तथा आधुनिक काल में सन्तों ने इसका अवलम्बन कर स्वयं के व्यक्तित्व को सुघड़ बनाने के साथ ही समूची मानव जाति के समक्ष प्रकाश संकेतक के रूप में स्वयं को उभारा। आज भी भावनात्मक एवं सामाजिक समंजन सर्वतोमुखी परिष्कार एवं समग्र प्रगति के सभी आधार इसमें विद्यमान हैं। समस्याओं की जटिलता से उबरने तथा अपने व्यक्तित्व को गढ़ने के लिए यह राजमार्ग ही सर्वाधिक उपयुक्त है।

व्यक्तित्व के विकास का उद्गम केन्द्र

व्यक्तित्व के विकास के मूल में जिन तथ्यों को समाहित माना जाता है, उनमें से एक है—शरीर में जीवनी शक्ति का प्रकटीकरण, प्राण ऊर्जा का उभार। व्यक्तित्व का मूल्यांकन सामान्यतया शरीर की सुडौलता, सुन्दर चेहरे से किया जाता है, पर यह मान्यता भ्रांति युक्त है। यदि मनुष्य काला व कुरूप भी है किन्तु आहार-विहार का संतुलन कर आरोग्य रक्षा में निरत रहता है तो ऐसा नीरोग मनुष्य भी प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व का स्वामी होता देखा जाता है। जबकि चेहर-मुहरे से सुन्दर व्यक्ति रोगग्रस्त, उदास, निस्तेज, आलसी होने पर मरा-गिरा-सा, टूटा हुआ प्रतीत होता है।

आशा और उमंग से मन भरा हो, उत्साह और साहस स्वभाव का अंग हो, हँसने-मुस्कराने की आदत हो, तो व्यक्ति की आकृति-प्रकृति आकर्षक हो जाती है। ऐसे व्यक्ति की बनावट भले ही कुरूप हो, वह सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है एवं जहाँ जाता है, अपनी उपस्थिति से वातावरण प्रभावशाली बना देता है। अब्राहम लिंकन, सुकरात, महात्मा गाँधी आदि का बाह्य स्वरूप सुन्दर नहीं कहा जा सकता, किन्तु उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को, मनस्विता को, अंग-अंग से फूटने वाले तेजस् को कोई नकार नहीं सकता।

वस्तुतः हमारा चेहरा मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब है। आँखों की खिड़की से भीतर की स्थिति झाँकती व उस क्षेत्र का भला-बुरा विवरण दर्शकों को बिना बोले ही बताती रहती है। प्रकृति ने कुछ ऐसी व्यवस्था की है जिससे व्यक्ति की भाव भंगिमा, शिष्टता, कार्य पद्धति को देखते ही यह पता लग सके कि वह कितने पानी में है। शरीर बाह्य परिकर प्रभावोत्पादक हो इसके लिए शरीर और मन को इस प्रकार ढाला जाना चाहिए कि वह सौन्दर्य, सज्जा, शिक्षा आदि के अभाव में भी अपनी विशिष्टता का परिचय दे सके।

शालीनता वह दूसरी शर्त है, जो व्यक्तित्व को वजनदार बनाती है। इसी सत्प्रवृत्ति की सज्जनता, शिष्टता, सुसंस्कारिता आदि नामों से पुकारा जाता है। गुण, कर्म, स्वभाव से गहराई तक घुली यह विशिष्टता पास बैठने वाले को थोड़ी ही देर में बता देती है कि सामने वाले का बचकानापन किस मात्रा में घट गया और वजनदार व्यक्तित्वों में पायी जाने वाली विशेषताओं का कितना उद्भव समावेश हो गया।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने अन्तःकरण की ऊर्जा-''लिबिडो'' को अपने शब्दों में प्रतिपादित करते हुए कहा है कि ''न जाने क्यों यह तथ्य बुद्धिमानों के गले नहीं उतरता कि वे मस्तिष्कीय चमत्कारों की तुलना में कहीं अधिक विभूतियाँ अपनी अन्तःचेतना को विकसित करते हुए हस्तगत कर सकते हैं। ''स्व'' को यदि उच्चस्तरीय बनाया जा सके तो फिर ''पर'' के प्रति न कोई शिकायत रहेगी, न कोई आशा-अपेक्षा ही रखनी होगी''।

यह कथन व्यक्ति के व्यापक सर्वांगपूर्ण विकास की चर्चा करते समय काफी महत्त्व रखता है। यहाँ उनका संकेत है कि हमें एक विशेष बात का ध्यान रखना होगा कि आत्मिक क्षेत्र की सबसे बड़ी प्यास घनिष्ठ आत्मीयता की है, जिसे व्यवहार में सद्भाव सम्पन्न मैत्री कहते हैं। पुरातन भाषा में इसी को अमृत कहते थे। मैत्री परिकर भी बढ़ना चाहिए व वातावरण भी बनना चाहिए। किन्तु वैसी न हो जैसी कि आजकल मित्र बनकर शत्रुता का आचरण करने की विभीषिका बनकर उस पुनीत शब्द को बदनाम कर रही है।

इन दिनों वैभव को सर्वोपरि मान्यता मिली है। फलतः सम्पदा का संचय और प्रदर्शन जनसाधारण की आकांक्षा व तत्परता का केन्द्र बन गया है। इसी की ललक-लिप्सा में आपा-धापी और छीना-झपटी की दुष्प्रवृत्तियाँ पनपी हैं। फलतः विपिन्ताएँ बढ़ती चली गईं। अगले दिनों यह प्रवाह उलटना होगा तथा लोकचेतना को यह सोचने पर सहमत करना होगा कि वह आदर्शों की ओर चले, उसके लिये अन्तःकरण टटोले और अन्तःप्रेरणा से ही मार्गदर्शन प्राप्त करे।

आरम्भिक जीवन की ग्रहण संवेदनशीलता के अतिरिक्त व्यक्तित्व निर्माण का एक बड़ा कारण यह भी होता है कि बालक को माता के शरीर का रस मात्र ही नहीं मिलता, वरन् उसकी मानसिक संरचना भी उस नवनिर्मित प्राणी को उपलब्ध होती और ढाँचे का अंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बनती है। यहाँ एक बात विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है कि एक के द्वारा दूसरे को प्रभावित करने में भावनात्मक घनिष्ठता सर्वोपरि भूमिका निभाती है। माता की बच्चे के प्रति जो संवेदनात्मक घनिष्ठता होती है, वह आदान-प्रदान का समर्थ माध्यम बनती है। माता के द्वारा वह न केवल पोषक पदार्थ प्राप्त करता है न केवल सुविधा, सुरक्षा के अनुदान उपलब्ध करता है, वरन् इन सबसे बड़ी वस्तु स्नेह-दुलार का वह रसायन भी प्राप्त करता है, जिसके सहारे गहन स्तर के आदान-प्रदान बन पड़ते हैं। माता-पिता तथा अन्य अभिभावक जो बालक के साथ जितनी भावनात्मक घनिष्ठता एवं सहानुभूति जोड़े रहते हैं। उसे बिना माँगे ही बहुत कुछ गले उतारते रहते हैं।

बालकों का यह उदाहरण यहाँ इसलिए दिया जा रहा है कि घनिष्ठता, समीपता एवं भावनात्मक आत्मीयता के उस दुहरे प्रभाव को समझा जा सके, जिसमें न केवल सान्निध्य, सुख एवं सहयोग मिलता है वरन् अन्तरंग विशेषताओं के आदान-प्रदान का भी द्वार खुलता है। यहाँ मैत्री की ओर संकेत किया गया है। मैत्री किसी भी कारण बनी या बढ़ी क्यों न हो, यदि वह गहराई तक पहुँची एवं आत्मीयता तक विकसित हुई है तो फिर उसका ऐसा प्रभाव भी होना ही चाहिए कि एक पक्ष दूसरे को, विशेषतया सबल-दुर्बल को प्रभावित कर सके।

यह तथ्य इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि व्यक्ति को यदि उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करना अभीष्ट हो तो उसके लिये शिक्षण के साथ-साथ आत्मीयता का गहरा सम्पुट लगाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। विकृत व्यक्तित्वों को संतुलित एवं समुन्नत बनाने में स्नेह-दुलार की उपलब्धि इतनी बड़ी औषधि है, जिसकी तुलना में अन्य कोई उपाय, उपचार कारगर नहीं होते देखा गया। प्यार की प्यास हर किसी को रहती है और वह समुचित परिमाण में किसी भाग्यवान को मिल सके तो समझना चाहिए कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु एक प्रभावशाली साधन जुट गया।

प्रतिभा की विलक्षणताएँ अनेकों सफलताओं का निमित्त साधन बनती हैं किन्तु यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह मात्र वंशानुक्रम, सान्निध्य, साधन-शिक्षण आदि बाहरी प्रभाव अनुदानों से ही पूर्णरूपेण हस्तगत नहीं होती। ऐसी बात होती तो मनुष्य को सचेतन कहते हुए भी परिस्थितियों का दास कहना पड़ता। यह तो भाग्य-प्रारब्ध से भी बुरी बात होती। यदि परिस्थितियाँ ही किसी के भले-बुरे बनने का आधार रही होतीं तो किसी को श्रेय या दोष न देकर उन साधनों को ही सराहा या कोसा जाता जिन्होंने उत्थान या पतन में भूमिका निभाई।

चरित्र मनुष्य की मौलिक विशेषता एवं उसका निजी उत्पादन है। इसमें इसके निजी दृष्टिकोण, निश्चय, संकल्प एवं साहस का पुट अधिक होता है। इसमें बाह्य परिस्थितियों का यत्किंचित योगदान ही रहता है। असंख्यों ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें लंका जैसे विषाक्त वातावरण में विभीषण जैसे संत अपने बलबूते समूची प्रतिकूलताओं को चुनौती देते हुए अपने स्थान पर अटल बने रहे। ऐसे भी कम नहीं, जिनमें पुलस्त्य ऋषि के देवपरिकर में रावण जैसे अनाचारी का प्रादुर्भाव हुआ और उसने वातावरण को एक ताक पर उठाकर रख दिया।

यह व्यक्तित्व चरित्र ही है जो व्यक्ति अपने बलबूते विनिर्मित करता है। परिस्थितियाँ सामान्य स्तर के लोगों पर ही हावी होती हैं। जिनमें मौलिक विशेषता है, वे नदी के प्रवाह से ठीक उल्टी दिशा में मछली की तरह अपनी पूँछ के बल पर छर-छराते चल सकते हैं। निजी पुरुषार्थ एवं अन्तःशक्ति को प्रसुप्त से उभारते हुए साहसी व्यक्ति अपने को प्रभावशाली बनाते व व्यक्तित्व के बल पर जनसम्मान जीतते देखे गए हैं। यह उनके चिंतन की उत्कृष्टता, चरित्र की श्रेष्ठता एवं अन्तराल की विशालता के रूप में विकसित व्यक्तित्व की ही परिणति है। जिसे भी इस दिशा में आगे बढ़ना हो, इसके लिए यही एक मात्र राजमार्ग है। इसके लिये किसी शॉर्टकट का किसी रूप में प्रावधान नहीं है। वह एक शाश्वत निर्धारित सिद्धान्त है, जिसे हर स्थिति में स्वीकार किया जाना चाहिए।

आकर्षण और आभा का स्रोत

वर्तमान को देखकर भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। वर्तमान फूल है और भविष्य उसके परिपक्व होने पर बनने वाला फल। यह सिद्धान्त सभी क्रिया-कलापों पर लागू होता है। मन पर अनुत्साह छाया हुआ हो, भविष्य की कुछ महत्त्वपूर्ण कल्पनाएँ न उठ रही हों, भविष्य की कोई महत्त्वपूर्ण योजना न बन रही हों, तो फिर समझना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति का भविष्य अंधकारमय है।

शरीर दीखता तो बढ़ा-चढ़ा है, पर उसकी शक्ति मनःक्षेत्र में सन्निहित रहती है। मन खिन्न-विपन्न हो तो समझना चाहिए कि शरीर स्वस्थ होते हुए भी ऐसा कुछ काम न कर सकेगा, जिसकी प्रशंसा की जा सके। इसके विपरीत संसार में ऐसे मनुष्य हुए हैं, जिन्होंने बीमारियों से ग्रसित रहते हुए भी अस्पताल में पड़े रहने पर भी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने मनोबल, उत्साह और सूझ-बूझ के सहारे इतने बड़े काम कर दिखाये जिस पर सौ पहलवानों को भी निछावर किया जा सकता है। इसके ठीक विपरीत ऐसी घटनाएँ भी घटती रही हैं, जिनमें दुर्बल शरीर के रहते हुए भी मनोबल का इतना प्रचंड परिचय दिया गया कि लोग उन्हें शक्तिपुंज मानने लगे।

शारीरिक सौन्दर्य सभी की आँखों को सुहाता है। देखने वाले का आकर्षण भी उसकी ओर अधिक पाया जाता है। इस मान्यता के कारण कितने ही व्यक्ति सज-धज के खर्चीले समय साध्य शृंगार करने में लगे रहते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि यह आँखों का छलावा और भूल-भुलैया मात्र है। यदि यही वास्तविकता रही होती तो नट-नटिनियों ने समूचे संसार को विमोहित कर लिया होता और उनके पीछे चापलूसी करता हुआ हर कोई मारा-मारा फिरता।

इसी प्रकार का एक भ्रम यह भी है कि स्वर-संगीत का विशेष आकर्षण का केन्द्र है। नर्तक, गायक अनेकों का मन मोह लेते हैं। कई बार तो शरीरगत सौन्दर्य और कंठगत मार्धुयजन साधारण में इतना महत्त्व बना लेते हैं, कि लोग उनके पीछे मुग्ध हो फिरते देखे जाते हैं।

पर यह भ्रम जंजाल मात्र है। इसके पीछे वास्तविकता का अंश नगण्य होता है। यदि बात ऐसी ही रही होती तो संसार में मूर्धन्य नहीं रहे होते जो रंग, रूप, कंठ की कलाकारिता होने पर भी औरों को अपनी ओर आकर्षित करते देखे जाते हैं। अष्टावक्र की आकृति कुरूप स्तर की गिनी जाती थी, पर उनकी विद्वता ने बड़े-बड़ों को चकित करके रख दिया। गाँधी जी पाँच फुट दो इंच लम्बाई के थे। शरीर का वजन भी ९६ पौण्ड था। व्यक्तित्व का दर्शनीय स्वरूप देख कोई यह नहीं कह सकता था कि इनमें कोई विशेषता होनी चाहिए। पर चरित्र बल और आत्मबल के धनी होने के कारण उन्हें उच्चस्तर का महामानव माना गया। उनके प्रभाव का स्तर असाधारण देखा गया। जो कार्य उनने कर दिखाये, उनका आँकलन करने वाले उन्हें किसी सिद्ध पुरुष से कम नहीं मान सकते।

शरीर अथवा स्वर का आकर्षण तो सामायिक है। कुछ ही समय उनकी चमक-दमक रहती है। अपने समय की मानी हुई नर्तकियाँ, अभिनेत्रियाँ आयु ढलते ही बुढ़िया जैसी लगने लगती हैं। उनके चित्र देखने के लिए जो लोग लालायित रहते हैं, वे भी समय ढलते ही उपेक्षा करने लगते हैं और मुँह फेर लेते हैं, कंठ भी एक आयु तक ही मिठास और आकर्षण धारण किये रहता है। आयु का ढलान आते ही न वह स्वर का आकर्षण रहता है और न रंग रूप ही। समय के साथ चमड़ी का आकर्षण न जाने कहाँ से कहाँ चला जाता है और समय बदलते ही लोग समझ जाते हैं कि आँखें जिस व्यामोह के कारण धोखा खाती रही हैं, कान जिनका शब्द सुनकर अपने आपको भूल जाते रहे हैं, यह सब मात्र छलावा था।

व्यक्तित्व मनुष्य के चिन्तन व चरित्र पर अवलम्बित है। सेवा और परमार्थ ही मनुष्य का वह आकर्षण बनाये रहता है जो जन्म जन्मान्तरों तक आभा रहित नहीं होता। आदर्शवादी व्यक्तित्व और सेवा संलग्न कर्तव्य ही वह निधि है, जिसके क्षरण होने की कभी कोई आशंका ही नहीं की जानी चाहिए।

मनस्वी-तेजस्वी

बल्व, पंखा, हीटर, कूलर आदि उपकरणों के साथ जुड़ जाने पर बिजली के गुण भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इसमें उपकरणों का जितना महत्त्व है, उससे अधिक उस बिजली का है, जो शक्ति संचार करती है और उपकरण को वैसी ही क्रिया करने के लिए विवश करती है, जिसके लिए उसे बनाया गया है।

मनुष्य में उच्चस्तरीय चेतन बिजली तो वह है जिसे प्राण कहते हैं। उसके साथ बने रहने पर शरीर के सभी अंग-अवयव अपने-अपने काम करते रहते हैं। शक्ति भी बनी रहती है और वे सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं, जिनको देखते हुए किसी को जीवित या मृतक कहा जाता है। यह दिव्य चेतना ही पंच तत्वों के साथ जुड़े हुए शरीर के माध्यम से विविध प्रकार के क्रिया-कलापों का संचालन करती है। प्राणी में जीवन ही उसका सार तत्व है। यदि वह न रहे तो मृत शरीर को ऐसा कूड़ा-करकट माना जाता है जिसे थोड़ी ही देर रखे रहने पर सड़न, दुर्गन्ध और विषाक्तता फैलनी आरम्भ हो जाती है।

दूसरी एक और भी चेतना जीवन में काम करती है जिसे उत्साह कहते हैं। उसकी जितनी मात्रा जिस किसी में होती है, वह उतने ही बढ़-चढ़कर पुरुषार्थ कर सकने में समर्थ होता है। किन्तु यदि उत्साह शिथिल पड़ गया हो, उसकी गतिशीलता घट गई हो, तो समझना चाहिए कि जीवित होते हुए भी मनुष्य लगभग मरे हुए के समान है। अनुत्साही को आलस्य-प्रमाद जैसे अनेकों दुर्गुण घेरे रहते हैं, जिनके कारण उपयुक्त सामर्थ्य रहते हुए भी आधी-अधूरी मात्रा में बहुत धीमी गति से काम हो पाता है और जो होता है वह भी लगता है मानो शक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामर्थ्य का भण्डार ही चुक गया हो। जो बन पड़ता है वह अस्त-व्यस्त, कुरूप और घटिया स्तर का होता है। इससे कर्म और कर्त्ता दोनों की हानियाँ होती हैं। जिस प्रकार यंत्र उपकरणों में बिजली काम करती है उसी प्रकार मनुष्य के समस्त शारीरिक-मानसिक अंग-अवयवों को उत्साह के आधार पर शक्ति और प्रेरणा मिलती है।

निराशा, उदासी, चिन्ता लगभग एक-दूसरे पर आश्रित हैं, जहाँ एक रहेगी, वहाँ दूसरी भी जा पहुँचेगी। यदि तीनों का समावेश हो गया तो समझना चाहिए कि मनुष्य मानसिक दृष्टि से अशक्त हो गया, भले ही वह शारीरिक दृष्टि से समर्थ ही क्यों न दिखाई पड़े ? ऐसे लोग कुछ काम करना ही नहीं चाहते। चाहते भी हों तो वह बन नहीं पड़ता। पड़ता भी है तो आधा-अधूरा बनकर रह जाता है। अस्त-व्यस्त और काना-कुबड़ा बनकर रह जाता है। जितने समय और श्रम में उसे होना चाहिए, उसकी तुलना में वह कोई अधिक बिलम्ब लगा लेता है और जो कुछ बन पड़ता है, वह कुरूप, अव्यवस्थित स्तर का बनकर रह जाता है।

शक्ति वस्तुतः साहस पर केन्द्रित रहती है। साहस न हो तो फिर हाथों से जो करते बन पड़ता है वह निस्तेज, निरर्थक बनकर रह जाता है। बिजली का करेन्ट कम होने पर कोई उपरकण पूरी तरह काम नहीं करता, मात्र टिमटिमाता भर रहतां है। उसके द्वारा जो काम होते दीखते हैं, उसे चिन्ह-पूजा स्तर का ही गिना जा सकता है। साहस की कमी का परिणाम भी यही होता है। उत्साह के अभाव में उदास मन से किये गये काम भी ऐसे ही होते हैं। मन की उदासी किये गये कामों की कुरूपता, अधूरेपन के रूप में दीख पड़ती है।

मनस्विता, तेजस्विता अपने हाथ की बात है। मन की उदासी कहीं बाहर से नहीं आती। किसी घटना से भी संबधित नहीं होती। वह मनुष्य के अपने स्वभाव पर निर्भर है जिसे इच्छानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। यह एक प्रकार का आत्मविश्वास है। आत्मनिर्भर मनुष्य उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते हैं। उन्हें हाथ में लिए काम की सफलता पर विश्वास होता है।

इन्द्रियों को शक्तितंत्र माना जाता है। पैनी दृष्टि सूझबूझ से काम लेने पर यह वरदान जैसी प्रतीत होती हैं और उनके द्वारा बन पड़े कामों को सौभाग्य स्तर का गिना जाता है, पर वस्तुतः बात ऐसी है नहीं। आत्मविश्वासी मनुष्य की एक ही पहचान है—उसका उत्साह। उत्साह रहने पर साहस बढ़ता है और उसी उत्साह के सहारे शरीर के अंग-प्रत्यंग बढ़-चढ़कर काम करने लगते हैं। उनसे सफलता का बोध होता है। जो मनस्वी ही नहीं हैं उन्हें एक प्रकार से अशक्त, निस्तेज और असंयमी भी कहा जा सकता है।

व्यक्तित्व की रहस्यमय परतें

मार्टिन प्रिंस मनोवैज्ञानिक जगत के प्रसिद्ध विद्वान हैं। उन्होंने मानवी व्यक्तित्व का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। व्यक्तित्व सम्बन्धी अपनी खोजों में मार्टिन ने अनेकों रहस्यमय और महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट किए हैं। उनका कहना है कि ''मनुष्य के भीतर एक साथ कई प्रकार के व्यक्तित्व कार्य करतें हैं। उनमें आपस में यदि सामंजस्य और सहयोग है, तो मनुष्य के विकास में असाधारण योगदान मिलता है। परस्पर असहयोग होने से विकासक्रम अवरुद्ध हो जाता है। मानसिक एवं शारीरिक रोग भी मनुष्य के भीतर दो व्यक्तित्वों के आपसी संघर्ष के प्रतिफल होते हैं।

व्यक्तित्वों की भिन्नता और आपसी संघर्ष कैसी-कैसी समस्याओं को जन्म देते हैं, इसका एक रोचक उदाहरण 'प्रिंस' ने अपनी पुस्तक में 'मैकनवारो' नामक महिला का प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं कि इस मैकनवारो के भीतर एक साथ तीन व्यक्तित्व रहते थे। एक सामान्य स्वभाव का था, दूसरा संत और तीसरा शैतान प्रकृति का। इन तीनों में एकरूपता न रहने से उक्त महिला का जीवन पागलों जैसा बन गया है। साधारण व्यक्तित्व को अन्य दो व्यक्तित्वों का ज्ञान न था जबकि 'शैतान' व्यक्तित्व को अन्य दो व्यक्तित्वों की क्रियाओं का ज्ञान रहता था। फलस्वरूप शैतान व्यक्तित्व अन्य दो के कार्यों में निरन्तर बाधा पहुँचाता था। उदाहरणार्थ, यदि सामान्य 'व्यक्तित्व' कोई वस्तु आलमारी में एक निश्चित स्थान पर रख देता तो शैतान उसे वहाँ से हटाकर कहीं अन्यत्र छिपा देता था। अपनी ही रखी हुई वस्तु को ढूँढ़ने में उस महिला को विशेष कठिनाई होती थी। उसकी इच्छा के विरुद्ध भी कितनी ही बार शैतान व्यक्तित्व अनेकों काम करा देता था जो नैतिक दृष्टि से उचित न होते थे। अपनी गल्तियों का भान बाद में होने पर वह महिला पश्चात्ताप करती रहती थी। मानसिक द्वन्द्वों के कारण उसकी स्थिति विक्षिप्तों जैसी बन गई।

मार्टिन द्वारा प्रस्तुत किया गया उदाहरण अचरज भरा लगता है किन्तु बारीकी से अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि अधिकांश व्यक्तियों की यही स्थिति होती है। मनुष्य के भीतर दो व्यक्तित्वों का संघर्ष चलता रहता है। पौराणिक भाषा में जिसे देवासुर संग्राम कहा जा सकता है। अमुक स्थान में देवता निवास करते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमुक में असुर तथा उनके बीच युद्ध होते रहते हैं, का वर्णन भारतीय धर्म पुराणों में ही नहीं विश्व के अन्यान्य धर्म ग्रन्थों में भी आता है। यह व्यक्तित्व के दो भिन्न स्वरूप का अलंकारिक वर्णन-चित्रण है जो यह दर्शाता है कि देव और असुर के बीच अर्थात् मनुष्य के भीतर काम करने वाले दो व्यक्तित्वों के बीच परस्पर मतभेद एक संघर्ष होने पर व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा अनेकों प्रकार के शारीरिक, मानसिक विक्षोभ उत्पन्न होते हैं। पुराणों में वर्णन आता है कि देवता और असुर जब एक-दूसरे से अलग रहे, असहयोग करते तथा लड़ते रहे। परिस्थितियाँ विपन्न और प्रतिकूल बनी रहीं। सर्वत्र अव्यवस्था फैली, दोनों ने जब परस्पर सहयोग करना स्वीकारा तो समुद्र मन्थन जैसे दुस्तर एवं कठिन काम का सिलसिला चल पड़ा, जिसकी परिणिति चौदह दिव्य रत्नों की उपलब्धियों के रूप में सामने आयी। जिसे प्राप्त कर विश्व-वसुधा धन्य हो गई।

मनुष्य के मानसिक जगत में चलने वाले संग्राम का यह अलंकारिक चित्रण है। संघर्ष रुकने, देव और असुर रूपी दो व्यक्तित्वों के बीच सहयोग का क्रम चलते ही मनुष्य के सर्वांगीण विकास का दौर द्रुतगति से चल पड़ता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों द्वारा एक सर्वथा नवीन तथ्य उजागर हुआ है कि विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग मन के द्वन्द्वों से पैदा होते और द्वन्द्वों की उत्पत्ति दो प्रकार के व्यक्तित्वों के परस्पर टकराहट से होती है। संघर्ष की प्रतिक्रिया की अनुभूति अनेकों प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक असन्तुलनों के रूप में तो होती है किन्तु इसका बोध नहीं रहता कि अपनी ही सत्ता दो भिन्न घटकों में बँटकर टकराव उत्पन्न कर रही है। जो अशान्ति, असन्तोष, व्यग्रता विक्षोभ, भय, चिन्ता जैसे असन्तुलनों से आरम्भ होकर अनेकों प्रकार के मानसिक रोगों का कारण बनते हैं।

क्रिया, विचारणा एवं भावना इन तीनों ही क्षेत्रों में एकरूपता हो तो मनुष्य असामान्य शक्ति का स्वामी बन सकता है। इसके विपरीत इन तीनों में एकता न होने पर विकास क्रम अवरुद्ध हो जाता है। सामान्यतया इन तीनों में एकता कम ही स्थापित हो पाती है। प्रायः युग्म दो का बन जाता है। प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने वाला व्यक्तित्व उन्हीं के समन्वय से बनता है, जिसे ज्ञात व्यक्तित्व कहते हैं। अपने इस व्यक्तित्व का बोध अधिकांश व्यक्तियों को होता है। सम्भव है मनुष्य अपने ज्ञात स्वत्व में चरित्रवान आदर्शवादी एवं सिद्धान्तनिष्ठ हो किन्तु अज्ञात व्यक्तित्व में अनुदार, अनैतिक, क्रूर एवं व्यभिचारी हो सकता है। इसका प्रमाण कितने ही व्यक्तियों में मिलता रहता है। नीति, सदाचार, आदर्श एवं सिद्धान्त की बातें करते कितने ही व्यक्ति देखे जाते हैं किन्तु लोभ-मोह के, वासना, तृष्णा के अवसर आते ही वे उस प्रवाह में बह जाते हैं। इसका कारण यह होता है कि भीतरी अज्ञात व्यक्तित्व में निकृष्ट प्रवृत्तियों के संस्कार जड़ जमाये रहते हैं और अवसर उपस्थित होते ही प्रबल हो उठते तथा बाह्य-प्रत्यक्ष व्यक्तित्व पर हावी हो जाते हैं। न चाहते हुए भी कितनी ही बार मनुष्य कितने ही ऐसे कार्य कर जाते हैं, जो सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से अनुचित होते हैं और जिसके लिए वे बाद में भारी पश्चात्ताप करते हैं। यह अचेतन व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि मुनष्य अपने को अशक्त एवं असमर्थ पाता है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बाह्य-भीतरी सामन्जस्य न होने से द्विमुखी व्यक्तित्व का निर्माण होता है। ''डबल परसनाल्टी'' को मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में सभी प्रकार के मनोरोगों का कारण माना गया है।

द्विमुखी व्यक्तित्व के निर्माण में बाह्य परिस्थितियाँ कारण हैं अथवा मनुष्य स्वयं ? क्या उनमें एकता स्थापित कर व्यक्तित्व को श्रेष्ठ, शालीन बनाया जा सकता है। जैसे प्रश्नों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में लम्बे समय से खोज-बीन चल रही है। मनोवैज्ञानिकों एव मनोचिकित्सकों का कहना है कि अपने व्यक्तित्व को छिन्न-भिन्न करने का जिम्मेदार स्वयं मनुष्य है। उसकी चिन्तन एवं क्रिया-प्रणाली के सूक्ष्म संस्कार जमा होते रहते हैं और अचेतन पक्ष का निर्माण करते हैं। यदि उनका स्तर निकृष्ट हुआ तो भारी विक्षोभ पैदा करेंगे। फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक का कहना है कि ''मुनष्य चिन्तन कुछ और करता है तथा उसकी प्रत्यक्ष भूमिका भिन्न प्रकार की होती है। चिन्तन में यदि वासना, तृष्णा एवं लोभ के तत्व विद्यमान हैं तथा वाणी से वह आदर्शों की बात करता है, तो व्यक्तित्व में विघटन यहीं से आरम्भ हो जाता है और द्विमुखी व्यक्तित्व का निर्माण होता है।''

इससे स्पष्ट है कि व्यक्तित्व को समग्र एवं एकरूप बनाये रखने के लिए चिन्तन, वाणी एवं क्रिया-कलाप तीनों में एकरूपता स्थापित करनी होगी। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यक्तित्वों में जिसकी भूमिका मनुष्य के विकास में सहायक हो सकती है, इसका निर्धारण कैसे हो ? क्योंकि कभी-कभी स्थिति उल्टी भी हो सकती है। अप्रत्यक्ष व्यक्तित्व सुसंस्कारी हो सकता है और प्रत्यक्ष कुसंस्कारी। इस विषम स्थिति में किसकी बात मानी जाय और चिन्तन एवं अभ्यास द्वारा किसे सशक्त बनाया जाय, उसका उत्तर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग ने दिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो प्रकारान्तर से भारतीय अध्यात्म का ही समर्थन करता है। वे कहते हैं कि ''प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष से परे मनुष्य की मूल सत्ता'' दी अनडिसकवर्ड सेल्फ है। जो अपनी प्रेरणाएँ उदात्त भावनाओं के रूप में सतत् संप्रेषित करता रहता है। अपने चिन्तन एवं गतिविधियों को उसकी प्रेरणा के अनुरूप ही ढाला जाय। व्यक्तित्व को पूर्ण तभी बनाया जा सकता है।

समस्त सम्भावनाओं से परिपूर्ण मानवीय व्यक्तित्व

परमात्मा ने मनुष्य को सभी सामर्थ्यों और सर्वतोमुखी प्रगति की सम्भावनाओं से विभूषित कर इस पृथ्वी पर भेजा है। यदि अपने ही भीतर सन्निहित इन शक्तियों और सम्भावनाओं के स्रोतों को पहचान लिया जाये तथा उन्हें विकसित करने के लिए कटिबद्ध हुआ जाये तो कोई कारण नहीं कि परमात्मा का सबसे बड़ा पुत्र, ईश्वरीय अंश, राजकुमार आत्मा इसी दीन-हीन अवस्था में पड़ा रहे, इसके विपरीत जो लोग प्रगति और उन्नति के आधार बाहर तलाशते हैं, आगे बढ़ने और उन्नति करने के लिए दूसरों पर निर्भर करते हैं उन्हें यथा स्थिति में ही पड़े रहना पड़ता है। किसी की सहायता और अनुदान उसका थोड़ा बहुत भला कर दे सामयिक लाभ भले ही पहुँचा दें, परन्तु उससे बात बनती नहीं हैं। वह सहायता अनुदान तो सामयिक उपचार ही सिद्ध होते हैं। इसीलिए कहा गया है कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं। इस कथन का आशय यही है कि जो परमात्मा के दिये हुए अनुदानों, मानवी व्यक्तित्व में सन्निहित विशेषताओं को पहचानने में समर्थ होते हैं, उन्हें जग्रात कर पाते हैं वही किसी दिशा में कोई उल्लेखनीय गति प्रगति कर पाते हैं क्योंकि परमात्मा ने उन्नति और प्रगति की समस्त सम्भावनाएँ प्रत्येक व्यक्ति को उसे निज के उपयोग हेतु ही दे रखी हैं, उसे इतना सामर्थ्यवान भी बनाया है कि वह प्रगति क्रम में आने वाले अवरोधों से जूझते हुए निरन्तर उन्नति करता रह सके।

उदाहरण के लिए परमात्मा ने मनुष्य की इस नश्वर और मिट्टी का पुतला कही जाने वाली काया को ही इतना सशक्त और मजबूत बनाया है कि वह बुरी से बुरी परस्थितियों में भी अपना सन्तुलन बनाये रह सकती है और दीर्घकाल तक कार्य करती रह सकती है। आये दिनों इस तरह की घटनाएँ सामने आती रहती हैं, जिनसे यह तथ्य सिद्ध होता है। पिछले दिनों अमेरिका का एक हवाई जहाज समुद्र पर उड़ते हुए दुर्घटनाग्रस्त हो गया। किसी मशीनी खराबी के कारण विमान में आग लग गई और वह समुद्र में गिर पड़ा। किसी प्रकार प्राण रक्षा न होते देखकर उसका पाइलट जहाज के समुद्र में गिरने से पहले ही कूद पड़ा और जिस जगह जहाज का मलवा गिर रहा था, वहाँ से दूर हटकर पानी में कूदा। दुर्घटनाग्रस्त जलते हुए वायुयान से कूदने के कारण उसे चोट तो बहुत आई फिर भी वह तैरता रहा और लगातार ६० घण्टे तक तैरता हुआ बहुत बुरी तरह थकने के बाद किनारे पर पहुँचा। बुखार, निमोनिया, भूख, थकान, दर्द, चोट और बदहवासी के कारण उसकी बड़ी बुरी हालत हो गई थी और इसी हालत में उसे अस्पताल पहुँचाया गया। पायलट की स्थिति इतनी गम्भीर थी कि डॉक्टर उसके अब तक बचे रहने पर आश्चर्य करते रहे। बचने की कोई सम्भावनाएँ न रहने के बावजूद भी वह पाइलट अपनी जीवनी शक्ति के सहारे धीरे-धीरे अच्छा होता चला गया।

पोर्टलैण्ड में एक आठ वर्षीय बालक के साथ इस प्रकार की दुर्घटना घटी कि उसका बच पाना असम्भव ही लग रहा था। हुआ यह कि किसी प्रकार एक सड़क कूटने वाले तीन टन भारी इंजिन के नीचे आ गया। उसकी कमर से नीचे का भाग बुरी तरह पिस गया। किसी को उसके बचने की आशा नहीं थी, पर उसकी जीवनी शक्ति ने काम किया और वह एक वर्ष अस्पताल में रहकर अच्छा हो गया। उसके पैर भले ही चलने लायक न हो सके पर उसकी जीवन रक्षा तो हो ही गई। न्यूयार्क की पन्द्रह मील ऊँची इमारत से एक बार दो वर्ष का बालक गिर पड़ा। इतनी ऊँचाई से गिरने के कारण हड्डियाँ बुरी तरह टूट जाने के बाद भी वह जीवित बचा रहा।

इस प्रकार की ढेरों दुर्घटनाएँ जिनके शिकार होने वालों का जीवन बच पाना किसी भी स्थिति में असम्भव लग रहा था किन्तु मानवी काया में विद्यमान जीवनी शक्ति ने जोर मारा और लोग देखते ही देखते मृत्यु के जाल में से निकलकर बाहर आ गये। परमात्मा ने जीवन को निश्चित ही इस योग्य बनाया है कि वह कठिन से कठिन और प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आत्म-रक्षा कर सके। परमात्मा ने मनुष्य की काया को यों ही नहीं बनाया है। उसने मानवीय व्यक्तित्व में तो प्रगति और उन्नति की तमाम सम्भावनायें भर ही दी हैं, उसके शरीर को भी इतनी विशेषताओं से परिपूरित बनाया है कि उसके समान विशेषताओं से भरा-पूरा कोई यन्त्र अभी तक नहीं बनाया जा सका है, जो सभी परिस्थितियों में अपने आपको अनुकूल बना सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भौतिक विभाग के प्राध्यापक डा० क्रेग टेलर ने स्वयं अपने ऊपर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि है कि संसार के सबसे अधिक गरम क्षेत्र में रहकर भी औसत स्वास्थ्य वाला व्यक्ति हफ्तों तक आसानी से जीवित रह सकता है। यदि स्नायु-संस्थान अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हो तो यह अवधि महीनों तक ही हो सकती है। उल्लेखनीय है कि साधारणतया अत्यधिक गर्मी वाले क्षेत्रों में अधिक से अधिक चौबीस घण्टे तक जीवित रह सकने की मान्यता प्रचलित है। डा० टेलर ने अपने प्रयोगों द्वारा २२० डिग्री तक की गर्मी देर तक सहन करके दिखाई और वे २५० डिग्री का तापमान भी १५ मिनट तक सहन करने में सफल रहे। स्मरणीय है कि १०० डिग्री में पानी भाप बनकर गायब होने लगता है।

मनुष्य कितनी गर्मी सह सकता है ? इसके साथ ही यह प्रश्न भी उठता है कि वह अधिक से अधिक कितना शीत सह सकता है ? मेजर डोनमल्ड ने इस सम्बन्ध में कई परीक्षण किये और बताया कि शरीर में शीत सहने की कोई अन्तिम सीमा नहीं है। उन्होंने बर्फीले पानी को शीत को घण्टों तक सहन करके दिखाया और यह भी प्रमाणित किया कि यदि किसी व्यक्ति ने शीत रक्षक सूट पहन रखा हो तो शीत से मृत्यु नहीं हो सकती। कहा जा सकता है मेजर डोनमल्ड ने पहले से ही इस तरह की व्यवस्था कर रखी होगी और यह अतिरंजित प्रतिपादन किया हो। किन्तु किसी आकस्मिक दुर्घटना में भी मनुष्य के बच जाने की सम्भावना को क्या कहेंगे ? द्वितीय महायुद्ध के दौरान ऐसी ही एक घटना घटी। इंग्लैण्ड का एक विमान चालक इस युद्ध के दौरान विपत्ति में फँस गया। उसके साथ दो और साथी भी थे। इन तीनों को भयंकर शीत वाले बर्फीले प्रदेश में भूखे-प्यासे दस दिन गुजारने पड़े। इन लोगों के पास कपड़े भी गरम नहीं थे। बर्फीली हवाओं, तूफानों और आँधियों का सामना करते हुए ये तीनों व्यक्ति करीब दो सप्ताह की प्राणान्तक यात्रा करते हुए उस प्रदेश की सीमा से बाहर बच सकने की स्थिति में पहुँचे।

बुखार के समय शरीर का तापमान अधिक बढ़ने लगता है तो डॉक्टर लोग सिर पर बर्फ रखने की सलाह देते हैं ताकि बढ़ा हुआ तापमान कम हो सके। किन्तु इस प्रतिपादन को पिछले दिनों ब्रुकलिस (अमेरिका) की एक नर्स ने झुठला दिया जिसने ११० डिग्री बुखार को कई दिनों तक रहा। न केवल सहन किया वरन् बुखार से लड़ाई भी लड़ी और आखिर वह अच्छी हो गई। डॉक्टर कह चुके थे कि इसका बचना सम्भव नहीं है। जब उसका बुखार ठीक होने लगा तो डॉक्टर कहने लगे कि इतनी अधिक गर्मी सहने के कारण उसका दिमाग जरूर विक्षिप्त हो जाएगा। पर नर्स ने न तो मृत्यु को ही पास फटकने दिया और न ही अपना मानसिक सन्तुलन खोया।

आहार मनुष्य को जीवित रखने वाला प्रमुख साधन माना जाता है। दस-बारह दिनों तक कोई व्यक्ति निराहार रह भी सकता है, पर इससे अधिक समय तक भूखे रहने पर स्वास्थ्य लड़खड़ाने-सा लगता है। ज्यों-ज्यों अधिक दिन तक भूख का सामना करना पड़ता है, त्यों-त्यों स्वास्थ्य लड़खड़ाने लगता है और कुछ ही समय में जीवन संकट उत्पन्न हो जाता है। किन्तु आयरिश स्वाधीनता युद्ध के उद्घाता टेटेन्स मेकस्विनी ने जेल में अनशन किया और १२८ दिन तक निराहर रहकर मौत से जूझते रहे तथा अन्ततः विजयी हुए। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सेनानी यतीन्द्रनाथ दास बिना भोजन किये ६९ दिन तक निराहार रहकर मौत से लड़ते रहे।

आपरेशन के समय कितने ही लोगों का एक-एक फेफड़ा, एक गुर्दा, जिगर का एक भाग और आँतों का एक हिस्सा काटकर अलग कर दिया जाता है। इतने पर भी उनका जीवन क्रम आसानी से चलता रहता है। सामान्य स्थिति में मनुष्य शरीर का तापक्रम ३६.६ डिग्री सेंटीग्रेड होता। है। खून में शक्कर की मात्रा ०.१ होती है। रक्तचाप साधारण स्थिति में १०० से १४० मिली मीटर मकुंचुरी कीलम होता है। यह तापमान शरीर के भीतरी अवयवों का ही होता। ठण्ड के दिनों हाथ-पैरों का ताप तो ३३ डिग्री से भी कम रहता है। फिर भी सारा कार्य यथावत् चलता रहता है, पर इससे अधिक भीतरी गर्मी नहीं गिरनी चाहिए और वह ४५ से आगे भी नहीं बढ़नी चाहिए अन्यथा जीवन संकट उत्पन्न हो जाएगा। इस संकट से सुरक्षा के लिए शरीर के भीतर ही हीटर और कूलर जैसी व्यवस्था है। शरीर का सचेतन नाड़ी-संस्थान तापमान को सन्तुलित रखने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। माँसपेशियाँ इसमें ऊष्मा उत्पन्न करने का कार्य करती हैं। उन्हीं से ऊष्मा बनती, पकती, और बढ़ती है। इनके अतिरिक्त हृदय, फुप्फुस, वृक्क, यकृत आँतें आदि अंग भी एक प्रकार से भट्टी की तरह जलते और गर्मी पैदा करते हैं।

शरीर दिन-रात में १६० से १८० लाख कैलोरी ऊष्मा नित्य बाहर फेंकने का क्रम चलाता है। बिजली के हीटर भी प्रायः इतना ही ताप उत्पन्न करते हैं। जब कभी गर्मी कम पड़ती है, तो ठण्ड लगने लगती है। दाँत किट-किटाते हैं, अंग काँपते हैं। यह अतिरिक्त क्रियाकलाप प्रकृति द्वारा अतिरिक्त गर्मी उत्पन्न करने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर्षणात्मक हलचल उत्पन्न करने के लिए आरम्भ किए जाते हैं।

रक्त भी शरीर में एक अच्छे ऊष्मा वाहक का काम करता है। ताप को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिए रक्त-संचार पद्धति की द्रुतगामिता ही अभीष्ट प्रयोजन पूरा करती है। यह रक्त यदि दौड़ता न हो तो गर्मी जहाँ बनती है वहीं बनी रहती है। ताप उत्पन्न करने वाले अवयव जलने लगते हैं और शेष को शीत निवारण कठिन पड़ता है। रक्त दौड़ने का ही काम नहीं करता वरन् वह स्वयं गर्मी भी पैदा करता और गरम तो रहता है। उसकी यह विशेषता हीटर और कूलर दोनों के प्रयोजन पूरे करती है। जब देह को गर्मी लगती है तो रक्त की दौड़ शरीर से गर्मी को बाहर फेंकने लगती है और जब ठण्ड प्रतीत होती है तो यह गर्मी शरीर के भीतर संचित रहकर अंगों को गरम करती है। इस प्रकार शीत ऋतु में ताप संचय का क्रम चलता है और अपना रक्त ही आवश्यक गर्मी की व्यवस्था बना देता है।

शरीर को भले ही मिट्टी का पुतला या नश्वर खिलौना कहा जाय पर वस्तुतः वह परमात्मा की या प्रकृति की ऐसी अनुपम कलाकृति है, जिसकी तुलना में सृष्टि की और कोई वस्तु नहीं ठहरती। उसकी रचना ऐसी है कि साधारण बीमारियाँ अथवा दुर्घटनाएँ कोई विशेष अनर्थ नहीं कर सकतीं। शरीर की यह तितिक्षा शक्ति अपने भीतर इतनी अधिक मात्रा में सँजोकर रखी हुई है कि मृत्यु जैसा संकट उपस्थिति होने पर भी जीवन की आशा की जा सकती है कहा जा सकता है कि मनुष्य को विपत्तियों और संकटों से कोई विशेष हानि नहीं पहुँचती है तो अपने ही मन के द्वारा बुने हुए जाल-जंजालों, बुजदिली और साहस की दुर्बलताओं से। इसीलिए कहा गया है कि परमात्मा ने मनुष्य को अमित सामर्थ्य और अद्‌भुत संभावनाओं से भरपूर बनाया है। इस तथ्य को समझने वाले विचारशील लोग प्रगति के साधन बाहर नहीं ढूँढ़ते वरन् भीतर खोजते हैं। अपने दोष-दुर्गुण सुधारते हैं, अस्त-व्यस्त स्वभाव एवं कार्यक्रम क्रिया पद्धति को ठीक करते हैं तथा अभीष्ट दिशा में बढ़ चलने का पथ सहज ही प्रशस्त करते चलते हैं। अभ्युदय, अभ्युत्थान की समस्त सम्भावनाएँ मनुष्य के अपने भीतर ही विद्यमान हैं, जिसने इस तथ्य की वास्तविकता समझ ली, स्वीकार कर ली वह अपने को सम्भाल सुधार कर अबोध गति से आगे बढ़ता चलता है।

वास्तविक प्रगति व्यक्तित्व की उत्कृष्टता

नीतिशास्त्री मैकडूगल का कथन है—''आत्म-विकास का अर्थ है—चरित्र का विकास। भीतर क्या है, इसे अपने के सिवाय कोई दूसरा नहीं जानता। बाहरी क्षेत्र में किसी के सम्बन्ध में धारणा बनाने का अवसर कैसे मिले? इसका एक ही आधार है—उसके चरित्र की परख। उत्कृष्ट सिद्धान्तों को समझ लेने भर से न अपना काम चलता है और न दूसरों पर प्रभाव पड़ता है। प्रतिक्रिया उस आचरण की होती है जो क्रियान्वित होता रहता है। इसी का नाम चरित्र है। प्रमाणभूत इसी को माना गया है। किसी की सच्चरित्रता परखने के लिए उसके आचरणों को ही साथी माना जाता है न कि उसके एकान्त चिन्तन को।''

''एकान्त चिन्तन यदि कल्पनाओं की उड़ान का जाल-जंजाल हो तो बात दूसरी है अन्यथा जिन विचारों का मनःक्षेत्र पर आधिपत्य होगा वे व्यवहार में परिणति हुए बिना रहेंगे ही नहीं, विचार यदि विश्वास युक्त हों तो वे मनःक्षेत्र तक सीमित न रहकर व्यवहार में उतरते और सत्प्रवृत्तियों को अपनाने के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। अस्तु, अन्तःक्षेत्र के चिन्तन की यथार्थता को जाँचने के लिए चरित्र एवं व्यवहार की ही जाँच-परख करनी पड़ती है।''

चरित्र ही व्यक्तित्व के स्तर का यथार्थ है। उस पर प्रवंचनाओं का आडम्बर चढ़ाने और मुखौटा लगाकर कुरूप को सुन्दर बनाने के प्रयत्न तो अनेकों चलते हैं, पर उनकी कलई उखड़ते देर नहीं लगती। पाखण्ड से आत्म-प्रवंचना ही हो सकती है। कुछ लोगों को कुछ समय तक धोखे में भी रखा जा सकता है, पर सत्य का कोई विकल्प नहीं। विशेषतया व्यक्तित्व की परख के सम्बन्ध में उत्कृष्टता की वह परख ही निर्णायक होती है जो किसी घटना विशेष से नहीं वरन् अनवरत जीवन-प्रवाह की दिशाधारा को देखते हुए सुस्थिर मान्यता के रूप में विकसित होती है।''

आग और गर्मी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। व्यक्तित्व और चरित्र एक ही तथ्य को प्रमाणित करने वाले दो रूप हैं। चरित्र व्यवहार की शालीनता एवं निजी जीवनचर्या में प्रकट होता है। इसी आधार पर जो आत्म-विश्वास जमता और लोक श्रद्धा का स्वरूप बनता है उसी को चरित्र कहते हैं। चरित्र और व्यक्तित्व एक ही तथ्य के दो नाम रूप हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखने में तो असफलताओं के कारणों में परिस्थितियों की प्रतिकूलता, साधनों का अभाव सम्बद्ध लोगों का असहयोग जैसी कुछेक विशेषताएँ ही गिनाई जाती हैं। कुछ भाग्यदोष, या दैव प्रकोप कहकर भी मन समझाते रहते हैं। किन्तु वास्तविकता खोजने पर कुछ दूसरे ही तथ्य उभरकर सामने आते हैं। अपवाद रूप में तो श्रेष्ठ जन भी मात खाते देखे गये हैं या सामान्यतया तथ्य एक ही होता है कि उनकी वैयक्तिक दुर्बलताएँ, सफलता के मार्ग में प्रमुख अवरोध बनकर अड़ी रहीं। चिन्तन तथा प्रयास उस स्तर का नहीं बनने दिया जिसकी गर्मी से अभीष्ट की उपलब्धि पकती, फलती और उत्साहवर्धक उपलब्धि के रूप में हाथ आती।

शारीरिक ढाँचा, मन्द बुद्धि, स्वल्प शिक्षा, सुसंस्कारिता की अनुपलब्धि, दरिद्रता, जन्मजात अपंगता आदि कुछ ऐसी कमियाँ हैं जिन्हें प्रारब्धजन्य या परिस्थितिजन्य कहकर एक सीमा तक मनुष्य को दोष मुक्त किया जा सकता है। एक सीमा तक इसलिए कि इसी के रहते हुए भी असंख्यों ने इतनी प्रगति की और सफलता पाई है कि सर्व समर्थों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी हैं। साथ ही मानना पड़ता है कि कोई भी सांसारिक अभाव अवरोध ऐसा नहीं जो मनस्वी का प्रगति पथ अवरुद्ध कर सके।

कुछ व्यवधान ऐसे हैं, जो मनुष्य के स्व उपार्जित हैं। अभ्यास में उतरते, रहन-सहन करते रहने से स्वभाव के अंग बन जाते हैं और निर्दोष तक प्रतीत होने लगते हैं। आलस्य, प्रमाद, असंयम, आवेश, अस्थिरमति, अदूरदर्शिता, उद्दण्डता, हठवादिता, आत्महीनता जैसे दुर्गुण स्वविनिर्मित होते हैं। इन्हें अनगढ़, अविकसित व्यक्तित्व कहा जा सकता है। जिस प्रकार बालकों का मानसिक स्तर अपरिपक्व सामाजिक नीति-नियमों से अनभिज्ञ जीवनयापन की विधि-व्यवस्था से अपरिचित होता है, उसी प्रकार की स्थिति कई मनुष्यों बड़ी आयु हो जाने पर भी बनी रहती है। वे खाने-कमाने भर की मोटी जानकारी भर प्राप्त करके अपना काम चलाते और समय गुजारते रहते हैं, पर ऐसा कुछ उनके पल्ले नहीं बँधा होता जिसके आधार पर उन्हें सुसंस्कारी एवं सभ्य समाज का सदस्य कहा जा सके।

शेखीखोर, बन-ठनकर रहने वाले, रौब गाँठने वाले ठग और प्रपंची लोग मन में ऐसा सोचते हैं, इन हथकण्डों से उन्हें अधिक चतुर प्रवीण समझा जायेगा और लोग प्रभावित होते, प्रशंसा करते दिखाई पड़ेंगे किन्तु वैसा होता कुछ नहीं। शारीरिक बचपन चेहरा देखते ही प्रकट हो जाता है ठीक उसी प्रकार मानसिक बचपन आत्मप्रकटीकरण और आचरण, व्यवहार पर सामान्य-सी नजर डालते-डालते अपनी बात अपने मुँह कहने लगता है।

अनेकों हानिकारक दुर्गुणों की नामावली लोगों को विदित है। उनमें कुछ व्यक्तिगत दोष होते हैं और पिछड़ेपन से जकड़े दबोचे रहते हैं। कुछ उच्छृंखलता और आक्रामकता के रूप में प्रकट होते हैं, इनमें स्तर भर का अन्तर है। दोनों ही अविकसित और विकृत व्यक्तित्व का परिचय देते हैं और प्रकट करते हैं कि उस शालीनता का विकास अभी नहीं हुआ जिसे सभ्यता कहा और प्रगति के लिए आवश्यक माना जाता है।

'ए मैनुएल ऑफ एथिक्स' ग्रन्थ में एम मैकेन्जी लिखते हैं—"दुराचारी मनुष्य के हाथ से कोई भला काम नहीं बन पड़ेगा। उसके हाथ से भले काम सौंपे जायँ तो भी वह उनमें अपने चरित्र की छाप छोड़ेगा और कहीं न कहीं ऐसी गड़बड़ी उत्पन्न कर देगा जिसमें भला दीखने वाला काम भी उलझन में फँसे और विग्रह उत्पन्न करे।"

वे कहते हैं—"काम करने की कुशलता कैसी भी क्यों न हो, उसके सहारे इतना भर हो सकता है कि प्रयोजन को कम समय और कम लागत से खूबसूरती के साथ निपटा दिया जाय। इस विशेषता और सफलता के होते हुए भी एक कमी बनी ही रहेगी कि इस कार्य में लगे हुए सहयोगी अपने मार्गदर्शक से ऐसी परोक्ष बुराइयाँ भी अपना लें, जो उन्हें उपलब्ध पारिश्रमिक की तुलना में अधिक घाटे की सिद्ध हों। इसी प्रकार जो काम हाथ में लिया गया है उसके कितने ही भागों में ऐसी खामियाँ जान-बूझकर या अनजाने रह सकती हैं जो अन्ततः उपभोक्ता को महँगी पड़े और निर्माता को बदनामी का कारण बनकर उसके व्यवसाय को बेतरह गिरा दें।"

यही बात हर क्षेत्र के बारे में है। बुरे आदमी भी परिश्रम करने और चतुरता का परिचय देने में खरे भी सिद्ध हो सकते हैं। इतने पर भी इस कार्य का स्तर सदा गया—गुजरा ही बना रहेगा। लोक सेवा के कार्यों में संलग्न व्यक्ति प्रत्यक्षः देशभक्त होते और समाज कल्याण के काम करते पाये जाते हैं। इतने पर भी यदि वे चरित्र की दृष्टि से बुरे आदमी हैं तो अपने कार्यों के सम्बन्ध में भी जन-साधारण को आश्वस्त न कर सकेंगे और चरित्र की तरह उद्देश्य के सम्बन्ध में भी सन्देह उत्पन्न करते रहेंगे।

आदमी काम जो भी करे, प्रक्रिया कोई भी अपनाये पर उस पर कर्त्ता के वास्तविक व्यक्तित्व की छाप रहेगी ही। ऐसा हो ही नहीं सकता कि कर्त्ता किसी भी स्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का क्यों न बना रहे उसकी कृतियाँ सत्परिणाम ही उत्पन्न करती रहें। काम को खूबसूरती से निपटा देना कुशलता के ऊपर निर्भर है किन्तु उनकी अन्तिम परिणति तो उस चरित्र एवं उद्देश्य के अनुरूप ही होगी जो कर्त्ता के अन्तराल या व्यक्तित्व में सन्निहित है।

कुशलता और सफलता को सदाशयता से अधिक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यह मान्यता सही नहीं है कि मनुष्य निजी जीवन में कुछ भी क्यों न बना रहे, उसका परिश्रम लोकोपयोगी होना चाहिए। व्यक्ति मशीन नहीं है जो अपने निर्माण में एक सपना बनाये रह सके। वह अपने चिन्तन, चरित्र और व्यक्तित्व की छाप भी किये हुए कामों पर छोड़ता है और यह छाप इतनी विलक्षण होती है कि कामों का स्तर बनाने तथा परिणाम उत्पन्न करने में आश्चर्यजनक भूमिका निभाती है।

इस संसार के बाजार में एक से एक आकर्षक वस्तुएँ बिकने के लिस सजी-सजाई रखी हैं। बच्चे जिधर से भी निकलते हैं उधर की ही चमकीली वस्तुओं को देखकर ललचाने—और पाने के लिए मचलने लगते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता कि जिनके लिए इतनी आतुरता है वे उनके उपयोग की भी हैं या नहीं।

अनुकरण की प्रवृत्ति होती तो है, पर देखना यह भी होता कि किनका अनुगमन किया जाय ? चाहे जिसके पीछे चल पड़ने, चाहे जिसकी नकल बनाने, चाहे जिसका कहना मानने और चाहे जिस जैसा बनने का उपक्रम सपना है, जिसे देखकर यही कहा जा सकता है कि मेले के आकर्षण में बौखलाये बच्चे की तरह अनुपयोगी और जेब से अधिक कीमत की वस्तुएँ प्राप्त करने की बाल-बुद्धि अनियन्त्रित हो रही है।

दुनिया में क्या नहीं ? यहाँ हर प्रयोजन की हर चीज, मौजूद है, पर उसका मतलब यह तो नहीं कि वे सब अपने लिए ही हैं। ललचाता मन देते समय भगवान ने मनुष्य को ऐसा विवेक भी दिया है जिसके सहारे यह जाना जा सके कि अपने लिए क्या उपयोगी और क्या अनुपयोगी है ? क्या अपनी सामर्थ्य के भीतर और क्या बाहर है ? परामर्श देने वालों की जो मनःस्थिति, योग्यता, साधन, परिकर, वातावरण है वह अपने पास भी हो यह आवश्यक नहीं। उन्हें जो रुचता या पचता है वही अपने लिए भी फिट बैठेगा इसका कोई निश्चय नहीं। ऐसी दशा में हर विचारशील ही अपनी स्वतन्त्र बुद्धि का ही उपयोग करना चाहिए कि उन्हें किस मार्ग पर चलना या क्या बनना है ?

लक्ष्य निर्धारण करते समय एक बात का ध्यान रखा ही जाना चाहिए कि उत्कृष्टता का परित्याग न किया जाय। सराहनीय समझदारी यह है, जो जीवन प्रवाह को आदर्शवादी दिशाधारा में गतिशील होने की प्रेरणा देती है। मार्ग कुछ लम्बा भी है, कठिन भी उस पर चलने वाले उतनी ऊँचाई तक चढ़ सके हैं जिसे सामान्य लोग जीवित रहते स्वर्ग तक जा पहुँचने के समतुल्य मानें और आश्चर्यचकित होकर देखें। आवश्यक नहीं है कि विलासिता, संग्रह और वाहवाही समेटने को ही बुद्धिमता माना जाये। ऐसी जीवनचर्या अपनाना, ऐसा रास्ता अपनाना भी घाटे का सौदा नहीं जिसमें वैभव तो सामान्य ही रहता है पर आत्म-गौरव और श्रद्धा सहयोग अर्जित करने में कमी नहीं रहती।

व्यक्तित्व का स्तर गिरायें नहीं, ऊँचा रखें

अस्थिरता, आतुरता, अव्यवस्था और आशंका की चाण्डाल चौकड़ी मनुष्य की उस क्षमता का बुरी तरह शोषण, अपहरण करती रहती है जिसके सहारे कोई भी अभीष्ट प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

अधीरता ओछेपन का चिन्ह है। अपना कुछ निश्चय ही न हो। हवा के साथ उड़ने वाले तिनके की तरह जिस-तिस के प्रभाव या प्रवाह में बहते रहा जाय तो बात कुछ बनेगी नहीं। मनुष्य का अपना व्यक्तित्व होना चाहिए और अपना निश्चय सन्तुलन हर दृष्टि से आवश्यक है। उसके बिना न सकंटों से उबरना सम्भव हो सकता है और न प्रगति का मार्ग मिलता है। यहाँ तक कि भीतर का खोखलापन सामान्य जीवन को भी कठिन बना देता है। अवास्तविक आशंकाएँ सिर पर छाई रहती हैं और उन्हीं के दबाव से आदमी का कचूमर निकलता रहता है।

परीक्षा काल में छात्रों की मानसिक शक्ति का व्यय किस क्रम से होता है उसका सर्वेक्षण अमेरिका की मिशिगन युनिवर्सिटी में किया गया, उसमें पाया गया कि प्रश्न-पत्र पाने पर उसकी कठिनाई, चिन्ता, आतुरता, आशंका आदि के कारण आरम्भ में वे अधिक उत्तेजित रहे और उतने समय तक अधिक मानसिक शक्ति गँवाते रहे। जब उनने प्रश्न पत्र हल करना आरम्भ कर दिया, तो उत्तेजना सन्तुलन में बदल गई और उत्तर लिखने में जो मानसिक श्रम करना पड़ा वह उत्तेजित स्थिति की तुलना में कहीं कम था।

अधिक और सही काम कर सकने का मूड़ लाइमेक्स वस्तुतः सन्तुलित, प्रसन्न और आशान्वित मनःस्थिति का ही उत्पादन है। लोग उसे अनायास बरसने वाला दैवी अनुदान जैसा मानते हैं और उसकी प्रतीक्षा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आशा लगाये बैठे रहते हैं। वर्षा होने पर बीज बोने की बात सोचकर जो हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते हैं, उनसे वे अधिक बुद्धिमान हैं जो कुएँ से सिंचाई करके समय पर खेत में बीजारोपण कर लेते हैं। मूड़ बन जाय या बनाया जाय दोनों ही स्थितियों में मानसिक सन्तुलन और रचनात्मक उभार आवश्यक है। यह उत्पादन, निश्चित रूप से अपने प्रयत्न द्वारा भी किया जा सकता है।

कितने ही लोग बातें करने में बहुत कुशल होते हैं। उनके तर्क, लहजे, प्रमाण और उदाहरण ऐसे होते हैं जिनसे सुनने वाले सहज ही प्रभावित हो जाते हैं। कुछ को तो बोलने की ऐसी आदत होती है कि जीभ रोके नहीं रुकती और कैंची की तरह चलती ही रहती है। कई बार तो ऐसे लोगों से सुनने वाले ऊबने लगते हैं और किसी प्रकार जान छुड़ाने की बात सोचते हैं। दूसरों को कुछ कहने का वे अवसर ही नहीं आने देते। अधिक बक-झक कुल मिलाकर मनुष्य के स्तर को घटाती और व्यक्तित्व को गिराती है। बकवास सभ्य आचरण में नहीं गिनी जाती। उससे छछोरापन टपकता है। कम और सारगर्भित बोलने वाले बुद्धिमान भी समझे जाते और उनकी बात का प्रभाव भी पड़ता है। वार्तालाप का यह कौशल यदि बहिर्मुखी न रहने देकर अन्तर्मुखी बना लिया जाय तो बुद्धिमत्ता की मात्रा में सहज ही आशाजनक अभिवृद्धि हो सकती है।

मन की दो परतें हैं—एक बाजारू बचकाना—दूसरा सम्मानित उपाध्याय। अध्यापक के प्रशिक्षण में छात्र की योग्यता बढ़ती है। बचकाने मन का समुचित प्रशिक्षण करना यदि उपाध्याय को रुचिकर लगे तो यह क्रम हर घड़ी चलता रह सकता है। सोचने का सही तरीका भर यह छात्र यदि ठीक से सीख सके तो उतने भर से मन:संस्थान की गरिमा अत्यधिक बढ़ सकती है। अस्त-व्यस्त चिन्तन से मानसिक शक्तियों का अपव्यय ही नहीं होता, वरन् हानिकारक गतिविधियाँ अपना लेने और पग-पग पर ठोकरें खाने का भी खतरा रहता है। जिस प्रकार बच्चों को शिष्टाचार सिखाया जाता है और बछड़ों को कृषि कार्य के लिए सधाया जाता है उसी प्रकार मन को भी सही सोचने और सही करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। यह कार्य अपना ही उच्चस्तरीय मन कर सकता है। वह मन जिसे अध्यापक, उपाध्याय की योग्यता अनायास ही प्राप्त है।

कई परिवारों में संकोचशीलता की कुछ विलक्षण प्रथा चल पड़ती है। एक दूसरे से बहुत कम बोलते हैं और आमने-सामने आने से कतराते रहते हैं। कहने को तो इसे शील-संकोच भी कह लिया जाता रहा है, पर वस्तुत: इसे दब्बूपन जैसा ही कुछ नाम दिया जाना चाहिए। परस्पर घुल-मिलकर बातें करने से मन हल्का ही नहीं होता, घनिष्ठता बढ़ती है, गुत्थियाँ खुलती हैं और कई उपयोगी निष्कर्ष निकलते हैं। यही बात मन के सम्बन्ध में भी है। मन से मन को समझाने की परस्पर शंका-समाधान, विचार- विनिमय और आदान-प्रदान करने की आदतें ऐसी अच्छी हैं कि दृष्टिकोण में आशाजनक सुधार होता है। दुष्प्रवृत्तियाँ छूटती हैं और सर्वतोमुखी प्रगति के कितने ही अप्रत्याशित द्वार खुलते हैं।

परिस्थितियों को सुधारने की बात सभी सोचते हैं किन्तु यह भूल जाते हैं कि मन:स्थिति पर ध्यान देना और भी अधिक आवश्यक है। यदि अपने चिन्तन को परिष्कृत और क्रिया-कलाप को व्यवस्थित बना लिया जाय तो परिस्थितियों की प्रतिकूलता बहुत हद तक स्वत: ही सरल हो जायेगी। जो बच रहेगी उससे सूझ-बूझ और साहस के सहारे निपट लेना कुछ अधिक कठिन न रहेगा। प्रतिकूलताओं से डरने की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त है कि उनसे निपटने के कौशल को उभारा और परिपक्व किया जाय।

शेख कहते थे—''आपत्तिकाल का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह हमें संसार की कटुई सच्चाइयों से परिचित कराता है। मित्रों और शत्रुओं के वास्तविक रूप को नंगा करके सामने खड़ा कर देता है।'' लुकमान ने कहा—'आपत्तिकाल से पार होने का सबसे बड़ा सहारा है, उज्ज्वल भविष्य की आशा।' अँधेरी रात प्रात:काल की प्रतीक्षा में सहज की कट सकती है। आपत्ति में डूबता वह है जिसने अन्धेरे भविष्य का अन्धकार अपने चारों ओर सँजोकर रख लिया है।

हर स्थिति में हल्के-फुल्के बने रहने की आदत उत्पन्न कर लेना जीवन को सरस बनाने की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण कला कौशल है। खिलाड़ी की दृष्टि रखें तो हार-जीत में सन्तुलन बिगड़ने न पायेगा। नाटक के पात्र अपने अभिनय में चूक नहीं करते, किन्तु प्रदर्शन के घटना-क्रम में इतने प्रभावित भी नहीं होते कि आवेशग्रस्त होकर अपनी नींद ही हराम कर बैठें। यही मध्यवर्ती मन:स्थिति हमारी होनी चाहिए।

मेसाचुसेट्स इलाके के ग्रेटवरीग्टन है, उपनगर का निवासी परसी एच व्हाइटिंग नामक एक हंसोड़ ने अपना जीवन वृतान्त लिखते हुए बताया है कि उसने जवानी के बीस वर्ष ऐसी बीमारियों से लड़ते हुए बिताये जिन्हें मौत की सहेली माना जाता है। डॉक्टर उसे असाध्य बताया करते थे। इलाज करके बदनामी लेने के लिए बड़े चिकित्सक तो तैयार ही न होते थे। बाप दवाओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुकान करते थे। उनकी जान-पहचान बहुत से डाक्टरों से थी सो चित्र-विचित्र बीमारियों के इलाज और नित नये उपचार पर प्राय: चर्चा होती ही रहती थी। दवाओं पर खर्च भी बहुत हुआ था। पर उससे नतीजा कुछ नहीं निकला।

अन्तत: उसने अपना इलाज अपने हाथ में लिया। आहार-विहार को सुसंयत करने के अतिरिक्त उसने एक अच्छी आदत सीखी—वह थी, मुसकराते रहने और अवसर मिलते ही जी खोलकर हँसने की कला। इस उपचार ने उसका काया-कल्प ही कर दिया। वह बीमारियों से अपने आप छूटा और औसत मनुष्यों की तुलना में अधिक अच्छी तन्दुरुस्ती का जीवनयापन करने लगा। लोग उसके इस आश्चर्यजनक परिवर्तन की बात पूछते तो वह एक ही उत्तर देता—मैंने मरना बन्द कर दिया, फलत: जिन्दगी वापिस लौट आई। वह विषाद को मौत और मुस्कान को जिन्दगी की संज्ञा दिया करता था।

आदमी काम से नहीं थकता 'ऊब' से मरता है। काम में रस लेने लगे तो वह भार न रहकर विनोद बन जाता है। और उसे छोड़ने को मन नहीं करता जबकि भार समझकर करने वाले तनिक से श्रम और समय में बेतरह थकान अनुभव करते और छूटने के लिए आतुर रहते देखे गये हैं।

अलेग्जेन्ड्रिया-वर्जिनिया के एण्टनी नामक अध्यापक ने एक कालेज में पूरे ४८ वर्ष तक काम किया। इस बीच उनने एक दिन के लिए भी स्कूल जाना बन्द नहीं किया। रविवार तथा अन्य छुट्टी के दिनों में भी वे स्कूल जाते थे तथा सफाई व्यवस्था आदि के कामों को अपने हाथों निपटाते थे। बीमारी तथा आकस्मिक कार्यों के लिए भी कभी उन्हें एक भी छुट्टी नहीं लेनी पड़ी।

किसी विषय में गहरी दिलचस्पी और अभिरुचि का होना सामान्य क्षमता को असामान्य बनाने की दृष्टि से बहुत ही कारगर सिद्ध होता है। साधनहीन और पिछड़ी स्थिति के लोग भी अपने विषय में गहरी दिलचस्पी उत्पन्न करके उस प्रयास में पारंगत होते देखे गये हैं।

स्कॉटलेण्ड का प्रख्यात कवि मैकइन्तायर सन् १७२४ में जन्मा और १८१२ में मरा। इन ८८ वर्ष के लम्बे जीवन में उसने हजारों कविताएँ गढ़ी और वे इस देश के साहित्यिक इतिहास में अनुपम मानी जाती हैं। यह कवि निरक्षर था। उसे न तो पढ़ना आता था और न लिखना। इसके लिए उसने प्रयत्न भी नहीं किया। वह कहता था स्मरण शक्ति ठीक काम दे तो पढ़ना और लिखना, सीखने में क्यों समय नष्ट किया जाय ?

हमारे जीवन शिथिल और अनियन्त्रित होते चले जा रहे हैं। भरी जवानी में ही बुढ़ापे की संख्या आ घेरती है। समय से पहले इस प्रकार बुढ़ापे का आगमन चिन्ताजनक है। जिसमें बच्चे और युवक भी जवानी का आनन्द न ले पायें। आँधी-तूफान की गति से अपने समाज पर बुढ़ापे का असर बढ़ता जा रहा है। यह शारीरिक नहीं मानसिक दुर्गति है। जो अपने को जवान मानता रहेगा उसकी जवानी बुढ़ापे में भी बनी रहेगी।

अनीति से समझौता कर लेना और उसके प्रतिरोध के लिए साहस न कर सकना यह बताता है कि आन्तरिक शौर्य गँवा दिया गया। किसी भी कीमत पर स्वार्थ सिद्ध करने की जहाँ उतावली हो, वहाँ इस बात की परवाह कौन करेगा कि इस प्रकार की उपलब्धियों में अनीति का आश्रय तो नहीं लिया गया है।

कुटिलता मनुष्य का गुण नहीं है। उसे शैतान का षड्यन्त्र कहा गया है, जहाँ कुचक्र रचे जाते हैं, षड्यन्त्रों का आश्रय लिया जाता है। दुरभिसंधियाँ रची जाती हों, वहाँ मानवी गरिमा का दिवाला ही पिट गया समझा जाना चाहिए। ऐसे मनुष्य क्या कमाते, क्या पाते और क्या खाते हैं ? प्रश्न इस बात का नहीं है। देखना यह है कि जिन घिनौने तरीकों से इन उपलब्धियों को पाया गया क्या वे मानवी गरिमा के अनुकूल थीं ? यदि नहीं, तो उन सुविधाओं को अत्यधिक महँगे मूल्य पर खरीदा गया समझा जाना चाहिए।

बालकों जैसा सरल, सौम्य यह निश्छल जीवन एक दैवी वरदान है, जिसके इर्द-गिर्द सुखद सम्भावनाएँ निरन्तर मँड़राती रहती हैं। न महत्त्वाकांक्षाओं की आग में जलें और न आशंकाओं से मन को भयभीत बनाये रहने की भूल करें। जो सामने है, उसका सदुपयोग करना और आनन्द लेना ही सच्चा कर्म कौशल है। इसे अपनाकर हर परिस्थिति का व्यक्ति सुखी और सरस जीवन जी सकता है।

आइन्स्टाइन जब मरने को हुए तो किसी ने उनसे पूछा—"आपको मरने से डर तो नहीं लगता ? उनने शांत भाव से उत्तर दिया—सर्वत्र संव्याप्त चेतना के साथ मैंने इतनी आत्मीयता जोड़ ली है कि मुझे अपनों से अलग होने जैसा आभास ही नहीं हो सकता। साथ ही उनने यह भी कहा था—"परिवर्तन प्रकृति की अनवरत् खिलवाड़ है इस सामूहिक क्रीड़ा-विनोद से हम अलग कैसे रह सकते हैं। परिवर्तन की स्वाभाविकता में डरावनापन नहीं, सहज प्रवाह है, जो सरस भी है और सुगम भी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन को हल्का-फुल्का रखने के लिए आवश्यक यह है कि व्यक्तित्व का मूल्य समझा जाय और उसे प्रखर परिष्कृत बनाने की लिए चिन्तन और चरित्र का स्तर गिरने न दिया जाय।

व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण जादुई कायाकल्प

मनुष्य की समूची अन्तर्निहित क्षमताएँ एक-एक करके जीवनक्रम का अंग बनें, इस हेतु जरूरी है कि अनुपयोग के कारण धूल-गर्द में पड़ी जंग खारही मानसिक चेतना सही ढंग से सन्तुलित रूप से क्रियाशील हो। उपयोग की कुशलता न मालूम होने पर अनाड़ी चालक नई से नई मोटर को खड्ड में गिराता तथा अपने साथ औरों की भी जान गँवाता है। कारतूस और राइफल में शेर और हाथी मारने की सामर्थ्य होते हुए भी बेवकूफ निशानेबाज से चिड़िया मारना भी नहीं बन पड़ता। इतना ही नहीं राइफल के धक्के से खुद ही लुढ़ककर गिर पड़ता है। मन की जादुई ताकत उपयोग के कौशल के अभाव में निष्क्रिय पड़ी रहती अथवा आधे-अधूरे ढंग से अभिव्यक्ति हो पाती है।

यों मन का वैभव अपार है। विचारक गुह्यवेत्ता, मनोविज्ञान के आचार्य सभी अपने शोध अनुभवों के आधार पर एक मत से इस सत्य को स्वीकार करते हैं। इसके बाद भी तथ्य यही है कि आज का आदमी अपने को संकटों से घिरा, परेशानी में फँसा असहाय सा अनुभव कर रहा है। उसे न तो निकल भागने की कोई राह सूझ रही है और न ही उलझनों को सुलझाने के कोई समाधान।

कारण कि मानसिक चेतना अपने सुघरे-सँवरे रूप में ही अपने रत्न उछालती है। ऐसी ही दशा में ये विभूतियाँ चरित्र के गलियारे से चलकर व्यवहार के दरवाजे से बाहर निकलती हैं और बरबस सभी का मन मोह लेती हैं। इसमें सफल जन व्यक्तित्व सम्पन्न कहलाते हैं और प्रतिभावानों की श्रेणी में गिने जाते हैं। सभी के पास मन होते हुए भी ऐसों की गिनती उँगलियों पर गिने जाने लायक भर हैं। ''होल ब्रेन थिंकिंग'' के रचनाकार मनःशास्त्री ''जैक्यूलिन वन्डर व प्रिंसिला दोनोवान'' ने अपनी इसी पुस्तक में कारण को समझाने की चेष्टा की है। उनके अनुसार बेतरतीब और अस्त-व्यस्त होने के कारण हमारे मन का मात्र एक छोटा-सा भाग सही ढंग से क्रियाशील रहता है। बाकी की प्रभाविकता अल्प या न्यून होती है।

मनोवैज्ञानिक स्पेरी ने समूचे मन में निहित विभूतियों को दो वर्गों में बाँटा है—आदर्श प्रधान और यथार्थ प्रधान। आदर्श प्रधान वर्ग में कल्पना, रचना, संवेदना, अनुभूति, बहुआयामी चिन्तन, दूरगामी योजना बनाना, चेहरे, आकार के माध्यम से व्यक्तित्व की गहरी परतों में प्रवेश, दर्शन, विविध कलाओं में कुशलता, साहित्य में विशेषज्ञता आदि की गणना की जाती है। जबकि यथार्थोन्मुख वर्ग में विविध भाषाओं के ज्ञान, तार्किक और विश्लेषक चिन्तन, तंत्र व संगठन गणित करने, सन्तुलन बिठाने, द्विआयामीय चिन्तन, गणितीय आँकलन तथा सामान्य बौद्धिक क्षमताएँ आती हैं।

इस सबके बाद भी मन में बिखराव तथा सन्तुलन के अभाव के कारण व्यक्ति मूढ़ता के चंगुल में फँसा बुद्धू बना रहता है। इतना ही रहे—तब भी ठीक है। असन्तुलन की बढ़ती दर अनेकों समस्याओं को जन्म देती और विघटन के नए-नए स्वाँग खड़े करती है। अमेरिकन मनोवेत्ता व्ही० एच० मार्क एवं एफ० आर० इरविन ने ''वायलेन्स एण्ड ब्रेन'' में इस असन्तुलन से दो स्थितियों का पनपना स्वीकारा है। पहली स्थिति में क्षमताओं के कपाट बंद होते हैं और मनुष्य अपने को निस्तेज व शक्तिहीन पाता है। दूसरी दशा शक्तियों के अनियंत्रित बहाव की है। ऐसे में इनका सुनियोजित उपयोग कर पाना असम्भव होता है। आक्रामकता और उन्माद इसी दशा में जन्म लेते और बढ़ते हैं।

पिछले दिनों फिलीपाइन्स के मनीला स्थित ''एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेण्ट'' ने इस सम्बन्ध में एक विस्तृत सर्वेक्षण किया था। जिसकी रिपोर्ट 'टाइम' पत्रिका में प्रकाशित हुई। प्रकाशित विवरण के अनुसार समाज में अधिकांशतया दो तरह के लोग हैं। पहले उपरोक्त असन्तुलित, दूसरे वे जो मन के यथार्थोन्मुख हिस्से का थोड़ा बहुत उपयोग करते, बाकी भाग को निठल्ला छोड़ देते हैं। बढ़ती जा रही यथार्थवादी प्रवृत्ति, पनपता बुद्धिवाद, धन-शक्ति के पीछे भाग-दौड़ का यही कारण है। उपर्युक्त पत्रिका का यह मानना है कि पश्चिमी जन-जीवन पर यथार्थवादी चिन्तन हावी हो गया है, जबकि पूर्व विशेषतया भारत के सांस्कृति चिन्तन से ऐसे संकेत मिलते हैं कि यहाँ की सभ्यता ने आदर्शवादी जीवन प्रणाली पर बल दिया है। यही नहीं यहाँ के निवासियों ने चिन्तन में यथार्थ और आदर्श के सन्तुलन को अपनाया होगा। अन्यथा एक व्यक्ति से एक साथ आध्यात्मिक और वैज्ञानिक गवेषणाएँ सम्भव न बन पड़तीं।

आज भी ऐसा ही सन्तुलन जरूरी हो गया है। पश्चिमी के ख्यातिनामा भविष्यवेत्ता जॉन नेयाविट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''मेगाच्वाइसेज'' में लिखते हैं धरती की सभ्यता एक बार पुनः पुराने ऋषि नेतृत्व का अनुगमन करेगी। ऐसा अनुगमन जिसमें मानवी मन चिन्तन के स्तर यथार्थ व आदर्श के मध्य सामंजस्य बिठाने और व्यवहार में उसे लागू कर पाने में समर्थ होगा। स्वाभाविक है ऐसे युग में वही टिक सकेगा जो इसे कर्तव्य के रूप में पहचान कर निर्वाह कर सके।

एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेण्ट मनीला ने इस ओर पहला किन्तु प्रभावी कदम उठाया है। उसने प्रबन्धकों को प्रशिक्षण देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि उन्हें समूचे मन का सन्तुलित रीति से उपयोग करना आये। ताकि वे भावी समय में अधिक उपयोगी साबित हो सकें। भावी समय में उपयोगिता के आधार पर कार्यक्रम बनाने के कारण इस योजना का नाम ही ''भावी समय के प्रबन्धकों का प्रशिक्षिण'' रखा गया है।

हमारी अपनी उपयोगिता भी भावी युग में असंदिग्ध हो इसके लिए उपर्युक्त नीति ही उचित रहेगी। मानसिक क्षमता को जगाने और सन्तुलित उपयोग करने का कौशल बताते हुए एफ० टी० मिखेलोव का ''द रिडिल ऑफ सेल्फ'' में मानना है कि सर्वप्रथम हम अपनी चेतना में समाई शक्तियों के प्रति जागरूक हों। इनके प्रति विश्वास जमाएँ। साथ ही यह समझें कि प्रत्यक्ष-यथार्थ का उपयोग आदर्श के लिए है। आदर्श को व्यवहार मे उतार लाना ही सार्थक है।

इसके लिए काम बदलने अथवा दोनों ही प्रकार के कामों का दैनिक जीवन में समावेश करने को मनोविज्ञान में प्रभावी माना है। उदाहरण के लिए, दैनिक कामों में सेवा, सत्साहित्य अध्ययन का भी समावेश किया जाय। इससे यथार्थ परायण जीवन में बढ़ती जा रही तार्किकता, विश्लेषक चिन्तन के साथ सोई पड़ी आदर्शवादी संवेदना, कल्पना जगेगी। इतना ही नहीं अनुभूति का भी विस्तार होगा। यथार्थवादी चिन्तन और जीवन में आदर्शों का समावेश सूखे पड़े पतझड़ वाले वन में बसन्त की तरह नव जीवन में बहार लाने वाला सिद्ध होगा।

मानसिक चेतना के दोनों पक्षों को उभारें। यह उभर सकें ऐसी जीवन प्रणाली गठित करें। इस तरह उपजे सन्तुलन से चेतना के क्षेत्र में समाई रहस्यमयी शक्तियाँ पूर्ण प्रखरता के साथ जीवन में उतरेंगी और समूचे व्यक्तित्व का जादुई रीति से कायाकल्प होता दीख पड़ेगा। प्रतिभावानों के भावी युग में स्वयं अपना भी विशिष्ट स्थान होगा।

सर्वांगीण विकास का साधन व्यावहारिक वेदान्त

भारतीय दर्शनों में वेदान्त का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी तत्ववेत्ताओं ने चिन्तन के क्षेत्र में इसे शीर्ष स्थानीय माना है। विचारकों की यह मान्यता अकारण हो, ऐसा नहीं है। सहस्राब्दियों पूर्व ऋषि कहे जाने वाले विचारकों ने विचारों के विशाल क्षीरसागर का मन्थन करके जो नवनीत निस्सृत किया, वही वेदान्त का रूप संकलित है। इन मनीषियों द्वारा प्रतिपादित सूत्र सिद्धान्त काल की दृष्टि से भले ही चिर-पुरातन हो गए हैं, पर उपादेयता की दृष्टि से सर्वथा नवीन हैं। जीवन के विकास हेतु आरोहण का पथ आज भी उसी तरह प्रशस्त करते हैं, जैसा पूर्व में किया था।

इन विचारों ने पूर्व व पश्चिम के अनेकानेक विचारकों, मनीषियों, दार्शनिकों, सन्तों को समान रूप से प्रभावित किया है। यह प्रभाव मात्र विचारणा के स्तर पर रहा हो, ऐसा नहीं है। जीवन की दिशा, कार्यपद्धति सहित आमूल-चूल परिवर्तन अभिनवरूप से उनका जीवन गठित हो सका। पूर्वी विचारकों में बोधायन, उपवर्ष, गुहदेव, कपर्दी, भारुचि, भर्तृमित्र, टंक, ब्रह्मदत्त, सुन्दर पाण्ड्य, गौड़पाद आदि आचार्य शंकर के पूर्ववर्ती चिन्तकों से लेकर सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य, वाचस्पति मिश्र, सर्वज्ञात्म मुनि, अद्वैतानन्द, बोधेन्द्र, विद्यारण्य, धर्मराजाध्वरीन्द्र आदि पश्चाद्वर्ती आचार्यों तक सभी ने अपने-अपने ग्रन्थों में इसके स्वरूप व महत्त्व को स्वीकारा तथा मानव व मानवता कापथ-प्रशस्त करने हेतु इसकी उपयोगिता-आवश्यकता पर बल दिया है।

वेदान्तरूपी सूर्य की किरणों से मात्र पूर्वी जगत आलोकित हुआ हो, ऐसा नहीं। इसकी प्रखरता व आलोक से पश्चिमी विचारकों के मन-मानस आलोकित हुए और उनने दिशा ग्रहण की। प्रख्यात विचारक टांमलिन ने अपने ग्रन्थ ''द ग्रेट फिलासफर्स'' के पृष्ठ २१८ पर वेदान्त के पश्चिमी जगत पर प्रभाव का उल्लेख करते हुए बताया है कि शांकर दर्शन की दिशा लगभग वही थी, जिसको उत्तरकाल में जाकर जर्मन दार्शनिक काण्ट ने अपनाया।

उपर्युक्त कथन के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाश्चात्य आलोचक विद्वान इसके प्रभाव को सहर्ष स्वीकारते हैं। वैसे तो अनेकों विचारक इसके ऋणी हैं। फिर भी देकार्त, स्पिनोजा, लाइब्निज, बर्कले, काण्ट, फिकते, शेलिंग, हेगल व शोपेनहार के दार्शनिक सिद्धान्तों में वेदान्त के स्वर की गूँज स्पष्ट सुनाई देती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फ्रांसीसी दार्शनिक व गणितज्ञ रेनेदेकार्त ने भारतीय चिन्तन के अनुरूप ही ईश्वर को सृष्टि का नियामक, उद्भवकर्ता समष्टि में उसकी उपस्थिति को स्वीकार किया है। श्री बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ ''भारतीय दर्शन'' में इसकी तुलना वाचस्पति मिश्र से की है। हालैण्ड के समृद्ध परिवार में जन्मे बारुच दे स्पिनोजा ने वेदान्त के ब्रह्म को सबस्टेंशिया के रूप में स्वीकारा है। अन्तर मात्र शब्दों का है न कि भावों का। वेदान्त की ही तरह इसने भी इस सत्ता को In setest and perse Concipitur अर्थात् स्वतंत्र तथा स्वत: सिद्ध माना है। शांकर वेदान्त के सदृश उक्त तत्व असीम, अविभाज्य, अद्वैत, स्वतंत्र तथा आनन्द रूप है। इसी कारण मैक्समुलर ने ''थ्री लेक्चर्स इन वेदान्त फिलासाफी'' के पृष्ठ १२३ पर दोनों के तुलनात्मक अध्ययन तथा गहन चिन्तन के उपरान्त घोषित किया कि उपनिषदों और शंकराचार्य ने जिस ब्रह्म का प्रतिपादन किया है, वह स्पष्ट रूप से वैसा ही है, जैसा कि स्पिनोजा का सबस्टेंशिया।

गोट फ्रीड, विल्हेम लाइब्निज के प्रधान दार्शनिक सिद्धान्त मोनेडिज्म पर भी वेदान्तिक द्वैतवाद का प्रभाव है। उसके ग्रन्थ ''दमोनेडालाजी'' तथा ''प्रिन्सीपल ऑफ नेचर एण्ड ग्रेस'' का अध्ययन करने पर इसकी स्पष्टता और भी अधिक हो जाती है।

वेदान्तिक प्रतिपादन ''माया'' की मान्यता को इसने भी ''मैटेरियाप्राइभा'' के रूप में स्वीकारा है। उसके अनुसार यह मैटेरियाप्राइभा ही है जो आत्म कणों का ऐक्य ईश्वर से नहीं होने देती। लाइब्निज की ही तरह आयरलैण्ड के प्रख्यात दार्शनिक जार्ज बर्कले के अध्यात्मवादी सिद्धान्त पर वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट गोचर होता है। उनके अनुसार विज्ञान के अतिरिक्त जगत की बाह्य वस्तुओं की सत्ता नहीं है। इसका यह कथन प्रश्नोपनिषद का भाष्य करते आचार्य शंकर के उस कथन की प्रतिध्वनि ही है, जिसमें उन्होंने कहा है ''जैसा-जैसा जो पदार्थ जाना जाता है। वैसा-वैसा ही जाना हुआ होने के कारण उस पदार्थ का स्वरूप होता है।'' इस प्रकार दोनों ही ज्ञान की सत्यता पर बल देते हैं। बर्कले का उक्त मत वेदान्त के दृष्टि सृष्टिवाद वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावलीकार प्रकाशानन्द ने भी किया है। जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि सकल जगत की सत्ता आत्मा में ही है।

सुविख्यात जर्मन दार्शनिक काण्ट के प्रतिपादनों में भी वेदान्तिक सिद्धान्तों की स्वर लहरियां गुंजायमान होती हैं। उनने परम सत्ता को ''दिंगएनसिश'' के रूप में माना है, जिसकी व्याख्या उनके तीन प्रधान ग्रन्थों-क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन, क्रिटीक ऑफ प्रेक्टीकल रीजन एवं क्रिटीक ऑफ जजमेण्ट में है। काण्ट शांकर मत की तरह ईश्वर को जगत का आधार मानते हैं। आत्मा के शुद्ध-आत्मस्वरूप ज्ञान की स्थिति के बारे में भी इनका मत शांकर के समान ही है। ईं केथर्ड ने ''द फिलॉसफी ऑफ काण्ट'' में स्पष्ट किया है कि काण्ट ने दो प्रकार की सत्ताएँ मानी हैं। एक व्यावहारिक सत्ता और दूसरी वस्तु सारात्मक सत्ता। यह दो की सत्ताएँ मानने में भी आचार्य शंकर के स्वर की गूँज सुनाई देती है। प्रो० रानाडे ने विशद् अध्ययन के उपरान्त अपने विश्व प्रसिद्ध अद्वितीय ग्रन्थ ''क्रन्सक्ट्रक्टिव सर्वे ऑफ उपनिषदिक फिलासफी'' में स्पष्ट किया है कि काण्ट द्वारा स्वीकृत उक्त दोनों सत्ताएँ भाव विचार की दृष्टि से आचार्य शंकर द्वारा उपदिष्ट व्यावहारिक एवम् परमार्थिक सत्ताएँ हैं।

वेदान्तिक चिन्तन का प्रभाव मात्र विचारणा के स्तर ही हो, ऐसा नहीं है। इसकी शोभा ग्रन्थालयों मनीषियों के तर्क-वितर्क वाद-विवाद तक ही सीमित न होकर जन सामान्य तक है। इसी सुरभि सर्वत्र समान रूप से फैली हुई है। यह व्यक्ति, जाति, देश, धर्म, सम्प्रदाय आदि किसी भी तरह की अर्गलाओं, शृंखलाओं से आबद्ध नहीं है। इसमें प्रतिपादित तत्व सर्वथा सार्वभौम व सर्वग्राही हैं। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार ''वेदान्त के तथ्यों को ग्रहण कर आत्मसात् कर लो, इन्हें स्वरूप में ढाल लो, फिर तुम कोई भी हो, किसी भी धर्म के हो, विकास के उत्कर्ष की ओर बढ़ते जाओगे''। वेदान्त व्यक्ति केन्द्रित नहीं अपितु व्यक्ति और समाज दोनों की ही उन्नति का साधन है। यही नहीं महात्मा गांधी ने इसके साधन पक्ष के तत्व सत्य, अहिंसा का आश्रय लेकर देश को दासता से मुक्ति दिलाई।

विश्व के प्रमुख विचारकों के अनुसार मानव समाज की विविध समस्याओं का समाधान चाहे वे आर्थिक हों या रंगभेद की अथवा साम्प्रदायिक कट्टरता की, वेदान्त के व्यवहारिक प्रयोग द्वारा ही सम्भव है। वेदान्त काल और देश के सीमाओं को तोड़कर मानव मात्र में ही नहीं, प्राणि-मात्र समत्व और एकत्व की बुद्धि जाग्रत करता है। इस दृष्टि से वेदान्त जीवित और व्यावहारिक है। मानव और मानवता के शाश्वत कल्याण यही सुगम व सरल राजमार्ग है, जिस पर चल पड़ने के लिए ऋषियों की गुरु गंभीर वाणी **''उतिष्ठजागृत''** का सन्देश सुनाकर चल पड़ने को प्रेरित कर रही है। इस पथ पर आरूढ़ होकर स्वयं का सर्वांगीण विकास करने के साथ-साथ मानव जाति के समक्ष एक ऐसे प्रकाश संकेतक-मार्ग दर्शक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ जा सकता है, जैसे कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ हुए थे। बिना एक पल की देर लगाए—इस ओर बढ़ चलने का उत्साह सभी को जाग्रत करना चाहिए।

तनकर खड़े रहो जीत तुम्हारी है

मनोवैज्ञानिक डा० नारमन विन्सेण्ट पीले के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उसके चिन्तन और चरित्र पर निर्भर करता है। निषेधात्मक या विधेयात्मक चिन्तन मनुष्य को हेय नर-पशु अथवा उठा हुआ देव मानव बना देता है। विधेयात्मक चिन्तन एक प्रकार की विचार शैली है, जिसमें व्यक्ति विषय या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना मनोबल ऊँचा बनाये रहता है और अच्छे परिणामों की आशा रखता है। विपन्न परिस्थितियाँ, प्रतिकूलताएँ एक नया स्वर्णिम सुअवसर लेकर आती हैं, जिनसे वह सबक सीखना और अपने व्यक्तित्व को निखारना, प्रखर बनाना अनिवार्य समझता है। विधेयात्मक पक्ष की ओर देखना, सोचना, संकल्पयुक्त विवेकशील मन की एक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के चयन पर निर्भर करती है।

अच्छाइयों में आस्था रखने वाले आत्मविश्वासी उत्साही व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में यह बात सदैव जीवन्त बनी रहती है कि 'प्रगति एक दरवाजा रास्ता बन्द हो जाने पर सुनिश्चित रूप से दूसरे अनेक रास्ते खुलेंगे ही। विधेयात्मक दृष्टिकोण अपनाने वाले सदैव बुराइयों से अपना पीछा छुड़ाने और अच्छाइयाँ को अपनाने का प्रयत्न करते हैं। फलतः अच्छाइयाँ उनके जीवन और दृष्टिकोण का अंग बन जाती हैं। ऐसे व्यक्ति उज्ज्वल भविष्य की ओर देखते हैं और अन्धकारमय क्षणों—प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक प्रफुल्ल, उत्पादक और रचनात्मक दिशाधारा अपनाते हैं। यह मनोदशा ही उन्हें द्रुतगति से सफलता की ओर ले जाती है। उत्साही व्यक्ति ही विघ्न-बाधाओं से लोहा लेते और उन्हें निरस्त करते हुए प्रगति पथ पर आगे बढ़ते हैं।

प्रख्यात विचारक एवं मनीषी विलियम जेम्स के अनुसार संसार में दो तरह के व्यक्ति पाये जाते हैं। पहले हैं—टफ माइण्डेड (सख्त स्वभाव वाले) तथा दूसरे हैं—टेण्डर माइण्डेड (नरम स्वभाव वाले संवेदनशील) व्यक्ति। नरम स्वभाव वाले व्यक्ति कठिनाइयों विघ्न-बाधाओं के उपस्थित हो जाने पर विचलित हो उठते हैं। आलोचना किये जाने पर तो उनका दिल ही बैठ जाता है। वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जो रिरियाते, चीखते-चिल्लाते भर हैं और कुछ न कर पाने के कारण असफलता ही उनके हाथ लगती है। सख्त मिजाज वालों की स्थिति इनसे भिन्न होती है। जीवन के हर क्षेत्र में वे सक्रिय और सफल होते देखे गये हैं। कैसी ही विषम कठिनाई या प्रतिकूलता क्यों न हो उससे वे हार नहीं मानते। प्रतिकूलता को ईश्वर का वरदान समझकर नई सूझ-बूझ के साथ उसका सामना करते हैं। विश्व प्रख्यात लेखक स्काट निवासी थामस कार्लाइल में ऐसे ही व्यक्ति थे, जिन्हें अपनी सारी जिन्दगी पाकामस्ती में काटनी पड़ी थी फिर अध्यवसाय के बलबूते वे सफलता की चरम सीमा तक पहुँचे थे। उनकी समाधि पर बने चबूतरे से एक ओर खुदी उनकी कुछ प्रेरक पंक्तियाँ आज भी स्काटवासियों के लिए ही नहीं वरन् समस्त विश्वविद्यालयों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं। प्रेरक पंक्तियों से निष्कर्ष है "न तो कभी निराश हो और न कभी हार मानो—उठो, खड़े हो जाओ और संघर्ष करो जब तक विजयी न हो जाओ। ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।" कार्लायल कहते हैं—'जीवन हममें से प्रत्येक से यही पूछता है कि क्या तुम बहादुर बनोगे ? अथवा कायर बनना पसन्द करोगे? निश्चय ही हमें मजबूत निर्भय और उत्साही बनना होगा।' विधेयात्मक चिन्तन करने वाला व्यक्ति कायर नहीं हो सकता। वह स्वयं के जीवन में मानवता और ईश्वर में विश्वास रखता है, अपनी योग्यता और क्षमता को पहचानता है। वह निर्भीक और अपराजेय होता है। जो कुछ सामने आता है उसी से अपने उपयोग की अच्छाइयाँ छाँट लेता है।

भली-बुरी परिस्थितियों का निर्माण करना, बहादुर या कायर बनना व्यक्ति के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। विधेयात्मक पक्ष अपनाने पर कायर व्यक्ति भी धीरे-धीरे निडर और हिम्मत वाला बन जाता है, उसकी सारी परिस्थितियाँ पलट जाती हैं। अपनी त्रुटियों को पहचाना, उन्हें सुधारना, किये पर पश्चाताप करना, दण्ड पाना और भविष्य में वैसा न होने देने को कृत-संकल्पित होना अनिवार्य है। मन में सद्विचारों, सत्कर्मों और दृढ़-संकल्पों की त्रिवेणी जहाँ सदैव हिलोरे मारती रहती है, वहाँ प्रगति का रुका हुआ अवरुद्ध मार्ग अपने आप ढह जाता है। सद्विचारों में असीम शक्ति होती है। विचार गत्यात्मक, जीवन्त और रचनात्मक हो तो व्यक्ति परिस्थितियों को बदल सकता है, उन पर नियन्त्रण कर सकता है और अपना भविष्य सुखमय बना लेता है। लेकिन यदि विचार हेय स्तर के घृणा, बेईमानी और असफलता से भरे हुए हैं तो वे व्यक्ति तथा समाज के लिए विनाशकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।

डिजराइली कहा करते थे हमें अपने मस्तिष्क को महान विचारों से भर लेना चाहिए, तभी हम महान कार्य सम्पादित कर सकते हैं। लोग क्षुद्र विचारों अपने बारे में, अपने बीबी बच्चों, परिवार व्यापार आदि के सम्बन्ध में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही सदैव सोचते और मरते खपते रहते हैं। परिणामत: उसी स्तर के प्रतिफल भी उन्हें हाथ लगते हैं। यह एक तथ्य है कि जितना महान दृष्टिकोण और ऊँचे विचार होंगे, उसी अनुपात में हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता जायेगा। मनोवैज्ञानिकों की अवधारणा है कि मन-मस्तिष्क या अन्त:करण में उठने वाली वैचारिक तरंगें, कम्पन या भावनाएँ हमारे व्यक्तित्व को प्रकाशित करती हैं।

प्रख्यात मन:चिकित्सक मनोवैज्ञानिक एवं लेखक डा० नार्मन विन्सेण्ट पीले का कहना है कि जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए ध्यान देने योग्य प्रमुख बात है—ध्येय उद्देश्य का सुनिश्चित होना। आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक, भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति में से कुछ भी उद्देश्य हो सकता है। परन्तु मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति करना है। बाकी अन्य सुविधाएँ तो उसके इस उद्देश्य की प्रगति में मात्र सहायक भर हैं।

विलियन जेम्स की मान्यता है कि महान प्रयासों को प्रयोजनों को सफलतम् बिन्दु तक पहुँचने में प्रमुख बाधा 'थकावट' का आना, उमंगों का ठण्डा पड़ जाना है। यह एक प्रकार की ऊब या उचाट है, जो थोड़े से असामान्य प्रयास करने पर उत्पन्न होती है। थोड़े प्रयत्न के बाद ही व्यक्ति थक जाता है और हाथ में लिए कार्य को बीच में ही छोड़ देता है। यद्यपि ईश्वर ने मनुष्य के अन्दर विपुल शक्ति का भाण्डागार छिपा रखा है जिसे थोड़ी-सी कोशिश करने पर जाग्रत किया जा सकता है।

मनमस्तिष्क से निषेधात्मक चिन्तन को निकालने के लिए बोस्टन के प्रख्यात चिकित्सक डा० सारा जार्डन का सुझाया गया मार्ग सर्वमान्य है। डा० जार्डन का कहना है कि प्रत्येक दिन सुबह अपने मस्तिष्क को विचारों से रिक्त कर उसे शैम्पू से धोइये। समस्त वैचारिक गन्दगी युक्त धूल, निषेधात्मक चिन्तन को बुहार बाहर करें और उस रिक्त स्थान की पूर्ति सद्विचारों को मन में धारण कर करें। दिन भर उनकी सद्विचारों से अपने को ओत-प्रोत रखें। प्रतिदिन नये विचारों को अपनाने और अपनाये हुए विचारों को स्मृति-पटल पर दुहरति रहने से मन:संस्थान इतना शक्तिशाली हो जाता है कि बुरे विचार पास तक नहीं आ पाते। प्रकारान्तर से यह आत्म-शोधन का संकेत है। समाज में अगणित व्यक्तियों की तरह विचार और चरित्र भी भरे पड़े हैं। उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है पर हमें ग्रहण वही करने चाहिए जो हिम्मत बढ़ाते और भटकाव के क्षणों में भी मार्गदर्शन करते हैं।

स्वस्थ मनोरंजन-मनुष्य की एक नैसर्गिक आवश्यकता

मन को विश्राम देने की कला का नाम मनोरंजन है। इसी को आह्लाद, खुशी अथवा हल्कापन लाने वाली विद्या भी कहा जाता है। शरीर को आराम देने के साथ मन के आराम की भी जरूरत है। विश्राम काल में शरीर को ढीला छोड़ना पड़ता है और मनोरंजन के समय मन ढीला हो जाता है। यद्यपि बिना मनोरंजन के भी मन की थकान मिटाना सम्भव है। पर वह उच्चस्तरीय योग साधनाओं में लगे लोगों के लिए ही सम्भव है। जन सामान्य के लिए थके मन को राहत दिलाने का काम मनोरंजन के द्वारा ही बन पड़ता है। इसी कारण थक जाने के बाद लोग सिनेमा, टी.वी. देखने, गीत-संगीत सुनने, कहानी, चुटकले पढ़ने में खाली समय लगाकर मन को बहलाते हैं।

इस थकान मिटाने की जरूरत सभी को है। चौबीस घण्टे काम में जुटे रहने की सामर्थ्य साधारणतया किसी में नहीं होती। परिस्थिति विशेष में जब कभी भले ही सामान्य से अधिक काम किया जा सके। किन्तु इस ढर्रे को रोज अपनाने की चेष्टा करने पर रोग, अशक्तता, दुर्बलता का बिना बुलाए आ धमकना गैर-वाजिब नहीं है। अतएव जरूरी है शक्ति के अनुसार काम करने के बाद थकान को मिटाया जाय।

विश्राम के समय शरीर तो अपनी खर्च की हुई ताकत को पुन: अर्जित कर लेता है। पर इसके साथ मन की सक्रियता भी जुड़ी रहती है। मानसिक शक्तियों का खर्च होना भी स्वाभाविक है। मन तो सोते समय भी निष्क्रिय नहीं रहता। दिन भर जिन क्रिया-कलापों में व्यस्त रहा गया है। रात को सोते समय इसकी क्रियाशीलता उसी धारा में बनी रहती है। यदि ऐसा न हो तो भी मन न जाने कितनी इच्छाएँ, संकल्प, विकल्प सँजोने में जुटा रहता है क्योंकि सोते समय शरीर को तो विश्रामवस्था में छोड़ देते हैं, पर मन को भुला दिया जाता है, वह बेचारा उस समय भी काम में जुटा रहता है। इसे आराम मिले यह फिर से अपनी क्षमता का अर्जन कर सके, इसके लिए मनोरंजन निहायत जरूरी है।

पर यह प्रक्रिया मन से जुड़ी रहने के कारण केवल उथले स्तर तक सीमित नहीं है। इसका प्रभाव बहुत गहरा है। व्यक्तित्व की अनेक परतें इससे अछूती नहीं रहतीं। यही कारण है कि मनोवैज्ञानिकों ने इसकी शुद्धता और स्वस्थता अनिवार्य बताई है। स्वस्थ मनोरंजन जहाँ व्यक्ति को नई ताजगी देता, जीवन में रस घोलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मनोभूमि में नूतन शक्ति का संचार करता है, वहीं इसका अशुद्ध और अपरिष्कृत रूप उसे नीरस, कुण्ठित और पथ-भ्रष्ट बनाता है। जिस तरह स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति अनुपयुक्त आहार का क्रम अपनाकर अपने शरीर स्वास्थ्य को चौपट कर लेते हैं, उसी तरह स्वस्थ मानसिकता का विनष्टीकरण अस्वस्थ मनोरंजन द्वारा सम्पन्न होता है। इसका अवलम्बन मनुष्य को कुमार्गगामी और दुर्व्यसनी बना देता है। जहाँ स्वस्थ भाव में इससे व्यक्ति को आगे बढ़ने की प्रतिकूलताओं से डटकर लोहा लेने की, कठिनाइयों से संघर्ष करने की प्रेरणा मिलती है।

यह भी सहा है कि दुनिया के महापुरुषों से सामान्य जनों तक जिनकी प्रवृत्तियाँ विचार और कार्यक्षेत्र अलग-अलग रहते हैं और कोई भी चीज एक-दूसरे से नहीं मिलती, इसके प्रति समान रूप से सजग रहते हैं, सभी व्यक्तियों में हास्य विनोद और आमोद-प्रमोद की प्रवृत्ति समान रूप से विद्यमान रहती है।

इसकी आवश्यकता और महत्ता इतनी है कि इसे जीवन का अभिन्न अंग कहा जाना कोई अतिशयोक्ति न होगी। पर इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि उसके स्तर की ओर हमारा कोई ध्यान नहीं रहता। गरीबी, अशिक्षा, संकीर्णता अथवा कुछ अन्य जो भी कारण हों, अधिकांश लोग इसकी जरूरत तो महसूस करते हैं, पर इसके महत्व और प्रभाव को नहीं समझते अथवा यह कहा जाय कि उसे हेय स्तर का बनाए रखने में ही मन के किसी कोने को प्रसन्नता मिलती है।

एटकिन्सन ने अपने उपरोक्त ग्रन्थ में इसके अच्छे और बुरे स्तर के बारे में स्पष्ट धारणा व्यक्त की है। उनके अनुसार जो पशु-प्रवृत्तियाँ भड़काए, दोष-दुर्गुणों को उभारे वह हेय तथा जो मानवीय गुणों के प्रति आस्था जाग्रत करे, वह उत्कृष्ट। इस मापदण्ड के आधार पर सभी उपलब्ध मनोरंजन साधनों का विश्लेषण किया जा सकता है।

आजकल उपयोग में लाए जा रहे साधनों में फिल्म व साहित्य की प्रमुखता है। किन्तु खेद है, इस कसौटी पर कसने में निराशा ही हाथ लगती है। फिल्में देखकर पशु-प्रवृत्तियों के शिकार हुए लोगों की कितनी ही घटनाएँ नित्य प्रकाश में आती हैं। गीत-संगीत के नाम पर अधिकतर फिल्मी गानों का ही उपयोग किया जाता है। प्रचलित साहित्य की भी यही हालत है। मानवीय गुणों के प्रति आस्था जाग्रत करने वाले उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, कम ही दिखाई पड़ती हैं और सस्ती रोमांटिक पुस्तकों की बाढ़ दिखाई देती हैं।

लोग इनका उपयोग इस कारण करते हैं कि उन्हें मनोरंजन की आवश्यक खुराक मिलती रहे। परन्तु प्रभाव की बारीक बातों का चयन करने की क्षमता जनसाधारण में नहीं होती। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि व्यस्तता की अपेक्षा खाली समय में मन बड़ी गहराई से प्रभावित होता है। हम जब निश्चित मुद्रा में अवकाश के समय कोई बात सुनते हैं तो देर तक वह स्मरण में बनी रहती है और बड़ी जल्दी में कहीं जा रहे हों तो कोई बात सुनकर भी वह जल्दी भूल जाती है। व्यस्त लोगों को अपने आस-पास क्या हो रहा है ? इस बात का भी ध्यान नहीं रहता।

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक जे० एच० फ्लेमिंग ने ''द स्टडी ऑफ ह्यूमन साइक'' में मनोरंजन की प्रक्रिया की तुलना सम्मोहन से की है। उनके अनुसार सामान्यतया मनोरंजन हम उसी समय करते हैं, जब हमारा मन खाली हो। उधेड़-बुन में फँसा मन प्राय: मनोरंजन नहीं पंसद करता। सम्मोहन भी खाली मन में डाले गए कुछ संकेत ही हैं। विशेष उपचारों एवं तकनीकों के कारण भले ही उसकी शक्ति में कुछ बढ़ोत्तरी हो जाती हो, लेकिन मूल में एक ही तथ्य है—खाली मन में डाले गए संकेत और निर्देश। मनोरंजन प्रभावशाली होने की भी यही रीति-नीति है। वह तथ्य को प्रेरणाएँ बनाकर प्रस्तुत करता है।

इसका प्रभाव संस्कारों के रूप में भी पड़ता है। यदि वे तत्काल कोई प्रभाव नहीं भी दर्शाते तो कालान्तर में जब संस्कार दृढ़ हो जाते हैं, तब अपना घातक असर पैदा करते हैं। अत: मनोरंजन को केवल थकान मिटाने का साधन ही नहीं बल्कि मन को प्रभावित करने वाली एक कला के रूप में देखा जाना चाहिए और जो चीज कुरुचि जगाए, विकृतियाँ बढ़ाए, उनसे दूर रहना चाहिए।

एक परिष्कृत एवं स्वस्थ रूप वह भी है, जो मन के साथ-साथ शरीर को भी लाभ पहुँचाए। इस दृष्टि से खेल-कूद, कबड्डी आदि क्रीड़ा अभ्यासों को भी शमिल किया जा सकता है। इसका इतना ही मतलब है कि मन के खिंचे हुए तार थोड़े ढीले करें और जीवन वीणा को इस योग्य रहने दें कि पुन: जब उसका साज बजाना हो तो, वह पहले की भाँति सक्रिय, सतेज और समधुर हो। हमें मनोरंजन के महत्व और स्तर को समझकर उसे अस्वास्थ्यकर और हानिप्रद ढंग से प्रयोग में नहीं लेना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कलात्मक अभिरुचि भी अनिवार्य है

कविता, कला, साहित्य, गायन-वादन, संगीत, नृत्य जैसी भावाभिव्यजनाएँ स्वस्थ मनोरंजन तथा मानसिक विकास की सर्वोत्तम साधन है। शारीरिक एवं बौद्धिक कार्यों से एक प्रकार की ऐसी ऊब पैदा होती है जो मानसिक सरसता के अभाव में दूरी नहीं होती है, उसके बने रहने से जीवन का आनन्द मारा जाता है। ऊब-खीज को जन्म देती है जो मन:असन्तुलन का सबसे प्रमुख कारण है। खीज से भरे व्यक्ति अपनी ही कमियों के कारण घुटते हैं। उसकी प्रतिक्रियाएँ पारिवारिक जीवन में गृह-कलह हो, मन-मुटावों के रूप में सामने आती हैं तथा सामाजिक जीवन में विग्रहों एवं संघर्षों के रूप में खीजे व्यक्ति छोटी-मोटी बात को भी बतंगड़ बना देते तथा उत्तेजित रहते देखे जाते हैं। प्रकृति में शुमार होकर वह कितने ही अन्य प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है।

इससे कैसे बचा जाय ? मन:शास्त्रियों ने इस सम्बन्ध में विस्तृत खोजबीन की है। उनमें से मूर्धन्यों का निष्कर्ष यह है कि यदि ऊब तथा उसकी प्रतिक्रियाओं से बचना है तो हर क्रियाशील व्यक्ति को अपने ढर्रे के कार्यों के अतिरिक्त किसी कलात्मक हॉबी का विकास करना चाहिए जो सही अर्थों में मन को सरसता प्रदान करे, उसे परितृप्त करे। वह कुत्सा को भड़काने वाला नहीं जीवन के प्रति विधेय दृष्टि पैदा करने वाला हो। साथ ही उसका स्वरूप कुछ ऐसा हो जिससे मन को कल्पना करने तथा शरीर को बिना किसी दबाव के व्यस्त रहने का सुअवसर मिलता हो।

इस दृष्टि से कलात्मक अभिरुचियाँ सर्वोत्तम माध्यम है। हर व्यक्ति में कलाकारिता के बीज विद्यमान हैं। न्यूनाधिक रूप से किसी न किसी रूप में कोई न कोई अतिरिक्त विशेषता हर व्यक्ति को प्राप्त है। उसे उभारा और विकसित किया जा सकता है। अपनी अभिरुचियों का विश्लेषण करके यह मालूम किया जा सकता है कि गति किस दिशा में उपयुक्त रहेगी। गायन, वादन, पेंटिंग, ड्रांइग, मूर्ति- कला, कविता, वास्तुकला, सुसज्जा बागवानी जैसे किसी क्षेत्र में अपनी अभिरुचि विकसित की जा सकती है। खेलकूद भी स्वस्थ मनोरंजन के समर्थ साधन हैं। उनमें व्यायाम का अतिरिक्त लाभ अनायास ही मिल जाता है।

यूनिवर्सिटी ऑफ मैन ओरोनो के शोधकर्मी वैज्ञानिकों डोनाल्ड हेस, ब्रूस केमेल्स्की तथा मेल्विन पावर ने प्रयोगों की एक नयी शृंखला शुरू की है। उनका शोध विषय है, कलात्मक अभिरुचियों के मानव मस्तिष्क तथा मन:संस्थान पर पड़ने वाले प्रभावों की जाँच-पड़ताल करना बच्चों पर किये गये अध्ययन के दौरान उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि कलात्मक हाबियों से मस्तिष्क की प्रखरता बढ़ती है। ऐसे बच्चे जो स्मृति दोष से पीड़ित थे, उन पर उन्होंने प्रयोग किये। उनमें गायन, वादन कविता, पेंटिंग, ड्रांइग आदि की भिन्न-भिन्न रुचियाँ पैदा की गयीं। साथ ही साथ उनका अध्ययन भी चलता रहा। जो बच्चे इन प्रयोगों में शामिल थे, उनकी स्मरण शक्ति बढ़ गयी, स्मृति दोष दूर हो गया।

एक अन्य प्रयोग में समान बौद्धिक स्तर वाले बच्चो की दो टोलियाँ बनायी गयीं। दोनों के शिक्षण तथा साधनों की व्यवस्था एक-सी की गयी। अन्तर मात्र इतना रखा गया कि ग्रुप को कला विषय में अतिरिक्त रूप से थोड़े-समय के लिए व्यस्त रखा जाता। मात्र इतने अन्तर का परिणाम आश्चर्यजनक निकला। जिस ग्रुप के बच्चों में गायन-वादन, कला आदि की अभिरुचि पैदा करके उन्हें थोड़े-थोड़े समय के लिए व्यस्त रखा गया, उनकी मेधाशक्ति दूसरे ग्रुप की अपेक्षा बढ़ गयी। मानसिक दृष्टि से भी दूसरे ग्रुप के बच्चों से वे अधिक हँसोड़ पाये गये।

ढर्रे के कार्यों से पैदा होने वाली ऊब को मिटाने के लिए सर्व सुलभ स्वस्थ तरीका यही है कि कोई न कोई रचनात्मक हाबी का विकास अपने भीतर किया जाय। ऐसी हाबी जिसमें मात्र सिनेमा देखने की तरह अकर्मण्य बैठा न रहना पड़ता हो वरन् शरीर एवं मन को विधेयात्मक दिशा में कुछ करने का अवसर मिलता हो।

स्फूर्ति व मस्ती पाने की सही विधि

आन्तरिक क्षेत्र की दो कामनायें प्रमुख हैं—एक स्फूर्ति दूसरे मस्ती। उन्हें पाने के लिए हर किसी में लालसा बनी रहती है। जिस प्रकार शरीर को अपनी शारीरिक और मानसिक भूखें बुझाने के लिए प्रयत्न करने के लिए जी करता है, मन चलता है, उसी प्रकार आत्मा भी अपने स्वाभाविक गुण, स्फूर्ति और मस्ती के अवसर प्राप्त करने के लिए लालयित रहती है। भले ही व्यावहारिक जीवन में वैसे अवसर न मिलें और अन्तरात्मा को उस अभाव के कारण उदास, असन्तुष्ट रहना पड़े। आलस्य और प्रमाद से बचकर सामने प्रस्तुत कर्तव्यकर्मो को ईश्वर की पूजा मानकर उनमें तत्परता एवं तन्मयता के साथ लगने पर स्फूर्ति की स्थिति सदा बनी रह सकती है। ऐसा लगता रहता है कि किसी महत्वपूर्ण कार्य में लगने और उसमें सफलता मिलने जैसा उत्साह मिल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रहा है। यदि दिनचर्या को पुण्य-परमार्थ में, सेवा-साधना में नियोजित रखा जा सके तो उसके बदले उत्साह में अनायास ही स्फूर्ति बनी रह सकती है। आलस्य, प्रमाद का बोझिल अभिशाप सिर से उतरते ही बहते प्रवाह में तैरने वाली लकड़ी की तरह अपने आपे को प्रगतिशीलता के पथ पर चलने की अनुभूति होती है।

इन सद्गुणों की मात्रा बढ़ने पर स्फूर्ति ही मस्ती के रूप में विकसित होने लगती है। स्फूर्ति शारीरिक समझी जाती है पर उसके पीछे भी मानसिक प्रसन्नता छिपी रहती है। मात्र शारीरिक स्फूर्ति तो खिलाड़ियों को खेल के मैदान में भी मिल जाती है पर जब वह सफलता के समीप पहुँचने पर बढ़े हुए उत्साह के रूप में विकसित होती है तो उसमें मन उछलने लगता है और गतिशीलता के साथ घुली हुई प्रसन्नता की भी अभिवृद्धि होती है। स्फूर्ति का विकसित स्वरूप यही है।

मस्ती तब आती है जब मनुष्य भ्रम-जंजाल से निकलकर श्रेय पथ पर सुनिश्चित संकल्पों के साथ आगे बढ़ता है। सदाशीलता की तुलना सोमरस से की जाती रही है उसे ''अमृत'' नाम भी दिया जाता है। विवेक की आँख खुलने पर अपना स्वरूप लक्ष्य और कर्त्तव्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगता है। शंका-कुशंकाओं से निवृत्त होने पर जब भ्रान्तियों से छुटकारा पाकर जीवन मुक्ति जैसी स्थिति मिलती है तो विचारणा ही नहीं क्रियाशीलता भी सत्प्रयोजनों में निरत रहने लगती है। इच्छा के अनुरूप अवसर मिलने पर जो गहरी प्रसन्नता मिलती है, पुलकन और सिहरन उठती है उसे मस्ती कहते हैं। मस्ती यों असाधारण लाभ, यश एवं वासनात्मक तृप्ति के अवसर मिलने पर भी आती है पर वह टिकती नहीं। समय क्रम के अनुसार स्थिति में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। ऐसी दशा में शरीरगत सफलताओं के मिलने पर जो मस्ती आती है, वह भी निवृत्ति के अगले ही क्षणों में समाप्त हो जाती है। सुखद स्मृतियों की घटनायें जब आँखों के आगे से गुजरती हैं और उन के फिर से पा सकने का अवसर चला गया होता है तो कसक भरा पश्चाताप ही शेष रह जाता है किन्तु आत्मिक मस्ती का भी कभी अन्त नहीं होता। वह सुनिश्चित संकल्पों के साथ आदर्शवाद की ऐसी दिशा में बढ़ती है, जिसमें अनन्त काल तक प्रगति ही प्रगति है। जब तक सदाशयता की दिशा में भाव उमड़ते रहेंगे और प्रयत्न चलते रहेंगे तब तक मस्ती में कभी कमी नहीं पड़ने वाली है। निर्धारण अपना है, संकल्प अपना है, प्रयास अपना है इसलिए मस्ती का आनन्द भी अपना है। न उसके घटने की आशंका है और न व्यवधान पड़ने की। यही है जीवन का आनन्द, जो शरीर क्षेत्र में स्फूर्ति के रूप में और मनःक्षेत्र में मस्ती के रूप में सतत् अनुभव किया जा सकता है। उस सरसता का निरन्तर रसास्वादन किया जा सकता है। जीवन को कृतकृत्य हुआ प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। असल की नकल बनाने में मनुष्य बहुत चतुर है। मिट्टी के हाथी, घोड़े, शेर, रीछ जैसी अनुकृतियाँ बनाने में उसे देर नहीं लगती। रेल, मोटर भी वह रद्दी टीन को तोड़-मरोड़कर तनिक-सा रंग लगने भर से बनाकर तैयार कर लेता है। बच्चे के खिलौनों से एक से एक बढ़ी-चढ़ी चीजों के नमूने होते हैं चिड़िया से लेकर मछली, तितली इत्यादि संभवतः उसने मनोविनोद के लिए ही बनाये। मस्ती पाना ही उसका मूल प्रयोजन था। लगता है किसी मनचले ने इसी नकल प्रयोजन के लिए नशेबाजी का तरीका खोज निकाला होगा। नशों में तात्कालिक रूप से ऐसी ही क्षणिक अनुभूति करा देने की विशेषता होती है। हल्के, सस्ते नशे उस प्रयोजन को थोड़ी मात्रा में पूरा करते हैं और जो उनसे महँगे, गहरे हैं वे बढ़-चढ़कर अपना कौतुक, कौतूहल दिखाते हैं। उन सब से किसी न किसी मात्रा में फुर्ती और मस्ती का अनुभव होता है।

इसी लालच में लोग नशेबाजी के शिकार बनते हैं और फिर उस कुचक्र में मछली के जाल में फँसने की तरह जकड़ जाते हैं कि आरम्भिक कौतुक अन्ततः जानलेवा बनता है, मछली और चिड़ियाँ आरम्भ में देखने वाले चारे को ही बड़ा लाभ समझती हैं पर कुछ ही देर में उनको यथार्थता विदित हो जाती है। जब प्राणों पर आ बनती है तब पछताने से भी कुछ काम नहीं चलता।

आरम्भिक प्रलोभन को देखकर ही लोग पापकर्मों में प्रवृत्त होते हैं। इसमें उन्हें पहला हाथ छोड़ते ही नफा प्रतीत होता है पर वस्तुस्थिति प्रकट होते ही उस ओर कदम बढ़ाने वाले का विश्वास चला जाता है। अपयश फैलता है। सहयोग, स्नेह और सम्मान मिलना समाप्त हो जाता है। तब प्रतीत होता है कि आरम्भिक उतावली में जो लाभ कमाया गया था वह बहुत महँगा पड़ा। नशेबाजी के सम्बन्ध में भी यही घटना घटित होती है।

बाल बुद्धि की अदूरदर्शिता और समझदारी की दूरदर्शिता का अन्तर समझा जाना चाहिए और जिनका मानसिक विकास उस स्तर का हो चुका है, उन्हें समझ-बूझकर ही कदम उठाने चाहिए। छोटे बच्चे साँप को, बिच्छू को, आग, को खिलौना समझकर पकड़ सकते हैं। कील, सिक्का या दूसरी चीज लुभावनी देखकर उसे निगल सकते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि इस नासमझी का परिणाम उन्हें जान गँवाने जैसा भी भुगतान पड़ता है। चूहेदान में लगी रोटी का टुकड़ा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखकर वे नादान जीव भी आतुर होकर पिंजड़े में दौड़ पड़ते हैं और अन्ततः उसका दुष्परिणाम ही भोगते हैं। नशेबाजी भी जान-बूझकर बुलाई गई प्राणघातक बीमारी है, जो आदत में सम्मिलित हो जाती है। पर पीछे उससे पीछा छुड़ाना कदाचित ही किसी साहसी से संभव हो पाता है।

नशे जीवनी शक्ति को चूँसते हैं। आयु को घटाते हैं। दुर्बलता और रुग्णता का अभ्यस्त को शिकार बनाते हैं। सर्वेक्षण से जाना गया है कि नशे मनुष्य की आधी आयु का हरण कर लेते है और व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक क्षमता को बुरी तरह बरबाद करते हैं। आर्थिक दृष्टि से सामाजिक सम्मान की दृष्टि से भी वह बुरी तरह पिछड़ जाता है।

नशेबाजी की बुराइयों को समझते हुए भी उसकी ओर प्रवृत्ति का भावनात्मक कारण है—फुर्ती और मस्ती की अभिलाषा। इसकी पूर्ति उचित रीति से ही की जानी चाहिए। चूँकि आकांक्षा आध्यात्मिक है, उसकी पूर्ति भी उसी क्षेत्र में ही हो सकती है। नशे के सहारे नहीं। जीवन में उन तत्वों का समावेश किया जाना चाहिए, जिसके आधार पर कि स्थायी आनन्द मिले और प्रगति की संभावना बढ़े।

प्रिय और अप्रिय का मनोविज्ञान

यह मानवी स्वभाव है कि जो वस्तुएँ उसके इर्द-गिर्द होतीं, उनमें से कुछ अच्छी लगती हैं कुछ बुरी प्रतीत होती हैं, जब कइयों की ओर ध्यान भी नहीं जाता। जो अच्छी लगती हैं, उनसे प्यार करते हैं, जो अच्छी लगती हैं, उनसे घृणा करते हैं, जो उपेक्षित हैं, उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। हम चाहते हैं कि प्रिय वस्तुएँ सदा अधिकाधिक परिमाण में पास रहें। उनकी समीपता सुखदायक होती है। सुखदायक वस्तुएँ सभी को सुहाती हैं।

यहाँ तनिक उस मनोविज्ञान की चर्चा कर लेना अनुचित न होगा, जिसके कारण वस्तुएँ प्रिय-अप्रिय लगतीं और प्रेम-घृणा की पात्र साबित होती हैं। कंगले को अपना कुरूप पुत्र भी राजकुमारों की भाँति-प्रिय होता है, जबकि धनी पड़ौसी का रूपवान पुत्र सामान्य जैसा प्रतीत होता है। अपने लाड़ले को तनिक जुकाम हो जाय, तो ऐसी भाग-दौड़ मचने लगती है, जैसे कोई सांघातिक छूत लंग गई हो, पर पड़ौस का सुन्दर, सलोना बच्चा बुखार में तप रहा हो, तो कोई चिन्ता नहीं। क्लर्क अपनी टूटी साइकिल से संतुष्ट और प्रसन्न रहता है, उसका कोई छोटा तार टूट जाय, तो चित्त भारी व उदास हो जाता है, जबकि अपने अधिकारी की महँगी रोयल्स रायफ कार क्षतिग्रस्त हो जाय, तो कोई परवाह नहीं। किसान को अपनी लहलहाती फसल देखकर जितना आनन्द होता है, शायद उतना हर्ष गाँव के जमींदार के अन्न से भरे कोठार देखकर नहीं होता। जमींदार के गोदाम को आग लग जाय, फिर भी वह चैन की नींद सोता रहता है, किन्तु उसके अन्न से भरे खेत को पशु चर जायें, तो नींद गायब हो जाती है।

इससे ऐसा लगता है कि सदा गुणवान और रूपवान वस्तुएँ ही मन को भाती हैं—सो बात नहीं है। यदि बात ऐसी रही होती, तो कंगले, किसान व क्लर्क को भी दूसरों की हानि पर उतना ही दुःख होता जितना अपनी चीज के बिगड़ने या बरबाद होने पर, किन्तु व्यवहार में ऐसा होता कहाँ देखा जाता है ? तो क्या यह मान लिया जाय कि सदा सुन्दर वस्तुओं से घोर वितृष्णा ही उपजती है ? नहीं उक्त मान्यता भी ठीक नहीं। यह अधूरी व्याख्या है। सच तो यह है कि जिस चीज में जितनी मात्रा में अपनापन, आत्मभाव, स्वार्थभाव है, वह उसी परिमाण में प्रिय लगती है, गुण रहित हो, तो भी अच्छी लगती है। इसी मनोविज्ञान के कारण अपनी बुरी से बुरी वस्तु भी चित्ताकर्षक लगती है, जबकि दूसरों का अच्छा और आकर्षक सामान भी कोई विशेष आनन्द उत्पन्न नहीं कर पाता। अपनी बात में कोई दम न हो, तो भी कहने का अन्दाज ऐसा होता है, जैसे स्वयं अफलातून से कोई कम न हों, पर दूसरे की तर्क संगत, सारगर्भित बात भी नीरस प्रतीत होती है। अपना व्यक्तित्व कौड़ी जितने मोल का न हो, फिर भी गर्व से सीना ऐसा फूला रहता है, मानो महामानवों-महापुरुषों की तो उनके सामने कोई औकात ही नहीं। वे बौने जैसे लगते हैं और खुद का बौनापन हिमालय जैसा विराट् और विस्तृत ऊँचाई वाला जान पड़ता है। यह सब आत्मसत्ता की प्रमुखता के कारण है।

व्यभिचारियों के लिए भौंडी नयन-नक्श वाली वेश्या ही रूप की रानी होती है। उसके सम्मुख विश्व सुन्दरी का रूप-लावण्य भी फीका होता है। आये दिन समाचार पत्रों में यह खबरे छपती ही रहती हैं कि अमुक प्रेमी अथवा प्रेमिका ने प्रेम-विवाह न हो पाने के कारण आत्महत्या कर ली। यहाँ आत्मघात का कारण यह नहीं कि एक से विवाह न हो पाया, तो शादी की संभावना सदा-सदा के लिए सर्वथा समाप्त हो गई हो अथवा संसार में लड़के-लड़कियों का अभाव पड़ गया हो। सच्चाई तो यह है कि प्रेमी-प्रेमिका का एक-दूसरे के प्रति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनापन इतना घनीभूत हो जाता है कि सारी दुनिया उस घनिष्ट सम्बन्ध के आगे उबाऊ जान पड़ती है, सरस और सुन्दर सामीप्य तो मात्र परस्पर का ही लगता है।

मकान और दुकान अच्छे अपने ही लगते हैं। उनकी साज-सज्जा और बनावट की प्रशंसा करते नहीं थकते। टूट-फूट, मरम्मत का खूब ध्यान रखते हैं। संयोगवश वह बिककर दूसरों के हाथ में चले जायँ, तो एक प्रकार से निश्चिन्तता आ जाती है। फिर वह हजारों वर्ष खड़े रहें या कल ही गिर पड़ें, इससे कोई मतलब नहीं। कल तक जो इतने प्रिय थे, जिनके टूटने-लुटने से दारुण दुःख पहुँचता था, वह एक झटके में ही समाप्त हो गया। इसका कारण क्या है ? विरक्ति इतनी जल्दी इतनी अधिक कैसे पैदा हो गई ? उत्तर होगा हस्तान्तरण से उत्पन्न हुई अनासक्ति के कारण। कल तक जो उसकी संपदा थी, जिनके साथ उसका आत्मभाव चिपका था, वह आज नहीं रहा। कल जिन रुपयों से भरी थैली को अत्यन्त उत्साह से छाती से चिपटाये फिरते थे, वह आज दूसरे व्यापारी के पास चली गई। यदि वे रुपये अब चोरी चले जायँ, तो उसके पहले के मालिक को कोई कष्ट नहीं होगा। उन रुपयों के बदले जो माल खरीदा है, अब वह प्यारा लगने लगा है। कल वह माल भी पड़ौस में पड़ा था, पर तब उसकी ओर आँख उठा कर भी न देखते थे, आज उसकी सुरक्षा के लिए चोटी का पसीना एड़ी तक बहा रहे हैं। माल वही कल था, वह आज है। अन्तर केवल इतना हुआ कि कल वह पराया था, आज अपना हो गया। अपनापन ही तो अच्छा लगने का कारण है।

आये दिन मौतें होतीं व चिताएँ जलती रहती हैं। उनके अग्नि-संस्कार में भी हिस्सा कहाँ ले पाते हैं ? मरघट के बगल से निकलते हुए उन शव-संस्कारों पर एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि डालकर पुनः अपने में खो जाते हैं। न उनके पता पूछने की फुर्सत ! न संवेदना जताने की औपचारिकता ! सब कुछ सामान्य-सा प्रतीत होता है, पर जब अपना कोई प्रियजन मरता है, जब फूट-फूट कर रोते हैं, आँसुओं की झड़ी लगा देते हैं, दुनिया सूनी दीखती है, भूख-प्यास उड़ जाती है, दुःख-शोक की व्याकुलता में चारों ओर अँधेरा छा जाता है। पड़ौसी का भाई न रहा, तब चेहरे पर जरा-सी शिकन भी न आयी थी, पर आज इतनी व्याकुलता क्यों ? मरते तो सभी एक समान हैं, किन्तु एक की मृत्यु का जरा भी शोक नहीं, दूसरे के लिए इतनी वेदना क्यों ? इतनी व्यथा क्यों कि सब कुछ लुटा दीखने लगे ? निमित्त यह है कि जिस व्यक्ति में आत्मभाव सम्मिलित कर रखा था, वह प्रिय था, प्रिय के बिछोह में ही तो दुःख होता है। अपने घर पुत्र पैदा हुआ, तो खुशी से पाँव धरती पर नहीं पड़ते, पड़ौसी के यहाँ बच्चा जन्मे, तो कुछ प्रयोजन नहीं। यह स्वाभाविक है।

यहाँ उद्देश्य मात्र यह बताने का है कि गुण-अवगुण के कारण ही हम वस्तुओं को प्यार नहीं करते, वरन् प्रमुख कारण उसमें आत्मभाव का, अपने स्वार्थ का समन्वित होना है। जिससे जितना स्वार्थ-सम्बन्ध है, वह उतना ही अधिक प्रिय लगेगा। प्रिय से ही प्रसन्नता मिलती है। शोक-जन्य अप्रियता तो तब पैदा होती है। जब उनके लुटने, मिटने, बिगड़ने, घटने जैसी स्थितियाँ प्रस्तुत हों।

यथार्थता तो यह है कि विश्व की एक भी वस्तु न तो प्रिय है, न अप्रिय। किसी कारणवश आकर्षित होकर जब अपना आत्मभाव उसमें सम्मिलित हो जाता है, तो वह मनभावन लगने लगती है। जिससे स्वार्थ का विरोध पड़ता है, वह बुरी लगती है और जिसमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं, उसके प्रति उपेक्षा रहती है। भले-बुरे के पीछे का यही मनोविज्ञान है। जो जितने अंशों में, जिस भाव में इस विज्ञान को धारण किये होता है, उतने ही अनुपात में सुख-दुःख अनुभव करता है।

दुःख-निवारण और सुखोपार्जन के यहाँ दो ही उपाय हैं। एक तो स्वयं को निरपेक्ष और निस्पृह स्तर का बना लिया जाय कि आसक्ति के कारण उत्पन्न दुःख का अन्त हो जाय। दूसरा, अपने 'स्व' को इतना विस्तृत और व्यापक बना लिया जाय, कि सब कुछ अपना प्रतीत होने लगे। प्रथम स्थिति को प्राप्त करना तो परमहंस स्तर के योगी-यतियों द्वारा ही संभव है, पर दूसरी स्थिति ऐसी नहीं, जिसे सर्वसाधारण प्राप्त नहीं कर सकें। वस्तुतः यह दोनों ही जीवन की दो चरमवस्थाएँ हैं। एक व्यक्ति को विरक्ति की ओर ले जाती है, तो दूसरी आसक्ति की ओर, पर यह आसक्ति व्यामोह से आविर्भूत सांसारिक लगाव जैसी नहीं होती। यह विशुद्ध आध्यात्मिक स्थिति है, जिसमें अपनेपन का भाव तो होता है, पर वह लगाव नहीं, जो कष्टकारक हो। आँसू जब बहुत अधिक दुःख हो, तब भी निकलते हैं और आनन्दातिरेक में भी। वैसे ही शोक मुक्त हो पाना इन दोनों यतियों द्वारा भी संभव है, पर सर्वसामान्य के लिए अपने आपे को विस्तृत कर आनन्द की स्थिति प्राप्त कर पाना ज्यादा सक्य और सहज है। ऋषियों ने इसी अवस्था को उपलब्ध करने के लिए **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** और **''वसुधैव कुटुंबकम्''** के सूत्र दिये हैं। जो जिस अनुपात में यह भाव-विकसित कर लेता है, उसके लिए यह संसार उतने ही अंशों में प्रिय लगने लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वर्ग की बड़ी महिमा गाई है। कथा पुराणों में उसका विस्तृत वर्णन मिलता है, उस सब का सार यह है कि वहाँ सब प्रिय ही वस्तुएँ हैं। जैसे स्थानों में रहना चाहते हैं, वह सब वहाँ मौजूद हैं। ऐसा स्वर्ग धरती पर स्वयं भी उतारा और बसाया जा सकता है, इसी जीवन में इन्हीं आँखों से उसे देखा एवं अनुभव किया जा सकता है। इसके लिए अभीष्ट आवश्यकता एक ही है—अपना आत्म विस्तार। आत्मभाव के विकास विस्तार के साथ ही पराये अपने लगने लगेंगे, दूसरे की खराब वस्तुएँ भी अच्छी लगने लगेंगी। प्रेम का अजस्र उत्स फूट पड़ेगा, जिसमें बिराना कोई न होगा। जो होंगे, सब अपने, प्रिय और प्रेमपात्र होंगे। प्रेमास्पदों का समुच्चय ही तो स्वर्ग है।

चेतना का हाथी भौतिकी की सुतली से बाँधे

मानवी सत्ता की व्याख्या भौतिकी नियमों के आधार पर ही प्रस्तुत करने के लिए हमें न तो आतुर होना चाहिए और न आग्रही। पदार्थ विज्ञान का जन्म और अभिवर्धन कुछ शताब्दियों का है जबकि सृष्टि का जीवन अरबों, खरबों वर्षों का। हर्मनबेल के अनुसार, ''हम प्रकृति के रहस्यों का परिचय प्राप्त करने की दिशा में क्रमशः बढ़ रहे हैं। इसमें अधीर नहीं हो रहे हैं, फिर चेतना के रहस्यों को जानने के लिए विज्ञान की वर्तमान अपरिपक्व स्थिति को ही क्यों प्रमाण भूत आधार मानें ? हमें धैर्य रखना होगा और वैज्ञानिक प्रगति की उस स्थिति के लिए प्रतीक्षा करनी होगी, जहाँ पहुँचकर वह चेतना विज्ञान को भी अपने साथ सम्मिलित कर सके और अपने विकसित ज्ञान के आधार पर जीवन तत्व की व्याख्या कर सके।''

शरीर शास्त्री सर चार्ल्स शैरिंगटन ने अपनी पुस्तक 'मैन आन हिज नेचर' में लिखा है—''चेतना के स्तर की परीक्षा हम ऊर्जा नापने के उपकरणों से नहीं कर सकते। भावनाएँ और विचारणाएँ किस स्तर की हैं, और व्यक्ति के आदर्श एवं आचरण किस श्रेणी के हैं यह जानने के लिए किसी शरीर का रासायनिक विश्लेषण करने से क्या काम चलेगा ? व्यक्तित्व अपने आप में एक रहस्य है उसकी गहराई में उतरने के लिए वे परीक्षण पद्धतियाँ असफल ही रहेंगी जो कोशिकाओं एवं ऊतकों की संरचना तक ही भाग लेकर समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य का कलेवर ही पदार्थों से बना है इसलिए इसी का विश्लेषण, वर्गीकरण तत्व परीक्षा द्वारा सम्भव हो सकता है। चेतना एवं उसके स्तर जिस संरचना से बने हैं, उनका निरूपण एवं सुधार परिवर्तन करने के लिए भौतिकी के नियम, परीक्षण एवं उपकरण निरर्थक ही सिद्ध होंगे।''

भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० ई० पी० विगनर ने कहा है—''आधुनिक भौतिकी के सिद्धान्तों से चेतना की संरचना—स्थिति एवं उतार-चढ़ावों की व्याख्या नहीं हो सकती। जिन कारणों से चेतना में उभार, उतार-चढ़ाव, परिवर्तन आते हैं और उत्थान पतन के आधार खड़े होते हैं। वे तत्व कुछ और ही हैं। वस्तुओं को जिस आधार पर प्रभावित परिवर्तित किया जाता है वे सिद्धान्त चेतना को परखने और सुधारने के लिए किसी प्रकार काम नहीं आ सकते। मस्तिष्क विद्या शरीर के एक अवयव की हलचलों का विश्लेषण तो कर सकती है, पर उस आधार पर किसी के विचार बदलने या संवेदनाओं का प्रभावित करने जैसे प्रयोजन बहुत ही स्वल्प मात्रा में हो सकते हैं। भौतिकी के आधार पर चेतना की व्याख्या करने के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं, उनमें विसंगतियाँ ही भरी रह जाती हैं।''

पदार्थ विज्ञान प्रकृति के विवरण प्रस्तुत कर सकता है, पर उसकी संरचना एवं हलचलों के पीछे सन्निहित उद्देश्यों पर प्रकाश नहीं डाल सकता। परमाणु, उप-परमाणु, जीन, जीवाणु, कम्पन, ऊर्जा, प्रकाश, विकरण का स्वरूप ही भौतिकी हमें बता सकती है, पर यह नहीं बता सकती कि ब्रह्माण्ड में भरा हुआ पदार्थ किसलिए इतनी द्रुतगति से कहाँ दौड़ता चला जा रहा है ? आकाश गंगाओं की विशालता और ग्रह-नक्षत्रों की मध्यवर्ती दूरी को नापने से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? जब तक यह पता न चले कि उनका अस्तित्व किस उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न है। भौतिकी ही यदि सब कुछ है तो उसकी व्याख्या में इतना और जोड़ना चाहिए कि यहाँ सब कुछ निरुद्देश्य है। यदि पदार्थों और हलचलों का कोई उद्देश्य नहीं तो फिर मनुष्य की सत्ता का—उसकी जीवन सम्पदा का ही कुछ प्रयोजन क्यों होगा? उद्देश्य रहित अस्तित्व के लिए न कुछ कर्त्तव्य है और न अकर्त्तव्य। फिर नीति-नियम, अनुशासन और आदर्श की बात करना भी व्यर्थ है। भौतिकी ही यदि सब कुछ है और तत्व-दर्शन निरर्थक है तो समझना चाहिए कि हम निरर्थक दुनिया में, निरर्थक जीवनयापन कर रहे हैं और अपनी उच्छृंखलता पर निरर्थक ही अंकुश लगाने की बात सोच रहे हैं। यदि भौतिकी उन्हीं निष्कर्षों तक हमें पहुँचाती है तो उस उपलब्धि की तुलना में आदिमकाल का पिछड़ापन किसी प्रकार भी बुरा नहीं ठहराया जा सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दार्शनिक कोयरे के अनुसार, "विज्ञान ने अविज्ञात पर से बहुत से पर्दे उठाये हैं और अनजान स्थिति को हटाकर जानकारी ही सम्पन्नता प्रदान की है। उस पर भी एक बड़ी हानि यह हुई है कि प्रत्यक्ष मनुष्य, अप्रत्यक्ष होता चला गया है और क्रमशः लुप्त होने के निकट आ पहुँचा है।"

विज्ञान के अनुसार परमाणु और जीवाणु का तो अस्तित्व है पर चेतना का नहीं। कुछ समय पहले वेदान्ती इस संसार को माया, मिथ्या, स्वप्न और भ्रम बताया करते थे। अब विज्ञान ने उलटकर हमला किया है और यह कहना आरम्भ कर दिया है कि मनुष्य की सत्ता, माया, मिथ्या, स्वप्न और भ्रम है। मनुष्य का न कोई अस्तित्व है और न उद्देश्य। जो कुछ है केवल पदार्थ ही है। पदार्थ ही सोचता है, चाहता है यह कहते भी नहीं बनता फिर जो मनुष्य सामने खड़ा है और विज्ञान को उपार्जित करता है वह स्वयं क्या है ? क्या वह विज्ञान की उपज है अथवा विज्ञान में ही विलीन होने जा रहा है।

भौतिकी के स्वरूप का निर्धारण और इतिहास को क्रमबद्ध बनाने वाले इर्विन थ्रेन्डिगर ने अपनी प्रतिपादित "सीक फार दि रोड" में लिखा है, पदार्थ का मूल स्वरूप कण है या तरंग यह विवाद उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि जड़ और चेतन के पारस्परिक सम्बन्धों की गुत्थी सुलझाना। क्या जड़ ही एक स्थिति में चेतन बन जाता है? अथवा क्या चेतना स्वयं ही जड़ है। क्या मात्र इस संसार में पदार्थ ही पदार्थ है ? चेतना का कोई स्थायित्व या अस्तित्व भी है या नहीं, यह असमंजस भौतिकी ने उत्पन्न किया है। या तो उसे अपनी बात प्रमाणित करके यह घोषणा करनी चाहिए कि भौतिकी ही सब कुछ है, चेतना की पृथकता या प्रमुखता की बात व्यर्थ है अथवा दर्शन को इस स्तर के प्रमाण संचय करने चाहिए कि छाया हुआ असमंजस दूर हो सके और चिन्तन को आस्तिक और नास्तिक के बीच कोई स्वरूप दिशा धारा मिल सके।

कोयरे ने झल्लाकर कहा है कि—"यह कितनी विचित्र बात है कि विज्ञान ने हर पदार्थ को मान्यता दी है किन्तु मनुष्य का अस्तित्व ही मानने से इन्कार कर दिया है। कभी धर्म गुरु कहते थे जो हमारे साथ नहीं चलेगा वह जहन्नुम में जायेगा और अब विज्ञान ने लगभग वैसी ही पहेली प्रस्तुत की है और कहना आरम्भ किया है जो विज्ञान को स्वीकार करेगा वह अपनी हस्ती ही गँवा बैठेगा।"

चेतना के अस्तित्व को अमान्य ठहराना और उसकी अवमानना करना मात्र वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विवाद ही नहीं है। उनके निर्णय का प्रभाव मनुष्य की नैतिक, संस्कृति, समाज व्यवस्था पर भी पड़ता है। उतावली में अस्वीकृति के प्रति आग्रह जमा लिया जाय तो उसका तात्कालिक प्रभाव यह होगा कि मानवी गरिमा का मूल्यांकन स्वतः मनुष्य की अपनी ही आँखों में हो जायेगा। जब वह कुछ है ही नहीं, रासायनिक पदार्थों से बना ढकोसला ही जब उछल-कूद कर रहा है और उसका अस्तित्व क्षण भर का है, तो फिर नीति और धर्म का अनुशासन मानकर कष्टसाध्य जीवन जीना निरर्थक है। तब फिर बुद्धिमत्ता इसी में है कि इन क्षणों में जितना अधिक मौज-मजा लूटा जाय उससे वंचित न रहा जाय, भले ही इसके लिए प्रचलित नीति, मर्यादाओं का अतिक्रमण ही क्यों न करना पड़े ?

आत्म-गौरव का तब कोई महत्व नहीं रह जाता जब अपना अस्तित्व ही संदिग्ध है। ऐसी दशा में समाज व्यवस्था के प्रति अपना योगदान करने की प्रवृत्ति ही क्यों उठेगी। तब देशभक्ति समाज सेवा, लोकहित, परमार्थ जैसे उन आदर्शों का कोई मूल्य नहीं रह जाता जिनके ऊपर व्यक्ति की श्रेष्ठता का स्वरूप बताने और उसे अपनाने वाले को श्रेय सम्मान देने की परम्परा चलती रही है। नास्तिकता की प्रतिक्रिया चारित्र-निष्ठा और समाज-निष्ठा पर सीधा कुठाराघात करती है। उनका आस्थापरक मूल्य समाप्त करती है फिर समाज व्यवस्था के नाम पर जो अनुशासन लादा जाता है, वह कोई दर्शन नहीं रह जाता। मात्र व्यवहार रह जाता है। ऐसे व्यवहार को स्वार्थ साधन के लिए तोड़ फेंकने में किसी को कोई संकोच नहीं हो सकता।

आज धर्म और अध्यात्म की सूत्र संचालक आस्था—आस्तिकता—के प्रति लोकश्रद्धा, व्यक्तिवाद और विलासी दृष्टिकोण के कारण स्वतः ही गिरती चली जा रही है फिर यदि नास्तिकता को दार्शनिक और वैज्ञानिक मान्यता भी मिल गई तो उसे शोध की प्रगति या अन्य जो भी नाम दिया जाय, माना और गर्व किया जा सकता है किन्तु उसका दुष्परिणाम उस संचित पूँजी को गँवाने के रूप में ही सामने आवेगा, जिसे मानवी प्रयासों की लम्बी श्रृंखला के उपरान्त बड़ी कठिनाई से गढ़ा गया है। उच्चस्तरीय आस्थाओं का बाँध तोड़ देने के उपरान्त तो रही बची आशा भी समाप्त हो जायेगी। तब चरित्र संकट की अराजकता की प्रतिक्रिया मनुष्य को मनुष्य द्वारा फाड़-चीरकर न सही निचोड़ने, चूसने और दबाने के रूप में तो प्रस्तुत होगी ही। तब नीति और न्याय का समर्थन उथले और उपहासास्पद तर्कों के सहारे ही किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकेगा और उसके किसी के गले उतरने की आशा नहीं ही की जायेगी।

भारतीय नास्तिकवाद में चार्वाक दर्शन प्रसिद्ध है, उनके मत का संक्षिप्त विवेचन इन दो श्लोकों में हुआ है।

देहस्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः।

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः॥

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

अर्थात्—काया पाँच तत्वों के सम्मिलन से बनी है। यह सम्मिलन ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। स्वर्ग, अपवर्ग, आत्मा परलोक आदि कहीं कुछ नहीं है।

इस मान्यता का फलितार्थ क्या होता है ? इसका स्पष्टीकरण दूसरे श्लोक में देखा जा सकता है। जब आत्मा, कर्मफल, परलोक, पुनर्जन्म आदि कुछ है ही नहीं तो फिर जिस तरह भी हो उसी प्रकार स्वार्थ सिद्ध करने और मौज-मजा लूटने के लिए प्रयत्न करना ही अक्लमंदी है। फिर नीति, धर्म, समाज, सदाचार आदि पर ध्यान क्यों दिया जाय ? और उनके बन्धनों में बँधकर अपनी सुविधाओं में कमी क्यों की जाय ? दूसरे श्लोक में यही निष्कर्ष है। चार्वाक कहते हैं—

''जब तक जीना सुख से जीना, कर्ज लेकर भी घी पीना। देह तो भस्मी भूत है। फिर आने का तो सवाल ही नहीं।'' इसी दिशा में जो मौज-मजा सम्भव हो इसी समय कर लेने की बात ही सही जँचती है। पुण्य-परमार्थ, संयम, सदाचार, सेवा आदि के लिए ऐसी मनःस्थिति में कोई स्थान नहीं रह जाता।

चार्वाक की तरह ईसा से ३०० वर्ष पूर्व यूनान का दार्शनिक एपीक्यूरस भी इसी मत का प्रतिपादन करता था। इसने भी प्राणी को पदार्थ कहा है और चेतना को काया का उत्पादन कहा है। इतने पर भी वह इस शंका समाधान करने में असमर्थ रहा कि यदि चेतना काया का धर्म है तो मरने के बाद वह काया से अलग क्यों हो जाती है ? जबकि प्रत्येक पदार्थ का गुण उसके साथ अविच्छिन्न रूप से बना ही रहता है।

इससे अधिक स्पष्ट निष्कर्ष जर्मन वैज्ञानिक हेकल ने निकाला है। उनने अपने ग्रन्थ 'दि रिडल आव दि युनिवर्स' में यह सिद्ध किया है कि परमाणु में मात्र हलचल ही नहीं चेतना भी मौजूद है और वह अपने ढंग से उसी प्रकार आगे-पीछे सोचती है जैसा की प्राणियों की सत्ता।

मानवी सत्ता की व्याख्या प्रयोगशाला के निष्कर्षों के आधार पर ही की जाय यह आवश्यक नहीं। प्रत्यक्ष ही सब कुछ नहीं है। उन भाव संवेदनाओं का महत्व तो दूर उनके अस्तित्व का कोई कारण तक सिद्ध नहीं किया जा सका जिनके ऊपर भावनाओं का आधार खड़ा हुआ है। स्पष्ट है कि यदि भाव तत्व हटा दिया जाय तो फिर मनुष्य सचमुच ही एक चलता-फिरता पौधा अथवा सोचने, हँसने वाला यन्त्र भर बनकर रह जायेगा।

अधूरा प्रत्यक्षवाद यदि चेतना की व्याख्या करने में अतिशय उतावली करेगा, अपने साधन की अपूर्णता का ध्यान न रखेगा तो यह अत्युत्साह उस मानवी प्रगति की जड़ पर कुठाराघात ही करेगा जिसका एक अंग स्वतः विज्ञान है।

हम शरीर नहीं, आत्मा हैं

भौतिक विज्ञान आत्मा के अस्तित्व का खंडन नहीं करता अपितु वह उसे सिद्ध करने में ही सहायक हुआ है। विज्ञान की उच्च सतह पर न पहुँचने के कारण आज कुछ लोग ऐसी भ्रामक धारणायें फैलाए हुए हों, यह दूसरी बात है, अन्यथा जिन वैज्ञानिकों ने गहन तत्वान्वेषण किये हैं, उनमें से प्रायः सभी ने यह माना है कि पदार्थ जड़ है और आत्मा चेतनायुक्त, ज्ञानमय है। इन दोनों के गुणों में असमानता है तथापि आत्मा की शक्ति पदार्थ की शक्ति से बहुत बड़ी है।

वर्षों पूर्व कलकत्ता से प्रकाशित 'दी मार्डन रिव्यू' में सर ए० एस० एडिंग्टन तथा प्रो० अलवर्ट आइन्स्टीन के आत्म ज्ञान सम्बन्धी विचार उद्धत हुए थे जो इस प्रकार हैं—

''संसार में कोई अज्ञात शक्ति काम कर रही है जिसे हम नहीं जानते कि वह क्या है ? फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि वह अधिक शक्तिशाली है। मैं चेतना को मुख्य मानता हूँ। इस आत्मा के विषय में मुझे अपने मत से कोई विचलित नहीं कर सकता।'' ''मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि सारी प्रकृति में एक असीम शक्तिशाली चेतन-शक्ति काम कर रही है।'' ''विश्व में केवल एक ही मुख्य तत्व है जो देखता है, अनुभव करता है, प्रेम करता है, विचार और स्मृति करता है, वह आत्मा ही है।''

''जैसे मनुष्य दो दिनों के बीच रात्रि को स्वप्न देखता है वैसे ही मनुष्य की आत्मा ही मृत्यु तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुनर्जन्म के मध्य विभिन्न सांसारिक क्रियायें करती है।'' सर ऑलिवर लाज ने इन शब्दों में आत्मा के अस्तित्व पर प्रकाश डाला। कुछ वर्षों पूर्व इस बात को लेकर वैज्ञानिकों में काफी लम्बी चर्चा चली थी और आत्मा के अस्तित्व संबंधी उनके मत लिए गए थे, जिन्हें सामूहिक रूप से 'दी ग्रेट डिजाइन' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। पुस्तक में उपसंहार करते हुए लिखा गया है—'यह संसार कोई आकस्मिक घटना नहीं लगता है। इसके पीछे कोई सुनियोजित विधान चल रहा है। एक मस्तिष्क, एक चेतन-शक्ति, काम कर रही है। अपनी-अपनी भाषा में उसका नाम चाहे कुछ रख लिया जाय पर वह मनुष्य की आत्मा ही है।'

इसके अतिरिक्त जे. एन. थामसन जे. बी. हेल्डेन, पी० गोईडेस्, आर्थर एच० काम्पटन, जेम्सजीन्स आदि वैज्ञानिकों ने भी आत्मा के अस्तित्व में सहमति प्रकट की है। उसके प्रत्यक्ष ज्ञान के साधनों का पाश्चात्य देशों में भले ही अभाव हो, पर विचार और बुद्धिशील मनुष्य के लिये यह अनुभव करना कठिन नहीं है कि यह जगत केवल वैज्ञानिक तथ्यों तक सीमित नहीं वरन् उन्हें नियंत्रित करने वाली कोई चेतना भी अवश्य काम कर रही है और उसे जानना मनुष्य के लिये बहुत आवश्यक है।

शास्त्रीय कथानकों के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व, गुणों और क्रियाओं के सम्बन्ध में बड़ी ही ज्ञान-पूर्ण चर्चायें की गई हैं। ऐसे कथानकों में नारद, ध्रुव आदि के वार्तालाप के साथ राजा चित्रकेतु की कथा भी बड़ी शिक्षाप्रद और वास्तविक तथ्यों से ओत-प्रोत है। कथा इस प्रकार है। चित्रकेतु एक राजा था जिसे महर्षि अंगिरा की कृपा से एक सन्तान प्राप्त हुई थी। बच्चा अभी किशोर ही था कि उसकी मृत्यु हो गई। राजा पुत्र-वियोग से बड़ा व्याकुल हुआ। अंत में ऋषिदेव उपस्थित हुए और उन्होंने दिवंगत आत्मा को बुलाकर शोकातुर राजा से वार्तालाप कराया। पिता ने पुत्र से लौटने के लिए कहा तो उसने जवाब दिया, 'ए जीव! मैं न तेरा पुत्र हूँ और तू मेरा पिता है, हम सब जीव कर्मानुसार भ्रमण कर रहे हैं। तू अपनी आत्मा को पहचान। हे राजन् ! इसी से तू सांसारिक-संतापों से छुटकारा पा सकता है।' अपने पुत्र के इस उपदेश से राजा आश्वस्त हुआ और शेष जीवन उसने आत्म-कल्याण की साधना में लगाया। राजा चित्रकेतु अंत में आत्म ज्ञान प्राप्त कर जीवन मुक्त हो गया।

शरीर को अपेक्षित अधिकार देकर जो बुद्धिमान व्यक्ति शेष समय तथा रुचियाँ आत्मा के स्वार्थ में, उसकी सेवा करने में लगाते हैं, वे लोक में सुख और परलोक में श्रेय के अधिकारी बनते हैं। शरीर की अतिशय सेवा जहाँ मनुष्य को पतन के गर्त में गिराकर रोग-शोक, संताप, पश्चाताप आदि की यातना दिलाकर भव-पाशों में लपेटती जाती है, वहाँ आत्मा की सेवा में मनुष्य अलौकिक सुख, हर्ष-उल्लास, आनन्द आदि के साथ मोक्ष एवं मुक्ति का पुरस्कार पाता है। अवश्य ही शरीर की उपेक्षा मत कीजिये। कमाइये, खाइये, गृहस्थी बसाइये, सुख और संपत्ति के अधिकारी बनिए लेकिन उसमें इस सीमा तक न डूब जाइए कि इसके सिवाय और कुछ सूझ ही न पड़े। शरीर और संसार में उतना ही समय, श्रम और मनोयोग लगाना चाहिये, जितना आवश्यक है और जिससे जीवन की गाड़ी सुविधापूर्वक चलती रहे। शेष सारा समय, श्रम तथा मनोयोग आत्मा का हित—साधन करने में लगाना चाहिए, जिससे स्वार्थ के साथ परमार्थ और लोक के साथ परलोक भी बनता चले। इसी में मुनष्य जीवन की सार्थकता भी है। किन्तु अधिकांश व्यक्ति यह सब मूल शरीर-परायण जीवन ही जीते देखे जाते हैं।

शरीर का महत्व बहुत है तथापि, जब इसको आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है, तब यही शरीर जो संसार-बंधन से मुक्त होने में हमारी एक मित्र की तरह सहायता करता है, हमारा शत्रु बन जाता है। अधिकार से अधिक शरीर की परवाह करने और उसकी इन्द्रियों की सेवा करते रहने से, शरीर और उसके विषयों के सिवाय और कुछ भी याद न रखने से वह हमें हर ओर से विभोर बनाकर अपना दास बना लेता है और दिन-रात अपनी ही सेवा में तत्पर रखने के लिये दबाव में आ जाने वाला व्यक्ति कमाने-खाने और विषयों को भोगने के सिवाय-इससे आगे की कोई बात सोच ही नहीं पाता। उसका सारा ध्यान शरीर और उसकी आवश्यकता तक ही केन्द्रित हो जाता है। वह शरीर और इन्द्रियों की दासता में बँधकर अपनी सारी शक्ति, जिसका उपयोग महत्तर कार्यों में किया जा सकता है, शरीर की सेवा में समाप्त कर देता है। इस प्रकार उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसके हृदय में एक पश्चाताप रह जाता है, जिसके लिए यह बहुमूल्य मानव-जीवन प्राप्त हुआ। इसलिए मनुष्य को इस विषय में पूरी तरह से सावधान रहने की आवश्यकता है कि शरीर का कितना महत्त्व है और अपनी सेवा पाने का उसे कितना अधिकार है?

शरीर की सेवा तक सीमित हो जाने की भूल मनुष्य से प्राय: तब होती है, जब वह शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है। सत्य बात तो यह है कि मनुष्य शरीर नहीं, आत्मा है। शरीर तो साधन मात्र है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साध्य केवल आत्मा ही है इसलिए प्रधान महत्त्व शरीर को नहीं आत्मा को ही देना चाहिए। आत्मा स्वामी है और सेवा में नियोजित करना चाहिए न कि आत्मा को शरीर के अधीन कर देना चाहिए।

मानव-जीवन का लक्ष्य आत्म-कल्याण है। इस लक्ष्य का पाने के लिए आवश्यक है कि आत्मा को शरीर के ऊपर प्रधानता दी जाय। यह क्रिया, दृष्टिकोण बदल देने से सहज में पूरी हो सकती है। हम मनुष्य हैं, शरीर ही सब कुछ है। इसकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है, इस प्रकार के दैहिक विचारों के स्थान पर इन विचारों को स्थापित करना होगा, हम आत्मा हैं। शरीर तो साधन मात्र है। आत्मा का कल्याण करना ही हमारा परम धर्म है, जिसका निर्वाह हर मूल्य पर करना ही है। इस प्रकार मनुष्य शरीरिक दासता से बचकर आत्मा की सेवा में समर्पित हो जाएगा, जिससे उसे यह पश्चाताप करने का अवसर नहीं रहेगा।

मनुष्य दीन, हीन और पद-दलित तभी तक वह अपने आपको पहचानता नहीं। तुलसीदास जी जब तक निकृष्ट जीवन व्यतीत करते रहे तब तक वे शोक-संताप में डूबे रहे, किसी ने उन्हें जाना तक नहीं, बेचारे मारे-मारे इधर से उधर घूमते रहे। किन्तु जैसे ही उनकी आंतरिक शक्तियाँ प्रकाशित हुईं, तुलसीदास जी अमृत पुत्र हो गये। जन-जन की वाणी में समा गये, संत बन गये महात्मा हो गये। वाल्मीकि, अंगुलिमाल आदि की कथायें सर्वविदित हैं। विल्वमंगल सूरदास के नाम से प्रसिद्ध हुये, इसके मूल में मानवीय अंत:करण का विकास ही सन्निहित है। वह शक्तियाँ, वह सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य में है अंतर केवल इतना है कि लौकिक कामनाओं से घिरा हुआ इंसान पारलैकिक संभावनाओं का विचार तक नहीं करता, इसी कारण वह छोटा है, तुच्छ है, निकृष्ट है।

किन्तु मनुष्य जब धीरे-धीरे अपने दोष-दुर्गुणों को हटाकर श्रेष्ठ संस्कारों को धारण करने लगता है तो उसके जीवन में दृष्टिकोण में स्वभावतया परिवर्तन होने लगता है एवं भोग-विलास की लालसा मिट जाती है और आत्मज्ञान की इच्छा बलवान होती जाती है और वैसे ही साधन भी मिलते जाते हैं। जीवनक्रम सरलतापूर्वक लक्ष्य प्राप्ति की और अग्रसर होने लगता है। यह साधन बाह्य नहीं होते वरन् आन्तरिक विशेषतायें ही होती हैं। सत्य अहिंसा, प्रेम, त्याग सेवा, आशा, उत्साह, धैर्य, स्वाध्याय, संयम, सदाचार आदि के द्वारा उसका परिष्कार होकर शुद्ध निर्मल तथा पवित्र आत्मा के दर्शन होने लगते हैं। वही वास्तविक आत्मज्ञान है व इसी के लिए सारे अध्यात्म-उपचार ध्यान-साधनाएँ इत्यादि बतायी गयी हैं।

आत्मा की खुराक भी अनिवार्य

महात्मा गाँधी ने अपने एक प्रवचन में कहा था कि प्रार्थना आत्मा की खुराक है। उत्कर्ष की अभिलाषा रखने वालों का इसका अवलम्बन अनिवार्य रूप से लेना पड़ता है। जिसे अपने भीतर दिव्य ज्योति जगाने की छटपटाहट हो, उसे प्रार्थना का सहारा लेना चाहिए। स्तुति, उपासना न तो वहम है और न ही शब्दों या कानों का व्यायाम, वरन् हमारे खाने-पीने चलने फिरने जैसे आवश्यक क्रिया-कृत्यों से भी अधिक सत्य है।

ईश्वरीय स्तुति या प्रार्थना की महिमा-महत्ता से समस्त धर्मों के वाङ्मय, ग्रन्थ आदि भरे पड़े हैं, संसार में जितने भी महापुरुष महामानव हुए हैं, उनका जीवन बताता है कि प्रार्थना उनके दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग बनी रही है । आत्मबल की उपलब्धि इसके बिना संभव भी नहीं। इस संदर्भ में प्रख्यात पादरी एवं मनोवेत्ता नार्मन विंसेन्ट ने अपनी कृति—''ए गाइड टू कॉन्फीडैन्ट लिविंग'' में कहा है कि प्रार्थना मानव जीवन का सर्वाधिक सशक्त एवं सुगम एक ऐसा ऊर्जा स्रोत है, जिसे हर कोई उत्पादित अभिवर्धित करके अपने को प्राणवान और परिष्कृत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की श्रेणी में सम्मिलित कर सकता है। उनके अनुसार हमारी आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु महामानवों ने तीन तरह के मार्ग निर्धारित किये हैं—

(१) कर्म (२) चिन्तन और (३) प्रार्थना। तीनों के समन्वित प्रयासों के माध्यम से ही जीवन लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो हो पाती है। पर प्राय: देखा यह जाता है कि आमतौर से व्यक्ति प्रथम दो मार्गों पर चलने का प्रयत्न तो करता है, परन्तु तीसरे अति महत्वपूर्ण पक्ष को विस्मृत कर बैठता है।

चिन्तन और क्रिया के सामान्य जीवन क्रम जुड़े रहने पर अपने अस्तित्व की जानकारी आसानी से की जा सकती है, किन्तु मानव को महामानव—देवमानव की श्रेणी में पहुँचाने की सामर्थ्य भगवत्—सान्निध्य से ही संभव है। प्रार्थना उपासना का विधान इसी की पूर्ति के लिए अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा सुझाया गया है। यदि दैनन्दिन जीवन में पाँच मिनट का भी समय इस निमित्त निकाला जा सके तो उतने भर से उन दुष्प्रवृत्तियों से पीछा छुड़ाया जा सकता है, जो आये दिन सिर पर सवार होकर अनेकानेक प्रकार से त्रास देती रहती हैं। उनने प्रार्थना को प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ सूत्र बताये हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रथम सूत्र है, जीवन व्यापार के हर क्षेत्र में ईश्वर की साझेदारी को प्रमुखता देना। यही वह आधार है जिसका अवलम्बन लेने पर कर्तव्यों के प्रति जागरूकता बनी रहती है और दूरदर्शिता का विकास होता चलता है।

दूसरा सूत्र है, ईश्वरीय उपस्थिति का सतत् आभास होते रहना। दैवी चेतना का कार्य मनुष्य की सहायता करने तथा उसे सदैव ऊँचा उठाने विकासोन्मुखी बनाने का होता है। यदि यह आस्था जीवन में गहराई से जड़ जमा सके तो आत्मोत्कर्ष की दिशा में आगे कदम बढ़ा सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं है।

तीसरा सूत्र है, ईश्वर की पुकार अंत:करण की गहराई से निकले और वह इतनी भावनापूर्ण हो, जिससे परमात्म सत्ता का अनुदान वरदान, स्नेह, सहयोग के रूप में बरसता स्पष्ट दिखाई देने लगे। अंत:करण से की गई सच्ची पुकार को परमात्मा कभी अनुसनी नहीं करता। वह अपना परिचय अन्तराल में उमंगती सद्प्रेरणाओं, सद्भावनाओं के रूप में तुरन्त देता है। इसी आधार पर बाद में प्रत्यक्ष सहयोग-सहकार भी चारों ओर से बरसने लगता है।

चौथा सूत्र है, प्रार्थना के समय चिन्तन की दिशाधारा विधेयात्मक हो। इसमें स्वयं के साथ, अन्यान्यों के कल्याण की भावना भी सन्निहित हो तथी प्रार्थना का प्रत्युत्तर भी मिलता है। समर्थ सत्ता के समक्ष अपनी इच्छा-आकांक्षा रखते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाय कि उसमें कहीं संकीर्ण स्वार्थपरता तो प्रवेश नहीं कर रही है।

पाँचवा व अन्तिम सूत्र है, अपना अनहित चाहने, सोचने वालों के प्रति भी सद्भावना का बने रहना। इन्हें सन्मति मिले, इसकी प्रार्थना करना। ऐसे व्यवहार से न केवल निज के अन्तराल शुद्ध होता है वरन् प्रतिपक्षी को भी विनम्र बनाता है।

यह एक अकाट्य सत्य है कि लोक कल्याण के निमित्त की गयी प्रार्थना निश्चित ही सार्थक एवं प्रभावी होती है। कठिन से कठिन प्रतीत हो रहे कार्य भी समष्टि के कल्याण की प्रार्थना से सधने लगते हैं। जीवन का इसे एक अनिवार्य अंग बना लिया जाय तो लोक व परलोक दोनों सध जाते हैं।

उत्कृष्टता से ओतप्रोत है, मानवी सत्ता

मनुष्य वस्तुत: सच्चे अर्थों में कौन है ? क्या विशिष्ट आकार-प्रकार का कलेवर या ढाँचा प्राप्त कर लेना ही इसकी निशानी है अथवा इसके कुछ अन्य मानदण्ड हैं ? इन सब बातों पर गहराई से विचार करने पर यही ज्ञात होता है कि केवल बाह्य ढकोसलें के आधार पर किसी को मनुष्य कह देना मनुष्यता के साथ अन्याय करना है। ऐसे मिलते-जुलते कलेवर तो वनमानुष, चिम्पांजी जैसे अन्य वन्य जन्तुओं के भी होते हैं, फिर तो इस परिभाषा के आधार पर मनुष्य की श्रेणी में वे भी आ सकते हैं। इससे ऐसा लगता है कि परिभाषा अथवा चिन्तन में कहीं कोई कमी अवश्य है। मनीषियों का कहना है कि मनुष्य अथवा मनुष्यता की परिभाषा उसके नैतिक मूल्यमानों पर, आन्तरिक उत्कृष्टता पर आधारित होनी चाहिए, जो सही भी है।

इसी का समर्थन करते हुए एरिक फ्राम अपनी पुस्तक ''साइकॉलाजी एण्ड ह्यूमन सोसायटी'' में लिखते हैं कि मनुष्य के व्यवहार का आधार आचार है और आचार की अभिव्यक्ति व्यवहार अन्तरंग को सँवारे बिना उत्तम व्यवहार की कल्पना करना और सही अर्थों में मानवता का परिचय दे पाना हथेली में सरसों जमाने की तरह है। वे आगे लिखते हैं कि आज हम कहने को तो अन्तरिक्ष युग में प्रवेश कर चुके हैं, और बाहरी दृष्टि से यह मनुष्य की एक बहुत बड़ी विजय का द्योतक भी है, पर जब हम उसके अन्तराल में झाँकते हैं, तो ऐसा लगता है कि वह एक बार फिर से पाषाण युग की ओर ही अग्रसर हो रहा है। वे चेतावनी देते हुए कहते हैं कि यदि हमारा ध्यान अन्त: के परिष्कार की ओर न होकर मात्र बाह्य उपलब्धियों की ओर ही केन्द्रित रहा, तो फिर हम आदिमानवों की श्रेणी से भी नीचे पशुओं की श्रेणी में आ जायेंगे, जिसका एक ही काम होगा, पारस्परिक विद्रोह और विध्वंस।

आर० ड्यूब्स अपनी रचना ''सो ह्यूमन एज एनीमल'' में मानवी पतन का एकमात्र कारण जीवनोद्देश्य को भूल जाना बताते हैं। वे कहते हैं कि ऐसा तब से प्रारम्भ हुआ, जब से हमने विज्ञान के प्रत्यक्षवाद को ही सब कुछ मानने की भूल की। जिस बात को विज्ञान द्वारा सिद्ध किया जा सका, उसे हमने सहजता से स्वीकार लिया और जहाँ वह असमर्थ रहा, वहाँ हम उस तत्व के अस्तित्व से ही इन्कार करने लगे। प्रत्यक्षवाद ने जहाँ अन्धमान्यताओं एवं कुप्रथाओं को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, वहीं सृष्टि संचालन के पीछे किसी समर्थ सत्ता के हाथ होने पर भी प्रश्न-चिन्ह लगा दिया। बस यहीं से चार्वाक, मिल, बेन्थम, नीत्से चरनिस्मेस्की जैसे अनीश्वरवादी भोगवादियों ने सिर उठाना शुरू किया और ''ऋण कृत्वा घृतं पिवेत्'' का नारा देना शुरू किया। कहा-चाहे जैसे भी बन पड़े भले ही वह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनाचार–अत्याचार के माध्यम से ही क्यों न हो, ऐश-मौज करो। इस सिद्धान्त ने समाज व्यवस्था ही भंग कर दी और एक अराजकतावादी समाज को जन्म दिया। ड्यूक्स का कहना है कि अराजकता को समाप्त करने के लिए हमें ईश्वर और मनुष्य के बीच पुनः वही सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा, जो प्राचीनकाल में था और जिसे कभी संसार की सर्वोपरि सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया था। जब तक इतना कुछ नहीं बन पड़ेगा तब तक समाज में नैतिकता की आशा करना मनुष्य के लिए दुराशा मात्र होगी।

इसी को दूसरे शब्दों में जी० ई० पुघ अपनी कृति ''दि बायोलॉजिकल ओरीजीन ऑफ ह्यूमन वेल्यूज'' में लिखते हैं कि मनुष्य की पहचान उसके भावनात्मक संगठन के कारण है। मात्र बुद्धि अथवा आकार वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। यदि ऐसा ही होता, तो प्रयोग परीक्षणों के दौरान बन्दर एवं चिम्पांजी को भी बुद्धिमान पाया गया है। इस आधार पर वे भी मनुष्य की पंक्ति में आ खड़े होते, पर वस्तुतः मनुष्य उदात्त भावनाओं का समुच्चय है। इसे यदि उससे पृथक् कर दिया जाय, तो मनुष्य मात्र एक बुद्धिमान जन्तु भर बनकर रह जायेगा। इसी का समर्थन करते हुए ''दि ह्यूमन साइक'' में जॉन एकलिस कहते हैं कि मनुष्य अपने अन्तस् में उत्कृष्टता के बीज सँजाये हुए है। यदि इसे निरन्तर पोषण देकर विकसित किया जा सके, तो कोई कारण नहीं कि मानव महामानव न बन सके, पर विडम्बना यह है कि कि मानवी देवत्व पर असुरत्व हावी हो जाने के कारण देवत्व के अंकुर विकसित वृक्ष बनने से पूर्व ही मुरझा जाते हैं। उन्होंने ''ए क्लॉक वर्क आरेन्ज'' एवं ''जॉज'' जैसी भयानक व डरावनी फिल्मों के निर्माता श्री क्यूब्रिक के इस कथन पर आपत्ति प्रकट की है कि मनुष्य मूलतः पाशविक, हिंस्र व सनकी है। श्री एकलिस का कहना है कि वस्तुतः मनुष्य ऐसा है नहीं। यह तो उसके विकास काल के अवशेषी संस्कार हैं, जिन्हें प्रयासपूर्वक हटाकर वह अपने प्रखर और वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है।

नृतत्वविज्ञानी ई० ओ० विल्सन अपनी पुस्तक ''ऑन ह्यूमन नेचर'' में यह स्वीकारते हैं कि मानवी जीवन गरिमामय तभी माना जा सकता है, जब वह ''अपना और अपनों'' की संकीर्ण स्वार्थपरता के सिद्धान्त के ऊपर उठकर विश्व-बन्धुत्व का परिचय दे। वे लिखते हैं कि इतनी विशेषता तो मनुष्येतर प्राणियों में भी पायी जाती हैं, फिर मनुष्य तो उनसे बहुत बुद्धिमान और विकसित है। उसने भी उसी लीक पर चलने का परिचय दिया, तो इसे उसकी संकीर्णता ही कहनी चाहिए।

मानव में सामाजिकता के विकास का आरम्भ सिर्फ इस कारण हो सका था कि उसने इसकी आवश्यकता और उपयोगिता समझी थी, पर आज एक बार फिर से वह इससे विमुख होता जा रहा है, जिससे उसका भविष्य अन्धकारमय दिखाई पड़ता है। इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए शेरिंगटन अपनी प्रसिद्ध रचना ''मैन एण्ड हिज नेचर'' में लिखते हैं कि दूसरों के प्रति सद्भावना और सम्मान ही 'स्व' के विस्तार का आधार है और इसी आधार पर उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा की जा सकती है। इससे कम में विकास तो क्या अस्तित्व को सुरक्षित रख पाना भी उसके लिए असंभव होगा। इसी बात को श्री एल० आर० लक्ष्मीनारायण ने अपने शोध प्रबन्ध ''श्री अरविन्दो एण्ड दि टू कल्चर्स'' में दूसरे ढंग से कहा है। वे मनुष्य की वर्तमान चिन्तन पद्धति को ही आज के संकट के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए कहते हैं कि चिन्तन की संकीर्णता जहाँ व्यक्ति के दायरे को स्वयं तक, सम्प्रदाय अथवा जाति तक सीमित कर देती है, वहीं उसकी अधोमुखता हिंसा, क्रोध एवं प्रतिशोध जैसी प्रवृत्तियों को जन्म देती है। इस संकट से उबरने का वे एक ही विकल्प सुझाते हैं–चिन्तन का परिष्कार और उदात्तीकरण।

यह सच है कि मानवी चिन्तन–चेतना में समाये इस प्रकार के दुर्गुण की आज के संकट और मनुष्य के अस्तित्व के लिए प्रश्न-चिन्ह बनकर अड़े हुए हैं। जब तक वह अपने चिन्तन को परिष्कृत कर स्वयं को दुर्गुण मुक्त नहीं कर लेता तब तक न तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी है और न वर्तमान दुर्गति से बच सकता है। इसी का अनुमोदन करते हुए डब्ल्यू० एच० थ्रोप अपने ग्रन्थ ''एनीमल नेचर एण्ड ह्यूमन नेचर'' में प्रसिद्ध जन्तुशास्त्री डॉ० कोनार्ड लोरेन्ज की पुस्तक ''ऑन एग्रेसन'' पर समीक्षा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मनुष्य को जो मूलतः हिंसक एवं क्रोधी स्वभाव के मानते हैं, वह वस्तुतः भूल करते हैं। यह मनुष्य के विकार हैं न कि मूल प्रवृत्ति, इन्हें दूर कर वह, वह सब कुछ बन सकता है, जिसे महान विलक्षण, अद्भुत, अलौकिक कहा गया है।

आत्मसत्ता-आत्मिकी की सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला

मनुष्य की कायिक एवं मानसिक सरंचना विलक्षण एवं असीम सम्भावनाओं से भरी-पूरी होते हुए भी उसे पूर्ण नहीं माना जा सकता। जीवन व्यापार में उसे हर समय दूसरों की मदद लेनी ही पड़ती है। पदार्थ जगत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की सर्वोत्कृष्ट प्रतिभा मनुष्य की काया और ब्राह्मी चेतना के परोक्ष वैभव का प्रत्यक्ष प्रतीक प्रतिनिधि मानवी मस्तिष्क इतने श्रेष्ठ स्तर का होते हुए भी मनुष्य तब तक परावलम्बी है, जब तक इस यन्त्र उपकरण को अनुशासित कर नियन्त्रण करने वाली परब्रह्म सत्ता से उसके तारतम्य का पता नहीं लगाया जाता। यह पराक्रम पुरुषार्थ भी उसी स्तर का दैव-दानव संग्राम है, जिससे कभी चौदह रत्न निकले थे व विश्व-वसुधा गौरवान्वित हुई थी। भौतिकी को आत्मिकी के अनुशासन में बँधकर देखना ही ऋषिगुणों की, महामानवों की विशेषता रही है। आज के भौतिकवादी युग में उन्हीं मूल्यों की पुनः खोज, नये परिप्रेक्ष्य में उसकी स्थापना व उन्हें जन सुलभ बनाकर मानव को उसकी गरिमा का बोध करा देना उतना ही अनिवार्य हो गया है।

जब आज मनुष्य को अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिए परावलम्बी होना पड़ता है, विज्ञान के आविष्कारों की परिणित को सुख-साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है, तो आत्मिक प्रगति के लिये उच्चस्तरीय सहयोग की आवश्यकता पड़ना स्वाभाविक ही है। ब्राह्मी चेतना की अनुकूलता, अनुकम्पा सदैव मनुष्य के उत्थान हेतु उपलब्ध है। प्रश्न यही है कि कितना लाभ मनुष्य ने इस काया रूपी जन्म लेने के बाद आत्मोत्कर्ष की दिशा में बढ़ने के लिये उठाया। अनुग्रह ऊपर से बरसें या सिद्धियाँ अन्तः से उछलें, यह प्रश्न इतना अहम् नहीं जितना कि यह निर्धारण कि ऊँचा उठने के लिये कोई सहारा ढूँढ़ा गया अथवा नहीं। साधना से सिद्धि प्राप्त की दिशा में विभूतियों का सहयोग तभी मिलता है और वे श्रेष्ठ भी होती हैं, जब मनुष्य अपने को मनुहार द्वारा नहीं, पात्रता सम्पादन द्वारा तद्रूप-तदनुकूल बनाने का प्रयास करता है। यही है ब्रह्म को परब्रह्म से जोड़ने का तत्वदर्शन तथा समस्त सिद्धियाँ उच्चस्तरीय उपलब्धियों की प्राप्ति का राजमार्ग। इसी पर चलकर भौतिकी के विभिन्न मनीषियों ने—अध्यात्मविज्ञान के ऋषियों ने बहुमूल्य मणि-मुक्तक खोज निकाले हैं, स्वयं को देवदूत स्तर तक पहुँचाया है। इस कड़ी को पकड़कर ही वह आधार बनाया जा सकता है, जो व्यक्तित्व की समग्रता, पूर्णता की लक्ष्य प्राप्ति में सहायक बन सकेगा। इस प्रक्रिया को ही, जो जीव स्वयं सम्पन्न करता है, 'साधना' नाम से जाना जाता है।

साधना-जीवन साधना—आदतों एवं मान्यताओं को साध लेना इतना व्यापक शब्द है, जिसमें व्यक्तित्व की परिष्कृति का सारा स्वरूप छिपा पड़ा है। किसान अपने उच्छृंखल बैल को नकेल डालकर साधता है, जबकि सर्कस का मास्टर शेर, हाथी, रीछ जैसे उग्र प्रकृति के जीवों को नरम व्यवहार द्वारा, कभी कड़ाई से साध कर पालतू बना लेता है। गुलाब के पौधों में 'बडिंग' (कलम) लगाकर भाँति-भाँति के रंगीन फूल पैदाकर माली अपनी कला-सौन्दर्य की साधना का परिचय देता है। बंजर, अनुपजाऊ भूमि को खेत का रूप देकर धरती को सोना उगलने वाली देवी बना देना किसान की अथक साधना का ही प्रतिफल है। इसी प्रकार अणु विखण्डन द्वारा, भूगर्भ की पुरुषार्थ भरी खोजों तथा अन्तरिक्ष की गहरी छानबीन करते हुए आधुनिक मानव ने बहुमूल्य सुख-साधन प्राप्त किए हैं। यह भी एक साधना है, जिसके सुनियोजित प्रतिफलों ने आज युग को भौतिकी की दृष्टि से चरमावस्था पर पहुँचा दिया है। प्रश्न यह उठता है कि अनगढ़ प्रकृति तथा जीव जगत को सुगढ़ बनाते समय वह चेतना सत्ता को सुव्यवस्थित बनाने का, उत्कर्ष की दिशा में अग्रसर करने का प्रयास क्यों नहीं करता ? प्रगति के इस राजमार्ग का सुनिश्चित पथ जानते हुए भी वह चौराहे पर भटक क्यों जाता है ? यही है वह विडम्बना जिसके चलते व्यक्ति दिग्भ्रान्त, अशान्त, उद्विग्न नजर आता है। सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की दिशा में, अपने आप को सुव्यवस्थित, सुगढ़ बनाने में यदि उसी स्तर का पुरुषार्थ किया जाता तो आज जैसी परिस्थितियाँ सम्भवतः दृष्टिगोचर नहीं होती। सर्वत्र स्वर्गोपम वातावरण एवं देवत्व भरी मनःस्थिति पायी जाती है।

मानवी गरिमा के अनुरूप व्यक्तित्व कैसे ढले? इस विधा को ही आत्मिकी कहते हैं। इस विधा का अनुशासन व्यक्ति को अपने जन्म-जन्मान्तरों के संचित कुसंस्कारों, हठीले अभ्यासों को छोड़ने हेतु विवश करता है, निपटने हेतु समुचित मनोबल जुटाता है, कष्ट सहकर भी प्रगति की दिशा में अग्रगमन की प्रेरणा देता है।

उस प्रसंग में कदम जो उठाने पड़ते हैं, वे उच्चस्तरीय होते हैं। प्रसुप्त की जागृति इससे कम में सम्भव नहीं। बहुमूल्य पौध उगाने-फसलें प्राप्त करने के लिए भूमि को भी परिशोधित कर विशिष्ट रूप से तैयार किया जाता है। उच्च स्तर का आत्मबल यदि अभीष्ट है तो परिष्कृत व्यक्तित्व का उपार्जन करना होता है कि ताकि विभूतियों को सँभालकर रखा जा सके—उनका दुरुपयोग न होने पाए।

आत्मिकी को भौतिकी के अनुरूप बनाने उसकी प्रामाणिकता को तर्क, प्रमाणों के आधार पर सिद्ध करने के लिए मानवी काया को ही प्रयोगशाला बनाकर साधक की व्यष्टि सत्ता को प्रखर-परिमार्जित करना होगा। साधना के अनेकानेक पक्षों की चर्चा इसी सन्दर्भ में होती रही है। योग

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और तप, साधना के दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। 'योग' जहाँ शरणगति एकत्व की स्थिति है, वहाँ 'तप' शोधन की अग्नि-संस्कार वाली प्रक्रिया है। आत्म-सम्पादन हेतु वांछित ऊर्जा इसी काया से 'तप' प्रक्रिया के माध्यम से ही उद्भूत होती है। ऊर्जा जहाँ भौतिकी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बलशाली शक्ति है, वहाँ अध्यात्म क्षेत्र में भी सामर्थ्य उपार्जन का यही एक मात्र आधार है। चेतना को निकृष्टता से विरत कर उत्कृष्टता के साथ जोड़ देना 'योग' और शरीरगत अस्त-व्यस्तता को सुसंस्कारिता के अनुशासन में जकड़ देना 'तप' है। दोनों ही परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। दोनों पैरों को उठाते, बढ़ते रहने पर ही यात्रा क्रम चलता है। दो पहियों से ही गाड़ी लुढ़कती है। दोनों हाथों से ही ताली बजती है। योग और तप को, शरीर और मन को, चिन्तन और कर्म को उत्कृष्टता का अभ्यास कराने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है, यह समझना और समझाना आत्मिकी के पुनर्जागरण में शुभारम्भ की तरह आवश्यक माना जाना चाहिए और इसके लिए गम्भीरता से प्रयास चलना चाहिए।

गम्भीरता से चिन्तन की बात इसलिए कही जा रही है कि अक्सर इनको बड़े हल्के रूप में ले लिया जाता है। इससे लाभ मिलना तो दूर, अध्यात्म के समीप भी साधक पहुँचता नहीं देखा जाता। वस्तुतः यह गीता में वर्णित महाभारत है, जो अन्तर्जगत के धर्म-क्षेत्र कुरुक्षेत्र में लड़ा जाता है। भाव कल्प, चिन्तन का परिष्कार, समग्र प्रत्यावर्तन ही इस प्रक्रिया की फल श्रुति है।

योग में 'ध्यान' अभ्यास की प्रमुखता है। 'मेडीटेशन' एकाग्रता का महत्त्व बहुत बताया जाता रहा है। उसका तात्पर्य यही है कि निकृष्टता के, लोभ, मोह और अहंता के जाल-जंजाल में जकड़े हुए मन को इन विडम्बनाओं में भटकते रहने की आदत छुड़वाना तथा निर्धारित लक्ष्य इष्टदेव के साथ तादात्म्य होने का अभ्यास करना। इसमें मन को बिखराव की बाल बुद्धि छोड़ने और इष्टदेव से लेकर दिनचर्या के प्रत्येक क्रिया कृत्य में तादात्म्य होने का अभ्यास करना भी है। न तो पूजा उपचार में बिखराव रहे और न दैनिक क्रिया-कृत्य को बेगार भुगतने की तरह आधे-अधूरे मन से किया जाय। इस ढोंग—मन बहलाने की प्रक्रिया से पीछा जितनी जल्दी छुड़ाया जा सके, इसके प्रयास चलने चाहिए। समय क्षेप तो इससे बचेगा ही, सोद्देश्य साधना के लाभ भी शीघ्र ही मिलने लगेंगे। क्रिया के साथ मनोयोग को घनिष्ठ कर देने की सफलता बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसे अपनाने वाले भौतिक एवं आत्मिक क्षेत्र में समान रूप से सफल होते हैं।

किसी देवता का ध्यान करते रहना और उसी की छवि में मन रमाए रहना मनोनिग्रह का एक स्वरूप तो है पर इतने भर से अभीष्ट सफलता नहीं समझी जानी चाहिए। ऐसी एकाग्रता तो नट, बाजीगर, मुनीम, कलाकार, वैज्ञानिक भी अपने स्वभाव का अंग बना लेते हैं। मेस्मेरेज्म के प्रयोगों में यही एकाग्रता चमत्कार दिखाती है। इतने पर भी वे लोग आत्मिक दृष्टि से किसी भी प्रकार ऊँचा उठे हुए नहीं कहे जा सकते। किसी कल्पना मात्र पर ध्यान जमाए रहना इस प्रयोजन के लिए एक उपचार भर है। लक्ष्य यह है कि सर्वतोमुखी उत्कृष्टता के प्रति सघन श्रद्धा उत्पन्न की जाय, उसके माहात्म्यों का भावभरा चिन्तन किया जाय और अपनी समूची चेतना को उसी में सराबोर होने दिया जाय। उद्देश्यपूर्ण स्वाध्याय और सत्संग भी ध्यानयोग के ही अंग माने गए हैं। उत्कृष्टता की गरिमा पर श्रद्धा केन्द्रित करने को 'चिन्तन' और उसे आज की स्थिति में क्रियान्वित करने की आकांक्षा को उभारना, योजना बनाना 'मनन' कहलाता है।

योगाभ्यास की ध्यान योजना के अन्तर्गत आत्म समीक्षा, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास की सुविस्तृत रूपरेखा खड़ी करना, उसे सफल बनाने के लिए कटिबद्ध होना प्रमुख कार्य है। इसी के निमित्त स्वाधाय, सत्संग, चिन्तन मनन के चार आधार अपनाने पड़ते हैं। एकाग्रता (मेडीटेशन) ध्यान योग के अन्तर्गत ये प्रयोजन भी जुड़े रहते हैं। अन्यथा मन को एक कल्पना भर देकर रोके रहने से योगाभ्यास का वह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकेगा, जिसके आधार पर आत्मसत्ता को आत्मिकी की प्रयोगशाला के रूप में परिणति करने की व्यवस्था बनती थी।

योग का साथी तप मात्र शरीरगत क्रिया है। सँजोई अनगढ़ आदतों को मोड़ना-मरोड़ना एवं अपने स्वभाव में सुसंस्कारिता को सम्मिलित करने का अभ्यास प्रबल पुरुषार्थ है। बिखराव रुकने पर तप द्वारा शक्ति अर्जन का आप्त वचन सही होता है देखा जा सकता है। मात्र निरोध नहीं-संकल्पों से जुड़ा संयम ही तप कहलाता है। इन्द्रिय संयम, विचार-संयमों के रूप में इन तप-साधनों की चर्चा समय-समय पर होती रही है। बाल बुद्धि के लोग मात्र ब्रह्मचर्य को ही तप मानते हैं, जबकि तप एक समय साधना है जिसका ब्रह्मचर्य भी एक अंग है। इन्द्रिय-लिप्सा जब पूरे जोश-खरोश पर है, ऐसी दशा में संयम समर्थ तर्क, तथ्य, प्रमाण और वैज्ञानिक प्रतिपादनों के आधार पर सत्यापन नितान्त आवश्यक है। अन्यथा आत्मिकी के प्रयोग-परीक्षणों के लिए द्वार बन्द ही रहेगा। जब साधक की सत्ता आत्मिकी का अवधारण ही न कर सकेगी तो उससे लाभ उठाने की बात ही कैसे बनेगी?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्द्रिय छिद्रों में से जीवन-रस टपकता रहेगा और आत्मिक दृष्टि से छूँछ बना हुआ व्यक्ति उच्चस्तरीय पुरुषार्थ करने एवं तद्नुरूप सफलताएँ प्राप्त कर सकने में सफल कैसे होगा ?

योग और तप सम्बन्धी इस विवेचन को आज भी भ्रष्ट मान्यताओं और दुष्ट परम्पराओं के सामने किस प्रकार मल्लयुद्ध के लिए प्रस्तुत करने और विजयी बनाने का सरंजाम जुटाया जाय, यही वास्तविक युगानुकूल पुरुषार्थ है। इन प्रयासों की सफलता पर आत्मिकी का पुनर्जीवन और मानवी भविष्य के उज्ज्वल पक्ष का निर्धारण अवलम्बित है। यह प्रयत्न छोटा दीखते हुए भी परिणाम की दृष्टि से कितना महान और महत्वपूर्ण है, इसकी मात्र कल्पना से ही मन पुलकित हो उठता है।

चेतना के विकास में परिवेश का महत्व

जिस वातावरण में, जैसे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ता है, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। मनुष्य को बहुत कुछ अपने भाग्य, भविष्य और व्यक्तित्व का निर्माता स्वयं कहा जाता है, परन्तु उसका इच्छित निर्माण भी तभी सम्भव होता है, जबकि उपयुक्त वातावरण मिले। उपयुक्त वातावरण के अभाव में वे परिस्थितियाँ और सुविधाएँ उपलब्ध ही नहीं होतीं जो अभीष्ट विकास के लिए आवश्यक हैं इसीलिए मनीषियों ने उच्चस्तरीय आत्मिक विकास के लिए सत्पुरुषों की संगति करने, परिमार्जित और परिष्कृत वातावरण में रहने तथा आत्मविकास के लिए समुचित प्रयत्न करते रहने का निर्देश दिया है।

वातावरण, परिवेश या परिस्थितियाँ मनुष्य को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ? इसका अच्छा उदाहरण जुड़वाँ बच्चों में देखा जा सकता है। एक साथ एक ही गर्भ से जन्म लेने वाले बच्चों के स्वभाव, स्वास्थ्य, रंग, रूप और यहाँ तक कि चरित्र में भी अद्भुत साम्य देखा गया है। जन्म लेने के बाद भले ही परिस्थितियाँ भिन्न हो जाएँ, जुड़वाँ बच्चों को आगे चलकर भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्र अपनाना पड़े परन्तु उनमें वह साम्य फिर भी कम नहीं होता। यह साम्य किस स्तर तक, किस सीमा के अन्दर तक घटाया या बढ़ाया जा सकता है ? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये हैं और उनके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए हैं। अमेरिका के बोस्टन शहर में जन्मी दो जुड़वाँ बच्चियों पर किये गए प्रयोग इस सम्बन्ध में एक ठोस प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

यहाँ जन्मीं दो लड़कियाँ जिल और वरोनिका को तीन महीने तक तो एक साथ पलने दिया गया। फिर उन्हें अलग-अलग कर दिया गया। जिल के पालन-पोषण की जिम्मेदारी जिस महिला को दी गई थी, उसके और भी बच्चे थे तथा वह कठोर शारीरिक श्रम की आदी और सख्त अनुशासन प्रिय स्वभाव की थी। अपने बच्चों को भी उसने अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार साँचे में ढाला। वरोनिका की अभिभावक महिला सीधे सादे किस्म की गृहिणी थी और वह दूसरों से ज्यादा मिलना-जुलना भी पसन्द नहीं करती थी। एकान्त उसे बहुत अच्छा लगता था, जबकि जिल की अभिभावक महिला सामाजिक कार्यों में बहुत रुचि लेती थी और एकान्त तो जैसे उसे काटने दौड़ता था।

जिल और वरोनिका के चेहरे-मोहरे में अद्भुत साम्य था। दोनों को एक साथ देखने पर उन्हें अच्छी तरह पहचानने वाला व्यक्तियों के लिए यह निश्चित कर पाना कठिन हो जाता था कि कौन जिल है और कौन वरोनिका? उन्हें जब स्कूल में भरती कराया गया तो पाया गया कि उनके स्वभाव एक-दूसरे से बहुत सीमा तक मिलते हैं। अलग-अलग स्थानों में, अलग-अलग प्रकृति की महिलाओं के संरक्षण में रहकर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर आभासित नहीं होता था।

जुड़वाँ बच्चे जीवविज्ञान के लिए अभी भी एक पहेली हैं। वैज्ञानिकों ने इस विषय में अनुसंधान की व्यापक योजनाएँ बनाई हैं। अकेले अमेरिका में सौ से अधिक ऐसे केन्द्र हैं जहाँ जुड़वाँ बच्चों के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। इन केन्द्रों में विभिन्न जुड़वाँ बच्चों के सम्पूर्ण जीवन की जानकारी एकत्रित की जाती है, उसका अध्ययन किया जाता है और उन्हें एक-दूसरे से सम्बद्ध किया जाता है अब तक हुए अध्ययन से प्राप्त विभिन्न निष्कर्षों के अनुसार औसतन ४० में से एक बच्चा जुड़वाँ होता है अर्थात् ८० प्रसव होते हैं तो उनसे एक प्रसव से जुड़वाँ बच्चे जन्म लेते हैं।

जुड़वाँ बच्चों को जन्म के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक तो वह जिसमें दोनों बच्चों का एक साथ जन्म होता है, दूसरे बच्चे कुछ समय के अन्तर से होते हैं। इनमें से पहले वाले को युग्म जुड़वाँ बच्चे कहा जाता है। तथा दूसरे प्रकार के बच्चों को सामान्य जुड़वाँ बच्चे। युग्म जुड़वाँ बच्चे एक ही डिम्ब से जन्म लेते हैं। देखने में वे अक्सर एक जैसे लगते हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। केवल उनकी अँगुलियों के निशान ही अलग होते हैं। वे अलग सैक्स के हो सकते हैं और शक्ल में भी कुछ अन्तर हो सकता है। किन्तु यह अन्तर ऐसा नहीं होता कि सामान्य दृष्टि से देखा या समझा जा सके। स्वभाव तो लगभग एक समान ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बंकिंघम के मातृत्व शोध-संस्थान के वैज्ञानिकों ने जुड़वाँ बच्चों में कुछ अन्तर पाए हैं, किन्तु यह अन्तर सामान्य या असामान्य गम्भीरता से देखने पर पता नहीं चलता। इस पर भी उनके विचारों, आदतों और स्वभाव में अद्भुत साम्य देखा गया। विंसेट तथा मारग्रेट नामक दो वैज्ञानिकों ने सैकड़ों जुड़वाँ बच्चों पर शोध कर अनेक महत्त्वपूर्ण तथा विस्मयकारी निष्कर्ष ढूँढ़ निकाले हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक में कई जुड़वाँ बच्चों के उदाहरण दिये हैं। एक डॉक्टर की पत्नी का उदाहरण इसमें बेहद दिलचस्प है। नाम था उसका डोंग मार्टिन। वह एक पार्टी में सम्मिलित थी और हँस-हँसकर अपने मित्रों से बोल-बतिया रही थी। अचानक न जाने क्या हुआ कि वह उदास हो गई और फूट-फूट कर रोने लगी। डॉ० विंसेट भी उसी पार्टी में उपस्थिति थे। मार्टिन को इस प्रकार रोते देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ समय बाद उन्होंने इसके कारण तलाशते हुए पाया कि पार्टी में जिस समय मार्टिन रो उठी थी, उस समय उसकी जुड़वाँ बहन अचानक बीमार पड़ गई थी।

बंकिंघम शहर की ही एक और घटना का उल्लेख है, मारग्रेट एक परिवार में अतिथि थे। मेजबान परिवार की गृहिणी पूरी तरह सामान्य थी। वह प्रसन्न और स्वस्थ चित्त से अतिथियों का सत्कार कर रही थी। अचानक रसोई में से उनके कराहने का स्वर सुनाई दिया। मारग्रेट सहित परिवार के अन्य लोग दौड़कर आए। देखा टैडी उसी प्रकार कराहते हुए रसोई के अपने काम में लगी है। पूछने पर उसने बताया अचानक उसके चेहरे, पीठ और पैरों में इस प्रकार दर्द होने लगा था, जैसे वह किसी दुर्घटना में आहत हो गई हो और उसे चोट लगी हो।

टैडी काफी समय तक उसी स्थिति में रही। चोट लगने जैसे दर्द का तत्काल कोई कारण समझ में नहीं आया पीछे पता चला कि उसी समय टैडी की बहन बैब्स एक कार दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो गई थी। उसके चेहरे, पीठ और पैरों पर काफी चोटें आई थीं तथा वह इस दुर्घटना के कारण बेहोश हो गई थी।

इस तरह की घटनाएँ अन्य जुड़वाँ बच्चों में भी पाई गई हैं। प्राय: उनमें से किसी एक को कोई तकलीफ होती है तो दूसरे को भी पता चल जाता है और बहुत बार वैसी ही पीड़ा वे भी अनुभव करने लगते हैं। ब्रिटेन की लेबर पार्टी के संसद सदस्य डगलस की बेटी कैथरीन ने जिस समय एक लड़के को जन्म दिया उसी समय, उसकी जुड़वाँ बहिन हेलन के पेट में भी संख्त पीड़ा हो रही थी। मानचेस्टर की बारबरा मैरिगन ने भी छह घण्टे तक अपनी जुड़वाँ बहिन के साथ प्रसव वेदना झेली। प्रो० जे० एच० कैमरान ने लिवरपूल के एक मैकेनिक का विचित्र विवरण दिया है। जिसे न कहीं चोट आई न कोई बीमारी हुई फिर भी वह एक सप्ताह तक चलने-फिरने में असमर्थ रहा। कारण कि उसके एक जुड़वाँ भाई की टाँग एक दुर्घटना में टूट चुकी थी।

जुड़वाँ बच्चों में शारीरिक और मानसिक रूप से इतनी साम्यता होती है कि उन्हें एक ही व्यक्तित्व के दो बिम्ब कहा जाये तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। अनेक जुड़वाओं में, वे कहीं भी रहें, एक-दूसरे तक अपने विचार और संवेदना सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है और कई बार इस क्षमता से बहुत लाभ होता देखा गया है।

यह समानता क्यों उत्पन्न होती है ? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक गम्भीरता से शोध कर रहे हैं। अमरीकी विशेषज्ञ विंसेट का कथन है कि यदि युग्म जुड़वाँ बच्चों में शारीरिक दृष्टि से समानता होती है तो इस बात की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है कि वे मानसिक दृष्टि से भी एक समान हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसके उत्तर में कहा गया है कि उन बच्चों का विकास गर्भाशय के भीतर ही एक-सी ही स्थितियों में होता है। उस समान स्थिति में पलने के कारण अलग-अलग देहधारी होते हुए भी उनके व्यक्तित्व तथा आचरण में समानता आ जाती है।

एक ही गर्भ में पलने वाले बच्चों के गुणसूत्र भी एक से होते हैं। कभी-कभी इन बच्चों का गर्भाधान और विकास अलग प्रकार के गुणसूत्रों से भी होता है। एक ही प्रकार के गुणसूत्रों वाले बच्चों को 'आइडेंटिकल ट्विनस' कहते हैं। ऐसे बच्चे समान लिंगी के होते हैं अर्थात् या तो पुरुष होते हैं अथवा स्त्री। गर्भ में जिन बच्चों का विकास अलग-अलग गुण सूत्रों से होता है, उन्हें फ्रैटर-नल ट्विनस कहते हैं। ऐसे बच्चों के लिंग भिन्न-भिन्न भी हो सकते हैं अर्थात् एक पुल्लिग हो सकता है और दूसरा स्त्रीलिंग। कोई आवश्यक नहीं कि ये भिन्न लिंग के हों ही सही' परन्तु ऐसी सम्भावना हो सकती है। 'आइडेंटिकल टिवन्स' में इस तरह की सम्भावना बिल्कुल नहीं रहती।

लन्दन हॉस्पिटल के 'साइकीआर्टो इन्स्टीट्यूट' के डॉ० जेम्स शील्ड ने जुड़वाँ बच्चों पर काफी अनुसंधान कार्य किया है तथा उनमें पाई जाने वाली समानताओं के वैज्ञानिक कारण प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार एक ही गुण-सूत्रों से विकसित बच्चों के शरीर, स्वरूप, स्वभाव, आदतों, व्यवहार, रुचियों और मस्तिष्कीय क्षमताओं में आश्चर्यजनक समानता होती है। इसका कारण दोनों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ही परिवेश में पलना और विकसित होना है। ऐसे बच्चे जब गर्भ में होते हैं तो गर्भिणी द्वारा किये जाने वाले आहार तथा उसकी दिनचर्या का दोनों पर समान रूप से प्रभाव पड़ता है। उन्हें गर्भ में एक ही प्रकार का पोषण मिलता है। वे एक ही श्वाँस लेते हैं। कुछ मिलाकर समान परिस्थितियाँ एवं समान स्तर का पोषण मिलने के कारण ही उनमें समानताएँ पाई जाती हैं।

वातावरण और परिवेश गर्भस्थ शिशु को ही नहीं मनुष्य को भी असाधारण रूप में प्रभावित करता है। इस सिद्धान्त या तथ्य को भारतीय मनीषियों ने भी समझा था। जब व्यक्ति के उच्चस्तरीय विकास हेतु संस्कारी व्यक्तित्वों के संसर्ग में रहने पर विशेष जोर दिया था। सत्संग का इसीलिए अत्यधिक महत्त्व बताया गया है कि उसमें जिन व्यक्तियों की संगति प्राप्त होती है, उनका तेजस् वातावरण में ऐसी सूक्ष्म विशेषताएँ उत्पन्न करता है, जिससे मनुष्य की चेतना अनायास ही प्रभावित होने लगती है और आत्मिक विकास की दिशा में अग्रसर होती है।

शारीरिक दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताएँ भले ही भिन्न-भिन्न हों, उनकी अलग-अलग सम्भावनाएँ हों, किन्तु आत्मिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट सम्भावनाएँ लिए हुए होता है, ये सम्भावनाएँ तभी साकार होती हैं, जब उनके अनुरूप परिस्थितियाँ उपलब्ध हों। पानी से भाप बन जाने और वाष्प शक्ति के रूप में बड़े-बड़े यन्त्र चलाने की सम्भावना है। किन्तु पानी हर कहीं वाष्प शक्ति में परिणित नहीं होता। उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था बनानी पड़ती है। आत्मिक विकास की उच्च कक्षा में पहुँचने के लिए भी उच्चस्तरीय आत्माओं का सम्पर्क, सानिध्य आवश्यक है। वह सम्पर्क, सान्निध्य चुम्बकीय विशेषता की तरह समीपवर्ती व्यक्तियों को अपने समान बना लेता है। अत: ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, जिनके सान्निध्य में आत्मिक क्षमताओं का विकास हो सके। वैसे वातावरण और परिवेश में रहने का अवसर प्राप्त करना चाहिए, जो चेतना का उच्चस्तरीय विकास सम्भव बना सके।

जीव चेतना की सात भूमिकाएँ

जीवात्मा क्या है ? कहाँ से आया है ? विश्व में वह किस स्थिति में है और कहाँ पहुँचकर वह पूर्णता प्राप्त करता है ? इस सम्बन्ध में पूर्व और पाश्चात्य, ज्ञान और विज्ञान जगत दोनों ही आदिकाल से खोज करते रहे हैं। किन्तु अति सूक्ष्म विज्ञान होने के कारण उसे अच्छी तरह समझा नहीं जा सका। इस सन्दर्भ में उपलब्ध दर्शनों में वेद और उपनिषद् सम्बन्धी मीमांसा को सर्वशुद्ध और प्रामाणिक माना गया है।

(१) भू: (२) भुव (३) स्व: (४) मह: (५) जन: (६) तप: और (७) सत्यम्—यह सात लोक, (१) बीज जाग्रत (२) जाग्रत (३) महा जाग्रत (४) जाग्रत स्वप्न (५) स्वप्न (६) स्वप्न जाग्रत और (७) सुषुप्ति—यह जीव की सात अवस्थायें, (१) रस (२) रक्त (३) माँस (४) मज्जा (५) मेद (६) अस्थि और (७) वीर्य—यह सात धातुएँ तथा (१) स्वप्न जागर (२) संकल्प जागर (३) केवल जागर (४) चिर जागर (५) घन जागर (६) जाग्रत स्वप्न और (७) क्षीण जागर—यह जीवों के सात प्रकार। इन सबकी विधिवत् जानकारी दिलाना भारतीय तत्व-दर्शन का उद्देश्य रहा है। यह सप्तक केले के पर्तों के अनुसार जीव-चेतना के विकास की सात अवस्थाओं का विज्ञान है। इसे समझ लेने पर परमात्मा की स्थिति से लेकर संसार के विस्तार, जीवात्मा के विज्ञान से लेकर पुन: मुक्त् अवस्था प्राप्त होने तक का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना सुगम हो जाता है। इन अवस्थाओं को 'एस्ट्रल' शरीर के नाम से थियोसाफिस्ट और पाश्चात्य वैज्ञानिक भी जानने लगे हैं, तथापि उनकी सबसे अच्छी व्याख्या योग-ग्रन्थों और उपनिषदों में ही प्राप्त है।

सर्वप्रथम सृष्टि-विस्तार की प्रक्रिया को लेते हैं। भारतीय दर्शन की मान्यता यह है कि प्रारम्भ में एक ही 'महतत्व' परमात्मा था, उसकी इच्छा हुई—**'एकोहं बहुस्याम्'** मैं एक हूँ, अनन्त हो जाऊँ। उसकी इस इच्छा से ही पंच-तत्वों की रचना हुई और क्रमश: अनेक लोक-लोकान्तरों और जीवधारियों की रचना होती चली गई। यों ब्राह्मणों की संख्या अनन्त है—**बहवो ह वा .....आदित्यात् पराञ्चो लोका,** (जैमिनी ब्राह्मण १।९१) अर्थात् आदित्य से परे लोक है तथापि पंच तत्वों की न्यूनाधिक मात्रा के अनुपात से लोकों की संख्या सात ही मानी गई, ५ लोक पाँच तत्वों की मित्ति बहुलता वाले अर्थात् किसी में आकाश तत्व अधिक है, शेष ४ कम मात्रा में। किसी में अग्नि तत्व अधिक हैं, शेष ४ कम ऐसे। एक इन समस्त तत्वों में परे महतत्व और अन्तिम तमिस्र लोक अर्थात् जिसमें स्थूलता-ही स्थूलता, अन्धकार-ही अन्धकार है।

इन लोकों की स्थिति पृथक्-पृथक् न होकर अर्न्तवर्ती है अर्थात् एक लोक में ही शेष ६ भी हैं। एक ही स्थान पर सातों लोक विद्यमान हैं। जीव-चेतना अपने तत्वों की जिस बहुलता में होती है, वह उसी प्रकार के लोक का अनुभव करती है। पृथ्वी पर रहते हुए भी हम सूर्यलोक, आदित्य या स्वर्गलोक में स्थित हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं, यदि हमारी चेतना अग्नि, सोम और महतत्व में परिणित हो चुकी हो। जैमिनी ब्राह्मणों में इसी बात को—**'अनन्तर्हितान् एश्वेत् ऊध्वनि लोकान् जयति'** कहा है, जिसका अर्थ है—ईश्वर को प्रयत्नपूर्वक धारण करने वाला व्यक्ति न पृथक् हुए ही उर्ध्व लोकों को जीतता है।

भू: लोक हमारे भीतर है, हम जिस लोक के तत्व का विकास कर लेते हैं। स्थूल रूप से शरीर में होने पर भी अपने आपको उसी लोक में अनुभव करते हैं, वैसी ही सूक्ष्म दृष्टि और शक्ति के स्वामी भी हम होते हैं। भूलोक स्थूल धातुओं और खनिजों का लोक है। इस लोक में रहने वाले व्यक्ति में इच्छाएँ और वासनाएँ बनी रहती हैं। इस तत्व से प्रभावित व्यक्ति में नेतृत्व, सर्व विद्या विनोदी, रोगमुक्त, काव्य और लेखन की सामर्थ्य आदि विकसित होते हैं।

भुव: लोक जल तत्व प्रधान सिन्दूर पूर्ण का है। इस लोक में निवास करने वाले व्यक्तियों का अहंकार, मोह, ममत्व नष्ट हो जाता है। ईश्वरीय मनन में प्रसन्नता अनुभव होने लगती है। रचना-शक्ति का विकास होने लगता है, सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा वह अधिक उन्नतिशील होता है। स्व:लोक अग्नि तत्व की प्रधानता की अवस्था है। सूर्य में अग्नि तत्वों वाले जीव ही रह सकते हैं या यों कहना चाहिए कि सूर्य का ध्यान करते रहने से अग्नि अर्थात् उष्णता, विद्युत और प्रकाश के परमाणुओं का शरीर में विकास होता है। ऐसे शरीर वाले व्यक्ति में संहार और पालन की शक्ति, वचन-सिद्धि आदि गुण होते हैं। उस व्यक्ति को दुर्गुणों से घृणा होने लगती है तथा परमार्थ व सेवा में आनन्द मिलने लगता है।

मह: लोक वायु तत्व की प्रधानता का प्रतीक है। इसके ध्यान और प्राप्ति से इन्द्रिय संयम, ज्ञान-प्राप्ति की उत्कण्ठा और परकाया प्रवेश आदि सिद्धियों का स्वामित्व मिलता है। इसी स्थिति में परिणित हो जाने पर आत्म-चेतना इन शक्तियों सामर्थ्यों का अधिकार सामान्य रूप में प्राप्त कर लेती है। जन: लोक जिसके परमाणु धूम्र वर्ण के, आकाश तत्व की प्रधानता वाले होते हैं। इस स्थिति में जीवात्मा दीर्घ जीवी तेजस्विता, सर्व हित परायणता और भूत-भविष्य को देखने का अधिकार प्राप्त करती है। इस स्थिति पर पहुँची हुई आत्मायें कठिन परिस्थिति में भी अतीव शान्ति अनुभव करती हैं। उनके मस्तिष्क में से सदैव सुखद विचार उठते रहते हैं।

तप: लोक शुभ्र वर्ण के शुद्ध ज्योतिर्मय परमाणुओं से बना होता है। इसे ही महतत्व कहते हैं, उसके ध्यान करने से ऊँकार का सुखद नाद सुनाई देता है और तीनों लोकों में जो कुछ है, वह स्थूल नेत्रों की तरह आत्मा में प्रतिभासित होने लगता है। इस अवस्था में पहुँचे हुए साधक के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। अन्तिम सत्यलोक, जहाँ से परमात्मा का संकल्प स्फुरित होता है, जो निराकार और सभी तत्वों से अतीत है। यहाँ पहुँची हुई आत्मायें जन्म-मृत्यु के बन्धनों से छूटकर सहस्रदल कमल की तरह आकार वाले दिव्यलोक का स्वामित्व प्राप्त करती हैं। इन सातों लोकों की क्रमश: सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम अवस्थायें हैं। इनमें आत्म-चेतना की क्रमश: परिणति को ही जीव की सात अवस्थायें कहा जाता है।

यों ब्रह्माण्ड के विस्तार के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के अनेक मत हैं, पर उनमें से जिन तीन सिद्धान्तों को पाश्चात्य देशों में प्रामाणिक माना गया है, उनका सार इन तथ्यों का प्रतिपादन ही करता है।

पहला ब्रिटिश खगोलशास्त्री फ्रायड हायल का 'अपरिवर्ती' सिद्धान्त है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड का अस्तित्व हमेशा रहा है। हम भी मानते हैं कि परमात्मा अनादि तत्व है, वह कालातीत है अर्थात् ऐसा कोई भी समय नहीं, जब वह न रहा हो। इस तत्व को हाइड्रोजन कहते हैं। इसी से अनेक आकाश गंगायें बनीं और क्रमश: घनत्व वाले ब्रह्माण्डों का विस्तार होता चला गया है।

दूसरा सिद्धान्त कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय के रेडियो खगोल शास्त्री डॉ० मार्टिन रैले का 'वृहत् विस्फोट' का सिद्धान्त कहलाता है। उसके अनुसार १० अरब वर्ष पूर्व एक अत्यन्त सघन परमाणुओं वाला तत्व था, उसमें एकाएक जोर का विस्फोट हुआ। उस विस्फोट से बिखरे पदार्थ खण्ड ही आकाश गंगायें बनीं और उनसे सूर्य, सूर्य से पृथ्वी आदि ग्रह-नक्षत्र बने। गुब्बारा फूलने की तरह यह ब्रह्माण्ड विकसित होता जा रहा है और वह अनन्त विस्तार में समाता चला जायेगा। इस मत के मानने वाले ब्रह्माण्ड की समाप्ति पर नहीं, विस्तार पर ही विश्वास करते हैं।

तीसरा सिद्धान्त पुनरावृत्ति का या दोलायमान स्थिति का सिद्धान्त कहलाता है और जो ऐलेने सैण्डेज तथा पालोमर वेधशाला के वैज्ञानिकों की देन हैं—ये और सब बातें वृहत् विस्फोट के सिद्धान्त की ही हैं, पर इनके अनुसार ८० अरब वर्ष पीछे ब्रह्मांड के विस्तार की अन्तिम स्थिति होगी अर्थात् उस समय प्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न होने से सारे पञ्चभूत नष्ट होकर पुन: एक ही तत्व में चले जायेंगे। इसके बाद सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया पुन: प्रारम्भ होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सिद्धान्त प्रकारान्तर से भारतीय सिद्धान्तों की ही पुष्टि करते हैं। एक ही तत्व के विकास और काल-विभाजन को हमारे यहाँ गणनायें तक हुई हैं और उन्हें देव-गुणों से लेकर पृथ्वी के युगों तक बाँटकर एक-एक युग में तत्वों की कमी या आधिक्य के साथ यह तक बता दिया है कि अमुक युग में ऐसी मन:स्थिति, अमुक युग में अमुक मन:स्थिति के लोग होंगे। ब्रह्मांड के विकास के साथ चेतना के विकास का जितना अच्छा समन्वय और सामंजस्य भारतीय तत्व-दर्शन ने प्रस्तुत किया है, उतना संसार के अन्य किसी भी विद्वान ने नहीं किया। वे अभी तक स्थूल विवेचन तक ही सीमित हैं, इसलिये आगे जीव की जिन सात अवस्थाओं का विवेचन करेंगे, उनका वैज्ञानिक दृष्टि से कोई प्रमाण नहीं मिलेगा। उनको प्रमाणित करने वाले तत्व केवल मनोवैज्ञानिक और घटनापरक तथ्य ही होंगे,

अब तक सप्त लोकों की स्थिति का अध्ययन और पुष्टि वैज्ञानिक नहीं कर सके तथापि ब्रह्मांड में कुछ धुँधली रहस्यमयी वस्तुएँ दिखाई दी हैं, जिन्हें आकाश की जबर्दस्त शक्ति-स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। इन वस्तुओं का नाम 'क्वासार' रखा गया है। उनका अध्ययन तो ज्योति-विज्ञान के अध्याय में अन्यत्र करेंगे, पर यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन शक्ति-स्रोतों के वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) सात रंग के पाये गये हैं १—बैंगनी २—नीला ३—आसमानी ४—हरा ५—पीला ६—नारंगी ७—लाल। इनमें से कुछ वर्णभेद समीपवर्ती रंगों के सम्मिश्रण हो सकते हैं। यदि ऐसा हो, तो उनकी पूर्ति अत्यन्त दिव्य और अत्यन्त अन्धकारपूर्ण वे दो रंग हो सकते हैं, जिन्हें अपने वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) में पालोमर वेधशाला के वैज्ञानिक डा० एलन सैंडेज और जीस ग्रीनस्टेना ने प्राप्त किया। बड़े परिश्रम से जब उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म वर्णक्रम प्राप्त किया, तो उसमें यह दो ही रंग उपलब्ध हुए।

इन अवस्थाओं और शक्ति-स्रोतों को इकट्ठा चित्रित करना कठिन है, पर यह निश्चित है कि यह अनजाने शक्ति-स्रोत सात लोकों के सात तत्व केन्द्र ही हैं। उन पर और विस्तृत खोजें हुईं, तो लोग देखेंगे कि भारतीय तत्व-दर्शन कितना अत्याधुनिक और प्रामाणिक रहा है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है—लोकों के अध्ययन के साथ-साथ भारतीय तत्वदर्शियों और योगियों ने उनमें पाये जाने वाले तत्वों और उनकी मानसिक संरचना का भी विस्तृत अध्ययन किया और जब उसे मनुष्य के मनोविज्ञान से मिलाया, तो उसमें अद्भुत सामंजस्य मिला। सातों लोकों में प्राप्त चेतना यद्यपि अपने मूल परिवेश में एक ही है तथापि उसके गुण और सामर्थ्य अलग-अलग क्रमश: ऊपर से नीचे की ओर विघटित या नीचे से ऊपर की ओर विकसित हैं। विकसित अवस्था को जीव का लक्ष्य बताया, क्योंकि उससे आनन्द, सुख-सौन्दर्य, श्री और शांति मिलती है, जबकि पतन की स्थिति में जीवात्मा अपनी सूक्ष्म शक्तियाँ साँप की केंचुल की तरह छोड़ती चली जाती हैं। निकृष्ट योनियों में पड़ने से वह दु:ख कष्ट और क्लेशपूर्ण जीवन में ही फँसती चली जाती है। इसलिये शास्त्रकार सदैव ऊर्ध्वमुखी जीवन की प्रेरणा देते रहे और भोगवादी प्रवृत्तियों से सावधान करते रहे हैं।

सातों लोकों में निवास करने वाली चेतना का विस्तार जब परमात्मा से प्रकृति की ओर होता है, तब प्रथम अवस्था बीज जाग्रत कहलाती है। विज्ञान बताता है कि संसार स्थूल कुछ है ही नहीं—सब कुछ शक्तिमय, चिन्तमय है। यह सारा संसार परमाणुओं से बना है और परमाणु अपने आप में कोई स्थूल पदार्थ न होकर धन विद्युत आवेश (प्रोटॉन), ऋण विद्युत आवेश (इलेक्ट्रान) नाभिक (न्यूक्लियस) न्यूट्रान, पाजिट्रॉन आदि शक्तियों को सम्मिलित इकाई है। भारतीय योग-ग्रन्थों में उसे ही—**'या देवो सर्वभूतेषु** शक्ति रूपेण संस्थिता' कहा है अर्थात् सृष्टि के परमाणुओं को पृथक् नहीं किया जा सकता जबकि सभी में नाभिक, धन विद्युत, ऋण विद्युत आदि तो उन्हें भी अलग नहीं किया जा सकता। एक ही वस्तु में या विराट् ब्रह्मांड में उन सभी चेतनाओं के स्वरूप को अलग-अलग अनुभव भर किया जा सकता है। इन शक्तियों में जो मूल चेतना है, वही बीज जाग्रत अवस्था है। इस अवस्था में चेतना नितान्त शुद्ध, निर्विकार और नाम आदि से मुक्त होती है। पर उसे भविष्य में नामों से पुकारा जा सकता है।

उदाहरण के लिये हमारा जब जन्म नहीं हुआ था, तब हम केवल चेतन रूप में थे। उसका कोई नाम नहीं था, पर जब शरीर से संयोग हुआ, तो लोगों की पहचान के लिये नाम रखा जाने लगा। इस अवस्था में मैं हूँ, यह मेरा है। आदि अनुभव होने लगते हैं। इस अवस्था को जाग्रत अवस्था कहते हैं। इस स्थिति में अपने पूर्व स्वरूप का कोई ज्ञान नहीं होता। मन्त्रों के द्वारा, पुनर्जन्म, भूत-प्रेत और आत्मा के आह्वान आदि की घटनाओं से मरणोत्तर जीवन की पुष्टि तो कर सकते हैं पर हमारी चेतना का मूल स्वरूप क्या है—यह एकाएक अनुभव नहीं कर सकते, जब तक कि तप और साधनाओं के द्वारा इन अवस्थाओं का विकास बीज जाग्रत अवस्था में न कर लें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीसरी अवस्था के बारे में योग-वासिष्ठ के ३।११७।१६-१७ मन्त्रों में कहा है—

अयं सोहमिदं तन्म इति जन्मान्तरोदितः ।

पीवरः प्रत्यय प्रोक्तों महाजाग्रदिति स्फुरन्।।

अर्थात् जब कई जन्म हो चुकते हैं तो अहंभाव अर्थात् मेरे-तेरे का स्वार्थ भाव दृढ़ हो जाता है। यही महाजाग्रत अवस्था है।

इन अवस्था से छूटने के लिये वैराग्य और अहंकार भावना के परित्याग का अभ्यास करना पड़ता है। इस अवस्था में मनुष्य अपने अनादि जीवन का चिन्तन करे, तो भी वह मेरे-तेरे के भाव से छूट नहीं पाता। पर जब वह सांसारिक जीवन में इतना घुल जाता है कि उसे अनन्त जीवन का मान ही नहीं होता, तब यह चौथी जाग्रत स्वप्न अवस्था में होता है—

यज्जाग्रतो मनोराज्यं जाग्रत्स्वप्नः स उच्यते।

द्विचन्द्रमुक्ति काश्प्य मृगतृस्णादिभेदतः ।।

—३।११७।१८

आरूढ़मथ या रूढ सर्वथा सन्मयात्मकम् ।

—३।११७।१७

अर्थात्—हमारा जो जीवन चल रहा है, वह इतना दृढ़ हो गया कि वह कल्पित नहीं, उसी प्रकार सत्य प्रतीत होने लगा है जैसे एक चन्द्रमा पानी में दो, सीप को चाँदी, और रेगिस्तान को देखकर नदी का भ्रम होता है। इस अवस्था में जीव अपनी मृत्यु का भी ध्यान नहीं करता। उसे ही सत्य भासता है, भले ही उसे कितना ही दुःख क्यों न मिल रहा हो।

पाँचवीं अवस्था 'स्वप्नावस्था' कहलाती है। उस समय व्यक्ति को जाग्रत अवस्था का सा अनुभव होता है। पर जागने पर वह असत्य सा अनुभव होने लगता है। इस अवस्था में कई देखी हुई घटनायें भविष्य में इतनी सत्य होती हैं कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, तो भी जाग जाने पर मनुष्य अपने यथार्थ चेतन स्वरूप की याद न करके वही न करने पाप कर्म करता और स्थूल इन्द्रिय भोगों में फँसा रहता है।

छटवीं स्वप्न जाग्रत अवस्था के सम्बन्ध में योग-वासिष्ठ कहती है—

चिरसंदर्शनाभावाद प्रफुल्लवृहदवपुः।

स्वप्नों जाग्रतया रूढ़ो महाजाग्रत्पदं गतः।।

अक्षते वा क्षते देहे स्वप्नजाग्रन्मते हि तत्।।

—३।११७।२०, २१, २२

अर्थात्—अधिक समय तक जाग्रत अवस्था के स्थूल विषयों और इन्द्रिय सुखों का अनुभव नहीं होता। पर स्वप्न में ही अपने द्वारा किये जाने वाले क्रिया-कलाप महाजाग्रत अवस्था के से जान पड़ने लगते हैं। उस समय यह आवश्यक नहीं, कि यह स्थूल शरीर रहे ही अर्थात् मरणोपरान्त भी ऐसे अनुभव होते हैं। यह अवस्था स्वप्न-जाग्रत कहलाती है।

कुछ दिनों तक विविध साधनायें और योगाभ्यास आदि करने से इस स्थिति का स्पष्ट आभास शरीर रहते हुए भी हो जाता है। इस अवस्था में सहायक के अधिकांश स्वप्न सच्चे भी होने लगते हैं।

अन्तिम अवस्था सुषुप्ति की है। यह जीव की सर्वथा जड़ स्थिति है। वह केवल वही कल्पनायें करता है, जिसमें भविष्य में दुःख-ही-दुःख होता है। योग-वासिष्ठ ३।११७। २४ में लिखा है—

'पदार्थाः संस्थिताः सर्वे परमाणु प्रमाणिनः।'

अर्थात्—संसार के मिट्टी, कंकड़, तृण, पत्थर आदि सभी पदार्थ इसी अवस्था में स्थित रहते हैं। अर्थात् इन सबमें भी चेतना तो होती है, पर वह ऐसे सद्यः सुख प्राप्ति के भाव से चेतना ग्रसित होती है कि उसे अपनी चेतना का भी ध्यान नहीं होता। इसलिये जो कुन्द बुद्धि लोग होते हैं, जिन्हें आत्मा और परमात्मा आदि सूक्ष्म सत्ताओं की ओर ध्यान ही नहीं जाता, प्रायः जड़ कहा जाता है। यह अवस्था बीज जाग्रत अवस्था की ठीक उल्टी होती है। एक में सारा संसार चेतन ही चेतन होता है, दूसरे में जड़ ही जड़। जो जिस अवस्था में होता है उसे वही सत्य दिखाई देता है। जब तक चेतना की धारा और दिशा एकाएक परिवर्तित न हो या परिवर्तित न की जाये, हर स्थिति का व्यक्ति अपने को ही सत्य माने बैठा रहता है, जबकि यह सारी ही अवस्थायें माया और दुःखपूर्ण होती हैं। जितनी ऊपर की अवस्थाएँ हैं उतनी ही सुखद, शक्तिशाली और सिद्धियों से ओत-प्रोत हैं जबकि निम्नगामी अवस्थाएँ तो उनके लिये दास, शोषण आदि की वस्तुएँ ही रहती हैं। प्रकृति का यह सिद्धान्त भी अपने आप में अटल काम करता रहता है।

इन सातों अवस्थाओं में विद्यमान चेतना को ही स्वप्न, जागर, संकल्प जागर, केवल जागर, चिर जागर, घन जागर, जाग्रतस्वप्न और क्षीण जागर नाम से पुकारा जाता है। शरीर में यही अवस्थाएँ सप्तधातुओं के रूप में विकसित होती हुई शरीर में ही सम्पूर्ण लोक और ब्रह्मांड को अवस्थित करती हैं। इस सूक्ष्म विज्ञान को जो जान लेता है, वह कैसी भी स्थूल स्थिति में पड़ा हो, अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना का ऊर्ध्वमुखी विकास करके श्रेष्ठ लोगों की सिद्धियाँ और आनन्द प्राप्त करता है।

जीवात्मा की सत्ता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

जीवात्मा आखिर है क्या ? उसका लक्षण, स्वरूप, स्वभाव और लक्ष्य क्या है ? इस प्रश्न पर विज्ञान अपने बचपन में विरोधी था, वह कहता था जड़ तत्वों के अमुक रसायनों के एक विशेष संयोग-सम्मिश्रण का नाम ही जीव है। उसकी सत्ता वनस्पति वर्ग की है। अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी एक चलता-फिरता पेड़ है। रासायनिक संयोग उसे जन्म देते, बढ़ाते और बिगाड़ देते हैं। ग्रामोफोन के रिकार्डों पर सुई का संयोग होने से आवाज निकलती है और वह संयोग-वियोग में बदलते ही ध्वनि प्रवाह बन्द हो जाता है। जीव अमुक रसायनों के अमुक मात्रा में मिलने से उत्पन्न होता है और वियोग होते ही उसकी सत्ता समाप्त हो जाती है। अणु अमर हो सकते हैं, पर शरीर ही नहीं, उसकी विशेष स्थिति चेतना भी मरण धर्मा है।

यही था वह प्रतिपादन जो चार्वाक मुनि के शब्दों को विज्ञान दुहराता रहा। उसकी दलील यही थी—'**भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमने कुतः**' शरीर नष्ट होने पर आत्मा भी नष्ट हो जाती है। इस मान्यता का निष्कर्ष यही निकला कि जब शरीर के साथ ही अस्तित्व-नष्ट होते हैं तो परलोक का भय क्या करना ? जितना सुख-जिस प्रकार भी सम्भव हो लूट लेना चाहिए इसी में जीवन की सार्थकता है। नास्तिकवाद ने जन-साधारण को यही सिखाया—'**यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वां घृतं पिवेत्**' जब तक जियो सुख से जियो-कर्ज से लेकर भी घी पियो। चूँकि अब घी हजम नहीं होता और वह तथाकथित सभ्यता का चिह्न भी नहीं है इसलिए आधुनिक चार्वाकों ने ''कुकर्म करके धन कमाओ,नशा पियो और मजा उड़ाओ'' के सूत्र रच दिये। इन दिनों जन-मानस इसी प्रेरणा का अनुगमन कर रहा है।

बचपन से आगे बढ़कर विज्ञान जब किशोरावस्था में पहुँचा तो उसने जीव को एक स्वतन्त्र चेतना के रूप में मानना स्वीकार किया। मन:शक्ति को मान्यता दी गई। आरम्भिक दिनों में जीवाणु ही शरीर और मन का आधार था। पीछे माना गया मन:चेतना की अपनी सत्ता है, वह अपने अनुकूल जीवाणुओं पर सवारी गाँठती है। उन्हें अपनी इच्छा आवश्यकतानुसार ढालती है। मरणोत्तर स्थिति में भी उसकी सत्ता बनी रहती है। इतने पर भी उसे बिजली, चुम्बक, ताप, प्रकाश, शब्द स्तर की एक भौतिक अदृश्य शक्ति ही माना गया। अब इस युग से विज्ञान आगे बढ़ रहा है, उसकी प्रौढ़ता समीप है और थोड़ी हिचकिचाहट के साथ उसकी तैयारी इसी दिशा में कदम बढ़ाने की है कि जीवन को अणु निर्मित भौतिक जगत की तरह, चेतना जगत को स्वतन्त्र सत्ता का एक घटक मान लिया जाय। यह मान्यता लगभग उसी प्रकार की होगी जैसी कि आध्यात्मिक के क्षेत्र में जीव के स्वरूप, लक्षण एवं गुण के सम्बन्ध में व्याख्या की जाती रही है।

आशा की जानी चाहिए कि विज्ञान जब अपनी अधेड़ परिपक्वावस्था में पहुँचेगा तो उसे जीवन के लक्ष्य एवं विकास का वह स्वरूप भी मान्य हो सकेगा। जो आत्मा को परमात्मा स्तर का बनाने के लिए योग और तप का अवलम्बन लेने के लिए तत्वदर्शियों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि के आधार पर कहा बताया था। विज्ञान की पदयात्रा क्रमश: नास्तिकता से आस्तिकता की ओर बढ़ रही है और प्रत्यक्ष है।

पदार्थ को शक्ति के रूप में अब मान्यता मिल चुकी है और यह विज्ञान के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को तो नहीं पर मूर्धन्य स्तर पर यह स्वीकार्य है कि यह विश्व एक शक्ति सागर भर है। शक्ति की दो धाराएँ मानी जाती रही हैं, उसी परम्परा के अनुसार एक को भौतिक और दूसरी को प्राणिज माना गया है। दोनों आपस में पूरी तरह गुँथी हुई हैं इसलिए जड़ में चेतन का और चेतन में जड़ का आभास होता है। वस्तुत: वे दोनों ज्वार-भाटे की तरह लहरों के मूल और ऊर्ध्व में निचाई-ऊँचाई का अन्तर दीखने की तरह हैं और एक अविच्छन्न युग्म बनाती हैं। यद्यपि उन दोनों की व्याख्या अलग-अलग रूपों में भी की जा सकती है और उनके गुण, धर्म पृथक् बताये जा सकते हैं। एक को जड़ दूसरी को चेतन कहा जा सकता है। इसी विभेद की चर्चा अध्यात्म ग्रन्थों में परा और अपरा प्रकृति के रूप में मिलती है।

मस्तिष्कीय विद्या के, मनोविज्ञान के आचार्य न्यूरीलॉजी, मैटाफिजिक्स, साइकोलॉजी आदि के सन्दर्भ में मस्तिष्कीय कोशों और केन्द्रों की दिलचस्प चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में वे कोश ही अपने आप में पूर्ण हैं। यदि यही ठीक होता तो मृत्यु के उपरान्त भी उन कोशों की क्षमता उसी रूप में या अन्य किसी रूप में बनी रहनी चाहिए थी। पर वैसा होता नहीं। इससे प्रकट है कि इन कोशों में मन: तत्व भरा हुआ है। जीवित अवस्था में वह इन कोशों के साथ अतीव सघनता के साथ घुला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

रहता है। जब इन दोनों का अलगाव हो जाता है तो उस मृत्यु की स्थिति में मस्तिष्क के चमत्कारी कोश सड़ी-गली श्लेष्मा भर बनकर रह जाते हैं।

मन:शास्त्र के यशस्वी शोधकर्त्ता कार्ल गुस्ताय जुंग ने लिखा है—मनुष्य के चेतन और अचेतन के बीच की शृंखला बहुत दुर्बल हो गई है। यदि दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके तो प्रतीत होगा व्यक्ति की परिधि छोटे से शरीर तक सीमित नहीं है वरन् वह अत्यधिक विस्तृत है। हम हवा के सुविस्तृत आयाम में साँस लेते और छोड़ते हैं, उसी प्रकार विश्वव्यापी चेतन और अचेतन की संयुक्त सत्ता के समुद्र में ही अपना व्यक्तित्व पानी के बुलबुले की तरह बनाते, बिगाड़ते रहते हैं। जैसे हमारी अपनी कुछ रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ और आकांक्षाएँ हैं, उसी प्रकार विश्व-व्यापी चेतना की धाराएँ भी किन्हीं उद्देश्यपूर्ण दिशाओं में प्रवाहित हो रही हैं।

गैरल्ड हार्ड ने आइसोटोप ट्रेसर्स के सम्बन्ध में हुए नवीनतम शोधकार्य की चर्चा करते हुए कहा है कि जीव विज्ञान अब हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि शरीर की कोशिकाओं और परमाणुओं पर मन:शक्ति का असाधारण नियन्त्रण है। चेतन और अचेतन रूप में जिन दो धाराओं की विवेचना की जाती है वस्तुत: वे दोनों मिलकर एक पूर्ण मन:शक्ति का निर्माण करती हैं। यह मन:चेतना सहज ही नहीं मरती वरन् एक ओर तो वंशानुक्रम विधि के अनुसार गतिशील रहती है। दूसरी ओर मरणोत्तर जीवन के साथ होने वाले परिवर्तनों के रूप में उसका अस्तित्व अग्रगामी होता है। मन:चेतना का पूर्ण मरण पिछले दिनों सम्भव माना जाता रहा है। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने ही वाले हैं कि चेतना अमर है और उसका पूर्ण विनाश उसी तरह सम्भव नहीं जिस प्रकार के परमाणुओं से बने पदार्थों का।

भौतिक विज्ञान के नोबुल पुरस्कार विजेता श्री पियरे दि काम्ते टु नाऊ के विज्ञान और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए लिखा है-अब हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि मनुष्य में अपनी ऐसी चेतना का अस्तित्व मौजूद है जिसे आत्मा कहा जा सके। यह आत्मा विश्वात्मा के साथ पूरी तरह सम्बद्ध है। उसे पोषण इस विश्वात्मा से ही मिलता है। चूँकि विश्व चेतना अमर है इसलिए उसकी छोटी इकाई आत्मा को भी अमर ही होना चाहिए।

'ह्यूमन डेस्टिनी' ग्रन्थ के लेखक 'लेकाम्ते टू नाउ' ने जीव सत्ता की स्वतन्त्र व्याख्या अगले कुछ ही दिनों में प्रचलित विज्ञान मान्यताओं के आधार पर ही की जा सकने की सम्भावना व्यक्त की है और कहा है कि हम इस दिशा में क्रमश: अधिक द्रुतगति से बढ़ रहे हैं।

प्राणि का 'अहम्' उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का सृजन करता है और जब तक वह बना रहता है, तब तक उसकी अन्तिम मृत्यु नहीं हो सकती। स्वरूप एवं स्थिति का परिवर्तन होता रह सकता है। इस अहम् ईगो-सत्ता का स्वरूप निर्धारण अब इलेक्ट्रो डायनैमिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्रमाणित किया जाने लगा है। इस व्याख्या के अनुसार यह मानने में कठिनाई नहीं होती कि जीव सत्ता जन्म-मरण के चक्र में घूमती हुई भी अपनी आकृति-प्रकृति में हेर-फेर करती रहकर भी अपनी मूल सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रह सकती है।

'दि रूट्स आफ कोइंसिडेन्स' ग्रन्थ के लेखक महामनीषी आर्थर कोइंसिडेन्स ने जीव सत्ता के आयाम को स्वीकार किया है और कहा है कि प्राणी की सत्ता विशेषता को सर्वथा आणविक या रासायनिक नहीं ठहराया जा सकता।

'यू डू टेक इट विद यू' के लेखक भी डिविट मिलर इस बात से सहमत हैं कि मस्तिष्कीय कोशों को प्रभावित करने वाली एक अतिरिक्त चेतना का उसी क्षेत्र में घुला-मिला किन्तु स्वतन्त्र अस्तित्व है।

मृत्यु के उपरान्त प्राणी की चेतना शक्ति उसी प्रकार बची रह सकती है जैसे कि अणु गुच्छक एक पदार्थ से टूट-बिखर कर किसी अन्य रूप में परिणत होते रहते हैं। शक्ति के समुद्र इस विश्व में प्राणियों की सत्ता बुलबुलों की तरह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाती है-विकसित करती है और समयानुसार अपने मूल उद्गम में लीन हो जाती है। जड़-चेतन मिश्रित इस शक्ति सागर को कहा जा सकता है। यदि इन्हें अलग से कहना आवश्यक हो तो एक को 'प्रकृति' और दूसरे को 'पुरुष' कह सकते हैं।

अपने समय के मूर्धन्य खगोलवेत्ता डा. गुस्ताफस्ट्रोम वर्ग की पुस्तक 'दि सोल ऑफ यूनिवर्स' में जीवन क्या है ? विशेषतया मनुष्य क्या है ? इस प्रश्न पर प्रस्तुत वैज्ञानिक दृष्टिकोण की मार्मिक समीक्षा की है। वे विज्ञान से पूछते हैं—क्या मनुष्य ब्रह्माण्ड की कुछ धूलि का ताप और रासायनिक घटकों की औंधी-सीधी क्रिया-प्रक्रिया मात्र है ? क्या वह प्रकृति की किसी अनिच्छित क्रिया के अवशेष उच्छिष्ट से बना खिलौना मात्र है ? क्या मानव जीवन वस्तुत: लक्ष्यहीन, अर्थहीन बेतुका राग मात्र है ? क्या उसकी सत्ता आणविक और रासायनिक हलचलों के बनने-बिगड़ने वाले संयोगों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिधि तक ही सीमित है ? अथवा वह इससे आगे भी कुछ है ?

इन प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के लिए स्ट्रोम वर्ग ने तत्कालीन विज्ञान की दार्शनिक विवेचना करने वाले मनीषियों से भी परामर्श किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में एफ० आर० मोस्टन, वास्टर आडम्स, आर्थर एडिंगटन, थामस हैट मार्गन, जान वूदिन, कारेलहूजर, ओ० एल० स्पोसरल आदि प्रख्यात मनीषियों के सामने अपना अन्तर्द्वन्द्व रखा और जानना चाहा कि विज्ञान-सम्मत दर्शन द्वारा क्या मानव चेतना की इतनी ही व्याख्या हो सकती है, जितनी कि वह अब तक की गई है, अथवा उससे आगे भी कुछ सोचा जा सकता है।

अपनी जिज्ञासा, दृष्टि, कठिनाई, समीक्षा और विवेचना का एक विचारणीय स्वरूप स्ट्रोमवर्ग के 'दि सोल ऑफ यूनिवर्स' ग्रन्थ में है। इस पुस्तिका की भूमिका लिखते हुए आइन्स्टीन ने प्रस्तुत जिज्ञासा को युग चिन्तकों के सामने अति महत्त्वपूर्ण चुनौती माना है और कहा है हमें किन्हीं पूर्वाग्रहों से प्रभावित हुए बिना सम्भावित सत्य के आधार पर ही इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए।

फ्रायड ने प्रेरणाओं का प्रधान स्रोत 'काम' को माना था और उसकी व्याख्या 'सेक्स' के रूप में की थी। इसके बाद उन्होंने अपने ही जीवन में उसे यौन-लिप्सा से आगे बढ़ाकर कामना इच्छा तथा वासना तक पहुँचा दिया। इसके बाद जुंग और एडलर ने उस काम वृत्ति की व्याख्या कामाध्यात्म के रूप में की और उसे आनन्द, उल्लास की सहज सुलभ प्रवृत्ति के साथ जोड़ दिया।

जुंग का कथन है कि आत्मा की अमरता को यद्यपि अभी भी प्रयोगाशालाओं में सिद्ध नहीं किया जा सका फिर भी ऐसी अगणित अनुभूतियाँ मौजूद हैं जो यह बताती हैं कि आदमी मरण धर्मा नहीं है, वह मौत के बाद भी जीवित रहता है।

मन:शास्त्र का विकास क्रमिक गति से आगे बढ़ा है, आरम्भ में विज्ञान ने एक जाग्रत चेतन मन ही स्वीकारा था। पीछे अचेतन मन की खोज की गई। इस अचेतन की भी कई शाखा-प्रशाखाएँ खोजी गईं। सब-कान्शस-अर्ध चेतन और रैशियल अनकान्शस—जातीय अचेतन, इसकी प्रमुख धाराएँ इन दिनों सर्वविदित हैं। फ्रायड की कल्पना पर सुपर ईगो-उच्चतर अहं और सेन्सर-अंकुश तथ्य छाये रहे। उन्होंने इसी परिधि में मन:शास्त्र की संरचना की है। तब से अब तक पानी बहुत आगे बह गया और मनोविज्ञान ने कितनी ही नये-नये रहस्यों का उद्घाटन किया है।

जर्मनी के मन:शास्त्री हेन्सावेन्डर ने अतीन्द्रिय क्षमता के अनेकों प्रमाण संग्रह करके यह सिद्ध किया है कि मनुष्य की सूक्ष्म सत्ता उससे कहीं अधिक सम्भावनाओं से भरी पूरी है जैसी कि अब तक जानी जा सकी है। टैलिपैथी के शोधकर्त्ता रेने वार्कोलियर ने मन:चेतना को ज्ञात भौतिकी से ऊपर वाले सिद्धान्तों पर आधारित बताया है। वे कहते हैं—"मन की व्याख्या पदार्थ विज्ञान के प्रचलित सिद्धान्तों के सहारे नहीं हो सकती।"

विश्व विख्यात लेखक एस० जी० बेल्स ने अपनी पुस्तक "इन दि डेज ऑफ दि क्रामेट" में यह सम्भावना व्यक्त की है कि निकट भविष्य में मनुष्य का मन और दृष्टिकोण अधिकाधिक परिष्कृत होता चला जायेगा। तब मनुष्य में सहृदयतम सहयोग-भावना तथा दूरदर्शिता बढ़ती जायेगी। फलस्वरूप समाज का ढाँचा और मानवी आचार इतना उपयोगी बन जायगा जिसे अब की अपेक्षा कायाकल्प जैसा कहा जा सके। तब कोई युद्ध का समर्थन न करेगा और चिन्तन की दिशा सहयोगपूर्वक शान्ति एवं प्रगति के लिए प्रयुक्त हो सकने वाले आधारों को ढूँढने के लिए प्रयुक्त होगी।

शंकराचार्य कहते थे 'स्व' और 'पर' का भेद भ्रान्ति है। हम सब भिन्न दीखते भर हैं वस्तुत: सब एकता के सघन सूत्र में पिरोये हुए मनकों की तरह हैं। 'ईसा कहते थे—अपने पड़ौसी को प्यार करो ताकि तुम्हारा विकसित प्यार तुम्हें निहाल कर दे।' बुद्ध ने कहा था—'करुणा से बढ़कर मनुष्य के पास और कोई दिव्य-सम्पदा नहीं। जो ममता और करुणा से भरा है वही दिव्य है।'

जीव चेतना का लक्ष्य और विकास क्रम का पूर्णत्व इसी स्तर पर विज्ञान को भी पहुँचा देगा, जो ऋषियों और तत्वदर्शियों ने बताया था। यदि विज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज है तो उसे आत्मा की वर्तमान स्वीकृति को परमात्मा स्तर प्राप्त करने तक भी पहुँचना होगा। इसके लिए कल न सही परसों सही की प्रतीक्षा की जा सकती है।

मनोविज्ञान को नीति विरोधी न बनने दिया जाय

मनुष्य में भी अन्य प्राणियों की तरह कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। वे पूर्व संचित अनुभवों एवं अभ्यासों का प्रतिफल हैं। विकासक्रम की लम्बी मंजिल पूरी करते-करते उसे बहुत कुछ भूलना और सीखना पड़ा है। इसी समुद्र-मन्थन की उपलब्धियों से जितनी कुछ पूँजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हस्तगत है, उसी पिटारी को संचित प्रवृत्तियाँ कहा जा सकता है।

विगत शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रवृत्तियों को साधारण महत्व दिया है और लगभग पत्थर की लकीर जैसी मान बैठने की भूल की है। सामान्य-जन प्रेरणाओं से प्रेरित होकर रुचि लेते और कर्म करते हैं, उसका पर्यवेक्षण करने पर उन्हें जिन अन्त:प्रेरणाओं का पता चला है, उन्हें उन्होंने मौलिक प्रवृत्तियाँ मान लिया और यह कहना आरम्भ कर दिया कि वे अकाट्य हैं। इन्हीं के समन्वय से व्यक्तित्व बना है। इसलिए इन्हें हटाने की अपेक्षा तुष्ट करना चाहिए। इस प्रतिपादन का फल यह हुआ कि मनुष्य की स्थिति कठपुतली जैसी मानी गई और सोचा गया है कि जड़ पदार्थों की तरह ही मनुष्य की प्रकृति को बदलना भी अशक्य है। इस चिन्तन में मौलिक भूल यह होती रही है कि विकासवाद के उन सिद्धान्तों को भुला दिया गया, जिन्हें अपनाकर एककोशीय स्थिति से आगे बढ़ते-बढ़ते उस स्थिति तक पहुँचा जिसमें आज है। इस बीच जहाँ उसने अपनी काय संरचना में आश्चर्यजनक परिवर्तन किए, वहाँ पुरानी आदतों, प्रवृत्तियों को भी सुधारता, समुन्नत बनाता चला गया। यदि यह क्रम भूतकाल में अपनाया जाता रहा है तो मनुष्य जीवन में प्रवेश पाने के उपरान्त वह प्रक्रिया क्यों समाप्त हो जायेगी और क्यों तथाकथित मूल प्रवृत्तियाँ जड़वत् जहाँ की तहाँ बनी रहेंगी? क्या मनुष्य शरीर प्राप्त करते ही अब तक की प्रवृत्ति परिष्कार प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी?

विकासवाद और मनोविज्ञान की यदि संगति बिठाई जाय तो भी यह आग्रह समाप्त हो जाता है कि मूल प्रवृत्तियों को परिष्कृत करने का प्रयास छोड़कर उनके तुष्टीकरण के लिए सिर झुका दिया जाय और रीति-नीति ऐसी अपनाई जाय जो प्रवृत्तियों के अनुरूप हो। देखना यह है कि मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियाँ क्या हैं? यों सभी मनोविज्ञानी इस सन्दर्भ में एकमत तो नहीं है फिर भी उन सबके प्रतिपादनों का जो सार निकलता है, उसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है। (१) कामुकता (२) आत्मरक्षा (३) आक्रमण (४) वरिष्ठता (५) सहचर्य (६) अनुकरण (७) ईर्ष्या (८) दुराव (९) आधिपत्य आदि।

कहा जाता है कि इन्हीं उत्तेजनाओं से प्राणियों की विभिन्न प्रकार की आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं और उनकी पूर्ति के लिए तरह-तरह के उपाय सोचने एवं प्रयत्न करने पड़ते हैं। आज की तुलना में कल अच्छी स्थिति प्राप्त करने में अपने पुरुषार्थ जगाने, साधन बढ़ाने पड़ते हैं और दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा में उतरना पड़ता है। उसी आधार पर जीवनचर्या चलती और कुशलता तथा सुविधा बढ़ती है। यह भी कहा जाता है कि यदि इस प्रवृत्ति प्रवाह में अवरोध खड़े किए जाएँगे तो मानसिक कुण्ठाएँ बढ़ेंगी और उनका शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और प्रगति क्रम में भी अवरोध उत्पन्न होगा।

यदि उपरोक्त प्रतिपादन को सही माना जाय तो उस 'सर्वाइवल ऑव फिटेस्ट' के सिद्धान्त को भी सही मानना पड़ेगा, जिसमें जंगल के कानून का समर्थन किया गया है। छोटी मछली को बड़ी मछली निगलती है, छोटे पौधों की खुराक ऊपर छाये हुए बड़े वृक्ष खा जाते हैं-वाली बात ही यदि प्रकृति को स्वीकार है तो फिर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली उक्ति को ही न केवल प्राणि समुदाय में वरन् मनुष्यों में भी चरितार्थ होता पाया जायेगा अथवा प्रगति के निमित्त वैसा प्रचलन आरम्भ करना पड़ेगा।

विचारणीय यह है कि क्या सचमुच ही इस जगत में उपभोग, आक्रमण की वृत्तियाँ ही प्रधान रहेंगी और उसी आधार पर बलिष्ठों को जीवित रहने और शेष दुर्बलों को उनका शिकार बनते जाने का सिलसिला चल पड़ेगा। अभी तो यह प्रवृत्ति मात्र माँसाहारी जीव-जन्तुओं में ही पाई जाती है और वह एक सीमित वर्ग पर ही लागू होती है, पीछे जब यह मान्यता प्रकृति प्रेरणा के नाम पर जोर-शोर से समर्थन प्राप्त करने लगेगी तो अपने पराये का भी भेद न रहेगा और जो वर्ग अभी सीमित उस आक्रामकता से बचे हुए हैं वे भी उसकी चपेट में आ जायेंगे? सिंह, व्याघ्र मात्र कुछेक पशुओं को ही अपने शिकार के लिए चुने हुए हैं। पक्षी उनके जबड़े पर बैठकर दाँतों में फँसा माँस निर्भय होकर निकालते, कुरेदते रहते हैं, उनके लिए कोई संकट उत्पन्न नहीं होता। जलचर, थलचर, नभचर अपने-अपने वर्ग के कुछेक प्राणियों को आहार बनाते हैं और शेष के साथ छेड़खानी नहीं करते। पर जब भूख के लिए नहीं प्रगति के लिए आक्रामक वृत्ति का तुष्टीकरण आवश्यक माना जायेगा और उसके लिए अधिकाधिक अवसर प्राप्त करने का उत्साह उठेगा तो उसके लिए क्षेत्र बिस्तार की आवश्यकता पड़ेगी और अधिकाधिक आक्रमण करने, अधिकाधिक लाभ उठाने की यह सामान्तशाही एक स्वभाविक प्रक्रिया बन जायेगी, जिसने मध्यकाल के अन्धकार युग में सारे नीति-नियम उठाकर ताक पर रख दिये थे और खुली लूट, कत्लेआम, युवा-युवतियों का दास-दासियों के रूप में अपहरण एक राज्य नियम बना दिया था। उन दिनों की रोमांचकारी घटनाओं की स्मृतियाँ तक आज भी दिल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दहला देती हैं और गुहार उठती हैं कि हे भगवान् ! वे दिन लौटकर इस धरती पर फिर कभी न आयें।

उस मदान्ध प्रचलन को यदि मूल-प्रवृत्तियों का तुष्टीकरण करने के नाम, प्रकृति प्रेरणा या प्रगति व्यवस्था में सम्मिलित करके लोक मान्यता स्तर तक पहुँचा दिया गया तो फिर अन्य प्राणियों का तो इस धरती से अस्तित्व उठ ही जायेगा, मनुष्य भी सुन्द-उपसुन्द की कथा को चरितार्थ करते पाए जायेंगे और भाई को भाई का खून पीते देखा जायेगा। पूर्वजों के उत्तराधिकार में भाई ही प्रथम प्रतिद्वन्द्वी होता है। जब आक्रामकता और प्रतिद्वन्द्विता ही नीति रही तो अन्यों पर आक्रमण करने से पहले भाई को ही क्यों न समाप्त किया जाय? ताकि बँटवारे में जो घाटा पड़ने वाला था उसकी आशंका ही न रहे।

जब कामुकता प्रकृति प्रेरणा है और उत्साह उभारने के लिए आवश्यक है तो उसकी पूर्ति के लिए जहाँ-तहाँ भटकने को, नया झंझट बढ़ाने की क्या आवश्यकता है? परिवार की स्त्रियाँ जो पहले से ही घर में रहतीं और खर्च कराती हैं, उन्हीं से काम तृप्ति का काम भी क्यों न चला लिया जाय। बहिन-बेटी का अन्यत्र विवाह करने की क्या आवश्यकता? पिता, भाई आदि उन्हीं से सम्पर्क बनाकर सरलतापूर्वक तृप्ति क्रम क्यों न चलाते रहें! जब नीति-मर्यादाओं का मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियों में कोई स्थान ही नहीं है तो उन परम्पराओं का निर्वाह क्यों किया जाय जिनका समर्थन उपरोक्त मूल प्रवृत्तियाँ नहीं करतीं?

बच्चों को प्यार, दुलार देने और उनका पालन करने में एक ऐसा तत्व ही काम करता है जिनका न तो अर्थशास्त्र समर्थन करता है और न जिससे सुविधा सम्वर्धन में कोई सहायता मिलती है। ऐसी दशा में वात्सल्य को क्यों न प्रतिगामिता, कुरीति, मूढ़ मान्यता घोषित करके उसे समाप्त कर दिया जाय? जब आँगन में उगने, फलने वाले शाक-भाजी पकाकर खाए जा सकते हैं तो बाल-बच्चों का वैसा ही उपयोग क्यों नहीं हो सकता ?

ऐसी दशा में दया, उदारता, सेवा, दान, परोपकार जैसा उन सत्प्रवृत्तियों के समर्थन का भी कोई आधार नहीं रह जाता जो आत्म-रक्षा, सुरक्षा, ईर्ष्या, आक्रमकता आदि किसी भी मूल प्रवृत्ति का समर्थन नहीं करतीं।

मूल प्रवृत्तियाँ यदि वही हैं जिन्हें फ्रायड या उनके साथी प्रतिपादित करते हैं तो उनके साथ एक तथ्य और भी जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिए कि प्रगति-क्रम में मिली आ रही पुरानी आदतें भर हैं। आदतों की जड़ें यों होती तो गहरी हैं, पर साथ ही समयानुरूप वे बदलती भी रहती हैं। बचपन से लेकर यौवन काल में पहुँचने तक ढेरों बार आदतें बदल जाती हैं। छोटा बच्चा वातावरण का निरीक्षण करने और पड़े रहने की तुलना में खड़े होने या घूमने की इच्छा से अभिभावकों की गोदी में चढ़ने का प्रयत्न करता है और उसके लिए संकेत करने से लेकर मचलने तक का उपक्रम करता है किन्तु दो-तीन वर्ष का होते ही आदत बदल देता है और अपने पैरों चलने लगता है। इसी प्रकार असमर्थ रहने तक दूसरों का सहयोग पाकर काम चलाने की प्रवृत्ति भी हट जाती है। इतना ही नहीं उसमें लज्जा-संकोच का अनुभव भी होने लगता है। शिशु को इच्छा होते ही कहीं भी मल-मूत्र त्यागने में संकोच नहीं होता किन्तु बड़ा होते ही समय और स्थान की अनुकूलता न होने तक उन्हें इस पर रोकथाम भी लगानी पड़ती है। ऐसे-ऐसे उदाहरण आये दिन देखे जाते हैं। विवाह के उपरान्त लड़कियों की आदत नई परिस्थितियों के अनुरूप किस तेजी से बदलती है इसे देखकर आश्चर्य होता है। परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठाने में मनुष्य अपने स्वभाव, अभ्यास में किस प्रकार कितना परिवर्तन कर लेता है ? इसे कैदी, सैनिक और संन्यासी की पूर्व परिस्थिति के साथ तुलना करने पर लगता है कि न केवल परिस्थितियों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर आ गया वरन् स्वभाव भी बदल गया। साथ ही नया ढर्रा अनुकूल ही नहीं पड़ा वरन् सुहाने भी लगा। कई कैदी छूटते ही ऐसे उपाय करते हैं कि उसी अभ्यस्त ढर्रे में रहने के लिए फिर से किसी प्रकार जेल में आ पहुँचे और निश्चिन्ततापूर्वक दिन गुजारें। आरम्भ में उन्हें जेल का प्रवेश कष्टकारक लगा होगा, पर बाद में तो वही अनुकूल बन गया और संतोषजनक लगने लगा।

यह उदाहरण बाहरी आदतों के सम्बन्ध में है। मूल प्रवृत्ति इससे गहरी होती है और प्रेरणा उत्पन्न करने वाले अन्तराल के साथ सम्बद्ध होती है। इतना होते हुए भी उन्हें अपरिवर्तनीय नहीं कहा जा सकता। मूल प्रेरणा में सुविधा-संवर्धन, गौरव,-सम्पादन, कामोपभोग जैसे तथ्य भी जुड़े हो सकते हैं। पर वे इतने प्रबल नहीं है कि नैतिक परतों के साथ विग्रह खड़ा करें या उनके अनुशासन की सर्वथा उपेक्षा करने लगें। यदि ऐसा होता तो सदुदेश्यों के लिए कोई त्याग-बलिदान की बात सोचने या करने में समर्थ ही न होता, वैसी उमंगें ही किसी के भीतर न उठतीं। वयस्क पुत्री के साथ अवसर मिलने पर पवित्रता बनाए रहने तक किसी के लिए भी शक्य न रहा होता। पर देखा इससे विपरीत ही जाता है। कसाई भी अपने बालकों तथा परिजनों को प्यार करते हैं और सहानुभूति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरा उदार व्यवहार करते हैं। आक्रमण की मूल प्रवृत्ति को निरन्तर परिपोषण मिलते रहने पर तो कसाईयों को सर्वथा क्रूर हो जाना चाहिए था। पर ऐसा कुछ होता नहीं है इससे प्रकट होता है कि मूल प्रवृत्तियाँ अकाट्य नहीं हैं।

गत शताब्दी में मनोविज्ञानी शोधकर्त्ताओं ने लगता है उथले अन्वेषणों में सन्तोष कर लिया है। सम्भव है उसने ओछे स्तर के. नैतिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को अपने अन्वेषण का निमित्त कारण चुना हो। हो सकता है, उन्हें शोधकाल की वर्तमान स्थिति को ही सब कुछ मान बैठने का भ्रम रहा हो। यदि ऐसा न होता तो उन्हें मूल प्रवृत्तियों में कुछ और भी ऐसी बातें मिल सकती थीं जो आदर्शवादी आदतों की पुष्टि करतीं और बतातीं कि वे भी अवसर पाते ही प्रकट और प्रखर हो सकती हैं। माता का सन्तान के प्रति जो भावभरा अनुदान होता है, उसे कहीं से सिखाने-सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न उसके लिए कोई दबाव डालना पड़ता है। वह सब कुछ भीतर से ही उभरकर आता है। पीड़ितों के प्रति करुणा का, देशभक्ति जैसे उच्च उद्देश्यों के लिए प्राण उत्सर्ग करने का, ईश्वर भक्ति में भाव-विभोर होकर वैराग्य लेने की जो उमंगें अन्तराल में उठती हैं, उन्हें भी किसी मूल प्रवृत्ति का कारण होना चाहिए। यह सोचा गया होता तो विश्लेषणकर्त्ताओं को जितने सूत्र हाथ लगे हैं, वे अधूरे प्रतीत होते और उस शृंखला में उनने ऐसी खोजें भी की होतीं जो मूल प्रवृत्तियों की उत्कृष्ट परमार्थ-परायणता को भी सम्मिलित कर लेतीं।

आदर्शवादिता का आचरण अपनाने पर अन्तराल में एक अलौकिक सन्तोष की अनुभूति होती है। यों बाहर से उसमें अनुदारता या अनाचार अपनाने की तुलना में घाटा, उपहास आदि सहने की ही अधिक सम्भावना रहती है। इतने पर भी यह सन्तोषानुभूति क्यों उठती है? चित्त में शान्ति और प्रसन्नता क्यों लगती है? इसका कारण भी किसी न किसी मूल प्रवृत्ति से जुड़ना चाहिए था। हिंस्र प्राणियों का आहार के लिए आक्रमण करना प्रवृत्ति प्रेरणा भी कहा जा सकता, पर मनुष्य जैसे शाकाहारी, समूहवादी आदर्शों में गरिमा अनुभव करने वाले विकसित प्राणी को भी उसी प्रवृत्ति का अनुयायी मान बैठना गलत है।

प्रवृत्तियों के विश्लेषण से जो निष्कर्ष निकले हैं, वे एक-पक्षीय एवं एक परिस्थिति की परिस्थिति वालों को सामने रखकर किए गए प्रतीत होते हैं। अन्यथा आदर्शवादी जीवनयापन करने वालों की उच्चस्तरीय आदतों को भी शोध-क्षेत्र में सम्मिलित किया गया होता और देखा गया होता कि जिन्हें आधारभूत प्रेरणा माना जा रहा है, वे शाश्वत नहीं, मात्र परिस्थितिजन्य हैं। परिस्थितियाँ बदलने पर उनमें आमूलचूल परिवर्तन होना सम्भव है। जबकि हर प्राणी को मरण से भय लगता है और खतरे से बचने के लिए भाग खड़े होने की सूझती है तब सैनिक छावनियों में रहने वाले क्यों निरन्तर मौत के साथ खिलवाड़ करने में रस लेते और गर्व अनुभव करते देखे जाते हैं। वे युद्ध मोर्चे पर प्रबल शत्रु को देखते ही भाग खड़े होने की बात क्यों नहीं सोचते? देशभक्तों को सारा जीवन त्याग बलिदान से भरा-पूरा रखे रहने में स्वार्थ पोषक मूल प्रवृत्तियाँ बाधक क्यों नहीं बनतीं?

काम प्रवृत्ति यदि जन्मजात है और माता का स्तनपान करने में भी उसी कारण आनन्द मिलता है। तो समर्थ होने पर सन्तान अपनी माता के साथ रमण करने में उत्सुकता क्यों नहीं प्रकट करती? ऐसे कुछ प्रश्न वर्तमान मनोविज्ञानियों की सूझ-बूझ से बाहर ही बने रहे होंगे। अन्यथा जान-बूझकर वे इतनी बड़ी समस्याओं को क्यों अनदेखा करते और क्यों अनसुलझाया छोड़ देते?

नीति निष्ठा थोपी हुई वस्तु नहीं है। उत्कृष्टता को मूल प्रवृत्तियों के विपरीत कहा जाय तो फिर मानवी सुसंस्कारिता को भी अमान्य ठहराना पड़ेगा और प्रगति अद्यावधि इतिहास को झुठलाकर कोई ऐसा प्रतिपादन खोजना पड़ेगा जो पशु-प्रवृत्तियों को ही आधारभूत कारण ठहराए रहकर ही भावनात्मक उत्कर्ष का कोई और कारण सिद्ध कर सके।

प्रवृत्तियों की प्रौढ़ता और समर्थता को मान भी लिया जाय और यह हठ किया जाय कि वे चेतना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई ही हैं तो भी उसमें इतना-सुधार तो बिना किसी असमंजस के किया जा सकता है कि उनकी तृप्ति के लिए ऐसे आधार भी ढूँढ़े जा सकते जो नीति-निष्ठा के साथ विग्रह न करें। प्रवृत्तियाँ काय तृप्ति और मनःतुष्टि के काम आती हों तो भी ऐसे अवसर उपलब्ध हो सकते हैं जिनमें स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय हो सके। इतना तो और भी अधिक सम्भव है कि सामान्य हास-परिहास से, विनोद-कौतुक से भी उन्हें सन्तुष्ट किया जा सके।

जो हो, विज्ञजनों ने देर से सही यह अनुभव किया है कि विज्ञान के नाम पर यदि उपयोगी मर्यादाओं का उल्लंघन चल पड़ा तो बाँध टूटते ही बाढ़ का पानी सर्वत्र फैलता चला जायेगा और खेत-खलिहानों, घर-झोपड़ों को निस्सार करके रहेगा। अतएव वह आवश्यक है कि मानवी प्रगति को आधारभूत आदर्शवादी सत्प्रवृत्ति को इस प्रकार अस्त-व्यस्त, नष्ट-भ्रष्ट न होने दिया जाय। इसके लिए उन्होंने मनःशास्त्र की अधूरी खोजों को अपर्याप्त माना और जो खोजना शेष रह गया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, उसे पूरा करने का कदम बढ़ाया है। पिछली शताब्दियों में हुए थे और भ्रमवश नीति-विरोधी, उच्छृंखलता समर्थक समझे गये थे। अब उनमें समुचित संशोधन किया जा चुका है। अपेक्षा यह की जा सकती है कि जब मनोविज्ञान वर्तमान प्राय: सन्धि को पार करके प्रौढ़ता तक पहुँचेगा वैसे ही प्रतिपादन करेगा जैसे कि दूरदर्शी मंचों से की जाती हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान का उपनयन संस्कार किया जाय

अविज्ञात शक्तियों की कितनी ही धाराएँ प्रकृति के गर्भ में अभी भी विद्यमान हैं। असीम सम्भावनाओं के समक्ष प्राप्त हुए भौतिक शक्तियों की सामर्थ्य अत्यन्त न्यून है। सामर्थ्यों के जो महत्वपूर्ण स्रोत हाथ लगे हैं, वे कभी काल्पनिक तथा असम्भव जान पड़ते थे। बिजली, भाप, चुम्बक, परमाणु ऊर्जा जैसी शक्तियाँ भी करतलगत होंगी, ऐसी कल्पना थोड़े से व्यक्तियों को रही होगी। पर आज सर्वत्र उनका ही वर्चस्व है। उन्हें प्राप्त कर लेना न केवल सम्भव हो गया है बल्कि विभिन्न कार्यों में उपयोग भी होने लगा है। प्रकृति की शक्तिधाराओं की जो जानकारी मिली तथा प्रयोग में आयीं, उनकी तुलना में अविज्ञात का क्षेत्र कई गुना अधिक है। पदार्थ की नाभिकीय शक्ति से भी अधिक प्रचण्ड अदृश्य भौतिक शक्तियों का अस्तित्व प्रकृति में मौजूद है। अपने ही इर्द-गिर्द एक और प्रतिबिम्ब, प्रतिपदार्थ, प्रतिकण, प्रतिअणु की दुनिया है, जो अत्यन्त रहस्यमय तथा विलक्षण है। उस अदृश्य दुनिया तथा उससे जुड़े घटकों के विषय में वैज्ञानिक कितने ही प्रकार की अटकलें लगा रहे तथा सम्भावनाएँ व्यक्त कर रहे हैं। ब्लैकहोल, साइक्लोन, सूर्य, गुरुत्वाकर्षण आदि की प्रचण्ड शक्तियों का भी उपयोग होना अभी बाकी है। वह विधः हाथ नहीं आयी है, जिससे उनकी शक्तियों को कैद किया जा सके तथा प्रयोग में लाया जा सके।

प्रकृति की भाँति मानवी काया भी अत्यन्त रहस्यमय है। शारीरिक जानकारियों का एक बड़ा हिस्सा चिकित्सा विज्ञान की पकड़ में आया है, पर वह परिपूर्ण नहीं है। मन तो और भी विलक्षण है। उसका सामान्य क्रिया-कलाप, इच्छा-आकांक्षा एवं विचारणा के रूप में दिखायी पड़ता तथा स्थूल गतिविधियों का कारण बनता है। आधुनिक मनोविज्ञान की जानकारी, अध्ययन, विश्लेषण यहीं तक सीमित है। चेतन, अचेतन मन की रचना तथा प्रकृति को समझने तक ही अभी मनोविज्ञान सीमित है। छुपा हुआ चमत्कारी सुपर चेतन भी विद्यमान है, जो कि शक्ति एवं प्रेरणा का केन्द्र बिन्दु है। यह रहस्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में अभी उजागर होना बाकी है। जानकारियों का अभाव किसी भी शक्ति के उपयोग में वंचित रखता है जैसा कि प्रकृति की प्राप्त शक्तियों के सन्दर्भ में दीर्घ काल तक होता रहा है।

आधुनिक मनोविज्ञान की मानवी सत्ता को भलीभाँति समझने, सन्निहित सामर्थ्यों को करतलगत करने एवं प्रयोग में लाने के लिए एक छलाँग लगानी होगी। मन के अध्ययन विश्लेषण के सीमित दायरे से निकलकर विस्तृत आत्मा क्षेत्र में प्रविष्ट करना होगा। अन्यथा प्रचलित फ्रायडवादी मनोविज्ञान मनुष्य को मूल प्रवृत्तियाँ का गुलाम ठहराता रहेगा और उसके आत्म-विकास की सम्भावनाओं को अवरुद्ध रखेगा।

मनोविज्ञान का उद्‌गम एवं विकास का मूल स्रोत वस्तुत: भारतीय अध्यात्म है। वह अध्यात्म शास्त्र का एक अभिन्न अंग है। उसकी उपयोगिता अध्यात्म से अलग कर देने पर सिद्ध भी नहीं होती। आत्म-विज्ञान से कटकर मनोविज्ञान मन के अध्ययन-विश्लेषण तक कैसे सीमित हो गया, इसका एक क्रमिक इतिहास है। प्राचीन समय में पाश्चात्य साइकोलॉजी का क्षेत्र भी विस्तृत था। साइकोलॉजी शब्द लैटिन भाषा के 'साइक' तथा 'लोगोस' शब्द से मिलकर बना है। 'साइक' अर्थात् आत्मा तथा 'लोगस' अर्थात् शास्त्र अथवा ज्ञान। साइकोलॉजी का शाब्दिक अर्थ हुआ-आत्मा का विज्ञान। पाश्चात्य मनोविज्ञान का गवेषक भी अरस्तू को माना जाता है। अरस्तू, सुकरात, प्लूटो तीनों ही मूर्धन्य दार्शनिकों ने आत्मतत्व पर गहन चिन्तन किया तथा इस संदर्भ में बहुत कुछ लिखा है। आत्मसत्ता एवं उसकी असाधारण महत्ता पर इन विद्वानों ने प्रकाश डाला है। यह इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने आत्मानुसंधान को मनोविज्ञान का एक अभिन्न तथा महत्वपूर्ण अंग माना था।

दो शतक पूर्व तक भारत तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सुविकसित अन्य पश्चिमी देशों में भी मनोविज्ञान, अध्यात्म विज्ञान का एक अविच्छिन्न अंग माना जाता था। पर जैसे-जैसे प्रत्यक्षवाद-भौतिकवाद मानवी चिन्तन में अपनी जड़ें गहरी जमाता गया, उसी क्रम में मान्यताओं एवं प्रतिपादनों में उलट-फेर होता गया। समय-समय पर मनोविज्ञान की परिभाषाएँ भी बदलती गयीं। पर एक बात समान रूप से उन परिभाषाओं में दिखायी पड़ती है कि सबने मन का तत्व चेतना को माना है।

मनोविज्ञान का 'टिंचनर' ने 'मन का विज्ञान' के रूप में उल्लेख किया है तथा मन की विशेषताओं को तीन भागों-संवेदना, प्रतिभा तथा भावना के रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभाजित किया है। अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को चेतना के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया है। चेतना के भी जो अर्थ विभिन्न विद्वानों ने लगाये हैं, उनमें परस्पर मतभेद है। वार्ड ने चेतना को अनुभव के अर्थ में प्रयुक्त किया। व्यवहारवादी मनःशक्तियों ने चेतना के स्थान पर अनुभव को ही प्रधानता दी। 'वाटसन' ने उसे आत्मा के स्थानापन्न के रूप में माना। इस तरह 'चेतना' शब्द आज भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में विवादास्पद बना हुआ है।

'विलियम जेम्स' ने मनःशास्त्र का चेतना की अवस्थाओं के रूप में वर्णन किया तथा उनका विश्लेषण कर चार रूपों में प्रतिपादित किया। चेतना की अवस्था से उनका अभिप्राय संवेदनाओं, इच्छाओं, संवेगों और संकल्पों के अध्ययन से था। 'पिल्सबरी' ने मनोविज्ञान को मानव व्यवहार का विज्ञान बताया। व्यवहारवादी मनःशास्त्री 'वाटसन' ने मनोविज्ञान में सीखे अथवा बिना सीखे हुए कथनों अथवा कार्यों के रूप में मानव व्यवहार को सम्मिलित करते हुए उसे प्राकृतिक विज्ञान कहा है। उन्होंने मनःशास्त्र का प्राकृतिक विज्ञान की प्रयोगात्मक शाखा और चेतना का 'उत्तेजक प्रतिक्रिया' सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादन किया।

नारमन एल० मन ने मनोविज्ञान के अध्ययन में अनुभव एवं व्यवहार का समन्वय स्थापित किया। उनका कहना था कि 'चेतन' अनुभव के विज्ञान से तथा 'ज्ञान' व्यवहार से सम्बन्धित होता है। इस तरह अनुभव एवं व्यवहार आन्तरिक एवं बाह्य जीवन की अभिव्यक्तियाँ हैं। व्यवहारवाद के जन्म के पश्चात् मनोविज्ञान तथा शरीर विज्ञान में भेद स्थापित कर विलियम मैकडूगल ने मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा कि 'वह एक ऐसा विज्ञान है, जो सम्पूर्ण शरीर के व्यवहार का ज्ञान कराता है। 'बुडवर्ड' के अनुसार 'मनोविज्ञान व्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान है।' क्रियाओं से उनका अभिप्राय केवल शारीरिक क्रियाओं से ही नहीं, अपितु ज्ञानात्मक एवं भावात्मक क्रियाओं से भी था। सीखना, स्मरण करना एवं विचार करना आदि मानसिक क्रियाएँ इसमें समाहित हैं। मैकडूगल ने मनःशास्त्र को ज्ञान, भावना एवं क्रिया तीन भागों में विभक्त किया।

मनःशास्त्र को नयी दिशा देने तथा मन की चेतन-अचेतन परतों के विषय में विश्व को नयी जानकारियाँ देने में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में फ्रायड, जुंग, एडलर आदि मूर्धन्य माने जाते हैं। पर इन विद्वानों का ज्ञान भी मन के दृश्य पक्षों तक ही सीमित है। दृश्य के पार भी अदृश्य क्षेत्र में सम्भावनाओं के रहस्यमय एवं सामर्थ्यवान स्रोत मानवी उत्तर में ही विद्यमान हैं, यह जानना अभी भी अवशेष है। कुछ मनःशास्त्रियों ने भारतीय प्राचीन योग मनोविज्ञान की समग्रता एवं गूढ़ता की ओर इंगित करते हुए कहा है कि मानवी सत्ता की विशद् एवं सर्वांगपूर्ण व्याख्या करने में वह आज भी समर्थ है।

डॉ. कैनन अपनी पुस्तक 'इन विजीबिल इनफ्लूएन्स' में लिखते हैं कि भारत हमको मनोविज्ञान एवं मन की क्रियाओं के सम्बन्ध में फ्रायड, एडलर तथा पश्चिमी विचारकों से कहीं अधिक ज्ञान दे सकता है। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि शाश्वत ज्ञान अनुभूतियों पर अवलम्बित होता है। भारतीय मनीषियों ने शरीर ही नहीं मन एवं बुद्धि से भी परे जाकर आत्मा के क्षेत्र में गहन मन्थन किया। ध्यान को गहन अनुभूतियों में उन्होंने अनुभव किया कि शरीर एवं मन से भी समर्थ सत्ता आत्मा के रूप में मनुष्य के भीतर ही विद्यमान है, जिसके पतन अथवा विकास पर प्रगति अवलम्बित है।

सर जॉन वुडरफ प्रख्यात पुस्तक 'वर्ल्ड एज पावर रियल्टी' में लिखते है कि ''वेदान्त मनोविज्ञान के विकास की चरम अभिव्यक्ति है। वेदान्त के सिद्धान्त ऊँचे से ऊँचे दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में भी श्रेष्ठ हैं।''

पॉल ब्रन्टन ने अपनी पुस्तक 'विजडम ऑफ दी सेल्फ' में लिखा है कि भारत के पास उसके आध्यात्मिक ज्ञान की प्राचीन बातें हैं जिसकी गहराई और विस्तार की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। वैज्ञानिक क्षेत्रों में अब जो नयी खोजें होती जा रही हैं, वे प्राचीन भारतीय खोजों का ही समर्थन करती देखी जाती हैं। भारतीय ऋषियों-मनीषियों ने जो कुछ भी लिखा अथवा उद्घोष किया वह सब मनःशास्त्र को भी दिशा देने में समर्थ है।

विद्वान् जूलियट जॉनसन ने 'पथ ऑफ दी मास्टर्स' में उल्लेख किया है कि आधुनिक मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का आधार मनुष्य की चेतना का साधारण जीवन और प्रयोगशालाओं में प्रकट हुआ बाह्य रूप है, जिससे मात्र मन के स्वरूप एवं सामर्थ्य की सीमित जानकारी मिलती है। उससे मानवी व्यक्तित्व एवं उसकी सम्भावनाओं का सर्वांगीण परिचय नहीं मिलता। आधुनिक मनःशास्त्री यह बता सकने में असमर्थ हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास अथवा पतन के वास्तविक कारण कौन-कौन से हैं ? क्या मानवी चेतना ऋद्धि-सिद्धियों की अधिष्ठात्री भी हो सकती है? मनोविज्ञान इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालता। जबकि समय-समय पर इसकी पुष्टि में प्रमाण अतीन्द्रिय सम्पन्न व्यक्तियों के रूप में मिलते रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पदार्थ जगत शरीर एवं मन से भी परे जाकर अदृश्य के गर्भ में पक रही घटनाओं का उद्घोष करने वाले भविष्यविदों का परिचय भी देश-विदेश में मिलता रहता है, जिसे देखकर वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही हतप्रभ होते हैं। उन्हें यह सोचने पर बाध्य होना पड़ता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान ही सब कुछ नहीं है। असीम जानकारियों एवं सम्भावनाओं को उजागर करना अभी भी शेष है।

जीवन का अन्त भौतिक शरीर के साथ मानने वालों को गहरी ठेस उस समय लगती है जब पुनर्जन्म के अकाट्य प्रमाण सामने आते हैं। वे नहीं जानते कि किस आधार पर कोई व्यक्ति अपने पूर्वजन्म का लेखा-जोखा सप्रमाण प्रस्तुत कर देता है। आधुनिक मनःशास्त्र इसकी व्याख्या करने में पूर्णतया असमर्थ है। स्थूल-सूक्ष्म के अतिरिक्त मनुष्य के भीतर कारण शरीर भी विद्यमान है, जिसमें जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार एवं अनुभव संचित होते हैं जो किसी दिशा विशेष में चलने एवं विशिष्ट कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। फ्रायडवादी मनोविज्ञान व्यक्तित्व की इन गहरी परतों की कोई जानकारी नहीं देता। फलतः मनोविज्ञान का वर्तमान ज्ञान अगणित मानवी समस्याओं का सुनिश्चित हल नहीं प्रस्तुत कर पाता।

अगणित सामर्थ्यों का स्रोत मानवी सत्ता में मौजूद है। उन्हें जानने-समझने तथा शक्तियों को करतलगत करने के लिए प्रचलित मनोविज्ञान से आगे बढ़कर योग मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। जो न केवल मनुष्य की मूल सत्ता की सर्वांग जानकारी देता है वरन् उसके विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है। मन की अल्प जानकारियों तक सीमित रहने वाले, आधुनिक मनोविज्ञान को जीवन की अनेकानेक समस्याओं का सही हल प्रस्तुत करने वाले, व्यक्तित्व विकास का व्यावहारिक मार्गदर्शन करने वाले अध्यात्म मनोविज्ञान का पक्षधर बनना युग की एक महान् आवश्यकता है।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अचेतन का परिवर्धन-परिष्कार

अचेतन मन की विकृति ही रोग-शोक का कारण है

प्रत्यक्ष शरीर दीखता है। साज-सँभाल एवं शृंगार भी उसी का सर्वाधिक किया जाता है। काया के पोषण एवं विकास पर ढेरों समय एवं साधन खर्च किये जाते हैं। बहुमूल्य आहार जुटाने जैसे बलवर्धक साधनों से लेकर आसन-व्यायाम आदि का उपक्रम अपनाया जाता है। स्वस्थ नीरोग रखने के लिए उपचार आदि की व्यवस्था बनाई जाती है। कितने ही व्यक्ति अपना सौन्दर्य निखारने के लिए कृत्रिम संसाधनों का प्रयोग करते देखे जाते हैं। स्वस्थ एवं सुन्दर दीखने के लिए हर व्यक्ति अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप अपने-अपने स्तर पर प्रयास करता है। इस प्रयास में सफलता कितनों को मिलती है, यह बात अलग है, पर यह तो सुनिश्चित है कि अधिकांश व्यक्ति अपने शरीर के लिए प्रचुर समय, धन एवं शक्ति खर्च करते हैं।

शरीर के बाद आज के विज्ञजनों ने बुद्धि को महत्त्व दिया है। बुद्धि अर्थात् 'इण्टेलीजैन्स', जो प्रतिभा निखारने, योग्यता बढ़ाने में काम आती है। बुद्धि को पैना बनाने तथा बढ़ाने के लिए भी तरह-तरह के प्रयोग किये जा रहे हैं। स्कूली शिक्षा से बौद्धिक क्षमताओं का ही विकास होता है। वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ-प्रतिस्पर्धाएँ भी इसीलिए आयोजित की जाती हैं कि प्रतिभा निखरती चलें। इस प्रयास में सफलता भी मिली है। बुद्धि की दृष्टि से आज का मनुष्य पुरातन की तुलना में कहीं आगे है और इस दिशा में वह निरन्तर ही आगे बढ़ता चला जा रहा है।

मानवी व्यक्तित्व को इन दो स्थूल परतों-शरीर और बुद्धि को ही सर्वत्र महत्त्व मिलता रहा है। मन इन दोनों की अपेक्षा सूक्ष्म है। प्रत्यक्षतया उसकी भूमिका नहीं दीख पड़ने से अधिकांश व्यक्ति उसे महत्त्व भी नहीं देते। प्रायः वह उपेक्षित ही बना रहता है। यह एक सबसे बड़ी विडम्बना है कि व्यक्तित्व की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परत उपेक्षा की गर्त में पड़ी है। शरीर एवं बुद्धि न केवल मन के इशारे पर चलते हैं, वरन् उसकी भली-बुरी स्थिति से असामान्य रूप से प्रभावित भी होते हैं, इस तथ्य का समर्थन आधुनिक मनोविज्ञान भी निर्विवाद करने लगा है। व्यक्तित्व के इतने मूल्यवान घटक पर ध्यान न दिया जाय, उसकी साज-सँभाल न की जाय, उसे स्वस्थ सन्तुलित रखने का प्रयास न किया जाय तो इससे बढ़कर आज के बुद्धिमान मनुष्य की भूल दूसरी और कोई नहीं हो सकती।

पोषण एवं सन्तुलन के अभाव में काया भी रुग्ण बन जाती है। अपनी सामर्थ्य गँवा बैठती है। वैचारिक खुराक न मिले तो बुद्धि की प्रखरता मारी जाती है। अधिक से अधिक वे जीवन-संकट को किसी तरह खींचने जितना सहयोग ही दे पाते हैं। उपेक्षा की प्रताड़ना मन को सबसे अधिक मिली है। फलतः उसकी असीम सम्भावनाओं से भी मनुष्य जाति को वंचित रहना पड़ा है। निरुद्देश्य भटकती एवं मचलती हुई इच्छाओं, आकांक्षाओं का एक नगण्य स्वरूप ही मन की क्षमता के रूप में सामने आ सका है। मनोबल संकल्प बल की प्रचण्ड सामर्थ्य तो यत्किंचित व्यक्तियों में ही दिखाई पड़ती है। अधिकांश व्यक्तियों से मन की प्रचण्ड सामर्थ्य को न तो उभारते ही बनता है और न ही लाभ उठाते।. मन को सशक्त बनाना, उसमें सन्निहित क्षमताओं को सुविकसित करना तो दूर, उसे स्वस्थ एवं सन्तुलित रखना भी कठिन पड़ रहा है। फलतः रुग्णता की स्थिति में वह विकृत आकांक्षाओं, इच्छाओं को ही जन्म देता है। इच्छायें मानवी व्यक्तित्व की, स्वास्थ्य संतुलन एवं विकास की प्रेरणा स्रोत होती हैं। उनका स्तर निकृष्ट होने पर मनुष्य के चिन्तन और व्यवहार में श्रेष्ठता की आशा भला कैसे की जा सकती है। रुग्ण मानस रुग्ण समाज को ही जन्म देगा। मन रोगी हो तो काया भी अपना स्वास्थ्य अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रख सकती।

वैज्ञानिक क्षेत्र में नये अनुसन्धानों ने प्रचलित कितने ही सिद्धान्तों का खण्डन किया है। कितनी ही नई प्रतिस्थापनाएँ हुई हैं तथा कितने ही सिद्धान्तों में उलट-फेर करने के लिए विवश होना पड़ा है। अब धीरे-धीरे स्थूल के ऊपर से विश्वास टूटता जा रहा है। पदार्थ ही नहीं कायिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भी प्रचलित धारणाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की सम्भावना नजर आने लगी है। मनोविज्ञान ने मन की रहस्यमय परतों का विश्लेषण करते हुए यह रहस्योद्घाटन किया है कि मनःसंस्थान में कितने ही शारीरिक रोगों की जड़ें विद्यमान हैं। मन का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपचार यदि ठीक ढंग से किया जा सके तो उन रोगों से भी मुक्ति मिल सकती है, जिन्हें असाध्य एवं शारीरिक मूल का कभी ठीक न हो पाने वाला माना जाता है।

चिकित्सा जगत में 'विहेवियोरल मेडीसिन' के विकास से उपचार की सर्वथा एक नई मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ है। इस उपचार प्रक्रिया में विशेषज्ञों ने मन और शरीर को एक कड़ी के दो छोर माने हैं। इसके आधारभूत प्रयोग में न्यूरोकेमिकल को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। विहेवियोरल मेडिसिन के आविष्कारकों का मत है कि मन के भावनात्मक दबाव एवं तद्जन्य तनाव ही रोगोत्पादन के कारण बनते हैं।

'विहेवियोरल मेडिसिन' चिकित्सा पद्धति का विकास सन् १९७७ में येल विश्वविद्यालय (यू. एस. ए.) में हुआ। इसमें एन्थ्रोपोलॉजी, सोशियोलॉजी, एपिडेनिओलॉजी, साइकालॉजी, साइकिएस्ट्री, मेडिसिन तथा प्रारम्भिक जीव विज्ञान जैसे अनेक विषयों का अध्ययन सम्मिलित था। संस्थान की व्यवस्था यहाँ पर सँभालते हैं-मनःशास्त्री स्टीफेन एमवेस। इसकी शाखाएँ हृदय, फेफड़ा, रक्त संस्थान से सम्बन्धित मनोशारीरिक रोगों के उपचार के लिए खोली गई हैं। मनःचिकित्सक डेविड हैमवर्ग के नेतृत्व में विहेवियोरल मेडिसिन के प्रयोग परीक्षण के लिए एक एकेडमी की स्थापना भी हुई है। संस्थान से एक मासिक जर्नल 'दी जर्नल ऑफ विहेवियोरल मेडिसिन' नियमित रूप से प्रकाशित होती है, जिसमें इस उपचार पद्धति की जानकारियों का प्रकाशन होता है।

उपचार पद्धति साइकोसोमैटिक मेडिसिन पर अवलम्बित है। शोध कार्य में लगे विशेषज्ञों का यह दृढ़ विश्वास है कि मन और शरीर के क्रिया-कलाप पूर्णतः एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इनके बीच थोड़ा भी असन्तुलन कैंसर, मल्टीपुल स्केलेरोसिस, आर्थ्राइटिस, माइग्रेन हेडेक, डॉयविटीज तथा हृदय रोगों का कारण बन सकता है। 'न्यूरो एण्डोक्राइनलॉजी' की नई खोजों के अनुसार सेण्ट्रल नर्वस सिस्टम तथा 'एण्ड्रोक्राइन सिस्टम' एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। वे परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। शरीर के हारमोन्स न्यूरोट्रान्समीटर के रूप में क्रियाशील होते हैं। इन्हें सक्रिय बनाने के लिए विहेवियोरल मेडिसिन की इस पद्धति में रोगापचार हेतु रिलेक्सेशन, वायोफिड बैक आदि का निरापद प्रयोग आरम्भ किया गया है। इससे यह आशा बँधती है कि मनोशारीरिक रोगों का उपचार अब सम्भव हो सकेगा। चिकित्सा जगत की असाधारण प्रगति के बावजूद कैंसर जैसे रोग आज भी असाध्य बने हुए हैं। शरीर शास्त्रियों को वे सूत्र पकड़ में नहीं आ रहे हैं कि शरीर के किसी स्थान विशेष की कोशिकाएँ क्यों बागी हो जाती हैं, क्यों अपना सामान्य क्रम छोड़ बैठती हैं, उन्हें कैसे इस असामान्य व्यवहार से रोका जा सकता है ? लम्बी माथापच्ची के बाद भी ये प्रश्न जैसे के तैसे बने हुए हैं तथा मानवी मस्तिष्क को चुनौती देते हैं। अब सोचा जा रहा है कि कैंसर की जड़ें व्यक्तित्व की कहीं अधिक सूक्ष्म परतों में विद्यमान होनी चाहिए। जब निदान ही सम्भव नहीं हो पा रहा तो उपचार कैसे सम्भव होगा ?

अमेरिका के रोचेस्टर विश्वविद्यालय द्वारा किये गये अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि किसी व्यक्ति का जीवन के प्रति अतिशय निराशाजनक चिन्तन कैंसर रोग को जन्म दे सकता है। फोर्टवर्थ टेक्सास के डॉ. कार्ल साइमण्टन, कैंसर के रोगियों का उपचार 'रेडियेशन', 'केमोथेरेपी' तथा 'शल्य क्रिया' की परम्परागत उपचार पद्धति से अलग हटकर रिलैक्सेशन (शिथिलीकरण) और विजुअलाइजेशन (आत्म निरीक्षण) पद्धति से कर रहे हैं। इसमें रोगियों को नियमित रूप से दिन में तीन बार प्रातः उठते समय १५-१५ मिनट का ध्यान करने को कहा जाता है, इस साधना में रोगी 'आटोसेजशन' का अभ्यास करता है तथा यह भावना करता है कि उसका मन शान्त, सन्तुलित और स्वस्थ हो रहा है। दूसरे चरण में उसे कैंसरग्रस्त स्थान पर ध्यान करना पड़ता है, जिसमें वह प्रबल भावना का आरोपण करता है कि शरीर के श्वेत कण कैंसरग्रस्त स्थान पर एकत्रित हो रहे हैं तथा रुग्ण कोशिकाओं को शरीर के बाहर निकाल रहे हैं। रोगियों को सदा प्रसन्नचित्त रहने तथा आशावादी दृष्टिकोण अपनाये रखने का ही निर्देश दिया जाता है। डॉ. साइमण्टन को अब तक डेढ़ सौ से अधिक कैंसर के रोगियों के उपचार में पूर्ण सफलता मिली है। स्वस्थ रोगियों में से अधिकांश वे हैं, जो आशावादी विचारणा के थे।

जर्मनी के एक चिकित्सक डॉ. हैमर ने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को अपने मत द्वारा चुनौती दी है तथा यह कहा है कि कैंसर रोग की उत्पत्ति का कारण मानव मन है। यह बीमारी विषैले वातावरण, जीवाणु, आनुवंशिक खामियों के कारण नहीं, मरीज के स्वयं के मानसिक संघर्षों के कारण पैदा होती है। डॉ. हैमर स्वयं भी कभी कैंसर के रोगी थे। उनके रोग के साथ एक मर्मस्पर्शी घटना जुड़ी हुई है। डॉ. हैमर के पुत्र डर्फ को १९७८ में इटली के एक व्यक्ति ने गोली मार दी थी। चार महीने तक उपचार चलता रहा, पर कोई फायदा न हुआ। डर्फ की मर्मान्तक पीड़ा को अपने ही नेत्रों से डॉ. हैमर नित्य देखते थे। अन्ततः उसकी मृत्यु हो गई। पुत्र को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तिल-तिलकर मरते हुए देखने से उन्हें तीव्र मानसिक विक्षोभों से होकर गुजरना पड़ा। निरन्तर के मानसिक संघर्षों ने ही कैंसर को जन्म दिया, डॉ. हैमर का यह निश्चित विश्वास है।

अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने म्यूनिख, रोम, कील, कोलोन के विभिन्न अस्पतालों में ५०० रोगियों की जाँच-पड़ताल की। जिससे उनकी धारणा और भी परिपुष्ट होती चली गई। अपने मत का उन्होंने जर्मनी के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन कराया। चिकित्सा जगत की प्रचलित मान्यताओं से मेल न खाने के कारण उनका चारों ओर विरोध हुआ। विशेषकर आधुनिक चिकित्सा पद्धति के प्रतिपादकों द्वारा। डॉ० हैमर ने विरोध देखते हुए अपनी मान्यताओं को और अधिक मजबूत करने के लिए देश छोड़ना व बाहर जाकर प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझा। इन दिनों वे रोम में जाकर बस गये हैं तथा अपने शोध कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

वस्तुस्थिति को वैज्ञानिक कसौटियों पर कसा जाना अभी शेष है किन्तु कैंसर जैसे गम्भीर रोगों को पैदा करने में मनःस्थिति कहाँ तक जिम्मेदार है तथा किस तरह की भूमिका सम्पादित करती है ? पर जो तथ्य प्रकाशन में आ रहे हैं उनसे यह सम्भावना प्रबल होती जा रही है कि गम्भीर असाध्य रोगों को जन्म देने में मन की अहम् भूमिका हो सकती है। इंग्लैण्ड की एक महिला पैट्रिक का रोचक केस आज भी चिकित्साविदों के लिए एक रहस्य बना हुआ है। चिकित्सकों ने उसे वक्ष कैंसर घोषित किया था। यदि निदान आरम्भ में हो गया होता तो उन्हें बचाये जाने की भी सम्भावना थी। कैंसर रोग की शुरूआत की स्थिति में निदान के लिए एवं सर्जरी के लिए जो यन्त्र आवश्यक थे, वे लन्दन के अतिरिक्त और कहीं नहीं थे। महिला के लिए उन्हें स्वयं के उपचार के लिए जुटा पाना प्रायः असम्भव था। चिकित्सकों ने घोषणा की थी "रोग की गम्भीरता के कारण ६ माह बाद वे मर जायेंगी।" घोर निराशा की स्थिति में इस महिला ने सोचा "मेरा मरना तो सुनिश्चित है। क्यों न ही जीवन के अवशेष दिनों का उपयोग ऐसे कार्य में किया जाय ताकि अन्य रोगियों को मेरी तरह घुट-घुटकर न मरना पड़े।" रेडियो एवं टेलीविजन सेवाधिकारियों की सहानुभूति अर्जित करके उसने यह प्रसारण कराया—"मैं एक वक्ष कैंसर से पीड़ित महिला हूँ। छः माह बाद मेरी मृत्यु सुनिश्चित है।" कैंसर के रोगियों के प्रारम्भिक निदान के लिए "कैटस्केन" यन्त्र आवश्यक है। मेरी इच्छा एक ऐसे कम्प्यूटराइज्ड एक्जियल टोमोग्राफी युक्त यूनिट की स्थापना है ताकि दूसरे रोगियों का इलाज हो सके। मेरी याचना एवं पीड़ा पर आप सब ध्यान दें तथा आर्थिक मदद करें।"

इस प्रसारण का अप्रत्याशित प्रभाव पड़ा। इतना अधिक चन्दा एकत्रित हुआ कि उसकी व्यवस्था बनाने के पैट्रिक को एक पूरा स्टाफ रखना पड़ा। करोड़ों की लागत से बनने वाले दर्जनों ऐसे कैंसर उपचार केन्द्रों का निर्माण सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में हो गया। तब तक नौ माह का समय गुजर चुका था। अपने कैंसर रोग को इस व्यस्तता के कारण लगभग वह भूल चुकी थी। श्रेष्ठ प्रयोजन में मिली असाधारण सफलता की प्रसन्नता में उसे कुछ भी याद न रहा। एक दिन उसके एक अभिन्न मित्र ने याद दिलाया कि चिकित्सकों ने छः माह बाद वक्ष कैंसर के कारण उसके मर जाने की घोषणा (भविष्य वाणी) की थी। उसे एक झटका-सा लगा और पैट्रिक ने अपने ही बनबाये हुए एक कैंसर निदान उपचार केन्द्र में विशेषज्ञों की एक टोली द्वारा पूरा परीक्षण कराया। चिकित्सकों को यह देखकर आश्चर्य का पारावार न रहा कि पैट्रिक के वक्ष में कैंसर का नामोनिशान नहीं है। लम्बे समय तक खोज-बीन चलती रही, पर यह रहस्योद्घाटन न हो सका कि बिना किसी उपचार के पैट्रिक असाध्य वक्ष कैंसर रोग से मुक्त कैसे हो गई। मनःशास्त्रियों ने अपना मत व्यक्त करते हुए संभावना व्यक्त की "पैट्रिक की परमार्थ भावना, रचनात्मक दृष्टिकोण तथा प्रसन्नचित्त मनःस्थिति आदि के समन्वय से प्रचण्ड मनोबल का उद्भव हुआ, जो कैंसरग्रस्त कोशिकाओं के कायाकल्प का कारण बना।"

शरीर एवं बुद्धि की अपेक्षा मानसिक सामर्थ्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। रचना, सामर्थ्य एवं सम्भावना की दृष्टि से भी वह इन दोनों की तुलना में भारी ही बैठती है। आधुनिक मनोवेत्ता भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि मन के सन्तुलन एवं विकास पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। 'सामर्थ्यों एवं सम्भावनाओं का यह महत्त्वपूर्ण स्रोत यदि उपेक्षित ही पड़ा रहा, तो स्वास्थ्य एवं आरोग्य को स्थायी रूप से सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। मात्र मन को ही समुचित दिशा दे देने से कायिक अवरोध तथा अस्त-व्यस्तताओं पर नियन्त्रण पाया जा सकना सम्भव है। अब विज्ञान की मुहर भी लग जाने से इस चिकित्सा-प्रक्रिया को और भी अधिक सशक्त स्वर से कहा व प्रतिपादित किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा को मानने वाले विद्वानों को भी मानवी अन्तस् के उपेक्षित से पड़े कल्पवृक्ष मानव मन को अब मान्यता देकर इसकी सामर्थ्यों का सबको लाभ देना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःसंस्थान का समूची जीवन सत्ता पर प्रभाव

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र में घुसे मनोविकारों को-दुष्प्रवृत्तियों को-निरस्त करने के लिए लड़ा जाने वाला महाभारत हो, साथ ही इसमें धर्म राज्य की-राम राज्य की-स्थापना का लक्ष्य, संकल्प भी जुड़ा हुआ हो।

इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक-अनुशीलन ध्यान देने योग्य हैं। बहुत समय पहले शारीरिक रोगों का कारण वात, पित्त, कफ, अपच, मलावरोध, ऋतु प्रभाव, विषाणुओं का आक्रमण आदि माना जाता था । नवीनतम शोधें शरीर पर पूरी तरह मनःसत्ता का अधिकार मानती हैं और बताती हैं कि बाह्य कारणों से उत्पन्न हुए रोग तो शरीर की जीवनी शक्ति स्वयं ही अच्छे कर लेती है अथवा मामूली से उपचार से वे अच्छे हो सकते हैं। जटिल रोग तो आमतौर से मनोविकारों के ही परिणाम होते हैं। उनका निराकरण दवा-दारू से नहीं मानसिक परिशोधन से ही सम्भव हो सकता है।

शारीरिक ही नहीं मानसिक रोगों का भी यही प्रधान कारण है। दुष्कर्म अथवा दुर्बुद्धिग्रस्त व्यक्ति शारीरिक ही नहीं मानसिक रोगों से भी ग्रसित रहते हैं। उन्माद विस्फोट की स्थति न आये तो भी असन्तुलन से ग्रस्त व्यक्ति अर्धविक्षिप्त स्थिति में पड़े रहते हैं। अकारण दुःख पाते और अकारण दुःख देते हैं। इनकी मनःस्थिति कितनी दयनीय होती है यह देखने भर से बड़ा कष्ट होता है। शारीरिक व्यथाओं से पीड़ितों की अपेक्षा मनोरोगों से ग्रस्त लोगों की संख्या ही नहीं पीड़ा भी अधिक है। इन व्यथाओं से छुटकारे का उपाय अस्पतालों में नहीं, मानसिक संशोधन की साधनाओं पर ही अवलम्बित है। वे उपाय, उपचार अन्य प्रकार भी हो सकते हैं, पर अध्यात्म विज्ञान के आधार पर उसे मनोमय कोश से, साधना से अधिक सुविधापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है।

काय-विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि मस्तिष्क के साथ जुड़े हुए ज्ञान तन्तु सारे शरीर में फैले हैं। उन्हीं के माध्यम से इस जटिल यन्त्र का संचालन होता है। इन्द्रियों की क्रियाशक्ति, अनुभूतियाँ, सरसताएँ मस्तिष्क में ही जाकर खुलती हैं। इन्द्रिय गोलक तो मात्र सूचनाएँ संग्रह करने और उन्हें मस्तिष्कीय केन्द्रों तक पहुँचाने भर का काम करते हैं। कोई मानसिक कष्ट होने पर सारा शरीर शिथिल हो जाता है और क्रिया शक्ति में स्पष्टतः अस्तव्यस्तता दीखने लगती है। भय, चिन्ता, शोक, निराशा जैसे प्रसंगों पर किसी भी मनुष्य का चेहरा उदास और सारा शरीर शिथिल देखा जा सकता है। क्रोध, अपमान, द्वेष, प्रतिशोध की स्थिति में किस प्रकार अंग-प्रत्यंगों में उत्तेजना दीख जाती है, इसे किसी आवेशग्रस्त पर छाये हुए भावोन्माद को देखकर सहज ही देखा, समझा जा सकता है। प्रसन्न और निश्चिन्त रहने वाले स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी बनते हैं। इसके विपरीत क्षुब्ध रहने वाले अकारण दुर्बल होते जाते हैं और अकाल मृत्यु से असमय मरते हैं। यह तथ्य स्पष्ट करते हैं कि शरीर संस्थान पर आहार-विहार का, जलवायु का जितना प्रभाव पड़ता है उससे कहीं अधिक भाव-संस्थान का होता है।

शरीर में स्नायुमण्डल द्वारा तथा नलिकाविहीन ग्रन्थियों द्वारा भावनाएँ क्रियाशील होती हैं। हमारे सम्पूर्ण शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। सामान्यतः स्नायु उज्ज्वलवर्णी होते हैं और तार की तरह ठोस होते हैं। हमारी सभी पेशियाँ स्नायुओं के ही आधार पर चलती हैं। प्रत्येक पेशी में पहुँचने वाला मुख्य स्नायु सुतली की तरह मोटा होता है। फिर उसकी शाखा-प्रशाखाएँ अधिकाधिक पतली होती चली जाती हैं। कई प्रशाखाएँ तो बारीक सूत जैसी पतली होती हैं।

सम्पूर्ण स्नायुमण्डल के दो भाग हैं—(१) ऐच्छिक, (२) अनैच्छिक। चलने-फिरने, झुकने-मुड़ने, वस्तुएँ उठाने, रखने आदि की क्रियाओं में हम अपने हाथ-पैर आदि को इच्छानुसार हिलाते हैं। यह ऐच्छिक स्नायुओं के ही कारण हैं। अनैच्छिक स्नायुओं पर हमारा ऐसा अधिकार नहीं होता। वे शरीर की आन्तरिक क्रियाएँ सम्पादित करते हैं। जैसे हृदय की धड़कनें, साँसों का आना-जाना आदि।

अनैच्छिक स्नायुमण्डल का केन्द्र मस्तिष्क का एक लघु अंश हाइपोथेलामस होता है। यही 'हाइपोथेलामस' नारी व पौरुष ग्रन्थियों को भी नियन्त्रित करता है। साथ ही 'मोनोएमीन आक्सीडेज' नामक किण्वन (एन्जाइम) भी सम्पूर्ण शरीर में विकीर्ण होते हुए भी केन्द्रीय स्नायविक प्रणाली में विशेष रूप से जमा रहता है। 'हाइपोथेलामस' द्वारा पिट्यूटरी ग्रन्थि भी उत्तेजित होती है और उससे विभिन्न हॉर्मोन्स निकलते हैं जो भावनाओं का परिणाम भी होते हैं और नई भावनाओं का कारण भी। किसी नई परिस्थिति के उपस्थित होने पर नलिकाविहीन ग्रन्थियों पर दबाव पड़ता है और वे विभिन हॉर्मोनों को स्रावित करती हैं। इन हॉर्मोनों की शरीर में प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया उसी के अनुरूप भावना-समूहों को जन्म देती है। जैसे किसी रोग के कीटाणुओं के संक्रमण-दबाव से पिट्यूटरी ग्रन्थि ने कोई हॉर्मोन छोड़ा, इससे शरीर में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तेज हलचल मच गई, व्यक्ति को अस्वस्थता महसूस होने लगी और वह खाट पर पड़ गया। अब बीमारी की दशा में तरह-तरह की भावनाएँ जो अचेतन मन में दबी थीं, उभरने लगीं। उनके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक प्रतिक्रियाएँ भी पैदा होने लगती हैं।

मनोमय कोश का निवास मस्तिष्क में बताये जाने का अर्थ केवल इतना ही है कि उसका केन्द्रीय कार्यालय वहीं है। उसके सूक्ष्म अवयव उसकी शाखा-प्रशाखाएँ तो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त-विस्तृत हैं। मस्तिष्क के जीवाणु अन्य जीवाणुओं से अधिक समझदार और अधिक अनुभवी होते हैं, इसीलिए वे शेष जीवाणुओं के अगुआ नेता कहे जाते हैं। वे जिस दिशा में चलते हैं, शेष जीवाणु भी उसी दिशा धारा में बहने लगते हैं। सम्पूर्ण सूक्ष्म शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न, उल्लसित, प्रगतिशील बनाये रखने के लिए मस्तिष्कीय-स्थिति वैसी होनी जरूरी है। नेता ही निराश-हताश, कुण्ठित-त्रस्त हुआ, तो प्रगति की क्या आशा की जा सकती है । नेता का संवेग समस्त अनुयायियों को प्रभावित करता है।

वियना के मनोचिकित्सक डॉ. फैंकल का मत है कि मानसिक-धरातल ही शारीरिक स्वास्थ्य का आधार है। मानसिक सन्तुलन का कारण जीवन की सार्थकता को न समझना है। इसीलिए उन्होंने 'लौगोथेरेपी' या 'अर्थबोधचिकित्सा' नाम की चिकित्सा पद्धति विकसित की है। डॉ फैंकल की मान्यता है कि जिस व्यक्ति को अपने जीवन और कार्य की सार्थकता का बोध नहीं हो, वह स्वस्थ नहीं रह सकता। मनुष्य जीवन के लक्ष्य और उनकी सिद्धि ही आनन्द का आधार है। डॉ. फैंकल की चिकित्सा पद्धति में रोगी से प्रिय-अप्रिय सभी विषयों पर चर्चा कर, उसे जीवन की सार्थकता की तलाश की प्रेरणा दी जाती है। व्यक्ति को जैसे ही जीवन में सार्थकता की अनुभूति हो उठती है, वह अपने भीतर निहित शक्तियों का स्मरण कर आत्म विश्वास से भर उठता है और धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगता है। मनःक्षेत्र की स्वस्थता उसके स्थूल शरीर को भी स्वस्थ बना देती है।

सूक्ष्म शरीर की हलचलों का स्थूल शरीर पर स्पष्ट एवं निश्चित परिणाम होता है। तन्त्रकीय रोगों का कारण दबे हुए गन्दे विचार ही होते हैं। शरीर-शास्त्रियों का भी मत है कि मात्र मानसिक-चित्रों के आधार पर ही अनेक शारीरिक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ''इम्फ्लुएन्स ऑफ द माइण्ड अपॉन द वॉडी'' नामक पुस्तक के लेखक डॉ. टुके ने लिखा है-''विक्षिप्तता, मूढ़ता, अंगों का निकम्मा हो जाना, पित्त, पाण्डुरोग, केश-पतन, रक्ताल्पता, घबराहट, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय में पड़े बच्चे का अंग-भंग हो जाना, चर्म रोग, फुन्सियाँ, फोड़े, एग्जिमा आदि अनेक स्वास्थ्यनाशक रोग मात्र मानसिक क्षोभ तथा भावनात्मक उद्देलन के परिणाम होते हैं।'' मानसिक क्षोभ, भावनात्मक उद्देलन, निषेधात्मक चिन्तन, सूक्ष्म शरीर की विकृतियाँ हैं, जिनका स्थूल शरीर पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार परिष्कृत दृष्टिकोण स्वस्थ-उदात्त चिन्तन, आदर्शवादी विचारधारा सूक्ष्म-शरीर को तेजस्वी और प्रखर बनाती है और उसका श्रेष्ठ प्रभाव स्थूल शरीर पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

विधेयात्मक विचारों की, ऊर्ध्वमुखी चिन्तन की आश्चर्यजनक महत्ता के प्रतिपादन में डॉ. बैनेट ने स्वयं को ही प्रस्तुत किया है। ५० वर्ष की आयु तक डॉ. बैनेट निराशा और अवांछनीय चिन्तन के कारण अपना स्वास्थ्य पूरी तरह गँवा बैठे। उन्हें जब उर्ध्वगामी चिन्तन की इस असीम उपादेयता का पता चला तो उन्होंने अपना जीवन-क्रम ही बदल डाला। मन की जड़ता और विषय-विकारों का जुआ उनने उतार फेंका, हृदय को श्रद्धा, आस्था से भरा, सदैव प्रसन्न-प्रफुल्ल रहने की आदत बना ली। २० वर्षों के अपने इस जीवन को स्वर्गीय सुख से ओत-प्रोत बनाते हुए डॉ. बैनेट ने अपनी ५० वर्षीय फोटो तथा ७० वर्षीय फोटो भी इस पुस्तक में छापी है। पहली में उनका चेहरा झुर्रियों से चिपके गाल, धँसी आँखों के कारण मनहूस दिखाई देता है, जबकि ७० वर्ष की आयु में वे स्वस्थ, सशक्त दिखाई देते हैं, झुर्रियाँ न जाने कहाँ चली गईं, चेहरे में उद्दीप्ति है और युवकों जैसी सक्रियता।

अब तक किये गये ऐसे ही विविध आधुनिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि मन का, मस्तिष्क का कष्ट प्रत्येक जीवाणु को कष्ट में डाल देता है। घृणा, ईर्ष्या, क्रोध का अनिष्ट प्रभाव समस्त जीवाणुओं में तुरन्त दौड़ जाता है, झलक उठता है। मस्तिष्क में प्रसन्नता का भाव आते ही प्रत्येक जीवाणु प्रसन्न-पुलकित हो उठता है। ये सभी जीवाणु परस्पर गहन आत्मीयता और अभिन्नता का भाव रखते हैं। प्रत्येक जीवाणु की दशा से सभी प्रभावित होते हैं,इनका सुख-दुःख मिला-जुला ही होता है। इनका पारस्परिक सौहार्द्र-सद्भाव अनूठा है। सच्ची मैत्री, प्रगाढ़ आत्मीयता सहानुभूति के ये अनूठे उदाहरण हैं। कल्पना करें कि एक व्यक्ति को तेज भूख लगी है। सुस्वादु भोजन का थाल सामने है। उसी समय किसी प्रियजन की मृत्यु का तार मिलता है। उसे पढ़ते ही मस्तिष्क में उस प्रियजन की संचित स्मृति सहसा जागृत हो उठती है। मन में आत्मीय संवेदना उमड़ पड़ती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं में हलचल, उथल-पुथल मच जाती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं की इस प्रतिक्रिया का तत्काल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पूर्ण शरीर के जीवाणुओं पर प्रभाव पड़ता है। जीभ सूखने लगती है। भूख बढ़ाने वाले जीवाणु जो उछल-कूद मचा रहे थे, चीख-चीखकर भोजन की माँग कर रहे थे, सहमकर शान्त, निष्क्रिय, दुबके-से बैठ जाते हैं। हृदय और दूसरे अंग भी निष्प्राण से हो चलते हैं। दिल डूबने लगता है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है, शरीर निढाल हो जाता है। समस्त अंगों पर यह प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि मस्तिष्कीय जीवाणुओं की भाव दशा का तत्काल प्रभाव सम्पूर्ण शरीस्थ जीवाणु-समूहों पर पड़ता है।

'ओल्ड एज इट्स कॉज एण्ड प्रिवेन्शन' नामक पुस्तक में उनके रचयिता सुप्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक तथा लेखक डॉ. बैनेट ने एक बहुत ही मनोरंजक किन्तु शिक्षाप्रद घटना दी है। एक १९ वर्षीय फ्रांसीसी युवती ने एक अमेरिकन नव-युवक से विवाह का निश्चय किया। युवक निर्धन था सो तय यह हुआ कि पहले वह अमेरिका जाकर धन कमायेगा और लौटकर शादी करेगा। युवक ने ३ वर्ष में पर्याप्त धन कमा लिया, पर दुर्भाग्य से कोई मुकदमा लग जाने के कारण वह १५ वर्ष तक फ्रांस नहीं लौट सका। १५ वर्ष बाद जब वह वापस लौटा तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसकी मँगेतर का स्वास्थ्य, सौन्दर्य बिल्कुल वैसा ही है। जैसा वह १९ वर्ष पूर्व था। ३४ वर्ष की अधेड़ हो जाने पर भी उसमें १९ वर्षीय नवयुवती के गुण विद्यमान थे।

घटना का विवेचन करते हुए बैनेट महोदय लिखते हैं—प्रकृति ने मनुष्य शरीर की संचालन प्रक्रिया इस प्रकार रखी है कि शरीर का प्रत्येक कोश (सैल) ८० दिन पीछे पुराना होकर मैल के रूप में उसी प्रकार बाहर निकल जाता है, जिस प्रकार समुद्री लहरों में निरन्तर ज्वार-भाटे से समुद्र की गन्दगी तटों पर जमा होती रहती है। कोश-परिवर्तन की यह प्रक्रिया आयु बढ़ने के साथ क्षीण होती रहती है, उसी का नाम वृद्धावस्था है किन्तु इस घटना ने इस प्राकृतिक व्यवस्था को ही उलट दिया, ऐसा क्यों ?

इसका उत्तर युवती के मुँह से दिलवाते हुये श्री बैनेट लिखते हैं कि—"मैं प्रतिदिन प्रातःकाल एक आदमकद शीशे के सम्मुख खड़ी होकर अपना चेहरा देखती और मन ही मन अनुभव करती कि मैं ठीक वैसी ही हूँ जैसी कल थी। दिन के परिवर्तन ने मेरे शरीर में कोई प्रभाव नहीं डाला, इच्छा शक्ति की यह दृढ़ता मुझे दिन भर पुलकित और प्रसन्न बनाये रखती। उसी का फल है जो मैं जैसी १५ वर्ष पूर्व थी वैसी ही आज भी हूँ।" सूक्ष्म शरीर के शोधन की, विचारों को ऊँचा उठाने की, संकल्प की महत्ता उन्होंने अमरीका के अध्यात्म परायण व्यक्ति डॉ. मारडन की पुस्तक "लौह इच्छा शक्ति" (इन आइरन विल) से समझी। जिसमें बताया गया है-मनुष्य अपने विचार नये कर ले, चरित्र को ऊँचा उठा ले तो अपना शरीर ही बदल सकता है।" यह स्वाध्याय उनके लिए तो औषधि बना ही, सैकड़ों को नया जीवन देने वाला है। प्रेम, मैत्री, दया, करुणा और परोपकारी विचारों को धारण कर कोई भी इसका प्रत्यक्ष लाभ ले सकता है।

खोपड़ी के ऊपर या नीचे की रक्तवाहिनियों की पेशियाँ भावनाओं के अनुसार फैलती-सिकुड़ती व तीव्र संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करती हैं।

अस्वस्थ भावनाएँ विभिन्न शारीरिक रोगों का कारण बनती हैं। सामान्य सिर दर्द से लेकर "माइग्रेन" नामक कठिन सिर दर्द भावनात्मक तनाव से होता है। इस तनाव से खोपड़ी की रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ती हैं और इससे सिर दर्द शुरू हो जाता है। आज तो यह पाया जाता है कि सिर दर्द की सौ घटनाओं में से पचासी का कारण भावनात्मक तनाव होता है।

भावना-क्षोभ के कारण पेशियों में उत्पन्न तनाव के कारण कई बार लोग भोजन के बाद ऐसा अनुभव करते हैं कि कलेजे पर बोझ आ पड़ा है और भोजन नीचे सरक ही नहीं रहा है। अधिक तनाव होने पर उबकाई आने लगती हैं, जी मिचलाने लगता है।

भावनात्मक तनाव से उत्पन्न स्नायु-रोगों में डकारें आना, पेट में ऐंठन होना, विभिन्न वायु-विकार अनेक त्वचा-विकार, एग्जिमा, खुजली आदि होते हैं।

कमर-दर्द के बारे में ऐसा ज्ञात हुआ है कि अधिकांश मामलों में इसका कारण भावनात्मक तनाव ही होता है।

यह जान लेने पर कि भावनात्मक तनावों एवं विकृतियों से ही अधिकांश रोग पैदा होते हैं, यह प्रश्न अनेकों को कचोटता है कि भावनाओं पर नियन्त्रण कैसे हो? इसका एक ही सरल मार्ग है-समझदारी भरे दृष्टिकोण का नित्य-प्रति के जीवन में अभ्यास। बिना अभ्यास के यह दृष्टिकोण व्यावहारिक जीवन में नहीं उतरता। जिन्दगी को बोझ न मानते हुए, खेल-भावना से जीना, अभ्यास द्वारा ही सम्भव है। अपनी सीमाओं को पहचानना, शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग की व्यवस्था करना, 'मैं-मैं' की चीख-पुकार से मुक्त होकर अपने दायित्वों को समझना और निभाना तथा सृजनात्मक वृत्तियों का जीवन में निरन्तर विकास करना ही एकमेव राजमार्ग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामान्यतः कठोरता, क्रोध, बात-बात में लड़-बैठने आदि को हम भ्रान्तिवश शक्ति का पर्याय मान बैठते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक इस सबको 'बचकानी हरकतें' मानते हैं। ये दुर्बलता के प्रतीक हैं। शक्तिशाली व्यक्ति विनम्र एवं दृढ़ होता है। क्रोध और झगड़ालूपन तो शक्तिहीनता की उपज है। सादगी-संयम का अभ्यास ही शक्ति का स्रोत है किन्तु अपनी दुर्बलताओं पर व्यर्थ की खीझ भी लाभकर न होगी। धीरे-धीरे ही कुसंस्कार चित्ततल पर जमते हैं और धीरे-धीरे ही उनका उन्मूलन सम्भव है। सतत् अभ्यास ही सर्वोत्तम उपचार है। इस बात को सदा ध्यान में रखा जाय कि मन की कुटिलता और अनैतिक कर्म ही रोग का आधार हैं तथा मन की शुचिता, स्नेह, करुणा और व्यापक मानवीय प्रेम द्वारा इन रोगों को मिटा सकना सरलता से सम्भव है।

मस्तिष्क की धुलाई-सफाई वैज्ञानिक उपकरणों से भी सम्भव हो सकती है। फिर अध्यात्म साधना के उपचार तो उससे अधिक ही सशक्त समर्थ होते हैं। उनका प्रभाव तो और भी अधिक होना चाहिए।

इलेक्ट्रिकल स्टीम्यूलेशन आफ ब्रेन (ई. एस. वी.) पद्धति के अनुसार कई एशियन विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से मस्तिष्क की धुलाई (ब्रेन वासिंग) में सफलता प्राप्त कर ली है। अभी यह बन्दर, कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, चूहे जैसे छोटे स्तर के जीवों पर प्रयोग किये गये हैं। आहार की रुचि, शत्रुता, मित्रता, भय, आक्रमण आदि के सामान्य स्वभाव को जिस प्रकार चरितार्थ किया जाना चाहिए उसे वे बिल्कुल भूल जाते हैं और विचित्र प्रकार का आचरण करते हैं। बिल्ली के सामने चूहा छोड़ा गया तो वह आक्रमण करना तो दूर उससे डरकर एक कोने में जा छिपी। क्षणभर में एक-दूसरे पर खूनी आक्रमण करना, एक आध मिनट बाद परस्पर लिपटकर प्यार करना यह परिवर्तन उस विद्युत क्रिया से होता है जो उनके मस्तिष्कीय कोषों के साथ सम्बद्ध रहती है। यही बात मनुष्यों पर भी लागू हो सकती है। मानव मस्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होता है, उसमें प्रतिरोधक शक्ति भी अधिक होती है इसलिए उसमें हेर-फेर करने के लिए प्रयास भी कुछ अधिक करने पड़ेंगे और पूर्ण सफलता प्राप्त करने में देरी भी लगेगी, पर जो सिद्धान्त स्पष्ट हो गये हैं, उनके आधार पर यह निश्चित हो गया है कि मनुष्य को भी जैसा चाहे सोचने, मान्यता बनाने और गतिविधियाँ अपनाने के लिए विवश किया जा सकता है।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र की धुलाई सफाई ही नहीं करती, वरन् उसे समुन्नत, सुसज्जित एवं सुसंस्कृत बनाने का काम भी बहुत हद तक पूरा कर सकती है।

मनोमय कोश शरीर और मस्तिष्क के समूचे क्षेत्र को अपने अंचल में समेटे हुए हैं। वह इन दोनों क्षेत्रों को प्रभावित करता है। अन्तःकरण के अस्त-व्यस्त और विकृत स्थिति में बने रहने पर उसकी प्रतिक्रिया शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालती है। व्यक्तित्व लड़खड़ा जाने पर दृष्टिकोण और व्यवहार दोनों ही गड़बड़ाते हैं। फलतः गतिविधियाँ अवांछनीयता से भर जाती हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में विपत्तियाँ ही उत्पन्न होंगी। अवरोध ही खड़े होंगे। कलह और संकट आक्रमण करेंगे। समूचा जीवन ही नरक बन जायगा। इस नारकीय यन्त्रणा से छुटकारा कोई और नहीं दिला सकता। क्योंकि इस विपत्ति का दोष भले ही किसी पर थोपा जा सके परन्तु उसका कारण अपने आप में ही होता है। मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थिति बनने का तथ्य इतना स्पष्ट है कि उसे झुठलाये जाने की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। अपने आप में परिवर्तन किये बिना हम इस नरक से अन्य किसी तरह उबर नहीं सकते। जीवन-क्रम उत्पन्न विविध-विधि अवरोधों से छुटकारा पाये बिना हमारा उद्धार हो नहीं सकता। समस्याओं और विपन्नताओं से त्राण मिल नहीं सकता।

समृद्धि, प्रगति और सुख-शान्ति की समस्त सम्भावनाएँ बीज रूप में अपने ही भीतर भरी पड़ी हैं। सत्प्रवृत्तियों की देवी और सद्भावनाओं के देवता ही हमें दिव्य वरदानों से सुसम्पन्न बनाते हैं। अन्तरंग की विभूतियाँ ही बहिरंग की सिद्धियाँ बनकर सामने आती हैं। आत्मशोधन और आत्म परिष्कार जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना गया है। इसे प्रत्यक्ष कल्प-वृक्ष की उपमा दी जा सकती है।

मनोमय कोश का विज्ञान और साधन हमारी मानसिक स्थिति के परिष्कार का ऋषि प्रणीत उपाय है। इस दिशा में कदम बढ़ाने पर हम हर दृष्टि से लाभान्वित ही होते हैं।

अपने सबसे निकटवर्ती शत्रुओं से जूझिए

आधुनिक मनोविज्ञान के प्रणेता सिंगमंड फ्रायड ने एक ग्रीक पौराणिक कहानी का उल्लेख किया है। किसी ग्रीक युवक की जुड़वाँ बहिनों का आकस्मिक निधन हो गया। इस दुःख को वह सहन न कर सका और विक्षिप्त रहने लगा, निराशा की मनःस्थिति में एक दिन वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी बहिनों को ढूँढ़ने निकला। घूमते-घूमते एक तालाब के निकट पहुँचा और उसके किनारे बैठ गया। अचानक बिना किसी प्रयोजन के उसने तालाब में झाँका। अपने आपको वह भूल चुका था। फलतः अपने ही प्रतिबिम्ब को वह नहीं पहचान सका। उसे यह भ्रम हुआ कि तालाब में कोई और युवक है, जो उसकी ओर घूर-घूर कर देख रहा है। यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि तालाब का युवक उसके व्यक्तित्व से असाधारण रूप से प्रभावित है। तब से वह नित्य ही तालाब के किनारे पहुँच जाता। घण्टों वहाँ बैठा रहता। जो बोलता था, उसकी प्रतिध्वनि भी उसे सुनाई पड़ती। दुःख के कारण उसकी सोचने-विचारने की सामर्थ्य समाप्त हो चुकी थी। एक दिन तालाब में वह अपनी परछाँई को पकड़ने घुसा और गहरे पानी में डूबकर मर गया।

फ्रायड के अनुसार ग्रीक युवक आत्म प्रशंसा का सदा इच्छुक रहता था। उसके आत्म प्रशंसक रूप को पोषण जुड़वाँ बहिनों द्वारा मिलता था। बहिनों की मृत्यु के कारण उसकी इच्छा को पोषण मिलना बन्द हो गया। फलस्वरूप वह इतना अधिक असंतुलित हो गया कि आत्मनियन्त्रण एवं विवेक गँवा बैठा और अन्ततः उसकी दुर्गति दुःखद मृत्यु के रूप में हुई।

फ्राइड, जुंग, एडलर जैसे विश्व के मनःशास्त्रियों का मत है कि श्रेय, सम्मान, प्रशंसा पाने की आकांक्षा अधिकांश व्यक्तियों में पाई जाती है। जो समझदार-विचारशील होते हैं, वे ऐसे मार्ग का चयन करते हैं, उन कार्यों को अपनाते हैं, जिनसे उन्हें समाज द्वारा सम्मान अपने आप मिलता है। पर जो मूर्ख होते हैं, वे ऐसे जाल-जंजाल रचते, कौतूहल खड़ा करते हैं, जिन्हें बचकानापन कहा जा सकता है। आत्म प्रशंसा के इच्छुक ऐसे व्यक्तियों की चित्र-विचित्र हरकतें देखते ही बनती हैं। शरीर की दृष्टि से परिपक्व-परन्तु मन, मस्तिष्क की दृष्टि से अपरिपक्व ऐसे व्यक्तियों को सहज ही पहचाना जा सकता है। उनके आचरण एवं व्यवहार स्वयं ही परिचय दे देते हैं। बच्चों की भाँति वे कल्पना करते हैं तथा व्यावहारिक धरातल से दूर रहते हैं। आत्मविज्ञापन के लिए शृंगार, वेश-विन्यास कौतूहलपूर्ण बनाने, अपव्यय द्वारा सम्पन्नता का ढिंढोरा पीटने जैसे कितने ही स्वाँग उनके क्रियाकलाप में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। मनःशास्त्रियों के अनुसार प्रदर्शन बाजी करने वाले आत्मप्रशंसा के इच्छुक व्यक्ति वस्तुतः आत्महीनता की ग्रन्थियों से ग्रसित होते हैं। उनमें आत्मविश्वास का अभाव पाया जाता है। सद्गुणों के विकास अथवा विशेषताओं को अर्जित करने के स्थान पर वे लोक सम्मान पाने, अपना वर्चस्व जताने के लिए उथले प्रदर्शन का मार्ग अपनाते देखे जाते हैं।

प्रख्यात मनःशास्त्री एडलर के अनुसार आत्म मोह से ग्रसित व्यक्तियों की स्थिति लगभग उन अर्धविक्षिप्तों जैसी होती है, जो चिकित्सालयों में मानसिक उपचार के लिए भर्ती रहते हैं। उनमें से कितने ही अपने को किसी महान नेता या आइन्स्टीन से कम तो समझते ही नहीं। कुछ तो अपने को क्राइस्ट, बुद्ध तथा कुछ हिटलर, नेपोलियन मानते रहते हैं। यह भी एक विलक्षण बात है कि वे अपनी मान्यताओं से बुरी तरह चिपके रहते हैं। प्रायः उनकी भ्रामक मान्यताओं को मिटाने में अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मनःचिकित्सक का समूचा प्रयत्न इसी में लगा रहता है कि रोगी के मन में जड़ जमाये इस अवांछनीय चिन्तन को किस तरह हटाया जाय तथा उनके स्थान पर विधेयात्मक विचारों की स्थापना कैसे की जाय। मन की चेतन-अचेतन परतों की उधेड़-बुन, अध्ययन-विश्लेषण इस निमित्त करना पड़ता है। अचिन्त्य चिन्तन एवं पूर्वाग्रहों से पीछा छूटने तथा मन की ग्रन्थियों के खुलते ही मनोरोगी स्वयं को स्वस्थ एवं नीरोग महसूस करता है। कपोलकल्पित चिन्तन, चिन्ताओं से पिण्ड छूटना ही मनःचिकित्सा की सफलता का आधार है।

चिकित्सालयों में भर्ती होने वाले मनोरोगियों के अतिरिक्त भी समाज में विचरण करने वाले ऐसे व्यक्तियों की बहुतायत है, जिनकी स्थिति लगभग उन रोगियों की तरह होती है। उनकी हरकतों में वे चिह्न देखे जा सकते हैं। आत्ममोह का पागलपन वस्तुतः मानसिक अपरिपक्वता की निशानी है। मनोविज्ञानी इसे एक रोग मानते हैं। ऐसा रोग जो अपनों को नहीं, दूसरों को भी हानि पहुँचाता है। कारण कि वह व्यक्ति अपने को सर्वसमर्थ-अवगुणों से रहित मानता है। आत्मसुधार के प्रति उसमें उत्साह नहीं होता। आत्मप्रशंसा की लालसा प्रबल होती है। अयोग्य एवं अक्षम होते हुए भी वह ऐसे आडम्बर खड़ा करता है, जाल-जंजाल बुनता है ताकि दूसरे उसका वर्चस्व स्वीकार करें। जो विचारशील होते हैं, वे तो उसकी उथली मनोवृत्ति को पहिचानते तथा उपहास करते हैं पर मूर्ख उसके आडम्बरों से प्रभावित होकर गुणगान करते देखे जाते हैं। गल्तियों को बताने एवं समझाने पर भी सुधार के लिए तैयार न होने पर प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

आत्ममोह से ग्रसित व्यक्तियों में राग एवं द्वेष की उत्तेजनायें तीव्र होती हैं। अपनी वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन न कर पाने के कारण वे अहंकारी बन जाते हैं। अहंकार मानवी सौजन्यता, सौम्यता एवं विनम्रता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाप्त करके आपसी मतभेदों, मनमुटावों तथा संघर्षों को जन्म देता है। फलस्वरूप रचनात्मक क्षमता समाप्त होने लगतीं तथा व्यक्तित्व विकास की सम्भावनाएँ प्रायः क्षीण होती हैं। अहंकार अथवा दम्भ को एक प्रकार से मूर्खता का पर्याय कहा जा सकता है। ऐसी मूर्खता जिसकी चपेट में समझदार, नासमझ दोनों ही ग्रसित देखे जाते हैं।

मनःशास्त्री तथा ''अण्डर स्टैंडिंग ह्यूमन विहैवियर'' ज्ञानकोष के सम्पादक विद्वान निकोलस का कहना है कि दम्भ एक ऐसा मनोरोग है जो दम्भी को कभी भी चैन से नहीं रहने देता। ईर्ष्या की अग्नि में वह जलता रहता है। प्रचुर सुख-साधनों के बीच रहते हुए भी उसका मन उत्तेजित,हृदय विदग्ध बना रहता है। वह अपने को जैसा प्रदर्शित करता है, वैसा उसका व्यक्तित्व होता नहीं। फलतः दुहरे व्यक्तित्व का जन्म होता है। उन दोनों ही व्यक्तित्वों की टकराहट में उसकी सत्ता खण्डित होती रहती है। पुराणों में जिसे देवासुर संग्राम कहा गया है, अपने भीतर ठीक वह वैसा ही अनुभव करता है। यह स्थिति यदि अधिक समय तक रहती है, तो अनेकों प्रकार के मनोरोग उठ खड़े होते हैं।

उथले प्रदर्शनों, बचकानी हरकतों अथवा साज-शृंगार अपव्यय की ओछी आदतों द्वारा प्रशंसा, सम्मान पाने की आकांक्षा पहले नम्बर की मूर्खता है। सही रूप में प्रयास करें तो मनुष्य में विकास की असीम सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। बीज रूप में हर व्यक्ति के भीतर एक कलाकार बैठा है। आवश्यकता बस इतनी भर है कि अपने आत्मविश्वास को जगाया जाय। आत्मप्रशंसा की प्रवंचना से हर हालत में बचा जाय। प्रशंसा पाने की अपेक्षा दूसरों की अच्छाइयों की प्रशंसा की नीति अपनाई जाय। अपनी समीक्षा सुनना तथा दुर्गुणों को दूर करने का साहस विकसित कर लेना, एक आध्यात्मिक पुरुषार्थ है।

जिन्हें अपनी प्रगति अभीष्ट हो, उन्हें सर्वप्रथम अपने भीतर के उन शत्रुओं से जूझना चाहिए जो सबसे निकटवर्ती हैं पर सर्वाधिक हानि पहुँचाते हैं। व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में चट्टान की भाँति अड़कर अग्रगमन को रोक देते हैं। आत्मविश्वासी बनना प्रगति के लिए जितना आवश्यक है, आत्म-भिमानी प्रवृत्ति उतनी ही खतरनाक एवं हानिकारक है। इसके रहते भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के उच्च सोपानों पर चढ़ना सम्भव नहीं।

अतिवादी चिन्तन और बढ़ता पागलपन

शारीरिक रोगों की तरह अब मानसिक रुग्णता भी आम बात होती जाती है। शरीर पर कार्याधिक कुपोषण, प्रकृति विरोधी दिनचर्या को आधारभूत कारण मान लिया गया है और चिकित्सा उपचार के अतिरिक्त जीवनचर्या में हेर-फेर करने की आवश्यकता को भी लोग समझने लगे हैं कि बढ़ते हुए पागलपन का कारण मोटे रूप में समझ में नहीं आता। क्योंकि न तो लोगों ने गंभीरतापूर्वक इस विषय में विचार किया है और न इस संदर्भ में समझने, समझाने का ही कुछ ठोस प्रयत्न हुआ है। शरीरगत रोगों के निवारण के सम्बन्ध में जितनी कुछ उल्टी-सीधी जानकारी है उतनी मनोरोगों के सम्बन्ध में नहीं फिर इस विषय में कोई उपयोगी साहित्य भी तो नहीं लिखा गया और न पागलखानों के अतिरिक्त निजी उपचार गृहों का स्थापन-प्रचलन हुआ है।

पर्यवेक्षण से पता चलता है कि प्रायः एक तिहाई लोग न्यूनाधिक रूप में विक्षिप्त या अर्धविक्षिप्त बनकर रह रहे हैं। आरम्भिक स्थिति में तो उसके लक्षणों को स्वभावगत दोष मानकर घटना विशेष के सम्बन्ध में समझाने-बुझाने, डाँटने-डपटने या बोल-चाल बन्द कर देने जैसी प्रतिक्रिया भर व्यक्त की जाती है। यह नहीं देखा जाता कि इस प्रकार के अटपटेपन का मूल कारण क्या है। अच्छे खासे व्यक्ति के चिन्तन और व्यवहार में ऐसा बेतुकापन क्यों बढ़ रहा है। उसकी जिस-तिस प्रकार से पुनरावृत्ति क्यों हो रही है।

मानसिक विक्षिप्तता अब पेट के अपच या नाक के जुकाम की तरह बहुजन प्रचलित होती जा रही है। उसका कारण न समझ पाकर उसे उदण्डता, ईर्ष्या आदि नाम दे देते हैं और उसे दोष भर मान बैठते हैं जबकि उसकी गहराई में जाकर यह देखना चाहिए कि इस प्रकार का असंतुलन क्यों उत्पन्न हो रहा है? निदान और उपचार का सही स्वरूप मालूम होने पर ही व्यथा से छुटकारा पाया जा सकता है।

विक्षिप्तता का हल्का स्तर यह है जिसमें व्यक्ति का आचरण असाधारण रूप से अटपटा हो जाता है। वस्तुस्थिति को सही रूप में समझ नहीं पाता और कुछ का कुछ निष्कर्ष निकालता है। दुर्भावनाओं की गाँठ बना लेता है। दूसरों को दोषी मानता है और उत्पन्न होते रहने वाले विग्रहों में अपने को निर्दोष। दोष दूसरों में भी हो सकते हैं, गलती दूसरे भी कर सकते हैं। पर उसका हल विचार-विनिमय से निकल सकता है। पर जहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह प्रक्रिया जड़ पकड़ने लगे तो समझना चाहिए कि विग्रही विक्षिप्तता का आरम्भ हो गया।

एक दूसरे प्रकार कि विक्षिप्तता है, जिसे सनक कहते हैं। रोगी के मस्तिष्क पर कोई एक बात ही छाई रहती है वह भी रचनात्मक नहीं, निषेधात्मक ही होती है। सृजन नहीं ध्वंस, सहयोग नहीं विग्रह ही इच्छा पूर्ति का उपाय सूझता है। स्वजन पराये लगते हैं और उनकी सेवा सहायता भी अनिष्टकर प्रयास जैसी लगती है। कई बार इच्छायें ऐसी अवास्तविक एवं बढ़ी-चढ़ी होती हैं जिनकी पूर्ति की कोई तुक नहीं। इसी प्रकार की अन्य विसंगतियाँ भी मस्तिष्क पर सवार रहती हैं। एक में शिथिलता नहीं आने पाती कि दूसरी नई सनक उठ खड़ी होती है। इस प्रकार असंतोष, आक्षेप और विग्रह का वातावरण बना ही रहता है। सम्पर्क में आने वाले लोग हैरान हो जाते हैं साथ ही रोगी भी अपने को उपेक्षित व सताया गया अनुभव करता करता है। इस प्रकार सनक भी शारीरिक बीमारी की तरह ही एक स्थायी विपत्ति बन जाती है और दोषारोपण, खीझ, घुटन का सिलसिला चल पड़ता है।

सनक जब उग्र रूप धारण करती है तो उससे आक्रान्त व्यक्ति अपने दैनिक काम-काज ठीक तरह से निपटाने की स्थिति में नहीं रहता और ऐसे आचरण करता है जिस पर नियन्त्रण न बन पड़े। ऐसे ही लोग पागलखाने में पहुँचते हैं और उन्हीं के आधार पर पागलों की गणना होती है। ऐसे लोगों की संख्या भी अब आश्चर्यजनक रूप में बढ़ रही है और उनके लिए संक्रामक रोगों के रोगियों की तरह प्रथक् व्यवस्था हर नगर में करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

अनपढ़ क्षेत्रों में इसे भूत-पलीत का प्रकोप, किसी के द्वारा किया हुआ टोना-टोटका मानकर जंत्र-तंत्र करने वालों के फेर में पड़ते हैं और व्यर्थ ही अपना पैसा और समय गँवाते हैं, बाबाओं की मंडली में जा मिलते हैं, भीख माँगते या आत्महत्या जैसा कुछ कर बैठते हैं। बीमारियाँ भी शरीर को घेर लेती हैं।

होता यह है कि जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन में आहार-विहार का संतुलन ठीक न बैठ पाने के कारण आये दिन शारीरिक रोगों के आक्रमण होते रहते हैं, उसी प्रकार चिन्तन क्षेत्र में अनुपयुक्त आकांक्षाओं की भरमार कर लेने, मर्यादा एवं शालीनता का ध्यान न रखने पर व्यक्ति अनुपयुक्त कल्पनायें करने लगता है। ताल-मेल बिठाने की अपेक्षा अपने ही अहंकार के प्रतिपादन को सब कुछ समझ बैठता है। उस प्रकार का बानग बन नहीं पाता। यहीं से घुटन, खीझ, दोषारोपण और दुर्भाग्य की अनुभूति होने लगती है। यह एक प्रकार का मानसिक ज्वर है जिसके चढ़ने पर उसी प्रकार की अटपटी परिस्थिति बन जाती है जैसी कि ज्वर आने पर शरीर में बेचैनी, हड़कन होती है।

सुख-सुविधाओं की, दूसरों से असाधारण लाड़-दुलार की आशा रखने और व्यवहार में उनके कार्यान्वित न होने पर व्यक्ति कुढ़ने लगता है। ऐसा भी होता है कि चिन्तन प्रवाह में हर किसी में दोष निकालने की आदत पड़ जाने से सम्पर्क क्षेत्र के सभी लोग बुरे लगने लगते हैं। अनुभूति को व्यक्त करके उसका निराकरण करने का साहस नहीं होता। फलतः उसकी निषेधात्मक मान्यता ही उसे वास्तविक प्रतीत होने लगती है और सब ओर प्रतिकूलता-अवांछनीयता दृष्टिगोचर होने लगती है। इससे क्रोध उत्पन्न होता है, उनका न समाधान होता है न खुलासा। घुटन भीतर ही भीतर जलाती है और त्रास देती रहती है। रक्त में या पेट में भरी हुई विषाक्तता का निराकरण न होने पर जिस तरह शारीरिक बीमारियाँ फूट पड़ती हैं उसी प्रकार मानसिक घुटन भी एक सनक या विक्षिप्तता का रूप धारण कर लेती है। दब्बू प्रकृति या उदण्ड स्वभाव के महत्त्वाकांक्षी बहुधा छोटे-बड़े स्तर की सनक या विक्षिप्तताओं के शिकार होते हैं।

अत्याचार, उत्पीड़न, अपमान भी मनुष्य को विक्षुब्ध बना देते हैं। उपेक्षा लड़ाई से भी अधिक अखरती है। ऊँची उड़ानें उड़ने वाले जब परिस्थितियों में वैसी सम्भावना नहीं देखते तो भी आघात अनुभव करते हैं और तिलमिलाने लगते हैं। बहुधा दाम्पत्य जीवन के बारे में युवकों और युवतियों की आकांक्षाएँ, कल्पनायें देवलोक जैसी होती हैं। सिनेमा इस प्रकार की प्रणय लीलाओं का अव्यावहारिक ज्ञान जमा देता है। उसके चरितार्थ न होने पर भी वे घुटते हैं और उस आक्रोश को अपने ऊपर उतारते हैं। सिर पीटने की तरह संतुलन को गड़बड़ा लेना भी वस्तुस्थिति से अपरिचित लोगों का ही काम है। दोष ढूँढ़ने पर वे सर्वत्र प्रचुर परिमाण में मिल सकते हैं। अपने को उत्पीड़ित या दुर्भाग्यग्रस्त समझने वाले अपने मत की पुष्टि के लिए कोई न कोई आधार ढूँढ़ लेते हैं।

पागलपन अन्य कारणों से भी हो सकता है। पर इन दिनों जिस तेजी से सनकी और विक्षिप्तों की संख्या बढ़ रही है उसमें उनका अनुपयुक्त चिन्तन ही प्रधान कारण होता है। हित चिन्तकों का कर्तव्य है कि अपनों को जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराते रहें और वह स्थिति स्वजनों के सिर पर न लदने दें जिसके लिए सभी को खिन्न रहना पड़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावनाओं को परिष्कृत रखें

मनुष्य भावनाओं का पुतला है। उनकी अभिव्यक्ति के लिए सृष्टा ने पंचतत्त्वों से विनिर्मित काय-कलेवर की व्यवस्था की है। भावनाएँ, विचारणाएँ जिस स्तर की होंगी, व्यक्तित्व भी तद्नुरूप बनता, ढलता चला जायेगा। उनकी उत्कृष्टता-निकृष्टता ही व्यवहार में चरितार्थ होकर प्रगति-अवगति का मार्ग खोलती और व्यक्ति को उन्नत-अवनत स्थिति में ला प्रतिष्ठित करती है।

महान दार्शनिक अरस्तू का कहना है कि भावनाओं का काया पर उसी प्रकार आधिपत्य रहता है, जैसा मालिक का नौकर पर, स्वामी का गुलाम पर। भाव-चिन्तन की स्वच्छता जहाँ शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखती है, वहीं उसकी विकृति अनेकानेक बीमारियों का कारण बनती है। इस तथ्य की पुष्टि मनोविज्ञानियों एवं मनःचिकित्सकों ने अब गहन अध्ययन एवं अनुसन्धान के आधार पर की है।

सोवियत संघ की एकेडमी ऑफ साइंसेज के वरिष्ठ सदस्य एवं स्नायु विज्ञानी प्रो. पावेल सिमोनोव के अनुसार भावनाएँ दो प्रकार की होती हैं—एक विधेयात्मक और दूसरी निषेधात्मक। इनमें से प्रथम श्रेणी में आशा, उत्साह, विश्वास, प्रेम, साहस, प्रफुल्लता आदि को गिना जा सकता है, जिनका मन-मस्तिष्क पर अच्छा व अनुकूल प्रभाव पड़ता है, जबकि काम, क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, द्वेष जैसी निषेधात्मक भाव तरंगों से कायतंत्र के विभिन्न भाग अतिरिक्त रूप से उत्तेजित हो उठते हैं और दुःख संक्षोभ से लेकर तनाव, उद्वेग तक उत्पन्न करते हैं। यह पूर्णतया व्यक्ति की मान्यताओं, इच्छा, आकांक्षाओं पर निर्भर करता है कि इनमें से कौन सी उसके लिए लाभदायक हैं और कौन सी हानिकारक। भावनात्मक असंतुलन स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व दोनों को लकड़ी में लगे घुन के कीड़े की तरह चट कर जाता है। विधेयात्मक भावनाएँ यदि संकीर्ण-स्वार्थपरता जैसी प्रवृत्तियों को भड़कांने लगें तो वह व्यक्ति एवं समाज के लिए कष्टकर हो सकती हैं, जबकि छोटे बच्चों के निर्मल अन्तःकरण से प्रस्फुटित भाव हर व्यक्ति को आकर्षित करते और सेवा, सहायता एवं सहानुभूति प्रदान करने की प्रेरणा उभारते हैं।

मनीषियों का कहना है कि मनुष्य मूलतः पवित्र एवं परिष्कृत भावनाओं का पुंज है, किन्तु अनुपयुक्त परिस्थितियों के कारण आज उसमें अनेक विकृतियाँ भर गई हैं। उत्तेजनापूर्ण विषाक्त वातावरण तो उसने स्वयं विनिर्मित किया है, जिसे अप्राकृतिक एवं अस्वाभाविक ही कहा जा सकता है। इसका दुष्परिणाम मनोकायिक आधि-व्याधियों के रूप में उसे भुगतना भी पड़ रहा है। उनके अनुसार जिसकी भावनाएँ जितनी संकुचित होती हैं, वह शारीरिक-मानसिक एवं आत्मिक दृष्टि से उतना ही कमजोर होता चला जाता है। विभिन्न तरह की आधि-व्याधियों से ऐसे ही लोग अधिक पीड़ित होते और समय से पूर्व दम तोड़ते देखे जाते हैं। जिसने अपनी भावनाओं की परिधि को जितना अधिक विस्तृत बना लिया, समझना चाहिए कि वह उतना ही स्वस्थ, समुन्नत और परिष्कृत बनता चला जायेगा। जन सम्मान और दैवी अनुदान घटाटोप बनकर उस पर बरसते रहेंगे। इसके विपरीत विकृत भाव सम्पन्न व्यक्ति से दूसरों का, समाज का हित साधन हो सकना तो दूर अपना भी वह कल्याण नहीं कर पाता। स्वार्थी व्यक्ति क्षणिक प्रसन्नता भले पा लें, पर उसकी जीवात्मा अपनाई गई छुद्रता के लिए उसे सदैव कचोटती रहती है। परिचितों की घृणा बरसती और सम्बद्ध जनों की रुष्टता सहनी पड़ती है, सो अलग।

इसी तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए प्रख्यात मनःचिकित्सक एच. एफ. डनबार ने कहा है कि जिनका अन्तराल और मनःसंस्थान उदात्त भावनाओं, सद्विचारणाओं से लबा-लब भरा रहता है, प्रसन्नता-प्रफुल्लता ही जिनकी प्रकृति है, ऐसे व्यक्तियों का शरीर स्वस्थ रहता है। चेहरे पर दमकती आभा और आँखों की चमक उनकी जीवनी शक्ति का प्रमाण स्वयं उपस्थित कर देती है। व्यक्तित्व का चुम्बकत्व सहज ही दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। भाव संस्थान में छाई विषाक्तता जीवन ऊर्जा का अनावश्यक क्षरण करती रहती है। ऐसे में प्रगति की आकांक्षा बुझ जाती है। इच्छा शक्ति को, उमंग को लकवा मार जाता है। बाह्य उपचार, औषधियाँ इसके लिए अस्थायी लाभ भले दिलावें, पर दीर्घकालिक एवं स्थायी सत्परिणाम अन्तःकरण के परिष्कार से ही मिल सकता है। अतः भावनाओं का विवेकयुक्त सुनियोजन ही शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य का मूलाधार है।

भावनाशील तो बनें, पर भावातिरेक से बचें

प्रत्यक्ष शरीर और बुद्धि के ही क्रिया-कलाप दिखायी पड़ते हैं, इसलिए महत्त्व भी इन्हीं दोनों को अधिक दिया जाता है। मानवी सामर्थ्यों में शरीरबल और बुद्धिबल को ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनसे सम्बद्ध संस्थानों पर ही प्रायः अधिक ध्यान दिया जाता है। इन्हें बलिष्ठ एवं प्रखर बनाने तथा असन्तुलनों को दूर करने के लिए विविध प्रकार के उपचारों की व्यवस्था बनायी जाती है। यह उचित है और आवश्यक भी। पर शरीर और बुद्धि के अतिरिक्त एक सूक्ष्म परत और भी है जो इनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान है, वह है-भाव-सम्वेदनाओं से युक्त अन्तःकरण की। जिसमें विक्षेप होने से समूचा शरीर संस्थान प्रभावित होता है। भावनात्मक असन्तुलन शारीरिक एवं मानसिक असन्तुलनों की तुलना में कहीं अधिक खतरनाक सिद्ध होता है।

विगत दिनों शरीर और मस्तिष्क संस्थान के सन्तुलन पर ही अधिक ध्यान दिया जाता रहा, भाव-संस्थान उपेक्षा की गर्त में पड़ा रहा। फलस्वरूप अनेकों प्रयत्नों के बावजूद भी मनुष्य को स्वस्थ और सन्तुलित जीवन का लाभ नहीं मिल सका। मनःशास्त्री इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि भावनात्मक विक्षोभों के रहते स्वस्थ और सफल जीवन की आशा नहीं की जा सकती। मनोविज्ञान की आधुनिकतम खोजों ने भावनात्मक असन्तुलन को सर्वाधिक खरतनाक ठहराया है तथा यह तथ्य उजागर किया है कि शारीरिक एवं मन के उपचार के लिए जितना ध्यान दिया जाता है उतना ही भाव-संस्थान के उपचार के लिए भी दिया जाना चाहिए।

सम्बद्ध विषय पर गहराई से खोजबीन करने वाले मनःशास्त्री जार्ज बेंगल का कहना है कि भावातिरेक ही सभी प्रकार के मानसिक एवं भावनात्मक व्यतिरेकों को जन्म देता है। लेखक ने एक लेख ''कैनयोर इमोशन्सकिल यू'' में लिखा है कि उसे इस सम्बन्ध में खोज करने की प्रेरणा स्वयं के जीवन की एक घटना से मिली। उसके भाई का आकस्मिक निधन दिल के दौरे से हो गया, इस घटना की बरसी की तिथि पर शोकातुर था। अचानक उसे भी दिल का गम्भीर दौरा पड़ा जिस पर बड़ी कठिनाई से नियन्त्रण हो सका। स्वस्थ होने पर उसने आकस्मिक मौत से मरने वाले दो सौ पचहत्तर व्यक्तियों की मृत्यु के कारणों का एक अध्ययन किया तो पाया कि अधिकांश की मृत्यु का मात्र कारण था, भावनात्मक असन्तुलन। जार्ज बेंगल का मत है कि भावातिरेक की स्थिति में मनुष्य सामान्य-सी घटना को भी असाधारण महत्त्व देता और छोटी-मोटी प्रतिकूलताओं का सामना करने में भी अपने को असमर्थ पाता है। परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बिठा पाने के अभाव में वह जीवन से निराश होकर ऐसे ही आत्मघाती कदम उठाता है। उदाहरणार्थ, उपरोक्त दो सौ पचहत्तर मृत व्यक्तियों के मृत्यु के कारणों का पता लगाने पर उन्होंने पाया कि वे इतने गम्भीर नहीं थे, पर अतिशय भाव-विक्षेप के कारण उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। इन व्यक्तियों में से एक सौ दस ऐसे थे जिनकी मृत्यु मात्र उनके निकटतम सगे-सम्बन्धियों के मृत्यु के कारण हो गयी। एक सौ पाँच व्यक्तियों का मृत्यु का समाचार सुनकर दिल का दौरा पड़ने लगा और थोड़ी देर बाद ही मृत्यु की गोद में जा पहुँचे जबकि इसके पूर्व उन्हें कभी भी दिल का दौरा नहीं पड़ा था। तीस व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के मोटर दुर्घटना के शिकार होते-होते बचे थे, पर उस दुर्घटना की आशंका से उतना घबड़ा उठे कि बिना किसी रोग अथवा कारण के अकाल मृत्यु की गोद में जा पहुँचे। मरने वाले तीस व्यक्ति छोटी-मोटी जीवन की ऐसी असफलताओं से निराश थे जिन्हें कि सामान्यतः अधिकांश व्यक्ति उतना महत्त्व नहीं देते हैं।

'हाउ योर माइण्ड कैन कण्ट्रोल-योर हेल्थ' नामक एक शोध निष्कर्ष में डॉ. फ्रान विल्सन लिखते हैं कि भावातिरेक अनेकों प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों को जन्म देता है। भावातिरेक की स्थिति में मनःसंस्थान तनावग्रस्त हो जाता है जिससे शरीर के 'हारमोनल सिस्टम' पर दुष्प्रभाव पड़ता है। मनःशास्त्री इस असन्तुलन से होने वाले मनःरोगों को 'साइकोजेनिक' या 'इमोशन कॉल्ड' रोगों का नाम देते हैं। प्रायः मनोचिकित्सकों के पास उपचार के लिए पहुँचने वाले ऐसे रोगियों की बहुलता होती है।

मनःशास्त्री डॉ. फ्रान विल्सन का कहना है कि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनाधिक रूप से यह जानकारी होती है कि स्वस्थ एवं विकृत भावनाओं का मन एवं शरीर संस्थान पर तदनुरूप प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, कामुकता के भाव अपनी तुरन्त प्रतिक्रिया दर्शाते हैं तथा समूचे शरीर और मन को उत्तेजित कर डालते हैं। पर जाने-अनजाने दुष्प्रभावों को देखते हुए भी अधिकांश व्यक्ति उन्हें नियन्त्रण करने का प्रयास नहीं करते हैं। फलस्वरूप अश्लील चिन्तन शारीरिक और मानसिक शक्तियों को भीतर ही भीतर क्षीण करता रहता है। भावातिरेक का यह भी एक विकृत पक्ष है जो अन्य प्रकार का भी हो सकता है तथा अपनी दुःखद प्रतिक्रिया छोड़ सकता है।

डॉ. जॉनविग ने एक घटना का उल्लेख किया है कि रूथ केडविक नामक स्त्री ने चार बार गर्भधारण किया और चारों बार उसे गर्भपात हो गया। पाँचवीं बार वह एक गर्भ-विशेषज्ञ के पास पहुँची, जो मनःशास्त्र का भी विशेषज्ञ था। उस गर्भ-विशेषज्ञ ऑब्स्ट्रेटिशियन ने महिला से पूछा—'आपके मन में प्रसव वेदना के सम्बन्ध में कैसे विचार हैं ? उत्तर में महिला ने बताया कि सन्तान उत्पन्न करने की तो मेरी हार्दिक इच्छा है, पर बचपन में प्रसव के सम्बन्ध में मैंने इतनी खौफनाक बातें सुन रखी हैं कि मेरे मन में भयानक धारणाएँ बन गयी हैं। जब भी प्रसव का समय सन्निकट आता है मैं असामान्य रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भयभीत हो उठती हूँ। डाक्टर ने उसकी मानसिक तुष्टि के लिए कुछ मीठी गोलियाँ दवा के रूप में दे दीं और अपनी रिपोर्ट हर दूसरे दिन देते रहने के लिए कहा। चिकित्सक के निर्देशानुसार वह हर दूसरे दिन अपने स्वास्थ्य की रिपोर्ट देने पहुँचने लगी। जब भी वह चिकित्सक के पास अपने स्वास्थ्य की रिपोर्ट देने जाती वह विस्तार से उसके मनोभावों को जानने का प्रयास करता। साथ ही मनोवैज्ञानिक ढंग से उसके मन में जड़ जमायी प्रसव के सम्बन्ध में भय की प्रबल भावना को समाप्त करने का प्रयत्न करता। क्रमशः इस प्रयास से महिला का भय जाता रहा और निश्चित समय पर उसने एक स्वस्थ बालक को जन्म दिया।

इस घटना का विश्लेषण करते हुए कोलोरेडा विश्वविद्यालय के अनुसन्धानकर्त्ताओं ने बताया कि महिला के गर्भधारण करने के बाद प्रसव वेदना की भयपूर्ण कल्पनाओं के कारण शरीर से ऐसे विशेष प्रकार के हार्मोन पैदा होने लगते थे जो गर्भ स्राव में सहायक होकर गर्भपात के कारण बनते थे। इन विशेषज्ञों के अनुसार मस्तिष्क में अवस्थित पिट्यूटरी ग्लैण्ड जिसे मास्टर ग्लैण्ड कहा गया है, भावातिरेक से उत्पन्न होने वाले मानसिक व्यतिरेकों, भय, चिन्ता, आशंका आदि से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसका नियन्त्रण मस्तिष्क के हाइपोथेल्मस, गले में स्थित थाइराइड तथा एड्रीनल ग्रन्थि के स्रावों तथा यौन ग्रन्थियों के स्रावों पर भी होता है। पिट्यूटरी ग्रन्थि के प्रभावित होने से हारमोनल सिस्टम भी असन्तुलित हो उठता है जिसका दुष्प्रभाव विविध प्रकार के शारीरिक एवं मनोरोगों के रूप में दिखायी पड़ता है।

इस विषय पर कोलोरेडा विश्वविद्यालय में अनुसन्धान करने वाले विशेषज्ञों का कहना है कि अब तक जो जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं उनसे यह ज्ञात हुआ है कि भावनाओं के कारण होने वाली शारीरिक प्रतिक्रियाओं का रहस्य इसी पिट्यूटरी ग्रन्थि में छिपा है। जिसके सम्बन्ध में अभी चिकित्सा शास्त्र को बहुत थोड़ी जानकारी प्राप्त हो सकी है अधिकांश तो अविज्ञात हैं।

अमेरिकन 'हैण्डबुक ऑफ साइकियाट्री' पुस्तक में डॉ. मेलिटाश्मिडवर्ग ने कहा है कि जितनी आवश्यकता शरीर के आवश्यक अंगों की है उतनी ही मानसिक प्रतिरक्षा मेंटल डिफेंस की है। यह प्रतिरक्षा भावनाओं के ऊपर नियन्त्रण द्वारा ही सम्भव है। डॉ. इमान स्टीवेंसन ने अमेरिकन जर्नल ऑफ साइकियाट्री में लिखा है कि जिस प्रकार विभिन्न रोगों से लड़ने के लिए शरीर की प्रतिरोधक शक्ति एण्डीबॉडी उत्पन्न कर लेती है उसी प्रकार मन में भी विरोधी मानसिक तत्त्वों से लड़ने की सामर्थ्य विद्यमान है। मन भी विचार रूपी सूक्ष्म एण्टीबॉडी पैदा करने में समर्थ है पर उसकी सामर्थ्य का लाभ इसलिए नहीं मिल पाता कि भावातिरेक की स्थिति में मानसिक एण्टीबॉडी का बनना बन्द हो जाता है। यदि भावनात्मक सामंजस्य स्थापित किया जा सके तो दुःखदायी परिस्थितियाँ जो मनःविक्षोभ का कारण बनती हैं, वे भी मनुष्य के लिए वरदान सिद्ध हो सकती हैं। अपनी बात के समर्थन में डॉ. स्टीवेंसन कहते हैं कि मानसिक आघात की अवस्था में मानसिक रिआर्गेनाइजेशन की प्रक्रिया उसी प्रकार सम्पन्न होती है जिस प्रकार शारीरिक टूट-फूट की स्थिति में। ऐसी हालत में भावनात्मक सन्तुलन बना रहे तो कितने ही बच्चों का विकास असाधारण रूप से होता है। उदाहरणस्वरूप विश्व की मूर्धन्य प्रतिभाओं का जन्म एवं विकास प्रतिकूलताओं में हुआ। इसका कारण यह है कि प्रतिकूलताओं में आत्मविश्वास जगने एवं सुदृढ़ होने का अधिक अवसर मिलता है। जो प्रगति में असाधारण सहायक सिद्ध होता है।

सुप्रसिद्ध साइकियाट्रिस्ट डॉ. कार्ल मिनिंजर ने ऐसी अनेकों प्रतिभाओं का प्रमाण प्रस्तुत किया है जिन्हें भयंकर मानसिक वेदनाओं से होकर गुजरना पड़ा पर इसके बावजूद भी उनका मनोबल घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया। उदाहरणार्थ, विश्वविख्यात लेखक तथा विचारक जान स्टुअर्ट मिल, विलियम जेम्स, बर्नाडशा आदि को अपने आरम्भिक दिनों में गम्भीर मानसिक असन्तुलनों तथा नर्वस ब्रेक डाउन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। इनसे गुजरने के बाद उनकी प्रतिभा में निखार आया। फलस्वरूप वे सर्वोत्तम साहित्य लिखने में सफल हो सके। संस्कृत के उद्भट विद्वान कालीदास तथा मानसकार तुलसीदास की प्रतिभा भी इसी प्रकार आघात सहकर निखर कर सामने आयी।

अन्तःकरण की इस सर्वोत्तम प्रतिरक्षा व्यवस्था को अध्यात्म मनोविज्ञानियों ने आत्मश्रद्धा के नाम से सम्बोधित किया है। शब्दों में हेर-फेर से आधुनिक मनोविज्ञान इसे ही 'सेल्फ एक्सेप्टेन्स' कहता है। विलियम जेम्स तथा डॉ. मिनिंजर ने इसे अन्तःशक्ति का नाम दिया है। इन विद्वानों का मत है कि प्रसुप्त अथवा जागृत अवस्था में हर व्यक्ति के भीतर एक महान शक्ति विद्यमान है जिसका अवलम्बन यदि मनुष्य ले सके तभी मानसिक व्यतिरेकों के मूलभूत कारण भावनात्मक असन्तुलनों से बचाव सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहीं ! हमें भी सनकने का रोग तो नहीं ?

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चिन्ता और उन्माद की तरह सनक भी एक प्रकार का मनोविकार है। जब यह अपने पूरे उभार पर होती है तो व्यक्ति को इस कदर आवेशग्रस्त करती और विश्वासों की इतनी गहरी भूमिका में उतार देती है कि वह बेचारा सम्भव-असम्भव का भी भेद भूल जाता है, अपनी तर्क शक्ति गँवा बैठता और जो कुछ भी सनक ने उसे मान बैठने के लिए कहा था, उसी पर पूरा विश्वास करने लगता है।

घटना अमरीका की है। हैराल्ड बर्नी नामक एक उच्च शिक्षित व्यक्ति वाशिंगटन में अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ रहता था। वह एक धार्मिक प्रकृति वाला व्यक्ति था। नियमित रूप से गिरजाघर जाना और व्यवसाय से बचे समय का उपयोग समाज सेवा में करना उसकी सामान्य दिनचर्या थी। वह दो करोड़पति कंपनियों का चेयरमैन था। भौतिक विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त होने के कारण वह अक्सर विज्ञान विषय पर नई-नई बातें सोचता रहता। इसी कारण से कई छोटे-बड़े आविष्कार भी किये।

एक बार उसके मन में अंतर्ग्रही यात्रा करने की कल्पना आयी। वह कोई ऐसा यान विकसित करने का विचार करने लगा, जिससे विभिन्न ग्रहों की सैर की जा सके। दिन-रात ग्रह-नक्षत्रों की कल्पना में डूबे रहने के कारण वह चिन्तन की उस गहराई में उतर गया, जहाँ उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे शुक्र ग्रह के बारे में वह न केवल बहुत कुछ जानता ही है, वरन् कितनी ही बार वहाँ की यात्रा भी कर आया है। शुक्र के राजकुमार का वह मित्र है और ऐसा अंतरिक्ष यान बनाने की विधि जान चुका है, जिससे विभिन्न आकाशीय पिंडों की यात्रा सरलता और सुगमतापूर्वक कम खर्च में की जा सके।

राजकुमार यूसीलस उसका परम स्नेही है और एक ऐसी कम्पनी बनाने में उसका सहयोग प्राप्त कर चुका है, जो उसके कल्पित ''मैग्नेटिक फ्लक्स मोडुलेटर'' सिद्धान्त पर आधारित सस्ते, सरल और सुविधाजनक यान बनाया करेगी। बर्नी ने अपनी कल्पना-जगत की इस कम्पनी का नाम ''प्रोपल्शन रिसर्च लेबोरेटरी'' रखा। यह स्वयं को संसार का प्रथम शुक्र ग्रह का यात्री मानने लगा और अपनी दो यात्राओं का विस्तृत विवरण बताने वाली पुस्तक ''शुक्र ग्रह में दो सप्ताह'' भी लिखी। वह ११८ पृष्ठों वाली थी। उसकी सीमित प्रतियाँ ही छपवायीं गईं क्योंकि विषय अत्यन्त गोपनीय था और उसके 'लीक' हो जाने का खतरा था। उसके विचार में यदि ऐसा हुआ तो उसे भारी घाटा उठाना पड़ सकता है और जिस आविष्कार से अरबों-खरबों की संपति कमायी जानी है, उससे वह वंचित रह सकता है।

बर्नी अपनी सनक में पूरी तरह खो गया था। कल्पना और यथार्थता को भुला देने वाली उसकी मनःस्थिति बन गई थी। उसने आवेश में आकर अपने १ लाख ६९ हजार डालर के शेयर बेच डाले। आश्चर्य यह है कि जिस आत्मविश्वास के साथ सहयोगियों से उसने बातें कीं, उससे प्रभावित होकर अनेक सुसंपन्न लोग उस पर विश्वास करने लगे और उसके इस महत्त्वाकांक्षी अभियान में सम्मिलित हो गये। सनक का स्वरूप इतना बढ़ा-चढ़ा और योजनाबद्ध हो सकता है, इसका दूसरा उदाहरण कदाचित ही कहीं मिले।

बर्नी की सेक्रेटरी एञ्जेलिका भी इस योजना में शामिल हो गई। उसे क्या पता था कि जिस कार्य के लिए वह इतनी भाग-दौड़ कर रही है, वह एक सनकी मस्तिष्क की कभी भी पूरी न हो सकने वाली बेतुकी योजना है।

एक दिन बर्नी पर और भी विचित्र सनक सवार हुई। उसने शुक्रग्रह से अपनी सेक्रेटरी को राजकुमार यूसीलस की ओर से फोन कराया कि इस ग्रह पर आकर बर्नी बीमार पड़ गये हैं और अपने साथियों के नाम अमुक संदेश नोट कराते हैं, जो उन तक पहुँचा दिया जाय सेक्रेटरी ने वैसा ही किया। इसके पश्चात् कुछ दिन बाद उसके मरने का समाचार आ गया।

सेक्रेटरी ने सोचा इतनी महत्त्वपूर्ण योजना को अधूरा न रहने दिया जाय। इसके सफल हो जाने से अमरीका का भाग्य बदल सकता है, अतः उसने तत्कालीन राष्ट्रपति आइजन हावर से मिलकर सम्पूर्ण योजना समझा दी और बर्नी की दो शुक्र यात्राओं से लेकर अंतरिक्ष यान बनाने और ब्रह्माण्ड भ्रमण करने की उसकी आकांक्षा बता दी और सलाह दी कि वे स्वयं इस कार्य को हाथ में लें और आगे बढ़ायें।

राष्ट्रपति ने इस रोमांचक एवं अद्भुत समझे जाने विवरण से तनिक भी प्रभावित न होते हुए सम्पूर्ण प्रकरण को सी० आई० ए० के अधिकारियों को सौंप दिया। पुलिस ने छानबीन की, तो शुक्र पर मरा हुआ बर्नी धरती पर ही अर्ध विक्षिप्त अवस्था में जीवित पाया गया। वह वाशिंगटन से बहुत दूर इलिन्वॉय राज्य में एक साइनबोर्ड बनाने वाले के यहाँ पेट भरने जितने वेतन पर मजदूरी कर रहा था उसकी स्थिति फटेहाल भिखारियों जैसी हो गई थी। पुलिस ने उसे झूठी अफवाहें फैलाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

और धोखा-धड़ी करने के मामले में गिरफ्तार कर लिया। अदालत में उसके विरुद्ध मुकदमा दायर किया, जहाँ उसे दस साल की सजा सुनाई गई। वह अपनी पूरी सजा भी नहीं काट सका और कालकोठरी में ही मर गया।

हम कल्पना तो करें और योजनाएँ भी बनायें, पर ऐसी नहीं, जिसके लिए स्वयं को ही मृत घोषित करना पड़े। सनकी तो अर्धमृतकों की तरह जीते हैं। हमें जीवंतों की तरह जीना चाहिए और कुछ ऐसा कर गुजरना चाहिए, जो समाज के लिए अनुकरणीय साबित हो। ऐसा तभी सम्भव है, जब मस्तिष्क को शान्त-सजग रखते हुए बार-बार इस बात पर विचार करें कि जो कुछ किया जा रहा है, वह अन्तरंजित स्तर का उन्माद तो नहीं।

मस्तिष्क को असन्तुलित न रहने दें

मस्तिष्क मानवी सत्ता का ध्रुव केन्द्र है। उसकी शक्ति असीम है। इस शक्ति का सही उपयोग कर सकना यदि सम्भव हो सके तो मनुष्य अभीष्ट प्रगति-पथ पर बढ़ता ही चला जाता है। मस्तिष्क के उत्पादन इतने चमत्कारी हैं कि इनके सहारे भौतिक ऋद्धियों में से बहुत कुछ उपलब्ध हो सकती हैं।

मस्तिष्क जितना शक्तिशाली है, उतना ही कोमल भी है। उसकी सुरक्षा और सक्रियता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अनावश्यक गर्मी से बचाये रखा जाय। पेन्सिलीन आदि कुछ औषधियाँ ऐसी हैं जिन्हें केमिस्टों के यहाँ ठण्डे वातावरण में रेफ्रीजेटरों में सँभालकर रखा जाता है गर्मी लगने पर वे बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं। औषधियाँ ही क्यों अन्य सीले खाद्य पदार्थ कच्ची या पकी स्थिति में गरम वातावरण में जल्दी बिगड़ने लगते हैं। उन्हें देर तक सही स्थिति में रखना हो तो ठण्डक की स्थिति में रखना पड़ता है। मस्तिष्क की सुरक्षा के मोटे नियमों में एक यह भी है कि उस पर गरम पानी न डाला जाय, गरम धूप से बचाया जाय। बाल रखाने और टोपी पहनने का रिवाज इसी प्रयोजन के लिए चला है कि उस बहुमूल्य भण्डार को यथासम्भव गर्मी से बचाकर रखा जाय। सिर में ठण्डे प्रकृति के तेल या धोने के पदार्थ ही काम में लाये जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि मस्तिष्क को अनावश्यक उष्णता से बचाये रहने की सुरक्षात्मक प्रक्रिया को बहुत समय से समझा और अपनाया जाता रहा है।

यह बाह्योपचार हुआ। वस्तुतः मस्तिष्कीय सम्पदा खोपड़ी के भीतर है। बाहरी गर्मी के ऋतु प्रभाव से तो हड्डी से ऊपर का भाग ही बचाया जा सकता है। भीतरी क्षेत्र में अनावश्यक गर्मी न बढ़ने देने की बात मुख्य है। बाह्य सुरक्षा के लिए तो प्रकृति ने भी मजबूत तिजोरी जैसी खोपड़ी पहले से ही रच दी है। सृष्टा को पता था कि जो भीतरी अवयव जितने अधिक महत्त्वपूर्ण हैं उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध उतनी ही अधिक अच्छी तरह किया जाना है। हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, जिगर जैसे अति महत्त्वपूर्ण अवयवों को हड्डियों के मजबूत खोखले में बन्द करके रखा गया है। इन सबमें मस्तिष्क की उपयोगिता और कोमलता सर्वोपरि है। इसलिए उसे खोपड़ी की मजबूत डिब्बी में इस तरह सँभालकर रखा गया है जिसे खजाने की तिजोरी या मोती की सीप, राजा की किलेबन्दी की उपमा दी जा सकती है।

मस्तिष्क का बहुमूल्य यन्त्र तभी ठीक तरह काम कर सकता है जब उसे शान्तिमय वातावरण में, एयर कण्डीशन कमरों जितने तापमान में काम करने दिया जाय। मर्यादा से अधिक गरम रहने पर इन्जन, मोटर या अन्य मशीनें अपना काम करना बन्द कर देती हैं ठीक यही स्थिति मस्तिष्क की है। उससे ठीक काम लेना हो तो सन्तुलित परिस्थितियाँ बनाये रहना आवश्यक है। फोटो फिल्में अनावश्यक गर्मी सहन नहीं कर पातीं। इसी प्रकार मस्तिष्क भी उत्तेजना एवं आवेश की स्थिति उत्पन्न होने पर एक प्रकार से अपना काम करना ही बन्द कर देते हैं। यदि कुछ करते भी हैं तो वह उल्टा होता है। वह उल्टापन लाभ के स्थान पर हानि ही उत्पन्न करने लगता है।

मस्तिष्क को बाहरी गर्मी, तेज धूप, गरम पानी किन्हीं रसायनों की पड़ती है किन्तु भीतरी गर्मी उत्पन्न होने का कारण उत्तेजनाएँ होती हैं। उसकी मात्रा जितनी बढ़ेगी उतनी ही मानसिक संरचना को स्थायी रूप से हानि पहुँचेगी और सामने पड़े कामों को ठीक तरह कर सकना उसके लिए सम्भव न रहेगा। देखा जाता है कि कोई आवेश चढ़ने पर आदमी अर्ध विक्षिप्त जैसी स्थिति में जा पहुँचता है। उसकी कल्पना, निर्णय, बचन, हरकतें सब कुछ विचित्र हो जाती हैं। क्रोध का आवेश जिस पर चढ़ रहा हो उसकी गतिविधियों पर ध्यानपूर्वक दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा, पागलपन में अब बहुत थोड़ी ही कमी रह गई है। अधिक क्रोध आने पर मस्तिष्कीय द्रव एक प्रकार से उबलने लगता है और यदि उसे ठण्डा न किया जाय तो मानसिक रोगों से लेकर हत्या, आत्म-हत्या जैसे क्रूर कर्म कर बैठने जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोध का आवेश शरीर पर क्या असर डालता है और बुद्धि को कैसा भ्रष्ट कर देता है उसके उदाहरण हम सब आये दिन अपने आस-पास ही देखते रहते हैं। गुस्से से तमतमाया चेहरा राक्षसों जैसा बन जाता है। आँखें, होठ, नाक आदि पर आवेशों के उभार प्रत्यक्ष दीखते हैं। मुँह से अशिष्ट शब्दों का उच्चारण चल पड़ता है। रक्त प्रवाह की तेजी से शरीर जलने लगता है। हाथ-पैर काँपते और रोंये खड़े होते देखे जाते हैं। ऐसा व्यक्ति स्वयं एक समस्या बन जाता है। ऐसी दशा होने पर हितैषी लोग सबसे पहला काम यह करते हैं कि आवेशग्रस्त को येन-केन प्रकारेण शान्त करते हैं। जिस कारण उत्तेजना आई थी उसका निवारण करने पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना कि आवेश ठण्डा करने पर। किसी भी प्रतिकूलता में उतनी हानि नहीं होती जितनी कि आवेशग्रस्तता से। इस मोटी जानकारी से हर कोई परिचित रहता है इसलिए हितैषियों का प्रथम कार्य गुस्सा ठण्डा करना होता है। अन्य बातें पीछे सोची जाती हैं। वैज्ञानिक तथ्य यह है कि एक घण्टे का क्रोध एक दिन के तेज बुखार से भी अधिक जीवनी शक्ति का विनाश करता है।

रक्तचाप में व्यतिरेक दो प्रकार के होते हैं—एक ऊँचा दूसरा नीचा। उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) में बेचैनी बढ़ने के कारण कष्ट होता है। निम्न रक्तचाप (लो ब्लड प्रेशर)—में लक्षण तो भिन्न होते हैं, पर कष्ट उससे भी उतना ही होता है। लो ब्लड प्रेशर का मरीज भारी कमजोरी अनुभव करता है और अपने को अपंग, असहाय जैसी स्थिति में पाता है। इन दो ही प्रकार के व्यतिरेकों में रोगी की कार्यक्षमता एवं मनःस्थिति पर हानिकारक प्रभाव लगभग एक जैसा ही होता है।

क्रोध की उच्च रक्तचाप से और खिन्नता की निम्न रक्तचाप से तुलना की जा सकती है। क्रोध वर्ग में द्वेष, घृणा, आक्रमण, विनाश, जैसे क्रूर प्रकृति के विचार एवं कृत्य गिने जा सकते हैं। खिन्नता वर्ग में निराशा, चिन्ता, शोक, भय, संकोच जैसी निष्क्रियता उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों की गणना होती है। इन्हें ज्वार-भाटा के समतुल्य और अस्थिरता, अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला कहा जा सकता है। उफनते समुद्र में तैरना कितना कठिन होता है इसे सभी जानते हैं।

शोकग्रस्त, भयभीत, निराश व्यक्ति की मनोदशा उसके अच्छे खासे स्वास्थ्य को देखते-देखते तोड़-मरोड़कर रख देती है। चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है। सही आवाज तक नहीं निकलती। लगता है कि शरीर को करंट मार गया, कुछ करते-धरते नहीं बनता है। भूख-प्यास गायब हो जाती है। नींद आने में भारी कठिनाई पड़ती है। क्रोध में भी लगभग ऐसा ही होता है अन्तर इतना भर रहता है कि खिन्नता में बर्फ में जमने और गलने जैसी स्थिति होती है तो उत्तेजना में आग से जलने-उबलने जैसी। सामान्य स्थिति तो दोनों ही दशाओं में नष्ट हो जाती है और न केवल मस्तिष्क वरन् साथ-साथ शरीर भी अपनी साधारण गतिविधियाँ जारी रख सकने में असमर्थ बन जाता है।

मस्तिष्कीय क्षमता एवं कुशलता बढ़ाने का महत्त्व सभी जानते हैं और इसके लिए अध्ययन, परामर्श, सम्पर्क अनुभव सम्पादन, अभ्यास जैसे कितने ही साधन जुटाते हैं। प्रसन्नता से मानसिक उर्वरता बढ़ने की बात को ध्यान में रखते हुए मनोरंजन के लिए कई ऐसे कार्य करते हैं जिनमें समय और पैसा काफी लग जाता है। इन रचनात्मक प्रयोजनों से परिचित होते हुए भी न जाने इस तथ्य को क्यों भुला दिया जाता है कि आवेश एवं अवसाद जैसी अव्यवस्था फैलाने वाली मनःस्थिति उत्पन्न न होने दी जाय। लाभ उपार्जन करने की बात का जितना महत्त्व है उतना ही हानि न होने देने का भी। एक ओर लाभ कमाया जाय, दूसरी ओर हानि बढ़ती जाय तो फिर अन्ततः व्यवसाय घाटे में फँसता चला जायेगा और दिवालिया बनने की नौबत आ जायेगी।

आवेशों का शरीर पर क्या असर होता है; इसका पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि सामान्य कार्यक्षमता को उनके कारण भारी आघात पहुँचता है। आँख, कान, नाक, जीभ अपना काम मुश्किल से ही आधा अधूरा कर पाते हैं। जीभ का स्वाद चला जाता है। पेट की भूख उड़ जाती है। कान कुछ का कुछ सुनते हैं। आँखों से सामने गुजरने वाली घटनाओं में से बहुत कम की स्मृति रहती है। तापमान बढ़ता है, रोमांच खड़े होते हैं, साँस तेज चलती है, हृदय की धड़कन और रक्त प्रवाह की तेजी बढ़ती है। यह सारे लक्षण मिलकर जीवनी शक्ति का बड़ी मात्रा में विनाश करते हैं। यह तो यदा-कदा की बात हुई। यदि यह असन्तुलन आदत बन जाय, स्वभाव में सम्मिलित हो जाय तो समझना चाहिए कि व्यक्तित्व की स्थिरता और सुखद सम्भावना समाप्त ही हो चली। ऐसे असन्तुलनग्रस्त मनुष्य प्रायः अर्ध-विक्षिप्तों जैसी स्थिति में जिन्दगी गुजारते हैं। पग-पग पर उपहासास्पद बनते, तिरस्कृत होते और असफल रहते देखे जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक असन्तुलन को परिस्थितिजन्य माना जाता है और कहा जाता है-अपना क्या कसूर है, घटनाक्रम ही ऐसा बन गया है कि उत्तेजना या खिन्नता का शिकार बनना पड़ा। तर्क सीधा-सा लगता है और सही भी प्रतीत होता है किन्तु वास्तविकता वैसी है नहीं। एक ही परिस्थिति की भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न प्रतिक्रिया देखी जाती है। तनिक-सी प्रतिकूलता आने पर एक व्यक्ति बेतरह घबराता और उत्तेजित होते देखा जाता है। जबकि दूसरा व्यक्ति ठीक वैसी ही अथवा उससे भी अधिक प्रतिकूलता में अपना सन्तुलन यथावत् बनाये रखता है। उसे जीवन क्रम का साधारण-सा उतार-चढ़ाव मानता है और घबराने की तनिक भी आवश्यकता अनुभव नहीं करता। उसकी प्रतिक्रिया गड़बड़ी को सुधारने के लिए, उपाय सोचने, काम करने और साधन जुटाने में संलग्न होने की होती है। घबराहट उत्पन्न करके असन्तुलन की नई विपत्ति को न्योत बुलाना उसे मूर्खतापूर्ण लगता है। अस्तु स्वयं परेशान होने और दूसरों को परेशान करने वाली अस्त-व्यस्तता पर वह अपना सहज विवेक से नियन्त्रण कर लेता है। इन घबराने और बिना घबराने वाले दोनों व्यक्तियों के सामने परिस्थिति एक जैसी होते हुए भी मनःस्थिति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है। यह आत्म नियन्त्रण का, दृष्टिकोण के परिमार्जन का प्रतिफल है। एक उससे वंचित रहता और दुःख पाता है। दूसरा उसका संचय करके हँसता-मुस्कराता रहता है और आये दिन उत्पन्न होती रहने वाली प्रतिकूलताओं को ऐसे ही मजाक-मसखरी में उपेक्षापूर्वक उतार ही नहीं देता। दूरदर्शी विवेक को अक्षुण्ण बनाये रहकर उनका समाधान भी सरलतापूर्वक कर लेता है।

मस्तिष्क को ठण्डा बनाये रहना, उस पर आवेशों का आक्रमण न होने देना एक महत्त्वपूर्ण साज सँभाल है। घड़ी, साइकिल आदि छोटी-छोटी मशीनों की साज-सँभाल रखी जाती है तो मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त होने से क्यों नहीं बचाया जाता है जबकि दवाओं और खाद्य पदार्थों को ठण्डा रखा जाता है। ठण्डी छाया में बैठकर काम करने का प्रबन्ध किया जाता है तो मस्तिष्कीय शान्ति बनाये रखने की आवश्यकता क्यों न समझी जाय। सन्तुलन बनाये रहना एक अत्यन्त ही बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय है जिसमें रहना सुखी रहने और सफल होने के दोनों ही उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

आत्महत्या अर्थात् अचेतन की विकृति

मनुष्य की जिजीविषा साधारणतया अदम्य मानी जाती है। हम जीवित रहना चाहते हैं और जीवन को प्यार करते हैं। उसकी सुरक्षा के लिए तरह-तरह के साधन जुटाते हैं। मरण से सबको भय लगता है। प्राण-संकट की घड़ी आने पर पशु-पक्षी तक सब कुछ कर गुजरने पर उतारू हो जाते हैं। आत्मरक्षा के प्रयत्नों में सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को संलग्न देखा जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि न केवल मनुष्य, वरन् हर एक जीवधारी जीवन सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिए अपनी सूझ-बूझ और स्थिति के अनुसार हर सम्भव उपाय करता है। जीवधारी को जीवन से कितना प्यार है, इसकी झाँकी दृष्टि पसारकर कहीं भी की जा सकती है, इतने पर भी मनुष्य तनिक से कारणों से उसे गँवाने और आत्मघात करने पर कटिबद्ध हो जाता है।

जीवन जैसी बहुमूल्य सम्पदा जिस कारण निरर्थक ही नहीं, असह्य बनती जा रही है, वह है मानसिक विक्षोभ। देखने में यही प्रतीत होता है कि अमुक घटनाओं या परिस्थितियों ने अमुक व्यक्ति को आत्मघात करने के लिए विवश कर दिया, पर वास्तविकता कुछ दूसरी हो होती है। इन लोगों को जो स्थिति असह्य प्रतीत हुई और घबराकर यह अवांछनीय कृत्य कर बैठे, वह वस्तुतः उतनी अधिक जटिल थी नहीं। उन्हीं परिस्थितियों को असंख्य लोग सहन करते हैं और कुछ तो इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें जीवन का एक सहज स्वाभाविक अंग मानकर संतोषपूर्वक दिन गुजारते हैं। यदि कठिनाइयाँ सचमुच इतनी असह्य होतीं तो फिर किसी के लिए भी उनमें रह पाना कितना कठिन होता ?

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार प्रति एक लाख में ३५.०९ व्यक्ति डेनमार्क में, ३३.७२ व्यक्ति स्विट्जरलैण्ड में, २३.३५ व्यक्ति फीनलैण्ड में, १९.७४ व्यक्ति स्वीडन में, १५.५२ व्यक्ति अमेरिका में, १४.८३ व्यक्ति फ्रांस में, १३.४३ व्यक्ति इंग्लैण्ड में, १३.०३ व्यक्ति आस्ट्रेलिया में, ११.४० व्यक्ति कनाडा में आत्महत्या से मरते हैं।

एमील डर्कहीम अपनी पुस्तक 'ली सुसाइड' में लिखते हैं कि बीसवीं सदी में जितनी आत्महत्याएँ हुई हैं, उतनी संसार में इससे पूर्व कभी नहीं हुईं। वे कहते हैं कि वास्तव में आत्महत्या का सीधा सम्बन्ध मानवी विकास से है। समय के साथ-साथ बौद्धिक विकास जैसे-जैसे होता गया, मानवी जटिलताएँ भी बढ़ती गईं। बीसवीं सदी में वह विकास जब अपने चरम पर है, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उससे जुड़ी हुई समस्याएँ भी उजागर हुईं हैं। उनके अनुसार आज के सभ्य समाज की सबसे बड़ी कठिनाई मानसिक अस्वस्थता सम्बन्धी है। यह अस्वस्थता ही आत्महत्या जैसे कठोर निर्णय का कारण बनती है। वे कहते हैं कि जंगली कबीलों में रहने वाले वनवासी चूँकि सभ्य समाज से दूर रहते हैं, इसलिए उनमें किसी प्रकार के मानसिक रोग नहीं पाये जाते, फलतः आत्मघात जैसे मामले भी उस समुदाय में कभी प्रकाश में नहीं आते।

ऐसी बात नहीं कि साधारण पढ़ा-लिखा और सामान्य स्तर का नागरिक ही अपघात करता है। कई बार विद्वान और ज्ञानवान समझे जाने वाले लोग भी इस कुकृत्य के शिकार हो जाते हैं। इनमें विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार, संगीतकार से लेकर राजनेता और वैज्ञानिक तक सम्मिलित हैं।

जर्मन विद्वान गेटे आत्महत्या करना चाहते थे, इसलिए एक धारदार चाकू बाजार से खरीद लाये। बहुत दिनों तक वे उसे तकिये के नीचे रखे रहे, पर हिम्मत नहीं जुटा सके, इसलिए अन्ततः अपघात का विचार त्याग दिया।

वायरन जिन दिनों 'चाइल्ड हेराल्ड' के लेखन में व्यस्त थे, उन दिनों अक्सर उन पर आत्महत्या की सनक सवार रहती, पर माँ का प्यार याद कर वे वैसा न कर सके।

यूनान के महान दार्शनिक डायोजिनीज अपने हाथों फाँसी लगाकर मरे थे। कहा जाता है कि संसार को निजी बनाने का सपना देखने वाले हिटलर ने अपनी पिस्तौल से गोली मारकर आत्महत्या कर ली थी।

'मृच्छकटिक' के लेखक शूद्रक आग में जल मरे थे। 'जानकी हरण' महाकाव्य के रचनाकार सिंहल देश के राजा की मृत्यु का शोक न सह सके और चिता में जल मरे। चीनी साहित्यकार लाओत्से ने भी अपनी मौत स्वयं बुलायी थी। लैटिन कवि एम्पेदोक्लीज ने ज्वालामुखी में कूदकर आत्मघात किया था। लुकेशियस ने अपने को चिरस्मरणीय बनाने के लिए ऐसा किया था। महाकवि चैटरटन ने दरिद्रता से पीछा छुड़ाने के लिए विषपान करना उपयुक्त समझा। गोर्की ने पेट में पिस्तौल चलाकर उसे विदीर्ण कर डाला। आस्ट्रियाई साहित्यकार स्टीफेन ज्विग अपने अपघात का कारण बताते हुए अपने पीछे एक पुर्जा छोड़ गये थे ''अब संघर्षों से टकराने की मेरी शक्ति चूक गई है। अशक्त जीवन का अन्त कर लेना मुझे अधिक अच्छा जँचा।''

चित्रकार लाडत्रे ने अस्पताल की चारपाई पर पड़े-पड़े ही स्वयं को गोली मार ली। एक अन्य चित्रकार बानगाँग ने भी अपना अन्त ऐसे ही किया। राबर्ट क्लाइब ने अपने जीवन में तीन बार आत्महत्या का प्रयास किया पर निशाना चूक जाने से हर बार वे बच गये।

मूर्धन्यों में भी ऐसे कम नहीं हैं, जिनने तनिक-सी परेशानी से उद्विग्न होकर आत्मघात कर लिया हो ऐसे लोगों में सेफो, डेमोस्थनीज, ब्रूटस, केसियस, डेमोक्लीज, हनीवाल, बर्टन, आर्थर कोयेसलर जैसे विश्व प्रसिद्ध व्यक्तित्व सम्मिलित हैं।

आत्महत्या के तरीकों में अगणित प्रकार के उपाय अपनाये जाते रहे हैं। इनमें पानी में डूब मरना, ऊँचाई से कूदना, विष पान करना, फाँसी लगाना, आत्मदाह करना, नस काटकर सम्पूर्ण रक्त को धीरे-धीरे निकाल देना आदि अधिक प्रचलित हैं। एक दुःख को हल्का करने के लिए दूसरा उससे बड़ा दुःख मोल लेना भी एक उपाय सोचा जाता रहा है, यद्यपि वह इच्छित लाभ प्राप्त करने में तनिक भी सहायक नहीं होता। अताई इलाज में एक उपचार यह भी था कि किसी के पेट में दर्द हो, तो लोहे की गरम सलाख से उसकी छाती दाग दी जाय। इससे जलने का कष्ट इतना बढ़ जाता है कि रोगी पेट के दर्द की बात भूल जाता है। लगभग इसी स्तर का दुस्साहस यह है कि अमुक चिन्ता अथवा आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या जैसी बड़ी आपत्ति को अपना लिया जाय।

जिस प्रकार शरीर में अनेक प्रकार के घातक विषाणु प्रवेश करके विविध लक्षणों वाले रोग उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार मनःक्षेत्र में भी इसी तरह की कोई विकृतियाँ अपनी जड़ें जमा लेती हैं और परिपूर्ण उन्माद न सही, उससे मिलते-जुलते ही विघातक मानसिक रोग उत्पन्न करती हैं।

डिमेंशिया प्रिकोक्स अर्थात् किशोरावस्था की हिंसात्मक सनक, डिमेंशिया पैरालिटिख अर्थात् आवेश का सामयिक दौरा, मेलनकोलिया अर्थात् अवसाद् ग्रस्तता, न्यूरस्थेनिया अर्थात् स्नायुविक असंतुलन जैसी कितनी ही विकृत मनःस्थितियाँ ऐसी हैं, जो विवेक को अस्त-व्यस्त करके रख देती हैं और समयानुसार जो भी उभार आता है, उसी में मस्तिष्क इतनी तीव्रगति से बहता चला जाता है जिसमें अपने को सँभाल सकना कठिन पड़ता है।

दूसरों के क्षोभ को शान्त करने के लिए स्वयं दुःखी होने की स्थिति अपना लेना भी ऐसा ही विचित्र चिन्तन है, जिसे अक्सर सहानुभूति एवं सहायता के लिए अपनाया जाता है। अभिभावकों के कष्ट-निवारण के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह योग्य कन्याओं का इसलिए आत्मघात कर बैठना कि इससे उनके माता-पिता को अर्थ चिन्ता से छुटकारा मिल जायेगा, ऐसा ही दुस्साहस भरा कदम है। इनमें आदर्शवाद, उदारता, सहानुभूति जैसे तत्त्वों का पुट तो होता है, पर यह स्मरण नहीं रहता कि इस कदम से अपना बहुमूल्य जीवन ही नष्ट नहीं होगा, अपितु जिनके लिए यह सब किया जा रहा है, उनकी कठिनाई, चिन्ता एवं विपत्ति और अधिक बढ़ जायेगी।

प्राचीनकाल में आत्मघात को धार्मिक प्रशंसा प्रदान करने का भी प्रचलन रहा है। संन्यासियों की स्वाभाविक मृत्यु की अपेक्षा स्वेच्छा मरण की सराहना की गई है। बौद्ध और जैन धर्मों में भी मृत्यु सम्बन्धी ऐसे विधानों का उल्लेख उनके धर्मग्रन्थों में मिलता है। पाण्डवों का स्वर्गारोहण, मंडन मिश्र का तुषाग्नि संदाह, ज्ञानेश्वर की जीवित समाधि, रामतीर्थ की जल समाधि, कुमारिल भट्ट का आत्मघाती प्रायश्चित विधान जैसी अनेकानेक घटनाएँ इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं, जिन्हें सराहा ही जाता है। चित्तौड़ की रानियों का सामूहिक आत्मदाह (जौहर) और सतीप्रथा ऐसे कृत्य हैं, जिन्हें महिमामंडित किया जाता रहा है।

उपरोक्त घटनाएँ कुछ विशेष परिस्थितियों में किन्हीं विशेष उद्देश्य को लेकर घटित हुईं अतः वह साधारण नहीं, असाधारण कही जायेंगी। सबके पीछे तो नहीं पर कुछ के पीछे ऊँचा आदर्श और महान उद्देश्य था, इसलिए आत्महत्या जैसी लगने वाली यह घटनाएँ भी तब सराही गईं। आज उनकी लकीर पीटना और उन्हें परम्परा का स्वरूप देना किसी भी प्रकार समझदारी नहीं कही जायेगी। छोटी-छोटी बातों पर अथवा राजनैतिक माँगों को मनवाने के लिए आत्मदाह कर लेना, पति के मरने के उपरान्त पत्नी को जिन्दा जलने के लिए विवश करना, जल समाधि लेना सभ्य जन और सभ्य समाज का लक्षण नहीं, अपितु असभ्यता का चिह्न कहना चाहिए। इसके पीछे भारत की मूल संस्कृति नहीं, वरन् सामयिक विचार-विकृति ही कारणभूत मानी जायेगी।

आत्महत्या को भी दूसरों की हत्या के समान ही गर्हित कर्म माना जा सकता है। दूसरे देशों में पुराने जमाने से इसे बहुत बुरा कहा जाता था और मरने के उपरान्त भी यह कुकृत्य करने वाले की भर्त्सना की जाती थी।

योरोप में उन दिनों आत्महत्या करने वालों के प्रति बहुत अनुदार दृष्टिकोण था। उनकी लाशें सड़कों के आस-पास कूड़े के ढेर में दबा दी जातीं और उसके आगे भयंकर आकृतियाँ खड़ी कर दी जाती थीं ताकि मरने वाले की निन्दा हो और जो ऐसा करना चाहते हों, वे हतोत्साहित हों। इस प्रचलन को बदलने में डेविड ह्यूम, वाल्टेयर, रूसो जैसे दार्शनिकों ने आवाज उठायी अन्ततः उसे समाप्त करवा दिया। इसके पीछे उनका तर्क था कि आदमी को जीने की तरह मरने की भी आजादी होनी चाहिए।

कुरान में दूसरों की हत्या करने से भी अधिक जघन्य पाप आत्महत्या को बताया है। यहूदी धर्म में यह निन्दनीय कर्म करने वाले के लिए शोक मनाने और उसकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करने का भी निषेध है। ईसाई धर्म में भी इसे घृणित पातक बताया गया है। ११वीं सदी में इंग्लैण्ड में एक कानून बना था, जिसमें आत्महत्या करने वालों की सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी और उसके शव को किसी ईसाई कब्रिस्तान में धार्मिक विधि से दफनाया नहीं जा सकता था।

आत्महत्या का प्रयत्न करने वालों को रोगी माना जाय या अपराधी ? इस प्रश्न पर आज भी मनःशास्त्रियों, मानवविज्ञानियों और विधिवेत्ताओं के बीच गम्भीर मतभेद है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि ऐसे लोगों का उचित स्थान जेलखाना नहीं, पागलखाना है, जबकि विधिवेत्ताओं की दलील है कि यदि हम किसी को दारुण वेदनाओं से मुक्ति नहीं दिला सकते, तो उसे ऐसी मौत मरने का अधिकार होना चाहिए जिसमें वह पीड़ा झेलने की अपेक्षा राहत पा सके। नृतत्ववेता मध्यवर्ती मार्ग अपनाते हुए उन्हें करुणा का पात्र घोषित करते हैं और 'यूथेनेसिया' के नाम पर उन पर सहानुभूति प्रकट करते हुए समाज को उनकी समस्याओं को हल करने का सुझाव देते हैं।

शोध अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि जिन-जिन देशों में आत्मघात की दर उच्च है, वहाँ-वहाँ मद्यपियों की संख्या भी उसी अनुपात में ज्यादा है। अनुसन्धानकर्त्ताओं का कहना है कि अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड, स्वीडन और डेनमार्क एवं फ्रांस में विश्व की सर्वाधिक आत्महत्याएँ होती हैं और मद्यपान की लत वहाँ उसी अनुपात में देखी गई है। इससे यह स्पष्ट है कि आत्महत्या का कारण शारीरिक कम मानसिक अधिक है।

एरिक फ्रॉम अपनी पुस्तक 'दि सेन सोसायटी' में एक स्थान पर लिखते हैं कि योरोप के सबसे अधिक शान्त, समृद्ध और लोकतान्त्रिक कहे जाने वाले राष्ट्रों एवं विश्व के सर्वाधिक सम्पन्न देश अमेरिका की मानसिक स्वस्थता के क्षेत्र में जो वर्तमान अवस्था है, उसे दयनीय ही कहना चाहिए। वे लिखते हैं कि इन राष्ट्रों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक उन्नयन का इतना ही प्रयोजन है कि उनका भौतिक जीवन सुखमय हो, सभी सम्पत्तिवान हों, स्थिर लोकतान्त्रिक व्यवस्था हो और वह शान्तिपूर्ण हो। वे कहते हैं कि जिन देशों ने इस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया अथवा जो इसकी प्राप्ति के सन्निकट पहुँच गये, वहाँ मानसिक असंतुलन की गम्भीर समस्याएँ भी उठ खड़ी हुई हैं।

एरिक फ्राम के इस निष्कर्ष से स्पष्ट है कि आत्महत्या के मूल में संव्याप्त मानसिक असंतुलन का सबसे प्रमुख कारण समृद्धि है। सम्भवतः इसी कारण से अध्यात्मवादी चिन्तन में धनोपार्जन की छूट तो है, पर धन-संग्रह पर रोक लगायी गई है। यदि यह बात सही है कि वर्तमान मानसिक अस्वस्थता की जड़ में सम्पदा की प्रधान भूमिका है, तो अर्थवेत्ताओं, नृत्त्वविज्ञानियों और समाजशास्त्रियों को मिलजुलकर कोई ऐसा हल वर्तमान संदर्भ में ढूँढ़ना चाहिए, जिससे समाज भी सम्पन्न बना रहे और मनुष्य भी मानसिक दृष्टि से विपन्न नहीं कहलाये, तभी सही अर्थों में २१वीं सदी हमारे लिए उज्ज्वल भविष्य लेकर आ सकेगी, अन्यथा नहीं।

अर्थ के साथ-साथ समाज की अवांछनीय परिस्थितियाँ भी मनुष्य को विक्षुब्ध करती हैं। स्नेह-सौजन्य का अभाव, नैतिकता का गिरा स्तर, शोषण, उत्पीड़न, ठगी, विश्वासघात, बेकारी, हानि, बर्बादी जैसे कितने ही कारण मानव को दुःखी बनाते हैं। सामाजिक कुरीतियों के कुचक्र में कितनों को ही पिसना पड़ता है। इन प्रचलनों को बन्द करना सरकार और समाज का काम है। समाज की संरचना ऐसी होनी चाहिए, जिसमें हर व्यक्ति को निर्वाह, प्रगति और सुरक्षा के समुचित साधन प्राप्त हों, कोई किसी के भी साथ अन्याय और अनीति नहीं बरत सके। इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी होना चाहिए कि स्वास्थ्य-रक्षा और अर्थ-उपार्जन की तरह ही चिन्तन तंत्र का सही उपयोग कर सकने की क्षमता भी सर्वसाधारण में उत्पन्न की जाय। इसके लिए मानसिक प्रशिक्षण की एक समर्थ प्रणाली खड़ी की जानी चाहिए। इसके बिना आत्महत्या जैसे व्यापक संकट उत्पन्न करने वाले मनोरोगों का भड़काया हुआ दावानल रोका न जा सकेगा।

जीवन जीने के लिए हम सबको मिला है, मरने के लिए नहीं, यह तथ्य हर स्थिति में याद रखा जाना चाहिए। अनेकानेक योनियों में भटककर मानव योनि में जीव जब आता है तो इसलिए कि कर्म करते हुए अपनी मुक्ति का पथ-प्रशस्त कर ले। किन्तु विक्षुब्ध मनःस्थिति में प्रेत-सा जीवन जीते हुए आत्मघाती प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होना उसे कदापि शोभा नहीं देता। सृष्टा के राजकुमार के रूप में मनुष्य को जो पदवी मिली है, उसका तिरस्कार न कर जीवन चुनौती के रूप में, खिलाड़ी की तरह जिया जाय तो हँसते-हँसाते, पुण्य कमाते औरों की सेवा कर संतोष प्राप्त करते हुए यह जीवन जिया जा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

मनःस्थिति को सुव्यवस्थित बनायें

मानसिक अस्तव्यस्तता की स्थिति तनाव कहलाती है। इसी के चिह्न सिर में दर्द, चक्कर आना, जी घबराना, अनिद्रा, बेचैनी, उत्तेजना आदि के रूप में दिखाई देते हैं। निद्रा, शांति और विश्राम के लिए मानसिक शिथिलता जरूरी है। पर जब मानसिक स्थिति तनावग्रस्त हो तो थकान मिटाने वाली नींद कैसे आये ? काम के दबाव से उत्पन्न तनाव तो विश्राम से दूर किया जा सकता है, पर चिन्ताओं से उत्पन्न होने वाला तनाव विश्राम की स्थिति उत्पन्न होने नहीं देता। फलस्वरूप स्थिति लगातार बिगड़ती जाती है।

मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन के अनुसार तनाव से बड़े शहरों के निवासी देहात में रहने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक ग्रसित पाये जाते हैं। इसके कारण के बारे में उनका मानना है, गाँवों का जीवन सीधा और सरल है जबकि शहरों का जीवन मशीन बन कर रह गया है। जीवन शैली का यह भेद बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक को साधारण कपड़े और साधारण भोजन में सन्तोष है, तो दूसरा अधिक से अधिक चमक-दमक बटोरना चाहता है। कामनाओं की बाढ़ से मन चिन्ताओं और विक्षोभों में डूबा रहे यह स्वाभाविक है। सितार के तारों को अधिक कड़ा करते जायें तो वे टूट जायेंगे। इसी प्रकार मनःस्थिति यदि अव्यवस्थित व तनावपूर्ण रहे तो उसकी प्रतिक्रिया समूचे जीवन को तोड़-मरोड़कर रख देती है।

मनोवैज्ञानिक आर. एस. लाजरस ने अपनी रचना ''साइकोलॉजिक स्ट्रेस एण्ड द कोपिग प्रोसेस'' में इसका प्रमुख कारण खुद की मनःस्थिति एवं सामाजिक वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों में होने वाले उतार-चढ़ाव को बताया है। यह उतार-चढ़ाव मुख्य रूप से दो तथ्यों पर टिका है। पहला व्यक्ति की समाज में माँग, दूसरा माँग के प्रति उसकी स्वयं की मानसिकता। अधिकांश लोग समाज से असीमित माँगें रखते हैं, जबकि समाज को देने की क्षमता सीमित है। ऐसी दशा में स्वाभाविक है कि मनःस्थिति अस्त-व्यस्त हो चले।

इच्छाओं की बाढ़ को रोककर परिस्थितियों से तालमेल बिठाना हमें सीखना होगा। लोगों का साथ निभाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की कला में हमें आनी चाहिए। आदमी मिट्टी के खिलौने नहीं हैं जो जब चाहे जहाँ हटाये बदले जा सकें। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके साथ हमें इच्छा या अनिच्छा से रहना ही पड़ेगा। पड़ौस में जो लोग बसे हैं उनके घर को नहीं उखाड़ फेंका जा सकता और न ही अपने खेत-खलिहान को छोड़कर किसी दूर देश में घोंसला बनाया जा सकता है। पड़ौसी जैसे भी हैं, आखिर रहना तो उन्हीं के साथ पड़ेगा। जरूरी नहीं वे समझाने-बुझाने से हमारी मन-मर्जी के अनुसार चलने लगें। यही बात कुटुम्बियों, परिवारीजनों के सम्बन्ध में भी है। बूढ़े माँ-बाप, जवान भाई-भावज, सयाने लड़की-लड़के, धर्मपत्नी इन सबकी आदतें अपनी मर्जी के अनुरूप हों, यह कोई जरूरी नहीं। जिस तरह हर आदमी की शक्ल में अन्तर होता है, उसी प्रकार उसका व्यक्तित्व भी न जाने कितनी अच्छी-खराब विशेषताओं से जुड़ा रहता है। कुछ इनमें से बदलती रहती हैं। अच्छे बुरे बन जाते हैं और बुरे अच्छे। अरुचि की स्थिति पैदा होते ही उन्हें हटा दिया जाय, खुद हट जायँ या अपनी मर्जी का सुधार कर लिया जाय। ये तीनों बातें कठिन हैं। सरल यही है कि हमें जिन लोगों के साथ रहना पड़े, उनके साथ इस तरह गुजर-बसर करें, तालमेल बिठायें कि आये दिन का टकराव पैदा हुए बिना समय गुजरता रहे और यथासम्भव सहयोग की सम्भावनाएँ बढ़ती रहें।

घुटन को हार की तरह छाती से चिपटाये रहना ठीक नहीं। एक बात सामने आयी उस पर विचार किया और सिनेमा की फिल्म की तरह दिमाग के पर्दे से हटा दिया। जब हम फेफड़े में साँस को रोके नहीं रख सकते तो किसी विक्षोभ को ही मन में जमाकर, दबाकर क्यों बैठे रहें ? नई साँस लेने के लिए जरूरी है कि पुरानी साँस बाहर निकले। भविष्य का निर्माण करने वाले विचारों को आमन्त्रित करने के लिए जरूरी है, जो बीत चुका उसकी कष्टदायी यादों को विस्मरण के गड्ढे में धकेल कर छुटकारा पाएँ।

खाली बैठे रहने पर न जाने कितनी इच्छाएँ, कामनाएँ ऊट-पटाँग विचार मन में उमड़ा करते हैं। इनसे पिण्ड छुड़ाने का सरल तरीका यह भी है कि ठालीपन दूर किया जाय। बहुत-से काम ऐसे हैं, जो मानसिक गड़बड़ी में भी किए जा सकते हैं। झाड़ू लगाना, कपड़े धोना जैसे काम अभ्यस्त हाथ करते रह सकते हैं। तैरना, खेलना, किसी काम से दूसरी जगह चले जाना जैसे छोटे परिवर्तन उत्तेजित मनःस्थिति को हल्की कर सकते हैं।

दूसरों से बहुत ज्यादा अपेक्षा न करना भी एक कारगर उपाय है। सामान्यतः देखा यह जाता है कि बाप-बेटे से बहुत अधिक आशाएँ रखता है। उसके द्वारा हवाई किले बनाये जाने के सपने देखे जाते हैं। इसी प्रकार तमाम तरह की अपेक्षाएँ पड़ौसियों, कुटम्बियों, रिश्ते-नातेदारों से की जाती हैं। ये सभी पूरी होने से तो रहीं। न पूरी होने की स्थिति में मन को विक्षुब्ध होना पड़ता है।

इस विक्षुब्धताजन्य तनाव से बचने के लिए जरूरी है कि अपनी अपेक्षाओं को कम से कम रखा जाय। अपनी माँगों को सिकोड़ा जाय। इसके लिए मन को प्रशिक्षित करना होगा। मन तो छोटे बच्चे की तरह है। जिस किसी चीज को पाने के लिए दौड़ पड़ता है। न पाने पर रोता-मचलता है। यह रोने मचलने की स्थिति ही तो तनाव है। वह न रोये मचले, इसके लिए तरह-तरह के उदाहरण उसके सामने रखने होंगे। दुनिया के ख्याति प्राप्त रसायनज्ञ डॉ. प्रफुल्ल चन्द्र राय अपने वेतन के छोटे से हिस्से से अपना काम चला लेते थे, शेष धन गरीब विद्यार्थियों, सेवाभावी संस्थानों में नियोजित करते थे। माँगें कम रखने का मतलब है-इस स्थिति से स्थायी रूप से छुटकारा पाना।

यही बात परिवेश-परिस्थितियों के सम्बन्ध में है। बात घर-परिवार अड़ौस-पड़ौस की हो या दफ्तर कार्यालय की। जब भी कोई ऐसी समस्या उठे तो शान्त मनःस्थिति रखकर विचार करने का प्रयास करना चाहिए। एक हाथ से ताली नहीं बजती। गलती दोनों ओर से होती है। इसमें अपनी गलती कहाँ है, उसे ढूँढ़कर दूर करने की कोशिश की जाय। प्रायः होता यह है कि छोटी सी बात को बड़ा बना दिया जाता है। तिल का ताड़ बनाने वाली इस आदत की बजह से न जाने कितने लोग मन का विक्षोभ भुगतते रहते हैं। थोड़ी समझदारी बरत लेने-संगति बिठाकर चलने में किसी तरह की तनावजन्य स्थिति का न आना स्वाभाविक है।

काम की चिन्ताओं का बोझ दफ्तर या कार्य स्थल पर ही रहने देना ठीक है। हर समय इसे वेबजह ढोने से कोई भलाई नहीं क्योंकि इस तरह काम को तो पूरा किया नहीं जा सकता। सिर्फ उधेड़ बुन के कारण तनाव हाथ लगता है। जिस समय काम करें, पूरे मनोयोग से करें। प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर करें, उसके बाद तो उसी जगह छोड़कर हँसी-खुशी की हल्की-फुल्की जिन्दगी जीना ही अच्छा है। धीरे-धीरे किन्तु लगातार इस तथ्य पर अमल करने से ऐसी स्थिति आने नहीं पाती।

मानसिक स्तर व जीवन क्रम को ऐसा सँजोया जाय, इस प्रकार सुसंयत किया जाय कि आये दिन की तनावजन्य परेशानियों का सामना ही न करना पड़े। चिन्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और जीवन शैली में ठीक तरह से सामंजस्य बिठाकर चलने और हँसने-हँसाने की आदतों को अपनाकर तनाव से एवं तद्जन्य व्यथाओं से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है।

आत्महीनता की महाव्याधि

कहते हैं कि हाथी को अन्य प्राणी डील-डौल में उनके वास्तविक आकार-प्रकार से कहीं बड़े दिखाई देते हैं। उसकी आँख की बनावट ऐसी होती है कि यह अन्य प्राणियों का आकार कई गुना बढ़ा-चढ़ाकर देखती हैं, इसी कारण हाथी दूसरे प्राणियों से भयभीत रहता है और सामान्यतः यकायक किसी पर आक्रमण नहीं करता। यह कहावत गलत भी हो सकती है, कवि कल्पना भी हो सकती है, पर यह सत्य है कि आत्महीनता की ग्रन्थि से ग्रस्त व्यक्ति परिस्थितियों को उसी रूप में नहीं देखता जो वास्तव में होती हैं। अपने प्रति हीनता या अविश्वास का भाव रखने वाले लोग परिस्थितियों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और उनसे भयभीत, आतंकित, चिन्तित होते रहते हैं। इस मनोविकृति के कारण अधिकांश लोग अपने आप स्वयं ही अपना तिरस्कार करते रहते हैं और उसके अभ्यस्त बन जाते हैं।

आत्महीनता की भावना से ग्रस्त व्यक्तियों का स्वभाव दब्बूपन का बन जाता है। वे सही और उचित सामान्य बात भी किसी से नहीं कह पाते। मुँह खोलने में उन्हें डर लगता है कि जिससे जो कुछ वह कहने जा रहे हैं, वह पता नहीं क्या समझ बैठे, रुष्ट न हो जाये कहीं झिड़क न दे। वस्तुतः यदि ऐसा हो भी जाता है तो सामान्यतः कोई बड़ी हानि नहीं होती पर आत्महीनता की व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति इस सीमा तक डरे दबे रहते हैं कि भले ही कोई हानि हो जाये वे किसी भी स्थिति में अपनी बात को सरल सीधे ढंग से कहने का साहस नहीं जुटा पाते। आवश्यक होने पर भी कुछ न कह पाने का संकोच बरतने से इस बात की सम्भावना तो बनी ही रहती है कि कि गलत फहमियाँ पैदा हो जायँ, व्यवहार में भ्रान्तियाँ जन्म लेने लगें और इस कारण सामने वाला कुछ का कुछ समझकर अप्रत्याशित, अस्वाभाविक, हानिकारक व्यवहार कर बैठे। यह स्थिति मनुष्य को निश्चित ही दयनीय स्थिति में डाल देती है और इसके लिए कोई अन्य कारण दोषी नहीं है, व्यक्ति का आत्महीनता ग्रस्त स्वभाव स्वयं ही दोषी है।

विचारणीय यह है कि लोगों में आत्महीनता की यह भावना क्यों उत्पन्न होती है ? मनःशास्त्री उसके कई कारण बताते हैं। उनके अनुसार बचपन में आवश्यक स्नेह सम्मान न मिल पाना, माता-पिता या अभिभावकों की ओर से उपेक्षा मिलना, उपहास का कारण बनते रहना या अभावग्रस्त स्थिति में समय गुजारते रहना आदि ऐसे कारण हैं जो बचपन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं, जिनके कारण बच्चे बड़े होकर भी आत्महीनता की महाव्याधि के शिकार बनते हैं। बीमार, अपंग और मन्दबुद्धि, कमजोर, बच्चे भी बार-बार डाँट-डपट सुनते रहते हैं। फलतः उनका मन यह मान बैठता है कि उनकी स्थिति दूसरों की अपेक्षा गई-गुजरी ही है, भाग्य ही कुछ ऐसा है। पिछड़ी समझी जाने वाली जातियों के स्त्री-पुरुष आमतौर पर अपने को दूसरों की तुलना में घटिया अनुभव करते हैं और अपने सोचने-विचारने का ढंग उसी स्तर का बना लेते हैं मानो उनको बनाते समय विधाता ने घटिया मिट्टी का ही प्रयोग किया हो।

ऐसा बात नहीं है कि आत्महीनता की यह व्याधि केवल पिछड़े और बचपन में उपेक्षित रहने वाले लोगों में ही पाई जाती है। सभ्य और शिक्षित कहे जाने वाले लोगों में भी इस व्याधि के लक्षण रूप दब्बूपन की प्रवृत्ति पाई जाती है और वे अपने इस स्वभाव के कारण स्वयं को हेय स्थिति में डाल लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सहज ही पहचाना जा सकता है। आत्महीनता की ग्रन्थि अकारण ही मनुष्य को आलसी, असंतुष्ट, दब्बू, चापलूस तथा बात-बात पर खिन्न और क्षुब्ध होने वाले स्वभाव का बना देती है। उनसे कोई भी बेगार ले सकता है, ठग सकता है। मन में वैसा न करने की बात रहते हुए भी इन्कार करने की हिम्मत नहीं होती है तो सामने वाले का आग्रह टालते नहीं बनता है।

इस प्रकार के दब्बूपन के अतिरिक्त आत्महीनता की विकृति उद्धत बनकर भी उभरती है और वह ऐसे कृत्य करने को उकसाती है, जिससे कि लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया जा सके, विधिवत् असाधारण बनने के लिए तो आवश्यक है कि व्यक्तित्व का समग्र निर्माण किया जाय और उसे आत्मविश्वास से सम्पन्न बनाया जाये। कहना नहीं होगा कि व्यक्तित्व का समग्र निर्माण करने के लिए आदर्शवादी गतिविधियाँ अपनाने का साहस जुटाना पड़ता है तथा उस मार्ग पर चलते हुए श्रेष्ठ परिणामों को प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर सके, इस स्तर का धैर्य जुटाना पड़ता है। आत्मविश्वास से रहित, आत्महीनता की व्याधि से ग्रस्त लोगों में ऐसा साहस और धैर्य जुटाने की सामर्थ्य कहाँ होती है ? सो वह उद्धत आचरण करके ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की रीति-नीति अपना लेता है और कई बार आपराधिक गतिविधियाँ भी अपना लेता है। यों इस तरह की गतिविधियाँ अपनाने और अपराध करने में भी हिम्मत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की आवश्यकता पड़ती है सो इस रास्ते से जल्दी सफलता मिलते देखकर हीनताग्रस्त व्यक्ति ऐसे लोगों का साथ ढूँढ़ता और संग करता है जो इन्हीं कुकृत्यों में संलग्न हैं। ऐसे आवारा लोगों का साथ पा लेने के बाद उसमें अपराध कृत्यों को करने का दुस्साहस भी उत्पन्न हो जाता है और इस अभ्यास से वह भी गुण्डागर्दी में संलग्न होकर स्वयं को आत्मगौरव सम्पन्न अनुभव करने लगता है। यही कारण है कि उच्छृंखल गतिविधियाँ अपनाने वाले अवांछनीय तत्त्व निजी जीवन में थोड़ी सी विपत्ति आते ही बुरी तरह रोने-कलपने लगते हैं। यह बात अलग है कि अवांछनीय गतिविधियाँ अपनाने के कारण वे सस्ती तरकीब से दुहरा लाभ उठाने की गतिविधियों को पेशे के रूप में अपना लेते हैं और बढ़े-चढ़े अपराध करने लगते हैं पर मूलतः वे होते आत्महीनता की भावना के शिकार हैं।

आत्महीनता ही वह कारण है जो स्वयं को उपेक्षित, तिरस्कृत और हेय स्तर का आभास देती है साथ ही उस आभास से अधिक बन ठनकर, साज-शृंगार के द्वारा दूसरे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति अपनाने के लिए प्रेरित करती है ताकि बहुत-से लोगों को अपनी ओर आकर्षित हुआ देखकर हेय आभास ही व्यथा पर आकर्षक होने का मरहम लगाया जा सके। अधिक बन-ठनकर रहने, साज-शृंगार करने वाले व्यक्तियों में निश्चित रूप से अधिकांश ऐसे ही होते हैं, जो अपने आपको तिरस्कृत, उपेक्षित एवं हेय स्तर का मानते हैं। भले वे अपने बारे में बढ़-चढ़कर बातें करते हों, आत्म संस्तुति से अघाते न हों पर मन में कहीं बहुत गहराई में यह भावना छिपी दबी रहती है। दूसरों के सामने अधिक आकर्षक दिखने, अमीरी का ढोंग रचने और शान-शौकत के लिए अपव्यय करने वाले लोग मूलतः औरों पर अपने बड़े होने की छाप ही छोड़ना चाहते हैं ऐसे व्यक्ति कम कीमत की मजबूत चीजें खरीदने के स्थान पर महँगी दुकानों से अधिक मूल्य वाली साधारण वस्तुएँ खरीदना ज्यादा पसन्द करते हैं और इसके पीछे दूसरों पर अपने बड़प्पन का आतंक जमाने के सिवा दूसरा कोई कारण नहीं होता। झूठे बड़प्पन की छाप छोड़ने के लिए आमदनी से अधिक खर्च भी उन्हें करना पड़ता है और परिणामतः ऋणी बनना पड़ता है अथवा आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है।

यह तो हुई आत्महीनता की भावना को दबाने, ढकने और उसके लिए स्वाभाविक आचरण करने वालों की स्थिति। इस मनोव्याधि से ग्रस्त व्यक्तियों में एक-दूसरे प्रकार का लक्षण भी पाया जाता है, जो आत्मघात, नशेबाजी और मनोवेगों के रूप में देखने को मिलता है। पिछले दिनों अमेरिका के एक मनःशास्त्री प्रो. हाइन्ज हाफनट ने अपने एक अध्ययन सर्वेक्षण में यह पाया कि आत्महत्याओं, नशीले पदार्थों के सेवन और आत्महीनता के कारण उत्पन्न रोगों में गहन सम्बन्ध है। ये रोग या प्रवृत्तियाँ छूत के रोग की तरह हैं और परस्पर इस ढंग से सम्बद्ध हैं कि एक व्यक्ति यदि उनमें से किसी एक प्रवृत्ति का शिकार है तो उसमें दूसरी प्रवृत्ति बढ़ने की बहुत सम्भावना रहती है।

प्रो. हाफनट का कहना है कि २५ वर्ष की आयु तक के युवक-युवतियाँ सबसे अधिक आत्महत्या का प्रयत्न करते हैं। इसी आयु वर्ग में स्त्रियाँ-पुरुषों से दुगनी संख्या में आत्महत्या करती हैं। २५ वर्ष की आयु से ऊपर और ५० वर्ष तक की आयु वाले स्त्री-पुरुषों में यह अनुपात लगभग बराबर है। प्रो. हाफनट और उनके सहयोगियों ने देखा कि जो लोग आत्महत्या करते हैं उनमें से अधिकांश किसी न किसी नशीले पदार्थ का सेवन करते रहे हैं। आत्म-हत्याओं के पारिवारिक और सामाजिक परिवेश का अध्ययन करने के बाद पाया गया कि इन परिस्थितियों में आत्महत्या करने वाले लोग अपने आपको एकाकी, उपेक्षित और अकेला अनुभव करते थे और उन्हीं परिस्थितियों में ऐसे लोगों की ओर आकर्षित हो जाते थे, जो किसी न किसी मादक पदार्थ का सेवन करते थे।

अमेरिकी और ब्रिटिश वैज्ञानिक सम्मिलित रूप से अपने एक शोध-सर्वेक्षण में इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मादक द्रव्यों का आदी व्यक्ति शीघ्र ही अपने सम्पर्क में आने वाले नये व्यक्ति को अपने जैसा ही बना लेता है। मजे की बात तो यह है कि स्वयं को एकांकी, उपेक्षित और अकेला अनुभव करने वाला व्यक्ति ही ऐसे नशेबाज की ओर जल्दी आकर्षित होता है तथा उस परिवेश में अपने को सुरक्षित अनुभव करने लगता अथवा आत्म-विस्मरण के गहन अन्धकार में डूब जाता है। यह भी देखा गया है कि मादक पदार्थों की ओर प्रायः ऐसे युवक-युवतियाँ ही अधिक आकर्षित होते हैं, जिन्हें माता-पिता से भरपूर स्नेह नहीं मिला है अथवा जो प्रायः उपेक्षित रहे हैं। बचपन में इस प्रकार उपेक्षित रहने वाले व्यक्तियों में चिन्ताजनक रूप से आत्महीनता की भावना पाई जाती है और प्रायः यही लोग जीवन में पथ-भ्रष्ट होते हैं।

अपने सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर प्रो. हाफनट ने प्रतिपादित किया है कि जितने लोग दरिद्रता, बेकारी, पारिवारिक कलह, असफल प्रेम, निराशा, हताशा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और असाध्य बीमारी आदि कारणों से आत्मघात करते, उससे भी अधिक आत्मघात वे लोग करते हैं जो आत्महीनता की महाव्याधि से ग्रस्त रहते हैं। यही वह कारण है जिसकी प्रतिक्रिया मानसिक असन्तुलन के रूप में परिलक्षित होती है और लोग छोटी-छोटी कठिनाइयों या असफलताओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं। ऐसे लोग ही आत्मघाती कदम उठते हैं।

मनःशास्त्रियों के अनुसार आत्महीनता की भावना और भी न जाने कितने रोगों की, आधि-व्याधियों की जननी है। अतः उससे छुटकारा पाना ही श्रेयस्कर है। परिस्थितियों को बढ़ा-चढ़ाकर देखने की आदत और अपने आपको दूसरों के सामने छोटा, हेय, हीन समझने का स्वभाव ही आत्महीनता की व्याधि का प्रमुख लक्षण है। इस व्याधि को जड़मूल से मिटाने का उपचार सुझाते हुए मनःशास्त्री कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को उचित और अनुचित में अन्तर करना आना चाहिए। ऐसे लोग अपने आप में इतना साहस सँजोयें कि जो सही है, उसी को अपनायें और जो गलत है उससे स्पष्ट इन्कार कर सकें। सहमत होना और हाँ करना अच्छी बात है पर वह इतनी अच्छी बात नहीं है कि यदि कोई बात अनुचित लग रही है और अनुचित लगने के पर्याप्त कारण हैं तो भी हाँ, कही ही जाय और सहमत हुआ ही जाय। स्पष्ट रूप से, निस्संकोच भाव से अस्वीकार करने की हिम्मत भी रखनी चाहिए। सोच-विचार करने में यह बात भी सम्मिलित रखनी चाहिए कि हर सही गलत बातें हाँ-हाँ करते रहने से दूसरों की दृष्टि में अपने व्यक्तित्व का वजन घट जाता है और आत्मगौरव को ठेस पहुँचती है वह तो अलग ही है।

विकसित और परिष्कृत व्यक्तित्व का अर्थ है, अपनी मान्यता को स्पष्ट किन्तु नम्र और सन्तुलित शब्दों में व्यक्त कर पाना। जो ऐसा नहीं कर पाते वह अपना मूल्य आप ही गिराते हैं।

अपने बारे में यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि मैं कुछ नहीं हूँ बल्कि यह मानना चाहिए कि मैं भी इस संसार का एक महत्त्वपूर्ण घटक हूँ परमात्मा के इस उपवन का एक सुन्दर और उपयोगी आवश्यक फूल हूँ, जिसे असमय कुम्हलाने का कोई कारण नहीं है। दूसरों के प्रति और अपने प्रति तो विशेष रूप से अपने विचारों, मान्यताओं एवं भावनाओं का मूल्य है। विश्व भर में संव्याप्त असीम बुद्धि, चेतना और प्रचण्ड शक्ति सामर्थ्य का उपयुक्त तथा आवश्यक अंश प्रत्येक प्राणी में, प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है। अपने भीतर निहित इस शक्ति और सामर्थ्य को पहचानने की सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति में होनी चाहिए और नहीं है तो उसका विकास करना चाहिए।

भय का मनोविज्ञान

अकड़न की बीमारी जब शुरू होती है तो सारे शरीर को बुरी तरह जकड़ लेती है, अंग सीधे नहीं होते, चलना-उठना कठिन हो जाता है, रक्त ठंडा पड़ जाता है और दिमाग सोचना बन्द कर देता है। चाहने पर भी शरीर कुछ काम नहीं करता। यह लक्षण अन्य बीमारियों के भी हो सकते हैं, पर सर्वसाधारण में तो इनका प्रकटीकरण भय के दौरान ही होता है। सिंह को देखकर हिरन चौकड़ी भरना भूल जाते हैं और किकर्तव्यविमूढ़ की सी स्थिति में पड़े रहकर बेमौत मारे जाते हैं। यही दशा मनुष्यों में तब पैदा हो जाती है, जब कोई अप्रत्याशित संकट सामने आ खड़ा होता है, फिर तो उससे कुछ भी सोचते नहीं बन पड़ता हाथ-पाँव फूलने लगते हैं और जो नहीं घटने चाहिए, वह सब घटित हो जाते हैं।

जे. कृष्णमूर्ति अपनी पुस्तक 'प्रथम और अन्तिम मुक्ति' में लिखते हैं कि जैसा कि भय के बारे में सोचा और समझा जाता है, वास्तविकता वैसी है नहीं। डर हमेशा ज्ञात के प्रति ही हो सकता है, अज्ञात के प्रति भय बनने का कोई कारण नहीं। जहाँ ऐसा प्रतीत होता है, वहाँ समझने में भूल हो जाती है। वे कहते हैं कि आम धारणा में मृत्यु को भयकारक माना जाता है, पर यह सच नहीं है, कारण कि साधारण स्थिति में न तो मौत को जाना जा सकता है, न उसकी अनुभूति की जा सकती है। जिसे देखा नहीं, जिसकी भयंकरता समझी नहीं, भला उससे डर कैसा ? त्रास के वास्तविक कारण का उल्लेख करते हुए वे बताते हैं कि संकट व्यक्ति को उस विलगाव में दिखाई पड़ता है, जहाँ वह अपने प्रिय कुटुम्बियों, वस्तुओं, संपदाओं, भोगों से स्थायी पृथक्ता की कल्पना करता है। अलग हो जाने की यही धारणा भय का यथार्थ कारण है।

कोई भूत, जिसके बारे में बालक ने कुछ सुना नहीं, कभी देखा नहीं, वह यदि अचानक उसके सामने प्रकट हो जाय तो इतना निश्चित है कि वह उसे देखकर भागेगा नहीं, वरन् और प्रसन्न होगा कि एकांत और सुनसान राह पार करने के लिए एक साथी मिल गया। यह अज्ञानता की निर्भयता है। यही कारण है कि दुनिया में बालक जितने निडर और निर्भय होते हैं, उतने शायद ही साधारण जन देखे जाते हैं। उनको न तो क्षणमात्र में भस्मसात् कर देने वाली आग के स्वभाव के बारे में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जानकारी रहती है, न साँप, बिच्छू की भयंकरता का परिचय होता है। इसीलिए आये दिन अग्नि के स्पर्श से उनके जलने और जहरीले कृमि-कीटकों को पकड़ लेने और पीड़ा भोगने के समाचार प्रकाश में आते ही रहते हैं।

दूसरी ओर धर्मभीरू लोग ईश्वर से इसलिए डरते हैं, क्योंकि उन्हें उसकी कर्मफल व्यवस्था और दंड विधान का पता होता है। वे अपंगों, बीमारों, कोढ़ियों के रूप में उनके पापकर्मों का दारुण फल-भोग देखते ही रहते और ऐसा प्रयास करते हैं, जिससे जीवन में कोई अनैतिक कर्म न बन पड़े, जिसका दण्ड आने वाले समय में, आगामी जीवन में भीषण त्रास की तरह झेलना पड़े।

इसके विपरीत ऐसे भी लोगों की कमी नहीं, जिन्हें भयंकरता का ज्ञान होते हुए भी भयकारक वस्तुओं, प्राणियों, परिस्थितियों से आँख-मिचौनी खेलते रहते हैं। सपेरे रोज ही काले विषधर नाग पकड़ते हैं, शिकारी शेर, बाघ का शिकार करते ही रहते हैं। उन्हें वे जरा भी डरावने नहीं लगते, वरन् उन्हें ढूँढ़ते रहते हैं और मिल जाने पर प्रसन्न होते हैं, जबकि अजनबी व्यक्ति को साँप-शेर की तस्वीर देखने और चर्चा सुनने भर से पसीना छूटता है।

अँधेरे में घुसने में डर लगता है। सुनसान में प्रवेश करते हुए पैर काँपते हैं। मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठती हैं कि उस अँधेरे सुनसान में न जाने क्या विपत्ति होगी, न मालूम कैसे जहरीले जीव-जन्तु हों इतना सोचते ही दिल बेतरह धड़कने लगता है, पर जब उसमें निधड़क प्रवेश किया जाता है, दीपक लेकर देखा जाता है, तो प्रतीत होता है कि वहाँ डरने जैसा कुछ भी नहीं था। मन की दुर्बलता ही है, जो जरा-सा आधार मिलते ही तिल का ताड़ बनाती है, काल्पनिक भय गढ़कर उन्हें इस तरह चित्रित करती है, मानो प्राणघाती सर्वनाश संकट आ गया। अब बचना कठिन है, जबकि वस्तुतः जरा-सा कारण ही वहाँ रहा होता है और वह भी इतना छोटा कि उसके साथ आसानी से निपटा जा सके।

दुनिया में लाखों-करोड़ों लोग अँधेरे में रहते और आते-जाते हैं। वन्य प्रदेशों में यदा-कदा ही दीपक का प्रयोग होता है। किसान खेतों पर सोते हैं और रात को रखवाली करते हैं। छोटी झोपड़ियाँ बना कर सघन जंगलों में वनवासी परिवार समेत रहते हैं। धनी लोग सघन बस्ती से हटकर खुले बँगलों में रहते हैं। चोर-डकैत, भूत-पलीत कहाँ किसी को खाते हैं ? यदा-कदा तो दुर्घटनाएँ दिन दहाड़े बीच बाजार में भी हो सकती हैं। संकट के वास्तविक अवसर कम ही आते हैं। अधिकतर तो लोग काल्पनिक संकट गढ़ते हैं और अपने बनाये मानसिक चित्र को देख-देख कर डरते-मरते रहते हैं।

भय वस्तुतः कायरता की प्रतिकृति है। अपना चेहरा जैसा भी होगा, वैसा ही दर्पण में दीखेगा। आँखों में पीला चश्मा चढ़ा लेने पर हर चीज पीले रंग की दिखाई देगी। भीरू मनुष्य की आंतरिक दुर्बलता इस संसार-दर्पण में विपत्ति बनकर दीखती है। संकट का सामना करने की, उससे उलझने, निपटने की क्षमता अपने में नहीं है, ऐसा मान लेने के बाद ही डर आरम्भ होता है। जिसे यह भरोसा है कि कठिन परिस्थितियों का सूझ-बूझ के साथ मुकाबला करेंगे, उन्हें हटाने-मिटाने के लिए जूझेंगे, इसके लिए आवश्यक समझ और बल अपने पास है, मित्र और ईश्वर भी साथ देंगे; इस प्रकार की हिम्मत यदि अपने में मौजूद हो तो काल्पनिक डरों से छुटकारा मिल पाता है और मन का अधिकांश बोझ हल्का हो जाता है।

विख्यात हंगेरियन मनोवैज्ञानिक फेरेंज नैडेस्डी ने अपनी पुस्तक 'फियर ऑर फ्रीडम' में भय का एक अन्य कारण गिनाते हुए लिखा है कि डर वहीं उत्पन्न होता है, जहाँ एक विशेष प्रकार के ढाँचे में जीने की इच्छा होती है, एक विशेष प्रकार के जीवन की चाह होती है। इस ढाँचे को, चाह को ढाह और त्यागकर व्यक्ति कुछ समय के लिए भय-मुक्त हो सकता है, पर ऐसा तभी है, जब वह इस सत्य को भली-भाँति जान ले कि उक्त आकांक्षा ही भय का कारण है और भय उस आकांक्षा को मजबूत कर रहा है। वे कहते हैं कि किसी एक ढाँचे को तोड़ देने मात्र से ही कोई पूर्णतया भयमुक्त नहीं हो सकता। इससे इतना ही अंतर पड़ सकता है कि हम एक शैली को छोड़कर किसी दूसरी जीवन-शैली में प्रवेश कर जायेंगे वह दूसरे प्रकार का भय उत्पन्न करेगी। इसे भी यदि तोड़ा गया तो कोई तीसरी जीवन शैली के हम अधीन हो जायेंगे। वह पुनः अपने तरह का भय पैदा करेगी। तथ्य यह है कि इस प्रकार किया गया कोई भी कार्य जो ढाँचा तोड़ने की प्रवृत्ति पर आधारित हो, केवल एक दूसरी प्रणाली उत्पन्न करेगा और भय का कारण बनेगा। अंततः वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस प्रकार तोड़ने और बनाने की क्रिया से भय मुक्ति संभव नहीं। स्थायी शांति तभी संभव है, जब मूल निमित्त 'मन' को साधा और सुधारा जा सके।

अनैतिकता को भी भीरुता का एक कारण माना जाता है। जिसकी अंतरात्मा कलुषित और पाप कर्म से लिप्त है, वह कभी चैन की नींद न सो सकेगा। उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे की ओर से तरह-तरह की आशंकायें रहेंगी। उन्हें उनसे धोखा होने का, बदला लेने का, फँसा देने का डर बना ही रहेगा। पोल खुल जाने पर बदनामी फैलेगी और लोग सतर्क होकर उसके जाल में फँसने तथा देने से अलग हो जायेंगे। निंदा और असहयोग की स्थिति में उसका भविष्य ही अंधकारमय हो जायगा। इससे उसका मन सदा आशंकित रहता है। पापकर्म के फलस्वरूप समाज का दण्ड, राजदण्ड तथा ईश्वरीय दण्ड मिलते हैं। तीनों इकट्ठे होकर या पृथक्-पृथक् से वे कभी-न-कभी मिलकर ही रहेंगे। इस भय से भीतर-ही-भीतर बड़ी बेचैनी रहती है। इस आत्मदेव की पीड़ा उसे निरन्तर कचोटती रहती है। बाहर वाले दण्ड मिलने में तो देर-सबेर भी हो सकती है, पर आत्म दण्ड तो कुमार्ग पर कदम धरते ही मिलना आरम्भ हो जाता है और वह निरन्तर दुःख देता रहता है।

ब्रिटिश मनःशास्त्री रिचर्ड गार्नेट अपने ग्रन्थ 'साइकालॉजी ऑफ फियर' में लिखते हैं कि शारीरिक कष्ट एक स्नायुगत अनुक्रिया है, किन्तु मानसिक कष्ट तब उत्पन्न होता है, जब व्यक्ति का किसी वस्तु से गहनतम तादात्म्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में वस्तु से उसकी निकटता, उसका लगाव, शांति और संतोषदायक होता है, क्योंकि तब वह उस व्यक्ति या वस्तु से भयभीत रहता है, जो उन वस्तुओं को उससे अलग कर सकते हैं। वे कहते हैं कि जब तक मनोवैज्ञानिक रूप से संचित अनुभवों में कोई बाधा नहीं पड़ती, वे मनोवैज्ञानिक कष्ट को रोकते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि व्यक्ति इन समाहारों की, अनुभवों की एक गठरी है और यह किसी गम्भीर विक्षोभ या अशांति को रोकती है। ऐसे में व्यक्ति हर उस चीज से भयभीत रहता है, जो उन संचित अनुभवों में विक्षोभ पैदा करती है। इस तरह आदमी ज्ञात से भय पीड़ित रहता है। वह शारीरिक गणना मानसिक रूप से संचित उन अनुभवों से डरता रहता है, जिन्हें उसने अथवा कष्ट से बचने के लिए एकत्रित किया है। इस प्रकार वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह ज्ञान भी कष्ट को दूर करने का एक साधन मात्र है, भय-मुक्ति का उपाय नहीं।

डर का एक बड़ा कारण अज्ञान भी माना गया है। आदिमकाल में मनुष्य को सूर्य ग्रहण, बिजली की कड़क, पुच्छल तारे आदि के बारे में कुछ पता न था। वह इनसे डरता था और देवता समझकर उनके कोप से बचने के लिए तरह-तरह के पूजन बलिदान करता था, पीछे जब वास्तविकता समझ में आ गई, तो वह डर सहज ही चला गया। भूत-पलीतों का डर अब धीरे-धीरे समाप्त होता चला जा रहा है, पर उसके स्थान पर अब नये भय पैदा होते जा रहे हैं।

मनुष्य की विडम्बना यह है कि जिसका वास्तव में भय करना चाहिए, उससे वह निडर स्तर का बना रहता है और जहाँ भय का कोई कारण नहीं, वहाँ भयभीत होता रहता है। उसे पाप से डरना चाहिए, कर्मफल से डरना चाहिए, ईश्वर के न्याय से डरना चाहिए, पर इनसे वह भयभीत होने की आवश्यकता नहीं समझता। चोरी करते हुए, भोले लोगों को ठगते हुए, छल-प्रपंच रचते हुए, षड्यन्त्र अपनाते हुए, चुगली, नशेबाजी, व्यभिचार, बेईमानी, असत्य भाषाण, मिथ्या प्रलाप करते हुए कौन डरता है ? डरते हैं मिट्टी के पुतले मनुष्य से, काल्पनिक भूत-पलीतों से, दीन-दुर्बल, कुकर्मी आतंकवादियों से। हमें अपने इस अज्ञान को समझना चाहिए और उन अकिंचन व्यक्तियों, वस्तुओं एवं परिस्थितियों से डरने से इन्कार कर देना चाहिए, जो वस्तुतः तुच्छ एवं असमर्थ हैं। डरना ही हो तो ईश्वरीय विधान और दुष्प्रवृत्तियों से डरना चाहिए। वास्तविक दुःख के निमित्त यही हैं और सुख के कारण भी इन्हीं में प्रच्छन्न हैं, इस तथ्य को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही अच्छा।

मानसिक उद्वेग
जीवन विनाश के प्रमुख कारण

मानसिक स्वास्थ्य की परीक्षा के लिए यह देखना चाहिए कि चिन्तन की प्रक्रिया सही है या नहीं। जो बिना किसी वेदना अथवा विक्षोभ के हँसी-खुशी और सन्तोष, उत्साह भरा जीवन जी रहा हो और उसे मानसिक दृष्टि से स्वस्थ कहा जा सकता है। दूसरों के सुख को अपने सुख से अधिक महत्त्व देने वाले, दाम्पत्य जीवन से संतुष्ट, विनोदप्रिय, चिड़चिड़ेपन से मुक्त, असफलता और निराशा के वातावरण में भी अपना विवेक संतुलन बनाये रहने वाले मानसिक दृष्टि से स्वस्थ कहे जा सकते हैं।

नये व्यक्तियों के बीच नये वातावरण में अपने आपको फिट कर लेना, कभी भी अकेलापन अनुभव न करना, उदासी और खीज से बचे रहना, मन में किसी के प्रति चिरस्थायी ईर्ष्या-द्वेष न रखना—अपनी कठिनाइयों को हल्की और सुधरने योग्य मानना, भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाओं पर विश्वास रखना, भूतकाल की विपत्तियों का, भविष्य की विभिन्न आकांक्षाओं के चिन्तन करते रहने की बुरी आदत से बचे रहना, किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य संतुलन का उपयुक्त प्रमाण माना जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विपत्ति के समय धैर्य, शूरवीरों जैसी निर्भयता, पुरुषार्थ में अभिरुचि, मनोयोगपूर्वक परिश्रम, कठिनाइयों से जूझने का साहस, प्रफुल्ल और निश्चिन्त रहना, अपनी क्षमतायें बढ़ाने के लिए तथा त्रुटियों को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहना यह बताता है कि यह व्यक्ति मानसिक दृष्टि से नीरोग है। दूसरों से बड़ी-बड़ी आशायें न बाँधना और उनके सम्बन्ध में बहुत ऊँची कल्पनायें न गढ़ना भी इस बात का चिन्ह है कि मस्तिष्क यथार्थवादी है। बहुत ऊँची उड़ानें उड़ने और किसी को बहुत ऊँची स्थिति का मान बैठने से अन्ततः निराशा ही होती है क्योंकि प्रायः सभी मनुष्य किन्हीं-किन्हीं दोषों से युक्त पाये जाते हैं।

मन पर छाये रहने वाले उद्वेग, असंतोष एवं आक्रोश मस्तिष्कीय कणिकाओं को इतना उत्तेजित कर देते हैं कि उनका प्रभाव समस्त शरीर पर अशान्ति एवं बेचैनी के रूप में दिखाई पड़ता है। घर का कलह, पैसे की तंगी, व्यावसायिक हानि, मुकदमा, शत्रुता, बीमारी, शोक-वियोग, क्रोध, भय, ईर्ष्या-द्वेष आदि अनेक कारण ऐसे हो सकते हैं, जिनके कारण मस्तिष्क पर असाधारण दबाव पड़े। कहना न होगा कि समस्त शरीर मस्तिष्क के ही नियन्त्रण में चलता है। मस्तिष्क उत्तेजित होगा तो उस उत्तेजना का प्रभाव नस-नाड़ियों, माँस-पेशियों, कोशिकाओं पर, प्रत्येक अंग-अवयव पर दिखाई पड़ेगा। उनकी गति बढ़ जायेगी और बेचैनी अनुभव होगी। इस स्थिति में जीवनी शक्ति का बेतरह क्षरण होने लगता है। क्रम बहुत समय जारी रहे तो शरीर के अंग-प्रत्यंग न केवल शिथिल होते जाते हैं वरन् उनमें तरह-तरह की विकृतियाँ भी उत्पन्न होती हैं। ऐसे उत्तेजना ग्रस्त व्यक्ति कई तरह के रोगों से ग्रसित होते चले जाते हैं और कई बार स्थिति इतनी विषम बन जाती है कि उसका समाधान मृत्यु ही आकर करती है।

संसार के मूर्धन्य व्यक्तियों में से अधिकांश को अल्पायु में ही अपना शरीर छोड़ना पड़ा। इसका प्रधान कारण उनके मस्तिष्क का अनावश्यक रूप से उत्तेजित रहना पाया गया। काम की अधिकता, प्रस्तुत योजनाओं की पूर्ति का ताना-बाना बुनना, उलझनों और समस्याओं को सुलझाने के लिए व्यग्रता, साथियों से असंतोष आदि कितने ही कारण मस्तिष्कीय क्षमता से अधिक दबाव उन पर डालते रहे, फलतः उस तनाव का परिणाम सारे शरीर की अव्यवस्था के रूप में सामने आता रहा। असामयिक मृत्यु का यह एक बड़ा कारण है जिसके कारण सुविकसित समझे जाने वाले सुसम्पन्न एवं मूर्धन्य लोग प्रायः जीवन काल की थोड़ी-सी मंजिल पूरी करके ही पैर पसार देते हैं।

तनाव के चिन्हों में सबसे प्रधान है, गहरी निद्रा का अभाव। ऐसे लोगों को देर से या कम मात्रा में नींद आती है। जितनी देर आती है वह भी हल्की और छिर-छिरी होती है। झपकियाँ आती रहती हैं और सपने देखते रहते हैं। अधजगी स्थिति बनी रहती है। ऐसी अर्ध निद्रित अवस्था में यदि सारी रात पड़े रहा जाय तो भी उतनी राहत नहीं मिलती जितनी दो-चार घण्टे गहरी नींद में सो जाने पर मिलती है। भोजन द्वारा पोषण प्राप्त करना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक यह भी है कि शरीर और मस्तिष्क की श्रमजन्य थकान को दूर करने के लिए समुचित विश्राम मिलता रहे। विश्राम का प्रमुख माध्यम है निद्रा। गहरी नींद द्वारा हम थकान मिटाते हैं और नये सिरे से काम कर सकने योग्य स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। यदि नींद अधूरी रहेगी तो क्षति पूर्ति का समुचित साधन बन ही न सकेगा और मनुष्य थका-हारा अशान्त बेचैन बना रहेगा।

अनिद्रा और तनाव का घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु वह मानसिक उत्तेजना के कारण ही उत्पन्न होती है। शारीरिक श्रम से अधिक थका हुआ मनुष्य तो आसानी से गहरी नींद में सो जाता है पर मानसिक उत्तेजनायें निद्रा आने में भारी बाधा उत्पन्न करती हैं। आवेशों से उद्विग्न मनुष्य भीतर ही भीतर बेतरह अशान्त रहते हैं और चैन की नींद सो नहीं पाते। कहना न होगा कि थकान उतारने के लिए और ताजगी प्राप्त करने के लिए निद्रा की अनिवार्य आवश्यकता है। नींद न आने से मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों के खर्च की पूर्ति नहीं हो सकती। दूसरे दिन फिर काम करना पड़ता है। पिछले की पूर्ति होने नहीं पाई थी, नया बोझ और सिर पर आ गया इस प्रकार लगातार थकान का बोझ बढ़ता जाता है और मनुष्य दिन-दिन दिवालिया होता जाता है।

उद्विग्न मनुष्य असहिष्णु चिढ़-चिढ़ा और असंतुलित रहने लगता है। उसे तनिक-सी प्रतिकूलता पहाड़ जैसी भारी लगती है और घबराकर ऐसे कार्य करने पर उतारू हो जाता है जिसकी वस्तुतः कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। इंग्लैण्ड बहुत छोटा देश है, पर उसमें हर वर्ष प्रायः ४० हजार मनुष्य आत्महत्या का प्रयास करते हैं, जिसमें ३५ हजार असफल रहते हैं और ५ हजार तो जान गँवा ही बैठते हैं।

निरन्तर गम्भीर विषयों पर सोचते रहने अथवा वास्तविक-अवास्तविक कठिनाइयों की बढ़ी-चढ़ी कल्पना करके उनके सम्बन्ध में चिन्तित, उद्विग्न रहने से मस्तिष्कीय कोशिका में गर्मी अत्यधिक बढ़ती चली जाती है और कभी-कभी वह इतनी अधिक होती है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रक्तचाप की वृद्धि, अग्नि का प्रकोप जैसी बीमारियों के रूप में परिणत होती है। हृदय रोगों का प्रधान कारण ऐसी ही उद्विग्न मन:स्थिति होती है। कभी-कभी तो इसी तनाव के कारण मस्तिष्कीय रक्त नलिकायें तक फट जाती हैं और मनुष्य मृत्यु के मुख में चला जाता है। संसार में कितने ही मूर्धन्य राजनेता इसी प्रकार के रोगों से ग्रसित होकर मृत्यु के मुख में अचानक ही चले गये हैं।

डॉ. हेन्स सेल्वे के अनुसार मानसिक तनाव में शरीर का रासायनिक संतुलन बिगड़ता है। कई तरह के उपयोगी हारमोन उत्पन्न करने वाली मस्तिष्क में स्थित पिट्यूटरी, गुर्दे में स्थित एड्रीनल ग्रन्थियाँ अपरिपक्व और विकृत स्तर के हारमोन फेंकने लगती हैं फलत: शरीर का सारा ढाँचा ही चरमराने लगता है।

संसार के प्रगतिशील देशों में पुरुषों की अपेक्षा महिलायें अधिक दीर्घजीवी होती हैं। यों शरीर संरचना की दृष्टि से उनमें पुरुष की अपेक्षा कुछ कमी ही पाई जाती है और बच्चों को जन्म देने से लेकर उन्हें दूध पिलाने तक की प्रक्रिया भी ऐसी कष्टकारक एवं क्षतिपूर्ण है जिससे सामान्य बुद्धि के अनुसार उन्हें कम आयुष्य प्राप्त होनी चाहिए, किन्तु होता उसके ठीक विपरीत है। स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा न केवल अधिक दिन जीवित रहती हैं, वरन् वे बीमार भी कम पड़ती हैं। इन आश्चर्यजनक आँकड़ों पर गम्भीर दृष्टि डालने वाले मनीषियों ने उनका एक ही कारण खोजा है। अपेक्षाकृत अधिक चिन्ता मुक्त रहना और हँसने-खेलने का विनोदी जीवनक्रम अपनाना। मर्द जहाँ तरह-तरह की चिन्ताओं और समस्याओं में उलझा हुआ खीजता रहता है, वहाँ नारी शरीर और घर को अधिक सुन्दर बनाने, बच्चों के साथ हँसने-खेलने और विनोदी गतिविधियों में अधिक संलग्न रहती है। मस्तिष्क पर तनाव अधिक रहने से नर जहाँ अल्पजीवी होता है वहाँ निश्चिन्तता और प्रसन्नता को अपनाकर नारी अधिक दिन जीवित रह सकने में सफल होती है और अपेक्षाकृत नीरोग भी रहती है।

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार भारतीय नारी अधिक बीमार पड़ती है, जल्दी मरती है। विकसित देशों की अपेक्षा भारत की स्थिति में यह विपरीतता रहने का एक कारण यहाँ की अशिक्षा, पिंजड़े जैसे घरों में कैद रहना, पोषक आहार की कमी और प्रजनन का अधिक भार पड़ना भी है, पर सबसे बड़ा कारण है उनकी सामाजिक स्थिति, जिसमें पग-पग पर उन्हें शोषण, अपमान, उत्पीड़न, घुटन, असन्तोष एवं खीज का अनुभव होता रहता है। नीरस, निरर्थक, प्रताड़ित, प्रतिबंधित जीवन जीने की उद्विग्नता उनकी जिन्दगी की अवधि कम करने वाला बहुत बड़ा कारण है। यदि उन्हें सन्तोष और प्रसन्नता भरी परिस्थितियाँ विकसित देश की महिलाओं की तरह उपलब्ध हो सकें तो कोई कारण नहीं कि वे भी अपेक्षाकृत अधिक दीर्घ-जीवी और अधिक नीरोग न रह सकें।

निराशा एक ऐसी प्रक्रिया है जो खींच-खाँचकर उन्हीं परिस्थितियों के निकट ले आती है जिनसे डरकर निराशा अपनाई गई थी। जितना दबाव निराशा का मस्तिष्क पर जमा किया जाता है उतना ही चिन्तन यदि उन परिस्थितियों को निकट लाने में केन्द्रित किया जाय, जिन्हें हम चाहते हैं तो निश्चित रूप से चमत्कारी प्रतिफल सामने आयेगा। अभीष्ट परिस्थितियाँ जो निराशा के क्षणों में बहुत कठिन दीख पड़ती हैं वे सरल और साध्य बनती चली जायेंगी। निराशाजन्य विपत्तियों और आशा के साथ सम्बद्ध उपलब्धियों पर यदि तुलनात्मक विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि गर्त में गिरने और ऊँचा उठने के लिए प्रयास करने की तरह वे अन्तत: व्यक्ति को कितनी भिन्न परिस्थितियों तक ले पहुँचती हैं।

एक व्यक्ति उतने ही समय पूर्व की ओर चले और दूसरा उतने ही समय पश्चिम की ओर चलता रहे तो उनके चलने की अपेक्षा दोनों की दूरी दूनी हो जायेगी। एक दिन में पूर्व को चलने वाला १० मील चला। दूसरे ने पश्चिम को १० मील प्रयाण किया। सायंकाल को वे एक-दूसरे से बीस मील दूर होंगे। ठीक इसी प्रकार निराशाग्रस्त और आशावादी मनुष्यों के बीच विपत्ति-सम्पत्ति का आश्चर्यजनक अन्तर पड़ जाता है। एक उतने ही समय गिरने का प्रयत्न करता रहा दूसरे ने वह समय और शक्ति उठने में लगाई तो कुछ ही समय बाद यह पता चल जायेगा कि उन दोनों की स्थिति में कितना भारी तुलनात्मक अन्तर उपस्थित हो गया।

मनोविज्ञानी सी० जी० जुंग ने अपनी पुस्तक 'मार्डन मैन इन सर्च ऑफ ए सोल' में रोग ग्रस्तों की चर्चा करते हुए लिखा है—उनमें से अधिकांश ऐसे होते हैं, जिनने अपने उज्ज्वल भविष्य पर से भरोसा खो दिया है। इन्हें किसी भी चिकित्सा द्वारा स्थायी रूप से अच्छा कर सकना कठिन है, एक के बाद दूसरे मर्ज उन पर हावी होते ही रहते हैं। रोग मुक्त केवल उन्हें ही किया जा सकता है, जिन्होंने अपने खोये विश्वास को पुन: वापिस लौटाने में सफलता प्राप्त कर ली।

शारीरिक और मानसिक थकान का, परिश्रम की अधिकता या पौष्टिक भोजन का अभाव उतना बड़ा कारण नहीं जितना कि मानसिक असन्तुलन। मन:शास्त्र के विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उतावली, आवेश, हड़बड़ाहट, चिन्ता एवं भावुकता ये उतार-चढ़ाव मनुष्य को अत्यधिक थका देते हैं। निराशाजन्य खीज, अधूरी आशायें,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामर्थ्य से अधिक ऊँची महत्त्वाकांक्षायें, परस्पर विरोधी विचारों के अन्तर्द्वन्द्व, अनिश्चित एवं अनिर्णीत विचार, आत्महीनता, सामने प्रस्तुत काम में अरुचि, असफलता की आशंका, अविश्वास और भयग्रस्तता जैसे कारणों में उलझा हुआ मस्तिष्क इतना अधिक थक जाता है जितना कि पूरे दिन कठोर परिश्रम करने में भी नहीं थका जाता। ऐसे उलझे हुए मनुष्य कुछ काम न होने पर भी सदा थके-थके, खिन्न और खीजे हुए दिखाई पड़ते हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय के परीक्षणों में बताया है कि अप्रिय मनुष्यों से मिलने, अप्रिय काम करने और अप्रिय परिस्थितियों में रहने से मनुष्य सबसे अधिक थकान अनुभव करता है। प्रियजनों के सम्पर्क में, अनुकूल परिस्थितियों में और अनुकूल कार्यों में संलग्न रहकर मनुष्य जितना काम कर सकता है प्रतिकूलताओं के बीच रहकर वह अपेक्षाकृत चौगुनी थकान अनुभव करता है।

थकान और तनाव भरा जीवन भार है। यह एक ऐसा भार है जिसे हम स्वयं ही अपनी मानसिक दुर्बलता एवं अस्त-व्यस्तता के आधार पर बनाते हैं और अपने कन्धों पर लादते हैं। जीवन का, संसार का और अपनी सीमा का यदि सही संतुलन रखा जा सके तो न केवल तनाव रहित जीवन, हल्का-फुल्का जीवन जिया जा सकता है वरन् इतना प्रसन्न संतुष्ट रहा जा सकता है, जिसकी शीतल सुरभि का लाभ अन्य समीपवर्ती सम्बन्धित लोग भी उठा सकें।

अंग्रेज लेखक बेकन वृद्धावस्था में बहुत निर्धन हो गये थे। इसका एक कारण उनका चिन्तन में अधिक उलझा रहना और कमाई पर कम ध्यान देना भी था। एक दिन उनकी पत्नी ने कहा, बुढ़ापे में निर्धन होना कितना कष्ट कर है, क्या आपको यह स्थिति अखरती नहीं ?

बेकन ने शान्तचित्त से कहा—धन कमाना आसान है। जुट पड़ेंगे तो कमा ही लेंगे, पर मैं देखता हूँ जीवन जीना कितना कठिन है ? मैं उसी कला को सीखना आरम्भ कर रहा हूँ। उसके अनुसन्धान और प्रयोग मात्र में जब इतना रस मिलता है तो सोचता हूँ, उसकी अधिक उपलब्धि में न जाने कितना आनन्द होगा ? प्रिये, धन उतना आनन्ददायक नहीं जितना जीवन का सही मूल्यांकन और उपयोग कर सकने वाले दृष्टिकोण का विकास।

एल्वर्ट स्विट्जर एक दिन बड़े तड़के घुटने टेक कर भाव भरी प्रार्थना कर रहे थे, ऐ मेरी दुनिया के स्वामी, आपने जीवन को जानने की जिज्ञासा के साथ मुझे जोड़ ही दिया तो अब जीवन को क्षीण मत होने देना। जीवन रस का प्याला इतना मधुर है कि वह मुझसे छोड़ा न जा सकेगा। यह हट गया तो फिर मेरे लिए जीवित रह सकना असाध्य हो जायगा।

तनाव और थकान भरा जीवन जियें अथवा सरस सन्तोष को अपनाकर पुष्प की तरह खिलते रहें, यह चुनाव करना अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है, परिस्थितियों पर आधारित नहीं जैसा कि आमतौर से समझा जाता है।

महत्त्वाकांक्षाएँ और असन्तोष

आज अधिकाधिक सफलता जल्दी से जल्दी प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति लालायित है। यह लालसा इतनी अधिक है कि वह अपनी उचित मर्यादाओं से कहीं अधिक चाहता है, यह नहीं सोचता कि मेरी योग्यता, श्रमशीलता तथा सामर्थ्य की तुलना में जो कुछ मिला हुआ है, वह सन्तोषजनक है या नहीं ? हर व्यक्ति असन्तुष्ट दिखाई पड़ता है। इसका कारण एक ही है कि वह जितना प्राप्त कर चुका है, कर रहा है उसे अपर्याप्त मानता है और अधिक वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए लालायित है। जितनी आकांक्षा करता है, उसकी तुलना में उसे जितना कम मिला हुआ होता है, उतना ही वह दुःखी और असन्तुष्ट रहता है। असन्तोष एक प्रकार का दर्द है, जिससे मनुष्य को उसी प्रकार की बेचैनी बनी रहती है जैसे आँख का दर्द, पेट का दर्द, कान, का दर्द, डाढ़ का दर्द होने पर होती है। हम अपने चारों ओर ऐसे ही दर्दमन्दों का समूह इकट्ठा हुआ देखते हैं।

उन्नति की आकांक्षा एक बात है और असंतोष बिल्कुल दूसरी। उन्नतिशील व्यक्ति आशा, उत्साह, धैर्य और साहस को साथ लेकर प्रसन्न मुखमुद्रा और स्थिर चित्त के साथ आगे बढ़ते हैं। गहरे पानी में उतरते हुए हाथी जिस प्रकार अपना एक-एक कदम बहुत सँभाल-सँभाल कर रखता है और जहाँ गड्ढा दीखता है वहाँ से तुरन्त पैर पीछे हटा लेता है, उसी प्रकार प्रत्येक उन्नतिशील व्यक्ति सँभल-सँभलकर अपना प्रत्येक कदम आगे बढ़ाता है। स्वस्थ चित्त एवं उद्वेगरहित व्यक्ति ही वर्तमान कठिनाइयों का सही कारण ढूँढ़ सकने और उसका उपाय खोज निकाल सकने में समर्थ हो सकता है। उसी की सूझ-बूझ ठीक तरह काम करती है और वही कठिनाइयों और बाधाओं का निराकरण कर सकने में समर्थ होता है और वही प्रतिकूल परिस्थितियों में देर तक दृढ़तापूर्वक खड़ा रह सकता है। जिसमें इतनी दृढ़ता न होगी वह अधीर व्यक्ति कभी किसी महत्त्वपूर्ण सफलता का अधिकारी न हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उतावले और जल्दबाज, असन्तुष्ट और उद्विग्न व्यक्ति एक प्रकार के 'अध पगले' कहे जा सकते हैं। वे जो कुछ चाहते हैं उसे तुरन्त ही प्राप्त हो जाने की कल्पना किया करते हैं। यदि जरा भी देर लगती है तो अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक गुण मानसिक स्थिरता को खोकर असंतोषरूपी उस भारी विपत्ति को कंधे पर ओढ़ लेते हैं, जिसका भार लेकर उन्नति की दिशा में कोई आदमी देर तक नहीं चल सकता। असन्तोष एक प्रकार का मानसिक बुखार है। जिस प्रकार बुखार का रोगी शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से अशक्त हो जाता है, खड़े होते ही उसके पैर लड़खड़ा जाते हैं, कुछ ही देर पढ़ने, बोलने या सोचने से सिर दर्द करने लगता है, उसी प्रकार असन्तोष से ग्रसित मानसिक रोगी भी कुछ कर-धर नहीं सकता। उसे कुढ़न ही हर घड़ी घेरे रहती है। क्षुब्ध और उत्तेजित मन से वह अंट-संट बातें ही सोच सकता है। दूसरों पर दोषारोपण करके अपने द्वेष और क्रोध को बढ़ाते रहना ही उससे बन पड़ता है। अपनी मानसिक स्थिति जिनने इस प्रकार की असंतुलित बना ली है, वे व्यक्ति अपने उद्वेग की उलझन में ही उलझे पड़े रहते हैं। उनकी सारी शक्तियाँ कुढ़न, द्वेष, असंतोष, छिद्रान्वेषण, दोषारोपण, प्रतिशोध, निन्दा, ईर्ष्या आदि में ही नष्ट होती रहती हैं। प्रगति के पथ पर बढ़ने के लिए जिन सद्गुणों की आवश्यकता है वह इन असंतुष्ट व्यक्तियों को तिलांजलि देकर अपने आप पलायन कर जाते हैं और वह अभागा एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा दुर्भाग्य अपने सामने उपस्थित होते देखता रहता है।

उन्नति की आकांक्षा एक बहुत ही उचित, स्वाभाविक एवं आध्यात्मिक मनोवृत्ति है। तुच्छता से आगे बढ़कर महत्ता को प्राप्त करना प्रत्येक मानव प्राणी का स्वाभाविक कर्तव्य है। जीवन की पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की अभिलाषा का होना उचित भी है और आवश्यक एवं प्रशंसनीय भी। पर यह आकांक्षा तभी सफल हो सकती है, जब धैर्य, साहस, विवेक और पुरुषार्थ का समुचित सम्मिश्रण उसके साथ हो। प्रसन्न मन और स्थिर चित्त रहना इस मार्ग पर चलने वाले पथिक के लिए नितान्त आवश्यक है। वैज्ञानिक शोध करने वाले शोधकर्त्ता जीवन भर किसी शोध में लगे रहते हैं और एक प्रकार से सफलता नहीं मिलती तो दूसरा, तीसरा मार्ग सोचते हैं पर लगे उसी कार्य में रहते हैं। धैर्य में रत्ती भर भी कमी नहीं आने देते, असंतोष की एक रेखा भी उनके चेहरे पर नहीं होती। काम को काम समझकर वे करते रहने को ही अपने संतोष का आधार बनाये रहते हैं और वर्षों बीत जाने पर भी यदि सफलता न मिले तो खिन्नता की एक शिकन तक माथे पर नहीं पड़ने देते। यही स्थिति जिस किसी के मनःक्षेत्र की होगी केवल वही इस संसार में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेगा, केवल वही कोई बड़ी सफलता प्राप्त कर सकेगा।

असंतुष्ट व्यक्ति एक ओछा व्यक्ति है, जो प्रगति पथ पर बढ़ने की तैयारी में अपनी शक्ति को लगाने की अपेक्षा उसे कुढ़न में नष्ट करता रहता है। इस संसार की रचना कल्पवृक्ष के समान नहीं हुई है कि जो कुछ चाहे वह तुरन्त ही मिल जाया करे। यह कर्म भूमि है यहाँ हर किसी का अपना रास्ता आप बनाना पड़ता है, अपनी योग्यता और विशेषता का प्रमाण प्रस्तुत किये बिना कोई किसी महत्त्वपूर्ण स्थान पर नहीं पहुँच सकता। यहाँ हर किसी को परीक्षा की अग्नि में तपाया जाता है और जो इस कसौटी पर खरा उतरता है उसी को प्रामाणिक एवं विश्वस्त माना जाता है। ऐसे ही लोगों का दुनिया सहयोग करती है और उसे ही प्रगति के प्रवेश द्वार में घुसने की अनुमति प्रदान करती है। कुढ़न और असन्तोष किसी भी व्यक्ति के कुपात्र होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। कुपात्रों का, टूटे और गंदे बर्तनों का स्थान सदा कूड़े के ढेर में रहा है। हम भी यदि अपनी कुपात्रता सिद्ध करेंगे तो सम्मान के स्थान पर नहीं पहुँचने दिये जायेंगे कूड़े के ढेर में ही पड़े रहेंगे।

इस संसार का यह नियम है कि हँसमुख, प्रसन्नचित्त, आशावादी, उत्साही और सन्तुष्ट व्यक्ति के पीछे-पीछे लोग फिरते हैं क्योंकि हर व्यक्ति अपने जीवन में कुछ दुःख और चिन्ता छिपाये बैठा रहता है, वह अपना मन हल्का करने के लिए ऐसा सहारा ढूँढ़ता है जहाँ उसके घावों को कुरेदा न जाय, मरहम लगे। मनोरंजन के लिए लोग इसीलिए अपना बहुत-सा समय और धन खर्च करते हैं। सिनेमा, खेल, तमाशों, मेले-ठेले, सैर, यात्रा आदि मनोरंजनों की आवश्यकता इसी दृष्टि से मानी जाती है। उनके दूसरे लाभ भी हो सकते हैं पर प्रधान उद्देश्य यही रहता है। यही आवश्यकता लोग उस व्यक्ति से पूरी करना चाहते हैं, जो संतुष्ट और प्रसन्न दीखता है। खिले हुए गुलाब के चारों ओर भौंरे इसलिए मँड़राते रहते हैं क्योंकि फूल अपने आप में सर्वांगपूर्ण विकसित, प्रसन्न और सफल दिखाई देता है। सूखे, मुरझाये, कुचले हुए और सड़े-गले फूल पर भौंरा तो क्या कोई मक्खी भी नहीं बैठती। उसे उपेक्षा, उपहास और तिरस्कार के गर्त में फेंक दिया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुँह फुलाये, रूठे बैठे रहने वाले और चिड़चिड़ाते-बड़बड़ाते रहने वाले नर-नारी अपने समीपवर्ती लोगों की सहानुभूति खो बैठते हैं, उनसे सब लोग डरने और कतराने लगते हैं। चेचक और हैजा के रोगी से सब कोई अपना बचाव करते हैं कि कहीं यह छूत हमें भी न लग जाय। असंतुष्ट और खिन्न मनुष्य से झूठी सहानुभूति कोई भले ही प्रकट कर दे वस्तुतः मन ही मन उससे घृणा करते हैं और बचने की कोशिश करते हैं। कुढ़ने वाले व्यक्ति की कष्ट कथा सुनकर कौन आदमी अपने दुःख को बढ़ाना चाहेगा ? यहाँ तो सब को मनोरंजन की चाह है हँसोड़ और प्रसन्नमुख व्यक्ति की तलाश है। उसके समीप रहकर लोग अपना मनोरंजन करना चाहते हैं। मनहूस-सी शक्ल बनाये बैठे रहने वाले और दुःख दुर्भाग्य का रोना रोते रहने वाले लोगों के पास अपना मन क्षुब्ध करने के लिए भला कौन तैयार होगा ? सन्त और महापुरुषों की बात दूसरी है, वे दुःखियों के लिए अपना प्राण भी दे सकते हैं, पर सामान्य लोग तो उनसे बचने की ही कोशिश करेंगे ।

उन्नति कोई उपहार नहीं है जो छत फाड़कर अनायास ही हमारे घर में बरस पड़े। उसके लिए मनुष्य को कठोर प्रयत्न करने पड़ते हैं, प्रतीक्षा करनी पड़ती है और एक मार्ग अवरुद्ध हो जाय तो दूसरा सोचना पड़ता है। गुण, योग्यता और क्षमता ही सफलता का मूल्य है। जिसमें जितनी क्षमता होगी उसे उतना ही लाभ मिलेगा। कभी-कभी इसके अपवाद भी हो सकते हैं पर आमतौर से होता यही है कि उत्कृष्टता को प्राथमिकता मिलती है। दूध को गरम करते ही उसका अच्छा अंश मलाई के रूप में ऊपर तैरने लगता है। जिन व्यक्तियों का व्यक्तित्व जितना सुव्यवस्थित होता है उन्हें उतनी ही आसानी से उतनी ही बड़ी महत्ता एवं सफलता उपलब्ध हो जाती है। खेलकूद की प्रतियोगिताओं में जो खिलाड़ी अधिक सामर्थ्यवान होते हैं वे ही बाजी जीतते और पुरुस्कार पाते हैं। परीक्षा में अच्छे नम्बर लाने वाले अपनी प्रतिभा का उचित परिणाम अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। यदि हम अपनी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करें। गुण, कर्म, स्वभाव को सुव्यवस्थित बनायें तो असंतोष के कारणों का स्वयं ही समाधान होता चलेगा।

गरीबी दुनिया में वस्तुतः इतनी अधिक नहीं है जितनी कि दिखाई पड़ती है। मनुष्य प्रचुर धन का स्वामी बनने के अन्ततः ऐश्वर्य का सुखोपभोग करने के सपने देखा करता है। अपने से बड़े लोगों के साथ अपनी तुलना करके खिन्न होता है कि मैं भी इतना ही बड़ा क्यों न हो जाऊँ ? बस, ईर्ष्या और तृष्णा की आग प्रचंड वेग से उसके मन में जलने लगती है। कपड़ों में लगी आग से जलता हुआ मनुष्य कोई और उपाय न देखकर कुएँ में कूद पड़ने को भी इस आशा से तैयार हो जाता है कि मेरी जलन मिट जायगी। इसी प्रकार जिसका मन महत्त्वाकांक्षाओं की तृष्णा में बुरी तरह जल रहा है उसके लिए कुकर्म के कुएँ में कूद पड़ना भी कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

मनुष्य अनेक वस्तु चाहता है। अपने से बड़े और सुखी सम्पन्न स्थिति के लोगों को देखकर यह इच्छा उत्पन्न होती है कि हमारे पास भी इतना ही वैभव और ऐश्वर्य क्यों न हो ? इस प्रकार की तृष्णा ही असंतोष का कारण देखी जाती है। हमें चाहिए कि अपने से नीचे गिरे हुए दुःखी, और गरीबों से अपनी तुलना करते हुए संतोष की साँस लें कि परमात्मा ने हमें अनेकों से कमजोर भले ही बनाया हो पर असंख्यों से ऊँचा भी रखा है। असंतोष के यदि दस कारण जीवन में होते हैं तो सौ कारण सन्तोष के भी होते हैं। जो कुछ सन्तोष के कारण हमें प्राप्त हैं उन पर विचार करें और उनसे अपना चित्त प्रसन्न रखने पर प्रयत्न करें तो दृष्टिकोण के बदलते ही मन की खिन्नता का प्रत्यावर्तन प्रसन्नता और उल्लास में हो जाता है। हर इच्छा किसी की भी पूरी नहीं हुई। सब को, जो कुछ है उसी पर सब्र करके अधिक प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना पड़ता है। यही क्रम शान्तिदायक है, इसी को अपनाकर हम सन्तोष के अधिकारी बन सकते हैं।

महत्त्वाकांक्षा गुणों की होनी चाहिए। हम दूसरों की अपेक्षा अधिक विद्वान, अधिक स्वस्थ, अधिक संयमी, अधिक सेवाभावी, अधिक सभ्य, अधिक सहिष्णु, अधिक धार्मिक बनें यह प्रतिस्पर्धाएँ यदि चलने लगें तो व्यक्ति का पतन नहीं उत्थान ही होगा। तुच्छ कीट-पंतग की तरह निम्न श्रेणी का जीवनयापन न करके हम नर-रत्नों की श्रेणी में अपना नाम अंकित करें, महापुरुषों जैसे आदर्श उपस्थित करें । जीवन का लक्ष्य पूर्ण करके जीवन मुक्ति का आनंद प्राप्त करें। ऐसी महत्त्वाकांक्षाएँ यदि मन में जाग्रत रहें और उनके लिए हम प्रयत्न करें तो उसका प्रतिफल ऐसा ही हो सकता है, जिसके आधार पर सभ्य-समाज की रचना और युग-निर्माण का उद्देश्य पूर्ण हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तेजना-आवेग और आहार

आहार और आवेग का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। संवेग के गड़बड़ाने, घटने या बढ़ने से खुराक प्रभावित होती है यह सर्वविदित है। खुराक यदि प्रभावित हुई तो उसके दो प्रकार के परिणाम सामने आते हैं—दुर्बलता अथवा मुटापा। भोजन की मात्रा कम होने से कमजोरी आती है और ज्यादा होने पर स्थूलता बढ़ती है। स्थिर स्वास्थ्य तभी बना रह पाता है, जब आवेग नियंत्रित हो।

एम. एस. गजेनिगा अपनी रचना ''पैटर्न्स ऑफ इमोशन्स'' में लिखते हैं कि हमारा पूरा शरीर तंत्र और उसकी गतिविधियाँ संवेगों पर आधारित हैं। इसके अच्छा होने पर शरीर-क्रिया सामान्य बनी रहती है, जबकि इसकी बुरी प्रकृति समस्त प्रणाली को असामान्य स्तर का बना देती है। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाले आचार-व्यवहार से लेकर शरीर में चलने वाले सूक्ष्म आंतरिक क्रियाकलाप भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। भूख चूँकि सूक्ष्म आभ्यन्तरिक हलचल की परिणति है, अतः उस पर भी भावनात्मक उथल-पुथल का स्पष्ट असर दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं कि अध्ययनों के दौरान यह देखा गया है कि आह्लाद एवं तनाव की स्थिति में आहार की मात्रा बढ़ जाती है, जबकि उदासी और निराशा उसे अस्वाभाविक रूप से घटा देती है।

यह सच है कि बार-बार अधिक मात्रा में अधिक कैलोरी युक्त भोजन के लेने से मुटापा बढ़ता है पर आखिर तनाव के दौरान भोजन लेने की बार-बार आवश्यकता क्यों महसूस होने लगती है ? इस सम्बन्ध में शरीरशास्त्रियों का कहना है कि इसे आवश्यकता या इच्छा कहने के बजाय शरीर-क्रिया का एक अंग मानना ज्यादा उपयुक्त होगा। उनके अनुसार शरीर जब तनावग्रस्त होता है, तो भीतरी प्रणालियाँ उसे मिटाने के लिए अपने ढंग से प्रयास आरम्भ कर देती हैं और ऐसे रस-रसायनों का निर्माण करने लगती हैं, जो आन्तरिक दबाव को घटा सकें। इस क्रम में भूख उत्तेजित करने वाले रस-स्राव भी पैदा होने लगते हैं। इस स्राव के द्वारा काया तनाव को न्यून करने का उपक्रम करने लगती है। यही कारण है कि भोजन के मध्य व्यक्ति तनाव से कुछ राहत अनुभव करते हैं। यह राहत यों तो अस्थायी और अस्थिर होती है पर जब तक रहती है, व्यक्ति को आरामदायक स्थिति प्रदान किये रहती है।

इसी प्रकार जब कभी कोई बहुत गहरा भावनात्मक धक्का पहुँचता है तो एक बार फिर समस्त आन्तरिक संस्थानों का व्यतिक्रम हो जाता है और उससे आदमी दूसरे ढंग से प्रभावित होता है। चूँकि तनाव और विषाद में बाह्य लक्षणों के साथ-साथ आन्तरिक संरचना में भी फर्क होता है, इसलिए देह-संस्थान उन दोनों के साथ पृथक्-पृथक् ढंग से पेश आता है। तनाव में जहाँ भूख उत्तेजित होती है, वहीं अवसाद में वह घटती है। दबाव की स्थिति में यदि क्षुधा बढ़ती है, तो इसका एक ही मतलब है-शिथिलता लाना और काया को अस्वाभाविकता से मुक्त बनाये रखना। चूँकि उदासी की दशा में शरीर प्रायः तनावरहित होता है, अतः भूख बढ़ाकर उसे घटाने-मिटाने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसी कारण ऐसे समय में भीतरी तन्त्र क्षुधावर्धक रस उत्पन्न नहीं करते।

हाल की शोधों से भी इस तथ्य को बल मिला है कि भोजन और आवेग के बीच गहरा लगाव है। शिकागो मेडिकल स्कूल के अनुसन्धानकर्त्ताओं का कहना है कि डाइटिंग करने वाले लोग सामान्यजनों की तुलना में तनाव, आवेग और उत्तेजना के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। उनके अनुसार यदि ऐसे लोग डरावने दृश्य देख लें, तो उनके संवेग में असामान्य ढंग से वृद्धि हो जाती है। इस बढ़ोत्तरी के कारण इस मध्य उनकी आहार की मात्रा में भी आश्चर्यजनक वृद्धि होती देखी गई। इस स्थिति में मुटापा भी बढ़ने लगता है।

एक प्रयोग के दौरान वहाँ के अन्वेषणकर्त्ताओं ने इस बात की पुष्टि कर ली। शोधकर्त्ताओं ने इसके लिए ३० महिलाओं का चयन किया। इनमें १५ स्त्रियाँ ऐसी थीं जो डाइटिंग करती थीं। इन सभी को निश्चित संख्या में कुछ सूखे खाद्य पैकेट दिये गये। इसके उपरान्त उन्हें एक भयोत्पादक फिल्म ''हलोबीन'' के कुछ डरावने दृश्य दिखाये गये। आधा घण्टा पश्चात् फिल्म की समाप्ति पर जब उनकी खाद्य सामग्री का लेखा-जोखा लिया गया तो अध्ययनकर्त्ता यह देखकर विस्मय में पड़ गये कि जो महिलाएँ नियमित डाइटिंग करती थीं, उन सबने डाइटिंग नहीं करने वाले ग्रुप से दुगुने परिमाण में भोजन उदरस्थ किया था।

उक्त परीक्षण से वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि डरावने दृश्यों से तनावजन्य आवेग में वृद्धि होती है। काया उसे अपने ढंग से सुधारने के क्रम में आन्तरिक क्रिया-विधि में परिवर्तन लाती है। अन्तर के इस बदलाव के कारण भूख बढ़ाने वाले रसों का निर्माण होता है। इससे जठराग्नि की ज्वाला भड़कती है। क्षुधा बढ़ती है, तो बार-बार खाने की आवश्यकता अनुभव होती है, जिसके कारण मुटापे में उत्तरोत्तर विकास होने लगता है। इस वृद्धि के साथ शारीरिक कठिनाइयाँ भी बढ़ने लगती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं, जिससे व्यक्ति तब तक छुटकारा नहीं पा सकता, जब तक इसके पीछे के निमित्त को नियन्त्रित न किया जाय। देखा गया है कि भावनात्मक संवेग को साध लेने पर फिर इस प्रकार की शिकायत देर तक टिकी नहीं रह पाती। इसलिए विशेषज्ञ इस सम्बन्ध में प्रायः यह सलाह देते देखे जाते हैं कि आवेग और उत्तेजना पर यदि अंकुश लगाया जा सका तो एक सीमा तक मुटापे को नियन्त्रित किया जा सकना सम्भव है।

यों तो चर्बी बढ़ने के कई अन्य कारण भी हैं, पर सबमें प्रमुख भावनात्मक अव्यवस्था ही है। इससे भीतरी तन्त्रों पर दबाव पड़ता है जो चर्बी को बढ़ाने लगता है। इन दिनों अमरीका में पिछले समय की तुलना में ५१ प्रतिशत लोगों में यह शिकायत बढ़ी है। इसका प्रमुख कारण वहाँ डरावनी और हिंसक फिल्मों के प्रति बढ़ती लोकप्रियता है। स्वास्थ्य-संतुलन वस्तुतः अधिकाधिक इस बात पर निर्भर है कि हमारा आहार-विहार और दिनचर्या क्या है ? किस वातावरण और परिवेश में हम रहते हैं ? हमारी संवेगात्मक स्थिति कैसी है ? इन बातों पर समुचित ध्यान दिया जा सके और इन्हें यदि असामान्य बनने से रोका जा सके तो उन कारकों को भी नियन्त्रित किया जा सकना शक्य है जो शारीरिक स्थूलता वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं।

चेतना क्षेत्र की अराजकता

बढ़ते प्रदूषण एवं विकिरण, अमर्यादित प्रजनन, महामारियों, प्रकृति जैसी विभीषिकाओं को जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रही हैं एक संतुलित मनःस्थिति से देखा जाय तो प्रतीत होता है कि ये सभी विग्रह मनुष्य की अपनी करनी से जन्मे हैं एवं इनकी प्रतिक्रिया अगले ही दिनों इस रूप में प्रकट होगी कि मनुष्यों का ही नहीं, अन्यान्य प्राणियों का रहना भी इस धरातल पर दूभर हो जायेगा। जब सर्वत्र विष ही विष का भरा-पूरा समुद्र हिलोरें ले रहा हो, तो उसके बीच प्राणसत्ता का अस्तित्व किस प्रकार अक्षुण्ण बना रह सकेगा, यह विचारणीय प्रश्न है।

चेतना की शक्ति अपार है। उससे सृजन भी बन पड़ता है और महाविनाश का क्षण भी देखते-देखते सामने आ खड़ा हो सकता है। अद्यावधि प्रगति चेतनात्मक परिष्कार और विकास के ही आधार पर सम्भव हुई है। यदि वह उद्गम तन्त्र लड़खड़ा गया तो फिर न केवल असहयोग-जन्य बिखराव होगा, वरन् आक्रामकता के विस्तार की बाढ़ में मानवी सभ्यता के लिए ही नहीं सत्ता के लिए भी संकट खड़ा हो जायेगा। पतन के गर्त में गिरते-गिरते उस स्थिति तक पहुँचा जा सकता है, जहाँ से फिर कभी लौटना सम्भव न हो।

विज्ञान की एक धारा विकृत बुद्धिवाद बनकर सामने आयी है। उसने प्रत्यक्षवादी विचारधारा को भी कम उत्तेजित नहीं किया। प्रत्यक्षवादी अर्थात् तात्कालिक लाभ को ही सब कुछ मान बैठने की धारणा। भले ही उसके कारण कुछ ही समय उपरान्त अनेक गुने संकटों को अति कष्टपूर्वक वहन करना पड़ा हो। दूरदर्शी विवेकशीलता को अमान्य ठहराने वाली, तुरन्त के लाभ को ही सब कुछ समझने वाली संकीर्ण स्वार्थपरता ही प्रत्यक्ष परायण बुद्धिवाद के रूप में एक नया तत्त्वदर्शन बनकर लोक चेतना को अपने वशवर्ती बनाने में सफल हुई है। इसकी क्रिया-प्रतिक्रिया और परिणति पग-पग पर प्रकट होती देखी जा सकती है। इस प्रत्यक्षवाद को वैज्ञानिक भौतिकवाद से किसी भी प्रकार कम भयंकर नहीं आँका जा सकता। वस्तुओं की अस्त-व्यस्तता मानव समाज को प्रभावित तो करती है, पर उतना नहीं जितना कि चिन्तन के गड़बड़ा जाने पर उद्विग्न कर डालने वाले घटाटोप उमड़ते हैं एवं अर्ध-विक्षिप्तता जैसी स्थिति सामने आ खड़ी होती है।

आदर्शों का निर्वाह और असीम सुखोपभोग की आतुर लालसा का उद्वेग एक स्थान पर एक साथ रह नहीं सकते। जहाँ एक रहेगा वहाँ दूसरे को पलायन करना पड़ेगा। अन्धकार और प्रकाश साथ-साथ रहने के लिए कहाँ सहमत होते हैं ? विवशता का दबाव ही एक सीमा तक परस्पर एक-दूसरे को सहन कर पाता है। अनियन्त्रित लिप्सा तात्कालिक लाभ के लिए बड़े से बड़ा अनर्थ करने में भी नहीं हिचकती। यहाँ तक कि आत्मघात तक उस उन्माद में अनदेखा बनकर रह जाता है। नशे वालों की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक हर दृष्टि से कैसी दुर्दशा होती है, इसकी जानकारी प्रायः सभी को होती है। पर तत्काल मिलने वाली मस्ती को अपनाये बिना उस प्रकार के व्यसनियों से रहा नहीं जाता। दूर की बात कौन सोचे ? परिणाम का अनुमान लगाने की फुर्सत किसे मिले ? निषेध और विरोध अपनी लकीर पीटते रहते हैं पर नशे के व्यवसाय एवं नशेबाजों के समुदाय में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती जाती है। विवेक को तिलाञ्जलि देने के उपरान्त उन्माद की तृप्ति ही एक मात्र अवलम्बन बन जाती है। दूसरों को दुष्परिणाम भुगतते देखकर भी आवेशग्रस्तों की आँखें नहीं खुलतीं।

जीभ के चटोरेपन में हाथों-हाथ स्वाद चखने का मजा आता है। इस प्रसंग में अत्यधिक मात्रा में अभक्ष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदरस्थ किये जाते हैं। अपच उसी का प्रतिफल है। वह अपच जो कुछ ही दिनों पेट में सड़न भरी विषाक्तता उत्पन्न करके रक्त विकार से लेकर अनेकानेक रोगों का निमित्त कारण बनता है। कई बार तो दुष्परिणाम और भी जल्दी सामने आ खड़े होते हैं। उल्टी, दस्त, उदरशूल जैसी व्यथाएँ चटोरे लोगों को अक्सर हाथों-हाथ ही होते देखी जाती हैं भारी पेट लेकर चलना, काम करना, गहरी नींद सोना कठिन हो जाता है। फिर भी जिह्वा के स्वाद की ललक इतनी प्रचण्ड रहती है कि स्वाद के नाम पर विष भक्षण करना पड़े तो भी अपनी हरकत से बाज न आयें। लोग प्रायः एक चौथाई जिन्दगी इस चटोरेपन के कारण ही गँवा बैठते हैं। जितने दिन जीते हैं वे भी रुग्णता और दुर्बलता से आये दिन कराहते हुए ही ज्यों-त्यों करके गुजारते हैं।

कामुकता अपने ढंग का एक दूसरा उन्माद है, जिसकी चसक और ललक होश सँभालने से लेकर मरते दम तक पीछा नहीं छोड़ती। यह जीवन रस को निचोड़ते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह अपने ओजस की फुलझड़ी जलाकर चित्र-विचित्र तमाशा देखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। दाद खुजाते-खुजाते रक्त निकल आता है, पर खुजाने वाले हाथ रुकते कहाँ हैं ? कुत्ता सूखी हड्डी चबाकर अपने मसूड़े छील लेता है और घावों से टपकने वाले खून को चाटकर समझता है कि सूखी हड्डी बड़ी रसदार और जायकेदार है। यौनाचार तो कुछ क्षण के लिए ही अवसर मिलने पर सम्भव होता है पर अश्लीलता का विषमज्वर तो मस्तिष्क को हर घड़ी आन्दोलित करता रहता है। ऐसे रंगीन सपने गढ़े और कल्पनालोक में फिल्माये दिखाये जाते हैं, मानो अब-तब में वह प्रत्यक्ष ही होने जा रहा हो। यह हवस कुदृष्टि को जन्म देती है। भगिनी, पुत्री को छोड़कर और सबकी पवित्रता तिरोहित हो जाती है और संसार भर की युवतियाँ मात्र ऐसी वेश्याएँ प्रतीत होती हैं, जो कल्पनाशीलों के लिए ही अपना समर्पण करने की प्रतीक्षा कर रही हों। इस ललक से यौनाचार से भी अधिक घातक और अहर्निश विषमज्वर की तरह चढ़ा रहने वाला बुखार मानसिक दक्षता को खोखला करके ही रहता है। शरीर तो समय, कुसमय निचुड़ता ही रहता है। चरित्र की दृष्टि से भी आचरण नर-पशुओं जैसे बन पड़ते हैं। इस अनर्थ को देखते हुए भी संयम बरतने की सूझ उभरती नहीं। वैयक्तिक और सामाजिक जीवन इसी कारण असह्य भार से दबता जाता है। राष्ट्रीय प्रगति तो बन ही कैसे पड़े ? विकास के जितने साधन जुट पाते हैं, उनसे अनेक गुने अभ्यागत पहले ही हाथ पसारे अपनी माँगें व्यक्त करते हुए देखे जाते हैं।

सज-धज, ठाठ-बाट, फैशन, शृंगार में अमीरी और अहमन्यता की पूर्ति मानने वाली ना-समझी आर्थिक भार इतना अधिक बढ़ा देती है कि उनकी आपूर्ति ईमानदारी की सीमित कमाई से बन ही नहीं सकती। इस पर भी कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों की मार जो धूमधाम वाली शादियों के रूप में जब मचलती है तो अर्थ संतुलन को पूरी तरह समाप्त कर देती है। श्रम से जी चुराने की, काम में हेटी मानने की, आलस्य प्रमाद में बड़प्पन अनुभव करने वालों की बिरादरी यदि सदा-सदा के लिए गरीबी के चंगुल में फँसी रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? आमदनी बढ़ने की बात सोचना उचित है पर अपव्यय के स्वभाव का अंग बने रहने पर तो कुबेर का खजाना भी खाली हो सकता है। प्रस्तुत अदूरदर्शिता को व्यापक गरीबी के कारणों में से सबसे प्रमुख और बड़ा माना जा सकता है।

मर्यादाओं और वर्जनाओं का अंकुश उतार फेंकने के उपरान्त गगनचुम्बी लिप्सा, लालचों, महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए एक ही मार्ग रह जाता है—अनाचार। उसके असंख्यों आकार-प्रकार हैं। दुर्बल स्तर के व्यक्ति चोरी, उठाईगीरी, ठगी, जुआ, प्रपंच पाखण्ड जैसे जाल-जंजाल रचते रहते हैं। भिक्षा माँगने से लेकर विश्वासघात करने तक में नहीं चूकते पर जो समर्थ हैं, उनके लिए तस्करी, डकैती, हत्या, गिरोहबन्दी, दादागिरी करने के द्वार खुले रहते हैं। वे आतंकवादी, आक्रमणकारी बनने से लेकर अपहरण और हत्याकाण्ड तक में कोई कसर नहीं रखते। इनके अन्तर्प्रान्तीय, अन्तर्राष्ट्रीय माफिया गिरोह तो ऐसे-ऐसे कुकृत्य करते हैं, जिनके विवरण सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जो सजातीय मनुष्यों पर दया नहीं कर सकते उनके लिए पशु-पक्षियों और जलचरों की घटना बना लेना बाँये हाथ का खेल ही हो सकता है। निर्दयता ही प्रकारान्तर में अपराध वृत्ति है जिसे मानवी गरिमा गँवा बैठने के उपरान्त ही अपनाया जा सकता है। आखिर यह सब है क्या ? इसके उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है। तात्कालिक लाभ को प्रधानता देने वाले प्रत्यक्षवाद को लोक मान्यता मिलना। इसने कर्मफल, नीतिधर्म, लोक-परलोक, कर्तृत्व, औचित्य सभी को उठाकर ताक पर रख दिया है। रिश्वत से लेकर मिलावट तक के असंख्य वेशधारी अपराध इस एक ही कन्दरा से निकलने वाले टिड्डी दल हैं। पागल क्या नहीं करता ? विवेक के पलायन कर जाने पर मनुष्य समझदार दीखते हुए भी वस्तुतः भावना क्षेत्र का उन्मादी ही कहा जा सकता है। तथ्यतः यह सब प्रत्यक्षवाद की तूती बोलना ही कहा जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामाजिकता, नागरिकता, नीतिनिष्ठा, उदारता, न्यायशीलता और समाज-मर्यादा आदि सभी मानवी विशेषताओं को वस्तुतः शालीनता के ही विभिन्न पक्ष और प्रयोग के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। जब मनुष्य नितान्त स्वार्थपरायण हो जाय और उसने क्षुद्रतम संकीर्णता अपना ली हो तो फिर मत्स्य न्याय अपनाया या उसका शिकार बनाना ही एकमात्र नियति रह जाती है। यह पशुओं से भी गई-गुजरी स्थिति है। पशुओं पर प्रकृति का अंकुश तो रहता है, वे उसे तोड़ने की उच्छृंखलता तो नहीं बरत पाते, पर मनुष्य तो सर्वथा स्वतन्त्र जो ठहरा। किसी नियम-मर्यादा का पालन करना न करना पूरी तरह उसकी स्वेच्छा पर निर्भर है। वह ईश्वर से लेकर, समाज शासन के तथाकथित अंकुशों को पूरी तरह अँगूठा दिखा सकता है। फिर कभी कुछ खामियाजा भी भुगतना पड़ा तो निर्लज्जों का इतने में क्या बनता-बिगड़ता है ?

यही हैं वे सब कारण जिसके कारण न नीति बची है, न सामाजिक मर्यादा। धर्म कर्तव्य जैसी बातें तो मनोविनोद की चर्चा भर बनकर रह गई हैं। उन्हें व्यवहार में उतारने की आवश्यकता कौन समझता है ? स्पष्ट है कि इस स्तर की मनःस्थिति के रहते परिस्थितियाँ ऐसी रह ही नहीं सकतीं जिसमें सुख चैन से रहा और रहने दिया जा सके।

शारीरिक रुग्णता, मानसिक उद्विग्नता, आर्थिक अभावग्रस्तता, पारिवारिक विशृंखलता, सामाजिक अराजकता के रहते आशंका, अनिश्चितता और आतंक का ही माहौल सर्वत्र छाया रह सकता है। जिस-तिस बहाने उपद्रव और विग्रह उभरते ही रहेंगे। आपसी असहयोग बना रहे, आन्तरिक असंतोष भरा रहे तो बाहरी क्षेत्र की सुविधाएँ किसी का क्या हित साधन कर सकती हैं ? समाचार सुनने का, पढ़ने का जब भी अवकाश मिलता है तो अनर्थों की ही तूफानी बाढ़-सी आई लगती है, संदेह होता है कि देव निवास कहा जाने वाला धरातल कहीं भूत-प्रेतों की भयावह दुनिया में तो नहीं बदल गया। ऐसी दशा में शान्ति और प्रगति की योजनाएँ बनाना एक स्वप्न संसार गढ़ लेने के समतुल्य ही माना जायेगा।

ऐसे ही वातावरण की प्रतिक्रिया प्रकृति को कुपित करती है और ऐसी दैवी प्रकोपों की झड़ी लगाती है, जिनके कारण न पूरी तरह जीते रहना बन पड़े और न सर्वथा मर जाना ही सम्भव हो। इसे साँस चलना रोक देने वाली घुटन जैसी स्थिति कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इन दिनों हम सब ऐसे ही माहौल में रह रहे हैं। जब-तब इस सन्दर्भ में बड़े विस्फोट भी फूटते हैं, तब चौंकते हैं कि यह अनर्थ हम सबको काल के गाल में न झोंक दे।

भविष्य की विभीषिकाओं की अक्सर भविष्यवाणियाँ होती रहती हैं, उनके पीछे विद्यमान कारणों में बढ़ता हुआ प्रदूषण, उभरता अभाव, उद्भिजों जैसा प्रजनन, सामाजिक सद्भावों का विघटन ही नहीं, एक अत्यन्त सबल कारण यह भी है कि मनुष्य ने अपने भावनात्मक, चिन्तनपरक, चारित्रिक एवं उदार सहकारिता के अनुबन्धों को तिलाञ्जलि देते हुए ऐसी संस्कृति अपना ली है, जिसे बौद्धिक प्रत्यक्षवाद पर अवलम्बित मानवी सत्ता के हर पक्ष में घुस पड़ी अराजकता ही कहा जा सकता है।

क्या मानवी सत्ता मात्र रसायनों की पोटली है ?

भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य भावनाओं का एक पुंज है तथा भावनाओं की पूर्ति के लिए एक पंच भौतिक पुतला रचा गया है। यही शरीर है। शरीर भावनाओं की पूर्ति के लिए है न कि भावनाएँ शरीर की पूर्ति के लिए।

जिस प्रकार बुद्धिवादी भौतिक विचारधारा के अनुसार जीवन का उद्भव कुछ रसायनों के सम्मिश्रण से हो गया, उसी प्रकार भारतीय दर्शन की मान्यता है कि जीवन का उदय परब्रह्म की उस भावना से हुआ, जिसमें उसने एक से अनेक होने की इच्छा की। वैदिक मान्यता के अनुसार अनादि ब्रह्म को जब अकेलापन अखरने लगा तो उसके मन में संकल्प उठा **''एकोऽहं बहुस्यामि''** तथा वह एक से अनेक में विभक्त हो गया। इस प्रकार जीव तथा मनुष्य का उद्भव भावना से हुआ।

इसीलिये मनुष्य भावना से उद्भूत भावनाओं का एक पुतला है। इन भावनाओं ने स्वयं को विचारों तथा पंचभौतिक शरीर के रूप में प्रकट किया है। शरीर भावनाओं की अभिव्यक्ति है, मनुष्य का मूल रूप नहीं।

इसे समझने के लिए मानवी सत्ता की तुलना समुद्र में तैरने वाले आइस वर्ग से की जा सकती है। इसका १/९ भाग ही जल में ऊपर तैरता दीखता है, शेष ८/९ भाग पानी के अन्दर होता है। यदि आइस वर्ग का अदृश्य भाग सम्पूर्ण मानवीय सत्ता है तो दृश्य भाग को इसकी काया माना जा सकता है। आज के विज्ञान ने मनुष्य को सिर्फ शरीर मानकर वैसी ही मूर्खता की है, जैसी दस नाविक ने जिसने हिमिखण्ड को छोटा समझकर उसके गोचर भाग को ही उसका वास्तविक स्वरूप मानकर उसमें अपना जहाज भिड़ाया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिकित्साशास्त्र मनुष्य को रसायन मानकर रोगों का कारण व निवारण रसायनों में खोज रहा है। इस प्रयोजन में जो उसके हाथ लगा, वह सर्वविदित है। हाई ब्लड प्रेशर पर जितनी शोध हो रही है, उतना ही वह बढ़ता जा रहा है। शरीर का कोना-कोना छान मारने पर भी कैंसर का कारण ज्ञात नहीं हुआ। कारण वहाँ हो तो मिले। वह तो पानी के नीचे छिपे हिमिखण्ड के अदृश्य भाग में है, अब तथ्य सिद्ध होता जा रहा है देखा जाता है। कि अधिकांश शरीर की व्याधि एक ऐसी भावनात्मक विकृति का बाहरी लक्षण है, जो मनुष्य के गहन अन्तराल में होती है, पर दीखती वह नहीं। गलती हम यही कर बैठते हैं कि जो दृश्यमान रोगग्रस्त भाग है, उसे ही सब कुछ मानकर उपचार उसीका करने लगते हैं और जो सूत्रधार बना बैठा पूरे तन्त्र का संचालन कर रहा होता है, उसे अदृश्य व मुख्य कारण पक्ष की उपेक्षा कर बैठते हैं। फलतः चिकित्सा प्रयास के बावजूद निराशा ही हाथ लगती है। जब तक कारण के मूल तक नहीं पहुँचा जा सकता सफलता की आशा दुराशा मात्र ही रह जायेगी। विकृत भावनाएँ किस प्रकार कायिक रोग का स्वरूप ग्रहण करती हैं। इसका अच्छा उदाहरण उस अमेरिकी महिला का है जो खुजली से बुरी तरह परेशान थी। यह खुजली उसे तभी उठती जब वे प्रार्थना करने गिरजाघर जाया करतीं। अनेकानेक उपचार करवाये पर खुजली ठीक न हो सकी। अन्त में वह अमेरिका के प्रख्यात मनःशास्त्री नॉरमन विसेण्ट पिल के पास पहुँचीं और सारा हाल कह सुनाया। वहाँ विगत जीवन की कुरेदबीन से ज्ञात हुआ कि वह जिस फर्म में नौकरी करती थीं, वहाँ से प्रायः कुछ पैसे चुरा लिया करती थीं और अपना अर्थाभाव पूरा करती थीं। कुशल विशेषज्ञ ने तुरन्त भाप लिया कि निश्चय ही रोग का कारण इसी चोरी से कहीं छिपा है। उसने महिला को सलाह दी कि वह इस चोरी को अपने मालिक के समक्ष प्रगट कर क्षमा याचना माँग ले और यह भी आश्वस्त करे कि वह आगे ऐसी गलती नहीं करेगी। महिला ने ऐसा ही किया और देखते ही देखते उसका मर्ज समाप्त हो गया।

इस प्रकार दिन-प्रतिदिन यह तथ्य अब और सुस्पष्ट होता जा रहा है कि भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए ही शरीर तन्त्र की व्यवस्था सृष्टा ने की है। भावनाएँ जिस स्तर की होती हैं उसका प्रभाव परिणाम भी काया में उसी स्तर का दृष्टिगोचर होता है। स्वच्छ भावनाओं से शरीर सदा स्वस्थ बना रहता है, जबकि रुग्ण अन्तःकरण अनेकानेक बीमारियों का निमित्त कारण बनता है। इन दिनों इसके प्रमाण-उदाहरण सर्वत्र देखे जा सकते हैं। क्या ग्रामीण, क्या शहरी, क्या अमीर, क्या गरीब आज सभी स्वास्थ्य की समस्या से परेशान हैं। आये दिन हट्टे-कट्टे लोग हार्ट अटेक या कैंसर से मरते देखे जाते हैं और यह सब तब हो रहा है जब हर व्यक्ति पिछले दिनों की अपेक्षा स्वास्थ्य के प्रति कहीं ज्यादा जागरूक है। पोषण के सिद्धान्त स्कूलों, कॉलेजों में तथा रेडियो टेलीविजन द्वारा जन-जन तक पहुँचाये जा रहे हैं। जितनी मेडिकल रिसर्च आज हो रही है, शायद इतनी पहले कभी न हुई हो। अस्पतालों, डाक्टरों व डिस्पेंसरियों की संख्या उसी तरह बढ़ रही, जैसे कैंसर का फोड़ा और उसके साथ-साथ बढ़ रहे हैं रोग ''सुरसा के मुँह'' की तरह। कारण यही है कि आज के विज्ञान की मूलभूत मान्यताएँ ही गलत हैं।

मनुष्य शरीर नहीं है तथा रोग का कारण बाह्य परिस्थितियों में विद्यमान नहीं है। इस तथ्य को स्वीकारने पर ही स्वास्थ्य संकट समेत अन्यान्य समस्याओं का सही समाधान हस्तगत होने की आशा की जा सकती है। पिछले दिनों के शोध निष्कर्ष से भी इसकी पुष्टि हुई है।

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में शोध के दौरान पाया गया कि जीव कोष अपने वातावरण में उपलब्ध रसायनों का उपयोग भर करता है। इनसे उसके अंतरंग में चलने वाली मूलभूत प्रतिक्रियाएँ बदलती नहीं और न किसी प्रकार से प्रभावित ही होती हैं। मनुष्यों तथा जानवरों से बुढ़ापे की प्रक्रिया (एजिंग प्रोसेस) का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिकों को कुछ ऐसे ही प्रमाण मिले हैं। इसाडोर रॉसमैन द्वारा संपादित ''विलनिकल जिरिएट्रिक्स'' पुस्तक में बुढ़ापे की मूलभूत प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए डॉ. राल्फ गोल्डमैन ने लिखा है कि ''बुढ़ापा एक ऐसी प्रक्रिया है जो कोष के अन्दर से ही उपजती है। बाह्य वातावरण (रसायनों आदि) में उसका कारण विद्यमान नहीं है।''

कोषीय बुढ़ापे (सेल्युलर एजिंग) पर की गई आधुनिकतम शोधों में कोषों को रासायनिक दृष्टि से उत्तमोत्तम कल्चर माध्यमों में रखकर देखा गया। यह पाया गया है कि कोषों के बुढ़ापे को किसी भी पोषक या रासायनिक तत्त्व से रोका नहीं जा सकता। सब प्रकार के अनुकूल माध्यमों (कल्चर मीडिया) में भी कोषीय बुढ़ापे की दर नहीं रही।

इस प्रकार सिद्ध हो गया है कि दवाएँ या रसायन मनुष्य को बूढ़ा होने से नहीं रोक सकते। यदि मनुष्य मात्र रसायनों का खोल होता तो कोई कारण नहीं कि उसका बुढ़ापा रसायनों पर आधारित न होता। बुढ़ापे के समान ही कोषों की अन्य मूलभूत प्रक्रियाओं ने भी बाह्य रसायनों से अप्रभावित माना गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवकोष का विभाजित होकर १ से २ में परिवर्तन हो जाना भी एक मूलभूत कोषीय प्रक्रिया है तथा इसका कैंसर से विशेष सम्बन्ध है। कोष १ से २ में क्यों और कब परिवर्तित होते हैं ? इसके नवीनतम ज्ञात नियम को ''दि कन्सेप्ट ऑफ क्रिटिकल सेल मास'' कहा जाता है। ''दि फिजियालॉजिकल बेसिस ऑफ मेडीकल प्रैक्टिस'' ग्रन्थ में इस सन्दर्भ में विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कोष विभाजन उसके अन्तरंग से सम्बन्ध रखता है। कोष को एक से दो होने की प्रेरणा बाहर से नहीं आती। वह कोष के अन्दर से ही उपजती है। जब कोष का भार किसी निश्चित भार से अधिक हो जाता है तो वह दो में विभक्त हो जाता है। कोष को विभाजित होना चाहिए। ऐसी कोई सूचना बाहर से नहीं आती। यह प्रक्रिया उस वैदिक मान्यता से बिल्कुल मेल खाती है, जिसमें कहा गया है कि जीव का उद्भव एक अन्तःस्फुरणा से हुआ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य मात्र रसायनों का समुच्चय ही नहीं वरन् भावनाओं का पिटारा भी है, जिसमें भावनाएँ प्रधान और रसायन गौण हैं। यदि ऐसा नहीं रहा होता, शरीर मात्र रसायनों पर आधारित होता तो अभीष्ट रसायन के उपयुक्त परिमाण में इकट्ठा होने पर जीवकोष का विभाजन आरम्भ हो जाना चाहिए पर प्रयोगों के दौरान ऐसा कुछ होता नहीं देखा गया। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि अन्तःप्रेरणा ही वह आधारभूत कारण है जो कोषों का विभाजन, अभिवर्धन, परिवर्तन को नियन्त्रित करता है। तात्पर्य यह है कि जन्म से लेकर मृत्युपरान्त शरीर में जो अनेकानेक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं, उसमें अन्तःप्रेरणा भावना का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है।

इस तथ्य पर वर्तमान युग की अभिनव-चिकित्सा विधा ''सजेस्टोलॉजी'' द्वारा और अधिक प्रकाश पड़ता है। इससे यह सहज ही जाना जा सकता है कि भावना शरीर को किस हद तक प्रभावित करती है। चूँकि यह पद्धति भाव प्रधान है, अतः सीधे भाव-क्षेत्र को प्रभावित करती है। इसी कारण आटोसजेशन और हेट्रोसजेशन से होने वाले स्वास्थ्य लाभ चमत्कारिक स्तर के देखे जाते हैं, क्योंकि इसकी पहुँच रोग की जड़-विकृत भावना तक होती है। इस प्रणाली द्वारा कैंसर तक को ऑटो सजेशन से ठीक करने का दावा किया गया है। सजेशन से होने वाले अप्रत्याशित व चमत्कारी लाभों को देखकर बड़े-बड़े ने दाँतों तले उँगली दवा ली है। यह तो सभी मानते हैं कि मनःसंस्थान शरीर को प्रभावित करता है। पर इन उदाहरणों ने शरीर तथा मन के बीच नौकर और मालिक जैसा रिश्ता स्थापित कर दिया है।

ठीक से देखा जाय तो यह कोई चमत्कार या आश्चर्य नहीं है। जिन भावनाओं पर शरीर आधारित है उन्हीं की विकृति से यह रोगी हुआ था तथा विकृति के निवारण से स्वस्थ हो जाय तो यह नितान्त स्वाभाविक ही है। सच तो यह है कि भावनात्मक विकृति सही हुए बिना रोग स्थायी रूप से सही हो ही नहीं सकता।

रसायनों द्वारा की गई चिकित्सा कुछ समय के लिए ऊपरी लीपा-पोती तो कर सकती है, पर ये बेचारे जड़ रसायन भावनाओं में घुसी रोग की उस सूक्ष्म जड़ तक कैसे पहुँचे जब तक रोग स्रोत रूप में शरीर में विद्यमान रहेगा, तब तक वह इस रासायनिक लीपा-पोती को फोड़कर किसी-न-किसी व्याधि के रूप में प्रकट होता ही रहेगा। इसके विपरीत यदि रोगी की भावनाएँ स्वस्थ हो जायें तो शरीर का स्वस्थ होना अथवा रोग का निराकरण होना अवश्यम्भावी हो जायेगा।

''साइकोसोमेटिक'' रोगों का भी रसायनों के आधार पर उत्तर देना असम्भव है तथा इन रोगों का साइकोथैरेपी (मनःचिकित्सा) के आधार पर जिससे कोई रसायन कहीं खिलाये जाते ठीक हो जाना भी एक ऐसा प्रश्न है जो रसायनों की थ्योरी से मेल नहीं खाता।

सबसे बड़ा प्रश्न वहाँ उठता है जहाँ पैरासाइकोलॉजी की बात चलती है। अतीन्द्रिय क्षमताओं का होना वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है। किन्तु साइफेनोमेना किसी भी भौतिक, रासायनिक आधार पर वहीं समझाई जा सकती। एक शीशे में रखा हुआ रसायनों का डेला (या एक खोपड़ी में बन्द रसायनों का पुंज मस्तिष्क) यह कैसे जान लिया कि दूसरी खोपड़ी में क्या रखा है, दूसरा व्यक्ति क्या सोच रहा है ?

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इन सब जंजालों से बचने के लिए यह मान लिया कि मनुष्य में शरीर की सुविधा के लिए एक मानसिक शक्ति या क्षमता भी कार्य करती है, पर इसका उद्भव रसायनों के शरीर से कैसे हुआ इस प्रश्न के उत्तर में वह मौन है।

कुछ भी हो यह अवश्य है कि शरीर रसायनों से बना है। इसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्न, जल, वस्त्र जैसे माध्यमों की जरूरत होती है यह भी सही है किन्तु यह गलत है कि रसायन ही मनुष्य शरीर को बनाते चलाते हैं और वे ही उसके मनःसंस्थान को प्रभावित करके सोचने तथा करने के लिए प्रेरित करते हैं। मनुष्य के साथ रसायन लिपटे तो हैं पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे उसकी स्वामी नहीं हैं। आत्म चेतना ही वह शक्ति है, जो मानवी मस्तिष्क और शरीर की अधिष्ठात्री है। उसका सन्मार्ग कुमार्ग का चयन करने पर जीवन की प्रगति एवं दुर्गति होती रहती है।

दुर्बल मनःस्थिति पर पड़ने वाले आघात और उनकी प्रतिक्रिया

शरीर पर मस्तिष्क का नियन्त्रण है। शरीर रोगों का मोटा कारण आहार-विहार की विकृति माना जाता है पर यह ध्यान रखने की बात है कि न केवल शरीर गत वरन् जीवन के सभी क्षेत्रों में बढ़ती जा रही विकृतियों का मूल कारण मानसिक विकृतियाँ ही होती हैं। असंयमी, अस्त-व्यस्त व्यक्ति मानसिक दृष्टि से अविकसित होता है उसे अपने कलपुर्जों का, अंग-अवयवों का ठीक तरह उपयोग करना नहीं आता, फलतः वे टूट-फूटकर अवांछनीय स्थिति पैदा करते हैं। शरीर रोगियों में से जो आहार-विहार की सामान्य गड़बड़ियों से पीड़ित होते हैं, वे औषधि लेने एवं परहेज करने से जल्दी ही अच्छे हो जाते हैं, पर जिनकी जड़ें मस्तिष्क की गहराई में घुसी होती हैं, वे शरीर चिकित्सा के अनेक साधन जुटाने पर भी अच्छे नहीं होते।

मानसिक रोगों में एक बहु प्रचलित रोग है 'हिस्टेरिया'। यों यह स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध किसी को भी किसी भी आयु में आरम्भ हो सकता है, पर उसका अधिक आक्रमण स्त्रियों पर होता है और उसके आरम्भ होने की आयु किशोरावस्था अथवा उसके बाद नव यौवन में प्रवेश करते समय की होती है। मस्तिष्क का शरीर पर से कुछ समय के लिए नियन्त्रण टूट जाने और अचेतन में जमी विकृतियों का नंगा नृत्य दिखाने की अवांछनीय स्थिति को हिस्टेरिया, अपस्मार, मृगी आदि नामों से पुकारते हैं।

हिस्टीरिया को एक किस्म का सामयिक एवं मानसिक पक्षाघात कह सकते हैं। साधारण लकवे में भी गड़बड़ी तो मस्तिष्क की ही होती है, पर उसमें सोचने की शक्ति का लोप नहीं होता किन्तु शरीर के हाथ-पैर, मुँह आदि अन्य अंग भी प्रभावित होते हैं। परोक्ष में स्नायु संस्थान को जो आघात लगा है, उसे यंत्रों द्वारा जाना, आँका जा सकता है। हिस्टीरिया की स्थिति इससे थोड़ी भिन्न होती है। उसका दौरा कुछ ही समय के लिए आता है और बिना उपचार के अपने आप ही अच्छा हो जाता है। नाड़ी संस्थान की जाँच करने पर उसमें कोई खराबी प्रतीत नहीं होती। चेतना का पूर्ण लोप अथवा आंशिक व्यवधान दो ही बातें हो सकती हैं। पूरा दौरा पड़ने पर रोगी बेहोश होकर गिर जाता है। आग में जलने या गहरी चोट लगने तक का पता नहीं चलता। दाँत भिच जाते हैं,, साँसें लम्बी चलती हैं, घबराहट जैसी आवाजें निकलती हैं, मुँह से झाग गिरता है, हाथ-पैरों में अकड़न तथा ऐंठन के लक्षण दीखते हैं। अधूरे दौरे में गिरने की नौबत नहीं आती। रोगी जो कर रहा था वही करता रहता है। दौरे से पूर्व हाथ जो कर रह थे, पैर जिधर चल रहे थे उधर ही उनकी गति बनी रहती है। आँखें खुली रहने पर भी ठीक से देख नहीं पातीं। इसी प्रकार कान, जीभ आदि भी मस्तिष्कीय नियन्त्रण छूट जाने से अव्यवस्थित हो जाते हैं। दौरे के समय रोगी इच्छापूर्वक किसी अंग से काम नहीं ले सकता। इच्छा शक्ति तक गायब हो जाती है। मस्तिष्क न कुछ सोच सकता है और न कुछ करने का आदेश शरीर के किसी अवयव को दे सकता है। गिर पड़ने वाली और ऐंठन, अकड़न उत्पन्न करने वाली स्थिति तो यह नहीं है फिर भी मस्तिष्क और इन्द्रियों का सम्बन्ध विच्छेद तो हो ही जाता है। इन्हीं सभी लक्षणों की न्यूनाधिक मात्रा को सामायिक पक्षाघात कहा जा सकता है।

हिस्टीरिया का नामकरण डॉ. हिपोक्रिट ने किया। वे इसे गर्भ कोष की गड़बड़ी मानते थे। ग्रीक भाषा में 'हिस्टेरो' गर्भाशय को कहते हैं। काम संवेदनाएँ मन-मस्तिष्क और जननेन्द्रिय को समान रूप से प्रभावित करती हैं। एक की स्थिति का प्रभाव दूसरी पर पड़ता है। अस्तु यह संगति मिलाई गयी कि गर्भकोष की विकृतियाँ नाड़ी संस्थान के माध्यम से मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं और उभार की स्थिति में दौरे पड़ते हैं।

गैलेन, फ्रायड़, वैविनोर्स्क होप आदि के मन विशेषज्ञों के अपने विचार हैं वे कहते हैं कि असंतोष से मानसिक संतुलन बिगड़ता है उसी की एक प्रतिक्रिया 'हिस्टेरिया' है। उनने इसका दोष कामेच्छा एवं दूसरी इच्छाओं की अतृप्ति के सिर थोपा है। शारकोट और वैविनोस्की आदि विशेषज्ञ इसे भय की प्रतिक्रिया मानते हैं वे कहते हैं किसी घटना से अथवा कल्पना, आशंका से डरने वाला मनुष्य हिस्टेरिया का रोगी हो सकता है। शारकोट की खोजों में हिस्टेरिया ग्रसित रोगियों में दो-तिहाई संख्या नव युवतियों की होती है और उनमें से अधिकांश का मानसिक संतुलन दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों के कारण बिगड़ा होता है। वे कहते हैं कि स्त्रियाँ प्रायः मानसिक दृष्टि से बहुत भावुक और कोमल होती हैं। दाम्पत्य जीवन संतुलित रहने पर वे जहाँ बहुत पुलकित पाई जाती हैं वहाँ उस संदर्भ में छोटे-मोटे, आघात भी उन्हें तिलमिला देते हैं। यह असंतुलन कितने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही मानसिक रोगों को जन्म देता है। उन्हीं में से एक बहु प्रचलित रोग हिस्टीरिया भी है।

शरीर विकास क्रम में कई बार तीव्र उभार आते हैं। शैशव पार करके किशोरावस्था में प्रवेश, किशोरावस्था पर यौवन का नशा—जवानी में असंख्य उत्तरदायित्वों का लद जाना, प्रौढ़ावस्था से बुढ़ापे की गई, गुजरी और जरा-जीर्ण स्थिति का आधमकना जैसे परिवर्तन एक चलते ढर्रे में भारी व्यतिरेक उत्पन्न करते हैं। अभ्यस्त स्थिति छोड़कर अनभ्यस्त में प्रवेश करना पड़ता है। इससे कई उलझनें और कई उत्तेजनाएँ पैदा होती हैं। यदि व्यक्ति में साहस का अभाव है तो इस प्रकार आगे धकेले जाने और पिछले प्रिय के छिनने से उसे असुविधा होती है और डर लगता है। इस स्थिति में उत्पन्न हुई उलझनें मानसिक विक्षोभ उत्पन्न करती हैं और उनके कारण कई अटपटे रोग उत्पन्न होते हैं जिन्हें 'दि प्रडिस्पॉजिंग' की संज्ञा दी जाती है।

ऐसी स्त्रियाँ परिवार के अन्य लोगों के साथ ही नहीं, अपने बच्चों के प्रति भी उदास या कर्कश रहने लगती हैं और उनके लालन-पालन में, स्नेह-दुलार में उपेक्षा बरतती हैं। उन्हें समय न कुसमय मारती-पीटती तथा भार-भूत मानकर दूसरी तरह की प्रताड़नाएँ देती हैं।

गर्भ धारण के दिनों स्वास्थ्य का गड़बड़ा जाना, उस स्थिति में भी पिसते-पिटते रहना, प्रसव की असह्य पीड़ा, प्रसूति काल में असाध्य रोगी जैसी दुर्बलता नव जात शिशु की आठों प्रहर साज-सँभाल, परिवार के लोगों द्वारा अछूत समझकर दूर-दूर करना जैसी बातें मिलकर इतना बुरा असर डालते हैं कि प्रथम प्रजनन में ही उनका मानसिक स्वास्थ्य टूट जाता है। जल्दी-जल्दी अनिच्छित संतानें जनने की विवशता उन्हें अपनी असहाय स्थिति पर आँसू बहाने वाली प्रतीत होती हैं और वे खिन्न, उद्विग्न रहने लगती हैं।

किशोरावस्था की दहलीज पर पैर रखते-रखते लड़कियों को मासिक धर्म होने लगता है। देखने में यह एक नियतकालीन मल विसर्जन जैसी क्रिया प्रतीत होती है, पर वस्तुतः वह भीतर ही भीतर असाधारण परिवर्तन साथ लेकर आती है। कितने ही नये 'हारमोन' विकसित होते हैं, प्रजनन अंगों की पुष्टि एवं उत्तेजना सारे शरीर को, विशेषतया मस्तिष्क को प्रभावित करती है। नाड़ी-संस्थान में विचित्र हलचलें उत्पन्न होती हैं। उस स्थिति में उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें क्या न करें ? सहज विकास की रीति उपलब्ध न हो तो अवांछनीय चिन्तन एवं क्रिया-कलाप में उलझने से भय, आशंका, दुराव, उमंग नियन्त्रण, आवेश आदि का संमिश्रण कई प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न कर देते हैं। जो बच्चियाँ छोटी आयु में बहुत ही सरल थीं वे इस विचित्र स्थिति में पड़कर अपना मानसिक संतुलन गँवाती और सनकी, अव्यवस्थित बनती दीखती हैं।

सुशिक्षित, सुविकसित, प्रगतिशील परिवारों की बात दूसरी है। वयस्क सहेलियों से, पुस्तकों, पत्रिकाओं से उन्हें गृहस्थ जीवन की भावी सम्भावनाओं का बहुत कुछ आभास मिल जाता है और वे उसके लिए मानसिक तैयारी करती रहती हैं, जिससे समय पर ससुराल जाना उन्हें अटपटा नहीं लगता और कष्टकारक भी नहीं होता, पर अविकसित वातावरण में अथवा भोली अनजान मनःस्थिति में रहने के कारण उन्हें जब अचानक ससुराल में जाना पड़ता है, वहाँ तो पूर्णतया अनभ्यस्त वातावरण मिलता है, साथ ही नियन्त्रण की कठोरता, आलोचना, भर्त्सना और रूखेपन से भरे व्यवहार का सामना करना पड़ता है तो वे अकचका जाती हैं। प्रिय परिवार का बिछोह उन्हें सताता है। पति का स्नेह-सौजन्य एवं मृदुल-कोमल व्यवहार सान्त्वना दे सकता था पर अनाड़ी वातावरण में वह भी सम्भव नहीं। काम कौतुक उनके सामने नृशंस बलात्कार के रूप में आता है। फलतः ये बेतरह भयभीत हो उठती हैं। आजीवन आये दिन उन पर यही अत्याचार होने हैं, यह सोचकर ये बेतरह घबरा उठती हैं। छुटकारे का, बचाव का कोई मार्ग न पाकर उनकी मनःस्थिति आतंक ग्रस्त बन जाती है और उसमें भूतोन्माद, हिस्टेरिया तथा अन्य कई प्रकार के मानसिक रोग उठ खड़े होते हैं। भारत के पिछड़े क्षेत्रों में आधे से अधिक नव वधुओं को इसी विपत्ति में होकर गुजरना पड़ता है। बाल-विवाह इस विपत्ति का मुख्य कारण है। ससुराल की कठोरता बदनाम है। ऐसी दशा में नव वधुओं को कितने ही प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रसित पाया जाता है। पारिवारिक-कलह, दाम्पत्य जीवन में असामंजस्य, बेसऊर, फूहड़, आलसी, अनाड़ी, अवज्ञाकारी होने के लांछन वस्तुतः उन मानसिक रोगों की ही देन हैं जो ससुराल पहुँचते-पहुँचते नव वधुओं को बेतरह दबोच देते हैं।

नारी की मानसिक संरचना में भावुकता के तत्त्व अधिक हैं। मुद्दतों से चली आ रही सामाजिक अनीति ने नारी को मानवोचित अधिकारों से वंचित करके उसे पिछड़े वर्ग की दयनीय स्थिति में धकेल दिया है, फलस्वरूप उसे अपमानजनक और पराधीन स्थिति में रहना पड़ता है, पग-पग पर अपनी भावनाओं को दबाना पड़ता है यह कुचली हुई मनःस्थिति इतनी दुर्बल हो जाती है कि तनिक सी प्रतिकूलता में वह संतुलन खो बैठती है। प्रतिकूलताओं के साथ ताल-मेल बिठा लेने का गुण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहसी और विवेकवानों में होता है पर जिनकी स्थिति वैसी नहीं है वे सामान्य जीवनक्रम से आगे बढ़कर जब अनभ्यस्त प्रक्रिया में प्रवेश करते हैं तो उनका मानसिक ढाँचा लड़खड़ाने लगता है और वे घबराहट में अनाड़ी, फूहड़, भुलक्कड़ जैसे स्तर के अव्यवस्थित आचरण करने लगती हैं। इस पर और उल्टी डाँट पड़ती है। यह भर्त्सना उन्हें और भी अधिक असंतुलित करती है। प्रतिकूलताएँ चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हों भावुक और दुर्बल संरचना के मस्तिष्क पर इतना दबाव डाल सकती हैं मानो कोई भारी विपत्ति सामने आ खड़ी हुई हो। ऐसी दशा में हिस्टेरिया के दौरे जैसे रोग भी उन्हें अपने चंगुल में कस सकते हैं।

नई उम्र का उभार ही लड़कियों में अनभ्यस्त उत्तेजना उत्पन्न करता है और वे उस उभार में उल्टा-सीधा सोचने और उल्टा-सीधा करने लगती हैं एक ओर मानसिक उभार दूसरी ओर सामाजिक प्रतिबन्धों का भय, चक्की के दो पाटों के बीच में पड़े अनाज की तरह वे पिसने लगती हैं। इस स्थिति में कई प्रकार के मानसिक रोग उन्हें आ घेरते हैं उन्हीं में एक अति चिन्ताजनक हिस्टेरिया भी है।

मनोविज्ञानी जुंग का कथन है—मनुष्य की आन्तरिक तृप्ति स्नेह से होती है, वह सबसे अधिक जिस वस्तु को चाहता है, वह है प्यार। इसे मानसिक विकास के लिए उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना की शरीर रक्षा के लिए अन्न-जल को और पौधों के लिए खाद-पानी को। जिसे प्यार न मिलेगा उसकी मनःस्थिति मुरझाई रहेगी, उसकी उर्वरता मन्द पड़ जायेगी और जरा-जरा सी बात में वह उलझा, खोया और चिन्तित दिखाई पड़ेगा। कभी-कभी तो वह अवज्ञाकारी और उच्छृंखल, उद्धत भी हो जाता है। प्यार से मनुष्य बँधता और बाँधता है। इसके अभाव में वह एकाकी हो जाता है। वह न किसी का होता है न किसी को अपना मानता है। उपेक्षा और तिरस्कार के वातावरण में पलना सचमुच ही एक बड़ा दुर्भाग्य है। यह अन्न-जल की कमी से दुर्बल बने शरीर की तरह ही मनोबल को क्षीण करने वाली स्थिति है।

प्यार का अभाव, असुरक्षा की आशंका, कठोर नियन्त्रण, आशंका-युक्त चिन्ता, कुसंग से उत्पन्न विकृतियाँ बालकपन से ही मनुष्य के विकास क्रम को लड़खड़ा देती हैं। छोटेपन में वे विकृतियाँ दूसरे रूप में रहती हैं पर बड़े होने पर उनका द्युण्ड इकट्ठा होकर हिस्टीरिया या उन्माद की और कोई स्थिति उत्पन्न कर देती हैं। घुटन कई रूप में फूटती है मनुष्य को अवांछनीय आचरण करने के लिए प्रेरित करती है। उसे बाँध तोड़कर बाहर निकलने के एक प्रकार को इस प्रकार भी देखा जा सकता है।

हिस्टेरिया का एक दूसरा प्रकार है, 'सामयिक उन्माद'। इसे भूत, पलीत या देवी-देवताओं के आवेश के रूप में देखा जा सकता है। शिक्षितों में यह आवेश दूसरी कई तरह की सामयिक उचंगों के रूप में आता है और वे अपने आप को क्रोध आदि आवेशों से ग्रसित पाते हैं। कई बार तो ऐसी स्थिति अपने लिए तथा सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के लिए घातक बन जाती है। आवेशग्रस्त स्थिति के साथ रोगी जब भूत-प्रेतों के या देवी-देवताओं के आक्रमण के साथ संगति बिठा लेता है, तब वह प्रवाह उसी दिशा में बहने लगता है और ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं जिनमें ऐसा प्रतीत होता है मानो सचमुच ही कोई भूत बेताल उन पर चढ़ दौड़ा हो।

'ऐक्जाइटी न्यूरोसिस' एवं हिस्टरिक न्यूरोसिस को हिस्टीरिया तो नहीं कहा जा सकता पर उसकी 'सहेली' या 'छाया' कहने में हर्ज नहीं है। कोई कल्पना जब मस्तिष्क पर असाधारण रूप से हावी हो जाती है तो उसे अनुभूतियाँ उसी प्रकार की होने लगती हैं। भूत-प्रेतों के आवेश प्रायः इस स्थिति में आते हैं। मस्तिष्क में असंतुलन का दौरा पड़ता है रोगी के मस्तिष्क का एक बहुत छोटा अंश यह अनुमान लगाने की चेष्टा करता है कि इस आकस्मिक हलचल का कारण क्या हो सकता है। उसे दूसरे लोगों पर भूतों का आवेश आने की जानकारी देखने या सुनने से पहले ही मिल चुकी होती है अस्तु, क्षण भर में अपनी स्थिति उसी प्रकार की मान लेने का विश्वास जम जाता है। बस, इतनी भर मान्यता शरीर के हिलने, झूमने, गरदन डुलाने, लम्बी साँसें, उत्तेजना आदि भूतोन्माद के लक्षण प्रस्तुत कर देती है।

इसी श्रेणी में देवी-देवताओं के आवेशों की गणना की जा सकती है। भूतोन्माद अधिक अविकसित, अशिक्षित और असंस्कृत लोगों को आते हैं, उनमें भय आक्रोश का बाहुल्य रहता है और हरकतों में तथा वचनों में निम्न स्तर की स्थिति टपकती है। जबकि देवोन्माद में अपेक्षा कृत सज्जनता एवं शिष्टता की मात्रा अधिक रहती है। आवेश एवं वार्तालाप भी ऐसा ही होता है। मानो कोई देव स्तर का व्यक्ति कर रहा हो । जिन लोगों ने देवी-देवताओं की चर्चा अधिक सुनी है, स्वयं उस पर विश्वास करते हैं उनका मस्तिष्क आवेश की स्थिति में अपनी कल्पना, साथ ही हरकतें भी उसी स्तर की बना लेता है। वस्तुतः इन आवेशों में देव स्तर सिद्ध करने वाली कोई प्रामाणिकता नहीं होती। स्तर के अनुरूप इनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्गीकरण भूतोन्माद या देवोन्माद के रूप में किया जा सकता है, पर उनके बीच कोई बड़ा भेद नहीं होता।

आयुर्वेद ग्रन्थों में भूतोन्माद की कितनी ही शाखा-प्रशाखाओं का वर्णन है। उसे रोग की संज्ञा दी गई है और उपचार विधि बताई गई है। वस्तुतः उसे उन्माद का यदा-कदा आने वाला दौरा ही कह सकते हैं। आवेश गहरा हो तो रोगी के अवयव ही उत्तेजित होते हैं और वह उन्मत्तों जैसी हरकतें करता है किन्तु यदि दौरा हल्का हो ते एक प्रकार से नशे जैसी स्थिति बन जाती है। भूत के अस्तित्व को अपने ऊपर थोपकर वह ऐसी ही बातें करता है, मानो वह सचमुच ही भूत की स्थिति में पहुँच गया हो। भूत को जो कहना चाहिए सो वही वह कह रहा हो। यह कथन क्रमबद्ध तो होता है, उसकी संगति बैठती है पर होता सर्वथा काल्पनिक है। भोले लोग उसे तथ्य मान बैठते हैं और उन्माद की स्थिति में जो कहा गया था उसी पर विश्वास करके वैसा ही करने या मानने लगते हैं।

कई मनुष्यों को ऐसी आवाजें सुनाई पड़ती हैं। मानो किसी ने उनसे कुछ बात जोर देकर कही है। लगता है उन्होंने वैसा सुना है। किसी-किसी को ऐसा लगता है कोई भीतर से बोल रहा है। पेट में बैठकर या सिर पर चढ़कर कुछ बता रहा है। इस बीमारी को 'हैवीफ्रेनिक शिजोफ्रेनिया' कहते हैं। भूत-पलीतों के, देवी-देवताओं के सन्देह, आह्वान, आदेश प्रायः इसी प्रकार के होते हैं। प्रेमी और प्रेमिकाओं को इसी प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं मानो उनका प्रिय पात्र सामने खड़ा कुछ इशारे कर रहा है या कह रहा है। जिनके प्रियजन जल्दी ही मरे हैं, उनका वियोग निरन्तर छाया रहता है, उन्हें भी झपकी आते ही मृतात्मा निकट आकर कुछ करती कहती दिखाई पड़ती है। भक्त लोगों को उनके इष्ट देव भी ऐसे ही कौतूहलवर्धक परिचय देते हैं।

मानसिक अस्त-व्यस्तता को दो भागों में विभाजित किया जाता है—(१) न्यूरोसिस, (२) साइकोसिस।

न्यूरोसिस वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अण्ट-सण्ट सोचता और आँय-बाँय बोलता है। बेकार की चिन्ताएँ और बेसिर-पैर की कल्पनाएँ उसे हैरान करती रहती हैं। चिन्ता में डूबा, आशंकाओं से ग्रसित, भयभीत एवं असम्भव चिन्तन के घोड़े दौड़ाते हुए उसे आये दिन देखा जा सकता है। कभी कुछ कभी कुछ खब्त सवार रहता है।

साइकोसिस इससे आगे की और अधिक बिगड़ी हुई स्थिति है। उसमें व्यक्ति पूर्णरूप से तो नहीं पर किसी विशेष प्रसंग में पगलाया रहता है। किसी विशेष समय, परिस्थिति, घटना, वर्ग या व्यक्ति के सम्बन्ध में उसके कुछ ऐसे भले या बुरे आग्रह जम जाते हैं, जिनका वास्तविकता के साथ बहुत कम सम्बन्ध होता है। उसकी अपनी कल्पना और मान्यता एक अलग से स्वप्न लोक रच लेती है और उन्हीं में वह खोया रहता है।

मानसिक रोगों का निदान पुस्तकों में आवसेसिव कम्पलसिक न्यूरोसिस, एग्जाइरी जैसे विश्लेषणों के साथ अनेक रूपों, लक्षणों और उदाहरणों के साथ चित्रित किया गया है। साइकोसिस, शाखा में से आर्गेनिक साइकोसिस, फैक्शनल, पैरानाइड् जैसे भेद उपभेद हैं। संक्षेप में न्यूरोसिक हल्की और साइकोसिस बढ़ी हुई स्थिति को कहते हैं। हल्की स्थिति में दूसरों के समझाने में रोगी अपनी गल्ती और सोचने की पद्धति में त्रुटि होने की बात स्वीकार कर लेता है किन्तु बढ़ी स्थिति में नशा इतना गहरा होता है कि उसे यह अनुभव या स्वीकार ही नहीं होता कि वह कुछ गल्ती कर रहा है। गहरे पागलपन में यही स्थिति हो जाती है। उसे यह तनिक भी आभास नहीं होता है कि वह किसी मानसिक रुग्णता का कष्ट भुगत रहा है। वह अपने को सामान्य मानता है दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये गये असामान्य व्यवहारों को द्वेष-दुर्भाव की संज्ञा देता है।

कई बार दुहरे परस्पर विरोधी विचार एक ही व्यक्ति या कार्य के सम्बन्ध में आते हैं। ज्वार में पानी बहुत ऊँचा उठता है और भाटा आने पर वह नीचा चला जाता है। नशा चढ़ने पर ताकत फूटी पड़ती है और उतरने पर शिथिलता बेतरह आ घेरती है। बच्चे के गड़बड़ करने पर क्रोध में माता कसकर चाँटा जड़ देती है पर बच्चे के सुबक कर रोते ही उसकी करुणा जग पड़ती है और अपने को कोसते हुए बच्चे को वात्सल्यपूर्वक छाती से चिपटा लेती है। यह परस्पर विरोधी परिस्थितियाँ हुईं। कुछ मस्तिष्क में प्रिय और अप्रिय भावनाओं के ऐसे ही ज्वार-भाटे आते रहते हैं। आज अमुक व्यक्ति बहुत प्रिय है कल वह बहुत बुरा लगा, आज जो काम खराब लगता है कल उसी को करने के लिए आकुलता उठने लगी, आज जो निर्माण किया जा रहा है, कल उसी को तोड़ डालने की योजना बनकर तैयार हो गई। इस दोगली मनोवृत्ति को ''कैटे टोनिक शिजोफ्रेनिया'' कहते हैं।

मानसिक रोगों का परिवार बहुत बड़ा है। उसमें शिवजी की बरात जैसे चित्र-विचित्र स्तर के, विभिन्न आकृति-प्रकृति के विक्षोभ भरे पड़े हैं, उनके प्रकट होने के स्वरूप अलग-अलग हैं। इतने पर भी यह कहा जा सकता है कि यह सब मानसिक असंतुलन के परिणाम हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पेट की गड़बड़ी से शरीर रुग्ण होता है और असंतुलन से मस्तिष्क। आवश्यकता इस बात की है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आहार-विहार का सही तरीका सीखा जाय और मन को स्वस्थ रखने के लिए परिस्थितियों का निर्माण करने, उनके साथ ताल-मेल बिठाने अथवा बदल डालने का साहस उत्पन्न किया जाय। विकसित मनोबल उत्पन्न किया जाना उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर को नीरोग रखना, हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से इन दोनों ही दशाओं में सुधार के आवश्यक प्रयत्न करने चाहिए।

मनोविकारों का अवरोध हमें अपंग बना देता है

मस्तिष्क की आन्तरिक स्थिति में थोड़ा-सा भी अवरोध अड़ जाने का परिणाम शरीर को तात्कालिक और भयंकर रूप से भुगतना पड़ता है। हृदय रोगों के कष्ट और दुष्परिणामों का परिचय हमें प्राप्त है क्योंकि वह अधिक स्पष्ट और अधिक प्रत्यक्ष होता है। मस्तिष्क का सम्बन्ध एवं नियन्त्रण शरीर के प्रत्येक अवयव के साथ इतना अधिक है कि उसे हृदय से भी अधिक महत्त्व दिया जा सकता है। हृदय में अवरोध उत्पन्न हो जाने पर सामयिक कष्ट तो बहुत होता है और पूर्ण विश्राम से लेकर सतर्क उपचार की आवश्यकता पड़ती है। मस्तिष्क सम्बन्धी गड़बड़ी का प्रतिफल इससे अधिक है, उसके कारण लकवा सरीखे ऐसे रोगों हो सकते हैं, जो जीवन को अपंग एवं निरर्थक ही बनाकर रख दें।

लकवा पक्षाघात का अर्थ है, मस्तिष्क के किसी भाग का काम करने में असमर्थ हो जाना। शरीर के अन्य भागों की तरह मस्तिष्क भी आवश्यक मात्रा में रक्त एवं ऑक्सीजन की समुचित मात्रा मिलते रहने से जीवित रहता है। यह खुराक किसी बजह से बन्द हो जाय तो वह भूखा अंग सूखने लगेगा। मस्तिष्क के किसी हिस्से में रक्तवाहिनी शिराएँ ताजा रक्त पहुँचाना बन्द कर दें तो वह भाग सूख जायेगा और उस भाग के द्वारा शरीर के जितने हिस्से का नियन्त्रण संचालन होता था, वहाँ की गतिविधियाँ ठप्प हो जायेंगी। यही है लकवा का निरूपण।

आहार-विहार के असंयम से रक्तवाहिनी शिरायें शिथिल और मल-विकारों से अवरुद्ध होने लगती हैं, उनका पोलापन घट जाता है। रक्त-संचार का क्रम तेजी से न होने से उसमें गाढ़ेपन के साथ-साथ छोटे-छोटे थक्के बढ़ जाते हैं। यही थक्के सिकुड़ी नाड़ियों में अड़ जायें तो रक्त-प्रवाह रुकेगा ही और मस्तिष्क का जो अंग भूखा मरेगा उसका प्रभाव क्षेत्र लकवा ग्रसित हो जायेगा। दिल की बीमारियाँ भी धमनियों की स्थिति गड़बड़ा देती हैं और उनसे भी लकवे की आशंका बढ़ जाती है। कई बार दुबली और कमजोर पड़ी धमनियाँ थोड़ा-सा ही दबाव बढ़ जाने से फट जाती हैं और रक्त मस्तिष्क में बिखर जाता है। इससे नियत स्थान पर रक्त का न पहुँचना और सिर फटने से फैले हुए रक्त में अन्य अवयवों का डूब जाना यह दोनों ही स्थिति खतरनाक हैं। इससे प्रायः पूरे मस्तिष्क पर न्यूनाधिक मात्रा में बुरा प्रभाव पड़ता है और बढ़ती हुई मूर्छा यदि काबू में न आई तो मृत्यु का कारण बन जाती है। रक्त चाप का अत्यधिक बढ़ जाना भी कई बार मस्तिष्क की किसी नस के फट जाने का कारण होता है।

मस्तिष्क के जिस हिस्से में रक्ताभिषरण रुका होगा, उसी से सम्बन्धित अंगों पर लकवे का प्रभाव देखा जा सकेगा। मोटे तौर से मस्तिष्क को तीन हिस्सों में विभक्त कर सकते हैं, दो गोलार्ध एक वृत्त। गोलार्धों में स्वेच्छिक क्रियाओं के संचालन केन्द्र हैं। बायें गोलार्ध से शरीर का दाहिना हिस्सा और दायें गोलार्ध से शरीर का बायाँ हिस्सा सम्बन्धित है। मस्तिष्क के जिस भाग में गड़बड़ी हुई होगी उससे विपरीत भाग का शरीर लकवाग्रस्त दिखाई पड़ेगा। बहुत करके एक ही गोलार्ध रुग्ण होता है, इसलिए शरीर का एक अंग ही अधिक पीड़ित होता है। चूँकि दोनों भाग परस्पर जुड़े हुये हैं इसलिये एक का प्रभाव दूसरे पर कुछ तो पड़ना ही चाहिए, इसलिये रोगी तो दोनों ही हिस्से होते हैं पर एक पर अधिक और एक पर कम असर होता है। दोनों हिस्सों पर समान रूप से लकवे का असर हो, ऐसा भी हो तो सकता है पर होता कम ही है। दोनों वृत्तों पर समान रूप से प्रभाव पड़ने की घटनाएँ होती हैं पर होती हैं कम ही।

तीसरे भाग 'वृत्त' में मध्य मस्तिष्क, सेतु सिकेवलय और मेरुशीर्ष होते हैं। शरीर का सन्तुलन बनाये रहना विभिन्न अवयवों से उनके क्रियाकलाप का विधिवत् संचालन कराना, इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालना जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य इस 'वृत्त' भाग से ही सम्बन्धित हैं।

मस्तिष्क के भीतरी विभागों की संरचना और क्रिया-प्रक्रिया समझ लेने पर यह जानना आसान हो जाता है कि लकवे के मरीज में जो कष्ट चिन्ह दिखाई पड़ रहे हैं, उनका उद्गम मस्तिष्क के किस स्थान पर होना चाहिए । यों उपरोक्त तीन भागों वाला विभाजन बहुत ही स्थूल है और उनमें से प्रत्येक के भीतर अगणित केन्द्र-उपकेन्द्रों की जटिल शृंखला जुड़ी हुई है। उन्हीं में जब, जहाँ, जितनी विकृति आती है, तब रोगियों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लकवे के विभिन्न स्तरीय लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। हाथ-पैरों का हिलना, गरदन का न मुड़ना, शरीर में सुन्नता या झुनझुनी, निगलने में कठिनाई, जीभ का लड़खड़ाना, कुछ का कुछ दीखना, स्मरण शक्ति खो जाना, सोचने-समझने की क्षमता का लड़खड़ा जाना जैसे अनेक अवरोध लकवा के रोगियों पर सवार रहते हैं। मल-मूत्र त्याग और प्यास तक की आवश्यकताओं को वे अनुभव नहीं कर पाते। नींद का उड़ जाना या झपकी-सी ही लगी रहना भी किन्हीं-किन्हीं रोगियों को होता है। किसी धमनी के फट जाने से मस्तिष्क के भीतरी भाग में यदि रक्त भरकर जम गया तो फिर उस कारण उत्पन्न हुई मूर्छा को जगाना कठिन हो जाता है, हाँ कोई छोटा थक्का जम गया हो तो उसका प्रभाव सीमित रहेगा और स्थानीय गर्मी उसे पिघलाकर इधर-उधर भी बखेर देगी।

अधिकतर लकवा मस्तिष्क में रक्त फेंकने वाली धमनी में रक्त का थक्का अड़ जाने के कारण उत्पन्न होता है। रक्त में यदि फुटकी पड़ने वाला गाढ़ापन न आये और धमनियों की नाली सिकुड़ती न चली जाय, कठोर न हो जाय तो लकवे की फिर कोई आशंका न रहेगी। यह विकृतियाँ धीरे-धीरे पनपती रहती हैं और आरोग्य की जड़ खोखली करती रहती हैं। लकवा तो उस विकार संग्रह का अन्तिम विस्फोट है। दिल के रोगियों के इस खतरे में फँस जाने की सम्भावना प्रायः बनी रहती है।

कुछ हलके प्रकार के लकवे स्थानीय होते हैं, जैसे बोलने में तुतलाने लगना, हाथों का काँपना, दुहरा देखना, सिर में चक्कर आते रहना आदि।

पक्षाघात की भयंकरता से हर कोई परिचित है। उसका मामूली-सा झोंका मनुष्य को अपंग एवं पराधीन बना देता है, स्थिति अधिक बिगड़ी हुई हो तो मरण की ही कामना, प्रार्थना ही की जाती है। यह स्थिति क्यों उत्पन्न हुई, इसकी गहराई में जाया जाय तो यही तथ्य सामने आता है कि मस्तिष्क की किन्हीं कोशिकाओं में अवरोध उत्पन्न होकर उन्हें उचित पोषण न मिला, फलस्वरूप सम्बद्ध अवयव को लकवा मार गया।

मस्तिष्क का पोषण मात्र रक्त से ही नहीं होता, जहाँ तक उसके चिन्तन पक्ष का सम्बन्ध है, उच्चस्तरीय विचारणाओं का संसार भी मस्तिष्कीय कोशिकाओं में होने वाले रक्त-संचार की तरह ही आवश्यक है। चिन्तन का उपयुक्त प्रकाश न मिलने पर ऐसा अवरोध उत्पन्न हो जाता है, जिससे सर्वांगीण विकास के किन्हीं महत्त्वपूर्ण आधारों को लकवा ही मार जाय और व्यक्ति को गई-गुजरी, हेय, घृणित तथा दयनीय परिस्थिति में पड़े रहने के लिए विवश होना पड़े।

मनः क्षेत्र में स्वस्थ प्रवाह संचार के लिए उदात्त दृष्टिकोण का समावेश नितान्त आवश्यक है। यदि उसमें घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, निराशा, चिन्ता, क्रोध, आवेश, जैसे अवरोध अड़ेंगे तो ठीक वही स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जो शिराओं में रक्त के थक्के अड़ जाने पर लकवा मार जाने की विभीषिका के समय उत्पन्न होती है। दुर्भावनाओं से ग्रसित मनःस्थिति रखकर हम प्रतिपक्षी का उतना नुकसान नहीं कर सकते, जितना कि अपना कर लेते हैं। जिन कारणों से मनःसंताप उत्पन्न हुआ है यदि उनका निवारण अभीष्ट हो तो पहला कदम यही उठाना होता है कि अपना मानसिक संतुलन सही करें ताकि समाधान का उपयुक्त आधार खोज निकाला जा सके। उद्विग्नता की स्थिति में अवरोधों से निपटने का रास्ता ढूँढ़ पाना तो एक प्रकार से अशक्य ही हो जाता है, उलटे दुहरी विपत्ति यह आ जाती है, उद्वेगों का आवेश रक्त के थक्के बनकर सम्वेदनशील शिराओं में ही अवरोध कर दें तो हमारी दूरदर्शिता हाथ से चली जायेगी और ऐसा संकट सामने आ खड़ा होगा, जिसके कारण लकवे जैसी दयनीय अपंग स्थिति में ग्रसित हो जाना पड़े।

मन को कुसंस्कारी न रहने दिया जाय

गुरुकुलों के अध्यापक प्राचार्य अपने छात्रों को पढ़ाकर सुयोग्य बना देते हैं। व्यक्तिगत सम्पर्क में भी ऐसा ही होता है। अरस्तू ने सिकन्दर को पढ़ाकर महान् पुरुषार्थी बनाया था। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को, समर्थ ने शिवा को, परमहंस ने विवेकानन्द को, विरजानन्द ने दयानन्द को, गाँधी ने विनोबा को इस प्रकार का ही शिष्य बनाया था कि गुरु और शिष्य दोनों ही धन्य हो गये। वसुदेव ने वासुदेव नाम के अपने पुत्र को प्रख्यात कर दिया। जनक की बेटी जानकी ने अपने पिता के गौरव में चार चाँद लगा दिये। पिता के नाम से पुत्र भी यशस्वी होते हैं और कई बार कई पुत्र भी पिता को निहाल कर देते हैं। श्रवण कुमार के कारण उनके माता-पिता सर्वत्र जाने जाते हैं भले ही उनका नाम बहुतों को मालूम न हो। भागीरथी गंगा को इसलिए कहा जाता है कि स्वर्ग से भूमि पर उन्हें उतारने का उत्कृष्ट प्रयत्न भागीरथ ने ही किया। अर्जुन को कौन्तेय इसी कारण कहा जाता है कि उनकी असाधारण प्रतिभा उनकी माता ने भरी थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हममें से प्रत्येक को एक विद्यार्थी पढ़ाने, एक शिष्य गढ़ने का प्रतिमा, बनाने का काम अपने जिम्मे लेना चाहिए। यों प्रतिभावान व्यक्ति एक साथ कई-कई काम हाथ में लेते और पूरा कर दिखाते हैं। व्यस्त लोग भी कइयों की जिम्मेदारी अपने ऊपर उठा लेते हैं। पी० एच० डी०, वकालत, चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट आदि पढ़ने वालों को अपने मार्गदर्शक के साथ सम्पर्क में रहना और समाधान करना, अनुभव बढ़ाना आदि में तत्पर रहना पड़ता है। यों वे पढ़ाने वाले भी अपने कामों में व्यस्त रहते हैं फिर भी किसी न किसी प्रकार समय निकालकर उन्हें सिखाते समझाते रहते हैं जिन्हें सुयोग्य बनाने का जिम्मा उनने अपने कन्धों पर लिया है।

हम एक छात्र को, शिष्य या पुत्र को सुयोग्य बनाने का जिम्मा लें। उसे स्वयं पढ़ायें, कितना, किस प्रकार उस पढ़ाई को हृदयंगम किया इसका भी ध्यान रखें। राजा लोग प्रत्येक राजकुमार के लिए एक ट्यूटर गार्जियन नियुक्त करते थे। विष्णु शर्मा ने एक राजा के उद्दण्ड बालकों को कथा कहानियाँ सुनाकर सुयोग्य बना दिया था। हम एक ऐसे बालक की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाएँ जो अपना सगा है। साथ रहता है और बफादार सेवक तक है।

इस विद्यार्थी का नाम है 'अपना मन'। बाहर के कितनों को ही सलाह, सहायता दी गई पर खेद है कि इसकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा। यदि उसकी दुर्दशा का पर्यवेक्षण भर किया होता तो प्रतीत होता है कि वह कैसी आबारागर्दी में फँस गया है। किस कुसंग में निरत रहने लगा और कैसी अनगढ़ गतिविधियाँ अपना चुका है, जो उसे नहीं अपनानी चाहिए। उसके पिछड़ेपन की, कुमार्गगामिता की जिम्मेदारी आपकी है। जब फेल होने वाले विद्यार्थी, स्कूल की अध्यापक वर्ग की बदनामी भी कराते हैं। जब कपूत बेटा बाप को जलील करता है, तो कोई कारण नहीं कि आपके साथ गुँथे हुए मन की अपनाई हुई अवांछनीयता, उद्दण्डता, मूर्खता आपको बदनाम न करे। इस स्थिति में मात्र बदनामी ही नहीं प्रत्यक्ष हानि भी है। ऐसी हानि जिसकी क्षति पूर्ति और कोई नहीं कर सकता।

मन को सुसंस्कृत बनाया जाना चाहिए। उसे हित-अनहित में, औचित्य-अनौचित्य में अन्तर करना सिखाया जाना चाहिए। अब तक जो ढर्रा चलता रहा है उसमें यह विवेचन, विश्लेषण करना उसे सिखाया ही नहीं गया, फिर बेचारा करता क्या ? जो समीपवर्ती लोगों से देखता सुनता रहा उसकी बन्दर की तरह नकल और तोते की तरह रटन्त हो जाती है। सुप्रचलन का स्वरूप कभी देखा ही नहीं, सुसंस्कारियों, विचारशीलों के साथ रहा ही नहीं तो उस मार्ग पर चलना कैसे सीखें ?

सिखाने वाले मदारी साँप, बन्दर रीछ को नाचना सिखा लेते हैं। सरकस वाले शेर, हाथी, वनमानुष तक को ऐसा सधा लेते हैं कि दर्शकों का भरपूर मनोरंजन और कम्पनी वाले को पर्याप्त मुनाफा होता रहे। सिखाने वाले के कौशल की सर्वत्र प्रशंसा होती रहे। फिर कोई कारण नहीं कि मन को सुसंस्कारी न बनाया जा सके। उसे गलाकर स्वर्ण आभूषणों की भाँति मनोरम न बनाया जा सके।

मन की शक्ति अपार है। उसकी सत्ता शरीर और आत्मा को मिलाकर ऐसी बनी है जैसी सीप और स्वाँति कण का समन्वय होने से मोती बनता है। जीवन सम्पदा का वही व्यवस्थापक और कोषाध्यक्ष है। साथ ही उसे इतना अधिकार भी प्राप्त है कि वह अपने मित्र का, अपने साधनों का पूरी तरह भला या बुरा उपयोग कर सके। इतने सत्तावान का अनगढ़ होना सचमुच ही एक सिर धुनने लायक दुर्भाग्य है।

इस विडम्बना का और कोई कारण नहीं, हमारी उपेक्षा ही असमंजस जैसी परिस्थितियों का निमित्त है। महावत के बिना हाथी चाहे जिस दिशा में चाहे जब चल सकता है और चाहे जिसका चाहे जितना अनर्थ कर सकता है। हाथी वह है जो अपनी और सवार की प्रतिष्ठा बढ़ाता है पर छुट्टल और बिगड़ैल होने पर तो वह आतंकवादी यमदूत जैसा डरावना बन जाता है।

हमारी सत्ता आत्मा है। हमारा साथी सहकारी विवेक है। दोनों मिलकर मन को सही कल्पना, सही इच्छा करने की शिक्षा दे सकते हैं और सन्मार्ग पर चलना सिखा सकते हैं। मन अनाड़ी भर है। अवज्ञाकारी नहीं। अभ्यस्त दुर्गुणों को छोड़ने और नये सिरे से सिखाये गये सद्गुणों को अपनाने में अभ्यासवश आना-कानी अवश्य करता है पर उसे कड़ा निर्देशन दिया जाय और जो करने योग्य है उसे करने के लिए बाधित किया जाय तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि सर्वथा इन्कार करे और अपने को बदलने के लिए सहमत न हो।

मन को कुसंस्कारों से विरत करने के लिए चार पाठ पढ़ाये जाने चाहिए— (१) विचार संयम, (२) समय संयम, (३) अर्थ संयम और (४) इन्द्रिय संयम। मस्तिष्क में जो भी विचार उठें उनका तत्काल परीक्षण किया जाना चाहिए कि वे नीतियुक्त, उपयोगी और रचनात्मक हैं या नहीं। बेतुकी कल्पना ऐसी इच्छाएँ उठती हों तो उनकी जड़ आरम्भ से ही काट देनी चाहिए। गाड़ी एक कदम आगे नहीं बढ़ने देनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके स्थान पर सामयिक समाधान एवं अभ्युत्थान की बात सोचने में उसे जुटा दिया जाना चाहिए। दूसरी बात सुनियोजित दिनचर्या बनाने की है। समय को हीरे-मोतियों के समान मानकर उसका एक क्षण भी बर्बाद नहीं होना चाहिए। उठने से लेकर सोने तक की समयचर्या ऐसी बनानी चाहिए जिससे व्यक्तित्व का स्तर निखरता हो और योग्यता का, प्रगति का विस्तार होता हो। पैसे के सम्बन्ध में प्रदर्शन और कौतुक, कौतूहल में एक पाई भी व्यर्थ नहीं जानी चाहिए। खर्च करने से पहले अनेक बार विचारा जाय कि यह नितान्त आवश्यक है या नहीं। पैसा और श्रम एक ही बात है। श्रम को निरर्थक प्रयासों में लगाना जिस प्रकार दुःखद परिणाम प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार धन का अपव्यय भी बदले में विपत्ति लेकर वापस लौटता है। चौथा निर्देशन है, इन्द्रिय निग्रह। इन्द्रिय निग्रह का अर्थ ही जीभ का चटोरपन और यौनाचार के प्रति अनावश्यक आकर्षण। चटोरपन शरीर को विपत्ति में फँसाता है और कामुकता मस्तिष्क को खोखला करती है।

इन सभी असंयमों से बचते हुए 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धान्त मन को इस प्रकार पढ़ाना चाहिए कि वह उसे भुला देने की गल्ती न करे।

मानसिक रोग कितने विचित्र, कितने भयावह

आमतौर से ऐसा समझा जाता है कि इच्छित परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर सुख होता है। पर वास्तविकता इससे सर्वथा विपरीत है। परिष्कृत दृष्टिकोण से सोचने का तरीका इतना सरल और सुन्दर होता है कि सामान्य वस्तुएँ भी सुन्दर लगती हैं। अँधेरे में जो वस्तुएँ अदृश्य रहती हैं अथवा काली लगती हैं वे ही प्रकाश की किरणें पड़ने पर अपना पूरा स्वरूप दिखाती हैं और चमकने लगती हैं। यही बात परिष्कृत मनःस्थिति के सम्बन्ध में है। सोचने की प्रकाशवान प्रक्रिया को ऐसा दिव्य आलोक कहा समझा जा सकता है, जिसके प्रकाश में सारा समीपवर्ती क्षेत्र अन्धकार की कालिमा में से निकलकर मनोरम आभा लिये हुए दिखाई देने लगे।

जर्मन पत्रिका 'मेडिजिनिशे क्लीनिक' में छपे एक विस्तृत लेख में कई शरीर विज्ञानियों के अनुभवों का सारांश छपा है जिसमें बताया गया है कि दर्द में जितना अंश शारीरिक कारणों का होता है उसमें कहीं अधिक मानसिक तथ्य जुड़े होते हैं। ऐसे प्रयोग किये जा चुके हैं जिनमें मात्र पानी की सुई लगाकर रोगी को यह बताया गया है कि 'यह गहरी नींद की दवा है', उसी से दर्द पीड़ितों का दर्द बन्द हो गया और वे सो गये। इसके विपरीत समर्फिया के इन्जेक्शन देकर यह कहा गया कि "यह हल्की दवा है शायद इससे थोड़ा-बहुत दर्द हल्का पड़े और सम्भव है कुछ नींद आये।" यह सन्देह उत्पन्न कर देने पर रोगी दर्द की शिकायत करते रहे और अधूरी निद्रा में झपकी लेते रहे। इस प्रयोग के बाद उन्हीं इन्जेक्शनों को जब विपरीत व्याख्या करते हुए भिन्न दवा बनाकर रोगियों को दिया गया तो उसकी पहले की अपेक्षा सर्वथा भिन्न प्रतिक्रिया हुई। पहले दिन पानी का इन्जेक्शन जब मामूली दवा बताकर लगाया गया तो उसने दर्द कम नहीं किया और मर्फिया को बड़ी शक्ति का बताकर निश्चित रूप से नींद आने का आश्वासन देकर लगाया गया तो रोगियों को गहरी नींद आई। इन प्रयोगों से डाक्टर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दवाएँ जितना परिणाम प्रस्तुत करती हैं उससे अधिक प्रभाव मान्यताओं का होता है।

एक ही स्तर के दर्द को भिन्न-भिन्न मनःस्थिति के लोग अलग-अलग तरह अनुभव करते हैं। डरपोक रोगी इतने से ही दर्द से बेतरह चीखते-चिल्लाते हैं। मध्यम मनःस्थिति वाले मात्र हल्के-हल्के कराहते रहते हैं। युद्ध मोर्चे के घायल अपनी बहादुरी की मान्यता के आवेश में कम कष्ट अनुभव करते हैं और कम चीखते-चिल्लाते हैं, जबकि उतने ही कष्ट में सामान्य लोग तीन गुना अधिक दर्द अनुभव करते हैं।

भावनात्मक स्थिति भी कई बार दर्द में परिणत हो जाती है। सिर दर्द, पेट का दर्द, जोड़ों का दर्द, छाती का दर्द, कमर का दर्द बहुत करके मनोवैज्ञानिक कारणों से होते हैं। इनके मूल में कोई चिन्ता, आशंका भय की भावी कल्पना अथवा भूतकाल की कोई दुःखद स्मृति काम करती रहती है। मन की वह विपन्न अवस्था शरीर के किन्हीं अंगों पर आच्छादित होकर उन्हें पीड़ा अनुभव कराती है, जबकि शारीरिक दृष्टि से उन अवयवों में उस तरह के कष्ट का कोई कारण नहीं होता।

कई बार ऐसी स्थिति भी देखी गई कि डाक्टर अपने समस्त निदान परीक्षण करने के उपरान्त भी रोगी में कोई अस्वस्थता का कारण नहीं देखता और रोग का कारण जानने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। किन्तु रोगी बराबर कष्ट से पीड़ित रहता है। दिन-दिन दुबला होता जाता है और साधारण काम-काज कर सकने में भी समर्थ नहीं रहता, उसका पीड़ाजन्य कष्ट स्पष्ट दीखता है। ढोंग बनाने का कोई कारण नहीं होता क्योंकि दूसरों पर नहीं उस रुग्णता का पूरा भार अपने ही कंधों पर आता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस विचित्र स्थिति में मनोवैज्ञानिक कारण ही काम कर रहे होते हैं। कोई पुरानी आघात करने वाली अनुभूति मस्तिष्क के किसी भाग पर आक्रमण करती है और उसे अकचका देती है। चूँकि मस्तिष्क की प्रत्येक कोशिका अपने मूल तन्तुओं के सहारे अन्य कोशिकाओं के साथ जुड़ी होती है और उनसे कई तरह के आदान-प्रदान करती रहती है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत लगे हुआ आघात अपने सम्बद्ध केन्द्र को प्रभावित करने तक सीमित न रहकर जब शरीर के किसी अन्य अवयव से सम्बद्ध केन्द्र से जा टकराते हैं, तो इस वह अंग ही रुग्णता अनुभव करने लगता है। वह अंग शारीरिक दृष्टि से निरोग होता है, पर मस्तिष्क विद्युत प्रवाह उस स्थान पर ठीक तरह नहीं पहुँच पाता क्योंकि संप्रेषण वाले मस्तिष्कीय कोष रुग्णावस्था में पड़े हैं। प्रेषण की गड़बड़ी उस अंग को पूरी खुराक और सही निर्देश नहीं दे पाती इस विचित्र स्थिति की अनुभूति मस्तिष्क के अन्य तन्तुओं को अमुक रोग जैसी होती है। रोगी वस्तुतः उन्हीं कष्टों से पीड़ित होता है जैसा कि वह बताता है। पर डाक्टर क्या करे, उसकी परीक्षा पद्धति तो अंगों के रक्त-माँस आदि से सम्बन्धित स्थिति के आधार पर बनी है। मानसिक भूल-भुलैयों की उसे जानकारी नहीं होती। अस्तु ऐसे रोगियों को किसी मानसोपचारक के पास जाने की सलाह देकर वह अपना पीछा छुड़ा लेता है। अनिश्चित स्थिति में वह उपचार करे भी तो क्या करे ?

मानसिक आघात लगना किस कारण से होता है इसका भी एक जैसा विवेचन नहीं होता। कई व्यक्ति आये दिन अपमान सहते हैं और उसके अभ्यस्त हो जाते हैं उन पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता, पर कोई ऐसे भी होते हैं जो उतनी सी बात को अत्यधिक महत्त्व देकर तड़प उठते हैं। द्रौपदी ने दुर्योधन से एक निर्दोष मजाक करते हुए ही यह कहा था कि 'अन्धों के अन्धे होते हैं।' उल्टी व्याख्या करके उसे असभ्य अपराध मान लिया गया और प्रतिशोध की चरम सीमा का दण्ड उसे दिया गया। अपनी दृष्टि में दुर्योधन भी सही हो सकते हैं। उनके मस्तिष्क ने उन शब्दों को तिलमिला देने वाला अपमान समझा हो और उस आघात को गहराई के समतुल्य प्रतिशोध ढूँढ़कर अपने आघात को हल्का करने का उपाय निकाला हो। ऐसे ही हर व्यक्ति की अपनी-अपनी व्याख्या और अनुभूति होती है कौन किस घटना को किस दृष्टि से देखेगा और उसकी क्या प्रतिक्रिया ग्रहण करेगा इसका कोई निश्चित मापदण्ड नहीं हो सकता। सामाजिक और शासकीय मापदन्ड निर्धारित है कि इस सीमा का असामाजिक आचरण करने पर उसे दण्डनीय माना जायेगा पर उसमें भी अपराधी की नीयत, परिस्थिति, प्रतिक्रिया आदि का ध्यान रखा जाता है। सम्भव है अपराध गल्ती, गफलत या भ्रान्त स्थिति में बन पड़ा हो, ऐसी दशा में दण्ड हल्का दिया जाता है। मन के लिए ऐसी आचार संहिता निर्धारित नहीं कि वह किस घटना को किस रूप में ग्रहण करे। यदि कोई घटना अप्रिय या अवांछनीय स्तर की सामने आई है तो उसका आघात किस पर कितना पड़ेगा यह उसकी भावुकता एवं विचार शक्ति के समन्वय पर निर्भर है।

कितने ही व्यक्तियों के सामने हत्या, मारकाट, उत्पीड़न के दृश्य आते ही रहते हैं उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु किसी अनभ्यस्त और भावुक व्यक्ति पर उन्हीं घटनाओं का इतना प्रभाव पड़ सकता है कि वह किसी भयंकर अवसाद में डूब जाय अथवा विक्षिप्त हो उठे। अपमान, असफलता, हानि, बिछोह जैसी अप्रिय घटना, यों मनुष्य जीवन का एक पक्ष है और वह भी घटित होता ही रहता है। सम्मान, सफलता, लाभ, मिलन जैसे प्रसन्नतादायक प्रसंग आते हैं तो उससे भिन्न प्रकार की घटनाएँ क्यों घटित न होंगी। रात और दिन के विपरीत प्रसंगों की तरह जीवन की संरचना प्रिय और अप्रिय घटनाओं के लाने वाले से हुई है। सदा एक जैसी स्थिति में विशेषतया प्रिय स्थिति में सदा-सर्वदा के लिए बने रहना किसी के लिए सम्भव नहीं। उतार-चढ़ावों का आना स्वाभाविक है। धनवान, विद्वान, बलवान, व्यक्ति को भी प्रियजनों का बिछोह बढ़ी-चढ़ी महत्त्वाकांक्षाओं में असफलता, शारीरिक रुग्णता, मित्रों का छल-कपट दुःख का कारण बन सकता है। सबसे बड़ी बात है अपने रचे हुए कल्पना लोक में अवांछनीय चिन्तन का चल पड़ना। आशंकाएँ प्रायः इसी स्तर की होती हैं। दूसरे व्यक्तियों का व्यवहार, परिस्थितियों का प्रवाह निकट भविष्य में हमारे प्रतिकूल चलेगा और उससे भयंकर विपत्ति आवेगी, ऐसा चिन्तन कितने ही व्यक्ति करते और अत्यधिक उद्विग्न रहते हैं। जबकि वैसा व्यवहार एवं घटनाक्रम कदाचित ही सामने आता है। अधिकांश आशंकाएँ निर्मूल होती हैं। वे कल्पना लोक की काली घटाएँ बरसती नहीं केवल गर्जन-तर्जन करके चली जाती हैं। पर इससे क्या, जिसने आशंकाओं की भयभीत करने वाली कल्पनाओं का जाल बुना था उसके लिए तो वही असह्य पीड़ा देने के लिए बहुत बड़ा कारण बन गया।

मानसिक आघात विपरीत परिस्थितियों के वास्तविक एवं काल्पनिक घटनाक्रमों के सहारे लगते हैं। अब यह व्यक्ति की भावुकता या संवेदना शक्ति पर निर्भर है कि वह उन्हें ऐसे ही मजाक में टाल देता है, साहस समेट कर निपटने का फैसला करता है या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भयभीत होकर असन्तुलित हो बैठता है। यदि व्यक्ति डरपोक प्रकृति का और अति भावुक है तो उसके लिए छोटी घटना भी बहुत बड़ी हो सकती है और नन्हीं-सी अशुभ कल्पना से तिलमिला कर उद्विग्न हो सकता है। जो भी हो आघातों का पूरे मानसिक संस्थान पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इसकी प्रतिक्रिया शरीर पर भी भयंकर होती है। ज्वर, सिर दर्द आदि की स्थिति में शरीर असहाय बन जाता है। उसे कुछ करते-धरते नहीं बनता, बेचैनी सताती है। मानसिक असन्तुलन इससे भी बुरी स्थिति पैदा कर देता है। पूरे शरीर पर मन का नियन्त्रण है। रक्त-माँस से नहीं मानसिक निर्देशों से ही देह अपनी गाड़ी चलाती है। मन के विकृत होने पर शरीर का स्वस्थ बने रहना असम्भव है। चिकित्साशास्त्र द्वारा निर्धारित निदान व्यवस्था का व्यतिक्रम करके मनुष्य ऐसे रोगों में ग्रसित हो सकता है जो शरीर शास्त्रियों की पकड़ से बाहर हैं।

मानसिक रोग उत्पन्न करने वाले आघात अमुक घटनाओं या परिस्थितियों के कारण लगेंगे ऐसा कुछ निश्चित नहीं। यह व्यक्ति के अपने निजी स्तर पर निर्भर हैं कि वह किस प्रकार की घटनाओं को किस दृष्टि से देखता है और उनकी प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। एक ही घटना की अनेक व्यक्तियों पर परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं। घटनाओं को रोका नहीं जा सकता है। समाज का पुनर्निर्माण हो, व्यक्तियों के स्वभाव, व्यवहार बदलें, यह दोनों ही बातें संसार से मानसिक रोगों को दूर कर सकती हैं, पर वैसी स्थिति बनना आज की स्थिति में कठिन है। तत्काल तो यही हो सकता है कि मनुष्यों को सोचने का सही तरीका सिखाया जाय ताकि वे परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठा सकें और अपनी चिन्तनात्मक दुर्बलता के कारण ऐसे मानसिक रोगों से अपना बचाव कर सकें जो उनके जीवन क्रम को एक प्रकार से अस्त-व्यस्त और निरर्थक बनाकर रख देते हैं।

भूत-प्रेत और देवी-देवता, जादू टोना से होने वाली हानि असंख्यों को पीड़ित करती है। अवास्तविकता की ऐसी प्रतिक्रिया जो वास्तविकता से किसी भी प्रकार कम नहीं होती, आश्चर्यजनक है। अवास्तविक भूत-प्रेतों से आक्रान्त व्यक्ति वस्तुतः उतना ही कष्ट उठाता है जितना कि वास्तविक भूत होते तो अपने आक्रमण से हानि पहुँचाते। दूसरों से मारण, उच्चाटन, वशीकरण करके हमें सताया जा रहा है। यह मानकर कितने ही व्यक्ति वस्तुतः उद्विग्न, विक्षिप्त एवं परमासन्न होते देखे गये हैं। कितनी ही जानें इस कुचक्र में चली जाती हैं। अघोरी, तान्त्रिक, कापलिक, डायनें कितने ही लोगों के लिए आतंक का कारण बनते हैं, कितने ही राहु, शनिश्चर आदि की अशुभ ग्रह दशा की कल्पना से हर घड़ी चिन्ताग्रस्त रहते हैं, कईयों को स्वप्न की डरावनी घटना, अपशकुनों की सूचना बहुत कष्टदायक होती है। यह आशंकाएँ प्रायः सर्वथा निर्मूल होती हैं, इनके पीछे तथ्य राई रत्ती भी नहीं होता, पर जिस पर उनका आतंक छा गया है, उनकी दयनीय मनोदशा देखकर तरस आता है। यह लोग एक संवेदन के शिकार होते हैं। किसी ओंधे-सीधे आधार के सहारे उनकी आशंका इस स्तर की विभीषिका बन जाती है कि मनुष्य को प्राण संकट जैसी भयभीत स्थिति में होकर गुजरना पड़ता है। झाड़-फूँक, मंत्र से कई मनुष्यों को बहुत राहत मिलती है और संतोषजनक लाभ होता है। यह सब क्या है ? निश्चित रूप से यह उस व्यक्ति की स्वसंवेदना ही है, जो विधेयक बनकर सामने आई और उत्साह प्रदान करके सरल स्वाभाविक अच्छी स्थिति को जादू का परिणाम बताकर अपना वरदान दे गई है। पिछड़े हुए लोगों में अभी भी भूत-पलीतों और जादू-टोनों का पूरा जोर है। उससे वे वस्तुतः हानि उठाते और लाभान्वित होते हैं। यह चमत्कार अपनी कल्पना शक्ति एवं मान्यताओं का है जो अवास्तविक को भी प्रत्यक्ष वास्तविकता से भी बढ़कर तथ्यमय बना देती है।

मानसोपचारकर्त्ता डॉ. फ्लीडर्ड ने अपनी अनुभव पुस्तक में ऐसे अनेक रोगियों का उल्लेख किया है, जो चिकित्सा पर बहुत खर्च करा चुके हैं और पीड़ा से छुटकारा नहीं पा रहे थे। डाक्टर असहाय थे उन्हें सूझता ही न था कि उपचार किस रोग और किस आधार पर किया जाय, रोगी के बताये लक्षणों से जिस रोग का आभास होता था। उसकी चिकित्सा करने पर भी कोई लाभ न हुआ। ऐसी दशा में उन्हें मानसोपचार का ही आश्रय लेना पड़ा और वहीं जाकर उनकी गुत्थी सुलझी। एक दूसरे मनोविज्ञानी डॉ० डर्नवार ने ऐसे रोगियों के विवरण प्रकाशित कराये हैं, जो मानसिक विक्षोभ से पीड़ित थे किन्तु उपचार शरीर चिकित्सकों से कराते-कराते थक गये थे। जब उनके अन्तर्मन में लगे हुए घाव कुरेदे गये और उनकी मरहम पट्टी की गई तो वे सामान्य स्वास्थ्य की स्थिति में लौट आये।

खीज से मुक्ति पाने, दिलाने के लिए दूसरे लोग किसी की बहुत कम सहायता दे सकते हैं। असली उपचार तो रोगी को स्वयं ही करना पड़ता है। उसे यह मानकर चलना चाहिए कि यह दवा-दारू से अच्छी हो सकने वाली बीमारी नहीं वरन् अपने आप से पैदा की गई और अपने प्रयत्न से हट सकने वाली एक छोटी-सी आदत भर है। यह मान लेने पर आदत से आदत को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काट करने वाले प्रयत्न उत्साहपूर्वक आरम्भ किये जा सकते हैं और वे भली प्रकार भी हो सकते हैं।

अपने आस-पास अनुकूलताएँ तलाश करनी चाहिए। प्रिय पात्र, प्रिय पदार्थ, प्रिय दृश्य अवश्य दिखाई पड़ेंगे उनकी उपस्थिति को तनिक अधिक गहराई से देखा समझा जाय और जो उपलब्ध है, उसका मुस्कान के साथ स्वागत किया जाय। पेड़, पौधे, फूल, खिलौने, चित्र किसी कदर हमारा मन हल्का कर सकते हैं। पक्षियों की चहचहाहट आसानी से सुनी जा सकती है। छोटे बच्चे घर में ही उछलते कूदते, तोतली बोली बोलते और भोलेपन भरी अटपटी हरकतें करते हुए आसानी से देखे जा सकते हैं। उन्हें दिलचस्पी के साथ देखा जाय तो मुस्कान भरी प्रसन्नता की एक लहर चेहरे पर दौड़ सकती है।

खीज यदि प्रकट न हो तो वह घुटन के रूप में बदल जाती है और मन ही मन आदमी न जाने क्या-क्या वे सिर-पैर की बातें सोचता चला जाता है। कड़ी से कड़ी मिलती जाती है और चिन्तन की धारा शैतान की आँख की तरह कहीं से कहीं जा पहुँचती है। प्रिय स्वप्नदर्शी भी कई होते हैं और सुखद कल्पनाओं एवं संभावनाओं के लोग बिना पर लगाये ही उड़ते रहते हैं, उसके ठीक विपरीत खीज ग्रस्त लोगों की मनःस्थिति होती है। छिन्द्रान्वेषण, दोषारोपण, अशुभ भविष्य, अनिष्ट संभाव्य के कुरूप कई बार तो भयावह तक चित्र सामने आते हैं और आतंक करके आस-पास ही लुके-छिपे आँख मिचौनी करते रहते हैं

इस जंजाल से निकलने का एक सुगम तरीका यह है कि किसी सहानुभूति युक्त, उदार हृदय एवं संतुलित मस्तिष्क वाले व्यक्ति के सामने अपने मन की घुटन प्रकट कर दी जाय अथवा कोई ऐसा प्रसंग छेड़ दिया जाय जिससे उत्साहवर्धक एवं आशा की झलक दिखाने वाले प्रकाश, परामर्श मिल सके। तनाव के रोगी यदि ऐसे सलाहकार परामर्शदाता, सद्भाव सम्पन्न स्नेही प्राप्त कर सकें तो समझना चाहिए कि उन्हें बिना फीस का आधा डाक्टर मिल गया।

जिस समय खीज चढ़ रही हो उस समय मनोदशा पलट देना एक उत्तम उपचार है। उठकर चल दें और किसी मनोरंजक वातावरण को ढूँढ़ लें। रेडियो सुनने लगें, घूमने चले जायँ, पुस्तक पढ़ने लगें। जिस प्रसंग को लेकर मन उद्विग्न हो रहा था, उसे जहाँ का तहाँ अधूरा छोड़ दिया जाय। उस स्थिति में जितना अधिक सोचा जायेगा उतनी ही गुत्थी और उलझेगी। उत्तेजित मस्तिष्क कभी कोई सही निष्कर्ष नहीं निकाल सकता, सही निर्णय नहीं कर सकता। खीज भरी मनःस्थिति में प्रस्तुत प्रसंग पर अधिक सोचना अपने लिए गलत निर्णय से उत्पन्न और अधिक भारी विपत्ति को आमन्त्रित करना है।

कई समस्याएँ एक साथ मन पर चढ़ जाती हैं और सभी जल्दी-जल्दी अपने सम्बन्ध में विचार किये जाने की माँग करती हैं। इस घमा चौकड़ी में अधूरी एकाकी उथली समझ ही काम करती है और कुछ निष्कर्ष निकलना तो दूर उल्टे सिर चकराने लगता है। प्रतीत होता है जाने उलझनों के घटाटोप चढ़ आये हैं। इन विचारों के हुड़दंग को रोकना चाहिए और एक समय में एक विचार को अपनाकर बारी-बारी शान्त चित्त से प्रस्तुत समस्याओं पर विचार करना चाहिए। इस तरह अधिक आसानी से दिमाग का बोझ हल्का होता चलेगा और क्या करना है क्या नहीं इसका समाधान मिलता रहेगा।

कुछ लोग इसलिए भी खीजते पाये जाते हैं कि वे अपनी इच्छा को ऊँचे स्तर पर पूर्ण हुआ देखना चाहते हैं। मनोकामनाओं में विलम्ब या व्यतिरेक उन्हें असह्य होता है। प्रत्येक सम्बन्धी कहना माने, हर परिस्थिति अनुकूल रहे, हर साधन अपनी मर्जी का जुटता रहे, हर घटना अपनी कल्पना के अनुरूप घटे, इस तह सोचने वाले पाते तो कुछ नहीं खोते बहुत हैं। वे भूल जाते हैं यह दुनिया उन्हीं के लिए नहीं बनी है। वे भी अनेकों में से एक हैं। व्यक्ति अपनी मिट्टी को गठे हैं और घटना प्रवाह अपने क्रम से घटित होता है, इस सब के साथ तालमेल मिलाकर चलने में ही ठिकाना है। जो उपलब्ध हैं उस पर खुशी मनाई जाय और जो नहीं मिला है उसके लिए आशा रखी जाय। प्रयत्न और पुरुषार्थ को अपने प्रयास की सफलता मानकर चला जाय तो आदमी सन्तोषजनक जीवन बिता सकता है। खीज से बचने के लिए मनःस्थिति को इसी पृष्ठभूमि पर परिपक्व करना चाहिए। वर्चस्व नहीं सहयोग हमारी नीति होनी चाहिए। अपने ऊपर बड़प्पन नहीं लादना चाहिए वरन् चल रहे प्रवाह की एक हल्की-सी लहर जितनी ही अपनी स्थिति सोचनी चाहिए। इस प्रकार मन पर लदा हुआ वह भारी पत्थर हट जाता है, जिसे मालिकी, बड़प्पन एवं अधिकारी के रूप में अपने ऊपर लाद लिया था। तनाव भारीपन का ही दूसरा नाम है। हम हल्के रहें, हल्की-फुल्की, संतोष और मस्ती की जिन्दगी जियें तो आज का गरदन तोड़ तनाव कल तेज हवा में उड़ जाने वाले बादल की तरह तिरोहित हुआ प्रतीत होगा। अवांछनीय चिन्तन से उत्पन्न तनाव को सहज सरलता की जादुई छड़ी से देखते-देखते गायब किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्हीं अप्रिय एवं अवांछनीय घटनाओं से अथवा शारीरिक मानसिक विकृतियों से हल्की उद्विग्नता चढ़ आती है। इस स्थिति को खीज या परेशानी भी कहा जा सकता है। डाक्टरों की भाषा में इसे 'तनाव' कहते हैं। नर्वस् सिस्टम की कमजोरी वाले व्यक्ति इस स्थिति के जल्दी शिकार होते हैं। वे जो भी सामने आवे उसी पर अकारण झल्लाते हैं। चूँकि खीज भीतर भरी होती है और वह किसी न किसी को निमित्त बनाकर बाहर निकलना चाहती है। इसके लिए जो भी सामने आ जाय उसी पर कुछ न कुछ दोषारोपण करके उल्टी-सीधी कहने लग जाता है। न कहा जाय तो भी क्रोध या नाराजगी नहीं तो उपेक्षा अवज्ञा का व्यवहार तो बन ही पड़ता है। कई बार इस स्थिति में लोग खिन्नता, लाचारी एवं निराशा व्यक्त करते हुए दुःखित बने, मुँह लटकाकर बैठे भी देखे जाते हैं।

मानसिक रोग चिकित्सा की एक पद्धति है, 'विहेवियर एण्ड थिरेपी' जिसमें रोगी के साथ सदव्यवहार और सहानुभूति की समुचित मात्रा रखी जाती है और उसे स्नेह, दुलार, एवं सहयोग का अनुभव करने दिया जाता है। इस उपचार से रोगी क्रमशः 'डिसेंसिटाइज' होता चलता है साथ ही मनोव्यथाओं से राहत भी अनुभव करता है।

मानसिक रोगियों के साथ मारपीट, भर्त्सना, तिरस्कार जैसे निर्भय व्यवहार उसे और भी अधिक दुःखी करते हैं और रोग की स्थिति बिगड़ती जाती है। शारीरिक रोगियों की तरह मानसिक रोगी भी दया के पात्र हैं, उनके उपचार में स्नेह-सौजन्य और सुविधाओं का यदि समावेश किया जा सके, विक्षोभों को शान्त करने वाले वातावरण में उन्हें रखा जा सके तो औषधि उपचार की अपेक्षा उन्हें कहीं अधिक और जल्दी ही लाभ हो सकता है।

उपचार जड़ों का हो पत्तियों का नहीं

इन दिनों बढ़ती हुई सम्पन्नता और प्रचलनों की विकृति के कारण मनुष्य का समूचा व्यक्तित्व एवं चिन्तन ही गड़बड़ हो गया है। अनीतिपूर्ण जीवन जीने और अचिन्त्य चिन्तन करने वालों की मनोदशा सदा विक्षुब्ध रहती है। जिसे सही ढंग से सोचना नहीं आता, वह उल्टा चलता और औंधे मुँह गिरता है। बढ़ती हुई शारीरिक व्यथाओं के कारण और निवारण में हमें इसी तथ्य को ध्यान में रखना और संकट उपजाने वाले केन्द्र का सुधार-परिष्कार करना होगा।

''साइकोसोमैटिक मेडिसिन'' नामक अपनी कृति में चिकित्सा मनोविज्ञानी डॉ. ओ. एस. इंजिलिस ने कहा है कि शारीरिक रुग्णता के पीछे प्रायः मानसिक विक्षुब्धता ही कार्यरत देखी जाती है। मानसिक उद्विग्नता का दबाव क्षय एवं कैंसर जैसी घातक बीमारियों के रूप में फूलता है। जर्मन मनोचिकित्सकों ने इस संदर्भ में गहन खोजें की हैं और पाया है कि भीतरी अन्तर्द्वन्द्व के कारण कितने ही लोग असह्य मानसिक उत्तेजनाओं के दबावों को झेलते रहते हैं और यह दबाव अनेकानेक रोगों का रूप धारण कर बाहर निकलने का प्रयास करता है।

अनैतिक आचरण अपनाने एवं पाप कर्म करने के कारण लोग अतिशय मानसिक त्रास सहते और परिणामस्वरूप घातक रोगों के शिकार बनते हैं। मनोविज्ञान की भाषा में इसें लक्षण परिवर्तन-''सिम्पटम कन्वर्शन'' कहते हैं। इसका सविस्तार वर्णन मूर्धन्य मनःचिकित्सक डैनियल ट्यूक ने अपनी पुस्तक ''इन्फ्लुएन्स ऑफ दि माइण्ड अपॉन दि बॉडी'' में किया है। उनके अनुसार छद्म पाप कर्मों को करने और उन्हें छिपाने से अथवा दूषित भावनाओं की गहराई से जड़ जमा लेने पर सिर दर्द, माइग्रेन, एक्जिमा जैसे कई लाक्षणिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह भी देखा गया है कि किन्हीं-किन्हीं रोगियों के शरीर में कभी एक जगह दर्द होता है, तो कुछ ही क्षणों पश्चात् उस स्थान पर गायब हो जाता है और वैसे ही लक्षण अन्य जगहों पर प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार की व्याधियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैर से हाथ में और हाथ से अन्य अंग-अवयवों पर उछलकर प्रकट होती रहती हैं। विचारणाओं-भावनाओं का परिष्कार किये बिना यह व्यथा विभिन्न बीमारियों के रूप में तब तक फूटती और जीवनी शक्ति को निचोड़ती रहती है, जब तक पापों का, दुष्कर्मों का प्रकटीकरण नहीं कर दिया जाता और प्रायश्चित करके मन पर लदे उस बोझ को उतार कर फेंक नहीं दिया जाता।

विशेषज्ञों के अनुसार अधिकांश बीमारियों की जड़ साइकोसोमैटिक है। सर्दी-जुकाम, त्वचारोग, खुजली, एक्जिमा, एलर्जी आदि का कारण मन में छिपे दबाव आदि को ही माना गया है। त्वचा को उनके मानसिक एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति का अंग माना और कहा है कि उनमें उपजी विकृति के कारण जीवनी-शक्ति का क्षरण जिस तीव्रता के साथ होता है, उसकी प्रतिक्रियास्वरूप त्वचा की बाह्य सतह पर चार प्रमख लक्षण तुरन्त उभर आते हैं। ये हैं रूबर-लाल पड़ जाना, ट्यूमर-सूजन आना, केलोर-ताप बढ़ जाना और डोलोर-दर्द होना। कामुकता, विद्वेष, अप्रसन्नता, कुढ़न आदि की विकृत मनोदशा सिर दर्द, आधाशीशी जैसी व्यथाओं को जन्म देती है, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिसार, कब्ज, कोलाइटिस, अल्सर जैसी पाचन सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, चिन्ता, विक्षुब्धता एवं दबावयुक्त मनःस्थिति की देन है। श्वसन सम्बन्धी रोग तनाव, भय, असुरक्षा आदि भावनाओं के कारण पनपते हैं, तो दमा मानसिक उद्विग्नता से उपजा हुआ रोग माना जाता है। क्षय एवं कैंसर को मनोकायिक रोगों की श्रेणी में रखा जाना सुनिश्चित तथ्यों पर आधारित है। डा. किसेन एवं डा. बेटलहीम ने इस सम्बन्ध में हजारों रोगियों का लम्बे समय तक गम्भीरतापूर्वक परीक्षण और अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए बताया है कि मनोविकृतियों एवं भावोद्वेगों का शरीर की प्रतिरोधी क्षमता पर आश्चर्यजनक रूप से प्रभाव पड़ता है और वे उसे विशृंखलित करके रख देते हैं। फलस्वरूप बीमारियों के विषाणु शरीर में संक्रमण कर जाते हैं।

अतः देखा यह जाना चाहिए कि रोग जिस कारण से उत्पन्न हुआ हो उसका ही निराकरण किया जाय पत्ते तोड़ने से नहीं, जड़ उखाड़ने से संकट समाधान होता है, इस तथ्य को समझ लेने पर उपचार का मार्ग सरल हो सकता है।

अनीति का अन्तर्द्वन्द्व

उचित वस्तु का उचित मूल्य मिलना, संसार का प्रचलित नियम है। काँच का नग कुछ पैसों में बिकता है और असली हीरे को परखने वाले उसका मूल्य हजारों में चुकाते हैं। हीरे को काँच बताकर ठगने वालों का धन्धा भी कभी-कभी अँधे के हाथ बटेर लगने की तरह चल जाता है। पर जब व्यक्ति की कलई खुल जाती है और धूर्तता प्रकट होकर रहती है तो फिर स्थिति सर्वथा बदल जाती है। कलई हटने पर धातु का असली रूप प्रगट हो जाता है। काठ की हाँडी दूसरी बार कहाँ चढ़ती है।

संसार में अनेक सफलताएँ भरी पड़ी हैं। स्नेह और सहयोग करने वाले भी कम नहीं है किन्तु वे देखते हैं कि निर्देश के पीछे औचित्य भी है या नहीं। वास्तविकता में अपनी विशेषता है वह प्रकट होकर रहती है। देर तक उसे छिपाया नहीं जा सकता है। हींग की गंध कपड़ा लपेट देने पर भी रुकती नहीं, उछलकर ऊपर आ जाती है। अनुरोध या आग्रह किस निमित्त किया जा रहा है। इसका कारण छिपता नहीं। यदि स्वार्थ सिद्धि के लिए कुछ समझाया-बुझाया जा रहा है तो उस फुसलाने की पृष्ठभूमि प्रकट होकर रहती है। तुरन्त कोई बहकाने में आ भी जाय तो कुछ ही समय में समझ लौट आती है और बहकावे में पड़ने वाला असलियत समझकर सावधान हो जाता है। फिर यदि उसने कभी कोई वचन भी दिया हो, सहमति भी प्रकट की हो तो उसे वापिस लौटा लेता है। भविष्य में उसका कोई और परामर्श, निर्देश मिलने पर वह पहले से ही सतर्क रहता है और जाल में फँसने से इन्कार कर देता है।

ठगी की कला का सार संक्षेप में यह है कि किसी से अपना स्वार्थ इस प्रकार सिद्ध किया जाय कि उसे इसमें अपना लाभ प्रतीत होता हो। जादूगरी की भाषा में 'दृष्टि बंध' इसी को कहते हैं। मोटी भाषा में इसे बहकावा-फुसलावा कहते हैं। चूँकि जो प्राप्त किया जा रहा है उसका समुचित प्रतिफल देने का तो कोई इरादा नहीं है। इसलिए जिससे लाभ उठाया गया है, उसे भविष्य में कोई प्रतिफल देने की तो योजना है नहीं। इसलिए भावुक लोगों को धूर्तों का विश्वास कर लेने, उनके आदेशों का अनुकरण करने में सीधे विश्वासघात की ही शिकायत रहती है।

लोग अपने मन की बात कहीं न कहीं कहे बिना रहते नहीं। दुराव और कुचक्र की गोपनीय चर्चाएँ उसकी अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से फैलती हैं, जिनमें सच्चाई और स्वाभाविकता है। नेकी और भलाई की चर्चा किसी से करने पर यह सम्भव है कि उसे साधारण समझा या उपेक्षा में डाल दिया जाय किन्तु बेईमानी बदमाशी के बारे में यह बात नहीं। उसमें कौतुक कौतूहल होता है। इसलिए लोग कुरेद-कुरेदकर पूछते और खोद-खोदकर तह तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। स्वार्थी और चालाक की करतूतें मात्र इसी तक सीमित नहीं रहतीं जिसे कि ठगा गया है। वरन् बुराई हवा के साथ फैलती है और व्यक्ति की प्रामाणिकता को संदिग्ध बनाकर रख देते हैं।

मनुष्य के पास सबसे बड़ी पूँजी उसकी प्रामाणिकता है। जिसे ईमान का सच्चा और वचन का धनी माना जाता है, उसके निमित्त लोग जान भी लड़ा देते हैं पर धूर्त के साथ तभी तक वास्ता रखते हैं जब तक उससे कुछ मतलब निकलता है या निकलने की आशा रहती है। जब प्रतीत होता है कि वहाँ बातों को ही मीठे बताशे बटते हैं और यथार्थता के नाम पर कुछ ठोस आधार नहीं हैं तो आपके घनिष्ठ कल उपेक्षा करते हैं, परसों निन्दक होते हैं और तरसों शत्रु बन जाते हैं। परिणाम प्रकट होने में देर लग सकती है किन्तु सज्जनता और कुटिलता के अपने-अपने रास्ते हैं। उनके परिणाम भी पृथक्-पृथक्। जो किस रास्ते कदम बढ़ाता है, वह वहाँ जा पहुँचता है जहाँ उसकी अन्तिम नियति है।

कितने ही व्यक्तियों का व्यवसाय यह होता है कि सद्भाव दिखाकर ठगी अथवा जो काबू में आने से आना-कानी करे उसे डरा धमका कर शिकंजे में कसो,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्बलता या विवशता में कोई इस प्रकार के चक्र-व्यूह में फँस कर घाटा भी उठा सकता है किन्तु उसकी परिणति समयानुसार वैसी ही प्रतिकूलता समेटकर सामने आती है जैसी कि आनी चाहिए।

सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसे व्यक्तित्त्व के अन्तराल में दुहरा व्यक्तित्व उग आता है। एक फुसलाने वाला दबाव डालने वाला और दूसरा वह जो कुचक्र रचता और शोषण करता है। दोनों ही प्रतिकूल प्रवृत्तियाँ हैं। सज्जनता का साहसिकता का आवरण और वस्तुतः रंगे सियार जैसा पाखंड। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। दोनों की दिशा धारा अलग-अलग है इसलिए उनके बीच संघर्ष होता है। अन्तर्द्वन्द्व उभरता है और इस महाभारत में मारकाट के भयावह दृश्य ही विनिर्मित होते रहते हैं। कपटी की आत्मा एक ओर तो धिक्कारती है दूसरे वह दिखाने के लिए सफेद पोश बनता है। इस दुहरी भूमिका के निभाने में काफी कठिनाई पड़ती है और अन्तःक्षेत्र में भारी असमंजस उपजता है। बाहर की लड़ाई के प्रत्यक्ष दुर्घटना स्तर के आघात सहने पड़ते हैं। पर भीतर जिनके आत्मधिक्कार के घुन लगे रहते हैं वे अच्छे खासे शहतीर को खोखला करके कुछ ही दिन में गिरा देते हैं।

खंडित व्यक्तित्व एक विचित्र प्रकार का असमंजस है इसमें चेतना के दो परत आपस में रस्साकशी करते हैं। अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। हारता कोई नहीं। देवासुर संग्राम में संधि नहीं होती न किसी के हारने, किसी के जीतने की स्थिति बनती है। इस बीच मल्लयुद्ध में इतनी टूट-फूट हो लेती है कि उसकी क्षतिपूर्ति सहज नहीं होती।

साँप-छूछँदर की स्थिति में न शिकार को उगलते बनता है न निगलते। पूरी तरह असुरता पर उतारू होने पर मनुष्य समाज में मुँह दिखाने योग्य नहीं रहता। अपने जैसे दुष्ट-दुर्जनों का गिरोह बनाकर उन्हीं के सहारे दिन गुजारता है। इसे मित्र मंडली से भी सदा सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि अनीति पर आधारित मित्रता कितने दिन टिकेगी इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। कपटी मित्र अवसर आने पर शत्रु से भी महँगे पड़ते हैं। अनाचारियों की विवशता यह है कि वे सर्वथा एकाकी रहकर शक्तिहीन हो जाते हैं और दुष्टों का जमघट इकट्ठा करके वे समर्थता का क्षणिक अनुभव तो करते हैं और उससे कभी-कभी लाभ भी लेते हैं। पर उनमें आपसी अविश्वास और तिरस्कार तो बना ही रहता है। इसके उबल पड़ने पर कुछ भी अनर्थ हो सकता है। आततायियों के गिरोह इसी प्रकार टूटते बिखरते रहते हैं। प्रकृति ने यह व्यवस्था बनाकर उचित ही किया अन्यथा 'अली बाबा चालीस चोर' की कहानी हर जगह चरितार्थ हुई होती।

प्रश्न अन्तःक्षेत्र का है। नीति कर नहीं सकती। पोषित अनीति अपना चस्का छोड़ नहीं सकती। फलतः दोनों के बीच निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। इसका परिणाम शारीरिक, मानसिक विषमता उत्पन्न होना ही नहीं व्यक्तित्व का चौपट होना भी होता है।

आत्महीनता की ग्रंथि से मुक्ति पाइए

ज्वार-भाटे की तरह मानव मन पर दो तरह के चढ़ाव-उतार आते हैं। एक स्थिति में रोष, क्रोध, प्रतिरोध, आक्रमण जैसी उत्तेजना छाई रहती है। दूसरी में उदासीनता का दौर रहता है। उदासीनता वाली स्थिति में मन पर अवसाद-सा छाया रहता है। उत्साह ठण्डा पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आशा का दीपक अब बुझा तब बुझा। शरीर में आलस्य और मन में हीनता हर समय छाई रहती है। व्यक्ति दूसरे के सामने स्वयं को नगण्य मानने लगता है। सोचता है कि अमुक कार्य वह कर ही नहीं सकता, इतनी क्षमता-योग्यता उसमें है ही नहीं। ऐसी हीनता की स्थिति में उसे चिन्ता घेर लेती है, जिससे तरह-तरह की मनो शारीरिक व्यथा सताने लगती हैं। दिल की धड़कन में अनियमितता आ जाती है और रक्तचाप घट जाता है। सहसा धैर्य घट जाने से यह स्थिति उत्पन्न होती है अथवा मन को गिराते रहने के कारण होती है यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर आत्महीनता की स्थिति में भी बहुतों को प्रायः ऐसा हुआ करता है।

व्यक्ति पर आत्महीनता आकाश से नहीं टपकती, वरन् इसका उत्पादक व्यक्ति का अपना मन ही होता है। वही हीनता को न केवल उपजाता है, वरन् खाद पानी देकर परिपुष्ट भी बनाता रहता है। एक गणित अध्यापक इतने उग्र थे कि बच्चों को मूर्ख, गधा कहा करते थे। प्रायः विद्यार्थियों की ग्रहणशीलता उनकी आशा के अनुरूप न हो पाती थी। उनकी झिड़कियों को विद्यार्थी गम्भीरता से नहीं लेते थे, किन्तु एक विद्यार्थी को झिड़का ही नहीं, उसके अभिभावक को बुलाकर उनसे स्पष्ट कह दिया कि उस विद्यार्थी से बहुत कुछ उम्मीद न रखें। अग्रिम गृह परीक्षा में जब विद्यार्थी की प्रगति गणित में दिखी तो उसके मन में वह मूल्यांकन घर करने लगा, जो उसके अध्यापक तथा अभिभावक ने उसके बारे में जमा रखी थी। वह सोचने लगा कि इन लोगों की धारणा सही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह एक प्रकार से अध्यापक के विचारों के प्रति सम्मोहित-सा हो उठा।

कक्षा में एक दिन जब अध्यापक ने एक प्रश्न श्यामपट्ट पर ऐसा रखा जिसे अन्य साथी नहीं कर पाये, किन्तु इस विद्यार्थी को इस प्रश्न का हल उस समस्या से सम्बन्धित प्रतीत हुआ जिसे वह पिछले साल पढ़ चुका था। ज्यों ही उसने कहा कि ''मैं हल करने का प्रयास करूँगा''। अध्यापक समेत सभी हँस पड़े। उसे क्रोध तो हुआ किन्तु उसे दबा दिया। जिस क्षण से उसने श्यामपट्ट पर सही उत्तर निकाला तभी से उसे यह आभास होने लगा कि वह गणित के प्रश्नों को समझता है और उसे बखूबी कर सकता है। आत्मविश्वास के जाग्रत हो उठने पर वह एक अच्छा विद्यार्थी बनकर रहा।

उक्त उदाहरण में विद्यार्थी अध्यापक की टिप्पणी द्वारा अपने को हीन मानने लगा था। इसी भाँति प्रायः अधिकांश लोग अपने संगी-साथी, शुभचिन्तक, माँ-बाप अथवा दृश्य श्रव्य विज्ञापनों के माध्यम से पतित करने वाले हीन विचारों को पा जाया करते हैं। उनके मन-मस्तिष्क ने जितनी गहराई से उन्हें सही मान लिया, उतनी ही गहराई से वे व्यक्ति हीनता की शिकार बन जाते हैं। ये हीन विचार उतने ही प्रभावी होते हैं, जितनी प्रगाढ़ व्यक्ति की इनके प्रति अपनी मान्यता।

किसी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि प्रायः लोगों की जिन्दगी कुछ-न-कुछ सीमा तक हीनता के कारण थोड़ी-बहुत प्रभावित होती रही है। कुछ लोग तो इसे बुरी तरह प्रभावित होकर निरुत्साहित हो उठते हैं, जबकि अन्य अनेक आत्मघात की बात सोचते और कतिपय लोग उसे क्रियान्वित भी कर डालते हैं।

व्यक्ति प्रायः सर्वथा पूर्ण नहीं होता। उसमें कुछ गुण हैं, तो दूसरे क्षेत्र में दोष भी हो सकते हैं। किसी क्षेत्र में वह दूसरों से श्रेष्ठ है, तो सम्भव है, अन्य किसी में वह दूसरों से हल्का पड़े। यदि वह हर क्षेत्र के मूर्धन्यों से अपनी तुलना करने लगे, तो वह हर कदम पर अपने को गया-गुजरा अनुभव करने लगेगा। उदाहरण के लिए कुशल चिकित्सक एक अच्छा गायक हो सकता है और नहीं भी यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसने संगीत का अभ्यास किया या नहीं ? यदि किया तो कितना ? इतने पर ही यदि वह अपनी तुलना एक अच्छे संगीतज्ञ से करके स्वयं को तुच्छ मानने लगे, तो यह चिन्तन उसकी परेशानी वृथा ही बढ़ायेगा क्योंकि अभ्यास के अभाव में भले ही वह एक अच्छा संगीतकार न बन सका हो, किन्तु वह एक तुच्छ डाक्टर, तुच्छ व्यक्ति नहीं हो सकता।

दूसरों से तुलना करते समय ''किससे'' और ''किसकी'' तुलना का ध्यान प्रायः लोग भूल जाते हैं। गामा और गाँधी की, जवाहर लाल नेहरू और जगदीश चन्द्र बोस की तुलना नहीं हो सकती और न उन लोगों ने कभी ऐसी तुलना करने की भूल ही की। ऐसी त्रुटि को अपनाने के कारण प्रायः हीनता की शुरूआत होने लगती है और व्यक्ति अनेक प्रकार की ग्रन्थियों से घिरने लगता है।

जहाँ व्यक्ति में महत्त्वाकांक्षा विकसित हुई, समझा जाना चाहिए कि निराशा भी साथ-साथ चल रही है। यह सोचते समय कि मुझे उसके जैसा बनना ही है, व्यक्ति को अपनी औकात का भी ध्यान रखना चाहिए। चिन्तन और प्रयास उसी के अनुरूप होने चाहिए। दूसरों जैसी योग्यता-क्षमता प्राप्त करना अच्छी बात है, पर यदि उतनी अपनी औकात ही न हो अथवा औकात के बावजूद अथक प्रयास से भी सफलता न मिले, तो इसमें निराश, उदास होने जैसी कोई बात नहीं है, क्योंकि निराशा से न तो कोई बात बनती है और न कभी बनी है। अतः ऐसे समय यह मानकर सन्तोष करना चाहिए कि इस बिश्व उद्यान के निर्माण में सृष्टा ने व्यापक विविधता अपनाई है। उसने लम्बे आदमी भी बनाये और ठिगने भी, गोरे और काले भी, दुबले-पतले और हट्टे-कट्टे भी। उसने किसी एक रंग, रूप, आकार को प्राथमिकता कहाँ दी है ? अतः यदि कोई अपने भीतर वांछित योग्यता न विकसित कर सके, तो दुःखी रहकर अन्य क्षमताओं को कुण्ठित बनाना, किसी भी प्रकार बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में उसके साथ समझौता कर लेने में ही अपनी भलाई मानी जानी चाहिए।

किसी दूसरे को अपने सामने रखकर अपने को हीन मानने वाला मापदण्ड अपने ही मन का होता है। कभी-कभी इस मापन में वह भीषण गल्ती भी उसी प्रकार कर बैठता है, जैसे खेत की क्यारी को तिनके से नापना, लम्बी सड़क को वालिश्त से नापना। क्या ही अच्छा हो हम दूसरों से अपनी तुलना गलत मापदण्ड से न करें। जब हम अद्वितीय बनाये गये हैं, तो दूसरों में हूबहू कैसे मिलेंगे ? जब एक ही पेड़ में दो फूल, दो काँटे, दो पत्तियाँ एक समान नहीं मिलतीं, तो मनुष्य के साथ यह कैसे सम्भव हो सकता है कि दो व्यक्ति बिल्कुल ही एक जैसे हों ? क्षमता-योग्यता में बिल्कुल ही समान हों ? जब दो जुड़वाँ भाई सर्वथा एक से नहीं होते, तो दो व्यक्ति एक-दूसरे के सदृश्य कैसे हो सकते हैं ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाभाविक है कि एक क्षमता में कुछ उच्च होगा, तो दूसरा उससे कुछ निम्न। इस सच्चाई को स्वीकारते हुए अपने चिन्तन में तदनुरूप परिवर्तन लाने से ही आत्महीनता की व्यथा से बचा जा सकता है। इससे बचे रहने में ही भलाई भी है। शरीर-मन स्वस्थ तभी बना रह सकता है और काम करने में अभिरुचि भी तभी जागती है, इस तथ्य को समझते हुए इस विकृति से दूर ही रहना चाहिए।

मानसिक विकृतियाँ जीवन को नरक बनाती हैं

किसी को रोगी तब समझा जाता है जब वह चारपाई पकड़ ले, रोने-कराहने लगे और हड्डियों का ढाँचा रह जाय। इससे कम की बीमारियाँ तो यों ही चलती रहती हैं। उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि उनकी भयंकरता किसी प्रकार कम नहीं है। जिन्दगी के ढर्रे के साथ चलती रहने वाली बीमारियाँ प्रायः आधी शक्ति नष्ट कर देती हैं, सफलताओं की आधी सम्भावना समाप्त हो जाती है और जितने दिन आसानी से जिया जा सकता था उसमें एक तिहाई की कमी हो जाती है। इतनी बड़ी हानि के रहते हुए भी अपच, थकान, अर्धनिद्रा, जकड़न जैसे रोगों को ऐसा ही साधारण समझकर सहन कर लिया जाता है।

शरीर की तरह मस्तिष्कीय रोगों की बात भी है। स्पष्टतः शरीर की तुलना में मस्तिष्क का महत्त्व अनेक गुना अधिक है। शारीरिक उपलब्धियों की तुलना में मानसिक क्षमताओं के लाभ अत्यधिक हैं। अस्तु, शारीरिक रोगों की तुलना में मानसिक रोगों की क्षति भी कहीं अधिक है। किन्तु इस क्षेत्र में भी हमारी उपेक्षावृत्ति वैसी ही है। कपड़े फाड़ने लगे, पत्थर फेंकने लगे या घर छोड़कर कहीं चल दे, तभी किसी को मानसिक रोगी गिना जाता है। इससे कम की रुग्णता पता भी नहीं चलता, उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया जाता, जबकि अहमन्यता, आत्महीनता, वस्तुस्थिति को घटा-बढ़ाकर देखना आशंका, अस्त-व्यस्तता, अतिभावुकता, निराशा, असामाजिकता, निष्ठुरता जैसे रोग भी कम भयंकर नहीं होते। उनके कारण जीवन की सरसता और सफलता का अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है। जो बच जाता है वह टूटा-फूटा, आधा-अधूरा और कुबड़ा, कुरूप ही पल्ले बँधा रहता है।

शरीर की स्वसंचालित क्रियाओं में हृदय-स्पन्दन, रक्त-संचार, श्वाँस-प्रश्वाँस, माँस-पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन, पलक झपकना, सोना-जागना, पाचन, पसीना, तापमान आदि मुख्य हैं। यह सब बिना हमारी इच्छा शक्ति का प्रयोग किये अपने आप होती रहती है। इन पर नियन्त्रण स्थापित कर सकना कठिन है। किन्तु देखा गया है कि भावनात्मक उभारों का इन पर भी प्रभाव पड़ता है और सामान्य शरीर संचालन प्रक्रिया उत्तेजना के समय तक असामान्य बन जाती है।

क्रोध में चेहरा तमतमा जाता है, साँस तेज चलने लगती है, मुट्ठियाँ बँध जाती हैं और दाँत भिंच जाते हैं। भय का अवसर आने पर गला सूख जाता है, शरीर काँपने लगता है, रोएँ खड़े हो जाते हैं, घिग्घी बँध जाती है और पैर पर लगाकर दौड़ने लगते हैं। अन्यान्य मनोविकारों में भी ऐसे ही विलक्षण चिह्न उभरते हैं। किसी प्रियजन की मृत्यु का सन्देश मिलने पर, दुर्घटना अथवा भयंकर क्षति का समाचार पाकर बुरा हाल हो जाता है। इन भावोद्रेकों के कारण उत्पन्न हुई असाधारण स्थिति से निपटने के लिए शरीर स्वयं अपनी शक्ति भर व्यवस्था जुटाता और सन्तुलन मिलाता है। भय से बचने या शत्रु से निपटने के लिए भागने अथवा लड़ने का असाधारण पराक्रम करना पड़ता है। इसके लिए अभीष्ट ऊर्जा जुटाने के लिए ही क्रोध अथवा भय के अवसर पर विलक्षण दीखने वाली क्रियाएँ स्वयंमेव होने लगती हैं, इस नई व्यवस्था में रक्त का प्रवाह संलग्न रहता है और उसकी पेट की अभीष्ट सप्लाई रुक जाती है अस्तु पाचन-क्रिया अपने आप शिथिल हो जाती है और भूख न जाने कहाँ गायब हो जाती है ? उस स्थिति में अन्य कितने सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं यह वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल से सहज ही पता चल जाता है।

न्यूरोटिक डिप्रेशन, साइकोटिक डिप्रेशन, मेनिक डिप्रेशन, एण्डोजेनिक डिप्रेशन आदि मानसिक गिरावटें प्रायः मिलती-जुलती हैं। उनके लक्षण भिन्न-भिन्न होने से नाम कई दिये गये हैं और उनकी व्याख्याएँ लक्षणों के हिसाब से की गई हैं। यह लक्षण रोगी की प्रकृति आघात के कारण तथा वर्तमान परिस्थिति के साथ गुँथकर उभरते हैं। इसलिए प्रायः एक रोगी से दूसरे की स्थिति सर्वथा नहीं मिलती। शारीरिक रोगों की बात दूसरी है। शरीर रचना सभी की लगभग एक जैसी है इसलिए बुखार, खाँसी, दस्त, सिर दर्द आदि के लक्षणों में कोई बहुत अन्तर नहीं होता किन्तु सोचने का तरीका और स्वभाव हर आदमी का बहुत अंशों में भिन्न ही होता है। पेट के दर्द का एक ही कारण है कि जरूरत से ज्यादा अथवा अभक्ष आहार करना किन्तु मानसिक आघातों का यदि घटनाक्रम और उसके भिन्न व्यक्तियों पर पड़ने वाले भिन्न प्रभावों का लेखा-जोखा रखा जाय तो हर मानसिक रोगी का एक ऐसा स्वतन्त्र ग्रन्थ बन सकता है, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसी स्तर के अन्य रोगियों से सर्वथा भिन्न होगा। इसी विलक्षण भिन्नता को ध्यान में रखकर मानसिक रोगों के स्वरूप, लक्षणों के आधार पर उनका नामकरण अलग-अलग निर्धारित किया गया है।

हताश होना अपने आप में एक भयंकर व्यथा है। इससे मनोगत उत्साह नष्ट हो जाता है। शरीर का तापमान नीचे गिर जाय तो स्वभावतः अवयव शिथिल पड़ जायेंगे और निर्धारित कार्य पूरा न कर सकेंगे। ठीक इसी प्रकार मानसिक शिथिलता की प्रतिक्रिया होती है। निराशाजन्य मानसिक शिथिलता मन, बुद्धि, चित्त और अहं की विविध-विधि गतिविधियों के उद्गम केन्द्र को ठण्डा कर देती है इससे रोगी को न कुछ सोचते बनता है और न करते वह एक प्रकार से ठप्प जैसा होता जाता है। पर बात इतने से ही समाप्त नहीं होती। चुपचाप बैठे रहने को भी गनीमत समझा जा सकता है किन्तु शून्य स्थिति भी सम्भव नहीं होती उस स्थान पर विकृतियाँ जड़ जमा लेती हैं और सन्देह, आशंका, भय की नयी-नयी अनगढ़ तस्वीरें सामने आने लगती हैं। अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार की हानियाँ पहुँचा रहा है या पहुँचावेगा, ऐसी मान्यता उनके मन में जड़ जमा लेती है और किसी भी निर्दोष व्यक्ति को निमित्त बनाकर उस पर तरह-तरह के दोषारोपण करते रहते हैं और अपनी मान्यता के पक्ष में कुछ उपहासास्पद तर्क भी प्रस्तुत करते रहते हैं।

दूसरे व्यक्ति हमें नुकसान पहुँचा रहे हैं इसी से अपनी स्थिति अस्त-व्यस्त हो गई है, ऐसा सोचने वाले रोगी मनःशास्त्र के अनुसार 'शिजोफ्रेनिया' से ग्रसित समझे जाते हैं। उन्हें अपनी स्थिति में विकृति आने का तो भान होता है, पर उसका कारण अपने चिन्तन की विकृति के तथ्य को स्वीकार नहीं करते। कोई उनसे द्वेष करता है और नुकसान पहुँचाता है। यह दोषारोपण करके ही वे थोड़ा चैन पाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि दोष किस पर लगाया जाय। इसका सहज तरीका भूत-प्रेत, देवी-देवता पर इल्जाम लगा देना है। यह सबसे सरल रास्ता है। इसमें प्रतिवाद या झंझट का खतरा नहीं है। कई बार तो लाल-बुझक्कड़ों की भीड़ अपने-अपने अनुभव सुनाकर उसी मान्यता की पुष्टि करती है इतना ही नहीं वैसे ही झाड़-फूँक के उपचार बताती है। जादू-टोना करने वालों को घर आई शिकार पकड़ने का अवसर मिल जाता है और वे उस बात को पूरी तरह तिल से ताड़ बना देते हैं। बेचारा रोगी अपना बहम बढ़ाता रहता है और पैसे ठगाता रहता है। अपने पिछड़े देश में भूतवाद की बीमारी अन्य किसी रोग से कम नहीं वरन् ज्यादा ही है। अशिक्षा के अभिशाप के साथ-साथ जुड़े हुए अन्धविश्वास ने भूतवाद का एक अच्छा खासा कागजी महल बनाकर खड़ा कर दिया है।

भूतों-देवताओं के बाद तांत्रिकों का नम्बर आता है। किसी जादूगर ने अपनी मर्जी से अथवा किसी की प्रेरणा से कुछ जादू-टोना करके उसे रोगी बना दिया है। ऐसा वे मानते रहते हैं। यह भूत या तान्त्रिक कौन हो सकता है यह मान्यता भी क्रमबद्ध रूप से गढ़ लेते हैं।

शत्रु मित्रों में से कोई उनकी समझ पर चढ़ जाय तो फिर दोषारोपण का केन्द्र वही बन जाता है। कई बार तो अपने ही सगे-सम्बन्धी इस चपेट में जकड़ लिये जाते हैं। अपना ही बेटा, भाई, साला, जामाता, पिता अथवा कोई सम्बन्धी महिला इसका कारण बना ली जाती है।

यहाँ तक कि माता, पुत्री, बहिन या पत्नी को भी जादूगरनी अथवा इस व्यथा की उत्तरदायी ठहारा दिया जाता है। उन्हीं ने किसी से जादू कराया है अथवा स्वयं किया है। ऐसी उधेड़बुन आरम्भ में तो कल्पना और सम्भावना के रूप में ही दिमाग में आती है, पर कुछ ही समय में वह परिपक्व होकर सुस्थिर मान्यता बन जाती है। उन्हें कोई काटना या हटाना चाहे तो वे सुनने तक को तैयार नहीं होते और अपनी बात का समर्थन करते हैं मानो इसके अतिरिक्त और कोई बात हो ही नहीं सकती।

मस्तिष्कीय रोगों में सबसे अधिक व्यापक है 'सीजोफ्रेनिया' जिसके अन्तर्गत मनुष्य तरह-तरह की आशंकाएँ करता रहता है। सम्बन्धित व्यक्तियों में से प्रायः सभी उसे अपने विरुद्ध प्रतीत होते हैं और हर एक से उसे हानि, आक्रमण एवं छल की आशंका बनी रहती है। अस्तु जो उपलब्ध है वह हानिकारक और घटिया दीखती है। अपने को जो मिला है वह अपर्याप्त ही नहीं, निकम्मा और निरर्थक भी है और उतने भर से उसका सन्तोष समाधान नहीं हो सकता। अगले दिन भय और संकट लेकर आ रहे हैं। कोई दुर्घटना होने वाली है अथवा विपत्ति का पहाड़ टूटने वाला है। बुरा समय तरह-तरह की कठिनाइयाँ उत्पन्न करेगा और दुःख देगा। ऐसे व्यक्ति सदा शंकाशील, भयभीत रहते हैं। हाँपते-काँपते रहते हैं। डरा हुआ आदमी आत्म-रक्षा के लिए आक्रमणकारी बन जाता है। भय की एक प्रतिक्रिया आक्रमण के रूप में भी आती है। यदि दूसरों पर हमला न बन पड़े तो अपने ऊपर ही बरस पड़ते हैं और तरह-तरह की आत्म, प्रताड़नाएँ गढ़कर, आत्म-हत्या अथवा उसी से मिलती-जुलती कोई दूसरी विपत्ति खड़ी कर लेते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधुनिक मनःशास्त्रवेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानसिक बीमारियाँ ही अधिकतर शारीरिक रोगों के रूप में परिणित होती हैं। इन दिनों शरीरगत रोगों की बाढ़ आ रही है और उन्हें अच्छा करने में औषधियों के नित नये आविष्कार भी कुछ कारगर नहीं हो रहे हैं। इस तथ्य से विचारकों को इस निष्कर्ष पर और भी अधिक विश्वास होता जा रहा है कि मानसिक विकृतियाँ ही बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। उन्हें अच्छा करना हो तो जड़ को काटना चाहिए। मन का शरीर पर पूर्ण अधिकार होने का तथ्य सर्वविदित है, ऐसी दशा में यह भी मानना ही पड़ेगा कि विकृत मस्तिष्क लेकर कोई शारीरिक दृष्टि से नीरोग नहीं रह सकेगा।

ब्रिटेन में अपने समय के प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टन को समय-समय पर सिर का दौरा पड़ता था। संयोग की बात यह थी जब कभी राजनैतिक दबाव उन पर पड़ता था और किन्हीं जटिल समस्याओं के सम्बन्ध में पार्लियामेण्ट के सामने उन्हें स्पष्टीकरण देना पड़ता था तो वे घबराहट में पड़ जाते थे और सिरदर्द खड़ा हो जाता था। बीमारी का कारण बताकर बात आगे को टाल दी जाती थी। पार्लियामेण्ट के एक सदस्य टिमोथी माइकेल हिली ने इस सम्बन्ध में देर तक बारीकी से निरीक्षण किया और अन्त में एक लम्बी लिस्ट भी प्रस्तुत कर दी जिसमें ग्लैडस्टन के सिरदर्द और प्रस्तुत जटिल प्रश्नों के समाधान को टालने की संगति मिलाई थी। हर बार का सिरदर्द तभी हुआ जब उन्हें किसी राजनैतिक परेशानी में उलझना पड़ा। उन्हें कभी जुकाम होता था, कभी सिरदर्द। इसलिए उनकी बीमारी का एक नया नामकरण करना पड़ा डिप्लोमैटिक हैडेक, डिप्लोमैटिक कोल्ड यह बीमारी डाक्टरी किताबों में नहीं पाई जाती, पर उसके साथियों ने अपने अनुमान के आधार पर इस रोग का आविष्कार किया था।

मानसिक उलझनें अक्सर सिरदर्द की शिकायतें खड़ी कर देती हैं। घृणा, ईर्ष्या, रोष, क्रोध, खीज, प्रतिशोध जैसे उग्र एवं आक्रामक, मनोविकार अक्सर सिरदर्द की बीमारी बुला लाते हैं और विकारों के तीव्र एवं मन्द होने की गति से अक्सर दर्द का ज्वार-भाटा भी नीचा-ऊँचा होता रहता है।

मनःशक्ति की विकृति और विनाश एक ही है

''ए टेक्स्ट बुक ऑफ फिजियोलाजिकल साइकोलाजी'' के लेखक एस. पी. ग्रासमैन ने एक ऐसे उदर शूल रोगी का वर्णन किया है जिसे प्रतिदिन अपराह्न दो बजे ही भयंकर कष्ट होता। उस स्थिति में उसका सारा शरीर पीला पड़ जाता, आँखों के कोर काले पड़ जाते, अपान वायु रुक जाती और जीवन-मरण जैसा संकट उत्पन्न हो जाता। उसने अनेकों डाक्टरों से उपचार कराया किन्तु रत्ती भर आराम न मिला। अन्त में उसने मनोचिकित्सक से भेंट की और उन्हें अपनी कष्ट कहानी सुनाई।

विन्सेण्ट थाम्प्सन नामक उक्त व्यक्ति अमेरिका के अत्यन्त धनाढ्य उद्योगपति हैं। डॉ. ग्रासमैन ने कई प्रकार से उसका जीवन वृत्तान्त जानने का प्रयत्न किया किन्तु वे किसी ठोस कारण की खोज न कर सके अन्त में उन्होंने उनकी धर्मपत्नी से पूछताछ की। उससे इस बात का पता चला कि थाम्प्सन महोदय दिन भर प्रसन्न रहते हैं किन्तु बारह बजे से एक बजे तक वे किसी विचार में खोये से प्रतीत होते हैं।

मनोवैज्ञानिक को सूत्र हाथ लग गया। उन्होंने थाम्प्सन से पूछा—वे ऐसा क्यों करते हैं ? इस पर उनने वर्षों पुरानी अपनी गाँठ खोली। उनने बताया कि ठीक बारह बजे रैमिंजे कम्पनी के मालिक वानथेक्सी उधर से निकलते हैं। हम दोनों किसी समय सहपाठी थे। जिस लड़की से मैं प्यार करता था ज्ञात हुआ कि श्री थेक्सी भी उसमें रुचि रखते थे अन्त में उन्हीं के कारण उस लड़की ने उन्हें अपमानित किया तभी से उनके मन में थैक्सी के प्रति कटुता बढ़ती गई। उन्हीं के कारण एक बार मुझे अपने रोजगार में भी घाटा उठाना पड़ा, इसी द्वेष के कारण जब भी वे सामने से गुजरते हैं मेरी क्रोधाग्नि भभक उठती है और मैं उन्हें मार डालने तक की बात सोचने लगता हूँ।

इस घटना की जानकारी के बाद डॉ. ग्रासमैन ने फिजीशियन डॉ. ब्लेयर्ड के साथ जाँच करने के बाद पाया कि ठीक उसी समय स्वैच्छिक नाड़ी मण्डल से एक प्रकार का स्राव आमाशय और आँतों में विष के समान फैल जाता है, उस समय मानसिक शरीर दूषित हो उठता है और तभी पीड़ा उसे एकाएक दबोच लेती है। सारा दोष उनकी क्रोध और उत्तेजना मिश्रित ईर्ष्या का था, उसी कारण उन्हें इस भयंकर व्याधि का सामना करना पड़ रहा था जबकि डाक्टर और दूसरे लोग बीमारी पेट में ढूँढ़ रहे थे।

डॉ. ग्रासमैन ने उन सज्जन को समझाया आप (१) जुडिशस सप्रेशन—अर्थात् मन में जो भी भली-बुरी बात उठा करे उसका विवेचन किया करें दूसरों को बताया करें, अपनी विवेक बुद्धि इतनी तीव्र रखें कि अपनी छोटी से छोटी भूल पकड़ में आ जाये और तब पूर्वाग्रहरहित केवल सत्य को, न्याय को, व्यावहारिकता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही उचित मानने का अभ्यास किया करें। (२) जुडिशस सग्रेगेशन—अर्थात् उस स्थिति में निषेधपूर्ण चिन्तन के स्थान पर सद्भावपूर्ण आचरण यथा क्षमायाचना, मित्रता, उपहार आदि का आचरण करें। (३) जुडिशस फारगेटफुलनेश—अर्थात् बार-बार उन बातों को मन में लाने की अपेक्षा, उस समय कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने, धर्म पत्नी के साथ मनोविनोद करने, संगीत सुनने जैसे किसी अन्य कार्य में मन को घुलाकर उस बात को भूल जाया करें। (४) इमैजिनेशन अर्थात् अपनी आत्मा के सम्मुख अपने आप को खड़ा करके संवेदनपूर्ण चिन्तन किया करें। उस समय अपने आपको अबोध शिशु और अन्तःकरण को माँ मानकर उस तरह की भावनाएँ जगाया करें जैसी माँ बेटे के मध्य होती हैं।

उपरोक्त चार आधार आज मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी रूप में प्रस्तुत हो रहे हैं। उनका आधार यह है कि मनुष्य की जो भी कुछ शारीरिक व्याधियाँ होती हैं वह आज या कल के दुर्भाग्यपूर्ण चिन्तन और पाप का ही अभिशाप होती हैं। मनुष्य का दृश्य शरीर तो यह हाथ-पाँव वाला शरीर है, पर यह वास्तव में उस कठपुतली की तरह है, जिससे मन में बँधे विचारों के धागे सूक्ष्म नाड़ी मण्डल के द्वारा नचाते रहते हैं। यदि मन बीमार है तो शरीर अवश्य बीमार होगा। मन की गाँठ जितनी कठिन होगी, व्याधि उतनी ही स्थायी और कष्टप्रद। अब बीमारियों का दोष किसी विषाणु को देने की अपेक्षा, शारीरिक मल को देने की अपेक्षा पूरी तरह मानसिक विक्षेप को मान लिया गया है और यह निष्कर्ष पूरी तरह सामने आ गया है कि मनुष्य सद्विचारों, सद्भावनाओं में निमग्न रहकर ८० प्रतिशत बीमारियों से तो तत्काल ही छूट सकता है। २० प्रतिशत के जो आधार पहले से बन चुके हैं, उन्हें भी अपनी दुर्भावनाओं, पापों, कुविचारों को खोलकर, उनका प्रायश्चित कर साफ किया जा सकता है, जो अटल प्रारब्ध बन गये हों, मन को संवेदनाओं यथा असीम करुणा, परोपकार की भावना, प्रगाढ़ श्रद्धा, ईश्वर भक्ति की भावनाओं में डुबाकर होने वाले अटल कष्टों को भी भाले के स्थान पर मात्र काँटे चुभने जैसे हल्के रूप में निबटा जा सकता है।

थाम्पसन महोदय ने बात को गम्भीरता से अनुभव किया उन्होंने माना अपने पर अधिकार हो सकता है दूसरों को अपना मानने और उससे अपने अनुकूल आचरण की आशा रखना मूर्खता ही तो है उन्होंने थैक्सी से जाकर क्षमा याचना की और अपने अब तक के विद्वेष के विष को विसर्जित कर दिया। अपने घर में वे अधिक रुचि लेने लगे। यह परिवर्तन उनकी पत्नी उनके बच्चों को बहुत अच्छा लगा, वे सब उन्हें स्नेह और प्यार की दृष्टि से देखने लगे। विचारों की दिशा बदली तो उनका सारा जीवन ही आनन्द विभोर हो गया। उदर शूल तो मानो ब्याज में ही ठीक हो गया हो।

मनोभावों की उथल-पुथल शारीरिक क्रिया-कलाप को किस तरह प्रभावित करती है। सामान्यतः यह बात अक्सर दृष्टि में आती रहती है अत्यन्त भय की अवस्था में लोग एकाएक पीले पड़ जाते हैं, क्रोध की अवस्था में आँखें लाल हो उठती हैं। वैज्ञानिक यह मानते हैं कि ऐसा चमड़ों के नीचे रक्ताणुओं के एकाएक विस्तारण से होता है। जो हमेशा चिन्ता, तनाव और ईर्ष्या से घिरे रहते हैं, उनकी खोपड़ी में गंजापन और चिकनापन आ जाने का भी यही कारण है यदि तनाव में किसी के प्रति प्रतिशोध की भावना हो तो गिल्टियाँ तक उभर आती हैं। चिन्ताग्रस्त स्थिति में अधिकांश दबाव आमाशय और जननेन्द्रिय पर पड़ता है। पेट का कड़ा होना, गाँठें पड़ना, भूख न लगना, अति कामुकता, बार-बार पेशाब जाना यह बीमारियाँ इस बात की प्रतीक हैं कि मस्तिष्क में चिन्ता और तनाव की आँधियाँ चल रही हैं। पश्चिमी देशों में "ध्यान-साधना" से लोगों को अत्यन्त शान्ति मिलने की आम मान्यता बन गई है। इसी कारण ध्यान और योग साधनाओं के प्रति वहाँ व्यापक आकर्षण बढ़ रहा है उसका अर्थ यही है कि मन को विकृत चिन्तन की परिधि से निकाल कर उसे भावभरी संवेदनाओं में गहरा उतारा जाये। हाल की कुछ बिल्कुल नई शोधों से यह तथ्य और भी स्पष्ट हुये हैं।

अभी हाल ही में अमरीका के कार्नेल विश्वविद्यालय में एक प्रयोग किया गया। विश्वविद्यालय के अस्पताल में एक रोगी आया। आकस्मिक चोट के कारण उसकी ग्रास नली बन्द हो गई थी। इसलिए उसे एक छिद्र द्वारा आमाशय में खाना पहुँचाया जाता था। इस प्रकार उस व्यक्ति का आमाशय वैज्ञानिक प्रेक्षणों के लिए उपलब्ध हो गया। उस समय देखा गया कि उस व्यक्ति को डाँटने पर जब उसमें तथा असन्तोष तथा विरोध का भाव आया तो उसका आमाशय लाल हो गया, उसमें से अधिक रक्त प्रवाहित होने लगा और आमाशय की परतें फूलकर मोटी हो गईं।

लन्दन के डॉ. वानडेन ब्राँक और कैलिफोर्निया के डॉ. आर्थर ए वेल ने मृत्यु के कारणों पर प्रकाश डालते हुए अपने-अपने ग्रन्थों में लगभग एक से विचार व्यक्त किये हैं वे कहते हैं मानवी काया की संरचना ऐसी है कि यदि उसे सही साज-सम्भालकर रखा जा सके तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामान्य आयुष्य सैकड़ों वर्ष की हो सकती है। विनाश तो मनःशक्ति के विकृत होने से आरम्भ होता है यदि अस्त-व्यस्तता रोकने और जीवट बनाये रहने का प्रयत्न किया जाये तो आरोग्य और दीर्घ जीवन के मार्ग में आने वाली अन्य सभी बाधायें सरलतापूर्वक हटाई जा सकती हैं।

शांति मन की एक स्थिति का नाम

मन के पूरी तरह स्वस्थ एवं संतुष्ट रहने की स्थिति को ही शान्ति कहा जाता है। इसी स्थिति को अध्यात्म-मनोविज्ञान में मन की निरुद्ध अवस्था कहा गया है। वर्तमान मनोविज्ञान इसी को ''इण्टीग्रेटेड स्टेट ऑफ माइंड'' के नाम से बताता है। जो भी हो हर कोई मानसिक रूप से स्वस्थ व संतुष्ट रहना चाहता है। संभवतः एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसे अस्वस्थता और असंतुष्टि भली लगती हो।

सभी के द्वारा इसे पाने की इच्छा करने पर भी न पा सकना एक ही बात को सिद्ध करता है कि पाने का जो रास्ता अपनाया गया है, उसमें कहीं न कहीं भूल जरूर है, अन्यथा इसकी प्राप्ति अवश्य हो गई होती। डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी रचना ''प्रिन्सिपल उपनिषद्स'' में सारे प्रयासों व क्रियाकलापों को दो वर्गों में विभाजित किया है। पहला है—बाहर की वस्तुओं, स्थानों में इसकी ढूँढ़-खोज। दूसरा है—अपने अंदर ही कहीं ऐसी स्थिति की तलाश। उन्होंने एक चीज और बताई है, वह यह कि इस ढूँढ़ खोज में लगे लोगों में कुछ तो बिना जाने समझे इसे खोज रहे हैं, कुछ ऐसे हैं जो जागरूक होकर प्रयास कर रहे हैं। जागरूक होकर प्रयास करने वालों में भी अधिकतर ऐसे हैं, जो भूल-भुलैया में भटक गये हैं। वनवासी समझते हैं कि शहर में शांति है, जबकि शहर वाले वन में शांति की कल्पना में खोये रहते हैं। यह विडम्बना ही है कि गृहस्थ समझता है कि पत्नी, बच्चे, घर-परिवार की जिम्मेदारियाँ न होने कारण साधु शान्ति से होगा, जबकि साधु समझता है आराम से बने-बनाए पकवान-मिष्ठान खाने वाला सर्दी, गर्मी बरसात से सुरक्षित रहता हुआ गृहस्थ निश्चित ही शान्ति में होगा। इसी तरह काम करने वाला विश्राम में आनन्द की कल्पना करता है। बैठे-ठाले रहने वालों की अपनी स्थिति उबाऊ लगती है और इससे छुटकारा पाकर काम करना उन्हें भला लगता है।

वस्तुतः शांति की खोज इधर-उधर भटकने, वस्तु, स्थान और परिस्थितियों के बदलने से मिले यह असम्भव है। जो चीज जहाँ है ही नहीं, वहाँ मिलेगी कैसे ? इसे न तो एकांत में पाया जा सकता है, न समाज के सुविधा साधनों में। यह तो मन की एक अवस्था है। इसका पाना तभी सम्भव है जब मन उस अवस्था में पहुँचे।

वर्तमान मनोविज्ञान मन की मुख्यतः दो दशाएँ बतलाता है—पहली अस्त-व्यस्त और खंडित दूसरी इन्टीग्रेटेट। पहली में दुःख, परेशानियाँ, मनोरोगों आदि का अनुभव होता दूसरी में शांति, सुख, प्रसन्नता का। अध्यात्म-मनोविज्ञान में इसे और बढ़िया तरह से समझाया गया है। इसके अनुसार मन की पाँच अवस्थाएँ हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध।

पहली में मन खूब चंचल रहता है, पर ज्यादा परेशानी नहीं होती है। यह अवस्था बच्चों के मन की है, जो थोड़ी देर में सुखी थोड़ी देर में दुःखी प्रतीत होती है। आज का मनोविज्ञान इसे 'आसिलेशन ऑफ अटेंशन' कहता है। दूसरी में जड़ता रहती है, न कुछ करने का मन करता है, न सोचने का। तीसरी स्थिति औसत आदमी की है, जो कभी तो अपने को शान्त और अच्छा महसूस करता है, फिर कभी परेशान और दुःखी अनुभव करता है। चौथी अवस्था वह है जिसमें वैज्ञानिक दार्शनिक मनीषी जीते हैं। यह मन की स्थिरता की दशा है। इसमें पूरी तरह से शांति का अनुभव तो नहीं होता, पर उद्विग्नता-हताशा का भी एहसास नहीं होता। मन सीधी पटरी पर चलने लगता है, बाहरी परिस्थितियों से बिना परेशान हुए काम करने की योग्यता आ जाती है। पाँचवीं अवस्था ऐसी है, जिसे पूर्ण शांति की अवस्था प्रमाणित किया गया है। इसमें मन की स्थिरता के साथ अन्तःकरण के भाव भी जुड़ जाते हैं। एकाग्र अवस्था में उद्विग्नता परेशानी तो नहीं रहती, पर कोई आनन्द भी नहीं मिलता। बस ऐसा ही कुछ अनुभव होता है, जैसे कोई सही स्थिति में मशीन चल रही हो। उसमें कोई खराबी न हो। एकाग्रता की दशा में जहाँ मन की बागडोर बुद्धि के हाथों रहती है, वहीं शांति की दशा में अन्तःकरण के उच्च भावों के हाथ में। इसी कारण ऐसी स्थिति में आनन्द का अनुभव होता है।

सही मायने में यदि हम इसे पाना चाहे तो हमें अपने अंदर व्यापक फेर-बदल करना होगा। हमें अपनी दुराशाओं, इन्द्रिय-लिप्साओं, मन की वासनाओं, संकीर्णताओं से ऊपर उठना होगा। इसके लिए जरूरी है जागरूक होना। सही कहा जाय तो हमारा अधिकांश समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बेहोशी में कटता है। ऐसी बेहोशी, जिसमें कुछ करने को जी नहीं करता, बस जिस किसी तरह दिन काटे जाते हैं।

शांति पाने के लिए जो फेर-बदल जरूरी है, उसमें वासनाओं और कामनाओं को भावनाओं में बदलना होगा। इसका मतलब है कि अपने काम का दायरा शरीर और कुटुम्बियों से बड़ा करना होगा इससे हृदय की क्षुद्रता विशालता में बदलेगी। शांति के बंद दरवाजे खुलेंगे, जिससे उसका अजस्र प्रवाह सहज ही आ सकेगा।

आस्कर ब्राउन ''इण्टीग्रेशन ऑफ माइंड'' में कहते हैं किसी भी काम में उच्च और व्यापक भावनाओं तथा पूर्ण मनोयोग घोल देने पर मन के सारे द्वन्द्व समाप्त होते हैं और वह शांत होता चला जाता है। इस प्रक्रिया में मन विक्षिप्तता से उठकर एकाग्र होता है और एकाग्रता से बढ़कर निरुद्ध होता है। छोटा दीखते हुए भी प्रभाव की दृष्टि से यह एक बड़ा प्रयोग है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति काम करते हुए उसी तरह शांत और स्थिर बना रहता है, जैसे तेजी से घूमता हुआ लट्टू। गीताकार के शब्दों में जिस प्रकार सारी नदियों में जल को अपने अंदर लेता हुआ समुद्र चलायमान नहीं होता, उसी प्रकार ऐसा पुरुष कर्तव्य कर्मों को करता हुआ परम शांति को प्राप्त होता है। यही है यथार्थ शांति।

मानसिक रोगों का प्रेमोपचार

विश्व विख्यात मनःशास्त्री टामस मैलोन ने पागलपन के कारण ढूँढ़ने वाले अनेकों शोध-संस्थानों का मार्गदर्शन किया है और उन्हें परीक्षणों के आधार पर किसी उपयुक्त निष्कर्षों तक पहुँचाने में सहायता की है। उनके अनुसन्धानों के निष्कर्षों में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह पाया है कि 'मनुष्य दूसरों का प्यार पाना चाहता है पर वह उसे मिल नहीं पाता।' इस अभाव से उसके अन्तःक्षेत्र की गहरी परतों में निराशाजन्य उदासी छा जाती है। फलतः उसका चिन्तन-प्रवाह अपना सीधा रास्ता छोड़कर भटकावों में फँस जाता है। प्यार पाने की असफलता का कारण सम्भव है उस व्यक्ति के अपने ही दोष-दुर्गुणों में रहा हो, पर इससे क्या उसकी आकांक्षा तो अतृप्त ही रह गई। वह यह समीक्षा कहाँ कर पाता है कि दोष अपना है या पराया। भोजन किसी भी कारण मिले, पेट का विक्षोभ तो हर हालत में रहेगा ही। इसी प्रकार प्यार के अभाव में मनुष्य अपना मानसिक सन्तुलन धीरे-धीरे खोता चला जाता है और एक दिन स्थिति वह आ जाती है जिसमें उसे विक्षिप्त एवं अर्ध विक्षिप्त के रूप में पाया जाता है।

जो पूर्ण विक्षिप्त हो चुके हैं उनकी बात दूसरी है, पर जो दूसरों के मन और व्यवहार का अन्तर समझने में किसी सीमा तक समर्थ हैं, उनके रोग को साध्य माना जा सकता है। अधिक से अधिक यह समझा जा सकता है कि उपचार कष्टसाध्य है, पर असाध्य तो नहीं ही कहना चाहिए। ऐसे रोगियों का उपयुक्त उपचार यह है कि उन्हें उपेक्षा के वातावरण से निकालकर स्नेह-सद्भाव का अनुभव करने दिया जाय। जिनसे उसका वास्ता पड़ता है वे सभी उसे प्यार और सम्मान प्रदान करें। वैसा न करें जैसे कि आमतौर से पागलों के साथ किया जाता है। अटपटेपन पर खीज स्वाभाविक है, पर हितैषियों को यह मानकर चलना चाहिए कि रोगी आखिर रोगी है और उसके अटपटे व्यवहार जान-बूझकर की गई उदंडता नहीं वरन् चिन्तन तन्त्र के गड़बड़ा जाने की विवशता भर है। ऐसी दशा में वह तिरस्कार एवं प्रताड़ना का नहीं, दया और दुलार का अधिकारी है।

प्यार की प्यास मानवी चेतना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। पदार्थों के संग्रह इन्द्रियों की रसानुभूति के उपरान्त तीसरी भूख स्नेह की है जो व्यवहार में सम्मान के रूप में देखी जाती है। यश कामना उसी का रूप है। प्रतिष्ठा प्राप्त करते समय मनुष्य सोचता है कि यह सम्मानकर्त्ताओं द्वारा दिया गया स्नेह सद्भाव है। यों होता यह भ्रम ही है किन्तु असली न मिलने पर नकली से भी बहुत करके काम चलाते रहा जाता है। स्नेह के साथ सम्मान रहेगा किन्तु सम्मान का प्रदर्शन सदा स्नेह युक्त ही हो यह आवश्यक नहीं। उसमें छद्म भी घुला रह सकता है। सम्मान और यश के लिए लालायित प्रातः सभी पाये जाते हैं और उसके लिए समय, श्रम एवं धन भी खर्च करते हैं। यश लालसा के पीछे वस्तुतः प्यार को उपलब्ध करने की आकांक्षा ही काम करती है। लोग बड़प्पन के प्रदर्शन में उसे खरीदने की विडम्बना रचते रहते हैं।

पानी की प्यास से गला सूखता है और भूख से पेट उठता है। प्यार के अभाव में आदमी थकता ही नहीं टूटता भी है। एकाकीपन यों अन्य प्राणियों को भी सहन नहीं, पर मनुष्य के लिए तो वह न ढोया जा सकने वाला भार है। वह साथ रहना ही नहीं चाहता ऐसे साथी भी चाहता है जो उसके अन्तस् को छूने, गुदगुदाने, खड़ा रखने और उठाने में सहायता कर सके। प्यार का अभाव अखरता तो धैर्यवानों को भी है, पर हल्कापन तो उसके कारण उखड़ ही जाता है। प्रायः आन्तरिक उखड़ापन ही पगलाने की व्यथा बन कर सामने आता है। यों पागलपन के इसके अतिरिक्त भी और कितने ही कारण होते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार पगलाने वालों का सबसे बड़ा दोष यह होता है कि वे प्यार की प्रकृति को नहीं जानते और यह नहीं समझ पाते कि यह अपने भीतर से निकलने वाली आभा भर है, जो जहाँ भी पड़ती है वहाँ दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक चमक उत्पन्न करती और आकर्षक लगती है। अपना प्यार ही दूसरों में प्रतिबिम्बित होता है। यदि उसमें कमी हो तो दूसरों का वास्तविक सद्भाव भी ठीक तरह समझ सकना सम्भव न हो सकेगा। इसके विपरीत अपनी प्रगाढ़ आत्मीयता होने पर साथियों का सामान्य शिष्टाचार भी गहरे दुलार की अनुभूति करता रहता है। बल्व स्वयं जलता है और अपने क्षेत्र को प्रकाशवान करता है। व्यक्ति का अपना प्यार ही है, जो विकसित होने पर दूसरों में प्रेम प्रतिदान मिलने के रूप में विदित होता रहता है।

जो इस तथ्य को समझते हैं वे पगलाने से बचे रहते हैं। चपेट में आते हैं तो अपना उपचार आप कर लेते हैं। दूसरों की प्रतीक्षा न करके अपनी ओर से सद्भाव बढ़ाते हैं और उसे साथियों में, सम्पर्क क्षेत्र में उसका प्रतिबिम्ब देखते हैं। मानसिक अवसाद का यह अति सरल किन्तु अत्यन्त कारगर स्वसंचालित उपचार है, पर दुर्भाग्य यह है कि इस तथ्य को कोई-कोई ही समझ पाते हैं और अपनी ओर न देखकर स्नेह, सद्व्यवहार एवं सम्मान के लिए दूसरों का मुख ताकते रहते हैं। न मिलने पर खीजते और दूसरों पर ही कृपणता, कृतघ्नता आदि का दोष लगाते हैं। सहयोग के अभाव में सांसारिक कामों में हानि पड़ने की बात सर्वविदित है। आन्तरिक सद्भावों की उपलब्धि भी उससे भी बड़ी आवश्यकता है। इतने बड़े उपार्जन का यही सरल उपाय है कि अपनी ओर से प्यार का प्रकाश फेंककर दूसरों को प्रिय पात्र बना लिया जाय और अपने ही प्रेम प्रकाश का आलोक समीपवर्ती क्षेत्र में छाया देखा जाय।

मानसोपचार की कठिनाई यह होती है कि वह पगलाये हुए रोगियों को यह दार्शनिक तथ्य समझा सकने में सफल नहीं हो पाते, समझने में तथाकथित समझदार भी असफल रहते हैं। मानसिक रोगी पहले तो अपनी विपन्नता ही स्वीकार नहीं करता, करता भी है तो उसे दूसरों की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई मानता है। जब तथ्य को स्वीकार ही नहीं किया गया तो उसके परिवर्तन के लिए बताया गया उपाय भी किसी तरह गले उतरेगा। कदाचित ही कोई मनोरोग चिकित्सक अपने रोगियों को यह समझा सकने में सफल हो पाते होंगे कि उन्हें अपने भीतर आशा का, उल्लास का, प्रेम का स्रोत उभारना चाहिए और अपने सूखे मनःक्षेत्र को हरा-भरा कर लेना चाहिए। कितना दुर्भाग्य है कि दो वयस्क मस्तिष्क लाख प्रयत्न करने पर भी उस तथ्य को समझने और समझाने में सफल नहीं होते, जिन पर कि उनकी प्रसन्नता और सफलता निर्भर है।

जो हो, उपचार तो करना ही ठहरा। ऐसी दशा में एक ही उपाय शेष रह जाता है कि विक्षिप्तता एवं अर्ध विक्षिप्तता के रोगी से सहानुभूति रखने वाले सभी लोग अपना व्यवहार बदल लें। स्नेह, सहयोग और सम्मान का प्रदर्शन करें। आत्मीयजन होने के नाते यदि ऐसा सहज स्वाभाविक रूप से बन पड़े तो उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा, पर यदि भीतर से वैसी उमंग न उठती हो तो भी प्रेम प्रदर्शन को कारगर उपचार मानकर उसके लिए आवश्यक प्रयास किया जाना चाहिए।

मानसोपचार में औषधियों का, विद्युत प्रयोगों का तथा अन्यान्य क्रिया-प्रतिक्रियाओं का भी महत्त्व है, पर उन सबके संयुक्त परिणाम में भी अधिक लाभदायक यह होता है कि पगलाये रोगी को स्नेह दुलार के वातावरण में रहने का अनुभव होने लगे। उद्धत मनोरोगियों की आक्रामक गतिविधियों पर नियन्त्रण करने एवं सामान्य शिष्टाचार खो बैठने पर प्रतिबन्धित भी किया जाता है और वैसा करने से उसे क्या हानि उठानी पड़ेगी इसका अनुभव भी कराना चाहिए। अन्यथा उद्धत आचरण बढ़ता ही जायेगा। इतने पर भी यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि मानसिक रोगों के रूप में जीवन की नाव में जो पानी घुसता है उसके प्रवेश द्वार को प्यार के अभाव की अनुभूति ही कहा जा सकता है। अवसाद को उत्साह में बदल देना ही मानसिक रोगों की कारगर चिकित्सा है। इसमें प्रेमोचार को जितनी सफलता मिलती है उतनी और किसी प्रयोग को नहीं।

मानसोपचार की कुंजी अपने ही हाथ में

मानवी सत्ता का ध्रुव केन्द्र मस्तिष्क को माना गया है। सामान्यतः मस्तिष्क के दो भाग होते हैं एक मन और दूसरा अन्तर्मन। मनोविज्ञान की भाषा में इन्हीं को चेतन और अवचेतन के नाम से जाना जाता है। अवचेतन मन ही है जो चेतन मन से शरीर के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का नियन्त्रण और संचालन करने का कार्य सम्पन्न कराता रहता है। चूँकि इसका मूल स्रोत मनुष्य की अंतरात्मा है इसलिए स्व-संकेत या सुझाव एवं आत्म-सुधार की प्रक्रिया इस प्रयोजन की पूर्ति में सक्रिय भूमिका निभाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुझाव शब्द का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के मनोभावों से होता है जो उसके आचरण की मर्यादाओं को निर्धारित करते और उपयुक्त मार्गदर्शन की व्यवस्था जुटाते हैं। इन मनोभावों को अन्तःकरण में उमड़ने वाली इच्छाओं और उमंगों का प्रतिबिम्ब भी कहा जा सकता है। मनुष्य के विचारों और कार्य पद्धति का निर्धारण इन्हीं के अनुरूप होता रहता है। आत्म सुझाव की प्रेरणाएँ भी यहीं से उभरती हैं।

फ्रांस के सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी ऐमिले कोव ने आत्म-सुझाव की स्व-संकेत की प्रक्रिया पर गहन अनुसन्धान किया है। उनके कथनानुसार सांसारिक एवं बाह्य परिस्थितियाँ हर क्षण बदलती रहती हैं और तद्नुरूप मनुष्य की मनःस्थिति प्रभावित होती है। कई घटनाएँ जीवन में आशा और प्रसन्नता की किरणें फैलाती हैं तो कई अप्रसन्नता, खीज और निराशा की स्थिति उत्पन्न करती देखी गई हैं। दैनिक जीवन की नब्बे प्रतिशत घटनाओं में मनुष्य अपने मनोभावों को ही प्राथमिकता देता और अभिरुचियों के अनुरूप अपनी कार्यशैली का निर्धारण करता है। सुझाव और सुधार के निर्देशन भी उसी स्तर के मानने को तैयार होता है।

विज्ञापनों में प्रायः जनसाधारण के अन्तर्मन को प्रभावित करने की तकनीक ही अपनाई जाती है। बौद्धिक एवं चेतन मन स्तर तक सीमित रहने वाली प्रचार-प्रसार सामग्री प्रभावशील सिद्ध नहीं हो सकती। अवचेतन मन में प्रदर्शित वस्तुओं के प्रति आकर्षण उभरने पर ही व्यक्ति उसे खरीदने के लिए तत्परता दिखायेगा। वस्तु की माँग भी तभी होती है। अन्यथा चेतन मन में तो इच्छाओं की ललक उठती ही रहेगी। लेकिन इच्छाओं की आपूर्ति हेतु साधन और साहस जुटाने की व्यवस्था अन्तर्मन ही जुटा पाता है। युद्धकालीन संकटग्रस्त परिस्थितियों में हर राष्ट्र प्रचार-प्रसार के माध्यम से नागरिकों की अन्तःचेतना को जगाता और विरोधी ताकतों से जूझने के लिए प्रेरणा उभारता है, फलतः उस देश के लोग राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु मर मिटने तक को तैयार हो जाते हैं। वस्तुतः इसे अन्तर्मन की शक्ति का उभार ही कहना चाहिए।

शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों के संचालन की शक्ति अन्तर्मन यानी अवचेतन मस्तिष्क से ही आती है। एक मोटरचालक के लिए सड़क का मानचित्र उसका बौद्धिक मार्गदर्शक हो सकता है, जिससे वह यात्रा सम्बन्धी कठिनाइयों के समाधान का लाभ उठाता है। मार्ग का सही ज्ञान चालक को है तो ही चेतन मन काम करने में सफल हो सकता है। यदि वह दिग्भ्रान्त है तो मार्गावरोध खड़ा होता है। इन भ्रमित कर देने वाली परिस्थितियों में अवचेतन मन ही गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होता है। यह स्व-संकेत के सहारे ही पूरा होता है।

अवचेतन मन की परत को थोड़ा-सा कुरेदा जाय तो पता चलता है कि आत्म-विश्वास की जाग्रति का केन्द्र बिन्दु यहीं है। माना कि कोई व्यक्ति धूम्रपान की आदत से ग्रसित है और उससे छुटकारा पाना चाहता है तो उसे अन्तर्मन की सद्प्रेरणाओं के स्रोत को उभारना पड़ेगा। ''मैं धूम्रपान छोड़ सकता हूँ'' की प्रबल धारणा यदि उस क्षेत्र में समाविष्ट हो जाय तो कुछ ही दिनों में उस दुर्व्यसन से आसानी से पीछा छुड़ाया जा सकता है। ''द पावर ऑफ ऑटो-सजेशन'' नामक अपनी कृति में प्रख्यात मनोविज्ञानी पीटर फ्लैचर ने अपने प्रयोग-परीक्षणों के निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हुए बताया है कि अन्तर्मन की गहरी परतों में जब इस तरह का दृढ़ निश्चय जमने लगे तो समझना चाहिए कि दुर्व्यसनों की लत का परित्याग कर सकना अब सम्भव है।

फ्लैचर का कहना है कि आत्म-सम्मान की जिज्ञासा सभी व्यक्तियों में समान रूप से पाई जाती है, जो उसकी मूल सत्ता का आभास कराती है। लेकिन स्मृतियों के धुँधलेपन के कारण वह उसे भूल बैठता है और तरह-तरह के दुर्व्यसनों का शिकार होता चला जाता है। इस तथ्य का रहस्योद्घाटन उनने अपने मित्र के उदाहरण के माध्यम से किया है। उनका वह मित्र एक सरकारी अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी के पद पर कार्यरत था जो अपनी धूम्रपान की आदत से परेशान था। प्रयत्न करने के बाद भी लत नहीं छूट रही थी। संयोगवश उन्हें उसी अस्पताल का अधीक्षक नियुक्त कर दिया गया। अस्पताल की नियमावली के अनुसार कार्य के समय धूम्रपान वर्जित होता है। यद्यपि अधीक्षक महोदय को अपने धूम्रपान के इस दुर्व्यसन का परित्याग करने में काफी कष्ट का अनुभव हुआ फिर भी आत्म-सम्मान की अभिलाषा ने उनकी यह लत छुड़ाकर ही रखी। नेतृत्व की क्षमता पर आँच न आने देने के लिए उनने इस तरह का दृढ़ निश्चय अपने अन्तर्मन में जगाया। इस प्रकार की स्व-शिक्षण की स्व-सुझाव की प्रक्रिया ने एक सप्ताह के भीतर ही उनको दुष्प्रवृत्ति छोड़ने और नयी प्रेरणाएँ ग्रहण करने को विवश कर दिया।

शरीर और मन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मानसिक संवेगों का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जम्हाई मन को अनुभव होती है किन्तु इसका प्रभाव मानवी काया पर पड़ता है। रक्त शिराओं में जलन जैसी अनुभूति होने लगती है। कुछ लोग तो ऐसी स्थिति में उल्टी-मिचली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का शिकार बनते हैं। बेहोशी और मूर्छा आने पर हृदय फेफड़े, पाचन-संस्थान और ग्रन्थियों के स्राव में व्यतिरेक उत्पन्न होते देखा गया है। वैज्ञानिकों द्वारा किये गये परीक्षणों से यह तथ्य उभरकर आया है कि शरीर के किसी भी भीतरी अंग-अवयव पर यदि ध्यान केन्द्रित किया जाय तो उनकी क्रियाशीलता स्वतः अवरुद्ध होने लगती है, हृदय की गति पर भी यदि निरन्तर चिन्तन करते रहा जाय तो उसकी धड़कनों में व्यतिक्रम उत्पन्न होता है। चिन्तातुर व्यक्ति को 'नर्वस डिस्पेप्सिया' यानी अपच की शिकायत प्रायः बनी ही रहती है। मस्तिष्क के चेतना-प्रवाह अवचेतन मन की गरिमा पर जब विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि जीवन का अस्तित्व, स्वरूप और भविष्य भी उसी केन्द्र के साथ जुड़ा हुआ है। स्व-संकेत, आत्म-सुझाव एवं आत्म सुधार की क्षमताओं का प्रयोग इसी क्षेत्र में बन पड़ता है। विचार-प्रवाह में क्रमबद्धता का उपक्रम बिठाकर इस पर नियन्त्रण साधा जा सकता है। कुछ विचार तो स्वभावगत होते हैं जो जन्म-जन्मान्तरों से चले आते हैं और कुछ वंशानुगत। स्व-संकेत एवं स्व-सम्मोहन प्रक्रिया को अपनाकर चिन्तन की विकृति को आसानी से दूर करके सद्विचारों का बीजारोपण कर सकना सम्भव है।

कल्पनाओं की शक्ति संकेत प्रक्रिया पर ही निर्भर करती है। शर्मीलापन, दब्बूपन, संकोची तथा शीघ्र उत्तेजित हो उठने का मानसिक रोग कल्पनाओं में ही घुला रहता है। आत्म-सुझाव से, स्व-संकेत से चिरकालीन कुसंस्कारों का क्षय तो होता ही है। साथ ही दोषपूर्ण चिन्तन पद्धति में भी सुधार दिखाई देने लगता है। अवचेतन अर्थात् अन्तर्मन की क्षमता को विकसित किया जा सके तो समस्त बुराइयों, दुष्प्रवृत्तियों पर सरलतापूर्वक विजय पाई जा सकती है। प्रगति के प्रतिभा-उन्नयन के नवीन द्वार खुल सकते हैं।

उपयुक्त रंग चुनिये, मनोविकारों से बचिये

प्रकृति का सौन्दर्य रंगों की विविधता के कारण ही है। रंगों का सम्पुट लगाने पर साधारण वस्तुएँ भी आकर्षक, सुन्दर लगने लगती हैं। मनुष्य ने सम्भवतः इसी कारण कृत्रिम शृंगार साधनों के निमित्त प्रकृति से रंगों की निधि उधार में ली और सज्जा के निमित्त उसे प्रयुक्त किया। किन्तु यह पक्ष अभी भी बहुत व्यक्तियों को ज्ञात नहीं कि रंगों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। यदि यह जानकारी उपलब्ध हो सके कि कौन-सी ऋतु में, किस स्वभाव के व्यक्ति के लिए कौन-सा रंग उचित रहेगा तो उससे सर्वसाधारण को वांछित वर्ण चुनकर लाभान्वित होने का अवसर भी मिलेगा एवं अवांछनीयता से होने वाली हानि से बच भी सकेंगे।

सबसे पहले इस जिज्ञासा का समाधान कि रंग वस्तुतः हैं क्या ? भौतिकी दृष्टि से देखा जाय तो उन्हें हम कैसे निरूपित करेंगे ? आधुनिक भौतिकी के अनुसार रंगों का यह सारा खेल इलेक्ट्रॉनों और विकिरणों की तरंगों की न्यूनाधिक लम्बाई के कारण उपजता है। प्रत्येक परमाणु को नाभिक के बाहर चक्कर लगाते इलेक्ट्रॉन विशिष्ट लम्बाई की रेडियो तरंगों को सोखने की क्षमता रखते हैं। ये बाहरी इलेक्ट्रॉन स्थिति विशेष में उत्तेजित हो उठते हैं एवं बाहरी कक्षाओं में कूद जाते हैं। ये स्थितियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब वे पराबैंगनी प्रकाश किरणों को अवशोषित करते हैं। यह उत्तेजना की स्थिति थोड़ी देर बनी रहती है, वापस सामान्य स्थिति होती रहती है। इस मध्यावधि में परिवर्तन प्रक्रिया से एक निश्चित तरंग लम्बाई के फोटोन कण उत्सर्जित होते हैं। इस प्रकार के उत्सर्जित विकिरण की तरंग लम्बाई ही सात रंगों में से किसी एक रंग का निर्धारण करती है, जिन्हें मस्तिष्क का विजुअल कार्टेक्स पहचानता व मस्तिष्क को यह बताता है कि यह कौन-सा रंग है।

सूर्य की किरणें सात रंगों की बनी होती हैं। सफेद रंग इन सबका सम्मिश्रित रूप है। प्रकृति जगत रंगों की विविधता से भरा-पूरा है, इतनी विविध कि मानवी कल्पना उसकी थाह नहीं पा सकती। इन रंगों को संश्लेषित करना भी मनुष्य के लिए सम्भव नहीं। होली में प्रयुक्त गुलाल भी वस्तुतः पौधों से ही निकला है।

सौर किरणों एवं प्रकृति में विद्यमान रंगों पर शोध करने वाले वैज्ञानिकों का मत है कि भिन्न-भिन्न रंग व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति के आधार पर अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। रंगों को अवसर विशेष के अनुरूप किस प्रकार चुना जाय इसका आधार उनसे उत्पन्न सम्वेदन प्रतिक्रिया ही है। प्रकृति के अनुरूप रंगों के प्रति आकर्षण-विकर्षण होता है। किसी को लाल रंग के कपड़े पहनने से चक्कर आने लगता है तो किसी को काले कपड़े पहनते ही मानसिक अवसाद आ घेरता है। मनःचिकित्सक इस प्रतिक्रिया के आधार पर उन्हें उपयुक्त सुझाव देते हैं। यू. सी. एल. ए. के डॉ. हॉस का कथन है कि प्रयोगों से पता चला है कि प्रमादी, अल्प मन्दता ग्रस्त विद्यार्थियों के कमरों में लाल रंग पुतवा देने व उसी रंग के पर्दे लगा देने से उनकी कार्यक्षमता भी बढ़ी व उनमें स्फूर्ति-उत्साह के साथ-साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका आई० क्यू० भी बढ़ता देखा गया। चपल, आतुर प्रकृति के विद्यार्थियों पर इसी प्रकार उन्होंने नीले रंग का प्रयोग किया। इससे शामक प्रतिक्रिया हुई व उनकी चंचलता, तनाव में कमी आयी। सामान्य प्रकृति के, मनोविकार ग्रन्थि रहित व्यक्तियों में हल्का पीला-बासन्ती रंग प्रयुक्त करने पर उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया पायी गयी।

वैज्ञानिक डॉ. अलबर्ट कोहन (स्टैन फोर्ड रिसर्च सेण्टर) का मत है कि कई मनोविकारग्रस्त, तनाव पीड़ित बेचैन व्यक्तियों का उपचार मात्र उनके आस-पास के रंगों को बदलकर किया जा सकता है। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि भली-भाँति मनोविश्लेषण कर यदि सही रंग सबको पहले से ही सुझा दिये जायँ तो अनेकों मनोरोगों को टाला जा सकता है।

रंगों के आधार पर मनोविज्ञानपरक विश्लेषण कैसे सम्भव है? इसे लक्ष्य बनाते हुए पश्चिमी जर्मनी के मनःचिकित्सक डॉ. मैक्सल्यूशर ने व्यक्तित्व विश्लेषण की एक पद्धति विकसित की है, जिसमें कुल आठ रंगों में से व्यक्ति को अपनी पसन्दगी-नापसन्दगी के अनुसार रंग चुनने होते हैं। ये आठ रंग हैं—जामुनी, नीला, हरा, लाल, पीला, कत्थई, भूरा और काला। डॉ. ल्यूशर के अनुसार नीला रंग शान्तिपूर्ण सात्विक प्रभाव डालने के कारण शान्त, सौम्य, सतोगुणी व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। हरा रंग सक्रियता, काम के प्रति गहरी आसक्ति और गतिशीलता का द्योतक है। ऐसे व्यक्ति जो हरा रंग पसन्द करते हैं, जीवन में खतरा मोल लेकर कार्य करते हैं व कर्मठता के बलबूते ऊँचे उठते चले जाते हैं। इसी प्रकार लाल रंग स्फूर्ति और आवेश का प्रतीक है। ऐसे व्यक्ति उत्साही तो होते हैं, किन्तु बहुत शीघ्र आवेशग्रस्त हो जाते हैं। पीला रंग प्रफुल्लता, हल्की-फुल्की मस्ती भरी जिन्दगी का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे व्यक्ति अल्हड़ काम में रस लेने वाले किन्तु कभी चिन्तित न होने वाली प्रकृति के होते हैं।

जामुनी रंग मानसिक अपरिपक्वता, कच्चेपन एवं बचकानेपन का द्योतक है, जबकि कत्थई रंग इन्द्रिय लिप्सा, भोगों में रुचि व असंयम का प्रतीक है। भूरा रंग तटस्थता और निरपेक्ष भाव का परिचायक है, जबकि काले रंग को पसन्द करने वाले अधिकांश व्यक्ति निषेधात्मक चिन्तन के होते हैं। जैसे ही उनकी बाह्य परिस्थितियों से इस रंग के प्रभाव को हटा दिया जाता है, उनमें विधेयात्मक वृत्ति उभरने लगती है।

डॉ. ल्यूशर सामान्य व्यक्तियों एवं असामान्य मनोविकारग्रस्त रोगियों से अपनी पसन्द के रंग चुनने को कहते हैं। प्राथमिक चुनाव के आधार पर उस रंग के प्रति सम्वेदनशीलता का परिचय मिलता है। उसके साथ चुना गया द्वितीय वरीयता का रंग उसकी पसन्दगी-मनोवृत्ति को स्पष्ट कर देता है। नापसन्दगी अर्थात् इस क्रम में रखे गये अन्तिम वर्ण इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उस व्यक्ति को किन-किन वृत्तियों से परहेज है।

पाश्चात्य जगत में विज्ञान के मनोवैज्ञानिक पक्ष के प्रति रुचि जागी तो है, पर है वह मूलतः मनुष्य की अन्तःवृत्ति पर आधारित। जुंग, एडलर एवं मैस्लो जैसे मनोवैज्ञानिकों ने उपरोक्त परीक्षण के प्रति सन्देह व्यक्त किया था क्योंकि यह निर्णय मस्तिष्क की उथली परतों द्वारा लिया गया होता है। विशेषकर जुंग इस विषय में पूर्ववर्ती मनोविज्ञान के प्रति संकेत करते हुए कहते हैं कि देवी-देवताओं, पंच तत्त्वों के प्रतीक एवं सूर्योपासना, अग्नि, आराधना के पीछे मूलतः वर्ण विज्ञान के सिद्धान्त हैं। मानव मूलतः श्रेष्ठ वृत्तियों वाला है तथा वह उन्हीं को उत्तेजना देने वाले आयामों को बहिरंग में ढूँढ़ता है। आधुनिक तड़क-भड़क में श्रेष्ठता को बढ़ावा देने वाले पक्ष तो गुम हो गये हैं एवं ''बीजुअल पॉल्युशन'' को जन्म देने वाले चटकीले उत्तेजक तत्त्व बहिरंग में प्रचुरता में हैं। इन्हीं के कारण चिन्तन को निषेधात्मक फटकार मिलती रहती है। सतत् ऐसे पोषण से तनाव, बेचैनी का होना स्वाभाविक है।

वर्णों के आधार पर चिकित्सा की पद्धति भारत में प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही है। योग साधना में भी सूर्योपासना एवं रंग चिकित्सा की अनेकों विधाओं का उपयोग साधक की मनःस्थिति को दृष्टिगत रख समर्थ मार्गदर्शकों द्वारा किया जाता रहा है। यह प्रभाव उथली सम्वेदनात्मक प्रतिक्रिया तक सीमित न रहकर आध्यात्मिक विकास में उत्प्रेरक की भूमिका निभाने लगता है।

ध्यान साधना में भारतीय दर्शन के प्रवक्ताओं द्वारा भिन्न-भिन्न रंग संवेदनाओं का प्रयोग किया जाता रहा है। इन प्रभावों को आज भी भलीभाँति समझकर उनका लाभ उठाया जा सकना सम्भव है। रंगों के प्रभाव से स्वयं रंग जाने के स्थान पर उसका इच्छानुकूल और मनःस्थिति के अनुरूप प्रयोग करना ही औचित्यपूर्ण है, इसमें कोई सन्देह नहीं। क्यों न हम उचित वर्ण चुनकर उनसे समुचित लाभ उठाएँ एवं न केवल दैनन्दिन जीवन में, अपितु आत्मिक जीवन में भी प्रगति-पथ पर बढ़ने हेतु उनका सदुपयोग करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ते हुए मनोरोग-कारण और निवारण

शारीरिक रोगों के लक्षण प्रकट दीखते हैं और रोगी अपनी स्थिति का स्वयं वर्णन भी कर देता है तद्नुसार चिकित्सकों के लिए उनका उपचार करना बहुत कठिन नहीं रहता।

कठिनाई उन मानसिक रोगों की है जो विशेषतया शिक्षित और सम्पन्न देशों में आँधी-तूफान की तरह बढ़ रहे हैं। कठिनाई यह है कि व्यथाग्रस्त अपने को रोगी नहीं मानता और जिस विपन्नता से घिरा होता है, उसका पता पारिवारिक तथा सम्बद्ध लोगों द्वारा बताये हुए लक्षणों से चलता है। जो लोग उन्मादी या विक्षिप्त होते हैं, उनकी अस्त-व्यस्त हरकतें तो प्रकट होती हैं। उससे सम्बद्ध लोग परेशान रहते हैं और वह स्वयं दूसरों से नहीं अपने आप से भी परेशान रहता है। इस स्थिति में आवेश छाया रहता है और दोषारोपण से लेकर अपशब्द कहने, सन्देहग्रस्त एवं आशंकाओं से घिरा रहता है। वस्तुस्थिति की अपेक्षा ऐसी कल्पनाएँ गढ़ लेता है, जो उसे इस प्रकार हैरान करती हैं मानो उसे सचमुच ही किसी शत्रु ने या विपत्ति ने घेर रखा हो। ऐसे व्यक्ति अपने सामान्य काम-काज ठीक तरह नहीं कर पाते फलतः आर्थिक कठिनाई भी घेर लेती है। साथी सहचर उसे विक्षिप्त समझकर आरम्भ में कुछ उपाय भी सोचते हैं पर पीछे कुछ परिणाम न निकलते देखकर उपेक्षा करने लगते हैं। ऐसी दशा में वह अपने को तिरस्कृत भी अनुभव करता है और दोष अपना न देखकर दूसरों के ही सिर मढ़ता है। इस स्थिति में विग्रह का एक नया सिलसिला चल पड़ता है।

जिनमें उन्माद के लक्षण प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं उन्हें मनोरोग चिकित्सालयों में या तो स्वयं जाना पड़ता है या उन्हें वहाँ अपनों द्वारा ही धकेला खदेड़ा जाता है। जो अपने को सर्वथा एकाकी अनुभव करते हैं और अपने तथा समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं, उन्हें सरकारी नियन्त्रण में लेकर कोई दुर्घटना खड़ी न कर देने से रोका जाता है।

नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार संसार के समृद्ध देशों में पगलाने की यह व्यथा तेजी से बढ़ रही है। उदाहरण के लिए, अमेरिका का एक पर्यवेक्षण सामने है। मनोरोग चिकित्सालयों के आधार पर उस देश के वयस्कों में २० प्रतिशत व्यक्ति विभिन्न जाति के मनोरोगों से ग्रसित हैं। इनमें से १५ प्रकार के रोगों का बाहुल्य है। ऐसे रोगियों की संख्या ४ करोड़ तक जा पहुँची है। इसके अतिरिक्त १ करोड़ ३१ लाख वे हैं जिन्हें विक्षिप्त तो नहीं कहा जा सकता पर सनकी अवश्य हैं। सनकी का तात्पर्य है जन-साधारण की रीति-नीति छोड़कर चिन्तन एवं स्वभाव व्यवहार की ऐसी लकीर पकड़ लेना जो अटपटी मालूम होती हैं और उनसे सम्पर्क रखने में कोई भी कतराने लगता है। वे कर्मचारी हैं तो बॉस और बॉस हैं तो कर्मचारी भीतर ही भीतर कुढ़ते रहते हैं और पारस्परिक व्यवहार में कई बार खीज प्रकट करने लगते हैं, अवज्ञा भी।

इससे भी आगे बढ़कर स्त्री-बच्चों के साथ भी पटरी न खाने की बात है। घर को छोड़कर कहीं जंगल में तो नहीं बस सकते पर जिनके साथ रहते उन्हें निरन्तर शिकायतें करते, उलाहना देते या चें-चें करते देखा जाता है। जहाँ प्रेम और सहयोग न हो, एक-दूसरे का सम्मान न करें, कृतज्ञता प्रकट न करें एवं उपयोगिता अनुभव न करें वहाँ साथ रहते हुए भी सराय, प्लेटफार्म या जेल जैसा वातावरण रहता है। ज्यों-त्यों करके मजबूरी में गाड़ी धकेली जाती रहती है। एक खण्डित व्यक्तित्व समूचे परिवार की ही नहीं, साथियों एवं पड़ौसियों की भी नाक में दम कर देता है। ऐसे सनकी समुदाय की गणना तो ठीक तरह नहीं हो सकी है, पर समझा जाता है कि वे अस्पतालों में भर्ती होने वालों की तुलना में कम नहीं अधिक ही होंगे।

इसके बाद नशेबाजों का नम्बर आता है। ऐसे नशेबाज खुमारी में ढेरों समय तथा पैसा बर्बाद करते हैं। हल्के नशेबाज वे हैं जो वीयर, सिगरेट जैसे बहुप्रचलित नशे के आदी हैं। पर जो होश-हवास खो बैठते हैं और खुमारी की स्थिति में कुछ भी करने लगते हैं। असल में उन्हीं को आपे से बाहर नशेबाज कहा जाता है। उनकी सूझ-बूझ एवं क्रिया शक्ति कुंठित हो जाती है। खुमारी उतरने के बाद ये अपने को बेहद थके एवं निराश, असहाय अनुभव करते हैं। तब उन्हें नया और बड़ा डोज लेने की आवश्यकता पड़ती है। इन सभी वर्ग के अस्त-व्यस्त लोगों की क्षमता एवं उपयोगिता बेतरह कम हो जाती है यों गुजारे भर की काम चलाऊ स्थिति में तो वे किसी प्रकार बने रहते हैं। बड़ी बात यह है कि एक खण्डित व्यक्तित्व का मनुष्य अनेक अन्यों को भी अपनी चपेट में ले लेता है और भले-चंगों को अपने से मिलता-जुलता बना लेता है। यह स्थिति अमेरिका की ही नहीं फ्रांस, ब्रिटेन, इटली आदि की भी है। एशिया और अफ्रीका के देशों में भी अनेक लोग ऐसे हैं, पर उन्हें गरीबी, बेकारी आदि प्रत्यक्ष कारणों का शिकार कहकर क्षम्य भी ठहरा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ते हुए मस्तिष्कीय विकृतियों के सम्बन्ध में कामुकता और सामाजिक वर्जनाओं का व्यतिरेक प्रमुख कारण है। मनोरंजनों की अनेक धाराएँ सिमटकर कामुकता के इर्द-गिर्द एकत्रित होती जाती हैं। मर्यादाएँ तोड़ने वाला एक व्यक्ति अनेकों को अपनी छूत लगा देता है। चरित्रवान लोग अपने जैसे चरित्रवान कितने बना सकते हैं यह कहना कठिन है, पर यह निश्चय है कि उच्छृंखलता के आदी लोग वैसा ही चस्का अपने सम्पर्क में आने वाले अनेकों को लगा देते हैं।

पारस्परिक सद्भाव के स्थान पर छल कपट की परिपाटी जब अपनाई जाती है तो दुहरे व्यक्तित्व का सृजन होता है। कहना कुछ करना कुछ जैसे स्वभाव वाले दूसरों के लिए जितने हानिकारक होते हैं, उससे कहीं अधिक अपना नुकसान करते हैं। अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में मनुष्य सही सोचने और सही नतीजे पर पहुँचने की स्थिति में नहीं रहता।

अपराधी स्तर के कुकृत्य करने में कुछ समय पूर्व आत्मा-परमात्मा से डरते थे। अपयश एवं सामाजिक भर्त्सना का भय खाते और इस कारण जो तिरस्कार, असहयोग उपलब्ध होता था उससे डरते थे। पर अब उच्छृंखलता साहसिकता का पर्यावाचक बनती जा रही है। इस मार्ग पर चल पाने वाले आरम्भ में मानसिक स्वास्थ्य गँवाते हैं और फिर शारीरिक दुर्बलता, रुग्णता के शिकार भी बनते जाते हैं। अपराधी एकाकी रह जाता है। उसका सच्चा मित्र सहयोगी कोई नहीं रहता। अवसर पड़ने पर तथाकथित अपनों का आँखें फेर लेना, अक्सर ऐसे ही लोगों के सामने आता रहता है। जिसका अपने ऊपर से विश्वास उठ जाता है उसे अपना कोई सगा नहीं दीखता। हर घड़ी धोखा होने की आशंका बनी रहती है। इन्हीं सब बातों को मिलाकर वह स्थिति बनती है जिसे तनाव कहते हैं। यह ऐसा कुचक्र है जिसमें फँस जाने पर निकलना कठिन होता है। आन्तरिक दृष्टि से अशान्त व्यक्ति के व्यवहार में ऐसी अवांछनीयताएँ घुस पड़ती हैं, जिनके कारण निरन्तर खीज रहने लगती है और वह प्रकारान्तर से विक्षिप्तता के रूप में प्रकट होती है।

इस स्थिति में मनोरोग चिकित्सक कोई कारगर सहायता नहीं कर सकते। कारण एक ही है, मानव मर्यादाओं का उल्लंघन। इसलिए उपचार भी एक ही हो सकता है-सज्जनता, शिष्टता एवं आदर्शवादिता का समुचित मात्रा में अवलम्बन।

हास्य चिकित्सा को भी अपनाकर देखें

रोग का सम्बन्ध शरीर से कम और मन से अधिक होता है। कितना ही सुख-सुविधा सम्पन्न जीवन क्यों न जीते रहा जाय, पर मन में अप्रसन्नता बनी रहने पर तो व्यक्ति विभिन्न प्रकार की आधि-व्याधियों का शिकार ही बनता और स्वास्थ्य को चौपट करके रख देता है। यही कारण है कि चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में रोगी की खिन्न, उदास एवं तनावग्रस्त मनःस्थिति को प्रसन्नता-प्रफुल्लता में बदलकर आरोग्य प्रदान करने की नवीनतम विधियाँ सुविकसित होती जा रही हैं। हास्य से उपचार की एक ऐसी विद्या अब स्वास्थ्य विज्ञानियों के हाथ लगी है।

स्वीडन के मूर्धन्य चिकित्सा शास्त्री डॉ. लार्स ने कुछ इसी स्तर के प्रयोग छः रोगियों पर पिछले दिनों किये, जो तनाव और हड्डियों के दर्द से पीड़ित थे। हास्य चिकित्सा द्वारा उपचार होने से वे आज स्वस्थ-सानन्द जीवन का अनुभव कर रहे हैं। डॉ. लार्स ने इस चिकित्सा-पद्धति की सफलता का रहस्य सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित जीवनक्रम को ही बताया है। उनने इस प्रयोजन की पूर्ति हेतु एक 'हास्य-दल' को संगठित किया है जिसमें चिकित्सकों एवं नर्सों को ही चुना गया है। इस दल का मूलभूत प्रयोजन हँसने-हँसाने की पुस्तकें और ऑडियो-वीडियो रिकार्ड तैयार करना है, जिनके माध्यम से रोगी की जीवनचर्या में मनोविनोद, हास-परिहास और हर्ष-उल्लास का समावेश किया जा सके। रोगी के जीवन को सरल, सरस और सुगम बनाने का यह एक बड़ा ही प्रभावोत्पादक तरीका है। उनकी शोध-निष्कर्षों का यही सार-संक्षेप है कि मन को प्रसन्नचित्त बनाया जा सके तो तनाव मुक्ति का उपक्रम आसानी से बिठाया जा सकता है। चिकित्सा से पूर्व और बाद में रोगियों की शारीरिक और मानसिक स्थिति का परीक्षण करने से ही वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हँसती-मुस्कराती आकृति-प्रकृति के लोग ही अधिक स्वस्थ-सानन्द जीवन जीते हैं।

गाँधी जी ने हास-परिहास को अत्यधिक महत्त्व दिया था। वे प्रायः यही कहा करते थे कि मेरे जीवनक्रम में से हँसी और मुस्कराहट यदि निकल जायें तो आत्महत्या के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं सूझेगा। ब्रिटिश लेखक लार्ड लिनिलिथगो ने ''सेंस ऑफ ह्यूमर'' नामक अपनी कृति में हर्षोल्लास की मनःस्थिति को जीवन निर्माण की आधारशिला बताया है। वे अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

व्यंग चित्रों और कार्टूनों पर स्वयं हँसते व सतत् तनाव मुक्त बने रहते थे।

संसार भर के चिकित्सा विज्ञानी अब इस तथ्य को पूर्णरूपेण अंगीकार करने लगे हैं कि हँसती-मुस्कराती जीवनचर्या स्वस्थ जीवन का मूलभूत आधार है। शरीर के भीतरी अंग-अवयवों की संरचना कुछ इस ढंग से की है कि वे हास-परिहास के वातावरण में ही सही रूप से सुसंचालित होते और मानवी स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं।

मुक्त कण्ठ से हँसने से आमाशय आनन्द की लहरों से झंकृत हो उठता है, जिसके फलस्वरूप पाचन क्रिया की क्रियाशीलता स्वत ही बढ़ने लगती है। हृदय-स्पन्दन में वृद्धि होती है और रक्त प्रवाह बढ़ने लगता है। कहने का अभिप्राय है हँसी-मुस्कान बिखेरना, रक्त संचार केन्द्रों को अनुप्राणित करना और श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया में तेजी लाना है। समूची काया में ऊष्मा का प्रवाह बढ़ने से व्यक्ति में ओजस्विता छलकने लगती है।

हँसना मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया है। सृष्टि का कोई और दूसरा प्राणी हँसता हुआ नहीं देखा जाता। इसी विशेषता के आधार पर विचारकों ने इसे हँसने वाला प्राणी कहकर परिभाषित भी किया है, पर बढ़ती हुई तनावपूर्ण जीवन शैली ने मनुष्य का हँसना-गुनगुनाना भी भुला दिया है। इस भूल के कारण शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है। व्यक्ति अनेक व्यथाओं से घिर जाता है।

गहराई से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश के चेहरे पर चिन्ता की रेखा खिंची हुई हैं। अवसाद से मन भरा हुआ है। जीविका कमाने का संघर्ष एवं भौतिकता को ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने की होड़ ने मानो उनसे प्रसन्नता को छीन लिया है। मनुष्य यह भूल गया है कि सफल जीवन के लिए हँसती-हँसाती, हल्की मनःस्थिति ही आवश्यक है। अकारण चिन्तित एवं गम्भीर बने रहने से कुछ प्राप्त नहीं होता है, उल्टे हानि ही उठानी पड़ती है।

दस वर्षों से अमेरिका के कारपोरेशन एवं अस्पतालों में उल्लास का संदेश देने वाले मूर्धन्य मनोचिकित्सा विज्ञानी जोयल गुडमैन का कहना है कि व्यक्ति को जीवन में एकरसता नहीं आने देनी चाहिए। जीवन में चाहे जितना भी संघर्ष करना पड़ता हो, शारीरिक-मानसिक जटिलताओं का सामना करना होता हो, लेकिन इससे जीवन में शुष्कता को प्रवेश नहीं पाने देना चाहिए। हँसी का फब्बारा ही वह स्रोत है जो शरीर में रोग मुक्त करने वाली जीवनी शक्ति को बढ़ावा देता है और मन में नया उत्साह पैदा करता है।

पुराने जमाने में राजदरबार में विदूषक होते थे। ये राजा के तनाव को दूर करने के लिए हल्के-फुल्के चुटकलों और कहानी-किस्सों को सुनाया करते थे। इन दिनों अमेरिका में इस कार्य के लिए डॉक्टरों की मदद ली जा रही है। हँसी-मजाक के ये डॉक्टर जगह-जगह उभर रहे हैं। कैलीफोर्निया स्थित प्लेफेयर इन कारपोरेट के संस्थापक अध्यक्ष श्री मेरवीस्टीन का कहना है कि वे स्वयं किसी कार्य भार को विनोदपूर्वक हल्के-फुल्के ढंग से लेते हैं और मनोयोगपूर्वक इसे पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। लोगों को वे सलाह देते हैं कि अपने काम को गम्भीरता से तो लें किन्तु हल्की-फुल्की मनःस्थिति को बनाये रखें। व्यवस्था की प्रवीणता का यह एक आवश्यक गुण है। व्यक्ति में स्वयं अपने प्रति विनोद की भावना होनी चाहिए। यहाँ काम को गम्भीरता से न लेने का अभिप्राय गैर जिम्मेदारी नहीं है। बल्कि एक ऐसी मनःस्थिति है जो कार्याधिक्य से प्रभावित नहीं होती है। हँसी प्रदान करने वाले चिकित्सकों ने यह भी निर्धारित कर दिया है कि एक मजदूर को दिन में कितनी बार हँसना चाहिए। तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से ये हास्य चिकित्सक मनुष्य को फिर से हँसना सिखा रहे हैं।

हँसना स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा टॉनिक है। शरीर में पेट और छाती के बीच एक 'डायफ्राम' होता है, जो हँसते समय कम्पित होता है। जिससे सारे आन्तरिक अवयवों में गतिशीलता आती है। नियमित रूप से हँसना शरीर के सभी अवयवों को ताकतवर और पुष्ट बनाता है। खुलकर हँसने से रक्त संचार की गति बढ़ जाती है तथा पाचन तन्त्र अधिक कुशलता से कार्य करता है। हँसी श्वसन क्रिया को तेज करती है और फेफड़े में रुकी हुई दूषित वायु को बाहर निकालने में सहायक होती है। हँसने के कारण फेफड़े के रोग नहीं होते हैं।

हँसने का लाभ यह भी है कि यह जीवन की नीरसता, एकाकीपन, दुष्कृत भावना, थकान, मानसिक तनाव एवं शारीरिक दर्द से राहत दिलाता है। अनुसन्धानकर्ता वैज्ञानिक प्लेफेयर इनकोरपोरेट बकर्ली के डॉ. फ्रेंच का कथन है कि अपने बच्चों को हमेशा प्रसन्न रहने की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें प्रतिदिन हँसाने का प्रयत्न करना चाहिए। कभी-कभी माता-पिता अपने बच्चों को जोर से हँसने पर मना करते हैं, किन्तु इससे बच्चों का स्वाभाविक उत्साह नष्ट हो जाता है। यदि बच्चों में हँसी का विकास नहीं हुआ तो आगे जाकर वह अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस-पास हँसी-खुशी का स्वच्छन्द वातावरण नहीं बना पायेंगे। हास्य चेतना का विकास मनुष्य को अपनी खामियाँ दूर करने में काफी सहायक सिद्ध होता है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से अब यह भी स्पष्ट हुआ है कि अधिक हँसने वाले बच्चे अधिक कुशाग्र बुद्धि के होते हैं। हँसना उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जापान में लोग अपने बच्चों को प्रारम्भ से ही हँसते रहने का शिक्षण देते हैं। वे इस सिद्धान्त को मानते हैं कि असफलता और सफलता दोनों जीवन में धूप-छाँव की भाँति आते हैं। यदि मनुष्य दोनों परिस्थितियों में हँसमुख रहता है तो उसका मन सदैव काबू में रहता है।

स्टैनफोर्ड मेडिकल स्कूल के मनोवैज्ञानिक डा. विलियम फ्रायड का तो यहाँ तक कहना है कि हँसी के बिना जीवन नहीं है। यदि रोगी व्यक्ति हँसता नहीं है, तो प्रायः वह अधिक रोगग्रस्त हो जाता है। उनका निष्कर्ष है कि हास्य शरीर को झकझोर देता है। जिससे शरीर में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली अंतःस्रावी प्रणाली सुचारु रूप से कार्य करने लगती है। दिन में एक बार खुलकर हँसने को दस मिनट नाव के चप्पू चलाने जितना लाभकारी माना गया है। रोग से दूर रहने का अचूक उपाय हास्य है वास्तव में जब खुलकर कहकहा लगाया जाता है तो उदर, फेफड़े और यकृत सभी का 'मसाज' होता है। प्रत्येक मनुष्य हँसने का प्राकृतिक रहस्य समझ ले तो वह बीमारी से बच सकता है। हँसने को संक्रामक रोग की तरह फैलने दिया जाय तो शेष रोगों पर बहुत हद तक नियन्त्रण पाया जा सकता है।

प्रख्यात सामाजिक चिंतक और लेखक डेल कारनेगी का कथन है कि हमें हँसी या मुस्कराहट पर कुछ नहीं खर्च करना पड़ता है, परन्तु यह बहुत कुछ पैदा कर सकती है। पाने वाला भी तृप्त हो जाता है और देने वाला कभी गरीब नहीं होता।

आज लोग अपनी गम्भीरता तथा उदासी का कारण उत्तरदायित्व एवं चिन्ता बतलाते हैं। कहते हैं—ढेर की ढेर चिन्तायें सिर पर सवार हैं, जिम्मेदारियाँ पीसे डाल रही हैं। ऐसे में कैसे हँसें ? किन्तु वे यह नहीं सोचते कि उदास रहने से चिन्तायें और प्रबल और उत्तरदायित्व और बोझिल हो जाता है। जबकि हँसने और प्रसन्न रहने से उसका बोझ हल्का मालूम होता है, उन्हें वहन करने की शक्ति में वृद्धि होती है। एक बार किसी विदेशी ने महात्मा गाँधी की विनोदप्रियता के विषय में प्रश्न किया तो बापू ने बताया कि—''यदि मुझमें विनोदप्रियता की वृत्ति न होती तो मैं चिन्ताओं के भार से दबकर कभी का मर गया होता। यह मेरी विनोदप्रियता ही है जो मुझे चिन्ताओं में घुलने से बचाये रखती है।''

जिसकी हास्य-विनोद में रुचि नहीं, हर समय रोनी सूरत बनाये रहता है, उसका साथ देना लोग कम पसन्द करते हैं। एक विचारक ने कहा है कि ''अगर तुम हँसोगे तो दुनियाँ तुम्हारे साथ हँसेगी और अगर तुम रोओगे तो कोई तुम्हारा साथ न देगा। जीवन को सामाजिक बनाने के लिए भी हास्य की आवश्यकता है।''

भौंरे उसी फूल पर बैठते हैं, जो खिला दिखाई देता है। मुरझाये फूल पर न कभी भ्रमर जाते हैं न तितिलयाँ। हँसता-मुस्कराता चेहरा व्यक्तित्व के आकर्षण में चार चाँद लगा देता है। हम इसका महत्त्व नहीं समझते इसीलिये मनहूस बने रहना पसन्द करते हैं। मनहूसियत मिटाने और दैनन्दिन जीवन के तनाव से मुक्ति पाने का सर्वोत्तम उपाय है कि जीवन एक खेल की तरह लिया जाय, खिलाड़ी की मनःस्थिति रखी जाय। अपनी बेवकूफियों पर स्वयं हँसा जाय व दूसरों को प्रफुल्ल रखा जाय। भौंडा हास्य नहीं, अपितु स्वभाव में सहज सौजन्य से भरे विनोद का समावेश व्यक्तित्व को कितनी विभूतियों से भर देता है, यह तब समझ में आयेगा जब हम समाज सम्पर्क में इसका प्रयोग करके देखेंगे। आइये खुशियाँ बाँटे-बँटायें। हँसी-खुशी का वातावरण चारों ओर बनायें। यही मनुष्य जीवन की स्वाभाविक स्थिति है।

यमलोक का चित्रगुप्त हमारा अचेतन मन ही है

जैसे-जैसे हम स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करते हुए आगे बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे हमें संकटों और अभावों के वास्तविक कारणों को समझने में सुविधा मिल रही है। मोटी बुद्धि सदा संकटों का कारण बाहर ढूँढ़ती है। व्यक्तियों, परिस्थितियों पर ही प्रस्तुत विपन्नताओं का दोष थोपकर चित्त हल्का करने की विडम्बना चलती रहती है। समझदारी बढ़ने पर ही यह पता चलता है कि घटिया व्यक्तित्व ही पिछड़ेपन से लेकर समस्त संकटों के घाट हैं। मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थिति बनती है उसे विचारशील ही स्वीकार करते हैं। अन्यथा आमतौर से कठिनाइयों के कारण बाहर ही ढूँढ़े जाते हैं। गहराई में प्रवेश किये बिना न तो वास्तविकता जानी जा सकती है और न उनके निवारण का कारगर उपाय ही बन पड़ता है। व्यक्तित्व का घटियापन सूझ ही न पड़े, उसके सुधार की कोई योजना बने ही नहीं तो परिस्थितियों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विपन्नता का समाधान हो नहीं सकता। वे एक से दूसरा रूप भर बदलती रहेंगी।

बहुत समय पहले शारीरिक रोगों को बाहरी भूत-पलीतों का आक्रमण माना जाता था, पीछे वात, पित्त, कफ का, ऋतु प्रभाव का कारण उन्हें माना गया। उसके बाद रोग कीटाणुओं के आक्रमण की बात समझी गयी। रोगों की शोधों का अगला चरण यह बना कि आहार की विकृति से पेट में सड़न पैदा होती है और उस विष से रोग उत्पन्न होते हैं । यह क्रम अधिकाधिक गहराई में प्रवेश करने का, अधिक बुद्धिमत्ता का स्थूल से सूक्ष्म में उतरने का है। इस प्रगतिक्रम में उतरते-उतरते इन दिनों आरोग्यशास्त्र के क्षेत्र में इस तथ्य को खोज निकाला गया है कि शारीरिक रोगों के सन्दर्भ में आहार-विहार, विषाणु आक्रमण आदि को तो बहुत ही स्वल्प मात्रा में दोषी ठहराया जा सकता है। रुग्णता का असली कारण व्यक्ति की मनःस्थिति है। मनोविकारों की विषाक्तता यदि मस्तिष्क पर छाई रहे तो उसका अनुपयुक्त प्रभाव नाड़ी संस्थान के माध्यम से समूचे शरीर पर पड़ेगा। फलतः दुर्बलता और रुग्णता का कुचक्र बढ़ते-बढ़ते अकाल मृत्यु तक का संकट खड़ा कर देगा। नये अनुसन्धान जीवनी-शक्ति का केन्द्र हृदय को नहीं मस्तिष्क को मानते हैं। रक्त की न्यूनाधिकता या विषाक्तता को रुग्णता का उतना बड़ा कारण नहीं माना जाता जितना कि मानसिक अवसाद एवं आवेश को। ''साइकोन्यूरोइम्यूनोलॉजी'' की पूरी अवधारणा इसी पर आधारित है।

सुविख्यात मनःशास्त्री एच. एलेनवर्गर के शोधग्रन्थ ''ए हिस्ट्री ऑफ डायनमिक साइकियाट्री'' के अनुसार शरीर की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्रियाओं पर पूरी तरह मानसिक अनुशासन ही काम करता है। अचेतन मन की छत्र-छाया में रक्ताभिसरण, आकुंचन-प्रकुंचन, श्वाँस-प्रश्वाँस, निमेष-उन्मेष, ग्रहण-विसर्जन, निद्रा-जाग्रति आदि की अनैच्छिक कहलाने वाली क्रियाएँ चलती रहती हैं। चेतन मन के द्वारा बुद्धिपूर्वक किये जाने वाले क्रियाकलापों और लोक व्यवहारों का ताना-बाना बुना जाता है। शरीर की परोक्ष और प्रत्यक्ष क्षमता पूरी तरह अचेतन और चेतन कहे जाने वाले मनःसंस्थान के नियन्त्रण में रहती है। उसी के आदेशों का पालन करती है। शरीर का पूरा-पूरा आधिपत्य मन-मस्तिष्क के ही हाथों में रहता है। उस क्षेत्र की जैसी भी कुछ स्थिति होती है उसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यदि मस्तिष्क आवेशग्रस्त होगा तो शरीर के अवयवों में उत्तेजना और बेचैनी छायी रहेगी। इस स्थिति में ऐसे रोग उत्पन्न होंगे जिनसे शरीर के उत्तेजित होने, गरम होने, फटने-फूटने जैसे अनुभव होने लगें। यदि मस्तिष्क उदास, हताश, शिथिल हो जायेगा तो उस अवसाद का प्रभाव अंग-अवयवों की दुर्बलता के रूप में देखा जा सकेगा।

यह मोटा निष्कर्ष हुआ। बारीकी में उतरने पर पता चलता है कि अमुक शारीरिक रोग अमुक मनोविकार के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और वे तब तक बने ही रहते हैं जब तक कि मानसिक स्थिति में कारगर परिवर्तन न हो। मनीषी एस. पी. ग्रासमैन के शोध पत्र ''न्यू होरिजॉन्स ऑव साइकोलॉजी'' में प्रकाशित इस अनुसन्धान ने उस असमंजस को दूर कर दिया है, जिसके अनुसार रोगियों को चिकित्सकों के दरवाजे-ठोकरें खानी पड़ती हैं। नित नई दवाएँ बदलनी पड़ती हैं किन्तु आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए समय भर बीतता रहता है। रोग हटने का नाम नहीं लेते। तेज औषधियाँ अधिक से अधिक इतना कर पाती हैं कि बीमारी के स्वरूप और लक्षण में थोड़ा बहुत फेर-बदल प्रस्तुत कर दें। जीर्ण रोगियों में से अधिकांश का इतिहास यही है। जिससे औषधि उपचार की निरर्थकता ही सिद्ध होती रहती है।

आहार-विहारजन्य साधारण रोग तो शरीर की निरोधक जीवनी शक्ति ही अच्छी करती रहती है। उसी का श्रेय चिकित्सकों को मिल जाता है। सच्चाई तो यह है कि एक भी छोटे या बड़े रोग का शर्तिया इलाज अभी तक संसार के किसी भी कोने में, किसी भी चिकित्सक के हाथ नहीं लगा है। कोई भी औषधि अपने आश्वासन को पूरा कर सकने में सफल नहीं हुई है। अँधेरे में ढेले फेंकने जैसे प्रयास ही चिकित्सा क्षेत्र में चलते रहते हैं। उसी भगदड़ में कभी-कभी किसी अँधे के हाथ बटेर लग जाती है। यदि ऐसा न होता तो कम से कम चिकित्सकों को खुद तो रुग्ण रहना ही न पड़ता। उनके घरवाले सम्बन्धी तो बीमारियों से ग्रसित नहीं ही रहते। देखा यह गया है कि दवाओं की भरमार बीमारियों को घटाती नहीं वरन् उस नई विषाक्तता के शरीर में घुस पड़ने से नये-नये उपद्रव और खड़े होते हैं। सच तो यह है कि चिकित्सकों के शरणागत रहने वाले की अपेक्षा वे कहीं अधिक नफे में रहते हैं जिन्हें चिकित्सा का सौभाग्य या अभिशाप प्राप्त कर सकने का अवसर ही नहीं मिल सका।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर शास्त्री भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आरोग्य और रुग्णता की कुंजी मनःक्षेत्र में सुरक्षित है। मानसिक असंतुलन और प्रदूषण का निराकरण किये बिना किसी को भी स्वस्थ शरीर का आनन्द नहीं मिल सकता। जीवनी-शक्ति का पिछले दिनों बहुत गुणगान होता रहा है। उसे प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल के कुलावे भी मिलाये जाते रहे हैं। टॉनिकों हारमोनों और ग्रन्थि आरोपणों जैसे प्रयोग परीक्षणों की भरमार रही है। किन्तु गरीबों की बात तो दूर करोड़पतियों, शासनाध्यक्षों एवं स्वयं चिकित्सकों तक को उस प्रयास में कुछ पल्ले न पड़ा। अब यह निर्णय निकला है कि जीवनी-शक्ति कोई शरीरगत स्वतन्त्र क्षमता नहीं है वरन् जिजीविषा की मानसिक प्रखरता ही अपना परिचय जीवनी-शक्ति के रूप में देती रहती है। मानसिक स्थिति के उतार-चढ़ावों के अनुरूप यह जीवनी-शक्ति भी घटती-बढ़ती रहती है। शरीर की बलिष्ठता, सक्रियता, स्फूर्ति ही नहीं कोमलता, सुन्दरता और कांति तक मानसिक स्थिति पर अवलंबित हैं। विपन्नता की मनःस्थिति में भय, शोक, क्रोध आदि के अवसर आने पर तो तत्काल आकृति से लेकर शरीर की सामान्य स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ते प्रत्यक्ष देखा जाता है। यदि मनोविकार जड़ जमालें तो समझना चाहिए के शरीर एक प्रकार से विपन्नता में फँस ही गया और उस दलदल से निकल सकना चिकित्सा उपचार के बलबूते की बात नहीं रह गई है।

अब आरोग्य की दशा और रोग निवृत्ति की दोनों ही आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनःसंस्थान की खोजबीन करना आवश्यक हो गया है और समझा जाने लगा है कि यदि मनुष्य के चिंतन क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों की ओर ध्यान नहीं दिया गया, वहाँ जमी हुई वितृष्णाओं और विपन्नताओं का समाधान न किया गया तो आहार-विहार का संतुलन बनाये रखने पर भी रुग्णता से पीछा छूट नहीं सकेगा। चिकित्सा उपचार से भी मन बहलाने के अतिरिक्त और कुछ प्रयोजन सिद्ध हो नहीं सकेगा। अब क्रमशः औषधि उपचार का महत्त्व घटता जा रहा है और मानसोपचार को प्रमुखता दी जा रही है। मानसिक बीमारियों की पिछले दिनों अलग से गणना होती रही है और उनका क्षेत्र अलग रहा है। अब नये शोध प्रयोजनों ने कुछ दुर्घटना जैसे आकस्मिक कारणों से उत्पन्न होने वाले रोगों को ही शारीरिक माना है और लगभग समस्त बीमारियों को मनःक्षेत्र की प्रतिक्रिया घोषित किया गया है। गहरी खोजों के फलस्वरूप आरोग्य जैसे मानवी जीवन के अतिमहत्त्वपूर्ण प्रयोजन पर नये सिरे से विचार करना होगा और आहार-विहार के ही गीत न गाते रहकर यह देखना होगा कि मनस्विता बनाये रहने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ?

मानव मन के विशेषज्ञ एरिके फ्रम के ग्रंथ ''मैन फार हिमसेल्फ'' के अनुसार मानसिक विकृतियों में से सामयिक उलझनों के कारण तो बहुत थोड़े से होते हैं। अधिकतर उनका कारण नैतिक होता है। छल, दुराव एवं ढोंग, पाखण्ड के कारण मनुष्य के भीतर दो व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाते हैं। एक वास्तविक, दूसरा पाखण्डी। दोनों के बीच भयंकर अंतर्द्वन्द्व खड़ा रहता है। दोनों एक-दूसरे के साथ शत्रुता बनाये रहते हैं और विरोधी को कुचलकर अपना वर्चस्व बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह अंतर्कलह सारे मनःक्षेत्र को अशांत बनाये रखती है। इस विग्रह के फलस्वरूप अनेकों रोग उठ खड़े होते हैं और वे वैसी ही मानसिक स्थिति बने रहने तक हटने का नाम नहीं लेते।

शारीरिक रोग प्रत्यक्ष होते हैं। इसलिए उनकी जानकारी भी सहज मिल जाती है और दवादारू से इनका इलाज होने के भी साधन मौजूद रहते हैं। मानसिक रोगों के विक्षिप्त, अर्धविक्षिप्त स्तर के ऐसे लोग गिने जाते हैं जो अपना सामान्य काम-काज चला सकने में असमर्थ हो गये हों। जिनका शरीर निर्वाह और लोक व्यवहार लड़खड़ाने और लटपटाने लगा हो। जो अपने लिए और साथी-सम्बन्धियों के लिए भार बन गये हों। ऐसे रोगियों की संख्या भी लाखों से आगे बढ़कर करोड़ों की संख्या में अपने ही देश में छूने लगी है। ऐसों की संख्या का तो कोई ठिकाना ही नहीं जो रोजी-रोटी तो कमा लेते हैं और खाते-सोते समय भी साधारण लगते हैं, पर उनका चिंतन विचित्र और विलक्षण होता है। कितने ही दुष्टता की भाषा में सोचते हैं और हर किसी पर दोषारोपण करते हुए शत्रुता की परिधि में लपेटते हैं। कितने ही आशंकाओं, संदेहों, आक्षेपों के इतने अभ्यस्त होते हैं कि उन्हें अपनी पत्नी, बेटी, बहिन तक के चरित्र पर अकारण संदेह बना रहता है। सम्बन्धियों और पड़ोसियों को अपने विरुद्ध कुचक्र रचते हुए देखते हैं। दुर्भाग्य और ग्रह-नक्षत्रों के प्रकोप से कितने ही हर घड़ी काँपते रहते हैं और विपत्ति का पहाड़ अपने ऊपर टूटता अनुभव करते रहते हैं। शेखचिल्लियों के मनसूबे बाँधते रहने वाले, संभव-असंभव का विचार किये बिना अपने सपनों की एक अनौखी दुनिया बनाये बैठे रहते हैं। न अपनी पटरी दूसरों के साथ बिठा पाते हैं न किसी और को अपना घनिष्ठ बनने का अवसर देते हैं।

परिस्थिति का मूल्यांकन कर सकना दूसरों की मनःस्थिति और परिस्थिति समझ सकना उनके लिए संभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं होता। अटपटे अनुमान लगाते और बेतुके निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। विचार जो भी उठें वे एक पक्षीय सनक की तरह बिना किसी तर्क-वितर्क का आश्रय लिए वेलगाम घोड़े पर चढ़कर दौड़ते चले जाते हैं। जो सोचा जा रहा है उसका आधार क्या है और उस सनक पर चढ़े रहने का अन्ततः परिणाम क्या निकलेगा, इतना समझ पाना उनके क्षत-विक्षत मस्तिष्क के लिए संभव नहीं होता। यह सनक कभी-कभी आक्रामक हो उठती है तो जो भी उनकी चपेट में आता है उसे सताने में कसर नहीं छोड़ते। मित्र को शत्रु, शत्रु को मित्र समझने में उनकी अदूरदर्शिता पग-पग पर झलकती है। आयु बड़ी हो जाने पर भी सोचने का तरीका बालकों जैसा ही बना रहता है। अपनी कार्य पद्धति को किसी उद्देश्य के साथ जोड़ सकना उनसे बन नहीं पड़ता। जैसे-तैसे समय गुजारते हुए ज्यों-ज्यों करके ही मौत के दिन पूरे कर लेते हैं। इन्हें पागल तो नहीं कह सकते, पर व्यक्तित्व की परख की दृष्टि से उनसे कुछ अच्छी स्थिति में भी उन्हें नहीं समझा जा सकता।

मनीषी एल. के फ्रैंक के ग्रंथ "सोशल एनालिसिस" के अनुसार विक्षिप्त, अर्ध-विक्षिप्त और विक्षिप्तता के सन्निकट सनकी लोगों से प्रायः आधा समाज भरा पड़ा है। मूढ़, मान्यताओं-कुरीतियों, अन्धविश्वासों से जकड़े हुए लोगों में तर्क शक्ति एवं विवेक बुद्धि का अभाव रहता है। उनके लिए अभ्यस्त ढर्रा ही सब कुछ होता है। उस लक्ष्मण रेखा से बाहर जाने में उन्हें भय लगता है। स्वतन्त्र चिंतन के प्रकाश से उनकी आँखें चौंधियाँ जाती हैं और औचित्य को समझने, स्वीकारने जैसा साहस उनके जुटाए जुट ही नहीं पाता। इस वर्ग के लोगों को मानसिक दृष्टि से अविकसित नर पशुओं की श्रेणी में ही रखा जा सकता है।

शरीर से असमर्थों, दुर्बलों और रुग्णों की तरह मानसिक पिछड़ेपन और विकारग्रस्तता के दल-दल में धँसे हुए लोगों का ही बाहुल्य अपने समाज में दृष्टिगोचर होता है। यह विक्षिप्तता भी एक प्रकार की बीमारी ही है। जिसमें प्राणियों को तिरस्कार, असंतोष, अभाव एवं चित्र-विचित्र प्रकार के दुःख सहने पड़ते हैं।

विचारणीय है कि यह सब होता क्यों है ? मनुष्य का प्रत्यक्ष कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता। जान-बूझकर ऐसा कुछ किया हो तो जिससे उन शारीरिक व्याधियों और मानसिक आधियों का दुःख सहना पड़े ऐसा कुछ सूझ नहीं पड़ता। फिर ईश्वर ने ऐसी विचित्र संरचना क्यों की ? किसी को ऐसा, किसी को वैसा क्यों बनाया ? इसका भी कोई उत्तर नहीं हो सकता ? ईश्वर न तो अन्यायी है न उसकी सृष्टि में अँधेरगर्दी, अव्यवस्था। दूसरी ओर इन व्याधिग्रस्त लोगों का ऐसा कोई प्रत्यक्ष कसूर भी नहीं दीख पड़ता, जिसका दण्ड भुगतने जैसी बात कही जा सके।

इस असमंजस का समाधान मनःशास्त्र के आचार्य कोरनहार्नी के शब्दों में कहें तो अनैतिक एवं असामाजिक चिंतन और कर्त्तव्य से उत्पन्न होने वाला अंतर्द्वन्द्व दुहरा व्यक्तित्व रच देता है और उससे निरन्तर उठने वाली आंतरिक कलह सारी मनोभूमि को क्षत-विक्षत करके रख देती है। संचालक के आहत-घायल, उद्विग्न होने पर उसके आधीन काम करने वाले तंत्र की दुर्दशा होना स्वाभाविक है। शरीर के अनाचार और मस्तिष्क के मनोविकार ही वे कारण हैं जिनके कारण आत्मसत्ता का संचालित तंत्र अनेकानेक प्रकार के आत्म दंडों की व्यवस्था अपने आप कर लेता है।

ये आत्मदंड ही शारीरिक रोग, मानसिक उद्वेग और असफलताओं के रूप में प्रकट होते हैं यह त्रिविध समन्वय कितना कष्टकर और संतापदायक होता है, उसे भुक्तभोगी ही जानता है। जिन्हें इन संकटों का त्रास सहना पड़ता है, उनके लिए इस विपन्नता का प्रत्यक्ष नरक के रूप में ही अनुभव होता है। यमलोक के अधिपति चित्रगुप्त को अचेतन मन ही समझा जाना चाहिए। उनका कार्यक्षेत्र यमलोक वह मनःसंस्थान है जिसमें प्रतिफल को परिणत कर सकने की ईश्वर प्रदत्त क्षमता मौजूद है। यम नियमन, व्यवस्था एवं अनुशासन को कहते हैं। मस्तिष्क को यमलोक और उसकी मूलभूत सत्ता को, चित्त को, चित्रगुप्त की संज्ञा देकर शास्त्रकारों ने स्थिति का सर्वथा सही चित्रण किया है। ईश्वर ने सर्वत्र स्व संचालित पद्धति रखी है। ताकि न्याय व्यवस्था का अलग अतिरिक्त झंझट न उठाना पड़े। अपनी ही सत्ता का एक पक्ष कर्म करता है और दूसरा उसका प्रतिफल गढ़कर तैयार कर लेता है। बाहर के न्यायाधीश को तो भ्रम में भी डाला जा सकता है। पर अंतस में बैठे हुए हर द्रष्टा की निष्पक्ष, न्यायशीलता को झुठलाना तो किसी के लिए भी संभव नहीं हो सकता।

इतना सब जान लेने के उपरान्त हमें एक ही निश्चय-निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि चेतन की मूलसत्ता अंतकरण को प्रभावित करने वाले नैतिक और अनैतिक विचार एवं कर्म ही हमारी भली और बुरी परिस्थितियों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी हैं। इसी उद्गम से हमारे उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा होता है और यहीं से विपत्तियों के जाल गिराने वाली दुखद सम्भावनाएँ विनिर्मित होती हैं। इस मूल केन्द्र का परिशोधन करना ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक प्रकार से आंतरिक कायाकल्प जैसा प्रयास है। प्रस्तुत संकटों से छुटकारा पाने और निकट भविष्य में फलित होने वाले संचित प्रारब्धों का निराकरण करने के लिए आंतरिक परिशोधन का प्रयास इतना अधिक आवश्यक है कि उसे अनिवार्य की संज्ञा दी जा सकती है और कहा जा सकता है कि विष वृक्ष की जड़ें काटने से ही काम चलेगा। टहनियाँ तोड़ने और पत्तियाँ गिराने से स्थायी समाधान बन नहीं पड़ेगा।

अपने मन को साधिये, सुसंस्कारी बनाइए

शरीर पर नियंत्रण मन का है। मन की प्रेरणा से ही शरीर के विभिन्न अंग, अवयव काम करते हैं। प्रयत्न जिस भी दिशा में चल पड़ते हैं, प्रगति उसी दिशा में होती है। जिन्हें भौतिक समृद्धि चाहिए वे मन की दिशाधारा का सुनियोजन उस दिशा में करते हैं। उद्योग, व्यवसाय, कला-कौशल, शिल्प आदि के माध्यम से उपार्जन करते और सुसम्पन्न बनते हैं।

जिन्हें आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग पर बढ़ना है वे अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में घुसी हुई त्रुटियों का निराकरण करते हैं और उस स्थान पर शालीन, सुसंस्कारिता का समावेश करते हैं। इतना कर पाने के लिए ईश्वर से शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करने की याचना करते हैं। पूजा प्रक्रिया, उपासना, साधना का मूलभूत प्रयोजन यही है। काँटों में भटकने और सस्ते दामों में बहुमूल्य उपलब्धियाँ भटकने की फिराक में रहने वालों को ही असफलताजन्य निराशा का सामना करना पड़ता है।

दोनों क्षेत्रों में कोई एक अथवा दोनों के संमिश्रण का लक्ष्य लेकर चलने वालों को सर्वप्रथम मन की चंचलता पर अंकुश लगाना पड़ता है, अन्यथा मन अनगढ़ कल्पनाएँ करने और बन्दर की तरह अस्थिर उछलकूद में ही अपना समय गँवा देता है। अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि में उसका योगदान नहीं के बराबर ही लग पाता है। ऐसी दशा में लक्ष्य तक पहुँचना कैसे बन पड़े ?

इसलिए प्रगति का ककहरा आरम्भ करते हुए सर्व-प्रथम मनोनिग्रह की वर्णमाला को अपनाना पड़ता है। तत्परता और तन्मयता इसके बिना नहीं सधती और इन आधारों को अपनाये बिना प्रगति की गाड़ी आगे नहीं बढ़ती। जिस गाड़ी के घोड़े मनमर्जी से दौड़ते हैं, उनका नियत स्थान पर नियत समय में पहुँच जाना कठिन है।

मनोनिग्रह भी ठीक वैसा ही है, जैसा मदारियों द्वारा रीछ, वानरों को इच्छित खेल तमाशा दिखाने के लिए अभ्यस्त करना। इसके लिए उन्हें दुहरा काम करना पड़ता है। एक अभ्यस्त मनमानी को छुड़ाने का, दूसरा उन क्रियाओं का अभ्यास जो इच्छित कौतूहल दिखाने के लिए आवश्यक है।

अनगढ़, बेतुकी, अस्त-व्यस्त कल्पनाएँ, शेख-चिल्ली स्तर की होती हैं। जिनका अवसर नहीं, क्षमता नहीं, साधन नहीं सहयोग नहीं, सम्भावना नहीं उनका कल्पनाएँ बेतुकी उड़ानें कहलाती हैं। बच्चों को परीलोक की कथाएँ बहुत सुहाती हैं। बड़ों में से भी कितने ही ऐसे होते हैं जो आधाररहित कल्पनाएँ करने के आदी होते हैं। उनमें उलझे रहने से निरर्थक समय व्यतीत होता है और विचारों की बहुमूल्य सम्पदा को निरर्थक खर्च करने की आदत पड़ती है।

इस कुटेब को छुड़ाने के लिए रचनात्मक क्रिया-कलापों में खाली मन को लगाने का अभ्यास डालना चाहिए। अपने या दूसरों के सामने उपस्थित समस्याओं का कारण, स्वरूप, समाधान सोचने में मस्तिष्क को रचनात्मक, व्यावहारिक मार्ग अपनाना पड़ता है, उसके लिए जिन साधनों की जरूरत पड़ने वाली है, उन्हें जुटाने का सोच-विचार करना होता है। आर्चीटेक्ट, इन्जीनियर, वकील आदि योजनाएँ बनाने वाले पहले मस्तिष्कीय ढाँचा खड़ा करते हैं। वह कल्पना जितनी यथार्थवादी, अनुभवजन्य एवं सार्थक होती है, उसी अनुपात में उसका क्रियान्वयन सरल पड़ता है और सफलता की सम्भावना भी बढ़ती है। कल्पना की बेतुकी उड़ान वाले मन को अपने-अपने सम्पर्क क्षेत्र की समस्याओं का समाधान करने प्रगति का तारतम्य बिठाने में जुटना चाहिए। इस प्रकार निरर्थकता को सार्थकता की ओर मोड़ सकना सम्भव बन पड़ता है। यह अभ्यास मन की रचनात्मक क्षमता को जगाता है।

मन का दूसरा दोष है, निषेधात्मक चिन्तन। इस प्रवृत्ति से छोटी-छोटी बात को बढ़ा-चढ़ाकर तिल का ताड़ बना लिया जाता है। संभावनाओं में आशंका, निराशा, अविश्वास, हानि, चिन्ता वाला पक्ष ही मस्तिष्क में घूमता रहता है। शत्रुओं के आक्रमण का, अशुभ, अनिष्ट दैवी दुर्विपाक का भय बना रहता है। अपनों द्वारा विश्वासघात किये जाने की कुशंका आती रहती है। कभी-कभी यह प्रवृत्ति आक्रामक रूप धारण करते भी देखी जाती है। तब ईर्ष्या, द्वेष, आक्रमण, अपराध, व्यभिचार, बलात्कार अपहरण, षड्यन्त्र जैसे विचार उठते हैं। उद्देश्य होता है, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दूसरों को हानि पहुँचाना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डरपोक और दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति ऐसे ही चिन्तन से घिरे रहते हैं। कुछ कर तो नहीं पाते पर मन को उद्विग्न रखकर अपने शारीरिक, मानसिक क्षेत्र को असीम हानि पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्कीय वह कोमलता भी नष्ट होती है, जो प्रगति के पथ पर बढ़ चलने का मार्ग सुझाती है। ऐसे व्यक्ति एक प्रकार के मानसिक रोगी हो जाते हैं। उन्हें बौड़म या सनकी समझा जाने लगता है। लोग उनका उपहास उड़ाने और अविश्वास करने लगते हैं। कल्पनाएँ मस्तिष्क की तीक्ष्णता नष्ट करती हैं और सम्पर्क क्षेत्र में व्यक्तित्व को गया-गुजरा समझे जाने का माहौल बनाती हैं।

इस प्रवृत्ति की काट यह है कि विधेयक विचारों का जखीरा मन में जमा किया जाय। असफलता को निश्चित मानने की अपेक्षा सफलता की सम्भावनाओं का ढाँचा खड़ा करना चाहिए। निराशा के स्थान पर आशा को प्रश्रय देना चाहिए। अविश्वास के स्थान पर विश्वास करनें की आदत डालनी चाहिए। मनस्वी और तेजस्वी व्यक्तियों द्वारा किये गये पुरुषार्थों की कथा ज्यादा पढ़नी, सुननी या स्मरण करनी चाहिए। उत्साहवर्धक अभिवचन या कथानक स्मृति पटल पर खुली हवा की तरह आने देना चाहिए। अपना भविष्य सूर्य किरणों या चन्द्रमा की चाँदनी की तरह चमकता हुआ देखना चाहिए।

अपने निज के जीवन से घटित हुई उत्साहवर्धक घटनाओं, सफलताओं का समय-समय पर स्मरण करते रहा जाय। इसके अतिरिक्त परिचित-अपरिचित क्षेत्र में भी ऐसा ही कुछ हुआ हो तो उसे नोट रखना चाहिए। इतिहास, पुराणों में कथा-गाथाओं में ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनमें शौर्य पराक्रम की झाँकी होती है और साहस-पुरुषार्थ के उदाहरण मिलते हैं। ऐसी घटनाओं को अपने स्मृति भण्डार में भरना चाहिए और उनका संग्रह पूँजी की तरह जमा रखना चाहिए।

इन स्मृतियों को यदि बार-बार स्मरण करते रहा जाय तो उसके प्रभाव से अपना भी मनोबल बढ़ता है और कठिनाइयों से निपटने का शौर्य उभरता है। अनुपयुक्त विचारों को सद्विचारों से टक्कर कराते रहा जाय तो मस्तिष्क पर चढ़ा हुआ हेय चिन्तन सहज ही निरस्त होता रह सकता है।

हमें उज्ज्वल भविष्य के सपने देखने चाहिए। भविष्य निश्चित नहीं है और बुरा-भला कैसा भी हो सकता है। इस अनिश्चितता का यदि निषेधात्मक पक्ष लिया जाय तो प्रतीत होगा कि अगले दिनों संकट की घटाएँ टूटने वाली हैं। किन्तु यदि विधेयात्मक पक्ष अपनाया जाय तो समझा जा सकता है कि हर कठिनाई का हल निकल सकता है और हर प्रतिकूलता से जूझा या उसे सहा जा सकता है। आत्म- गौरव और आत्म-बल पर विश्वास रखने से मनुष्य अपनी हीनता से, दीनता से पीछा छुड़ा सकता है। सोचा यही जाना चाहिए कि जब उजाले से भरा दिन नहीं रहता तो अँधेरे भरी रात सदा सर्वदा बनी रहेगी ऐसा क्यों मानना चाहिए ? अपने बल और पराक्रम को घटाकर क्यों आँकना चाहिए ? कुकल्पनाओं के जंजाल में क्यों उलझकर अपने मनोबल को गिराना चाहिए।

अचेतन को प्रभावित-परिष्कृत करने का विज्ञान का प्रयास

उत्थान और पतन का सम्बन्ध आमतौर से सम्बन्धित व्यक्तियों और प्रस्तुत परिस्थितियों के साथ जोड़ा जाता है, पर वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। मनुष्य की अपनी मनोवृत्ति, आस्था, आदत, रुचि और रीति ही वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द परिस्थितियाँ घूमती हैं और भावी सम्भावनायें जुड़ी रहती हैं। अब परिस्थितियों को सुधारने के लिए यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि व्यक्तित्व को सुधारने और सम्भालने वाली मनःस्थिति उत्पन्न की जाय।

मनःशास्त्री इस दिशा में अपने ढंग से प्रयत्नशील हैं। वे स्वाध्याय, सत्सङ्ग, चिन्तन, मनन के क्रियाकलाप को दार्शनिकों और लोक शिक्षकों के लिए छोड़ देते हैं और यह प्रयत्न करते हैं कि विद्युतीय अथवा रासायनिक प्रक्रिया के सहारे मस्तिष्क को प्रभावित करके उसे बलात् वशवर्ती बनाया जाय और जिस दिशा में भी किसी को चलाया जाना हो उसी के अनुरूप उसकी मस्तिष्कीय स्थिति में हेर-फेर कर दिया जाय। ऐसा करने से किसी को समझाने-बुझाने या बताने-मनाने की आवश्यकता न रहेगी वरन् एक सामान्य यन्त्र की तरह मस्तिष्क का उपयोग करके अमुक रीति से सोचने के लिए बाध्य किया जा सकेगा। फिर मनःक्षेत्र का आधिपत्य इन मानसोपचारकों के हाथ चला जायगा। फिर विचारात्मक पृष्ठभूमि बनाने के लिए लेखनी, वाणी जैसे साधनों की उपयोगिता नगण्य जितनी रह जायेगी।

कनाडा के मनःतत्त्व विशेषज्ञ डॉ. डब्ल्यू. जी. पेन फील्ड ऐसे विद्युतदग्र इलेक्ट्रोड खोजने में समर्थ हो गये हैं जिनका अमुक स्थान के अमुक कोशिकाओं के साथ सम्बन्ध जोड़ देने पर मनुष्य भूतकाल की घटनाओं को आँखों के आगे मूर्तिमान होने की पुनरावृत्ति देख सकता है। इसी प्रकार भूतकाल के किन्हीं सम्वाद-परिसम्वादों की अभी-अभी के घटनाक्रम की तरह अनुभव कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्म के आधार पर अतीन्द्रिय या अतिमानस के स्तर पर अनुभव किये जाते रहे हैं और प्रयोक्ता अपनी मनमर्जी का चिन्तन एवं दृश्य प्रयोगी के मस्तिष्क को अनुभव करता रहा है। वह प्रयोग अब पुराने पड़ गये। क्योंकि उसके लिए प्रयोक्ता को स्वयं कई तरह के अभ्यास करने पड़ते थे। प्रयोगी को सम्वेदनशीलों में से चुनना पड़ता है फिर भी तकनीकी गलतियों से कई बार पूरी या आधी सफलता ही मिलती थी। अब यह कार्य इलेक्ट्रोड की सहायता से यान्त्रिक उपकरण सुनिश्चित रूप से कर दिया, एक सीमित मात्रा में विद्युत तरंगें मस्तिष्क में प्रवेश कराके मनुष्य को थकान एवं अनिद्रा की पीड़ा से मुक्त कराया जा सकेगा। इतना ही नहीं उसे इतना मूर्छित भी किया जा सकेगा कि आपरेशन का कार्य भी आसानी से हो सके।

जीवशास्त्री जेम्स ओल्डस ने मस्तिष्क पर आंशिक नियन्त्रण करके चूहों को, बिल्ली से डरने की भावना से मुक्त कर दिया वे बिल्लियों को अपनी सजातीय मानने लगे और बिना डरे उसकी पीठ पर चढ़ने लगे।

फ्रांसीसी वैज्ञानिक प्रो. देल्गादो का कथन है आदतों और अभ्यासों की उसी तरह काट-छाँट की जा सकती है जैसे फोड़े-फुन्सियों की। किसी की नसों में रक्त चढ़ाने की तरह उसके मस्तिष्क में अच्छी आदतों का भी बाहर से प्रवेश करा सकना भी अगले दिनों सम्भव हो जायगा।

मस्तिष्कीय चेतना को उल्टा अथवा बदला जा सकता है इस सम्बन्ध में पिछले काफी दिनों से खोजबीन चल रही है। मस्तिष्क में किस स्थान पर किस प्रकार की क्षमता का निवास है यह बहुत कुछ जान लिया गया है और यह प्रयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न किया गया है कि मस्तिष्क के किसी गर्त में पड़ी हुई किन्हीं विकृतियों को बिजली का झटका देकर जगाया जाय और मनुष्य यह अनुभव करे मानो वह घटना अतीत की नहीं अभी-अभी की है।

स्नायु विज्ञानी कार्ल लैसलेने ने यह पता लगाया है कि मस्तिष्कीय कणों के किस पर्त पर कितना विद्युत प्रवाह जारी करने से किस स्तर की कितनी पुरानी स्मृति जागृत हो सकती है। मैकगिल विश्वविद्यालय माण्ट्रील (कनाडा) के डॉ. विल्डर पेन फील्ड ने दृश्य, ध्वनि और विचार का सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह सम्भावना व्यक्त की है कि लोगों के मस्तिष्कों को इच्छानुसार चिन्तन करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी के डॉ. रोगरस्पेरी ने चिर संचित आदतों को भुला देने और अनायास ही नये अभ्यास के आदी बना देने में सफलता प्राप्त की है।

डॉ० जे० वी० ल्यूको की खोजों ने यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि मस्तिष्कीय स्वेच्छाचारी नहीं है और उस पर मनुष्य का अपना अधिकार ही सीमित नहीं है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा मस्तिष्कों की दिशा उल्टी जा सकती है और आज एक तरह सोचने वाला व्यक्ति कल दूसरी तरह सोचने के लिए विवश किया जा सकता है। न्यूरोन्स की सिनेप्टिक हलचलों में हेर-फेर करके मानसिक स्तर का हेर-फेर किया जा सकता है। इसके लिए नियत स्थान पर उपयुक्त मात्रा में विद्युत प्रवाह पहुँचा देने का कौशल हाथ में आ जाने से बहुत काम चल सकता है। डॉ. जे. वी. ल्यूको ने तिलचट्टे जीवों में ऐसी नई आदतें डाली, जो उनके पूर्वजों में भी नहीं थीं। बिल्ली और चूहे की दुश्मनी पुरानी है पर मस्तिष्कीय परिवर्तन से यह सम्भव हो गया है कि वह परम्परागत शत्रुता समाप्त हो जाय और वे दोनों हिलमिल कर रहने लगें।

राइबोन्यूक्लिक ऐसिड (आर० एन० ए०) नामक रसायन मस्तिष्कीय चेतना का आधार स्तम्भ ठहराया गया है। स्वीडन के डॉ. हाल्गर हाइडन के प्रयोगों में इस रसायन की मात्रा विभिन्न चेतना परतों में घटा-बढ़ाकर प्राणियों के सोचने के तरीके को बदलने में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

टैक्सास विश्वविद्यालय के डॉ. जेम्स मैक्कोनल और डॉ. राबर्ट थाम्पसन ने मस्तिष्कीय संरचना की दृष्टि से पानी में पाये जाने वाले आध इन्च के चपटी किस्म के प्लेरियन कीड़े को अधिक उपयुक्त पाया है और उसे इन प्रयोगों के लिए चुना गया है। इस कीड़े की मस्तिष्कीय कोशिकाओं की उखाड़-पछाड़ करके वे यह प्रयत्न कर रहे हैं कि उसकी आदतें नये ढाँचे में ढल जायँ और फिर उसी नई रीति-नीति की अभ्यस्त उसकी भावी पीढ़ियाँ बन जायँ। डॉ. डी. एलवर्ट ने चूहों की एक ऐसी जाति पैदा की है जिसकी शक्ल अपने पूर्वजों की ही तरह है पर उनका सोचना और करना बिल्कुल नये ढंग का है।

मस्तिष्कीय संरचना का जितना गहरा अध्ययन किया गया है उसके आधार पर यह पता चलता जा रहा है कि कपाल के भीतर भरी मज्जा के अन्तर्गत सूक्ष्म घटक, जितने सूक्ष्म, जितने अधिक और जितने सक्षम होते हैं उसी अनुपात से बुद्धिमत्ता का विकास होता है। यह घटक अगणित वर्गों के हैं और उन्हीं के वर्ग विकास पर मानसिक गतिविधियों का निर्माण निर्धारण होता है।

यह समझा जाता रहा है कि विकसित प्राणियों का मस्तिष्क बड़ा होता है। पर बात ऐसी नहीं है। मस्तिष्क का भार भी शरीर के वजन अनुपात पर निर्भर है। ह्वेल

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का मस्तिष्क ७००० ग्राम, हाथी का ५२००, डाल्फिन का १८००, आदमी का १३५०, घोड़े का ६५०, गेंडे का ६००, गोरिल्ला का ५००, कुत्ते का १३०, बिल्ली का ३० ग्राम होता है। इस आधार पर इन प्राणियों की समझदारी का लेखा-जोखा नहीं लिया जा सकता।

प्रागैतिहासिक काल का विशालकाय दैत्य डाइनासोर १० से लेकर १५ टन तक भारी होता था, किन्तु उसके मस्तिष्क का भार मात्र ३० ग्राम था। यानी घरेलू बिल्ली के बराबर। फिर भी वह अपनी बिल्ली की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ और नासमझ था।

समझदारी का मस्तिष्क के वजन से सीधा सम्बन्ध नहीं, वरन् इस बात से है कि उनमें 'न्यूरान' कितने हैं और वे परस्पर कितनी सघनतापूर्वक सम्बद्ध होकर एक-दूसरे के पूरक बनते हैं। मानव मस्तिष्क में प्रायः १४० अरब न्यूरान होते हैं और उनकी संरचना ऐसी है जिसके अनुसार हर न्यूरान अपना निर्धारित कार्य ही नहीं निपटाता वरन् दूसरे न्यूरानों के क्रियाकलाप में भी भारी योगदान करता है। मानवी बुद्धिमता का रहस्य इसी में है।

मनुष्य की बुद्धिमत्ता पिछले दस हजार वर्षों में प्रायः सौ गुनी अधिक विकसित हुई है। यदि भार और विस्तार से समझदारी का सम्बन्ध होता तो उसका सिर उसी अनुपात से बड़ा होता और आदमी का सिर ही शेष समस्त शरीर की तुलना में कई गुना अधिक बड़ा दिखाई देता।

डॉ० कैमरान के अनुसार मस्तिष्कीय कणों का मध्यवर्ती न्यूक्लिक ऐसिड इस विद्युत संवेग का उत्पादन एवं नियन्त्रणकर्त्ता है। रासायनिक बैटरी की तरह यह ऐसिड ही मस्तिष्क में विभिन्न स्तर के संवेदन-संवेग उत्पन्न करता है। इस अम्ल की स्थिति पर मानसिक स्तर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है इसके लिए कुछ ही दिन पूर्व एक मैग्नेशियम पेन्सिलीन आविष्कृत हुई है। केन्सास विश्वविद्यालय के रसायनवेत्ताओं ने इसी प्रयोजन के लिए कुछ प्रोटीन ऐटम्स ढूँढ़ निकाले हैं और उनका उपयोग मस्तिष्कीय क्षमता को सन्तुलित एवं विकसित करने के लिए किया है।

समझाने-बुझाने के झंझट में पड़ने की अपेक्षा किसी को अभीष्ट चिन्तन के लिए बाध्य करना और मन्द बुद्धि समझे जाने वाले मस्तिष्कों को प्रतिभा-सम्पन्न बनाना उपचार पद्धति के सहारे भी सम्भव हो सकता है। अब विज्ञानवेत्ताओं का यह विश्वास दिन-दिन प्रबल होता जा रहा है।

मस्तिष्कीय कोशिकाओं का परस्पर एक-दूसरे के साथ सघन सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध सूत्र को जोड़ने का काम एक विद्युत प्रवाह करता है। यह प्रभाव मनःचेतना की इच्छानुसार विभिन्न परतों में घूम जाता है और अरबों कोशिकाओं में बिखरी हुई क्षमताओं एवं स्मृतियों में से अपनी अभीष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप तथ्यों को ढूँढ़ लाता है। यह कोशिकाओं के मध्य सम्बन्ध सूत्र जोड़ने वाला विद्युत प्रवाह यदि मन्द हो, अवरुद्ध होकर चले तो मनुष्य मन्द बुद्धि , दीर्घ सूत्री अथवा भुलक्कड़ स्तर का बन जायेगा। यह प्रवाह जितना द्रुतगामी, सुव्यवस्थित एवं संवेदनशील होगा, उसी अनुपात से मनुष्य की बुद्धिमत्ता एवं कुशलता बढ़ेगी।

मस्तिष्क को रीढ़ की हड्डी से जोड़ने वाले रेटिक्युलर फार्मेशन की हरकतों को समझना और उसे प्रभावित करना जब जितनी मात्रा में सम्भव होता जायेगा, उसी अनुपात से मनुष्य को कृत्रिम रीति से हर्ष, शोक की अनुभूतियों से आच्छादित किया जा सकेगा, तब घटनाओं या उपलब्धियों के इन्तजार में किसी को प्रसन्नता से वंचित नहीं रहना पड़ेगा। अमुक रसायन या अमुक इलेक्ट्रोड ही किसी को धन कुबेर, सत्ताधारी सम्राट अथवा सिद्ध योगी जैसी प्रचुर प्रसन्नता सहज ही प्रदान कर दिया करेगी।

रूसी वैज्ञानिक प्रो. एनोखीन ऐसी दवा विनिर्मित करने में सफल हो गये हैं जो पीड़ित अंगों में होने वाले दर्द के कष्ट से रोगी को बचा लेगी। इस औषधि का नाम है—एमीनाजाइन। यह रेक्टिक्युलर फार्मेशन में स्थित पीड़ा संवेदन केन्द्र को जकड़ लेती है फिर भले ही कोई माँस काटता रहे किसी प्रकार के दर्द की अनुभूति न होगी। बिना निद्रा लाये इस प्रकार संज्ञाशून्यता उत्पन्न करने का यह अपने ढंग का अनौखा प्रयोग है। एड्रेनेलीन वर्ग की इस प्रकार की औषधियों का अगले दिनों ताँता लगने वाला है। सोचा यह जा रहा है कि प्रसव से लेकर सिर-दर्द, साइटिका, उदरशूल जैसी व्यथाओं के रहते हुए भी बिना कष्ट सहे लोग अपना काम निपटाते रहें और जब आपरेशन की जरूरत पड़े तो बिना कष्ट की अनुभूति सहे वह काम भी हजामत बनाने की तरह सरलतापूर्वक निपट जाया करें।

मस्तिष्कीय नियन्त्रण के सूत्र जैसे-जैसे हाथ में आते जा रहे हैं वैसे-वैसे उसके लाभों का गुणगान बढ़ा-चढ़ाकर किया जाने लगा है कि औषधि उपचार, फाड़-चीर, अंगों का प्रत्यारोपण , प्लास्टिक सर्जरी, विद्युत आघात, विकरण आदि के प्रयोगों द्वारा जिस प्रकार शारीरिक रुग्णता से निपटने के लिए प्रगति हो रही है, उसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रकार मानसिक रोगों से छुटकारा पाया जा सकेगा। मनोव्यथाओं से छुट्टी मिलेगी। इतना ही नहीं मन के न मानने जैसा अवरोध भी न रहेगा उसे जैसे ढाला, मोड़ा जाना है, उसके लिए किसी अविज्ञात प्रेरणा के प्रवाह में बहता हुआ सहज ही तैयार तत्पर हो जायगा। तब अनुशासन के लिए नियम प्रतिबन्ध न लगाने पड़ेंगे वरन् कुछ उपचार द्वारा ही यह सब झंझट निपटा लिया जाया करेगा।

देखने सुनने में यह सब्जबाग बहुत ही अच्छा लगता है पर इसमें यह भयानक संङ्कट छिपा बैठा है कि चन्द सत्ताधारी इन उपचारों को हस्तगत करके प्रजा को अमुक उपचार लेने के लिए उसी प्रकार बाध्य कर दें, जिस प्रकार लड़ाई के दिनों अनिवार्य सैनिक भर्ती को अनिवार्य कर दिया जाता है। ऐसी दशा में जनसाधारण को स्वतन्त्र चेतना से वंचित होकर चन्द लोगों के हाथ ही कठपुतली मात्र बनकर रहना होगा।

मस्तिष्कीय चेतना को बाह्य पदार्थों और उपकरणों से प्रभावित करने की दिशा में विज्ञान दिन-दिन आगे बढ़ता जा रहा है और यह सम्भावना परिलक्षित हो रही है कि स्वतन्त्र चेतना या स्वतन्त्र चिन्तन का अगल दिनों अस्तित्व ही रह न जायेगा। विज्ञान इस फिराक में है कि न केवल भौतिक पदार्थों की सुख-सुविधाओं के लिए मनुष्य को लुभाया, ललचाया अथवा पराश्रित बनाया जाय वरन् इससे भी एक कदम आगे बढ़कर यह किया जाय कि उसका 'अपना' नामक कोई स्तर ही न रहे। समर्थ लोगों के इशारे पर चल रहा विज्ञान तब मनुष्य समूह का उपयोग मक्खी-मच्छरों की तरह करेगा और न केवल इनका शरीर वरन् मन भी किन्हीं क्रिया-कुशल हाथों से नियन्त्रित होगा। भेड़ों के झुण्ड को गड़रिये हाँकते हैं और उनके दूध, ऊन, खाल, माँस, गोबर का इच्छानुसार उपयोग करते हैं। तैयारी इस बात की जा रही है कि जन साधारण को शारीरिक ही नहीं, मानसिक स्थिति में आत्मसमर्पण जैसा हो जाय तब विज्ञान का देवता हर किसी के चिन्तन में कर्त्तव्य को अपनी मर्जी के अनुसार ढाला करेगा और कठपुतली की तरह लोग बिना अनुभव किये स्वेच्छापूर्वक नाचा करेंगे। इस पराधीनता के पाश में एक बार फँस जाने के बाद फिर किसी के लिए उससे निकल सकना ही सम्भव न रहेगा। आत्म-विस्मृति के गर्त में गिर जाने के बाद फिर उद्धार की आशा किस आधार पर की जा सकेगी।

यह विभीषिका अणु बमों से भी अधिक भयानक है। उसमें ऐसी चिरस्थायी, बौद्धिक पराधीनता की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं जिसमें एक बार फँस जाने के बाद फिर कभी उबरना सम्भव न हो सके। स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर ही तो मनुष्य ने एक से एक बढ़कर बहुमुखी प्रगति की है और अवांछनीयता से लोहा लिया है। यह स्वतन्त्र चिन्तन यदि सर्व-साधारण के हाथ से छिन गया और चन्द लोगों की हाथ की कठपुतली बनकर समाज को रहना पड़ा तो वह उतनी बड़ी क्षति होगी जिसकी किसी भी प्रकार पूर्ति न की जा सके। समय रहते हमें निशस्त्रीकरण आन्दोलन की तरह बौद्धिक जड़ता से जकड़ देने वाली सम्भावना के विरुद्ध भी विश्व का लोकमत यहाँ जाग्रत करना चाहिए। मस्तिष्कीय दुर्बलता और रुग्णता दूर करने तक ही इन प्रयोगों को सीमाबद्ध रखा जाना चाहिए। चिन्तन पर नियन्त्रण करने की दिशा प्रतिबन्धित रहे तभी महत्त्वाकांक्षी अधिनायकों के चंगुल से स्वतन्त्र चेतना की रक्षा की जा सकेगी।

तृप्ति-तुष्टि-शान्ति

प्रत्येक प्राणियों की आवश्यकताएँ सीमित हैं। जीवधारियों की संरचना इस प्रकार हुई है कि इनका कौशल और स्वभाव स्थानीय परिस्थितियों और वस्तुओं के साथ तालमेल बिठाकर तृप्त हो जाता है। अभावजन्य असंतुष्टि के कारण उसका मानसिक स्तर उद्विग्नता ग्रस्त नहीं रहता। शरीरगत क्षुधाएँ उचित सीमा तक सरलतापूर्वक पूरी होती रहें तो फिर उस हैरानी की जरूरत नहीं पड़ती जो चैन से नहीं बैठने देती। मानसिक विकास हर प्राणी का इतना ही हुआ है कि वह साधन जुटाने और आत्म-रक्षा की दृष्टि से प्रतिरक्षा की आवश्यक व्यवस्था बनाता रहे। अधिकांश प्राणी यह सब कर भी लेते हैं। यही कारण है कि बचे हुए समय में प्रसन्न मुद्रा में बने रहते हैं और बचा समय विनोद मनोरंजन में कुदकने-फुदकने, यात्रा पर निकलने में खर्च करते हैं। आमतौर से पेट प्रजनन तक ही उनकी शारीरिक, मानसिक आवश्यकताएँ रहती हैं। स्वार्थों की खींच-तान में कभी-कभी वे लड़-झगड़ भी बैठते हैं। इसी प्रकार उनका समय पूरा हो जाता है। असमर्थ हो जाने पर उस कचरा शरीर को हिंस्र प्राणी अपना आहार भी बना लेते हैं। यही है साधारण नियति अधिकांश जीवधारियों की।

मनुष्य की स्थिति कुछ विचित्र है। उसे औचित्य की सीमा में रहना, मर्यादाओं का अनुबन्ध पालना स्वीकार नहीं। चंचलता, उद्विग्नता, आपाधापी, अहमन्यता, दूसरों पर हावी होना जैसे अनावश्यक किन्तु आकर्षक लगने वाले कार्यों में उसकी विशेष रुचि बढ़ी-चढ़ी मात्रा में रहती है। यह अतिवाद ही उसे अमर्यादित एवं अनैतिक स्थिति अपनाने के लिए बाधित करता है। यही वह ललक, लिप्सा-लालसा है जिसे इच्छित मात्रा में पूरा कर सकने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए उसका चिन्तन उद्विग्न आकांक्षाओं से भरा रहता है। जो चाहा गया है उसका बहुत छोटा अंश ही पुरुषार्थ की सीमा और परिस्थितियों की अनुकूलता को देखते हुए कार्यान्वित हो पाता है। होना तो यह चाहिए कि पूरी करने की सारी विधि-व्यवस्थाएँ ठीक प्रकार से सम्पन्न हो सकें। तृष्णा के भड़क जाने पर व्यक्ति की स्थिति अतृप्त उन्मादी जैसी हो जाती है। मानसिक सन्तुलन खो बैठता है। धर्मोन्माद, युद्धोन्माद के कारण अनेकानेक दुर्घटनाएँ आये दिन घटित देखी गयी हैं। ठीक इसी प्रकार लिप्सा-लालसा, वासना-तृष्णा, प्रशंसा की पूर्ति के लिए भी लोग इस कदर बेतहासा भाग दौड़ करते हैं कि उनका स्वस्थ चिन्तन ही अस्त-व्यस्त हो जाता है। हविश के मारे लोग उन्मादियों की तरह स्वार्थ-सिद्धि के लिए उसी सीमा तक आगे बढ़ जाते हैं जहाँ अनाचार के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति अनर्थ ही सोचते और अनर्थ ही करते हैं।

संसार में साधन इतने सीमित हैं कि उन्हें मिल-बाँटकर खाते हुए सभी लोग सामान्य स्तर का गुजारा कर सकते हैं। इस साम्यवादी आचार पद्धति को अपनाकर सभी लोग चैन से रह सकते हैं, चैन से रहने दे सकते हैं। न आपस में प्रतिद्वन्दिता-प्रतिस्पर्धा उभरती है और न ईर्ष्या द्वेष का दौर चलता है। न कुछ आदमियों को बड़े बनने और शेष को गई-गुजरी स्थिति में रहने के लिए विवश होना होगा। दीवार उठाने के लिए कहीं मिट्टी खोदनी पड़ती है और गड्ढा बनाना पड़ता है। अमीरी की साधन-सुविधा बढ़ी-चढ़ी होने का परिणाम दुहरी हानि पहुँचाना है। एक यह कि वैभव का सरंजाम साधारण जनों को आकर्षित करता है और उसे पाने के लिए वे भी लालायित होते हैं। पुरुषार्थ, प्रज्ञा, परिस्थिति, कौशल हर आदमी नहीं जुटा पाता। इसलिए इतने बढ़े-चढ़े साधन तो नहीं मिल पाते पर ईर्ष्या द्वेष की आग सहज ही भड़कने लगती है। जिसे शान्त करने के लिए उसे कुछ उपद्रव करने की, नीचा दिखाने की सूझ सूझती है। इससे उभयपक्षीय आक्रोश उभरता है। इसके अतिरिक्त दूसरी कठिनाई यह है कि जिसे असाधारण सुविधाएँ मिलने लगती हैं और उसे अधिक पाने की लिप्सा असाधारण रूप से भड़कती है। जितना वैभव उसे मिल चुका है वह सर्वसाधारण की तुलना में कहीं अधिक होने पर भी यह प्रतीत होता है कि जितना चाहता था उसकी तुलना में कम मिला है। इसे पाने के लिए वह आतुरता से अधिकाधिक पाने के लिए वह क्रिया-पद्धति अपनाता है जो समूचे वातावरण को विक्षुब्ध कर देती है।

इसलिए वैयक्तिक और सामाजिक सुस्थिरता के लिए आवश्यक है कि हर किसी के मन में ऐसा चिन्तन बोया उगाया जाय जो भौतिक पदार्थों और सुविधाओं की सीमित आकांक्षा करे। सीमित बटोरे और उनका सीमित ही उपयोग करे। यह मध्यवर्ती प्रचलन ही ऐसा है जिससे कामना या चेष्टा बढ़ने न पाये। इसका प्रतिफल यह होगा कि अमीरी घटने से गरीबी भी घटेगी। ज्वार ऊँचा उठता है तो समुद्र में उससे सटा हुआ भाटा नीचे जाता है। जिन जलाशयों में पानी समतल रहता है। उछाल नहीं आते उनका पानी भी स्वच्छ रहता है और जल जन्तु भी प्रसन्नता भरा जीवनयापन करते हैं। यही स्थिति समाज की भी होनी चाहिए। व्यवस्था भी इसी स्तर की बननी चाहिए कि अमीरी बटोरने का अवसर किसी को न मिले अन्यथा उनके सम्पर्क में आने वाले अपने को निर्धन अनुभव करेंगे और उसका कारण अमीरी को समझते हुए किसी न किसी प्रकार आक्रोश व्यक्त करेंगे। यह आक्रोश कितने स्थानों से कितने प्रकारों से फूटेगा, यह नहीं कहा जा सकता है। इसलिए दर्शन, धर्म, तर्क, तथ्य, उदाहरण, प्रमाण एकत्रित करके लोक चिन्तन को इस प्रकार विनिर्मित किया जाना चाहिए कि किसी की महत्त्वाकांक्षा न भड़के। यह एक विशेष प्रकार का मानसिक ज्वर है। जो आक्रान्त को तो उद्वेलित करता ही है साथ ही अपनी छूत से उस सम्पर्क परिवार में रहने वालों को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता।

वित्तेषणा की तरह ही दूसरी महत्त्वाकांक्षा है लोकेषणा। लोग अपेक्षाकृत अधिक सम्मान पाना चाहते हैं, प्रतिष्ठा के अधिकाधिक भूखे रहते हैं। यह सद्गुणों और सेवा भावनाओं के आधार पर अपनी गरिमा का परिचय देता है और बदले में कृतज्ञता के रूप में सद्भाव पाता है तो वह उचित है किन्तु यदि अपनी अमीरी, चतुरता या आतंकवादिता, सुन्दरता, ठाठ-बाट आदि दिखाकर ऐसी चेष्टा की गई है कि इस आडम्बर में दूसरों की आँखें चौंधिया जायँ और वे तिल का ताड़ समझने लगें तो इस प्रयास के निमित्त रचे गये समस्त जाल-जंजाल जादूगरी या बाजीगरी स्तर के होंगे। उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया कुछ भी क्यों न हो पर वास्तविकता जल्दी ही प्रकट हो जाती है कि वाहवाही लूटने को यह बानग बनाया गया है। इससे क्षुद्रता प्रकट होती है और अवमूल्यन होता है। प्रसिद्धि लूटने के लिए जो भी आडम्बर रचे जाते हैं, रचनाकार को जादूगर, बाजीगर विदूषक स्तर का ठहराया जाता है। क्योंकि ऐसे आडम्बर बड़े लोग रचते रहते हैं। शरीर का, चेहरे का सौन्दर्य बढ़ा-चढ़ा दिखाने के लिए कई महिलायें अनेक शृंगार प्रसाधनों से अपने को अधिक आकर्षक दिखाने का प्रयत्न करती हैं। इससे कोई अजनबी भर चौंक सकता है। विचारशील आदमी को वस्तुस्थिति समझने में देर नहीं लगती। कलई जल्दी ही धुँधली पड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है। ढोल की पोल हर किसी को समझ में आती है। बड़प्पन के लिए उछलकूद करने वाले बेढंगे मेढ़कों की चाल से हर कोई परिचित हो जाते हैं। पदवी, प्रतिष्ठा, सम्मान पाने के लिए कई व्यक्ति संस्थाओं के पदाधिकारी बनने के निमित्त लालायित फिरते हैं। इसके लिए जोड़-तोड़ भिड़ाते रहते हैं। किन्हीं को सफलता मिल जाती है तो कई असफल रहते हैं किन्तु इतना हर किसी को विदित हो जाता है कि यह उथला आदमी है। गम्भीरता के साथ विनयशीलता जुड़ी रहनी चाहिए। जो नम्र, ऋजु, विनयशील, सुसंस्कृत, शालीन नहीं है उसी का अहंकार नामवरी कमाने के लिए शेखीखोरी करता है। कुछ रिश्वत, उपहार देकर प्रलोभनों से बहकाकर अपना प्रयोजन पूरा कराता है। ऐसे लोग आमतौर से उपहासास्पद बनते हैं। उनकी उद्धतता पग-पग पर पकड़ में आती रहती है और कभी सामने, कभी पीठ पीछे हँसी उड़ती रहती है। इससे मुँहसाये कुछ सुनने-सुनाने पर वस्तुतः उनकी यह मनोवृत्ति दर्पण की तरह नंगी हो जाती है। तब शान्ति के समय वह सोचता है कि यदि विनयशीलता, नम्रता, ऋजुता, शालीनता अपनाई गई होती तो सम्मान भी अधिक मिलता और वह चिरस्थायी भी रहता। जिस प्रकार लूटपाट से उड़ाई हुई वस्तु को छिपकर ही उपयोग करना पड़ता है। सबके सामने उपयोग करने में बात खुल जाने और पकड़े जाने का भय रहता है। इसी प्रकार प्रशंसा के लिए लालायित व्यक्ति द्वारा रचे गये षड्यन्त्र, कुचक्र हाथों-हाथ प्रकट होते जाते हैं और जो भी वस्तुस्थिति समझ पाते हैं उन सभी के मन में उनके प्रति तिरस्कार के भाव बढ़ते हैं।

शास्त्रकारों ने वित्तेषणा, लोकेषणा, पुत्रैषणा को त्रिविधि अनैतिक आवेश कहा है। वे ज्वर पीड़ित की तरह आवेश, उन्माद उत्पन्न करते हैं। इन व्यथाओं से ग्रसित व्यक्ति अपने चिन्तन, चरित्र, व्यवहार और क्रिया-कलाप को सज्जनोचित नहीं कर पाता, फलतः न उसे सन्तोष मिलता है और न अभीष्ट उपलब्धियों का सहकार प्राप्त कर लेने का श्रेय सौभाग्य ही। वह अनेक गुना घाटे में रहता है। चिन्तन को कुचक्र रचकर दूषित करता है। मिथ्याचार की रचना कर चरित्र बिगाड़ता है और उल्लू सीधा करने की फिराक में रहकर व्यवहार को भी भोंड़ा बना लेता है।

तीसरी ऐषणा है पुत्रैषणा जिसे बोलचाल की भाषा में कामान्धता या परिवार के प्रति कर्त्तव्य की सीमायें न रहकर उन्हीं के लिए विलास वैभव जुटाते रहने और मरते खपते रहने की लालसा कहते हैं। समय और सामर्थ्य हर मनुष्य के पास सीमित है। यदि कोई परिवार में अत्याधिक लिप्त हो जाता है। उन्हीं के लिए अपनी सारी कमाई लगाता है। समय को उसी में खपाता है। चिन्तन पर वह थोड़े लोग ही छाये रहते हैं तो समझना चाहिए कि जीवन का महत्त्वपूर्ण अंश इसी जंजाल में नियोजित हो गया। औचित्य की सीमा में रहकर कर्त्तव्यपालन मात्र से भी काम नहीं चलता। ऐसी दशा में आत्मोत्कर्ष और लोकमंगल के लिए जिन उत्तरदायित्वों को हाथ में लेना चाहिए था, उस संदर्भ में कुछ बन ही नहीं पड़ता। सादा जीवन उच्च विचार का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उच्च विचारों को हृदयंगम और कार्यान्वित कर सकना मात्र उन्हीं के लिए संभव है जो अपने निजी जीवन में सादगी का, सन्तोष का, संयम का, सद्भावना का समुचित समावेश कर पाते हैं। जिनके लिए अपने ऊपर इतना नियन्त्रण करना कठिन है जो लिप्सा, तृष्णा, वासना, अहंता के उद्धत प्रदर्शन के अनावश्यक संघर्ष में ही अपने को खपा देते हैं और पीछे उसका दुःखद दुष्परिणाम भोगते रहते हैं।

तृप्ति, तुष्टि और शान्ति जीवन की तीन बड़ी उपलब्धियाँ मानी गई हैं। तृप्ति लिप्सा से होती है। लिप्सा का तात्पर्य है शरीर की आवश्यकताएँ, इन्द्रियजन्य वासनायें। उनका समाधान औसत नागरिक के स्तर पर अपना काम चलाने वाले विवेक को अपनाने से होता है। अन्यथा चटोरेपन के कुचक्र में पड़कर लोभ और भोग की रटन्त हर घड़ी लगी रहती है। भले ही उन भोगों का दूरदर्शितापूर्ण उपयोग कर सकने की क्षमता अपने में नहीं ही हो।

तुष्टि सीमित परिवार को सद्गुणी, शिष्ट एवं सुसंस्कारी बनाने से होती है। इसके लिए अपने आपको अनुकरणीय उदाहरण बनाना पड़ता है। मर्यादाओं से बाहर का पक्षपात करने से, अनावश्यक लाड़ लड़ाने से, उत्तराधिकार में विपुल सम्पत्ति छोड़ मरने की आकांक्षा अतृप्ति उत्पन्न करती है। इसलिए विश्व परिवार का दृष्टिकोण विकसित करते हुए समूचे समाज को कुटुम्ब मानकर चलना चाहिए, जो छोटा सा अपना परिवार है उसके प्रत्येक सदस्य को स्वावलम्बी सुसंस्कारी भर बनाने की बात सोचना चाहिए। जिनसे इतना बन पड़ता है उन्हें तृप्ति की प्रसन्नता भी अनुभव होती है।

शान्ति उन्हें मिलती है जिन्हें बड़प्पन बटोरने, सस्ते वाहवाही कमाने, बड़े पद पर आसीन होने या लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करके अपनी विशिष्टता की छाप छोड़ने की अभिलाषा शान्त हो जाती है। नम्रता, विनय शीलता, सज्जनता का स्वभाव बना लेने में ही शान्ति का आभास होता है। अपने दृष्टिकोण, स्वभाव और कार्यक्रम उच्चस्तरीय बना लेने पर कोई भी व्यक्ति प्रचुर परिमाण में तृप्ति, तुष्टि और शान्ति का अजस्र आनन्द लाभ करता रह सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःक्षेत्र की ढलाई-वास्तविक पुरुषार्थ

विचारों का अपना महत्त्व है और कार्यों का अपना। पर वे दोनों ही सामयिक और अस्थिर हैं। समयानुसार के बादलों की तरह उछलते और गरज-बरसकर समाप्त हो जाते हैं। इतने पर भी उन दोनों के संयुक्त प्रभाव से उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया देर तक बनी रहती है। बादल बरस जाने का समय समाप्त हो जाने पर भी खेत में नमी बनी रहती है और देर तक अपने प्रभाव को बनाये रहती है। आवाज अन्तरिक्ष में गूँजती है, पर उसके कम्पन कुछ समय तक वातावरण में बने रहते हैं। इसी प्रकार जिन विचारों को कार्य रूप में परिणित होने का अवसर मिलता है, वे कर्त्ता के ऊपर एक देर तक ठहरने वाली छाप छोड़ जाते हैं। इसी को आदत कहते हैं। अध्यात्म की भाषा में इन्हें ही 'संस्कार' कहा जाता है। ये 'संस्कार' अपना प्रभाव सहज समाप्त नहीं करते अपितु मनःक्षेत्र में जड़ जमाकर बैठ जाते हैं। इसे ही 'स्वभाव' कहते हैं।

आदतें मनःक्षेत्र की संचित सम्पदा हैं। उनके सहारे जीवन का ढर्रा अपनी पटरी पर थोड़े से सहारे-इशारे भर से लुढ़कने लगता है। लट्टू एक बार घुमा देने पर देर तक अपनी धुरी पर घूमता रहता है। आदतों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे आरम्भ में तो प्रयत्नपूर्वक ही विनिर्मित होती हैं किन्तु पक जाने पर अपना ऐसा प्रभाव दिखाती हैं मानो मनुष्य को उन्हीं के नियन्त्रण में वशीभूत होकर रहना पड़ेगा। धीरे-धीरे वे अपने शिकंजे में इस प्रकार मनुष्य को कस लेती हैं कि उसे उनसे छूट निकलने का मार्ग ही नहीं सूझ पड़ता। विवश-असहाय सा वह ढर्रे वाले प्रवाह में बहने लगता है।

'नशेबाजी' इसका एक अच्छा उदाहरण है। आदत पड़ जाने पर उसका छूटना कितना कठिन हो जाता है इसे सभी जानते हैं। अन्य दुर्व्यसनों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उचक्के, उठाईगीरी बिना जरूरत के भी वैसी हरकतें करते रहते हैं। गाली बकने की आदत पड़ जाने पर अनजाने ही वह शब्दावली मुँह से मौके-बेमौके निकलती रहती हैं।

अच्छी आदतें स्वभाव का अंग बन सकें तो समझना चाहिये कि प्रगति पथ पर चल पड़ने और लक्ष्य तक पहुँचने की समस्या का आधा भाग हल हो गया। इसके विपरीत यदि उस प्रकार का ढर्रा न चला, स्वभाव न बना तो आदर्शवादी थोपाथापी पुरानी विकृत आदतों के टकराव में हार मानती और दुम दबाकर भागती दृष्टिगोचर होगी। स्वाध्याय और सत्संग से कई अच्छे निष्कर्ष निकलते हैं। सन्मार्ग पर चल पड़ने का सत्परिणाम भी समझ में आता है। कुछ करने की उमंग भी उठती है किन्तु व्यवहार में वैसा कुछ बन नहीं पड़ता। पथ कठिन जान पड़ता है। सुविधा के सामान्य ढर्रे से विपरीत यह आदर्शवादी मार्ग रुचिकर लगते हुए भी अपनाते नहीं बन पड़ता। यदि कुछ शुभारम्भ किया भी तो अजीब सा लगता है, संकोच होता है और उस नवीन निर्धारण का गले उतरना कठिन हो जाता है। इस असमंजस का एक ही कारण है, पुरानी आदतों की प्रबलता। इसी कारण उबरने के मन्सूबे तेज हवा में उड़ने वाले तिनकों की तरह इधर-उधर बिखर जाते हैं और मनुष्य अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों के सहारे पतन के गर्त में निरन्तर अधिक गहरा उतरता चला जाता है।

बुरी आदतों का अभ्यस्त होना सरल है क्योंकि उनका प्रचलन सर्वत्र पाया जाता है और अनुकरण करने के लिये वातावरण पहले से ही बना मिलता है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति किसी भी वस्तु से ऊपर से नीचे खींचती रहती है। किन्तु कुछ भी उछालना हो तो उसके लिये अतिरिक्त शक्ति साधन जुटाने होंगे। इसी प्रकार अच्छी आदतें डालनी हों तो उसके लिए उच्चस्तरीय विचारों को लगातार मनःक्षेत्र में प्रवेश करते रहने, उत्कृष्टता की दिशा में चलते रहने के लिए निर्धारित कार्यक्रम बनाने एवं संकल्पपूर्वक क्रियान्वित करने होते हैं। इतना बन पड़ने पर ही सुसंस्कारों की वह पूँजी जमा होती है जिसके सहारे सराहनीय प्रगति का सरंजाम जुट सके।

जाइये, पहले रूठे मन को मनाइये

बुद्धिमान उसे कहा जाता है जो 'टूटे' को बनाना और रूठे को मनाना जानता है। कपड़े, बर्तन, फर्नीचर, मकान आदि की टूट-फूट होती रहती है। उसकी मरम्मत की जाती है। जो टूटा उसे फेंक दिया जाय, ऐसा कैसे हो सकता है ? सब कुछ नया ही नया हो यह कैसे सम्भव है? इसी प्रकार जो रूठ जाय उससे खुद भी रूठ बैठें तो घर-परिवार का चलाना कठिन है। कभी पत्नी से अनबन हो जाती है, कभी बच्चों से कहन-सुनन। कभी भाई से मनचाल हो जाती है तो कभी पड़ौसी से मन-मुटाव बन जाता है, इस स्थिति को ऐसे ही रहने दिया अथवा ऐंठ को और कड़ी करते रहा जाय, तो काम नहीं चलेगा। उलझन बढ़ती ही जायेगी, जिनके साथ रहना है उनसे मीठे सम्बन्ध बनाये रहने में ही लाभ है।

मन हमारा सबसे निकट का सम्बन्धी है। पत्नी, बच्चे, भाई, पड़ौसी तो दूर वह शरीर से भी अधिक समीप रहने वाला स्वजन है। शरीर से तो सोते समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध ढीले हो जाते हैं, मरने पर साथ छूट जाता है पर मन तो जन्मजन्मान्तरों का साथी है और जब तक अपना अस्तित्व रहेगा तब तक उसका साथ भी छूटने वाला नहीं है। मन मुख्य और शरीर गौण है। मन की मर्जी पर आत्महत्या आदि से शरीर छोड़ा जा सकता है। शरीर की मर्जी से मन नहीं छूट सकता। मन की समझदारी से शरीर की अस्त-व्यस्तता दूर हो सकती है। शरीर परिपुष्ट होने से मनोविकार दूर नहीं किये जा सकते। शरीर की सामर्थ्य तुच्छ है, मन की महान। मन का शासन शरीर पर ही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर है। उत्थान-पतन का वही सूत्राधार है। निन्दा और प्रशंसा उसी की गतिविधियों की होती है। किसी को सन्त, ऋषि, देवदूत और महापुरुष बना देना यह मन की सज्जनता का ही चमत्कार है।

ऐसे उपयोगी और सामर्थ्यवान साथी को रूठने नहीं देना चाहिए। रूठ जाय तो मनाना चाहिए। हमारी आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है। अन्य काम छोड़कर भी इस ओर ध्यान देना चाहिए और जितनी जल्दी हो सके रूठे मन को मना लेना चाहिए।

मन आँख से दिखाई नहीं पड़ता, इसलिये उसका रूठना भी नहीं दीखता, पर विवेक की आँख से देखें तो वह रूठा हुआ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगा। रूठने वाले की पहचान है, साथ न देना, कहना न मानना, सहयोग न करना, नुकसान करना। बच्चा रूठ जाता है तो ऐसे ही उपद्रव करता है। घर का सामान तोड़ता-फोड़ता है और अपने हाथ-पैर पीटता है। घर को नुकसान पहुँचाता है और स्वयं कष्ट पाता है। रूठी हुई पत्नी भोजन करना, बोलना बन्द कर देती है। मन को पुष्ट करने में उपयुक्त स्वाध्याय सत्सङ्ग की खुराक लेनी उसने बन्द कर दी है। आत्मा के पास बैठकर कभी विचार नहीं करता कि घर का बनाव बिगाड़ किसमें है ? कुमार्गगामी होकर रूठे बच्चे की तरह सफलता के साधन सद्गुणों को तोड़ता-फोड़ता रहता है और स्वयं निन्दा, तिरस्कार, अभाव, दारिद्रय, शोक-संताप का भागी बनकर कष्ट पाता है। रूठा हुआ नौकर या तो काम करता ही नहीं, करता है तो ऐसे ढङ्ग से कि मालिक को और उल्टा नुकसान पड़े। मन ने आत्मोन्नति के सारे प्रयास अवरुद्ध कर रखे हैं, कुछ करता है तो ऐसा विलक्षण जिससे इस लोक और परलोक में भविष्य अन्धकारमय ही बनता चला जाय। यह रूठने के प्रत्यक्ष चिह्न हैं।

यह असहयोग अवरोध देर तक नहीं चलने देना चाहिए। वह अपना भाई है उसके साथ राम-भरत जैसे मधुर सम्बन्ध बनाने चाहिए रावण-विभीषण की तरह, सुन्द, उपसुन्द की तरह परस्पर द्रोही-विद्रोही बनकर रहने में क्या आनन्द ?

मन ने यदि साथ दिया होता तो शरीर की ऐसी दुर्गति न होती जैसी आज है। उसने काया को स्वस्थ और समर्थ रखने के लिए संयम बरता होता। लिप्सा के फेर में न पड़ा होता। जीभ को, कामेन्द्रिय को व्यवस्था में रखा होता। आहार-विहार की नियमितता बरती होती तो काया गुलाब के फूल के तरह खिली हुई और गेंद की तरह उछलने वाली रही होती। बीमारी और कमजोरी की इस घर में घुसने की हिम्मत ही न पड़ती। मन रूठा बैठा रहा, शरीर को देखा सँभाला ही नहीं, रुग्णता ने घेरा डाल लिया, शरीर टूटा, आत्मा को अशान्ति रही और मन स्वयं ही उस रुग्ण काया में रहकर टूटे मकान में रहने वाले किरायेदार की तरह उद्विग्न बना रहा।

मन यदि रूठा हुआ न होता तो उसने अपने आपको सँभाल लिया होता। अपने को गुण, कर्म, स्वभाव से सुसज्जित-सुसंस्कृत रखा होता, पर वह तो कोपभवन में बैठा था। कपड़े फाड़े, बाल बखेरे, बिना नहाये-धोये, ऐसा ही गन्दा पड़ा रहा। अपना वेष बिगाड़ा, सम्मान खोया और बाप का काम बिगाड़ा। आत्मा को सहयोग देना तो सुसंस्कृत स्थिति में ही हो सकता था। मलीनता और कुत्सा का कलेवर ओढ़ लेने पर तो वह भारभूत ही रह सकता था, सो ही रह भी रहा है।

जीवन-क्षेत्र को सँभालने का उत्तरदायित्व यदि उसने सँभाला होता तो आज इस उद्यान की शोभा देखते ही बनती। शिक्षा से यदि उसने प्यार किया होता तो और एक दो घण्टे रोज भी पढ़ने के लिए उत्सुकता प्रकट की होती तो अन्धाधुन्ध अपव्यय होने वाले समय में से थोड़ा सा शिक्षा के लिए भी लग सकता था और पिछले जो दिन ऐसे ही बर्बाद हो गये अब तक अपनी स्थिति उच्चकोटि के विद्वान जैसी हो गई होती। पर उसने विद्या में रस लिया कब ? रूठा जो बैठा रहा।

देवत्व के सारे उपकरण अपने भीतर विद्यमान थे। एक उँगली के सहारे यह सारा साज झंकृत हो सकता था। अपने भीतर बैठा सन्त, ऋषि, देव प्रतीक्षा करता रहा, जरा सा सहारा मिले तो ऊपर उभरकर आये। पर मन को फुरसत ही नहीं मिली। वह रूठा रहा, भटकता रहा और अँगूठा दिखाता रहा, समय की निधि चुकती चली गई। अवसर हाथ से निकलता रहा। जीवन सन्ध्या निकट आ गई तो भी हाय रे मन, तेरा सहयोग न मिल सका।

मन से अपनी दयनीय दुर्दशा का वर्णन करना चाहिए। परमात्मा का राजकुमार सकल साधनों से सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार दीन-हीन, निन्दित, तिरस्कृत, असफल, असहाय बना फिरे यह कितने दु:ख की बात है। यह दुर्दशा केवल एक ही कारण से हुई है कि गाड़ी के दो पहियों में सहयोग नहीं रहा। आत्मा की गौरवशाली वर्चस्व की उपलब्धियों के लिए यह जीवन मिला है। यदि मन साथ दे तो महामानव की गरिमामयी स्थिति में प्रकाश और उल्लास भरा जीवन अब भी जिया जा सकता है। जो गया सो बहुत था पर जो बचा है सो भी कम नहीं। यदि उतने में भी परस्पर सहयोग रह सके तो अभी भी उतना अवसर है कि अभिशाप को वरदान में बदला जा सके।

मन कुचाल छोड़, इन्द्रिय लिप्साओं में भटकना छोड़। वासना आग की तरह है, भोग उपभोग से यह शान्त होने वाली नहीं है। इन्हें तृप्त करने के जितने ही साधन जुटायेगा उतनी ही अतृप्ति भड़केगी। फिर उनके कुचक्र में जितना ही फँसा जाय उतनी ही क्षमता, आयु, प्रतिभा घटती है। क्षणिक चटोरेपन के पीछे समर्थता की सम्पत्ति को गँवाने और दिन-दिन दुर्बल होते जाने से क्या लाभ ? बता मन, तू कोयलों के ऊपर मुहरें निछावर करने में क्या बुद्धिमत्ता अनुभव कर रहा है ?

आत्मा रोती-बिलखती रही, उसके सन्तोष, उत्थान, कल्याण के लिए एक कदम नहीं बढ़ाया गया, एक प्रयत्न नहीं किया गया। अन्तरात्मा की सहचरी सत्प्रवृत्तियाँ कुम्हलाईं, मुरझाईं और सूख गईं। उन्हें सींचने के लिए एक लोटा पानी नहीं डाला जा सका। सद्भाव के बालक अपने पोषण की पुकार करते रहे उनकी आवश्यकताएँ जुटाने से मुँह मोड़े रहा गया, पर दुर्बुद्धि, दुष्प्रवृत्ति और दुर्भावनाओं के पोषण के लिए तरह-तरह के साज-सरंजाम जुटाये जाते रहे। परिवार का पोषण, विकास करना पर्याप्त था। पर उन्हें विलासी और धन कुबेर बनाकर छोड़ जाने के मोह से सारी ममता उन्हीं पर उँडेल दी गई। उन्हें ही अपना समझा गया। जो कुछ किया जाय उन्हीं के लिए जो कुछ सोचा जाय उन्हीं के लिए , सम्पन्न बनाया जाय तो उन्हीं को, समृद्ध बनें तो वे ही। उस छोटे से दायरे में अपनी सारी ममता समेटकर मन तू ठगा गया। इस मोहग्रस्तता ने लोक भी बिगाड़ा और परलोक भी। बता मन तू इसी चाल पर कब तक चलता रहेगा ? विश्व परिवार की ओर से कब तक आँखें बन्द कराये रहेगा ?

मन तू शरीर का मित्र बना और आत्मा का शत्रु। शरीर को ठाठ-बाट जुटाने में, बड़प्पन दिलाने में, सत्ताधारी बनाने में लगा रहा, उसी के ताने-बाने बुनता रहा। पर इससे मात्र अहंकार बढ़ा। शरीर पर चिन्ता का भार बढ़ा और इस गधे पर इतना बोझ लादा कि कमर ही टूट गई। बाहर वाले बड़प्पन देखकर चौंधियाते जरूर हैं पर भीतर ही भीतर सब कुछ खोखला पड़ा है। मन तू खुद भी मरा और अपने मित्र शरीर को भी मारा। यदि तू आत्मा का मित्र बन गया होता और जितना श्रम शरीर के लिए किया है उतना आत्मा के लिए करता, तो आनन्द आ जाता। आत्मा ऊँची उठकर परमात्मा बन जाती और तू यशस्वी होता, धन्य हो जाता। पर हाय रे कुचाली, तू तो रूठा ही बैठा रहा, उल्टा ही चलता रहा, घर को खोखला किया और अपनों को चौपट कर दिया। जिन विरानों को अपना सब कुछ समझ रहा था, उनकी करतूतें तो देख—अहसान मानना तो दूर, अधिक शोषण के लिए उतावले और कृतघ्नता से बावले बने फिर रहे हैं। तेरे सारे प्रयास एक तरह से निरर्थक और निष्फल ही चले गये।

जीवन लक्ष्य की बात सोचने के लिए तुझे फुरसत ही नहीं मिली। कर्त्तव्य का ध्यान कभी आया ही नहीं—ईश्वर के दरबार में जाकर लेखा-जोखा देना पड़ेगा, यह कभी सूझा ही नहीं। स्वार्थपरता की संकीर्ण परिधि में कीचड़ के कीड़े की तरह कुलबुलाता, बिलखता रह गया अभागे। अपने को ज्वलन्त दीपक की तरह प्रकाशवान बनाकर सबको प्रकाश देता और स्वयं प्रकाशपुंज कहलाता। यह मार्ग तुझे क्यों नहीं सूझा ? विश्व भगवान की सेवा-साधना के लिए भीतर से हुलास क्यों नहीं उठा। पत्थर के टुकड़ों पर सिर पटककर ईश्वर भक्ति की विडम्बना तो रचता रहा पर प्रेम के अमृत की एक बूँद भी सच्ची भक्ति के रूप में कभी नहीं उपजी। आस्तिकता का कलेवर ओढ़े फिरने वाले नास्तिक बता तेरी इस बाल-क्रीड़ा से ईश्वरीय अनुग्रह का एक कण भी कैसे मिल सकेगा ?

भूलें बहुत हो चुकीं। बहुत क्या यों कहना चाहिए कि अब तक का सारा जीवन भूल-भुलैया में भटकते हुए ही बीत गया। जब वस्तुस्थिति पर विचार आता है हानि का लेखा-जोखा सामने आता है, तो छाती फटती है। जितना समय, श्रम और प्रयत्न मृग तृष्णा में भटकते बीता यदि वह सही दिशा में, राजमार्ग पर चलने में लगा होता तो अब तक कितनी मंजिल पार हो गई होती। कितने ऊँचे पहुँचे होते, कितने आगे बढ़े होते। पर कोल्हू के बैल की तरह—बालू में से तेल निकालने की तरह हाथ कुछ नहीं आया। खीज, क्षीणता, जलन और पछतावे के सिवाय इस भूल भरे मार्ग पर और मिलना ही क्या था ? सब कुछ गँवा बैठने पर भी तृष्णा और वासना के शूल अभी भी वैसा ही दर्द करते रहते हैं और चैन नहीं मिलने देते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन तेरे हाथ जोड़ते हैं, तेरे पैर छूते हैं, तेरे चरणों पर लोटते हैं, तू जीता हम हारे। पर अब कृपाकर रूठना छोड़ दे, कुचाल मत चल सही रास्ते पर आजा। आत्मा का बन, उसी के साथ रह, उसी की सहायता कर, उसी के काम आ। आखिर तू आत्मा का ही तो पुत्र है। माता के साथ दुष्टता—माया के साथ रासविलास। बच्चे इस रास्ते से पीछे लौट। बाप अब तो कृपा कर। तेरी शरण में आये शरणागत को अब और आगे मत सता। तू रूठना छोड़ दे, मन जाय तो, जीवन सन्ध्या की इन घड़ियों में ही अन्धकार को प्रकाश में बदला जा सकता है। देवता, अब तू प्रसन्न हो, वरदान दे तभी नाव पार उतरेगी अन्यथा अब डूबे-तब डूबे।

ऐसा चिन्तन, मनन हमें नित्य ही एकान्त में करना चाहिए। मन के साथ वार्तालाप करने का नाम ही मनन चिन्तन है। उसी को स्वाध्याय सत्सङ्ग की उच्च भूमिका भी कहते हैं।

अचेतन मन की व्याधियाँ और उनका निराकरण

मृगी रोग से पीड़ित मनुष्य की कैसी दयनीय स्थिति होती है यह किसी से छिपा नहीं है। जब दौरा पड़ता है तो सारा शरीर विचित्र जकड़न एवं हड़कम्प की ऐसी स्थिति में फँस जाता है कि देखने वाले भी डरने, घबराने लगें। जहाँ सुरक्षा की व्यवस्था न हो वहाँ दौरा पड़ जाय तो दुर्घटना भी हो सकती है। सड़क पर गिरकर किसी वाहन की चपेट में आ जाने, आग की समीपता होने पर जल मरने की आशंका बनी ही रहती है। मस्तिष्कीय जड़ता के कारण बुद्धि मन्द होती जाती है और क्रिया-कुशलता की दृष्टि से पिछड़ता ही जाता है। दौरा पड़ने के बाद जब होश आता है तो रोगी अनुभव करता है मानो कई दिनों की बीमारी के बाद उठने जैसी अशक्तता ने उसे घेर लिया है। लोग सोचते हैं मृगी होने की अपेक्षा यदि एक हाथ-पाँव चला जाता तो कहीं अच्छा रहता।

मृगी क्या है ? इस सम्बन्ध में खोज-बीन करने पर इतना ही जाना जा सकता है कि यह अचेतन मन में पड़ी हुई किसी ग्रन्थि का अवरोध है। मस्तिष्कीय संरचना के बारे में बहुत कुछ खोज-बीन हो चुकी है। अचेतन मन के बारे में जो जाना जा सका है वह अति स्वल्प है, उस दिशा में अत्यधिक खोज-बीन किया जाना शेष है। इतना जाना जा चुका है कि शरीर में सोते-जागते जो स्वसंचालित गतिविधियाँ चला करती हैं उनका सूत्र संचालक अचेतन मस्तिष्क ही है। चेतन मस्तिष्क का स्थूल अवयव भी है पर जहाँ सोचने-विचारने की गुँजाइश नहीं, वहाँ भी अचेतन मन की सत्ता काम करती है। रक्त संचरण, स्नायु समूह का आकुंचन-प्रकुंचन, श्वाँस-प्रश्वाँस, निद्रा-जागरण, पाचन, विसर्जन जैसी हलचलों में नियमित तारतम्य अनवरत और अविच्छिन्न रूप से बनाये रहने का कार्य अचेतन मन ही सम्पन्न करता है।

अचेतन मन में कई तरह के अवरोध-आघात, आकांक्षाओं के वेग को रोकने अथवा प्रतिकूलताओं के आघात अपमान से उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने पाये इसके लिए अध्यात्मवेत्ता यह उपदेश करते हैं कि मनोभूमि को भौतिक महत्वाकांक्षाओं एवं ललकों से मुक्त रखा जाय और सम्मुख प्रस्तुत कर्त्तव्यों को सही ढंग से पालन करने को ही महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र-बिन्दु बनाया जाय। इस प्रकार अनासक्त रहने की स्थितिप्रज्ञ जैसा समत्व बनाये रखने की ज्ञानयोग शिक्षा इसलिए दी जाती है कि परिस्थितियों के कारण आने वाले उतार-चढ़ावों को महत्व न दिया जाय, उनकी उपेक्षा की जाय और हर घड़ी सन्तुष्ट, प्रसन्न रहने का अभ्यास किया जाय, यदि इस स्तर की मनोभूमि प्रयत्नपूर्वक बनाई जा सकती है, इस प्रयत्नशीलता का नाम ही साधना है। साधनारत सौम्य, मनःस्थिति को उन आघात-अवरोधों का सामना नहीं करना पड़ता जिनके कारण मृगी जैसे अचेतन मन में उत्पन्न होने वाले रोगों की आशंका सामने आये।

मानसिक संतुलन में प्रत्यक्ष या परोक्ष अवरोध उत्पन्न होने से कई प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं इनमें विविध प्रकार की मृगी सदृश्य मूर्च्छायें भी सम्मिलित हैं।

अपस्मार, मृगी-एपीलेप्सी को पागलपन का, दिमागी खराबी का चिह्न नहीं माना जाना चाहिए। उच्चकोटि के बुद्धिमान व्यक्ति भी इस रोग से ग्रसित हो सकते हैं। नेपोलियन बोनापार्ट और जूलियस सीजर जैसी विश्वविख्यात हस्तियाँ भी इस रोग की शिकार रही हैं, उन्हें मृगी के दौरे आते रहे हैं फिर भी उनकी बुद्धिमानी तथा मानसिक क्षमता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई।

यों डाक्टर लोग मृगी का कारण दिमाग पर चोट लगना, मस्तिष्कीय मज्जा में कोई छोटा घाव पड़ जाना, गर्दन तोड़ बुखार, मस्तिष्कीय सूजन-ऐनस-फलाइटिस-एनजिओयस-ट्यूमरआर्टीकिओं, स्क्लेरोसिए आदि स्थानीय विकृतियाँ बताते हैं। कारणों की भिन्नता की भाँति ही उसके लक्षण भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। हर किसी को मृगी एक ही तरह की नहीं आती वरन् उनका स्वरूप एक-दूसरे से काफी भिन्न होता है। चीखना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घिघियाना, काँपना, घबराना, मुँह से झाग डालना, दाँतों की भिच्ची लग जाना, हाथ और गर्दन का इठना, संज्ञा शून्यता, पुतली चढ़ जाना जैसे कितने ही प्रकार के उपद्रव होते हैं। कुछ रोगी तो गिर पड़ते हैं कुछ को ऐसा ही दौरा पड़ता है कि जो कार्य कर रहे हैं उसे ही करते रहें, जैसे चल रहे हैं तो दौरे की स्थिति में भी चलते ही रहेंगे, पर यह न सोच सकेंगे कि कहाँ चलने की और कहाँ रुकने, मुड़ने की आवश्यकता है।

मृगी के लक्षण के अनुसार उसका वर्ग-विभाजन पेटिटमाल, साइको मोटर, टेम्पोकललोव, क्राइङ्ग कन्वेल्सन, व्रैथ होल्डिग स्माज्म, फैब्राइल कन्वेल्सन आदि नामों से किया जाता है। गर्दन तोड़ बुखार, सन्निपात, अतिताप जैसे ज्वरों से भी मृगी के दौरे उभर सकते हैं। शरीरगत रासायनिक विश्लेषण करने पर कुछ गहरी बात हाथ नहीं लगती। कुछ साधारण सी खराबियाँ भर हाथ लगती हैं जैसे—विटामिन डी. या कैल्शियम की कमी, रक्त शर्करा की न्यूनता के कारण संक्षोभ-हाईपग्लासीमिक रक्तगत विषाक्तता-ब्लडयूरिया आदि। पर यह शिकायतें लाखों रोगों की रहती हैं किन्तु उन्हें मृगी नहीं होती। इसलिए शरीर विश्लेषण में यह कमियाँ पाई जाने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि दौरे इन्हीं कारणों से आते हैं और यदि इन्हें ठीक कर लिया जाय तो दौरे पड़ना बन्द हो जायगा। ऐसी दशा में यह अँधेरे में टटोलना भर हुआ। शेर की माँद में यदि चुहिया भी बैठी पाई जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि चुहिया ही सिंह की जननी है। मृगी और मूर्च्छा दोनों रोग बाहर से देखने में एक जैसे लगते हैं पर उनमें मौलिक अन्तर होता है। हिस्टेरिया अवचेतन मस्तिष्क के आन्तरिक संघर्षों-अन्तर्द्वन्द्वों के कारण होता है। इसमें असामान्य विद्युतीय प्रस्राव नहीं होता और न मस्तिष्कीय कणों में कहीं कोई रुग्णता पायी जाती है। इसलिए इसे भावनात्मक वर्ग का रोग माना जाता है। इसके विपरीत ऐपीलेप्सी मस्तिष्कीय संरचना में स्थानीय विकृति उत्पन्न होने के कारण होती है। उसे खोज निकाला जा सकता है। हिस्टेरिया में मुट्ठियाँ जकड़ जाती हैं और दाँत भिच जाते हैं। जिसे दूसरे लोग मुश्किल से ही खोल पाते हैं। मुँह से झाग, मूत्रेन्द्रिय से पेशाब, आँखों से आँसू, नाक से कफ भी ऐसी स्थिति में निकल सकते हैं। किन्तु मूर्च्छा-एपीलेप्सी में मनुष्य सिर्फ होश-हवास ही खोता है और विग्रह- उपद्रव खड़ा नहीं करता। सिर दर्द की तरह यह स्थानीय रोग है और उसकी पकड़ यान्त्रिक परीक्षण की पकड़ में आ सकती है पर अवचेतन की परतों में प्रवेश करके वस्तुस्थिति को समझना, निरूपण करना और उपचार खोजना मनोविज्ञान अथवा परामनोविज्ञान का विषय रह जाता है।

इलेक्ट्रे ऐंसीफलो ग्राफी (ई० ई० जी०) से मस्तिष्कीय विद्युत प्रवाह का प्रलेखन (ग्राफ) बनता है। इस रिकार्ड को देखकर ब्रेथ होल्डिग स्माज्म, कोक्ल, सवकार्टिकल, इडियोपैथिक, जैसी विकृतियों का पता चल सकता है, खोपड़ी का एक्सरे लेने से ट्यूमर, सूजन, ब्रण, क्षत आदि का पता चल सकता है। इनका उपचार भी हो सकता है। पर अवचेतन में दबी हुई? ग्रन्थियों को खोलने के लिये क्या किया जा सकता है ? क्या किया जाना चाहिए ? यह अभी निश्चित नहीं हो सका।

मस्तिष्कीय क्षति को पूरा करने के लिए आमतौर से चिकित्सक लोग फिनोबार्बीटोन, फिनी टाइन-सीडियम और प्रमिडोन सरीखी दवायें देते हैं। बड़े किस्म की मृगी-ग्रैडमल एपीलेप्सी में प्राय: इन दवाओं का प्रयोग होता है। छोटे किस्म की मृगी-पिटिटमाल में एथोसक्सी माइड-जारोटिन जैसी हल्की दवायें दी जाती हैं। इनसे नींद की झपकी सी आती है। वस्तुत: ये नींद की दवायें नहीं हैं, मस्तिष्क के भीतर इनका प्रभाव जो सनसनी उत्पन्न करता है, इसी से यह झपकियाँ महसूस होती हैं।

इन दवाओं का प्रयोग भी सर्वथा निरापद नहीं है। इनके कारण मसूड़ों का बढ़ना, टखनों के असन्तुलन से रक्त-सन्तुलन में गड़बड़ी जैसे उपद्रव उठ खड़े होने की आशंका बनी ही रहती है।

अब तक इस रोग के जो उपचार सामने आये हैं उन्हें प्रयोगात्मक ही कह सकते हैं। किस उपचार से किसे कितना लाभ हो सकेगा यह सर्वथा अनिश्चित है। इसका प्रमुख कारण एक ही है कि अचेतन मस्तिष्क की न तो संरचना ही अभी ठीक तरह समझी गई और न इस क्षेत्र में उत्पन्न विकृतियों का स्वरूप एवं उपचार ही निर्धारण किया जा सका। अंधेरे में ढेला फेंकते रहने पर भी कभी-कभी निशान ठीक बैठ जाता है ठीक उसी प्रकार मृगी का भी कभी-कभी कोई उपचार सफल हो जाता है।

किसी समय अचेतन मस्तिष्क का स्वरूप निर्धारण और उसका सुरक्षा सन्तुलन बनाये रखने के लिए अध्यात्मवादी तत्वज्ञान का आश्रय लिया जाता था, फलस्वरूप इस प्रकार के रोगों का वर्णन केवल पुस्तकों तक ही सीमित था, उसके रोगी यदा-कदा ही देखने को मिलते थे। जब से भावनात्मक अवरोधों की जटिलता बढ़ती गई तब से अस्मार जैसे उन रोगों का प्रचलन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ता ही जा रहा है, जो प्रगति के पथ पर चट्टान बनकर अड़े रहते हैं और चिकित्सकों की पकड़ में नहीं आते।

मनोविज्ञानी इस प्रकार के अचेतन मन के रोगियों को यह परामर्श देते हैं कि वे खुले मन से किस विश्वस्त मित्र के साथा वार्ता किया करें जिससे कोई दबाव-दुराव भीतर पड़े हों तो वे निकलकर बाहर आ जायँ। मानसिक स्वच्छता को इस प्रकार के अवरोधों के निवारण का एक कारगर उपाय बताया जाता है और कहा जाता है कि ऐसे रोगियों को एकान्तप्रिय नहीं होना चाहिए और न अधिक सोचने- विचारने की आदत बनानी चाहिए। उन्हें हँसने-खेलने और प्रसन्नता-प्रोत्साहन के हल्के-फुल्के वातावरण में रहना चाहिए। किन्हीं के प्रति द्वेष, घृणा के भाव हों तो उन्हें निकाल देना चाहिए। भूतकाल की विपन्नताओं और भविष्य की आशंकाओं से मन को भारी नहीं रखना चाहिए। उपचार की दृष्टि से मनोविज्ञानवेत्ताओं ने मृगी के मरीजों को यही परामर्श अधिक उपयोगी पाया है और इस प्रकार के हेर-फेर का उत्साहवर्धक लाभ भी देखा है।

अध्यात्म विज्ञान का प्रधान प्रयोजन यही है कि परिस्थितियों को महत्व न देकर हर स्थिति में सन्तुष्ट और प्रसन्न तथा कर्त्तव्य करने की मनोवृत्ति विकसित की जाय। हँसती-खेलती और हल्की-फुल्की जिन्दगी जीने का अभ्यास किया जाय। पर यह सब हो तभी सकता है जब इसके लिए अध्यात्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि को गहराई के साथ समझा और अपनाया जाय। मात्र उपचार की दृष्टि से उथला सन्तुलन बालू का महल ही बना रहता है और बनाने में देर नहीं लगती है कि बिगड़ना आरम्भ हो जाता है।

उच्चस्तरीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाना न केवल मृगी के रोगियों के लिए वरन् समस्त मानसिक रोगियों के लिए यहाँ तक कि शारीरिक रुग्णता से ग्रसित लोगों के लिए भी उपयुक्त है। इस दिशा में बढ़ते हुए कदम न केवल रोगमुक्त करते हैं वरन् समस्त आधि-व्याधियों की जड़ ही काटकर रख देते हैं।

मानसिक तनाव बुरा तो है ही, उपयोगी भी

प्रसिद्ध विचारक और चिन्तक डाक्टर वाल्टर टौपेल ने लिखा है कि ''केवल मनुष्य ही रोता हुआ पैदा होता है, शिकायत करता हुआ जीता है और निराश मरता है।'' यह उक्ति अधिकांश लोगों के जीवन में अक्षरश: सही सिद्ध होती है। अन्य प्राणियों के जीवन में न तो कोई परेशानी होती है न समस्यायें। पर मनुष्य विचारशील और भाव-प्रवण होने के कारण छोटी-छोटी घटनाओं से भी प्रभावित होता है तथा उन पर अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है। ये प्रतिक्रियायें अनुकूल कम होती हैं और प्रतिकूल अधिक।

समाज के प्रत्येक वर्ग में प्रत्येक स्थिति के व्यक्तियों का यदि विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि हर कोई कहीं न कहीं, किसी न किसी कष्ट या समस्या से पीड़ित है। निर्धन व्यक्ति अपनी गरीबी से पीड़ित है तो समृद्ध और किन्हीं कारणों से कोई भौतिक सुख-सुविधाओं से परेशान है तो कोई मानसिक शान्ति न मिलने से। आज के समय में तो ये समस्यायें और भी अधिक जटिल हो गई हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ और भी नयी-नयी समस्यायें उत्पन्न होने लगी हैं। आज की मशीनी सभ्यता ने मनुष्य के लिए जो नई समस्याएँ उत्पन्न की हैं उनमें प्रमुख है मानसिक तनाव। यों चिन्तायें, विक्षोभ, मानसिक दबाव और असफलता का दु:ख सदा से मनुष्य को परेशान करते हैं, पर विगत कुछ दशाब्दियों में मानसिक तनाव के कारण कई ऐसे रोग फैलने लगे हैं जिनका कारण शरीर में खोजे भी नहीं मिल पाया है। ऐसे रोगों को अंग्रेजी में ''साइकोसोमैटिक'' रोग कहा जाता है। एक अनुमान के अनुसार अकेले अमेरिका में लगभग ६५ प्रतिशत रोगी इसी प्रकार के होते हैं। भारत में भी ऐसे रोगियों की संख्या बड़े शहरों के कुल रोगियों की संख्या से करीब आधे इन्हीं रोगों से ग्रस्त होते हैं।

चिकित्सा-विज्ञान की नई-नई शोधों और उपचार पद्धतियों के बल पर कुछ दशकों में जहाँ कई पुरानी बीमारियों पर पूरी तरह नियन्त्रण प्राप्त कर लिया गया था, वहीं अब कुछ ऐसे रोग बड़ी तेजी से फैल रहे हैं, जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना गया था। विशेषज्ञों के अनुसार उन रोगों को सभ्यता के राजरोग कहा जाता है। उनका कहना है कि मन पर पड़ने वाले दबावों और मानसिक तनाव के कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं।

विज्ञान की भाषा में मन शरीर का कोई अवयव नहीं है। वैज्ञानिकों के अनुसार जिसे मन कहा जाता है वह मस्तिष्क की शक्तियों का ही एक विशिष्ट प्रकार से होने वाला प्रक्षेपण है। मनुष्य शरीर के द्वारा सम्पन्न होने वाली सभी गतिविधियों, क्रिया-कलापों का संचालन मन द्वारा होता है-यह तो सर्वविदित है। शरीर के द्वारा कुछ कार्य तो मनुष्य अपनी इच्छानुसार करता है जैसे—चलना, उठना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठना, लिखना, पढ़ना आदि। इनके अतिरिक्त शरीर में कई ऐसी प्रक्रियाएँ भी चलती रहती हैं जिन पर मनुष्य अपनी इच्छानुसार नियमन नहीं कर सकता। जैसे—पाचन क्रिया, रक्त परिभ्रमण, हृदय स्पंदन, नाड़ी चलना आदि। इन प्रक्रियाओं का नियन्त्रण मस्तिष्क के जिस भाग द्वारा होता है उसे हाईपोथैलेमस कहते हैं। इस केन्द्र से चलकर स्नायु पथ के द्वारा अनैच्छिक गतिविधियाँ चलती हैं। इसके भी दो भाग हैं एक को पैरासिंपेथैटिक कहा जाता है तथा दूसरे को सिंपेथैटिक। पहला पाचन, पोषण और शुद्धिकरण जैसे कार्य करता है तथा दूसरा भाग प्राणी को विशिष्ट परिस्थितियों से निपटने की क्षमता प्रदान करता है। तनाव या दबाव के समय मस्तिष्क का यह हिस्सा सक्रिय हो उठता है। जैसे—खतरा प्रस्तुत होने पर इसके कारण रक्तचाप बढ़ जाता है, दिल की धड़कन तेज हो जाती है, हृदय से अधिक रक्त प्रवाहित होने लगता है। भीतरी अवयवों से हटकर माँसपेशियों की ओर आने लगता है, रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है और शरीर में आड्रेनेलिन नामक रसायन भी प्रवाहित होने लगता है। यह सब परिवर्तन आसन्न संकटों से जूझने के लिए होते हैं किन्तु जब साधारण-सी बातों को लेकर भी चिंतित हुआ जाने लगता है तो भी यही परिवर्तन होते हैं।

भावनाओं की शरीर पर क्या प्रतिक्रिया होती है? इसका यह एक छोटा-सा उदाहरण है। प्रकृति ने भावनाओं का शरीर से यह सम्बन्ध विशिष्ट उद्देश्य से जोड़ा है। वह उद्देश्य यह है कि प्राणी का शरीर परिस्थिति के अनुरूप ढल सके। कुछ और घटनाओं द्वारा भावनाओं की शरीर पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को समझा जा सकता है। डर के कारण पेशाब छूट जाना, घबराहट से पसीना छूटना, चिन्ता के कारण भूख न लगना, गुस्से में होने पर चेहरा तमतमा उठना, परेशानी से नींद न आना और लज्जा के मारे लाल हो जाना, चेहरा झुका लेना आदि स्थितियाँ दर्शाती हैं कि भावनाओं का प्रभाव मनुष्य शरीर के रक्त प्रवाह और अन्दरूनी हलचलों पर अनिवार्य रूप से पड़ता है।

पसीना छूटने से पता चलता है कि भावनाएँ शरीर की उन ग्रन्थियों को प्रभावित करती हैं जो पसीना छोड़ने का काम करती हैं। बहुत बुरी खबर सुनने या मानसिक आघात पहुँचने पर घबड़ा उठने के साथ मूर्च्छित तक हो जाने की स्थिति दर्शाती है कि मस्तिष्क का क्रिया-कलाप भी भावनाओं से प्रभावित होता है। यह सब स्थितियाँ इस बात की द्योतक हैं कि परिस्थितियाँ भावना को जन्म देती हैं और भावनायें शारीरिक प्रक्रियाओं को। परिस्थिति विशेष से निपटने के लिए शरीर में होने वाले ये परिवर्तन प्रकृति की बहुत ही उपयोगी व्यवस्था होती है।

परन्तु कई बार अकारण ही व्यर्थ की चिन्ताएँ होती हैं और उन स्थितियों में भी यही परिवर्तन होने लगते हैं। लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रहे तो मनुष्य शरीर कई रोगों से आक्रांत हो जाता है। आधुनिक सभ्यता में जीवन-क्रम की तेज गतिशीलता और कदम-कदम पर प्रतिस्पर्धा की आपाधापी भी मस्तिष्क में मिथ्या आशंकाओं, भय और गुत्थियाँ को जन्म देती है। वैसी दशा में मस्तिष्क के आदेश से शरीर में वैसी ही प्रक्रिया होने लगती है जैसी कि वास्तविक संकट के समय होती है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस तरह की प्रक्रियायें अपेक्षाकृत कम तीव्र होती हैं, परन्तु वे लम्बे समय तक चलती हैं। जब वास्तविक संकट सामने होता है तब तो ये प्रतिक्रियायें जितनी तेजी से शुरू होती हैं उतनी ही तेजी से संकट दूर हो जाने पर अपने आप समाप्त हो जाती हैं। लेकिन अवास्तविक और अमूर्त संकट से उत्पन्न प्रक्रिया भले ही तीव्र न हो पर धीमे-धीमे शरीर में चलती जाती है तथा उससे शरीर को नुकसान पहुँचता है। उदाहरण के लिए वास्तविक संकट उत्पन्न होने के कारण हृदय की गति बढ़ जाती है और संकट समाप्त होते ही पुनः स्वाभाविक स्थिति में आ जाती है किन्तु मनोकल्पित आशंका से हृदय गति कुछ तेजी से ही धड़कती है। ऐसी आशंकाएँ भी लम्बे समय तक चलती रहती हैं और हृदयगति भी निरन्तर बढ़ी हुई रहने लगती है जो शारीरिक व्याधि का रूप धारण कर लेती है। उपरोक्त ढंग से बढ़ी हुई हृदय की गति के रोग को ''टैकी कार्डिया'' कहा जाता है।

इसी प्रकार संकट के समय मस्तिष्क रक्तप्रवाह को आमाशय से हटाकर ऊपरी माँसपेशियों की ओर मोड़ देता है। ऐसे क्षणों में मारे घबराहट के जी मितलाने लगता है और उबकाई आने लगती है। यह प्रक्रिया मिथ्या भय के कारण भी होती है और अवास्तविक भय के कारण भी यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। ऐसी स्थिति में खट्टी डकारें आना, जी मितलाना जैसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

यह सब लक्षण रोग के प्रतीक होते हैं और लगता है कि शरीर स्वास्थ्य में कोई खराबी आ गई है। परन्तु वास्तव में इनकी जड़ मन के भीतर होती हैं। व्यक्ति इस बात को नहीं समझता और मानसिक कारणों को यथावत् रखते हुए रोग की भी चिन्ता करने लगता है। जितना ही वह रोग के बारे में सोचता जाता है, उतना ही रोग बढ़ता नजर आने लगता है और दोहरी समस्या बन जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस तरह के मानसजन्य रोगों की एक लम्बी सूची है और विज्ञान भी यह मानने लगा है कि ६५ प्रतिशत रोगों का कारण इस तरह की मानसिक अपरिपक्वता ही है। व्यक्तित्व में प्रौढ़ता का अभाव ही मानसजन्य शारीरिक रोगों का कारण बनता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो निरन्तर किन्हीं बातों को लेकर चिन्तित रहना, गलत-सलत आशंका-कुशंकाएँ करते रहना और व्यर्थ के बहम पालना मानवीय मस्तिष्क को आत्यांतिक तनावग्रस्त कर देते हैं। तनाव का बहुत अधिक बढ़ जाना ही इस तरह के रोगों का कारण बनता है।

मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि तनाव जीवन का एक अनिवार्य अंग है परन्तु वह सीमा से अधिक हो जाता है तो मस्तिष्क और शरीर पर बुरा प्रभाव डालने लगता है। सिएटल के वाशिंगटन विश्वविद्यालय में चिकित्सा विभाग के प्रधान डॉ. टॉमस होम्स ने हाल ही में लम्बे समय तक शोध अनुसंधान के बाद यह प्रतिपादित किया है कि सक्रिय जीवन व्यतीत करते हुए कोई भी व्यक्ति तनाव से पूर्णत: मुक्त नहीं हो सकता। उनका कहना है कि एक ही तरह की घटनाएँ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग अनुपात से तनाव का कारण बनती हैं। उन्होंने ऐसी विभिन्न घटनाओं के लिए अंक निर्धारित किये और कहा कि एक वर्ष में २०० अंकों से अधिक तनावपूर्ण स्थितियों में स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

डॉ० होम्स ने जीवन साथी की मृत्यु से लेकर रहन-सहन में परिवर्तन और यहाँ तक कि सोने की आदतों में बदलाव तक को तनाव का कारण बताया है। यह बात अलग है कि कौन व्यक्ति इन घटनाओं से कितना तनाव अनुभव करता है। इस प्रकार तनाव से पूर्णतया छुटकारा तो नहीं पाया जा सकता और न ही इसके लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता है। परमात्मा ने मनुष्य के शरीर और मन को इस योग्य बनाया है कि वह दैनन्दिन जीवन में आने वाले तनाव को झेल सके। समस्या वहाँ उत्पन्न होती है। जब मनुष्य साधारण घटनाओं को भी आवश्यकता से अधिक महत्व देने लगता है। इस स्थिति से बचने का एक ही उपाय है कि मनुष्य अपनी सीमाओं और सामर्थ्यों को सही ढंग से पहचाने तथा उनके अनुसार अपना जीवन-क्रम बनाये। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ. सोलिए के अनुसार अपनी सामर्थ्य के अनुसार तनाव झेलना स्वास्थ्य के लिए अच्छा ही है।

लेकिन सामर्थ्य से अधिक तनाव बढ़ता प्रतीत हो तो डॉ. सोलिए ने उसके लिए श्रम को सबसे बड़ा उपचार बताया है अपने आपको व्यस्त रखना, अनेक प्रकार की समस्याओं के साथ-साथ मानसिक तनाव से मुक्त होने का भी अचूक उपाय है। महत्वाकांक्षाओं और क्षमताओं में सामंजस्य भी तनाव की सम्भावना को बहुत कम कर देता है। अपनी स्थिति से ऊँचा उठने और उन्नति के चरम शिखर को छूने की इच्छा हर किसी में रहती है। निश्चित ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए पर उसके लिए अधैर्य या व्यग्रता से काम नहीं लेना चाहिए। सीढ़ी दर सीढ़ी ही लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। डॉक्टर सोलिए का यह भी कहना है तनाव से उत्पन्न शारीरिक व्याधियों से बचने के लिए व्यक्ति का आस्थावान होना भी आवश्यक है। ईश्वर के अस्तित्व को मानने में किसी को आपत्ति भी हो सकती है, पर कम से कम अपने प्रति आस्था तो रखी ही जा सकती है।

अपने प्रति आस्थावान रहने के लिए आवश्यक है कि अपना सही-सही मूल्यांकन किया जाय। अपने को बहुत अधिक बढ़ाकर या बहुत अधिक घटाकर देखने वाले लोग तनाव तथा कुण्ठा के शिकार होते हैं। अतएव अपना वास्तविक मूल्यांकन करते हुए सामान्य और सहज जीवन जीना मन और तन दोनों को सशक्त बनाता है।

समस्याओं का समाधान दृष्टिकोण के परिष्कार पर निर्भर

कोई आदमी अच्छा है या बुरा? यह उसकी आदतों का स्तर देखकर पता चलता है। ये आदतें कहीं बाहर से आकर नहीं चिपटतीं। मनुष्य की विचारणा और क्रिया ही दीर्घकालीन अभ्यास से स्वभाव का अंग बन जाती हैं।

विख्यात मनोविज्ञानवेत्ता विलियम जेम्स ने आदतों का विश्लेषण करते हुए एक स्थल पर लिखा है कि किसी प्रक्रिया की बार-बार आवृत्ति से हमारे मस्तिष्क में एक मनोवैज्ञानिक खाँचा बन जाता है। उस कार्य अथवा विचार की आवृत्ति उस खाँचे को और गहरी करती रहती है। यह खाँचा जितना गहरा होता जाता है, मन को उससे विरत करना उतना ही कठिन लगने लगता है।

आदतों की उत्कृष्टता-निकृष्टता ही जीवन में उत्थान-पतन की परिस्थितियाँ रचा करती हैं। अच्छी आदतें अन्तरंग सहयोग की तरह हर जगह अनुकूलता प्रदान करती हैं। इसके विपरीत बुरी आदतें हमेशा अपने पालक के अनगढ़पन की चुगली करती फिरती हैं। बने बनाये कामों तथा मधुर सम्बन्धों में खटाई डाल देना इस दुष्प्रवृत्ति का प्रिय व्यसन है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ बुरी आदतें स्वभाव में जड़ जमाकर इतनी पक्की हो जाती हैं कि उनके दुष्परिणाम भुगतने वाला भी उससे अनभिज्ञ बना रहता है। उदाहरण के लिए, जो दाँतों से नाखून काटता रहता है, चाहे किसी रूप में, आमतौर पर 'नर्वस' समझा जाता है। जो सदा देर से कहीं पहुँचता हो, वह लोगों की नजर में स्वार्थी और दूसरों का न ख्याल करने वाला होता है। टालमटोल करने वाला व्यक्ति अविश्वस्त माना जाता है, उसे कोई दायित्व वाला काम नहीं सौंपा जाता। यदि प्रयास किया जाय तो इन प्रवृत्तियों से मुक्ति भी पायी जा सकती है। अपने चिन्तन एवं व्यवहार में दैनन्दिन स्वयंमेव समीक्षा करते रहने से यह दुष्कर लगने वाला कार्य भी सम्भव हो सकता है।

मनुष्य उज्ज्वल भविष्य की मनोरथ कल्पनाएँ किया करता है। सुखमय जीवन का स्वप्न देखता है। उन्नति की योजनाएँ बनाता है। सफलता के सूत्र ढूँढ़ता है। लक्ष्य की दिशा में अग्रसर होने के लिए हर तरह की कोशिशें करता है। जब वह पीछे मुड़कर उपलब्धियों का मूल्यांकन करना चाहता है तो पता चलता है कि उसकी मनचाही योजनाएँ या तो मन में धरी रह गईं अथवा उनका क्रियान्वयन आधा अधूरा हो पाया। इससे इसे अपने पुरुषार्थ पर खीज भी आती है व आक्रोश भी। कारण ढूँढ़ पाने में वह सफल नहीं हो पाता।

असफलताजन्य खीज की प्रतिक्रियाएँ प्रायः दो अतिवादी स्वरूपों में अभिव्यक्त होती हैं। एक व्यक्ति अपने को नितान्त अयोग्य मानकर घोर निराशा में निमग्न हो जाता है एवं सारा दोष भाग्य, भगवान अथवा परिस्थितियों में मत्थे मढ़कर निश्चिंत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्तियों के जीवन में सफलता की सम्भावनाएँ क्रमशः धूमिल होती जाती हैं।

दूसरा वर्ग सफल व्यक्तियों का है। असफलता के कारणों की छानबीन करते समय इनका दृष्टिकोण सन्तुलित रहता है। अपनी गतिविधियों का पर्यवेक्षण निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह करने पर पता चलता है कि स्वयं के भीतर पल रहे अवांछनीय और अनुपयुक्त विचार ही असफलताओं का मूल कारण हैं।

आदतें क्रियात्मक नहीं मूलतः विचारात्मक होती हैं। अतः सुधार की प्रक्रिया बहिरंग के साथ अन्तरंग में भी चलनी चाहिए। चिन्तन और व्यवहार का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इसलिए सुधार-परिवर्तन के लिए दोनों मोर्चों पर समान रूप से तैनाती की आवश्यकता रहती है। इस उभयपक्षीय प्रयोजन की पूर्ति का सरल उपाय यह है कि विचारों को विचारों से ही काटा जाय। लब्धप्रतिष्ठ मनश्चिकित्सक सर नार्मन विसेंट पील के प्रयोग इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है—

अपने एक मरीज का हवाला देते हुए सर पील ने लिखा है कि उस व्यक्ति का बचपन भयंकर गरीबी में बीता था। किसी सहायक की छत्रछाया नहीं थी। उन दिनों हुए कटु अनुभवों के कारण वह अधिक से अधिक पैसा कमाने और मालदार बनने की ओर प्रेरित हुआ। समय बीता और उसकी गणना धन-कुबेरों की श्रेणी में होने लगी। परन्तु इसी अवधि में एक ऐसी लत लग गई जो लाख कोशिश करने पर भी उसका पिण्ड नहीं छोड़ रही थी। होता यह था कि बात-चीत के सिलसिले में दो चार ऐसी कटु बातें उसके मुँह से बरबस निकल पड़ती थीं जिन्हें सुनकर सामने वाला व्यक्ति भीतर ही भीतर तिलमिलाकर रह जाता। बाद में उसे अपने इस कृत्य पर काफी पछतावा होता। यह लाचारी उसके लिए कई बार अच्छी-खासी परेशानी खड़ी कर देती थी। वह जानता था कि यह आदत उस समय की दुःखद् स्मृतियों का परिणाम है जब निर्धनता के कारण उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी थीं। यह पता होने के बावजूद उसका बस नहीं चलता था कि इस आदत से कैसे छुटकारा पाये।

नार्मन पील ने सारा इतिहास गौर से सुनने के बाद पूछा—''यदि मैं कुछ परामर्श दूँ तो अमल में लाना पसन्द करेंगे।'' उसका स्वीकारात्मक उत्तर पाकर श्री पील ने सलाह दी कि वह तीन महीने तक अपनी आय का एक निश्चित अंश जरूरतमन्दों की सहायता पर खर्च किया करे। रोग का निदान बताने के बाद की प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—''यह सुनते ही उसकी कृपण वृत्ति सजग हो उठी और वह पूछ बैठा कि निश्चित अंश की क्या सीमा है! मैंने कहा—'दस प्रतिशत।' उसने दुबारा प्रश्न किया टैक्स देने के बाद या पहले? मैं जानता था कि पैसे के प्रति उसका लगाव कंजूसी की हद तक है। ऐसी हालत में उसके लिए न्यूनतम निर्धारण से प्रारम्भ करना उचित है। यह तथ्य है कि एक बार दान देने की प्रवृत्ति जहाँ उसमें जगी, वह रुकेगा नहीं क्योंकि दान की प्रवृत्ति के साथ आय बढ़ाने की प्रवृत्ति भी जुड़ी है। यह सब विचार करके मैंने उसको समूची आय का दस प्रतिशत निकालते रहने के लिए कहा। इतनी छोटी रकम खर्च करना उसके लिए हँसी-खेल जैसा काम था। अपनी समस्या का ऐसा सरल समाधान सुनकर उसकी बाँछें खिल उठीं और सहर्ष यह नियम अपनाने का संकल्प उसने ले लिया। वह छोटी-सी शुरूआत उसके जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गयी। उसने दान देना शुरू किया उसके फलस्वरूप दूसरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का दिल दुखाने वाली बातें कहते रहने की उसकी आदत बहुत कुछ जाती रही।''

प्रयत्न, पुरुषार्थ की आवश्यकता ऊर्ध्वमुखी प्रयासों के लिए होती है। ढलान की दिशा में सहज प्रवाह होने की बात सबको विदित है। यही कारण है कि जिन कुटेबों को नगण्य समझकर नजरन्दाज किया जाता है, दीर्घकाल तक अभ्यास में सम्मिलित रहने पर वे स्वभाव में मजबूती से जड़ें जमा लेती हैं। ऐसी स्थिति में उनको संघर्ष करके हटा पाना सम्भव नहीं। लड़ाई का दृष्टिकोण निषेधात्मक है। लड़ना ही हो तो बुरे विचारों से लड़ना चाहिए। विकृत दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाला अन्तर्द्वन्द्व और भी जटिल समस्याएँ खड़ी करता है। सत्प्रवृत्तियों और सद्विचारों को दैनन्दिन अभ्यास में शामिल करना इसके लिए अचूक उपाय सिद्ध हुआ है। जैसे-जैसे अच्छी आदतों की मात्रा बढ़ेगी, बेतुकी आदतों की तरफ रुझान स्वयंमेव कम होने लगेगा। आदतों पर विजय पाने का यह तरीका सर्वोत्तम है।

सफलता संसार में सबकी इष्ट है। परन्तु दुनिया जिनको असाधारण कर्तृत्व के लिए याद करती है, वे इस तरह कोई अलौकिक वरदान लेकर अवतरित नहीं हुए होते हैं। हेनरी एडवर्ड्स ने अपनी किताब में ऐसे कुण्ठाहीन लोगों की सफलता का रहस्य बताते हुए कहा है—''ये सच्चे हृदय से अपनी हानियाँ तलाश करते हैं। अपनी कमियों, कमजोरियों को ईमानदारी से स्वीकार कर लेना बहादुरों का काम है। जिस तरह चतुर किसान अपनी फसल की निराई करता है तथा खर-पतवारों को निर्ममतापूर्वक उखाड़ फेंकता है, उसी तरह ये अपने व्यक्तित्व में सद्गुणों की खेती करते हैं, असफलता से निराश नहीं होते। धैर्यपूर्वक प्रयत्नशील रहते हैं। रहस्य की बात तो यह है कि उनका परिष्कृत गुण, कर्म, स्वभाव सिफारिशी चिट्ठी की तरह हर जगह उनके लिए कामयाबी की पृष्ठभूमि तैयार कर देता है।''

मन पृथक् नहीं है शरीर से

मन क्या है? शरीर से यह क्यों अभिन्न है? इसकी यदि विवेचना करनी हो, तो छान्दोग्योपनिषद् के **'अन्नमयं हि सोम्य मनः'** (६/६/५) के स्वर में मिलाते हुए यही कहना पड़ेगा कि यदि एक ही उपादान से दो प्रकार की सृष्टियाँ हो रही हैं, तो उन दोनों में किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य है, भले ही आकार भेद के कारण यह तादात्म्य स्थापित न हो पा रहा हो, तो भी इतने से ही उसे अमान्य करने का कोई कारण नहीं। जल से भाप और बर्फ दोनों ही बनती हैं। दोनों के आकार और रूप में भारी अन्तर है। एक स्थूलता का प्रतिनिधित्व करती है, तो दूसरी अपने सूक्ष्म अस्तित्व का बोध कराती है। इतने पर भी दोनों में कोई भेद है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अनुकूल परिस्थिति मिलने पर वाष्प बर्फ बन सकती है और बर्फ भाप। शरीर और मन के सम्बन्ध में विज्ञानवादी विचारधारा भी अब ऐसी ही बनने लगी है और विज्ञानवेत्ता द्वैत से अद्वैत की वैदिक मान्यता की ओर लौटते प्रतीत हो रहे हैं। इस आधार पर वे मनोकायिक रोगों का निदान और उपचार ढूँढ़ पाने में सफल हुए हैं।

इस अभेदता को कुछ अन्य उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक पदार्थ और ऊर्जा के बारे में मान्यता थी कि वे दो पृथक् वस्तुएँ हैं। द्रव्य भी अनाशवान है और ऊर्जा भी अनश्वर है। दोनों नित्य हैं। ऊर्जा द्वारा पदार्थ संचालित होते हैं। इसके अतिरिक्त पदार्थ सत्ता पर ऊर्जा का कोई हस्तक्षेप नहीं।

सबसे पहले इस अवधारणा पर आइन्स्टीन के ऊर्जा सिद्धान्त ($E = mc^2$) ने आघात किया। उक्त सूत्र द्वारा उन्होंने यह सिद्धान्तः सिद्ध कर दिया कि शक्ति और द्रव्य परस्पर परिवर्तनीय हैं। इस प्रकार पदार्थ और ऊर्जा के द्वैतवाद से चलकर अब हम उनके अद्वैतवाद तक पहुँच गये हैं। इससे उत्साहित होकर आधुनिक मनोविज्ञान ने अब एक नई घोषणा की है कि द्रव्य और मन दो भिन्न पदार्थ नहीं हैं। उनके अनुसार यह एक ही सत्ता की दो अभिव्यक्तियाँ हैं। इस सम्बन्ध में अमरीका के राइस इन्स्टीट्यूट में महत्त्वपूर्ण शोधकार्य हुए हैं। उनने अपने अनुसंधान के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि मानस तत्त्व और भौतिक तत्त्व दो नहीं, एक हैं। विज्ञानवेत्ता मन और पदार्थ को पहले अलग मानते थे, पर हाल के अन्वेषणों ने अब उन्हें यह स्वीकारने के लिए बाध्य कर दिया है कि दोनों एक ही चेतना के दो रूप हैं। 'न्यू फ्रण्टियर्स ऑफ माइण्ड' नामक पुस्तक में विद्वान लेखक ने इस सम्बन्ध में यह तर्क प्रस्तुत किया है कि यदि ऐसी बात नहीं होती, तो मन का पदार्थ पर जो प्रभाव दिखाई पड़ता है, वैसा कुछ देखा-सुना नहीं जाता और पदार्थ सत्ता मन से सर्वथा अप्रभावित बनी रहती, पर व्यवहार में ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता है। मन में यदि कोई संकल्प बार-बार उठता है, तो वस्तु को वह इच्छानुरूप प्रभावित करने में सफल होता है। छुरी एवं चम्मचों को टेढ़ाकर देना अथवा तोड़ देना जैसे प्रदर्शन वस्तुतः इसी संकल्प बल के करिश्मे हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण समझाते हुए ग्रन्थकार ने मत व्यक्त किया है कि मन में जब भी कोई संकल्प

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठता है, तो वह यथावत् चेतना के समुद्र में संचारित हो जाता है और निर्दिष्ट वस्तु जहाँ कहीं भी होती है, उस तक वह निर्विघ्न पहुँच जाता है। चूँकि इस संसार के प्राणी और पदार्थ सब एक ही महत् चेतना के अंशधर हैं, इसलिए मन में उठे संकल्प का परिपालन पदार्थ चेतना आसानी से करने लगती है। जब पदार्थ चेतना पर संकल्प शक्ति क्रियान्वित होती है, तो फिर इच्छानुसार प्रभाव और परिवर्तन भी आरम्भ हो जाता है। इसकी पुष्टि के लिए उनने अनेक प्रयोग किये। उदाहरणार्थ, एक प्रयोग ताश खेलते लोगों के बीच किया। खेलने वालों में से एक व्यक्ति को यह निर्देश दिया गया कि वह अमुक पत्ते के अपने पास आने का बार-बार विचार करे। बाद में जब उसका प्रतिशत निकाला गया, तो प्रयोगकर्त्ता यह देखकर हैरान रह गये कि ताश का वह पत्ता सौ में से सत्तर बार उसके पास आया था। शेष तीस मौकों पर वह अन्य खिलाड़ियों के हाथ लगा। इसका अर्थ स्पष्ट था कि विचार का वस्तु पर प्रभाव पड़ता है।

यह सब प्रयोग हमें मन और पदार्थ के बीच की द्वैतता को मिटाकर अद्वैतता की ओर ले जा रहे हैं। पिछले दिनों शरीर और मन की अद्वैतता पर भी काफी अध्ययन, अनुसंधान हुए हैं । चिकित्साशास्त्री अब यह मानने लगे हैं कि बहुत से रोग मन से सम्बन्धित होते हैं। उनका कोई दृश्य भौतिक कारण न होने के बावजूद भी वे अपना अस्तित्व बनाये रहते हैं, क्योंकि वे मानसिक मूल के होते हैं। वे इसे स्वीकारने लगे हैं कि जब कभी मनःक्षेत्र में विप्लव अथवा संघर्ष पैदा होता है, तो शरीर पर उसका दुष्प्रभाव व्याधि के रूप में सामने आता है। उदरव्रण (पेप्टिक अल्सर), उच्च रक्तचाप आदि रोगों का अध्ययन कर चिकित्सकों ने इस बात का पता लगाया है कि वे सब मन से सम्बन्धित हैं। अनेक प्रकार की शारीरिक पीड़ाओं को, यहाँ तक कि दाँत और हड्डियों के दर्द तक को उन्होंने मन से सम्बन्धित पाया है। ऐसी स्थिति में उनका मानिसक इलाज ही वास्तविक रोगोपचार साबित हो सकता है, किन्तु मानसिक मूल वाले बीमारों के सम्बन्ध में यह कहना उचित न होगा कि वे मात्र काल्पनिक व्याधि के शिकार हैं। यदि किसी की पीड़ा मनः कायिक स्वरूप वाली है, तो यह मान लेना कि रोगी केवल काल्पनिक दर्द में जी रहा है, वास्तविक पीड़ा उसे हो ही नहीं रही है, गलत होगा। शरीरवेत्ताओं की इस सम्बन्ध में जो मान्यता है, वह यह है कि निषेधात्मक मानसिक वृत्तियों के कारण स्नायुसंस्थान और शरीर तंत्र विकारग्रस्त होने लगते हैं, जो अंग विशेष में, रोग के कारण बनते हैं, ठीक वैसे ही जैसे जीवाणुओं और विषाणुओं के कारण वे उत्पन्न हुए हों। व्याधि तो हर हालत में सत्य ही होती है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि शरीर और मन के बीच द्वैत नहीं, अद्वैत स्थिति है ।

तो क्या मनःशास्त्रियों का यह कहना उचित है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए मन को नीरोग रखना पड़ेगा? 'हाँ' वर्तमान अध्ययन इसी निष्कर्ष पर पहुँचाता है, किन्तु वास्तविक तथ्य को हम भूलते जा रहे हैं और उसकी अपेक्षा मूल की जगह पत्ते का उपचार कर रहे हैं। चिकित्सालयों की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है, पर इस बात की ओर तनिक ध्यान नहीं जाता कि काया की तरह मन स्वस्थ रहे। कायिक बीमारियों का उपचार हो, यह अच्छी बात है पर यह भी कोई कम तथ्यपूर्ण नहीं है कि कई रोगों की जड़ें मन में घुसी रहती हैं, अतः मन को भी सबल-सशक्त बनाने का उपाय किया जाय। यदि ऐसा नहीं हुआ और भौतिक कारणों उपचारों पर ही अधिकाधिक केन्द्रित रखा गया, तो फिर इस क्षेत्र में पश्चिमी देशों जैसी स्थिति पैदा होते देर न लगेगी। वहाँ जिस दर से मानसिक विकृतियाँ पैदा हुई हैं, उसी अनुपात में नये-नये कायिक रोग भी उत्पन्न हो रहे हैं, किन्तु पश्चिमी चिकित्सक उनका इलाज भौतिक मानकर ही करते रहे, फलतः बीमारियाँ अब नये रूप में नूतन, प्रकार से वहाँ प्रकट हो रही हैं। ऐसी व्याधियों को अंग्रेजी में 'कम्पलसिव ऑब्सेसिव डिसिजेज' कहते हैं।

भौतिकता के साथ-साथ मानसिक व्याधियाँ बढ़ती हैं । पश्चिमी देशों की सम्पन्नता को देखकर इसका अन्दाज आसानी से लगाया जा सकता है, साथ ही पहाड़ी अंचलों में रहने वाले वनवासियों अथवा अनपढ़ ग्रामीणों को देखकर इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि किस प्रकार धार्मिक मान्यताओं में जीने वाला व्यक्ति मन से स्वस्थ और शरीर से सबल होता है। अश्रद्धा, अविश्वास, आशंका, भय, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष जैसे अधार्मिक तत्वों की बढ़ोत्तरी प्रगतिशीलता के नाम पर व्यक्ति के अन्दर ज्यों-ज्यों होती जाती है, वैसे ही वैसे इस बात की संभावना बढ़ती जाती है कि वह मानसिक विकृति के करीब पहुँचता चला जा रहा है। इसी तथ्य की स्वीकारोक्ति प्रो. ब्राउन ने अपनी पुस्तक 'साइन्स एण्ड इण्डिविजुयेलिटी' में की है। वे लिखते हैं कि यद्यपि इसे वे वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं कह रहे हैं, फिर भी वह सत्य है कि जो लोग धार्मिक परम्पराओं के अन्दर जीते हैं, उनमें मानसिक आधियों की न्यूनता होती है। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि धर्मधारणा के अन्दर कोई ऐसा निवारक तत्त्व, कोई ऐसी स्वास्थ्यकारी शक्ति है, जिसके द्वारा मानस रोग कम हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं। उनका कहना है कि एक वैज्ञानिक के नाते वे बस इतना ही कह सकते हैं किन्तु यदि किसी को यह जानना हो कि धर्म किस प्रकार मन और फिर उसके द्वारा शरीर को प्रभावित करता है, तो धार्मिक लोगों को धर्म का अध्ययन और अनुसंधान करना पड़ेगा।

यही कारण है कि पाश्चात्य देशों की तुलना में भारत में अब भी मानसिक रोगियों की संख्या कम है। यह और बात है कि अपना देश भी अब यूरोपीय सभ्यता से अप्रभावित नहीं रहा, किन्तु उस प्रभाव के पीछे भी एक प्रच्छन्न धार्मिकता यहाँ के लोगों में अब भी देखी जा सकती है, कहने का तात्पर्य मात्र इतना है कि यहाँ के प्रगतिशीलों में भी धार्मिकता अब भी न्यूनाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर हो जाती है। जहाँ जिस अनुपात में यह होती है, उनका भाव और आस्था क्षेत्र उतना ही मजबूत होता है। इस कारण वे मनोविकारों के उतने ही कम शिकार होते हैं। मन स्वस्थ रहा, तो काया भी नीरोग बनी रहती है।

मानसिक रोगों का एक कारण मनोविज्ञानी आत्म-केन्द्रित होना बताते हैं। व्यक्ति जितना आत्मकेन्द्रित होगा, उतनी ही मानस रोग एवं शारीरिक रोग की संभावना उसमें बढ़ जायेगी। संभवतः इस तथ्य से हमारे प्राचीन ऋषि परिचित रहे होंगे। इसलिए **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** और **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** जैसे सिद्धान्त वाक्यों के पीछे उनका एक भाव व्यक्ति और समाज को आत्मकेन्द्रित होने से बचाना भी होगा, ताकि स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति और समाज की रचना की जा सके।

इस प्रकार मन कायिक रोगों की उत्पत्ति भी इसी बात को सिद्ध करती है कि देह और मन परस्पर अभिन्न हैं। इस बात को जितनी जल्दी समझा जा सकेगा, उतनी ही जल्दी रुग्ण मन के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों से बचा जा सकना और स्वस्थ रहना सम्भव हो सकेगा।

मनोभावों का स्वास्थ्य पर प्रभाव

मनुष्य शरीर की सारी गतिविधियों और क्रिया-कलापों का संचालन मस्तिष्क द्वारा होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी इच्छा, आकांक्षा, विचार, भावना और संकल्प मस्तिष्क से ही उठते हैं तथा उन्हें पूरा करने की योजना बनाने का कार्य भी उसी के जिम्मे आता है। मस्तिष्क शरीर का प्रशासक, नियंता, संचालक और निर्देशक है तो स्वाभाविक ही है कि उसकी स्थिति दशा का प्रभाव शरीर पर भी पड़े। प्रशासक यदि अयोग्य और अकुशल होगा तो व्यवस्था भी गड़बड़ायेगी ही। संचालक के हाथों हुई किसी भी गलती का प्रभाव उसके अधीन क्षेत्र पर भी पड़ता है। आधुनिक मनोविज्ञान इस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण खोजें कर चुका हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका है, जिनका प्रतिपादन प्राचीनकाल में महर्षियों ने किया था।

मनोभावों का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस दिशा में कई प्रयोग हुए हैं। पिछले दिनों अमेरिका के न्यूयार्क शहर में रहने वाला एक युवक एलेक्सी सेंट मार्टिन अपने एक मित्र द्वारा असावधानी से चल गई बन्दूक के कारण घायल हो गया। गोली पेट में लगी थी और पेट में दो इंच व्यास का छेद हो गया था। लगता था कि बचना मुश्किल है, फिर भी डॉ. विलियम बोमोर्ट नामक एक चिकित्सक ने उसे बचाने का भरसक प्रयास किया। डॉ. बोमोर्ट के प्रयासों से मार्टिन की प्राण रक्षा तो हो गई पर, पेट के भीतर वह सूराख बना रहा। उसके पेट की बाहरी और आंतरिक त्वचा तो जुड़ गयी, पर पेट के भीतरी अंगों में ऐसा विकार आ गया जिससे कि उसका खाया हुआ भोजन साफ दिखाई देता था।

डाक्टर बोमोर्ट ने मार्टिन की पर्याप्त सहायता और देखभाल की, उसे अपने साथ भी रखा ताकि वह भोजन की पाचन प्रक्रिया को उसके पेट में देखकर अध्ययन कर सके। डाक्टर बोमोर्ट ने मार्टिन पर कुल मिलाकर २८३ प्रयोगात्मक अध्ययन किये और उन प्रयोगों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में बताया गया है कि पेट के सब से अन्दर की पर्त लाल, गुलाबी मखमल सी दीखती है और वह श्लेष्मा से ढकी रहती है। ज्यों ही मुँह में भोजन रखा जाता है यह पर्त और भी अधिक सुर्ख गुलाबी रंग की हो जाती है और श्लेष्मा से एक तरल पदार्थ स्रवित होने लगता है, जो आमाशय में जमा हो जाता है। भोजन जब आमाशय में पहुँचता है, तो श्लेष्मा और सिकुड़ने लगती है। फलतः वहाँ अधिक तरल पदार्थ जमा होने लगता है।

यह तरल पदार्थ भोजन को अपने से लिपटाकर उसे गलाने लगता है। एक प्रयोग के दौरान मार्टिन को गुस्सा दिलाया गया। गुस्से की हालत में ही मार्टिन ने भोजन किया। उधर डॉ. बोमोर्ट परीक्षण करते रहे। उन्होंने देखा कि प्रयोग के दौरान रोगी मार्टिन को गुस्सा आने पर भोजन पचाने में अधिक समय लगा। डॉ. मोर्ट के इन निष्कर्षों की पुष्टि अन्य वैज्ञानिकों ने भी की है और बताया है कि उत्तेजित मनःस्थिति में किया गया भोजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। खासतौर से पाचन संस्थान पर तो उसकी तुरन्त ही प्रतिक्रिया होती है।

न केवल उत्तेजना वरन् निराशा, घृणा, उदासी, ईर्ष्या, द्वेष और तनावग्रस्त मनःस्थिति भी पाचन क्रिया को प्रभावित करती है। यदि ये मनोविकार देर तक टिके रहें, तो पेट के रोग यहाँ तक कि अल्सर भी हो सकते हैं। डॉ. जैक्सन का तो यहाँ तक कहना है कि पेट सम्बन्धी सभी रोग अस्त-व्यस्त मनः स्थिति के कारण होते हैं।

अल्सर के फोड़े प्रायः पक्वाशय (ड्यूओडेनम) में होते हैं, जो छोटी आँत का वह भाग है जिससे पेट की धुरी दूसरे सिरे से जुड़ी रहती है। तनावग्रस्त या निराश, उद्विग्न मनःस्थिति में पेट की लहरार सिकुड़न की गति बढ़ जाती है। फलतः पेट के भीतर विद्यमान खाई हुई वस्तुएँ तथा अन्य रस पक्वाशय में आ जाते हैं। पेट की भीतरी पर्त तो श्लेष्मा द्वारा सुरक्षित रहती है पर पक्वाशय में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होती। उत्तेजित और उद्विग्न रहने के कारण जब उपरोक्त प्रक्रिया बार-बार सम्पन्न होती है तो पक्वाशय की भीतरी पर्त कई स्थानों से छिल जाती है और वहाँ फोड़ा बन जाता है। अल्सर के फोड़े पुरुषों को प्रायः ३० से ४० की आयु के बीच होते हैं। ज्ञातव्य है जीवन का संघर्ष काल भी यही है। इसी वर्ग के लोग महत्त्वाकांक्षी होने के साथ साथ अहंमन्य भी होते हैं। अहंमन्यता के विपरीत कहीं कोई बात होती दीखी और सन्तुलन डगमगाया अथवा असन्तुलन स्वभाव का एक अंग बन गया तो अल्सर के अलावा और भी कई रोग इसी उम्र में आ घेरते हैं।

उदाहरण के लिए रक्तचाप और हृदय रोगों को ही लो। किसी भी उत्तेजनापूर्ण स्थिति में हृदय की धड़कन बढ़ जाना, साँस तेजी से चलने लगना, रक्त का दौरा तेजी से होने के कारण शरीर का गर्म हो जाना आदि बातें तो प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती हैं। यद्यपि ये सब व्यवस्थाएँ प्रकृति ने मनुष्य की रक्षा के लिए ही की हैं ताकि किसी संकट के समय शरीर के यह महत्त्वपूर्ण अंग पूरे शरीर की रक्षा करने में तत्परतापूर्वक सक्रिय हो जायें। परन्तु उत्तेजना जब व्याधि विकार की तरह बन जाती है, तो उसकी प्रतिक्रिया भी बार-बार शरीर के उन अंगों को उत्तेजित करती है और परिणामतः स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

उतावली और हड़बड़ी में रहने की प्रवृत्ति प्रायः इन रोगों की जननी होती है। कामकाज निबटाने में उतावली से काम लेना और आराम करते समय भी कामकाज की चिन्ता इन रोगों का स्वागत करती है। कुछ वर्षों पूर्व आयरलैण्ड में जन्मे ५७५ जुड़वाँ बच्चों पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया। बाद में दो जुड़वाँ भाइयों में से एक को अमेरिका के बोस्टन शहर में ले जाया गया। जो वहाँ कुछ महीनों तक रहा। दोनों भाइयों को एक समान भोजन दिया गया, एक समान काम दिया गया लेकिन बाद में पाया कि बोस्टन में रहने वाला भाई डबलिन (आयरलैंड) में रहने वाले भाई की अपेक्षा हृदय रोग के दौरे की सम्भावना से ज्यादा ग्रस्त है। यह उस स्थिति में जबकि डबलिन वाला भाई अधिक घण्टे तक काम करता था और अपने दूसरे भाई से ज्यादा मोटा भी था। अन्तर केवल इतना ही था बोस्टन वाला भाई अपना काम करते समय उतावली और हड़बड़ाट बरतता था जबकि डबलिन वाला भाई अधिक काम करता था।

यों हृदय का दौरा अकस्मात् ही पड़ता है। परन्तु यह रोग कोई अचानक पैदा न हो जाने वाली बीमारी नहीं है। प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. जे. बर्नार्ड के अनुसार यह बीमारी लम्बे समय तक यहाँ तक कि कभी-कभी २० वर्ष तक पनपती और बढ़ती रहती है। अनुमान लगाया गया है कि आधुनिक सभ्यता की यांत्रिक दौड़ जैसे-जैसे तीव्र होती जायेगी, वैसे-वैसे रक्तचाप और हृदय रोगों का आक्रमण बढ़ता जायेगा।

इन रोगों से बचाव के लिए डॉ. जे. बर्नार्ड ने कहा है, आप चाहे रोगी हों या न हों, रोगी हों तो स्वस्थ होने के लिए अथवा रोगी न हों तो इस रोग से बचने के लिए आवश्यक है कि आधुनिक सभ्यता द्वारा प्रदत्त जीवन-दर्शन बदला जाय। बहुत हबड़-दबड़, भाग-दौड़, व्यग्रता, उतावली और तीव्र मानसिक संवेगों से बचा जाय। जैसा जो कुछ जीवन में है, उसे स्वीकार किया जाय और सुनियोजित, शान्त ढंग से उन्नति के लिए प्रयास किये जायें। परिवर्तन या उन्नति के लिए शारीरिक अथवा मानसिक बोझ उठाना हर दृष्टि से हानिकारक ही है।

पाचन संस्थान, रक्तचाप और हृदय रोग ही नहीं सिरदर्द जैसा साधारण रोग भी प्रायः मानसिक असन्तुलन के कारण ही होता है। डाक्टरों का कहना है कि सिरदर्द की शिकायत करने वाले ९० प्रतिशत रोगी केवल मानसिक तनाव के कारण सिरदर्द से पीड़ित होते हैं। एक अध्ययन में रोगियों से कहा गया कि जब भी उन्हें सिरदर्द हो तब वे उस स्थिति को नोट करें, जो कि सिरदर्द होते समय थी। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कहा गया कि सभी रोगियों को उसी स्थिति में सिरदर्द उत्पन्न हुआ जिसमें कि उन्होंने दुःख अनुभव किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुःखोत्पादक भावनाओं के कारण गर्दन और सिर की माँसपेशियों में ऐंठन होती है और यह ऐंठन ही सिरदर्द के रूप में अनुभव होती है। इस अध्ययन के दौरान खास तौर से यह नोट किया गया कि ऐंठन का कारण कोई शारीरिक या मानसिक श्रम नहीं था वरन् उद्वेग अथवा दुःख की अनुभूति के परिमाण से ही ऐंठन होती थी। शरीर शास्त्रियों के अनुसार सिरदर्द का मस्तिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं होता। मस्तिष्क के चारों ओर खून ले जाने वाली शिराएँ ही सिरदर्द को जन्म देती हैं। तनाव अथवा दुःखोत्पादन भावनाओं के समय यह नलिकायें फैल जाती हैं। इस फैलाव को कभी-कभी कनपटी की त्वचा पर हाथ रखकर भी अनुभव किया जा सकता है। माँसपेशी की ऐंठन से होने वाला सिरदर्द इन नलियों के ज्यादा सिकुड़ जाने से होता है।

माइग्रेन भी सिरदर्द का एक प्रकार है। यह सिर के एक तरह ही होता है। कई बार इसका आक्रमण होने पर जी मिचलाने, उल्टी होने तथा आँखों से ठीक-ठीक न दिखाई देने की शिकायत भी होने लगती है। डाक्टरों के अनुसार माइग्रेन का हमला उन लोगों पर ज्यादा होता है जो स्वयं ही स्थिति आस-पास की परिस्थितियों से बहुत अधिक असंतुष्ट या लगभग क्षुब्ध रहते हैं। स्वाभाविक ही ऐसी स्थिति में मानसिक तनाव उत्पन्न होता है और रोग हमला कर बैठता है।

चिन्ता, तनाव, निराशा, हताशा, उद्विग्नता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावनाएँ मन में क्षोभ और शरीर में रोग उत्पन्न करती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्रकृति ने शरीर में ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि स्वाभाविक क्रम से उत्पन्न होने वाले विकारों का परिशोधन अपने आप ही होता रहे, परन्तु जब भावनाओं द्वारा भी विकार उत्पन्न होने लगते हैं तो शरीर की सुरक्षा व्यवस्था कमजोर पड़ जाती है और उसकी प्रतिक्रिया रोगों के रूप में उत्पन्न होने लगती है। इनसे बचना चाहिए और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हों भी, जबकि वास्तव में भावना क्षोभ उत्पन्न हो, तो उनका समाधान सहज स्वीकार भाव से करना चाहिए।

भावनात्मक सन्तुलन न केवल जीवन की एक अनमोल निधि है, वरन् वह जीवन जीने की एक कला भी है। इसके द्वारा जीवन हरा-भरा, पल्लवित, पुष्पित और सुखी-शांत बनाया जा सकता है। परन्तु इस भावना क्षोभ का उपचार क्या है ? डाक्टर जार्ज स्टीवेसंन के अनुसार, जब भी भावना क्षोभ या तनाव उत्पन्न होता है, तो उसमें डूबने, झुलसने की बजाय उसे पहचानने की कोशिश करनी चाहिए कि उसका क्या कारण है। वह कारण कुछ भी हो सकता है, जो भी कारण हो उसका उपचार करने की बात सोचना चाहिए न कि उससे उत्तेजित होना चाहिए।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि समस्याओं से मुक्त कोई नहीं रह सकता है। अनादिकाल से प्रतिदिन कई-कई लोग ऐसी समस्याओं से घिर जाते हैं कि कोई समाधान नहीं सूझता और आत्मघात कर लेने का मन होता है परन्तु वे समस्याएँ जब निपट जाती हैं, तो फिर सब कुछ सामान्य हो जाता है, इसलिए परिस्थितियों के शिकार व्यक्ति भी धैर्य द्वारा अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रह सकते हैं। अकारण भावना-क्षोभ पालने और रोगों को निमन्त्रण देने में कोई समझदारी ही नहीं है।

वास्तविक और अवास्तविक

हित साधन

'गति' शब्द का अर्थ है—हलचल। पदार्थ अपने ढंग की हलचलें करते हैं और प्राणी अपने ढंग की। पदार्थ की छोटी इकाई परमाणु परिवार और बड़ी इकाई ब्रह्माण्ड के भीतरी और बाहरी क्षेत्रों में अनवरत गतिशीलता पाई जाती है। क्या जड़, क्या चेतन इस संसार का कोई भी वर्ग सर्वथा निष्क्रिय नहीं है, यह दूसरी बात है कि उस क्रियाशीलता की दौड़ दूसरे पदार्थों की तुलना में मन्द हो या तीव्र। चेतन प्राणियों की तुलना में वनस्पतियों की हलचल सीमित और स्वल्प है किन्तु मिट्टी, पत्थर, खनिज आदि में जो गतिशीलता दृष्टिगोचर होती है वह वनस्पतियों की तुलना में भी न्यून है। मिट्टी से पत्थर, पत्थर से लोहे में प्रत्यक्ष गतिशीलता कम पाई जाती है किन्तु जो सर्वथा निष्क्रिय दिखाई पड़ते हैं, उनकी सूक्ष्म संरचना पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि जिन परमाणुओं से मिलकर वस्तुओं का निर्माण हुआ है, वे अपने क्षेत्र में पूरी तरह सक्रिय हैं। ग्रह-नक्षत्रों समेत यह समूचा अन्तरिक्षीय परिवार धुरी या कक्षा में और अन्ततः किसी बड़े केन्द्र की प्रदक्षिणा में दौड़ लगाता हुआ देखा जा सकता है। इसलिए तत्त्वतः यहाँ 'अगति' जैसी कोई बात है नहीं।

इतने पर भी शब्द कोष में अगति, अवगति, दुर्गति एवं प्रगति का उल्लेख है तथा व्यवहार में भी प्रयुक्त होते हैं। पर इनकी कोई स्थिर विवेचना नहीं हो सकती। इन्हें सापेक्ष ही माना जा सकता है और किसी से तुलना करके ही यह बताया जा सकता है कि उपरोक्त शब्द कहीं लागू हुए या नहीं। एक बच्चे ने शरीर विकास की दृष्टि से प्रगति की, लेकिन बौद्धिक क्षेत्र में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह दूसरे बच्चों से पिछड़ा रहा तो फिर उसकी स्थिति पर प्रगति शब्द कहाँ लागू हुआ। ऐसे तो चोर के डाकू बन जाने पर भी उसने प्रगति की है, ऐसा कहा जा सकता है फिर भी सज्जनता के क्षेत्र में वह पिछड़ता ही चला गया है। अगति, अवगति एवं दुर्गति के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। भले और बुरे वर्ग अपने-अपने क्षेत्रों में उपलब्ध होने वाली सफलताओं को प्रगति कहते हैं। जबकि वह उन्नति दूसरे वर्ग के लोगों की दृष्टि में पतन, पराभव के रूप में गिनी जाती है। गायिका ने नृत्य सीख लिया और अधिक ग्राहक पटाने लगी तो उस समुदाय में उसकी यह सफलता सराही जायेगी। पर कुलीनता की मर्यादाओं को महत्त्व देने वाले अवगति, दुर्गति के रूप में भर्त्सना ही कर सकते हैं। ऐसी दशा में किसे प्रगतिशील, किसे असफल अधःपतित कहा जाय? इस संदर्भ में सहज ही असमंजस सामने आ खड़ा होता है।

सही निर्णय पर पहुँचने के लिए तुलनात्मक विवेचना से निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता पर 'प्रगति' को मान्यता देने कुछ कसौटियाँ निर्धारित करनी होंगी। जीवधारी के भीतर जिस अनुगमन की उत्कंठा पाई जाती है, जिस प्रेरणा से उसकी बुद्धि और काया प्रयत्नरत रहती है, उस आकांक्षा का प्रवाह किस दिशा में चल पड़ा? यह देखना होगा और यह जाँचना होगा कि वह प्रवाह साथ में बहने वाले के लिए श्रेयस्कर हुआ या नहीं। लोक-हित की दृष्टि से उसकी उपयोगिता मानी गई या नहीं? यदि प्रयत्नों की दिशाधारा सही है तो उसे 'प्रगति' शब्द से सम्मानित करने में हर्ज नहीं। इसके विपरीत यदि ऐसी सफलताएँ अर्जित की गई हैं जो पहले की अपेक्षा उन्नति करने के रूप में तो दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु उनकी परिणति में दुष्परिणाम ही सामने आने वाले हैं तो समझना चाहिए कि तात्कालिक सफलता प्रकारान्तर से असफलता की ही पर्यायवाचक मानी जायेगी।

प्रतिभा की अभिवृद्धि उत्साहवर्धक तो है पर देखना यह भी होगा कि उत्पन्न हुआ पराक्रम एवं कौशल किस दिशा में नियोजित हुआ। जिस दिशा में प्रगति हुई, वह प्रकृति अनुशासन मानवी नीति, नियम एवं सामाजिक सहयोग, सन्तुलन की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होती है या नहीं। अन्यथा प्रतिभाशाली तो उद्दण्ड, उच्छृंखल, ठग और अनाचारी आतंकवादियों को भी कहा जाने लगेगा। तर्क यह दिया जा सकता है कि सामान्य जनों के स्वभाव एवं क्रिया-कलापों की तुलना में वे अपनी अधिक समर्थता एवं तत्परता प्रकट करते हैं जिसके लिए उन्हें भी उन्नतिशील कहा जाना चाहिए।

इस संदर्भ में विवेकयुक्त निर्धारण यही है कि प्रगति की दिशा विश्व मानव के नियत नीतिमान के अनुरूप रही या नहीं? इस बात की जाँच, पड़ताल करके ही किसी नतीजे पर पहुँचा जाय। कई तोड़-फोड़ करने वाले ही अपने कुकृत्यों से उत्पन्न आतंक को भी अपनी विशिष्टता में गिनते, शेखी बघारते एवं मूँछें ऐंठते देखे गये हैं। जिन्हें इस अनाचार के लाभों में हिस्सा मिलता है वे 'कसाई के कूकर' ऐसे आतंकवाद की प्रशंसा भी कर सकते हैं और जिस-तिस तर्क के सहारे उसका औचित्य बताने में भी बुद्धि कौशल के सहारे तीर-तुक्का बिठा सकते हैं। इतने पर भी अवांछनीय कृत्यों में निरत लोगों का मूँछें ऐंठना और चमचागीरी करने वालों से वाहवाही सुनना इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि उस विशेषता या सफलता को प्रगतिशीलता की सराहनीय संज्ञा दी जाय या नहीं।

मानवी मूल्यांकनों का निर्धारण इसी शाश्वत सिद्धान्त के आधार पर होता रहा है कि उसने निजी जीवन में नीतिमत्ता के अनुशासन को कितनी सच्चाई एवं कड़ाई के साथ पाला एवं सम्पादित समर्थता का कितनी उदारता के साथ, कितने उच्चस्तरीय कार्यों के लिए नियोजित किया। सर्वजनीन विवेक ने ऐसे ही लोगों की ऐसे ही प्रयासों को प्रशंसा की है। उन्हें उपयोगी माना और कृतज्ञता भरा सम्मान प्रदान किया है। यह कसौटी हर दृष्टि से उपयोगी भी है। इस मार्ग का अवलम्बन करने वाले कई दृष्टि से नफे में रहते हैं।

नीति और अनीति की विवेचना करने वाली, औचित्य और अनौचित्य के बीच अन्तर करने वाली एक ऐसी कभी न बुझने वाली ज्योति हर मनुष्य के अन्तराल में तभी से प्रज्ज्वलित है जबसे उसे मानवी कलेवर में प्रवेश करने का अवसर मिला। अति आरम्भ काल में तो प्रसुप्त, मूर्च्छित अनगह भी हो सकती है किन्तु जैसे-जैसे परिपक्वता आती है उसी अनुपात से यह विवेक भी जाग्रत होता है कि उचित और अनुचित की विभाजन रेखा कहाँ है? इसे परखतन्त्र की अन्तरात्मा कहते हैं। यह अनौचित्य अपनाने पर अन्तर्द्वन्द्व खड़े करती है। स्वार्थवश अनुचित काम करने के आवेश में किया कुछ भी जाता रहे। अन्तराल औचित्य का पक्ष समर्थन करने और अवांछनीय को हेय ठहराने का झण्डा हर हालत में बुलंद किये ही रहेगा। दबा देने पर उसकी आवाज धीमी तो हो सकती है किन्तु सर्वथा बन्द किसी भी दशा में नहीं हो सकती। अनीति अपनाने पर अन्तर्द्वन्द हर हालत में बना ही रहेगा और उस मार्ग पर चलने वाले का आन्तरिक असन्तोष भले ही पश्चात्ताप एवं परित्याग के रूप में प्रकट न हो पर इतना तो निश्चित है कि चैन से भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठने नहीं देगा। आत्मधिक्कार की छोटी-बड़ी चिन्गारी अवसर मिलते ही फूटती रहेगी।

इस स्तर के अन्तर्द्वन्द्व व्यक्तित्व की छवि उभारने एवं बिगाड़ने में कितनी बड़ी भूमिका निभाते हैं, इसे सामान्य जन तो नहीं जानते पर मनःशास्त्र के विशेषज्ञ एक स्वर से कहते पाये जाते हैं कि अन्तर्जगत में दो व्यक्तित्वों का विकसित होना वैसा तो अनुपयुक्त है जैसा एक म्यान में दो तलवारों का घुस पड़ना। एक मुख में दो जीभों का होना। शरीर में विजातीय द्रव्य घुस पड़ते या भूत-पलीत के आवेश आते हैं तो स्थिति कितनी विचित्र हो जाती है। मस्तिष्क की स्वाभाविक सम्पदा विवेक को छीनकर जब नशा उस संस्थान पर अपना अड्डा जमाता है तो दोनों की खींच-तान में सोचने से लेकर करने तक की समस्त प्रक्रिया बेतरह लड़खड़ाने लगती है और नशेबाज की स्थिति उपहासास्पद एवं दयनीय बन जाती है।

एक मर्द की दो औरतें—एक औरत के दो मर्द होने पर आये दिन कैसी खींच-तान चलती है इसे सभी जानते हैं। एक नौकर के दो मालिक होने पर भी उसकी नाक में दम आती है। दो मस्तिष्क, दो दिल, दो मुख, दो जननेन्द्रिय वाले व्यक्ति की स्थिति कैसी विचित्र होगी, इसकी कल्पना करने भर से बड़ा अजीब लगता है। एक जंगल में दो शेर—एक राज्य में दो राजा कहाँ रह पाते हैं। एक खेत को चरने दो साँड जा पहुँचे तो उन्हें मल्ल युद्ध करते देर न लगेगी। मुहल्ले के अधिकारी कुत्ते दूसरे मुहल्ले वालों को कहाँ फटकने देते हैं। रक्त के प्रहरी कण तक विजातीयों को सहन नहीं करते और अवांछनीय प्रवेश को मार भगाने के लिए अच्छा-खासा महाभारत खड़ा करते हैं। सूजन, व्रण, दर्द, ज्वर आदि विग्रहों की अनुभूति इसी नियम के अन्तर्गत होती है कि शरीर की स्वस्थ चेतना विजातीय द्रव्य को सहन न करे और उसे खदेड़ने के लिए जान हथेली पर रखकर संघर्ष करे।

ठीक ऐसा ही तब होता है जब अन्तरात्मा की मूल प्रकृति उत्कृष्टता के विपरीत चिन्तन या आचरण अपनाये जाते हैं। नीति की पक्षधर यह चिन्गारी अपना अस्तित्व पूर्णतया किसी भी स्थिति में खोती नहीं। उपेक्षित, तिरस्कृत, दुर्बल होने पर भी उसका अनीति विरोधी संघर्ष चलता ही रहता है। भले ही वह परिस्थिति के अनुरूप कितना ही धीमा या धूमिल क्यों न हो।

अन्तर्द्वन्द्वों के परिणाम कितने घातक होते हैं इसकी जानकारी कुछ समय पहले तक लोगों को उतनी अच्छी तरह नहीं थी जितनी कि इन दिनों अचेतन मनःसंस्थान के विशेषज्ञ विश्लेषणकर्त्ताओं ने प्रस्तुत की है। आधुनिकतम मनोविज्ञान के निष्कर्ष इस तथ्य का विश्वासपूर्वक उद्घाटन करते हैं कि अन्तर्द्वन्द्वों से भयानक अवरोध मनुष्य की समग्र प्रगति में और दूसरा नहीं हो सकता। भीतरी लड़ाई में चेतना की इतनी शक्ति खप जाती है कि वास्तविक प्रगति की सही रूपरेखा बनाना और उसके लिए समग्र सरंजाम जुटाना बन ही नहीं पड़ता। अस्तु, अन्तर्द्वन्द्वों से ग्रसित व्यक्ति मात्र दुष्टता और भ्रष्टता के क्षेत्रों में ही अपनी उछल-कूद मचाते रह सकते हैं। ऐसी मानसिक प्रखरता वे सम्पादित कर ही नहीं सकते जिसके सहारे उन लाभों को प्राप्त कर सकना शक्य हो सके जो उच्चस्तरीय प्रगति के लिए आवश्यक है।

रोग निवारण हेतु मनोबल का उपयोग

रोग पहले मन में प्रवेश करते हैं, पीछे शरीर में उभरते हैं। शरीर पर चेतना का अधिकार है। चेतना में विकृतियाँ उत्पन्न होने पर शरीर भी विकारग्रस्त होता है। जिस आहार-विहार के अनाचार की निन्दा की गई है और रोगों का निमित्त कारण बताया गया है, वह वस्तुतः मानसिक दोष ही है। असंयम मन में उभरता है। उसका प्रयोग भर इन्द्रियों द्वारा होता है। मन पर कोई तीव्र आघात लगे तो बड़ी से बड़ी लालसा भी तत्काल समाप्त होगी। मन लगने तक ही इन्द्रियों में उत्साह रहता है। मन के शान्त होने पर अनाचार बन पड़े, ऐसा हो ही नहीं सकता।

शरीर पर मन का अधिकार है। मस्तिष्क जैसे ही निद्राग्रस्त होता है वैसे ही शरीर मृतक तुल्य निःचेष्ट हो जाता है। शोक, हानि विग्रह जैसे समाचार सुनते ही चित्त बेचैन हो जाता है। भूख, प्यास, निद्रा सभी गायब हो जाती हैं। क्रोध की अवस्था में शरीर की उतनी ही क्षति होती है जितनी तेज बुखार में। मन लगने पर काम अच्छा और जल्दी होता है किन्तु यदि अन्यमनस्कता छाई रहे तो बेगार भुगतने की तरह किया हुआ काम अधूरा और घटिया ही रहेगा। चेहरे की तेजस्विता और मुर्दनी बहुत कुछ मन की स्थिति पर अवलम्बित रहती है। मात्र शरीर रचना ही जन्मजात होती है। आकृति पर आमतौर से प्रकृति ही छाई रहती है। उसी को देखकर लोग किसी के व्यक्तित्व का स्तर परखते हैं।

मनोविकार रोगों के जन्मदाता हैं। अनेक प्रकार के असंयमों का सृजन भी विकृत मन ही करता है। इसके अतिरिक्त क्रोध, आवेश, निराशा, भय, आशंका, चिन्ता आदि का भी ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि अच्छा खाते-पीते और सुविधाएँ रहते हुए भी शरीर क्षीण होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है। इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि हँसोड़, उत्साही और निर्द्वन्द्व मनुष्य घटिया खान-पान रहते हुए भी हट्टे-कट्टे रहते हैं और नीरोग देखे जाते हैं।

चिकित्सा उपचार में भी श्रद्धा विश्वास का भारी योगदान रहता है। जिस चिकित्सक पर, जिस औषधि पर गहरा विश्वास हो, उसका प्रभाव विलक्षण होता है और रोग-मुक्ति का सुयोग जल्दी ही बन जाता है। किन्तु यदि अविश्वास हो, सन्देह या आशंका रहे तो न चिकित्सक का उपयुक्त प्रभाव पड़ेगा और न उनकी दी हुई दवा कारगर सिद्ध होगी।

देखा गया है कि ''शंका डायन—मनसा भूत'' वाली उक्ति अनेक बार सही सिद्ध होती है। भूत-पलीत हो या न हो पर उन पर विश्वास करने वाले तो अवश्य ही हावी रहते हैं। अन्धेरे में दौड़ता हुआ चूहा भी भूत लगता है और विश्वासी मरघट के समीप ही खेतों में काम करते रहते हैं, झोपड़ी बनाकर बाल-बच्चों समेत रहते हैं। उन्हें खटका तक नहीं होता।

ग्रह-नक्षत्रों की दशा विपरीत होने की बात जिनके मन में जम जाती है उनका मन काम में हाथ डालते हुए भी डरता है और असमंजस की स्थिति में काम प्रायः उल्टा ही पड़ता है। इससे देव प्रतिकूल होने की बात का और भी अधिक विश्वास जम जाता है। ऐसे व्यक्तित्वों का भविष्य अन्धकारमय ही बनता जाता है। सामने आये हुए सुयोग का भी वे लाभ नहीं उठा पाते।

छोटे रोग को बड़ा मान लेने पर वह विपत्ति बन जाता है। शरीर में भरा हुआ विजातीय द्रव्य जितनी हानि पहुँचाता है, उससे अनेक गुनी हानि मन की कुशंका में उत्पन्न होती है। जो जल्दी मरने की बात सोचते रहते हैं उसका सोचना ही आधी आयु को खा जाता है। जितने व्यक्ति मौत से मरते हैं, उससे अधिक लोग मौत के भय से मर जाते हैं।

आरोग्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। जिन्हें अपने दीर्घ जीवन पर विश्वास है, उनका दुर्बल शरीर भी लम्बी आयु तक साथ देता रहता है। बड़े रोग को छोटा गिनने की लापरवाही तो नहीं करनी चाहिए किन्तु ऐसा भी नहीं होना चाहिए। किन्तु रोग होते ही घबरा जाना और अपने तथा घरवालों के हाथ-पैर फुला देना। प्रकृति के अनुरूप आहार-विहार को नये सिरे से ढाल लिया जाय तो शरीर की जीवनी शक्ति में ही इतनी क्षमता विद्यमान है कि वह बिगाड़ को सुधार दे। प्रकृति ने शरीर दिया है तो उसके साथ इतनी क्षमता भी दी है कि टूट-फूट की मरम्मत भी करती रहे। रोग वस्तुतः प्रकृति की भीतरी क्षमता के अनुरूप उभरते और समाप्त होते रहते हैं। चिकित्सा का प्रधान कार्य रोगी का मनोबल बनाये रहना है। जितना काम दवा करती है उससे कहीं अधिक रोगी का धैर्य, संयम और विश्वास काम करता है। इन्हें गँवा बैठने पर तो रोगी बेमौत मरने की तैयारी करता है।

मानसिक चिकित्सा का एक स्वर्णिम सूत्र यह है कि जिस अवयव में कष्ट हो उस पर ध्यान एकाग्र किया जाय और भावना की जाय कि इस स्थान की जीवनी-शक्ति रोग द्रव्य को मार भगाने में तत्परतापूर्वक जुट रही है और उसका उपयोगी प्रभाव भी हो रहा है। इसमें उस स्थान पर उसी भावना से हाथ फिराते रहने का भी अच्छा प्रभाव होता है।

प्राण चिकित्सा के उपचारक हाथ फिराकर या उँगलियों के छोरों का स्पर्श कराकर रोगों की चिकित्सा करते हैं। चुम्बक को उस स्थान पर फिराकर भी चिकित्सा की जाती है। रंगीन बोतलों में पानी भरकर सूर्य की धूप में रखने और उस पानी के उपयोग से रोग निवारण करने तथा होम्योपैथी चिकित्सा में अधिकांश लाभ रोगी के मन पर विश्वास जमा देने के कारण मिलता है। यह प्रभाव उपचार प्रक्रिया से किसी प्रकार नहीं होता। सन्त, महात्मा अपनी धूनी की भभूत देकर अनेकों का रोग निवारण करते देखे गये हैं। इसमें उनकी प्राणशक्ति का जितना योगदान होता है उतना ही रोगी के विश्वास करने का भी होता है।

अपने विश्वास की शक्ति को दूसरों के माध्यम बनाकर प्रयुक्त करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि हम बाल क्रीड़ा न करें। यथार्थता को समझें। अपने विश्वास की क्षमता की गरिमा समझें और बिना किसी का अहसान लिए स्वयं अपने लिए प्रयुक्त करें। यह सभी प्रकारान्तर से ''स्व संकेत'' (आटो सजेशन) है। इन्हें जब सीधे अपने लिए या दूसरों के लिए प्रयुक्त करके उसका प्रत्यक्ष लाभ देखा जा सकता है तो तथ्य से अनजान रहकर पराश्रित क्यों बने रहें? अपनी सम्पन्नता और विभूति की गौरव-गरिमा स्वयं ही क्यों न अनुभव करें। शक्ति अपनी है तो उसका श्रेय किसी और को क्यों लूटने दें।

बीमारियों के सम्बन्ध में अपनी अत्यधिक क्षमता-संकल्प शक्ति की प्रखरता का उपयोग हमें स्वयं करना चाहिए। पीड़ित अंग पर अपनी भावनाओं को केन्द्रित करना चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि अन्तराल में सन्निहित जीवनी-शक्ति अपनी मानसिक शक्ति के समन्वय से दूनी सामर्थ्यवान बन रही है और वैसा ही प्रयुक्त करने में सफल हो रही है जितना कि मनोबल के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिल जाने से औषधि उपचार दूना काम करती है। यह एक प्रकार की ''बायोफीड बैक'' प्रक्रिया है।

रोग में चिकित्सा की मनाही नहीं है। यदि उपचार करना ही हो तो प्राकृतिक चिकित्सा या वनौषधि उपचार का आश्रय लेना चाहिए। उसमें मलों के निष्कासन, विश्राम और शिथिलीकरण जैसे मनोवैज्ञानिक उपचारों तथा जीवनी-शक्ति सम्वर्धन का समन्वय है। उसमें एक रोग को मारने के लिए दूसरा रोग उत्पन्न करने वाली हानिकारक प्रक्रिया से बचाव होता है। ऐलोपैथी उपचार में तो रोग मारण के नाम पर जीवनी-शक्ति को ही मारा जाता है। चिकित्सा चलते रहने के साथ भी यदि मानसिक क्षमता संकल्प बल का भी प्रयोग किया जाता रहे तो इससे अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में और अधिक जल्दी लाभ मिलने की आशा है।

आत्म-हत्या पलायन ही नहीं प्रतिशोध भी

परिस्थितियों से हताशा, गरीबी से निराशा और बीमारियों के कारण टूटी हुई जीवन-आशा; आत्महत्या की कापुरुषता के लिए उकसाती है। इन प्रयासों में स्पष्ट रूप से मनोबल का अभाव ही कारण है परन्तु घरेलू झगड़ों तथा भाई-भतीजे के विवादों में व्यक्ति जब आत्महत्या का प्रयास करे तो यह नहीं कहा जा सकता कि उस प्रयास का कारण केवल मनोबल का अभाव ही है।

वस्तुत: आत्महत्या के कई कारणों में से एक प्रधान और प्रमुख कारण प्रतिशोध की भावना भी है। आत्महत्या करने वाला कई व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से आहत होकर यह विवश कदम उठाता है। लेकिन आत्महत्या करने से पूर्व वह कई अर्थों में इस प्रकार टूट भी चुका होता है जो उसे प्रतिशोध के लिए भी प्रेरित करता है। कुछ वर्षों पूर्व बरेली के एक युवक की आत्महत्या का मामला प्रकाश में आया था। यह युवक हट्टा-कट्टा और स्वस्थ होने के साथ-साथ उद्दण्ड तथा उपद्रवी भी था। परिवार अच्छी स्थिति का था अत: किसी प्रकार का दायित्व भी उसके कन्धों पर नहीं आया था जो उसे गम्भीर बना सके। अपने साथी संगियों को सोहबत में रहकर वह शराब भी पीता, मारपीट भी करने लगा और बाहर भी रहने लगा। माँ जरा भावुक स्वभाव की थी और अपने बेटे की इन करतूतों से परेशान रहती थीं। अत: वह रोक-टोक भी करतीं इस रोक-टोक को लेकर उच्छृंखल बेटे और ममत्वमयी माँ में झगड़ा हुआ करता। पिता तो अपने बेटे की प्रवृत्तियों से इतने अधिक क्षुब्ध थे कि वे उससे बात भी नहीं करते थे।

जब उक्त युवक की प्रवृत्तियाँ काफी अटकने लगीं तो चचेरे भाई ने उसे स्नेह और ममत्व दिया। इस प्रकार आरम्भ हुई उसके सुधार की प्रक्रिया। भाई उसे अपने साथ रखने लगा, पास बिठाता और सम्मानपूर्ण तथा स्नेहाभिभूत व्यवहार करता। भाई ने उस युवक को यह अनुभव करा दिया कि उसे अपनी दिशाओं को बदलना चाहिए। आर्थिक सहायता भी की तथा कुछ महीने के बाद ही उक्त युवक टाइप सीखकर टाइपरायटर लेकर कचहरी में बैठने लगा। अच्छी आमदनी भी होने लगी और बुरी आदतें भी धीरे-धीरे छूटती गईं।

परन्तु माता-पिता ने तो उसे बिगड़ैल और आवारा ही समझ रखा था। वे उससे पहले की तरह ही पेश आते। घर में रोज झगड़ा होता। आखिर एक दिन उसने अपने आपको कमरे में बन्द कर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा ली। अस्पताल में जब उसे बचाने के प्रयास किये गये तो माँ-बाप छाती पीटकर रो रहे थे और युवक की आँखों में सन्तोष झलक रहा था। शायद इसलिए कि जिस विष को वह अब तक चुपचाप पीता रहा—उसका प्रतिशोध ले लिया है।

आदमी जब खुलकर प्रतिशोध नहीं ले पाता तो इस प्रकार प्रतिशोध का यह उपाय आत्मघाती है और निर्वीय भी, परन्तु यह एक तथ्य है कि दुश्मन से लड़ना आसान है और अपनों से लड़ना बहुत ही मुश्किल। अब अपनों से तो सीधा स्पष्ट प्रतिशोध लेने का कोई मार्ग नहीं सूझता क्योंकि अभ्यासवश पड़े संस्कार तथा परिवेश मजबूर करते हैं और इसी कारण क्रुद्ध होने के बावजूद भी व्यक्ति अपनों से, अपने परिवार से टक्कर लेने में असहाय होता है।

और दूसरी ओर अपने प्रति हो रहे दुर्व्यवहारों को भी सहन करते रहने की क्षमता नहीं है। वह घुटन बढ़ती रहती है और बाहर के प्रतिबन्ध भी उसी अनुपात से कसते जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिशोध और निस्तार का यही उपाय सूझता है कि आत्महत्या कर ली जाय। 'परिवार वालों को मेरा अभाव निश्चित रूप से खलेगा ही और जमाना भी उन्हें बुरा कहेगा'—अपने जीवन का अर्थ ही जब घुटन और कुण्ठाओं के अन्धकार में खो जाता है तो यह भाव उदय होते हैं और इन्हीं भावों की परिणति देखी जाती है-आत्महत्या के रूप में।

पारिवारिक कलह के कारण की गई आत्महत्याओं के पीछे जीवन से निराशा का कारण जितना ज्वलन्त है उतनी ही ज्वलन्त है प्रतिशोध की भावना। इसी कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखा जाता है कि महिलाएँ जो अपने पति, सास, ससुर अथवा परिवार के अन्य लोगों का विरोध नहीं कर पातीं, वे आत्महत्या की राह पर चल पड़ती हैं। उनकी मृत्यु से उनके तो जीवन की ही क्षति होगी, परन्तु परिवार के अन्य लोगों का समूचा जीवन ही नारकीय बन जाता है। लोग उन्हें लम्बे समय तक अपने अत्याचार और उत्पीड़न के लिए लांछित करते रहेंगे।

गुजरात—जहाँ आधुनिकता और पुरातनता द्वन्द्वात्मक स्थिति में है, परिवार के बड़े बुजुर्ग अपनी परम्पराओं और मर्यादाओं को टूटते नहीं देखना चाहते तथा युवक-युवतियाँ आधुनिकता के ज्वार में बहे जा रहे हैं। इस द्वन्द्व का सर्वाधिक शिकार शायद महिलाओं को ही होना पड़ा है। १९७१ के आँकड़ों के अनुसार गुजरात में प्रतिदिन तीन अर्थात् हर आठ घण्टे में एक महिला आत्महत्या कर लेती है। १९६९ में जहाँ ६५० महिलाओं ने आत्महत्या की वहाँ १९७० से ७०० ने और १९७१ में तो यह संख्या औसतन प्रतिदिन तीन तक पहुँच गई।

यद्यपि जीवन संघर्ष और बाह्य परिस्थितियों का सामान प्राय: पुरुष वर्ग को ही करना पड़ता है, इस कारण जीवन से निराश हो पलायन कर जाने की प्रवृत्ति के कारण आत्महत्याओं की संख्या में पुरुष ही अधिक है, जबकि महिलाओं को बाह्य-संघर्षों का प्राय: कोई सामना नहीं करना पड़ता, वे पारिवारिक कलह के कारण आत्महत्या करती हैं। इसमें पारिवारिक यन्त्रणाओं से मुक्ति के साथ परिवार के लोगों के प्रतिशोध की भावना भी मुख्य रूप से काम करती है।

महानगरों में जहाँ आधुनिक सभ्यता का नशा युवा पीढ़ी में आया है वही स्वच्छन्द जीवन और उन्मुक्त मैत्री की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। लड़के-लड़कियाँ इसी कारण एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं तथा मिलते हैं। इन सम्बन्धों में से सभी की परिणति विवाह के रूप में नहीं होती परन्तु थोड़े बहुत पूर्व परिचित और सम्बद्ध युवक-युवतियाँ दाम्पत्य सूत्रों में बँधते हैं, अपने सँजोये सपनों को टूटते देखते हैं। विवाह से पूर्व प्रेमी और प्रेमिका भावुकताजन्य सपनों के संसार में विचरण करते हैं और विवाह के बाद जीवन के कठोर यथार्थों से सामना करना पड़ता है तो खीझ ही उठते हैं।

प्राय: देखा गया है कि युवक-युवतियाँ जो स्वच्छन्द सम्बन्ध बना लेते हैं और एक-दूसरे को जीवन साथी के रूप में देखना चाहते हैं, अपने परिवार के अन्य सदस्यों को बाधा रूप में खड़े देखते हैं। कारण चाहे जो भी हों, परिवार के अन्य सदस्य स्वेच्छया जीवनसाथी के चुनाव को प्राय: मान्य नहीं ही करते हैं। युवक-युवतियाँ चूँकि निर्बाह और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए परिवार पर ही निर्भर रहते हैं इसलिए प्रत्यक्ष रूप से उसकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते। फिर भी अन्त तक उनके प्रयास आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए होते हैं और जब उनकी आकांक्षाएँ निश्चित रूप से अपूर्ण रह जाती हैं, प्रेमी या प्रेमिका का विवाह अन्य कहीं हो जाता है तो परिवार के प्रति प्रतिशोध आत्म-हनन का उग्र रूप धारण कर लेता है।

दूसरे, लड़की जब बहू बनकर किसी के घर जाती है तो वहाँ एक सर्वथा नया ही संसार देखने को मिलता है। माँ की प्रतिमूर्ति सास के रूप में तो दिखाई देती है और सास के लिए बहू बेटी के समान ही है। लेकिन दोनों एक-दूसरे को भिन्न रूप में ही ग्रहण करते हैं। बहुत से रूपों में व्यवहार क्षेत्र में इसकी प्रतिक्रिया देखने में आती है और एक-दूसरे की अपेक्षाएँ पूर्ण न होने के कारण उत्पन्न होता है—गृह-कलह।

परिवार में एक शीतयुद्ध का-सा वातावरण बन जाता है। दहेज, पिता-माता और बहू के परिवार, रिश्तेदारों से लेकर कुलरीति तथा खानदानी परम्पराओं के बखान तक वाक्युद्ध में तीखे तीर चलते हैं। पति न तो पत्नी की ओर बोल सकता है और न माता-पिता का पक्ष ले सकता है, प्राय: तटस्थ ही रहने में अपना भला समझता है और स्त्रियों में घुटन का कुहासा घिरने लगता है। इन परिस्थितियों में, पारिवारिक परिवेश में स्त्रियाँ मात्र प्रतिशोध लेने के लिए कोई और उपाय न देखकर आत्महत्या कर लेती हैं, जिसके दोहरे लाभ दीखते हैं। पहला तो यह कि प्रतिशोध की भावना भी पूरी हो जाती है और दूसरा यह कि उन परिस्थितियों, यन्त्रणाओं से भी छुटकारा मिल जाता है, प्रतिशोध की भावना का एक प्रमाण यह भी है कि आत्महत्या करने वाली बहुओं में से ७० प्रतिशत युवतियाँ अपने ससुराल में ही आत्महत्या कर लेती हैं। निस्सन्देह इसका कारण यह है कि सास जहाँ बहू को दूसरे घर से आई लड़की और मुफ्त की नौकरानी समझती है और बहू भी सास को माँ के स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं कर पाती और यह स्थिति बहू के लिए आत्म-हननकारी परिस्थितियाँ ही उत्पन्न करती है।

महिलाओं की तरह विषम पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन से परेशान होकर पुरुष भी आत्महत्या करते हैं। पुरुष भावुक किस्म के कम होते हैं, फिर भी कलह की एक सीमा होती है। जिसका अतिक्रमण पुरुष की सहन शक्ति से बाहर की बात हो जाती है। बाहर के संघर्षों और द्वन्द्वों से हारा-थका आदमी घर में अपनी पत्नी की मुस्कान और बच्चों की तोतली बातों में डूबकर कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय के लिए मानसिक उद्वेगों से बाहर आ जाना चाहता है। जीवन, समय और श्रम जिन लोगों के लिए लग रहा है उनसे यह थोड़ी-सी आशा की जाय तो अनुचित नहीं होगा। लेकिन यह आशा जब पूरी नहीं होती, उल्टे सामने आती हैं फरमाइशों और शिकायतों की लम्बी फेहरिस्त तो उद्वेगपूर्ण वातावरण का निर्मित होना स्वाभाविक ही है।

पत्नी की फरमाइशों और शिकायतों के कारण तो छोटे-छोटे हैं परन्तु इनके साथ अन्य ऐसी गुत्थियाँ और समस्याएँ भी है, जिन्हें मनोवैज्ञानिक भी अपने वस के बाहर समझते हैं। पति-पत्नी के तनावपूर्ण सम्बन्ध और बाहरी संघर्ष दोनों मिलकर आदमी को तोड़ डालते हैं। कहा जा सकता है कि बाहरी संघर्ष ज्यों के त्यों रहते और पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुरतापूर्ण रहे होते तो कई पुरुष आत्महत्या का कदम उठाने के लिए अपने आपको विवश अनुभव नहीं करते।

आँकड़े बताते हैं कि अविवाहित पुरुषों की अपेक्षा विवाहित पुरुष ही अधिक आत्महत्याएँ करते हैं। इन आत्म-हत्याओं के पीछे असन्तुष्ट विषम दाम्पत्य-जीवन का कारण अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। बाहरी संघर्षों से निराशा और आन्तरिक पारिवारिक सम्बन्धों की विषमता व तज्जनित प्रतिशोध का भाव व्यक्ति को आत्मघात की ओर धकेल दे तो इसे असम्भावित घटना नहीं कहना चाहिए।

पारिवारिक कलह और दाम्पत्य-जीवन की असफलता व्यक्ति के जीवन को एक ओर जहाँ नीरस बना देती है वहीं दूसरी ओर ऐसे भयंकर आत्मघाती प्रतिशोध की आग भी जला देती है जिसकी ज्वालायें आत्महन्ता के जीवन का अन्त तो करती हीं हैं, उससे उड़ता धुआँ और फैलती दुर्गन्ध आस-पास के लोगों की आँखें भी जला देती है और साँस लेना भी मुश्किल कर देती है।

इस कदम के लिए मनोबल का अभाव तो उत्तरदायी है ही, जीवन और जगत के प्रति व्यावहारिक तथा स्वस्थ दृष्टिकोण की असमता भी है। आवश्यकता है ऐसे प्रयासों की जो व्यक्ति के मन में जीने का उत्साह, परिस्थितियों से संघर्ष का साहस और प्रतिशोध के साथ प्रेम का सम्मिश्रण करा दे। यह सब जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण के विकास से ही सम्भव हो सकता है।

आधुनिकता के अभिशाप

इन दिनों प्राय: हर स्तर का व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों से घिरा रहता है जिससे उनका मन:संस्थान खिन्न, उद्विग्न रहने लगे। तनाव का आक्रमण हर किसी पर छाया दीखता है। मन मस्तिष्क पर तनावग्रस्तता छाई रहे तो उसकी परिणति समूची काया के गतितंत्र को अस्त-व्यस्त कर देगी और विरासत में अनेकों रोग, पाप, अपराध जैसे प्रतिफलों को दे जायेगी।

यों तो इन शताब्दियों में साधन-सुविधाओं में भारी अभिवृद्धि हुई है। शिक्षा और सम्पन्नता में भी बढ़ोत्तरी हुई है। फिर क्या कारण है कि इतना सब कुछ होते भी हँसता-हँसाता जीवनक्रम मनुष्य के हाथ से छूटता जा रहा है। शान्ति और सन्तोष, प्रसन्नता और निश्चिन्तता मात्र कहने सुनने की बातें रह गई हैं। गंभीरतापूर्वक कारणों की तलाश करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि अब मनुष्य मानसिक दृष्टि से अधिक दुर्बल होता चला जा रहा है। आदर्शों का परित्याग करने, मानवी मर्यादाओं का उल्लंघन करने के उपरान्त उद्विग्नता, अनिश्चितता और एकाकीपन में बढ़ोत्तरी होना स्वाभाविक है। व्यक्तिगत दृष्टिकोण, स्वभाव एवं जीवन-यापन का क्रम भी ऐसा बन गया है जो इस विपत्ति को बढ़ाने में कड़ा कारण बनता है। इसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया बढ़ती हुई उद्विग्नता-तनावग्रस्तता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से खोखला होने और बीमारियों के चंगुल में फँसने का इसे प्रमुख कारण माना जा सकता है।

मनश्चिकित्सकों का मत है कि मानसिक असन्तुलन ही समस्त आदि-व्याधियों का प्रमुख कारण है। इस क्षेत्र में की गई नवीनतम खोजों ने इस तथ्य की पुष्टि कर दी है कि आवेश, चिन्ता, भय, ईर्ष्या, निराशा की मन:स्थिति ऐसी उत्तेजना उत्पन्न करती है जिसके कारण तनाव रहने लगे। क्रोधावेश और कामोत्तेजना जैसे विकार भी शरीर और मन पर दूषित एवं स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। प्रसिद्ध मनोविज्ञानी डॉ. किन्से ने इन दोनों आवेग आवेशों को एक ही श्रेणी में रखा है। अपने अनुसंधान निष्कर्ष में उन्होंने बताया है कि इससे शरीर और मन पर प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ता ही है, चिन्तन क्षेत्र भी बुरी तरह लड़खड़ा जाता है। फलत: ज्ञानेन्द्रियों की ग्रहण क्षमता को भारी आघात पहुँचता है और व्यक्ति असामान्य गतिविधियाँ अपनाने लगता है। इन आवेगों के प्रभाव से आँखों की पुतली फैलकर बड़ी हो जाती हैं। श्वाँस-प्रश्वाँस और हृदय गति बढ़ जाती है। साथ ही रक्त का दबाव भी ऊँचा हो जाता है। आमाशय एवं आँतों की सक्रियता में कमी आ जाती है। रक्त में एड्रीनलीन हारमोन के बढ़ जाने तथा ऐच्छिक माँसपेशियों में तीव्रता आ जाने से व्यक्ति गुस्से में काँपने लगता है। कामोत्तेजना में भी यही सब कुछ होता है। तनाव के निमित्त कारण यही मनोविकार हैं जिनसे शरीर और मन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

की प्राकृत अवस्था चरमरा जाती है और वह व्याधि ग्रस्त रहने लगता है। निद्रा से भी उसे विश्राम नहीं मिलता। अशान्त मन स्वप्न में भी बड़बड़ाता रहता है।

मूर्धन्य मनोविज्ञानी डॉ. रोजर्स ने तनाव, दबाव और मनोविकारों के लिए दुराव, छिपाव और मनोग्रंथियों को जिम्मेदार ठहराया है। जब तक दोष-दुर्गुण, पाप-अपराध जीवन में किसी विश्वसनीय व्यक्ति के समक्ष प्रकट नहीं किये जाते अथवा उनका प्रायश्चित्त नहीं हो जाता, तब तक चित्त में बेचैनी, मन में अप्रसन्नता, खिन्नता, व्यग्रता उदासी छायी रहती है। ऐसे ही लोगों को अनेकों शारीरिक मानसिक रोग सनक, वहम, उन्माद, अवसाद आदि घेरे रहते हैं। यदि जीवन में ईमानदारी, नैतिकता जैसे सद्गुण सम्मिलित कर लिये जाते हैं तो उक्त विकारों से और तद्जन्य व्याधियों से सहज ही छुटकारा मिल सकता है। मनुष्य का मन भी तभी हल्का और उमंग से भरा पूरा रह सकता है। ऐसे ही व्यक्तियों को हँसती-हँसाती, खिलती-खिलाती मस्ती भरी जिन्दगी जीते देखा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति अन्यों की अपेक्षा अधिक स्फूर्तिवान और क्रियाशील बने रहते हैं। इन्हें बुढ़ापा भी घेर ले तब भी उनमें बालकों जैसा उत्साह, उमंग और स्फूर्ति बनी रहती है।

मनोविकारों से ग्रसित मनुष्य अपने को गलाते-घुलाते हैं तथा दूसरों के लिए भी सिरदर्द बने रहते हैं। चिन्ता, भय, निराशा, निरुत्साह जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ हर समय बेचैन बनाये रहती हैं और यही आन्तरिक क्षमताएँ नष्ट-भ्रष्टकर मनुष्य को दयनीय बना देती हैं। कई बार ऐसे व्यक्तियों में क्रोध, क्रूरता जैसे दोष अपना अड्डा बना लेते हैं तथा ईर्ष्या, कुढ़न, जलन जैसी बुराइयाँ भी परिलक्षित होने लगती हैं।

ईर्ष्या और डाह, घृणा और द्वेष, उत्तेजना और आवेश को बढ़ावा देते हैं। इन्हीं के कारण जीवन में मनोमालिन्य बढ़ते और विरोध पैदा होते हैं। मनुष्य टूटा-सा, हारा-सा, उदास, खिन्न रहने लग जाता है। इनके लिए सुख-शान्ति सपने की सी मृगतृष्णा हो जाती है।

आवेश, आवेग, उत्तेजना और आक्रोश मनुष्य की चिन्तन प्रणाली को बुरी तरह गड़बड़ा देते हैं। प्रत्यक्ष न सही छिपा आक्रोश दुर्भावना, डाह, निन्दा, चुगली जैसी दुरभि सन्धियों के रूप में प्रकट होता है। ऐसे जाल-जंजाल में उलझे व्यक्ति की मन:स्थिति अधिकाधिक विपन्न होती चली जाती है और आन्तरिक अशान्ति की प्रतिक्रिया मनोविकारों के रूप में शारीरिक रोगों, कष्टों, क्लेशों के रूप में फूट पड़ती है। मन की उद्विग्नता और अशान्ति मनुष्य की नैसर्गिक क्षमताओं को भी नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। इतना ही नहीं इससे भावना और विचारणा का क्षेत्र भी ऊसर बंजर मरुस्थल जैसा बन जाता है। हृदय तो असह्य आघात झेलता ही हैं।

'वर्ल्ड हैल्थ आर्गनाइजेशन' के अनुसार प्रमुख समृद्ध देशों में आधी मृत्युएँ हृदय रोग से होने लगी हैं। इस अभिवृद्धि में साधनों की कमी या परिस्थितियो की प्रतिकूलता उतना बड़ा कारण नहीं है जितना कि मनुष्य का खिन्न-उद्विग्न रहना। तनाव, खीज और उदासी आदमी को तोड़कर रख देती है और वह कभी भी हृदय रोग जैसी विपत्ति में फँस सकता है।

सैनफ्रान्सिस्को के जाने-माने हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. फ्रीडमैन तथा रोजमैन ने सैकड़ों महत्त्वाकांक्षी, प्रतिस्पर्धी, असंयमी तथा इसके विपरीत नैतिक, संयमशील, व्रती, नियमित दिनचर्या और आहार-व्यवहार वाले दोनों प्रकृति के लोगों का गहन अध्ययन किया है और पाया है कि महत्त्वाकांक्षी, असंयमी, अनैतिक और प्रतिस्पर्धी व्यक्ति अधिक तनावग्रस्त रहते हैं। फलत: हृदय रोग की पकड़ में भी वही सबसे अग्रणी पाये जाते हैं। अन्यान्य हृदय रोग विशेषज्ञों का भी यही मत है कि मनोभाव दबाने से तनाव पैदा होता है जिससे एड्रीलीन ग्रंथियों से हारमोन्स अधिक स्रवित होने लगता है, जिसके कारण रक्त धमनिकाएँ सिकुड़ जाती हैं और हृदय तक रक्त पहुँचने में कमी आने लगती है। रक्त की पर्याप्त मात्रा हृदय तक न पहुँचने से पीड़ा होने लगती है। एक और तथ्य स्पष्ट होता है कि यही रोग स्त्रियों में कम पुरुषों को अधिक होता है।

सुप्रसिद्ध अमेरिकी हृदय रोग विशेषज्ञ प्रयोग, परीक्षण के उपरान्त हृदय रोग का स्थायी निदान और समाधान बताते हैं कि हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को सहृदयता, बरतनी चाहिए और संयम निभाना चाहिए। उतावली और हड़बड़ाहट से असन्तुलन और व्यग्रता बढ़ेगी और अस्थिरता तथा मतिभ्रम से न कुछ करते बनेगा वरन् उल्टे तनाव, अपच, अनिद्रा जैसे स्थायी रोग शरीर को दबोच लेंगे।

डॉ. इरविन भी आन्तरिक शान्ति और आत्म-विश्वास को तनाव, दबाव और हृदय रोग की रामबाण और औषधि मानते हैं। इन गुणों को चिरस्थायी पूँजी बनाने के लिए जीवन में परोपकार और परमार्थ जैसे कृत्य करते रहने की वे सलाह देते हैं।

प्रख्यात मनोरोग चिकित्सक डॉ. स्टेकल के अनुसार मनुष्य का स्वास्थ्य और सन्तुलन उसके आहार-व्यवहार पर कम, मानसिक स्तर पर अधिक निर्भर रहता है। रोगियों में से अधिकांश की व्यथा मन की गहराई में अपनी जड़ें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जमाकर बैठ जाती है और दवा-दारू की भरमार होने पर भी टलने का नाम नहीं लेती। इसके विपरीत मनोबल सम्पन्न विपरीत परिस्थितियों के दबाव को सहन करते हुए भी बलिष्ठ बने रहते हैं। रुग्णता रहने पर भी उस स्तर के लिए अपने उत्साह और साहस में तनिक भी कमी नहीं पड़ने देते। ऐसे लोग न केवल आशाजनक सफलताएँ प्राप्त करते हैं वरन् अपनी विशिष्टताओं के कारण समुदाय का नेतृत्व भी करते हैं।

अत: व्यक्ति को चाहिए कि अपने आस-पास अनुकूलताएँ तलाश करे और प्रिय पात्र, प्रिय पदार्थ, प्रिय दृश्यों का अवलोकन कर चिन्तन और दृष्टि को विधेयात्मक बनाये रखे। सदैव मुस्कान बिखेरने और आत्मीयता बाँटने के बदले में प्यार, सम्मान मिलता है। छोटे-छोटे बच्चों की उछल-कूद, भोलापन और तोतली वार्ता में सम्मिलित रहकर पार्क, उद्यानों, नदी-सरोवरों का भ्रमण करके भी मन को प्रसन्न रखा जा सकता है। अपनी आन्तरिक स्थिति और चारों ओर का वातावरण यदि अपने अनुकूल नहीं है तब तक सहज और सरल जिन्दगी नहीं जी जा सकती। आन्तरिक शान्ति से ही मन को प्रसन्न रखा जा सकता है और अनेकों मनोरोगों से बचा जा सकता है। सज्जनता, शिष्टता एवं आदर्शवादिता का समुचित मात्रा में अवलम्बन ही वह प्रमुख आधार है जो मनुष्य की मानसिक उद्विग्नता, तनावग्रस्तता एवं मनो-शारीरिक रोगों का समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

अंतरंग को परखें, बहिरंग से प्रभावित न हों

पैमाने गलत हों, मूल्यांकन की कसौटियाँ विकृत हों तो अन्याय स्वभाव बन जाता है। आज समाज में अन्याय, अनीति तथा भ्रष्टाचार की कुटिल व्यूह रचना दिखाई पड़ती है, उसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उन गलत मापदण्डों पर भी है जिसके आधार पर मनुष्यों को तोला-नापा जा रहा है। जो उनके व्यक्तित्व के मूल्यांकन की कसौटी बने हुए हैं।

लोगों ने देखा कि कितनी विशाल कोठी है। सोने की तरह दमक रही है। खिड़की, दरवाजे और रोशनदान रंगीन काँच से जड़े हुए हैं। रेशमी पर्दे झिलमिला रहे हैं। मूनलाइट बल्ब जल रहे हैं। स्टीरियो डेक से गायन-वादन के स्वर गूँज रहे हैं। आँखें चकाचौंध हो गईं, कान लालायित हो उठे, मन कह उठा साक्षात् स्वर्ग का निवास है। बड़ा भाग्यवान है इसका मालिक! कितना बड़ा आदमी होगा? लाखों, करोड़ों होंगे इसके पास। अनायास श्रद्धा जागी और उस अनजान धनवान की ओर झुक गई। उसका बड़े आदमी के रूप में मूल्यांकन हो गया। वह चर्चा और प्रतिष्ठा का पात्र बन गया और कोई अवसर आने पर पूजा, प्रतिष्ठा के रूप में उसका मूल्य व्यक्त कर दिया जाता है।

धन प्रतिष्ठा का विषय रहा है। इसलिए कि यह परिश्रम एवं पुरुषार्थ का साक्षी होता था। प्राचीन समय में जब धन को प्रतिष्ठा के विषयों में स्थान दिया गया था, लोग यह कल्पना तक भी नहीं कर सकते थे कि इसका अर्जन-उपार्जन अनीति के मार्ग से भी किया जा सकता है। अनुचित तथा अनीति पर पैसे और पैसे वाले से लोग ऐसे डरते और घृणा किया करते थे जैसे विषैले सर्प से। कोई किसी का अन्न खाने, दान या सहायता लेने में हजार प्रकार से सोच-विचार किया करते थे। उसी की सेवा अथवा सहायता स्वीकार की जाती थी जिसकी कमाई के विषय में यह विश्वास रहता था कि प्रत्यक्ष तो क्या परोक्ष रूप में भी इसका पैसा अन्याय अथवा अनीति से दूषित नहीं हुआ है। यदि इस प्रकार का संदेह भी होता जाता था तो समाज का बच्चा-बच्चा लक्षाधिपति होने पर भी उस धनवान को नीची नजर से देखा करता था। जिससे उसकी धनाढ्यता ही उसके लिए काल-फाँस की तरह दु:खदायिनी हो जाती थी।

समाज द्वारा इस कठोर मूल्यांकन से अनुशासित तब के धनवान अपने व्यापार एवं व्यवसाय में पराकाष्ठा तक पवित्र एवं सत्यपरायण रहकर विशुद्ध परिश्रम एवं पुरुषार्थ से उस स्थिति तक पहुँचकर प्रतिष्ठा के पात्र बनते थे। साथ ही यह विशुद्धता भी तब तक मान्यता नहीं पाती थी जब तक उसका पवित्र धन पवित्र एवं पुनीत कामों में व्यय नहीं होता था। इस प्रकार आय-व्यय दोनों की समान पवित्रता से तुलकर ही कोई धनवान धन के आधार पर उसी प्रकार समाज में मान्यता एवं श्रद्धा के भाजन बन पाते थे जैसे जनसेवा के अन्य कार्य करके कोई सत्पुरुष।

पहले जहाँ धन की मात्रा का कोई मूल्य नहीं था, मूल्य था उसके आय-व्यय की रीति-नीति का, वहाँ आज आय-व्यय की रीति-नीति का तो कोई मूल्य रहा नहीं। धन की मात्रा को ही श्रेष्ठत्व का मापदण्ड मान लिया गया है। स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है, इसलिए उसका प्रभाव एवं परिणाम भी उल्टा हो गया है।

लोगों ने कोठी, कार, एयर कण्डीशन, टी. वी, वी. सी. आर., आदि हास-विलास और आमोद-प्रमोद की चहल-पहल देखी नहीं कि बड़ा आदमी मान लिया और मान-सम्मान देना शुरू कर दिया। मान-सम्मान जैसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुमूल्य चीज और श्रद्धा जैसी दुर्लभ वस्तु जो कि त्याग, तपस्या, साधना, सेवा, श्रम और पुरुषार्थ के आधार पर इतनी सस्ती और आसानी से मिल सकती है तब क्या किसी ने भाँग खाई है कि वह प्रतिष्ठापूर्ण जीवन जीने के लिए संयम तथा साधना करता फिरे। सेवा और त्याग का प्रमाण देता घूमे। क्यों न किसी प्रकार से धन बटोर कर उसे प्राप्त किया जाये? जनता द्वारा धन के प्रभाव में आकर दी जाने वाली इस सस्ती सामाजिक प्रतिष्ठा ने लोकप्रियता के प्यासे लोगों को अंध आर्थिकता में डुबो दिया है।

यही नहीं कि लोग किसी का धन वैभव देखकर ही प्रभावित हो जाते और उसे प्रतिष्ठापूर्ण दृष्टि से देखने लगते हों, फिर चाहे उसका धन उनके अथवा समाज के किसी हित में आता हो या न आता हो। प्रतिष्ठा का स्तर इतना गिर गया है, सम्मान इतना सस्ता हो गया है कि जन सामान्य धन के संचय को ही नहीं अपव्यय तक को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। नाच-रंग में डूबा रहना, शराबखोरी और फैशन- परस्ती में लगा रहना, ब्याह-शादियों में धूम-धड़ाका करते रहना, बड़ी-बड़ी दावतों और शहर में पैसा पानी की तरह बहाना तक लोगों के लिए श्रद्धास्पद बन जाता है। लोग उसे उदार, बड़ा आदमी, शाह खर्च कहकर सम्मान करते और रास्ता देते हैं। जनता की इस सस्ती श्रद्धा और अस्तरीय मापदंड ने भी लोगों की अंध आर्थिकता बढ़ाने में बहुत कुछ योग दिया है।

हर विचारशील व्यक्ति का नैतिक कर्तव्य है कि वह किसी के वैभव विलास से प्रभावित होकर उसका मूल्यांकन करने से पहले यह अवश्य देख ले कि इस सम्पत्ति का आधार नीतिपूर्ण रहा है या नहीं? उसे उसके साधन, उपायों तथा युक्तियों की पवित्रता की खोज कर लेना आवश्यक है जिससे कि गलत कामों के त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन का अपराध न हो जाये।

जब यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि अमुक व्यक्ति छल-कपट, छीना-झपटी, चोर बाजारी, मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार को आधार बनाकर कोठी पर कोठी बनाये जा रहा हैं, बैंक बैलेंस कारोबार बढ़ाता जा रहा है तब क्या उसे अधिकार है कि वह हमारी प्रशंसा अथवा सम्मान की भावना को पाये और क्या हमें ही अधिकार है हम उसे कुछ दें? यदि हम दोनों में से कोई भी ऐसा करता है तो अनाधिकार चेष्टा करता है, समाज में अंध अर्थवाद को बढ़ावा देकर भ्रष्टाचार फैलाने में सहयोग करता है जो कि सामाजिक अपराध एवं आध्यात्मिक पाप है।

आज यदि लोग धनाढ्यता का मूल्यांकन करना छोड़कर साधनों और उसके उपायों पर ध्यान रखने लगें तो समाज में पैसे के लिए फैला हुआ भ्रष्टाचार बहुत कुछ कम हो सकता है। अनुचित साधनों के कारण यदि धनिकों का मूल्यांकन कम हो जाये, उनका वह अन्याय उपार्जित वैभव घृणा एवं तिरस्कार का प्रसंग बन जाये तो निश्चय ही लोग आवश्यकता से अधिक धनवान बनने की लिप्सा छोड़कर सम्मान-रक्षा के लिए कमाई के उचित एवं उपयुक्त उपाय अपनाने के लिए विवश हो जायें।

आर्थिक क्षेत्र की ही तरह धार्मिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जनता के मूल्यांकन की कसौटी खोटी हो गई है। जिसे भी रँगे कपड़े पहने, जटा रखाये, चन्दन लगाये और भस्म रमाये देख लिया उसी को महात्मा, सन्त अथवा साधु समझ लिया और पूजा प्रसाद चढ़ाने लगे। सेवा करने और वरदान की आशा लगाने लगे। जिसको भी धार्मिक शब्दावली में वाचलता करते सुन लिया। विद्वान, दार्शनिक-तत्त्ववेत्ता मान लिया। जिसे हाथ उठाये, पैर गड़ाए शरीर तपाते पानी में खड़े सूर्य से आँख मिलाये देख लिया उसे ही सिद्ध, चमत्कारी, मुक्त, बीतराग, गुणातीत आदि न जाने क्या-क्या समझकर पूजा-प्रतिष्ठा करने लगे।

जनता की इस सस्ती श्रद्धा ने आध्यात्मिक क्षेत्र में रँगे स्यारों की बाढ़ बुला दी है। जब ढोंग, आडंबर तथा बहुरूपियापन करके तपस्वियों तथा सिद्धों जैसी पूजा पाई जा सकती है, स्थान पर बैठे-बैठे पुजापा प्राप्त किया जा सकता है तब क्या जरूरत है कि त्याग-तपस्या का असिधारा के समान तीखा मार्ग अपनाया जाय?

पता नहीं श्रद्धा जैसी बहुमूल्य संपत्ति को लोग बिना परखे, पहचाने ढोंगियों तथा आडम्बरियों पर क्यों लुटाते फेंकते फिरते हैं ? वे यह क्यों सोचने समझने की कोशिश नहीं करते कि अध्यात्म साधना और उसकी सिद्धियाँ यदि इतनी सरल और सस्ती होतीं तो प्राचीन ऋषि-मुनि आत्म परिष्कार, चिन्तन-मनन तथा स्वाध्याय में अपना जीवन क्यों खपा देते? आध्यात्मिक सिद्धियों के धनी क्या इस प्रकार गली-गली पैसा और प्रतिष्ठा माँगते-घूमते हैं? क्या यह शंका और संदेह का विषय नहीं है कि जो दूसरों को धन-वैभव, संपत्ति, संतान का वरदान देने की क्षमता रखता है वह क्यों स्वयं दरिद्री-भिखारी तथा पैसे-पैसे के लिए जान दे रहा है? क्या दूसरों को लाखों का वरदान देकर दो पैसे माँग ले जाने वाला सिद्ध हो सकता है? उसकी पूजा की जानी चाहिए। इस मान्यता में कौनसा तुक है यह समझ में नहीं आता। अटपटे शब्दों का उच्चारण और विलक्षण क्रिया, प्रतिक्रिया के साथ भूत भगाने वाले, रोग और दोष दूर करने वाले यदि पूजा-प्रतिष्ठा के अधिकारी हो सकते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं तो क्या कारण है कि विचित्र एवं अनबूझ भाषा बोलने और असंगत काम करने वाले पागल पूजा के अधिकारी नहीं हैं, ऐसा किस प्रकार कहा जा सकता है।

भाषण सुनकर भक्त हो जाने और शब्द सुनकर ही विश्वास कर लेने का सर्वजनीन दुर्बलता समाज में नित्य नये वाक् वञ्चकों को जन्म देती और आगे बढ़ाती रहती है। शब्द सुनकर ही किसी के प्रभाव में आ जाना, वह प्रोत्साहन एवं प्रेरणा है जिससे लोग व्यक्तिगत आचरण की उपेक्षा कर वाक्पटुता का अभ्यास करके सभी क्षेत्रों में प्रतिष्ठा पा लेते हैं। जनता पर यदि महत्त्व का मापदंड होता तो निश्चय ही वाक्-वञ्चकों की बुद्धि पर अंकुश लग जाता और समाज परिगत प्रवृत्ति के धर्म-ध्वजियों तथा वञ्चकों से होने वाली हानियों से बच जाता और धार्मिकता तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में बढ़ रहे भ्रष्टाचार की बाढ़ पर रोक हो जाती। किन्तु खेद है कि जनता की अंध श्रद्धा अंधविश्वास और मूल्यांकन की खोटी कसौटी ही हित अनहित का निर्देशन नहीं करने देती।

यह बात बड़ी सीमा तक सत्य मानी जा सकती है कि यदि लोक जीवन में विवेकशीलता उभर सके और मूल्यांकन के विषय में अपनी श्रद्धा एवं प्रतिष्ठा का मापदंड ठीक करके सही कसौटी काम में लायी जाय तो जीवन के व्यापक दायरे में भ्रष्टता बहुत हद तक दूर हो सकती है। अर्थ तथा धर्म के क्षेत्र में देखने, परखने और मूल्यांकन करने का सही मापदंड साधन और सच्ची कसौटी व्यक्ति के कथन तथा आचरण की एकरूपता ही है। जिस दिन लोक मानस इस तथ्य को हृदयंगम कर तटस्थ आचरण पर उतारू हो जायेगा। उसी दिन सुधार शुभारम्भ सुनिश्चित है।

सही जीवनयापन के लिए नैतिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। इससे सरल और सरस प्रक्रिया बनी रहती है और शान्तिपूर्वक निर्बाह होता रहता है। अनैतिक आचरण से अन्तर्द्वन्द्व उठते हैं, आत्म-ग्लानि बढ़ती है। समाज की निन्दा, तिरस्कार और शासन का न्याय-दण्ड सदा डराता रहता है। इस दबाव से मनःसंस्थान इतना पिसता है जितना कि लगातार मानसिक श्रम करने पर भी पिसना नहीं पड़ता। सन्तुलित जीवनयापन करने के लिए चिन्तन की सन्तुलित दिशाधारा लोगों को मालूम नहीं होती, फलतः इधर से उधर भटकने और औचित्य चिन्तन करने लगते हैं। भय, आशंका निराशा उन्हीं लोगों को होती है जो परिस्थितियों पर असन्तुलित प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं और घबराहट में अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने की तरह मस्तिष्क को विक्षिप्त एवं अर्धविक्षिप्त बना लेते हैं।

विक्षिप्तता और उसका स्थायी समाधान

मनोविकारों और मानसिक रोगों में क्रिया और प्रतिक्रिया जितना ही अन्तर है। काम और उसका परिणाम देखने में दो प्रकार के होते हैं, पर वस्तुतः दोनों के बीच घनिष्ठ तारतम्य रहता है। चोरी करना जब आदत में सम्मिलित हो जाता है और अवसर पाते ही वह क्रिया अनायास ही होने लगती है तब उसे मनोविज्ञानी 'क्लपटोमीनिया' कहते हैं। नशेबाजी की गहरी आदत 'डिपसोमीनिया' कहलाती है। पदार्थों को नष्ट करने की अदम्य अभिलाषा 'वायरोमीनिया' कहलाती है। दूसरों को कष्ट पाते देखकर मजा लूटने का स्वभाव 'म्यूटिलोमीनिया' कहलाता है। यौन कुत्साएँ जो बेतरह मन पर छाई रहती हैं डिमेनशिया कहलाती हैं।

किसी स्वजन सम्बन्धी की मृत्यु एवं हानि दुर्घटना का समाचार सुनकर चेहरा सुस्त पड़ जाता है और भूख मारी जाती है। भय के अवसर उत्पन्न होने पर शरीर काँपता है, पसीना छूटता है, मुँह सूखने और रोमाञ्च खड़े होने लगते हैं। क्रोध में भयंकर उष्णता उत्पन्न होती है और उस गर्मी से पक्षाघात, रक्तचाप जैसे रोग उत्पन्न होने का भय रहता है। कहा जाता है कि एक घण्टे का क्रोध एक दिन के बुखार की बराबर शक्ति क्षीण करता है। मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार अनेक मनोविकारों के परिणाम भयङ्कर बीमारियों के रूप में सामने आते हैं। हृदय रोग, श्वाँस रोग एवं पाचन सम्बन्धी कितने ही रोग शारीरिक गड़बड़ी से उतने नहीं होते जितने कि मानसिक दबावों के कारण। निराश और खिन्न रहने वाले व्यक्ति मधुमेह, अनिद्रा, अपच, गठिया, सिरदर्द जैसे रोगों से ग्रसित रहने लगते हैं।

पूरे मनःसंस्थान में विभिन्न प्रकार की अनेकानेक विसंगतियों का उत्पन्न हो जाना ही पागलपन कहा जाता है। इस स्थिति को 'स्किट्जोफ्रीनिया' कहते हैं। आंशिक विक्षिप्तता को सनक, मूढ़ता आदि नाम दिये जा सकते हैं। ऐसे लोग आजीविका उपार्जन, नित्यकर्म आदि जीवन निर्वाह के सामान्य कार्य मजे में करते रहते हैं। किसी विशेष प्रयोजन में ही वह सनकते और गड़बड़ाते हैं। इस स्तर की बीमारियाँ न्यूरोसिस कहलाती हैं।

उदास प्रकृति का पागलपन एकाकी होता है। वह दूसरों के सम्बन्ध में न अधिक सोचता है न उनसे मतलब रखता है। अपने में ही खोया रहता है। अपनी मनमर्जी से चलता है। न वह किसी को अपना मानता है और न अपने ऊपर किसी का अधिकार स्वीकार करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। अपने बेढंगेपन पर उसे दूसरों की प्रतिक्रिया की परवाह नहीं होती। आत्म केन्द्रित रहकर वह गुजारा करता है कोई इच्छा, महत्त्वाकांक्षा भी उसकी नहीं होती।

कमजोर मन वाले व्यक्तियों को तनिक-सी प्रतिकूलताएँ बहुत डरावनी लगती हैं और उनसे भयभीत होकर वे अपना मानसिक सन्तुलन बिगाड़ लेते हैं। दाम्पत्य रीति-नीति से अपरिचित लड़कियाँ सुहागरात प्रकरण से कई बार इतनी डर जाती हैं कि उन्हें उस प्रकार की पुनरावृत्ति प्राण संकट जैसी लगती है। इसी प्रकार कई गर्भवतियों का मानसिक स्वास्थ्य प्रसव पीड़ा की भयानकता को बढ़ा-चढ़ाकर सोचते रहने से चौपट हो जाता है। पति या सास के थोड़े से दुर्व्यवहार से नव-वधू कभी-कभी इतनी घबरा जाती हैं कि उन लोगों के साथ रहना उन्हें असह्य प्रतीत होता है और बच निकलने का मार्ग न देखकर आत्महत्या जैसे दु:खदायक प्रसंग खड़े कर लेती हैं। ससुराल में उपेक्षा, पितृगृह का बिछोह, नये वातावरण में फिट न हो सकना, पुरानी जीवनयापन पद्धति में भारी अन्तर आने जैसी विसंगतियों का तालमेल न बैठ पाने से कई नव विवाहिताएँ भूत-पलीत, मृगी घबराहट के दौरे आने जैसी बीमारियों में फँस जाती हैं।

उत्तेजित प्रकृति के पागल हर समय बेचैन रहते हैं। उत्तेजनाग्रस्त, अस्थिर, चंचल उन्हें पाया जाता है जो कुछ न कुछ उठक-पटक करते रहते हैं, बड़बड़ाते हैं, दूसरों के कामों में हस्तक्षेप करते हैं और लड़ने-मरने पर उतारू रहते हैं। आत्म प्रशंसा, दर्प प्रदर्शन, धमकी, दूसरों का तिरस्कार जैसी हरकतों में उन्हें संलग्न देखा जा सकता है। इस स्तर की बीमारी 'हैवेफ्रेनिक' कहलाती है। शारीरिक और मानसिक तनाव बढ़ा-चढ़ा रहे। चैन से न बैठे और न बैठने देने की स्थिति हो तो उसे 'कैटाटोनिक' कहा जायगा। अदृश्य दृष्टि देखना, तरह-तरह की आवाजें सुनना-पीड़ा प्रताड़ना सहनी पड़ रही है ऐसा आभास होना—यह चिन्ह पागलपन के उस स्तर के हैं जिसे 'पैरेनोइड' कहा जाता है।

हताश, निराश बैठे रहने से रोगियों के रक्त में 'सेरेटोनीन' का अनुपात न्यूनाधिक हो जाता है। ऐसे लोग खिन्न होकर आत्महत्या कर बैठते हैं। कहीं दूर एकान्त में जा बसने वाले प्राय: इसी मर्ज के मरीज होते हैं।

कई व्यक्तियों को अपनी कल्पनाएँ बहुत दिन तक सँजोये रहने पर वे वास्तविकता जैसी लगने लगती हैं और फिर वे उसे वास्तविक घटना समझने लगते हैं और वैसा ही वर्णन करने लगते हैं। इसे 'कोर्साकोफ्स सायकोसिस' कहा जाता है। सिद्ध योगियों के, देवी-देवताओं के भूत-प्रेतों के, चमत्कारों को—आँखों देखे घटनाक्रम की तरह दावे के साथ बताने वालों में प्राय: इसी रोग के मरीज होते है। वे कल्पनाओं को वास्तविक समझने में ईमानदार गलती करते रहते हैं।

विस्मृति के साथ-साथ यदि विसंगतियाँ उस स्थान पर जम बैठे तो पिछली घटनाओं को, व्यक्तियों को अथवा सम्बन्धों को अवास्तविक रूप से अपना लिया जाता है ऐसी स्थिति में उनके कथन में ऐसी बातें घुस पड़ती हैं, जिनके लिए मिथ्या भाषण का दोष लगाया जा सके। एल्जाइमर एवं लोप्रेशर हाइड्रोसेफल्स रोग प्राय: वृद्धावस्था में ही होते हैं और विस्मरण से उत्पन्न विक्षिप्तता के लक्षण बढ़ जाते हैं। 'सठियाना' इसी को कहते हैं। साठ वर्ष बाद अनेकों को हल्के भारी रूप में इस प्रकार की मानसिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

विक्षिप्तता की चरम सीमा तक पहुँच जाने पर रोगी को पकड़कर पागलखाने पहुँचाया जाता है। इससे कम की स्थिति में मानसिक रोग सनक, उदण्डता, दुष्टता आदि समझे जाते रहते हैं। जबकि वह अटपटापन वस्तुएँ मानसिक अस्वस्था के कारण ही उत्पन्न होता है। सही मन:स्थिति होने पर वह व्यक्ति पछताता भी है और अपने को सुधारना भी चाहता है, पर कोई ऐसा विचित्र आवेश दौरे के समय चढ़ता है और वह कुछ से कुछ करने लगता है।

पागलखाने के डाक्टरों के पास कुछ थोड़े से उपचार हैं और वे प्राय: उन्हीं में उलट-पुलट करते रहते हैं। भारतीय जड़ी-बूटियों में पागलपन की दवाओं में 'सर्पगंधा' की अधिक ख्याति है। ऐलोपैथी परीक्षणों में उसे रक्तचाप के लिए अधिक उपयोगी पाया गया है। ऐलोपैथ सर्पगंधा के समकक्ष एक अन्य औषधि—'रेजरपीन' का उपयोग करते रहे हैं। इन दिनों एमीप्रभीन, ट्राइसाइकिलिक, लीथियम कारबोनेट जैसी कई औषधियों का अधिक प्रचलन है। इन्हीं दिनों कई नई औषधियाँ बाजार में आई हैं, अभी उनके परिणामों के बारे में निश्चित निष्कर्ष नहीं निकले हैं।

शल्य चिकित्सा में पागलपन का उपचार करने की पद्धति को 'सिग्लोटोमी' कहते हैं । इनमें गड़बड़ी पैदा करने वाले भाग को काटकर अलग कर दिया जाता है। इससे अटपटापन तो दूर हो जाता है, पर मस्तिष्क की प्रखरता में भारी कमी आ जाने से स्थिति मन्द बुद्धि जैसी बन जाती है। अगले और पिछले मस्तिष्क का सम्बन्ध सूत्र काट देने से मनुष्य की बुद्धिमत्ता चली जाती है हाँ, किसी प्रकार शान्तिपूर्वक जीवनयापन कर सकने जैसी स्थिति अवश्य बन जाती है। इन उपचारों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्ताजनक स्थिति का ही समाधान निकला है। पगलाये हुए व्यक्ति को भले चंगे मनुष्य के स्तर पर फिर से ला सकने जैसी सफलता नहीं मिली है।

मस्तिष्कीय कोशाओं और तन्तुओं का पारस्परिक सम्बन्ध सूत्र शिथिल पड़ जाने से सही निष्कर्ष निकालना और सही निर्णय करना उसके लिए कठिन हो जाता है। अभ्यस्त क्रिया-कलापों में से कोई भी, कुछ भी, कभी भी उठ सकता है। शरीर एवं मन द्वारा किसी भी प्रकार की अनियन्त्रित गतिविधियाँ चलने लग सकती हैं। यही है मोटे रूप से पागलपन की व्याख्या। इस असम्बद्धता को दूर करने में बिजली का झटका देने की उपचार पद्धति काम में लाई जाती है। उछलकर लम्बी कूद कूदने और बीच की खाई पाट लेने की रीति-नीति मस्तिष्कीय घटकों की असम्बद्धता दूर करने के भी काम आती है। इसे 'शाकथिरैपी' कहते हैं। मस्तिष्क को बिजली का झटका देने से पहले इन्सुलीन का इन्जेक्शन लगाया जाता है। जिससे रक्त में शर्करा की मात्रा घट जाती है और रोगी बेहोश हो जाता है। इस बेहोशी की हालत में ही मस्तिष्क में बिजली के झटके दिये जाते हैं। काम पूरा हो चुकने पर कोकजिक्स इन्जेक्शन देकर रोगी को फिर से होश में कर लिया जाता है। जिस प्रकार भावनात्मक झटका लगने से मनुष्य पगला सकता है उसी प्रकार शाकथिरैपी के आधार पर मस्तिष्कीय संस्थान को झनझना देने वाले बिजली के झटके उस टूट-फूट को दुरुस्त करते हुए भी देखे गये हैं। पागलपन की चिकित्सा में यही पद्धति अन्य सभी उपचारों से अधिक सफल देखी गई है।

पागलखानों के डाक्टर कई प्रकार के रासायनिक पदार्थ रोगियों के शरीर में पहुँचाकर उस कमी को पूरी करते हैं जो मानसिक रोगों का कारण समझी जाती हैं। इस प्रकार के रसायनों में 'केटेकोलोमीन' वर्ग की औषधियाँ ही प्रधान रूप से काम में लाई जाती हैं। इनकी एक शाखा 'एड्रनेलीन' हारमोन की है, जिससे मस्तिष्कीय शिथिलता घटती और उत्तेजना बढ़ती है। इनसे अवसाद की, शिथिलता की स्थिति दूर होती है। दूसरी शाखा 'नोराड्रेनेलीन' रसायनों की है जो अपेक्षाकृत हल्की है उससे उत्तेजना नहीं फुर्ती भर आती है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य औषधियाँ भी प्रख्यात हैं। जैसे तन्तु संस्थान के अवरोधों को दूर करने वाला-डोपामीन। आवेग रोकने के लिए-सेरोटोमीन आदि।

मन:चिकित्सा का एक तरीका यह है कि रोगी को कुछ भी कहने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। आदमी उसी की चर्चा करता है जो उसकी समझ से अधिक महत्त्वपूर्ण है। भले ही वह दूसरों की दृष्टि में निरर्थक ही क्यों न हो? दिलचस्पी से सुनने पर रोगी अपने जीवन की, मन की-स्मृतियों को कहना आरम्भ कर देता है। यह क्रम एकाध घण्टे नित्य चलता है फलत: उसके जी में जमी हुई ऐसी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। जिनके कारण मनोरोग उत्पन्न होते माने जाते हैं। मान्यता यह है कि कोई अप्रिय प्रसङ्ग जीवन में आते हैं और वे दूसरों से कहने योग्य न होने के कारण मस्तिष्क के किसी कोने में छिपे पड़े रहते हैं। मनुष्य का मस्तिष्क खुली पुस्तक की तरह होना चाहिए जिसे कोई भी पढ़ सके तो किसी को भी खुशी-खुशी पढ़ाया जा सके। ऐसा दुराव रहित निष्कपट मन स्वच्छ रहता है। ग्रन्थियाँ दुराव की होती हैं। वे गुर्दे, मूत्राशय या जिगर में जमने वाली पथरी की तरह दिमाग में जम जाते हैं और बाहर न निकलने तक चुभे हुए काँटे की तरह कष्ट देते रहते हैं। इन्हें निकाल बाहर किया जाय तो मनोरोग दूर होते हैं। मनोरोग चिकित्सा में यही पद्धति प्रमुखतया काम में आती है और यदि दुराव के कारण उन्माद हुआ और उसे बिना संकोच कहकर प्रकट कर दिया गया तो उसका अच्छा परिणाम होता है और उस व्यथा के निवारण में सहायता मिलती है।

संसार भर में बढ़ते हुए पागलपन पर मन:विशेषज्ञों ने चिन्ता व्यक्त की है और रोकथाम तथा उपचार के अनेकों तथ्य खोजे एवं उपाय सोचे हैं। औषधि उपचार से नहीं के बराबर लाभ हुआ है। मस्तिष्क को ठप्प या उत्तेजित करने वाली औषधियाँ आरम्भ में कुछ लाभ दिखाकर अपना फिर प्रभाव दिखाना बन्द कर देती हैं। इसके अतिरिक्त उनमें बुद्धि मन्द पड़ते जाने जैसी नई व्यथा उत्पन्न होती है तो लगभग पागलपन के ही समतुल्य होती है।

चिकित्सा जितनी महत्वपूर्ण है उससे भी अधिक महत्त्व रोकथाम के उपाय बरतने पर दिया जाना चाहिए। उन्माद के मूल कारण असन्तुलन को दूर करने के लिए नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र और मन:शास्त्र के उन सिद्धान्तों को जन-मानस में प्रतिष्ठापित कराया जाना चाहिए जो मनुष्य को सरल, सौम्य एवं शालीनता का जीवनयापन करने की विधि-व्यवस्था समझाते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्म धारणा और अध्यात्म साधना को उपयोगी उपचार की तरह काम में लाया जा सकता है। उसकी उपयोगी विधि-व्यवस्था अपनाकर न केवल उन्मादी और सनकी रोग रहित किये जा सकते हैं, वरन् वैसे उपद्रवों की रोकथाम भी सहज ही हो सकती है। इस निष्कर्ष पर विचारशील मन:शास्त्री पहुँच रहे है और समय पूर्व जिस नीतिशास्त्र का उपहास किया जा रहा था अब उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थन मानसोपचार के रूप करने की बात सोची जा रही है। यही है विक्षिप्तता को रोकने और समाप्त करने का स्थिर समाधान।

अन्तरंग को स्वस्थ व निर्मल बनायें

जैसे-जैसे हमारी गति स्थूल से सूक्ष्म में होती जा रही है, वैसे-वैसे हमें संकटों और अभावों के वास्तविक कारणों को समझने में सुविधा मिलती जा रही है। मोटी बुद्धि हमेशा संकटों का कारण बाहर ढूँढती है। व्यक्तियों, परिस्थितियों पर ही सबका दोष थोपकर निश्चिंत हो जाती है। समझदारी बढ़ने पर पता चलता है कि घटिया व्यक्तित्व ही पिछड़ेपन से लेकर समस्त विपन्नताओं की जड़ है। व्यक्तित्व का घटियापन सूझ ही न पड़े, उसके सुधार की कोई योजना ही नहीं बने तो परिस्थितियों की विपन्नता का समाधान हो ही नहीं सकता। वे एक से दूसरा रूप भर बदलती रहेंगी।

बहुत समय पहले शारीरिक व्याधियों का कारण भूत पलीतों का आक्रमण समझा जाता था। बाद में वात, पित्त-कफ के ऋतु प्रभाव का कारण उन्हें माना गया। उसके बाद रोग कीटाणुओं के आक्रमण की बात समझी गई। शोध के इस प्रगति क्रम में उतरते-उतरते इन दिनों अरोग्य शास्त्र के पण्डितों ने इस तथ्य को खोज निकाला है कि शारीरिक रोगों के सन्दर्भ में आहार-विहार विषाणु आक्रमण आदि तो बहुत स्वल्प मात्रा में दोषी हैं। रुग्णता का वास्तविक और मूल कारण तो व्यक्ति की मन:स्थिति में अन्तर्निहित है।

इन शोध प्रयासों से जो नये-नये तथ्य सामने आए हैं उनसे पता चलता है कि शरीर की प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष क्रियाओं पर पूरी तरह मानसिक अनुशासन काम करता है। अचेतन मन की छत्र छाया में श्वाँस-प्रश्वाँस, ग्रहण-विसर्जन, रक्त परिसरण आदि अनैच्छिक कहलाने वाली क्रियायें चलती रहती हैं। चेतन मन के द्वारा बुद्धिपूर्वक किये जाने वाले क्रिया-कलापों और लोक व्यवहारों का क्रम चलता है। इस तरह शरीर की परोक्ष और प्रत्यक्ष क्षमता पूर्णतया अचेतन और चेतन कहे जाने वाले मन:संस्थान के नियंत्रण में रहती है।

यह स्थूल क्रम हुआ। बारीकी में उतरने पर पता चलता है कि अमुक शारीरिक रोग अमुक मनोविकार के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और वे तब तक बने ही रहते हैं जब तक कि मानसिक स्थिति में कारगर परिवर्तन न हो जाय इस अनुसंधान ने उस असमंजस को दूर कर दिया है जिसके अनुसार सारी गड़बड़ियों की जड़ बाहर मानकर उसे दूर करने के लिए बाहरी प्रयत्नों को ही सब कुछ माना जाता था।

अब आरोग्य दशा और रोग निवृत्ति की दोनों ही जरूरतों की पूर्ति के लिए मन:संस्थान की खोज-बीन करना जरूरी हो गया है और समझा जाने लगा है कि यदि मनुष्य के चिन्तन क्षेत्र में घुसी गड़बड़ियों की ओर ध्यान नहीं दिया गया, वहाँ जमी वितृष्णाओं और विपन्नताओं का समाधान न किया गया, तो आहार-विहार का सन्तुलन बनाये रहने पर भी रुग्णता से पीछा छूट नहीं सकेगा। अब नये शोध प्रयासों ने कुछ दुर्घटना जैसे-आकस्मिक कारणों से उत्पन्न होने वाले रोगों को ही शारीरिक माना है और लगभग समस्त बीमारियों को मन:क्षेत्र की प्रतिक्रिया घोषित किया है। गहरी खोजों के फलस्वरूप आरोग्य जैसे मानव जीवन के अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजन पर नये सिरे से विचार करना होगा।

इस तरह के विचार का शुभारम्भ मनोविद एरिकफ्राम ने अपनी रचना ''मैन फॉर हिमसेल्फ'' में किया है। उनका मानना है कि अधिकांश मानसिक विकृतियों का कारण नैतिक होता है। छल-दुराव एवं ढोंग पाखण्ड के कारण दो व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाते हैं। एक वास्तविक, दूसरा पाखण्डी। दोनों के बीच भयंकर अन्तर्द्वन्द्व खड़ा रहता है। दोनों एक-दूसरे के साथ शत्रुता बनाये रखते हैं और विरोधी को कुचलकर अपना वर्चस्व बनाने का प्रयत्न करते हैं। मनोअध्येता फ्रायड ने इसे 'ईड' और 'सुपर इगो' के बीच का द्वन्द्व माना है। इस तरह विग्रह के फलस्वरूप अनेकों रोग उठ खड़े होते हैं और वे वैसी ही मानसिक स्थिति में बने रहने तक हटने का नाम नहीं लेते।

मानसिक रोगियों में प्राय: विक्षिप्त अर्ध विक्षिप्त स्तर के ऐसे लोग गिने जाते हैं जो अपना सामान्य काम-काज चला सकने में असमर्थ हो गये हों, जिनका शरीर निर्वाह एवं लोक व्यवहार विपन्नताग्रस्त हो। ऐसों की संख्या भी लाखों से बढ़कर करोड़ को अपने देश में ही छूने लगी है। उन लोगों की कोई गणना ही नहीं जो रोजी-रोटी तो कमा लेते हैं, खाते और सोते समय भी साधारण लगते हैं पर उनका चिन्तन विकृत एवं हेय होता है। कितने ही दुष्टता की भाषा में सोचते हैं और हर किसी पर दोषारोपण करते हुए उन्हें शत्रुता की परिधि में लपेटते हैं, कितने ही आशंकाओं-आपेक्षों-सन्देहों के अभ्यस्त होते हैं। कुछ शेख-चिल्लियों की तरह मनसूबे बाँधते, संभव-असम्भव का विचार किये बिना अपने सपनों की एक अनौखी दुनिया बसाते रहते हैं। परिस्थिति का मूल्यांकन कर सकना दूसरों की मन:स्थिति समझ सकना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके लिए सम्भव नहीं होता। किसी महत्त्वपूर्ण प्रसंग में ऐसों का परामर्श तनिक भी काम का सिद्ध नहीं होता। अपनी कार्य-पद्धति को किसी उद्देश्य के साथ जोड़ सकना, उनसे नहीं बन पड़ता। इन्हें पागल तो नहीं कह सकते, पर व्यक्तित्व की परख की दृष्टि से उससे कुछ अच्छी स्थिति में भी उन्हें नहीं समझा जा सकता।

मन:शास्त्री जे. वान. क्लासविट्ज ने अपने अध्ययन ''माडर्न सोसाइटी एण्ड ह्यूमन बिहैवियर'' में आज की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि विक्षिप्त-अर्धविक्षिप्त और विक्षिप्तता के सन्निकट सनकी लोगों से प्राय: आधा समाज भरा पड़ा है। ऐसे लोगों में विवेक बुद्धि एवं विवेचनात्मक चिन्तन का अभाव रहता है। स्वतंत्र चिन्तन के प्रकाश में उनकी आँखें चौंधिया जाती हैं। इस वर्ग के लोगों को मानसिक दृष्टि से अविकसित, नर-पामरों की श्रेणी में ही रखा जा सकता है।

सोचने की बात है यह सब होता क्यों है? मनुष्य का प्रत्यक्ष दोष दिखाई नहीं देता। जान-बूझकर ऐसा कुछ किया हो जिससे उन शारीरिक व्याधियों और मानसिक आधियों का दु:ख सहना पड़े, ऐसा कुछ समझ में नहीं आता। फिर क्या कारण है कि समाज में इनकी संख्या स्वस्थ लोगों से कहीं बढ़ी-चढ़ी दिखाई पड़ती है।

इस असमंजस का समाधान देते हुए मन:शास्त्र आचार्य ह्वी. गोर्डन. चाइल्ड ने अपने अध्ययन ''सोसाइटी एण्ड नॉलेज'' में बताया है कि अनैतिक एवं असामाजिक चिन्तन और कर्तृत्व से मन:क्षेत्र में उत्पन्न होने वाला अन्तर्द्वन्द्व दुहरा व्यक्तित्व रच देता है और उससे निरन्तर उठने वाली आन्तरिक कलह सारी मनोभूमि को क्षत-विक्षत करके रख देती है। संचालन के आहत-घायल एवं परेशान होने पर उसके आधीन काम करने वाले तन्त्र की दुर्दशा होना स्वाभाविक है।

इतना सब जान लेने पर हमें एक ही निश्चय पर पहुँचना पड़ता है कि चेतन की मूल सत्ता अन्त:करण को प्रभावित करने वाले नैतिक और अनैतिक विचार एवं कर्म ही हमारी भली-बुरी परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी हैं। इसी उद्गम से हमारे उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा होता है और यहीं से विपत्तियों का वज्र गिराने वाली दु:खद सम्भावनायें विनिर्मित होती हैं। इस मूल केन्द्र का परिशोधन करना ही समस्या का वास्तविक निदान है। प्रस्तुत संकटों से छुटकारा पाने और निकट भविष्य में फलित होने वाले संचित संस्कारों का निराकरण करने के लिए आन्तरिक परिशोधन का प्रयास इतना अधिक आवश्यक है कि उसे अनिवार्य की संज्ञा दी जा सकती है।

इस परिशोधन का स्वरूप समझाते हुए मानविकी विद्या के आचार्यों का मत है कि उन्नत चिन्तन एवं उत्कृष्ट कर्म का सामंजस्य ही वह उपाय है जिससे अचेतन में नूतन लिपि लिखी जा सकती है। इनमें से एक का भी अभाव होने से प्रयोजन की समग्रता नहीं घटेगी। इससे न केवल जीवन-क्रम सामान्य बनेगा बल्कि अन्तस्तल में उन दिव्य शक्तियों का अविरल प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा, जिनके कारण सामान्य मनुष्य महामानवों और प्रतिभावानों की पंक्ति में जा बैठता है।

अवांछनीय अभिवृद्धि के दुष्परिणाम

अभिवृद्धि की कामना सभी करते हैं और विस्तार को प्रगति एवं सफलता का चिह्न माना जाता है। इतने पर भी यह ध्यान रखने योग्य है कि अभिवर्धन स्वस्थ और सन्तुलित होना चाहिए। अन्यथा अनावश्यक फैलाव कई बार उल्टी समस्या बन जाता है।

शरीर में चर्बी बढ़ जाने से जो स्थूलता आती है वह आँखों को भले ही यह सम्पन्नता का चिह्न लगे और मोटा व्यक्ति भले ही अपनी समृद्धि की शेखी बघारे पर वस्तुत: यह बढ़ा हुआ भार हर दृष्टि से असुविधा ही उत्पन्न करता है। सूजन आने से किसी अंग की स्थूलता बढ़ सकती है, पर उससे किसी को कोई सुविधा या प्रसन्नता नहीं हो सकती।

सुविधा-साधनों की बढ़ोत्तरी के लिए मची हुई आतुर भगदड़ के फलस्वरूप सम्पन्नता बढ़ी है, पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि इससे स्वस्थ विकास का कोई उपयोगी आधार खड़ा हो रहा है। प्रगति एवं समृद्धि की प्रशंसा तभी की जा सकती है, जब वह सही साधनों से उपलब्ध हुई हो और उसका उपयोग किन्हीं श्रेष्ठ प्रयोजनों के लिए किया जाता हो। इसके विपरीत यदि अवांछनीय तरीकों से वृद्धि हुई है और बढ़ोत्तरी का उपयोग अनुपयुक्त प्रयोजनों के लिए किया जाना है तो निश्चय ही इस उन्नति की तुलना में वह सामान्य स्थिति ही अच्छी थी जिसमें असन्तुलन उत्पन्न होने की शंका तो नहीं थी।

उदाहरणार्थ, अपने समय में औसत मनुष्य के बढ़ते हुए मस्तिष्कीय भार को लिया जा सकता है। मस्तिष्क पर चिन्ताओं का भार बढ़ने की बात यहाँ नहीं कही जा रही है, वरन् उस तथ्य का उल्लेख किया जा रहा है जिसके अनुसार खोपड़ी के भीतर भरे हुए पदार्थ के भार और विस्तार दोनों में ही बढ़ोत्तरी हो रही है और उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिवृद्धि के कारण लाभ नहीं हो रहा, वरन् उल्टा घाटा सहना पड़ रहा है। यह वृद्धि वैसी ही है जैसी कुसंस्कारी की, उसकी बढ़ी हुई सम्पदा दुष्ट दुर्गुणों को बढ़ाने का निमित्त बनती है। हाल ही में ब्रिटिश चिकित्सकों ने परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि मानव मस्तिष्क का भार निरन्तर बढ़ रहा है। लन्दन इन्स्टीट्यूट ऑफ सायकिट्री के प्रोफेसर कोर्मेलिस एवं डॉ० एच० मिलर ने अपनी प्रामाणिक शोध द्वारा यह सिद्ध किया है कि मानवी मस्तिष्क की क्षमता का निरन्तर ह्रास हो रहा है व उसी अनुपात में उसका वजन भी बढ़ता जा रहा है।

लन्दन के अस्पतालों में मरने वाले २० वर्ष से ६० वर्ष तक की आयु के ३९७ स्त्री-पुरुषों के शवों की परीक्षा करके उनने पाया कि सन् १९४० से ६० के मध्य एक पुरुष के मस्तिष्क का औसत भार १३७२ ग्राम से बढ़कर १४२४ ग्राम हो गया। इसी अवधि में एक महिला के मस्तिष्क का भार १२४२ ग्राम से बढ़कर १२६४ ग्राम हो गया। इसी अनुपात में स्नायु रोगों की संख्या एवं आत्महत्या करने वालों की तादाद् भी बढ़ी है। अमेरिका में प्रति वर्ष ५०,००० व्यक्ति आत्महत्या कर लेते हैं। भारत में भी आत्महत्या हेतु प्रेरित लोगों की संख्या कम नहीं है।

इन वैज्ञानिकों के अनुसार भार एवं आयतन का सीधा सम्बन्ध है। मस्तिष्क के भार के अनुपात में आयतन भी बढ़ा है एवं इसी वजह से स्नायुरोगों का आधिक्य हुआ है।

ऐसा लगता है कि भौतिक सुखों की तलाश में मनुष्य के मस्तिष्क पर अधिक बोझ आ गया है। बीसवीं शताब्दी के इस अभिशाप को हम मानसिक अशान्ति एवं रोगियों की बढ़ती संख्या के रूप में प्रत्यक्ष देखते हैं।

यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि अमेरिका, जो विश्व का सर्वाधिक उन्नत, आधुनिक व सुख-सम्पन्न राष्ट्र है, में इतनी अधिक आत्म-हत्याओं का कारण क्या है ? आज से सौ वर्ष पूर्व का मानव अपनी सीमाओं में सुरक्षित था, शान्तिपूर्ण जीवन जीता था व उनमें पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। आज का मानव प्रतिद्वन्द्वी है व मनोविकारग्रस्त है। सम्प्रेक्षण की वर्तमान प्रगति मानव मस्तिष्क के लिए बोझ बन गई है। विज्ञान की अतुलनीय उन्नति ने पिछली अनेक शताब्दियों के ज्ञान को समेटकर मानव मस्तिष्क पर लाद दिया है।

शरीर के कार्य करने की अपनी प्रक्रिया है। विभिन्न क्रियायें अपनी निर्धारित गति से कार्य करती हैं। इस निर्धारित गति, लय तथा ताल में आया अन्तर सम्पूर्ण क्रियाओं को गड़बड़ा देता है और क्रियाओं की यह असामान्य अवस्था उसे रोगी बना देती है।

प्रतिद्वन्द्विता, उत्तेजना तथा उलझावों के कारण मानव मस्तिष्क भावनात्मक धरातल पर कमजोर पड़ गया है। कमजोर मस्तिष्क उसकी निर्णय शक्ति का साथ नहीं दे पाता तो वह मानसिक सुप्तता के लिए दवाओं का सहारा लेता है और ये ही दवायें उसे मृत्यु के नजदीक पहुँचा देती हैं। विक्षिप्त व्यक्ति समाज के लिए घातक एवं बोझ तथा मृत व्यक्ति के समान होता है।

मस्तिष्क की उत्कृष्टता पर मानवी प्रगति का सारा ढाँचा खड़ा हुआ है। उससे अनेकानेक उपयोगी प्रयोजन सध सकते हैं, पर यह सम्भव तभी है जब उसका मूलभूत ढाँचा अपनी स्वाभाविक एवं संतुलित स्थिति में बना रहे। इस सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि मनुष्य से बहुत वजन डालने वाला काम अत्यधिक मात्रा में न लिया जाय। दिनचर्या में यह गुंजायश रहनी चाहिए कि हँसने-खेलने, विनोद-उपार्जन एवं शारीरिक श्रम के लिए समुचित समय सुरक्षित रखा जाय। अत्यधिक श्रम लेने से मस्तिष्क की वैसी ही दुर्गति होती है जैसी एक सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी के सारे अण्डे एक साथ निकाल लेने के लोभी मालिक की हुई थी। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखा ही जाना चाहिए कि मनोविकारों की उत्तेजना मनःसंस्थान को बुरी तरह जलाती, झुलसाती और विषाक्त बनाती है। चिन्ता, भय, निराशा, द्वेष, लिप्सा, लालसा जैसे मनोविकारों का जो अनावश्यक दबाव इन दिनों पड़ रहा है वही इस मस्तिष्कीय भार वृद्धि का प्रधान कारण है। मोटे तौर से हर बढ़ोत्तरी सौभाग्य का चिह्न मानी जाती है, पर मस्तिष्क भार का बढ़ना प्रत्यक्षः अतीव हानिकारक दुष्परिणाम उत्पन्न कर रहा है। ठीक यही बात इस समृद्धि एवं प्रगति के सम्बन्ध में की जा सकती है जो सुविधा, साधनों के रूप में बढ़ती रही है पर उसके उपार्जन एवं उपयोग में नीतिमित्ता का समावेश नहीं हो रहा है। विस्तार का उपयोग तभी है जब उसके स्तर में न्यूनता न आने पाये।

सुखाकांक्षा में भटकती अविकसित मनःस्थिति

अविकसित मनुष्य को सुख की आकांक्षा रहती है और वह उन्हीं के साधनों को ढूढ़ने-सँजोने में लगा रहता है चेतना की दृष्टि से विकसित व्यक्ति का स्तर ऊँचा उठा होता है और उसे इतने से समाधान नहीं मिलता। उसे अपने विकसित स्तर के अनुरूप परिस्थितियाँ चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी आकांक्षा आनन्द पाने की होती है। इसके बिना उसे अतृप्ति और अशान्ति ही बनी रहती है।

सुख इन्द्रियजन्य है और पदार्थों के सम्पर्क से मिलता है। जिह्वा को स्वाद चाहिए, मूत्रेन्द्रिय को घर्षण सम्वेदना उनकी तृप्ति अभीष्ट प्रयोजन पूरा करने वाले पदार्थ, शरीर मिल जाने से हो जाती है। तृप्ति के क्षण सुखद लगते हैं, पर इससे पूर्व और पश्चात् जलन एवं पश्चाताप की मन:स्थिति बनी रहती है जब तक अभीष्ट वस्तु न मिले तब तक उसकी अभिलाषा इतनी उद्दीप्त रहती है जिसे लगभग बेचैनी ही कहा जा सकता है। स्वादिष्ट पकवान जिन त्यौहारों और दावतों में मिलते हैं—जिस होटल में जाकर खाये जाते हैं, उनके लिये प्रतीक्षा में जो समय रहता है उसमें उत्सुकता और ललक ही उभरी रहती है और मन अशान्त बना रहता है। जितने क्षणों वे स्वादिष्ट वस्तुएँ खाई जाती हैं उतनी देर सन्तोष मिलता है। पेट भर चुकने के बाद अरुचि हो जाती है और परोसने वाले का आग्रह अस्वीकार करना पड़ता है। आतुरता में स्वभावतः कुछ अधिक खा लिया जाता है ऐसी दशा में पेट गड़बड़ाने लगता है और दूसरी बार उस कष्ट को याद करके स्वादिष्ट पकवान की अपेक्षा हल्की और बिना स्वाद की वस्तुएँ खाने की व्यवस्था बनानी पड़ती है। उस भारी आहार को टालना पड़ता है। न मिलने से पूर्व आतुरता और मिलने के बाद घृणा असन्तोष यही प्रतिक्रिया सुख-साधनों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में प्रस्तुत होती है।

इन्द्रिय सुखों में दूसरा है—काम सुख। जननेन्द्रिय की तृप्ति का भी यही हाल है। मुद्दतों पहले से रङ्गीन सपने मस्तिष्क में घुमड़ते हैं। सम्भव असम्भव का विचार किये बिना बहुरंगी स्वप्न परियाँ मस्तिष्क के इर्द-गिर्द उड़ती रहती हैं। वह जलन और आतुरता का समय है। संयोग के कुछ क्षण मादक भी हो सकते हैं। इसके उपरान्त शरीर और मन में जो शिथिलता आती है उसे दूसरा आग्रह अस्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। उन्माद का आवेश उतर जाने पर यह भी प्रतीत होता है कि जीवन रस की मात्रा इस तरह नष्ट होते जाने से असमय में ही वृद्धता, रुग्णता तथा अकाल मृत्यु का वरण करना पड़ेगा। थोड़ी भी समझदारी जीवित रही तो इस प्रकार पश्चाताप निश्चित रूप से उग्र होगा। पत्नी का स्वास्थ्य खराब करने और बच्चों का अनावश्यक भार लादने की बात भी कभी न कभी सूझती ही है तब प्रतीत होता है कि कुछ क्षणों की मादकता के लिए कितना अनर्थ कर गुजरते हैं। सामयिक धिक्कार तो कष्ट देता ही है। प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जब अपना और पत्नी का स्वास्थ्य बिगड़ता है, बढ़ी हुई गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ वहन करने में जो आर्थिक और मानसिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं वे भी ऐसी आत्मग्लानि उत्पन्न करती हैं जो विषय सुख के कुछ क्षणों की तुलना में बहुत ही महँगी और भारी पड़ती हैं।

सुख की आकांक्षा ठाठ-बाठ की, सजधज की, खर्चीली अमीरी की, विडम्बनायें रचने के लिए बाध्य करती हैं। दूसरे लोग हमें धनवान सुसम्पन्न और बड़ा आदमी समझकर प्रभावित आतंकित हों, इज्जत प्रदान करें, इसी अभिलाषा से अनावश्यक वस्तुयें इकट्ठी करनी पड़ती हैं और धनिकों जैसी शान-शौकत का ठाठ जमाना पड़ता है यह कितना महँगा और खर्चीला पड़ता है इसे भुक्तभोगी ही जानता है। मस्तिष्क की कुशलता और आर्थिक सुविधा का अधिकांश भाग इसी जंजाल में खर्च हो जाता है यहाँ तक कि कर्ज लेने और बेईमानी करने के लिए भी बाध्य होना पड़ता है। शान-शौकत अच्छी जरूर लगती है पर वह कितना महँगी पड़ती है इसे देखा जाय तो प्रतीत होगा कि जिन साधनों की उपयोगी दिशा में नियोजित करके अपना-परिवार का, समाज का भारी हित साधन किया जा सकता था उन्हें लगभग पूरी तरह अहंकार को तृप्ति देने के लिए जुटाये जाने वाले साधनों में ही समाप्त कर दिया गया।

सुख की परिभाषा में अपने लिये उपयोगी, स्नेही, सम्बन्धी बढ़ाने की आकांक्षा भी आती है। इस आवश्यकता की पूर्ति अविकसित स्तर के लोग पुत्र प्राप्ति के साथ जोड़ते हैं । उनकी मान्यता रहती है कि जो अपने रक्त से पैदा होगा वही हमारी सहायता करेगा, सुख देगा, वही वफादार रहेगा। चूँकि कन्यायें समर्थ होने पर दूसरे घर चली जाती हैं सहायता देने का सपना पूरा नहीं करतीं इसलिए बुरी लगती हैं। कन्याओं की तुलना में पुत्र का अच्छा लगना इसी दृष्टिकोण पर अवलम्बित है कि विश्वस्त और चिरस्थायी सेवक, सहायक उपलब्ध हो सके। सन्तान न होने पर घर सूना लगने का और कोई कारण नहीं, केवल वह क्षुद्रता ही एकमात्र निमित्त है जिसमें विश्वस्त मित्र पाने की अभिलाषा उद्दीप्त रहती है। किन्तु मोहग्रस्त मनोभूमि में वैसा ही कहाँ बन पड़ता है हमारे स्वार्थों का घटाटोप बालकों के मन पर सहज ही प्रभाव डालता रहता है। बड़े होने पर वे पक्के स्वार्थी निकलते हैं और पिता की सेवा करने की अपेक्षा अपने स्त्री-बच्चों में ही निरत हो जाते हैं। बूढ़े बाप के पास जो कुछ हो उसे झटक लेने के उपरान्त वे यही चाहते हैं कि जितनी जल्दी यह बूढ़ा खूसट मौत के मुँह में चला जाय उतना ही अच्छा। सेवा-सहायता और समझदारी सन्तानों से पाने का स्वप्न अधिकांश लोगों को धूल धूसरित होता ही सामने आता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अविकसित लोगों की सुख-लिप्सा जिन उपाय-आधारों को अपनाने के लिए बाध्य करती है वे सभी थोथे सिद्ध होते हैं। उनका आरम्भ जलन के अतृप्ति और अशान्ति के साथ होता है और अन्त ऐसी स्थिति में होता है जिसे निराशा, खीज, पश्चाताप एवं ग्लानि का ही नाम दिया जा सकता है। सुख की आकांक्षा ही मनुष्य को धन उपार्जन, इन्द्रिय सेवन, सन्तानोत्पादन तथा ठाठ-बाट जमाने, वाहवाही लूटने के लिए प्रेरित करती है। जन-साधारण को इन्हीं प्रयोजनों में लगा हुआ भी देखते हैं पर प्रतीत होता है कि किसी का मनोरथ पूरा नहीं होता—हर किसी को मृग-तृष्णा में भटकने जैसी निराशा ही लेकर विदा होते देखते हैं।

धन की लालसा कितनी तीव्र होती है। योग्यता परिस्थिति और साधनों का अभाव रहते हुए भी प्रचुर मात्रा में धन कमाने की अभिलाषा के लिये एकमात्र उपाय बेईमानी ही रहती है। इससे भी आकांक्षा कहाँ पूरी हो पाती है जो कमाया जाय वह भी आत्म-ग्लानि भरा होता है, पाप की प्रतिक्रिया सामाजिक असम्मान, राजदण्ड और ईश्वरीय न्याय के रूप में भी आती है। उसके भय से अन्तरात्मा को मुक्ति नहीं मिल सकती। इस प्रकार अनीति की कमाई से वैभव भले ही बढ़ जाय किन्तु अन्तःकरण में ऐसी जलन और अशान्ति बनी रहती है जिसे तथाकथित धनीमानी व्यसन और व्यभिचार की आड़ लेकर दबाने का प्रयत्न करते हैं। नशाघरों में, क्लबों में, होटलों में वे आत्मा की अतृप्ति को झुठलाने के लिए ही जाते रहते हैं। इसमें भी सफलता उन्हें कुछ क्षण के लिए ही मिलती है। स्वाभाविक अशान्ति बार-बार उभर आती है और मानसिक स्तर को विकृत, विक्षप्त जैसा बना देती है। धनियों के उद्धत स्वभाव और उद्धत आचरण को सहन समर्थन करने के लिए चापलूस मुसाहिबों की भीड़ साथ में चिपकी रहती है। उन्हीं से उन्हें थोड़ी राहत मिलती है अन्यथा स्पष्ट-वक्ता समीक्षकों के साथ रहने पर तो वे अपने को अर्ध-विक्षिप्त ही अनुभव कर सकते हैं। अनीति उपार्जित वैभववानों की यह दुर्गति कहीं भी बड़ी आसानी से देखी जा सकती है।

जहाँ धन एकत्रित होता है, वहाँ घात लगाने वालों की चाण्डाल चौकड़ी एकत्रित होने लगती है और फिर उसके मृदुल कटुक दो पेंच सामने बिछे देखकर मनुष्य शतरंज जैसी उलझन में फँस जाता है। सरकारी टैक्स अधिकारी, चन्दा खाऊ रिश्तेदार और मित्र, चोर और गुण्डे न जाने कितनी तरह की तरकीबें लड़ाकर धन अपहरण करने के जाल बिछाते हैं। यह घातें इतनी जटिल, मृदुल, वहकावे, छल-आतंक आदि के चक्रव्यूहों से भरी होती हैं कि फिर दिये बिना कोई रास्ता ही नहीं रह जाता। इच्छा से नहीं अनिच्छा से देना पड़ता है। स्वेच्छा से नहीं मजबूरी ही सामने होती है। पैसे को कमाना जितना कठिन है उससे हजार गुना कठिन उस संग्रह को सुरक्षित रखना है। सदुपयोग करने लायक विवेक बुद्धि न होने पर उसका दुरुपयोग हो सकता है। अनुपयोग की स्थिति में भी तो नष्ट ही होकर रहता है।

अविकसित मनःस्थिति वाले व्यक्ति की गतिविधियाँ इन्हीं विडम्बनाओं में केन्द्रीभूत रहती हैं। वह इन्द्रियभोग, कुटुम्ब वर्धन, धन संग्रह, अहंता के परिपोषण के अतिरिक्त और कहीं सुख अभिलाषा की मूर्ति देखता ही नहीं सो इन्हीं में निरत रहता है। मनोरंजन के लिए उसे व्यसन और व्यभिचार के उद्धत आचरण ही अपनाने पड़ते हैं। चिन्तन, निर्णय और दृष्टिकोण में विकृति भरी रहने के कारण दिशा ठीक बन ही नहीं पाती और सुख अभिलाषा की पूर्ति के लिये किये गये समस्त कार्य प्रायः दुःखदायक ही सिद्ध होते हैं। अभिलाषा पूरी न होने तक आतुर व्याकुलता कष्ट देती है। पूर्ति के कुछ क्षण हड़बड़ी में बीतते हैं, सन्तोषपूर्वक तृप्ति के क्षणों का भी आनन्द ले सकना सम्भव नहीं होता। पूर्ति के पश्चात् संचय एवं उपयोग का इतना अधिक वजन बढ़ता है कि गर्दन टूटने लगती है और रीढ़ चरमराने लगती है। सरल स्वाभाविक जीवन का आनन्द न जाने कहाँ चला जाता है। कृत्रिमता का अनावश्यक उत्तरदायित्वों का बोझ इतना भारी पड़ता है कि उसे वहन करते-करते भारवाही बैल, घोड़े या गधे से भी दयनीय स्थिति में जा फँसते हैं और उसी जंजाल में मरते, खपते, दम तोड़ते हैं।

भोगों को भोगने की आकांक्षा तृप्त कहाँ होती है, वे भोग ही मनुष्य को भोग लेते हैं और निचोड़े हुये नीबू के छिलके की तरह मानव जीवन के सुर दुर्लभ सौभाग्य को कूड़े-कचड़े के गर्त में ले जाकर फेंक देते हैं। दाद खुजाने में कष्ट भी होता है, एक विशेष तरह का मजा भी आता है। कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है और उसके घर्षण से अपने ही मसूड़े से निकलने वाले रक्त को पीकर सोचता है हड्डी में से खून निकला और उसे पीकर लाभ कमाया पर वस्तुतः होता इसके विपरीत ही है। वह पाता कुछ नहीं, सूखी हड्डी चबाकर खोता ही खोता है। सूखी हड्डी के टुकड़े उसके पेट में जाकर पोषण नहीं दर्द ही प्रदान करते हैं। सुख अभिलाषा तो ठीक है। पर उसे ओछे स्तर अपनाकर अविकसित मनःस्थिति के लोग जो रीति-नीति अपनाते हैं उससे उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। अशान्ति और असफलता पर पश्चाताप करते हुये, सिर धुनते हुए ही वे इस संसार से विदा होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुख पाना हो तो मन को प्रशिक्षित करें

संसार में प्रायः सभी लोग अपने विभिन्न कामों के द्वारा सुख की तलाश करते रहते हैं। कोई एक तरह से इसकी ढूँढ़-खोज करता है, कोई दूसरी तरह से। इसी के लिए अनेक तरह के साधनों को इकट्ठा करने की होड़ बढ़ती जा रही है। पर ऐसे लोग जिन्होंने ढेरों के ढेरों साधन-सामग्रियों को बटोरा है, उन्हें भी अशांति शोक-संताप से घिरा देखा जा सकता है। ये सभी सुविधाएँ मिलकर भी उन्हें इससे छुटकारा दिला सकने में समर्थ नहीं हैं। ऐसी स्थिति में सवाल यह उठता है कि वास्तविक सुख कहाँ है? इसे कैसे पाया जा सकता है?

विचार करने पर पता चलता है। कि सभी साधन सामग्रियाँ आखिर हैं तो जड़ ही। इनमें अपनी कोई सामर्थ्य ही नहीं है। न तो कोई पदार्थ किसी को सुख दे सकता है और न दुःख। जिस प्रकार बन्दूक में अपनी कोई ताकत नहीं, वह यन्त्र भर है। चलाने वाला उससे किसी की रक्षा भी कर सकता है और मार भी सकता है। इसमें बन्दूक का क्या गुण-दोष? ठीक इसी तरह इन पदार्थों में न तो कोई सुखद तत्त्व है, और न दुःखद, जिससे वे किसी को अपनी इस विशेषता से खींच सकें अथवा दूर हटा सकें। यह मनुष्य की अपनी चेतना है, जो बहिर्मुखी प्रवृत्ति होने के कारण उससे सम्बन्ध स्थापित कर उसे सुखद या दुःखद बना लेती है। इसकी उन्मुखता और भावों के अनुसार कोई पदार्थ किसी को सुखद, किसी को दुःखद लगता है।

भारतीय चिन्तकों ने इस चेतना को आत्मतत्त्व की संज्ञा दी है। पश्चिमी मनोवैज्ञानिक एरिक फ्राम ने अपनी पुस्तक ''मैन फार हिमसेल्फ'' में इसे मनोवैज्ञानिक तत्त्व कहा है। उनके अनुसार जिस समय मनुष्य की चेतना सुखोन्मुख होकर पदार्थ से सम्बन्ध स्थापित करती है, सुखद लगता है। जब यही दुःखोन्मुख होकर सम्बन्ध स्थापित करती है, वह दुःखद लगता है। स्वयं में तो संसार की सभी चीजें जड़ हैं। वे अपनी ओर से किसी को सुख-दुःख दे भी कैसे सकती हैं? ये तो अपने चेतनागत भाव हैं, जो इनसे सम्बन्ध स्थापित करे, उसे सुख देने वाला अथवा दुःख देने वाला बना देते हैं। पदार्थों से सुख या दुःख मिलने की धारणा पूरी तरह भ्रमात्मक है।

बुढ़ापा आ जाने पर मनुष्य को वही पदार्थ रसहीन लगने लगते हैं, जिनके पीछे वह अपनी जवानी में दौड़ा भागा करता था। सारा का सारा सुख पता नहीं कहाँ चला जाता है? असलियत यह है कि कमजोरी अथवा बुढ़ापे में बाहरी चीजों से सम्बन्ध स्थापित करने वाली इन्द्रियाँ दुर्बल या शिथिल हो जाती हैं। यह शिथिलता ही पदार्थों को नीरस और निस्सार बना देती हैं।

बुढ़ापे में ही नहीं, जवानी में भी सुख की अनुभूतियाँ समाप्त होती देखी जाती हैं। बुखार आने पर या स्वाद-इन्द्रिय जीभ में छाले पड़ जाने पर वही स्वादिष्ट भोजन जिनके लिए अभी तक लार टपकती थी, अब रसहीन और बेकार लगते हैं।

सही मायने में रस की अनुभूति का कारण इन्द्रियों की स्थूल बनावट नहीं, बल्कि इनसे परे चेतना है। वही चेतना जो समूची देह, प्राण और मन में समायी है। यही सर्वव्यापक चेतना आत्मा है। सुख का कारण एवं आनन्द का स्रोत यही है। यह न तो किसी पदार्थ में है, न किसी अन्य वस्तु में । इसे तो आत्मा में ही जीवात्मा के द्वारा अनुभव किया जा सकता है। सुख का संसार इसी में बसा है, खोज का क्षेत्र भी वही होना चाहिए। सांसरिक विषय और वस्तुएँ साधन भर हैं। इनका उपयोग सिर्फ जीवन-निर्वाह के लिए है। सुख के लिए इनके पीछे भागने-भटकने से वही परिणाम सामने आएँगे जो मरीचिका में भूले-भटके मृग के सामने आते हैं।

मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग ने अपनी पुस्तक ''मॉडर्न मैन इन सर्च ऑफ सोल'' में सुख और दुःख दोनों की अनुभूति को सापेक्ष बतलाया है। उनके इस कथन में भारतीय दर्शन की मान्यता को प्रयोगों की कसौटी पर खरा सिद्ध करने की झलक मिलती है। बात भी सही है। कोई मध्यम वर्ग का आदमी किसी मिल मालिक सेठ की तुलना में गरीब है, पर दरिद्र की तुलना में वह अमीर है। बुखार से पीड़ित व्यक्ति पूरी तरह से स्वस्थ पहलवान की तुलना में दुःखी है, पर कैन्सर रोग के रोगी की तुलना में सुखी । इसी तरह लगभग सभी दुःख और सुख सापेक्ष हैं। उसी स्थिति में एक आदमी अपने को दुःखी महसूस करता है, दूसरा सुखी। फिर सही बात क्या है?

सही स्थिति न जानने के कारण ही मनुष्य तरह-तरह के सन्ताप भोगता और दुःखी होता है। योगवाशिष्ठ में इस पर चर्चा करते हुए इसका कारण बताया है। इससे छूटने का उपाय वास्तविकता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझना तथा उसके अनुसार व्यवहार करना है। यही स्थायी सुख की स्थिति है। इसी को दर्शन की भाषा में ब्राह्मी स्थिति कहकर संबोधित किया गया है।

ऐसा स्थायी सुख सामान्य दृष्टि से विलक्षण चीज है,, क्योंकि सामान्य जिन्दगी में लोगों को थोड़े समय के लिए सुख मिलता है। हँसते-बोलते, खाते-पीते, ताश-चौपड़ खेलते, नृत्य गीत का लाभ लेते इस का अनुभव किया जाता है। ऐसा लगता है कि इस आमोद-प्रमोद में प्रसन्नता छुपी है। इसी कारण इसके लगातार बने रहने के उपाय किये जाते हैं। समझा जाता है कि इनके बने रहने पर प्रसन्नता भी रहेगी, पर यह कैसे संभव हो सकता है? क्योंकि सुख पदार्थ परक है ही नहीं वह तो आत्मपरक है, अन्दर की अनुभूति का तत्व है, माध्यम भले ही पदार्थ बन जाये, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

डॉ० राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक ''आइडियलिस्टिक व्यू आफ लाइफ'' में इसे भली प्रकार समझाया है। उनके अनुसार स्थायी सुख के लिए हमें नन को प्रशिक्षित करना होगा। बाहरी परिस्थितियों के साथ यदि इसका तालमेल बिठाया जा सके तो सारी जिन्दगी सुखी रहा जा सकता है। मन के प्रशिक्षण के लिए यह सत्य जानना होगा कि सुख कहीं बाहर नहीं अपने में है। बाहरी चीजों का केवल इतना उपयोग है कि शरीर की सामान्य जरूरतें पूरी होती रहें। जिस तरह मोटर की सामान्य जरूरत पेट्रोल है, वह मन्जिल तक पहुँचाने में सहायक तो है, पर स्वयं मन्जिल नहीं। अगर पेट्रोल की जगह कोई इत्र का उपयोग करे तो लाभ की जगह हानि ही होगी।

इसी कारण आचार्य शंकर कहते हैं जिन्दगी की सामान्य जरूरतों को दवा की तरह लेना चाहिए। दवा को न कम लिया जा सकता है न ज्यादा। इसे ठीक-ठीक मात्रा में लेना ही भलाई है। इसके लिए मन एकाएक तो तैयार नहीं होगा क्योंकि अभी तक इसकी दौड़-भाग बाहर सुख खोजने में रही है। इस उल्टी गति को सीधा करना होगा। जे. कृष्णमूर्ति के शब्दों में यह प्रयासपूर्वक मन को अपनी सत्ता के केन्द्र ''आत्मा'' की ओर मोड़ना है। इसकी प्रक्रिया के बारे में उनका कहना है कि जब-जब मन पदार्थों में सुख की खोज करें, विवेकपूर्वक उसे धीरे-धीरे समेटकर वापस केन्द्र की ओर ले जाया जाय। उनके अनुसार यह काम छोटे बच्चे को सही चीज सिखाने की तरह है। छोटा बच्चा जब चमकीली आग को पकड़ने दौड़ता है, तो अभिभावक उसे रोककर दूसरी ओर ले जाते हैं। मन बच्चा है और विवेक अभिभावक। इस प्रक्रिया से मन इस ढंग से ढल जायेगा कि आत्मा की निर्मलता और आनन्द को सही ढंग से व्यावहारिक जीवन में उतार सके।

यह प्रशिक्षण तुरन्त पूरा हो जाने वाला नहीं है इसके लिए लगातार जुटे रहना होगा। जैसे-जैसे इसमें गति आयेगी, मन हर प्रकार की परिस्थितियों से ताल-मेल बिठा सकेगा क्योंकि बदली हुई स्थिति के अनुसार बाहरी चीजें भोग सुख की सुविधाएँ न होकर जिन्दगी की सामान्य जरूरतों को पूरा करने के लिए जरूरी साधन हैं, जिन्हें कम से कम लेकर काम चलाया जा सकता है।

जिन्होंने इस ढंग से मन को प्रशिक्षित किया है उनके जीवन में इस तथ्य और सत्य को देखा जा सकता है। श्री अरविन्द ने अलीपुर जेल की काल कोठरी की कठोर यातनाओं में भी सुख का अनुभव किया। तुकाराम की गरीबी उनके सुख को कम नहीं कर सकी। इस तरह के अनेकों महामानवों के उदाहरण हैं, जिन्होंने व्यावहारिक जिन्दगी के प्रत्येक क्षण को सुख में बदला है। इस स्थिति को पाने के लिए हम सभी को यह व्यावहारिक प्रक्रिया अपनानी चाहिए। इस स्थित को गीताकार ने **''यं लब्ध्वा चापरं लाभ मन्यते नाधिकं तत्''** अर्थात् जिसको पाकर कुछ पाना बाकी नहीं रहता, कहा है।

संतुलित उल्लसित जीवन कैसे जियें?

शरीर और मन का अन्योन्याश्रित संबंध हैं। दोनों सही स्थिति में रहते हैं और एक-दूसरे की सुरक्षा में सहायक बनकर रहते हैं तभी काम चलता है। इनमें से एक के गड़बड़ा जाने पर दूसरा भी कंधा डाल देता है। गाड़ी में दो बैल जुतते हैं। इसमें से एक बैल अपना कार्यभार उठाने में असमर्थ बन जाय तो दूसरे को दूना परिश्रम करना पड़ता है और वह भी डममगाने लगता है, दो फेफड़े, दो गुर्दे मिल-जुलकर अपना काम निपटाते हैं। पर जब उनमें से एक रुग्णता से घिर जाता है, तो दूसरे को भी अपना कार्य ठीक तरह चलाने में असुविधा होती है। इसलिए दोनों की ही स्वस्थता का स्वच्छता का निरन्तर ध्यान रखने की आवश्यकता है।

छोटी आयु के बच्चे ठीक तरह समझ सोच नहीं पाते, क्योंकि उनका मानसिक विकास तब तक हो नहीं पाता। बुद्धि अपना पूरी तरह काम करने की स्थिति में नहीं होती। परिपक्वता के अभाव में बालक ऐसा ही सोचता और करता है, जिन्हें बचकाना कहा जाय।

यही बात बुढ़ापे में भी होती है। काया जीर्ण-शीर्ण हो जाती है, इन्द्रियाँ जवाब देने लगती हैं। पाचन सही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं होता और नींद पूरी नहीं आती। फलतः मस्तिष्क पर भी बुरा असर पड़ता है। बुद्धि सठिया जाती है। सरकारी नौकरियों से छुटकारा मिल जाता है घर के लोग भी उनकी सलाह को कम महत्व देते हैं। चिड़चिड़ाना और भूल जाने की शिकायत शुरू हो जाती है, दुर्बल शरीर उपार्जन के उपयुक्त भी नहीं रहता। कड़ा परिश्रम करने से थकान आती है और खटते रहने पर दुर्बलता रुग्णता में बदलने लगती है। युवावस्था में जो जोश, साहस और बुद्धि का बल रहता है, आयु के ढलने पर वह भी घटता चला जाता है। बच्चों का सा दुराग्रह पनपने लगता है। यह शारीरिक दुर्बलता का मन पर पड़ने वाला प्रभाव है।

मन की स्थिति सन्तुलित न रहने पर शरीर का भी बुरा हाल होता है। उद्विग्न, विक्षिप्त, चिन्तित, आक्रोशग्रस्त व्यक्ति यदि शरीर से नीरोग हो, तो भी उनका शरीर वैसा काम नहीं करता जैसा करना चाहिए। शोक समाचार सुनकर भूख भाग जाती है और सामने परसी थाली पर हाथ डालने की इच्छा नहीं होती। भले ही पेट खाली हो। क्रोध के आवेश में भी ऐसा ही होता है, कहते हैं कि एक घण्टे का क्रोध चौबीस घण्टे के बुखार जितनी कमजोरी लाता हैं। चिन्तित और निराश रहने वाला नींद खो बैठता है और दिन-दिन क्षीण होता जाता है। यह मन का शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव है।

शरीर स्वस्थ रहे तो मन शुद्ध भले ही न हो पावे पर सन्तुलित और विचारशील तो बना रहता है।

स्वस्थ मनःस्थिति का व्यक्ति योजनायें क्रमबद्ध बनाता है और उन्हें परिश्रमपूर्वक पूरी कर लेता है। भले ही वह निर्धारण अनुचित स्तर का ही क्यों न हो, बीमार और कमजोर आदमी तो चोरी डकैती करने का मन होने पर भी कायिक असमर्थता के कारण वैसा नहीं कर पाता। यही बात पुण्य-परमार्थ के सम्बन्ध में है। उन्हें करने के लिए आत्मसंयम और उदार चेतना की आवश्यकता है। पर रोगी को अपनी ही व्यथा कचोटती रहती है। उस पर स्वार्थ ही छाया रहता है और हर बात के लिए पराश्रित रहने की स्थिति में आत्मग्लानि भी कम नहीं होती। जो उस स्थिति में भी कुछ तो किया ही सकता है, पर मानसिक असंतुलन उसे भी ठीक तरह करने नहीं देता।

गाड़ी के दोनों पहिए सही रहने चाहिए। इसी प्रकार न केवल शरीर को स्वस्थ रखने में पूरी-पूरी सतर्कता बरती जाय, वरन् मन को संतुलित रखने में भी कुछ उठा न रखा जाय।

शरीर की दुर्बलता एवं रुग्णता दैवी विपत्ति की तरह नहीं घटती वरन् मनुष्य की अपनी बुलाई हुई होती है। असंयम शरीर को खाता है। जीभ को चटोरापन और कामुक प्रसंगों में अतिवाद अपनाने से मनुष्य भीतर ही भीतर खोखला हो जाता है। उसका ऊपरी ढकोसला भले ही ज्यों का त्यों दीखे, पर भीतरी जीवनी-शक्ति क्षीण होती जाती है। फलतः बाहरी विषाणुओं का आक्रमण आये दिन दबोचता रहता है। असंयम का पेट पर भी कुछ असर पड़ता है। चटोरे व्यक्ति बिना भूख लगे आवश्यकता से अधिक मात्रा में अंटसंट खाते रहते हैं। फलस्वरूप पेट की भट्टी में पूरी तरह परिपाक न होने की स्थिति में रक्त-माँस में अशुद्धता बढ़ती है और न्यूनता पड़ती है। चटोरा अपना पेट खराब करता है और साथ ही शरीर में अनेक बीमारियाँ घुस पड़ने का द्वार खोल देता है। यही बात परिश्रम की कोताही करने के संबंध में भी है। आलसी, अकर्मण्य बैठे -ठाले आराम तलब लोग अपने अवयवों को जंग खाये लोहे की तरह निकम्मा बना लेते हैं। समय पर निर्धारित काम करने की जिनकी रीति-नीति नहीं होती, समय का पालन नहीं करते, दिनचर्या बेतुकी, बेढंगी अस्त-व्यस्त रखते हैं, उनके लिए स्वस्थ रह सकना कठिन पड़ता है। शरीर की प्रकृति ऐसी है कि नियत समय पर नियत कार्य की माँग करती है। यदि उसमें व्यवधान पड़ता है तो शरीर की क्रिया-प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न होता है और शरीर पर रुग्णता छाने लगती है।

इन साधारण-सी बातों का सतर्कतापूर्वक ध्यान रखा जाय तो मनुष्य आसानी से नीरोग रह सकता है और दीर्घजीवी भी बन सकता है। पर नशेबाजी जैसे दुर्व्यसन अपनाकर कोई अपने पैरों स्वयं ही कुल्हाड़ी मारे तो उसे आघात से बचाने के लिए दूसरा कोई क्या कर सकता है?

मन-मस्तिष्क को असंतुलित बनाने में सबसे बड़ा कारण है आत्म विश्वास की कमी। जिसमें साहस, स्वावलम्बन, मनोबल नहीं है, वह हितैषी व्यक्तियों पर भी संदेह करता है और आशंका अविश्वास से घिरा रहकर भीतर ही भीतर भयभीत बना रहता है। भले ही उस पर कोई विपत्ति न आये, पर भविष्य में कोई विग्रह खड़ा हो जाने के भय से सदा बेचैनी बनी रहती है। साहस के अभाव में इतना भी सोचते नहीं बन पड़ता कि जब कठिनाई सामने आवेगी, तब उससे साहसपूर्वक निपट लिया जायेगा। डरपोक व्यक्ति को जितना विपरीत परिस्थितियाँ त्रास देती हैं, उससे कहीं अधिक वह आशंकाओं से आतंकित बना रहता है। मानसिक उद्विग्नता का दूसरा कारण है, बढ़ी-चढ़ी महत्वाकांक्षाओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घटाटोप। लोकेषणा, वित्तेषणा और पुत्रेषणा को भी शान्ति खा जाने वाली डाकिनें माना गया है। बहुत धन होना चाहिए, बड़ा पद मिलना चाहिए। विलास के बढ़े-चढ़े ठाट-बाट हों। ख्याति और सम्मान से अहंकार का पोषण होता रहे; आदि-आदि इच्छायें जब-जब साधारण स्तर से उँची उठ जाती हैं तो वे लिप्सा-तृष्णा कहलाने लगती हैं।

हर किसी की हर मनोकामना पूरी हो सकना संभव नहीं। वैभव बटोरने के लिए ललकों का उछलते रहना ही पर्याप्त नहीं, वरन् परिस्थितियाँ भी अनुकूल होनी चाहिए। सघन सहयोग भी उपलब्ध होना चाहिए।यह सब इच्छामात्र से ही उपलब्ध होते रहें, यह आवश्यक नहीं। बढ़े-चढ़े सपने शेखचिल्ली की तरह असफल भी रह सकते हैं और अपमान भी करा सकते हैं।असंतोष की आग से बच सकना उन्हीं के लिए संभव है, जो औसत नागरिक भर का निर्वाह पर्याप्त मानते हैं। उन्हीं के लिए यह संभव है कि तृष्णा द्वारा उत्तेजित की गई अनावश्यक महत्वाकांक्षाओं को काबू में रखकर आय के अनुरूप में व्यय का बजट बना सकें और स्वल्प संतोषियों की तरह हँसता-हँसाता जीवन जी सके। ऐसे ही लोग पाप, अनाचार से भी बचे रहे सकते हैं और आजीवन शालीनता बनाये रह सकते हैं अपने से बड़ों की अपेक्षा छोटों के साथ तुलना करते रहने का दृष्टकोण बना लिया जाय, तो यही अनुभव होगा कि जो उपलब्ध है, वह सौ से कम भले ही हो, पर हजार से अधिक भी है। ऐसी मनःस्थिति संतुलित कही जाती है और वह शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए पौष्टिक टॉनिक एवं बचाव की दृष्ट से ढाल का काम करती है।

शरीर और मन दोनों में से किसी की भी उपेक्षा न की जाय। बहुमूल्य जीवन तभी तक स्थिर है जब तक कि शरीर में प्राणों को धारण किए रहने की क्षमता है। जो भी पुरुषार्थ करना चाहते हैं, वे स्वस्थ शरीर के सहारे ही बन पड़ते हैं। वह अपना निरन्तर साथ रहने वाला और सेवा निरत रहने में तत्पर सबसे स्वामिभक्त सेवक है। रूखा-सूखा खाकर काम चला लेता और हर स्थिति में प्रसन्न रह लेता है। ऐसे सन्मित्र के साथ यदि सद्व्यवहार करते रहा जाय, उस पर अनाचार का अवांछनीय भार न लादा लाय तो अन्य प्राणियों की तरह मानवी काया भी नीरोग रह सकती है। स्वस्थ रहने के लिए किन्हीं बड़े रहस्यों को ढूँढ़ने या रसायनों के सेवन करने की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रकृति के संकेतों पर चला जाय, संयम, अनुशासन पाला जाय तो आरोग्य से बिछुड़ने की कभी नौबत न आवेगी, साथ ही मनोबल भी बढ़ेगा। पुरुषार्थ भी जगेगा और चित्त भी प्रसन्न रहेगा।

मानसिक व्यथायें परस्थितिजन्य नहीं होतीं। मनःस्थिति के विकृत होने पर ही मनुष्य उद्विग्न होता है और अनेकों दुष्प्रवृत्तियों से घिर जाता है। यदि हलकी-फुलकी जिन्दगी जी जाय और मिल-जुलकर सुख बाँटते दुःख बँटाते रहा जाय तो चित्त सदा हलका रहेगा।

मन को इतना नहीं उछलने देना चाहिए कि शरीर को उसके पीछे घिसटना पड़े। शरीर पर असंयम के इतने चाबुक नहीं मारने चाहिए कि वह तिलमिला जाय और जीवन सुख के राजमार्ग पर चलने से इन्कार कर दे। शरीर और मन के बीच परायापन नहीं रहना चाहिए। दोनों एक दूसरे का ध्यान रखें। संतुलित शान्तिमय सन्तुष्ट, प्रसन्न और संयमी जीवन जिया जाय तो निरोग भी रहा जा सकता है और आनन्दित, उल्लसित भी।

अचेतन की अभिव्यक्ति है

आभामण्डल

मानवी काय सत्ता का बहिरंग पक्ष जो हाड़-माँस से बना स्थूल रूप में दिखता है, उसका अदृश्य सूक्ष्म शरीर जिन प्राण स्फुल्लिगों के समुच्चय से बना है, वह अपने आप में अद्भुत एवं अपरिमित शक्तियों का पुंज है। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने आप्त पुरुषों ने शरीर को देव मन्दिर की संज्ञा दी है। पर सामान्य मान्यता यह है कि दृश्यमान समर्थता स्थूल शरीर की ही देन है, जबकि उसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह समीपवर्ती क्षेत्र में बाहर भी विद्यमान रहती है और सम्पर्क में आने वाले वातावरण को भी प्रभावित करती है और सान्निध्य में आने वाले व्यक्तियों को भी। जो दूसरों को प्रभावित करती है, वह स्थूल काया नहीं वरन् उस में सन्निहित सूक्ष्म प्राण चेतना है, जो प्रकाश किरणों के रूप में शरीर से बाहर भी फैली रहती है। यह आन्तरिक शक्तियों का बहिरंग में परिचय प्रस्तुत करती है, इसे जो जितनी मात्रा में विकसित और परिष्कृत कर लेता है, उसी अनुपात में दिव्य क्षमताओं का अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का स्वामी बनता चला जाता है। इससे न केवल अपना हित साधन होता है वरन् दूसरों को भी लाभान्वित किया जा सकता है।

ईसाई धर्म-ग्रन्थों में वर्णित है कि एक प्रकाश क्षेत्र मनुष्य को चारों ओर से सतत् घेरे रहता है जिसकी सघनता सिर के इर्द-गिर्द अधिक होती है। कहा जाता है कि जब मूसा ईश्वरीय नियम खुदे पवित्र पत्थर को लेकर पर्वत से नीचे उतर रहे थे, उस समय इजराइल के बच्चे उन्हें देखने में असमर्थ रहे क्योंकि उनके चेहरे से तीव्र प्रकाश किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। विभिन्न साहित्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में इसका विस्तृत वर्णन भी मिलता है। इसी तरह सेंट पाल के बारे में प्रचलित है कि उपदेश देते समय उनके मुख मंडल से प्रकाश रश्मियाँ निकलकर आस-पास के वातावरण में फैल जाती थीं। ईसामसीह का तेजोवलय इतना तीव्र होता था कि जिसकी तुलना किसी भी प्राकृतिक या कृत्रिम प्रकाश से नहीं की जा सकती। सेंट फिलिप तथा सेंट चार्ल्स बोरोमेओ ने इसका अलग वर्णन किया है। वैज्ञानिक जगत में इसे ही आभा मण्डल, प्रभामंडल आदि नामों से जाना जाता है और कहा जाता है कि जब कोई व्यक्ति दिव्य चिंतन और आध्यात्मिक साधना में निमग्न हो जाता है, उस समय प्रभामंडल के रंग और अधिक चमकदार एवं प्रभावकारी हो जाते हैं। इसका सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के चिन्तन और भावना क्षेत्र से है, जिसमें आये क्षणिक परिवर्तन से भी इस में अंतर आ जाता है और अपने चारों और के वातावरण को प्रभावित करता है।

मस्तिष्क की तरह सम्पूर्ण शरीर के चारों और प्रकाशित क्षेत्र को ''औराओला'' कहा गया है। उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्शवादी कर्तृत्व से इसमें अभिवृद्धि होती है। इस संदर्भ में गुह्य विद्या के प्रसिद्ध ग्रंथकार पैरासेल्स ने कहा कि सूक्ष्म मर्म-स्थानों से निस्सृत इस तेजस्वी ऊर्जा का विनाश नहीं होता वरन् शरीर से बाहर निकलने के पश्चात् चारों ओर वलय रूप में घिरी रहती है। उसके अनुसार यह अर्ध प्राकृतिक किरणें हैं, जो यह प्रदर्शित करती हैं कि मनुष्य उत्कृष्ट चिन्तन तथा श्रेष्ठ भावना सम्पन्न है अथवा निकृष्ट विचारों को दूषित अंतःकरण से ग्रसित है। जीवन के मूल तत्व यही दोनों माने गये हैं, जिनके दूषित होने पर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है, जिससे चेहर-मुहरे से सुन्दर व्यक्ति उदास, निस्तेज, आलसी होने पर मरा-गिरा सा टूटा हुआ प्रतीत होता है। जबकि उत्कृष्ट चिन्तनवाला व्यक्ति स्वस्थ, सुसन्तुलित एवं काला-कुरूप होने पर भी प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व का स्वामी होता है। ऐसा व्यक्ति जहाँ जाता है अपनी उपस्थिति से वातावरण प्रभावशाली बना देता है।

इसी ग्रन्थ में तेजोवलय को पाँच भागों में विभक्त किया गया है—(१) स्वास्थ्य ऑरा (२) मर्मस्थान का ऑरा (३) कायिक ऑरा जो मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति को बताता है (४) चरित्र का ऑरा (५) आध्यात्मिक प्रकृति का तेजोवलय।

स्वास्थ्य वलय रंगहीन होता है परन्तु इसे त्रिज्मीय रेखाओं द्वारा अनुभव किया जाता है। यह शरीर की सभी दिशाओं से निकलता है। दूसरा वलय शरीर से निश्चित दूरी पर होता है एवं इच्छा शक्ति द्वारा परिवर्तित-परिवर्धित होता रहता है। सामान्य अवस्था में गुलाबी रंग एवं समय-समय पर गहरे गुलाबी रंग में परिणत हो जाती है। तीसरा ऑरा अभिव्यक्ति को स्पष्ट करता है, यह एक ऐसा दर्पण है जहाँ प्रत्येक इच्छाएँ, कामनाएँ, भावनाएँ परावर्तित होती हैं।

इनके परिवर्तन पर ही रंग बदलते रहते हैं। क्रोधी एवं मानसिक उत्तेजना वाले व्यक्ति अपने ऑरा को काले क्षेत्र में गहरे लाल रंग के धब्बों से भर देते हैं, जबकि भय इसे तुरन्त भूरे रंग में परिणत कर देता है। चौथे प्रकार का वलय भूतकालिक जीवन चरित्र को स्पष्ट करता है। पाँचवें प्रकार का वलय उच्चस्तरीय आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर लेने वालों में ही देखा जाता है। बाहर दिखने वाला तेजोवलय व्यक्ति की अध्यात्मिक उन्नति के स्तर को स्पष्ट करता है कि उसने कितनी प्रगति की है ? यही वह सूक्ष्म आभा है, जो दिव्य-स्थलों में, आश्रमों में, तीर्थ-स्थलों में विद्यमान रहती है जिसे प्राप्त करने के लिए तीर्थ यात्रा का विधान है। थियोसाफी ग्रन्थों में हिमालय क्षेत्र में ऐसा ही प्रकाश पुंज छाये रहने की बात उल्लिखित है। इसमें निहित गुलाबी रंग शुद्ध भावना, तेज लाल को क्रोध एवं उत्तेजना को गाढ़ा, लाल इन्द्रिय-लिप्सा एवं कामुकता को पीला चमकदार बुद्धि क्षेत्र में पैनेपन को, वासन्ती रंग बौद्धिक क्षमताओं को जिसका अंत स्वार्थपरता एवं, अहंकार में होता है, भूरा रंग कंजूस प्रवृति को प्रकट करता है। हरा रंग प्रभावशाली रंग है, इस प्रवृत्ति का व्यक्ति दूसरों को भी अपने जैसा समझता है इसका हल्कापन क्रूरता एवं बर्बरता को स्पष्ट करता है। नीला रंग धार्मिक प्रवृति एवं भक्ति की ओर प्रेरित करता है। इसमें निहित छाया साधना के स्तर पर चेतना की महानता को बताती है कि व्यक्ति कितना आदर्शवादी है। नील लोहित रंग मानसिक प्रखरता आध्यात्मिकता की जागृति एवं गुह्य विद्या की पूर्णता का परिचायक है।

तेजोवलय में निहित रंगों के सम्बन्ध में अब वैज्ञानिक भी इस बात का समर्थन कर रहे हैं कि यह मनुष्य के अन्तराल में छाये भावनाओं की अभिव्यक्ति ही है। विचारणा भावना कल्पना क्षेत्र में आने वाले उतार-चढ़ावों से आभामण्डल में होने वाले परिवर्तनों को जाँचने परखने के लिए स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक द्वय विलियम टिलर एव डेविड वायरस ने विशिष्ट प्रकार के संवेदनशील यंत्रों का विकास किया है। उनका कहना है कि विचारणाएँ, भावनाएँ इतनी तीव्रता के साथ बदलती हैं जिन्हें सामान्य उपकरणों के माध्यम से नहीं पकड़ा जा सकता। व्यक्ति को क्षणभर में उत्कृष्टता से निम्नगामिता की ओर लुढ़कते देखा जाता है। यही कारण

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि प्राचीन मनीषियों ने कठिन साधना विधानों का आध्यात्म उपचारों का निर्माण किया था, जिससे मनुष्य का स्थायी परिमार्जन, परिष्कार हो सके। अपने प्रयोग परीक्षणों में उन्होंने पाया कि भावना विचारणा के परिवर्तन के साथ ही सफेद नीली एवं लाल रंग पर प्रकाश रोशनियों में भारी फेर-बदल होता है। उत्तेजना आवेशग्रस्तता की स्थिति में गहरे लाल रंग की किरणें निस्सृत होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य की भावनाएँ, विचारणाएँ कितनी प्रचंड होती हैं, जो अल्ट्रावायलेट किरणों, लेसर किरणों की तरह क्षण भर में कही से कहीं भी जा पहुँचती हैं। इनका सुनियोजन श्रेष्ठता की दिशा में होने पर व्यक्ति महामानव, देवता, सन्त, ऋषि बनता है एवं उसकी निष्कृटता से उसी व्यक्ति को नर-पिशाच, नर-पशु दुष्ट अत्याचारी बनते देखा गया है।

ड्यूफ यूनिवर्सिटी में कार्यरत वैज्ञानिक स्टीवेन्सन और टिलर ने अपने-अपने अनुसंधान में पाया कि ध्यान की अवस्था में जब शरीर मन उत्तेजना रहित होता है, उस समय लाल रंग की किरणों का निष्कासन समाप्त हो जाता है किन्तु यदि ध्यान के पश्चात् साधक उत्तेजित होता है, तो इन किरणों की मात्रा द्विगुणित वेग से निकलने लगती है। सामान्य स्थिति में आवेश उत्तेजना उतनी हानिकारक नहीं होती जितनी कि साधनाकाल में काम, क्रोध, आवेश, अंहकार, जेसे मनोवेगों की छोटी लहर भी साधक को पतन पराभव की ओर धकेल देती है। अतः इस समय विशेष सावधानी एवं संयम बरतने की आवश्यकता है।

सोवियत संघ के प्रख्यात वैज्ञानिक डा. किर्लियन का कहना है कि मानसिक परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्ति के आभामण्डल में भी परिवर्तन होता रहता है। त्वचा के कुछ विशेष बिन्दुओं पर नीले एवं स्वर्णिम आभा के कण दिखाई देते हैं, जो मानसिक अस्थिरता एवं निस्तेजता को प्रकट करते हैं। कुछ दीप्ति कण त्वचा के एक स्थान से दूसरे स्थान शरीर के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु एवं एक व्यक्ति से दूसरे की ओर जाते रहते हैं, जहाँ वे अवशोषित कर लिये जाते हैं। जब तक पहला समूह पूरी तरह से अवशोषित नहीं हो जाता, तब तक दूसरा समूह नहीं निकलता। इस सम्बन्ध में उन्होंने किर्लियन व आर्गोन फोटोग्राफी द्वारा चित्र भी खीचे हैं। वे धीरे-धीरे चमकती हुई जाती हैं एवं अंत में तीव्र आभा के रूप में चमककर अपने केन्द्र पर पहुँचकर बुझ जाती हैं। इनका रंग नीलिमा लिए सफेद एवं भूरा होता है। ये बुझे मुरझाये प्रकाश समूह अनिर्धारित, अस्त-व्यस्त एवं हीन संकल्प शक्ति को व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि धर्मशास्त्रों में हेय विचार वाले कुसंस्कारियों से दूर रहने के लिए कहा गया है। छुआ-छूत का निर्धारण इसी आधार पर किया गया था। जातिगत आधार पर नहीं। कामी, व्यभिचारी, लोलुप मिथ्याचारी, दम्भी व्यक्तियों के संसर्ग में रहने से उनके सूक्ष्म संस्कार अनायास ही अच्छे संस्कार वालों को प्रभावित करते हैं। इसलिए न तो उनके सम्पर्क में रहें, नहीं उनके द्वारा प्रयोग किये वस्त्रों अथवा सामानों का उपयोग करें, क्योंकि उसमें भी उनका प्रभाव आ जाता है।

रूस स्थित और साइकियेट्रिक इन्स्टीट्यूट की प्रमुख महिला विज्ञानी डॉ. थेल्मा मॉस ने भी अपने प्रयोग परीक्षणों में पाया है कि ध्यान, सम्मोहन अथवा ट्राँस की स्थिति में अँगुलियों के अग्रभाग से निकलने वाली प्राण रश्मियों में भारी परिवर्तन होता है। तनाव, उत्तेजना अथवा निषेधात्मक चिंतन की स्थिति में अवस्थित जिन व्यक्तियों के किर्लियन चित्र उतारे गये तो देखा गया कि फिल्म पर गहरे लाल रंग के चकते पड़ जाते हैं। इनका सर्वाधिक प्रभाव हाथ पर ही होता है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य के भले-बुरे अणुओं की आभा हाथों में प्रकट होती है और सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करती है। धर्म-ग्रन्थों में इसीलिए कहा गया है कि हाथ काट डालने योग्य हैं, जो पाप कर्म में प्रवृत्त होते हैं। तन की बात सर्वविदित है। स्पर्श से उनकी दिव्य प्राण ऊर्जा का लाभ अनायास ही लोगों को मिल जाता है। उनके चरणों को छूने के पीछे यही विज्ञान काम करता है। समर्थ गुरु अपने शिष्य पर शक्तिपात में यही क्रिया दुहराते हैं। रामकृष्ण परमहंस द्वारा विवेकानन्द को, रामदास द्वारा शिवाजी को, विरजानन्द द्वारा दयानन्द को प्राण ऊर्जा का दिव्य अनुदान इसी प्रकार हस्तांतरित हुआ था। इसी आधार पर उदारमना तपस्वी अनेक बार दीन-दुःखियों की भी सेवा, सहायता करते रहते हैं और प्रसन्नता अनुभव करते हैं। न्यूजीलैण्ड का एक गड़रिया अपने या पराये झुण्ड की जिन भेड़ों पर हाथ फेर देता था वे उसी के साथ चल पड़ती और मालिकों द्वारा खींचने पर भी वापस न लौटतीं। गड़रिया ही उलटा हाथ फिराकर उन्हें अपनी पकड़ से मुक्त करता, तब वे वापस लौटतीं। इसमें भी हाथ के माध्यम से सूक्ष्म शक्ति द्वारा भेड़ों को प्रभावित करना ही है।

संकल्प शक्ति एवं एकाग्रता द्वारा प्राण शक्ति का अभिवर्धन एवं प्रकाश अणुओं के रंगों में परिवर्तन भी हो सकता है। इस सम्बन्ध में ई. डगलस ने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार इथेल रोगी का उपचार कर रही थीं। उसी समय उनके हाथ से वासन्ती रंग निकल रहा था। उन्होंने कहा ''मैं चाहूँ तो हरा भी हो सकता है'' हमने पुनः यंत्र के माध्यम से चित्र लिए तो उसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवस्था में हरे रंग की आभा मिली। पूछने पर उन्होंने बताया कि मनुष्य के मन में हो रहे क्षण-क्षण परिवर्तन उनसे निकलने वाले प्रकाश प्रवाह को बदलते रहते हैं, चूँकि यह विचारणा, भावना एवं संकल्प शक्ति से सुसम्बद्ध है। अतः चाहें तो हममें से हर कोई इसे विधेयात्मक रूप से देकर अपनी मनःशक्तियों, अतीन्द्रिय सामर्थ्यों को विकसित कर सकता है अथवा निषेधात्मक विचार-प्रवाह उत्पन्न कर स्वयं को पतनोन्मुख की दिशा दे सकता है। ऐसे व्यक्ति से सभी दूर बने रहेंगे। एक नेगेटिव ऑरा उससे सतत् निकलता रहता है। विचारों की शक्ति व्यक्ति को एक चलता-फिरता चुम्बक बना देती है, जो आकर्षित भी कर सकता है, विकर्षित भी। चेतन सत्ता का विलक्षण खेल है यह !

अन्तरंग को सुधारें, बहिरंग सुविकसित होगा

सम्पदा सम्पादित करना अपने हाथ के सर्वथा बल-बूते की बात नहीं है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता उसमें बाधक भी हो सकती है। प्रकृति-प्रकोपों के कारण कई बार ऐसी विपन्नता उत्पन्न हो जाती है कि करा-धरा पुरुषार्थ मटियामेट हो जाता है।

खेत में अच्छा बीज डालने और खाद पानी का समुचित प्रबन्ध करने से भी यह निश्चित नहीं है, कि इच्छित उत्पादन होकर ही रहेगा। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ओले, कीड़े, टिड्डी जैसे कई उत्पात खड़े हो सकते हैं। दाव लगे तो वन्य-पशु और पक्षी भी उसके अधिकांश भाग को हड़प सकते हैं। चोर उपज को ही नहीं खड़ी फसल को भी काट सकते हैं। आँधी-तूफान से भारी क्षति हो सकती है। सहायता के लिए मजदूर न मिलें, बैल बीमारी से चल बसें, तो सम्पन्न बनने की योजना में प्रकृतिगत या मानवी कारणों से ऐसा कुछ हो सकता है, जिससे मनसूबे धरे के धरे ही रह जायँ। प्रयास के साथ परिस्थिति की अनुकूलता और साधन सहयोग की विपुलता ही भौतिक प्रगति का पथ प्रशस्त करती है, अन्यथा मनसूबे धरे के धरे रह जाते हैं।

उच्च शिक्षा की प्राप्ति, ऊँचे पद पर आरूढ़ होना, प्रतियोगिताओं में सफल होना, उन्नतिशील बनने के लिए आवश्यक है। इनके लिए पूरी तैयारी करने पर भी आकस्मिक रुग्णता, दुर्घटना, आवेश भरी योजना कुछ से कुछ कर सकती है। जो ऐसा सँजोया गया था, वह उलटा हो सकता है। यह भी सम्भव है कि उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर अनुरूप पद न मिले और किसी छोटी आजीविका से सन्तोष करना पड़े। पहलवान भी दंगल में मात खा जाते हैं। अफसर भी पदावनत और निलंबित होते देखे गये हैं। जीवन भर की कमाई को चोर चुरा सकते हैं। कपटी, ठग, विश्वासघात की चोट मार सकते हैं। घर के कुपात्र सदस्य ही कुसंग में पड़कर दुर्व्यसनों के शिकार बनकर उस सम्पदा को स्वाहा कर सकते हैं, जिसके बारे में सोचा गया था कि जिन्दगी का सहारा बनेगी और सुख-सुविधाओं में कोई कमी न पड़ेगी। सम्पन्नता अभीष्ट तो है, पर प्रयत्नरत व्यक्ति उसका समुचित लाभ उठा सकेंगे इसकी कोई गारंटी नहीं।

इसकी तुलना में सुसंस्कारिता की फसल ऐसी है, जो मात्र अपने संकल्प के बलबूते उगाई और पकाई जा सकती है। मन अपना है। शरीर भी अपना है। उन दोनों पर पूरी तरह अपना स्वामित्व है। इच्छानुसार उन्हें सिखाया, समझाया, बदला-सुधारा और मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। इस क्षेत्र में किसी दूसरे का कोई हस्तक्षेप नहीं। यदि प्रण कर लिया जाय कि सुसंस्कारी बनकर रहेंगे, तो यह प्रतिभा अपने बलबूते पूरी की जा सकती है। दूसरों की सहायता इसके लिए आवश्यक नहीं। प्रतिकूलताओं की स्थिति में थोड़ी कठिनाई तो हो सकती है, पर इतनी शक्ति किसी में नहीं जो आदर्शों के प्रति निष्ठावान को पतित पराभूत कर सके। शरीर पर आघात हो सकते हैं। साधनों को नष्ट किया जा सकता है, किन्तु यह सम्भव नहीं कि व्रतशीलों को उत्कृष्टता अपनाये रहने से विरत कर सके। देव मानवों की कथा-गाथायें इसकी साक्षी है कि उनने कठिन समय में भी महानता अपनाये रखी। व्यवधानों को सहते या विकट संघर्ष करके उन्हें निरस्त करते रहे। उत्कृष्टता ऐसा सम्बल है कि यदि उसे एक बार दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया जाय तो फिर उससे डिगा सकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। दधीचि, भागीरथ, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, कर्ण आदि ने महानता को अक्षुण्ण बनाये रखने का निश्चय किया था। कठिनाइयाँ आती रहीं और वे उन्हें दुलराते रहे। ध्रुव, प्रह्लाद जैसे बालकों के साहस भी कठिन प्रसंगों में न टूटे। दमयन्ती, सीता, सावित्री, सुकन्या, शैव्या, अरुन्धती, इला, अपाला एवं मीरा जैसी महिलायें जब अपनी उत्कृष्टता को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए कटिबद्ध हो गईं, तो उनकी गरिमा पर उँगली उठाने की किसी में भी हिम्मत न हुई। विपत्तियों के तूफान उनसे टकराकर वापस लौट गए।

भौतिक सम्पदाओं को उन्नति का आधार तो माना जा सकता है, पर कोई दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि वह उस आकांक्षा को पूरा करके ही रहेगी। उस निमित्त पोषण ही पर्याप्त नहीं। परिस्थितियों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुकूलता भी चाहिए। प्रतिकूलता के अड़ जाने पर तो सारा गुड़-गोबर हो जाता है।

सुसंस्कारिता सम्पादन के संबंध में ऐसी बात नहीं है। उसे स्वावलम्बनपूर्वक कमाया और बढ़ाया जा सकता है। सद्गुणों का अभ्यास अपने बलबूते हो सकता है। दुर्बल मन वाले ही कुसंग से प्रभावित होते हैं। मनस्वी के लिए आत्मा का संकल्प और परमात्मा का विश्वास इन दोनों के सुदृढ़ बने रहने पर ही काम चल जाता है। बुरी आदतें डाली जा सकती हैं, पर यह नहीं समझना चाहिए कि अच्छी आदतें डालना उससे कठिन है। कुम्हार अपनी मर्जी के अनुरूप चाक पर चित्र-विचित्र आकृतियों के बर्तन बनाता रहता है। मनुष्य की अन्तरात्मा यदि समर्थ, सतेज बनी रहे तो वह भी अपने आप को जैसा भी चाहे भला या बुरा गढ़ सकता है। यह कार्य कठिन नहीं, सरल है। समृद्धि अर्जित करने की तुलना में प्रतिभा का उपार्जन सरल है।

एक गान्धी पर करोड़, करोड़पतियों को निछावर किया जा सकता है। एक महामानव लाख पहलवानों से बढ़कर है। इस तथ्य को यदि समझा जा सके, तो व्यक्ति समृद्ध बनने के लिए कितना प्रयत्न करता है, उससे हजार गुना अधिक प्रबुद्ध बनने के लिए करे।

मूर्धन्य कर्णधारों को यदि यह सूझ पड़े कि प्रजाजनों की शारीरिक आवश्यकताओं की तरह अन्तरात्मा की भावनाओं को विकसित करना भी आवश्यक है, तो वे दूसरी तरह से सोचें और अपनी प्रयास योजनाओं का कम से कम आधा भाग सद्भाव सम्वर्धन के लिए निश्चय ही सुरक्षित रखें। विचारशील व्यक्ति आलस्य प्रमाद से छूट सकता है, अवगति के गड्ढे से उछलकर प्रगति की मुड़ेर पर आ सकता है और उस राजमार्ग को पकड़ सकता है, जिस पर चलते हुए अपनी ही नहीं, प्रभाव क्षेत्र की भी दरिद्रता को मार भगा सकता है। सम्पत्ति पुरुषार्थ को उत्पन्न नहीं करती। पुरुषार्थ सम्पत्ति को उत्पन्न करता है। सम्पदा से मनुष्य पैदा नहीं होता। मनुष्य के पसीने से दौलत पैदा होती है। यह समझा जा सके कि तो मनुष्य को समृद्ध, शिक्षित, बलिष्ठ, चतुर बनाने की अपेक्षा ऐसा शिल्पी बनाया जाय जो अपने आप को भी ढाल सके और समीपवर्ती मिट्टी खोदकर उसे देव प्रतिमा के रूप में सुसज्जित कर दे। आवश्यकता इसी कौशल को सीखने और सिखाने की है। यदि ऐसा एक व्यक्ति ढल सके, तो उस पर स्नातक प्रमाण-पत्रों के गाड़ी भरे कागज तोरणों की तरह स्वागत पथ पर लटकाये जा सकते हैं।

सद्गुणी स्वल्प साधनों में भी उनका सदुपयोग करते हुए अमीरों से अधिक प्रसन्न रह सकता है और निर्वाह के अतिरिक्त उतनी ही पूँजी से प्रगति के साधन भी जुटा सकता है। किन्तु यदि दुर्गुणों की, दुर्व्यसनों की भरमार हुई, महत्वाकांक्षाओं की मदिरा जैसी खुमारी चढ़ी रही, तो फिर समझना चाहिए कि कुबेर का कोष या कारूँ का खजाना भी कम पड़ेगा। सम्पत्ति को दुर्व्यसन के समीप ले जाते ही वह इस प्रकार जलकर खाक हो जाती है, मानो पुआल के ढेर में किसी ने जलती लकड़ी डाल दी हो।

परिश्रमी पसीने की बूँदों से खेती उगाते हैं। सज्जन अपने अनेकों सहयोगी और प्रशंसक बुला लेते हैं। जिज्ञासा उभरे तो समाधान बताने वाले किसी भी कोने से निकल आते हैं। पढ़ने में रुचि हो तो जेल के कैदी लोहे के तसले पर कंकड़ों की कलम बनाकर एक-दूसरे से पूछते हुए विद्यावान बने दीखते हैं। इसी प्रगतिशीलता को बोते, उगाते, सींचते, बढ़ाते और रखवाली करते हुए वैभव भरी उपज के स्तर तक पहुँचाया जाना चाहिए। यदि यह लगन लग पड़े तो अकबर जैसे निरक्षर इतने प्रवीण हो सकते हैं कि बचपन से ही काम-काज सँभाल लें और सभा के नवरत्नों का मार्ग-दर्शन करें।

शिक्षा का अपना महत्व है। साक्षारता सम्वर्धन के लिए सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्न चलते ही रहने चाहिए। पैसे की अपनी आवश्यकता है। गरीबी भगाओ आन्दोलन के अन्तर्गत हर व्यक्ति को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया जाना चाहिए। इन प्रयत्नों को रोकने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें तो बढ़ावा ही मिलना चाहिए। कहा यह जा रहा है कि उस प्रज्ञा उन्नयन की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, जिसके आधार पर मनुष्य अपनी गरिमा को पहचानता है, जिम्मेदारी को समझता है और साहस भरे पराक्रम के आधार पर जो हस्तगत हो सकता है, उसकी अनुभूति कर सके।

इसके लिए अलग से कोई विभाग खोलने की जरूरत नहीं है। जो भी वर्ग, क्षेत्र, उपक्रम है, उन्हीं के साथ यह सरसता घुलती रहनी चाहिए कि हर मनुष्य समझदारी, ईमानदारी और बहादुरी का महत्व सीखें। हँसती-हँसाती जिन्दगी जियें। अपनी खुशी बाँटे और दूसरों का दुःख बटायें। सलाह लें और सम्मान दें। व्यस्त रहें, मस्त रहें। कृतज्ञ रहें और सज्जन बनें। इस प्रक्रिया के लिए अलग से विद्यालय खुलें तो भी हर्ज नहीं। हर समझदार व्यक्ति अपने आपको सज्जनोचित ढाँचे में ढालें। अपने गुण, कर्म स्वभाव में शालीनता का समावेश होने दें। इतना करने भर से दूसरों पर उसका प्रभाव पड़ेगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और समीपवर्त्तियों से लेकर दूरवर्त्तियों तक उस प्रक्रिया का अनुकरण करने लगेंगे। चोरी लोग इसलिए करते हैं कि उसका लाभ तत्काल और प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। शालीनता उससे बढ़कर है। उसे अपनाने पर आत्मसंतोष, लोकसम्मान और दैवी अनुग्रह का तिहरा लाभ मिलता है। इसके लिए परलोक पहुँचकर स्वर्ग मिलने जैसी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। उसके सत्परिणाम नकद धर्म की तरह सामने आते हैं। दुर्जन अपने ढंग का दर्प अहंकार दिखाते फिरते हैं, पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि सज्जनों के पास ऐसा कुछ नहीं होता, जिसके कारण अपने को आनन्द और दूसरों को उल्लास दिया जा सके।

शुरूआत अपने से की जा सकती है। शुभारम्भ के लिए आज का दिन ही परम श्रेष्ठ माना जा सकता है। प्रयोगशाला नई बनाने की जरूरत नहीं है। अपने मस्तिष्क एवं चिन्तन का उद्यान उगाया जा सकता है और शरीर द्वारा ऐसी जीवनचर्या का निर्धारण किया जा सकता है, जिसमें गुण, कर्म, स्वभाव की आदर्शवादिता पग-पग पर दृष्टिगोचर होने लगे। गुलाब खिलता है तो उसकी महक चारों ओर फैलती है। चन्दन अपने समीपवर्ती झाड़-झंखाड़ को भी सुगंधित बना लेता है। इन तथ्यों को जो भी समझ सके, वह अपने को सुधारे-समीपवर्ती तो अनायास ही सुधरता चला जाएगा।

क्या मनुष्य स्वभावतः आक्रामक है ?

नृतत्व विज्ञानी डॉ. वाशवर्न मनुष्य की बौद्धिक क्षमता का इतिहास प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि ''सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य का मस्तिष्क कई लाख वर्षों तक विकसित नहीं हुआ, सात लाख साल पूर्व मनुष्य का मस्तिष्क पहले की अपेक्षा दूना हो गया। चार लाख वर्ष पहले समूची स्थिति में अचानक परिवर्तन आया। मनुष्य का मस्तिष्क एक साथ कई आयामों में विकसित हुआ। किन्तु विकास की इस प्रक्रिया में सबसे बड़ी त्रुटि यह रह गई कि उसकी आक्रामक मनोवृत्ति में जरा भी परिवर्तन नहीं आया। पाषाण युग की सभ्यता एवं वर्तमान की मनोवृत्तियों में अब भी एकरूपता है। उनका कहना है कि आज आवश्यकता इसकी है कि मनुष्य बदले और उसे बदलना ही होगा अन्यथा मानव जाति का विनाश निश्चित है।''

उक्त विचार यूनेस्को द्वारा आयोजित ''पेरिस'' की एक कान्फ्रेन्स में प्रस्तुत किया गया था विषय था अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किस प्रकार शान्ति की स्थापना की जाय ? किस प्रकार मानवी मूल्यों की पुनर्स्थापना हो? इसमें १४ देशों के १८ मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने भाग लिया। विकासवाद का उपरोक्त सिद्धान्त सही न भी माना जाय तो भी मानवी स्वभाव को बदलने की आवश्यकता को तो समझना ही होगा।

दिवंगत प्रो. सोरोकोव ने अपनी पुस्तक ''सोशल एण्ड कल्चरल डायनेमिक्स'' में नौ सौ वर्षों में संसार के देशों में जितने युद्ध किए हैं, उसके आधार पर विस्तृत तालिका बनायी है। इस तालिका के अनुसार बारहवीं सदी से बीसवीं तक रूस ने अपने समय का ४२ प्रतिशत, स्पेन ने ६७ प्रतिशत, पौलेण्ड ने ५८ प्रतिशत, ग्रीस ने ५७ प्रतिशत, इंग्लैण्ड ने ५६ प्रतिशत, फ्रांस ने ५० प्रतिशत, हॉलैण्ड ने ४४ प्रतिशत, रोम ने ४१ प्रतिशत, आस्ट्रिया ने ४० प्रतिशत, जर्मनी ने २८ प्रतिशत वर्ष युद्ध करते बिताया है। उक्त सम्मेलन में उपस्थित सभी मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि मनुष्य का मन परिवर्तनशील है, उसे बदला जाना सम्भव है।

आक्रामक, अति उत्साही व्यक्ति अपनी सामर्थ्य का अत्यधिक मूल्यांकन करने वाला होता है। इस आवेश में दूसरे को मच्छर की तरह मसल देने की अहमन्यता सवार रहती है। कभी-कभी बदला लेने की भावना प्रबल होती है। कभी मात्र नीचा दिखाने और स्वयं यशस्वी बनने तथा लाभान्वित होने की प्रवृत्ति का मन पर इतना अधिक दबाव बढ़ जाता है कि उसे आतंक प्रदर्शित करने के लिए कोई न कोई बहाना ढूँढ़ना पड़ता है। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि संसार में कोई न्याय-व्यवस्था भी है, जो आक्रमक को नीचा दिखाने के लिए स्वयं ही अदृश्य व्यवस्था बनाती रहती है। शान्ति प्रिय प्राणी अपनी प्रकृति के अनुरूप बढ़ते भी रहते हैं और फलते-फूलते भी हैं और पारस्परिक सहयोग का लाभ उठाते रहते हैं। इसके विपरीत आक्रमणकारी आपस में ही ईर्ष्या-द्वेष की आग में जलते रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है, भेड़ियों की तरह एक-दूसरे को दबोचने का अवसर भी नहीं चूकते। सिंह, व्याघ्रों की संख्या संसार में घटती ही जाती है, क्योंकि प्रकृति नहीं चाहती कि हानिकारक तत्व संसार में अधिक बढ़ें और अधिक समय तक जीवित रहें। आक्रामक अपराधियों को राजदण्ड, सामाजिक, असहयोग एवं तिरस्कार भी निरन्तर सहन करना पड़ता है। यह उनकी जीवनी शक्ति को घटाने एवं परास्त करने में कम भूमिका नहीं निभाती। आत्म हनन का पश्चाताप भी उन्हें कम नहीं सहना पड़ता।

यों मनुष्य भूतकाल की विपन्न परिस्थितियों में आत्म रक्षा के नाम पर आक्रामकता अपनाता रहा है, पर स्वभावतः अपनी शारीरिक एवं मानसिक संरचना के कारण वह आक्रामक है नहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह 'मूड' क्यों ऑफ हो जाता है ?

आजकल एक नया रोग चला है। उस रोग का नाम है—"मूड ऑफ होना।" आधुनिक समय के सभ्य व शिक्षित कह जाने वालों में प्रायः अधिकांश इससे ग्रसित हैं। उनको यह कहते हुए सुना जा सकता है कि आज तो अमुक काम कर ही नहीं सके, मूड ही नहीं हुआ। क्या करें आज तो ऑफिस जाने का मन ही नहीं हुआ ? इस रोग की दवा किसी चिकित्सक के पास नहीं है। इसकी दवा उन्हीं लोगों के पास है, जो यह कहते हैं कि "मूड ऑफ" था। वैसे यह रोग है बड़ा भयंकर। दवा नहीं की तो जीवन को ही शुष्क, नीरस ही नहीं आकर्षक विहीन बना देता है।

मूड "ऑफ" होने के लक्षण कुछ इस प्रकार होते हैं—शरीर के अंगों में हल्की पीड़ा, शिथिलता व आलस्य का प्रभाव रहता है। काम करने में अनुत्साह, सिर भारी, चित्त उदास तथा मन बेचैन रहता है। यह शिकायत आज पचास फीसदी लोगों की रहती है। वस्तुतः यह हमारे अपने आपे द्वारा शरीर और मन पर लादी गयी, अतिरिक्त थकान है, जो निकट भविष्य में किसी न किसी व्याधि के रूप में प्रकट होती है।

शारीरिक शक्ति का जितना सम्बन्ध आहार से है, उससे अधिक जीवन क्रम की नियमितता से है। जिसने इसका नियमन और निर्धारण किया है, उसे न कभी थकान अनुभव होती है न कमजोरी। इसका मूल कारण मनुष्य की अनियमितताएँ हैं, जो मूड ऑफ होने की सांकेतिक बीमारी के रूप में प्रकट होती हैं।

आज के समय में अनेकों साधन जुट जाने से शरीर को तो आराम मिला है, पर मन काफी बोझिल हो गया है। वातावरण की कृत्रिमता और अर्थ प्रधान युग की जटिल प्रक्रिया कुछ ऐसी हो गयी है कि मनुष्य को मानसिक आवेगों से छुटकारा नहीं मिलता। इनसे हम जितना थकते हैं, उतनी थकान श्रमशीलता से नहीं आती।

प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक, विचारक, मनोविज्ञानी विलियम जेम्स ने अपनी पुस्तक "दी एनर्जी ऑफ मैन" में अनेकों प्रकार से स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपनी शक्ति का एक छोटा-सा अंश ही काम में ला रहा है। यदि वह सम्पूर्ण शक्ति से काम लेने की कला सीख जाय, तो वह अपने जीवन में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ पा सकता है।

उन्होंने इन शक्तियों के ठीक से अभिव्यक्त न होने के कारणों पर विचार करते हुए कहा है-सामान्यता संसार में दो तरह के आदमी होते हैं एक तो निष्क्रिय, निकम्मे और दूसरे क्रियाशील। क्रियाशीलों की पंक्ति में आने वालों को उन्होंने पुनः दो वर्गों में बाँटते हुए कहा है कि एक के काम करने के पीछे भय समाया होता है यथा काम नहीं करेंगे, तो अधिकारी नाराज हो जायेंगे, पता नहीं वह कैसा व्यवहार करें आदि भयजनित समस्यायें उन्हें घेरे रहती है। दूसरी स्थिति के लोग लोभ-लालच से ग्रसित होकर काम करते हैं। तरह-तरह के सपने बुनने, गगनचुम्बी कल्पनायें करने में जुटे रहते हैं। जेम्स के अनुसार पहली स्थिति चिन्ताजनित अवसाद को जन्म देती है। शंकाओं से घिरे रहने के कारण इसमें आधे-अधूरे मन से काम होता है। मूड की खराबी व अत्यधिक थकान ऐसी ही दशा में जन्म लेती है। दूसरी दशा में काम होता तो दीखता है, परिपूर्ण मनोयोग के अभाव में शरीर के ज्यादा घसीटे जाने के कारण थकान व मूड की खराबी ही पल्ले पड़ती है। इन दोनों ही दशाओं में व्यक्ति की समूची क्षमताएँ अभिव्यक्त नहीं हो पाती हैं।

एक तीसरी स्थिति का विवेचन करते हुए मनोविज्ञानी हेराल्ड ने अपने अध्ययन "हाउ टु लूज योर फीअर्स शर्मन एण्ड फाइण्ड योर की टु हैप्पीनैस" में स्पष्ट किया है कि क्रियाशीलता को सुनियोजित एवं सुसम्बद्ध करने से इस मूड ऑफ होने के रोग से छुट्टी मिलती है। उनके अनुसार एक औसत मनुष्य अधिकतम १६ से १८ घण्टे क्रियाशील रह सकता है। यहाँ क्रियाशीलता का मतलब एक ही कार्य खुद को लगाने से नहीं है। इस अवधि में ६-८ घण्टे उसे व्यक्तिगत जीवन की देख-भाल, घर-परिवार आत्मीय सम्बन्धियों में देने पड़ते हैं। इससे एक काम यह भी होता है कि वह हल्का होता और ताजगी प्राप्त कर लेता है। बचे हुए आठ से दस घण्टे को श्रमशीलता में नियोजित किया जा सकता है। ऐसा करना उचित भी है। शर्मन का कहना है कि प्रारम्भ में हो सकता है कि इस अवधि में लगातार काम करने में घबराहट, बेचैनी का सामना करना पड़े। उन्होंने कई प्रयोगों में इसे सच पाया। देखा यह गया कि काम छुड़ा देने पर बेचैनी, घबराहट आदि सब गायब हो जाती है। निष्कर्ष में पाया गया है कि इसका कारण काम नहीं, श्रम-मनोयोग एवं जिम्मेदारी की भावना-इन तीनों की असम्बद्धता थी। जैसे-जैसे सुसम्बद्धता आती गयी, मूड ऑफ होने की तकलीफ भी दूर हुई और क्षमताएँ भी बढ़ती गयीं।

उन्हीं के शब्दों में "जब स्वयं हम कोई काम करते हैं तो थोड़ी देर बाद थकान-सी अनुभव होती है, उस समय काम छोड़कर आराम किया जाय तो थोड़ी ही देर में थकान समाप्त हो जाती है, पर यदि काम करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही रहा जाय, तो भी थोड़ी ही देर में थकान समाप्त हो जाती है। उनके अनुसार दूसरी स्थिति में थकान का अनुभव न होना, व्यक्ति की कार्य के प्रति गहरी अभिरुचि दर्शाता है।'' वे कहते हैं कि यदि धीरे-धीरे कार्य में रुचि जगाकर, उसमें मन को लगाकर काम करने की आदत डाली जाय, तो मनुष्य आश्चर्यजनक रूप से अपनी कार्यक्षमता को बढ़ा सकता है।

जिन्होंने भी जीवन में, इस सूत्र को धारण किया, कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ पा सकने में सफल हुए। नोबुल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध वैज्ञानिक सी. वी. रमण ने एक स्थान पर अपने बारे में बताते हुए कहा कि प्रारम्भ में बहुत देर तक पढ़ने से मेरा मन रह-रहकर उचट जाता था। पढ़ना चाहता था, पर मूड न बनता। आखिर एक दिन मेरे पिता ने मार्ग सुझाया। कहा-पहले पढ़ने के प्रति रुचि पैदा करो। शरीर और मन असंतुलित दशा ही इसका प्रधान कारण है। धीरे-धीरे मैंने इसका अभ्यास शुरू किया और कुछ ही दिनों के बाद फिर कभी मन उचटने की शिकायत नहीं हुई।

बात भी सही है। क्रमबद्धता और नियमितता हमारी शारीरिक और मानिसक शक्तियों को बनाये रखने के लिये सहायक हैं। एक दिन बहुत काम किया, दूसरे दिन ढीले पड़े रहे, तो क्रमबद्धता टूटती है। इसका हानिकारक प्रभाव भी पड़ता है। इसी प्रकार उत्तेजित दशा में कुछ करना भी ठीक नहीं होता। हमारे क्रिया-कलाप वर्ष भर बहने वाली सरिता की तरह अविरल रूप से एक गति में होने चाहिये न कि बरसाती नाले की भाँति, जो चार दिन तो किनारों को तोड़ता-फोड़ता बहता है और बाकी दिन सूखा पड़ा रहता है। अनियमितता और क्रमहीनता मनुष्य की शक्तियों को वैसे ही चुका देती है, जैसे बरसाती नाला।

मनोविज्ञानी नैपोलियन हिल अपने अध्ययन ''थिंक एण्ड ग्रो रिच'' में इसका एक और कारण बताते हैं कि वह है शारीरिक और मानसिक श्रम में सामञ्जस्य न होना। प्रायः दिन भर दफ्तर में काम करने वाले कर्मचारी, अधिकारी मानसिक श्रम तो करते हैं, पर शारीरिक श्रम की उपेक्षा कर देते हैं। इस असंतुलन के कारण मूड ऑफ होने की बीमारी ही उनके पल्ले पड़ती है। चाहे एक्स-रे के आविष्कारक रोएण्टजन हों या साहित्यकार अर्नाल्ड रायनवी किसी के भी जीवन का अध्ययन करें, तो पायेंगे उन्होंने व्यस्त मानसिक कार्यों के साथ-साथ शारीरिक श्रम को भी महत्व दिया।

हम अपने जीवन में भी यह कर सकते हैं। यदि हमारा काम मानसिक है, तो थोड़ा-सा शारीरिक श्रम, चाहे वह खेलकूद हो या वाटिका में फूल-पौधे ठीक करना, यह हमारे मूड को हल्का-फुल्का बना देंगे। यदि काम शारीरिक श्रम सम्बन्धी हो तो रचानात्मक साहित्य का अध्ययन बिगड़े मूड को ठीक कर देगा और वह अड़ियल टट्टू की तरह जहाँ-तहाँ अड़ना बन्द कर देगा। यदि हम कार्य में श्रम, मनोयोग एवं जिम्मेदारी की भावना का सम्मिश्रण करना तथा जीवन क्रम का सुनियोजन करना सीख जायें, तो हमारी क्षमता कई गुनी विकसित हो सकती है और कार्य का स्तर भी बढ़ सकता है। पिछड़ापन तो दूर होगा ही, साथ ही मूड खराब होने की शिकायत भी न रहेगी।

जीवन पद्धति वही ठीक, जो ''मूड'' को सही रखे

कई बार व्यक्ति की ऐसी अवस्था हो जाती है, जिसमें काम में मन नहीं लगता, फलतः आधा-अधूरा बन पड़ता है, निश्चित कर्त्तव्यों और दायित्वों की उपेक्षा होने लगती है, व्यवहार असामान्य हो जाता है और जिस कार्य की सफलता सुनिश्चित मानी गई थी, उसमें असफलता हाथ लगती है। ऐसा क्यों हुआ ? पूछने पर पता चलता है कि ''मूड'' ठीक नहीं था।

आखिर यह ''मूड'' है क्या ? मनोविज्ञानी जैजोंक के शब्दों में कहें, तो वह मानसिक अवस्था, जिसके अच्छे या बुरे होने पर व्यवहार, क्रिया और परिणाम में तदनुरूप अंतर दिखाई पड़ने लगे, सामान्य बोलचाल की भाषा में ''मूड'' कहलाती है। यों तो यह एक अस्थायी मनोदशा है, पर जब तक रहती है, आदमी को सक्रिय या निष्क्रिय बनाये रहती है। सक्रियता, उत्फुल्लता, स्फूर्ति, उत्साह, उमंग उस मनःस्थिति का नतीजा है, जिसमें वह सामान्य रूप से अच्छी होती है, जबकि बुरी मनःस्थिति में अंतरंग निष्क्रिय, निस्तेज, निराश और निरुत्साह युक्त अवस्था में पड़ा रहता है। इस प्रकार विनोदपूर्ण स्थिति में व्यक्ति यदि दिखाई पड़े, तो यह कहा जा सकता है कि वह अच्छे ''मूड'' में है, जबकि नैराश्यपूर्ण दशा उसके खराब ''मूड'' का द्योतक है।

विलियम एन० मोरिस ने अपने ग्रन्थ ''मूड दि फ्रेम ऑफ माइण्ड'' में मूड बनाने और बिगाड़ने वाली परिस्थितियों को चार वर्गों में विभाजित किया है। पहली श्रेणी में उन घटनाओं को रखा है, जो हल्के विधेयात्मक या निषेधात्मक स्तर की हैं, दूसरे में संवेगात्मक प्रकरणों को सम्मिलित किया गया है, तीसरी कोटि भूतकालीन आवेगात्मक स्मृतियों की है, जबकि चौथे में वह निरोध शामिल है, जो आवेश उत्पन्न करने वाले प्रसंगों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को रोकता है। मोरिस के अनुसार इन सभी स्थितियों में मनोभाव प्रभावित होता है और घटना के भले-बुरे स्वभाव के अनुसार उसका निर्माण होता है। यहाँ तक संपूर्ण मनोविज्ञान जगत एकमत है, पर मूड-निर्माण संबंधी प्रक्रिया में विशेषज्ञों में पारस्परिक सहमति नहीं हो सकी है। ''दि साइकॉलॉजी ऑफ फीलिंग एण्ड इमोशन'' नामक रचना में मनोविज्ञानी सी. ए. रूकमिक लिखते हैं कि उत्तेजना पैदा करने वाला उद्दीपन जब समाप्त हो जाता है, तो आवेग भी धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगता है। इस निर्बल संवेग की अवस्था को ही वे ''मूड'' की संज्ञा देते हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो घनीभूत आवेश की तीव्रता जब समय के साथ छितराती है, तो वही ''मूड'' बन जाती है, जबकि ''हैण्डबुक ऑफ सोशल कॉग्निशन'' नामक पुस्तक में एलीस एम. आइसेन कुछ भिन्न मत प्रकट करती हैं। उनका मानना है कि उत्तेजना और मूड साथ-साथ उत्पन्न होते और समानान्तर रहकर कार्य करते हैं। दोनों का प्रादुर्भाव एक ही घटना से होता है। वे किसी ऐसी प्रक्रिया से इन्कार करती हैं, जो आवेग की निर्बलता के उपरांत ''मूड'' जैसी स्थिति पैदा करती हो। ''मूड'' को वह एक अवशिष्ट अवस्था मानती हैं, एक ऐसी सूक्ष्म अवस्था जो मनोवेग के आरम्भ से पृष्ठभूमि में रहती तो है, पर तब तक स्वयं को अप्रकट स्तर का बनाये रहती है, जब तक आवेश एकदम क्षीण न हो जाय।

''मूड'' संबंधी यह सैद्धान्तिक विवेचन समझ लेने के उपरांत हर एक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वह सदा स्वस्थ मनोदशा में रहे। यदा-कदा वह कभी गड़बड़ा जाय, तो उसे तुरन्त पूर्व स्थिति में लाने की कोशिश करनी चाहिए। जिसका मानसिक धरातल जितना लोचपूर्ण होगा, वह उतनी ही जल्दी अपने इस प्रयास में सफल होता प्रतीत होगा। जो जितना शीघ्र सामान्य मानसिक अवस्था में वापस लौट आता है, मनोविज्ञान की दृष्टि से उसे उतना ही स्वस्थ मन वाला व्यक्ति कहा जा सकता है। महामानवों और महापुरुषों की मानसिक संरचना लगभग ऐसी ही होती है। 'वे क्रोधित नहीं होते, यह बात नहीं।' गुस्सा वे भी करते हैं, पर जिस तीव्रता से वह प्रकट होता है, उसी गति से विलुप्त भी हो जाता है। सामान्य लोगों में यह विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती, इसी कारण से लम्बे समय तक वह उससे प्रभावित बने रहते हैं। लगातार खराब ''मूड'' में बने रहने के कारण मन फिर उसी का अभ्यस्त हो जाता है और व्यक्ति अवसाद का पुराना रोगी बन जाता है।

मूर्धन्य व्यवहार विज्ञानी एल. बुडजिया अपनी पुस्तक, ''डायमेसन्स ऑफ मूड'' में अध्ययन का ब्यौरा देते हुए लिखते हैं कि आज के कठिन समय में जीवन की जटिलताएँ इतनी बढ़ गई हैं कि व्यक्ति अधिकांश समय बुरी मनोदशा में बना रहता है। गाँवों की विरल आबादी से जैसे-जैसे वह शहरों के जनसंकुल वातावरण के निकट आता जाता है, वैसे-ही-वैसे पेचीदगियाँ बढ़ती जाती हैं। इनके बढ़ने से मानस पर उसका दबाव तदनुसार बढ़ता जाता है। प्रकारांतर से यही दबाव खराब मनःस्थिति का कारण बनता है। उनका मानना है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ जीवन शनैः-शनैः जटिल होता चला गया। आज से सौ वर्ष पूर्व मानवी जिंदगी जितनी सरल थी, अब वह वैसी रही नहीं। यही कारण है कि तब लोग खेल और मनोरंजन की तरह जितनी सहजता से तनावरहित उन्मुक्त जीवन गुजार लेते थे, वैसा आज सम्भव नहीं। आदि मानवों का जीवन और भी सहज था। उन्हें न भोजन की चिंता थी न भविष्य की फिक्र। जब कभी भूख लगती, जंगली कंद-मूलों एवं जन्तुओं के शिकार से अपना पेट भर लेते, नींद आती, तो पेड़ तले सो लेते, न घर बनाने की आकांक्षा न संपत्ति जोड़ने की अकुलाहट, आज यहाँ, तो कल वहाँ-यही उनकी दिनचर्या थी। जहाँ इतनी सीधी-सादी जिन्दगी होगी, वहाँ अंतःकरण प्रफुल्ल क्यों न रहेगा ? वे कहते हैं कि जटिल जीवन से समस्याएँ बढ़ती हैं और उस बढ़ोत्तरी का असर मन की स्वाभाविकता पर पड़े बिना नहीं रहता।

अशांत चित्त का दूसरा महत्वपूर्ण कारण गिनाते हुए वे लिखते हैं कि महत्वाकांक्षा यों तो प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है, पर यह अनियन्त्रित होने पर दुःख-शोक का कारण बनती है। इन दिनों वह इस कदर बढ़ी-चढ़ी है कि मनुष्य अधिकाधिक दौलत जुटा लेने, यश कमा लेने और वाहवाही लूट लेने की ही उधेड़बुन में हर घड़ी उलझा दिखाई पड़ता है। जीवन इसके अतिरिक्त भी कुछ है, उन्हें नहीं मालूम। बस यही अज्ञानता विपन्न मनोदशा की निमित्त बनती है। यहाँ वे प्राच्य दार्शनिकों के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहते हैं कि जीवन के वास्तविक लक्ष्य को जब तक स्मरण नहीं रखा जायेगा, तब तक अवांछनीय आकांक्षाओं से ध्यान हटा पाना सरल नहीं और यदि ऐसा नहीं हुआ, तो हल्के-फुल्के जीवनक्रम की अभिलाषा कभी न उपलब्ध हो सकने वाली मृगतृष्णा बनकर रह जायेगी।

यह सच है कि आदमी का रहन-सहन जितना निर्द्वन्द्व व निश्छल होगा, उतना ही अनुकूल उसकी आंतिरक स्थिति होगी। इसके विपरीत जहाँ बनावटीपन, दिखावा, झूठी शान, प्रतिस्पर्धा होंगे, वहाँ लोगों की मनोदशा उतनी ही असामान्य होती है। एम. टी. मेडनिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और मेहराबियन के प्रस्तुत सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने आस्ट्रिया के कई शहरों में जाकर इस बात का अध्ययन किया कि शहरी वातावरण का मानवी मनोभावों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? प्राप्त परिणाम इस बात का स्पष्ट संकेत था कि भोले-भाले ग्रामीणों की तुलना में स्वभाव से अधिक चतुर-चालाक और कृत्रिमता को अपनाने वाले शहरी लोगों का ''मूड'' अपेक्षाकृत ज्यादा बदतर होता है। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि नगर-निवासियों में से ६६ प्रतिशत लोग ऐसे थे, जिनकी सप्ताह में औसतन पाँच से लेकर छः दिन तक मनोभूमि न्यूनाधिक अच्छी नहीं रहती। ३१ प्रतिशत व्यक्ति ऐसे पाये गये, जो सप्ताह में तीन से चार दिनों तक खराब ''मूड'' के शिकार बने रहते। शेष तीन प्रतिशत में एक प्रतिशत से भी कम लोग ऐसे निकले, जो उस अशांत परिस्थिति में भी स्वयं को स्थिर चित्त रखने में सफल होते पाये गये, जबकि शेष ऐसे थे, जो बहुत कठिन परिस्थितियों में ही इस रुग्णावस्था की गिरफ्त में आते।

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि जब कभी मनःस्थिति खराब हो जाय, तो उसे अपने हाल पर अपनी स्वाभाविक मानसिक प्रक्रिया द्वारा ठीक होने के लिए नहीं छोड़ देना चाहिए। इसमें समय ज्यादा लम्बा लगता है और शारीरिक, मानसिक क्षति की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए सलाह देते हुए वे कहते हैं कि इससे जिस भी प्रकार सम्भव हो सके, उबरने का शीघ्र प्रयास करना चाहिए। विलम्ब करना अपने आप को हानि पहुँचाने के समान है। अमेरिकन साइकियेट्रिक एसोसियेशन के ''डायग्नोस्टिक एण्ड ए स्टेटिस्टिकल मैनुअल'' के अनुसार ऐसी मनोदशा, जिसमें रुचि और प्रसन्नता समाप्त हो जाती हो, इस स्थिति से उबर पाना जल्दी सम्भव नहीं होता। इससे बाहर निकलने और स्वस्थ सामान्य अवस्था में आने में करीब दो सप्ताह जितना समय लग सकता है। इतने लम्बे समय तक अवसादग्रस्त स्थिति में बने रहने से शरीर के विभिन्न तन्त्रों पर अनावश्यक दबाव पड़ने लगता है, जिसका प्रकट लक्षण विभिन्न प्रकार की असामान्यताओं के रूप में सामने आता है। ऐसी स्थिति में भूख बढ़ या घट सकती है। इसी प्रकार वजन, नींद, यौन, क्रियाएँ आदि सामान्य स्तर से अधिक या कम हो सकती हैं। थकान, हीनभावना, कल्पना और चिंतन संबंधी अक्षमता जैसे दोष भी इस अवस्था में प्रकट हो सकते हैं। यह तो वे असामान्यताएँ हुईं, जो व्यक्त होती और दिखाई पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे कितने ही दोष हैं तो अप्रकट स्तर के बने रहते हैं। इनमें आन्तरिक क्रियाएँ और रक्त-रसायनों की न्यूनाधिकता शामिल है। विशेषज्ञों के मतानुसार व्यथित मनोभूमि में एड्रीनल कार्टेक्स से कोर्टिसोल नामक एक विशेष रसायन स्रवित होने लगता है, जिससे शरीर की चयापचय क्रिया असाधारण रूप से प्रभावित होती है। अवसादग्रस्त अवस्था में थायरॉयड ग्रन्थि के रस-स्राव पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ते देखा गया है। इसके अतिरिक्त और भी कितनी ही आन्तरिक क्रियाओं को यह मानसिक दशा प्रभावित करती है। बाह्य लक्षणों में स्मरण शक्ति की कमजोरी, निर्णय ले सकने की अक्षमता, व्यवहार में चिड़चिड़ापन, क्रोध आदि अनेक कमियाँ खराब ''मूड'' की स्थिति में उत्पन्न होते देखी जाती हैं। इसीलिए विशेषज्ञ बराबर इससे बचे रहने की बात कहते हैं।

उनके अनुसार यदि कभी ''मूड'' खराब हो जाय, तो एकाकी पड़े रहने की तुलना में मित्रों के साथ हँसी-मजाक में स्वयं को व्यस्त कर लेना, उससे उबरने का एक कारगर तरीका हो सकता है, पर इसके साथ जिस एक बात के प्रति मनोवैज्ञानिक सावधान करते हैं, वह यह कि ''मूड'' को चर्चा का विषय न बनाया जाय। इससे मनोदशा के सुधारने की अपेक्षा बिगड़ने की सम्भावना और बढ़ जाती है।

मनोदशा को दुरस्त करने का एक अन्य तरीका भ्रमण भी हो सकता है। मनःशास्त्रियों का विचार है कि प्रकृति के सम्पर्क से मन जितनी तीव्रता से प्रकृतस्थ होता है, उतनी तेजी से अन्य माध्यमों के सहारे नहीं होता देखा जाता, अतएव ऐसी स्थिति में पार्क, उपवन, बाग, उद्यान जैसा आस-पास कोई सुलभ स्थल हो, तो वहाँ जाकर मानसिक अवस्था को सुधारा जा सकता है। नियमित व्यायाम एवं खेल का सहारा लेकर भी मन की दुरवस्था को घटाया-मिटाया जा सकता है।

आजकल अवसाद आदि मनोविकारों को भूलने के लिए शराब, गाँजा, भाँग, अफीम, ब्राउन सुगर जैसे नशीले पदार्थों का बहुतायत से सेवन हो रहा है। इनके प्रयोग से पूर्व यह बात जान लेनी चाहिए कि गम गलत करने में इनसे राहत जैसी अनुभूति अवसादग्रस्त को हो सकती है, पर यह कोई इलाज नहीं, महज विषाद को भुलाने का उपक्रम मात्र है। इससे स्थिति सुधरने की तुलना में और बिगड़ती चली जाती है, जिससे बाहर निकल पाना बाद में अत्यन्त मुश्किल हो जाता है।

अंतिम उपचार अध्यात्म का है। यदि व्यक्ति भौतिकता में आध्यात्मिकता का समावेश करता चले और जीवन में आवश्यक संयम-नियम का अनुपालन करे, आवश्यकता से अधिक की आकांक्षा और स्तर से ज्यादा की चाह में प्रवृत्त न रहे, तो मूड के खराब होने जैसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी भी कठिनाई से वह बचा रहेगा। यदि कभी इस बुरी मनोदशा से ग्रस्त हुआ भी, तो संयम और अनुशासन के कठोर अनुपालन के कारण जल्द ही उस स्थिति से बाहर आ जाता है। इस दृष्टि से अध्यात्मवादी अधिक लाभ में रहते हैं। वे जितनी निश्चिततापूर्वक जीवनयापन करते हुए अपने सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ते चलते हैं, उतनी शांति और संतुष्टि भौतिकता के चकाचौंध में जाने वालों में परिलक्षित नहीं होती। अतएव उत्तम यही है कि वैसा जीवनक्रम अपनाया जाय, जिसमें अवसाद भरी मनःस्थिति में पड़ने की समस्त संभावनाएँ ही निरस्त हो जायँ। जीवन पद्धति वही अच्छी है, जो हमें शांति और संतोष प्रदान करे एवं चरम लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ाती चले।

विघातक इरादे बदल भी सकते हैं

पाल ब्रंटन ने अपनी ''गुप्त भारत की खोज'' में जहाँ अनेकों योगियों की अद्भुत चमत्कारी घटनाओं का उल्लेख किया है, वहाँ अध्यात्म विषय में अभिरुचि रखने वालों और खोजियों के मन्तव्यों का भी संकलन किया है। उनके अनुसार भारतीय वैज्ञानिक सी. वी. रमन के सम्मुख एक योगी को साइनाइड विषपान करने का उदाहरण सामने आया, तो उनने इतना ही कहा कि यह विज्ञान के लिए एक चुनौती है। उसे तथ्य, प्रमाणों एवं तर्कों द्वारा इनका खण्डन अथवा मण्डन करना चाहिए।

''लिविंग युनिवर्स'' के लेखक सर यंग हस्बैण्ड का कथन है कि जिस जड़ ब्रह्माण्ड का ऊहापोह भौतिक विज्ञान द्वारा किया जाता है, उसके अन्तराल में एक चेतना ब्रह्माण्ड भी है, जिसमें आत्मा की गतिविधियाँ और रीति-नीतियाँ काम करती हैं। इस सन्दर्भ में भारत अभी भी बहुत कुछ रहस्योद्घाटन करने की स्थिति में है। हिमालय की कन्दराओं में ऐसी आत्माएँ अवस्थित हैं, जिन पर मानवी शरीर के साधारण नियम लागू नहीं होते।

अपने इसी ब्रह्माण्ड में एब्सोल्यूट वैक्युम (पूर्ण शून्य) की यत्र-तत्र परिस्थितियाँ हैं। वे स्वेच्छाचारी प्रतीत होती हैं। मनमर्जी से जहाँ-तहाँ परिभ्रमण करती हैं, पर यह सम्भव नहीं है कि उन्हें आत्म-शक्ति द्वारा किसी स्थान विशेष पर घसीटकर लाया जा सके और उस क्षेत्र में चलने वाली समस्त गतिविधियों को ठप्प किया जा सके, भले ही वे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हों ?

इन दिनों अणु बम, हाइड्रोजन बम, रसायन बम, न्यूट्रॉन बम आदि की बहुत चर्चा होती है और इनकी विघातक शक्ति का भयावह वर्णन किया जाता है। यह हो सकता है कि जिस क्षेत्र में इनका उत्पादन एवं प्रयोग की योजना है, उसे पूर्ण शून्य के प्रभाव में ले लिया जाय और इनका प्रयोग ही न हो सके। अन्तरिक्ष में एक इस प्रकार की ''पूर्ण शून्य'' की रचना हो सकती है जिसमें ''लैसर'' और मृत्यु किरणों तक को ठप्प किया जा सके। उनके सामने प्रक्षेपणास्त्रों और बमों की क्षमता तो खिलौने जैसी कही जा सकती है।

विनाश की शक्तियाँ अद्भुत हैं, वे अपने मारक कृत्यों और क्षमताओं का प्रदर्शन बहुधा करते रहते हैं। पर यह भी असम्भव नहीं है कि पूर्ण शून्य की क्षमता के सम्मुख वे अपने को असहाय एवं असमर्थ अनुभव करें और विघातक योजनाएँ उनके निर्माताओं के मस्तिष्क तक ही सीमित रहें। जो करना चाहती हैं, वे न कर सकें।

प्रकाश की गति सर्वोपरि मानी गई है। अब तक के गणित की पहुँच यहीं तक है कि एक सैकण्ड में १,८६,००० मील चलने सकने वाला प्रकाश ही सर्वाधिक द्रुतगामी है। किन्तु इससे भी आगे गुरुत्वाकर्षण की दौड़ है। पृथ्वी एक छोटा ग्रह है, इसलिए उसकी भ्रमण क्षमता स्वल्प है। किन्तु बड़े ग्रह पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश पा सकने पर प्रकाश की गति से भी अधिक गति हस्तगत हो सकती है।

''ब्लैक होल'' जिन ग्रहों के, पदार्थ के सम्पर्क में आते हैं, उसे इस प्रकार पराभूत कर लेते हैं कि उसे तनिक दूरी तक भी देखा न जा सके। किन्तु इन ब्लैक होलों का केन्द्र-बिन्दु जहाँ होता है, वहाँ इतनी गति होती है कि प्रकाश का समूचा परिकर ही उसमें अदृश्य हो सके। यह गति की ज्ञात चरम सीमा है। इसे प्रकाश गति से कहीं अधिक समर्थ माना गया है।

जिस प्रकार वर्षा के दिनों में पानी, ठण्डक के दिनों में ओस और गर्मी के दिनों में धूल ऊपर-से-नीचे की ओर बरसती देखी जाती है। उसी प्रकार अनन्त अन्तरिक्ष के कितने ही तारक और प्रवाह अपनी धरती पर विभिन्न स्तर के परमाणु एवं तरंग विकिरण बिखेरते रहते हैं। इनमें पृथ्वी की पाचन शक्ति जिन्हें उपयोगी एवं आवश्यक समझती है, उन्हें ग्रहण करती एवं पचाती रहती है। जो अनुपयोगी होते हैं, उन्हें अपने इर्द-गिर्द तनी छतरी से रोकती और जिधर-तिधर छितरा जाने देती है। फिर भी उसे छतरी को बेधकर कुछ न कुछ मात्रा में वह विशिष्ट विद्युत प्रवाह नीचे आता रहता है।

छतरी तान लेने पर कड़ी धूप का एक अंश ऊपर रुक जाता है, फिर भी उसे पार करके गर्मी का एक अंश नीचे उतर आता है और मनुष्य अनुभव करता है कि उसे गर्मी लग रही है। इसी प्रकार वर्षा के दिनों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छाता लगा होने पर पानी का एक अंश इधर-उधर बह जाता है, फिर भी उसके बारीक छेदों में से रिसकर पानी हल्की फुहारों के रूप में नीचे आता रहता है और छाता लगाकर चलने पर भी कपड़े या शरीर का कुछ भाग नम हो जाता है। छाते का कपड़ा मोटा है या झीना इस बात पर भी छनकर नीचे आने वाली बात बहुत निर्भर करती है।

पृथ्वी से कुछ मील ऊँचाई पर विचित्र पदार्थों की विनिर्मित छतरियाँ तनी हैं, जिन्हें आयनोस्फियर, ट्रोपोस्फियर, लीथोस्फियर, बायोस्फियर आदि नाम दिये गये हैं। यह कवच पृथ्वी से लेकर ४००० किलोमीटर तक चले गये हैं। इन्हें एक छलनी के बाद दूसरी छलनी कह सकते हैं। इनसे टकराते और छितराते हुए अन्तरिक्षीय विकरण का अनुपयुक्त भाग इधर-उधर बिखर जाता है और ऊपर ही रुक जाता है और पृथ्वी अपनी कामचलाऊ स्थिति में बनी रहती है। यदा-कदा ऐसे अवसर भी आते रहते हैं कि अधिक सशक्त दबाव ऊपर से नीचे तक आ पहुँचता है और उससे वातावरण असाधारण रूप में प्रभावित होता है। ऐसे अवसर पृथ्वी के जन्म से लेकर अब तक अनेक बार आये हैं, जिनमें अन्तरिक्षीय तरंग वर्षा की प्रबलता से पृथ्वी की परिस्थितियों में असाधारण उथल-पुथल होती रही है। हिम युग, जल प्रलय, अत्यधिक उष्मा, प्राणघातक वायु आदि के अभिवर्षण से ऋतुओं में भारी उलट-पुलट हुई है और अभ्यस्त वातावरण में अन्तर आने से जीवधारियों ने या तो अपनी प्रकृति बदली है या फिर उनमें से अधिकांश समाप्त हो गये हैं। यही बात वनस्पतियों के सम्बन्ध में है। उनकी आकृति और प्रकृति में हेर-फेर हुआ है। प्राणधारी जल, वायु और वनस्पतिजन्य आहार के आधार पर अपना जीवन धारण किये रहते हैं। इस आधार पर उनकी आदतें बदलती हैं और गुण, स्वभाव में परिवर्तन होता है। यों ऐसे अवसर यदा-कदा ही हजारों वर्षों बाद कारण विशेष में आते हैं अन्यथा एक बार का निर्धारित ढर्रा लम्बे समय तक चलता रहता है, थोड़े परिवर्तन को ध्रुव प्रदेशों की संरचना और कार्य पद्धति अपने ढंग से सन्तुलित कर लेती है। यह क्रम इस प्रकार चलता रहता है कि सर्व साधारण को उसका पता भी नहीं चल पाता और आने वाले आँधी-तूफान अपने ढंग से उतर जाते हैं।

पृथ्वी के ऊपर चढ़े हुए छातों का यथास्थिति बने रहना आवश्यक है। वह ऐसे ही हैं, जैसे शरीर पर कपड़े या मकान पर छत का आच्छादन। यह आवरण फट जाय या झीना पड़ जाय, तो ऋतु प्रभाव शरीर को प्रभावित करेगा और असाधारण होने पर स्वस्थता को लड़खड़ा देगा।

ब्रह्माण्ड में बरसने वाले तरंग-प्रवाह को जितना पृथ्वी की साधारण संरचना रोक सकती है, उतना ही सम्भालकर पाती है यदि वह दबाव अत्यधिक मात्रा में हो जाय तो बेचारी पृथ्वी क्या, कोई भी सशक्त ग्रह पिण्ड भी उसकी चपेट में आ सकता है और उसका कचूमर निकल सकता है। तारकी का जन्म-मरण इसी आधार पर होता रहता है। स्वाभाविक मौत तो उनमें से बहुत कम की आती हैं। उनमें से अधिकांश को ऐसे ही किसी अन्तरिक्षीय प्रवाह की चपेट में आकर दुर्घटनाग्रस्त होना पड़ता है।

आवश्यकता इस बात की है कि भौतिक विज्ञान के आधार पर विघातक शक्तियों पर अंकुश लगा सकने जैसे कोई विशिष्ट क्षमता विकसित हो और अनर्थ को रोक सकने के लिए ऐसे जुटायें जो भयभीत मानवता को सान्त्वना दे सकें और जो उपलब्ध सामर्थ्य के आधार पर मदोन्मत्त हो रहे हैं, उन्हें नये ढंग से सोचने के लिए सहमत कर सकें। आवश्यक नहीं कि जो आज का निश्चय है, वह कल भी उसी रूप में बना रहे। एकाकी चिन्तन मनुष्य को दुराग्रही बनाता है, पर जब विपरीत पक्ष को ध्यान में रखते हुए विचार करने का अवसर मिलता है, तो वह अपनी राह बदल भी सकता है।

परा मनोविज्ञान के अन्तर्गत मेण्टल ट्रान्स फार्मेशन की, 'ब्रेन वाशिंग' की एक सशक्त प्रक्रिया है, जो मनुष्य को आज की अपेक्षा कल दूसरे ढंग से सोचने और अहंकारी, उन्माद को दूरदर्शी विवेक अपनाकर नये ढंग से सोचने के लिए सहमत कर सकती है।

यहाँ अणु आयुध सब कुछ है, अन्तरिक्ष बढ़िया किस्म का रण क्षेत्र है, दूसरे का विनाश करके हम सुरक्षित रह सकते हैं, यदि इस विचारधारा का कोई दूसरा विकल्प सूझ पड़े, अपनी भूल का आभास हो और साथ ही यह अनुभूति हो कि जिस आक्रामक योजना को सफल, सुनिश्चित माना गया था, वह व्यर्थ, निरर्थक भी सिद्ध होने जा रही है तो कोई कारण नहीं कि आक्रमण की दिशा में उठते पैर और बढ़ते हाथ रुक न सकें।

हमारी महत्वाकांक्षाएँ निकृष्ट न हों

महानता की प्राप्ति महत्वाकांक्षाओं की प्रेरणा से ही होती है। इसमें किसी प्रकार भी सन्देह नहीं है। प्रथम तो महत्वाकांक्षा महान् मानस की साक्षी है। दूसरे महत्वाकांक्षा महाकर्तृत्व का उद्बोधन करती है। जिसमें जिस प्रकार की आकांक्षा होती है, वह उसी प्रकार का मार्ग तथा उसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार की गतिविधि को अपनाता है और उसे पूरा करने के लिये उसके अनुरूप ही साहस तथा कष्ट सहिष्णुता का अनुसरण किया करता है। यदि उसकी आकांक्षा प्राणवती तथा सच्ची है, तो वह उसके लिये उतना ही त्याग एवं बलिदान करने को तत्पर रहता है।

जिसकी इच्छाएँ छोटी-छोटी तथा सामान्य शारीरिक आवश्यकताओं तक ही सीमित रहती हैं, वह उसी परिधि तक अपनी गतिविधियों को बढ़ाता है। उसके आगे बढ़ने की न तो उसे प्रेरणा होती है और न साहस। उस सीमा से आगे उसकी कल्पना की गति भी नहीं होती।

इच्छा से ही मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करता है और प्रेरणा के अनुसार ही गतिविधि अपनाता है। मनुष्य की क्रियाएँ उसकी इच्छाओं का ही तो खेल है। जो महान् आकांक्षाएँ रखता है, वह उसी के अनुसार कार्य कर महान् बन जाता है और जो छोटी और ओछी आकांक्षाएँ रखता है, वह क्षुद्र तथा नगण्य बना रहता है।

महत्वाकांक्षा का अर्थ है सामान्यता से बढ़कर इच्छा करना और उसकी पूर्ति से उस क्षेत्र से बढ़कर स्थिति तथा स्थान पाना।

धन का क्षेत्र ले लीजिये, गुजारे के लायक कमा लेने की कामना आकांक्षा के रूप में कोई महत्व नहीं रखती, यह तो आवश्यकताओं की पूर्ति की मजबूरी है। उससे आगे बढ़कर ऊँचे स्तर से रहने और सम्पत्ति जमा करने की इच्छा सामान्य कामना से कुछ आगे की बात है, किन्तु जब यही कामना मिल मालिक बनने, संसार के धन-कुबेरों में गणना कराने और बड़े-बड़े उद्योगपतियों में नाम लिखाने की इच्छाएँ बन जाती है, तब यह महत्वाकांक्षा बन जाती है। सामान्यता से विरलता की स्थिति में पहुँचने की कामना ही महत्वाकांक्षा है।

महत्वाकांक्षा के एक-दूसरे से विपरीत दो रूप होते हैं। एक शुभ और दूसरा अशुभ। उसी प्रकार उनकी पूर्ति असम्भव होने पर भी शुभ महत्वाकांक्षी चरित्र नायक की तरह उज्ज्वल पृष्ठ में और अशुभ महत्वाकांक्षी इतिहास के मलीन पृष्ठ पर अंकित होते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक होने पर भी एक विरल व्यक्ति पतित और कलंकी, एक श्रद्धा और सम्मान के साथ देखे-सुने और याद किया जाते हैं, दूसरे घृणा एवं तिरस्कार के साथ। दोनों ने अपनी लक्ष्य प्राप्ति में चाहे समान ही त्याग, बलिदान अथवा कष्ट सहन क्यों न किया हो, कितना ही परिश्रम, प्रयत्न एवं उद्योग क्यों न किया हो, किन्तु शुभ अथवा अशुभ के साथ संसार का यह भिन्न दृष्टिकोण अवश्य बना रहेगा।

संसार को विजय करने की इच्छा रखने वाला सिकन्दर निःसन्देह महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसकी आकांक्षा बहुत ही बड़ी और विरल थी। इसे मूर्तिमान् करने के लिये उसने बहुत बड़ा त्याग किया, अपार कष्ट उठाये और अनन्त उद्योग किया और उसने अनेक देशों पर अपनी विजय-वैजयन्ती भी फहराई तथापि विरल व्यक्ति होने पर भी वह इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ पर लिखे जाने का गौरव प्राप्त न कर सका, इसका एक मात्र कारण यही था कि उसकी महत्वाकांक्षा अशुभ थी। उसकी विजय के पीछे कोई भी मांगलिक उद्देश्य न था। उसकी महत्वाकांक्षा उसके व्यक्तिगत दम्भ और शक्ति अहंकार की उद्धतता से दूषित थी। उसने अपने व्यक्तिगत अहंकार को तुष्ट करने के लिये न जाने कितने देशों को रौंद डाला, हजारों-लाखों निरपराधों को मौत के घाट उतारा और अपनी सेना के असंख्यों सैनिकों को निरुद्देश्य समराग्नि में आहुति बना डाला। निरर्थक अशांति, अराजकता, युद्ध और रक्तपात का दोषी होने के कारण ऐतिहासिक होकर भी सिकन्दर महान् न बन सका। यद्यपि अनेक लोग उसे सिकन्दर महान् की पदवी देते हैं, किन्तु उसका महान् मानने वाले व्यक्ति उस जैसी ही आततायी वृत्ति के हो सकते हैं। प्रत्युत् कोई भी निष्पक्ष और बुद्धिमान् व्यक्ति सिकन्दर को उसकी उस विजय के लिए महान् मानने को तैयार न होगा। वह तो उसे रणलिप्सु तथा रक्त-रंजक ही कहेगा। एस अशुभता के कारण ही सिकन्दर का सारा बलिदान, त्याग तथा उद्योग असफल होकर रह गया, जिसका फल उसके लिए ऐतिहासिक अपकीर्ति के सिवाय और कुछ न ला सका।

चाणक्य राजनीति क्षेत्र का महान् व्यक्ति है। यद्यपि उसने नन्द तथा आम्भीक जैसे राजाओं को आमूल नष्ट कर डाला। अनेक युद्ध कराये ही नहीं उनका नेतृत्व भी किया। जहाँ तक रक्तपात का प्रश्न है, चाणक्य के जिम्मे भी यह बात आती है तथापि राजनीति क्षेत्र का वह एक विरल व्यक्तित्व है और इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ से अंकित है और लोक में श्रद्धा तथा सुयश का भागी है।

सिकन्दर तथा चाणक्य दोनों युद्ध के हेतु रहे। किन्तु सिकन्दर कलंकित और चाणक्य यशस्वी। इसका एकमात्र कारण यही है कि चाणक्य का उद्देश्य, उसकी महत्वाकांक्षा का ध्येय और उसके सारे युद्धों का लक्ष्य शुभ था। जहाँ विजय के पीछे सिकन्दर की यह महत्वाकांक्षा थी कि वह सारे संसार का एकछत्र शासक बने, संसार उसकी अपराजेय शक्ति के सम्मुख नमन करे, उसका साम्राज्य विस्तार हो और मानव-जाति उसकी दास बने। वहाँ चाणक्य की महत्वाकांक्षा यह थी कि देश की राजनीतिक अव्यवस्था तथा अस्त-व्यस्तता दूर हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शासन में स्थिरता आये। छोटे-छोटे राज्यों के रूप में खण्ड-खण्ड देश एक और एक राष्ट्र बनें। राजाओं की अनीति और अत्याचार का दमन हो, नन्द जैसे राजाओं का उन्मूलन हो, जनता का त्रास दूर हो, सब ओर सुख-शांति और व्यवस्था की परिस्थितियाँ दिखाई देने लगें। राष्ट्र एक संगठन और एक राजनीतिक सूत्र में बद्ध हो। इसकी शक्ति बढ़े, आचरण उज्ज्वल हो और देश से विदेशियों का भय दूर हो।

जहाँ सिकन्दर की महत्वाकांक्षा उसने शक्ति-दर्प और व्यक्तिगत अहंकार से प्रेरित थी, वहाँ चाणक्य की महत्वाकांक्षा का आधार देश-शक्ति, राष्ट्र-शक्ति, समाज के हित और लोक-रंजन ही था। उसका उससे यत्किंचित भी अहंकार अथवा स्वार्थ न था। यही शुभ और अशुभ का अन्तर था, जिससे दोनों की महत्वाकांक्षाओं ने दोनों की ऐतिहासिक स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर कर दिया।

मनुष्य को महत्वाकांक्षी होना चाहिये, महत्वाकांक्षा से ही मनुष्य महान् बनता है। बिना ऊँची कल्पना और आकांक्षा के वह यों ही सामान्यतर स्थिति में पड़ा रहता है। किन्तु अपनी महत्वाकांक्षा में शुभ-अशुभ का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। नहीं तो साधारण व्यक्ति जहाँ कुछ समय के लिये सीमित क्षेत्र में ही अपवाद, कलंक अथवा धिक्कार के पात्र बनते हैं, वहाँ असाधारण व्यक्ति अशुभ आकांक्षाओं के कारण इतिहास में स्थायी रूप से युग-युग धिक्कारे जाते हैं। यह जीवन की बड़ी व्यापक, विराट् और दूरगामी असफलता है। इस परिणाममूलक महत्वाकांक्षा से कहीं अच्छा एवं कल्याणकर है कि मनुष्य साधारण जीवन परिधि में सज्जनतापूर्वक चुपचाप जीवन पूरा कर ले। इससे वह महान् भले न बन पाये, किन्तु लोक से लेकर परलोक तक युग-युगान्तर के लिये उसकी आत्मा तो कलंक, ग्लानि और पश्चाताप की आग में न जलेगी।

यदि आपकी महत्वाकांक्षा धनवान, यशवान अथवा बलवान् बनने की है बड़ा अच्छा है। आपको उसे मूर्तिमान करने के लिए यथासम्भव पुरुषार्थ और प्रयत्न करना चाहिये, फिर भी इससे पहले कि आप अपनी महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित एवं परिचालित हों यह देख लीजिए, पूरी तरह विवेचन कर लीजिए कि आपकी महत्वाकांक्षा अशुभता के दोष से तो दूषित नहीं है। उसमें लोक-रंजन, सामाजिक हित अथवा आत्मोद्धार की भावना के स्थान पर शोषण, प्रतिशोध, प्रतिहिंसा, भोग, विस्तार आदि के विषैले बीज तो सन्निहित नहीं हैं। यदि ऐसा हो तो तत्काल ही अपनी उन महत्वाकांक्षाओं को तिलांजलि दे दीजिए अथवा उनका सुधार-संशोधन कर डालिए, क्योंकि इससे तो लोक से लेकर परलोक तक के बनने-बिगड़ने की सम्भावना होती है। अपयश और अशांति मूलक महानता से शांति-संतोष और सुखदायक सामान्यता हजारों-लाखों गुना अच्छी है।

इस सम्बन्ध में आत्म-विवेचना करते समय निष्पक्ष और निःस्वार्थ रहने की आवश्यकता है। यदि आँख पर से इन आवरणों को उतारकर दिग्दर्शन न किया गया तो अपने दोष दिखाई न देंगे। स्वार्थ और पक्षपात के दोष दृष्टि को ऐसा क्षेण दे दिया करते हैं, जिससे असत्य, सत्य और अहित, हित दिखलाई देने लगता है और मनुष्य अपने ही दृष्टिकोण से स्वयं प्रवंचित हो जाता है। इसलिए महत्वाकांक्षाओं के विषय में उनके रूप और उनका विवेचन करने में बहुत ही सतर्क और सावधान रहना चाहिये।

महत्वाकांक्षी बनिए, उनमें शुभ-संकल्प का समारोपण करिये, उनको मूर्तिमान करने के लिए सत्पथ का अवलम्बन करिये और संसार में महान् उन्नतिशील और यशस्वी होकर इस महत्वपूर्ण मानव-जीवन को सफल एवं सार्थक बनाइये। परमेश्वर आपकी सहायता करें।

महत्वाकांक्षा की सनक से खड़े ये अजूबे

महत्वाकांक्षाएँ प्रायः उसे पालने वालों को तो हैरान-परेशान करती ही हैं, अन्य अनेकों को भी अछूता नहीं छोड़तीं। शांतिपूर्वक रहने और दूसरों को रहने देने का एक ही तरीका है कि औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अपनाया जाय और विचारों में उच्चस्तरीय आदर्शों को समाविष्ट किया जाय।

एक समय था, जब विश्व के अधिकांश भाग में सामंतवाद का बोलबाला था। सामंतवादी साम्राज्य का एक ही लक्ष्य होता था—विस्तारवाद। जिसे इसकी आकांक्षा होती, वही डाकुओं का, बलिष्ठ लोगों का समर्थन प्राप्त कर ऐसे ही दस्युओं का ऐसा वलिष्ठ गिरोह बनाता, जिससे पास-पड़ौस के इलाकों में आतंक के सहारे अपना वर्चस्व कायम किया जा सके। मारकाट मचती, तो निर्दोषों की खून की नदियाँ बह जातीं, पर उन साम्राज्यवादियों को इसकी क्या परवाह थी ? उन्हें तो धन, दौलत और राज्य चाहिए, सो इन आकस्मिक आक्रमणों से मिल जाते। बस फिर क्या था ? अँधे को आँखें चाहिए। वह किस प्रकार मिलती हैं, कठोर अंतःकरण वालों को इसकी क्या चिंता ? पर जो दूसरों का चैन छीनते हैं, उन्हें भी तीसरे शांति से नहीं जीने देते। सेर को सवा सेर मिलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हैं और अगले को पदच्युत कर पिछले उस पर अधिकार करते रहते हैं।

कभी चीन में भी ऐसे घटनाक्रम तेजी से घट रहे थे। यह ईसा पूर्व ३०० की बात है। उन दिनों चीनी शासक अपने-अपने राज्य की सुरक्षा के लिए विशाल दीवारें विनिर्मित कर रहे थे। तब भारत में मजबूत महल बनाने और पहाड़ियों पर किले खड़े करने एवं चारों ओर खाई खोदने का प्रचलन था, पर चीनी सामंतों न एक कदम आगे बढ़कर समुद्र की सीमाओं को पृथक् करने की विभाजन रेखाएँ खड़ी की थीं। सामान्य-सा देश अनेक छोटी रियासतों में विभाजित था। इतने पर भी उन्हें चैन नहीं। घात-प्रतिघात के आक्रमण-प्रत्याक्रमण बराबर चलते रहते और निर्बल, सबलों का शिकार बनते।

यह क्रम अभी खत्म भी नहीं हुआ था कि ईसा से २४ घण्टे पूर्व वहाँ 'चेन' नामक एक शक्तिशाली सम्राट का उदय हुआ। वह समूचे राष्ट्र पर अपना एकाधिकार कर लेने के मनसूबे बनाने लगा। इच्छा उपजी, तो तदनुरूप योजनाएँ बनने और क्रियान्वित होने लगीं। इस क्रम में उसने सैकड़ों लड़ाइयाँ लड़ीं और रक्तपात इस कदर मचाया कि छोटे राजा उससे मिल जाने में ही अपनी भलाई समझने लगे। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में पूरे चीन पर उसका एकछत्र राज्य हो गया। वह वहाँ का चक्रवर्ती बन बैठा, पर इतने से ही बाहरी आक्रांताओं को रोका तो नहीं जा सकता था। आखिर उन्हें भी तो साम्राज्य, धन और यश की कामना थी। चेन ने समझा था कि अब चैन से दिन गुजारने से उसे कोई रोक नहीं सकता, पर शायद उसने उस ''चेन प्रतिक्रिया'' (शृंखला प्रतिक्रिया) को भुला दिया था, जिसकी शुरूआत कभी उसने नृशंस लूट-पाट मचाकर की थी। भीड़-भाड़ में जब हल्की-सी भी धक्का-मुक्की हो जाती है, तो उसका रेला-सा चल पड़ता है और तब तक जारी रहता है, जब तक वह आखिरी सिरे को छू न ले। अब विपुल-संपदा के अधिपति चेन की बारी थी। मध्य एशिया के कबाइली छापामार उसकी नींद हराम किये हुए थे। बीच-बीच में वे आक्रमण करते, संपत्ति लूटते और भारी बर्बादी मचाते। जब यह सिलसिला आये दिन चलने लगा, तो रक्षा का उपाय सोचा गया। योजना बनी कि उत्तर-पश्चिम सीमा पर एक विशाल दीवार खड़ी की जाय, जिससे आक्रमणकारियों से राज्य की सुरक्षा हो सके और इस विशालकाय आकांक्षा पूरी करने का श्रेय-सौभाग्य भी मिले। अब तक एक ही प्रश्न था कि इतना विपुल धन कहाँ से कैसे प्राप्त हो ?

पर सनक अपनी महत्वाकांक्षा किसी-न-किसी प्रकार पूरी कर ही लेती है। हठवादी चेन की बढ़ी-चढ़ी महत्वाकांक्षा ने उस असंभवजन्य कार्य को पूरा करने की ठानी। कार्य आरम्भ कर दिया गया। दीवार बनने लगी। प्रबन्ध ऐसा किया गया कि रास्ते में जो नदी-नाले निकलें, वे भी उसके नीचे होकर गुजरें। इस निमित्त अनेक पुल बनने लगे। कार्य इतना बड़ा था कि उसके लिए आस-पास के क्षेत्र में उपलब्ध ईंट-पत्थर पर्याप्त न थे। परिणाम यह हुआ कि मोटी दीवार की पोल को भरने के लिए समीपवर्ती क्षेत्र के पेड़-पौधे, बालू-रेत जो भी मिले काटकर भर दिये गये। आधुनिक अनुसंधान बताते हैं कि यह भी जब अपर्याप्त साबित हुए, तो भूखे, कंगालों को उसमें जिंदा दफन किया जाने लगा। इसके प्रमाण आज भी जहाँ-तहाँ दीवार से बाहर झाँकते उनके कंकाल के रूप में मौजूद हैं।

इस अभूतपूर्व संरचना के लिए कुशल कारीगर और प्रशिक्षित मजदूर चाहिए, सो भी इतने, जितने से चेन की महत्वाकांक्षा जल्दी-से-जल्दी पूरी हो सके। इतने कुशल शिल्पी और श्रमशील श्रमिक एक साथ कैसे उपलब्ध हों ? हल इसका भी निकाल लिया गया। दूर-दूर के क्षेत्रों से बलिष्ठ जवानों को पकड़कर दास बना लिया गया। उन्हें बड़ी संख्या में पकड़ तो लिया गया, पर इससे पूर्व उनके भोजन, आवास, विश्राम जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के बारे में सोचा तक न गया। अकुशल प्रबंध और दिन-रात के कठिन श्रम से हृष्ट-पुष्ट जवान भी जल्द ही जब क्षय रोग के रोगी जैसे लगने लगे। इतने पर भी जब उन पर समुचित ध्यान न दिया गया, तो बड़ी संख्या में उनकी मौतें होने लगीं। सड़ते-गलते शरीर को ठिकाने लगाने के लिए योजनाकारों को मोटी दीवार के रूप में अच्छी कब्र मिल गई। सभी को सामूहिक रूप से दीवारों से जहाँ-तहाँ दफनाया जाने लगा। इससे ईंट गारे की भी कमी पूर्ति कुछ हद तक हो जाती थी। उपाय अच्छा लगा, तो यह सिलसिला चल पड़ा। जब भी कारीगरों और मजदूरों की मृत्यु से उनकी कमी पड़ती, तो दूसरे राज्यों पर आक्रमण कर ऐसे लोग पकड़ लिये जाते। मरने पर फिर उनका दफन उसी में कर देते। इस प्रकार उस हत्यारी दीवार ने लगभग एक लाख लोगों को निगल लिया। यह दीवार संबंधी तत्कालीन दस्तावेजों से ज्ञात होता है।

चेन ने सोचा था कि विशालकाय निर्माण के उपरांत उसे आक्रांताओं का त्रास नहीं झेलना पड़ेगा, पर अनुमान गलत निकला। अब दस्युओं ने दीवार में जहाँ-तहाँ सेंध लगाना शुरू किया। इस प्रकार वे चेन-साम्राज्य में लूट-पाट करने और भागने में सफल होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहे। दीवार पर बने रक्षकबुर्ज के चौकीदार और सेना भी उनका दमन न कर सके। जो हुआ, वह मात्र इतना कि दीवार टूटती और मरम्मत होती रहती, पर यह क्रम भी अधिक दिनों तक जारी न रह सका। चेन के उत्तराधिकारियों के लिए इसकी देख-रेख कठिन पड़ गई, फलतः वह जहाँ-तहाँ गिरने और टूटने लगी। राज्य भी स्थिर न रह सका। तलवार के बल पर जिन सामंतों को कभी काबू किया गया, अब वे भी अपनी तलवारें चमकाने लगे। चेन-वंशज उन्हें वश में न रख सके। परिणाम यह हुआ कि फिर चीन के खंड-खंड हो गये।

कारण साफ था कि विजय किन्हीं उच्चादर्शों के नाम पर राष्ट्रीय एकीकरण के लिए उसे ससुंगठित और सबल बनाने के लिए नहीं प्राप्त की गयी थी और न अधीनस्थ सामंतों को विजय से पूर्व अथवा बाद में ऐसा कुछ समझाया गया था, कि यह सब राष्ट्र के हित के लिए किया जा रहा है।

प्रचार से निजी स्वार्थ तो कोई छिपता नहीं। यदि ऐसा प्रचारित किया भी गया होता, तो तदनुरूप आचरण के अभाव में वह झूठा ही साबित होता। यही कारण है कि उद्देश्य उच्च न होने से देश उस रूप में संगठित न रह सका और चेन के बाद पुनः सत्ता-संघर्ष के लोभ में परस्पर आक्रमण-प्रत्याक्रमण शुरू हो गये।

आज चीन की दीवार संसार के महानतम आश्चर्यों में गिनी जाती है। वह २१५० मील लम्बी है और ऊँचाई १५ फुट से लेकर ३१ फुट तक है। चौड़ाई औसतन ३२ फुट है। समग्र दीवार १५ वर्षों में बनकर पूरी हुई। विश्व के कोने-कोने से लोग उसे देखने आते हैं, पर पर्यटक यह नहीं समझ पाते कि चेन यह क्यों न सोच पाया कि मनोबल संपन्न अंतराल और देशभक्ति से भरे-पूरे सैनिक, आक्रमणों को निरस्त करने में सफल हो सकते हैं। विशालकाय किले और संरचनाएँ उस कार्य को पूरा नहीं कर सकते।

वर्तमान में चीन की दीवार खंडहर बनकर रह गई है। दिन-दिन वह और गिरती-बिखरती जा रही है। साथ ही अपनी मूक भाषा में सर्वसाधारण को बताती रहती है कि किस प्रकार महत्वाकांक्षा की बढ़ी-चढ़ी सनक जिन पर उभरती है, वे कैसे-कैसे अजूबे खड़े करते व धनबल, जनबल, बुद्धिबल को अपार क्षति पहुँचाते हुए यशस्विता प्राप्त करने का एक असफल व हास्यास्पद प्रयास करते हैं।

दोषारोपण से घृणा-घृणा से युयुत्सा

मनोविकार बहुधा अपने को ही गलाते-घुलाते रहते हैं, पर उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं, जो आक्रामक स्तर के होते हैं और दूसरों को क्षति पहुँचाये बिना सन्तुष्ट नहीं होते। चिन्ता, भय, निराशा जैसी प्रवृत्तियों में मनुष्य स्वयं ही घुटता रहता है और उस घुटन से अपनी आन्तरिक क्षमताओं को नष्ट-भ्रष्ट करके दीन-दयनीय बनता चला जाता है। इसके विपरीत क्रोध, द्वेष, क्रूरता को तिरस्कृत, पीड़ित दंडित किये बिना होता ही नहीं। उद्धत अहंकार भी दूसरों को गिराकर तुलनात्मक दृष्टि से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के ताने-बाने बुनता रहता है। ईर्ष्या, कुढ़न, जलन अक्सर उद्धत अहंकार की प्रतिक्रिया ही होती हैं, वे दूसरों को अपने आक्रोश का निशाना बनाती हैं। छुटपुट, लड़ाई-झगड़ों से लेकर महायुद्ध तक इसी पृष्ठभूमि पर विकसित होते हैं।

अपने पक्ष के किसी भी प्रतिपादन को सही सिद्ध करना और दूसरे पक्ष पर अनेकानेक दोषारोपण करना दूषित यह एक प्रचार तन्त्र है। इसीसे प्रेरित होकर युद्धोन्माद भड़कता है और घृणा, द्वेष के बीज फलते-फूलते हैं।

लड़ाई की अवांछनीयता और सहयोग की उपयोगिता सिद्धान्त रूप से हर किसी को समझाई जा सकती, पर विकृत 'अहं' उसे कथन श्रवण तक ही सीमित रखता है और मान्यता, भावना एवं क्रिया की गहराई तक उसे उतरने नहीं देता। जो हम सोचते हैं वही उचित है—जो हम चाहते हैं वही आवश्यक है। जब ऐसी मान्यता जम गई हो तो फिर अपनी बात का अन्ध समर्थन और दूसरे पक्ष पर अनेकानेक दोषारोपण करने में तर्क बुद्धि जुट जाती है और तिल को ताड़ बनाकर ऐसी विभीषिकाएँ रच देती हैं, जिनसे निपटने के लिए युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा ही दिखाई न पड़े. ''हमारा नहीं दोष दूसरों का है'' सिद्ध करने की जब पहले से ठान-ठन गई हो तो सन्तुलित विचार विनिमय के लिए कोई गुंजायश नहीं रहती मात्र अनिर्णीत विवाद हो सकता है। प्रतिष्ठा का प्रश्न बनकर सुदृढ़ पूर्वाग्रह किसी भी सफाई या तर्क से झुक नहीं सकता। यदि दलीलें अपने पक्ष में कम पड़ती होंगी तो भी वह हारने वाला नहीं, सामने वालों को दुर्बुद्धि एवं दुर्भावनाग्रस्त बताकर डटा अपनी ही बात पर रहा जायेगा। विवेक का उदय पक्षपातरहित स्थिति में ही हो सकता है। उद्धत अहमान्यता के तूफान में न्यायोचित तथ्य का पता लगाने वाले विवेक के पैर टिक ही नहीं पाते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी जानते हैं कि द्वितीय महायुद्ध में आस्ट्रिया ने सर्विया को और जर्मनी ने पोलेण्ड को नीचा दिखाने के लिए जो आक्रमण किये थे वे सत्ता-मद में चूर पक्ष की उद्धत कार्यवाहियाँ थीं। समस्या उतनी जटिल नहीं थी कि सद्भावनापूर्ण आपसी विचार-विनिमय से सुलझाई न जा सकी होती। यही बात व्यक्तिगत और वर्गगत विद्वेष विग्रहों में होती है। मनुष्य का 'अहं' सीमा लाँघकर जब उद्धत हो जाता है तो उसमें दूसरे पक्ष की कठिनाइयाँ और दलीलों को समझने की इच्छा ही नहीं रहती। युद्ध ही उसे सरल उपाय सूझता है। यदि इसके विपरीत न्याय और समन्वय की दूसरे पक्ष की दलील और कठिनाई समझकर समन्वयात्मक मार्ग निकालने की इच्छा रही होती तो वह हल निकल सकता था, जो दोनों की अपेक्षाकृत नहीं अधिक सस्ता पड़ता।

लड़ाइयाँ छोटी हों या बड़ी उनके मूल में मनुष्य की यह मान्यता काम करती है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूसरों के साथ बल प्रयोग करना उचित और आवश्यक है। एक ग्रीक कहावत है—''शान्ति चाहते हो तो युद्ध की तैयारी करो'' सशक्त पक्ष अपने अहं को प्रतिष्ठित करने के लिए छोटों के साथ दमन की नीति अपनाता है। इसमें उसे तिहरा लाभ प्रतीत होता है। अपने अहं की तुष्टि, आतंक से दूसरे लोगों को डरकर आत्म-समर्पण करना और दूसरे भौतिक लाभों को कमा लेना। अस्तु युद्ध के पक्ष में शक्तिशाली पक्ष बहुत-से कारण बताकर अपने लोगों को उत्तेजित करके दूसरे पक्ष पर चढ़ दौड़ने की भूमिका विनिर्मित करता है।

एक विद्वान का कथन है—भूखे लोग भोजन माँगते हैं, थके लोग विश्राम चाहते हैं और जब पागलपन सवार होता है तो लोग लड़ने पर उतारू हो जाते हैं।

युद्ध कितने महँगे, कष्टकर, विनाशकारी एवं अगणित समस्याएँ उत्पन्न करने वाले होते हैं यह अब अधिक अच्छी तरह समझा जाने लगा है। किसी जमाने में यह समझा जाता था कि शान्ति-रक्षा एवं आत्म-रक्षा के लिए युद्ध की तैयारी करना आवश्यक है, पर पदार्थ विज्ञान और मनोविज्ञान के गहन निष्कर्षों ने हमें इस नतीजे पर पहुँचाया है कि लड़ाई से कोई समस्या हल नहीं होती। द्वेष, प्रतिशोध का कुचक्र परस्पर आक्रमण के दावघातों का ताना-बाना बुनता है, समयानुसार दोनों पक्ष एक-दूसरे को अपनी-अपनी दुरभिसंधियों का निशाना बनाते हैं और शृंखला का अन्त तब होता है जब दोनों पक्ष लगभग अपनी क्षमता नष्ट कर चुके होते हैं। विजेता और पराजित दोनों ही लगभग समान रूप से क्षतिग्रस्त होते हैं। इसलिए उनकी निरर्थकता स्पष्ट है। अब विचार-विनिमय, न्याय, तर्क, औचित्य आदि के आधार पर ऐसे निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा निर्णय कराने और उसे दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किये जाने को मान्यता देकर मतभेदों को दूर करने की बात ही उचित मानी जाना चाहिए।

लड़ाई अब दिन व दिन इतनी महँगी होती जा रही है कि उसका भार उठाना सामान्य स्तर के देशों या लोगों के लिए सम्भव नहीं रह गया है।

जूलियस सीजर के समय लड़ाई में एक सैनिक मारने के लिए ७५ सेन्ट खर्च पड़ता था। पीछे नेपोलियन के जमाने में वह बढ़कर २१ डालर हो गया। दूसरे विश्व युद्ध में उसकी दर और बढ़ी और एक सैनिक मारने के लिए ५० हजार डालर खर्च करने पड़े। वियतनाम की लड़ाई में वह सात गुना बढ़ गया है। एक सैनिक मारने पर अमेरिका को ३,४४,८२७ डालर खर्च करना पड़ा। दूसरे युद्ध में विश्व की अपार सम्पत्ति युद्ध के लिए खर्च हुई। छोटे से वियतनाम युद्ध में ही इतना धन लग गया, जिससे उस छोटे-से देश को जापान की बराबर समृद्ध और समुन्नत बनाया जा सकता था।

इतना सब होते हुए भी राष्ट्रीय स्तर पर बड़े युद्ध होते हैं और व्यक्तिगत स्तर पर अथवा दलबन्दी के आधार पर छोटे-लड़ाई-झगड़े। इनके पीछे कुछ व्यक्तियों की 'युयुत्सा' ही काम कर रही होती है। वे तनिक से कारणों को लेकर युद्धोन्माद पैदा करते हैं और धन-जन की अपार हानि खड़ी कर देते हैं।

घरों में जरा-जरा सी बात पर विग्रह खड़े होते हैं। पुरुषों द्वारा स्त्रियों को पीटा जाना, स्त्रियों द्वारा बच्चों की पिटाई, पालतू पशुओं को घुन डालना कीड़े-मकोड़ों को कुचल डालना, पक्षियों का अन्धाधुन्ध शिकार जैसे क्रूर कृत्य किसी को कोई बड़ा लाभ नहीं देते तो भी लोग उन्हें करते हैं और प्रसन्न होते हैं। यह क्रूरता एक मानसिक आवेश है जो धन लोभ के साथ मिलकर सामान्य लोगों को दुर्दान्त दस्यु बना देता है।

हत्याओं और आत्म-हत्याओं का दौर अब क्रमशः बढ़ता ही जाता है। मृत्युदण्डों, दुर्घटनाओं और युद्धों में जितने आदमी मरते हैं, उससे कहीं अधिक आत्म-हत्याओं और हत्याओं से मरते हैं। इनके कारण ढूँढ़ने पर आश्चर्य होता है कि इतनी छोटी बात के लिए इतना बड़ा कुकृत्य कैसे बन पड़ा ? ऐसे कारण तो अक्सर आते रहते हैं, सम्भवतः उस हत्या करने वाले के जीवन में भी न्यूनाधिक मात्रा में आते रहे होंगे। पहले जब अवसर चुका दिये गये तो इसी बार क्या आफत आ गई कि इतना बड़ा कुकृत्य बन पड़ा, जिसके लिए अनन्त पश्चात्ताप ही हाथ रह गया ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह आवेश ही है जो मनुष्य के सिर पर कभी-कभी उन्माद की तरह हावी हो जाता है। उस समय उसे जो कुछ भी सूझ पड़े वह कर गुजरता है। इस आवेश का दबाव इतना असह्य हो जाता है कि वह उससे पीछा छुड़ाने के लिए हत्या-आत्म-हत्या या और भी जो कुछ उसे सूझ पड़े वह कर गुजर सकता है। वस्तुत: वह प्रयास अपने ऊपर छाये तनाव से पीछा छुड़ाने के लिए किया गया भौंड़ा उपचार मात्र होता है, जिसे न्याय संहिता एवं समाज व्यवस्था के अनुसार जघन्य अपराध ही गिना जायेगा।

अपराधों के मूल में उतने ठोस कारण नहीं होते जितने कि मानसिक आवेशों के। चोरी उठाईगीरी करने वाले निर्धन नहीं होते, मजबूरी में वैसा नहीं करते। उनकी सामान्य स्थिति अन्य लोगों की तरह ही काम चलाऊ होती है। चाहें तो वे प्रयत्न या पुरुषार्थ से सामान्य लोगों की तरह कुछ अधिक भी कमा या पा सकते हैं, जिससे कोई तात्कालिक काम अड़ गया हो तो उसे पूरा किया जा सके। पर बात ऐसी कुछ भी नहीं होती। चोरी एक आदत है जिसका आरम्भ छोटे-छोटे कदमों से होता है और पीछे वह पक्की नशेबाजी की स्थिति में पहुँचकर मनुष्य को अपना गुलाम बना लेती है। वैसा किये बिना उसे चैन ही नहीं पड़ता। व्यभिचार का कारण भी उस तरह की सुविधा न होना नहीं वरन् एक विशेष कौतुक-कौतूहल का रसास्वादन होता है। व्यभिचारियों में से सभी के दाम्पत्य-जीवन असंतुष्ट नहीं होते। उनकी ललक ही वैसी कुछ उथल-पुथल का ताना-बाना बुनती रहती है और जब अवसर मिल जाता है तो उस तरह की घटना भी बना लेती है। पीछे भले ही उसके लिए पश्चात्ताप किया जाता रहे।

मानसिक उद्विग्नता है तो मनोरोग ही, पर वह नशेबाजी की तरह अपने प्रकटीकरण का अवसर मिलने पर ही बढ़ती है अन्यथा खाद, पानी न मिलने पर जिस तरह पौधे सूख जाते हैं, उसी तरह वह भी घट या मिट जाती है।

अपराधियों को दुष्ट, पापी समझा जाता है यह आरोप एक हद तक ही सही है। अपराध करने की क्रमबद्ध योजना बनाना और उसके लिए बुद्धिमत्तापूर्ण ताना-बाना बुनना भी कम नहीं होता। इसमें आवेश नहीं-मनुष्य का भ्रष्ट जीवन दर्शन ही काम कर रहा होता है। उसे नीति, निष्ठा, आदर्शवादिता एवं मानवी शालीनता पर विश्वास नहीं होता। अपने आपको हेय, नीच, निकृष्ट, पतित स्थिति में रख लेने पर फिर संसार का कोई काम घृणित नहीं रह जाता। जिस प्रकार भी स्वार्थ सिद्ध हो वह सब कुछ उचित लगता है। बुद्धि को उचित-अनुचित का ज्ञान न होता हो ऐसी बात नहीं है। पर बुद्धि सदा से आस्थाओं की अनुगामिनी रही है। विश्वासों के आधार पर जीवन की दिशा बनती है और उसी राह पर बुद्धि एवं क्रिया के कदम उठने लगते हैं। मूल में इच्छा शक्ति ही होती है जिसे श्रद्धा, भावना, आस्था के रूप में परिपक्व देखा जा सकता है। आस्थाएँ यदि निष्कृष्ट हैं तो मनुष्य की मानसिक और शारीरिक गतिविधियाँ उसी स्तर के प्रयत्नों में संलग्न रहेंगी। अपराधी की हरकतें करते रहने वालों में से कितने ही अपना अन्त:करण निकृष्ट स्तर का बना चुके होते हैं और वे उसी प्रकार का ताना-बाना बुनते रहते हैं। उनकी अपराध शृंखला में नई-नई कड़ियाँ जुड़ती जाती हैं।

किन्तु अधिकांश अपराधी ऐसे नहीं होते वे मानसिक सन्तुलन की क्षमता गँवा बैठते हैं। विवेक और मनोबल की दुर्बलता बढ़ जाने के कारण आवेशों पर अंकुश रख सकना उनके हाथ में नहीं रहता और आवेश उन्माद में वे ऐसे कृत्य कर बैठते हैं जैसे दूसरों को करते देखकर वे स्वयं भी घोर घृणा कर सकते हैं।

चोर वस्तुत: बहुत डरपोक होता है। पकड़े जाने की आशंका जब सामने होती है तो सामने पड़ने वाले के प्राणहरण करने में भी उसे आपत्ति नहीं होती। पकड़े जाने पर उत्पन्न होने वाले संकट का भय उसके ऊपर बुरी तरह हावी होता है। इस स्थिति में वह प्रतिरोधी की हत्या से लेकर बचने के प्रयास में छत से कूदकर अपनी हड्डी-पसली तोड़ लेने तक के जोखिम उठा सकता है। सामान्य बुद्धि से चोरी के प्रयास में पकड़े जाना कोई भारी विपत्ति नहीं है, उसमें कुछ महीने की कैद भर हो सकती है। कानूनी दाव-पेचों से वह छूट भी सकता है। यह पकड़े जाने का संकट इतना छोटा ही उसके सामने रहा होता तो आक्रमण करके पकड़े जाने पर मृत्युदण्ड का जोखिम क्यों उठाता ? भय भी क्रोध की तरह ही एक भयावह है, आवेश जिससे ग्रसित व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ बनकर समय पर जो कुछ भी सूझ पड़े वही कर गुजरता है। पीछे भले ही उसे अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करना पड़े।

देवी-देवताओं पर बलि चढ़ाने वालों की मनोदशा भी बड़ी विचित्र होती है। वे पशु-पक्षियों को ही नहीं अपने बालकों तक की निर्मम बलि चढ़ा देते हैं। इसमें उन्हें न तो घृणित नृशंसता की अनुभूति होती है न अपने कुकृत्य पर पश्चात्ताप। उलटे उन्हें अपने को धर्मात्मा, पवित्रात्मा होने का अनुभव होता है। यह धर्मोन्माद का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवेश है, जिसमें सामान्य मानवी सहृदयता की भी बलि चढ़ जाती है।

साधारणतया अपराधों पर चिन्ता प्रकट की जाती है और उनकी रोकथाम का प्रयत्न किया जाता है, पर यह भुला दिया जाता है कि उस अनौचित्य की जड़ें काफी गहरी हैं। मानसिक रोगों की स्थिति यह बढ़ती ही गई तो फिर रोकथाम के राजकीय प्रयत्नों से कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा।

न्यूरेस्वेनिया के मरीज सदा अपराधों की भाषा में सोचते हैं। वैसा ही कुछ कर गुजरने का उनका मन होता है, जिससे किसी न किसी पर विपत्ति आये-कोई न कोई कष्ट उठाये-किसी न किसी का नुकसान हो। इससे उन्हें अपने बड़प्पन का, शक्तिमत्ता का गौरव पा सकने का आभास होता है।

दूसरों के प्रति दुर्भावना रखने की आदत आरम्भ में बहुत छोटी होती है। छिद्रान्वेषण, दोषारोपण, निन्दा में रस लेना, कल्पना को लोगों की बुराइयाँ ढूँढ़ने में लगाना, अनुमान के आधार पर जिस-तिस को दुष्ट-दुराचारी मान लेना और सामने न सही पीठ पीछे निन्दा करते रहना, विकृत मन के लोगों को बहुत पसन्द आता है। वे किसी के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक प्रमाण ढूँढ़ने का भी प्रयत्न नहीं करते। अपनी विकृत कल्पना को ही अमुक व्यक्ति को दुष्ट मान लेने के लिए पर्याप्त मान लेते हैं। दुष्टता के प्रति रोष होना स्वाभाविक है। रोष से घृणा पैदा होती है और घृणास्पद ही हानि पहुँचाने के लिए मन में ताना-बाना बुना जाने लगता है। यही आदत बढ़ते-बढ़ते इस स्तर तक जा पहुँचती है कि मानसिक हिंसा प्रत्यक्ष आक्रमण के रूप में परिणत हो जाय और क्रूर-कर्मों में रस लेने की आदत बनकर मनुष्य के जीवन को निकृष्ट स्तर तक पहुँचा दे।

अनावश्यक दुर्भावनाओं को मन में स्थान देना, दूसरों के लिए अशुभ सोचते रहना, औरों के लिए उतना हानिकारक नहीं होता, जितना अपने लिए। उचित यही है कि हम सद्भाव सम्पन्न रहें। जिनमें वस्तुतः दोष, दुर्गुण हों उन्हें चारित्रिक रुग्णता से ग्रसित समझकर सुधार का भरसक प्रयत्न करें, पर उस द्वेष, दुर्बुद्धि से बचे रहें, जो अन्ततः अपने ही व्यक्तित्व को आक्रामक असुरता से भर देती है और दूसरों का ही नहीं अपना ही सर्वनाश प्रस्तुत करती है।

विचार परिष्कार ही अचेतन का अनावरण है

सम्भव है अनेक लोग ऐसा विचार रखते हों कि जो महापुरुष अपने जीवनकाल में संसार की सेवा करते हैं, वे उसके अन्त में किन्हीं दिव्य-लोकों में जाकर निष्क्रिय हो जाते होंगे और अपने सत्कर्मों का फल स्वर्गीय सुख का चैन से भोग करते होंगे।

इसमें तो सन्देह ही क्या हो सकता है कि सत्कर्मों का फल सद्गति ही होता है और बहुत बार स्वर्गादि भी। किन्तु सच्चे जनसेवी वहाँ पहुँचकर निष्क्रिय नहीं बैठ जाते वे वहाँ से भी सूक्ष्म शक्तियों द्वारा लोक-कल्याण का कार्य करते रहते हैं।

पहली बात तो यह है कि उन्हें लोक-मंगल की सेवाओं का स्वाद, उसका आनन्द ज्ञात होता है, इसलिये स्वर्ग का निष्क्रिय सुख उनको उस परमार्थ सुख से तुच्छ लगता है और वे जड़तापूर्ण सुख को भोगते रहने के स्थान पर वहाँ से भी अपने सूक्ष्म जीवन द्वारा सेवा के कार्य करते रहते हैं। दूसरे वे सेवा कार्यों,परमार्थ कर्मों का मूल्य जानते हैं। उन्हें पता रहता है कि जब संसार में उन्होंने जनसेवा के लिये तुच्छतम सुखों, नश्वर सुखों का त्याग किया, तब तो उन्हें इन उच्च-लोकों की प्राप्ति हुई और अब जब इन उच्च-लोकों का चिरन्तन सुख वे परमार्थ के लिये उत्सर्ग कर देंगे, तब उन्हें न जाने किस उच्चपद की प्राप्ति होगी। त्याग, सुख तथा आत्म-सन्तोष की शांति का अनुभवी अधिकाधिक त्याग को अपना लक्ष्य बनाता है। ग्रहण और फिर किसी परमार्थ पुण्य के फल ग्रहण को तो वह तुच्छ लोभ ही मानता है।

त्याग का यदि मूल्य ले लिया, सेवा की कीमत चुकाली तो फिर उसकी महत्ता ही क्या रह जाती है? सच्चे परमार्थियों का पुरुषार्थ से उत्पन्न अधिकाधिक पुरुषार्थ की शक्ति ही उसका लाभ-लोभ तथा मूल्य होता है, उससे प्राप्त सुख का भोग फिर चाहे वह अपवर्ग सुख ही क्यों न हो उनके लिये कोई आकर्षण नहीं रखता, वे अपने परलोक की सारी सम्पदायें संसार में सत् तथा शुभार्थ मुक्त-हस्त से लुटा देते हैं।

स्थूल शरीर के उपरान्त सच्चे सेवा-धनी सूक्ष्म विचार जीवन धारण कर लेते हैं और चिरन्तन-तरंगों के रूप में मानव मस्तिष्कों में आन्दोलित रहकर उनके द्वारा परमार्थरत रहा करते हैं। जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक अपने मस्तिष्क को उन सूक्ष्म विचार तरंगों के योग्य बना लेता है, वह उन दिवंगत महात्माओं की शक्तियों का उपयोग करने की पात्रता प्राप्त कर लेता है। मस्तिष्क की यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग्यता प्राप्त करना कोई विलक्षण अथवा अद्भुत बात नहीं है। इसके लिये केवल उसको मूढ़ताओं, कुविचारों, विकारों, अन्धविश्वासों या दुराग्रह अथवा पक्षपात के कलुष से विमुक्त भर करना होता है और यह काम परमार्थ बुद्धि, आध्यात्मिक आस्था, स्वाध्याय, सत्संग अथवा सेवा-कार्यों द्वारा सहज ही में किया जा सकता है।

विचार रूपी सूक्ष्म शरीरधारी महात्मा लोग संसार के वायुमण्डल में सात्विक तत्वों के रूप में ओत-प्रोत रहते हैं और जिन हृदयों अथवा मस्तिष्कों में अपने योग्य निवास पाते हैं, समाहित हो जाते हैं और उस माध्यम से अपने उन कार्यों को आगे बढ़ाते रहते हैं, जिनको वे एक बार स्थूल अवस्था में प्रारम्भ कर चुके होते हैं। इस प्रकार उनका सेवा कार्य सदा-सर्वदा चलता रहता है।

जिस प्रकार असत्कर्मों का फल अत्याग की अनिवार्यता से प्रतिबन्धित है, उस प्रकार सत्कर्मों के फल त्याग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, उसे त्याग सकने का किसी को भी अधिकार रहता है। फलों के विषय त्यागात्याग की भिन्नता का कारण यह है कि पापों का फल दण्ड रूप में निर्धारित होता है, जिसके त्याग का कोई प्रश्न नहीं उठता, उस पर कुकर्मों का कोई अधिकार नहीं होता, किन्तु पुण्य कर्मों का फल पुरस्कार स्वरूप होता है, उसे त्याग सकने का अधिकार रहता है, क्योंकि वह सुकर्मी की अपनी निजी सम्पदा, अपना व्यक्तित्व उपार्जन होता है। अनेक पुरुषार्थी जो परमार्थपरक सेवा, सुख का सौन्दर्य अनुभूत कर चुके होते हैं, स्वर्ग ही नहीं मोक्ष तक का निषेध कर देते हैं और उसके स्थान पर पुनः मानव शरीर स्वीकार कर संसार में, अपनी इस कर्मभूमि में, इस पवित्र धरा-धाम में लोकरंजन और जनमंगल के लिये जन्म धारण कर लेते हैं। अपने पुण्यकर्मों के प्रताप से उन्हें यह मानव शरीर जिसे निष्क्रिय लोग एक भार, रोग-शोक का भण्डार और आत्मा का बन्धन मानकर भयभीत होते हैं, सेवा का सर्वोपरि साधन तथा सबसे सरल उपाय मालूम होता है। वे बारम्बार इसे प्रसन्न-प्रसन्न धारण करते हैं और प्रसन्न-प्रसन्न छोड़ते रहते हैं। उन्हें इस विग्रह, अविग्रह में खेद होना तो क्या उल्टे लीला लास्य जैसा आनन्द आता है ?

खेद का प्रश्न तो तब उठे न जब वे इस शरीर, इस साधन को कर्मयोग के स्थान पर भोग-संयोग मानकर चलें और इन्द्रियों की शक्ति और उनकी अभिमुखता नश्वर संसारिक सुखों की ओर प्रेरित करें। जिसका हृदय, पवित्र है, जिसके कर्म धन्य हैं और जिसका पथ-परमार्थ और रुचि आध्यात्मिक है, ऐसे जन्म-जन्म के सपूर्व अभ्यासी को संसार में भय कहाँ ? लोभ, लालसा, लिप्सा और लोलुपता के कीट-पतंग उस तेजोपूर्ण व्यक्तित्व के पास आ भी कैसे सकते हैं और कैसे उस प्रकाशपूर्ण आत्मा का सामुख्य, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध आदि का अन्धकार ही कर सकता है ? वह तो आत्मालोकित, आत्म-निर्भर और आत्म-मुक्त एवं आत्म-प्रसन्न पुण्य-पुरुष परमात्म-तत्व से अविच्छिन्न सम्बन्ध किये अभयभाव से संसार की छलनाओं तथा प्रवंचनाओं के बीच अपने निश्चित पथ पर ऐसे चला जाता है, जैसे बलशाली वैनतेय वायु के प्रतिकूल झोकों की उपेक्षा किये, अमृत पथ पर सहजगति से उड़ता चला जाता है।

मनुष्य का विचार शरीर स्थूल शरीर से अधिक शक्तिशाली तथा सक्षम होता है। व्यक्तित्व जो मनुष्य के प्रभाव का मुख्य स्रोत है, विचारों द्वारा ही निर्मित होता है। कर्मों का मूल प्रेरणा केन्द्र भी विचार ही होते हैं। कोई मूर्ति, चित्र अथवा रचना स्थूल अभिव्यक्ति पाने के पूर्व शिल्पी के विचार जगत् में ही जन्मती है, उसी में परिष्कृतापूर्ण होती है तत्पश्चात् स्थूल उपादानों के माध्यम से मूर्तिमान् होकर दृष्टिगोचर होती है। जिस रचना को दूसरे लोग बहुत बाद में उसके भौतिक अस्तित्व में आने के बाद ही देख पाते हैं, उसे विचारशील शिल्पी अदृश्य रूप में ही पूर्ण रूप से साकार देख लेता है। यह दिव्य-दृष्टि प्रखर तथा उज्ज्वल विचारों द्वारा ही प्राप्त होती है।

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण विचारों द्वारा ही होता है। प्रत्येक शुभ-विचार व्यक्तित्व को उन्मुक्त और विकसित करने में सहायक होता है। शुभ विचारों से मस्तिष्क का शृंगार करने से अचेतन मन का, जो दिव्य-शक्तियों का केन्द्र होता है, अनुकूल दिशा में सृजन होने लगता है। व्यक्तित्व का वास्तविक निर्माता यह अवचेतन मन ही होता है, जिसका जागरण विचारों द्वारा ही होता और जो जितने शक्तिशली ढंग से अपने प्रबोधक विचारों का प्रतिपादन करता है, मनुष्य का व्यक्तित्व उतना ही प्रखर तथा सतेज बन जाता है। व्यक्तित्व की तेजस्विता ही अन्य व्यक्तियों को, अनुरूप निर्माण कर संसार में सत्प्रवृत्तियों का संघ बनाकर क्रांति उपस्थित कर देती है। देवता तथा राक्षस दो भिन्न जीवन नहीं हैं। यह मनुष्य के व्यक्तित्व के उज्ज्वल तथा मलीन दो पक्ष ही हैं। जिसने अपने सद्विचारों द्वारा अपना मानसिक परिष्कार कर डाला है, भ्रांतियों, विडम्बनाओं, प्रवंचनाओं, आडम्बर, छल-कपट, स्वार्थ अथवा अहंकार की प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर ली है। कलुष एवं कुत्सा को निकाल डाला है, उसका हृदय सद्भावनाओं, सहानुभूति, संवेदन, सहयोग, सेवा और सामंजस्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभूतियों से जगमगा उठता है और यही जगमगाहट, कर्मप्रवाह में प्रवाहित हो प्रमाणित कर देती है कि अमुक व्यक्ति देवता है। इसके विपरीत जिसका हृदय, मत्सर, मलीनता तथा मदांधता के अन्धकार से भयावह हो रहा है, उसके कर्म उसी अनुसार प्रतिकूलता का प्रतिपादन करते हुए बतला देते हैं कि यह व्यक्ति राक्षस अथवा असुर है। देवता तथा राक्षस कुछ और नहीं, केवल विचारों की परिणति अथवा परिपाक ही होता है, जो किसी की गतिविधि में कदम-कदम पर प्रकट होता रहता है।

विचारों की शक्ति अपरिमित और अनन्त होती है। एक बार इसकी सिद्धि हो जाने पर फिर जन्म-जन्मातरों में इसका तारतम्य नहीं टूटता। यह सदा-सर्वदा मनुष्य के साथ बनी रहती है, जिससे हर जीवन में उसकी सफलता की सम्भावना सुरक्षित रहा करती है। स्थूल शरीर की शक्ति से कोई एक व्यक्ति किन्हीं एक-आध व्यक्तियों को ही नियन्त्रण में रखकर अनुकूल दिशा में चलने के लिये विवश कर सकता है, किन्तु विचार शरीर की अपूर्व शक्ति से एक मनुष्य पूरे संसार तथा पूरे युग को ही बदल सकता है अथवा अनुकूल दिशा में अग्रसर कर सकता है। लोक-नायकों अथवा संसार के जन-नेताओं की मुट्ठी भर हड्डियों में कितनी शक्ति होती है ? शायद उतनी भी नहीं जितनी एक श्रमिक में होती है तथापि वह विशाल लोकमत को प्रभावित कर वशीभूत बना लेता है। उनकी यह शक्ति विचार-शक्ति ही होती है। जिसको वे अपने शुभ-संकल्पों, सत्प्रवृत्तियों, सत्य निष्ठा तथा सद्भावनाओं द्वारा लोकहित के लिये ही सिद्ध करते हैं। वे विचारों द्वारा ही वैचारिक तप करके इस अलौकिक शक्ति का जागरण अपने अन्दर कर लिया करते हैं।

जिस-जिस अनुपात से मनुष्य की विचारशीलता सूक्ष्म की ओर बढ़ती जाती है, उस-उस अनुपात से वह दिव्य-दृष्टा बनता जाता है। भूत, भविष्यत् वर्तमान उसके लिए हथेली पर रखी वस्तु की तरह स्पष्ट हो जाते हैं। उसकी विचार-शक्ति बड़े-से-बड़े आवरण को भेदकर किसी भी रहस्य अथवा गुह्य भेद को अच्छी तरह देख आती है। विचारों की गति त्रिलोक तथा त्रिकाल में अबाध होती है। वह मनुष्य के अन्तःकरण में छिपी बातों को, हृदय में बसी भावनाओं से सम्बन्ध स्थापित कर विचारशील को अन्तर्यामी बना देती है, तभी तो कोई सूक्ष्मदर्शी, दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक मानव-प्रवृत्तियों को पुस्तक की तरह पढ़ और समझ लेता है। विचारों की शक्ति संक्रामक तथा सर्वव्यापक होती है।

विचारशील राजनीतिज्ञ अपने देश के, अपने निवास के एक छोटे-से कक्ष में बैठा हुआ दूर देशान्तर में होने वाली घटनाओं अथवा घटना मूलक परिस्थितियों को अपने मस्तिष्क में चलचित्र की तरह देखता रहता है और वहीं से विचारों द्वारा बैठा-बैठा, नियन्त्रित अथवा परिवर्तित करता रहता है। पारस्परिक प्रतिस्पर्धा में राज-नायकों की हार-जीत उनकी विचार-शक्ति पर ही निर्भर रहती है, जिनके विचार जितने अधिक सतेज तथा सूक्ष्म होते हैं, वे संसार-चक्र को उतना ही अपनी मनोवांछित दिशा में घुमा सकने में समर्थ होते हैं।

शारीरिक शक्ति में नगण्य वैज्ञानिक विचार-शक्ति द्वारा ही प्रकृति के तत्वों को जीतकर उसके रहस्यों का उद्घाटन कर संसार को विस्मय में डाल दिया करते हैं और विचारों की आध्यात्मिक शक्ति ही परमेश्वर जैसे विराट् तथा सर्वशक्तिमान् मुनि मानस में प्रकट कर देती है। इस ढाई-तीन हाथ के शरीर में रहता हुआ भी मनुष्य विचारों के बल पर विराट् तथा विशाल बनकर सृष्टि के अणु-अणु में छा जाता है और यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके पिंड प्रदेश में प्रतिबिम्बित हो उठता है। विचारों की शक्ति और उनकी महिमा अपार और अनिवर्चनीय है।

अपने अन्दर सोये विचारों को सदाशयता द्वारा जागृत करिये, उन्हें क्रिया रूप में अभिव्यक्ति दीजिये और वह शक्ति प्राप्त कर लीजिये, जिसके द्वारा साधारण मनुष्य महापुरुष, महात्मा और युग-प्रवर्तक बन जाया करते हैं। स्थूल जीवन से विचार जीवन में प्रवेश कीजिये और जन्म-जन्म संसार की प्रेरक शक्ति बनकर अमरत्व का वरण करिये।

विचार का परिष्कार एवं प्रसार करके आप मनुष्य से महामनुष्य, दिव्य और यहाँ तक ईश्वरत्व तक प्राप्त कर सकते हैं। इस उपलब्धि में आड़े आने के लिये कोई अवरोध संसार में नहीं है। यदि कोई अवरोध हो सकता है तो वह आपका स्वयं आलस्य, प्रमाद, असंयम अथवा आत्म-अवज्ञा का भाव। इस अनन्त शक्ति का द्वार सबके लिये समान रूप से खुला है और यह परमार्थ का पुण्य-पथ सबके लिये प्रशस्त है, अब कोई उस पर चले या न चले यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है।

मानवी काया का अदृश्य अस्तित्व

मनुष्य मात्र वह शरीर है, जो बाह्य रूप से दीखता है परन्तु वह चेतना का सूक्ष्म रूप है जो मृत्यु के बाद भी बचा रहता है। मनुष्य के चारों ओर एक ऑरा होता है, जो ज्ञानी, भक्त और सिद्ध पुरुषों में स्पष्ट दीखता है। यही ऑरा (प्रभामण्डल) मनुष्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना का शरीर या सूक्ष्म शरीर है, जो कि उसकी वास्तविकता है। यह ऑरा प्रकाश के रंगों और लहरों के रूप में होता है एवं समस्त विषयों में भावनाएँ व्यक्त करता है। यह भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। यह मनुष्य के धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक, आर्थिक, दूसरों के प्रति उसके सम्बन्धों, उसके व्यवहारों और अधिकारों आदि बातों को व्यक्त करता है। यह चिन्तन के अनुरूप बदलता रहता है।

''मेन विजीबल-इन विजीबल'' पुस्तक के लेखक सी. डब्ल्यू. लेडवीटर के अनुसार हमारे मन के अनेकों दिशाओं में दौड़ लगते रहने के कारण और परिस्थितियों के कारण यह ऑरा अनेक भागों में विभाजित हो जाता है। हम नित्य अनेक सुख-साधनों को चाहते हैं और अनेक आकांक्षाएँ रखते हैं। इनकी पूर्ति न होने के कारण ये भाव अचेतन मन में अंकित हो जाते हैं। इनका प्रभाव हमारे चरित्र और चिन्तन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हमारे जाने-अनजाने असंख्य विद्वेषों, प्रतिशोधों का अंकन नित्य चेतना पर होता है। हिप्नोसिस से या ध्यान द्वारा मस्तिष्क को उत्तेजित करके इन्हें ज्ञात किया जा सकता है। इससे मन का मस्तिष्क से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

हमारे असंख्य विचारों और भावनाओं के कारण आदतों में भी परिवर्तन होते रहते हैं। हमें प्रेम, घृणा, सुन्दरता, कुरूपता, सहानुभूति, साहस, धैर्य, शत्रुता या मैत्री की भावनाएँ नित्य पीड़ित करती रहती हैं। इस परिवर्तन के अनुसार हमारा चेतना मण्डल या ऑरा भी बदलता रहता है। ईसा का कथन है कि स्वर्ग का राज्य कहीं नहीं है। स्वर्ग मात्र मनुष्य के मन और हृदय की एक स्थिति भर है। जब वह अपनी त्रुटियाँ देखकर उन्हें सुधारता है और सत्य को समझता है तो उस दृष्टिकोण से वह स्वयं को स्वर्ग जैसी स्थिति में पहुँचा लेता है।'' इस सत्य या ज्ञान को जान लेने पर वह हमेशा दूसरे मनुष्यों की सहायता करता है। साथ ही आन्तरिक शांति और मन की स्थिरता से चेतना शुद्ध होती है और शीघ्र ही परमात्मा से एकत्व स्थापित करती है। वैज्ञानिकों और अनुसन्धान कर्त्ताओं को अपने अनुसन्धानों में शान्ति एवं स्थिरता से ही मन के नए-नए आयमों का रहस्योद्घाटन करने में सफलता मिली है।

विभाजित चेतना भी एक बार अवसर मिलने पर तनावों एवं दबावों से मुक्त होकर स्थापित कर सकती है। इसके लिए उसका स्वतन्त्र, शान्त एवं स्थिर होना आवश्यक है। उसे लालसाओं, आदतों और आकर्षणों से सर्वथा मुक्त होना चाहिए, तब उसकी प्रकृति और समझदारी सही दिशा में नियोजित होती है तथा वह अपने एक दूसरों के प्रति व्यवहार सत्य के आधार पर करता है। इससे वह समस्याओं से मुक्त रहता है और सभी परिस्थितियों एवं कठिनाइयों का मुकाबला आसानी एवं धैर्य के साथ कर लेता है। इस शुद्ध चेतन के स्वत: प्रकाशित होने से ब्रह्माण्ड से सीधा सम्पर्क कायम हो जाता है और वह वहाँ की समस्त शक्तियों का लाभ उठाता है।

साधारणत: हम सोचने, सुनने और सामान्य काम करने आदि में अपनी शक्ति का एक अंश ही लगाते हैं। परन्तु विपत्तियों में हम अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं और उससे प्राय: मुक्त हो जाते हैं। यह चेतना की कुल शक्ति तब अपनी पूरी सामर्थ्य से काम करती है, जो उसकी स्वतन्त्रता की द्योतक है। यह अज्ञात शक्ति मनुष्य के भीतर से ही आती है। इस शक्ति का आभास मनुष्य के ऑरा के प्रत्येक भाग से होता है। ऑरा की असीम शक्ति जीवन और चेतना की एकता का प्रतीक है। डा० एनीबेसेन्ट के अनुसार ऑरा का प्रकाश भीतर से बाहर की ओर चक्राकार में प्रवाहित रहता है एवं यह प्रकाश अनेक रंगों में जीवन की स्थितियों को प्रकट करता है। दिव्य दृष्टा पुरुष इसे देख भी सकते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि जीवन हमेशा वर्तमान स्थिति में होता है। भूतकाल की बातों को भूलने पर ही वर्तमान की स्थिति आती है और आत्मा (या चेतना) शुद्ध होती है। तब जीवन शुद्ध और स्वतन्त्र होता है। यही आत्मा सत्ता का शाश्वत सौन्दर्य है। मृत्यु एक प्रकार का पटाक्षेप है। वह आत्मा को शुद्ध करती है और भूतकाल के अनुभवों को समाप्त करती है। शुद्ध चेतना फिर भौतिक आकर्षणों और भाग-दौड़ में नहीं पड़ती। परमात्मा से उसका एकत्व कभी नष्ट नहीं होता। जीवन अविनाशी है, यद्यपि शरीर का नाश हो जाता है। पूर्वार्त दर्शन के अनुसार हर आत्मा का दुबारा जन्म फिर होता है, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। किन्तु अपवाद रूप में कोई-कोई मनुष्य अपने जीवन काल में ही चेतना को शुद्ध एवं स्वतन्त्र कर लेते हैं, तब दुबारा जन्म लेना या न लेना उनकी इच्छा पर निर्भर होता है। ऋषि, महामानव, देवदूत इसी श्रेणी में आते हैं।

मनुष्य जब अपनी चेतना की क्षमता को समझ लेता है और शुद्ध बना लेता है, तब उसके जीवन एवं मृत्यु की अनेक समस्याएँ एवं पीड़ाएँ दूर हो जाती हैं। आत्म-सत्ता सम्बन्धी यह जीवन दर्शन जो भली-भाँति हृदयंगम कर लेता है, वह जीवित रहते हुए भी बन्धनों से, कषाय-कल्मषों से सर्वथा मुक्त रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन की शक्ति इस प्राण शरीर या सूक्ष्म चेतना से ही मिलती है। मन बहुत संवेदनशील और शक्तिशाली है और प्रत्येक परिस्थिति का उस पर प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य का मन दूसरे के मन से अलग-अलग विचारों, भावनाओं एवं अनुभवों का समुच्चय होता है। इस आधार पर ही प्रत्येक का व्यवहार एवं आदतें दूसरों से भिन्न विकसित होती हैं। उनकी अभिलाषाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। मन का व्यावहारिक प्रकटीकरण अपने आप निरन्तर जाने-अनजाने में होता रहता है।

मृत्यु से शरीर नष्ट होता है परन्तु उसके सारे जीवन के अनुभव एवं उसकी सक्रियता के सूत्र सूक्ष्म शरीर में बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। ये आत्मा के साथ हर जीवन में साथ देते हैं। आत्म-सत्ता प्रकृति में पूर्ण चैतन्यता एवं स्वतन्त्रता बनी रहती है। अपनी इस आन्तरिक विभूति की स्वतन्त्रता एवं शक्ति को समझने से मनुष्य असीम शक्तिशाली एवं क्रियाशील बन सकता है। इससे उसका हर नया पल सफल एवं महान् विकसित होता रह सकता है। महापुरुषों में हमेशा ताजगी, तरुणाई एवं सहृदयता आदि गुण पाये जाते हैं। यह शक्ति शरीर और मन की ही नहीं होती वरन् अन्तरात्मा की होती है। चेतना के स्वतन्त्र होते ही यह जीवन-शक्ति विस्फोटक हो जाती है। यह स्थिति स्वैच्छिक मृत्यु होने के बाद नए जीवन में सुगमता से विकसित होती है और ऐसी आत्मा का हृदय शुद्ध होता है।

नित नूतन नवीनता और सुन्दरता बाह्य विश्व और पदार्थों में नहीं है, वरन् वह चेतना में है। चेतना ही सोचती, समझती और प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। मानव चेतना अति महत्वपूर्ण एवं सूक्ष्म है। दैनन्दिन क्रिया-कलापों की स्मृति उसकी भाव प्रवीणता को कमजोर करती है। पर स्मृति के बिना हम संसार में नहीं रह सकते। हमारे सम्पूर्ण क्रिया-कलाप स्मृति के आधार पर ही होते हैं। यह स्मृति जीवन के असंख्य आकर्षणों के कारण संकुचित हो जाती है। किन्तु शुद्ध चेतना पर समय और दूरी का प्रभाव नहीं पड़ता।

हमारी आत्म-सत्ता जीवन की सम्पूर्ण हलचलों को बिना किसी प्रतिरोध के अंकित करती रहती है, क्योंकि प्रतिरोध से कठिनाइयाँ, बाधाएँ और समस्याएँ पैदा होती हैं। गीताकार के अनुसार शुद्ध चेतना असंख्य प्रकार के जीवन-प्रवाहों को बिना प्रभावित हुए सहन करती रहती है। कौन कितना, किस सीमा तक स्वयं को शुद्ध बनाकर आत्म-चेतना को विकसित करता है, इसी पर उसकी अन्तरंग एवं बहिरंग क्षेत्र में सफलता निर्भर करती है ? यही है वह तत्वज्ञान जो किसी भी साधारण से मनुष्य को बोध होने पर महामानव बना देता है।

भावनात्मक परिष्कार ही एकमात्र समाधान

भावनाएँ ही मनुष्य को ऊँचा उठातीं और नीचा गिराती हैं। हम अपने विकास के आरम्भिक समय में भावनात्मक उन्नति कर चरमोत्कर्ष पर पहुँचे थे, पर अब उसी का दिन-दिन ह्रास होने के कारण नीचे गिरते जा रहे हैं। पूर्व का हमारा भावनात्मक आरोहरण अब-अवरोहण बन चुका है। संवेदना की दृष्टि से हम एकदम निम्न बिन्दु पर पहुँच चुके हैं, यही हमारी सबसे बड़ी विडम्बना है।

व्यक्ति के भाव-क्षेत्र के परिष्कार के साथ-साथ जैसे-जैसे उसका प्रसार विस्तार होता है, व्यक्ति में तदनुरूप परोपकारिता एवं सेवा-सहयोग की वृत्ति भी बढ़ती जाती है और वृत्ति की परिधि का विस्तार भी होता जाता है। जब इसकी व्यापकता क्षुद्रता की सीमा लाँघकर विराट् स्तर तक पहुँचती है, तो व्यक्ति को महान बनाती और महामानव, देवमानव, भूसुर, देवता जैसी उपाधियों से अलंकृत करती है। इसका प्रारम्भ परिवार स्तर से होता है। जब मनुष्य अपने सुख-दुःख को परिवार का सुख-दुःख और परिवार के कष्ट-कठिनाई को अपना समझने लगे, अर्थात् अपना अस्तित्व परिवार से पृथक् न मानकर शरीर और उसके अंग-अवयव की तरह अविच्छिन्न रूप से जुड़ा महसूस करने लगे, तो इसे परोपकारिता की दिशा में प्रथम चरण कहा जा सकता है और भाव-विस्तार की प्रथम अभिव्यक्ति।

नृतत्ववेत्ताओं का कहना है कि यदि मनुष्य की भावना का इतना विकास न हुआ होता, तो आज उसका अस्तित्व सुरक्षित न रह पाता और संघर्षरत स्थिति में कब का समाप्त हो गया होता। कारण कि मानव की आरम्भिक स्थिति और जंगली-जन्तुओं के स्तर में कोई बहुत भारी अन्तर रहा होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आज जो बड़ा अन्तर दिखाई पड़ रहा है, वह तो क्रमिक प्रगति और परिष्कृत भाव-चेतना का परिणाम है। जब आज की विकसित बुद्धि की स्थिति में भी मानव संघर्षशीलता से बाज नहीं आता और तनिक-से हक की होड़ में मरने-मारने पर उतारू हो जाता है, तो आरम्भ की अविकसित अवस्था में वह कैसा खूँखार रहा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है ? आये दिन तब छोटे-छोटे कुनबों में युद्ध और मार-काट मचते होंगे तथा रक्त की नदियाँ बहती होंगी। समय बीतने के साथ-साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोज-रोज की लड़ाइयों से उकताकर वे किसी ऐसी युक्ति की तलाश के लिए विवश हुए होंगे, जो उन्हें कुछ शांति दे सके, अनावश्यक संघर्ष से बचा सके और कुछ ऐसा हस्तगत करा सके, जिससे पारिवारिक कटुता में कमी आये। मानव विज्ञानी मानते हैं कि इसका सबसे उत्तम उपाय उन्हें यही प्रतीत हुआ होगा कि दूसरे के कठिनाइयों में दु:ख और दर्द में कुछ अपनत्व प्रदर्शित किया जाय, सहयोग दिया जाय और स्वयं पर विपत्ति आने पर उन्हें याद किया जाय, उनकी मदद ली जाय।

नृतत्वशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य में भाव विकास का यह प्रथम सोपान था। इससे स्वतन्त्र परिवारों का परस्पर मिलन-समागम संभव हुआ और धीरे-धीरे कर यही समुदाय का रूप धारण करता चला गया। ऐसे अलग-अलग समुदायों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ और पहचान थी। जब उन्हें एक-दूसरे के बारे में पता चला, तो वे पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा अपनी-अपनी विशेषज्ञता का लाभ एक-दूसरे को देने पर सहमत हो गये। समाज-निर्माण की यह आदिम रूपरेखा थी। कालान्तर में इसी से सभ्य समाज का जन्म हुआ। जब समाज का पूर्ण विकास हुआ, तो मानव ने विभिन्न क्षेत्रों में आपसी आदान-प्रदान की रीति-नीति अपनायी। परिवार के बाहर भी स्नेह-प्रेम, सहयोग-सहकार घनिष्ठ होने लगे। संवेदना और सहानुभूति की परिधि बढ़ी तो पहले का संकुचित परिवार और बड़ा बना और फिर धीरे-धीरे विकास करते हुए वह एक वृहत्तर परिवार बन गया। यों संरचना और संगठन की दृष्टि से था तो वह समाज ही, पर आचरण और व्यवहार की दृष्टि से, आत्मीयता और अनुराग की दृष्टि से उसे एक वृहद् परिवार ही कहना समीचीन होगा एक ऐसा परिवार जिसमें उसकी समग्र उन्नति के लिए सभी का सम्पूर्ण विकास अभीष्ट था। कार्ल मार्क्स के शब्दों में कहा जाय, तो इसे ''वन फॉर ऑल, एण्ड ऑल फॉर वन'' की नीति का विकास कहना चाहिए। भावनाओं की दृष्टि से आदमी की यह और उन्नत स्थिति थी।

फिर राष्ट्र और विश्व राष्ट्र का विकास हुआ। भू-भाग की दृष्टि से सभी की अपनी-अपनी सीमाएँ तो थीं, पर सब के भाव-क्षेत्र ऐसी सीमाओं से सर्वथा मुक्त थे। यही वह काल था जब **''आत्मवत् सर्वभूतेषु''** एवं **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** के सूत्र-सिद्धान्त दिये गये। यह प्रतिपादन सिद्धान्त मात्र बनकर नहीं रह गये, वरन् आचार-व्यवहार में दूध-पानी की तरह घुले-मिले थे। आंतरिक उत्कर्ष की दृष्टि से मनुष्य का यह चरम विकास था, जिसमें भाव-संवदेनाएँ अपना अधिकतम विस्तार प्राप्त कर चुकी थीं। इसी भाव उत्कृष्टता के कारण युगों में इसे सर्वश्रेष्ठ सतयुग कहा गया। फिर धीर-धीरे इसकी उदात्तता घटती गई। भाव-विस्तार में कमी आयी और शनैः- शनैः उसमें अनुदात्त तत्वों के समावेश से उसका स्तर क्रमशः गिरता गया। हम उस सर्वोच्च स्थिति से लगातार नीचे गिरते गये। आत्मीयता की हमारी परिधि संकीर्ण होने लगी और घटते-घटते इतनी घट गई कि रूखेपन से भरा मध्यकाल का सामंतवादी युग आ पहुँचा। साम्राज्य विस्तार के इस काल में आक्रामकता का इतना विस्तार हुआ कि अपने और परायेपन का भेद घृणित रूप धारण करने लगा। यहीं से ''जिसकी लाठी तिसकी भैंस'' का पृष्ठपोषण करने वाली लूट-खसोट की नीति का उद्भव हुआ। साम्राज्यवादी शासक विस्तारवादी ललक की पूर्ति के लिए आक्रमण-प्रत्याक्रमण के घात-प्रतिघात में निरत रहने लगे। नीति-अनीति का विचार छोड़ जिन्हें जो सूझता, वही करते और जो हाथ लगता, उसी को बड़ी मछली की तरह निगल जाते। फिर अगले शिकार के लिए आगे बढ़ते। इस क्रम में भारत को अनेक विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण और उत्पीड़न झेलने पड़े। भारतीय राजे-महाराजे भी स्वयं इस शरीरगत प्रवृत्ति और मनोगत वृत्ति से अछूते न रह सके। उनमें भी इस बात की प्रतिस्पर्धा छिड़ी रहती कि किस प्रकार दूसरे की सम्पन्नता हड़पकर अपनी विपन्नता घटायी और सामर्थ्य बढ़ायी जाय ? यह राजतंत्र का जमाना था।

फिर लोकतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु हमारा भावनात्मक पतन अब भी नहीं रुका। हम और नीचे गिरे। समय के साथ-साथ यह गिरावट और बढ़ती गई और आज स्थिति यह है कि समाज पर स्वार्थान्धता इस कदर हावी है कि उस ललक को पूरा करने के लिए वह किसी भी सीमा तक जाने में जरा भी संकोच नहीं करता। जब व्यक्ति की उद्गम लिप्सा पराकाष्ठा को लाँघकर कुत्सित बन जाती है, जब व्यक्ति अपना आतंक जमाने और वर्चस्व स्थापित करने के लिए दूसरों के न्यायोचित अधिकार को भी छीनने से नहीं हिचकता, तो सदा इन दिनों जैसी ही स्थिति पैदा होती है। ऐसे ही लोगों को भर्तृहरि ने मानवों की सबसे निचली और चौथी कोटि में रखा है। उन्हें कोई विशेष नाम तो नहीं दिया, सिर्फ यह कहकर छोड़ दिया कि—**''ते के न जानीमहे''**।

यहाँ प्रश्न यह है कि आखिर यह स्थिति पैदा ही क्यों हुई ? हमारा अध:पतन क्यों हुआ ? उत्तर जेम्स डिल्लेट फ्रीमैन अपने ग्रन्थ ''दि हिलटॉप हर्ट'' में देते हैं। वे कहते हैं कि यह ठीक है कि हम कभी चेतनात्मक विकास की सर्वोच्च अवस्था में थे और यह भी सत्य है कि आज हम विनाश के कगार पर हैं, किन्तु यह भी तथ्यपूर्ण है कि उक्त दशा सदा-सर्वदा आज जैसी बनी नहीं रह सकेगी। उनका विचार है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव समेत यह दुनिया परिवर्तनशील है। यहाँ जैसा संप्रति है, कल भी सब कुछ वैसा ही बना रहेगा, ऐसा नहीं हो सकता और कल का संसार एवं परसों का विश्व दोनों एक जैसे होंगे यह भी नहीं कहा जा सकता। यहाँ सब कुछ क्षण-क्षण में बदल रहा है, भले ही यह बदलाव अदृश्य स्तर का इतना न्यून और सूक्ष्म हो, जिसे देखा व अनुभव नहीं किया जा सके। इतने पर भी तथ्य यथावत् बना रहता है और परिवर्तन चलता रहता है। यह परिवर्तन सूक्ष्म अणु से लेकर विराट् ब्रह्माण्ड तक में समान रूप से जारी है। आदमी में भी चल रहा है। वे कहते हैं कि आधुनिक मानव इस परिवर्तन का अंतिम प्रतिफल नहीं है, वरन् विकास-यात्रा का निर्माण विशेष है। होमोसेपियन्स (आधुनिक मानव) के प्रकटीकरण के साथ यह परिवर्तन-प्रक्रिया अवरुद्ध हो जायेगी, उसकी विकास यात्रा बन्द हो जायेगी, ऐसा कहना अनुचित होगा तो फिर आगामी युग के व्यक्ति कैसे होंगे ? उत्तर देते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि निश्चय ही उनका बाहरी ढाँचा वर्तमान लोगों जैसा ही होगा, पर मानसिक संरचना सर्वथा भिन्न होगी। मनुष्य अब चेतना के धरातल पर विकास करेगा। उसकी शारीरिक प्रगति पूरी हो चुकी। अब आगे जो उत्कर्ष सम्पन्न होगा, वह विशुद्ध रूप से मानसिक स्तर पर होगा। चिन्तनशील प्राणी होने के नाते उस क्षेत्र में अभी भी उन्नयन की काफी कुछ गुंजायश शेष है। ऐसे में आने वाले समय की मानव-जाति को प्रज्ञा सम्पन्न मान लिया जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

दूसरे ढंग से विचार करें, तो ज्ञात होगा कि हमारी गति-प्रगति चक्रीय है। चक्र के प्रत्येक बिन्दु से गुजरना हमारी नियत है। इस क्रम में इसके शीर्ष पर कभी हम उत्कृष्टता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्थित थे, तो आज अधःबिन्दु पर पड़े-पड़े उस गौरव-गाथा को याद करके ही संतोष करना पड़ रहा है। ऊर्ध्व से अधः की यात्रा आसान है। इसमें मात्र गिरना पड़ता है, निम्न से उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित होने के लिए पराक्रम करना पड़ता है, बल लगाना पड़ता है। तिनका हवा के सहारे आकाश चूमने लगता है। पतंग को भी गगनचुम्बी ऊँचाई छूने के लिए वायु की आवश्यकता पड़ती है। पानी को कई मंजिल ऊपर चढ़ाना हो, तो पम्प चाहिए। वायुयान, रॉकेट, उपग्रह सभी को ऊपर उठने के लिए अतिरिक्त बल की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य भी बिना पुरुषार्थ के अपनी उन्नति के शीर्षस्थ बिन्दु पर अधिष्ठान नहीं कर सकेगा। इसके प्रयास के साथ-साथ परिष्कार की भूमिका भी सम्पन्न होनी चाहिए, तभी वह भावनात्मक विकास की उच्चतम मंजिल तक पहुँचने में सफल हो सकेगा।

दोष जाने और हटाये बिना स्वयं को शुद्ध न मान लें

मन को शुद्ध करने की कामना सभी व्यक्त करते रहते हैं। किन्तु मनःशुद्धि के लिए मन के दोषों को भी जानना आवश्यक है और फिर उन्हें समाप्त करने की साधना आवश्यक है। यह प्रक्रिया पुरुषार्थ-साध्य है। इसीलिए उसे साधना-समर कहा गया है।

मन पाँच क्लेशों या पाँच दोषों से पीड़ित और लिप्त रहता है। वस्तुतः मन स्वयं में मात्र संकल्पक इन्द्रिय है। यह संकल्प उसमें स्वतः नहीं उद्भूत होता। वह अन्तःकरण के स्वरूप पर यानी श्रद्धा पर निर्भर होता है। मन स्वयं तो छठी इन्द्रिय मात्र है, वह उपकरण है। दोष मूलतः चित्त-वृत्ति की स्थिति विशेष है। सामान्यतः मन, चित्त और बुद्धि एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते रहते हैं। परन्तु जिसे प्रचलन में मन कहा जाता रहता है, वह वस्तुतः अन्तःकरण है।

अन्तःकरण विविध होते हैं। ये हैं बुद्धि, अहंकार एवं मन। वाचस्पति मिश्र ने 'सांख्यतत्व कौमुदी' में ३३वीं कारिका की व्याख्या में लिखा है—

''अन्तःकरणं त्रिविधि-बुद्धिरहंकारो मनः इति; शरीराभ्यन्तखर्तित्वादन्तःकरणम्। ''दशधा बाह्यं'' करणं, ''त्रयस्य'' अन्तःकरणस्य ''विषयारव्यम्'' विषयमारब्याति विषयसंकल्पाभिमानाध्यसायेषु कर्त्तव्येषु द्वारी भवति। तत्र बुद्धीन्द्रियाग्यलोचनेन, कर्मेन्द्रियाणि तु यथास्वं व्यापारेण।''

अर्थात्—बुद्धि, अहंकार तथा मन के भेद से 'अन्तःकरण' तीन प्रकार के हैं। शरीर के अन्तर्गत होने से ये अन्तःकरण कहलाते हैं। बाह्यकरण दस होते हैं। ये तीनों अन्तःकरण के विषयों को प्रस्तुत करते हैं। विषयों के सम्बन्ध में होने वाले संकल्प अभिमान और निश्चय में ये द्वार या साधन बनते हैं। इनसे ज्ञानेन्द्रियाँ विषय, प्रकाशन द्वारा तथा कर्मेन्द्रियाँ यथायोग्य व्यापारों द्वारा सहायक बनती हैं। मन विषयों का ग्रहण कर उन्हें बुद्धि तक पहुँचता एवं बुद्धि से प्राप्त निर्देश इन्द्रियों को देता रहता है। अहंकार ही संस्कार-जगत होता है। इसे ही चित्त भी कहते हैं। अहं भाव ही समस्त कारण व्यापारों का मूल है। इसीलिए उसे अन्तःकरण कहा जाता है। अहं के प्रत्यय यानी मैं ज्ञाता हूँ, मैं कर्त्ता हूँ आदि अन्तर्भाव ही बुद्धि तत्व है। इसे ही 'अस्मि' का, स्वयं के होने का भाव या अस्मिता कहते हैं। अहंकार एवं बुद्धि इन दोनों को अस्तिमता कहा जाता है। इनमें उदित संस्कारों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभव विषय का ग्रहण, तदनुसार चेष्टा एवं धारण ही संकल्पात्मक मन के कार्य हैं।

प्राण मन की ही प्रेरणा से चलता है। जब तक स्वयं मन कुमार्गगामी है, अन्तःकरण कुसंस्कार-युक्त है, तब तक प्राण का संयम सम्भव नहीं। प्राण-प्रवाह गतिशील अश्व के समान है, उसका नियन्त्रण निर्देशन करने वाला अश्वारोही मन है। उन्मत्त घुड़सवार घोड़े पर लगाम नहीं रख सकता। असंयमित मन प्राणों को संयमित नहीं कर सकता। इसीलिए मनःसंयम की प्राथमिक आवश्यकता है।

मन के असंयम का कारण होती है उसकी विषयों के प्रति लोलुपता की वृत्ति। यही मन की अशुद्धि का कारण है। चित्त-मन की इस अशुद्धि की अवस्था को ही योगशास्त्र की भाषा में क्लेश कहते हैं। मन को शुद्ध करने के लिए अशुद्धि का अर्थात् क्लेशों का स्वरूप जानना आवश्यक है। ये क्लेश पाँच हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश। योगसूत्र में कहा है—

'अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।'

(योग सूत्र २१३)

समस्त क्लेशों का सामान्य स्वरूप है-विपर्यस्त ज्ञान, जो चचंलता अशान्ति और कष्ट की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है। इसीलिए अविद्या या विपर्यस्त ज्ञान को समस्त क्लेशों का आधार कहा जाता है। असत्य को सत्य समझना भ्रान्ति को यथार्थ समझना, जड़ जगत को ही जीवन-सार समझना अविद्या है। पांतजलि ने कहा है—

''अनित्याशुचि दुःखानात्मसु

नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।''

अर्थात्—अनित्य, अशुचि, दुःखमय तथा अनात्म विषय में नित्यता, शुचिता, सुख तथा आत्मस्वरूपता की अनुभूति एवं बोध की अविद्या है।

वस्तुतः अविद्या ही मूल क्लेश है। अनात्म तत्व को ही आत्मतत्व माने रहने की अविद्या, अस्मिता का आधार है। मूलतः अपवित्र, असुन्दर वस्तुओं को पवित्र, सुन्दर मान बैठने की अविद्या ही राग है। दुःखद, पीड़क, उत्तापकारी मनःस्थिति उत्पन्न करने वाली क्रियाएँ ही द्वेषपूर्ण चित्त को सुखद, हर्षदायक, जी जुड़ाने वाली प्रतीत होती हैं, अतः दुःख में सुख का ज्ञान कराने वाली अविद्या ही द्वेष का आधार है। अनित्य, नश्वर शरीर को नित्य मान बैठने, उसके ही नाते, रिश्तों में बँधे रहने को अविद्यापरक स्थिति ही अभिनिवेश है। अयथार्थ ज्ञान ही अविद्या है और जिसे अज्ञान कहा जाता है, वास्तविक अर्थों में वह अयथार्थ ज्ञान होता है। जैसे रस्सी को साँप समझ बैठना अयथार्थ ज्ञान है। यह भली-भाँति समझ लेने योग्य तथ्य है कि अविद्या और विद्या के विषय परस्पर विपरीत नहीं होते, अपितु मात्र उनकी बोध स्थिति ही परस्पर विपरीत होती है। इसलिए किसी कार्य-क्षेत्र या विषय-क्षेत्र से विद्या-अविद्या का सम्बन्ध नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि अमुक कार्य-क्षेत्र मूलतः विद्या का है, शेष अविद्या के क्षेत्र हैं, वे स्वयं भ्रान्त हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई यह समझ ले कि धार्मिक कही जाने वाली क्रियाओं में माला, जप, पंचोपचार, यज्ञ, हवन, ब्रह्मभोज, दान आदि में प्रवृत्त रहना विद्या है और सामाजिक गतिविधियों, राजनैतिक हलचलों में भाग लेना अविद्या है, तो वह भ्रम में है। चाहे पहली कोटि की क्रियाएँ हों चाहे दूसरी, यदि उनमें यथार्थ बोध के साथ, दार्शनिक समय के साथ कोई प्रवृत्त होता है, तभी वह विद्या प्रेरित सक्रियता है, यदि यह उनके यथार्थस्वरूप को समझे बिना लिप्त रहता है, तो उसकी सारी सक्रियता अविद्या मूलक है। भले ही वह उन क्रियाओं में लगा हो, जो ब्रह्मविद्या का क्षेत्र मानी जाती हैं यानी भले ही कोई व्यक्ति शास्त्रों के पठन-पाठन, योग आदि पर प्रवचन, देव-चर्चा आदि में प्रवृत्त रहा आये, किन्तु यदि वह लोकेषणा, वित्तेषणा आदि से प्रेरित होकर यह सब कर रहा है, तो वह अविद्या की उपासना कर रहा है। विद्या में रत दीख रहा होने पर वह अन्धकार में ही भटक रहा है। अनात्मतत्वों को आत्म-दर्शन का आधार मान बैठना अस्मिता मूलक अविद्या है, विद्या नहीं।

नाशवान शरीर आदि को ही अपनी आत्मसत्ता समझ कर, फिर उनके नाश से मानो हमारी सम्पूर्ण सत्ता ही नष्ट हो जाएगी, ऐसा भय अभिनिवेश कहलाता है। इस प्रकार अस्मिता और अभिनिवेश चित्त-मन के सूक्ष्म दोष हैं, जो अविद्याजन्य है।

दैनन्दिन जीवन में ऊपर उभरकर आने वाले मन को दो प्रधान दोष हैं—राग और द्वेष। महर्षि पांतजलि ने इनकी यह व्याख्या की है—

''सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी दोषः।''

(योगशास्त्र २/७-८)

अर्थात्-सुखानुशयी क्लेश वृत्ति राग है और दुःखानुशयी क्लेश वृत्ति द्वेष है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों ही संवेदन-अनुभूतियों का यथार्थ स्वरूप न जानने के परिणाम हैं। इन्द्रियाँ स्वभावतः बहिर्मुखी हैं। जब इन्द्रियों को उनके वांछित विषय उपलब्ध होते हैं, तो उन्हें स्वभावतः सुखानुभूति होती है। जैसे स्वादिष्ट भोजन रसना को, सुन्दर दृश्य आँखों को सुहानी ध्वनियाँ, मीठी बातें, संगीत आदि कानों को, सुगन्ध नाक को, मृदुल स्पर्श त्वचा को सुखानुभूति देता है। अनुभूतियों के ये सन्देश मन ही बुद्धि के समक्ष ले जाता है और बुद्धि में पूर्व संचित वासना-संस्कारों को उससे क्षणिक तृप्ति का अनुभव होता है। इनसे सुखानुभूतियों के इन साधनों में स्पृहा, तृष्णा और लोभ का भाव जड़ जमा लेता है, यही राग है। यह राग-वृत्ति एक दुःसह चक्र की जन्म देती है। विषयानुभूतियाँ तो क्षणिक होती हैं और मन अपनी चंचलता के कारण एक से दूसरे विषय की ओर दौड़ता रहता है। जिधर मनोयोग होता है, उधर ही इन्द्रियाँ भी सक्रिय होती हैं। मन की निरन्तर चपलता का कारण अन्तःकरण में संस्कार रूप में जड़ जमाये बैठी करोड़ों वासनाएँ हैं, जो कालक्रम तथा संयोग सुविधा से उदित होने और प्रबल हो उठने की ताक में ही रहती हैं। उनसे प्रेरित मन जिस विषय में दौड़ता है, इन्द्रिय चेष्टाएँ उधर ही अभिमुख हो जाती हैं और विषयास्वादन की प्रक्रिया सम्पन्न होने लगती है। दूसरी ओर प्रत्येक विषयानुभूति मन पर एक आसक्तिजनक संस्कार छोड़ जाती है। इस संस्कार से प्रेरित मन पूर्वानुभवजन्य आसक्ति भाव के आधार पर उन्हें पाने के ताने-बाने उस समय भी बुनता-रचता रहता है, जब वह विषय सामने उपस्थित नहीं होता। इस प्रकार वासना-संस्कार से विषयों में प्रवृत्ति और विषयानुभूति से वासना-संस्कार का राग-चक्र सतत् चलता रहता है। राग मन को अवश और विवश बनाता है। जिसके प्रति राग होता है, उधर ही इच्छा और संकल्प बरबस दौड़ते रहते हैं। उसे पाने की ललक मन में उठती रहती है, यही स्पृहा है, उसके बिना अतृप्ति का अनुभव होता रहता है, जैसे पानी की प्यास लगने पर पानी के बिना अतृप्ति का अनुभव होता है। यह प्यास या अतृप्ति ही तृष्णा है। तृष्णा, लोभ उत्पन्न करती है। विषय प्राप्ति की बलवती इच्छा ही लोभ है। वह इच्छा अपनी प्रबलता के कारण हित-अहित, उचित-अनुचित का विवेक-विचार अस्त-व्यस्त, छिन्न-भिन्न करके रख देती है। राग की प्रबलता में उस क्षण बुरा भी बहुत भला लगने लगता है, अनुचित ही सर्वथा वांछनीय और अधर्म ही आवश्यक धर्म लगने लगता है। असुखकर पदार्थ ही अतिशय सुखद प्रतीत होने लगते हैं।

राग की तृप्ति में, विषय सुख की प्राप्ति में जो बाधक प्रतीत होता है, उस पर प्रतिघात करने की, उसे विनष्ट कर देने की इच्छा उत्पन्न होती है। उसके प्रति मानसिक रोष एवं क्षोभ उत्पन्न होता है। यही सब द्वेष के लक्षण हैं। इनसे यद्यपि चित्त, मन जलता-तपता रहता है और दुःख पाता रहता है, किन्तु द्वेष, दुर्भावना की तीव्रता व्यक्ति को उसी में सुख का भ्रम पैदा करती रहती है।

राग और द्वेष के ही प्रकट रूप काम एवं क्रोध हैं। अधिकाधिक संग्रह का लोभ, जिस पर अपना स्वत्व नहीं, उसे भी अधिपत्य में करने की चोरी, छीना-झपटी, अपहरण आदि की वृत्ति, राग का ही परिणाम है। राग-द्वेष ही छल-कपट, ईर्ष्या-निन्दा, असत्य, अनुदारता, असहिष्णु कुटिलता, कृतघ्नता, कटुता, कायरता एवं पशुता को जन्म देते हैं तथा मनुष्यत्व का हरण कर लेते हैं। इसी प्रकार अविद्या के तामसिक परिणाम प्रमाद, आलस्य, अपवित्रता आदि दुर्गुणों के रूप में सामने आते हैं। यही मन के दोष हैं जो निकृष्ट आचरण की प्रेरणा देते तथा कुसंस्कारों को स्थायी बनाते रहते हैं। दूषित मन प्राण-शक्ति को अधोगामी बनाता है। साथ ही बुद्धि को कुतर्क-परकता, कुटिलता और कुविचार-प्रेरणा से भरता रहता है।

अतः आत्म-शुद्धि के आकांक्षी प्रत्येक मनुष्य को अन्तःकरण के इन सभी दोषों को समझकर इन्हें निकाल फेंकने के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए। इसी अभ्यास का नाम साधना है।

इन दुष्प्रवृत्तियों के मूल स्वरूप को तथा उनके आधारभूत आर्कषणों की क्षणिकता और हानि उत्पादकता को समझकर उनसे विरत होना ही वैराग्य है। इस तथ्य का पुनः-पुनः स्मरण, दुष्प्रवृत्तियों को समाप्त करने की प्रक्रिया का पुनः अनुशीलन तथा साथ-साथ आत्मा की दिव्यता के भाव के बार-बार चिन्तन, आत्म-ज्योति की निरन्तर धारणा के प्रयास का नाम अभ्यास है। अभ्यास वैराग्य की विविध साधना प्रणाली ही आत्म-शुद्धि की सामर्थ्य प्रदान करती है। यह सामर्थ्य उपार्जित करना और दोषों, दुष्प्रवृत्तियों को समाप्त कर शुद्ध विवेक को जाग्रत रखना ही परम पुरुषार्थ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तःकरणों का मर्म स्थल अपनी दिशा बदले

मनुष्य की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं में मूलतः उसकी प्रेरक प्रवृत्तियाँ सन्निहित हैं। इच्छाओं का उफान जिस दिशा में उमड़ता है उसी ओर मस्तिष्क चल पड़ता है सोचने का ढर्रा उसी पटरी पर लुढ़कता है और बुद्धि उसी स्तर के साधन सरंजाम जुटाने का ताना-बाना बुनने लगती है। शरीर की क्रियाएँ उसी दायरे में अग्रसर होती हैं और साधन, सहयोग वातावरण उसी प्रकार के जुटने आरम्भ हो जाते हैं। अपने बनाये जाले में मकड़ी पूरी तरह फँस जाती है। मनुष्य अपनी इच्छाओं द्वारा विनिर्मित परिस्थितियों के जाल-जंजाल में जकड़ा रहता है। उसे इतना शारीरिक एवम् मानसिक अवकाश ही नहीं मिलता कि जीवनोद्देश्य की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम बढ़ा सके।

आकांक्षाओं का महत्व समझा जाना चाहिए और उनकी दिशा निर्धारण करने के सम्बन्ध में समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। मानवीय सुख-शान्ति और सामाजिक प्रगति की कुंजी यहीं छिपी पड़ी है। पिछले अन्धकार युग में हुए वैयक्तिक अधःपतन और सामाजिक दुर्गति का यदि तात्त्विक लेखा-जोखा लिया जाय तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि लोगों के सोचने का स्तर घटिया बन गया और उनकी महत्वाकांक्षाएँ संकीर्ण प्रयोजनों में अटक कर विकृतियाँ ही विकृतियाँ पैदा करती रह गईं।

व्यक्ति यदि जीवनोद्देश्य को समझे, उसे पूरा करने की आकांक्षा जागृत करे तो हर स्थिति का व्यक्ति आदर्शवादिता की दिशा की काफी दूर तक चल सकने का अवसर प्राप्त कर सकता है। इच्छाएँ सोचने को प्रेरित करती हैं और मस्तिष्क वह जादू का पिटारा है कि जिधर चलेगा उसी प्रकार के साधन और अवसर प्राप्त कर लेगा। यदि विलासी और संग्रही बनने की अभिरुचि भड़क उठे तो व्यक्ति उन्हीं के लिए अहर्निशि सोचेगा और करेगा। पिछले दिनों यही होता रहा है। व्यक्ति संकीर्ण स्वार्थों की परिधि में ही अपने को सीमाबद्ध रखता रहा है और लोभ, मोह को परमप्रिय विषय बनाये बैठा रहा है और काम, क्रोध की आग बुझाने के सरंजाम इकट्ठे करता रहा है। यह केवल नर-पशु जैसा जीवन क्रम ही प्रदान कर सके हैं। यह लालसायें जब भड़कती हैं तो अपनी उग्रता का कारण मानवीय मर्यादाओं का तोड़-फोड़कर रख देती हैं। नैतिकता को कोई मूल्य उस प्रवाह के सम्मुख टिक नहीं पाता। किसी भी प्रकार अपनी हविस पूरी करने की उतावली इतनी बेचैनी उत्पन्न करती है कि नीति और सदाचार, न्याय और औचित्य का ध्यान ही नहीं रहता। तृष्णाओं से संत्रस्त वासनाओं से पीड़ित, अंहकार से उन्मत व्यक्ति जो कुछ भी न कर डाले वही कम है। पाप और अपराध करने का दुस्साहस इसी आवेग एवं आक्रोश में किया जाता है। यदि व्यक्ति का आकांक्षा केन्द्र तृष्णाओं और वासनाओं की परिधि में सीमित हो गया है और उन चिन्गारियों को लगातार पोषण मिलता रहा है तो क्रमशः उनकी उग्रता बढ़ती चली जायेगी और उन्हें पूरी करने के लिए अनैतिक आचरण अपनाने का लोभ संवरण न किया जा सकेगा। हविस का मारा व्यक्ति जो भी कर बैठे कम है।

इच्छाओं का केन्द्र यदि पशु प्रवृत्ति से भरा रहे और मनुष्य अपने शारीरिक सुखों को पाने, अहंकार को सँजोने का लालच को बढ़ाने में लगा रहे तो उस संदर्भ में कुछ भी अनर्थ करने में तत्पर हो सकता है। अनर्थ न भी करे तो अपनी उसे उधेड़बुन में शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से इतना व्यस्त तो रहेगा ही कि उत्कृष्टता की दिशा में कुछ सोचने या करने के लिए उसे अवसर ही न मिले यह भी एक बड़ी हानि है। कूकर-शूकरों की तरह यदि मनुष्य जीवन को यों ही पेट और प्रजनन के लिए बर्बाद कर दिया जाय तो मानवीय गौरव की दृष्टि से यह एक बहुत बड़ी क्षति ही कही जायगी। इस स्तर के नागरिक जिस देश, समाज के होंगे वह निरन्तर दुर्बल होता चला जायगा। व्यक्तित्व का हित और उत्कर्ष आदर्शवादी विचारणा और कार्य पद्धति पर निर्भर है। जो लोग नीचा सोचते और ओछा करते हैं वे सम्पन्नता एकत्रित कर लेने पर भी किसी की या अपनी आँखों में अपनी इज्जत अक्षुण्ण नहीं रख सकते। कोई बड़ा काम नहीं कर सकते और मूर्धन्य, प्रामाणिक एवं गण्यमान्य लोगों की पंक्ति में नहीं बैठ सकते। धन, शिक्षा, बुद्धि-कौशल, स्वास्थ्य, सौन्दर्य में कुछ प्रगति कर लेने पर भी उनके व्यक्तित्व निखर न सकेंगे और उनमें आत्मबल की न्यूनता ही बनी रहेगी। ऐसे व्यक्ति स्वयं अशान्त रहते हैं, सम्बद्ध समीपवर्ती लोगों को विक्षुब्ध करते हैं और जहाँ रहते हैं वहीं अवांछनीय प्रवृत्तियाँ पैदा करते हैं। व्यक्तिगत रूप से वे कुछ सफलताएँ प्राप्त कर भी लें तो वे अपनी ऐसी उपयोगिता या महत्ता सिद्ध नहीं कर सकते हैं, जिनके आधार पर राष्ट्र या समाज को बल मिले।

समाज व्यक्तियों का समूह ही तो है। राष्ट्र प्रजाजनों की सम्मिलित क्षमता का ही नाम है। जहाँ जैसे नागरिक होंगे, वहाँ की सामाजिक और राष्ट्रीय परिस्थितियाँ वैसी ही बन जायेंगी। अस्तु, यदि सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति की बात सोचनी हो तो सबसे अधिक ध्यान नागरिकों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व का निर्माण करने की दिशा में दिया जाना चाहिये। इसके बिना बालू की दीवार की तरह निर्माण के लिए किये गये सारे प्रयत्न बात की बात में ढह जायेंगे। दुर्बल चरित्र और निकृष्ट मनोवृत्ति के मनुष्य कोई ऊँचा काम कर सकना तो दूर अपने पैरों आप खड़े नहीं रह सकते और जिनके साथ रहते हैं उन्हें चैन से नहीं रहने दे सकते। जो स्वयं ही समस्या बने हुए हैं वे दूसरों की समस्याएँ क्या हल करेंगे ? जो स्वयं खड़े तक नहीं रह सकते वे राष्ट्र को क्या उठावेंगे? जिनका मुँह खुद ही काला हो रहा है वे देश का मुख उज्ज्वल कैसे करेंगे? व्यक्तित्वों को सही बनाया जाना और ऊँचा उठाया जाना, सामूहिक प्रगति और विश्व शान्ति के लिए नितान्त आवश्यक है। यह व्यक्ति निर्माण कार्य धन के अभिवर्धन, सुविधाओं के आधिक्य, शिक्षा के बाहुल्य शरीर के परिपोषण अथवा पदवी प्राप्त करने के आधार पर नहीं मनोवृत्ति की उत्कृष्टता के आधार पर सम्भव होता है। गुण, कर्म, स्वभाव जितने परिष्कृत होंगे व्यक्ति उतना ही समुन्नत माना जायेगा।

यह विशेषताएँ अनायास ही नहीं उपज पड़तीं, उनके मूल में उत्कृष्ट अभिलाषा एवं प्रखर अभिरुचि की आवश्यकता होती है। चाहने को तो लोग न जाने क्या-क्या चाहते रहते हैं सोचने को तो न जाने क्या-क्या सोचते रहते हैं पर उन्हें शेखचिल्ली के सपने मात्र ही कहा जा सकता है। कामनाओं और कल्पनाओं से दिल बहलाया जा सकता है। पर प्रयोजन कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। दुनिया में ऐसा कोई कल्पवृक्ष नहीं जिसके नीचे बैठकर पलक मारते मनोकामनाएँ पूरी की जा सके। प्रगति का पथ अति कठोर और अति संघर्षमय है। उस पर केवल साहसी, धैर्यवान और मनस्वी ही चल सकते हैं। जो जरा-सी सुविधा मिलने पर अहंकार से उन्मत हो उठते हैं और जरा-सी असफलता मिलने या कठिनाई आने पर निराशा के गर्त में गिरकर सिर धुनने और रोने चिल्लाने लगते हैं, वे अध-पगले लोग न तो जीवन का स्वरूप समझते हैं न उसका मूल्य महत्व। जीवन संघर्ष का ही दूसरा नाम है। प्रगति प्रबल प्रयत्नों पर निर्भर है। सफलताओं की बैजन्ती पुरुषार्थी ही पहनते हैं। मुसीबतों में हँसते रहते और सघन अन्धकार में उज्ज्वल भविष्य की आशा किरणें ढूँढ़ना जिनकी प्रकृति में सम्मिलित है, उन्हीं को सच्चे अर्थों में प्रतिभाशाली, प्रखर व्यक्तित्व सम्पन्न कहा जा सकता है। ऐसे ही लोगों का जीना सार्थक है। दूसरे तो धरती पर बोझ बढ़ाने के लिए मात्र जीते भर हैं।

विकासवान व्यक्तित्व की आधारशिला मनुष्य की आंतरिक अभिलाषाओं और आकांक्षाओं के ऊपर निर्भर रहती है। वस्तुतः यही केन्द्रबिन्दु वह सार तत्व है जिसे अहम्-ईगो-व्यक्तित्व या अध्यात्म कहते हैं। मनुष्य वस्तुतः क्या है। यदि उसकी असलियत परखनी हो तो उसके अन्तरंग में घुसकर यह ढूँढ़ना होगा कि वह सचमुच चाहता क्या है। सामाजिक दबाव या लोकलाज के कारण बहुधा बाहर से वह प्रदर्शित किया जाता है। वह कहा जाता है, जो सामाजिक सम्मान बनाये रहे। वास्तविक इच्छाएँ कई बार इस बाह्य प्रदर्शन से सर्वथा प्रतिकूल होती हैं। कथनी और करनी का अन्तर अक्सर नेताओं, धर्मध्वजियों और दूसरे ख्याति नामा व्यक्तियों में देखा जाता है, वे आदर्शों और सिद्धान्तों की लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकते और लच्छेदार प्रवचन करते देखे जाते हैं पर जब उनकी मनोदशा तथा करतूतों का नग्न स्वरूप छन-छनकर बाहर आता है, तो उस सड़े मवाद की दुर्गन्ध से नाक फटने लगती है। कथनी और करनी का यह जमीन-आसमान जैसा अन्तर यह बताता है कि बाहर से आदमी कुछ भी कहता बताता रहे, असल में वह वही रहेगा जो स्वरूप अन्तरंग में विनिर्मित किये बैठा है। यह अन्तरंग की अभिलाषाएँ ही जीवन का सार तत्व हैं इसी बीज के अनरूप परिस्थितियों के अंकुर उगते, और साधनों के पते जुटते हैं और उन्हीं के अनुरूप क्रियाकलापों के पुष्प और परिणामों के फल सामने आकर उपस्थित हो जाते हैं। एक शब्द में यों कह सकते हैं कि आंतरिक अभिलाषाएँ ही जीवन का सर्वस्व हैं। ये जिधर बहेंगी उधर ही मन, शरीर कर्तृत्व और वातावरण सहज ही बढ़ता, ढलता चला जायेगा। इस प्रवाह के आगे कोई अवरोध ठहर नहीं सकता। समस्त प्रतिकूलताओं को चीरता हुआ वह प्रवाह अपने लिए रास्ता बना लेता है और उन साधनों को प्राप्त कर लेता है उन स्थानों तक पहुँच जाता है। जिनकी कि प्रारम्भिक स्थिति में कल्पना कर सकना भी कठिन था।

नृतत्व विज्ञान को हमें इसलिये समझना चाहिए कि युग-निर्माण आन्दोलन इसी मर्मस्थल को छूता है। उसका आरम्भ यहीं से होता है। हम साधनों का निर्माण करने नहीं चले हैं क्योंकि अपनी दृष्टि में वे बार-बार झड़ने-उगने वाले पत्र, पल्लव मात्र हैं। निकृष्ट मनोभूमि के रहते अच्छी से अच्छी परिस्थितियाँ निरर्थक सिद्ध होती हैं और देखते-देखते पलायन कर जाती हैं, इसके विपरीत उत्कृष्ट मनोभूमि गई-गुजरी परिस्थितियों में भी आनन्द, उल्लास का बाहुल्य अनुभव करती है और क्रमशः अनुकूल साधनों को जुटाती चली जाती है। अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ प्रजा की भौतिक सुविधाएँ बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील हैं अपना उनसे कुछ विरोध नहीं, वह सब भी चलते ही रहना चाहिए। पर अपनी इस मान्यता की हमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तनिक भी आवश्यकता नहीं कि व्यक्ति की अन्तरंग उत्कृष्टता बढ़ाई जानी चाहिए इसके बिना कुबेर जैसी सम्पन्नता और रावण जैसी समृद्धि भी दो कौड़ी की सिद्ध होगी। हम यह नहीं मानते कि सम्पन्नता बढ़ने से आन्तरिक उत्कृष्टता बढ़ती है। यदि ऐसा होता तो आज के श्री मंत लोग भावनात्मक दृष्टि से महामानवों जैसे होते और उनके कर्तृत्व लोक-मंगल की समस्त आवश्यकताओं को सहज ही पूरा कर सकते । वह गरीब समझे जाने वाले सन्त और ऋषि असहाय और निरर्थक सिद्ध हुए होते पर होता इससे बिल्कुल विपरीत है। साधन ही व्यक्ति संसार की महानतम सेवाएँ कर सके, इतिहास का पन्ना-पन्ना साक्षी देता है और सम्पन्न राजा-रईसों, अमीर-उमरावों ने कितने घृणित उदाहरण प्रस्तुत किये इसकी मर्मभेदी कथा गाथा पर भी देर तक पर्दा नहीं डाला जा सकता । चाटुकारों की प्रशंसा निन्दा उड़ती हुई बदली की तरह है। मान पत्र अभिनन्दन ग्रन्थ किसी की महत्ता को नहीं बढ़ाते वरन् उल्टे उपहासास्पद बनाते हैं। असलियत सात पर्दे फाड़कर झाँकती है। व्यक्ति का अन्तरंग जैसा कुछ होगा उसी स्तर की प्रबल प्रेरणाएँ उठती रहेंगी और जीवन उसी दिशा में अग्रसर होता चला जायेगा।

नृतत्व विज्ञान के यह तत्व हमें बताते हैं कि विश्व शान्ति के लिए राष्ट्रों के विकास और राष्ट्रों के विकास के लिए व्यक्तित्वों के विकास अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। व्यक्तित्व-आकांक्षा जिस आधार पर विकसित होते हैं। अन्तरंग की ललक ही जीवन दिशा का निर्धारण करती है इसलिए हमें जन-इच्छाओं को परिष्कृत करने की दिशा में सारा ध्यान केन्द्रित और प्रयत्नों को समवेत करना चाहिए। आज का मनुष्य बाहर से कुछ भी बकता या बनता हो भीतर से बहुत ही लोभी, स्वार्थी, संकीर्ण, अनुदार और कामुक प्रवृत्ति का बन गया है। यदि पोस्टमार्टम करते चलें तो भावना शरीर का शवच्छेद लगभग एक ही प्रकार का निष्कर्ष प्रस्तुत करेगा। हर आदमी अमीरी आधार पर विलासिता, कामुकता और अहमन्यता का मजा उठाने के लिए व्याकुल है। उसे ऐश चाहिए, शान-शौकत चाहिए , वाहवाही चाहिए , इसके अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं चाहिए। यह चीजें उसे अति विशाल मात्रा में और अति शीघ्र चाहिए इसलिए उचित-अनुचित के झगड़े में पड़ने को भी उसे फुरसत नहीं। अनुचित रीति से अन्यायपूर्वक यदि अमीरी तथा उसके साथ जुड़ी सुविधाएँ उसे मिलती हैं तो उसे इसमें जरा भी ऐतराज नहीं। यों घर गृहस्थी भी उसके साथ है इसलिए अपनी विलासिता में उन्हें भी मजबूरी से शामिल करना पड़ता है। कमाते हुए जो जमा हो जाता है उसे न तो लोक मंगल के लिए दान करने जैसा छाती पर पत्थर बाँधा जा सकता है और न फैंका जा सकता है। ऐसी दशा में एक ही रास्ता बच जाता है कि मरते-मरते जो बच जाय उसे बेटे, पोते, साले, जँवाई खायें।बँटवारे के लिए एक-दसूरे का सिर फोड़े और उस हराम की कमाई को बेरहमी के साथ उड़ायें फूँकें। इसी धुरी पर आज के व्यक्ति का सारा जीवन क्रम घूम रहा है। काम करने के तरीके अलग हो सकते हैं पर मनोदशा का प्रवाह एक ही दिशा में है। तृष्णा और वासना, लोभ तथा मोह इन चार को ही हर किसी ने अपना जिगरी दोस्त मान लिया है। पाँचवें के लिए वहाँ गुजायश नहीं।

यों लोग परमार्थ और पूजा-पाठ की चिन्ह पूजा करते भी देखे जाते हैं पर उनकी असलियत को जब परखा जाता है, तब हँसी रोके नहीं रुकती। परमार्थ का मतलब सिर्फ इतना रह गया है कि लोग किसी दुष्ट दुरात्मा को धर्मात्मा या उदार समझने के भुलावे में डाले जा सकें। इस भुलावे के लिए जितनी कुछ विज्ञापनबाजी की जा सकती हो उसी धूर्तता का नाम परमार्थ है। तथाकथित ''पुण्य'' करने से पूर्व मनुष्य हजार बार सोचता है कि कम से कम खर्च में बड़े से बड़ा धर्मात्मा समझा जाने की तरकीब क्या हो सकती है ? जो तरकीब ज्यादा उपयोगी दीखती है उसी को अपनाया जाता है। बिना विज्ञापन कराये कोई एक कौड़ी या एक घड़ी खर्च करना नहीं चाहता। निरर्थक, निकम्मी, निष्प्रयोजन इमारतें रोज बनती चली जाती हैं। किसी का नाम मन्दिर, किसी का धर्मशाला, किसी का क्या रखा होता है। उनके पर लगे कीर्ति बोधक पत्थर लालाजी की धर्म ध्वजा फहराते हैं। यह कोई नहीं सोचता कि इनसे क्या वस्तुतः कुछ लाभ होगा? तीर्थयात्रा, ब्रह्मभोज, कीर्तन, कथा, भागवत् कराने वालों, बन्दरों को लड्डू खिलाने वालों के मनों को चीरकर देखा जाय तो एक ही चीज मिलेगी कि देखने वाले उन महाशय को धर्मात्मा समझें। संस्थाओं को दान देते हुए, उनके एकाधिकारी बनते हुए, चुनावों में खड़े होते हुए लोग इन्हीं कामनाओं में सिर से पैर तक डूबे पाये जाते हैं। बेचारे परमार्थ का पल्ला जरूर पकड़ते हैं पर वह गरीब रोकर रह जाता है और सोचता है यदि मुझे बदनाम न किया जाता और इस घृणित रूप में प्रस्तुत न किया जाता तो ज्यादा अच्छा होता।

पूजा-पाठ की दुर्दशा देखकर तो रोना आता है। हर व्यक्ति लम्बे-चौड़े भौतिक लोभों की कामना सँजोकर वेमन से थोड़ी-सी टंटघंट करता है और पल-पल पर अति बेचैनी के साथ यह देखता है कि मनोकामना पूर्ण होने में अब कितने मिनट और लगेंगे। यह कोई प्रश्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं कि मनोकामना अपनी योग्यता और मेहनत के अनुरूप माँगी जा रही है या नहीं। यह कोई प्रश्न नहीं कि मनोकामना नैतिक है या अनैतिक। देवता को रोली, चावल, धूप, दीप, फूल, प्रसाद, खा लेने के बाद यह अधिकार कहाँ रह जाता है कि भक्त की मनोकामना पूर्ण करने में देर करे? यदि देर होती है तो देवता की खैर नहीं और पूजा-पाठ के जंजाल में कोई क्यों समय खराब करे ? इसकी किसी को कोई गरज नहीं। यदि देवता दिव्य भावना ही देते हों तो वे अपने लोक को चले जायें और किसी के रोली-चावल खाने की जुर्रत न करें और प्रशंसा सुनने या नाम जपाने का लोभ संवरण करके चुपचाप अपने घर चले जायें। यहाँ हर आदमी को पैसा चाहिए , विलासिता चाहिए, बीबी, बेटा चाहिए, पदवी चाहिए, आत्मकल्याण कहने सुनने भर के लिए ठीक है पर वस्तुतः वैसी निरर्थक वस्तु से किसी को क्या लेना-देना ? पूजा का अर्थ मनोकामना की पूर्ति यदि नहीं हो सकता तो आज का व्यक्ति उस जंजाल को दूर से ही नमस्कार करेगा, उपहास करेगा और नास्तिक रहना अच्छा समझेगा। जो पूजा करता है उसकी मनोभूमि उसी घटिया स्तर की पाई जा सकती है। वह देवत्व का अवतरण अपने व्यक्तित्व में करने के लिए साधना कर रहा होगा यह सोचना आज की स्थिति में दिवा स्वप्न देखने के ही बराबर है।

जब परमार्थ का ढोल पीटने वालों और पूजा का ढोंग रचने वालों, जन नेतृत्व का दावा करने वालों और मूर्धन्य स्थानों पर जमे हुए लोगों की कथनी और करनी में इतना अन्तर है, मनोभूमि की यह दयनीय दुर्दशा है, तो उस सामान्य व्यक्ति के बारे में क्या कहा जाय तो केवल पेट पालने और प्रजनन की प्रवंचना से आगे की कुछ बात सोचता ही नहीं, इससे अधिक कुछ करने का जिसका मन नहीं है, उससे तो नर-पशु के क्रिया कलाप से अधिक की आशा क्या की जा सकती है ? इसी को कहते हैं लोक मानस का अवसाद। मनुष्य ने यदि आदर्शवादिता और उत्कृष्टता को तिलांजलि दे दी तो वह फिर नर पशु मात्र ही शेष रह गया। अमीरी विद्वता शरीर-शोभा चातुर्य कला-कौशल सत्ता आदि सम्पदाएँ प्राप्त कर लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, यह कई बार बिना पुरुषार्थ अन्धे के हाथ बटेर की तरह उत्तराधिकार में अथवा भाग्यवश भी मिल जाती है। मानवीय गौरव की सद्भाव सम्पन्न विचारणा और अनुकरणीय सत्प्रवृत्तियों पर निर्भर है। महामानवों और नर-रत्नों का मार्ग जिसने अपनाया उसी का जीवन धन्य है। आत्म-शान्ति केवल उसी को मिलेगी और लोक श्रद्धा का भाजन अनन्त काल तक वही रहेगा। ईश्वर के सम्मुख अपनी सफेद चादर लेकर ऐसे ही लोग जा सकते हैं, मनुष्य जीवन कितना बड़ा ईश्वरीय अनुदान है, इसका अनुभव केवल वे ही कर सकते हैं जिनने माननीय आदर्शों को प्रमुखता दी और अनेक विघ्न बाधाओं के रहते गरीबी और उपहास का कष्ट पग-पग पर सहते हुए जिसने अपने गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश किया और कर्तृत्व में महानता भर ली उसी विभूतिवान को सराहा जायेगा। उसी का नर तन धारण सार्थक माना जायेगा।

यह सब कैसे हो सकता है? उसका उत्तर एक ही है कि अन्तरंग की आकांक्षा मर्मस्थल में आदर्शवादिता की उमंग पैदा की जाय। यह मनन, चिन्तन, स्वाध्याय, सत्संग और प्रेरणाप्रद वातावरण के सम्पर्क में रहने से सम्भव हो सकता है। इन साधनों की सुविधा सर्व साधारण को मिल सके इसके लिये हमें सामर्थ्य भर प्रयत्न करने चाहिए। शिक्षा और कला में उन तत्वों का समावेश करना चाहिए, जो मानवीय अन्तःकरण के मर्मस्थल को छूकर उसकी आकांक्षाओं को निकृष्टता के स्तर से उबारकर उत्कृष्टता की भूमिका में उभरने का प्रकाश, प्रोत्साहन और साहस प्राप्त कर सकें। यही एक मार्ग ऐसा है। जिस पर चलकर व्यक्ति मनुष्यता के महान् गौरव की रक्षा कर सकने योग्य गतिविधियों का निर्धारण कर सकता है।

अन्तरंग में मानवता को गौरवान्वित करने वालों रीति-नीति और कार्य पद्धति अपनाने की आकांक्षा जगे और उमंग उठे तो मन, मस्तिष्क, समय, श्रम सभी उस दिशा में मुड़ चलें और साधन, सुविधा, परिस्थिति, सहयोग आदि सारे सरंजाम उसी स्तर के सहज ही जुटने लगें। जो लोग निन्दा, व्यंग, उपहास, लांछन एवं अवरोध उत्पन्न करने में आज लगे हुए हैं वे कल अपनी हार मान लें और पत्थर से सिर फोड़ना छोड़कर उस अतिमानवी साहस के चरणों पर श्रद्धा के सुमन बिछाने लगें। इतिहास यही बताता है कि महानता के पथ पर कदम बढ़ाने वालों का सबसे अधिक विरोध उनके तथा कथित कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और मित्रों ने ही किया है। उन्हें लगता है कि श्रेष्ठता की दिशा में चलने वाले का मन, श्रम और धन कुछ न कुछ उन कार्यों में लगेगा जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विश्व मानव की सर्वांगीण प्रगति में आश्चर्यजनक सहायता कर सके। व्यक्ति जब अपनी मनोदशा और गतिविधियाँ परिष्कृत स्तर की बना लेता है तो उसका प्रत्येक कर्तृत्व न केवल उसकी सुख-शान्ति और प्रगति में सहायक होता है वरन् देश, धर्म, समाज, संस्कृति और विश्व-शान्ति के लिए हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध होता है। जो अपने को आकांक्षाओं, वासना, तृष्णा और लोभ-मोह के जंजाल से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निकाल लेता है। लोकेषणा, पुत्रेषणा, वित्तेषणा की पिशाचिन से पल्ला छुड़ा लेता है। तो जीवन निर्वाह के लिए उसे बहुत हाथ-पैर नहीं पीटने पड़ते, न बहुत सिर खपाना पड़ता है। सारी हाय-हाय, चिन्ता, उद्विग्नता, बेचैनी और खीज बात की बात में शान्त समाप्त हो जाती हैं। जीवनयापन की वास्तविक आवश्यकताएँ वस्तुतः बहुत स्वल्प हैं। आधा सेर अनाज, दस गज कपड़ा, एक चारपाई, छोटा बिस्तर, रहने की छाया जितनी सामिग्री जुटाने के लिये किसी को बहुत समय लगाने और अहिर्निश कोल्हू के बैल की तरह जुते रहने या अशान्त, उद्विग्न रहने की जरूरत नहीं पड़ती। शरीर की आवश्यकतायें स्वल्प हैं, तीन-तीन फुट के दो हाथ-छै इन्च की उदर स्थली को आसानी से भर सकते हैं। मस्तिष्क में इतनी बुद्धि जानवर को भी मिली होती है कि ऋतु प्रभाव से बचने के लिए निवास आदि की सुविधा उत्पन्न कर ले। परिवार यदि अनावश्यक रूप से बढ़ाया न जाय। पत्नी को गुड़िया बनाने के स्थान पर जीवन के हर क्षेत्र में कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने वाली सहचरी बनाया जाय तो कोई कारण नहीं कि वह परिवार के निर्वाह से लेकर निर्माण तक में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत न कर सके। इस प्रकार पुरुष का बहुत-सा बोझ जो इन दिनों असह्य जैसा प्रतीत होता है, सुव्यवस्था और दूरदर्शिता की रीति-नीति अपनाने पर बात की बात से सरल हो जाता है। परिवार बनाना या उसका निर्वाह करना कठिन नहीं। कठिन वह फुहड़पन है जिसके आधार पर घर के हर सदस्य को विलासी, अपव्ययी, अहंकारी, स्वार्थी और कामचोर बनाकर रख दिया जाता है। ऐसे परिवार आदि से अन्त तक सिर दर्द ही बने रह सकते हैं और उनके द्वारा उत्पन्न होती रहने वाली असाध्य गुत्थियों को सुलझाने में मोहग्रस्त व्यक्ति सारी जिन्दगी मरते खपते रह सकते हैं।

आदर्शवादी विचारधारा व्यक्ति को प्रबल प्रेरणा इस बात की देती है कि वह इस सुर दुर्लभ मानव-जीवन का स्वस्थ प्रयोजन, उद्देश्य और उपयोग समझे और तद्नुरूप अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करे। विश्व मानव की जनता जनार्दन को ईश्वर का स्वरूप माने और उसकी पूजा के लिये अपनी बौद्धिक और भौतिक विभूतियों को अधिकाधिक परमार्थ में समर्पित करने के लिये व्याकुल हो उठे। आज तो किसी के मन में उत्कृष्टता की भावना उत्पन्न होती है, तो वह लकड़ी की माला घुमाने और रामधुन की तोता रटन्त के जाल-जंजाल में फँसकर बर्बाद हो जाती है। परमार्थ का मन आया तो पण्डा-पुजारियों के जाल-जंजाल में फँसकर अपनी हजामत बनवा ली अथवा धर्मात्मा प्रसिद्ध होने के लिये सस्ते हथकण्डे अपनाकर झूठी वाहवाही एवं मिथ्या आत्म-प्रवंचना से मन बहला लिया। इससे आगे बढ़ना हो ही नहीं पाता, जबकि सच्चा धर्म, सच्चा अध्यात्म और सच्चा जीवन दर्शन यहाँ से बहुत आगे चलकर आरम्भ होता है। व्यक्तिगत जीवन की निर्मलता कठोर कर्तव्यनिष्ठा, गुण, कर्म, स्वभाव का प्रखर परिष्कार, धवल स्वाभिमान, प्रचण्ड पुरुषार्थ, बिना दाग-धब्बे की ईमानदारी, मन और वचन की एकता, सच्चाई और सज्जनता भरा व्यवहार आदि सद्गुणों के साथ जीवन-साधना आरम्भ होती है। यह तथ्य सर्व साधारण को समझ में आ जाय तो ईश्वर को जाल में फँसाने की तरकीबें सोचने की अपेक्षा लोग सीधे सच्चे मार्ग पर चलें और जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर लें।

इसी प्रकार महत्वाकांक्षाओं को तृष्णा, वासना, लोभ और मोह के पाप, पिशाचों से बचाकर लोक मंगल के लिये बड़े से बड़ा त्याग बलिदान, पुरुषार्थ और अनुदान देने में लगाया जा सके तो सामान्य स्तर का मनुष्य भी धीरे-धीरे इतने अधिक महत्वपूर्ण कार्य करता रह सकता है कि उसका लेखा-जोखा तथाकथित सन्त-महात्माओं से हजारों गुना अधिक आगे निकल जाय। जब मनुष्य लेने की लिप्सा में डूबा रहता है, तो उसे अपने चारों और अभाव और दारिद्रय ही घिरा दीखता है, पर जब वह अपनी मनोदशा देने में रस लेने वाली बना लेता है तो धन न रहते हुए भी अपनी शारीरिक, मानसिक सम्पदायें इतनी बहुमूल्य दीखने लगती हैं, जिनके आधार पर लोग मंगल के लिए बहुत कुछ किया जा सकना सम्भव हो सके। वस्तुतः मानव जाति की ठोस और महत्वपूर्ण सेवायें भावनात्मक समर्थता द्वारा ही सम्भव हुई हैं। धनी अपना ढिंढोरा पिटवाने का ताना बाना बुनने में ही उलझते-सुलझते मर गये वे कुछ कहने लायक काम न कर सके। बड़े काम न धन से होते हैं और न साधनों से। उनके लिये प्रचण्ड अन्तःप्रेरणा और भाव भारी उमंग आवश्यक होती है, उसे उपलब्ध करना केवल उनके लिए सम्भव है जिनने त्रिविध ऐषणाओं से अपना पल्ला छुड़ा लिया और विश्व मानव के चरणों में आदर्शवादिता उत्कृष्टता के-त्याग और बलिदान के-श्रद्धा सुमन चढ़ाने का साहस और मनोबल एकत्रित कर लिया।

नव निर्माण के लिये उत्कृष्ट भाव सम्पन्न व्यक्तियों की आवश्यकता है। लक्ष्मी और विद्या न होने से किसी को रंज नहीं करना चाहिए और न निराश होना चाहिए जो लालसाओं, लिप्साओं को जीत सकें, जो देश के अन्य नागरिकों की तरह पेट भरने को तन ढकने में सन्तुष्ट हो सकें, जो अपनी ममता बेटे पर बखेरने की अपेक्षा लोग मंगल के लिए समर्पित कर सकें, वस्तुतः उन्हें ही नर-नारायण और पुरुष, पुरुषोत्तम कहा जा सकेगा

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

और उन्हीं के द्वारा विश्व के भावनात्मक नव निर्माण का महान अभियान सम्पन्न हो सकेगा। हमें इसी मर्म-स्थल को स्पष्ट करना चाहिए और जन मानस में सिर से पैर तक भरी हुई संकीर्ण स्वार्थ परता के जाल पर मानवता को गर्वोन्नत बनाने वाली महानता अपनाने की दिशा में मोड़ना चाहिये। यह मोड़ जितना सफल हो सका धरती पर स्वर्ग और मनुष्य में देवत्व के उदय का आज का स्वप्न अगले दिनों उतने ही सरलतापूर्वक साकार बना सकना सम्भव हो सकेगा।

व्यक्तित्व परिष्कार के निमित्त किये जाने वाले उपक्रम

आदतों का मतलब उन क्रियाकलापों से है, जिनका संचालन अवचेतन से होता है। इस तरह के क्रियाकलापों में हमें बहुत अधिक जागरूक नहीं रहना पड़ता। जैसे ही समय और परिस्थितियाँ उपयुक्त और अनुकूल होती हैं, ये अपने आप होने लगती हैं।

आदतें अच्छी और बुरी दोनों तरह की होती हैं। अच्छी आदतों का मतलब, वे गतिविधियाँ, जो जीवन क्रम में सुसंबद्धता और सामंजस्य स्थापित करें। बुरी का मतलब जो इसे भौंड़ा और कुरूप बनाएँ। उदाहरण के लिए जल्दी जागना, स्वाध्याय करना अच्छी आदतें हैं। इससे व्यक्तित्व अलंकृत होता, जीवन सँवरता है। ईर्ष्या, निन्दा, चुगली आदि की गणना बुरी और भद्दी आदतों में की जाती है। ये अपने लिए भी कष्टकर है व दूसरों के लिए भी। इसी तरह ये बड़ी भी होती हैं और छोटी भी। बड़ी का मतलब जिनका जीवन क्रम पर अधिक प्रभाव पड़े, जबकि छोटी का प्रभाव क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है। व्यक्तित्व के सही गठन के लिए जरूरी हैं इस पर ध्यान देकर क्या अच्छा है, क्या बुरा है इसे समझा जाय। उपयुक्त को बनाए रखना और अनुपयुक्त को निकाल फेंकना यह भी इसी के अंतर्गत आता है।

छोटा दीखने पर भी यह काम बहुत महत्वपूर्ण और कठिन है, क्योंकि अधिकांशतया इनके सम्बन्ध में हमारा ध्यान ही नहीं जाता। जो कुछ घट रहा है, उससे यह कहकर छुट्टी पा ली जाती है कि क्या करें आदत पड़ गई है, पर इस तरह की विसंगतियाँ समूचे जीवन के सौन्दर्य को नष्ट करने वाली होती हैं। इनमें से बड़ी आदतों को जो अवांछनीय हैं, उन्हें तो जिस किसी तरह दूरकर लिया जाता है, पर छोटी-छोटी अवांछित आदतें गैर-महत्वपूर्ण समझने के कारण पड़ी रहती हैं। इन्हें जिन्दगी भर ढोना पड़ता है। इतना ही नहीं, ये निरर्थक और निरुद्देश्य चेष्टाएँ उपहासास्पद होने के साथ अपने व्यक्तित्व का वजन घटाती रहती हैं।

कुछ लोगों को शरीर के विभिन्न अंगों से तरह-तरह की निरर्थक क्रिया करने की आदत होती है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे मानसिक अस्तव्यस्तता का चिन्ह माना है। बिना विचारे कुछ-न-कुछ करने की ऐसी निष्प्रयोजन चेष्टाएँ जिनके करने की कोई उपयोगिता अथवा आवश्यकता नहीं है, लगातार बार-बार करना यह सिद्ध करता है कि मन के साथ शारीरिक क्रियाकलाप का संबंध टूट गया है। काम करने के पूर्व उसके प्रयोजन को ध्यान में रखने की व्यवस्था असंबद्ध हो गई है। यह बहुत उपहासपूर्ण व दयनीय स्थिति है।

कुर्ते या कोट के सामने वाले बटन मरोड़ना, उँगलियाँ चटकाना, आँखें मिचकाना, हाथ में कोई चीज लेकर उसे मरोड़ना, खटखटाना, पेन या पेंसिल को मुँह में डालना, पिन से कान या दाँत कुरेदना, किसी के घर जाकर उसकी पुस्तकों या वस्तुओं को उलटना-पलटना, सिर खुजलाना, किसी के शरीर को धक्के देकर बात करना, बात करते समय दूसरे का हाथ पकड़ लेना आदि ऐसी हरकतें हैं, जो आदत में शामिल हो जाने के बाद अपने को तो बुरी नहीं लगतीं पर दूसरे लोग इन्हें बचकाना और बेतुका मानते हैं।

उपरोक्त हाथ-पैरों की हरकतों की तरह मुँह से भी कितने ही लोग ऐसी कितनी ही बेतुकी बातें करते रहते हैं। बात-बात में गालियाँ देना, किसी एक ही शब्द का हर बात में प्रयोग करना, असम्मान सूचक भाषा को प्रयोग में लाना, अकारण निन्दा, चुगली करना, तम्बाकू-पान के कारण अथवा ऐसे ही जहाँ-तहाँ जल्दी थूकते रहना, जोर-जोर से बोलना जल्दी-जल्दी अथवा अस्पष्ट भाषा में बोलना, इस तरह बोलना कि मुँह से थूक उड़े, होठों के अगल-बगल में थूक जमा कर लेना अथवा दाँतों से थूक के तार उठाना, खाते समय चप-चप की आवाज करना, घूमते-फिरते गाना, जब-तब गाने लगना, अपनी शेखी बघारते रहना, बात को बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर कहना, आदि ऐसी बुरी आदतें हैं, जिनकी गणना अशिष्टता के अंतर्गत की जाती है। ऐसे व्यक्तियों को असंस्कृत, असभ्य श्रेणी में गिना जाता है।

प्रख्यात मनोविद् ए. एच. एन्डरसन ने ''क्रिएटीविटी एण्ड इट्स कल्टीवेशन'' नामक अपनी कृति में कहा है कि बुरी आदतें तभी पड़ती हैं, जब मानसिक स्थिति आवेशग्रस्त हो। इसी अस्त-व्यस्त स्थिति में निरीक्षण-नियंत्रण को ध्यान में रखने की बात भुला दी जाती है। साधारण बुद्धि के लोग अपने काम-धंधे में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरीक्षण-नियंत्रण की आवश्यकता समझते हैं व इसे बनाए रहते हैं, पर न जाने क्यों लोग अपनी आदतों हरकतों के बारे में असावधानी बरतते हैं और आवेश में कुछ न कुछ करने का जो उत्साह उमड़ता है, उसे मर्यादित करने की बात भुला बैठते हैं, फलतः उन्हें उपहासास्पद और छिछरा बनना पड़ता है। इससे अपनी ताकत बरबाद होती है, दूसरे उसे असामाजिकता अशिष्टता मानकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। इस असम्मान के कारण उन्हें अप्रामाणिक, असावधान अव्यवस्थित कर दिया जाता है। दूसरे लोग उनके हाथ में कोई जिम्मेदारी का काम देने में हिचकते हैं, सोचते हैं। जो अपनी आदतों को सुधार-सँवार नहीं सकता, वह भला किसी बड़े काम को कैसे पूरा कर सकेगा ? उससे सहयोग- सदुपयोग की बात कैसे बन पड़ेगी ?

व्यवस्थित करने की कला का महत्व हर क्षेत्र में है, जीवन-जीना तो एक बहुत बड़ी कला है। इसका क्षेत्र बहुव्यापी है। इसका उपयोग इस दिशा में तो सक्रियतापूर्वक किया ही जाना चाहिए कि अपनी आदतें बिगड़ने न पाएँ। असावधानी ही है, जिसके कारण निरर्थक और अनर्थ पैदा करने वाली हरकतें हमारे स्वभाव का अंग बन जाती हैं और इतनी गहरी जड़ें जमा लेती हैं कि इनका हटना-मिटना बहुत कठिन लगता है। अनुसन्धानकर्त्ताओं ने इस सन्दर्भ में गहन खोजें की हैं। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ई. डब्ल्यू. सिनोट ने अपनी रचना ''द क्रिएटिव नेस ऑफ लाइफ'' में मानवी आदतों का अच्छी तरह विवेचन किया है। उनके अनुसार इसके लिए समूचे जीवनक्रम को जागरूक होकर देखना होगा। सामान्यतया हमारी सारी गतिविधियाँ मन के अवचेतन व अचेतन क्षेत्र से संचालित होती हैं। उनकी उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता पर कोई विचार नहीं किया जाता। इसके लिए जरूरी है जागरूक होना। यह सम्भव है कि एक दिन में सारे क्रियाकलापों का जायजा न लिया जा सके। इसके लिए पूरे दिन की गतिविधियों को सुविधानुसार समय के अनुरूप कई हिस्सों में बाँट लेना होगा। बाद में प्रतिदिन एक हिस्से को गहराई से देखा जा सकता है। समूची स्थिति को समझ लेने के बाद ही सारे क्रिया-कलापों का विश्लेषण कर पाना संभव है।

सोवियत मनोवैज्ञानिक एस. एल. रूबिनस्टीन ने अपनी खोजपूर्ण पुस्तक ''द इमिडेट टास्क ऑफ साइकोलॉजिकल इन्वेस्टीगेशन ऑफ थिंकिंग'' में बताया है कि उक्त विश्लेषण का मतलब है सही गलत को जानना। यह काम इतना सरल नहीं है। रूबिन स्टीन के एक शिष्य एम. एम. मातयुश्किन ने भी प्रमाणित किया है कि यह काम अपने आप नहीं हो जाता। इसे करने के लिए जरूरी है कि अपने सभी क्रिया-कलापों के प्रति तटस्थ भाव रखा जाय। सही आदतें वें हैं, जिनकी हमारे व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता और आवश्यकता है, जो हमारे विकास व प्रगति के लिए सहायक हैं। गलत वे हैं जिनकी इस तरह की कोई जरूरत नहीं है। उल्टे उनसे शारीरिक-मानसिक शक्तियों का क्षरण भर होता है। जब तक इन त्रुटियों को खुद भली-भाँति जान नहीं लिया जाता, तब तक इनका निवारण संभव नहीं। जान लेने के बाद ही बुरी आदतों से छुटकारा पाना सम्भव बन पड़ेगा। आदतों के इस तरह सुव्यवस्थित करने की रीति-नीति को मनोवैज्ञानिक भाषा में इनका समाकलन कहा जा सकता है।

खराब आदतों को हटाने के प्रयास का मतलब है, अवचेतन मन की पुरानी लिपियों को मेटकर नई लिपियों को लिखना क्योंकि यहीं पर आदतों का समूह होता है, जो जाग्रत अवस्था में एक ही सूचनाओं, आवेगों या संवेदनों के एक यंत्रवत् में ऊपर आ जाती हैं।

अतएव जब भी ये उभरें उन्हें सप्रयास रोककर यह अनुभव किया जाय कि यह औचित्यपूर्ण नहीं है। धीरे-धीरे पर निरंतर किया गया यह प्रयास पुरानी लिखावट को मेटकर नई इबारत लिखने वाला होगा। परिणामस्वरूप हरकतें भी शिष्ट व शालीन होंगी। इस प्रकार की गई आदतों की सुव्यवस्था न केवल जीवन को दिशापूर्ण व उपयोगी बनाएगी, बल्कि इससे हमारा व्यक्तित्व और अधिक निखर- सँवर सकेगा।

असंस्कृत अचेतन से सुसंस्कृत अतिचेतन की ओर

व्यक्ति और परिवेश दोनों ही परस्पर गहनता से जुड़े हुए हैं। प्रथम के क्रियाकलाप द्वितीय को प्रभावित करते हैं, द्वितीय की हलचलें प्रथम में उद्वेलन उत्पन्न करने वाली होती हैं। मनीषियों ने व्यक्ति के क्रियाकलापों को द्विविध रूपों में स्पष्ट किया है। प्रथम जिनका केन्द्र उसका स्व का अन्तःकरण होते हुए परिधि स्वयं का ही जीवन होता है, इन्हें आचरण की संज्ञा दी गई है। दूसरे में केन्द्र तो उसका अन्तःकरण होता है, जबकि परिधि में समूचा परिवेश समाहित होता है। ऐसे क्रियाकलापों को व्यवहार के अन्तर्गत परिभाषित किया गया है।

श्री अरविन्द इन द्विविध स्वरूपों का सम्मिलित स्पष्टीकरण करते हुए अपनी कृति ''सिन्थेसिस ऑफ योग'' में कहते हैं कि ''मानव वैयक्तिक और सामाजिक जगत तथा विश्व में आत्माभिव्यक्ति के लिए मन, जीवन और शरीर को प्रयोग करने वाली एक आत्मसत्ता है।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महर्षि अपनी प्रमुख दार्शनिक कृति "द लाइफ डिवाइन" के प्रथम भाग में व्यक्ति एवं परिवेश के सम्बन्धों को समझाते हुए कहते हैं कि "सृष्टि के दृष्टिकोण से व्यक्ति चेतना शक्ति का केन्द्र-बिन्दु है। वह समस्त विश्वमय चेतना का केन्द्र है।"

यह केन्द्र और परिधि दोनों ही परस्पर घनीभूत संबद्ध हैं। परिधि की विकृति केन्द्र च्युति का कारण बन सकती है एवं केन्द्र च्युति परिधि में गड़बड़ियों का। यदि इसी अवास्तविक स्थिति को वास्तविक मान लिया जाय तो गड़बड़ियों का सिलसिला लगातार चलता रहेगा। श्री अरविन्द बताते हैं कि शरीर, मन व आत्मा के त्रिआयामी व्यक्तित्व में केन्द्रीय आयाम आत्मा है। यह वास्तविक केन्द्र भी है। किन्तु आत्मा भी वास्तविक एवं प्रच्छन्न है। यह प्रच्छन्न आत्मा जिसे वह कामनामय आत्मा (Desire Soul) कहते हैं, हमारी प्राणात्मक वासनाओं, उद्वेगों, सौंदर्य की अनुभूतियों के पीछे है। यही हमारी अहंकारात्मक सत्ता का आधार है, जबकि यथार्थ आत्मा चैत्य सत्ता है। केन्द्र च्युति की स्थिति में हमारा जीवन इसी उपरोक्त अहंकार सत्ता से संचालित होता है।

व्यक्ति का यह अन्तराल बड़ा गहन है। मन का भीतरी भाग जिसे फ्रायड अचेतन कहते हैं, मानव में बर्बर बालक-पशु का प्रतिनिधि बताते हैं। युंग की खोजों के अनुरूप यह व्यक्तिगत भी है और सामूहिक भी। व्यक्तिगत अचेतन में फ्रायड के अधोचेतन व अचेतन सम्मिलित हैं। उसमें वे अनुभव हैं, जो भूले और दमित किये जा चुके हैं। सामूहिक अचेतन में मूल प्रवृत्तियाँ आदिम विचार और प्रतीक आते हैं।

फ्रायड व युंग के इस अचेतन को श्री अरविन्द अवचेतन कहते हैं। उनके अनुसार यह स्तर सभी परिवर्तनों का विरोध करने के साथ आलस्य, दुर्बलता, अस्पष्टता एवं अज्ञान को सतत् स्थिर रखना चाहता है। इसी के कारण यथार्थ वस्तुओं के आधार अतिचेतन का प्रवाह रुका रहता है।

व्यक्ति के व्यवहार, सामाजिक संरचना, परिवेश के प्रभाव के अध्ययन की दृष्टि से युंग के सामूहिक अचेतन की खोज अत्यन्त उपादेय है। परिदेश से प्राप्त उद्दीपनों से व्यक्ति का मानस प्रभावित होता है। यदि ये उद्दीपन अवचेतन के पाशविक संस्कारों को उत्तेजित करते हैं तो व्यवहार भी तदनुरूप होना स्वाभाविक है। यदि इन उद्दीपनों ने अतिचेतन को उद्दीपित किया है, तो मानव जीवन की उच्चतर प्रक्रियाओं, कला, धर्म, साहित्य आदि के रूप में व्यवहार की अभिव्यक्ति होती है।

चिन्तन और व्यवहार की गति अपने आगोश में सबको समेटती जाती है। विगत इतिहास के उन कालों में जिन्हें स्वर्णिम युग कहा गया है, इन्हीं अतिचेतन की प्रक्रियाओं द्वारा जीवन का संचालन रहा है, जबकि नरसंहार के काल में अवचेतन का पशु प्रतिनिधि प्रभावी रहा है। मनोविज्ञान की नवविधा "हिस्टॉरिका साइकॉलोजी" में समूचे इतिहास की घटनाओं का अध्ययन करने के बाद प्रतिपादन किया गया है कि ये घटनाएँ कुछ व्यक्तियों के प्रभावी अवचेतन का ही परिणाम थीं।

वर्तमान के परिपेक्ष्य में किया गया अध्ययन स्पष्ट करता है कि सामाजिक परिवेश से मिलने वाले उद्दीपन व्यक्ति में इन्हीं अवेचतन के संस्कारों को भड़काने वाले सिद्ध हो रहे हैं। सिनेमा में नग्न नर्तन की भरमार, ब्लू फिल्मों का पकड़ता जोर अश्लील विज्ञापन व्यक्ति के अतिचेतन के प्रवाह को रोककर उसे मनुष्य से पुनः पशु में परिवर्तन कर रहे हैं। **'मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति'** की उक्ति अपनी सार्थकता की अभिवृद्धि करती जा रही है।

मनुष्य अपनी स्वार्थपरता संकीर्णता की शृंखला से आबद्ध होता जा रहा है। इसी आबद्धता ने ही सब कुछ एक साथ प्राप्त कर लेने की प्रवृत्ति जाग्रत की है, जो अपनी अभिव्यक्ति भारी भरकम उद्योगों, उत्खनन केन्द्रों, वनों के नाश आदि के रूप में कर रही है। स्वाभाविक ही इससे केन्द्रीकरण हुआ है। यह केन्द्रीकरण प्रत्येक क्षेत्र में है। मनुष्य शहरों में केन्द्रित हो रहे हैं। धन कुछ थोड़े से धनिकों की तिजोरियों में केन्द्रित हो रहा है।

केन्द्रीकरण की इस च्युति ने सामाजिक परिवेश की ध्वंसता के साथ पर्यावरण को भी ध्वस्त किया है। वायु, जल, ध्वनि, प्रदूषण की बात सर्वत्र सुनी जा रही है। सर्वत्र प्रदूषण की ही अभिवृद्धि है। प्रदूषण की वृद्धि व्यक्ति के चेतन मन में तनाव तथा अचेतन के अवशेषी संस्कारों में उद्दीपन उत्पन्न कर रही है। अचेतन के सामूहिक होने से यह महामारी सरलता से एक-दूसरे में फैलती जा रही है। फलस्वरूप समाज में हिंसा, मनोरोग, अपराध, आतंक पनप रहे हैं। साथ ही विकृत मानसिक स्थिति पर्यावरण को और भी अधिक विकृत कर रही है। इस तरह व्यक्ति, समाज और पर्यावरण के मध्य अभिक्रियाएँ अपनी गति पकड़ती जा रही हैं।

व्यक्ति समाज और परिवेश की पारस्परिक सम्बद्धता की उपेक्षा किये जाने के कारण किए जा रहे शान्ति प्रयास अस्थायी व कमजोर सिद्ध होते जा रहे हैं। जनमानस को परिवर्तित करने के लिए आवश्यक अवचेतन के उद्दीपकों को बहिष्कृत करना जरूरी है, जिसके लिए व्यक्ति नहीं समाज व उसके संचालक उत्तरदायी हैं। साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही पर्यावरण को भी समृद्ध करना होगा। जिसकी मानव समाज एक इकाई है। पर्यावरण की इकाई मनुष्य परिकर है तथा इसकी इकाई व्यक्ति है।

इन संबंद्धों की अभिन्नता को समझने तथा मानव मन की जटिलता को समझ अतिचेतन के रुके प्रवाह को प्रवाहित करने से दिशा बदल सकती है। क्योंकि जिस प्रकार अचेतन सामूहिक है, उसी तरह क्रांतिचेतन भी। यह बदली हुई दिशा मनुष्य व समाज को अवगति से प्रगति की ओर ले जाने वाली होगी।

अन्तः का परिमार्जन-परिष्कार

अन्धकार का निराकरण अथवा प्रकाश का प्रज्ज्वलन दोनों एक ही बात हैं। कहने का ढंग भर अलग है। अस्वस्थता का निवारण अथवा आरोग्य का सम्वर्धन यह कहने की शैली भिन्नता भर है। दरिद्रता का समापन एवं सम्पन्नता का आगमन यह देखने-सुनने में ही दो बातें प्रतीत होती हैं, पर वस्तुतः हैं एक ही।

आत्मा स्वयं पवित्र है। ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण उनमें तत्वतः अपवित्रता जैसी कोई वस्तु है नहीं। इस संसार के वातावरण में आच्छादित अवांछनीयता ही जब उसके ऊपर आवरण डाल लेती है, तभी उसमें कुरूपता दृष्टिगोचर होने लगती है। सूर्य-चन्द्र के ऊपर ग्रहण लगने या बदली कुहरा छा जाने से उनकी छवि धूमिल हो जाती है। पर मूलतः सूर्य-चन्द्र वैसे हैं नहीं, आवरण हटते ही वे अपने मूल रूप में प्रकाशवान दीखने लगते हैं।

मनुष्य में अनेकों अभाव एवं विकार दीखते हैं। यह उसके ऊपर किसी ने थोपे नहीं हैं। यह अनाचरण एवं भटकाव की प्रतिक्रिया मात्र हैं। यदि इस संकट एवं झंझट से उबरा जा सके तो उस आनन्द की प्राप्ति के लिए कुछ अलग से अतिरिक्त प्रयास करना नहीं पड़ता।

असंयम न बरता जाय तो दुर्बलता, रुग्णता के कुचक्र में फँसने जैसी कोई बात है नहीं। सृष्टि के समस्त प्राणी जन्मते-मरते तो हैं, पर बीच में रुग्णता के जाल में नहीं फँसते। यदि रोग स्वाभाविक रहे होते, तो समुद्र के जल-चर, वन्य पशु एवं घोंसलों में रहने वाले पक्षियों को आधि-व्याधियों से घिरा देखा जाता और उन सबके लिए डाक्टरों की, अस्पतालों की भी सृष्टा को व्यवस्था करनी पड़ती। मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी को अस्वस्थता घेरती नहीं। यह उन्हें असंयम की कुंकुम पत्री भेजकर आग्रहपूर्वक न्यौता बुलाता है। यदि बिगाड़ को सुधार लिया जाय तो मनुष्य पूर्णायुष्य प्राप्त करे और रुग्णता से कराहते दुर्दिनों में समय न गुजारे।

हँसने की कला केवल मनुष्य के हिस्से में आई है। सौन्दर्य बोध केवल उसी को हो सकता है। सहकारिता का कौशल हर किसी को आता है। मनःक्षेत्र का सन्तुलन बनाये रखकर वह हर परिस्थिति के साथ तालमेल बिठा सकता है और हर घड़ी हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सकता है। यह सारे उपहार उसे जन्मजात रूप में मिले हैं। इतने पर भी यदि किसी को कुढ़ता-कुढ़ाता, रोता-रुलाता, डरता-डराता देखा जाय तो समझना चाहिए कि अत्यन्त मूल्यवान मानस तन्त्र प्राप्त करने का सुयोग होते हुए भी उसे उसका प्रयोग करना नहीं आया। अनाड़ी ड्राइवर कीमती मोटर को भी किसी पेड़ से टकराने और खड्ड में धकेलने की दुर्घटना करते देखे गये हैं। इन वाहनों की बनावट को दोष देना व्यर्थ है। सड़क को कोसने से भी लाभ नहीं। गलती ड्राइवर की ही दुर्घटनाओं में होती है।

परिवार हर मनुष्य को मिला हुआ एक छोटे नन्दन वन जैसा सुरम्य उद्यान है। उसके बीच रहकर आनन्दित, उल्लसित, गद्‌गद् और प्रगतिशील परिस्थितियों में रहा जाता है। इस स्थिति में व्यवधान क्यों पड़ता है ? बचपन की सौम्य सात्विकता और भोलेपन की प्रकृति प्रदत्त सुषमा गँवा देने से। चिड़ियाँ अपने अण्डे बच्चों वाले घोंसले में कलोल करती हैं, तो हम परिवार की मधुरता, मृदुलता क्यों गँवा देते हैं ? माता वात्सल्य, पत्नी का समर्पण, भाई-बहिनों का साहचर्य, बच्चों की खिलौनों जैसी शोभा यदि हमें उल्लसित नहीं कर पाती, तो समझना चाहिए कि अपने अन्तराल के स्नेह स्रोत सूख गये।

मनुष्य दरिद्र क्यों होता है ? हाथी और गैंडे जैसे बहुत खाने वालों के लिए भरपेट भोजन सदा उपलब्ध होता रहता है, फिर दो मुट्ठी अनाज खाने वाले और दस गज कपड़ा लपेटने वाले के दस अंगुलियाँ वाले दो अतिरिक्त हाथ क्यों उसका पेट नहीं भर पाते ? क्यों वह अभावग्रस्त, दरिद्र रहता है ? इसमें आवश्यकता से असंख्य गुनी चाहना पीठ पर लादे फिरना ही एकमात्र कारण है। तृष्णा एक आग है, जो निरन्तर ईंधन डालते रहने पर भी बुझती नहीं, वरन् अधिकाधिक प्रदीप्त होती जाती है। ऐसे ही निरर्थक जाल-जंजाल हैं, जिनमें मनुष्य निरन्तर मकड़ी के जाले की तरह स्वयं ही बुनता और स्वयं ही फँसता रहता है। रेशम के कीड़े को कोटों में कौन बन्द करता है ? मेढ़क को कुएँ में कौन पकड़कर लाता और धकेलता है ? मनुष्य अभागा स्वयं ही अपनी हथकड़ी-बेड़ी कसता और बन्दीगृह में ताला डालकर चाबी जेब में डाले फिरता है। कहता है कोई इसमें से छुड़ाये तो बड़ा अनुग्रह हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमरा रोज झाड़ना पड़ता है। पहनने वाले कपड़े रोज धोने पड़ते हैं। दाँत माँजने की नित्य आवश्यकता पड़ती है। स्नान भी दैनिक कृत्य है। इस वातावरण में गन्दगी चारों ओर उड़ती रहती है। वह बिना प्रयत्न के ही सर्वत्र जमती रहती है। यदि इसे नित्य न धोया-बुहारा जाय तो कुछ ही समय में गन्दगी के ढेर लग जायेंगे। यह सफाई ही साधना है। वातावरण में सत् कम है और असत् बहुत। अर्थ कम है अनर्थ बहुत। इसलिए यह सतर्कता बरतनी पड़ती है कि अशुभ का अनावश्यक आच्छादन अपने शुभ को आच्छादित न कर ले। इस सतर्कता का नाम ही साधना है।

ईश्वर को किसी की प्रशंसा, स्तुति, मनुहार नहीं चाहिए। उसकी समग्र प्रशंसा कोई कर भी नहीं सकता। समुद्र में एक चुल्लू डाल देने से उसकी क्या तो अभिवृद्धि होगी और क्या प्रसन्नता ? इसी प्रकार भेंट-उपहार का कोई कुछ अनुदान प्रस्तुत करे। पंचोपचार, षोडशोपचार के अनुरूप धूप, दीप, पुष्प, चन्दन, अक्षत आदि समर्पित करें, तो उसे पाकर भगवान कैसे समझें कि यह बड़ी अनुकम्पा कर रहा है और भक्ति-भाव का परिचय दे रहा है। प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि को मानसिक व्यायाम कहा जा सकता है। उसके सहारे मन की एकाग्रता एवं इच्छा-शक्ति की अभिवृद्धि हो सकती है। इसलिए इन्हें भी दण्ड-बैठक, कुश्ती, कबड्डी, जैसे शारीरिक व्यायाम के समतुल्य माना जा सकता है। इन्हें कैसे माना जाय कि आत्मबल बढ़ाने में वे सहायक हो सकते हैं और पवित्रता एवं प्रखरता बढ़ा सकते हैं।

स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन, कथा-कीर्तन आदि के सहारे जीवनचर्या में सतोगुण बढ़ाने का मार्गदर्शन मिलता है। पर उसका कहना, सुनना ही पर्याप्त नहीं। उस राह पर चलना भी तो चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि हमारे चिन्तन और चरित्र का प्रवाह निरन्तर उत्कृष्टता के मार्ग पर चले। आचरण में अधिकाधिक आदर्शवादिता और पुण्य परमार्थ की गतिविधियों का समावेश बढ़े। यह दिन भर में घण्टे आध घण्टे की चिन्ह पूजा नहीं है। उस मार्ग पर निरन्तर चला जाना चाहिए। भूल न होने पाये, कुसंस्कारों का आक्रमण चढ़ न दौड़े, इसका निरीक्षण, परीक्षण हर घड़ी चलना चाहिए। साधना इसी का नाम है। इसमें अपने आपको साधा जाता है। ईश्वर को लुभाने या उसके सम्मुख चित्र-विचित्र क्रिया-कृत्य करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं। परब्रह्म इस निखिल ब्रह्माण्ड के सुचारू रूप से संचालन में निमग्न है। उसे किसी भक्त पर पुष्प वर्षा करने, दौलत के थैले भेजने या वरदान, अनुदान देने की न तो आवश्यकता अनुभव होती है और न ही इच्छा उठती है। वह स्वयं जिस प्रकार नियमबद्ध होकर कार्यरत रहता है, उसी प्रकार अपने अनुयायियों से भी आशा करता है कि वे निर्धारित अनुशासन का पालन करेंगे।

उच्च पद की उपलब्धि के लिए आवश्यक योग्यता अर्जित करने की परीक्षा प्रतियोगिता में खरा सिद्ध होने की आवश्यकता पड़ती है। इससे कम में काम चलने वाला नहीं है। परीक्षक अथवा नियुक्ति कर्त्ता की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पूजा-अर्चना करने से योग्यता सिद्ध करने की अनिवार्यता से बचा नहीं जा सकता। ईश्वर का कई बार नाम लेने पर किसी की भी भक्ति प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। ईश्वर के दरबार में चापलूसी या भेंट-पूजा की मनुहार करने मात्र से अपना उल्लू सिद्ध कर लेने में आज तक किसी को भी सफलता नहीं मिली है। फिर सत्ता रास्ता ढूँढ़ निकालने की प्रवंचना में हमीं क्यों अपना समय बर्बाद करें।

मल-मूत्र में सना हुआ बच्चा माता की गोद में चढ़ने, दूध पीने के लिए चाहे कितना ही क्यों न मचल रहा हो, पर वह असीम प्यार करने पर भी तब तक उसे दूर ही रखती है, जब तक धो-पोंछकर उसे भली प्रकार साफ-सुथरा नहीं कर लेती। भगवान की भी रीति-नीति यही है। उनके भक्त को उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित्र का परिचय देना चाहिए। इसमें अनाचार से हाथ खींचना पड़ता है। लोगों को यह कठिन प्रतीत होता है। सरल यह लगता है कि अनाचार से मिलने वाले लाभों को दोनों हाथों से समेटते रहें और पूजा-पाठ की चित्र-विचित्र चिन्ह पूजा करके भगवान को भी बहकाते-फुसलाते रहें। दोनों हाथ लड्डू भरे रहने की यह विडम्बना मात्र मन को बहकाने भर के काम आती है। ईश्वर भक्तों को वाल्मीकि, विल्व मंगल, अंगुलिमाल, अम्बपाली की तरह अपनी जीवनधारा बदलनी पड़ती है। भागीरथ, हरिश्चन्द्र और दधीचि की तरह सत्प्रयोजनों के लिए बढ़-चढ़कर त्याग बलिदान की आवश्यकता अनुभव करनी पड़ती है। सो भी ऐसा त्याग-बलिदान नहीं, जिसकी परिधि काय कष्ट और कर्मकाण्डों की सीमा तक अवरुद्ध होकर रह गयी हो।

वासना, तृष्णा और अहंता से हमारे तीनों शरीर मलीन होते हैं। वासना स्थूल शरीर को, तृष्णा सूक्ष्म शरीर को और अहंता कारण शरीर को हेय बनाती है। इन मलीनताओं का परिशोध करना ही साधना का उद्देश्य है। जो इन सही मार्ग पर चलते हैं, वे अध्यात्म साधना के अनुरूप ऋद्धि-सिद्धियों से भरा-पूरा सत्परिणाम भी प्राप्त करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृत्तियों का परिमार्जन, व्यक्तित्व का उदात्तीकरण

स्वच्छ दीखने के दो तरीके हैं—अस्वच्छता को ढक देना या उसे साफ कर देना। आवरण चढ़ाने से अन्तर इतना ही आयेगा कि निहित गंदगी बाह्य दृष्टि से ओझल बनी रहेगी। इतने पर भी उसकी सत्ता अपने स्थान पर यथावत् रहती और मौका पाते ही आवरण हटते ही अपना परिचय पूर्ववत् देने लगती है।

मनुष्य की यह आम आकांक्षा होती है कि वह दूसरों की नजरों में सम्मानित दीखे और सुसंस्कृत कहलाये। इसके लिए एकमात्र तरीका यही है कि व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो और उसे इतना प्रामाणिक, प्रखर और परिष्कृत बनाया जाय कि सौरभ बिखेरने वाले फूलों की ओर जिस प्रकार भौंरे खिंचते चले आते हैं, वैसे ही लोगों की श्रद्धा और सहायता अनायास मिलती चले। यह किंचित कठिन प्रक्रिया है। इन दिनों लोग पुरुषार्थ प्रधान ऐसे कार्यों से प्रायः बचना चाहते हैं और किसी ऐसे सरल संस्करण की तलाश में रहते हैं, जो आसान हो एवं सुविधाजनक भी, साथ ही देखने में भी ऐसा न लगे, जिससे जल्द ही उसके असल की नकल होने का अनुमान लगता हो। व्यक्तित्व के संदर्भ में ऐसा उपाय यही हो सकता है कि बुराई पर आकर्षक पर्दा डाल दिया जाय और सज्जन एवं सरल होने का प्रदर्शन किया जाय। ऐसे में कई बार व्यक्तित्व की पहचान में धोखा हो जाता है और बुरे के अच्छे होने का भ्रम होने लगता है।

मानवी व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं—भावना, विचारणा और व्यवहार। इनमें से व्यवहार शारीरिक प्रवृत्ति है, जबकि विचारणा मानसिक वृत्ति है। इन दोनों का संबंध स्नायु तंत्र से है, किन्तु भाव-संस्कार का संबंध स्नायु संस्थान से नहीं होता, वह चेतना का विषय है, अतएव उसको परिष्कृत करने की जरूरत पड़ती है। यही कारण है कि जब ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा आदि संवेगात्मक तत्वों के नियन्त्रण की बात आती है, तो शरीर विज्ञानी और मनोविज्ञानी स्वयं को असहाय महसूस करने लगते हैं और यह बता पाने में असमर्थ साबित होते हैं कि शरीर मन के किन हिस्सों द्वारा किस प्रकार इनका संचालन-उत्पादन होता है, अब तक मन के सम्बन्ध में काफी शोधें मनोविज्ञान क्षेत्र में हो चुकी हैं और मस्तिष्क के बारे में भी अगणित अनुसन्धान शरीरशास्त्री कर चुके और कर रहे हैं, पर उक्त दोनों विधाओं के विशेषज्ञ यह सुनिश्चित कर पाने में एक प्रकार से विफल ही रहे हैं कि आखिर मन-मस्तिष्क में से कहाँ किस अंग में ठीक-ठीक इनकी अवस्थिति है ? जबकि अध्यात्मवेत्ता इनका अवस्थान-स्थान भी बताते और उन्हें प्रभावित करने की पद्धति भी सुझाते हैं, कहते हैं इनका यदि उदात्तीकरण हो जाय, तो हर हर किसी के लिए ईर्ष्या को उत्फुल्लता में, राग को विराग में, द्वेष को सहयोग में और घृणा को प्रेम में बदल पाना सम्भव हो जायेगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि नियन्त्रण की प्रणाली स्थूल शरीर के ज्ञान-तंतुओं की क्रियाओं तक ही सीमित है। इसके आगे जो कुछ होता है वह प्राकृतिक और संस्कारगत है एवं चेतना से संबंद्ध है। इसका उदात्तीकरण अथवा शोधन ही हो सकता है, रूपान्तरण का इसके लिए अन्य कोई दूसरा तरीका नहीं। इस प्रकार नियन्त्रण और रूपान्तरण बदलाव की यह दो पद्धतियाँ हैं। हम इन दोनों को भली-भाँति समझें और एक के स्थान पर दूसरे को प्रयुक्त न करें। दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। नियन्त्रण के क्षेत्र में शोधन को न लायें और शोधन की जगह नियन्त्रण का प्रयोग न करें। यह यदि सही-सही सम्पन्न हुआ तो फिर शोधन के उपरान्त नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं रह जायेगी इतना सुनिश्चित है।

देखा गया है कि व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में स्वयं को बदलना चाहता है, बुराइयों को छोड़ना चाहता है, वासनाओं को त्यागना चाहता है, आदतों को परिवर्तित करना चाहता है, किन्तु लाख कोशिशों के बावजूद उसे असफलता ही हाथ लगती है। तात्कालिक सफलता तो इसमें मिलती देखी गई है, पर वह चिरस्थायी नहीं होती। कारण की तलाश करने पर यही ज्ञात होता है कि जो प्रयास किये गये, वह कायिक अथवा मानसिक स्तर के उथली परत मात्र के थे, इस स्तर पर मात्र नियन्त्रण ही सम्भव है, रूपान्तरण नहीं। जहाँ नियन्त्रण होगा, वहाँ उसके हटने-घटने की सम्भावना भी बनी रहेगी। ऐसी स्थिति में दुष्प्रवृत्तियों को बार-बार सिर उठाने का अवसर मिलता रहता है। इसलिए सुधार-संशोधन संबंधी नियन्त्रण की पद्धति अपूर्ण एवं अधूरी है। इसकी तुलना में यदि उदात्तीकरण को अपनाया गया तो इससे सम्पूर्ण एवं चिरकालिक रूपान्तरण होता तथा समस्या का स्थायी समाधान मिलता। कारण है कि हमारी अधिकांश प्रवृत्तियों का संबंध संस्कार-चेतना से है। जब उसका परिमार्जन किया जाता है, तो उससे सम्बन्धित समस्त चेष्टाओं का उदात्तीकरण हो जाता है। शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान इतनी गहराई में उतरकर वास्तविक निमित्त को नहीं समझ पाने के कारण ही बार-बार विफल रहते देखे जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कामशास्त्र के बारे में शरीरवेत्ता स्खलन को रोक लेना ही सर्वोपरि मानते और उतने से ही ब्रह्मचर्य की अखंडता स्वीकार कर लेते हैं। मनःशास्त्री उस पर दमन के द्वारा विजय प्राप्त करने की बात कहते हैं। ज्ञातव्य है कि कुचलने का यह तरीका हर जगह सफल नहीं होता। 'काम' स्वयं में एक प्रचंड ऊर्जा है। शक्तिशाली ऊर्जा को बहुत समय तक दमित-नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। यदि किया गया, तो ऐसी विस्फोटक स्थिति पैदा होगी, जो व्यक्ति को सनकी, उन्मादी, पागल स्तर का बना देगी। इसलिए उस ऊर्जा का रूपान्तरण होना चाहिए। यह रूपान्तरण किस प्रकार का, कैसा हो ? मनोवेत्ता यह बता पाने में नाकामयाब रहे, जबकि अध्यात्मवादियों के पास इसका सुनिश्चित उत्तर है। उनका कहना है कि यदि इस वासना के आवेग को सात्विक भावना में, ईश्वरीय, अनुराग में बदल दिया गया तो फिर 'काम' के सताने का सवाल ही पैदा नहीं होगा। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञानियों के काम-दमन का प्रतिवाद करते हुए वे कहते हैं कि इस रीति से मन प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से बराबर उस ओर ही लगा रहता है और जिसका अनवरत स्मरण हो रहा हो, उस ओर से मन भला कैसे हट सकता है ? निश्चय ही इस नियन्त्रण के माध्यम से काम-विकार का उद्दीपन ही होता रहता है। इस सूक्ष्मशास्त्र को न समझ पाने के कारण ही मनोविज्ञान का यह सूत्र कारगर न हो सका। अध्यात्म में इसकी दिशा मोड़कर ईश्वरोन्मुख कर दिया जाता है। इसलिए सामान्यजन में जो ऊर्जा काम-विकार उत्पन्न करने में खर्च होती रहती है, वही शक्ति भगवत् परायण व्यक्ति में स्वतः ही रूपान्तरित होकर उच्चस्तरीय बनती रहती है, अतएव वहाँ वासना के सताने की बात तो दूर उसकी स्मृति तक नहीं उभरती। यही वास्तविक रूपान्तरण है।

उदात्तीकरण और नियन्त्रण के बीच उपरोक्त अन्तर और उनकी सीमाओं को समझ लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शारीरिक स्तर पर जो हमारी चेष्टाएँ और क्रियाएँ होती हैं तथा मानसिक स्तर पर जैसा हमारा चिन्तन होता है, वह सब विशुद्धतः उन्हीं-उन्हीं स्तरों से संबंधित होते हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनका न्यूनाधिक लगाव भाव-संस्थान की संस्कार-चेतना से भी होता है। इसलिए मानवी चेष्टाओं को शुद्ध करने की जहाँ बात आती है, वहाँ उसके चित्तगत संस्कारों को भी ध्यान में रखना होगा। कारण कि मनुष्य ८४ लाख योनियों की लम्बी यात्रा के उपरांत यह शरीर धारण करता है, इसलिए चित्त में उनके भी सूक्ष्म संस्कार विद्यमान रहते हैं। जिस-जिस योनि के जैसे-जैसे संस्कार मानवी अंतराल में जमे रहते हैं, वैसी ही उनमें प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस आधार पर व्यक्तित्व भेद की व्याख्या भी अत्यन्त सरल हो जाती है और यह बताया जा सकना शक्य हो जाता है कि यदि किसी में क्रोध, किसी में घृणा, किसी में प्रेम तत्व प्रबल है, तो ऐसा क्यों है ? मनोविज्ञान की इस संबंध में जो व्याख्याएँ हैं, वह अत्यधिक दुरूह हैं और अधूरी भी, क्योंकि व्यवहार की व्याख्या वहाँ परिस्थिति के आधार पर की जाती है। यदि किसी व्यक्ति में घृणा की अधिकता है, तो इस बारे में उसका कहना है कि चूँकि उसे ऐसे किसी वातावरण में रहना पड़ा हो, जहाँ, तिरस्कार, अपमान, घृणा बड़े पैमाने पर मिला हो अथवा बचपन में माता-पिता, भाई-बहन से फटकार मिलती रही हो, तो इसका परिणाम उसमें घृणा की उत्पत्ति के रूप में सामने आ सकता है। प्रेम, भय, क्रोध जैसी मानवी प्रवृत्तियों की व्याख्या, व्यवहार मनोविज्ञानी इसी प्रकार करते और कहते हैं कि परिस्थिति और समाज से वह जैसा कुछ सीखता है, वैसा ही बनता और विकसित होता चला जाता है। चूँकि व्यक्ति को समाज में पग-पग पर इन मनोवैज्ञानिक तत्वों से पाला पड़ता है, अतः उसमें ये सभी तत्व विकसित हो जाते हैं। घृणा-प्रेम के सन्दर्भ में व्यवहार मनोविज्ञान का यही निष्कर्ष है । इसके आगे उसके पास और कोई समाधान नहीं, किन्तु मानवी व्यवहार इतना सरल कहाँ ? वह इतनी जटिलताओं से भरा हुआ है कि केवल परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में उसकी न तो व्याख्या हो सकती है, न हल हो सकता है, किन्तु यदि उसे हम क्रमशः व्यवहार जगत से विचार जगत, विचार जगत से भाव और संस्कार जगत तक ले जाएँ और चिन्तन करें कि ऐसा व्यवहार हुआ तो इसका कारण क्या है ? तो अंततः हम संस्कार जगत के उस मूल बिन्दु पर पहुँचेगे, जहाँ आकर मानवी आचरण को एक परिभाषा, सर्वांगपूर्ण व्याख्या तथा सर्वांगपूर्ण समाधन मिल जाता है। जब व्यवहार का उद्गम ज्ञात हो जाय, तो आदतों को बदल पाना सरल हो जाता है।

वस्तुतः हम जो कुछ भीतर हैं, वही बाहर अभिव्यक्ति करते रहते हैं। हमारी संस्कार-चेतना शुद्ध अथवा मलिन जैसी होती है, आदतों के द्वारा, आचरण के द्वारा वह उन्हीं रूपों में प्रकट और प्रत्यक्ष होती रहती हैं। [illegible]ी से स्वभाव का निर्माण होता है। प्रकृति यदि हेय और निम्नस्तरीय है, तो इसके लिए भी अंतराल की वह भूमि ही जिम्मेदार है और वह यदि उच्चस्तरीय है, तो उसका भी निमित्त वही है। व्यक्तित्व का सारा ढाँचा उसी से निर्मित है, अतः व्यक्तित्व को बदलने के लिए उसे उत्कृष्ट बनाने के लिए हमें उसी संस्थान को परिमार्जित और परिष्कृत करना होगा। इसके लिए एकमात्र उपचार आध्यात्मिक ही है। जप, तप, व्रत, उपवास, ध्यान आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ ऐसे साधन हैं, जिनका यदि नियमित अभ्यास किया जाता रहे, तो यह उस अपरिष्कृत आंतरिक भूमि पर सुनिश्चित असर डालते और गंदगी को आवृत्त करने की बजाय निकाल-बाहर करते हैं। आचरण संबंधी अस्वच्छता को दबाने की तुलना में मिटाना ही उत्तम होगा। रूपान्तरण और उदात्तीकरण का यही एकमात्र आधार है। व्यक्तित्व संपन्न इसी के द्वारा बना जा सकता है। अपनाया इसे ही जाना चाहिए।

शरीर का ही नहीं आत्मा का भी ध्यान रखें

मानव का निर्माण जड़ एवं चेतन दोनों के युग्म से हुआ है। जब तक शरीर में चेतना है, तब तक हमारी सभी इन्द्रियाँ क्रियाशील हैं और शरीर में हलचल है, लेकिन जिस क्षण चेतना या आत्मा शरीर से अलग हो जाती है। शरीर मिट्टी का ढेला मात्रा ही रहता है। कोई स्पन्दन, कोई क्रिया, कोई सार्थकता नहीं रह पाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर एवं आत्मा का संयोग जहाँ जीवात्मा में विराट् शक्ति का स्रोत है, वहाँ आत्मा से रहित शरीर का कोई मूल्य नहीं। उल्टे वह भय का कारण बन जाता है और उसे हम घर से शीघ्र ही बाहर निकालते हैं, फिर जलाने का प्रबन्ध करते।

अपने जीवन का प्रत्येक क्षण हम अपने शरीर के सुख-साधन जुटाने में खर्च करते हैं और इन्द्रियजन्य भोगों में मरते-खपते रहते हैं। लेकिन मृत्यु के समय तक भी हम अपनी वासनाओं, तृष्णाओं एवं लिप्साओं को तुष्ट नहीं कर पाते।

सन्तृप्त आत्मा जिसके लिये हमने कभी नहीं सोचा, दीनावस्था में रोती-कलपती रहती है और असन्तुष्ट होकर शरीर से अलग होती है।

आत्मा परमात्मा का अंश है। जिन भोगों से शरीर को आनन्द मिलता है, उन्हीं से आत्मा को भी मिले, आवश्यक नहीं। जिस क्षण से हम इस दुनिया में आते हैं, उससे लेकर मृत्यु तक आत्मा हमारे शरीर में उपस्थित है। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की क्षमता, विशेषता एवं क्रिया-कलाप के बारे में बहुत-सी बातें जानते हैं और अधिक जानने का प्रयास करते हैं। लेकिन अपने ही अन्दर छिपी आत्मा को जानने, पहचानने, समझने एवं विकसित करने की बात हम नहीं सोचते।

शरीर को पुष्ट बनाने के लिए हम व्यायाम, आहार और देख-भाल के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। यदि शरीर के किसी अंग में पीड़ा या कमी आये तो हम उसकी चिकित्सा कराते हैं और उसकी शक्ति पुनः वापस आ जाय इसके लिए हम अपनी सामर्थ्य भर प्रयास करते हैं। यदि रोग मुक्त हो गये तो हमें प्रसन्नता होती है, इसके लिये परमात्मा को धन्यवाद देते हैं।

परन्तु अपने आत्मा की पीड़ा पर हम कभी ध्यान नहीं देते। वह रोती है, कलपती है। क्षत-विक्षत होकर तड़पती है। लेकिन उसका कभी हम ख्याल नहीं करते, क्योंकि शरीर को ही सब कुछ मान बैठे हैं। जब तक अपनी मूल आस्थाओं में हम हेर-फेर, परिष्कार नहीं करेंगे तब तक हमें सच्चे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जीवन के समग्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि हम शरीर एवं आत्मा दोनों के समन्वित विकास, परिष्कार एवं तुष्टि-पुष्टि का दृष्टिकोण बनावें। एक को ही सिर्फ विकसित करें और एक को उपेक्षित करें—ऐसा दृष्टिकोण अपनाने से सच्चा आनन्द नहीं मिल सकता। सिर्फ आत्मा का ही परिष्कार एवं विकास करें और शरीर को उपेक्षित करें इससे भी अपना कल्याण नहीं हो सकता। शरीर की उपेक्षा से आत्मा को पीड़ा होना सम्भव है। उसी प्रकार जब आत्मा को कष्ट पहुँचता है, तो मन दुःखी होकर शरीर को प्रभावित करता है।

शरीर की शक्ति सीमित है। लेकिन आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति इसे शक्ति का अकूत भण्डार बना देते हैं।

जिन्होंने अपनी आत्मा को दीन-हीन स्थिति में रखा है और उसकी प्रचण्ड शक्ति से परिचित नहीं हैं, वे मुर्दों जैसा जीवन जीने के लिए मजबूर होते हैं। वे शारीरिक सामर्थ्य रहते हुए भी बड़ी गयी-जुगरी स्थिति में रहते हैं और निराशा, चिन्ता एवं निरर्थक जीवन बिताते रहते हैं, जबकि अपाहिज, अपंग, क्षीणकाय, रुग्ण एवं दुर्बल व्यक्तियों ने भी अपने आत्मबल के द्वारा ऐसे कार्य सम्पादित किये हैं, जिनसे वे इतिहास में अमर हो गये हैं। सैकड़ों लोगों के लिए वे प्रेरणा के स्रोत बने हैं। उनकी गाथायें कितनों में आशा, विश्वास एवं प्रेरणा का संचार करती हैं।

विलक्षण, अद्भुत प्रेम का रसायन शास्त्र

न्यूयार्क स्टेट साइकेट्रिक इन्स्टीट्यूट के संचालक डॉ. माइकेल आर. लैवाबिट ने "दि केमिस्ट्री ऑफ लव" पुस्तक में बताया है कि भावनाओं में जड़ पदार्थों को भी चेतन कर देने की शक्ति है और प्रेम समस्त भावनाओं का मूल स्रोत है इसलिए यह कहना अत्युक्ति नहीं कि स्नेह-सद्भावनाएँ न केवल चेतन तत्व को ही प्रभावित करती हैं, वरन् जड़वत् समझे जाने वाले शरीर की रासायनिक-प्रक्रिया पर भी समान रूप से असर डालती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घृणा और ईर्ष्या के भाव उत्पन्न होने पर शरीर के अंग-अवयवों में एक विशिष्ट प्रकार की प्रक्रिया होने से व्यक्ति में निष्क्रियता, नीरसता और निर्जीवता जैसी स्थिति का आभास होने लगता है। इस अवस्था में व्यक्ति के शरीर से 'ऐम्फेटेमीन' नामक एक विशेष प्रकार का रसायन शरीर में स्रवित हो उठता है। यह ''एम्फेटेमीन'' कहाँ से आता है? इसका उद्‌गम स्रोत किस स्थान पर हो सकता है? एनटॉमी के आधार पर इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता। शरीर की सूक्ष्म रचना के पहलुओं पर ही विचार करना होगा।

शरीर विज्ञानी तो बस इतना भर जानते हैं कि मानवी मस्तिष्क में फिनाइल, ईथाइल, अमीन यानी पी. ई. ए. नाम का एक तरल पदार्थ बड़ी ही न्यूनमत मात्रा में मस्तिष्क के अन्तर्गत समाविष्ट रहता है, जिसकी रासायनिक संरचना ''ब्रेन एम्फेटेमीन'' से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। मनोविकारों से ग्रसित व्यक्ति के मूत्र में इस पी. ई. ए. एवं एम्फेटेमीन की उपस्थिति स्पष्टत: देखी जा सकती है। नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ के मन:शात्री डा. रिचार्ड विट के मतानुसार हिस्टीरोइड डिस्फोरिया एक ऐसा मनोरोग है जो व्यक्ति में ईर्ष्या-द्वेष और मनोमालिन्य के फलस्वरूप ही उत्पन्न होता है और रोगी के मूत्र परीक्षण में पी. ई. ए की मात्रा भी स्फुट दृष्टिगत होती है। चूहों तथा बन्दरों पर किये गये परीक्षणों से यह तथ्य सामने आया है कि उनमें स्नेह-सद्‌भाव, पारस्परिक प्रेम का वातावरण विनिर्मित करने पर ही उक्त प्रकार के रसायनों को दूर कर सकना संभव है। यद्यपि वैज्ञानिक बुद्धि ने व्यक्ति में प्रेम-भाव जागृति के लिए ''मोनोमाइन ऑक्सीजन इन हीबीटर्स'', जैसे कृत्रिम उपाय उपचारों को भी ढूँढ़-खोज में काफी उत्सुकता दिखाई है फिर भी उस स्तर की स्थायी सफलता पाने में अभी असफलता ही हाथ लगी है।

''न्यूयार्क स्टेट साइकेट्रिक इंस्टीट्यूट ऑफ डिप्रेशन इवेल्यूएशन सर्विस'' के विशेषज्ञ तथा सुप्रसिद्ध मन:शास्त्री डोनाल्ड एफ. क्लेन ने 'हिस्टीरोइड डिस्फोरिया' नामक रोग की उत्पत्ति का मूल कारण व्यक्ति के मनोभावों में विद्यमान ईर्ष्या और घृणा रूपी राक्षस को ही बताया है और कहा है कि यही शरीर के स्वाभाविक विकास क्रम में गतिरोध उत्पन्न करते और विभिन्न प्रकार की आधि-व्याधियों का न्यौत बुलाते हैं। लगभग ऐसा ही मन्तव्य ''माइण्ड एण्ड मैटर'' के लेखक तथा मूर्धन्य मन:चिकित्सक जे. ए. मिलीगन का है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि दाम्पत्य जीवन में स्नेह-सौहार्द्र का अभाव ही ''हिस्टेरायड डिस्फोरिया'' रोग का मूल कारण है।

चिकित्सक द्वय के अनुसार इस रोग में कदाचित ही कोई औषधि प्रभावी सिद्ध होती है। उनका कहना है कि इस रोग का उपचार औषधि में नहीं वरन् रोगी का भावनात्मक स्थिति में सन्निहित है। उसके अन्तर्गत से द्वेष-दुर्भावों को निकालकर उसके जगह सद्‌भावों का समावेश कर इस व्याधि का सफल उपचार किया जा सकना संभव है। आज बहुसंख्य व्यक्ति इसी व्याधि से पीड़ित बेचैन, उद्विग्न है। उनका उपचार दु:खों को बाँटकर प्यार द्वारा किया जा सकता है।

अचेतन का परिष्कार ही परम लक्ष्य

शरीरगत भली-बुरी विशेषताओं के लिए अब मन:स्थिति को ही प्रधानतया उत्तरदायी ठहराया जाता है। भौतिक जीवन की सफलताओं के लिए भी उसी को आधारभूत माना जाता है। यही सामान्य दीखते हुए भी असामान्य निष्कर्ष है। पिछले दिनों परिस्थितियों एवं साधनों को मनुष्य की प्रगति अवगति का कारण माना जाता था। उत्थान-पतन का निमित्त दूसरों के सहकार एवं अपकार को समझा जाता था। कई बार शारीरिक स्थिति को ही सफलता-असफलता का श्रेयाधिकारी ठहराया जाता था। अब वैसी स्थिति नहीं रही। मन:शास्त्रियों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि व्यक्तित्व के प्राय: सभी क्षेत्र मानसिक स्थिति से प्रभावित होते हैं अस्तु यदि किसी को अपनी गई-गुजरी स्थिति सुधारनी है और महत्वपूर्ण प्रगति करनी है तो मुरझाये पेड़ के पत्ते धोने की अपेक्षा उसकी जड़ में पानी लगाना चाहिए। अस्त-व्यस्त मन:स्थिति को सुव्यवस्थित बनाना चाहिए।

बुद्धि के केन्द्र चेतन मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने के लिए स्कूल, कालेजों एवं अन्य ज्ञान-संस्थानों का प्रबन्ध है पर अब जाना यह गया है कि बुद्धिमत्ता से अधिक महत्वपूर्ण हैं-आदतें। आदतों के सही होने पर स्वल्प बुद्धि से भी व्यवस्थित रीति-नीति अपनाकर उन्नति के उच्चशिखर पर पहुँचा जा सकता है। इसके विपरीत तीक्ष्ण बुद्धि व्यक्ति भी बुरी आदतों का शिकार बनकर समय और शक्तियों का अपव्यय करता है और घाटा उठाता तथा असफल रहता है। अब नई शोध का विषय है-अतीन्द्रिय विज्ञान। जिसे पाश्चात्य देशों में परा-मनोविज्ञान कहा जाता है। इन अनुसंधानों में ऐसी घटनाओं की प्रमाणिकता जाँची जाती है, जो प्रकृति के सामान्य घटनाक्रम एवं मनुष्य के साधारण साधनों से भिन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार की होती है। मानवी चेतना पर अवतरित होने वाली अद्भुत जानकारियों का स्रोत कहाँ हैं ? वे किस आधार पर घटित होती है? वे अनायास ही व्यक्ति विशेष पर ही घटित होती हैं या प्रयत्नपूर्वक वैसी स्थिति पैदा की जा सकती है? यह ऐसे ही अनेक प्रश्नों की शृंखलाएँ सामने प्रस्तुत हैं, जिनके समाधान खोजने के लिए परा मनोविज्ञान क्षेत्र के अनुसंधानकर्त्ता प्रयत्नशील हैं।

इस प्रयास में अभी बहुत थोड़े ही निष्कर्ष निकल सके हैं। जो जानना बाकी है उसे देखते हुए सफलताओं को नगण्य ही कहा जा सकता है। फिर भी कुछ निष्कर्ष ऐसे हैं, जिनके आधार पर अतीन्द्रिय क्षमता के कारणों पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। यह माना गया है कि मस्तिष्क का अचेतन क्षेत्र शरीर संचालन की गति-विधियों का सूत्रधार तो है, पर उसकी सामर्थ्य उतने तक ही सीमित नहीं है। मन की दोनों परतों को जितनी मात्रा में विकसित होने का अवसर मिलता है, उतना ही वे व्यक्तित्व को अधिकाधिक प्रतिभासम्पन्न बनाती हैं और सफलताओं के नये-नये द्वार खोलती हैं। व्यक्तित्व के समग्र विकास में शरीरगत समर्थता की तुलना में मानसिक बलिष्ठता की भूमिका असंख्य गुनी बढ़ी-चढ़ी होती है। मनोबल सम्पन्न मनुष्य दुर्बल और रुग्ण होते हुए भी अपनी प्रखरता बनाये रह सकता है और उसी स्थिति में ऐसा कुछ करता या कराता रह सकता है, जिसे आश्चर्यजनक एवं सराहनीय कहा जा सके। इसके विपरीत शरीर से बलिष्ठ एवं सुगठित होते हुए भी मनोबल की दृष्टि से गये-गुजरे लोग सुविधा-साधनों के रहते हुए भी गई-गुजरी स्थिति में दिन काटते, पग-पग पर असफल होते और उपहासास्पद बनते देखे जाते हैं। दैनिक जीवन की अधिकांश सफलताएँ प्राय: विकसित मन:स्थिति की ही प्रतिक्रिया होती हैं। आदतें और कुछ नहीं अन्तर्मन की वर्तमान दृढ़ता ही उनका निर्माण करती हैं। इसी को व्यक्तित्व कहते हैं। प्रगति और अवगति इसी पृष्ठभूमि पर निर्धारित रहती है।

कुछ समय पूर्व बीमारियों के कारण रोग-कीटाणुओं के आक्रमण संग्रहीत विजातीय द्रव्य एवं अमुक अवयवों की टूट-फूट आदि माने जाते थे और इन्हीं को निरस्त करने लिए चिकित्सकों द्वारा उपाय उपचार किये जाते थे। अब गहराई तक जाने पर यह निष्कर्ष निकला है कि यह कारण गौण और अचिन्त्य चिन्तन का मानसिक विकृतियाँ प्रधान कारण हैं। अब मनोविकारों को न केवल मस्तिष्कीय रोगों का वरन् शारीरिक रोगों का भी सर्वोपरि कारण माना जा रहा है। यह पाया गया है कि मनोबल सम्पन्न, साहसी और सन्तुलित व्यक्ति सामान्य अथवा घटिया शारीरिक स्थिति में निरोगों की तरह काम करता और प्रसन्नचित रहता है। जबकि अस्त-व्यस्त मन:स्थिति वाला अकारण ही गिरी-मरी स्थिति में पड़ा रहता है। कितने ही दर्द एवं रोग ऐसे होते हैं, जिनकी जड़ शरीर में नहीं मन में होती है। शरीर की जाँच-पड़ताल करके डाक्टर कहता है, इसमें कोई रोग नहीं है, पर रोगी अपने को रुग्ण एवं पीड़ाग्रसित अनुभव करता है। ऐसी बीमारियाँ विशुद्ध मानसिक रोग होने पर भी उतनी ही कष्टकारक होती हैं, जितनी कि वास्तविक रुग्णता।

आँखों की चमक, चेहरे का आकर्षण, होठों पर नाचती मुस्कराहट, वाणी में प्रभाव जैसे व्यक्तित्व को मनोरम बनाने वाली विशेषताएँ शारीरिक गठन पर नहीं मानसिक उत्साह पर निर्भर रहती है। रङ्ग-रूप की दृष्टि से सुन्दर दीखने वाले व्यक्ति भी मानसिक अस्त-व्यस्त होने पर उपेक्षणीय एवं उपहासास्पद बने रहते हैं। प्रथम दर्शन में जो आकर्षक प्रभाव उत्पन्न हुआ था, वह सम्पर्क में आने और व्यक्तित्व का परिचय मिलने के साथ ही समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत काले, कुरूप मनुष्य भी आंतरिक उत्साह के कारण बड़े तेजस्वी एवं आकर्षक प्रतीत होते हैं, उनकी कल्पना, सूझ-बूझ, वाणी, आकांक्षा, स्फूर्ति, साहसिकता एवं उमङ्ग देखकर हर किसी को सम्पर्क में आने की इच्छा होती है। ऐसे लोगों के सान्निध्य में हर कोई प्रसन्नता अनुभव करता है। आरोग्य से लेकर आकर्षण तक शरीर की सभी विशेषताएँ मनोबल पर निर्भर रहती हैं। सक्रियता से लेकर सफलता तक का सारा क्षेत्र मन:स्थिति से ही प्रभावित पाया जाता है।

मनोबल भी यान्त्रिक विद्युत की तरह ही एक प्रभावशाली तत्व है। उसका प्रभाव मनुष्यों एवं दूसरे प्राणियों पर होते हुए आये दिन देखा जाता है। एक प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने सीमीपवर्ती लोगों को किस प्रकार अपना अनुचर बनाता है, उसका प्रमाण सर्वत्र उपलब्ध होता है। अन्य प्राणियों को प्रभावित करने में भी कुछ मनस्वी लोग असाधारण रूप से सफल होते हैं। सरकस में पशुओं के शिक्षक क्रूर प्रकृति के हिंस्र प्राणियों को भी दुलार-फटकार के सहारे प्रशिक्षित करते और उन्हें कठपुतली की तरह नचाते हुए देखे जाते हैं। महावत का कहना हाथी मानता है और मनस्वी घुड़सवार के पीठ पर पहुँचते ही अड़ियल घोड़ा भी सीधा हो जाता है। कितने ही लोग भिन्न प्रकृति के प्राणियों की जन्म-जात द्वेष बुद्धि को स्नेह सहयोग के बदल देते हैं। ऋषियों के आश्रमों में सिंह और गाय में साथ रहने की बात प्रसिद्ध है। अभी भी कइयों ने कुत्ते बिल्ली इस प्रकार पाले होते हैं। वे सहोदर भाई-बहिन की तरह रहते हैं। इटली का एक किसान अपनी मुर्गियों के फार्म की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखवाली पालतू बिल्लियों से कराता था। कुत्ते और मनुष्यों की मित्रता एवं वफादारी के जो अनेक प्रसङ्ग सुने जाते हैं, उसमें पालने वालों का मानसिक प्रभाव ही प्रधान रूप से काम करता है। पूरे परिवार में किसी व्यक्ति विशेष के साथ अतिरिक्त लगाव रखने वाले पालतू पशु वस्तुतः किसी की मनःस्थिति में प्रभावित हुए होते हैं।

ज्ञान-सम्पदा का अपना महत्व है। बौद्धिक तीक्ष्णता के लाभ और चमत्कार सर्वविदित हैं, पर यदि आदतों का मूल्यांकन किया जा सके तो प्रतीत होगा कि उनका वजन मस्तिष्कीय तीक्ष्णता की सम्मिलित उपलब्धियों की तुलना में भी भारी पड़ता है। बुरी आदतें क्षति पहुँचाती हैं, उसकी भरपाई अन्य विशेषताओं में नहीं हो सकती। आलस्य को ही लें, वह देखने में छोटी-सी बुराई है पर उसकी प्रतिक्रिया हर काम को अधूरा अस्त-व्यस्त और अनकिया हुआ पड़ा रहने के रूप में सामने आती है। फलतः सुयोग्य और साधन-सम्पन्न व्यक्ति भी अपनी अकर्मण्यता के कारण पग-पग पर असफल होते रहते हैं। ऐसी बहुमूल्य प्रतिभाएँ जो बहुत कुछ कर गुजर सकती थीं और अपनी विशेषताओं के कारण चमत्कार उत्पन्न कर सकती थीं, वे आलस्य और प्रमाद की दल-दल में फँसे रहने के कारण अपङ्ग असमर्थों जैसी दयनीय स्थिति में पड़ी रहीं। इसके विपरीत कर्मनिष्ठ, श्रमशील नियमित और व्यवस्थित लोग स्वल्प बुद्धि एवं स्वल्प साधनों की सहायता से ही अभीष्ट प्रयोजनों में तत्परतापूर्वक लगे रहने के कारण उन्नति के उच्च शिखर तक जा पहुँचे। कटु स्वभाव, अधीरता, चटोरापन, नशेबाजी, फिजूलखर्ची, जैसी छोटी दीखने वाली आदतें धीरे-धीरे जितनी हानि पहुँचा देती हैं, उतनी भयङ्कर दुर्घटनाएँ एवं आकस्मिक विपत्तियाँ भी नहीं कर सकतीं। संसार के महामानव परिस्थितियोंवश यशस्वी नहीं हुए हैं और न साधन ही उन सफलताओं के कारण बने हैं। उस प्रखर मनस्विता ने ही उन्हें आगे बढ़ाया है, जो आदतों के रूप में चिन्तन तथा क्रिया-पद्धति को उच्चस्तरीय बनाये रही।

स्मरण रहे आदतों का सीधा सम्बन्ध अचेतन मन से है। उनका आरम्भ भले ही भले-बुरे चिन्तन से अथवा अनुकरण से होता है, पर जब वे जड़ें जमा लेती हैं, तो फिर उन्हें उखाड़ना कठिन हो जाता है। नशेबाजी के सम्बन्ध में प्रायः यही होता है। दुष्परिणामों को देखते, समझते हुए भी नशेबाज अपनी आदत के सामने एक प्रकार से विवश हो ही जाता है और छोड़ने की कल्पना-जल्पना करते रहने पर भी कुछ बन नहीं पड़ता। आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक एवं समाज सम्मान की अपार क्षति सहन करते हुए वह दम तो तोड़ देता है, पर उस आदत से पिण्ड छुड़ाने में अपने को असमर्थ पाता है। यही बात अन्यान्य भली-बुरी आदतों के बारे में भी कही जा सकती है। हलक-फुलकी हो तो बात अलग है अन्यथा स्वभाव का अङ्ग बन जाने वाली गहरी जड़ें जमा लेने वाली आदतें व्यक्तित्व का अङ्ग बन जातीं और प्रगति अवगति का महत्वपूर्ण कारण सिद्ध होती है।

आदतों का केन्द्र अचेतन मन है। उस क्षेत्र को यों सामान्य दृष्टि से उपेक्षित माना जाता है, पर वस्तुतः उसकी गरिमा बुद्धि-संस्थान से भी अधिक बढ़ी-चढ़ी है। विचार तो आदमी क्षणभर में बदल सकता है, पर स्वभाव को बनाना या बदलना उतना सरल नहीं है। चिन्तन का ढर्रा, इच्छाओं का रुझाना, विश्वासों का गठन, अभ्यास का पुनरावर्तन जैसे तत्व ही मिलकर स्वभाव का सृजन करते हैं और उसी को व्यक्तित्व के साथ में प्रस्फुटित होते देखते हैं। इस प्रकार अचेतन मन ही वस्तुतः सारे जीवन पर छाया हुआ मिलता है। आदतें तो अचेतन मन में रहती है, पर उन्हें पूरी करने के लिए योजना बनाना-व्यवस्था करना एवं समर्थन में तर्क गढ़ना प्रमाण ढूँढ़ना चेतन मन का काम है। समझने की सुविधा के लिए यह चेतन-अचेतन का विभाजन है वस्तुतः वह एक ही मनःतत्व की दुहरी क्रिया पद्धति है। एक ही व्यक्ति विद्वान और पहलवान, चित्रकार और साहित्यकार, वक्ता और नर्तक हो सकता है। देखने में यह क्रियाएँ एक-दूसरे से असंबद्ध लगती हैं, पर पेड़ में फूल और फल आने की तरह यह दुहरी-प्रक्रिया आसानी से चलती रह सकती है। मन वस्तुतः एक है। उसे स्थूल शरीर की सूक्ष्म संचालक शक्ति कह सकते हैं और समझने की सुविधा के लिए बिजली तथा मशीन के सहयोग से चलने वाली फैक्टरी का उदाहरण दे सकते हैं। शरीर को मशीन और मन को बिजली कहा जाए, तो यह उदाहरण ठीक ही होगा।

मन के दो भाग हैं एक अचेतन, दूसरा चेतन। अचेतन का काम आकुंचन-प्रकुंचन, श्वाँस-प्रश्वाँस, निमेष-उन्मेष, पाचन-विसर्जन, रक्ताभिसरण, क्षुधा-पिपासा, निद्रा-जागृति जैसी व्यवस्थाएँ जुटाते रहना होता है। तरह-तरह की आदतें तथा आस्थाएँ भी उसी में जड़ जमाये बैठी रहती हैं और अविज्ञान रूप से जीवन-क्रम का परोक्ष संचालन करती रहती हैं। चेतन का काम इच्छा, ज्ञान और क्रिया का धारण तथा उनके सहारे आवश्यक व्यवस्थाएँ बनाते एवं जुटाते रहना होता है। अध्यात्म की भाषा में चेतन की बुद्धि और अचेतन को चित्त कहते हैं। इन्हीं दोनों के सहारे जड़ पदार्थों से बना पंचभौतिक शरीर चैतन्य सत्ता की तरह काम करता दीखता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यों शरीर यात्रा के लिए भी प्राणी चेतना को बहुत कुछ उपलब्धियाँ ब्रह्माण्ड चेतना से ही मिलती हैं किन्तु जब आत्मिक प्रगति की, चेतना के परिष्कृति एवं प्रखरता की बात आती है, तब तो उस ब्रह्माण्ड शक्ति सागर का, ब्रह्म सम्बन्ध का अधिक सघन सम्बन्ध चल पड़ता है। सामान्य शरीर यात्रा प्रकृति को स्वसंचालित विधि-व्यवस्था के सहारे ही चलती रहती है। उसके लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण, समाज सम्पर्क एवं स्कूली अध्ययन से काम चल जाता है, पर आत्मिक प्रगति की, चेतनात्मक प्रखरता की आवश्यकता अतिरिक्त रूप से साधना प्रयास करने पर ही सम्भव होती है। योगाभ्यास एवं तपश्चर्या की सारी विधि-व्यवस्था इसी प्रयोजन के लिए विनिर्मित हुई है। कभी-कभी ऐसे अपवाद भी देखे जाते हैं कि बिना किसी साधना के चेतना का असाधारण विकास पाया गया है, पर वह अनायास दीखते हुए भी वस्तुत: पूर्व-जन्मों की संग्रहीत सम्पदा होती है। कुछ बालक जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि होते हैं। कम आयु में भी उनकी प्रतिभा कई विषयों में वयस्कों जैसी विकसित होती है। कुछ बालक छोटी उम्र में गायक, वादक, वक्ता आदि विशेषताओं से सम्पन्न होते हैं। उन्हें कुछ विशेष प्रशिक्षण भी नहीं मिला होता है, पर लगता है अपने विषय में पारङ्गत हैं। यह उनके पूर्वजन्मों के संचित संस्कार होते हैं, जो अवसर पाते ही अपने आप उगते और बढ़ते मालूम होते हैं। वस्तुत: उनकी जड़ें पहले से ही विद्यमान होती हैं।

अचेतन का परिष्कार ही अध्यात्म भाषा में आत्मनिर्माण, आत्म-साक्षात्कार, आत्म-बोध, आत्मोद्धार आदि नामों से पुकारा जाता है। सुसंस्कृत और अध:पतित मनुष्य में स्थूल दृष्टि से कोई बड़ा अन्तर नहीं होता। उनके शारीरिक अवयव एवं ज्ञान-कौशल आदि में बहुत कुछ समान रहते हुए भी प्रकृति में जमीन आसमान जितना अन्तर पाया जाता है। इन्हीं कारणों से उन्हें निन्दा-प्रशंसा का, सफलता-असफलता का भागी बनना पड़ता है।

अध्यात्म विज्ञान की यदि तात्विक समीक्षा की जाय तो प्रतीत होता होगा कि यह सारी प्रतिष्ठापना और घेराबन्दी अचेतन की पशु-प्रवृत्तियों के ऊँचा उठाकर मानवता की उच्चस्तरीय संस्कारित में बदलने के लिए ही खड़ी की गई है। तत्व दर्शन के आधार पर जिस दृष्टिकोण को आस्थाओं के रूप में हृदयङ्गम किये जाने पर जोर दिया गया है, वे अचेतन की दिशा धारा को परिष्कृत करने का उद्देश्य लेकर ही प्रतिष्ठापित की गई हैं।

आगत की झाँकी, अचेतन के झरोखे से

स्वप्न विद्या अध्यात्म विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग और मानव जीवन की एक अवस्था है, जिसका विकास-परिष्कार करके अचेतन मस्तिष्क के छिपी रहस्यमयी शक्तियों को जागृत किया और परोक्ष-जगत के रहस्यों को आसानी से समझा जा सकता है। इस तथ्य को उन घटनाक्रमों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है, जिसमें भूत या भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास व्यक्तियों को स्वप्नों के द्वारा मिल जाता है। कभी-कभी तो भावी दुर्घटनाओं, प्राकृतिक आपदाओं का पूर्वाभास सामूहिक रूप से भी होता है। एक ही घटनाक्रम के दृश्य या प्रेरणा अनेक व्यक्तियों के अचेतन मस्तिष्क में स्वप्नावस्था में कौंध जाते हैं और उन्हें अपने जीवन रक्षा के लिए सचेत करते हैं। यह घटनायें बताती हैं कि चेतना के धरातल पर सभी मनुष्य एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, तभी तो घटनाक्रम घटने के पूर्व ही उसके स्वरूप की, घटने के समय की जानकारी सामूहिक रूप से कइयों को स्वप्न में मिल जाती है। इस तरह की अनेक घटनाओं का वर्णन ''द अनएक्स-प्लेंड मिस्ट्रीज ऑफ माइंड स्पेश एण्ड टाइम'' एवं टू एक्सपीरियन्सेज इन प्रोफेसीज'' नामक पुस्तकों में विस्तारपूर्वक किया गया है।

ऐसी ही एक घटना वेल्स-इंग्लैण्ड के एक गाँव 'एबरफेन' की है, जहाँ लगातार पाँच दिनों की घनघोर वर्षा के कारण कोयले का एक विशाल पहाड़ अचानक धँस पड़ा और प्रबल वेग से बहने लगा। प्रवाह इतना तीव्र था कि गाँव का निकटवर्ती स्कूल उसमें देखते-देखते दब गया और उसमें उपस्थित डेढ़ सौ के करीब छात्र-छात्रायें एवं शिक्षक सभी जीवित दफन हो गये। उन्हें निकलकर भागने तक का अवसर न मिला। इसके अतिरिक्त गाँव के आस-पास के अन्य घर भी उसमे दबकर नष्ट हो गये। कितने ही ग्रामवासी और उनके पशु इस आकस्मिक विपदा में फँसकर अपनी जान गँवा बैठे। खेतों में खड़ी फसल चौपट हो गयी। यह प्राकृतिक विपदा सन् १९६६ के अक्टूबर माह की २१ तारीख को सबेरे ९ बजकर १५ मिनट पर घटित हुई।

समीपवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को इस विभीषिका का पूर्वाभास बहुत पहले हो गया था। उसी स्कूल में पढ़ने वाली एक छात्रा एरिल जोन्स को घटना से दो दिन पूर्व ही स्वप्न में वह भयावह दृश्य दिख गया था। जोन्स ने अनुभव किया कि स्कूल अपने स्थान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर है नहीं, उसकी जगह कोयले का एक बड़ा ढेर लगा हुआ है। उसने यह बात अपनी माँ से बतायी, पर उसके कथन को हँसी में टाल दिया गया। इसी प्रकार एक महिला ने स्वप्न में देखा कि एक काला पहाड़ बह रहा है, कुछ बच्चे चिल्लाते हुए दौड़ रहे हैं और कुछ उसकी चपेट में आकर अपनी जीवनलीला गँवा बैठे हैं। एक व्यक्ति को पूर्वाभास हुआ कि एक बच्चा टेलीफोन बूथ की ओर भाग रहा है और कुछ अन्य लोग उसके पीछे दौड़ रहे हैं। सबके पीछे काले पानी का वेगवान प्रवाह गतिमान है। एक महिला ने यह दृश्य देखा कि उक्त स्कूल के कुछ विद्यार्थी अपनी स्कूली पोशाक में आसमान की ओर गमन कर रहे हैं, जबकि एक वृद्ध पुरुष को 'एबरफेन' शब्द स्वप्न में स्पष्ट और चमकदार अक्षरों में लिखा दिखाई पड़ा। इन सारी बातों का पता तब चला, जब समाचार पत्र वालों ने उक्त घटना से संबंधित पूर्वाभास का सर्वेक्षण किया। पाया गया कि एक महिला को दुर्घटना से दो सप्ताह पूर्व ही चीखते-चिल्लाते व काले पहाड़ के नीचे दबे हुए कुछ बच्चों का दृश्य स्वप्न में दिखा था। केण्ट निवासी एक युवक को पंद्रह दिन पूर्व इस घटना का पूर्वाभास हो गया था कि कोई दुर्घटना होने वाली है, जिसमें सैकड़ों लोग कालकवलित होंगे। इसी प्रकार वेल्स के एक अन्य स्कूल के अध्यापक अलेक्जेंडर वेन को घटना से संबंधित दृश्य कई दिनों तक लगातार दिखाई देते रहे। उसने इस आधार पर एक पेंटिंग भी बना ली थी। प्लायमथ की मनोविज्ञानी श्रीमती मिलडन को ध्यान की स्थिति में इस आपदा का आभास मिल गया था, जिसका उल्लेख उसने अपने पड़ौसियों से भी किया था। बाद में जब वही दृश्य टी. वी. पर दिखाया गया तो पड़ौसी हैरत में पड़ गये और कहने लगे कि यदि उन संकेतों को समझने का प्रयास किया गया होता तो निश्चय ही दुर्घटना से पूर्व लोगों को बचाया जा सकता था।

स्वप्नों के माध्यम से कई बार ऐसी षड्यंत्रकारी घटनाओं का भी पूर्वाभास हो जाता है, जिसमें अपने सगे संबंधियों या अन्यों द्वारा जान खतरे में पड़ने वाली होती है। ऐसा ही एक पूर्वबोध इंग्लैण्ड के 'मेरी ह्युडर' के शासनकाल के समय निकोलस विटन को हुआ था। उस समय निकोलस पेरिस में इंग्लैण्ड का राजदूत था। उसे एक दिन स्वप्न हुआ कि उसका भतीजा-टामस विट्टन स्वयं को एक ऐसे षड्यंत्र में फँसा रहा है, जिससे परिवार की प्रतिष्ठा को आघात पहुँच सकता है और उसका जीवन खतरे में पड़ सकता है। आरंभ में तो निकोलस ने कोई ध्यान न दिया, पर जब वही स्वप्न लगातार कई दिनों तक बराबर दिखता रहा, तो उसने विशेष स्वप्न मानकर उसे गंभीरतापूर्वक लिया और इस आशय का एक पत्र महारानी को लिखकर यह निवेदन किया कि टामस को कुछ समय के लिए पेरिस से वापस बुलाकर उसे कारावास में रखा जाय। विषय की गम्भीरता को समझते हुए ऐसा ही किया गया। उसे बंदी बना लिया गया। घटना इसके थोड़े दिनों के पश्चात् ही रानी के विरुद्ध चल रहे षड्यंत्र का पता चला, जिसमें टामस के कई साथियों को फाँसी की सजा दी गयी।

वस्तुत: इस तरह के पूर्वाभासपरक स्वप्न अचेतन की स्थिति में होते हैं, क्योंकि पूर्ण सचेतन स्थिति में मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध एक-दूसरे के समन्वय से काम करते हैं एवं एक की स्वतंत्रता पर दूसरे का अंकुश लगा रहता है। अत: कोई सार्थक दृश्य प्रस्तुत करने का उन्हें मौका नहीं मिलता, किन्तु जब व्यक्ति स्वप्न की अचेतन अवस्था में होता है तो दोनों के क्रियाकलाप स्वतंत्र होते हैं, फलत: यदा-कदा मन को भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की झलक झाँकी मिल जाती है। अपनी भावनाओं को परिष्कृत एवं चिन्तन-चरित्र को उदात्त बनाकर अचेतन मन का परिष्कार किया जा सके तो संभावित भविष्य की झलक-झाँकी प्राप्त कर सकना हर किसी के लिए संभव है।

अहन्ता के नागपाश से जीवन मुक्ति

आत्मा की आकांक्षाओं, मान्यताओं और भावनाओं को क्रियान्वित करने का भार मन को वहन करना पड़ता है। यह कार्यान्वयन की योजना बनाकर शरीर को देता है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के सहारे वह उन्हें चरितार्थ करता रहता है। यही है जीवनचर्या का सामान्य क्रिया-कलाप और विधि-विधान। प्रत्यक्ष कृत्य शरीर करता है इसलिए दोष अथवा श्रेय उसी को मिलता है पर यह भुला दिया जाता है कि शरीर जड़ पंच तत्वों का बना हुआ है। उसमें न सोचने की क्षमता है न करने की। रेल, मोटर साइकिल आदि यन्त्र वाहन अपनी मर्जी से भला-बुरा कुछ भी करने में असमर्थ रहते हैं। ड्राइवर ही उन्हें जहाँ-तहाँ घसीटे फिरते हैं। यही विधा जीवन क्रम में चरितार्थ होती है।

आत्मा का परिधान अन्त:करण है। उससे चेतना प्रभावित है। समर्थ एवं परिष्कृत आत्माएँ साधना द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाल लेती हैं फलत: व्यक्तित्व परिष्कृत स्तर का बनता है और मनुष्य कलेवर में देवत्व की आभा झलकती है। इनके विपरीत यदि तमोगुणी असुरता अन्तराल की गहराई तक चली जाय तो प्रवृत्ति एवं आकांक्षा अनुपयुक्त कामों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रस लेती है और फिर तदनुकूल प्रवृत्तियों का प्रवाह बहने लगता है।

आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों में वासना, तृष्णा और अहन्ता का असामान्य, उद्धत हो उठना, अनेकानेक दोष-दुर्गुणों का सृजन करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर यह छैः षड रिपु माने गये हैं। यही प्रमुख मनोविकार हैं। क्रियाओं से यही उभरते दीखते हैं, किन्तु वस्तुतः उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है उपरोक्त तीन दुष्प्रवृत्तियों का फलितार्थ ही उन्हें समझा जाना चाहिए।

अब अहन्ता पर विचार किया जाना चाहिए। यह अहंकार का दूसरा नाम है। व्यक्ति अपने को दूसरों की आँखों में वरिष्ठ प्रदर्शित करना चाहता है और उसके लिए अनेक तरह के सरंजाम जुटाता है। यों इसका सीधा सरल और सौम्य मार्ग है कि साधारण लोग गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से जीवन जीते हैं।षड ऋपुओ के चंगुल में बुरी तरह फँसे होते हैं। फलतः चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से उनकी स्थिति नर-पशु नर-पामर या नर-पिशाच जैसी होती है। इन दुष्प्रवृत्तियों के श्रेय में कौन अग्रिणी रहा इसी की प्रतिस्पर्धा उनमें चलती रहती है। इसी हेय स्तर की सफलताओं को अपनी चतुरता, कुशलता एवं सफलता के नाम से दिखाते बखानते रहते हैं। औसत आदमी की अहंता इसी रूप में प्रकट होती है। दुष्ट, दुराचारी अपने अनीति कृत्यों को गौरव-गरिमा में सम्मिलित करते हैं और छल-प्रपंच की अनीति और आक्रमण की घटनाओं को अपनी विशिष्टता के रूप में देखते और दिखाते हैं।

यदि इस कुपन्थ को उलटकर सज्जनोचित शालीनता अपनाई जा सके तो वास्तविक प्रशंसा और प्रतिष्ठा का आधार बन जाती है। उतने भर से आत्म प्रतिष्ठा, आत्म गौरव एवं आत्मोत्कर्ष की स्थिति बन जाती है। लोगों का यह मिथ्या भ्रम है कि ओछे हथकण्डे अपनाकर येन-केन प्रकारेण अपनी महिमा का विज्ञापन किया जा सकता है और उससे लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करके अपने को वरिष्ठ सिद्ध किया जाता है। इस आधार पर प्रशंसा करने वाले दूसरे ही क्षण मुँह फेरते ही निन्दा करने में भी नहीं चूकते। सामने की चापलूसी और परदा हटते ही यथार्थता बखानने लगती है।

फैशन, सज-धज, अमीरों जैसे ठाट-बाट किसी दुर्बल पर आक्रमण, किसी सज्जन को ठगना, घर में विपुल सम्पदा जमा करना, चाटुकारों का मुँह मीठा करके अपनी प्रशंसा सुनना आदि करतूतें उद्धत अहन्ता वाले लोग करते रहते हैं और उसी में अपना ढेर सारा समय, श्रम, धन तथा चिन्तन गँवाते रहते हैं। इस आधार पर जो प्रदर्शनात्मक प्रपंच खड़ा किया गया था। वह क्षणिक और अवास्तविक विडम्बना खड़ा करने के अतिरिक्त और किसी काम नहीं आता।

शृंगारिक वेश-विन्यास बनाने वाले, कीमती वस्त्र आभूषणों से लदने और तेल-फुनेन से महँकने वाले लड़की-लड़के सोचते हैं कि वे जिस राह भी निकलेंगे उधर ही दर्शक उनकी कलाकारिता, सुन्दरता एवं सम्पन्नता को सराहेंगे। पर होता उससे ठीक उलटा है। उनके चरित्र पर उँगली उठती है। दुराचार का आमन्त्रण देते फिरने वाला माना जाता है। फिजूल खर्च को अदूरदर्शी एवं बाल बुद्धि बचकाना माना जाता है। शृंगारिकता हर किसी पर यही छाप छोड़ती है भले ही किसी अनुचित लाभ के लिए कोई मुँह सामने कुछ प्रशंसा के शब्द भले ही कह दे।

सादगी का सघन सम्बन्ध उच्चविचारों से है। गान्धी, ईसा, बुद्ध जैसों के परिधान सस्ते और स्वल्प थे। ऋषि और महापुरुष भी अपनी सज्जा औसत देश वासियों से अधिक महँगी नहीं होने देते थे। यह शालीनता के परिधान हैं। इस प्रकार के आच्छादन से किसी की प्रतिष्ठा घटती नहीं वरन् बढ़ती है। महँगे वस्त्र और महँगे आभूषण धारण किये फिरने वालों को स्वांग नाटकों के प्रदर्शनकारी माना जाता है अथवा यह कहा जाता है कि पैसे को उपयुक्त कार्य में लगाकर सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में लगाने की अपेक्षा मूर्खता द्वारा अपव्यय का कैसा कौतुक-कौतूहल किया जा रहा है। अहन्ता का सबसे घटिया प्रदर्शन साज-सज्जा की शृंगारिकता के रूप में ही होता है देखा जाता है।

समाज में फैली हुई बुराइयों में अपनी बुराई को बढ़-चढ़कर सिद्ध करने पर उस स्तर के लोग प्रशंसा करेंगे ही जेल में बन्द अपराधियों में से जो अपनी करतूतों का अधिक दिलचस्प या भयानक विवरण सुनाते हैं, उनकी बात सुनकर दूसरे लोग अवाक् तो रह जाते हैं, पर कभी अवसर पड़ने पर उनका साथ देने के लिए भूलकर भी तैयार नहीं होते। सोचते हैं ऐसे लोग किसी की भी हजामत बना सकते हैं। इनको कोई सगा सम्बन्धी नहीं होता। वो जिसके साथ मित्रता जोड़ते हैं पहले उसी को हलाल करते हैं।

दुष्कर्मों में दिखाई गई धूर्तता या निष्ठुरता किसी के लिए गौरव या प्रतिष्ठा की बात नहीं हो सकती। ऐसे लोगों पर दसों दिशाओं से घृणा और भर्त्सना बरसती है। रन्डी, भड़ुए आपस में मीठी बातें करते हैं और आदान-प्रदान भी, किन्तु दोनों में से कोई किसी का मित्र नहीं होता। मौका पड़ने पर उन्हें मुँह मोड़ने में ही नहीं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घात मारने में भी देर नहीं लगती है। दुर्जनों का संसार भर में न कोई प्रशंसक होता है और न सहयोगी। सज्जनता अपनाने वालों की मुँह आगे प्रशंसा भले ही न हो, भीतर से व्यक्ति उनके लिए श्रद्धा रखता है और साथ ही सहयोग की भावना भी। यह किसी प्रकार कम महत्व की उपलब्धियाँ नहीं हैं। महापुरुष सामान्य स्थिति में उँचा उठकर महान पद और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, इसमें सज्जनता के आधार पर उपलब्ध हुआ सम्मान और सहयोग ही प्रधान कारण होता है।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने, शेखी बघारने को आत्मश्लाघा ग्रस्त मनोरोगी माना जाता है। सज्जनों का सुनिश्चित गुण है-नम्रता और विनयशीलता। उनकी सादगी देखते ही बनती है। महामना मालवीय जी को भारत सरकार ने ''सर'' की उपाधि दे रखी थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद ''डाक्टरेट'' स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया। पण्डित महासभा ने उन्हें पण्डित शिरोमणि की उपाधि दी थी। इन तीनों पदवियों को उनने अस्वीकृत कर दिया और कहा मेरे पिताजी 'पण्डित' की परम्परागत उपाधि दे गये हैं, उनका निर्वाह ही मुझे अत्यधिक भारी प्रतीत होता है फिर और उपाधियों से लदकर उन्हें वहन कर सकना मेरे लिए कैसे सम्भव होगा ? यह नम्रता का एक उदाहरण है। इस कारण मालवीय जी की गरिमा घटी नहीं बढ़ी ही। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर जैसे सन्त अपना परिचय सामान्य लोगों की पंक्ति में ही खड़ा होकर देते रहे हैं। यदि उनने बड़प्पन को प्रशंसात्मक डींगे हाँकी होती तो निश्चय रूप से ये विज्ञजनों की दृष्टि में गये गुजरे समझे गये होते।

हम माया के बन्धन में कब तक जकड़े रहेंगे

वेदान्त दर्शन संसार को माया बताया और संसार को स्वप्न कहता है, इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ दीखता है, उसका अस्तित्व ही नहीं अथवा जो सामने है वह झूठ है। वर्तमान स्वरूप एवं स्थिति में वे सत्य भी हैं। यदि ऐसा न होता तो कर्म फल क्यों मिलते? पुण्य और तप तितीक्षा करने की क्या आवश्यकता होती ? कर्तव्य और अकर्तव्य में क्या अन्तर होता? धर्मकृत्यों की क्या उपयोगिता रह जाती? और पापकर्मों से डरने, बचने की क्या आवश्यकता रहती?

माया का अर्थ वेदान्त ने इस अर्थ में किया है, जिसमें जो भाषित होता हो वह तत्वत: यथार्थ न हो। जगत को इसी स्थिति में-इसी स्तर का माना गया है। वह जैसा कुछ प्रतीत होता है, क्या वह वैसा ही है? इस प्रश्न पर जब गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि संसार में जो कुछ हम इन्द्रियों द्वारा देखते हैं, अनुभव करते हैं वह सब यथार्थ में वैसा ही नहीं होता। इन्द्रिय छिद्रों के माध्यम से मस्तिष्क को होने वाली अनुभूतियों का नाम ही जानकारी है। यह जानकारी तभी सत्य हो सकती है, जब वस्तुओं के यथार्थस्वरूप को सही रूप में इन्द्रियाँ समझ सकें। यदि वे धोखा खाने लगें तो मस्तिष्क गलत अनुभव करेगा और वस्तुस्थिति उलटी दिखाई पड़ने लगेगी।

नशा पी लेने पर मस्तिष्क और इन्द्रियों का संबंध लड़खड़ा जाता है, फलस्वरूप कुछ का कुछ अनुभव होता है। शराब के नशे में धुत्त व्यक्ति जैसा कुछ सोचता, समझता, देखता अनुभव करता है, वह यथार्थता से बहुत भिन्न होता है और भी ऊँचे नशे इस उन्मत्तता की स्थिति को और भी अधिक बढ़ा देते है। डी. एलस्केस. ए. सरीखे नवीन नशे तो इतने तीव्र हैं कि उनके सेवन के उपरान्त ऐसे विचित्र अनुभव मस्तिष्क को होते हैं जिनकी यथार्थता के साथ कोई संगति नहीं होती।

साधारणतया दैनिक जीवन में भी अधिक अनुभव से होते हैं, जिन्हें यथार्थ नहीं कहा जा सकता। सिनेमा के पर्दे पर जो दीखता है सही कहाँ है? एक के बाद एक आने वाली अलग-अलग तस्वीरें इतनी तेजी से घूमती हैं कि उस परिवर्तन को आँखें ठीक तरह समझ नही पाती और ऐसा भ्रम होता है मानो फिल्म में पात्र चल फिर रहे हैं। लाउडस्पीकर से शब्द अगल अन्यत्र निकलते हैं और पर्दे पर तस्वीर के होठ अलग चलते हैं पर दर्शकों को ऐसा ही आभास होता रहता है मानो अभिनेताओं के मुख से ही वार्तालाप एवं संगीत निकल रहा है। प्रकाश की विरलता और सघनता भर पर्दे पर उतरती है पर उसी से पात्रों एवं दृश्यों का स्वरूप बन जाता है और मस्तिष्क या अनुभव करता है मानो यथार्थ ही वह घटनाक्रम घटित हो रहा है।

सिनेमा के दृश्य क्रम को देखकर आने वाला यह नहीं अनुभव करता कि उसे यांत्रिक जाल-जंजाल से ढाई-तीन घंटे उलझा रहना पड़ा है। उसे जो दु:खद, सुखद, रोचक, भयानक अनुभूतियाँ उतने समय होती रही हैं, वे सर्वथा भ्रान्त थीं। सिनेमा हाल में कोई घटनाक्रम नहीं घटा। कोई प्रभावोत्पादक परिस्थिति नहीं बनी, केवल प्रकाश यन्त्र या ध्वनि-यन्त्र अपने-अपने ढंग की कुछ हरकतें भी करते रहे। इतने भर से दर्शक अपने सामने अति महत्वपूर्ण घटना क्रम उपस्थित होने का आभास करता रहा, इतना ही नहीं उससे हर्षातिरेक एवं अश्रुपात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसी भाव भरा मन:स्थिति में भी बना रहा। इस इन्द्रिय भ्रम को माया कहा जाता है। मोटी दृष्टि से यह माया सत्य है। यदि सत्य न होती तो फिल्म उद्योग, सिनेमा हाल, उसमें युक्त हुए यन्त्र, दर्शकों की भीड़ उनकी अनुभूति आदि का क्या महत्व रह जाता ? थोड़ी विवेचनात्मक गहराई से देखा जाय तो यह यन्त्रों की कुशलता और वस्तुस्थिति को समझ न सकने को नेत्र असमर्थता के आधार पर इस फिल्म दर्शन को मायाचार भी कह सकते हैं। दोनों ही तथ्य अपने-अपने ढंग से सही हैं। संसार चूँकि हमारे सामने खड़ा है, उसके घटना क्रम को प्रत्यक्ष देखते हैं। इसलिए वह सही है किन्तु गहराई में प्रवेश करने पर वे दैनिक अनुभूतियाँ नितान्त भ्रमित सिद्ध होती हैं। ऐसी दशा में उन्हें भ्रम, स्वप्न या माया कहना भी अत्युक्ति नहीं है।

स्पष्ट है सभी दृश्य पदार्थ एक विशेष प्रकार के परमाणुओं का एक विशेष प्रकार का संयोग मात्र है। प्रत्येक परमाणु अत्यन्त तीव्र गति से गतिशील है। इस प्रकार हर पदार्थ अपनी मूलस्थिति में आश्चर्यजनक तीव्र गति से हरकत कर रहा है। पर खुली आँखें यह सब कुछ देख नहीं पातीं और वस्तुएँ सामने जड़वत स्थिर खड़ी मालूम पड़ती हैं। ऐसा ही अपनी पृथ्वी के बारे में भी होता है। भू-मण्डल अत्यन्त तीव्र गति से (१) अपनी धुरी पर (२) सूर्य की परिक्रमा के लिए अपनी कक्षा पर (३) सौर मंडल सहित महासूर्य की परिक्रमा के पथ पर (४) घूमता हुआ लट्टू जिस तरह उधर-उधर लहकता रहता है, उस तरह लहकते रहने के क्रम पर (५) ब्रह्माण्ड के फैलते-फूलते जाने की प्रक्रिया के कारण अपने यथार्थ आकाश स्थान को छोड़कर फलता स्थान पकड़ते जाने की व्यवस्था पर- निरन्तर एक साथ पाँच प्रकार की चालें चलती रहती हैं। इस उद्धत नृत्य को हम तनिक भी अनुभव नहीं करते और देखते हैं कि जन्म से लेकर मरण काल तक धरती अपने स्थान पर जड़वत् जहाँ की तहाँ पड़ी रही है। आँखों के द्वारा मस्तिष्क को इस संबंध में जो जानकारी दी जाती है और जैसी कुछ मान्यता आमतौर से बनी रहती है, उसका विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि हम भ्रम अज्ञान की स्थिति में पड़े रहते हैं और कुछ का कुछ अनुभव करते रहते हैं, यह मायाग्रस्त स्थिति कही जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

जल में सूर्य चन्द्र के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं और लगता है कि पानी में वे प्रकाश पिण्ड जगमगा रहे हैं। हर लहर पर प्रतिबिम्ब पड़ने से हर लहर पर चन्द्रमा नाचता-थिरकता मालूम पड़ता है। रेल में बैठने वाले देखते हैं कि वे अपने स्थान पर स्थिर बैठे हैं केवल बाहर तार के खंभे और पेड़ आदि भाग रहे हैं। क्या यह अनुभूतियाँ सत्य हैं?

रात्रि को स्वप्न देखते हैं। उस स्वप्नावस्था में दिखाई पड़ने वाला घटनाक्रम यथार्थ मालूम पड़ता है। देखते समय दु:ख-सुख भी होता है। यदि यथार्थ में सन्देह होता तो कई बार मुख से कुछ शब्द निकल पड़ना, स्वप्नदोष आदि हो जाने की बात क्यों होती? जागने पर स्पष्ट हो जाता है कि जो सपना देखा गया था उसमें यथार्थ कुछ भी नहीं था। केवल कल्पनाओं की उड़ान को निद्रित मस्तिष्क ने यथार्थता अनुभव कर लिया। उतने समय की मूर्छित मन:स्थिति अपने को भ्रम-जंजाल में फँसाये रहकर वे सिर-पैर की उड़ानों में उड़ाती रही।

अंधेरे में झाड़ी भूत जैसी लगती है, रस्सी का टुकड़ा साँप प्रतीत होता है, मरीचिकाएँ थल में जल का और जल में थल का भान करती हैं। यथार्थता से सर्वथा भिन्न अनुभूतियों का होना कोई अनहोनी बात नहीं है। आकाश में बहुत ऊँचे उड़ने वाले वायुयान छोटे पक्षी जैसे लगते हैं। पृथ्वी की अपेक्षा लाखों गुने बड़े और अपने सूर्य से हजारों गुने अधिक चमकदार तारागण नन्हे से दीपक की तरह टिमटिमाते दीखते हैं। क्या यह सारे दृश्य यथार्थ में वैसे ही हैं जैसे कि आँखें हमें अनुभव कराती है?

आँखों की तरह ही अन्य इन्द्रियों की बात है। वे एक सीमा तक ही वस्तुस्थिति का ज्ञान कराती हैं और जो बताती जताती हैं, उसमें से भी अधिकांश भ्रान्त होता है। बुखार आने पर गर्मी की ऋतु में शीत का और शीत में गर्मी का अनुभव होता है। मुँह का जायका खराब होने पर हर चीज कड़ुई लगती है। जुकाम हो जाने पर चारों ओर बदबू का अनुभव होता है। पीलिया रोग होने पर आँखें पीली हो जाती हैं और हर चीज पीले रङ्ग की दिखाई पड़ती है। क्या यह अनुभूतियाँ सही होती हैं ?

जिस वस्तु का जैसा स्वाद प्रतीत होता है, वह वास्तविक नहीं है। यदि ऐसा होता तो मनुष्य को जो नीम के पत्ते कड़ुए लगते हैं, वे ऊँट को भी वैसे ही क्यों न लगते, वह उन्हें रुचिपूर्वक स्वादिष्ट पदार्थों की तरह क्यों खाता? खाद्य पदार्थों का स्वाद हर प्राणी की जिह्वा से निकलते रहने वाला अलग-अलग स्तर के रसों तथा मुख के ज्ञान-तन्तुओं की बनावट पर निर्भर होता है। भोजन मुँह में गया, वहाँ के रसों का संमिश्रण हुआ और उस मिलाप की जैसी कुछ प्रतिक्रिया मस्तिष्क पर हुई उसी का नाम स्वाद की अनुभूति है। खाद्य पदार्थ की वास्तविक रासायनिक स्थिति इस स्वाद अनुभूति से सर्वथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भिन्न है। जो कुछ चखने पर अनुभव होता है वह यथार्थता नहीं है।

शरीर विज्ञानी जानते हैं कि काया का निर्माण अरबों-खरबों कोशिकाओं के सम्मिलन से हुआ है। उनमें से प्रतिक्षण लाखों मरती हैं और नई उपजती हैं। यह क्रम बराबर चलता रहता है और थोड़े ही दिनों में कुछ समय पूर्व वाली समस्त कोशिकाएँ मर जाती हैं और उनका स्थान नया ग्रहण कर लेती हैं। इस तरह एक प्रकार से शरीर का बार-बार काया-कल्प होता रहता है। पुरानी वस्तु एक भी नहीं रहती उसका स्थान नये जीव कोष ग्रहण कर लेते हैं। देह के भीतर एक प्रकार श्मशान जलता रहता है और दूसरी ओर प्रसूति गृह में प्रजनन की धूम मची रहती है। इतनी बड़ी हलचल का हमें तनिक भी बोध नहीं होता और लगता है देह जैसी की तैसी रहती है। जिन इन्द्रियों के सहारे हम अपना काम चलाते हैं, उनमें इतना भी दम नहीं होता कि बाहरी वस्तुस्थिति बनाना तो दूर अपने भीतर की इतनी महत्वपूर्ण हलचलों का तो आभास दे सकें। ऐसी इन्द्रियों के आधार पर यथार्थ जानकारी का दावा कैसे किया जाय? जिस मस्तिष्क को अपने कार्य क्षेत्र-शरीर के भीतर होने वाले रोगों में क्या स्थिति बनी हुई है, इतना तक ज्ञान नहीं है और घर की बात को बाहर वालों से पूछना पड़ता है। वैद्य-डाक्टरों का दरवाजा खट-खटाना पड़ता है, उस मस्तिष्क पर यह भरोसा कैसे किया जाय कि वह इस ज्ञान को वस्तुस्थिति में हमें सही रूप में अवगत करा देगा।

ज्ञान जीवन का प्राण है। पर वह होना यथार्थ स्तर का चाहिए। यदि कुछ का कुछ समझा जाय उल्टा देखा और जाना जाय। भ्रम और विपर्यय हमारी जानकारियों का आधार बन जाय तो समझना चाहिए वह ज्ञान प्रतीत होने वाली चेतना वस्तुत: अज्ञान ही है। उसमें जकड़े रहने पर हमें विविध-विधि त्रास ही उठाने पड़ेंगे, पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ेंगी। इसी स्थिति को माया कहते हैं। माया कोई बाहरी संकट नहीं मात्र भीतरी भ्रान्ति भरी मन:स्थिति ही है, यदि उसे सुधार लिया जाय, तो समझना चाहिए माया के बन्धनों से मुक्ति मिल गई। यह मुक्ति वस्तुत: हर किसी के करतलगत है।

माया अथवा भ्रम का निमित्त अपरिष्कृत मन:चेतना

अमेरिका के कुछ वैज्ञानिकों ने एक परीक्षण के लिए किसी व्यक्ति को आपरेशन टेबल पर लिटाया और उसे कुछ मिनटों के लिए सम्मोहित कर सुला दिया, जब वह सम्मोहन अवस्था में सो रहा था तो उसके गले पर एक छुरी चुभाई गई। उससे खून की एक बूँद छलक पड़ी। इसके बाद ही वैज्ञानिकों ने उसकी सम्मोहन निद्रा तोड़ दी और जगा दिया। यह सारा प्रयोग कुछ ही मिनटों में हो गया था और जितने समय तक वह व्यक्ति सोया वह तो कुछ ही सैकेण्ड थे। उन कुछ ही सैकेण्डों में उस व्यक्ति ने एक लम्बा सपना देख लिया था।

डा. रोशे ने उस स्वप्न का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इन कुछ ही सैकण्डों में उस व्यक्ति ने एक आदमी की हत्या कर दी थी। वह महीनों तक लुकता-छुपता रहा था। अंतत: पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। उस पर हत्या का मुकदमा चला-मुकदमे का फैसला होने में दो ढाई साल लगे-जज ने उसे मृत्यु दण्ड की सजा सुनाई और उसे जब फाँसी के तख्ते पर चढ़ाया गया तभी उसी क्षण नींद खुल गयी।

वैज्ञानिकों का कहना था कि इस प्रयोग में वह व्यक्ति पाँच-सात सैकण्ड ही सोया था और इस अवधि में उसके लिए वर्षों का घटना क्रम गुजर गया। यह प्रयोग आइंस्टीन के समय सिद्धान्त की सत्यता जाँचने के लिए किया जा रहा था। जिसके अनुसार समय का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है। दो घटनाओं के बीच की दूरी मात्र है जो कुछ भी हो सकती है, परन्तु मनुष्य को अपने ज्ञान व अनुभूति के आधार पर ही लम्बी अथवा छोटी लगती है।

तो क्या सचमुच समय कुछ भी नहीं है? सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक २४ घण्टे होते हैं। इन चौबीस घण्टों में हम कितने ही काम करते हैं। घड़ी अपनी चाल से चलती है, सूर्य अपनी गति से क्षितिज के इस पार से उस पार तक पहुँचता है। सब कुछ तो स्पष्टत: प्रतीत होता है परन्तु आइन्स्टीन के अनुसार यह सब एक भ्रम मात्र है फिर तो सारा संसार ही भ्रम मात्र हो जायेगा।

वस्तुत: सारा संसार ही एक भ्रम है। वेदान्त दर्शन के अनुसार सारा जगत ही मायामय है। माया अर्थात् जो नहीं होने पर भी होता दिखाई दे। जिसका अस्तित्व नहीं है परन्तु भासित होता है। शंकराचार्य ने इस माया की परिभाषा करते हुए कहा है—''**माया यथा जगत्सर्वमिदं प्रसूयतो**'' अर्थात्-वही माया है जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।

आइन्स्टीन से पहले इन्द्रिय बुद्धि द्वारा होने वाले अनुभवों और प्रत्यक्ष जगत् को ही सत्य समझा जाता था। इसके पूर्व के वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि आप दौड़ रहे हों अथवा बैठे हों, जाग रहे हों या सोये हुए हों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समय अपनी सीधी बँधी रफ्तार से बराबर आगे बढ़ता है। परन्तु आइन्स्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त ने इस मान्यता को छिन्न-भिन्न कर दिया है और यह सिद्ध हो गया है कि समय कुछ घटनाओं का जोड़ भर है। यदि घटनायें न हों तो समय का कोई अस्तित्व नहीं होता और घटनायें भी दृष्टा की अनुपस्थिति में अस्तित्व हीन होती हैं।

इस बात को कतिपय उदाहरणों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। समय को मापने का सबसे बड़ा माप दण्ड घड़ी है। घड़ी में सेकण्ड का काँटा १२ से चलकर १२ तक पहुँचने पर, एक मिनट होता है, मिनट का काँटा इतनी दूरी तय कर लेता है तो मान लिया जाता है कि एक घण्टा हो गया और घण्टे का काँटा इतनी दूरी तय कर लेने पर आधा दिन आधी रात बता देता है अर्थात् १२ से १२ तक दूसरी बार पहुँचने पर २४ घण्टे या दिन पूरा हुआ मान लिया जाता है। आइन्स्टीन का कहना था कि घड़ी के काँटे की गति बढ़ा दी जाय तो यही २४ घंटे ३६ घण्टे में भी बदल सकते हैं और कम कर दी जाय तो २० या उससे भी कम, चाहे जितने हो सकते हैं। अर्थात् यह बात बेमानी है कि दिन २४ घण्टे का होता है अथवा उससे कम ज्यादा का।

इसी अनुसार घड़ी का यह समय विभाजन पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेने वाली घटना को आँकने के लिये किया गया। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पृथ्वी एक बार सूर्य की परिक्रमा कर लेती है तो २४ घंटे हो जाते हैं। लेकिन चन्द्रमा सूर्य की परिक्रमा करने में इससे भी अधिक समय लगाता है, मंगल उससे भी अधिक और शुक्र उससे भी अधिक तो पृथ्वी के २४ घण्टों में चन्द्रमा, मंगल या शुक्र का एक दिन नहीं होता है। वहाँ इससे अधिक समय में दिन-रात होता है। अर्थात् वहाँ के लिए दूसरे समय मापदण्ड निर्धारित करने पड़ेंगे।

आइन्स्टीन के अनुसार समय इसी प्रकार घटनाओं पर निर्भर करता है। सोये हुए व्यक्ति के लिए बाहरी जगत में भले ही पाँच मिनट का समय व्यतीत हुआ हो परन्तु वह जो स्वप्न देख रहा होता है, उसमें उन पाँच मिनटों के भीतर वर्षों की घटनायें घटित हो जाती हैं तो उसके लिए पाँच मिनट बीत गये यह कहना सही होगा अथवा यह कहना सही होगा कि वर्षों बीत गये।

यह व्यक्ति के अपने बोध (परसिप्शन) पर निर्भर करता है कि समय कितनी तेजी से अथवा धीमी गति से बीत रहा है। घटनाओं के अतिरिक्त समय का अस्तित्व दृष्टा के बोध पर भी आधारित है। कई बार लगता है कि समय बिताये नहीं बीतता। दूर स्थान से अपने किसी अति आत्मीय स्वजन का दुःखद समाचार आया हो और वहाँ पहुँचना हो तो गाड़ी आने में दस मिनट की देरी भी घण्टों-सी लगती है क्योंकि व्यक्ति उस समय तनावग्रस्त, उद्विग्न मनःस्थिति में रहता है लेकिन किसी सुखद समारोह में भाग लेते समय, विवाह शादी के अवसर पर यह पता भी नहीं चलता कि समय कब बीत गया? उस समय व्यक्ति की बोध शक्ति, चेतना पूरी तरह तन्मय हो जाती और समय भागता-सा प्रतीत होता है।

इसके अनुसार एक मच्छर का कुछ घण्टों का जीवन भी उसके अपने लिए मनुष्य की पूरी आयु ७०-८० वर्षों के बराबर होता है। इतनी अवधि में ही वह बच्चा, जवान, बूढ़ा, सब कुछ हो जाता है और हमारे अनुसार थोड़-से घण्टों तथा उसके अपने अनुसार सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु पूरी कर मर भी जाता है। इसका कारण प्रत्येक जीव-जन्तु की अलग-अलग बोध शक्ति है और उसी के अनुसार समय सिमटता या फैलता है।

घटनाओं और बोधशक्ति के अतिरिक्त सापेक्षतावाद के अनुसार समय की चाल गति पर भी निर्भर करती है। आइन्स्टीन ने सन् १९०४-५ में सापेक्षता का यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि गति का न केवल समय पर वरन् जगह पर भी प्रभाव पड़ता है। उनके अनुसार गति जितनी बढ़ेगी समय की चाल भी उतनी ही घटती जायेगी। उदाहरण के लिए एक अन्तरिक्ष यान प्रकाश की गति के अर्थात् एक लाख छियासी हजार मील प्रति सैकण्ड की गति से चलता हो, तो उसमें बैठे व्यक्ति के लिए समय की चाल एक बटा सत्तर हजार हो जायेगी। अर्थात् प्रकाश की गति से चलने वाले यान में बैठकर कोई व्यक्ति नौ प्रकाश वर्ष (नौ वर्ष में प्रकाश एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकण्ड के हिसाब से जितनी दूरी तय कर सकता है) दूर स्थित किसी तारे पर जाये और वहाँ से तुरन्त लौट पड़े तो इस यात्रा में अठारह वर्ष लगेंगे। लेकिन उस यान में बैठे व्यक्ति के लिए यह समय अठारह वर्ष का सत्तर हजारवाँ भाग अर्थात् सवा दो घण्टे ही होगा।

ऐसा भी नहीं है कि पृथ्वी पर भी सवा दो घण्टे ही बीतेंगे। पृथ्वी पर तो वही अठारह वर्ष ही व्यतीत होंगे। उस व्यक्ति के सगे-सम्बन्धी भी अठारह वर्ष बूढ़े हो चुकेंगे। जिन बच्चों को वह १२-१३ वर्ष का छोड़ गया होगा वे ३०-३१ वर्ष के हो चुकेंगे। उसकी पत्नी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो उससे २ वर्ष छोटी ३५ वर्ष की रही होगी वह बूढ़ी हो चुकेंगी। किन्तु वह व्यक्ति जिस आयु और जिस स्थिति में गया होगा उसी आयु तथा उसी स्वास्थ्य का रहेगा। यानी उसकी आयु सवा दो घण्टे ही बीती होगी। यह भी कहा जा सकता है कि वह अपनी पत्नी से आयु में सोलह वर्ष छोटा हो जायेगा।

यह बात पढ़ने-सुनने में अनहोनी लगती है कि कोई व्यक्ति १८ वर्ष बाहर रहकर आये और जब लौटे तो ऐसे मानो कुछ घण्टे ही बाहर रहा हो। उसके चेहरे और शक्ल में भी कोई परिवर्तन न आये। उसे देखकर कोई यह भी न कह पाये कि इस बीच वह १८ वर्ष और बड़ा हो चुका है। लेकिन आइन्स्टीन ने प्रमाणों और प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है। सापेक्षता के इस सिद्धान्त को 'क्लाक पैराडाक्स' (समय का विरोधाभास) कहा गया है।

यद्यपि अभी कोई ऐसा यान बन नहीं सका है, जिसके द्वारा की गयी यात्रा से इस सिद्धान्त की सचाई को अनुभूत किया जा सके। परन्तु समय विरोधाभास के जो समीकरण आइन्स्टीन ने दिये उनके अनुसार अमेरिका के भौतिक शास्त्री जोजफ हागले और खगोलशास्त्री रिचर्ड किटिंग ने १९७१ में दो बार प्रयोग किये। उन्होंने अपने साथ चार परमाणु घड़ियाँ लीं। स्मरणीय है परमाणु घड़ी सेकण्ड के खरबवें हिस्से तक का समय सही-सही बता देती हैं। इन घड़ियों को लेकर उन्होंने सर्वाधिक तीव्र गति से उड़ने वाले यान द्वारा पृथ्वी की दो बार परिक्रमा लगायी। हाफले और कीटिंग ने भूल-चूक से बचने के लिए हर तरह की सावधान बरती थी। प्रयोग पूरा करने के बाद उन्होंने पाया कि तीव्र गति के कारण परमाणु घड़ियों ने अन्तर बता दिया। वैज्ञानिकों ने घोषित किया कि आइन्स्टीन का क्लॉक पैराडाक्स सिद्धान्त सही था।

इस सिद्धान्त के अलावा घटनाओं और बोध पर निर्भर समय गति का सिद्धान्त तो पहले ही सिद्ध हो चुका है। सापेक्षता के ये समस्त सिद्धान्त वेदान्त की मूल मान्यताओं का समर्थन करते हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार यह विश्व और कुछ नहीं घटनाओं का जोड़ मात्र तथा घटनायें व्यक्ति की बोध, शक्ति, संकल्प चेतना का ही प्रतिफल हैं। विराट् ब्रह्म के संकल्प से, उसकी उपस्थिति मात्र से यह मायामय संसार उत्पन्न हुआ। मनुष्य यदि चाहे तो वह इस माया से मुक्त हो सकता है और सत्य का दर्शन कर सकता है। बशर्ते कि हम पहले से बनी बनायी घटनाओं को वस्तु जगत पर थोपना बन्द कर दे। तत्वदर्शियों ने इसी को साक्षी भाव की सिद्धि कहा है।

अन्तिम सिद्धान्त समय 'विरोधाभास' के अनुसार मायावाद की और पुष्टि हो जाती है, जिसमें व्यक्ति को असंग भाव के कर्म करने की प्रेरणा दी गयी है। उस स्थिति को प्राप्त हुए बिना अन्तिम सत्य का पता लगाया ही नहीं जा सकता क्योंकि समय का बोध (आब्जेक्टिव टाइम) निरन्तर भ्रमित स्थिति बनाये रखता है। जैसे पृथ्वी ही सूर्य की परिक्रमा करती है परन्तु दिखाई यह देता है कि सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा है। चलती हुई रेलगाड़ी में से दूर तक देखने पर पेड़, वृक्ष टीले और पृथ्वी ही दौड़ती दिखाई देती है। उसी प्रकार सीमाबद्ध, अस्तित्व में ये सारी भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

इन सब घटनाओं का साक्षी रहने वाला मायामुक्त अस्तित्व पहचाना जा सके तो वस्तुस्थिति का ज्ञान सहज ही हो सकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मायामुक्त हो जाने से व्यक्ति अकर्मण्य, निष्क्रिय होकर बैठ जायेगा। सत्य की प्राप्ति कभी किसी क्षेत्र में अनर्थ नहीं करती। सत्य का ढोंग ही अनर्थ करता है। जब यह अनुभव हो जायेगा कि वस्तुतः तो यह सभी संसार एक क्रीडांगन है जहाँ एक ही चेतन सत्ता खेल रही है। यह जगत् अभिनयमय है, जहाँ प्रत्येक जीवात्मा को अपनी योग्यता प्रमाणित करने के लिए भेजा गया है तो अधिक प्रखरता से कर्म साधना हो सकेगी। प्राचीनकाल में ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि से, साधना उपासना से इस भ्रम-जाल, मायामय संसार के सत्य को पहचाना था। विज्ञान भी अब उसी बिन्दु की ओर पहुँच रहा है। इसमें कोई संशय नहीं है कि सत्य को प्राप्त करने के लिए सच्ची लगन और जिज्ञासा से किसी भी क्षेत्र में प्रयास किया जाय अन्ततः पहुँचना एक ही बिन्दु पर होता है।

चित्तवृत्तियाँ सधें तो क्षमताएँ जगें

जो कुछ प्रत्यक्ष दिखा देता है, वही कम विलक्षण नहीं है। प्रत्यक्ष चेतन मस्तिष्क की उपलब्धियाँ ही चमत्कारी होती हैं। विद्वान, लेखक, वैज्ञानिक, कलाकार, दार्शनिक, व्यवसायी, कुशल राजनेता और सफल उद्योगपति अपने कुशल मस्तिष्क के आधार पर ही सफलता प्राप्त करते हैं। अपनी मस्तिष्कीय प्रतिभा से वह स्वयं का और दूसरों का कितना हित साधन करते हैं? यह किसी से छिपा नहीं है। इस प्रत्यक्ष और चेतन मस्तिष्क से भी अधिक रहस्यपूर्ण अचेतन मस्तिष्क है। अभी मनोविज्ञानी इस मस्तिष्क के क्रियाकलापों का केवल सात प्रतिशत भाग ही जान पाए हैं। शेष तो अज्ञात ही पड़ा है और जितना कुछ जाना जा सका है, वही इतना विलक्षण तथा रहस्यपूर्ण है, उसके आधार पर मानव को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिमानव और उसे विलक्षण शक्तियों से सम्पन्न करने की बात सोची जा रही है।

मन:शास्त्रियों के अनुसार चेतन की अपेक्षा अचेतन ही बहुत अधिक बलवान और समर्थ है। शरीर यात्रा की स्वसंचालित गतिविधियों के संचालन, नियंत्रण तथा परिवर्तन इस अचेतन मस्तिष्क द्वारा ही होता है। मनुष्य की अभिरुचि, प्रवृत्ति और आदत बहुत कुछ इसी अचेतन मस्तिष्क में जड़ें जमाये बैठी रहती हैं। मोटे तौर पर अभी इतना ही कुछ जाना समझा जा सका है। पर अब इस संबंध में मैटाफिजिक्स, परामनोविज्ञान, अतीन्द्रिय विज्ञान आदि कितने ही विज्ञान की धाराएँ आरम्भ हुई हैं और इन धाराओं में अचेतन मस्तिष्क के बारे में खोजबीन शुरू की है, उनसे निष्कर्षत: यह पाया गया है कि यह संसार का सबसे अधिक रहस्यमय, अद्भुत और शक्तिशाली यंत्र है।

इस दिशा में होती जा रही नई-नई खोजों के आधार पर यह कहा जा रहा है कि चेतन मस्तिष्क को शिथिल करके इच्छाशक्ति, प्राणशक्ति को यदि अचेतन का विकास करने में लगाया जा सके तो व्यक्ति अपने शरीर और व्यक्तित्व में कायाकल्प जैसा परिवर्तन कर सकता है, वह अति दीर्घजीवी हो सकता है, अदृश्य जगत का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और उसमें चल रही हलचलों को मंद, शिथिल एवं परिवर्तित कर सकता है। इन संभावनाओं को भारतीय ऋषि-महर्षि न जाने कब से योग साधना द्वारा प्रत्यक्ष करते रहे हैं और उन्हें प्रत्यक्ष तथा प्रमाणित करने की अब भी पूरी गुँजाइश है, क्योंकि वह एक विज्ञान है जो प्रकृति के रहस्यों को अपने ढंग से सुलझाने में सुनिश्चित निष्कर्ष तक काफी समय पहले पहुँच चुका है। इन नियमों के अनुसार कोई व्यक्ति यदि अभी भी प्रयत्न करे तो उन नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर अभी भी इन संभावनाओं को साकार किया जा सकता है।

योग विज्ञान का मूल सिद्धान्त चित्तवृत्तियों का निरोध है। अर्थात् मस्तिष्क की आत्यंतिक सक्रियता को नियंत्रित करके उसकी चेतना शक्ति के अपव्यय को बचा लेना और उस बचे हुए अचेतन प्राण-प्रवाह को अचेतन के विकास में नियोजित कर देना। निस्संदेह यह एक पूर्ण विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है और इसके लाभ अलौकिक उपलब्धियों के रूप में देखे जा सकते हैं। समाधि की स्थिति में पहुँचा हुआ व्यक्ति जब चितवृत्तियों को पूरी तरह चेतना में लय कर देता है, इस स्थिति में त्रिकालदर्शी और विश्व की जड़ चेतन सत्ता को प्रभावित करने में समर्थ बन सकता है, इसमें न तो कोई आश्चर्य जैसी बात है और न ही यह कोई असंभव कल्पना है।

मनुष्य ऐसी कई अद्भुत क्षमताओं से वंचित है, जो विश्व के अगणित जीव-जंतुओं को प्राप्त हैं, इसका एक ही कारण है कि मनुष्य का केन्द्रीय स्नायु-संस्थान अतिशय सक्रिय है। इस अतिशय सक्रियता के कारण मानवी चेतन ऊष्मा अचेतन को दबा देती है और उससे शरीर-संचालन तथा अन्य मस्तिष्कीय गतिविधियाँ पूरी हो जाती हैं। वह ऊष्मा जो अचेतन को सक्रिय कर उससे अलौकिक और अद्भुत प्रयोजन पूरे करा सकती थी। एक प्रकार से कुंठित ही पड़ी रहती है। मनुष्य की अधिकांश शक्तियाँ चेतन मस्तिष्क को ही सार्थक रखने में खप जाती हैं इसलिये वह उन अलौकिक क्षमताओं से वंचित रह जाता है, जो अन्यान्य जीव-जंतुओं को प्राप्त रहती हैं। स्पष्ट है कि जीव-जन्तु बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े रहते हैं उनका चिन्तन और चेतन शिथिल रहता है। इसका लाभ उनके अचेतन को मिलता है और वे योगियों जैसे कितने ही अद्भुत कार्य कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए कुत्तों की घ्राण शक्ति इतनी सूक्ष्म होती है कि वे व्यक्तियों के शरीर की गंध पहचान लेते हैं। उसी गंध के आधार पर भीड़-भाड़ में भी अपने मालिक को पहचान लेते हैं। दोषी और अपराधियों को पकड़वाने में प्रशिक्षित कुत्ते अपनी घ्राण शक्ति के कारण ही सफल होते हैं। जिस आधार पर वे चोरी का, चोरों का या अपराधी का पता लगाते हैं, वह उनके अधिक विकसित अचेतन मस्तिष्क से संबंधित घ्राण शक्ति ही होती है। चमगादड़ के ज्ञान-तंतु राडार क्षमता से सम्पन्न होते हैं, इस क्षमता के आधार पर वे विभिन्न वस्तुओं से निकलने वाली रेडियो तरंगों को भली भाँति पहचान लेते हैं और घोर अंधकार में अपने आस-पास की वस्तुओं का स्वरूप एवं स्थान समझकर बिना किसी से टकराये उड़ते रह सकते हैं। समुद्री मछली टार्पीस्किन अपने शरीरों से एक प्रकार की रेडियो तरंगें निकालती है। पानी के भीतर ही वे दूर तक फैलती हैं और इस क्षेत्र के जीव-जन्तुओं से टकराकर उसी के पास वापस लौट जाती हैं। उनका अचेतन मस्तिष्क क्षण भर में यह जान लेता है कि कौन जीव, किस आकृति का, कितना दूर है? उसी आधार पर वह अपने बचाव तथा आक्रमण की योजनाबद्ध तैयारी करती है।

जीव विज्ञानियों की मान्यता है कि कई जीव-जन्तुओं के अचेतन मन ने अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार अपने शरीर में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न करली हैं, जो आरम्भ में नहीं थीं। मेढ़क की आँखें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

पहले वैसी नहीं थीं। जैसी अब हैं। उनसे बहुत बाद में जल में प्रवेश करने पर गोताखोरों की तरह आँखों पर चढ़ाया जा सकने वाला विशेष प्रकार के चश्मे जैसा, आवरण विकसित किया है। रावन प्लांट और ग्रेट मूलर पौधों ने पशुओं द्वारा चरे जाने से अपनी रक्षा के लिये नोंकदार काँटे विकसित किये हैं। तितलियों के बच्चे और रेशम के कीड़े अपने शरीर से रस निकालकर उस पर पत्तियाँ चिपका देते हैं और आत्म रक्षा की सुविधा उत्पन्न करते हैं। ये उदाहरण पशु-पक्षियों में पायी जाने वाली अपरिमित सामर्थ्य के हैं।

पशु-पक्षियों का जीव-जन्तुओं से यह सब क्रिया-कलाप कौन संपन्न कराता है? स्पष्ट ही वे क्रियाकलाप इन छोटे जीव-जन्तुओं का अचेतन मन ही कराता है। यदि अचेतन मन की सामान्य शक्तियों को चेतन मस्तिष्क की उत्तेजित ऊष्मा द्वारा नष्ट न किया जाय तो अन्य जीवों की तुलना में हजारों गुना अधिक विकसित मानवीय मस्तिष्क इतनी अधिक दिव्य विशेषताएँ अर्जित कर सकता है जितने में कि समस्त जीव-जन्तुओं की सम्मिलित अचेतन सत्ता से भी संभव नहीं हो सके।

योगी योग साधना द्वारा चेतन मस्तिष्क की अनावश्यक सक्रियता में नष्ट होने वाली ऊर्जा, को रोककर अचेतन को समर्थ बनाने में प्रयुक्त करते हैं। इस संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता है कि योग साधना विद्या-विलास या बौद्धिक विकास पर प्रतिबंध लगाती है। उसमें मानसिक उत्कर्ष, विद्याध्ययन, कला-कौशल और ज्ञानार्जन की पूरी छूट है। प्रतिबंध है तो केवल इस बात पर कि मनःक्षेत्र को उत्तेजित, विक्षुब्ध एवं अशांत न होने दिया जाय।

इस चरण में एकाग्रता का अभ्यास करना पड़ता है। मन में उठने वाले विभिन्न संकल्पों को रोककर उसे केन्द्र पर स्थिर रखने का अभ्यास करना पड़ता है। इस एकाग्रता को आगे बढ़ाते हुए चित्त को जाग्रत अवस्था में ही संकल्पपूर्वक लय कर देने का नाम समाधि है इसके लिये प्रत्याहार ध्यान धारणा की भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं। इन साधनाओं के द्वारा सचेतन बुद्धि-संस्थान की चिन्तन और संकल्प क्षमता को शिथिल करके, वहाँ लगे हुए चेतन को जब अचेतन के साथ जोड़ दिया जाता है तो उसकी वे दिव्य क्षमताएँ जाग्रत और सक्षम होना आरम्भ हो जाती हैं, जो अद्‌भुत, अनुपम और चमत्कारी ही कही जा सकती हैं। इस दिशा में जो जितनी सम्पन्नता प्राप्त कर लेता है वह उतना ही समर्थ और सिद्ध पुरुष बन जाता है।

आत्मिक ऊर्जा उत्पादन के लिए अनवरत संघर्ष

जीवन का चिन्ह है, ऊष्मा। शरीर जीवित है या मृतक इसकी मोटी किन्तु सुनिश्चित पहचान है शरीर का गर्म रहना। यदि वह पूरी तरह ठण्डा हो जाय तो समझना कि मृत्यु की सुनिश्चित स्थिति आ गई। इतना बड़ा शरीर तन्त्र एक अच्छा खासा इन्जन है। जब तक वह गर्म है, तब तक उसमें गति की सम्भावना है पर जब ठण्डा हो जाय तो लोह का एक टीला—कवाड़ा मात्र है। वह किसी दूसरे भार या डिब्बे को लेकर तो पीछे चलेगा, पहले अपनी स्थिरता तो बनाये रहे। जंग लगेगी, पुर्जे एक-दूसरे के साथ चिपक जायेंगे और बहुत दिनों तक ठण्डा पड़ा रहने के उपरान्त तो एक प्रकार उसका फिर से संशोधन करना पड़ेगा। शरीर के बारे में तो सो बात भी नहीं है। वह एक बार ठण्डा हुआ तो सदा के लिए उसका अन्त समझना चाहिए। गर्मी से ही उसके छोटे-बड़े कल-पुर्जे चलते है। यह गर्मी ही जीवन है। इसी को प्राण कहते हैं। देखना यह है कि यह गर्मी आखिर आती कहाँ से है। काया में ही नहीं संसार भर में उसका मूल उद्‌गम गति है। दूसरे शब्दों में इसे संघर्ष भी कहते हैं। गति से जो हलचल उत्पन्न होती है, उसी की परिणति ऊष्मा है। सूर्य यदि स्थिर रहता तो कबका ठण्डा हो गया होता। समुद्र-मन्थन से चौदह रत्न निकले थे। नर और नारी के प्रजनन अंग ऐसी ही घर्षण क्रिया में निरत होते हैं और एक आत्मा भ्रूण बनकर गर्भाशय में जा विराजती है। वहाँ वह कलल इतना तीव्र और इतना अधिक संघर्ष करता है जिसकी तुलना नहीं। मनुष्य जन्म का भौतिक इतिहास यही है।

जीवित रहने और प्रगति पथ पर अग्रसर होने, पुरुषार्थ क्षमता अर्जित करने के लिए प्रकृति प्रदत्त प्राण ऊर्जा मे ही काम नहीं चल जाता उसे स्थिर रखने और बढ़ाने के लिए मनुष्य को निजी प्रयत्न भी करने पड़ते हैं। जीवन-संघर्ष इसी का नाम है। संघर्षशील समर्थ रहते हैं और जिनने उसमें आलस-अनख माना वे स्वयंमेव गल जाते है। मृतक शरीर को खाने के लिए गिद्ध, कौए, कुत्ते, शृंगाल आदि तो फिरते ही रहते हैं। वे न आये तो माँस स्वयं सड़ने लगता है और उससे उत्पन्न हुए कीड़े स्वयं ही उसे खा पीकर बराबर कर देते हैं।

जीवन में ऊर्जा कैसे बनी रहे सामान्यतया तो निर्वाह साधन एकत्रित करने के लिए किया जाने वाला श्रम ही बहुत काम दे जाता है पर आन्तरिक प्राण ऊर्जा उत्पादित करने के लिए अवांछनीयता के प्रति संघर्ष भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना होता है। साधना का दूसरा नाम 'समर' है। भगवान के जितने भी अवतार हुए हैं। सभी ने अधर्म के विरुद्ध संघर्ष किया और कराया है। योगी, तपस्वियों, महामानवों की जीवनचर्या में भी संघर्ष अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। इसे वे धर्मयुद्ध कहते हैं। तप-साधना भी यही है। उच्चस्तरीय शक्ति का उत्पादन और अभिवर्धन इसी आधार पर सम्भव होता है। यह आध्यात्मिक पराक्रम एवं पुरुषार्थ प्रत्येक आत्मवान के लिए अनिवार्य है। गीताकार का एक ही लक्ष्य है—महाभारत के निमित्त संग्राम। राम ने विश्वामित्र यज्ञ रक्षा से लेकर खर-दूषण वध और लंका-दहन तक की प्रक्रिया में अपनी अधिकांश सामर्थ्य नियोजित रखी। अन्य अवतार और महामानव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से यही करते रहे हैं। यही करना होता है।

यह इतिहास गाथा का वर्णन नहीं है। प्रत्येक जीवन्त व्यक्ति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक प्रक्रिया है, जिसे अपनाये बिना कोई चारा नहीं। अर्जुन की भाँति इस धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में प्रत्येक आत्मवान भगवद् भक्त को लड़ना पड़ता है। जिसे वे प्राणप्रिय मानते हैं, उसे हनुमान की तरह इसी प्रयोजन में धकेल देते हैं।

सदा किससे लड़ा जाय? लड़ाई के अवसर तो यदा-कदा आते हैं पर जीवन संग्राम के सम्बन्ध में यह बात नहीं है, उसमें अहिर्निश लड़ना पड़ता है। यही तप है, यही योग है। यही साधना है यही परमार्थ एवं पुरुषार्थ है।

भगवान ने साधक को इसके लिए समुचित अवसर प्रदान किया है। उसकी व्यायामशाला अपने बालकों के लिए खुली ही रहती है। शिक्षक अपनों को अपनों से ही लड़ाते हैं। मल्लयुद्ध के लिए रोज बाहर के, रोज नये आदमी कहाँ से आयें। तैरना घर के तालाब में ही पड़ता है। विभिन्न प्रतिद्विन्द्वतायें- विभिन्न दाँव-पेच आपस में ही खींचने पड़ते हैं।

साधक के लिए तीन मोर्चे संग्राम के लिए हैं। सेना थल, जल और नभ आयुधों से सुसज्जित होती है और तीनों मोर्चों पर लड़ने का अभ्यास करती है। प्रवीणता प्राप्त करने वाले सेनापति का सम्मानास्पद पद प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिक धर्मयुद्ध के तीन मोर्चे हैं—वासना, तृष्णा और अहन्ता। इन्हीं को लोभ, मोह और औद्धित्य कहते हैं। वह लड़ने के लिए सदा चुनौती देते रहते हैं। छद्म रूप से इनका आक्रमण निरन्तर होता रहता है। सुरसा, ताड़का और सूर्पनखा की तरह इनका मायावी कुचक्र निरन्तर चलता रहता है। वस्तुस्थिति को देख और समझ पाना दूरदर्शियों का ही काम है। अदूरदर्शी इन्हीं की भूल-भुलैयों में भटकते और प्राण गँवाते रहते हैं।

आत्म-निरीक्षण की दिव्य दृष्टि आवश्यक है, इनका मायाचार देखने और समझने के लिए क्योंकि इनका सम्मोहन नागपाश ऐसा है, जिसमें बँधने वाले को उल्टा दीखता है। जल में थल और थल में जल प्रतीत होता है। हानि में लाभ और लाभ में हानि का भ्रम होता है। मृगतृष्णा और माया-मारीचिका में विभ्रमग्रस्त हिरनों को थकान-खीज और निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। पर वे आरम्भ में समझते हैं। विपुल लाभ का आनन्द अति निकट है।

वासना का सार संक्षेप है जिह्वा और जननेन्द्रियजन्य सब कुछ मानकर उन्हीं के लिए निरन्तर मरते-खपते रहना। उन्हीं के स्वादों का चिन्तन करना। जब भी अवसर मिले चासनी पर टूट पड़ने वाली मक्खी की तरह अपने पैर और पंख फँसाने में आनन्द ही आनन्द का अनुमान लगाते रहना। चटोरापन पेट को बिगाड़ता और दुर्बलता, रुग्णता एवं अकाल मृत्यु को न्यौत बुलाता है।

जननेन्द्रिय का स्वाद ऐसा ही है जैसे पेड़ में गड्ढे करके उसमें से गोंद निकालते रहना और उसे खोखला बनाकर स्वत्व विहीन कर देना। काम सेवन की अति अर्थात् मस्तिष्क का सारा तत्व को असमय में ही समाप्त करना। निरन्तर ऐसे स्वप्न देखते रहना, जिनकी पूर्ति का व्यावहारिक रूप कोई बनता ही नहीं। कामुकताजन्य कल्पनाएँ ऐसी हैं, जिन्हें शेखचिल्ली से अधिक उपहासास्पद दिवा स्वप्न देखना। मस्तिष्क पर छाये हुए उस उन्माद में मानवी मर्यादाओं का भी ध्यान नहीं रहता। माता, बहिन पुत्री के रिश्ते ही समाप्त हो जाते हैं, संसार की समस्त नारियाँ मात्र वेश्याएँ ही दीख पड़ती हैं।

वासना का विस्तार यों पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के साथ जुड़ी हुई कुत्सा से है पर संक्षेप में उसे जिह्वा और कामुकता भी समझा जाय तो इनके स्वाद ऐसे हैं, जिन्हें विषपान के समतुल्य ही समझा जा सकता है। कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है और अपने ही जबड़ों में निकलने वाले रक्त को चाटता हुआ अनुभव करता है कि सूखी हड्डी में षटरस व्यंजन भरे हुए हैं और वह किसी दूसरे का रक्तपान कर रहा है।

दूसरा आध्यात्मिक क्षेत्र का काम भी शत्रु-कांचन मृग मारीच है—तृष्णा का प्रलोभन। आवश्यकताएँ मुट्ठी भर और पाने को चाहना पहाड़ बराबर। कुबेर के समान सम्पत्ति बनाने-रावण जितना परिवार बढ़ाने की ललक निरन्तर लगी रहती है। हिरण्यकश्यपु और हिरणाक्ष की तरह इस संसार का सार-स्वर्ण-वैभव ही दीखता है। उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसे भी, जहाँ से भी जितना भी मिले एकत्रित किया जाय और उसे बुरे से बुरे दुर्व्यसनों में फुलझड़ी जलाने की तरह बर्बाद करते रहा जाय। यही है धन और परिवार की तृष्णा जो कितने ही साधन जुटा लेने पर भी तृप्त नहीं होती। सिकन्दर असीम सम्पदा का स्वामी था पर अपने को अतृप्त ही अनुभव करता रहा। इस प्रलोभन के लिए न जाने कितनों ने कितने प्रकार के कितनी मात्रा में कुकर्म किये पर आग में ईंधन डालने की तरह हविस बढ़ती गई। जब तक यह उन्माद छाया रहता है। व्यक्ति औचित्य और मर्यादा को पूरी तरह भूल जाता है।

हँसी की बात यह है कि मनुष्य की आवश्यकता मुट्ठी भर है। उसकी स्वभाविक और आवश्यक पूर्ति दो घण्टे के दैनिक श्रम से भली प्रकार पूरी हो सकती है। औसत भारतीय जितना निर्वाह परिश्रमपूर्वक कमाने की बात सोचने वाले को न कभी दरिद्र सताता है न आकांक्षा की आग चिता की तरह जलाती है। परिवार छोटा रखा जाय और हर सदस्य को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाया जाय तो पैसे जैसी कमी किसी को भी न प्रतीत हो, जिससे मानसिक शान्ति और नीति मर्यादा सभी कुछ गँवाना पड़े और पाप का भारी पोटला सिर पर लादकर चौरासी के चक्र में घूमना पड़े।

तीसरी जादूगरनी है—अहन्ता। मल-मूत्र का गड्ढा चमड़ी की चमकीली पन्नी चिपकी होने के कारण अपने रूप, बल और पद पर न जाने कितना इतराती है ? सज्जा-शृंगार में इतना पैसा और समय बर्बाद करता है कि उतने में विद्या का, परमार्थ का ईश्वर सान्निध्य का सन्तोषजनक उपार्जन हो सकता है। कीमती वस्त्र आभूषण, प्रसाधन लपेट पोतकर न जाने किसकी आँखों में धूल झोंकने किस पर रौब गाँठने का, किसे आकर्षित करने का प्रयत्न किया जाता है? जबकि सच बात यह है कि हर व्यक्ति अपनी ही समस्याओं में इतना उलझा है कि किसी अन्य को आँख खोलकर देखने भर की फुरसत नहीं है। सज-धज वाली बरात और सजा हुआ दुल्हा प्रदर्शन करके यह प्रयत्न किया जाता है कि नगर के सारे निवासी और सड़क पर चलने वाले दर्शक मात्र इसी मण्डली को देखते रहेंगे। मंत्र-मुग्ध होकर अपना भाग्य सराहेंगे। समझेंगे यही लोग संसार के सबसे बड़े अमीर हैं जो पैसे को कूड़े-कचरे की तरह उड़ाते रह सकते हैं। ईश्वर ही जाने यह कैसी विडम्बना है?

अभी अमीरी का ठाट-बाट दिखाकर जन-साधारण पर अपने अमीर होने की छाप छोड़ी जाती रही होगी। उन्हें पुण्यात्मा समझा जाता रहा होगा पर अब तो समय बिलकुल उलट गया। इन दिनों साम्यवाद की हवा बह रही है। जो अपनी अमीरी का जितना उद्धत प्रदर्शन करता है, उसे जितना ही बड़ा चोर ब्लेक मारकेटियर, जाल-साज माना जाता है। कहा जाता है कि जिसने जितना धन जमा किया है, वह उतना ही बड़ा समाजद्रोही है। किसी ने उचित ढंग से पैसा कमाया है तो उसके इस पिछड़े समाज को ऊँचा उठाने में लगाने के हजार उपाय हैं। प्रदर्शन में उसे क्या बर्बाद किया जाय? शृंगार-सज्जा विवेकवानों की दृष्टि में कामुकता ओछेपन एवं मनचले स्वभाव की पर्यायवाची बन गई है। कोई जमाना रहा होगा, जब सज-धज और प्रदर्शन को देखकर लोग आकर्षित होते और सराहना करते थे। आज तो ठीक उलटी स्थिति है, यह बातें जहाँ जितनी मात्रा में चरितार्थ होती हैं वहाँ उतनी ही घृणा बरसती है और ईर्ष्या पनपती है।

इन तीन अवांछनीयताओं के बदले समाज से संसार से हमें क्या मिला? इसका निष्कर्ष निकालने पर अन्तः पतन और दुष्प्रवृत्ति का सम्वर्धन ही प्रतिफल दृष्टिगोचर होता है। इस पतन और पराभव को जो लोग न्योता बुलाते हैं उनके लिए और कुछ कहा जाय या नहीं। नासमझ और अदूरदर्शी तो निश्चित रूप से कहना पड़ेगा।

संघर्ष इन तीन से ही करने का है। यह बाहरी नहीं, हैं तो भीतरी पर अदृश्य और मायामय होने के कारण इनसे लड़ना अति कठिन है। यह अवसर देख-देखकर हमला करते हैं। जब भी मनुष्य को तनिक-सा असावधान पाते है। तभी अपने अस्त्र-शस्त्र चला देते हैं। अतएव हर घड़ी सावधान रहना पड़ता है। सांसारिक युद्धों के कुछ कायदे, नियम और कारण है पर यह दुष्ट तो ऐसे हैं जो अब मन आता है बिजली की तरह टूट पड़ते हैं और किया-धरा सब कुछ चौपट करके रख जाते हैं।

अध्यात्म जीने वाले को प्रचण्ड शक्ति और अजस्र ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जिसके पास यह सम्पदा जितनी अधिक है वह उतना ही विभूतिवान है। इस उपलब्धि का एक ही मूल्य है। अन्तरंग को कलुषित करने वाली कुत्साओं का उन्मूलन।

देवत्व का अभिवर्धन-प्रवृत्तियों के शोधन से

व्यवहार विज्ञान पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। भारतीय मनोविज्ञान जहाँ अचेतन की बहिरंग में प्रतिक्रिया को व्यावहारिक मनोविज्ञान नाम देता है—संस्कारों एवं अभ्यासजन्य प्रवृत्तियों की कर्म में परिणति को अपना मुख्य सिद्धान्त मानता है। वहीं पाश्चात्य जगत के विद्वान पशु प्रवृत्तियों को ही मुख्य मानते हुए किसी भी संवेगात्मक अनुभूति को व्यवहार का मूल कारण ठहराता है। इसे उन्होंने 'स्वयंभू' प्रवृत्तियाँ (इंस्टिक्ट्स) कहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामान्य जीवधारियों में उनकी सहज वृत्तियाँ भूख, सुरक्षा और युवा होने पर विपरीत लिंगी साथी की आवश्यकता इन तीन के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटती रहती हैं प्रकृति प्रेरणा से वे यह कार्य सहज ही करते रहते हैं। उन्हें इनके पीछे किसी विशेष प्रयोजन का भान नहीं होता। प्रकृति ने भूख-प्यास, प्रजनन आदि की आवश्यकताओं में ऐसा आकर्षण पैदा करके रखा है कि मानव के अतिरिक्त प्रायः सभी प्राणी उस प्रवाह में अपने जीवन की इतिश्री कर देते हैं उनकी जीवनचर्या इसी परिधि के अन्तर्गत गतिशील रहती है, प्रकृति की सहज प्रेरणाओं से संचालित होती देखी जाती है। सामान्य मनुष्यों के क्रिया-कलाप भी इसी श्रेणी के होते हैं। उनके चिन्तन और कर्तृत्व में इन्हीं सहज क्रियाओं का ताना-बाना चलता रहता है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अनुसन्धानों से पता चलता है कि वस्तुतः जिन प्रवृत्तियों या क्रियाओं को 'मूल प्रवृत्तियाँ' कहा गया था वे सब स्थायी रूप से वैसी ही नहीं रहतीं, उनमें परिवर्तन भी सम्भव है। पहले यह समझा जाता था कि बिल्ली में चूहे को मारने की मूल प्रवृत्ति है इसलिए वह चूहों का शिकार अचूक ढंग से कर लेती है। किन्तु 'जेड. वाई. क्यो' महोदय ने अपने अनुसन्धानों से सिद्ध कर दिया है कि बिल्ली के जो बच्चे चूहों के साथ पाले जाते हैं और उन्होंने अपनी माता बिल्ली को चूहे मारते हुए नहीं देखा वे चूहों के साथ खूब खेलते एवं स्नेह प्रदर्शित करते हैं। इसका विवरण उन्होंने 'जर्नल ऑफ कम्पेरेटिव साइकोलॉजी' वाल्यूम २ में 'रिसपान्स टू दी रैट' नामक शीर्षक में प्रस्तुत किया था।

मूल प्रवृत्तियों के बारे में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों में कुछ मतभेद हो सकता है किन्तु एक तथ्य सभी स्वीकार करते हैं कि प्राणियों के जीवन के लिए विभिन्न आवश्यकतायें होती हैं उन्हीं के लिए वे चेष्टा करते हैं और पूर्ति होने पर तृप्ति या सन्तुष्टि अनुभव करते हैं उन्हें नाम चाहे जो भी दिया जाय। शरीर के लिए भोजन आवश्यक है। अस्तु भोजन की आवश्यकता पूर्ति सभी जीवधारियों को समान रूप से तृप्तिदायक होती है। पशु-पक्षियों एवं अन्य प्राणियों की आवश्यकताएँ दैहिक सुरक्षात्मक होती हैं बहुत से जीवधारी अपनी सुरक्षात्मक आवश्यकता के कारण ही सामूहिक रूप से झुण्डों में रहते और परस्पर मैत्री भावना रखते पाये जाते हैं।

मनुष्य को भी प्रारम्भ में सुरक्षा की आवश्यकता के लिए ही समूह में रहना पड़ा, इस सामूहिकता की भावना से वह विकसित होता चला गया और आज उसकी बौद्धिक क्षमताएँ उसी का परिणाम हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'मेस्लो' महोदय ने मनुष्य की आवश्यकताओं को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार मनुष्य के विकसित स्तर के साथ-साथ उसकी आवश्यकताओं का स्तर भी विकसित होता जाता है। उन्होंने कहा है कि 'शारीरिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ तो प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं। उसके उपरान्त प्रेम, आदर, जानने व समझने और आत्म-वास्तविकरण की आवश्यकताएँ अनुभवों की वृद्धि के साथ बढ़ती जाती हैं। व्यक्तियों की आवश्यकताओं की समानता उनके समान अनुभवों और विभिन्नता अनुभवों की विविधिताओं के कारण होती है।'

आधे से अधिक मानवी प्रवृत्तियाँ अनुकरण की परिणाम होती हैं बच्चे तो अधिकांश दूसरों को देखकर ही भली-बुरी आदतों को सीखते हैं और अभ्यास होने पर उनकी भी वैसी ही आदतें विनिर्मित हो जाती हैं। प्राणी जो आचरण अभ्यास में लाता है उसके प्रति लगाव (आसक्ति) हो जाता है। इस सन्दर्भ में खरगोशों और पक्षियों पर किये अनुसन्धानों से पता चलता है कि खरगोश अपने बिल के एक निश्चित कोने में ही मल-विसर्जन करते हैं। पक्षी अपने घोंसले निश्चित स्थानों पर ही बनाते हैं। सामान्य मनुष्य भी जिस स्थान विशेष में रहते हैं, उस स्थान से उनका लगाव हो जाता है और घुमक्कड़ लोगों को अपना स्थान बदलने में ही आनन्द आता है व अपने आचरण एवं अभ्यास से उसी तरह की अपनी वृत्ति बना लेते हैं फिर उनको जीवन पर्यन्त स्थान परिवर्तित करते रहने में ही प्रसन्नता होती है।

मनःशास्त्रियों का कहना है कि दो विपरीत प्रवृत्तियों में जिसे विकास का पहले अवसर मिल जाता है वही व्यक्ति पर हावी हो जाती है और वह तद्नुरूप आचरण का अभ्यस्त हो जाता है। प्रायः देखा जाता है कि बहुत से बच्चे कुत्ते को देखकर भयग्रस्त हो जाते हैं और बहुत से उनसे खेलने के लिए उद्यत हो जाते हैं। इस भिन्नता के मूल में उनके प्रारम्भिक अनुभव ही उत्तरदायी होते हैं। जिस बच्चे ने पहली बार कुत्ते को क्रोधित, भौंकती अवस्था में देखा होगा उसके मन में कुत्ते के प्रति भय की वृत्ति बैठ गयी। दूसरी ओर जिन बच्चों को पहली बार कुत्ते के साथ खेलने का अवसर मिला, उसकी दुम कान पकड़कर किलकारियाँ करते रहे उनमें पहले से विपरीत अर्थात् प्रेम की भावना घर कर गयी। फिर तो बच्चे कुत्ते के भूँकने पर भी अपनी उसी प्रेमवृत्ति का परिचय देते हैं, डरते नहीं देखे जाते।

कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि अभ्यास में लाये गये आचरण अथवा अभ्यास से परिपक्व आदतें ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राणियों की स्वयंभू प्रवृत्तियों की तरह काम करने लगती हैं। उनका कहना है कि प्रवृत्तियों के विकास की एक निश्चित अवधि होती है जिसके पश्चात् वे सक्रिय नहीं हो पातीं जैसे-बच्चे की प्रवृत्ति माँ के स्तनों से चूसकर दूध पीने की होती है, पर यदि जन्म के बाद कुछ दिनों तक बच्चे को माँ से अलग रखा जाय तो उसकी यह वृत्ति निष्क्रिय हो जाती है, फिर उसे चूसकर दूध पीने में अत्यधिक अस्वाभाविकता लगती है।

यदि उनकी विवेक, बुद्धि और संकल्प जागृत हो जाय तो इन दुर्व्यसनों से छूटते देर नहीं लगती उल्टे इनके प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है तथा अपने उदाहरण से अन्यों को भी इन दूषित प्रवृत्तियों से छूटने में सहायता प्रदान करते हैं। इस तथ्य को सभी मनःशास्त्री स्वीकार करते हैं कि मानवी विवेक एवं मनोबल प्रवृत्तियों को बदल देने में सक्षम हैं। मूल प्रवृत्तियों का परिशोधन परिष्कार करके ही मानव से महामानव, देव मानव बना जा सकता है। कुछ सहज वृत्तियाँ तो निश्चित रूप से मनुष्य में जन्मजात पायी जाती हैं। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध व्यावहारिक मनोविज्ञानवेत्ता डॉ. वाट्सन का कथन उल्लेखनीय है।

मनुष्य को ऐसी मानसिक विशेषता मिली हुई है कि वह उचित-अनुचित, लाभ-हानि का विचार कर सकता है और विचार मन्थन से मुक्ति संगत औचित्यपूर्ण निष्कर्ष निकालकर उन्हें ग्रहण कर सकता है। इसी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता या विवेकशीलता के आधार पर प्रदत्त प्रवृत्तियों को विकसित एवं परिष्कार करके मानव-जीवन को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है। सामान्य मनुष्य से महामानव स्तर तक वे ही पहुँचे हैं जिन्होंने अपनी प्रवृत्तियों को शोधित एवं परिष्कृत कर लिया। अस्तु मूल प्रवृत्तियों को औचित्य एवं विवेक की कसौटी पर कसकर अपनाने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। यही भारतीय मनोविज्ञान की विशेषता रही है कि उसने देवत्व को मुख्य माना है, विकासवाद की चरम सीमा को महामानव बनना माना है। यही वास्तविक मानवी प्रगति का स्वरूप है, वह नहीं जो पारम्परिक मनोविज्ञानवेत्ता सदा से कहते चले आ रहे हैं।

नर-वानर देव मानव कैसे बने ?

अन्न के दाने मोटेतौर पर पेट भरने के काम आते हैं। उन्हें पीसकर आटा बनाया जाता है। आटे की रोटियाँ बनती और पेट में जाती हैं। पेट में पचने के बाद वह मल बनता और कचरे के ढेर में फेंक दिया जाता है। यही है उसकी सामान्य नियति।

किन्तु उसकी सत्ता को इतने तक ही परिसीमित मान बैठना भूल होगी। गंभीर पर्यवेक्षण करने पर उसके अन्य गुण भी प्रकट एवं और प्रत्यक्ष होते हैं। उसके अदृश्य अन्तराल में एक ऐसी क्षमता भी होती है जिसका प्रयत्नपूर्वक जागरण करने से वह निष्क्रिय से सक्रिय, निर्जीव से सजीव होने लगती है। बीज की तरह से प्रयुक्त किये जाने पर अपने आकार की वृद्धि करता है। उसके जीवन तत्त्व बढ़ जाते हैं। उर्वर भूमि का अंश सोखता है और अपने कलेवर के एक कक्ष से अंकुर फोड़ता है।

खाद पानी की अनुकूलता होने पर वह अंकुर बढ़ता है। पौधे के रूप में विस्तार करता है। उसे यदि पशु-पक्षियों द्वारा चर न लिया जाय तो क्रमशः बढ़ता ही रहता है। बढ़ोत्तरी दीर्घकाल तक चलती ही रहती है। समयानुसार परिपक्वता आती है और प्रौढ़ता प्राप्त वृक्ष फूलना-फलना आरंभ कर देता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती ही रहती है, जब तक कि उसका अन्तकाल नहीं आ जाता।

फूल वातावरण को सुवासित करते हैं, अपनी सुन्दरता से उधर से गुजरने वालों का मन मोहते हैं। तितलियों, मधु-मक्खियों और भ्रमरों के लिए उपयोग का, आकर्षण के केन्द्र बनते हैं। इसके उपरान्त उनके फलित होने की बारी आती है। फल पक्षियों-मनुष्यों का आहार बनते हैं। उपभोक्ताओं के पोषण का निमित्त कारण बनते हैं। उन फलों के मध्य में एक या अनेक ऐसे बीज होते हैं, जो परिपक्व होने पर वैसी ही सृष्टि आरंभ कर देते हैं, जैसी कि उनके पिता, पितामह ने वंशवृद्धि के लिए अपने को प्रस्तुत, समर्पित किया था। इन बीजों में से हर एक में अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्यक्ष और परोक्ष गुण होते हैं। प्रत्यक्ष में उनका उपयोग साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति में हो जाता है। परोक्ष रूप से उनमें अपने को विकसित करने की, आकार की विशालता धारण करने की क्षमता होती है। इतने पर भी यह निश्चित नहीं कि प्रत्येक बीज वृक्ष बन ही सकेगा। यदि उसका उपयोग सामान्य रीति से हुआ तो वह किसी प्राणी का आहार ही बन सकता है। चलते-चलाते दुर्गन्धित कचरे के रूप में ही परिणत हो सकता है। असामान्य स्तर प्राप्त करके वृक्ष रूप में विकसित होना उसका सौभाग्य है। इस स्थिति में वह भी अपना मूल्य असंख्य गुना बढ़ा लेता है। छाया, ईंधन, प्राणवायु, भू-संरक्षण, भवन बनाने का माध्यम आदि के रूप में अपना गौरव प्रदर्शित करता है। उद्यान के रूप में धरती की शोभा बनता है। इतनी प्रगति तभी हो पाती है जब बीज की अन्तर्निहित क्षमता को विकसित करने का अवसर मिले। उपेक्षित रहने पर तो वह सड़,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घुन जाता है और अपनी सामान्य उपयोगिता तक खो बैठता है। उसका बाजारू मूल्य एकाकी और सामान्य रहने पर नगण्य बनकर ही रह जाता है।

मनुष्य का सामान्य स्वरूप तुच्छ है। वह हाड़, माँस का चलता-फिरता, बोलता, सोचता पिटारा भर है। उसका जीवन इस कुचक्र की धुरी पर घूमता रहता है कि जीवित रहने और वंश परम्परा को बनाये रखने के लिए श्रम करे, समय लगाये। बहुत हुआ तो दूसरे से अधिक समझा जाने की महत्वाकांक्षाओं में से किसी को चुने, अपनाये और उनके निमित्त असाधारण प्रयास करते हुए उस विधा को भी अपनाये जिसे अन्याय, अपराध, कुकर्म, पाप आदि नामों से जाना जाता है। महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति इसके बिना हो नहीं सकती। ऊँचा भवन बनाने के लिए समतल भूमि ही उपयुक्त पड़ती है। ऊबड़-खाबड़ भूमि पर भवन नहीं बन सकता। इसी प्रकार महत्त्वाकांक्षाएँ जो शरीर के साथ जुड़ी रहती हैं, मनःक्षेत्र में संस्कारों का भवन नहीं बनने देतीं। लिप्सा, वासना, तृष्णा, अहंता से कुछ प्रसन्नता शोभा शरीर को ही प्राप्त होती है। इस एक पक्षीय बढ़ोत्तरी में आत्मा की तो उपेक्षा ही होती रहती है। उसे वह अवसर मिल नहीं पाता जिसके आधार पर सुर दुर्लभ मनुष्य जन्म की धरोहर का सही उपयोग बन पड़े। अपूर्णता दूर करने का पुरुषार्थ और परमार्थ संचय का पुण्य ही आत्मा की तुष्टि-पुष्टि और शान्ति का आधार है। पर उसे कर पाने का अवकाश ही कहाँ मिलता है? सारतत्त्व को आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ ही निगल जाती हैं। खिलवाड़ में ही आयुष्य खप जाती है। वैसा कुछ बन नहीं पड़ता जिसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके।

जीनव सम्पदा को पशु-प्रवृत्तियों में, पेट प्रजनन में, समाप्त कर देने का तात्पर्य है कि उसकी स्थूलता ही कार्यान्वित होती रहे। सूक्ष्मता को विकसित होने का अवसर नहीं मिला। बीज का स्थूल कलेवर किसी का आहार भर बनता है। अपना श्रेय सम्पादित करने की गरिमा का उसे दर्शन भी नहीं हो पाता। इसे दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण नियति ही कहा जा सकता है। जिसका अन्त कचरे के रूप में हो उसे अभागा नहीं तो और क्या कहा जाय ?

सौभाग्य का उदय उस स्थिति से आरंभ होता है जिसमें बीज को अपनी अन्तरंग क्षमता को विकसित करने का अवसर मिले। यह उपलब्धि तब हस्तगत हो जब अन्तर्मुखी बन जाय। अन्तरंग क्षमताओं को समझा और उभारा जाय। मूढ़ता छाई रहे तो यह निरीक्षण पर्यवेक्षण किस प्रकार संभव हो सके।

प्रत्यक्षतः मनुष्य नर वानर है। उसका शरीर कुदकता और मन फुदकता रहता है। इस उछल-कूद की बाल-क्रीड़ा में ही समय बीत जाता है और जीवन का मृत्यु की गोद में अन्त होता है। इसके उपरान्त अन्धकार ही अन्धकार। अवशेषों को भी दुनिया की हलचलें कुछ ही समय में समाप्त कर देती हैं। न कुछ अपने लिए बन पड़ता है और न दूसरों के निमित्त ऐसा कुछ हो पाता है, जिसे अभिनन्दनीय और अनुकरणीय कहा जा सके।

सामान्य तक सीमाबद्ध रहना मनुष्य का अविवेक और दुर्भाग्य है। हीरक को काँच के समान कौड़ी मोल का बना देने के समान है, समझदारी का उदय आरंभ तब माना जाना चाहिए जब अन्तर्निहित क्षमता को समझने और जानने का सुयोग तलाशा जाय। आहार बनने और कचरे में अन्त करने की अपेक्षा बुद्धिमत्ता इसमें है कि बीज बनकर उगने और वृक्ष बनने का महत्त्व समझा और विधान अपनाया जाय। बड़प्पन इसी में है, सुयोग और सौभाग्य भी इसी दिशा-धारा के साथ जुड़ता है। यह अवसर हर किसी के हाथ में है कि वह अपने अन्तरंग को विकसित करके देवोपम श्रेय प्राप्त करे या कचरे की दुर्गति का चयन करे।

बीज अचेतन है, उसकी स्वेच्छा का कोई मूल्य नहीं। मालिक ही उसका जैसा चाहे उपयोग कर सकता है, किन्तु जीवात्मा को यह विशिष्टता प्राप्त है कि वह इच्छानुसार जिस भी दिशा को अपनाये। इच्छित मार्ग पर चले। अपनी नियति को भली-बुरी चाहे जैसी बनाये। सुयोग या सदुपयोग इसी में है कि जीवन को चंदन-वृक्ष, कल्प-वृक्ष की तरह विकसित, सुन्दर और सौभाग्य सम्पन्न यशस्वी बनाया जाय।

आनन्द कहाँ ? अपनी ही मुट्ठी में

भगवान् बुद्ध से एक बार श्रेष्ठि सुमन्तक ने पूछा—"भन्ते ! अक्षय आनन्द की प्राप्ति का क्या उपाय है ?" इस पर तथागत ने उत्तर दिया—'इच्छाओं का त्याग करना।' प्रसंग को अधिक स्पष्ट कराने के लिए जिज्ञासु ने पूछा—बिना इच्छा के कोई कर्म तक नहीं हो सकता, फिर इच्छा न रहने से तो निष्क्रियता छा जायेगी और निर्वाह तक कठिन हो जायेगा।

भगवान् ने विस्तार से बताया कि इच्छा त्याग से तात्पर्य बुद्धि एवं कर्म का परित्याग नहीं, वरन् व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़कर आदर्शों के लिए काम करना है। शरीर रक्षा, परिवार पोषण एवं सामाजिक सुख-शान्ति का ऊँचा उद्देश्य रखकर जो काम किये जायेंगे उनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थान्धता नहीं रहेगी न उनके लिए दुष्कर्म करने पड़ेंगे। सामर्थ्य भर प्रयत्न करने पर जितनी सफलता मिलेगी, उसमें सन्तोष रखते हुए आगे का प्रयास जारी रखा जायेगा। यही है इच्छाओं का त्याग। जिनमें किन्हीं आदर्शों का समावेश नहीं होता-लोभ और मोह की पूर्ति ही जिनका आधार होता है वे ही हेय और त्याज्य मानी गई हैं।

ईमानदारी के साथ सदुद्देश्य लेकर मनोयोगपूर्वक श्रम किया जाय, यह कर्तव्य है। कर्तव्य कर्म करने के उपरान्त जो प्रतिफल सामने आये उससे प्रसन्न रहने का नाम सन्तोष है। सन्तोष का यह अर्थ नहीं है कि जो है उसी को पर्याप्त मान लिया, अधिक प्रगति एवं सफलता के लिए प्रयत्न ही न किया जाय। ऐसा सन्तोष तो अकर्मण्यता का पर्यायवाचक हो जायेगा। इससे तो व्यक्ति दरिद्र रहेगा और समाज पर पिछड़ापन छाया रहेगा। पुरुषार्थ भरे उपार्जन में से व्यक्ति की प्रतिभा निखरती है और समाज की समृद्धि बढ़ती है।

दार्शनिक जैरोल्ड की परिभाषा के अनुसार सन्तोष निर्धनों का निजी बैंक है, जिसमें पर्याप्त धन भरा रहता है। जॉर्ज इलियट का मत भी इसी से मिलता-जुलता है। वे कहते थे—"असंतोषी कभी अमीर नहीं हो सकता और संतोषी के पास दरिद्रता फटक नहीं सकती।" उदार और दूरदर्शी मस्तिष्कों में संतोष का वैभव प्रचुर मात्रा में भरा रहता है। आनन्द की तलाश करने वालों को उसकी उपलब्धि सन्तोष के अतिरिक्त और किसी वस्तु या परिस्थिति में हो ही नहीं सकती। सुकरात ने एक बार अपने शिष्यों से कहा था—"संतोष ईश्वर प्रदत्त सम्पदा है और तृष्णा अज्ञान के असुर द्वारा थोपी गई निर्धनता।"

परिणाम को आनन्द का केन्द्र न मानकर यदि काम को उत्कृष्टता की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया जाय तो सदा उत्साह बना रहेगा और साथ ही आनन्द भी। कलाकार ब्राउनिंग कहते थे—"हम किसी काम को छोटा न मानें वरन् जो भी काम हाथ में है उसे इतने मनोयोग के साथ पूरा करें कि उसमें कर्त्ता का व्यक्तित्व बोलने लगे। ऐसे कार्य अपने कर्त्ता के लिए श्रेय और सम्मान का कारण बनते हैं, भले ही वे अधिक महत्त्वपूर्ण न हों।" मनस्वी रस्किन की उक्ति है-"काम के साथ अपने को तब तक रगड़ा जाय जब तक कि वह संतोष की सुगंध न बखेरने लगे।" वाल्टेयर ने लिखा है-"किसी काम का मूल्यांकन उसकी बाजारू कीमत के साथ नहीं, वरन् इस आधार पर किया जाना चाहिए कि उसके पीछे कर्त्ता का क्या दृष्टिकोण और कितना मनोयोग जुड़ा रहा है।" अब्राहम लिंकन का यह कथन कितना तथ्यपूर्ण है जिसमें उन्होंने कहा था—"हम जिस काम में जितना रस लेते हैं और मनोयोग लगाते हैं वह उतना ही अधिक आनन्ददायक बन जाता है।"

आनन्द के लिए किन्हीं वस्तुओं या परिस्थितियों को प्राप्त करना आवश्यक नहीं और न उसके लिए किन्हीं व्यक्तियों के अनुग्रह की आवश्यकता है। वह अपनी भीतरी उपज है। परिणाम में संतोष और कार्य में उत्कृष्टता का समावेश करके उसे कभी भी कहीं भी और कितने ही बड़े परिमाण में पाया जा सकता है।

मनःशक्ति संवर्धन में योग निद्रा का उपयोग

मानसिक विकास में एक अति उपयोगी प्रयोग है, मनःसंस्थान को शिथिल कर देना। शरीर का पूर्ण शिथिलीकरण, प्रकृति-प्रदत्त निद्रा, उसी के सहारे मनुष्य अपनी जीवनचर्या सम्पन्न करता और अगले दिन के लिए कार्यकारी शक्ति प्राप्त करता है। निद्रा में व्यवधान पड़ने पर मनुष्य अशक्त एवं विक्षुब्ध दिखाई पड़ता है नींद न आने की बीमारी लगातार चलती रहे तो उसकी परिणित पागलपन में हो सकती है। जिन्हें गहरी निद्रा आती है वे सामान्य आहार-विहार उपलब्ध होते हुए भी नीरोग और बलिष्ठ बने रहते हैं। मानसिक क्षमता भी उनकी बढ़ी-चढ़ी रहती है। अधिक गहरी निद्रा जिसे प्रसुप्ति कहते हैं, दुर्बलों और रोगियों को जीवन प्रदान कर सकती है। आहार और निद्रा दोनों वर्गों की उपयोगिता लगभग समान अवसर की ही मानी जा सकती है।

मनःसंस्थान की उच्चस्तरीय परतों को निद्रा का अपना महत्त्व है। यदि उसे उपलब्ध किया जा सके तो इस दिव्य संस्थान को अधिक स्वस्थ एवं अधिक समर्थ बनने का अवसर मिल सकता है।

मन की दो प्रमुख परते हैं, एक सचेतन दूसरी अचेतन। सचेतन ही सोच-विचार करता है और वह रात्रि को नींद में सोता है। अचेतन को कार्य संचालन की समस्त स्वसंचालित गतिविधियों की व्यवस्था बनानी पड़ती है। श्वाँस-प्रश्वाँस, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, जैसी क्रियाएँ निरन्तर चलती रहती हैं और उन्हीं के आधार पर शरीर का निर्वाह होता है। यह सब कुछ अचेतन की गतिविधियों पर निर्भर है। रात को सचेतन के सो जाने पर भी अचेतन क्रियाशील रहता है और स्वप्न देखने, करवट बदलने, कपड़े ओढ़ने, हटाने जैसे कृत्य कराता रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अचेतन की थकान दूर करने और विश्राम देने के उद्देश्य से ही मृत्यु होती है। मरने और उसके बाद पुनः जन्म लेने के मध्य में जो समय मिलता है उसे 'चिरनिद्रा' नाम दिया गया है। स्वर्ग-नरक जैसी अनुभूतियों का रसास्वादन उसी अवधि में मिलता रहता है।

प्रत्यनपूर्वक यदि अचेतन को थोड़ा या अधिक समय का उथला या गहरा विश्राम दिया जा सके तो मानवी चेतना को बहुत राहत मिलती है। इस विश्राम से उसे थोड़ी-सी अवधि में ही नई स्फूर्ति प्राप्त होती है, साथ ही सचेतन के दबाव से दबे रहने वाले अन्तराल को भी अंकुरित विकसित होने का अवसर भी मिलता है। अन्तराल का विकास ही प्रकारान्तर से आत्मशक्ति का उद्भव अभिवर्धन कहा जा सकता है।

योग निद्रा के छोटे-बड़े अनेक स्तर हैं। बड़े स्तर को समाधि कहते हैं। यह निर्विकल्प, संकल्प रहित और सविकल्प-संकल्प सहित दो स्तर की होती है। सविकल्प का परिणाम भौतिक और निर्विकल्प का अध्यात्मिक उपलब्धियों के रूप में सामने आता है। योगनिद्रा स्वल्पकालीन होती है और समाधि चिर-दीर्घकालीन। दोनों ही परिस्थितियों में मन को अधिक शान्त एवं निष्क्रिय बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

ध्यान योग के द्वारा इस स्थिति को प्राप्त किया जाता है, विचार संकल्प पूर्णतया समाप्त तो नहीं हो सकते पर उन्हें किसी एक केन्द्र पर नियोजित करके बिखराव के दबाव के मनःसंस्थान को मुक्त रखा जा सकता है। इतने से ही मनःक्षेत्र के जागरण एवं विकास में असाधारण योगदान मिलता है।

पाश्चात्य देशों में इस दिशा में जो प्रयोग किये जाते हैं, उन्हें सम्मोहन क्रिया के नाम से जाना जाता है। इसमें स्वसंकेतों द्वारा आत्मविश्वास का और सम्मोहन द्वारा दूसरों को अर्धमूर्च्छित या मूर्च्छित करके सुधार उपचार का प्रयत्न किया जाता है। ध्यान योग मेडिटेशन के नाम से अब यह सर्व साधारण की जानकारी का विषय बनता जा रहा है। उसका उपयोग प्रायः शारीरिक और मानसिक रोगों के निवारण में हो रहा है। प्राचीनकाल के अध्यात्मवेत्ता उस प्रक्रिया को आत्मबल संवर्धन के लिए करते थे। उन दिनों चिकित्सा उपचारों की आवश्यकता बहुत ही स्वल्प मात्रा में पड़ती थी। संयम और संतुलन के परिपालन से इन दिनों रोग कम ही होते थे, जो वे रक्त शुद्ध रहने के कारण सामान्य जड़ी-बूटियों के उपचार से ही अच्छे हो जाते थे। परिचित मस्तिष्क से ऊपर एक और दिव्य चेतना स्रोत है, जहाँ चितशक्ति निवास करती है। मनोवैज्ञानिक इसे अचेतन कहते हैं। "सुपर ईगो" के रूप में इसी की विवेचना की जाती रही है। यह देवलोक, अतीन्द्रिय चेतना का केन्द्र एवं ऋद्धि-सिद्धियों का भण्डार माना गया है। इस क्षेत्र पर अधिकार प्राप्त कर लेने वाला अलौकिक, असाधारण अतिमानव एवं सिद्ध पुरुष बन सकता है।

जब अचेतन जागता है, तब प्रबुद्ध मस्तिष्क सोता है और जब प्रबुद्ध मस्तिष्क जागता है तब अचेतन सोता रहता है। दोनों एक साथ कार्यरत नहीं रह सकते। योग निद्रा उत्पन्न करके पूर्ण या आंशिक समाधि में जाया जा सकता है और अतिमानवी अनुभूतियों के क्षेत्र में प्रवेश किया जा सकता है। यदि चेतन मस्तिष्क पूर्ण सजग रहे और तर्क बुद्धि के साथ निद्रित न होने का संकल्प किये रहे तो आध्यात्मिक जाग्रति असंभव है। जाग्रत मन को निद्रित करके ही अचेतन को अध्यात्म भूमिका में कुछ अधिक योगदान दे सकने योग्य बनाया जा सकता है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की चार अवस्थाएँ प्रबुद्ध मन की स्वाभाविक चंचलता को निग्रहीत करके एकाग्रता के केन्द्र बिन्दु पर रोके रखने के लिए हैं। इनमें जितनी सफलता मिलती जाती है, मस्तिष्क शान्त और समाहित होता चला जाता है साथ ही चित्त शक्ति का जागरण आरम्भ हो जाता है। मानवी संकल्प बल न केवल बाह्य प्रयोजनों में वरन् अपने शरीर की अनिवार्य गतिविधियों को इच्छानुसार नियन्त्रित करने में सफल भी हो सकता है। समाधि स्थिति की प्राप्ति द्वारा कई प्रकार के लाभ उठाये जा सकते हैं।

(१) प्रबुद्ध मस्तिष्क को गहरा विश्राम देकर उसे अधिक स्वस्थ, सक्रिय एवं बुद्धिमान बनाया जा सकता है। (२) अचेतन मस्तिष्क को जाग्रत करके उसकी अतीन्द्रिय क्षमता बढ़ाई जा सकती है और चमत्कारी सिद्ध पुरुषों की देव भूमिका में पहुँचा जा सेकता है। (३) शरीर की गतिविधियाँ रोक सकने में समर्थ संकल्प बल की आग में संसार की कठिनाइयों को गलाया जा सकता है। जो कठिन हैं, उन्हें सरल बनाया जा सकता है एवं दूसरों को आध्यात्मिक योगदान देकर सुखी बनाया जा सकता है। (४) दीर्घजीवन का उद्देश्य पूरा करने के लिए कायाकल्प का रहस्यमय अमृत पाया जा सकता है। विज्ञान ने यह स्वीकार कर लिया है कि यदि मनुष्य को चिरनिद्रा में सुलाया जा सके तो उसे रोगों और थकान के पंजों से छुड़ाकर नवजीवन प्रदान किया जा सकता है। भौतिक विज्ञान ने 'शीतनिद्रा' के रूप में समाधि से मिलती-जुलती एक विधि ढूँढ़ निकाली है। विज्ञानी डेल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारेण्टर के अनुसार मनुष्य को ठण्डा करके गहरी सुषुप्तावस्था में पहुँचाया जा सकता है।

शीतनिद्रा के कारण भौतिक हों या हिप्नोटिज्म स्तर के, मानसिक हों अथवा समाधि स्तर के—आध्यात्मिक हों हर स्थिति में सर्वतोमुखी विश्राम एवं शांत, एकाग्र समाधान की आवश्यकता अति महत्त्वपूर्ण समझी जाती रहेगी। उसे प्राप्त करके हम अतीन्द्रिय शक्ति सम्पादन से नये क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं।

योग निद्रा का तात्पर्य है चेतना का प्रवाह शरीर निर्वाह की दिशा में हटाकर अन्तःक्षेत्र की ओर मोड़ देना। सूखे खेत में पानी भरने पर उसमें हरियाली उगने का उपक्रम आरम्भ होता है। इसके दो लाभ होते हैं, एक तो उच्चस्तरीय क्षमता का अभिवर्धन, दूसरे निकृष्ट कुसंस्कारों का निराकरण। दोनों कार्य एक साथ चलने लगते हैं। प्रकाश बढ़ता है तो अन्धकार अनायास ही अपना स्थान छोड़ता है।

मानसिक तनाव एवं विक्षोभ के कारण व्यक्तित्व को अपार हानि होती है। यह उद्विग्नता और कुछ नहीं, अन्तराल की असमर्थता भर है। यह असमर्थता और कुछ नहीं, समुचित विश्राम न मिलने की प्रक्रिया है। यदि इस कुचक्र को तोड़ा जा सके तो मनःक्षेत्र को अभिनव परिपोषण मिल सकता है और उसकी सामान्य तथा असामान्य क्षमताओं का नये सिरे से विस्तार हो सकता है। कहना न होगा कि अन्तःक्षेत्र का यह लाभ भौतिक क्षेत्र की समस्त सफलताओं की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। मनःक्षेत्र के विकास को लक्ष्य रखकर किये जाने वाले किसी भी प्रयास को अति दूरदर्शिता पूर्ण कहा जा सकता है।

मनःक्षेत्र का बिखराव रोकने की प्रक्रिया ही ध्यानयोग है, इसके द्वारा सामर्थ्य की खपत जो बचत होती है उसका अधिकांश लाभ मस्तिष्क के उस क्षेत्र को मिलता है जिसे ब्रह्मचक्र, ब्रह्मरंध्र, सहस्रार आदि नामों से पुकारते हैं। यह इस क्षेत्र में अवस्थित दो अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों की समन्वित प्रक्रिया का भ्रम है। आज्ञाचक्र इसी को कहते हैं। ध्यानयोग की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में एक रुचिकर वैज्ञानिक तथ्य है कि इस दौरान मस्तिष्क का सक्रिय भाग तुरन्त पीनियल एवं पीटुटरी ग्रन्थियों से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यह इनकी हारमोन्स स्राव करने की क्षमता में होने वाले परिवर्तनों से परिलक्षित होता है। ये दोनों ही स्थूल ग्रन्थियाँ अध्यात्म की दृष्टि से बड़ी रहस्यमय हैं। दोनों ही ऐसे रस का स्राव करती हैं, जो हमारी चेतना के स्तर को प्रभावित करते हैं।

पीनियल ग्लैण्ड को दार्शनिकों, रहस्यवादियों ने 'तीसरा नेत्र' एवं आत्मा का स्थान कहा है। हमारे प्रमुख सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों में यह एक है तथा आध्यात्मिक विकास हेतु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि है। उच्च शक्तियों से सम्बन्ध जोड़ने में यह सहायक है। इसका पूर्ण जागरण हमारी चेतना को भावनात्मक और बौद्धिक स्तर से ऊपर उठाकर और अधिक सूक्ष्म जगत में ले जाता है।

पीटुटरी ग्लैण्ड को तो शरीर का सम्राट कहा जा सकता है। इस ग्रन्थि में स्नायु संस्थान एवं हारमोन संस्थान की परस्पर प्रक्रिया से ही रसस्राव होता है। सारे शरीर की अन्य हारमोन ग्रन्थियाँ चयापचयी एवं भावनात्मक प्रतिक्रिया को पीटुटरी प्रभावित करती है।

यह अनन्त विस्तृत परम चेतना का प्रवेश द्वार है। यह भौतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों का मिलन बिन्दु माना गया है। ध्यान साधना द्वारा इस ग्रन्थि को नियन्त्रित नियमित कर मनुष्य अपने स्थूल-सूक्ष्म एवं आत्मिक आवरणों का परिमार्जन कर सकता है, पूर्ण मानव बन सकता है।

जब भी कोई योगनिद्रा का अभ्यास करता है प्रत्येक बार शक्ति प्रवाह ब्रेनसर्किटों के मध्य नये सम्बन्ध स्थापित करता है। मस्तिष्क के अन्धेरे, निष्क्रिय क्षेत्र को प्रकाशित एवं सक्रिय करता है। यह हमारी चेतना को बाह्य जगत के उसके पूर्ण व्यवसाय से अलग करता है तथा उसकी अचेतन क्रियाओं को चेतन नियन्त्रण में लाता है।

चिकित्सा क्षेत्र में योग निद्रा का उपयोग शारीरिक एवं मानसिक रोगों की निवृत्ति के लिए किया जा रहा है और उसमें आशातीत सफलता भी मिल रही है। अमेरिका में अकेले डॉ. हार्समैन ही नहीं अन्य १६ बड़े-बड़े डाक्टर इस सम्मोहन पद्धति का प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक कर रहे हैं। डॉ. हार्समैन का दावा है कि सम्मोहन पद्धति से महिलाओं को पीड़ा रहित प्रसव कराया जा सकता है तथा क्षय रोग के रोगियों तथा हृदय रोग के रोगियों को भी यह सम्मोहन पद्धति बड़ी कारगर रही है क्योंकि इन रोगों में लम्बे समय तक बेहोशी की दवा पर मरीज को रखना खतरनाक है।

सम्मोहन क्रिया द्वारा अब तो कृत्रिम हृदय प्रत्यारोपण अथवा लम्बे समय तक के आपरेशनों तक में सफलता प्राप्त कर ली गई है। सम्मोहन पद्धति से अति जटिल आपरेशन, मस्तिष्क का आपरेशन, भीतरी टूटी हड्डियों को निकालना, आंतरिक घाव अथवा अति वेदनाशील आपरेशनों पर भी सफलता प्राप्त कर ली गई है। जहाँ औषधियाँ कारगर नहीं होतीं, जैसे आदतें अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वभाव में परिवर्तन, वहाँ भी सम्मोहन क्रिया के बड़े अच्छे परिणाम सामने आये हैं। जिन व्यक्तियों को दिन में ६० से ७० तक सिगरेटें पीने की आदत थी, उन्हें सम्मोहन क्रिया द्वारा केवल १० सिगरेटों तक सीमित करने में एवं अन्ततः छुड़वाने में भी सफलता मिली है। इसी प्रकार अधिक खाने वालों की भूख को सन्तुलित किया जा सकता है और अधिक मोटापे को कम करने के लिए भी प्रयोग सफल रहे हैं।

अनेकों नशे की गोलियाँ खाकर सोने वालों, शराबियों, नाखून कुतरने की बुरी आदत वालों, बिस्तर पर पेशाब करने वालों तथा अँगूठा चूसने वाले बालकों पर भी पूरी तरह सम्मोहक क्रिया सफल रही है।

मनः तत्व के विज्ञान एवं उपचार में योगनिद्रा का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके हल्के भारी अनेक प्रयोग विनियोग हैं इन्हें समझने-अपनाने का प्रयत्न विज्ञान सम्मत आधार पर किया जाय तो निःसन्देह उसका इतना महत्त्वपूर्ण लाभ जन समाज को मिल सकता है जितना भौतिक अनुसंधान आविष्कार से भी नहीं मिल सका। पदार्थ का तुलना में यदि चेतना का महत्त्व स्वीकार किया जाता है तो यह भी मानना पड़ेगा कि योग निद्रा जैसे अभ्यास व्यक्तित्व को अधिक समर्थ बनाने में और उस आधार पर सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त करने में अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

मनःक्षेत्र में निहित परोक्ष संसार

स्वप्न क्या हैं और क्यों आते हैं ? जीवन से इनका क्या सम्बन्ध है ? इन्हें भविष्य-सूचक माना जाय अथवा वर्तमान और अतीत की व्यक्तिगत जीवन शैली की विशिष्ट देन कहा जाय ? इस संदर्भ में उपरोक्त किसी एक मत का समर्थन करना इसकी एकाकी व्याख्या होगी। सच्चाई तो यह है कि स्वप्न जीवन के संपूर्ण काल-खंड का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें वर्तमान जीवन की झाँकी मिलती है, विगत की अनुभूति होती है और अनागत के संकेत भी सम्मिलित होते हैं।

त्रुटि और भ्रांति इस संदर्भ में वहाँ रह जाती है, जहाँ इसके किसी एक पक्ष को लेकर अध्ययन किया जाता है और उसी को संपूर्ण सत्य स्वीकार लिया जाता है। उदाहरण के लिए फ्रायड को लिया जा सकता है। वह मनोवैज्ञानिक थे और उनका वास्ता मनोरोगियों से पड़ता था। उनने ऐसे ही लोगों पर अपने स्वप्न सम्बन्धी अध्ययन किये। अतः निष्कर्ष भी वर्तमान जीवन की जटिलताओं से संबंधित प्राप्त हुआ। उनके अनुसार स्वप्न दमित इच्छाओं का परिमाण है। जुंग इससे एक कदम आगे बढ़े। अपने अनुसंधान में उन्होंने स्वप्न-स्रोत को ''सामूहिक अवचेतन'' नाम दिया। यह आते क्यों हैं ? इस संदर्भ में उनका मत था कि दमित इच्छाओं की पूर्ति तो इसका एक पक्ष है, पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू वह है, जिससे वह व्यक्तित्व को अखण्डता और समग्रता प्रदान करता है। इसका अभाव मानसिक असंतुलन पैदा करता है, ऐसा उनका मानना था। बाद के अध्येताओं ने इसमें एक नया अध्याय तब जोड़ा, जब इसे भावी जीवन की झाँकी कराने वाला एक आधार बताया। ऐसे ही एक सपने की चर्चा मार्क ट्वेन ने अपने जीवनी लेखक अल्बर्ट पैन से की थी।

प्रसंग तब का है, जब मूर्द्धन्य मनीषी मार्क ट्वेन, सैम क्लीमेन्स के नाम से जाने जाते थे एवं ''पेन्सिलवेनिया'' नामक जहाज पर सहायक पायलट थे। उनका बीस वर्षीय भाई हेनरी उसी जहाज में क्लर्क के पद पर कार्यरत था। एक रात सैम ने एक सपना देखा। उस दृश्य में उन्हें एक धात्विक ताबूत दिखाई पड़ा, जो दो कुर्सियों के सहारे टिका हुआ था इसमें हेनरी का शव था। शव के ऊपर सफेद फूलों का गुलदस्ता रखा हुआ था, जिसके मध्य में एक सुन्दर लाल रंग का पुष्प लगा था। जिन दिनों की यह बात है, उन दिनों सैम अपनी बहिन के घर सेण्टलुइस में रह रहे थे। प्रातः उन्होंने इसका उल्लेख अपनी भगिनी से किया और फिर जल्द ही इस बात को भूल गये।

कुछ दिन पश्चात् सैम का किसी प्रकरण को लेकर मुख्य पायलट से विवाद हो गया। इसके कारण सैम को एक अन्य जहाज ''लैसी'' में स्थानांतरित कर दिया गया। हेनरी पेन्सिलवेनिया में ही बना रहा। थोड़े दिन उपरांत जब लैसी मिसीसिपी नदी में ग्रीनविले बंदरगाह पर पहुँचा, तो ज्ञात हुआ कि पेन्सिलवेनिया में विस्फोट हो गया है, जिसमें डेढ़ सौ लोगों की जानें गईं। यह जानकर सैम ने राहत की साँस ली कि उनके भाई का मृतकों में नाम नहीं था, किंतु वह बुरी तरह घायल हो गया था और अचेतावस्था में पड़ा था। छः दिनों तक मृत्यु से कठिन संघर्ष करने के बाद हेनरी की अंततः मौत हो गई। सैम जब भाई की लाश के निकट पहुँचे तो यह देखकर हतप्रभ रह गये कि सपने में जैसा कुछ देखा था, बिल्कुल वही दृश्य सामने मौजूद था, अर्थात् धात्विक ताबूत में पड़ा हेनरी का प्राणहीन शरीर और उसके ऊपर श्वेत पुष्पों का गुलदस्ता, जिसके बीचों-बीच में एक लाल रंग का गुलाब। संपूर्ण ताबूत दो कुर्सियों पर रखा हुआ था। इस प्रकार उनका स्वप्न अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ऐसे ही भविष्य सूचक सपने का वर्णन फ्रेडरिक ग्रीनवुड ने अपनी पुस्तक ''इमेजिनेशन इन ड्रीम्स'' में किया है। वे लिखते हैं कि एक रात उन्होंने सपना देखा कि व्यापार के सिलसिले में एक बार वे किसी से मिलने गये। वहाँ उन्हें एक सुन्दर सजे-सजाये कमरे में बिठाया गया और प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। वे कमरे में जल रही आग के समीप बैठ गये और मेण्टल पीस में हाथ रखकर सुस्ताने लगे। अचानक उन्हें हाथों के नीचे किसी बहुत ठण्डी वस्तु का आभास हुआ देखा, तो पाया कि उनका हाथ एक ताजा कटे हाथ के ऊपर है। कलाई के नीचे से कटा यह हिस्सा किसी महिला के हाथ का था। वे भयभीत हो उठे और इसी के साथ उनकी नींद टूट गई।

कई दिन बीत गये। सपने की बात स्मृति से उतर गई। किसी काम को लेकर एक बार उन्हें एक व्यक्ति से मिलना था। वे वहाँ पहुँचे, तो उन्हें एक छोटे से सुसज्जित कमरे में बिठाया गया। अकस्मात् उनका ध्यान मेण्टल पीस की ओर चला गया, तो वे चौंक उठे। सपने में उनने जो कुछ देखा था, अब वह उनके सम्मुख था। मेण्टल पीस पर कलाइयों से टूटी हुई एक स्त्री के हाथ की ममी पड़ी थी।

ग्रीनवुड कहते हैं कि स्वप्न और यथार्थ के बीच इसे एक संयोग कहा जा सकता है, पर संयोग यह इसलिए नहीं है, क्योंकि स्वप्न और वास्तविक संसार में इस प्रकार की दुर्लभ घटनाएँ विरले ही देखी जाती हैं। उक्त घटना से ग्रीनवुड हैरान रह गये। उनकी हैरानी किपलिंग के शब्दों में कहें, तो निम्न प्रकार से व्यक्त की जा सकती है कि उनकी जीवन रूपी फिल्म का वह भाग, जो अभी रिलीज नहीं हुआ था, किस प्रकार और क्यों दिखाई पड़ गया ?

इस प्रश्न से समय की प्रकृति से संबंधित उस मान्यता का खण्डन हो जाता है, जिसके बारे में कहा जाता है कि जन्म लेते ही हर मनुष्य एक ऐसा टाइम-कण्टीनम (अंतहीन व लगातार) में प्रवेश करता है, जो एक दिशा में समरूप गति से फिल्म रील की तरह खुलता हो। प्रस्तुत अवधारणा के अनुसार कोई भी घटना समय से पूर्व घटित नहीं हो सकती, न तो समय से पहले विज्ञात बनाया जा सकता है। हमें समय के उस भाग से संबंधित घटनाओं की ही जानकारी मिल सकती है, जिसे सर्वसाधारण वर्तमान एवं अतीत के नाम से जानते हैं। उक्त धारणा के अनुसार भविष्य अग्राह्य और अगम्य है, पर व्यावहारिक जीवन में वस्तुस्थिति इसके विपरीत जान पड़ती है। ऐसी स्थिति में विकल्प शेष दो ही रह जाते हैं-प्रथम अवधारणा इस मान्यता से आरंभ होती है कि ''जैसा समझा जाता है, समय की प्रकृति वैसी है नहीं'' एवं दूसरे प्रतिपादन में वैज्ञानिक यह कहते हैं कि ''चेतना की प्रकृति आम धारणा के प्रतिकूल है।''

पहले मत का समर्थन जे. डब्ल्यू. डूने का प्रसिद्ध सिद्धांत ''सीरियल टाइम (क्रमिक समय)'' करता है। इसके अनुसार यदा-कदा यथार्थता और व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों में कोई असाधारण गलती हो जाती है। इसी त्रुटि के कारण हमें कभी-कभी घटनाएँ समय के संदर्भ में अपनी यथार्थ स्थिति से पहले, विस्थापित अवस्था में दिखाई दे जाती हैं। उनका विश्वास है कि वास्तविकता का एक पृथक आयाम है, जिसमें दिक्काल मिलकर एक हो जाते हैं। उनके अनुसार विशिष्ट परिस्थितियों में घटनाएँ स्पेश ग्रहण कर लेती हैं और फैल जाती हैं। यही वह अवस्था है, जिसमें हमारी चेतना भूत और भविष्य के कुछ भाग को ग्रहण कर लेती है। वे कहते हैं कि अतीत और अनागत में इस प्रकार का प्रवेश अचेतन मन द्वारा ही संभव है। सपनों के माध्यम से यही क्रिया सम्पन्न होती है और यदा-कदा भविष्य की दर्शन-झाँकी हो जाती है।

दूसरी अवधारणा का समर्थन एच. एफ. साल्टमार्श का सिद्धांत करता है, जिसका प्रतिपादन उन्होंने अपने ग्रंथ ''फोर नॉलेज'' में किया है। साल्टमार्श अपनी उक्त रचना में कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं, जिसमें ऐसा महसूस होता है, जैसे समय के पंख लग गये और वह उड़ गया। दूसरे अवसर पर यह प्रतीत होता है, जैस समय ठहर गया हो। उक्त उद्धरण को प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि चेतना की सामान्य भूमिका में समय की अनुभूति एकरूप नहीं है, इसलिए ऐसा महसूस होता है। इस आधार पर वे निष्कर्ष निकालते हैं कि चेतना की प्रकृति, समय की प्रकृति पर निर्भर करती है। यदि समय की प्रकृति बदल जाय, तो हमारी चेतना का स्तर भी परिवर्तित हो जायेगा और हम चेतना की किसी दूसरी भूमिका में पहुँच जायेंगे। उनका कहना है कि सामान्य स्थिति में हमारी इंद्रियाँ समय के अत्यंत छोटे भागे को ही ग्रहण कर पाती हैं, लेकिन अवचेतन स्तर के लिए यह छोटा भाग खिंच कर बहुत बड़ा और लंबा हो जाता है, इतना लंबा कि इसमें अनागत का कुछ अंश भी सम्मिलित हो जाता है। स्वप्न के दौरान यही दृश्यमान बनता है। इसकी पुष्टि मस्तिष्क संबंधी आधुनिक अध्ययनों से भी हो जाती है। मस्तिष्क विज्ञानियों की अधुनातन शोधों से विदित हुआ है कि दिमाग का बायाँ भाग सूचनाओं को क्रमिक, तार्किक और रैखिक रूप में तैयार करता ९, जबकि दायाँ हिस्सा सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूचनाओं को साथ-साथ तैयार करता है। उसे रैखिक समय का कोई ज्ञान नहीं होता अथवा बहुत स्वल्प होता है। ऐसी स्थिति में यदि दायाँ हिस्सा क्षतिग्रस्त हो जाय तो सूचनाओं के क्रम और उनकी ग्रहणशीलता में कोई अन्तर नहीं आता, किंतु यदि बायें भाग को कोई हानि पहुँच जाय तो इससे समय के हिसाब से संदेशों का क्रम बिगड़ जायेगा। इस अनुसंधान के आधार पर विशेषज्ञ बताते हैं कि स्वप्न दर्शन में ब्रेन के दायें गोलार्द्ध का योगदान ही महत्त्वपूर्ण होता है। वही विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध जानकारियों को मिलाता और एक समग्र जानकारी तैयार करता है। विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार इसमें भविष्य संबंधी जानकारी भी सम्मिलित हो सकती है। स्वप्न-प्रक्रिया में बायें गोलार्द्ध का कार्य मात्र इतना है कि वह स्वप्न-विषय को क्रमिक ढंग से सजा दे।

यह तो भविष्य-दर्शन संबंधी सिद्धांत हुए, पर उन सपनों का क्या तात्पर्य है, जो दैनिक जीवन की जटिलताओं और व्यक्तिगत समस्याओं से संबंधित होते हैं ? फ्रायडवादी मान्यता के अनुसार वह मात्र जीवन-पद्धति और व्यक्तिगत रुझान का संकेत करते हैं, जिन्हें जानकर जीवन-शैली और व्यक्तित्व की प्रकृति का पता लगाया जा सकता है। बस उस मतवाद में सपनों का इतना ही महत्त्व है, पर आधुनिक जेस्टाल्ट मनोविज्ञान की इस संबंध में भिन्न धारणा है।

'जेस्टाल्ट' एक जर्मन शब्द है, जिसका अर्थ है—''संरचना'' इस प्रकार जेस्टाल्ट मनोविज्ञान का मूलभूत भाव हुआ एक ऐसा मनोविज्ञान, जिसमें समस्याओं को ग्रहण किया जाय, उन्हें समझा और फिर सुलझाया जाय। इसी मनोविज्ञान पर जेस्टाल्ट थैरेपी आधारित है। इस थैरेपी की स्वप्न संबंधी अवधारणा यह है कि स्वप्न व्यक्तित्व का एक अपूर्ण क्रिया-व्यापार है, इसी अपूर्णता को इस उपचार-पद्धति द्वारा पूरा किया जाता है। अचेतन द्वारा व्यक्तित्व के संबंध में दृश्य संकेतों के माध्यम से जो कुछ प्राप्त होता, व्यक्ति उसका उपयोग समग्र व्यक्तित्व के विकास में कर सकता है और साथ ही किसी एक स्थान पर इकट्ठी ऊर्जा को मुक्त कर उसकी हानियों से बच सकता है। इस क्रम में स्वप्न द्रष्टा को एक प्रकार से स्वप्न-दृश्य का अभिनय करना पड़ता है। इसमें कल्पना-चित्रों का सहारा लेते हुए संपूर्ण नाटक का उपचार के समय दोबारा मंचन करना होता है। इसके साथ ही उपचार संपूर्ण हो जाता है।

उक्त उपचार पद्धति के जनक मनोविज्ञानी पर्ल्स के अनुसार व्यक्तित्व के पाँच स्तर होते हैं। इन सभी स्तरों के ठीक ढंग से काम करने पर ही कोई समग्र व्यक्तित्व को संपूर्ण रूप से जी सकता है। इलाज के समय व्यक्ति को इन पाँचों स्तरों से होकर गुजारा जाता है, तभी स्वप्न की अधूरी क्रिया पूरी हुई मानी जाती है। इसके साथ ही व्यक्तित्व की समग्रता प्राप्त कर ली जाती है।

मनोवैज्ञानिक ईवांस के अनुसार स्वप्न एक ऐसी क्रिया है, जो मस्तिष्क को अनुकूलन और अस्वीकृति जैसे उसके दैनिक कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में सक्षम बनाता है। यह कार्य कम्प्यूटर जैसी एक प्रक्रिया द्वारा संपन्न होता है, जिसमें कार्यक्रम को समय और परिस्थिति के हिसाब से बदलने और सुधारने की पूरी व्यवस्था होती है, ताकि व्यक्ति बदली परिस्थितियों में चुनौती का सफलतापूर्वक सामना कर सके। विशेषज्ञों के अनुसार यदि यह क्रिया संपादित न हो, तो व्यक्ति की कार्यक्षमता प्रभावित होने लगती है। इसलिए प्रकृति द्वारा ऐसा प्रावधान किया गया है, जिससे मस्तिष्कीय कार्यकुशलता और व्यक्ति की क्षमता सर्वथा अप्रभावित बनी रहती हैं। स्वप्न में वर्तमान की झाँकी होती है और भविष्य में झलकी भी। इस दृष्टि से जीवन के लिए वे उपयोगी भी हैं तथा आवश्यक भी।

स्वप्न संबंधी मनोवैज्ञानिक एवं अधुनातन वैज्ञानिक शोधें अब जिस निष्कर्ष पर पहुँचती जा रही हैं वह एक ही तथ्य का उद्घाटन करती हैं कि मानवी मस्तिष्क उतना नहीं है, जितना दीख पड़ता है। इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा उन क्रिया-कलापों में सतत् संलग्न रहता है जो परोक्ष स्तर के हैं। कैसे उनका अधिकाधिक लाभ निज के उत्थान व परिष्कार के लिए किया जाय, साधना विज्ञान का सारा ऊहापोह इसी के चहुँओर है।

आत्मिक प्रगति के तीन अवरोध

आत्मिक प्रगति के पथ पर अवरोध उत्पन्न करने वाली दुष्प्रवृत्तियों में तीन साधन हैं। इन्हें ताड़का, सूर्पनखा और सुरसा की उपमा दी जाती है। इन्हें निरस्त किये बिना असुरता के चंगुल में फँसी हुई सीता का, आत्मा का, उद्धार नहीं हो सकता। इन्हें पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा कहा जाता है। वासना-तृष्णा और अहंता की प्रवृत्तियाँ ही सबल होने पर इन एषणाओं के रूप में परिलक्षित होती हैं।

इन्द्रिय वासनाओं में यों सभी अपने-अपने ढंग की खींचतान करती हैं। पर उनमें रसना और कामुकता को प्रमुख माना गया है। चटोरपन के कुचक्र में पेट पर अभक्ष्य पदार्थों का अनावश्यक भार लदता है। अपच के फलस्वरूप शरीर में अगणित रोग उत्पन्न होते हैं। दुर्बलता और रुग्णता ग्रसित होकर अकाल मृत्यु का ग्रास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनना पड़ता है। अस्वस्थता की विपत्ति बढ़ाने में जिह्वा का चटोरपन भयंकर शत्रु से भी अधिक आक्रमणकारी और विघातक सिद्ध होता है। वासना की दूसरी प्रवृत्ति है-कामुकता। यौनाचार की कल्पना और क्रिया में उलझा हुआ मस्तिष्क अपनी अति महत्त्वपूर्ण क्षमता को ऐसे जंजाल में फँसा देता है जिसमें, पाना रत्तीभर और गँवाना पहाड़ भर पड़ता है। प्रकृति की चतुरता ही कहिए कि उसने प्राणियों की संख्या बनाये रहने के लिए कष्टसाध्य भार उठाने के लिए यौनाचार की सरसता उत्पन्न कर दी। यदि यह उन्माद न चढ़ता तो कदाचित ही कोई प्राणी प्रजनन की अति कठिन और अतीव बोझिल प्रक्रिया को अपने कंधों पर लादने के लिए तैयार होता।

वासनाओं में जीभ के चटोरेपन पर रोकथाम करना आवश्यक है। पेट में कोई वस्तु तभी पहुँचने दी जाय जब कड़ाके की भूख उसके लिए तीव्रतापूर्वक माँग करती हो। सात्विक, सुपाच्य पदार्थ स्वच्छतापूर्वक शान्त चित्त से सीमित मात्रा में ग्रहण किये जायँ। जो खाया जाय औषधि रूप हो। स्वाद की उत्तेजना तो नशेबाजी की तरह है, जिसमें हर दृष्टि से हानि ही हानि उठानी पड़ती है।

दूसरे यौनाचार लिप्सा के सम्बन्ध में और भी गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। जो जीवन रस, हमारे ओजस्-तेजस् और ब्रह्मवर्चस् का आधार है उसे क्षणिक आवेश में ऐसे ही गँवाते रहने की गलती को सुधारना ही समझदारी है।

बच्चे उत्पन्न करने से पहले तो हजार बार विचार किया जाना चाहिए कि अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति सुयोग्य और समर्थ नये नागरिक प्रस्तुत कर सकने की है या नहीं। यह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है जिसे पूरा करने का साहस मात्र समर्थ लोगों को ही करना चाहिए। प्रत्येक बच्चा अपनी माता पर शारीरिक दबाव डालता है, पिता पर आर्थिक बोझ लादता है, राष्ट्र से अपनी आवश्यकताओं के नये साधन जुटाने की माँग करता है। किसी जमाने में जनसंख्या कम थी और उत्पादन बढ़ाने के लिए नये नागरिकों की आवश्यकता अनुभव की जाती थी। आज तो स्थिति बिल्कुल उलट गई। बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए निर्वाह के साधन जुटाना अति कठिन हो रहा है।

हर समझदार व्यक्ति का कर्तव्य है कि भौतिक सुव्यवस्था एवं आत्मिक प्रगति के दोनों प्रसंगों का ध्यान रखते हुए वासना पर, संतानोत्पादन पर अधिकाधिक नियन्त्रण रखे और उस अपव्यय से सामर्थ्य को बचाकर ऐसे कार्यों में लगाये जिनसे आत्मिक प्रगति और लोक-कल्याण का दुहरा प्रयोजन सिद्ध हो सके।

दूसरा अवरोध है—तृष्णा-वित्तेषणा। धन की उपयोगिता असंदिग्ध है। उसके उपार्जन का औचित्य सर्वत्र समझा जाता है और हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से उसकी पूर्ति भी करता है। उचित मार्ग से कमाया हुआ और उचित प्रयोजनों में खर्च किया गया धन सराहनीय ही माना जाता है। गड़बड़ी तब उत्पन्न होती है जब वह अनुचित तरीकों से कमाया जाता है और उसका उपयोग विलासिता में, दुर्व्यसनों में, उद्धत प्रदर्शनों में किया जाता है। अनीति-उपार्जन की तरह अपव्यय भी निन्दनीय है। जिस समाज के हम अंग हैं उसी की स्थिति के अनुरूप औसत दर्जे का मापदण्ड अपनाते हुए सादगी की रीति-नीति अपनानी चाहिए। 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त को भली प्रकार समझा जाना चाहिए। अमीरी का रहन-सहन मनुष्य को उठाता नहीं, गिराता है। इससे असमानता की खाई उत्पन्न होती है। दुर्व्यसन बढ़ते हैं और ईर्ष्या-द्वेष भरा कलह संघर्ष खड़ा होता है। अस्तु उचित यही है कि कठोर श्रमपूर्वक कमायें और उसमें सादगी से, औचित्य की मात्रा का ध्यान रखते हुए सादगी की निर्वाह नीति अपनायें। जो बचता हो उसका कृपणतापूर्वक संग्रह न करें वरन् संसार से पीड़ा और पतन कम करने के लिए उदारतापूर्वक उसका उपयोग मुक्त हस्त से करते रहें। सन्तान को सुयोग्य और स्वावलम्बी बना देना पर्याप्त है। उत्तराधिकार में उनके लिए विपुल सम्पत्ति छोड़ने की बात सोचने का अर्थ है, उन्हें अपाहिज और परावलम्बी बनने जैसी हीनवृत्ति का शिकार बनाना। इससे बालकों को अन्ततः हानि ही हानि उठानी पड़ती है। वे परस्पर झगड़ते हैं। आलसी, अहंकारी और दुर्व्यसनी बनते हैं। कमाई वही फलती-फूलती है जो नीतिपूर्वक कठोर श्रम करते हुए कमाई जाती है। बच्चे इसी मार्ग पर चलते हुए अपना गुजारा करें, इसी में औचित्य है। उनके लिए सम्पदा छोड़ मरने की कृपणता अपनाने में कोई औचित्य नहीं है। बुद्धिमत्ता इसी में है कि परिवार के भरे निर्वाह से जो कुछ बचता हो उसे समाज का ऋण चुकाने में, लोक मंगल में उदारतापूर्वक हाथों-हाथ व्यय किया जाता रहे। इस अर्थ नीति को अब युग मान्यता मिल चुकी है। साम्यवाद, समाजवाद के अन्तर्गत यही व्यवस्था बनने जा रही है। प्रजातन्त्र राष्ट्र भी बढ़ी हुई सम्पत्ति को भारी टैक्सों द्वारा लोक हित के लिए बलपूर्वक वापिस ले रहे हैं। अध्यात्म मार्ग में अपरिग्रह और दान पुण्य की महिमा आरम्भ से ही गाई जाती रही है। साधु, ब्राह्मण वैसी ही निर्वाह पद्धति की सार्थकता अपने ऊपर प्रयोग करते हुए चिरकाल से सिद्ध करते रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वित्तेषणा-तृष्णा की बढ़ी हुई मात्रा अनीति उपार्जन के लिए प्रोत्साहित करती है। विविध-विधि अपराध उसी के कारण होते रहते हैं। यदि निर्वाह के लिए उपार्जन तक सन्तुष्ट रहा जा सके तो श्रम, धन और मनोयोग की पर्याप्त बचत हो सकती है और उसे महान प्रयोजनों में लगाने पर जीवन को धन्य बनाने वाले आधार खड़े हो सकते हैं। इन उज्ज्वल सम्भावनाओं से वित्तेषणा ही हमें वंचित करती है। तृष्णा को सीमित किया जा सके तो दूसरे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य समाने आ सकते हैं और उनमें संलग्न रहकर महामानवों जैसी गतिविधियाँ अपनाया जाना सम्भव हो सकता है।

लोकेषणा में श्रेष्ठ सत्कर्म करते हुए लोक श्रद्धा अर्जित करने का उच्चस्तर ही अपनाये जाने योग्य है। शेष नीचे की सभी उद्धत अर्हताएँ हेय मानी जाने योग्य हैं। अहंकार प्रदर्शन के लिए लोग अनावश्यक ठाठ-बाट रोपते हैं। अमीरी का सम्मान पाने के लिए जितना समय और धन व्यय किया जाता है, प्रदर्शन का आडम्बर संजोया जाता है, शेखीखोरी का घटा टोप रोपा जाता है, उसे छल-प्रपंच भरी विडम्बना के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? इस जंजाल में जितनी शक्ति खपती है यदि उसकी चौथाई भी महानता के सम्पादन में लग सके तो वास्तविक उन्नति का विशालकाय भवन निर्माण उतने भर से ही सम्भव हो सकता है।

आपाधापी, छीना-झपटी, लूट-खसोट, जितनी धन के क्षेत्र में होती है, उससे भी अधिक सम्मान के लिए मचती है। लोग श्रेय सम्मान पाने के लिए आतुर रहते हैं, पर उसके सीधे मार्ग आदर्श चरित्र और सेवा क्षेत्र में किये जाने वाले त्याग, बलिदान की कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाने में कतराते हैं। सस्ते हथकण्डों से उसे अपनाना चाहते हैं। किसी प्रकार प्रवचन वेदी पर जा बैठने और वहाँ दूसरों को बढ़ी-चढ़ी नसीहतें देने की कला प्रवीणता तो सम्मान पाने का सस्ता तरीका मान लिया गया है। येन-केन प्रकारेण लोगों की आँखों में अपना बड़प्पन और जानकारी में परिचय उतार देने की व्याकुलता में अनेक लोगों को नेतागारी का ढोंग बनाते और शौक पूरा करते देखा जाता है। ऐसे लोग जिस-तिस संस्था में घुसने और किसी प्रकार उसका बड़ा पद हथियाने के जोड़-तोड़ मिलाते रहते हैं। यह चतुरता जितनी सफल होती है, उतना ही परिचय क्षेत्र बढ़ता है और उस सम्पर्क द्वारा प्रकारान्तर से अनेक प्रकार के परोक्ष लाभ उठाये जाते हैं। चन्दा डकार जाने और हिसाब-किताब में गोलमाल करने की संस्थाओं में पूरी गुंजायश रहती है। व्यक्तिगत हानि न होने से जाँच पड़ताल भी कड़ी नहीं होती। ऐसी दशा में संस्थाओं पर जिनके अधिकार होते हैं उन्हें पैसे सम्बन्धी गोलमाल करने का भी लाभ मिलता रहता है। यश, सम्मान, परिचय का परोक्ष लाभ और पैसा जैसे लाभों को यदि मात्र स्टेज-कौशल, वाचलता, संस्थावाजी, नेतागीरी के आधार पर सस्ते मोल में खरीदा जा सकता है तो उसे कौन छोड़ना चाहेगा। इसी लूट के माल पर आपा-धापी और हाथा-पाई होती है। गुटबन्दी खड़ी होती है। झूठे-सच्चे इल्जामों की बाढ़ आती है और उस रस्साकसी में उपयोगी संस्थाएँ भी बदनाम तथा नष्ट होती देखी गई हैं। किसी समय जो अमुक संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे वे ही उसकी जड़ें काटते देखे गये हैं। यह सार्वजनिक जीवन का अभिशाप है। सेवा क्षेत्र को कलुषित करने में सबसे विघातक प्रवृत्ति कार्यकर्त्ताओं की पद लिप्सा, अधिकार लिप्सा और सस्ती वाहवाही लूटने की हेय मनोवृत्ति ही प्रधान कारण होती है।

लोकेषणा का उन्माद यदि मन पर से उतर सके तो सार्वजनिक जीवन में ऐसे असंख्य लोकसेवी मिल सकते हैं जो नींव के पत्थर बनकर चिरस्थायी ठोस काम कर सकें और साथियों के लिए अपनी नम्र निस्पृहता के कारण प्राण प्रिय बने रह सकें। लोकेषणा ही उन्हें अनेकानेक प्रपंच सिखाती है। जिस प्रकार वित्तेषणा से प्रेरित लोग अनेकानेक दुष्कर्म अपनाकर अनीति की कमाई करते हैं, ठीक उसी प्रकार लोकेषणा प्रेरित तथाकथित लोक सेवी साथियों को गिराने, उखाड़ने से लेकर अनेकों भ्रष्ट तरीके अपनाते और अपने तनिक से यश, स्वार्थ के कारण सार्वजनिक जीवन में नाक को सड़ा देने वाली दुर्गन्ध गन्दगी पैदा करते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में बड़प्पन की छाप छोड़ने के लिए आतुर व्यक्ति उद्धत प्रदर्शनों में, ठाठ-बाठ में, सज-धज में, शेखीखोरी में समय और धन का बुरी तरह अपव्यय करते हैं। यदि लोकेषणा का उन्माद मस्तिष्कों पर से उतारा जा सके और नम्रता, सज्जनता, सादगी, शालीनता का महत्त्व समझाया जा सके तो उपयोगी कार्यों में लगाई जा सकने योग्य ढेरों शक्ति बच सकती है और उससे ठोस परिणाम प्रस्तुत करने वाले रचनात्मक कार्य सम्भव हो सकते हैं। सादगी और नम्रता से भरा हुआ निरहंकारी स्वभाव हर किसी के प्राणप्रिय लगता है, ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा विरोधियों के मुख से भी निकलती है। वे अपने लिए हर किसी के मन में अपना स्थान बनाते हैं। उच्चस्तरीय श्रद्धा, सम्मान एवं सहयोग के अधिकारी बनते हैं। उद्धत प्रदर्शनों से बड़प्पन की धाक जमाने वाले प्रपंचियों की तुलना में विनम्र सज्जनता कितनी सस्ती और कितनी प्रभावशाली सिद्ध होती है, इसे कोई भी दूरदर्शी व्यक्ति दूसरे सज्जनों की गतिविधियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा अपने अनुभव के आधार पर सहज ही जान सकता है।

वासना, तृष्णा और अहंता के क्षेत्र में बरता गया अतिवाद मनःक्षेत्र को कलुषित करने में संक्रामक रोगों की तरह विघातक सिद्ध होता है। पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा की दुष्प्रवृत्तियाँ चिन्तन तन्त्र को बुरी तरह लड़खड़ा देती हैं। यदि जीवन को सार्थक बना सकने के योग्य उच्चस्तरीय मनोभूमि का निर्माण आवश्यक समझा जाय तो उसे त्रिविधि विनाशकारी विपत्तियों से बचाये रहना ही उचित है।

आत्मिक प्रगति में बाधक-अवरोधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

विश्व के सभी तत्त्ववेत्ताओं ने मनुष्य की मूलभूत सत्ता को 'सत्य शिवं सुन्दरम्' से युक्त माना है। प्लेटो का कहना है कि ''मनुष्य की अन्तरात्मा शक्तियों एवं सौन्दर्य का भण्डागार है, विकृतियाँ तो मन और भौतिक जगत के संयोग की उपज होती हैं।'' प्रसिद्ध दार्शनिक स्पिनोजा ने मनुष्य को पूर्ण माना है। उसका कहना था कि अपनी मूलसत्ता तथा सम्बद्ध निर्देशों की विस्मृति के कारण ही वह अपूर्ण बनता है। रूसो कहता था कि ''सृष्टि के निर्माता ने सभी वस्तुएँ सुन्दर बनायी हैं, मनुष्य तो उसकी सर्वोत्तम कलाकृति है, पर अपने ही हाथों मनुष्य अपने सौन्दर्य को नष्ट करता तथा स्वभाव को विकृत बनाता है।'' सन्त इमर्सन का कथन है कि ''मनुष्य परमात्मा का प्रतीक-प्रतिनिधि है, पर विकृत-आचरण के कारण उस गरिमा को गँवा बैठता है और अन्ततः दुःख कष्ट भोगता है।'' संसार के मूर्धन्य मनःचिकित्सकों में डॉ. विलियम ब्राउन, चार्ल्स युंग, डॉ. एमील कुए आदि की विचारधारा भी लगभग इसी प्रकार की है। वे सभी मनुष्य की मूलभूत सत्ता को सुन्दरतम् परिपूर्ण और शक्तियों का अजस्र स्रोत मानते हैं।

इमील कुए का मत था कि मनुष्य की आत्मा में अनन्त शक्ति है। पर आत्म-विस्मृति के कारण उस सामर्थ्य का लाभ नहीं उठा पता और असमर्थता की अनुभूति करता रहता है। आत्मसत्ता के निर्देशों का परिपालन न करने और बहिर्मुखी मन के आदेशों का गुलाम बने रहने से व्यक्तित्व की पूर्णता खण्डित होती और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है। द्वन्द्व की हालत में आन्तरिक शक्तियों का नियोजन एक दिशा विशेष में नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में मनुष्य के भीतर दो प्रकार के व्यक्तित्व परस्पर विरोधी आचरण करने लगते हैं। अन्तरात्मा अपनी विशेषताओं के अनुरूप प्रेरणा देती है जबकि मन बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का गुलाम होता है। फलस्वरूप दोनों का सामंजस्य नहीं बन पाता। फलतः मनुष्य अपनी सामर्थ्य का सही लाभ नहीं उठा पाता।

आधुनिक मनोविज्ञान की शोधों के अनुसार मानवी सत्ता के भीतर परस्पर दो विरोधी व्यक्तित्वों का संघर्ष अनेकों प्रकार के मानसिक रोगों को जन्म देता है तथा आन्तरिक शक्तियों को क्षीण करता है। मानसिक अशान्ति, क्लेश, भय, चिन्ता, आशंका, इच्छा शक्ति की दुर्बलता, आत्म-विश्वास की कमी तथा अनेकों प्रकार के मानसिक एवं शारीरिक रोगों का एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य के भीतर काम करने वाले दो व्यक्तित्व के बीच परस्पर सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता। यदि उन दोनों के बीच परस्पर एकता बन सके तो मनुष्य असामान्य शक्ति का स्वामी बन सकता है। मनःशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य अपने बाह्य व्यक्तित्व में सैद्धान्तिक दृष्टि से नैतिक, सदाचारी और महान हो सकता है, पर भीतरी व्यक्तित्व में अनुदार, अनैतिक क्रूर और व्यभिचारी बने रहने से अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है। यही हर प्रकार के मानसिक असन्तुलनों का कारण बनता है।

अध्यात्म तत्त्ववेत्ताओं के अनुसार मूलतः अन्तःकरण की संरचना दैवी तत्त्वों से हुई है। स्नेह, सौजन्य, सद्भाव जैसी सत्प्रवृत्तियाँ ही उसमें भरी पड़ी हैं। इस क्षेत्र से जीवन क्रम को श्रेष्ठ बनाने तथा महानता के पथ पर अग्रसर होने की ही अदृश्य प्रेरणाएँ उठा करती हैं। सामान्यतया अन्तःकरण की दैवी चेतना दुष्प्रवृत्तियों को जीवन सत्ता में प्रवेश करने की छूट नहीं देना चाहती, पर जब इस क्षेत्र में निकृष्टता प्रविष्ट करती है तो उसकी सहज प्रतिक्रिया होती है। दोनों के बीच संघर्ष छिड़ता है। यही देवासुर संग्राम है जो मनुष्य के अन्तरंग में चलता रहता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे ही अन्तर्द्वन्द्व के रूप में निरूपित किया है। संघर्ष की प्रतिक्रियाएँ सीमित स्थान तक नहीं रहती हैं-समीपवर्ती क्षेत्र को भी प्रभावित करती हैं। जहाँ युद्ध होते हैं, जिनके बीच लड़े जाते हैं, प्रभाव उन्हीं तक सीमित नहीं रहता। जन-सामान्य भी हानि उठाता है। द्वन्द्व तो भीतर चलता है पर उसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया दिखायी पड़ती है। मन और तन दोनों ही क्षेत्रों से विकृतियाँ शारीरिक, मानसिक आधि-व्याधियों के रूप में फूट-फूटकर निकलती हैं। दुष्प्रवृत्तियाँ आत्मसत्ता पर आधिपत्य जमाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करती हैं। अन्तरात्मा को यह दबाव असह्य होता है। वह विरोध पर अड़ी रहती है, फलस्वरूप मनुष्य के अन्तराल में संघर्ष चलता है जिसके दुष्परिणाम शोक सन्तापों के रूप में, रोग-क्लेशों के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःशास्त्री इस स्थिति को 'डबल परसनाल्टी'-दुहरा व्यक्तित्व कहते हैं। एक शरीर में दो परस्पर विरोधी व्यक्तियों का होना शरीर शास्त्रियों के अनुसार भी हर दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होता है तथा अनेकों प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करता है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में हुई शोधों से भी यह निष्कर्ष निकला है कि एक शरीर में दो व्यक्तित्व का होना मनुष्य के लिए खतरनाक हो सकता है। श्री. एस. जे. डायमण्ड नामक विद्वान एवं न्यूरोसाइकॉलोजी विशेषज्ञ ने एक पुस्तक लिखी है—'इन्ट्रोड्यूसिंग-न्यूरोसाइकॉलोजी।' पुस्तक में बताया गया है कि किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों के मस्तिष्क में व्यक्तित्व की दो परतें विकसित हो जाती हैं तथा स्वतन्त्र रूप से दो मस्तिष्कों के रूप में अलग-अलग व्यक्तित्वों का परिचय देती हुई काम करने लगती हैं। सामान्यतया मनुष्य के दृष्टितन्त्र की कार्यप्रणाली दोनों सेरिब्रेल-हेमीस्फियर के संयुक्त प्रयास से काम करती है, पर किन्हीं-किन्हीं में दाहिने और बायें सेरिब्रेल हेमी स्फियर में परस्पर तालमेल नहीं बिठा पाता और वे स्वतन्त्र तथा परस्पर एक-दूसरे के विरोधी आचरण का परिचय देने लगते हैं। लेखक के अनुसार ऐसे व्यक्तित्वों में सामान्य मनुष्य की तरह एक नहीं, अपितु दो भिन्न-भिन्न दृश्य जगतों का अनुभव होता है।

'साइन्टिफिक अमेरिकन' पत्रिका के नवम्बर १९८१ अंक में प्रकाशित एक शोध प्रबन्ध में डॉ. जे. डाक्स तथा एस. एस. गर्जोनिगा नामक दो चिकित्सा शास्त्रियों का मत है कि मस्तिष्क के दोनों सेरिब्रेल हेमीस्फियर कभी-कभी अपनी-अपनी दिशा के अंगों को परस्पर विरोधी निर्देश भी देने लगते हैं। उदाहरणार्थ एक रोगी के परीक्षण में उन्होंने पाया कि उसका बायाँ हाथ जब भी गाडन का फीता बाँधने का प्रयत्न करता, दाहिना उसी समय उसे खोलने का प्रयत्न करने लगता। इसी प्रकार एक दूसरा रोगी जब भी घास काटने की मशीन की हैंडिल पर एक हाथ रखता। एक हाथ उसे आगे चलाता तो दूसरा हाथ उसे पीछे की ओर उल्टी दिशा में धकेलने लगता। ऐसी स्थिति में रोगी की मानसिक उत्तेजना बढ़ जाती तथा वह अव्यावहारिक आचरण करने लगता। इसी तरह एक तीसरा रोगी जब पढ़ने के लिए बाँये हाथ से पन्ने उलटता तो दायाँ हाथ बार-बार उसे पलट देता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए वह दायें हाथ को नीचे दबाकर उसी के ऊपर बैठ जाता। ऐसी हालत में प्रायः उसका स्वभाव उग्र हो जाता और वह पागलों जैसे व्यवहार करने लगता था। एक अन्य परीक्षण में देखा गया कि एक रुग्ण लड़की जब कभी भी आवश्यकता से अधिक सोती थी अथवा टेलीविजन में अवांछनीय दृश्य देखती थी तो अनायास ही उसका बायाँ हाथ उसकी गाल पर चपत लगाने लगता था। लड़की का कहना था कि जाग्रतवस्था में वह इस कृत्य को रोकने का प्रयास करती पर असफल रहती थी।

प्रख्यात मनःशास्त्री प्रिंस मार्टिन ने अपनी मनोविज्ञान की एक पुस्तक में श्रीमती व्यूसाम्प नामक एक ऐसी महिला का उल्लेख किया है जिसके भीतर एक साथ दो व्यक्तित्व रहते थे। जिसमें एक का स्वभाव सन्त जैसा था जबकि दूसरे का शैतान जैसा। दोनों का व्यवहार परस्पर विरोधी होने से लड़की मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सदा रुग्ण रहती थी। उसके जीवन पर कभी एक व्यक्तित्व हावी रहता तो कभी दूसरा। उदाहरण के लिए अपने नियत स्थान पर सन्त स्वभाव का व्यक्तित्व यदि कोई पुस्तक रख देता था तो दूसरा थोड़ी देर बाद उठाकर किसी ऐसे स्थान पर छुपाकर रख देता था जिसे ढूँढ़ने में भी कठिनाई होती थी। लड़की के निकटवर्ती सगे-सम्बन्धियों ने इस तरह के परस्पर विरोधी व्यवहारों से युक्त व्यक्तित्वों के कृत्यों की पुष्टि की।

मनोविज्ञानियों ने व्यक्तित्वों के अन्तर्द्वन्द्व को समस्त मनोविकारों एवं मनोरोगों की जड़ माना है। आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्तित्व की परतों के अध्ययन-विश्लेषण तक सीमित है। अन्तर्द्वन्द्व की समाप्ति किस प्रकार हो, उसके लिए इतना कहकर चुप हो जाता है कि पस्पर दो व्यक्तियों के रूप में विघटित मानवी सत्ता में ऐक्य स्थापित किया जाय तभी द्वन्द्वों से छुटकारा पा सकना सम्भव है। दूसरा व्यक्तित्व क्यों विकसित हो जाता है जो मनुष्य को दुष्प्रवृत्तियों में, अनैतिक गतिविधियों में निरत करता है ? इस दिव्य द्वन्द्वात्मक स्थिति से छुटकारे के लिए कोई ठोस उपाय मनोविज्ञान नहीं बताता। अध्यात्म मनोविज्ञान की मान्यताएँ इस गुत्थी को सुलझाने एवं समाधान प्रस्तुत करने में सहयोग देती हैं।

अध्यात्म मनोविज्ञान का कहना है कि मानवी अन्तःकरण की संरचना दैवी तत्वों से मिलकर हुई है। अन्तःकरण अन्तरात्मा का क्रीड़ा क्षेत्र है। यहाँ से सदा सत्प्रेरणाएँ उभरती रहती हैं। अन्तःकरण की सद्प्रेरणाओं की उपेक्षा-अवहेलना करने तथा दुष्कृत्यों में निरत होने से अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती तथा मनुष्य को त्रास देती है। मनुष्य की मूलभूत सत्ता दैवी तत्वों से युक्त है तो क्यों कर कोई दुष्कर्मों के संस्कार को मानते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के पशुवत् संस्कार मानवी चेतना पर छाये रहते हैं। उनकी जड़ें मन की अचेतन परतों में गहराई तक जमी रहती हैं। इस जन्म में भी जो पाप-कृत्य किया गया, उसके सूक्ष्म हठीले संस्कार अपना अड्डा जमाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हैं। ऐसी स्थिति में अन्त में सद्प्रेरणाएँ उभरती हैं, पर अभ्यास में पूर्वकृत कुकृत्यों के कुसंस्कार बने रहने से कोई विशेष प्रतिफल नहीं दिखा पातीं। अन्तःकरण की दैवी सत्ता पर कुसंस्कार हावी रहते और मनुष्य को श्रेष्ठता के, महानता के मार्ग पर बढ़ने में भारी अवरोध खड़ा करते हैं।

अधिकांश व्यक्तियों को दुष्प्रवृत्तियों से उबरने की इच्छा होती है। इसके लिए प्रयास भी करते हैं, पर आँधी-तूफान की भाँति हठीले कुसंस्कार अपने प्रवाह में बहा ले जाते हैं और अभीष्ट इच्छा मात्र एक कल्पना बनकर रह जाती है। दुष्प्रवृत्तियों के जकड़े जाल-जंजाल से निकलते नहीं बनता। मनःचिकित्सा शास्त्र एवं आधुनिक मनोविज्ञान इस असमंजस की स्थिति से उबरने का कोई उपाय नहीं सुझाता। अध्यात्म-तत्वेत्ताओं ने इसके लिए तप, तितिक्षा की प्रायश्चित प्रक्रिया को एक समग्र और समर्थ उपचार माना है। मानसिक द्वन्द्वों से उबरने के लिए पूर्व में किये पापों को जहाँ समर्थ मार्गदर्शक के समक्ष प्रकटीकरण आवश्यक है वहीं यह भी जरूरी है कि जो किया गया है उस भूल के लिए सहर्ष प्रायश्चित भी किया जाय। प्रायश्चित द्वारा ही दुहरे व्यक्तित्व से बन आयी मनोग्रन्थियों का उन्मूलन सम्भव है। साथ ही अन्तःकरण की सत्प्रेरणाओं का परिपालन कर सकना सम्भव है। इन प्रेरणाओं के अनुरूप मन का भी चिन्तन चलने लगे तो व्यक्तित्व को पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करना सुगम बन जाता है। अन्तरात्मा अपनी निश्छल तथा श्रेष्ठ विशेषताओं के रूप में व्यक्तित्व में परिलक्षित होने लगे, यही पूर्णता की स्थिति है।

आत्मिक प्रगति का राजमार्ग

अपने आपकी समीक्षा करना, व्यक्तित्व के वर्तमान स्वरूप को समझना आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। क्योंकि इसी आधार पर त्रुटियों का संशोधन और न्यूनता की पूर्ति करना सम्भव है। इस आत्म-निरीक्षण का एक और भी पहलू है कि जो विशिष्टताएँ आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं, उनका यदि विकास नहीं हुआ है तो उसकी आवश्यकता अनुभव करते हुए आत्मोत्कर्ष का प्रयास सम्भव हो सकेगा।

वस्तुतः मनुष्य के पास ऐसा बहुत कुछ है जो सदा अप्रकट और अविकसित ही बना रहता है। मस्तिष्कीय क्षेत्र की अतीन्द्रिय क्षमताएँ और अन्तःकरण की ऋद्धि-सिद्धियाँ ऐसी हैं जो हर किसी के पास न्यूनाधिकता में पाई जाती हैं। यदि आत्म-निरीक्षण की कला हस्तगत हो सके तो मनुष्य इन दिव्य केन्द्रों का स्थान एवं स्वरूप समझ सकता है और उन्हें विकसित करने के लिए वह सब कर सकता है जो सुदृढ़ संकल्प शक्ति के सहारे निश्चित रूप से हो सकता है। योग और तप इसी प्रयोजन के लिए किया जाता है।

यदि लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति भर हो तो भी वह कार्य अमुक कर्मकाण्डों के बलबूते नहीं हो सकता उसके लिए भी आन्तरिक परिष्कार और उपयुक्त चिन्तन- चरित्र अपनाने की आवश्यकता है। तद्विषयक जो परिवर्तन या विकास करना है, उसका स्वरूप सामने आने की बात तभी बनती है जब आत्म-निरीक्षण का सिलसिला परिपूर्ण उत्साह के साथ चलाया जाय।

यह भ्रम जितनी जल्दी दूर हो सके उतना ही अच्छा है कि ईश्वर प्राप्ति या देवाराधन के लिए अमुक कर्मकाण्ड ही सब कुछ है। लोग इसी भ्रम में ग्रसित रहकर अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप पूजा-विधानों में संलग्न रहते हैं और सोचते हैं कि ईश्वर के भी मनुष्य की भाँति चर्म चक्षु ही हैं। वह मात्र क्रिया-कृत्यों को ही देख पाता है किसी का अन्तरंग देखने या परखने की उसमें क्षमता नहीं है या है तो इसे महत्व नहीं देता और हेय व्यक्तियों को भी उनकी क्रियाओं से प्रभावित होकर छाती से लगा लेता है।

पापों के क्षमा होने या उनके नाम प्रताप में नष्ट हो जाने की बात सही नहीं है। तीर्थाटन आदि कृत्यों में भी यदि कोई चाहे तो दिशा निर्देशन प्राप्त कर सकता है। पर पापों के नष्ट हो जाने या कर्मफल के उलट जाने की बात सोचना प्रकारान्तर से ईश्वर की बड़ी व्यवस्था उलट जाने की दुराशा रखना है। प्रभु के दरबार में पुजारियों के साथ पक्षपात होने और बिना पुजारियों के दूध में से मक्खी को निकाल फेंकने की उपेक्षा का कोई विधान नहीं है। इस तथ्य को समझते ही तुरन्त यह समस्या आगे आती है कि हमें अन्तर्मुखी होने का अभ्यास करना चाहिए ताकि आत्म-निरीक्षण के साथ-साथ आत्म-सुधार का प्रयास भी चल पड़े। इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। इस क्षेत्र में कोई सस्ते उपचार, आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते।

आत्म-निरीक्षण में सर्वप्रथम शरीर और आत्मा की भिन्नता अनुभव करने का प्रसंग आता है। इसके बिना वह भ्रान्ति बनी रही रहती है। जिसे अध्यात्म की भाषा में ''माया'' कहा जाता है। माया का सार संक्षेप में इतना ही है कि चेतना अपने आपको मात्र शरीर मानती रहती है और उसके निर्वाह तक सीमित न रहकर उसे सजाने, समृद्ध बनाने, दर्पण दिखाने में लगी रहती है। वासना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तृष्णा और अहन्ता की पूर्ति की ही सफलता एवं प्रसन्नता का केन्द्र बिन्दु मान लिया जाता है। इतना ही नहीं शरीर के साथ सम्पर्क साधने वाले कुटुम्बी, सम्बन्धी, मित्र परिचित ही इस शरीराभ्यास के क्षेत्र में घुस पड़ते हैं। इन्हीं सबको वैभववान बनाने के लिए इच्छाओं और चेष्टाओं का केन्द्रीकरण हो जाता है। जीवन की अवधि और शारीरिक, मानसिक शक्ति का आना इसी क्षेत्र में होता रहता है। कूप मण्डूक जैसी—गूलर के भीतर रहने वाले भुनगों की तरह मनुष्य की स्थिति हो जाती है और वह आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में, आत्मोत्कर्ष एवं ईश्वर प्राप्ति के सम्बन्ध में कुछ गम्भीर विचार तक नहीं कर पाता। फिर सुधार विकास का उपक्रम तो चले ही कैसे ?

आत्म-निरीक्षण का प्रथम चरण आत्म- निरीक्षण जितना गम्भीर और प्रखर होता है उसी अनुपात से शरीर और आत्मा की भिन्नता का वास्तविक बोध होता है। अन्यथा तोता रटन्त की तरह आत्मा परमात्मा की चर्चा का बाल-विनोद चलता रहता है।

माया के बन्धन शिथिल होने या कटने का एकमात्र उपाय है कि अपनी सत्ता की द्विधा स्थिति को समझा जाय। यह अनुभूति विकसित हो सके तो ही आत्मा का महत्व एवं हित सूझ पड़ता है और शरीर के पक्ष में झुकी हुई सारी प्रवृत्ति को सन्तुलित करने का मन होता है। शरीर संसार में अनुरक्त करता है और आत्मा की प्रायः सर्वथा उपेक्षा करता है। यह सोच तक नहीं पाता कि हमारे भीतर आत्मा नाम की कोई वस्तु भी है और उसकी भी कुछ माँग, पुकार, सुख एवं आवश्यकताएँ भी हैं। इस प्रकार की अनुभूति तभी होती है जब शरीर पर अपना सर्वस्व निछावर किये रहने के ढर्रे में हेर-फेर किया जाता है। आत्मा को परमात्मा का सन्देश सुनने और आह्वान को अंगीकार करने की बात अन्तरंग की गहराई तक प्रवेश कर जाती है, तभी यह सूझ पड़ता है कि शरीर की तरह आत्मा के निमित्त भी कुछ किया जाना चाहिए ?

क्या किया जाना चाहिए ? इसके उत्तर में दो तथ्य उभरकर सामने आते हैं-एक यह कि आत्म-गौरव के अनुरूप व्यक्तित्व के ढलने में जो त्रुटियाँ चल रही हैं उन्हें कठोरतापूर्वक नियमन किया जाय। इसी को तप कहते हैं। इस सन्दर्भ में कठोरता बरतनी होती है अन्यथा अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियाँ सहज पीछा नहीं छोड़तीं। तपश्चर्या में शरीर को अकारण काय कष्ट देना व्यर्थ है। इससे तो स्वास्थ्य गड़बड़ाता है। होना यह चाहिए कि ऐसा मनोबल विकसित किया जाय जो दुष्प्रवृत्तियों से मल्लयुद्ध करके उन्हें परास्त कर सके। यह संशोधन पक्ष हुआ।

इसके अतिरिक्त दूसरा पक्ष श्रेष्ठता के अभिवर्धन का है। यह आत्म-विश्वास और आत्म- बल के आधार पर उपयुक्त कार्यक्रम बना लेने से भी सम्भव हो सकता है। पर इसके लिए सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय ईश्वर की उपासना करने से भी सहायता मिल सकती है। इसे योग कहते हैं। योग का तात्पर्य है-जुड़ना। किसके साथ जुड़ना ? विराट् ब्रह्म—समग्र समाज के साथ अपने को जोड़ना और क्षुद्र स्वार्थपरता के सीमा बन्धन शिथिल करने का अभ्यास करना। योगी का दृष्टिकोण समता और क्रिया कल्याण सर्वजनीन हित साधन का होता है। इसके लिए अभ्यासस्वरूप राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग में से किसी का या सभी के समन्वयन का अभ्यास आरम्भ किया जा सकता है। यही है यथार्थवादी आत्मिक प्रगति का राजमार्ग।

चेतना क्षेत्र की सुधि ली जाय

अभी भी संसार के कितने ही क्षेत्रों में ऐसे पिछड़े स्तर के मनुष्य रहते हैं, जिनके स्तर एवं साधनों में आदिम काल की अपेक्षा बहुत थोड़ा ही सुधार-परिष्कार हुआ है इसका कारण एक ही है, सभ्य संसार के साथ घुलने-मिलने से कतराना और आधुनिक उपायों को अपनाने के लिए आकर्षित न होना, जिनके सहारे सुविधा-साधन बढ़ाए और प्रगति के उपलब्ध साधन हस्तगत किए जा सकते हैं। अलगाववादी प्रवृत्ति से इर्द-गिर्द के क्षेत्र में बढ़े-चढ़े विकास-क्रम के साथ उनका सम्बन्ध न जुड़ सका। एकाकी, अलग-थलग व्यक्ति अपनी अविकसित अन्तःप्रेरणा के आधार पर सर्वतोमुखी विकास कर सकें, यह सम्भव नहीं। पिछड़े हुए क्षेत्रों और वर्गों में यही कठिनाई छाई रहती है। इसी से वे सभ्यता का अनुशीलन करने के लिए स्वेच्छापूर्वक आगे बढ़ न सके। किसी ने उनके पीछे पड़कर येन-केन प्रकारेण उन्हें प्रगतिशीलता के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए बाधित नहीं किया। फलस्वरूप आदिम काल से मिलती-जुलती परिस्थिति से घिरे हुए अनेक मनुष्यों को कबीलों को अभी भी दयनीय स्थिति में गुजर करते हुए देखा जा सकता है।

यह तथ्य न्यूनाधिक मात्रा में अधिकांश लोगों पर लागू होता है। उनकी प्रगति, सम्पन्नता, चतुरता एकपक्षीय रहती है। शरीर को निर्वाह के, मनोरंजन के साधन चाहिए। उन्हें जुटाने में ही अधिकांश समय, श्रम, मनोयोग एवं अनुभव खप जाता है। ऐसा आमतौर से होता है, क्योंकि शरीर को ही सब कुछ माना जाता है। उसी को अपना समग्रस्वरूप समझा जाता है और शारीरिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसन्नता, सुविधा का सम्पादन ही सफलता का चिन्ह माना जाता है। अभिरुचि ही कोई दिशाधारा अपनाती है। जिस दिशा में तत्परता-तन्मयता बढ़ती है, उसी क्षेत्र में उपलब्धियाँ भी हस्तगत होती हैं। चूँकि शरीर को सुख-सुविधा पहुँचाने वाली साधन सम्पदा का उपार्जन उपभोग ही जीवन का लक्ष्य बनकर रह गया है, इसलिए उसी स्तर के उपार्जन-अभिवर्धन का माहौल बना और उत्साहपूर्वक स्तर की सफलताएँ प्राप्त हुई हैं। मनःस्थिति ही परिस्थितियों की निर्माता है। इच्छा, संकल्प और पुरुषार्थ के समन्वय को ही उस उपार्जन का श्रेयाधिकारी माना जा सकता है जो व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से हम सबको उपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रगति को भौतिक प्रगति कहा जाता है। क्योंकि उसमें पंचतत्वों से बने भौतिक शरीर को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य पदार्थों को प्राप्त करना उन्हें अनुकूल ढाँचे में ढालना यही जीवन भर होता रहता है। जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त यही क्रम चलता रहता है। चिरकाल से इसी दिशा में सोचा जाता और प्रयास किया जाता रहा है। फलस्वरूप वे सुविधा सम्पदाएँ सामने हैं जो वैज्ञानिक आविष्कारों और निर्माणों के माध्यम से विनिर्मित की गई हैं।

विज्ञान के दो पक्ष हैं—एक पदार्थ विज्ञान, दूसरा चेतना विज्ञान-आत्म विज्ञान। दोनों का अपना-अपना कार्य-क्षेत्र और अपना-अपना प्रतिफल है। चेतना के, आत्मा के सम्बन्ध में लोग कुछ कहते सुनते तो रहते हैं, पर उस सत्ता का स्वरूप, उद्देश्य, आनन्द खोजने के लिए उत्साहित नहीं होते। कारण यह है कि भौतिक क्षेत्र के लिए आकर्षित, उत्तेजित हुई मनोभूमि अपना समूचा चिन्तन और कर्तृत्व इसी एक केन्द्र पर नियोजित किए रहती है। यह सब चलता और बढ़ता भी इसलिए रहता है कि उसके लाभ परिणाम सबके समक्ष प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। जबकि चेतना का स्वरूप आत्मिक क्षेत्र की गहराई में उतरने, अन्तर्मुखी होने और बारीकी से समझने पर ही स्पष्ट होता है। इतना झंझट कौन उठाए ? सम्यक् दृष्टिकोण कौन अपनाए ? उथला स्तर, उथली उपलब्धियों से ही सन्तुष्ट हो जाता है। बच्चों के लिए गुब्बारा, झुनझुना, चाकलेट, बिस्कुट ही बहुत कुछ हैं। उसे बालू के घरौंदे और टूटी टहनियों के बगीचे लगाने में ही उत्साह रहता है, क्योंकि उन कृतियों का प्रतिफल चर्मचक्षुओं से दृष्टिगोचर होता है। बाल-बुद्धि की सीमा प्रत्यक्षवाद तक ही सीमित है। जो तत्काल हाथ लगा, वही सब कुछ है। इन प्रयासों की भावी परिणति प्रक्रिया क्या हो सकती है? यह सोच सकना दूरदर्शी विवेकशीलता का काम है। किन्तु कठिनाई यह है कि उस दिव्य दृष्टि को विकसित होने का अवसर नहीं मिलता। कल्पना, विचारणा, कुशलता, चतुरता जैसे, सभी पक्ष भौतिक उत्पादन उपभोग में ही लगे रहते हैं। इतना अवसर अवकाश ही नहीं मिलता कि चेतना की सत्ता-शक्ति और महत्ता को गंभीरतापूर्वक समझने का प्रयत्न कर सके।

शरीर प्रत्यक्ष दीखता है, वैभव प्रत्यक्ष दीखता है, विनोद का अनुभव होता है, वाह-वाही लूटने में भी अहंता की पूर्ति होती है, इसी परिधि में सामान्यजन सोचते और दौड़-धूप करते पाए जाते हैं। इन संसाधनों से सम्पन्न बनाने में पदार्थ विज्ञान ने सहायता की है। जब ध्यान केन्द्रित हुआ तो इच्छा एवं खोज भी चल पड़ी। फलतः उपलब्धियाँ भी हस्तगत होती और बढ़ती चली गईं। स्थिति सामने है। प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, बल्ब, पंखे, हीटर, कूलर, तार, डाक, रेल, मोटर, जलयान, वायुयान, कल-कारखाने आदि अनेकानेक उपकरण सुविधाएँ सँजोने के लिए सामने पड़े हैं। यह समस्त संसार पदार्थ को अपने ढंग से ढालने और उसके उपयोग करने हेतु नियोजित है। इनके सहारे सुविधा सम्पन्नता के नए-नए क्षेत्र हाथ लगते चले गए। भाषा, लिपि, दर्शन, शिल्प, चिकित्सा आदि क्षेत्र में आश्चर्यजनक अनुसंधान हुए हैं। युद्ध में प्रयुक्त होने वाले ऐसे अस्त्र-शस्त्र विनिर्मित हुए हैं, जिनके सहारे एक सामान्य व्यक्ति क्षण भर में असंख्यों को धराशायी बना सकता है। यह सब पदार्थ विज्ञान की देन हैं। इनका यदि सदुपयोग बन पड़े तो निस्सन्देह मनुष्य इतना सुखी, सन्तुष्ट और प्रसन्न एवं समुन्नत बन सकता है, जितना कि स्वर्गलोकवासियों के सम्बन्ध में सोचते और वैसा सुयोग प्राप्त करने के लिए ललचाते रहते हैं।

आश्चर्य इस बात का है कि तथाकथित प्रगति की चरम सीमा के निकट पहुँच जाने पर भी मानवी सत्ता दिन पर दिन दुर्बल होती जाती है। अस्वस्थता, दरिद्रता, कलह, उद्वेग, अशान्ति, असुरक्षा, आशंका की विपन्नता सामने आती जाती है। अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं, पारस्परिक अविश्वास, भय, आतंक की परिधि छूने लगा है। परिवार टूटते जा रहे हैं, जो किसी तरह एक घर में निवास करते देखे जाते हैं, उनके बीच भी मनोमालिन्य, असन्तोष, अविश्वास सुलगता देखा जाता है। चैन कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं व किसी को नहीं। व्यक्तियों का स्तर गिर रहा है, प्रतिभाएँ बुझ रही हैं। मानवी गरिमा को ज्वलन्त रखने वाली, चिन्तन की उत्कृष्टता और चरित्र की आदर्शवादिता घटती-मिटती जा रही है। मनुष्य शरीर धारण किए हुए होने पर भी लोग श्मशान वाली भूत-पलीत की मनःस्थिति लिए हुए डरते-डराते जीवन व्यतीत करते देखे जाते हैं। दुर्व्यसनों की पकड़ इस प्रकार बढ़ती एवं प्रचण्ड होती जाती है, जिसकी तुलना पौराणिक रूप में ग्राह द्वारा ग्रसे गये गज से की जा सके।

वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सभी क्षेत्रों में अनुपयुक्तता, अवांछनीयता के अराजकता स्तर के घटाटोप छाए हुए हैं। सम्पदा सुविधा का बाहुल्य होते हुए भी उसके वितरण का समुचित प्रबंध नहीं हो रहा है। फलतः अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब होते जा रहे हैं, हर क्षेत्र में अपने-अपने ढंग की उद्दंडता उभर रही है। मर्यादाएँ टूट रही हैं। वर्जनाओं की परवाह नहीं की जा रही है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला मत्स्य न्याय व्यापक क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाता चला जा रहा है। ऐसी दशा में शान्ति की, सन्तोष की, एकता समता की घटोत्तरी होते चले जाना स्वाभाविक है।

इसे विडम्बना ही कहना चाहिए कि एक ओर जहाँ सुविधा-सम्पदा की बढ़ोत्तरी होती जा रही है, वहाँ दूसरी ओर उनके लिए तरसने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। जिसके पास प्रचुर साधन हैं, वे मिल-बाँट कर इसे खाने की बात नहीं सोचते, वरन् उपभोग में आ सकने की सीमा से बाहर जो बचता है, उसे विनाशकारी, आत्मघाती, दुष्प्रयोजनों में लगा रहे हैं। फलतः उन्हें भी ईर्ष्या का, अनीति का कड़ुआ प्रतिफल हाथों-हाथ भोगना पड़ता है। चैन से वे भी नहीं बैठ पाते। जहाँ भूख से अगणित लोग त्रास पाते हैं, वहाँ अधिक खाने से उत्पन्न अपच भी सुसम्पन्नों के लिए विपत्ति का कारण बनता है। सम्पन्न और विपन्न दोनों ही वर्ग अपने-अपने ढंग से अपने-अपने कारणों से दुःख सहते और विपत्ति में फँसते देखे जाते हैं।

इन विसंगतियों का कारण एक ही है, चेतना क्षेत्र में नीति-निष्ठा का अत्यधिक ह्रास। यदि मानवी गरिमा को ध्यान में रखा गया होता, आदर्शों का परिपालन बन पड़ा होता, तो यह अवांछनीयता की स्थिति न आती। इन दिनों वैयक्तिक और सामूहिक क्षेत्रों में कुप्रचलन संव्याप्त है। उनका प्रभाव सामान्यजनों पर पड़े बिना नहीं रहता। संचित कुसंस्कार भी उभरते रहते हैं। देखा यही जाता है कि पतन की दिशा में अनायास ही मन चलता है और ऐसा कृत्य बन पड़ता है, जिसे पशु-प्रवृत्तियों का पक्षधर ही कहा जा सके। इन कारणों से जन सामान्य की मनःस्थिति पतनोन्मुखी ही बनती रहती है। इसी का परिणाम है कि शालीनता को अक्षुण्ण रख सकना कठिन हो जाता है। भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट चरित्र का परिणाम वैसा ही होना चाहिए, जैसा कि इन दिनों व्यापक रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है।

हाथी को अंकुश से, घोड़े को लगाम से, ऊँट को नकेल से, बैल को डंडे के सहारे वशवर्ती रखा जाता है और उपयोगी कृत्य करने के लिए बाधित किया जाता है। मनुष्य को धर्मधारणा के सहारे कुकर्मों से बचाया और सन्मार्ग पर चलाया जाता है।

उपार्जन एक बात है और उसका सदुपयोग दूसरी। शारीरिक और मानसिक क्षमता के आधार पर किसी भी प्रकार का उपार्जन किया जा सकता है, किन्तु उसका सदुपयोग दूरदर्शी विवेक के बिना, नीति-निष्ठा के बिना बन नहीं पड़ता। उस स्तर की क्षमता का होना भी सन्तुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

परिमार्जन-परिशोधन का क्रम न चले तो गंदगी एकत्रित होती चले जाना स्वाभाविक है। शरीर में अनेकों मल निरन्तर बनते रहते हैं। उनका निष्कासन मल-मूत्र, श्वाँस-स्वेद आदि मार्गों द्वारा होता रहता है। घर-आँगन में आए दिन जमा होने वाला कचरा झाड़ू से बुहारा जाता है, बालों और वस्त्रों की सफाई पानी और साबुन से होती है, मन की आन्तरिक दुर्बलता और बाहरी कुप्रभावों के वशीभूत मनुष्य स्वभावतः वैसे आचरण करता है, जैसे कि वह कीट-पतंगों और पशु-पक्षियों की पिछड़ी योनियों में करता रहा है। उस पतनोन्मुख प्रवाह को विवेक और संयम के द्वारा, मर्यादाओं और वर्जनाओं के अनुबंध द्वारा रोका जाता है। इस नियंत्रण और परिष्कृत परिवर्तन के लिए काम करने वाली प्रक्रिया का नाम ही अध्यात्म है। यह विद्या यदि आज पुनः वैसी ही उपयोगी बनायी जा सके, तो ही मानवता को उबारा जा सकता है।

दिव्य संकतों का आधार—अचेतन का उभार

अधूरी नींद आने पर उनींदी स्थिति में प्रायः सपने आते हैं। पेट में कब्ज रहने या किसी अंग विशेष के दुःखने पर भी निद्रा में विक्षेप पड़ता है और सचेतन और अचेतन मस्तिष्क के गड्डु-मड्डु हो जाने से सपनों की शृंखला चल पड़ती है। उनमें से कई ऐसे भी होते हैं जिनका घटित घटनाओं से संबंध होता है। कुछ में चिन्ताएँ एवं इच्छाएँ मूर्तिमान होकर दृश्यमान होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु सभी सपनों के बारे में ऐसी बात नहीं है। कुछ गहरी नींद में आते हैं। शृंखलाबद्ध चलते हैं और सार्थक भी होते हैं। ऐसे सपने प्रायः रात्रि में अंतिम चरण में आते हैं। उनकी मन पर गहरी छाप भी पड़ती है, जबकि निरर्थक होने पर वे बिखरे हुए और धूमिल-विरल होते हैं। उनकी स्मृति दिन चढ़ते-चढ़ते चली जाती है। किन्तु जिनमें कुछ दम होता है, वह जगने के उपरान्त भी स्मृति पर छाये रहते हैं और रह-रहकर याद आते रहते हैं।

कइयों के लिये सार्थक सपने पूर्व सूचना के रूप में आते हैं। जो देखा था वह हो चुका होता है या होने वाला होता है। कईयों में सारगर्भित मार्गदर्शन होता है, उसके सहारे अपनी गतिविधियों को जोड़कर खतरे से बचा जा सकता है अथवा लाभ मिल सकता है। ऐसे सपने प्रायः किन्हीं अदृश्य सहायकों के प्रेरित होते हैं।

मृतात्माओं में कुछ दुष्ट प्रकृति की होती हैं, जो अवसर मिलने पर दिवास्वप्नों के रूप में, उनींदी स्मृति में चिन्ता, भय, निराशा जैसी उत्पन्न करती हैं और आभास कराती रहती हैं, किन्तु जिनका स्तर ऊँचा है, उन्हें पितर कहते हैं। वे अपनी उदार सद्भावना को चरितार्थ करने के लिये दूसरों की सहायता करने की मनःस्थिति में रहते हैं और साधारण मनुष्यों से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी अपनी जानकारी के आधार पर ऐसा परामर्श देती रहती हैं, जिसे अपनाकर मनुष्य अधिक अच्छी स्थिति का लाभ उठा सके। किन्तु ऐसे स्वप्न संकेत ग्रहण करने वालों की मनःस्थिति संवेदनशील होनी चाहिए। उनमें अदृश्य शक्तियों के साथ ताल-मेल बिठा सकने योग्य मानसिक स्वच्छता होनी चाहिए। कपटी, मायावी, पाखंडी, क्रोधी, आतुर, आवेश ग्रसित व्यक्ति इस संदर्भ में सफल नहीं हो पाते। नशेबाजों का मस्तिष्क भी अस्त-व्यस्त रहता है और वे इस स्थिति में नहीं होते कि अदृश्य संकेतों को आकर्षण कर अवधारणा कर सकें।

ऐसी कितनी ही घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं, जिनके स्वप्न माध्यम से किन्हीं को ऐसी सूचना मिली, जिनके सहारे वे आश्वासन और मार्गदर्शन प्राप्त कर सके और उनके सहारे अतिशय लाभान्वित हुए। यदि वह सहायता उन्हें न मिली होती, तो वह सुयोग प्राप्त न कर पाते, जो उन्हें उपलब्ध हुआ।

१७वीं शताब्दी में फ्रांसीसी रेने देकार्ते गणित संबंधी गूढ़ विषयों पर शोधरत थे। प्रश्न ऐसे पेचीदे थे, जिनका हल ढूँढ़ते हुए उन्हें सप्ताहों बीत गये, पर कोई समाधान न मिला। इसी बीच उन्होंने एक सपना देखा, जिसमें संकेत रूप में उनके समाधान बताये गये, जिनकी खोज में वे लगे हुए थे। इस आधार पर वे द्विभागीय वैश्लेषिक ज्यामिति का निर्धारण कर सके और गणित क्षेत्र में मूर्धन्य माने गये।

फ्रांस के एक दार्शनिक कोडोरेक्ट ने भी कितनी ही उलझी गुत्थियों के समाधान स्वप्नावस्था में ही पाये थे। वे बहुधा दिन में जिन तथ्यों को ढूँढ़ न पाते उनके संबंध में रात्रि के लिए निर्णय छोड़ देते और सो जाते। सबेरे आते ही प्रतीत होता कि कोई निष्णात उनसे मिला और उलझनों को सुलझाकर रख गया।

१६वीं शताब्दी में इटली के जेरम कार्टिने ने एक बड़ा ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया पर उसमें स्थान-स्थान पर तथ्यों को जोड़ने की आवश्यकता पड़ती थी। वह सामग्री उपलब्ध करना कठिन था। ऐसी दशा में पुस्तक किस प्रकार प्रामाणिक और सर्वमान्य बनती। इस कठिनाई में उनके स्वप्न सहायक होते रहे। समय-समय पर तथ्य सामने आये। वे काल्पनिक और यथार्थवादी होते थे। उनके जुड़ते रहने से पुस्तक सब प्रकार से प्रामाणिक बन गई।

अठारहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध संगीतज्ञ जिडमेघी वायलिन बजाने में असाधारण प्रतिभा सम्पन्न हुए हैं। उन्हें किसी ने भी वह कला नहीं सिखाई। वादक का कहना था कि रात्रि के समय कोई अदृश्य सहायक उसे जगाकर संगीत सिखाता रहा। इस आधार पर उसकी प्रगति साधारण रीति में नहीं वरन् चमत्कारी गति से अग्रगामी होती रही। इसका परिणाम उसे अपने समय का सर्वोत्तम संगीतकार बनने के रूप में उपलब्ध हुआ। उसने संगीत शिक्षण पर कुछ पुस्तकें भी लिखीं, जिसमें से 'दि डेविल्स ट्रूले' का बहुत प्रसार विस्तार हुआ।

राबर्ट लुइस स्टीवेन्सन ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें से कुछ बहुत ही प्रख्यात हुए हैं। इन प्रख्यात ग्रन्थों में लिटिल प्यूपील, वडबीज, मि. हाइड आदि विशेष रूप से प्रख्यात हैं। लेखक का कथन है कि उसे इन पुस्तकों के प्रकरण, आधार, कथानक एवं उतार-चढ़ाव स्वप्नों के आधार पर ही हस्तगत होते रहे हैं। उसकी निज की पूर्व तैयारी इनके संबंध में नहीं के बराबर थी और उसने तथ्यों को ढूँढ़ने में भी कोई विशेष प्रयास नहीं किया। फिर भी कृतियाँ असाधारण बन पड़ीं। इनका श्रेय उन स्वप्नों को है, जो उन्हें क्रमबद्ध रूप से आते रहे।

अँग्रेज कवि कॉलरिज अपने समय में संभ्रान्त सम्मानित कवियों में रहे हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'कुबला खान' नाम से प्रख्यात है। यह कविताएँ उन्हें कोई आकर स्वप्न में सुनाता था। वे उसी समय उठकर नोट कर लेते थे। जितना अंश भूल जाते, उसे दूसरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिन अपनी समझ से पूरा करते। इसी प्रकार वह रचना पूरी हुई और प्रकाश में आई। जनसाधारण द्वारा सराही और अपना ली गई।

यूनान के दार्शनिक अरस्तू ने अपने ग्रन्थों में स्वप्नों की सार्थकता पर प्रकाश डाला है। प्लेटो कहते थे कि सदा तो नहीं पर कई बार स्वप्नों के माध्यम से मनुष्य को दिव्य संदेश आते हैं और वे जाँच-पड़ताल करने पर तथ्यपूर्ण सिद्ध होते हैं।

स्वप्न विवेचना के संबंध में प्लेटो का ग्रन्थ 'रिपब्लिक' ऐसे अनेक सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है जो बहुत ही तथ्यपूर्ण हैं। इसी में उन्होंने लिखा है कि स्वप्न विद्या में भी प्रवीणता प्राप्त की जा सकती है और अविज्ञात को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। फ्रायड की पुस्तक 'इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि अचेतन मन की सामयिक, भूतकाल तथा भावी घटनाओं की सांकेतिक जानकारियाँ सम्मिश्रित रहती हैं। स्वप्न प्रायः घटनापरक होते हैं, पर उनमें वस्तुतः कुछ संकेत दिए होते हैं। घटनाओं को संकेत रूप में परिणति कर सकने की सूझ-बूझ ही स्वप्न विद्या है। इसको कई प्रकार से उलट-पुलट करके अर्थ करते रहने और तथ्यों के साथ संगति बिठाते रहने की खोज-बीन में किसी भी लगनशील में इतनी प्रवीणता उत्पन्न कर सकती है कि वह अपने तथा दूसरों के स्वप्नों का तात्पर्य बता सके।

जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या

जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक उसकी चार अवस्थाओं में से एक बनी रहती है। इन्हें जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या कहा गया है। इनका स्तर क्रमशः एक से एक बढ़कर है।

जाग्रति वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति सोचता, बोलता, करता, चलता, देखता, सुनता रहता है। संक्षेप में इसे क्रियाशील स्थिति कहना चाहिए। विद्वत्ता, बलिष्ठता, सम्पदा, ख्याति आदि कमाने का अवसर इसी स्थिति में मिलता है। मनुष्य चाहता है कि अधिक से अधिक इसी स्थिति में बना रहे, क्योंकि वैभव उपार्जन से लेकर वासना, तृष्णा, लोभ, मोह को चरितार्थ करने का रसास्वादन इसी स्थिति में मिलता है। साथी, संगी, मित्र, घनिष्ठ इसी स्थिति में साथ रह पाते हैं। सम्पदा का उपार्जन और संग्रह भी इसी स्थिति में हो पाता है, जीवन का बड़ा भाग इसी स्थिति में रहते हुए गुजरता है। इच्छा भी इसी स्थिति में रहने की होती है। रात्रि की संरचना भगवान ने सोने के लिए की है। पर उसका भी बड़ा भाग जागते हुए ही बिताया जाता है। आधी रात तक विविध विधि मनोरंजन, विनोद चलते रहते हैं। जब नींद का बहुत दबाव पड़ता है, विवशता जैसी स्थिति आ जाती है, तभी सोया जाता है।

जाग्रति के अतिरिक्त दूसरी स्थिति है—स्वप्न। स्वप्न नींद की स्थिति में ही देखे जाते हैं। जागृति के अनुभवों को सोता हुआ मनुष्य स्वप्न रूप में देखता है। अपनी कामनाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति इसी स्थिति में होती है। कल्पनाएँ साकार बनकर दृश्यमान दीखने लगती हैं। स्वप्नों में से अनेक तो मात्र हास-परिहास जैसे ही होते हैं। जो शरीर से नहीं बन पड़ता, कल्पना पक्ष का वह भाग दृश्यमान प्रतीत होता है। यह गरीब, अमीर, सम्पन्न-विपन्न सभी के लिए चित्र-विचित्र स्वादों वाला मनोरंजन है। इस स्थिति को जाग्रति का पूरक ही कहना चाहिए। इसे भी मस्तिष्क परिधि की एक आवश्यकता पूर्ति कहा जा सकता है।

सामान्य लोगों के लिए स्वप्न एक प्रकार से नाटक सिनेमा अर्थात् रंगीनी चित्र विचित्र कल्पनाओं की झलक झाँकी कह सकते हैं। वैज्ञानिक इसे ''रैम स्लीप'' (रैपीड आई मूवमेण्ट स्लीप) की स्थिति में मानते हैं। किन्तु जिनका चेतना स्तर असामान्य है, उनके लिए इसे अतीन्द्रिय क्षमताओं की जाग्रति वाली स्थिति कह सकते हैं। मन, बुद्धि तो जागृति में काम करती है, किन्तु चित्त और अहंता निद्रित-अर्धनिद्रित स्थिति में ही क्रियाशील होती है। इस स्थिति में मन के संयम एवं चित्त वृत्तियों के निरोध द्वारा योग साधना जैसी स्थिति उत्पन्न करके प्राप्त किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ तो जागृति के साथ जुड़ी हुई हैं। किन्तु सूक्ष्म इन्द्रियाँ जो सूक्ष्म शरीर से संबंधित हैं, चित्त के सात जुड़ती हैं। अचेतन मन उसी स्थिति में काम करता है, जब जागृति गहरी निद्रा में विलीन हो जाती है। इसे योगनिद्रा भी कहा जा सकता है। योग निद्रा मे दीखने वाले स्वप्न निरर्थक नहीं सार्थक होते हैं। उनमें दूरदर्शन, दूरश्रवण, भविष्यकथन, विचार संचालन, पूर्वाभास, पित्तर जैसी दिव्यात्माओं के साथ सम्पर्क आदि अनेक ऐसी बातें दीख या सूझ पड़ती हैं, जिन्हें अतीन्द्रिय ज्ञान कहा जाता है।

सभी जानते हैं कि निद्रा थकान मिटाती है। तनाव और भारीपन दूर करती है। मस्तिष्क को विश्राम देकर उसके मेधा, प्रज्ञा क्षेत्रों को विकसित, परिष्कृत करती है। नींद के अभाव में उत्पन्न होने वाली बेचैनी को दूर करने के लिए नशीले पदार्थ सेवन किये जाते हैं। उनसे भी आधी-अधूरी, खुमारी आती और आंशिक पूर्ति भर होती है। नींद न आने पर मनुष्य पागल, खूँखार हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मर भी सकता है, इस तथ्य को सामान्य शरीर विज्ञानी भी जानते हैं।

सुषुप्ति—जाग्रति और निद्रा का सम्मिश्रण है। उसमें इतना और होता है कि दिव्य विशिष्टता का एक अंश और जुड़ जाय। इस स्थिति में जो भाव संवेदनाएँ उठती हैं, उनमें आदर्शों का गहरा समन्वय रहता है। लोक-मंगल, जन-कल्याण, पुण्य-परमार्थ, त्याग, वैराग्य जैसी धर्मधारणाओं की अन्तःप्रेरणाएँ उठती हैं। मानवी गरिमा को जीवन्त करने वाले राजमार्ग को अपनाने की उमंग उठती हैं। उसी उभार में मनुष्य ऐसा चिन्तन, चरित्र और व्यवहार विकसित करता है जिसे महामानव स्तर का, देवात्माओं जैसा कहा जा सके।

सुषुप्ति स्थिति में ही ऐसे विचार उठते हैं, जिन्हें दार्शनिक या वैज्ञानिक स्तर का कहा जा सके। भौतिक विज्ञानियों को इसी स्थिति में अभिनव आविष्कारों की सूझ सूझती है। कवि कल्पनाएँ एवं साहित्यिक निर्धारणाएँ उसी स्थिति में प्रकट होती हैं। प्रेरणाप्रद सत्संग इसी स्थिति में बन पड़ता है। सामान्य मनोरंजक चर्चा तो कोई भी विद्वान या वाचाल घण्टों करता रह सकता है, पर जिस कथन का सुनने वालों के अन्तराल पर गहरा असर पड़े, उसे सुषुप्ति से अभिप्रेत मनःस्थिति ही कहा जा सकता है। शास्त्रों का लेखन इसी आवेश में होता है।

तुर्या चतुर्थ एवं अन्तिम स्थिति है। उसमें जीवात्मा परमात्मा के आवेश से भर जाता है। ईंधन में अग्नि के प्रवेश करने पर साधारण लकड़ी में ज्वाला प्रकट एवं प्रदीप्त होती है। यों तो उसका आकार पूर्ववर्ती लकड़ी जैसा ही बना रहता है, पर उसके हर भाग से ज्वालमाल फूटती है। उसमें न तो लकड़ी जैसी पूर्ववर्ती कठोरता रहती है और न काला कलूटा स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। इस स्थिति में पहुँचा हुआ व्यक्ति नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान, क्षुद्र से महान स्तर में विकसित परिलक्षित होता है। वह अपने भीतर दिव्य चेतना का आविर्भाव हुआ देखता है। ज्ञानचक्षु खुलते हैं और इसी विश्व उद्यान में समाहित विराट ब्रह्म के दर्शन होते हैं। ईश्वर साक्षात्कार की यही स्थिति है।

तुर्यावस्था में पहुँचे हुए व्यक्ति योगी, तपस्वी न रहकर देवात्मा, सिद्धपुरुष बनते हैं। उनकी वाणी में शाप, वरदान की शक्ति होती है। अपने पुण्य प्रताप की अभीष्ट मात्रा किसी दूसरे सत्पात्र को हस्तान्तरित कर सकते हैं। शक्तिपात के नाम से इसी अनुदान को जाना जाता है। रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को अपनी संचित दिव्य क्षमता का हस्तान्तरण किया था। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को अपनी यही दिव्य चेतना बला और अतिबला विद्या की साधना कराते हुए उपलब्ध कराई थी।

तुर्यावस्था एक प्रकार की समाधि अवस्था है। जड़ समाधि में शरीर के अवयव निःचेष्ट हो जाते हैं और गति-विधियाँ रुक जाती हैं। किन्तु इस जाग्रति समाधि में क्रियाशीलता तो सामान्यजनों जैसी रहती है, किन्तु अन्तरात्मा में परमात्मा भाव की प्रकटीकरण उभरकर ऊपर आता है। व्यक्ति शारीरिक क्रियाएँ तो सामान्य जनों जैसी करता रहता है, पर उसकी अन्तःचेतना सर्वत्र दिव्य हो जाती है। अपना आपा सांसारिक जीवधारियों जैसा नहीं वरन् देवात्माओं जैसा परिलक्षित होता है। जीवन सृष्टा की धरोहर प्रतीत होती है और सतर्कता यह कहती है कि हर क्षण का ईश्वर की इच्छानुरूप श्रेष्ठतम सदुपयोग बन पड़े। यह इच्छा कल्पना ही नहीं रहती वरन् क्रिया रूप में भी परिणति होती रहती है। अंग-अवयवों की संरचना में कोई अन्तर नहीं आता। शरीर यात्रा भी सामान्य जनों जैसी चलती रहती है पर आदर्श और उद्देश्य असाधारण रूप में ऊँचे रहते हैं। आकांक्षा, विचारणा, भावना और चेष्टा ऐसी होती हैं, जैसी जीवनमुक्त दिव्य पुरुषों की होनी चाहिए।

तुर्यावस्था की खुमारी ऐसी होती है जो एक बार चढ़ जाने पर उतरती नहीं। प्रलोभनों, आकर्षणों और दबावों का कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता जो नीचे गिरा सके और पथ भ्रष्ट कर सके। हर साधक का इसी स्थिति को प्राप्त करना मुख्य लक्ष्य रहता है, बशर्ते कि वह मार्ग में न भटके।

चेतना की परतें व उनका रहस्योद्घाटन

मानवी चेतना जल में पड़ी बर्फ शिला की भाँति है। इसका जितना हिस्सा जागते समय बाहरी क्रिया-कलापों के माध्यम से प्रकट होता है, उससे कई गुना अधिक अन्दर है। स्वप्नों के माध्यम से हम सभी को इसी अन्दर वाले हिस्से की झलक-झाँकी दिखती रही है। यदा-कदा मिलने वाली इस झाँकी से अन्तराल के स्वरूप और स्थिति की जानकारियाँ मिलती रहती हैं। स्थिति काई से ढके तालाब की भाँति है। हवा का झोंका आने पर थोड़ी काई हटी और नीचे का पानी प्रकट हुआ। यदि इस छोटी-सी घटना का गहराईपूर्वक निरीक्षण-अध्ययन किया जाय तो नीचे के पानी के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नींद के झोंकों के बीच मिलने वाली झाँकियों के सम्बन्ध में ठीक यही बात है। यदि झाँकियों की सावधानीपूर्वक विवेचना विश्लेषण की आदत बन पड़े, तो आत्मपरिष्कार आत्मसुधार की दिशा में एक प्रभावी कदम साबित हो सकता है। यह बात सर्वविदित है कि व्यवहार का वृक्ष चिन्तन के बीजों से अंकुरित होता, चरित्र के पौधे के रूप में विकसित हो, व्यवहार विटप के रूप में अपना विस्तार करता है। स्वाभाविक है यह विस्तार बीज के अनुरूप हो। बबूल का बीज तो बड़ा होकर खुद की तथा दूसरों की राह पर काँटे ही बिखेरता। उससे यह उम्मीद कैसे की जाय कि आम के स्वादिष्ट फल खाने को मिलेंगे। आम के लिए तो भूमि को कुरेदकर बबूल के बीज को निकालने आम के बीज को गाड़ने जैसी प्रक्रियाओं में संलग्न होना होगा।

मनोभूमि के सन्दर्भ में भी यही तथ्य लागू होता है। इससे उर्वर बनाने, दुष्चिंतन के बीजों को नष्ट करने, सत्चिंतन को उगाने जैसी प्रक्रिया चल पड़े तो समूचा जीवन बदलता नजर आने लगेगा। स्वप्न की छानबीन इस प्रक्रिया में बहुत अधिक सीमा तक सहायक सिद्ध हो सकती है, यदि इनकी बारीकियों को समझा जा सके। आज के मनोवैज्ञानिक ने भी इस बात को स्वीकार किया है। उनके अनुसार नींद में दिखाई देने वाले सपनों के माध्यम से तीन चीजें उजागर होती हैं, वर्तमान चिन्तन, गहरे पड़े भले-बुरे संस्कार और मनोभूमि की उर्वर या बंजर स्थिति। यही तीन भिन्न-भिन्न रूपों, झाँकियों के माध्यम से स्वप्नों के झरोखों से प्रकट होते अपनी झलक दिखाते रहते हैं।

मानसशास्त्रियों के अनुसार, आन्तरिक चेतना की एक और खूबसूरती है। विचारों को आकार का रूप देना। मान लीजिए किसी व्यक्ति के मन में किसी रोगी की सेवा करने का विचार आया तो वह स्वप्न में अपने रोगी की सेवा करते हुए देखेगा। विचार ऊपरी सतह पर होते हैं और संस्कार गहराइयों में। यही कारण है कि स्वप्नों में इनका आकारों के रूप में उभरना कहीं अधिक अस्पष्ट, प्रतीकात्मक धुँधला यहाँ तक कि कभी-कभी बेतुका सा लगता है।

अन्तराल के किसी कोने को देखकर समूचे के बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती। यदि एक कोना खराब है, तो दूसरा अच्छी भी होगा। कहीं बुरे संस्कारों के बीज छुपे हैं तो कहीं अच्छों के अवश्य होंगे। इस बारीकी को न समझ पाने के कारण मनोविज्ञाम के आचार्य सिंगमण्ड फ्रायड सारे स्वप्नों को दमित वासनाओं का उभरना मान बैठे, वह अपनी किताब, ''इन्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स'' में कहते हैं कि हमारी वे सभी इच्छाएँ अथवा मनोकामनाएँ जिनकी तृप्ति जगने की हालत में नहीं हो पाती, मन की गहराइयों में चली जाती हैं। सामाजिक मर्यादाओं अथवा साधनों के अभाव के कारण इनकी पूर्ति साधारण ढंग से नहीं हो पाती। फलतः ये नष्ट न होकर गहरे में चली जाती हैं और स्वप्नों के माध्यम से अपना प्रदर्शन करती रहती हैं।

फ्रायड के इस कथन में सच्चाई तो है, पर थोड़ी। उसी की बेटी अन्ना फ्रायड और शिष्ट एडलर ने बात साफ की है। इन दोनों के अनुसार वह मनोरोगियों, अपराधियों की मनोदशा का अध्ययन करते रहने के कारण मन के गँदले कोने को बार-बार देखने, झाँकने के कारण समूचे मन को गँदला समझने की भूल कर बैठे। कुछ भी हो भूल तो भूल ही है, इसे सँभालना-सँवारना ही उचित है। एडलर के अनुसार सपनों के द्वारा चिन्तन चरित्र कार्य संचालन के तौर-तरीकों की बारीकियाँ परखी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए दो परीक्षार्थियों के स्वप्न को लें। एक देखता है कि मैं पहाड़ की चोटी पर खड़ा हूँ और दूसरा कि मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ। इसका मतलब है कि पहला आत्मविश्वासी है। दूसरे के मन में अपने प्रति विश्वास की कमी है और वह परीक्षा का लड़ाई जैसा दृष्टिकोण रखता है। कमी को परख लेने पर वह और अधिक पढ़ाई करके आत्मविश्वास को मजबूत बना सकता है।

बात न केवल आत्मविश्वास की है, वरन् अन्यान्य सद्गुणों की भी। यदि कोई लगातार हिंसक घटनाओं, मारपीट, दुर्व्यवहार के स्वप्न देखता है, तो इसका मतलब उसमें करुणा, संवेदना, सहायता की कमी है। इस स्थिति में यदि वह सद्विचारों पर लगातार चिन्तन करके इन गुणों पर आस्था जमाए और व्यवहार के माध्यम से इनको सक्रिय करे तो धीरे-धीरे ये अपने जीवन का अविभाज्य अंग हो जाएँगे। सद्गुणों की जितनी अधिक सघनता होती है, सद्विचारों के द्वारा मन जितना अधिक प्रकाशित होता है, सपने उतनी ही अधिक गहराई की कहानी सुनाते हैं। ''मेमोरीज, ड्रीम्स, रिफलेक्शन्स'' के लेखक मानव मन के आचार्य कार्लयुंग ने इसे स्वीकारते हुए अपने निजी अनुभव से प्रामाणिक ठहराया है। उनका इसी किताब में कहना है कि ''सन् १९४४ में एक दिन मैंने सपना देखा कि एक पहाड़ी सड़क पर टहल रहा हूँ। पास में मन्दिर है। इसके एक के बाद एक दरबाजे खोलने के बाद मन्दिर में घुसा, देखा विभिन्न तरह के फूलों से घिरा एक योगी गम्भीर ध्यान में बैठा है। चारों ओर खुशबू उड़ रही है। योगी के चेहरे की ओर देखा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो पाया कि यह और कोई नहीं, मैं स्वयं हूँ अरे क्या —और नींद खुल गयी।''

इसका विवेचन कर उन्होंने बताया कई दरबाजे अपनी ही चेतना की कई परतें थीं। योगी के रूप में था, उनका आत्मदेव जो विभिन्न गुणों के फूलों से घिरा था। खुशबू और कुछ नहीं इन्हीं गुणों की सुवास थी। बाहर भटकने वाला था, उनका अहंकार। इस सपने के बाद ही उन्होंने अपनी शोध में आत्मा और अहं का ब्यौरा दिया। इतना ही नहीं उन्होंने सेवा साधना सत्चिन्तन के माध्यम से आत्मसत्ता को व्यवहार व्यापी बनाने का क्रम शुरू किया।

हम स्वयं के सपनों की छान-बीन इसी ढंग से करें। इन्हें देखने के बाद ढूँढ़-खोज करें कि किस क्षेत्र में कौन-सी कमी है ? खराबी को ढूँढ़ने के बाद सुधार सम्भव है। सुधार के लिए सद्गुण का अभाव पूर्ति के लिए सद्विचारों का सहारा लें। गहराई से चिन्तन करने से गुण के प्रति आस्था जमेगी, दोषों से विरक्ति होगी। इतना ही नहीं पूर्ण मनोयोग से उसे क्रिया व्यवहार में उतारें। चेतना की गहरी परतों में दुर्गुणों की खरपतवार उखाड़ने, सत्प्रवृत्तियों की फसल रोपने का यही तरीका है।

महर्षि अरविन्द की सहयोगिनी श्री माँ का ''मातृवाणी खण्ड २'' में यही कहना है। उनके अनुसार, आत्मनिरीक्षण के लिए स्वप्नों से अधिक सरल रोचक और गहरा तरीका कोई दूसरा नहीं। इस दशा में व्यक्तित्व की किताब के पन्ने नींद के झोकों से उलटते रहते हैं। इन्हें पढ़कर गड़बड़ियों का सुधार सहज सम्भव है। आचार्य शंकर ने इसी कारण निद्रा को भी साधना की श्रेणी में गिना है। उन्होंने सपनों को झूठा न ठहराकर प्रतिभासिक सत्य की श्रेणी में रखा है। स्वप्नों में गहरे आत्म-निरीक्षण और जागरण में आत्म-सुधार का क्रम चल पड़े, तो व्यक्तित्व का काया-पलट होते देर नहीं लगेगी।

चेतना जगत के अदृश्य संदेश वाहक

मनुष्य जीवन का सर्वाधिक समय सोने में लगता है। यद्यपि दिन के २४ घण्टों में सामान्यतः १६ घण्टे जागते हुए ही बीतते हैं, परन्तु इन १६ घण्टों में अनेक विधि क्रिया-कलाप अपनाया जाता रहता है। यदि एक ही काम में समय लगने की दृष्टि से समय विभाजन और उसका मूल्यांकन किया जाय तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि निद्रा ही मनुष्य का सबसे ज्यादा समय लेती है। स्वस्थ मनुष्य के लिए प्रायः आठ घण्टे नींद लेना आवश्यक समझा गया है।

नींद के सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी प्रकाश में आया है कि उस समय शरीर तो सोया रहता है, किन्तु मन जागता रहता है और वह तरह-तरह की हलचलें किया करता है। जागृत अवस्था में मन के जो क्रिया-कलाप, व्यवहार, आचरण और कार्यों के रूप में अभिव्यक्त होते जान पड़ते हैं, सुप्तावस्था में मन की वही हलचलें 'स्वप्न के रूप में दिखाई देती हैं। जागृत स्थिति में मन की उचंगों को सामाजिक दबाव, नैतिकता और सभ्यता के मानदण्डों से दबाना पड़ता है, उन्हें व्यक्त होने से रोकना पड़ता है। लेकिन स्वप्न एक ऐसी स्थिति है कि वहाँ इस तरह का कोई दबाव अथवा नैतिक बाध्यता नहीं रहती, इसलिए सपनों में मन स्वच्छन्द होकर विहार करता है। इसी आधार पर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्राइड ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया, कि ''प्रत्येक स्वप्न अतीत की अनुभूतियों और दैहिक संवेदनों, विकारों का संयुक्त परिणाम होता है। स्वप्न यह स्पष्ट करते हैं कि हमारा चेतन मन, हमारी भावनाओं के हाथ का एक खिलौना मात्र है।

फ्राइड ने यह भी कहा है कि मन की उचित वासनाएँ ही प्रायः स्वप्न के रूप में प्रकट होती हैं और तरह-तरह के रंग-बिरंगे चित्र दिखाकर अपनी तृप्ति का उपाय सुजती रहती हैं। लेकिन अब यह धारणा पुरानी पड़ चुकी है और यह स्वप्नों का एक पक्ष सिद्ध हुई है, न कि उन्हें समझने या व्याख्यायित करने का सम्पूर्ण आधार। फ्राइड के अनुसार व्यक्ति के अवचेतन को किन्हीं सामान्य और संकीर्ण सिद्धान्तों द्वारा स्वप्न के माध्यम से समझने का दावा किया जाता था और उन्हें अतृप्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति मात्र समझा जाता था। किन्तु अब स्वप्नों को सामान्यतः तीन वर्गों में रखा जाता है, एक तो वह स्वप्न जो शारीरिक दबावों से प्रभावित होने के कारण दिखाई देते हैं, दूसरे प्रकार के स्वप्न मानसिक स्थिति की प्रक्रिया स्वरूप उत्पन्न होते हैं, तीसरी श्रेणी में उन स्वप्नों को रखा गया है, जिन्हें आध्यात्मिक स्वप्न कहा जा सकता है।

शारीरिक दशाओं से प्रभावित स्वप्नों में अपच, उदर विकार, सर्दी-गर्मी की अधिकता, भूख-प्यास, शरीर से किसी वस्तु के स्पर्श होने, सोते समय वातावरण में विशेष बदलाव आ जाने के कारण दिखाई पड़ने वाले दृश्य आते हैं। ऐसे स्वप्नों में अतिरंजना और विकृति की प्रधानता होती है। उदाहरण के लिए सोते समय यदि कोई सुई या कील बगैरह चुभ रही हो, तो स्वप्न में जान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है कि किसी ने भाला या तलवार घुसेड़ दिया हो। सर्दी की अधिकता में बर्फ की सिल्लियों पर लेटने या ठण्डे पानी में डूबने तथा गर्मी में आग से झुलसने जैसे अनेक दृश्य दिखाई पड़ते हैं।

मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले विभिन्न दबावों, इच्छाओं, वासनाओं के आघातों से उत्पन्न स्वप्न दृश्य दूसरी श्रेणी के स्वप्नों की कोटि में आते हैं। इस प्रकार के स्वप्नों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनःशास्त्री कार्ल शेरनल का कथन है कि ''शरीर या मन का प्रत्येक विक्षोभ एक विशिष्ट प्रकार के स्वप्न को उत्पन्न करता है। यह ठीक है कि स्वप्न तथ्यों पर आधारित होते हैं, किन्तु वे तथ्यों की सीमाओं से बँधे नहीं होते। उनमें कल्पनात्मक उड़ान भी भरपूर होती हैं।

तीसरी श्रेणी के स्वप्न वे हैं, जिन्हें आध्यात्मिक कहा जाता है। इन्हें अतीन्द्रिय भी कहा जा सकता है। फ्रायड ने इस तरह के स्वप्नों को यौन कुण्ठाओं के द्वारा प्रेरित और दमित इच्छाओं का प्रतीक कहा था, वही स्वप्न अब अतीन्द्रिय अनुभूतियों के आधार पर सिद्ध हो रहे हैं। विभिन्न अनुसन्धानों, प्रयोगों और परीक्षणों द्वारा यह भली-भाँति स्पष्ट हो चुका है कि स्वप्न मात्र दमित यौन आकांक्षाओं अथवा कल्पित क्लिष्ट मनोविकृतियों के दायरे में नहीं सिमट सकते, अपुति उनके विविध वर्ग एवं स्तर हैं। अतीन्द्रिय अथवा आध्यात्मिक स्वप्न भी उनमें से एक है।

अतीन्द्रिय अनुभूतियों के स्पष्ट प्रमाण देने वाले विभिन्न स्वप्नों की वैज्ञानिक छान-बीन से यही संकेत मिल रहे हैं कि व्यक्ति का अवचेतन मनुष्य के सामूहिक अवचेतना का ही एक अंग है। उसका विस्तार विराट् और महत् है, विश्व के अनेक आविष्कार इसी अवचेतन की कृपा से सम्भव हुए हैं। हेनरी फार डेसफार्टिस, डन पाइनकेयर, जैसे गणितज्ञों को स्वप्न से मार्गदर्शन मिलने की घटनाएँ सर्व-विदित हैं। सिलाई की सुई से लेकर बन्दूक के लिए शीशे के छर्रों और मनुष्यों तक की सैकड़ों वैज्ञानिकों, आविष्कारों की सफलताओं का आधार स्वप्न प्रेरणाएँ रही हैं। विश्वविख्यात संगीतकार मीजार्ट को एक ललित संगीत धुन एक ही बग्घी में बैठकर कहीं जाते समय जरा भी झपकी लेने के वक्त सूझी। वायलिन बाद तारालिनी को 'द ट्रेविल्स सानेट' नामक धुन पूरी की पूरी स्वप्न में दिखाई पड़ी थी। ये धुनें काफी प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुईं। विश्व प्रसिद्ध संगीतकार चैम्पीन भी अपने संगीत सृजन की प्रेरणाएँ सपनों में पाते थे। प्रसिद्ध नृत्यांगन मेरी विगमैन ने ''पास्तेरोल'' नामक एक नृत्य की प्रेरणा एक स्वप्न द्वारा ही प्राप्त की थी। हेनरी भूर पाठलो पिकासो, एडयू वेथ, वान गाँगासल्वाडोर-डाली आदि प्रख्यात चित्रकारों की सृजन चेतना में स्वप्नों का बड़ा हाथ रहा है।

साहित्यकारों का तो कहना ही क्या ? पुश्किन, गेटे, शेक्सपीयर, टालस्टाय आदि सैकड़ों लेखकों ने स्वप्न में प्राप्त हुए संकेतों, प्रेरणाओं, निर्देशों और परामर्शों के आधार पर एक से एक अनूठी और ऐतिहासिक कृतियाँ सृजीं। प्रख्यात यूनानी लेखक होमर अँग्रेजी साहित्यकार कालरिज, एडगर एलनपो आदि ने अर्द्ध चेतन स्थित में, स्वप्न लोक में विचरण करते उन्हीं प्रेरणाओं के आधार पर अनेक रचनाओं का सृजन किया।

इसी प्रकार अनेक गणितज्ञों ने गणित की जटिल समस्याओं को स्वप्नों के माध्यम से अवचेतन की झलकियों के आधार पर सुलझाया। वैज्ञानिकों ने इस आधार पर अनेकों महत्वपूर्ण आविष्कार किये हैं। कवियों ने अमर काव्यकृतियाँ रची हैं, कथाकारों और नाट्यकारों के स्वप्नों के माध्यम से रचनाओं के प्लाट प्राप्त किये हैं, इन स्वप्नों का विश्लेषण अभी सम्भव नहीं हुआ है, पर यह तथ्य है कि अनेक व्यक्तियों ने स्वप्नों के माध्यम से वर्तमान में प्रस्तुत जटिल गुत्थियों का समाधान प्राप्त किया और उन्हें सुलझाया। अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों के मूल में स्वप्नों की प्रेरणा होने तथा साहित्यिक कृतियों का आधार मिलने की सैकड़ों घटनाएँ मिलती हैं। उनमें से कई तो विश्वविख्यात हैं। प्रश्न उठता है कि स्वप्नों का कारण यदि मन की दमित और कुंठित इच्छाएँ वासनाएँ ही हैं, तो ये महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक स्वप्नों के पीछे कौन-सी दमित आकांक्षाएँ काम करती रही थीं, जिन्होंने सृजन और निर्माण की नई-नई धाराओं को निःसृत किया।

इन सभी घटनाओं का विश्लेषण करने के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि स्वप्न में मानवीय मस्तिष्क का अधिक विस्तृत और सशक्त भाग, जिसे अवचेतन कहा जाता है, जागृत और क्रियाशील रहता है तथा व्यक्ति के मन की संरचना के अनुसार वह विश्वव्यापी गतिविधियों से गहराई के साथ सम्बद्ध हो सकता है। अतीन्द्रिय स्वप्नों का यह एक प्रकार है और सर्व सामान्य भी यदा-कदा इस प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त करता है। जब कोई सुलझाये नहीं सुलझ रही हो, मन बहुत बेचैन और व्यथित हो तो न जाने कहाँ से कई बार ऐसे समाधान सूझ पड़ते हैं कि चमत्कृत रह जाना पड़ता है। इसे सृष्टा की अनुकम्पा और करुणा ही कहा जाना चाहिए कि उसने अपनी प्रिय सन्तान के लिए स्वयं उत्पन्न की गई समस्याओं के लिए भी समाधान के ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्रोत प्रस्तुत किए हैं और न सही समस्याएँ, अनेक महत्वपूर्ण प्रेरणाएँ सृजन के सन्देश इस विचित्र माध्यम से प्राप्त होते हैं।

मनुष्य तुच्छ और घृणित है किन्तु दिव्यतम भी

मनुष्य सब कुछ है और कुछ भी नहीं—यह तथ्य परस्पर विरोधी दो धाराओं का प्रतिपादन करते हुए परिस्थिति के अनुसार दोनों ही प्रकार सही हैं।

अविकसित रूप में मनुष्य एक गया-गुजरा पशु है। प्रकृति प्रदत्त शारीरिक क्षमता उसकी स्वल्प क्षेत्र में है। कुत्ते जैसा सूँघना, हिरन जैसा उछलना, घोड़े जैसा दौड़ना, बैल जैसा श्रम करना भी उसके लिए अशक्य है। फिर हाथी, सिंह, व्याघ जैसों का तो वह मुकाबला करेगा ही कैसे और तो और बन्दर और बिल्ली की तरह पेड़ों पर भी नहीं चढ़ सकता। भार वहन में वह गधे के भी समतुल्य नहीं है। ऋतु प्रभाव को खुले शरीर पर बर्दाश्त करना अपवाद रूप में ही सम्भव है—जबकि अन्य सभी पशु बिना परिधान के जीवनयापन करते हैं। पशुओं के बच्चे जन्मते ही माँ को पहचानना और अपनी समझ से माँ के स्तन एवं भोजन स्वयं आरम्भ कर देते हैं, इसमें किसी दूसरे की सहायता नहीं लेनी पड़ती, इस दृष्टि से मनुष्य अपने पशु वर्ग की बिरादरी में बहुत ही पिछड़ा हुआ है।

विकसित और समर्थ वह तब बनता है, जब मानसिक चेतना का विकास एवं प्रयोग करने लगता है। बुद्धिबल उसकी विशेषता है, उस पर धार दूरदर्शिता की खराद पर धरी जाती है। महानता का आरम्भ वहाँ से होता है जहाँ से अपने को कर्त्तव्य मर्यादा के अन्तर्गत नियन्त्रण में लाता है—संयमी बनता है और उदार दृष्टिकोण अपनाकर दूसरों के प्रति ममता, करुणा जैसी कोमल संवेदनाओं से भाव भूमिका को समुन्नत बनाता है। वस्तुतः इन चेतनात्मक विभूतियों से ही मनुष्यता और महानता की मानवी गरिमा अविछिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

उसकी चेतना प्रसुप्त पड़ी है। वह मात्र आहार, निद्रा, भय, मैथुन, जैसी पशु प्रवृत्तियों से ही प्रेरणा ग्रहण करता है, उसका चिन्तन इसी छोटे क्षेत्र में अवरुद्ध रहता है। ऐसे व्यक्ति जिन्दगी तो जी लेते हैं, पर वह निरर्थक स्तर की होती है। जीव-जन्तु इन्हीं कार्यों में लगे रहते हैं और सृष्टि क्रम की धुरी पर लुढ़कते हुए जन्मते, बढ़ते और मृत्यु के ग्रास बनते हैं। मनुष्य जन्म जैसा सुविधा-सम्पन्न साधन प्राप्त करके भी जो नर पशु भर बना रहा, उसे 'तुच्छ' कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं।

कई बार तो वह तुच्छ से भी गई-गुजरी स्थिति पर जा पहुँचता है, जब वह दुष्ट, क्रूर, क्रोधी, स्वार्थी, कृपण और उद्धत बनकर मानवी शालीनता का उल्लंघन करने पर उतारू होता है। नृशंस और अपराधी मनोवृत्ति का व्यक्ति असुर या पिशाच कहा जाता है।

'सब कुछ है' के प्रतिपादन में मनुष्य का यह स्तर आता है, जिसमें उसके सद्गुण और सत्कर्म सुविकसित स्थिति तक पहुँचे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सचमुच बीज रूप में उसके अन्दर वे विशेषताएँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें दैवी कह सकते हैं। वे विकसित हो सकें तो महामानव, ऋषि, देवता ही नहीं भगवान बन सकना भी उसके लिए सम्भव है। उसके भीतर समस्त दिव्य सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। उन्हें विकसित करने और सदुपयोग में लाने की चेष्टा में निरत रहकर वह प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है। शास्त्रकार ने सच ही कहा है—मनुष्य से बढ़कर इस संसार में और कुछ भी नहीं है। उसे बहुत कुछ ही नहीं सब कुछ भी कहा जा सकता है।

अनर्थमय, निरर्थक एवं सार्थक जीवन इन तीन धाराओं में से वह किसी को भी चुन लेता है और निकृष्टता से लेकर उत्कृष्टता के किसी भी स्तर पर वह निश्चित रूप से पहुँच सकता है, इसलिए वह अद्भुत है और अनुपम भी। उसकी चेतना की मूलसत्ता सर्व समर्थ समस्त सम्भावनाओं से भरी पूरी कही जा सकती है।

सब कुछ होते हुए भी वह कुछ नहीं, तब बनता है जब उसकी चेतना अविकसित रह जाती है अथवा कुमार्ग की ओर अग्रसर होती है। श्रेष्ठता और निकृष्टता के दोनों ही तत्व उसके भीतर विद्यमान हैं। पानी नीचे सहज ही ढुलता है, निम्नगामी दुष्प्रवृत्तियाँ गिराने का काम सहज ही कर लेती हैं, पर ऊँचा चढ़ाने के लिए प्रबल-प्रयासों की जरूरत पड़ती है। सद्ज्ञान सम्बर्धन का-बौद्धिक आधार और सत्कर्म का-व्यावहारिक वातावरण पैदा करना, जिस शिक्षा का कार्य है, वस्तुतः मानवी महानता का श्रेय उसे ही दिया जा सकता है। धर्म और अध्यात्म का दर्शन उसी महानता सम्बर्धन की-सब कुछ बनाने की भूमिका सम्पन्न कर सकने के लिए बनाया गया है। मानवी प्रकृति का वही सबसे बड़ा आधार है।

आत्मदेव परामर्श नहीं मानता

भागवत् माहात्म्य में एक कथा है, आत्मदेव नामक ब्राह्मण की। कथा लौकिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थों में प्रेरक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मण 'आत्मदेव' तुंगभद्रा नदी के किनारे रहता था। साथ रहती थी पत्नी नाम था 'धुँधली'। आत्मदेव निर्मल स्वभाव के थे, घर में खाने-पीने की ठीक व्यवस्था थी। परन्तु पत्नी क्रूर, झगड़ालू स्वभाव की थी। उनके सन्तान भी नहीं थी। इसलिए दुःखी रहते थे।

एक बार जंगल में नदी के किनारे एक सन्त मिले। आत्मदेव ने अपना दुःख प्रकट किया। कहा पुत्र हीन, कर्कश पत्नी इन कारणों से दुःखी आत्महत्या करने का मन होता है। आप कृपा करें तो ही जीवन में रस आ सकता है।

सन्त ने कहा अनेक सत्पुरुषों की पत्नियाँ कर्कश हुई हैं। उससे उन्होंने घर से मोहमुक्ति पायी और ईश कार्य में लगे। तुम भी ऐसा ही करो। पुत्र न होना तो ईश कार्य करने वाले के लिए वरदान होता है। पुत्र तो दुःख रूप भी सिद्ध होते हैं, ईश कार्य तो सदैव कल्याणकारी है। तुम उसी ओर ध्यान लगाओ।

आत्मदेव की समझ में बात नहीं आयी। वह अपने पक्ष में तर्क देते हुए बोले, **''अपुत्रस्य गतिर्नास्ति''** अपुत्री की सद्गति नहीं होती। मुझे सद्गति के लिए पुत्र चाहिए।

सन्त ने समझाया भागवत् शास्त्र में यह भी लिखा है कि पुत्र से सद्गति नहीं मिलती। पुत्र तो लगभग सभी के होते हैं। पुत्र से सद्गति मिलती तो सभी को सद्गति मिल जाती है। परन्तु ऐसा होता नहीं है। पुत्र द्वारा श्राद्ध, पिण्डदान से सद्गति की कामना करने वाला पिताहीन माना गया है। सद्गति तो केवल सत्कर्मों से मिलती है। असली श्राद्ध श्रद्धापूर्वक किया गया कर्म है। पिण्ड शरीर को कहा गया है। अपना शरीर ईश्वरार्पण कर देना, उसी के काम में पूरी तरह लगा देना वास्तविक पिण्डदान है। इसलिए तुम सद्गति के लिए पुत्र की कामना छोड़कर सत्कर्मों की कामना करो।

परन्तु ब्राह्मण आत्मदेव नहीं माना, किसी भी तरह पुत्र पाने के लिए अड़ गया। सन्त ने उसे एक फल दिया कहा अपनी पत्नी को यह श्रद्धापूर्वक सेवन करा देना। उस समय पर सन्तान उत्पन्न होगी। ब्राह्मण फल लेकर घर गया, पत्नी को दिया। दुष्टा पत्नी श्रद्धा के स्थान पर कुतर्क गढ़ने लगी। गर्भधारण के कष्ट से भयभीत होने लगी। उसकी छोटी बहिन गर्भवती थी। उसने सुझाया, ''दीदी तुम गर्भधारण का नाटक करो, मेरा बच्चा अपना बच्चा बतलाकर छुट्टी पा लेना।''

धुँधली को यह सलाह जँच गयी। फल गऊ को खिला दिया। बहन के घर प्रसव के लिए गयी। उसका बच्चा अपना बच्चा कहकर लौट आयी। आत्मदेव प्रसन्न हुआ। धुँधली ने अपने पुत्र का नाम रखा—धुँधकारी। बालक पहले तो प्यारा लगा पर ज्यों-ज्यों बढ़ा उसके कुसंस्कारों से सब तंग होने लगे। वह मनमानी करने लगा, रोकने पर माता को पीटने लगा। अब आत्मदेव को लगा कि इससे तो निपुत्री ही भले थे।

उधर सन्त के फल के प्रभाव से गऊ के गर्भ से गौकर्ण हुए। वे विद्वान, सुसंस्कारी निकले। उन्होंने पिता आत्मदेव को घर का मोह छोड़कर तपस्वी जीवन जीने की सलाह दी। उससे उन्हें शान्ति मिली। धुँधकारी अपने कुकृत्यों से जल्दी मरा और प्रेत योनि में जा पड़ा। गौ कर्ण ने उसे भगवत् चरित्र सुनाकर उसके कुसंस्कार छुड़ाये तब वह मुक्त हुआ।

यह लौकिक अर्थ हुआ। आध्यात्मिक अर्थ हर व्यक्ति पर लागू होता है। आत्मदेव मनुष्य के अन्दर आत्म-चेतना जीव है। उसकी पत्नी है—धुँधली, अर्थात् अविकसित बुद्धि जिसे धुँधला दीखता है। वह लौकिक कामना करता है, सन्त का परामर्श नहीं मानता। इसलिए दुःख को न्यौता देता है। धुँधली बुद्धि सन्त का सत्परामर्श कैसे स्वीकार करती। उसे तो छोटी बहन 'स्वार्थ बुद्धि' का प्रस्ताव अच्छा लगा। तप से बचो, पर पुत्र का लाभ लो।

कुसंस्कारी पुत्र धुँधकारी 'स्वार्थ बुद्धि' द्वारा पैदा स्वार्थी स्वभाव है। अहंकार उसका मुख्य गुण है। वह मनमानी करता है, बुद्धि और जीव को भी सताता और पीटता है। सब नर्क का कष्ट पाते हैं। पर सन्त के प्रसाद के प्रभाव से गौकर्ण 'इन्द्रियों के सुसंस्कार' जो सत्कर्मरत हैं, वे सहायता करते हैं। आत्मदेव को वैराग्य और धुँधकारी को निरहंकारिता सरलता का संस्कार देकर उन्हें कष्ट से छुड़ाता है।

आत्मदेव स्वयं निर्मल हैं, पर सन्त का परामर्श नहीं मानता। धुँधली को अपने प्रभाव से निर्मल नहीं बनाता, स्वयं उसके चक्कर में फँस जाता है। जो अन्त में दुःख से त्रस्त होकर किया, वह पहले सन्त के सद् परामर्श से करता व धुँधली को सुसंस्कार दे पाता तो दुःख के चक्र में लम्बे समय तक क्यों पिसता ?

आत्मा को उत्कृष्ट वातावरण का लाभ दिया जाय

आमतौर से भौतिक जीवन ही व्यवहार में आता है और उसी की भली-बुरी प्रतिक्रियाएँ मन पर छाई रहती हैं। संसारी लोगों की प्रमुख अभिरुचि शारीरिक वासना के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपभोग तथा मानसिक संग्रह तृष्णा में जकड़े रहता है। अहंकार का परिपोषण ही महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र होता है। निर्वाह की आवश्यकताएँ स्वल्प होते हुए भी मनुष्य वासना, तृष्णा और अहंता से प्रेरित होकर निरन्तर व्यस्त रहता है। इनकी पूर्ति के साधन जितने जुटते हैं, आकांक्षाओं की आग उतनी ही तीव्र होती जाती है। फलतः मनुष्य जीवन जैसे सुर दुर्लभ अवसर का अधिकांश सार तत्व इसी को भगदड़ एवं आपाधापी में लग जाता है। स्वजन-सम्बन्धियों से लेकर मित्रों और हितैषियों का सारा परिकर अपने विविध-विधि दबाव डालकर इसी रीति-नीति को अपनाये रहने के लिए बाध्य करता है। चारों ओर का घटनाक्रम, अप्रत्यक्ष रूप से अन्तःचेतना पर वही संस्कार डालता है कि शौक-मौज के साधन जुटाना ही एक मात्र जीवन लक्ष्य है। पूजा पाठ की कुछ चिन्ह-पूजा चलती है, तो उसका उद्देश्य भी इतना भर होता है कि किसी प्रकार इन सस्ते कर्मकाण्डों की उलट-पुलट करके देवी-देवताओं को रिझाया जाय और उनसे मनोकामना पूर्ति का वरदान पाया जाय। इस प्रकार नैतिक, अनैतिक, क्रिया-कलापों द्वारा आकांक्षा और चेष्टा मात्र भौतिक सुख साधन सम्पादित करते रहने की ही होती है। भौतिकता की प्रवृत्ति स्वभाव का अंग बन जाती है। इसीलिए उससे ऊँचे उठकर आत्मा की समस्याओं एवं आवश्यकताओं को समझ सकना सम्भव ही नहीं हो पाता।

यदि व्यक्तित्व का वह अंश जिसे अन्तरात्मा कहते हैं, को भी महत्व दिया जाय और उसके परिष्कार एवं परिपोषण की भी आवश्यकता समझी जाय तो फिर नये वातावरण में अपने को रखते रहने के साधन जुटाने पड़ेंगे। बहिरंग जीवन बाह्य परिस्थितियों और व्यक्तियों से ही बनता है, ढलता है। आमतौर से मनुष्य का व्यक्तित्व, गुण, कर्म, स्वभाव, उसी ढाँचे में ढला होता है, जैसा कि वातावरण उसे मिला है। यदि आध्यात्मिक जीवन का महत्व समझा गया है और उसकी उपलब्धियों के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ है, तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि उच्चस्तरीय वातावरण में रहने का भी साधन जुटाया जाय। ऐसी प्रभावोत्पादक परिस्थितियों का निर्माण किये बिना मात्र पढ़ने, सुनने से व्यक्तित्व को भौतिकता की प्रगाढ़ जकड़न से छुड़ाकर आत्मिक चेतना उभारने की दिशा में प्रगति कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव हो सकेगा।

कठिनाई यह है कि प्रभावोत्पादक आध्यात्मिक वातावरण कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता। तथाकथित योगाश्रमों का बाह्य स्वरूप भर आध्यात्मिक लगता है। भीतर घुसते ही वहाँ भी वे ही प्रवृत्तियाँ नये परिवेश में काम कर रही होती हैं, जिनसे छूटने के लिए इन आश्रयों का सहारा लिया गया था। एकान्त गुफा में रहने की कल्पना और भी जटिल है। वहाँ निर्वाह की सामान्य आवश्यकताएँ भी स्वावलम्बनपूर्वक नहीं जुट सकतीं। इसके लिए किन्हीं का सहारा तकना पड़ता है। फिर सामान्य जीवन में अनेक काम परिवारी लोग कर देते थे अथवा पैसा देकर दूसरों से करा लिये जाते थे। पर एकान्त जीवन में वह सारे अनभ्यस्त झंझट स्वयं ही ओढ़ने पड़ते हैं। शरीर यात्रा की आवश्यकताएँ ही इतनी बढ़ी-चढ़ी होती हैं कि एकाकी जीवन का अधिकांश समय उसी का ताना-बाना बुनने में लग जाता है। इससे उस प्रयोजन में भारी अड़चन उत्पन्न होती है। जिसके लिए कि घर छोड़ने और एकान्त में रहने का जोखिम उठाया गया था। प्राचीनकाल की परिस्थितियाँ अब नहीं रहीं, ऋषि मुनियों के समय वाले सुविधाजनक वन-जंगल नहीं रहे और न वैसी स्वल्प सन्तोषी-कष्टसाध्य क्रम अपनाकर भी प्रसन्न रह सकने की मनःस्थिति है। ऐसी दशा में आत्मिक वातावरण प्राप्त करके अन्तःचेतना के परिष्कार का उपयुक्त साधन जुटा पाना बड़ा कठिन पड़ता है।

कुछ सन्त, सज्जन, मनीषी, तत्वज्ञानी संसार में हैं तो, पर उनकी एक कठिनाई अत्यधिक व्यस्तता होती है। स्पष्ट है कि जिसने जीवन का मूल्य समझा है, वह अपनी श्वाँसों में से प्रत्येक को रत्न राशि से बढ़कर मानेगा और एक-एक क्षण का श्रेष्ठतम उपयोग करने के लिए योजनाबद्ध रीति-नीति अपनाये होगा। उसे निश्चित रूप से समय की कमी रहेगी। कम से कम इतना अवकाश उसे किसी भी प्रकार न मिलेगा, जब किसी अध्यात्म मार्ग के जिज्ञासु की सुविधा एवं इच्छा के अनुरूप अपना समय देता रह सके। ऐसे महामानवों के दर्शन, प्रणाम, आशीर्वाद, जितने स्वल्प सम्पर्क से ही जनसाधारण को सन्तोष करना पड़ता है। कभी सामूहिक प्रवचन का लाभ भी मिल सकता है, पर प्रभावोत्पादक वातावरण तो निरन्तर एकाकी सम्पर्क से ही सम्भव होता है।

आत्मिक प्रगति के आवश्यक साधनों में ऐसा प्रभावोत्पादक सम्पर्क एवं वातावरण आवश्यक है, जिसके सहारे लगभग वैसे ही संस्कार बन सकें, जैसे कि संसारी वातावरण ने अन्तःचेतना को भौतिकता के रंग में सराबोर कर दिया है और लोभ-मोह के बन्धनों में मजबूती के साथ जकड़ लिया है। सच्चा आत्मोत्कर्ष इस प्रकार की सुविधा जुटाये बिना और किसी प्रकार सम्भव हो ही नहीं सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस दिशा में प्रथम चरण 'स्वाध्याय' का है। महामानवों, तत्वदर्शियों के साथ सम्पर्क मिलाना और उनके अन्तःकरण के साथ चाहे जिस समय चाहे जितनी देर तक लिपटे रहना, इसी सरल उपाय से सम्भव हो सकता है जिसे स्वाध्याय के नाम से जाना जाता है। मृतक अथवा जीवित-निकटस्थ अथवा दूरस्थ मनीषियों के साथ चाहे जिस विषय पर खुले मन से विचार विनिमय करते रह सकना, इसी उपाय से सम्भव हो सकता है। इसलिए शास्त्रकारों ने स्वाध्याय का महत्व भजन से कम नहीं वरन् बढ़कर बताया है। **''स्वाध्यायान्मा प्रमदतव्य श्रुति वचन''** में सदुद्देश्य रीति-नीति अपनाने वालों के प्रति कठोर अनुशासन निर्दिष्ट किया है कि किसी भी कठिनाई में स्वाध्याय से प्रमाद मत करो। जिस प्रकार नित्य स्नान, मंजन, कपड़े धोना, बुहारी लगाना, बर्तन साफ करना नित्य कर्म में सम्मिलित रहते हैं, उसी प्रकार स्वाध्याय को भी अध्यात्म परिष्कार का दैनिक अनिवार्य धर्म कृत्य माना जाना चाहिए।

मूढ़ता हर उपयोगी तत्व को निरर्थक बना देती है। 'गुड़ गोबर' होने की उक्ति को मूढ़ मति ही चरितार्थ करती है। स्वाध्याय के नाम पर कथा पुराणों के पन्ने उलटते रहने वालों की भी कमी नहीं। ऐसे विवेकवान कम हैं, जो यह समझकर स्वाध्याय करते हैं कि आज की अपनी आन्तरिक विकृतियों और समस्याओं का समाधान करने के लिए युग के अनुरूप आदर्शवादी विचार प्रक्रिया क्या हो सकती है? हर युग की अपनी स्थिति होती है। अब से हजारों वर्ष पूर्व जो परिस्थितियाँ थीं, उसके अनुरूप कथा, पुराण बने हैं। अब न तो वे परिस्थितियाँ हैं और न उन समाधानों से कोई काम चलता है। ऐसी दशा में स्वाध्याय के लिए सामयिक समाधान प्रस्तुत करने वाले साहित्य को चुनने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। घिसी-पिटी लकीर पीटते रहने और अमुक पुस्तक को बार-बार घोटते-पीसते रहने से स्वाध्याय का लाभ तो मिलेगा नहीं, समय की बर्बादी भर होगी। इतने से ही कोई आत्म-प्रवंचना करके सन्तुष्ट हो ले तो बात दूसरी है।

अन्तरात्मा को उच्चस्तरीय भाव संवेदना-उत्कृष्ट विचारणा एवं आदर्शवादी क्रिया-कलाप अपनाने की प्रेरणा देने वाले तीनों तत्व जिसमें अन्न, जल और वायु की तरह मिले हुए हों तो समझना चाहिए, आत्मिक क्षुधा निवृत्ति और समीचीन प्रगति के साधन जुटे। यह कार्य सत्साहित्य के सहारे जितनी अच्छी तरह हो सकता है, उतना और किसी प्रकार नहीं। स्वाध्याय का एक तरह पाठन और दूसरा श्रवण है। कथा, प्रवचन, सत्संग का प्रचलन इसी प्रयोजन के लिए हुआ है। अशिक्षा की कठिनाई एवं स्वयं निष्कर्ष निकालने में असमर्थतता की कठिनाई का हल इन उपायों से सरलतापूर्वक निकल आता है। इसलिए कथा, प्रवचनों का पुण्य एवं माहात्म्य पूरे उत्साह के साथ बताया गया है। अभी धर्म क्षेत्र में कथा पुराणों का पठन, श्रवण श्रद्धापूर्वक पुण्य फलदायक माना जाता है और उस प्रकार के प्रयोजनों में बहुत समय तथा धन लगाया जाता है, स्वाध्याय 'दृश्य' प्रक्रिया है। उसमें नेत्रों के सहारे पुस्तक पढ़ी जाती है। कथा 'श्रव्य' है। उसमें सद्विचारों को कान के सहारे मस्तिष्क तक पहुँचाया जाता है। दोनों का प्रतिफल एक ही है-मानसिक चेतना को उत्कृष्ट वातावरण प्रदान करना विकृतियों और दुष्प्रवृत्तियों का परिमार्जन करना। दोनों ही उपायों से चेतना पर सुसंस्कार डाले जाते हैं, प्रस्तुत परिस्थिति में जो पतनोन्मुख प्रेरणाएँ अनवरत रूप से अनायास ही मिलती रहती हैं, उन्हें काटने के लिए इस उपाय को तीखी तलवार की तरह काम में लाया जा सकता है।

स्वाध्याय स्थूल है। वह पुस्तकों के रूप में सम्पन्न होता है। सत्संग भी स्वाध्याय की श्रेणी में ही आता है। इन दोनों के लिए साहित्य एवं व्यक्ति विशेष की आवश्यकता पड़ती है। सुविधा का समय भी चाहिए और शिक्षा इतनी होनी चाहिए कि इन दोनों का लाभ उठाया जा सकना सम्भव हो सके। मनन और चिन्तन इन दोनों से सूक्ष्म है। इनके सहारे आत्म-समीक्षा और आत्म-निर्माण के दोनों महा-प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं। इसके लिए यों तो प्रायः चारपाई पर से उठने का समय और रात्रि को बिस्तर पर जाने के बाद का समय अत्युत्तम है, पर रोक किसी भी समय नहीं है। उन्हें किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में कितनी ही देर किया जा सकता है।

मनन में आत्म-समीक्षा मुख्य विषय रहता है। उसमें गुण और अवगुण दोनों पर बारीकी से, निष्पक्ष भाव से विचार किया जाता है। अब तक के जीवन क्रम की अवांछनीय गतिविधियों पर दो चार दिन में ही दृष्टि डाली जा सकती है। उन पर पश्चाताप किया जा सकता है और दण्डस्वरूप दुष्कर्मों से समाज को पहुँचाई गई क्षति की पूर्ति करने के लिए अपराधों को तोल के अथवा न्यूनाधिक मात्रा में पुण्य कर्म किये जा सकते हैं। दण्ड प्रायश्चित इसी प्रकार सम्भव होता है। दो-चार दिन व्रत उपवास, गंगा स्नान, थोड़ा-सा कथा कीर्तन करने जैसे कर्मकाण्डों से पापों का भार कटता नहीं। उसके लिए क्षति पूर्ति के रूप में समाज को अनुदान देना आवश्यक होता है। प्रायश्चित इसी को कहते हैं और उनके कारण जो चित्र-विचित्र मनोरोग एवं शारीरिक कष्ट उठते रहते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनसे छुटकारा मिल सकता है। किन्तु यह प्रक्रिया सदा तो नहीं चल सकती। भूतकाल का चिन्तन और उसका समाधान यह कार्य उन्हीं दिनों पूरा हो जाता है, जिस समय कि आत्म-समीक्षा आरम्भ की जाती है। दण्ड प्रायश्चित अनुदान वाली प्रक्रिया समय साध्य होती है। वह कार्य एक दिन में नहीं हो जाता वरन् प्रायश्चित अनुदानों को चिरकाल तक जारी रखना होता है। इससे पाप कटते हैं और पुण्य बढ़ते हैं। इस प्रकार लगी हुई ठोकर भी अच्छी चेतावनी तथा सुधार प्रक्रिया में सहयोग देने वाली बन जाती है। विष को अमृत बना लेना इसी को कहते हैं।

आत्म-समीक्षा, मनन, दैनिक कृत्य कर दिया जाना चाहिए। शरीर के दुष्कर्म-मन से अशुभ चिन्तन और अन्त:करण से दुर्भाव की अवांछनीयता तो नहीं वरती जा रही है। इसका निरन्तर ध्यान रखा जाय। जब भी इन तीनों क्षेत्रों में जो गड़बड़ी उत्पन्न हो रही हो उसे तत्काल अत्यन्त कठोरतापूर्वक रोक दिया जाय। मन में संचित कुसंस्कार प्राय: उठते रहते हैं। कभी-कभी वे अत्यधिक प्रबल हो उठते हैं। विवेक खो जाता है और सिर पर चढ़ा कुसंस्कारों का भूत मनुष्य को कठपुतली की तरह नचाने लगता है। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए पहले से ही तैयार रहना चाहिए। प्रात:काल ही अनुमान लगाना चाहिए कि आज किस समय, किस प्रसंग में क्या अवांछनीयता सिर पर चढ़ सकती है। उसकी काट पहले से ही तैयार रखनी चाहिए। बचने और लड़ने के दोनों शस्त्र संभालकर रखने चाहिए। यह सारा प्रसंग मनन प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है।

चिन्तन वह पक्ष है, जिसमें दुर्बलताएँ हटाने और विभूतियाँ बढ़ाने की क्रमबद्ध योजना बनती है और उत्कृष्टता को कार्य रूप में परिणत करने का ढाँचा खड़ा किया जाता है। दोष-दुर्गुणों को छोड़ देना तो फूटे बर्तन के छेद बन्द करने की बराबर है। इससे अपव्यय और अनर्थ रुकता है। किन्तु आत्मोत्कर्ष के लिए जिन दिव्य विभूतियों की, गुण-कर्म स्वभाव की, उत्कृष्टता की आवश्यकता पड़ती है उनका अभाव ही बना रहा तो छेद बन्द करने से भी तो लक्ष्य पूर्ति के लिए आवश्यक क्षमता का संग्रह न हो सका। अस्तु चिन्तन में अपने सुधार, कायाकल्प, की योजनाएँ रहनी चाहिए। सुधार परिवर्तन किस क्रम से लाया जाय और उसके लिए वर्तमान गतिविधियों में-रीति नीतियों में-आदत अभ्यासों में-रुचि आकांक्षाओं में किस प्रकार हेर-फेर किया जाय ? यह विचार योजनाबद्ध रीति से किया जाना चाहिए। महामानवों ने जिस स्तर का उत्कृष्ट, चिन्तन और आदर्श कर्त्तव्य अपनाया है, उसी के अनुरूप अपने को ढाला जाय। इसके लिए सर्व प्रधान आवश्यकता इस बात की है कि श्रेष्ठ सज्जनों की प्रकृति में जिन सद्भावनाओं-सत्प्रवृत्तियों का समावेश होता आया है उसी के अनुरूप आकांक्षाओं को जगाया और आदतों को बढ़ाया जाय। चिन्तन इसी योजना प्रक्रिया का नाम है।

आत्मिक प्रगति के लिए उपासनात्मक व्यायाम है-ध्यान। यह भी अन्त:चेतना को एक विशेष वातावरण में रखने की शिक्षा प्रक्रिया है। इसके कई चरण और कई प्रकार हैं जिन्हें साधक की मन:स्थिति एवं परिस्थिति के अनुरूप बताया और कराया जाता है। इसमें अनुभवी मार्ग-दर्शन की आवश्यकता पड़ती है।

अन्तराल की सम्पदा खोज निकालने का उपयुक्त समय

अभी तक विकास के उतने ही चरण उठे और साधन जुटे हैं जिनसे आदिम वन-मानुस को सभ्यता के युग में प्रवेश करने का अवसर मिल सके। सुविधा-साधनों की दृष्टि से अन्य प्राणियों को अभावग्रस्त समझा और मनुष्य को साधन सम्पन्न कहा जा सकता है। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मानवी गरिमा का स्वरूप एवं महत्त्व अनुभव अभ्यास में आ गया। उस उपलब्धि के लिये सच्चे मन से प्रयत्न भी नहीं चले हैं। धर्म और अध्यात्म की चर्चा भर जोर-शोर से होती है, किन्तु उसे हृदयंगम करने तथा व्यवहार में उतारने का कोई ठोस एवं कारगर प्रयत्न नहीं होता। आवश्यकता इस बात की है कि अब नये अध्याय का शुभारम्भ किया जाए।

वन मानुस ने सभ्य कहलाने की मंजिलें पूरी कर लीं, पर यह तो एक विराम मात्र हुआ। पूर्णता तक पहुँचने के लिए मनुष्य में देवत्व का उदय करना होगा। यही है वह आधार जिसे योजनाबद्ध रूप में कार्यान्वित किया जाना चाहिए। उपार्जित कौशल एवं वैभव का सदुपयोग बन पड़े, इसके लिये इस स्तर का विकास परिष्कार इन्हीं दिनों चाहिए। सम्पदा की आवश्यकता समझी गई और उसे उपार्जित करने में सफलता भी पाई गई, पर इतने भर से काम नहीं चलेगा ? बीच रास्ते में बैठ जाने से, मझधार में लंगर डालने से बात कहाँ बनेगी। अब तो पार जाने और लक्ष्य तक पहुँचने की तैयारी की जानी चाहिए।

प्रकृति सम्पदा की निर्वाह भर की मात्रा ही प्राणियों को हजम होती है। यदि इससे अधिक कमा लिया गया है या कमाया जाता है तो यह भी समझा जाना चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि बारूद के खिलौने बनाने वाले जैसे सावधानी बरतते हैं, ठीक वैसी ही आज के मनुष्य को बरतनी होगी। इस सावधानी के लिए जिस दूरदर्शिता की आवश्यकता है उसे प्राप्त करने के लिये मानवी चेतना के अन्तस्थल को कुरेदा, उभारा और उर्वर बनाया जाए।

पुरातन युग में यह कार्य धीमी गति से भी चलते रहने की गुंजायश थी, क्योंकि तब तक सभ्यता और सुविधा प्राप्त करके आदिम कालीन पिछड़ेपन से छुटकारा पाना ही लक्ष्य था, पर अब वैसी स्थिति नहीं रही शक्ति और साधनों की इतनी मात्रा एकत्रित हो गई है कि उनका सदुपयोग सम्भव हो सके। शक्ति दुधारी तलवार है उससे आत्म-रक्षा ही नहीं आत्मघात का संकट भी खड़ा हो सकता है। इन दिनों आत्मघात की दिशा में बढ़ रहे लोक प्रवाह को आत्म-रक्षा के लिये नियोजित करने की आवश्यकता जितनी अधिक अनुभव की जा रही है, उतनी इससे पूर्व कभी नहीं की गई।

पिछले दिनों मानवी तत्परता ने भौतिक क्षेत्र के सभी क्षेत्र को मथ डाला है और जहाँ से जो कुछ हस्तगत हो सका है उसे उपलब्ध करने में कमी नहीं छोड़ी गई। भूमि की ऊपरी परत से लेकर अत्यधिक गहराई तक खोदकर उसकी खनिज सम्पदा तक के दोहन में कमी नहीं रही, प्राणि जगत के हर वर्ग को अपने आधिपत्य में ले लिया गया है और जिससे जो प्रयोजन सध सकता था साधा गया है। समुद्र, सरोवरों और नदी, निर्झरों में से जिससे जितना लाभ लिया जा सकता था लिया गया। आकाश पर आधिपत्य जमाने की घुड़दौड़ इन दिनों तेजी से चल रही है। बिजली, रेडियो, लेसर आदि प्रकृति के रहस्यों को बहुत हद तक कुरेद लिया गया है, अन्तर्ग्रही धावे बोले जा रहे हैं। उद्योग, विज्ञान, शिक्षा, कला आदि के क्षेत्रों में भी आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। कूटनीति का हर जगह बोलबाला है।

अछूत क्षेत्र एक ही रह गया है-मानवी गरिमा के अन्तराल का पुर्ननिरीक्षण और पुनर्जीवन। प्राचीनकाल में इस दिशा में समुचित ध्यान दिया गया था और मनुष्य में देवत्व तथा धरती पर स्वर्ग का प्रत्यक्ष दर्शन किया गया था, अब मध्यकालीन भटकाव को दूर करने और मानवी आस्था तथा आत्मा को जगाने की फिर से आवश्यकता अनुभव की गई है। युग चेतना की इस माँग को पूरा करने के लिए हमें तथ्यों पर अधिक गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और समय की माँग को पूरा करने में प्रमाद नहीं बरतना चाहिए।

योगी अरविन्द कहते हैं—''युग समस्याएँ विकट से विकट होती जा रही हैं, इनके समाधान के छुटपुट प्रयास भर चलते रहते हैं। उन्हें उत्साही लोग 'क्रान्ति' के नाम से सम्बोधन करते रहते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्रान्तियों की चर्चा आये दिन सुनी जाती है। पर तथ्यत: यह सभी पैबन्द मात्र हैं, इस समय का वास्तविक कार्य तो यह है कि समूची मनुष्यता को कोई नया वस्त्र दिया जाय। नया वस्त्र अर्थात् स्थिति का समग्र रूपान्तरण अर्थात् जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए दृष्टिकोण एवं क्रिया-कलाप में उत्कृष्टता का सर्वतोमुखी समावेश। इसकी पृष्ठभूमि अन्त:करण में अध्यात्मवादी आस्थाओं को जमाने वाली प्रक्रिया अपनाने से ही सम्भव हो सकेगी। प्रसिद्ध नीतिज्ञ स्माइले बायेन्टन का कथन है—''मनुष्य के ओछे और बौने रह जाने का एक ही कारण है कि वह अपने गहन अन्तराल तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं करता। वैभव के खिलौनों से खेलने और अचिन्त्य चिन्तन के जंजाल में फँसे रहने के अतिरिक्त उससे एक कदम आगे बढ़ना ही नहीं बन पड़ता। यदि उच्च चेतना से भरे-पूरे आस्था संस्थान के साथ सम्पर्क साधा जा सके और उसे अनुकूल बनाया जा सके तो हर कोई यह अनुभव कर सकता है कि अपनी गरिमा को ऊँचा उठाने के कितने आधार उसके पास मौजूद हैं, प्रशंसा पाने के लिये तरह-तरह के आडम्बर रखने वालों को यह प्रतीत नहीं होता कि वे अन्त:करण को भारी भरकम बना सकें तो असंख्यों द्वारा सम्मान पाने और श्रद्धास्पद बनने का अवसर उन्हें सहज ही मिल सकता है।''

जीन डब्ल्यू आलपोर्ड ने मानवी पूर्णता की व्याख्या करते हुए लिखा है—''शरीर, बुद्धि, पद, धन और स्वामित्व की छोटी परिधियों को पार करते हुए जो अपने को विश्व-वसुधा का एक घटक मानता है और लाभ-हानि की बात सोचते समय मात्र विश्व कल्याण की बात सोचता है वह पूर्ण है, अपूर्णता के बन्धन उसे उसी अनुपात से जकड़े रहते हैं जितनी कि ममता और आसक्ति घनीभूत होती है।''

वस्तुत: मनुष्य जिन बन्धनों से बँधा छटपटाता रहता है वे उसके आन्तरिक एवं बाहरी पर्यावरण मात्र हैं। संचित आदतें प्राय: पशु प्रवृत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसी प्रकार जिस ढर्रे का जीवन आम लोगों के द्वारा जिया जाता है, उसमें आदि से अन्त तक संकीर्णता एवं आपा-धापी भरी रहती है, उसका प्रभाव ही क्रमश: सहचरों पर पड़ता और सघन होता जाता है, यही है चेतना पर छाया हुआ वह पर्यावरण जो मनुष्य को छोटी सीमा में सोचने और छोटे काम करने के लिए विवश करता है। यदि इस घेरे को तोड़ा जा सके और विराट् के साथ अपने को जोड़ा जा सके तो पूर्णता का लक्ष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त होने में देर न होगी। क्षुद्रता ही बन्धन और विशालता ही मुक्ति का सोपान है।

सामान्य मनुष्य का व्यक्तित्व अनेकों जाल- जंजालों से बना हुआ अच्छा खासा तमाशा होता है, उसमें कुसंस्कारों, निकृष्ट अभिलाषा और उलझते उद्वेगों की भरमार होती है। ऐसे लोगों के लिए न तो एकाग्र होते बन पड़ता है और न अन्तर्मुखी होने की स्थिति आती है, ऐसे लोग वस्तुओं की माँग, परिस्थितियों की शिकायत और साथियों पर आक्षेप करते-करते ही दिन गुजारते रहते हैं उन्हें यह सूझता ही नहीं कि आत्म-तत्व में विकृति भर जाने से ही अनेकानेक विपन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। इस विषम स्थिति से छूटना कठिन नहीं है। अपने हाथों बुने जाले को समेटने का साहस किया जा सके तो मुक्ति का आनन्द ले सकना हर स्थिति के व्यक्ति के लिए भी सरल हो सकता है।

मनोवैज्ञानिक एडलर का मत है कि—''जिस शक्ति को प्राप्त करके व्यक्ति सच्चे अर्थों में समर्थ एवं श्रेष्ठ बनता है उसका नाम आत्मबल है, जिसे भी वह प्राप्त होगा वह स्वार्थी नहीं रह सकेगा। अपनी सम्पन्नता एवं सरलता के लिए चिन्तित रहने की अपेक्षा उसका मन सदा परमार्थ प्रयोजनों की बात सोचता रहता है और करने के लिए हाथ डालने से पूर्व देखता है कि यह सब कुछ श्रेष्ठता का समर्थक सहायक है या नहीं ? ऐसे व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में समाज सेवा कर पाते हैं, भले ही उनके द्वारा कोई बड़े कहे जाने वाले काम नहीं ही हुए हों।''

विद्वान लेखक साइमण्ड्स ने अपने ग्रन्थ 'डायनामिक साइकालोजी' में कहा है—'पूर्णता के समीप जैसे-जैसे पहुँचा जाता है, वैसे वह परोपकारी परमार्थ परायण होता जाता है उसकी इच्छाएँ और क्रियाएँ इस प्रयोजन के लिए उठती हैं कि सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्धन बन पड़े और अपना श्रम समय दूसरों के काम आये।'

महामनीषी जॉन हर्वे का कथन है—जब अपनी दृष्टि संकीर्ण स्वार्थपरता की अहंमन्यता से हटाते हैं तो राग-द्वेष रहित परम सत्य के दर्शन होने लगते हैं, सभी अपने लगते हैं और सभी की सुख-शान्ति की बात सोचते और वैसी ही चेष्टा करते समय बीतता है, असीमता और उस छोटी परिधि में लिप्तता ही आत्मिक प्रगति की प्रधान बाधा है, आत्मदर्शी अनुभव करता है कि उसकी गति, क्रिया, सम्पदा, क्षमता, की अमानत है और जो साधन हाथ में हैं उन सभी का उपयोग मात्र अनन्त के लिए होगा और किसी के लिए नहीं।

यह एक वास्तविकता है कि वातावरण और साथियों का दबाव अपना प्रभाव छोड़ता है। पर वह इतना भारी नहीं है कि आदर्शवादी संकल्पों के द्वारा उसे हटाया-घटाया न जा सके। अपना भौतिक दृष्टिकोण न होने से ही प्रवाह में बहते चलने की स्थिति बनती है, यदि सब निर्भरता के सूत्र हृदयंगम किये जा सकें तो वातावरण की उपेक्षा करना और दूरदर्शी नीति अपना सकना तनिक भी कठिन न रहेगा। आत्मावलम्बन का अभाव ही मनुष्य को ढर्रे का गुलाम बनाये रहता है, नीति का पालन और मर्यादाओं का अनुसरण एक बात है और अवांछनीयता के जंजाल में जकड़े रहना सर्वथा दूसरी।

शेल्डन का मत है कि—''व्यक्ति का विकास उसकी परिस्थितियों पर अवलम्बित माना जाता है इसमें दूसरों के सहयोग, असहयोग को भी प्रमुखता दी जाती रहती है, पर यदि गम्भीरता से वस्तुस्थिति का विश्लेषण किया जा सके तो प्रतीत होगा कि अपनी ही चिन्तन शैली,कार्य पद्धति ने ही अधिकतम उलझनें पैदा की हैं। उन्हें सुधारा जा सके तो समाधान का मार्ग सहज ही हस्तगत हो जायेगा।

सारे उपनिषदों का सार इन वाक्यों में व्यक्त किया जा सकता है—''यदि अचेतन और उच्च चेतन को गढ़ने में जुट पड़ा जाए तो प्रतीत होगा कि बड़ी से बड़ी सम्पदा एवं सफलता पाने की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण लाभ उठाया जा रहा है। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि बहुमूल्य रत्नराशि अपनी ही तिजौरी में भरी पड़ी हो और तनिक-तनिक-सी बात के लिए जिस-तिस से याचना करते फिरा जाय। बाह्य पुरुषार्थ से वैभव कमाया जाता है किन्तु अन्तर्मुखी पराक्रमों से मनुष्य को तत्वदर्शी, मनीषी और देव मानव बनने का सौभाग्य मिल सकता है।

यह उत्तरदायित्व आत्मिका वहन करे

अध्यात्म विज्ञान के साथ एक आश्चर्यचकित करने वाली सम्भावना जुड़ी हुई है। वह है—अचेतन मनःक्षेत्र की प्रसुप्त पड़ी हुई दिव्य क्षमताओं को जगाना एवं सक्रिय बनाना। इस सन्दर्भ में भौतिकी विज्ञानी भी कुछ कुरेदबीन करते रहे हैं और जो उनके हाथ लगा है उसे देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्ति में विज्ञान पराक्रमजन्य क्षमताओं की तुलना में कहीं अधिक उच्चस्तरीय प्रभावी एवं समर्थताओं से भरी पूरी सत्ता विद्यमान है। दूरदर्शन, दूरश्रवण, भविष्य कथन, विचार संचालन जैसे अगणित प्रयोग परीक्षण-परा मनोविज्ञान-मेटाफिजिक्स विज्ञान के आधार पर हुए हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस आधार पर इस तथ्य की परिपूर्ण पुष्टि हो चुकी है कि मानव अन्तराल में दिव्य क्षमताओं का अजस्र भण्डार छिपा पड़ा है। नोबेल पुरस्कार विजेता एलेक्सिस कैरेल ने अपनी 'मेन दि अननोन' पुस्तक में अगणित तथ्य प्रमाण प्रस्तुत करते हुये यह सिद्ध किया है कि सामान्य जीवन में चेतना की सामर्थ्य का मात्र सात प्रतिशत ही प्रयुक्त होता है। जो उपयोग में आता है वह हल्का, उथला एवं इतना है जिससे अन्य प्राणियों की तरह निर्वाह क्रम चलता रहे। जो विभूतियाँ अन्तराल में प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हैं उन्हें जाना और जगाया जा सके तो निस्सन्देह मानवी अस्तित्व को उतना सक्षम पाया जा सकता है कि वह अपनी कायिक एवं मानसिक प्रयोगशाला के सहारे भौतिक जगत की उन सभी समर्थताओं एवं सम्पदाओं को उपलब्ध कर सके जिन्हें विज्ञानी बहुमूल्य उपकरणों के सहारे हस्तगत करते हैं।

यहाँ जानने योग्य एक बात और भी है कि जिस तरह परमाणु में सन्निहित असीम शक्ति विश्वव्यापी पदार्थ प्रकृति का एक अंश मात्र है, उसी प्रकार व्यक्ति चेतना भी विश्व चेतना का ही एक अंश है। परमाणु की सामर्थ्य उसका निजी वैभव नहीं है, वरन् विराट् विश्व की शक्ति समुद्र की एक लहर बूँद भर है। उसी प्रकार चेतना की अपनी स्वतन्त्र हस्ती कुछ भी नहीं है। वह विश्व चेतना में ही अपनी पात्रता एवं आवश्यकता के अनुरूप सामर्थ्य अर्जित करती रहती है। इस चेतना लोक का अपना अस्तित्व है। अदृश्य सूक्ष्म जगत में प्रकृति की ऐसी अविज्ञात शक्तियों का आभास मिल चुका है। जो विदित एवं उपलब्ध वैभव की तुलना में असंख्यों गुना अधिक है। ठीक इसी प्रकार चेतना के दिव्य लोक का अपना अस्तित्व है और उसमें इस स्तर का वैभव भरा पड़ा है जिसकी परब्रह्म की विश्व चेतन के रूप में तत्व दर्शन द्वारा चर्चा की जाती रही है।

इस दिव्य लोक का निरूपण पुरानी भाषा में परमेश्वर, देव-परिकर, ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्ग मुक्ति आदि के रूप में किया जाता रहा है। उसके लिए योग, तप, जप, ध्यान, पूजा, पुरश्चरण आदि की प्रक्रिया अपनाई जाती रही है और ऐतिहासिक साक्षियों के आधार पर यह सुखद परिणति भी उपलब्ध होती रही है जिन्हें देखते हुए इन प्रयोग-परीक्षणों की परिपूर्ण सार्थकता सिद्ध की जा सके।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए, मध्यकाल में सर्वत्र अन्धकार युग फैला और विकृतियों एवं अवांछनीयता का बोलबाला रहा। राजनीति से लेकर अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में जब अनाचार अपना सिर आसमान तक उठाये हुए हैं तब धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में ही यह आशा कैसे की जाय कि वह छद्म, सनक एवं निहित स्वार्थों की पकड़ से बचा रहेगा। पिछले दिनों यही स्थिति रही है और आज भी वैसी ही है। ऐसी दशा में अध्यात्म का तत्व दर्शन ही नहीं प्रयोग, उपचार भी बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया है। जो बना है उसे इस प्रकार से छिछला, छूँछ, खिलौना, नमूना भर कह सकते हैं। प्रत्यक्ष है जो कुछ इन दिनों अध्यात्म के नाम पर माना अपनाया जाता है वह न केवल अधूरा है, वरन् भ्रान्तियों एवं विकृतियों की भी उसमें बुरी तरह घुसपैठ है। फार्मूला गलत होने पर श्रम भी निरर्थक ही जाता है। ऐसा ही इन दिनों भी हो रहा है। उपासनात्मक उपचार करने वाले जब प्रतिफलों के सम्बन्ध में निराश होते हैं तो एक प्रकार से नास्तिक ही बनते जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक अत्यन्त उच्चस्तरीय एवं महान सम्भावनाओं से भरे-पूरे विज्ञान को उपहासास्पद बनना-तिरस्कृत होना पड़ता है। इस स्थिति से भारी हानि यह हो रही है कि उन असाधारण उपलब्धियों से व्यक्ति और समाज को वंचित रहना पड़ रहा है जो समस्त मानवी समुदाय को आन्तरिक उत्कृष्टता एवं बहिरंग सुसम्पन्नता से भरा-पूरा रख सकती थीं।

सृष्टि के इतिहास में कई बार खण्ड प्रलय होती रही हैं। हिमयुग आये हैं और उनमें भयानक विनाश के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के अनेक उपार्जनों को भी एक प्रकार से विस्मृत किया है। इतने पर भी स्रष्टा का वह अनुदान मनुष्य को मिलता ही रहा है कि अनुवंशिकी के आधार पर पूर्वजों के संचित ज्ञान की हल्की-फुल्की ज्योति जलाये रह सके और समयानुसार उसे पुनर्जीवित कर सकने में सफल हो सके। खण्ड प्रलयों के इतिहास से अवगत मनीषी बताते हैं कि विभीषिकाओं के युग में कितने ही विनाशकारी एवं लम्बे क्यों न रहे हों, वे जब समाप्त हुए हैं तो मनुष्य ने देर-सबेर में उसे किसी न किसी प्रकार एक या दूसरे रूप में पुनः उपलब्ध कर लिया है। अध्यात्म विज्ञान के यथार्थवादी पुरातन स्वरूप के मध्यकाल के अन्धकार युग में विलुप्त या विकृत हो जाने की स्थिति को भी हिम प्रलय जैसी दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना की तरह ही समझा जा सकता है। इतने पर भी निराश होने का कोई कारण नहीं। अनुवंशिकी का आश्वासन है कि जो खोया है उसे नये सिरे से प्रबल पुरुषार्थ में जुट पड़ने पर पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

भौतिक शक्तियों के चमत्कारों से हम सभी परिचित हैं। लेसर किरणों की ऐन्टी मैटर-ऐन्टी युनीवर्स आदि की चर्चा दाँतों तले उँगली दबाकर की जाती रहती है। अब इसी स्तर की एक और उपलब्धि कर, तलगत हो सकने की बात बन रही है जिसके आधार पर अतीन्द्रिय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षमताओं को उभार कर मनुष्य को न केवल चरित्र, व्यवहार, वैभव की दृष्टि से वरन् अन्तःशक्ति के साथ जुड़ी हुई विलक्षण ऋद्धि-सिद्धियों की दृष्टि से भी सुसम्पन्न बनाया जा सके। इस सम्भावना को देव-युग का पुनर्जीवन अथवा धरती पर स्वर्ग के अवतरण वाला सतयुग कहा जा सकेगा।

आज जो उपेक्षा, असहयोग विज्ञान और अध्यात्म के मध्य दिखाई पड़ता है, उसे मिटाकर, विग्रह की वृत्ति को हटाकर सहयोग भरा रीति-नीति की प्रतिष्ठापन कर समुद्र मन्थन जैसे सत्परिणाम पा सकना पुनः इसी धरती पर सम्भव है। दैनन्दिन जीवन में सहकार के परस्पर विरोधी परिणामों के प्रतिफल आये दिन सामने आते रहते हैं पर जब विज्ञान व अध्यात्म परस्पर मिलेंगे तो उनका सहयोग अनूठा ही होगा। सभी जानते हैं कि ठण्डे व गरम तार मिलकर बिजली का प्रवाह बनाते हैं। जब दो विध्वंसकारी रचनात्मक शक्तियाँ एक ही उद्देश्य हेतु नियोजित होंगी तो उनके सम्मिलित प्रयासों की फलश्रुति अपनी इस धरती को सुन्दर और अधिक सुव्यवस्थित व सुसंस्कृत बनाने के रूप में ही निकलेगी, इसमें कोई संदेह नहीं। यह एक स्वप्न नहीं वास्तविकता है। आग-पानी के मिलने से भाप बनने तथा उसके रचनात्मक कार्यों में लगने पर कमाल दिखाने जैसी परिणति विज्ञान-अध्यात्म सहयोग की होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। अनेकानेक प्रमाण-तथ्य बताते हैं कि इस परिकल्पना को साकार रूप देने पर कितने सुन्दर परिणाम निकल सकते हैं।

मरणोत्तर जीवन का जब अस्तित्व सिद्ध होने ही जा रहा है तो फिर उस कड़ी को भी जोड़ना ही पड़ेगा जिसके अनुसार पितरों की दुनिया का जीव जगत के साथ आदान-प्रदान चल पड़े। ऐसा सम्भव हो गया तो समझना चाहिये कि एक और अपनी जैसी ही नई दुनिया के साथ रिश्ता जुड़ गया। इसमें दोनों ही लोकों के निवासियों का सुखी-समुन्नत होना और एक दूसरे की महत्त्वपूर्ण सहायता कर सकना सम्भव हो सकता है।

व्यक्ति के हिस्से में थोड़ी-सी समर्थता आई है किन्तु वह जिस विराट् शक्ति भण्डार से परब्रह्म से जुड़ा है-उसकी सामर्थ्य का कोई अन्त नहीं। कम ताकत का बल्ब धीमी रोशनी देता है पर यदि उसी स्थान पर बड़ी ताकत का बड़ा बल्ब लगा दिया जाय तो उसी बिजली फिटिंग से अनेक गुना प्रकाश उत्पन्न हो सकता है। बिजली की लाइन में उतनी सामर्थ्य रहती है कि छोटे उपकरणों के स्थान पर बड़े लगा देने पर अधिक ऊर्जा पाई और अधिक सुविधा उठाई जाय। परब्रह्म सत्ता के साथ आमतौर से आत्मा का सीमित एवं सामान्य सम्बन्ध ही रहता है, पर यदि व्यक्ति को अधिक परिष्कृत बनाया जा सके तो वह अदृश्य जगत की महान दैवी शक्तियों से भरपूर लाभ उठा सकता है और उस आधार पर अपनी सफलताओं में चार चाँद लगा सकता है।

अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से व्यक्ति के अन्तराल को परिष्कृत करके आज की तुलना में उसे अनेक गुना समर्थ एवं श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। उसी प्रकार विश्व चेतना की असीम सम्भावनाओं में उसे इतना कुछ आकर्षित किया जा सकता है जिससे मनुष्य के स्तर, स्वरूप एवं वर्चस्व में काया-कल्प, जैसा सुखद सत्परिणाम उत्पन्न हो सके। ऐसी ही उपलब्धियों को प्राचीनकाल में दैवी वरदानों के नाम से पुकारा जाता था। आज भी इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होते रहने की सम्भावना पूर्ववत् ही बनी हुई है।

अन्तरिक्ष में पदार्थ सम्पदा उससे कहीं अधिक भरी पड़ी है जितनी कि जल और थल में, तरल एवं ठोस रूप में पाई जाती है। जिस प्रकार जल और थल और वैभव मनुष्य के काम आता है उसी प्रकार अन्तरिक्ष में भरी-पूरी वही सम्पदा फिर उसे ठोस एवं द्रव के रूप में परिणत करके धरती की सम्पदा में असंख्य गुनी वृद्धि हो सकती है।

यज्ञ प्रक्रिया प्राचीनकाल में शरीरिक, मानसिक दुर्बलता और रुग्णता के निवारण में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती रही है। इसके अतिरिक्त उस माध्यम से वातावरण का परिशोधन एवं प्राणपर्जन्यों का अभिवर्षण भी सम्भव होता रहा है। इसमें व्यक्ति और समाज की स्वस्थता, समृद्धि एवं प्रगति की कितनी ही सम्भावनाएँ बढ़ती हैं। इस उपेक्षित एवं अस्त-व्यस्त यज्ञ प्रक्रिया को यदि फिर से नये परीक्षणों के साथ एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया का रूप दिया जा सके तो उसकी परिणति समस्त संसार पर दैवी वरदान बरस पड़ने के समान ही सौभाग्य भरी सिद्धि होगी।

प्रकृति को भौतिक समझकर उसकी पदार्थ सत्ता पर ही अब तक की माथा पच्ची होती रही है। अब उस ब्रह्माण्ड में चेतना का समुद्र भरा-पूरा अनुभव किया जा सके और उसी क्षेत्र के मणि-मुक्तक ढूँढ़ने में लग पड़ा जाय तो विश्व वैभव में निश्चय ही आश्चर्यजनक प्रगति हो सकती है।

अपनी पृथ्वी इस विशाल ब्रह्माण्ड परिवार का एक छोटा-सा घटक है। उसे जो भी प्रत्यक्ष परोक्ष वैभव मिला हुआ है, वह ब्रह्माण्डीय सम्पदा का एक अंग है। पृथ्वी उत्तरी ध्रुव के माध्यम से उसमें से उपयोगी अंश खींचती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और जो अनुपयोगी है उसे दक्षिणी ध्रुव से बाहर फेंक देती है। यह प्रकृतिगत आकर्षण, विकर्षण मानवी चेतना के एकाकी एवं संयुक्त चुम्बकत्वों द्वारा सामयिक आवश्यकता के अनुरूप खींचा एवं रोका जा सकता है। अन्तर्ग्रही कारणों से पृथ्वी पर अनेकों विपत्तियाँ आती हैं। इन्हें रोकने एवं अनुकूलताओं को बढ़ने के लिये चेतनात्मक प्रयोग उपचार हो सकते हैं। इस क्षमता को भी पूर्व काल की तरह इन दिनों अध्यात्म एवं विज्ञान के सिद्धान्तों का समन्वय करके सहज ही उपलब्ध किया जा सकता है।

आत्मिकी का परिष्कार एवं उसकी चमत्कारी परिणतियाँ

आदिम काल के मनुष्य के पास हाथ-पैर भर थे। पेट भरने के लायक समझ। इतने में ही उसे गुजारा करना पड़ता था। आज की तुलना में उस स्थिति को दयनीय और दुर्दशाग्रस्त, उपहासास्पद ही कहा जा सकता है। दैवी अनुग्रह से आग जलाने से लेकर धातु गलाने तक के अनेकानेक वैज्ञानिक रहस्य उसके हाथ लगते गये और तदनुरूप प्रगति और सम्पन्नता के मार्ग पर वह बढ़ता चला आया। विज्ञान उसके हाथ न लगा होता तो पिछले लाखों वर्षों में प्रकृति के जो उतार-चढ़ाव हुए हैं उनसे मनुष्य जैसा दुर्बल काय प्राणी कब का अपना अस्तित्व गँवा बैठा होता। भौतिक विधान ही है जिसने मनुष्य शरीर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रखने वाले पदार्थों को तोड़-मरोड़कर इस योग्य बनाया ताकि वे जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान देने लगें।

मानवी सत्ता दो हिस्सों में बँटी हुई है। एक शरीर काया-पदार्थ। दूसरी चेतना, मन, बुद्धि, अन्तस्। इनका भी एक विज्ञान है। इनका सही दिशा में विकास करने और सदुपयोग करने की प्रथम भूमिका है। इस भूमिका को सम्पन्न करने वाली विधा का नाम है—अध्यात्म-विज्ञान। पुरातन सतयुग की बेला में अध्यात्म विज्ञान पर मनीषियों ने अधिक जोर दिया था ताकि उपलब्ध सामग्री का श्रेष्ठतम उपयोग करके न केवल आन्तरिक दृष्टि से बलिष्ठ रहा जाय वरन् उपलब्ध भौतिक सामग्री का भी श्रेष्ठतम सदुपयोग सम्भव हो सके। व्यक्तित्व की उत्कृष्टता और बलिष्ठता इसी पर निर्भर रहती रही है।

समय का फेर ही कहना चाहिए कि भौतिक विज्ञान अपनी गति से चलता रहा और उस तक जा पहुँचा जहाँ मनुष्य अपने आपको सृष्टि का मुकुट मणि और सृष्टि का अधिष्ठाता बनाने का दावा करता है। दूसरे क्षेत्र में खेदजनक स्थिति उत्पन्न हुई। अध्यात्म के सम्बन्ध में जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण रहना चाहिए था वह एक प्रकार से विस्मृत ही हो गया। बदले हुए समय के अनुरूप पुरातन प्रतिपादनों में जो हेर-फेर होना चाहिए था वह न हो सका। फिर निर्धारणों की जो निरन्तर परीक्षा होती रहनी चाहिए थी उसका भी कोई आधार न रहा। ऐसी प्रयोगशालाएँ भी मिट गईं, जिनमें असाध्य विज्ञान को युग की आवश्यकताएँ पूरी कर सकने वाली विधाओं का प्रस्तुतीकरण सम्भव हो सकता। गाड़ी के दो पहियों में से एक टूट जाय तो उसे दुर्भाग्य ही कहा जायगा ? भौतिक विज्ञान की दिशा में परिपूर्ण दिलचस्पी ली जाती रहे और अध्यात्म-विज्ञान उपेक्षा के ही नहीं भ्रान्तियों के अन्ध कूप में गिरा दिया जाय तो उसे भाग्य की क्रूर विडम्बना ही कहा जायगा।

इन दिनों अध्यात्म का एक ही भौंडा स्वरूप जहाँ-तहाँ दीख पड़ता है कि अमुक दैवी-देवता की औंधी-सीधी पूजा-पत्री की जाय और बेबात की बात में प्रसन्न होकर दर्शन दें और पूछें "वर माँग, वर माँग।" तथाकथित भक्त उनके सामने अपनी मनोकामनाओं की लम्बी लिस्ट रखें। देवता तथास्तु कहकर अन्तर्ध्यान हो जाय। इसमें कर्मकाण्ड ही मुख्य माना गया है। साधक के व्यक्तित्व को परिष्कृत करने की आवश्यकता नहीं समझी गई जबकि उसी की चुम्बकीय शक्ति से अदृश्य लोक से कुछ कहने लायक उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं।

यदि अध्यात्म सनकी लोगों की परिकल्पना मात्र है तो उसका अन्त होना चाहिए ताकि उस जंजाल में उलझे हुए लाखों व्यक्तियों को चिन्तन, समय और श्रम बर्बादी से बचाया जा सके। यदि वह सही है तो उसकी प्रामाणिकता इस तरह निखर कर आनी चाहिए जिसे कोई चुनौती न दे सके। बिजली को, आग को, बर्फ को, विष को कोई चुनौती नही दे सकता। क्योंकि उनके लाभ और हानि प्रत्यक्ष और अध्यात्म विज्ञान भी ठीक इसी तरह है उसका कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है कि जिसे झुठलाया जा सके। पर यह सम्भव तभी है जब उसके उपकरण और प्रयोग विधान सही हों।

प्रयोगशाला को सही एवं आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करना भौतिक विज्ञान की प्रथम आवश्यकता है। अध्यात्म विज्ञान के प्रयोगों में साधक को अपना शरीर और मन:संस्थान इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उपयुक्त बनाना पड़ता है। भगवान ने मनुष्य को इतना सुसम्पन्न बनाकर भेजा है कि उसमें ब्रह्माण्ड की न केवल झाँकी की जा सकती है वरन् उसकी ज्ञात, अविज्ञात क्षमताएँ भी उसमें प्रसुप्त रूप से विद्यमान पाई जाती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बरगद का बीज राई जितना होता है पर उसे विधिवत् अंकुरित करने और पोषण करने से कुछ ही समय में इतना बड़ा विशाल वृक्ष हो जाता है कि उसकी छाया में सैकड़ों पशु-पक्षी और मनुष्य गुजारा कर सकें। मनुष्य के बारे में भी यही समझना चाहिये कि पेट-प्रजनन के कोल्हू में पिलता हुआ हाड़-माँस का पुतला मात्र है पर उसकी पाँचों परतें उघाड़ कर देखा जाय तो उन तिजोरियों में एक से एक बहुमूल्य रत्नराशि भरी पाई जा सकती है। इन्हीं सब सम्भावनाओं और यथार्थताओं का प्रत्यक्षीकरण अध्यात्म विज्ञान है।

भौतिक विज्ञान की शाखा प्रशाखाओं से सम्बन्धित फलश्रुतियाँ स्कूल के विद्यार्थियों को भी विदित है किन्तु अध्यात्म विज्ञान की दिशाधारा एवं विधा से अपरिचित होने के कारण समझदारों के लिए भी उसका सही स्वरूप समझना और समझाना कठिन है। उसका स्वरूप बिगड़ते-बिगड़ते बाजीगरों के कौतुक-कौतूहल जैसा बन गया है। जिनकी नकल कोई भी चतुर व्यक्ति उतार कर लोगों को आश्चर्यचकित कर सकता है। सिद्धियाँ इतनी ही रह गई हैं। एक ओर लम्बी और अनिश्चित मंजिल है कि देवी-देवताओं की मनुहार उपहार करके मनोकामनाएँ पूर्ण करा लेने के दिवा स्वप्न देखे और दिखाये जायँ। इसमें देवताओं का मूल्य घटता है कि वे पूजा पत्री के लिए इतने अधिक ललचाते रहते हैं कि उसका प्रलोभन दिखाकर उनसे कुछ भी उचित अनुचित कराया जा सके।

प्रचलित मान्यताओं से वास्तविकता बिलकुल भिन्न है। उस क्षेत्र में प्रवेश करने वाले हर साधक को अपना शरीर और मन ऐसा परिष्कृत बनाना पड़ता है जिससे जीव विद्युत का अतिरिक्त उत्पादन सम्भव हो सके। मनुष्य शक्तियों का भण्डार है। उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में इतनी अद्भुत विभूतियाँ भरी पड़ी हैं कि उनके जागरण मात्र से वह असाधारण दृष्टिगोचर हो सके। अपने आपके लिए भी दूसरों के लिए भी और समस्त संसार के लिए भी। यह दिव्य क्षमताएँ वह अपने भीतर से भी उगाता है और इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र संव्याप्त होने के कारण उसमें से भी अभीष्ट मात्रा में खींचता है। पुरातन काल में ऋषियों को अपनी आध्यात्मिक प्रयोगशाला में कार्य के अनुरूप उपयुक्त वातावरण भी बनाना पड़ता रहा है। साथ ही अपने व्यक्तित्व को भी इस योग्य बनाना पड़ा है जिसमें दिव्य क्षमताओं के उगने एवं उतरने में कठिनाई न हो। यह प्राथमिक आवश्यकता है इसे जो पूरा कर सके हैं उन्हें दिव्य मानव, देव मानव, ऋषि, कल्प तपस्वी आदि नामों से जाना जाता रहा है। वे अपने उपार्जन को निज के और दूसरों के काम में भरपूर मात्रा में लाते रहे हैं। मल्लाह बाढ़ वाली नदी को स्वयं भी पार करता है और दूसरों को भी बिना हिचक इधर से उधर पार करता रहता है। आत्म विज्ञानियों में से प्रत्येक की स्थिति ऐसी ही होती है।

आत्म विज्ञान के आधार पर कुछ लाभ स्वयं को मिलते हैं ? इसके मिलने से उसकी प्रामाणिकता का पता चलता है कि वह वस्तुतः गहरा गोता लगाकर मोती बीन लाने की स्थिति में हुआ या नहीं। इसके बाद यह विश्वास भी होता है कि वह उपार्जित सम्पदा में दूसरों के लिए रत्नाभूषण बनाकर उपहार में दे सकता है या नहीं।

अध्यात्म का प्रथम प्रतिफल निरोगी काया के रूप में दृष्टिगोचर होता है आहार विहार का संयम बरतने के कारण वह तो दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु से बच जाता है। आमतौर से उसे काय कष्ट नहीं उठाने पड़ते। साधक का मन प्रसन्न-सन्तुष्ट और उल्लसित रहता है जबकि यह लाभ कोटयाधीशों के भाग्य में भी बदा नहीं होता। वे हर समय सोते जागते चिन्तातुर ही रहते हैं। खीज और थकान उन पर निरन्तर छाई रहती है। उपार्जन, संरक्षण, आक्रमण, हानि जैसे कितने ही भय उन्हें त्रास देते रहते हैं उस दबाव से शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के स्वास्थ्य खो बैठते हैं। गहरी नींद का आनन्द उन्हें कदाचित् ही कभी आता है। चेहरे पर फूल जैसी मुस्कान कदाचित् ही कभी दृष्टिगोचर होती हो। इसके लिए तड़पते हैं तो मदिरा और व्यभिचार का आश्रय लेते हैं। उसमें भी उत्तेजना भर मिलती है और फिर भी मन को खिला देने वाली प्रसन्नता तो कदाचित् ही कभी दृष्टिगोचर होती है। यह स्थिति आये बिना चैन की लम्बी निरोग जिन्दगी नहीं जिया जा सकती जैसे कि ऋषि कल्प स्थिति के लोग सहज ही हस्तगत कर लेते हैं।

ऐसे व्यक्तियों की मन की प्रसन्नता का क्या कहना? जो राग-द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं, उन पर हर घड़ी प्रसन्नता की मस्ती छाई रहती है। यही सोम रस है। इसे पीकर अमर हुआ जा सकता है। मस्तिष्क का क्षरण काम करने से नहीं मनोविकारों से होता है। अन्तर्द्वन्द्वों में शरीर गलता है। जिसने प्रसन्नता सिद्ध कर ली, वह सांसारिक दृष्टि से खिला हुआ फूल समझा जायगा और तितलियों, मधुमक्खियों, भौरों को अपनी ओर आकर्षित करेगा। इतना ही नहीं, उसका मस्तिष्क असाधारण क्षमताओं से सम्पन्न रहेगा। ऐसे कितने ही जादुई मस्तिष्क देखे जाते हैं, जिन्हें लायब्रेरियाँ जबानी याद थीं। जो छोटी आयु में ही ढेरों कक्षाओं के विद्वान हो गये थे। जिन्होंने ३ वर्ष की आयु में ही भाषा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक घटना तो ऐसी है जिसमें गर्भस्थ बालक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी बातें करने लगा था मानो वह कोई भरा-पूरा वैज्ञानिक हो। विलक्षण प्रतिभाओं का यह चमत्कार मस्तिष्क को क्षीणता से बचा लेने मात्र का प्रतिफल है।

सामान्यतया मनुष्य जीवित लोगों से ही सम्पर्क रख सकने में समर्थ होता है। पर यदि मनोमय कोश का धरातल कुछ ऊँचा हो जाय तो उस विश्व ब्रह्माण्ड में परिभ्रमण करती हुई अनेकानेक दिवंगत आत्माओं से सम्पर्क सध सकता है और एक-एक लोक के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रह सकता है, जिसके बारे में अब तक नहीं के बराबर जानकारी रही है। मोटेतौर पर यही समझा जाता है कि भूत-प्रेत कहीं श्मशान, पीपल, खण्डहर पर बैठे रहते और जिस-तिस को डराकर कुछ पूजा पत्री ऐंठते रहते हैं पर गहरी जानकारियों ने बताया है कि उनका एक सुविस्तृत लोक अपने इस मनुष्य लोक जैसा ही है जहाँ के निवासी जीवित मनुष्यों की कई तरह से सेवा सहायता भी करते रहते हैं। उन्हें पूर्वाभास कराते और कई मुसीबतों से बचाते हुए अप्रत्याशित सुविधाओं का सुयोग बिठाते हैं। विकसित सूक्ष्म शरीर का तन्त्र विज्ञान के माध्यम से इनके साथ सरलतापूर्वक सम्बन्ध सध सकता है।

कितने ही देवोपम ऋषि कल्प व्यक्ति ऐसे भी हैं जो अपने सूक्ष्म शरीर को तो साधनारत देखते हैं पर स्थूल शरीर से अन्य उपयुक्त व्यक्तियों के माध्यम से ऐसे कृत्य करते कराते रहते हैं जो संसार के हित साधन में महत्त्वपूर्ण सहायता करें।

मन्त्र शक्ति-अस्त्र-शस्त्रों की सामर्थ्य से बढ़कर है घटकर नहीं। अन्तरात्मा की दिव्य ऊर्जा जब जागृत होती है तो समीपवर्ती समस्याओं के समाधान में सहायता करती है। वातावरण बदलती है और जिन्हें उपयुक्त समझती है उन्हें शाप से दण्डित और उपहार से पुरस्कृत करती है।

मनुष्य के शरीर और मन में अनेकानेक सामर्थ्यों के पुंज भरे पड़े हैं पर उनमें से जितने दैनिक प्रयोजनों में काम आते हैं उतने ही जाग्रत स्थिति में रहते हैं। शेष सोई स्थिति में रहते हैं। यदि उनमें थोड़ी सी भी सामर्थ्य जगाई जा सके तो व्यक्ति सिद्ध पुरुष विभूतिवान बन जाता है और सामान्य व्यक्ति की तुलना में कई गुनी क्षमता का परिचय देता है और वह क्षमता भी सामान्य स्तर की न होकर विशेष स्तर की होती है। ऐसे व्यक्ति एक होते हुए भी, एक शरीर में रहते हुए भी ऐसी भूमिकाएँ निभाते हैं, मानो कितने ही सामर्थ्यवान मिल-जुलकर किसी बड़े मोर्चे को सम्भाले हुए हों। संख्या की दृष्टि से उन्हें एक गिना जा सकता है किन्तु क्रियाओं की दृष्टि से वे अत्यधिक प्रयास करते और उतना करते हैं जितना अनेकों मिलकर भी कदाचित् ही कर पाते। कई बार तो उन अकेले का ही ऊर्जा प्रवाह एक वातावरण को उलट देने का अप्रत्याशित काम करता है।

वर्तमान व्यापक संकटों में आत्म-शक्ति के विकसित होने पर कितने ही समाधान निकल सकते हैं। अणु युद्ध की बात सोचने वालों के दिमाग उलट सकते हैं, उनके दुस्साहस भयभीत होकर अपना ही मरण सोच सकते और हाथ खींच सकते हैं। चलने वाले आयुध जमीन पर गिरने की अपेक्षा पंख लगाकर आकाश में उड़ सकते हैं। पर्यावरण में छाया हुआ विकिरण कोई बुहार कर महा अन्तरिक्ष में कूड़े करकट की तरह फेंक सकता है। वृक्षों की कमी से ऑक्सीजन की कमी पड़ने पर उसकी पूर्ति घास-पात या अनाज के छोटे पौधों में कराई जा सकती है। बादलों को दिशा देकर वर्षा का अभाव दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार खनिजों की कमी से उत्पन्न होने वाला विश्व संकट किसी अन्य उपचार द्वारा सरल हो सकता है। उमड़ते युद्ध की घुमड़ती घटाटोप घटाएँ किसी आँधी तूफान के प्रवाह में पड़कर कहीं से कहीं पहुँच सकती हैं।

मनुष्य की पीढ़ियाँ वंशानुक्रम एवं जीन्स स्थिति के कारण कुमार्गगामी, कुत्सा और कुण्ठाग्रस्त बनती जा रही हैं उन्हें सुधारने के लिए एक-एक व्यक्ति की सूक्ष्म सर्जरी होना कठिन है किन्तु अध्यात्म शक्ति यदि एक्सरे की तरह एक-एक मनुष्य में होकर पार होती चली जाय तो उनमें ऐसे भीतरी परिवर्तन हो सकते हैं जिससे भावी पीढ़ियों का स्वभाव एवं स्तर ही बदल जाय। इतने लोगों को पढ़ाना, समझाना और मस्तिष्क की धुलाई करना वर्तमान प्रशिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत बहुत कठिन है। किन्तु यदि मनुष्यों का स्तर और अन्तराल बदलने वाला विद्युतीय तूफान आ धमके तो युग परिवर्तन के अवसरों पर भूतकाल में जो चमत्कार होते रहे हैं वे अभी भी हो सकते हैं। विश्व परिवर्तन की, युग परिवर्तन की दिशा में और भी ऐसा बहुत कुछ हो सकता है जिससे स्वरूप की अभी तो कल्पना भी नहीं की गई है। नये युग का मनुष्य ऐसा हो सकता है। जिसमें न केवल गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से वरन् क्षमताओं की दृष्टि से भी ऐसा परिवर्तन हो सके जिसका अभी तो यदा-कदा परिचय मिलने पर ही अपने को हतप्रभ होना पड़ सकता है।

ऐसी-ऐसी वैयक्तिक सामूहिक—प्रगति गत अनेक कल्पनाओं के करते हुए असम्भव जैसा कुछ भी अनुभव नहीं करना चाहिए। यह विश्व जिस नियन्ता का बनाया हुआ है अपनी कलाकृति में थोड़ा बहुत अन्तर कर दे तो उसमें अनहोनी जैसी बात क्या है ? मनुष्य देखने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कीट पतंगों में से एक है। पर स्मरण रहे वह ईश्वर का अविनाशी अंश और राजकुमार भी है। जो ब्रह्माण्ड में है वह बीज रूप में, पिण्ड में भी है इस तथ्य को भुला देने की आवश्यकता नहीं है। फिर दोनों के बीच इतना अन्तर कैसे पड़ गया ? इसका एक ही उत्तर है कि व्यक्ति हर दृष्टि से अनैतिक बन गया है। उसका चिन्तन, चरित्र, व्यवहार, मान्यता, आकांक्षा, भावना, क्रिया सभी कुछ अवांछनीय दिशा में उलट गई हैं। उसे उलटेपन को उलटकर यदि सीधा किया जा सके तो आज की चिन्ताएँ और समस्याएँ कल ही सरल और सुगम हो गई दृष्टिगोचर होंगी।

प्राचीनकाल में जिन प्रयोजनों की आवश्यकता थी उनको ध्यान में रखते हुए उन दिनों की साधना का उपक्रम बनाया गया था। अतएव उसका स्वरूप कुछ भिन्न था लेकिन आज की परिस्थितियाँ, आवश्यकता और वातावरण का प्रवाह ही भिन्न नहीं है वरन् साधना करने वालों के शरीर एवं मन जिस अन्न-जल से जिस सम्पर्क-संसर्ग से जिस ढाँचे में ढल गये हैं। उसका एक बार नये सिरे से काया-कल्प करना पड़ेगा। छुरी, चाकू मामूली लोहे में भी ढल जाते हैं पर तोपें ढालने के लिए उनमें अष्ट धातुओं का सम्मिश्रण प्रयुक्त करना पड़ता है। अन्यथा इतनी अधिक और इतनी तेज बारूद का धमाका होने से निशाना सही स्थान पर लगना तो दूर , वह तोप ही टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी। आज की स्थिति के अनुरूप अध्यात्म शक्ति का उद्भव और प्रकटीकरण करने के लिए परोक्ष जगत में क्रियाशील तप:पूत आत्माओं को काया-कल्प स्तर का प्रयोग करना पड़ रहा है। एक नहीं अनेकों उच्च स्तरीय आत्माएँ उस प्रयोग में लगी हैं जिससे आत्मिकी की परिष्कृति से चमत्कारी नवयुग का आगमन सम्भव हो सके।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुपर चेतन और जीवन-मुक्ति

अपने को जानो

विद्वान इब्सन का कथन है—शक्तिशाली मनुष्य वह है, जो अकेला है। कमजोर वह है, जो दूसरों का मुँह ताकता है "अकेले का अर्थ है आत्म-निर्भर, अपने पैरों पर खड़े होने वाला। यही अकेलापन असामाजिक या असहयोगी के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। इब्सन का तात्पर्य यह है कि जो अपनी जिम्मेदारी को समझता है, अपने कर्तव्यों को निबाहता है, उसे प्रगति के लिए आवश्यक आधार अपने भीतर से ही मिल जाता है, बाहर के साधन उसके चुम्बकत्व से खिंचकर अनायास ही इकट्ठे हो जाते हैं। अपने सामर्थ्य के स्रोतों को भरा-पूरा देखना बाहर की सहायता का प्रवाह निरन्तर समीपतम चलते आने के लिए पथ-प्रशस्त करता है।

कन्फ्यूसियस ने कहा है महान व्यक्ति अपनी आवश्यक वस्तुओं को भीतर ढूँढ़ते हैं, जबकि कमजोर उन्हें पाने के लिए दूसरों का सहारा तकते हुए भटकते रहते हैं। यह तथ्य ऐसे हैं जिन्हें स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाना चाहिए और हर किसी की जीवन पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर अंकित किया जाना चाहिए। तत्वदर्शी और मनीषी सदा से ही कहते रहे हैं— जो अपनी सहायता आप करता है, उसी की सहायता करने परमात्मा भी आता है। जिसने अपने ऊपर से भरोसा खो दिया उसे ईश्वर की आँखें भी अविश्वासी ठहराती हैं। परमात्मा की निकटतम और अधिकतम सत्ता अपने भीतर ही पाई जा सकी है। जो उसे नहीं देखता वह बाहर कहाँ पर ऐसा अवलम्बन प्राप्त कर सकेगा जो उसे विपत्ति से बचाने और आगे बढ़ाने में सहायता कर सके ? अपनी क्षमता और सम्भावना पर से विश्वास उठा लेना परमात्मा की सत्ता और महत्ता को अस्वीकार करना है। ऐसी अनास्थावादी मनोभूमि जहाँ हो वहाँ हमें घिनौने किस्म की नास्तिकता की गन्ध मिलेगी।

व्यक्ति अकेला नहीं है। उसके कण में भौतिक प्रकृति की असीम शक्ति सँजोये हुए कोटि-कोटि परमाणुओं का सैन्य दल मौजूद है। जीवाणुओं में से हर एक के भीतर एक स्वतंत्र सौरमण्डल की सत्ता विद्यमान है। कोटि-कोटि जीवाणुओं की हलचलें जहाँ हो रहीं हैं, वहाँ अशक्तता का अस्तित्व कैसे हो सकता है। जिसके पास धन-वैभव के अनेक स्रोत विद्यमान हैं वह यदि अपने को दीन-दरिद्र कहता फिरे तो उसे अविश्वासी ही कहा जायेगा। जो अपने वैभव और शक्ति भण्डार को भुला चुका और तनिक-तनिक से अवसरों पर दूसरों की सहायता पर निर्भर रहता है वह सामर्थ्य से न सही अन्त: चेतना की दृष्टि से निश्चय ही दरिद्र है। दरिद्र की कोई क्वचित और किंचित ही सहायता करता है।

जिसे अपनी सत्ता और महत्ता का ज्ञान है, उसे यह भी पता रहता है कि प्रतिपक्षी अवरोध कितने पानी में हैं कोई किसी को न तो डरा सकता है और न स्थायी अवरोध उत्पन्न कर सकता है। जो डरता और रोकता है वह प्रचण्ड आत्मतेज के सामने अपनी भूल स्वीकार करता है और उल्टे पाँवों वापिस लौट जाता है और की तो क्या बिसात मृत्यु तक उसे विचलित नहीं कर सकती; जिसे अपने अनन्त जीवन का विश्वास है और मौत को विश्राम मान सकता है, अवरोध नहीं। उसकी यात्रा अवधि की परवाह किये बिना निरन्तर गतिशील रहती है। वेद का ऋषि इसी सत्य का निरन्तर उद्घाटन करता रहा है **तमेष विद्वान न बिभाय मृत्यो।** जो अपने को जानता है वह मृत्यु से भी नहीं डरता। अवरोध और असहयोग के कारण तो वह हताश हो ही कैसे सकता है।

दूसरों की बुराइयाँ सभी देखते हैं परन्तु अपनी ओर देखने का अभ्यास बहुत कम लोगों को होता है। सुप्रसिद्ध विचारक इमर्सन का कथन है—बहुत कम लोग मृत्यु से पूर्व अपने-आपको पहिचान पाते हैं। बहुत कम व्यक्ति अपने जीवन में सभी शक्तियों को प्रकट करते हैं; बाकी तो उन्हें साथ लिए ही मर जाते हैं। हममें से अनेकों तो ईश्वर के सन्देश को संसार में दिये बिना ही यहाँ से चले जाते हैं।

वस्तुत: तथ्य तो यह है कि हमारे अन्दर असंख्य गुप्त शक्तियाँ सोई पड़ी हैं परन्तु हमें उन योग्यताओं तथा क्षमताओं का पता ही नहीं और न ही उन्हें जानने का प्रयास करते हैं। यह ठीक है कि बाहर की अनेकों वस्तुएँ जानकर हम ज्ञानवान् कहलाएँ, परन्तु यह भी कम आवश्यक नहीं कि हम अपने आपको पहिचानना भी सीखें। जो अपनी ओर देखने का अभ्यास डालता है, वही महान बनता है। ऐसा व्यक्ति कठिनाइयों तथा बाधाओं पर विजय पाकर सतत् उन्नति करता रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महापुरुषों का जीवन इस बात का साक्षी है कि वे सतत् आत्म-निरीक्षण करते रहे। यदि आप भी महान बनना चाहते हैं तो दूसरों को तुच्छ समझने की, उनमें छिद्रान्वेषण करने की दृष्टि का परित्याग कर दीजिए। दूसरों को तुच्छ समझने वाला मनुष्यत्व खो देता है। अन्यों की गलतियाँ खोजने की अपेक्षा अपनी त्रुटियाँ खोजिए और उन्हें दूर कीजिए। अपनी शक्तियों को पहिचानिए और उनका सदुपयोग कीजिए।

ईश्वर ने अनेकों दिव्य शक्तियाँ देकर आपको संसार में भेजा है उनका दुरुपयोग न कीजिए। पेट और प्रजनन जैसे क्षुद्र कार्यों में उन्हें व्यर्थ न होने दीजिए। आप जो भी कार्य कर रहे हैं, उनसे हजारों गुना अधिक कार्य करने की सामर्थ्य आपके अन्दर है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि अपना महत्व समझें, शक्तियों को पहिचानें तथा समय का सदुपयोग करें। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है, उसे व्यर्थ न जाने दें।

जो कार्य करने की इच्छा रखते हैं उसे आज से ही प्रारम्भ कर दीजिए। अपनी समस्त शक्तियाँ उसमें एकाकार कर दीजिए। वह क्षण आपके जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षण होगा, जब आपको यह अनुभव होगा कि संसार को आपकी आवश्यकता है। आपके अन्दर एक और व्यक्तित्व समाहित है, जो आपके बाहरी व्यक्तित्व से कहीं अधिक महान है। जिस क्षण व्यक्ति अपनी महानता की झलक पा लेता है, वह मानव से महामानवत्व की ओर अग्रसर हो जाता है।

हो सकता है कि किन्हीं कठिनाइयों या बाधाओं के कारण आपका व्यक्तित्व पूरी तरह से विकसित न हो सका हो। परन्तु आपत्तियाँ आने पर घबराइए मत। जिस प्रकार से अग्नि में तपकर सोना निखर जाता है, और भी अधिक चमकने लगता है, उसी प्रकार बाधाएँ और कठिनाइयाँ मनुष्य को खरा-कुन्दन बना देती हैं। कई पादप ऐसे होते हैं, जब तक उन्हें मसला न जाए, सुगन्धि नहीं देते। उसी प्रकार कुछ व्यक्ति भी ऐसे होते हैं, जब तक वे विपत्तियों से आक्रान्त न किये जायें, उनकी योग्यताओं की सुगन्धि फैल ही नहीं पाती। अतएव आत्म-निरीक्षण के द्वारा अपनी योग्यताओं को पहिचानिये। किसी भी प्रतिभा का अंकुर आपको अपने अन्दर दिखलाई पड़े उसको पुष्पित-पल्लवित होने का अवसर दीजिए। कौन जाने एक दिन आप संसार के महान कलाकार बन जायें, विश्वप्रसिद्ध लेखक बन जायें, दार्शनिक या राजनीतिज्ञ बन जायें। आवश्यकता केवल इस बात की है कि शक्तियों को पहिचानिये और सतत् बढ़ते रहिए।

जो स्वयं को जान लेता है, वही साक्षात् परमेश्वर को जान सकता है। वही व्यक्ति ईश्वरीय प्रयोजनों को पूरा कर सकता है तथा उसके संदेशों को जनसाधारण तक पहुँचा सकता है।

हम आत्म-गरिमा का अनुभव करें और किसी से न डरें

अथर्व वेदीय पिप्पलाद संहिता के प्राण सूक्त में निर्भरता का संकल्प ऐसा है, जिसे बार-बार दुहराया जाना, पाठ किया जाना अभय रहने का आत्मविश्वास करता है।

डरना केवल दो से चाहिए—एक ईश्वर के न्याय से और दूसरे पाप-अनाचार से। जो इन से डरता, बचता रहेगा उसे और किसी से डरने की आवश्यकता न पड़ेगी। आत्मबोध और आत्मबल का ज्ञान न होने के कारण लोग छोटे-छोटे कारणों को लेकर चिन्ताग्रस्त, आशंकित, आतंकित एवं भयभीत होते हैं। इस भीरुता को हेय ठहराते हुए प्राणसूक्त में हमें निम्नांकित मन्त्रों में यही निर्देश दिया है कि अपने को देवशक्तियों की पंक्ति में बिठायें और उन्हीं की तरह निर्भर उल्लसित जीवन जियें।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ १॥

जिस प्रकार द्यौ और पृथ्वी न तो किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं। उसी तरह हे प्राण तू न तो किसी से डर और न क्षीण हो।

यथा वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ २॥

जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं उसी तरह हे प्राण तू न तो किसी से डर और न क्षीण हो।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ३॥

जिस प्रकार सूर्य और चंद्रमा न किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं उसी प्रकार हे प्राण तू न तो किसी से डर और न क्षीण हो।

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ४॥

जिस तरह दिन और रात न तो किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं। उसी तरह हे प्राण न तो तू किसी से डर और न क्षीण हो।

यथा धेनुश्चानड्वांश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ५॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस तरह गाय और बैल किसी से न तो डरते हैं और न क्षीण होते हैं। उसी तरह हे प्राण न तो तू डर और न क्षीण हो।

यथा मित्रश्च वरुणश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ६॥

जिस तरह मित्र और वरुण न तो किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं उसी तरह हे प्राण न तो तू डर और न क्षीण हो।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥७॥

जिस तरह ब्रह्म और क्षत्र न तो किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं उसी तरह हे प्राण न तो तू डर और न क्षीण हो।

यथेन्द्रश्चेन्द्रिय च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ८॥

जिस तरह इन्द्र और इन्द्रियाँ न तो किसी से डरती हैं और न क्षीण होती हैं, उसी तरह से प्राण न तो तू डर और न क्षीण हो।

यथा वीरं च वीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।

एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥९॥

जिस प्रकार वीर और शौर्य न तो किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं उसी प्रकार हे प्राण न तू डर और न क्षीण हो।

यथा प्राणश्चापानश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥१०॥

जिस तरह प्राण और अपान न तो किसी से डरते हैं और न क्षीण होते हैं। उसी तरह हे प्राण न तो तू डर और न क्षीण हो।

भीतर की दुनिया हर हालत में सही रहे

हम दो दुनिया के बीच रहते हैं। एक हमारे भीतर की, जो बाहर की दुनिया को प्रभावित करती है, एक हमारे बाहर की, जो भीतर की दुनिया को प्रभावित करती है। देखना यह है कि हमने किसे कितना महत्व दिया है, और किस सीमा तक किसे अपनाया है?

भीतर की दुनिया विचारों और भावनाओं की है। बाहर की दुनिया परिस्थिति और साधनों की। भावनाएँ यदि उच्चस्तरीय हैं, तो वह मजबूती बड़े काम की होती है। वह प्रामाणिकता और नैतिकता हर हालत में बनाये रहती है। परिस्थितियाँ विपरीत और साधनों की कमी रहने पर भी व्यक्ति सीधा खड़ा रहता है। बाहर के दबाव पड़ने पर भी झुकता नहीं। गरीबी और विपत्ति में भी दिन हँसते हुए गुजार लेता है। भीतर प्रसन्नता है, तो बाहर भी मस्ती बनी रहती है। इसके विपरीत जो बाहर की दुनिया में रहते हैं, उनके लिए परिस्थितियाँ ही सब कुछ रहती हैं, वे पैसा कम पड़ते ही रोने-बिलखने लगते हैं और संघर्ष-झंझट सामने आने पर तिलमिला जाते हैं, अनीति पर उतर आते हैं, शान्ति खो बैठते हैं और जिस उपाय से सम्पन्नता-सफलता हाथ लगे उसे करने लगते हैं, भले ही उसमें नीति हाथ से गँवानी पड़े।

भीतर की दुनिया विचारों की है, आदर्शों और भावनाओं की है। उसका स्तर यदि ऊँचा है, तो व्यक्ति हर हालत में प्रसन्न बना रहेगा। सिद्धान्तों का परिपालन उसे इतना साहस दे सकेगा, जिसके सहारे परिस्थितियों की विपरीतता भी कुछ बिगाड़ न सके, विचलित न कर सके। गिराने के लिए यदि लोगों ने दबाव डाले और जाल बिछाये हैं, तो इस सीमा तक हैरान न कर सकेंगे कि आदर्शों को छोड़े और अनुकूलता खरीदने के लिए अनीति अपनाने पर उतारू हो। परिस्थितियाँ यदि मनःस्थिति को दबा डालें, तो समझना चाहिए कि मनुष्य बाहर की दुनिया में रहता है और भीतर की दृष्टि से खोखला है। जिसने सिद्धान्त-आदर्शों, विचार-भावनाओं का महत्त्व समझा है, वह सफलता उसी सीमा तक स्वीकार करेगा, जो अनुचित कदम उठाने और अनीति अपनाने के लिए बाधित न कर सके। उसे सम्पन्नता की चाह तो रहेगी, इसी सीमा तक जिसमें आदर्शों से विचलित न होना पड़े।

जिनने दोनों संसदों का सन्तुलन बिठा लिया है, वह योजना ऊँची बनाते समय यह ध्यान रखता है कि महत्वाकांक्षा इतनी बड़ी न हो जिसके लिए अनुचित कदम उठाने पड़ें। महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए पराक्रम करना तो उचित है पर वह पराक्रम ऐसा नहीं जो मर्यादा का उल्लंघन करने लगे। इसी प्रकार सन्तुलन मन वाला अपनी-अपनी कार्य-पद्धति को इस स्तर की बनाता है, जिसमें प्रगति की गुंजायश रहे। उन्नति की राह पर चलने में रुकावट न पड़े। साथ ही कुछ ऐसा न करना पड़े जिसमें अपने को अप्रमाणिक ठहराया जाय।

बुद्धिमत्ता उसी में है जिससे भीतर और बाहरी दुनिया के साथ तालमेल बैठ सके। स्वजन सम्बन्धी प्रसन्न रहें। कारोबार में प्रगतिशीलता बनी रहे। साथ ही कार्य-कौशल भी हाथ से जाने न पाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसके लिए बाहर की दुनिया ही सब कुछ है, वह अन्तरात्मा की पुकार को प्राथमिकता न दे सकेगा। उसे बाहर बालों का ध्यान रहेगा। लोग जिस कदम में बड़प्पन प्रदान करें, भले ही आदर्शों के हिसाब से हलका या गलत सिद्ध होना पड़े, बाहर की दुनिया में प्रचलन यही है कि सफलता और सम्पन्नता खरीदने के लिए जो भी करना पड़े, किया जाय। आदर्शों का ध्यान न रखने वाले को सीमित लाभ में सन्तोष करना पड़ेगा। लोग मूर्ख कहें और व्यवहार-कुशलता से अनजान ठहरावें तो उसके लिए भी तैयार रहना पड़ेगा। जिसने भीतर की दुनिया को सही रखा है, उसकी बाहर की दुनिया भी ऐसी रहेगी जिसे गलत न कहा जा सके।

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो

मनुष्य की समूची प्रगति उसके व्यक्तित्व की उत्कृष्टता पर निर्भर है। यदि व्यक्तित्व ही निकृष्ट या विखण्डित स्तर का हुआ तो व्यावहारिक जीवन में अनेकानेक विकृतियों, असफलताओं का सामना करना पड़ेगा। सारी उपलब्धियों एवं बौद्धिक प्रगति के बावजूद आज जिस तरह मनुष्य अपने को व्यथित, असुरक्षित, उद्विग्न एवं असफल महसूस कर रहा है, उसके मूल में उसके व्यक्तित्व का विखण्डन ही दृष्टिगोचर होता है। मूर्धन्य मनोविदों ने इस समस्या को गंभीरता से लिया है और व्यक्तित्व को अविभाज्य बनाने के सम्बन्ध में शोध प्रयास भी आरंभ किये हैं। इस दिशा में उन्हें आंशिक सफलता भी मिली है।

मनुष्य को व्यक्तित्ववान बनाने के जितने भी पाश्चात्य प्रयत्न हुए हैं वस्तुतः वे सभी मानसिक स्तर तक ही सीमित रहे हैं। जब तक आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं मिलता, व्यक्ति को अधूरा ही कहा जायेगा। इस तथ्य का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करते हुए सुप्रसिद्ध मनीषी डॉ. आई. वी. सचदेवा ने अपने ग्रंथ ''योग एण्ड साइको एनालिसिस'' में कहा है कि व्यक्तित्व को अखण्डित बना सकना मानसिक स्तर से गहरे जाने पर ही संभव है। जहाँ इसको सर्वांगपूर्ण बनाया और समस्त व्यथाओं से छुटकारा पाया जा सकता है, वह आत्मिक स्तर ही है। जब तक समूचा जीवन इस केन्द्र से संचालित नहीं होता, तब तक इस समस्या के समाधान के लिए किये गये प्रयास वृक्ष की जड़ों को छोड़कर पत्तों को सींचने जैसे ही होंगे। सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान आत्मिक क्षेत्र से ही संभव है।

इस तथ्य का स्पष्टीकरण प्रख्यात मनोविद् लारेन्स हाइड ने भी अपनी कृति ''आइसिस एण्ड ओरिरिस'' में किया है। उनका कहना है कि मनोवैज्ञानिक विधियों की अपनी सीमाएँ हैं जिनके द्वारा मनोरोगों से ग्रसित रोगियों को इस परिध में तो लाया जा सकता है, पर व्यक्तित्व विखण्डन जैसी गंभीर समस्याओं का समाधान इसके द्वारा संभव नहीं हो सकता। उनके अनुसार जीवन को आत्म-केन्द्रित बनाए बिना किसी भी तरह व्यक्तित्व तथा जीवन के बिखराव की परिसमाप्ति नहीं हो सकती। मनुष्य समाज को आत्म-केन्द्रित बनाना भी तभी सम्भव है जब अध्यात्म का सहारा लिया जाय।

धर्म एवं अध्यात्म का जो स्वरूप इन दिनों संसार के विभिन्न भू-भागों में प्रचलित है, उसको देखकर मनोवैज्ञानिकों का वैज्ञानिक मन एक वितृष्णा से भर उठता है। वे यह नहीं सोच पाते कि जो धर्म मनुष्यों को भेड़-बकरियों का झुण्ड समझकर उन्हें दूसरे झुण्ड से अपने झुण्ड में शामिल करने को ही अध्यात्म का सर्वस्व मान बैठे हैं, जिनकी सारी आध्यात्मिकता इसी फेर-बदल या परिवर्तन में सिमट गई है। उससे भला व्यक्तित्व को सर्वांगपूर्ण कैसे बनाया जा सकता है, धार्मिकों का एक अन्य समुदाय भी है जो बात-बात पर जिहाद छेड़ता और दंगे कराने, काफिर-मारने के नाम पर मनुष्यों की हत्या करने में ही अपनी शान समझता है। इस धर्म बनाम अखाड़े से भी कोई समाधान निकलने वाला नहीं है।

वस्तुतः आज मानव समाज अध्यात्म के उस स्वरूप की अपेक्षा रखता है, जो प्रथा-परम्पराओं या लोक-प्रचलनों पर आधारित न होकर पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक हो। यह कार्यक्षेत्र अध्यात्म मनोविज्ञान का है। वर्तमान समस्याओं का समाधान कर मनोशास्त्रियों को एक सशक्त आधार प्रदान कर सकना इसी के सहारे संभव हो सकेगा।

अध्यात्म का मनोवैज्ञानिक स्वरूप भारतवर्ष के ऋषि-चिंतन की अपनी विशिष्टता है। ऋषि-मनीषी कहे जाने वाले यहाँ के मनोवैज्ञानिकों ने मानव के व्यवहार एवं अन्तराल का भली-भाँति विश्लेषण कर उसके व्यक्तित्व को परिपूर्ण बनाने तथा जीवन को आत्म-केन्द्रित करने की एक ऐसी प्रणाली विकसित की थी, जिसे अध्यात्म मनोविज्ञान नाम दिया जाना सर्वथा युक्तिसंगत है। इस मनोवैज्ञानिक प्रणाली को सुसम्बद्ध रूप से स्थापित करने का प्रमुख श्रेय महर्षि पतंजलि को है। उन्हें पूर्वात्य मनोविज्ञान के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकारा जा सकता है। सुविख्यात मनो विशारद् कार्ल रोजर्स ने इसी प्रणाली से प्रेरणा ग्रहण कर एक 'नॉन डाइरेक्टिव थेरेपी' नामक पद्धति भी विकसित की है, जो पूर्णतया अध्यात्म विज्ञान को अपना आधार मानती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यात्म भी मनोविज्ञान हो सकता है। यह बात मनोविज्ञान के नूतन अध्येताओं को कुछ कौतुक जैसी भी लग सकती है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से ऐसा लगना स्वाभाविक भी है। किन्तु अध्यात्म को मनोवैज्ञानिक ढंग से परिभाषित करने पर यह तथ्य सहज ढंग से समझ में आ सकता है। इस प्रणाली के द्वारा चेतन मन को अचेतन मन में तब तक केन्द्रित करते हैं, जब तक दोनों मिल न जायँ। फिर इन दोनों को अति-चेतन में विलय कर दिया जाता है। यह समूची मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया ही अध्यात्म है।

इस तरह जीवन का संचालन मन:क्षेत्र से न होकर अतिमन के क्षेत्र से होता है। इस स्थिति में हम अपने मन पर उसी तरह अधिकार कर लेते हैं, जैसे अभी शरीर पर है। तभी समूची मानसिक शक्तियों का पूरी तरह सदुपयोग करना भी सम्भव बन पड़ता है। विशृंखलित व्यक्तित्व सहज ढंग से सुसम्बद्ध एवं अखण्डित हो जाता है।

व्यक्तित्व के अखण्डित स्वरूप को प्राप्त करने की इस भारतीय प्रणाली की मनोवैज्ञानिक विवेचना अपने समय के उत्कृष्ट चिंतक स्वामी प्रभवानन्द ने अपनी कृति ''हाऊ टू नो गॉड'' में गंभीरतापूर्वक की है। तथ्य को स्पष्ट करते हुए उनने बताया है कि मनो-चिकित्सक अपने मरीजों का मनो-शारीरिक स्तर तक एक सन्तुलन भर बिठा सकते हैं पर इसके परे उनकी पहुँच नहीं हो पाती। जबकि इसके परे ही है व्यक्तित्व का उर्ध्वमुखी तथा अखण्डित होना। यह कार्य अध्यात्म करता है। अतएव यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ से आधुनिक मनोविज्ञान की परिसमाप्ति होती है, वहीं से अध्यात्म मनोविज्ञान का प्रारम्भ होता है।

मनो विशारद् इरा प्रोगॉफ ने भी अपनी कृति ''साइकोलॉजी ऐज ए रोड टू फिलासफी'' में उक्त मत का समर्थन करते हुए बताया है कि कोई भी मनोवैज्ञानिक प्रणाली मानव जाति की सेवा तभी पूरी तरह कर सकती है, जब वह वैयक्तिक दर्शन के रूप में भी उभर सके। यहाँ वैयक्तिक दर्शन से तात्पर्य उस विधा से है, जो व्यक्ति के चिन्तन को सँवारे तथा परिष्कृत बनाए।

अध्यात्म मनोविज्ञान अपने को इस कसौटी पर भी पूरी तरह से खरा सिद्ध करता है। महर्षि पतंजलि के सूत्र न केवल एक सर्वांगपूर्ण मनोवैज्ञानिक पद्धति है बल्कि सदियों से उसे भारतीय षड्दर्शनों में मुख्य दर्शन के रूप में भी स्वीकारा गया है। यह वैयक्तिक दर्शन की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकने में पूर्णतया सक्षम है।

यह पद्धति सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही पक्षों को पूरी तरह से सन्तुष्ट करती है। इसका अवलम्बन जहाँ मूर्धन्य मनोविदों के प्रयोगों को नयी गति देने वाला सिद्ध होगा, वहीं सामान्य जन इसकी प्रविधियों को व्यवहार में लाकर अपनी समूची मनोव्यथाओं से मुक्ति भी पा सकेंगे। आधुनिक मनश्चिकित्सकों का भी यह पुनीत दायित्व है कि इस पद्धति को अपनाकर, व्यवहार में लाकर मानव तथा मानवता का हित सम्पादन करें।

व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की धुरी—अध्यात्म

मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन एवं मानव समाज में सुख-शांति की परिस्थितियाँ किस आधार पर बनेंगी? यदि इस प्रश्न का संक्षिप्त-सा उत्तर दिया जाय, तो वह होगा—मनुष्य में मनुष्यता के विकास से। इसी को प्रकारान्तर से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी कह सकते हैं। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का तात्पर्य मात्र शारीरिक स्वस्थता एवं बौद्धिक प्रखरता के युग्म को मानना भूल होगी। इसका सही व स्वस्थ स्वरूप सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को व्यक्तित्व में विकसित करने से प्रकट होता है।

मानवी समाज में व्यक्ति के भिन्न-भिन्न स्तर दिखाई देते हैं। एक से काय-कलेवर के होते हुए भी गुण, कर्म, स्वभाव का अंतर हर एक की अपनी अलग पहचान बना लेता है। मानवी मूल्यों की अवेहलना कर उल्टी राह पर चलने वाले नर-पशु, नर-पिशाच की श्रेणी में गिने जाते हैं, तो सांस्कृतिक एवं सामाजिक आदर्शों के अनुरूप जीवन-पद्धति पर चलने वाले महामानव की श्रेणी में जा विराजते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अन्दर यह जिज्ञासा बराबर बनी रही है कि परिपक्व व्यक्तित्व की पहचान क्या है ? उसके सही लक्षण क्या हैं ?

इस संदर्भ में प्रो. जी. डब्ल. आलपोर्ट ने अपने मंतव्य इस प्रकार प्रकट किये हैं—''व्यक्ति की परिपक्वता, अपने गुणों के विस्तार एवं कमियों को खुले दृष्टिकोण से स्वीकार कर सुधारने की वृत्ति के साथ आती है।'' एक परिपक्व शक्ति के जीवन-दर्शन में एकरूपता का समावेश होता है। उसके अन्तस् में मानव मात्र के कल्याण की भावना विकसित होती है, जिसके आधार पर वह समता, सौहार्द्र, सहयोग तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता दिखाई देता है।

मूर्धन्य मनीषी एब्राहम एच. मैसलो ने अपनी पुस्तक ''टुवार्डस ए साइकॉलॉजी ऑफ बीइंग'' में परिपक्व व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए लिखा है कि हर व्यक्ति आत्म-सिद्धि प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर है। यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

उसकी समस्त क्रियाओं की अभिप्रेरणा है। किन्तु जब तक व्यक्ति अपने में सादगी, शालीनता, सच्चरित्रता जैसे आध्यात्मिक गुणों का विकास नहीं कर लेता, उसके व्यक्तित्व में परिपक्वता और सर्वांगीण उन्नति नहीं आती। आत्म सिद्धि उसके बाद का अगला चरण है। मैसलो के शब्दों में इस प्रकार का व्यक्तित्व जीवन और समाज के यथार्थ को भली-भाँति ग्रहण करता है। उसके जीवन में अधिक सहजता होती है। वह जीवन की समस्याओं को तटस्थ होकर समझता है और उनका समाधान ढूँढ़ता है। स्वयं समस्याओं से प्रभावित नहीं होता। मैसलो के ऐसे व्यक्तित्व की परिकल्पना में और गीता के समत्व भाव से युक्त पुरुष में कोई अंतर नहीं है गीता के दूसरे अध्याय के ८वें श्लोक में भगवान कृष्ण कहते हैं। **''योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।''** अर्थात्—आसक्ति को त्यागकर सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित होकर कर्मों को करने वाला व्यक्ति समत्व-भाव से युक्त मनुष्य है। मनोवैज्ञानिक साईमंड्स ने भी परिपक्व व्यक्ति को ''आंतरिक द्वन्द्वों और बाह्य दुर्गुणों से मुक्त बतलाया है।'' पाश्चात्य मनोविज्ञान में परिपक्व व्यक्तित्व का जो स्वरूप उभरकर आता है, उसमें भी भारतीय दर्शन एवं मनोविज्ञान के परिपक्व व्यक्तित्व की अवधारणा का ही समावेश दिखाई देता है।

भारतीय जीवन दर्शन का निचोड़ हमें गीता में मिलता है। अतः गीता में वर्णित आदर्श पुरुष की व्याख्या से हमें पूर्व के मनोविज्ञान में परिपक्वता की परिभाषा मिलती है। इसके अनुसार व्यक्ति के स्वभाव एवं स्वरूप में तीन गुणों की प्रधानता होती है। ये गुण हैं—सत्, रज और तम। इन्हीं तीन गुणों से प्रभावित समूचा मानव समुदाय दिखाई देता है। लेकिन सभी व्यक्तियों में इन तीनों गुणों की मात्रा समान रूप से नहीं होती। गुणों की मात्राओं का भेद व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिपक्वता संबंधी भिन्नता भी उत्पन्न करता है। सतोगुण की प्रधानता से व्यक्ति ज्ञान पर बल देता है। शरीर-स्वास्थ्य अच्छा होता है। सतोगुण की विशेषता है निर्मलता। इस गुण की प्रधानता लिए व्यक्ति मन में सुख और ज्ञान के प्रति आसक्ति बनाये रखने के कारण श्रेष्ठ होते हुए भी जीवन में कठिनाइयों को अनुभव करता है। रजोगुण प्रधान व्यक्ति में आसक्ति अत्यधिक होती है और इस कारण वह विभिन्न प्रकार की तृष्णाओं और कामनाओं से ग्रस्त रहता है। तमोगुण से प्रभावित व्यक्ति अज्ञानी होता है। वह लापरवाही से काम करता है। उसमें आलस्य, प्रमाद एवं विभिन्न प्रकार के भ्रमों की प्रधानता होती है।

तात्पर्य यह है कि इन कमियों के रहते व्यक्ति गीता के अनुसार परिपक्व नहीं होता। परिपक्वता के लिए व्यक्ति का गुणातीत भाव में प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। गीताकार ने ऐसे व्यक्ति की व्याख्या करते हुए कहा है—वह निरंतर आत्म-भाव में स्थित होकर दुःख-सुख को समान समझने वाला है, धैर्यवान है, प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है, वह निंदा स्तुति में भी समान भाव वाला है। वह संपूर्ण कार्यों में कर्त्तापन के अभिमान से रहित रहता है ? इसके अनुसार परिपक्व व्यक्ति के लक्षण स्थिति-प्रज्ञ व्यक्ति के समान होते हैं। अतः गीता के अनुसार गुणातीत एवं स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति ही परिपक्व व्यक्ति है।

श्री अरविंद ने अपने सर्वांगपूर्ण योग-दर्शन में व्यक्तित्व की व्याख्या चेतना के विभिन्न स्तरों एवं सोपानों के संदर्भ में की है। उनके अनुसार-मानवीय व्यक्तित्व केवल चेतन और अचेतन मन का अच्छा या बुरा संगठन नहीं है। उसका अति महत्वपूर्ण भाग अतिचेतन है। यदि मानवी विकास क्रम उच्चतर अवस्थाओं की ओर अग्रसर हो रहा है, तो अवश्य ही वे उच्चतर अवस्थायें संभावनाओं के रूप में उसकी प्रकृति में आज भी अति चेतन में निहित हैं। इसलिए यह भाग महत्वपूर्ण है। मानव का विकास मार्ग जिसे वह तय कर चुका है, उसके अवचेतन को निर्धारित करेगा। वे कहते हैं कि मनुष्य के अवचेतन में स्थित भूत-संस्कार मात्र ही वर्तमान व्यवहार को ही नहीं बनाते, वरन् अति चेतन का प्रभाव भी उस पर रहता है, जिसके बल पर मनुष्य का व्यक्तित्व रूपांतरित होता है।

परिपक्व व्यक्तित्व के संदर्भ में भी अरविंद का बल उस आध्यात्मिक तत्व पर है, जिसकी उपलब्धि होने पर व्यक्ति परम शांति, आनंद और प्रकाश की प्राप्ति करता है। वही व्यक्ति अपने अंतरतम में प्रकाश-पुंज पा सकता है, जिसे उन्नत होने, ऊपर उठने, विकसित होने की सच्ची, गंभीर, सतत् अभिलाषा, इच्छा तथा आकांक्षा है। वह परिपक्व व्यक्तित्व के लिए निम्न एवं आवांछनीय प्रवृत्ति के त्याग को आवश्यक मानते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी दृष्टि को सीमित तथा क्षणिक स्वार्थों से हटायें, अंहकार की बेड़ियों को तोड़ें और स्नेह-सौजन्य के आधार पर विकसित **''वसुधैव कुटुम्बकम,''** की भावना को अंगीकार करें। यह छोटा चरण भी व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम साबित होगा। इसी के सहारे विश्व-वसुंधरा पर सुख-शांति का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। समय की माँग भी यही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादी धारणाएँ ही मानवी उत्कर्ष में सहायक

धारणा का अर्थ होता है—अंत:करण की गहराई में धर्म धारणाओं की चिंतन धारा को गहराई तक स्थापित करना। देखा जाता है कि मनुष्य कटी पतंग की तरह हवा के झोंकों के साथ दिशा बदलता रहता है। शरीरगत वासनाएँ और मनोगत तृष्णाएँ ही हर घड़ी सवार रहती हैं। उन्हीं की पूर्ति के लिए निरंतर ताना-बाना बुनने में लगा रहता है। उन्हीं के लिए खटता-पिसता रहता है, कुछ सफलताएँ, विशेषताएँ उपलब्ध हुईं तो अहमन्यता का भूत सवार होता है। दूसरों पर दर्प जमाने के लिए ठाट-बाट रोपता और अपव्यय तथा आतंक की नीति अपनाकर अपने को बड़ा सिद्ध करने के प्रयासों में लगा रहता है। इन्हीं विडम्बनाओं में उलझते-सुलझते जीवन का अंत हो जाता है।

जिनकी अपनी निजी धारणाओं में विवेकशीलता जुड़ी हुई है ऐसे कम ही लोग दीख पड़ते हैं। अधिकांश तो लकीर के फकीर होते हैं। प्रचलनों का अनुकरण करते रहते हैं। कुरीतियाँ चाहे कितनी ही अहितकर और अनुपयुक्त क्यों न हों, सभी साथियों के द्वारा अपनाए जाने पर अपने लिए भी अनुकरण का विषय बन जाती हैं। अनुकरणप्रियता मनुष्य का स्वभाव है पर इस क्षेत्र में भी यह सोचा जाना चाहिए कि किन्हें दृढ़तापूर्वक अपनाया जाय और किन्हें उथली दृष्टि से देखा और उपेक्षापूर्वक अपनाया जाय ? जिन्हें महत्वपूर्ण माना जाय उन्हीं मान्यताओं के अनुरूप दृढ़तापूर्वक अपनाया जाय यह भी पूर्व निर्धारण के अभाव में ठीक तरह नहीं बन पड़ता। परिस्थितियों के अनुरूप सद्विचार ही नहीं, आचरण भी बदलते रहते हैं। अवसरवादिता ही नीति बनकर रह जाती है। बेपेंदी के लोटे की तरह जहाँ भी जिस प्रकार भी स्वार्थ सिद्ध होता दीखता है, उधर मुड़ लेते हैं। कुछ ही अच्छे आदमी अपने को बदल पाते हैं। वातावरण को अपने ढाँचे में ढाल सकने की मनस्विता तो किन्हीं विरलों में ही होती है।अधिकांश परिस्थितियों के अनुरूप अपना मन बदलते रहते हैं, तितली की तरह आकर्षण के प्रलोभन में इस फूल से उस फूल पर उड़ते-फिरते हैं। उनका अपना कोई लक्ष्य, निर्धारण या मंतव्य नहीं होता। इस प्रकार के व्यक्तियों की न कोई दिशा धारा होती है और न सुनिश्चित क्रिया पद्धति। परिस्थितियाँ ही उन्हे हवा के झोंके की तरह जहाँ-तहाँ लिए फिरती हैं। ऐसी दशा में न कोई महत्वपूर्ण कार्य नियमित रूप से करते बन पड़ता है और न किसी सराहनीय सफलता का श्रेय उन्हें मिल पाता है।

प्रेरणाएँ अंत:करण में उभरती हैं, उन्हीं के आधार पर विचारणा काम करती है। योजना बन पड़ती है और इच्छा की पूर्ति करने के उद्देश्य से क्रिया चल पड़ती है। इसलिए इच्छाओं की पूर्ति ही जीवन का स्वरूप बनकर रह जाती है। परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाकर व्यक्ति स्वार्थ-साधना के प्रयत्नों में लगे रहकर अपनी आयुष्य बिता देता है। उसके कोई निज के उद्देश्य नहीं होते फलत: कुछ क्रमबद्ध रूप में करते-धरते भी नहीं बन पड़ता है। इस स्थिति को एक प्रकार से निष्फल जीवन ही कह सकते हैं। जितनी महत्वपूर्ण क्षमताएँ उसे उपलब्ध हुई हैं। उसकी तुलना में शतांश भी वैसा कुछ नहीं होता जिस पर कि संतोष किया जा सके। उत्साहपूर्वक जिसका उल्लेख हो सके।

इस उथले स्तर के जीवनयापन के पीछे एक ही कमी काम करती रही है, वह है अंत:करण में आदर्शवादी आस्थाओं का अभाव। यदि उपलब्ध सुरदुर्लभ अवसर का महत्व समझा जा सके, और उसे महत्वपूर्ण कामों में लगाने का निर्धारण किया जा सके तो फिर आदर्शों की उत्कृष्टता से अंतराल को सराबोर करने की बात ही प्रमुखता से मन में आती है। इसके लिए उसी स्तर का स्वाध्याय, सत्संग, वातावरण एवं सहयोग तलाशना पड़ता है। इस घेराबंदी से ही किसी उच्चस्तरीय दिशाधारा को दृढ़तापूर्वक अपनाने का मन बनता है। संकल्प उभरता है। मार्ग बनता है और उस पर दृढ़तापूर्वक चल पड़ना संभव होता है। अन्यथा मन की चंचलता ही प्रधान बनकर रह जाती है। उस बंदर वृत्ति से कौतुक-कौतूहल ही होते रहते हैं। कुछ ऐसा नहीं बन पड़ता जिसे अनुकरणीय कहा जा सके, सराहा जा सके और उसका अनुकरण करके किसी के मन में उमंग उठ सके।

मनुष्य जीवन महान सृजेता की महान कलाकृति है। उसे पेट-प्रजनन जैसे पशु-प्रयोजनों में ज्यों-त्यों करके पूरा कर लेना ही वह कार्य नहीं है जिसे कर्म योग कहा गया है और जिसके द्वारा कर्मरत होते हुए भी चरम लक्ष्य तक पहुँच सकना संभव हो सकना बताया गया है।

शारीरिक कृत्यों का स्वरूप दृष्टिगोचर तो होता है। प्रस्तुत की गई घटनाओं का वर्णन होता है। पर पर्दा उठाकर देख जाय तो प्रतीत होगा कि घड़ी के अनेक पुर्जे जो एक-दूसरे के सहयोग से कार्य-रत हो रहे हैं; उसके पीछे फिनर वाली चाबी ही काम करती है। चाबी भरी होती है तो घड़ी के पुर्जे चलते रहते हैं। अन्यथा वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावनाओं की व्यापक प्रेरणा के अभाव में शिथिल पड़ते, बंद हो जाते हैं। आगे धकेलने का जो काम फिनर वाली चाबी काम करती है, उसी प्रयोजन की पूर्ति मानव जीवन में धार वालों, संकल्प वालों के द्वारा बन पड़ती है।

आदर्शवादी उन मान्यताओं को धर्मधारणा कहते हैं, जो निश्चय से पूर्व ही उसकी गहराई पर गंभीरतापूर्वक विचार करें। सभी शंका-कुशंकाओं पर विचार कर लें। आगा-पीछा सोच लें, किंतु जब निष्कर्ष निकाल ही लिया जाय तो उसे सुदृढ़ विश्वास के रूप में हृदयंगम किया जाना चाहिए और उसकी पूर्ति के लिए जितना भी बन पड़े नित्य कुछ न कुछ करना चाहिए। विश्वासों को क्रिया से बल मिलता है। अन्यथा प्रयोजन में न आने वाले विचार कल्पना मात्र बनकर पक जाते हैं और प्रवाह के साथ जिधर से तिधर चले जाते हैं। स्थायित्व लाना हो, मंतव्य सुनिश्चित और सुदृढ़ करना हो तो आवश्यक है कि संकल्प को सदा ध्यान में रखा जाय और उन्हें कार्य रूप में परिणित करने का जो भी अवसर सामने आए उसे हाथ से न जाने दिया जाय। कर्तृत्व ही स्वभाव का अंग बन जाता है तो आदतें उस प्रकार के क्रिया-कलाप के लिए अवकाश भी प्राप्त कर लेती हैं और अवसर भी निकाल लेती हैं।

व्यक्तित्व को विश्वास बनाते हैं। यों अधिकांश लोग अनास्थावान होते हैं, वे तार्किक दृष्टि से किसी भी विषय का धुआँधार प्रतिपादन कर सकते हैं। पर जब उन्हीं सिद्धांतों को निजी जीवन में कार्यान्वित करने का अवसर आता है तो अपने ही प्रतिपादनों को भूल जाते हैं और वह करने लगते हैं जिन्हें वकालत के उभार में स्वयं ही खंडन करते रह हैं। मान्यताएँ भावना क्षेत्र की गहराई में उगती हैं। पर वे चिरस्थायी रहती हैं। वस्तुतः जीवन में जो कुछ महत्वपूर्ण है, वह सब आस्थाओं के ऊपर निर्भर है। अपने को उत्कृष्ट, निकृष्ट, दुर्बल, सबल मान बैठना अपने विश्वास के ऊपर ही अवलंबित है। यायावर जीवन जीने वाले, घुर्मत गाड़ी वाले अपने उस ढर्रे को अपनाए रहकर दूसरों की तुलना में कहीं अधिक कठिनाइयाँ भोगा करते हैं। पर वे सुविधा-साधन मिलने पर भी उस रीति-नीति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं। उनका कहना है कि वे मेवाड़ के राणा की संतानें हैं और जब तक दिल्ली पर राणाओं का झंडा न फहराएगा तब तक इसी स्थिति में भ्रमण करते रहेंगे। यद्यपि अब उनके उस स्थान का कोई तात्पर्य नहीं रहा फिर भी विश्वास तो विश्वास जो रहा। कुमारियाँ अपना कौमार्य व्रत, विधवाएँ अपना वैधव्य इसी आधार पर भली प्रकार से निबाह लेती हैं। न्याय निष्ठा, परोपकारी, ईमानदारी स्तर के व्यक्ति अनेकों प्रतिकूलताओं और दबावों के आगे न झुककर अपनी प्रतिभा पर आरूढ़ बने रहते हैं। प्रतिकूलताएँ उन्हें उस व्रत से डिगा नहीं पातीं।

धारणाएँ एवं आस्थाएँ तभी सराहनीय बनती हैं जब वे आदर्शवाद के साथ जुड़ी हुई हों। अन्यथा दुर्व्यसनी भी हेय स्तर की मान्यताएँ बनाएँ रहते हैं। दुराग्रही भी यही करते रहते हैं। दीन-हीनों में से अनेक लोग इसे अपना भाग्य मान लेते हैं और उसमें सुधार लाने के प्रयत्न छोड़ बैठते हैं। धारणाएँ अंध-विश्वास से भरी भी हो सकती हैं पर जिन्हें अध्यात्म मार्ग में सहचर माना गया है, वे आस्तिकतावादी, अध्यात्मवादी और धर्मावलंबी मान्यताएँ ही हैं। इन्हीं के सहारे ऊँचा उठा और आगे बढ़ा जा सकता है।

प्रेम की विराट् परिधि

प्रेम क्या है ? विज्ञान के अर्थ में कहें, तो सुविधा-साधनों की दृष्टि से संसार को समुन्नत बनाना। दर्शन की दृष्टि से विचार करें, तो उत्कृष्टतावादी चिंतन देना। कर्मयोग की भाषा में कर्मनिष्ठा पैदा करना और समाजशास्त्र के मत में सुव्यवस्था लाना।

इन आरंभिक व्यक्तिवादी कार्यों के माध्यम से स्नेह जब विराट् विस्तार पाता है, तभी वह वास्तविक 'प्रेम' बनता और वरेण्य साबित होता है। पूर्ण सत्य का सही पूर्ण प्रकाश है। विज्ञान, दर्शन, कर्म समाजशास्त्र—यह सब संप्रति जिस लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं, उनमें इनका प्रेम तो झाँकता है, किंतु वह न्यून और अपूर्ण है। उसका संपूर्ण प्रकाश अध्यात्म के उस संक्षिप्त सूत्र में सन्निहित है, जिसमें **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** कहकर उसे अभिव्यक्त किया गया है। निस्संदेह समाज के लिए सुविधा-साधनों का विकास कर विज्ञान ने एक प्रकार से प्रेम का ही प्रदर्शन किया है, पर यह तुच्छ प्यार तब तक महत्वहीन है, जब तक वह अपने निखिल अंश में न प्रकाशित हो। विज्ञान का दायित्व समाज को प्रगति की ओर ले चलना है, किन्तु जब क्षुद्र स्वार्थ में पड़कर वैज्ञानिक अवगति के सरंजाम जुटाने लगें तो समझना चाहिए कि जिस अनुराग का अभ्युदय अंतर में हुआ था, वह निजी सुख से कुछ ही आगे बढ़कर छोटे दायरे में सीमाबद्ध हो गया। यह परिमित स्नेह इस परिधि को पार कर असीम न बना, तो फिर वैज्ञानिक विकास भी शोषण-उत्पीड़न का निमित्त ही बना रहेगा और सुविधाओं का दुरुपयोग ही करता रहेगा। जहाँ दुरुपयोग हो, हानि हो, वहाँ विशुद्ध अनुराग की आशा नहीं की जा सकती। इसके विपरीत जहाँ विकाररहित प्रेम होगा, वहाँ अपनत्व होगा और अपनत्व की पीड़ा भी होगी। यह पीड़ा ही सदुपयोग को प्रोत्साहित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और दुरुपयोग को हतोत्साहित करती रहती है। इसके अभाव का नाम ही स्वार्थ है। स्वार्थियों में न तो वात्सल्य होता है, न उपकार की भावना ही। उल्टे वे अपकार में निरत रहकर दूसरों को हानि पहुँचाने की ही चेष्टा करते रहते हैं। इस प्रकार विज्ञान का विकास वास्तविक स्नेह की अनुपस्थिति में विनाश का हेतु साबित होता है।

दर्शन, चिन्तन की एक विधा का नाम है। समयानुकूल दर्शन से समाज का मार्गदर्शन होता है और यह ज्ञात होता है कि समस्त लोगों को वह उन्नति की दिशा में आगे बढ़ा ले जाने की उत्कंठा रखता है। इतने पर भी सब कुछ चिन्तन क्षेत्र तक ही सीमित रहे और व्यावहारिकता के धरातल पर जीवन में न उतरे, तो इसे भी पूर्ण सत्य का, पूर्ण प्रेम का अपूर्ण अंश ही कहना चाहिए। इतने से भी बात बनने वाली नहीं। दर्शन प्रभावोत्पादक तब होता है, जब वह प्रतिपादक के जीवन में उतरकर कर्म में परिवर्तित हो जाय। यदि इतना न हो सका, जीवन सामान्य स्तर से ऊँचा न उठा तो फिर दोहरे व्यक्तित्व का कलंक सिर पर लदता एवं अपमान-अपयश का भागी बनना पड़ता है। इसलिए दर्शन की पूर्णता उस अंतिम सत्य में निहित मानी गयी है, जहाँ दार्शनिक मात्र चिंतक बना नहीं रहता, वरन् एक आदर्शनिष्ठ पुरुष की तरह समाज के साथ व्यवहार करता है। यही अनुराग है, जिसकी कि आखिरी परिणति के बारे में श्रुति कहती है **''आनन्दरूपममृतं यद्विभाति''** अर्थात् वह (प्रेम) आनन्द रूप में प्रकाशित होता है। यह सत्य है कि आनन्द की उपलब्धि वात्सल्य के बिना संभव नहीं। दोनों एक-दूसरे के सहोदर-सहचर हैं। जहाँ प्रेम का प्रकाश है, आनंद का उल्लास वहीं दिखाई पड़ता है।

प्रीति का चौथा स्वरूप कर्मनिष्ठा है। यह दो प्रकार की मानी गई है। एक वह जो व्यक्तिगत कार्यों के प्रति उपजती है, तब वह स्वार्थलिप्ता मात्र बनकर रह जाती है, ऐसी लिप्सा, जहाँ केवल अपने ही उन्नयन की चाह हो। दूसरी वह जहाँ अपने और परायेपन का लोप हो जाता है और सभी कार्य अपने निजी प्रतीत होने लगते हैं, भले ही वह पारिवारिक हों, सामाजिक, राष्ट्रीय, नैतिक, धार्मिक कुछ भी हों। जहाँ स्तर-भेद समाप्त होकर सभी का एकीकरण हो जाय, वहीं कर्तव्य-बोध का प्रथम उदय होता है। इस कर्तव्य-बोध का विकास ही कर्मयोग का प्रारंभ है। जब कर्म, योग में रूपांतरित होने लगे, तो समझना चाहिए कि उस यथार्थ की उपलब्धि हो गई, जिसका बाह्य स्वरूप 'प्रेम' है।

समाज की इकाई व्यक्ति है, इस दृष्टि से व्यक्तिगत जीवन में शांति और सुव्यवस्था की प्रतिष्ठापना अभीष्ट और आवश्यक तो है, पर साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि यह अनुशासन समाज में स्थापित हो सका या नहीं। यदि नहीं, तो वह कौन-से-उपाय-उपचार हो सकते हैं, जिनके माध्यम से सामाजिक अशांति और असंतोष को दूर कर उसे उत्कर्ष की ओर ले जा सकना संभव है ? यह सोचना समाजशास्त्री का दायित्व है जिस परिणाम में वह इसे पूरा करता है, उतने ही अंशों में वह प्रेम रूप ईश्वर को प्राप्त करता चलता है। इस मार्ग में बढ़ते हुए जब उसे यह अनुभव होने लगे कि उसके वैयक्तिक और वैश्व-शरीर में कोई अंतर नहीं और इनकी भी देखरेख काया की तरह होनी चाहिए, तो वह प्रीति के चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हो जाता है। यही पूर्णता प्राप्ति है। इस अवस्था में, उसे निजी देह के कोश-कोश, ऊतक-ऊतक के बीच जिस प्रकार का जितना संतुलन-सामंजस्य दिखाई पड़ता है, वही तालमेल वह इस विराट् वैश्व-देह के मानव-मानव और संस्था-संगठन के मध्य स्थापित करने के लिए आकुल-व्याकुल होने लगता है। यही वह अवस्था है, जब परम सत्य वात्सल्य बनकर फूट पड़ता है। एकाकी व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत जिंदगी में शांति और सुव्यवस्था अपनाकर प्रशंसा का पात्र तो बन सकता है, पर जिस यात्रा की शुरूआत परम तत्व की उपलब्धि कराने में सफल हो सकती थी, उसकी यदि इतिश्री निजी जीवन में मान ली गई, तो समझना चाहिए कि पूर्णता की दिशा में बढ़ते कदम परमार्थ की दूरी नाप न सके और स्वार्थ-सुख में उलझकर छितरा गये। इस दुर्भाग्य को सौभाग्य-सुख में बदल सकना विराट् स्तर पर किये गये प्रेम द्वारा ही संभव है।

आत्मोत्कर्ष की अवांछनीय उपेक्षा

आँखें बाहर का देखती हैं। वे न अपना स्वरूप देख पाती हैं और न अपनी बनावट के सम्बन्ध में कुछ प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं। इसी प्रकार कान बाहर के शब्द सुनते हैं। हृदय की धड़कन, फेफड़ों की श्वसन-क्रिया तक उन्हें सुनाई नहीं पड़ती। तत्व से बाहर की वस्तुओं को छूकर उनके सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है, पर इससे छोटी परिधि से बढ़कर बहुत दूर वाले पदार्थों की हलचलों की भी ज्ञानेन्द्रियाँ जानकारी प्राप्त नहीं कर सकतीं। एक सीमित दूरी तक ही उनकी पहुँच और पकड़ है, न वे अति निकट को समझ पाती हैं और न अति दूर को। इन्द्रियाँ पंचतत्वों से ही बनी हैं, इसलिए उनका सम्पर्क और अनुभव भी मात्र पदार्थ जगत के साथ ही बन पाता है।धीरे-धीरे मान्यता भी यही बन जाती है कि पदार्थ जगत ही सब कुछ है। शरीर संपर्क चूँकि उन्हीं के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साथ रहता है, इसलिए उन्हीं के साथ प्रिय-अप्रिय और उपेक्षा की प्रवृत्ति भी बनती और बढ़ती रहती है। इतने ही छोटे संसार में जीवन जिया जाता है। इतने को ही प्रभावित करने और प्रभावित होने का सिलसिला प्राय: चलता रहता है। इसी परिधि में घूमते हुए आम आदमी कोल्हू के बैल की तरह अपने जीवन वैभव का समापन कर लेता है।

यह एक प्राणिमात्र के साथ जुड़ा हुआ उपक्रम है। पदार्थों का उत्पादन व उपभोग करते हुए जीवधारी घाटे या नफे का समयक्षेप करते हैं। इस प्रकृति प्रेरणा से प्रचलित-प्रक्रिया के साथ जीवधारी जुड़े रहते हैं और कालक्षेप करते हैं। मनुष्य भी उन्हीं में से एक है।

स्थूल दृष्टि इतना ही समझ और समझा पाती है कि महत्वपूर्ण भाग वह है, जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता। जिसे इन्द्रियाँ देख या समझ नहीं पातीं। मन-मस्तिष्क को भी ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है। इसलिये उसकी दौड़-धूप भी बहिरंग क्षेत्र तक ही सीमित रहती है। जो अप्रत्यक्ष है, अतिशय महत्वपूर्ण है, वह अविज्ञात-उपेक्षित स्थिति में ही पड़ा रहता है। ऐसी दशा में उसे परिष्कृत, समुन्नत बनाने के लिए तो कुछ करते-धरते बन ही कैसे पड़े ?

जानने को तो सभी जानते हैं कि शरीर के भीतर कोई आत्मा भी है, पर यह ज्ञान कहने-सुनने और जानने अपनाने तक ही सीमाबद्ध होकर रह जाता है। यह अनुभव नहीं किया जाता कि वस्तुत: ऐसा कुछ है भी क्या? यदि है तो उसकी कुछ क्षमता, उपयोगिता, समर्थता एवं भूमिका भी प्रत्यक्ष जीवन में कुछ है क्या? इसे कोई विरला ही अनुभव कर पाता है। यदि वह अनुभूति बन पड़ी होती तो प्रसुप्तता हटती, चेतना जगती और उस महत्वपूर्ण पक्ष की स्थिति का पर्यवेक्षण किया गया होता। उसे अवगति से उबारा गया होता और ऐसा कुछ प्रयास बन पड़ता, जिसे आत्मोत्कर्ष के नाम से जाना जाता और उस क्षेत्र के विकसित होने का चमत्कारी प्रतिफल हाथों-हाथ दृष्टिगोचर हो सका होता। पर उस उपेक्षा को क्या कहा जाय, जिसके कारण हीरा भी काँच के ढेर में पड़ा रहता है और उसी के साथ तोला, बेचा जाता है।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि शरीर कितना ही सुन्दर, समर्थ, कुशल क्यों न हो, उसकी सत्ता और महत्ता अदृश्य आत्म-चेतना पर निर्भर रहती है। देखने में सभी का काय-कलेवर प्राय: एक जैसा होता है। अन्तर एक सीमित मात्रा में ही पाया जाता है। इतने पर भी देखने में यह आता है कि एक व्यक्ति गये-गुजरे स्तर का होता है, तो दूसरा सभ्य, समुन्नत और सुसंस्कृत स्तर का जीवनयापन करता है। एक उपेक्षा का भाजन बना रहता है, हेय समझा और भारभूत माना जाता है। इसके विपरीत दूसरे की प्रतिभा ऐसी होती है, जिसके कारण उसकी सर्वत्र सराहना होती, उपयोगिता मानी जाती है। यह अन्तर किसी के शरीर या वैभव पर आधारित नहीं होता, वरन् उसकी उस विशिष्टता पर आधारित रहता है जिसे चेतना कहते हैं, जो अदृश्य रहते हुए भी दृश्य का पूरी तरह सूत्र संचालन करती है।

यों समझा तो सब कुछ शरीर और साधनों को ही जाता है, पर वस्तुत: ऐसा है नहीं। कठपुतली का तमाशा बाजीगर की उँगलियों से बँधे हुए तार के सहारे होता है। चेतना ही शरीर से क्रियायें और मस्तिष्क से विचारणायें सम्पन्न कराती है। प्राणान्त हो जाने पर काय-कलेवर के सभी घटक यथावत् रहने पर भी सारी हलचलें समाप्त हो जाती हैं। इतना ही नहीं, कुछ देर रखे रहने पर लाश अपने-अपने घटकों में सड़ने, गलने और बिखरने लगती है। तथ्य स्पष्ट है कि जीवधारियों का जीवन और कुछ नहीं, मात्र प्राण चेतना की उपस्थिति मात्र है। वही 'स्व' है। वही 'अहम्' है वही 'आत्मा' है। उसका अस्तित्व जन्म लेने से पूर्व भी था और मरण के उपरान्त भी अनन्तकाल तक किसी न किसी रूप में बना रहता है। यही है वह तत्व, जिसके स्तर के अनुरूप जीवन का उत्थान-पतन अवलम्बित रहता है।

आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य का चिन्तन और प्रयास मात्र शरीर के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। उसे पदार्थों और प्राणियों की काया भर से लगाव होता है। धन संचय ही लक्ष्य स्तर का बनकर आकांक्षाओं पर छाया रहता है। इन्द्रियों में उठने वाली खुजली जैसी ललक ही अपनी अभिरुचि के अनुरूप साधन जुटाने के लिए मचलती रहती है। कंचन और कामिनी जैसे कुछ ही प्रसंग मनुष्य के प्रिय विषय रहते हैं। प्रदर्शन के लिए आतुर, अहंकार ऐसे प्रपंच रचता रहता है, जो समसयाध्य, कष्टसाध्य, व्ययसाध्य होते हैं। सोचा जाता है कि सज-धज और ठाट-बाट से दूसरों को प्रभावित, चमत्कृत किया जा सकेगा। इसी अहंता की आपूर्ति का भारी-भरकम ढाँचा खड़ा किया जाता है। यश और मान पाने की लिप्सा उद्विग्न किये रहती है। फिर भी वास्तविकता यह है कि किसी को भी देर तक दूसरों की ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं होती। हर व्यक्ति अपनी ही इच्छाओं, समस्याओं के फेर में इस कदर फँसा रहता है कि दूसरों के सम्बन्ध में नजर उठाकर देख लेने भर की यदाकदा फुरसत निकाल पाता है। अन्यथा अपने ही कामों में व्यस्त व्यक्ति दूसरों की शृंगार-सज्जा और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समपन्नता पर क्यों तो ध्यान देगा और क्यों चमत्कृत, प्रभावित होकर रहेगा?

इतने पर भी सामान्यजन यही आशा लगाये बैठे रहते हैं कि लोग उन्हें सराहें, बड़ा आदमी मानें। इस दुराशा में ही प्राय: आधी शक्ति खर्च हो जाती है। जिसे यदि उपयोगी दिशा में नियोजित किया गया होता तो चेतना को समुन्नत बनाने का अवसर भी मिलता और ऐसा कुछ पुण्य-परमार्थ करते बन पड़ता जो लोक-कल्याण के क्षेत्र में अनुकरणीय भूमिका निभा सकना संभव बना देता। उस व्यामोह को क्या कहा जाय जो आत्मचिन्तन के लिये अन्तर्मुखी होने की स्थिति ही नहीं बनने देता।

वस्तुओं को सँभालने-सँजोने की व्यवस्था-बुद्धि सराहनीय मानी जाती है पर न जाने क्यों वह शरीर और परिवार परिकर तक ही सीमित होकर रह जाती है, बाहर का बिखराव यदि समेटा जा सका होता तो आत्मनिरीक्षण का अवसर मिलता और शरीर के घटक अवयवों की सही स्थिति में रखने की सूझ सूझती। आमाशय, आँतें, हृदय, फेंफड़े, गुर्दे, रक्त-माँस आदि में इतनी विकृतियाँ भरी रहती हैं कि यदि उन्हें संशोधित स्थिति में रखने की बात सोची गयी होती तो संयम, अनुशासन साधने मात्र से दुर्बलता और रुग्णता से छुटकारा मिल जाता। जिस काया को अपना स्वरूप समझा जाता है उसे तो सही स्थिति में रहने का अवसर मिलता, पर उस बहिर्बुद्धि को क्या कहा जाय जो मात्र सज्जा, लिप्सा और संपदा तक ही सीमित रहती है और जिसे अपना माना जाता है, उस काया की अन्त: व्यवस्था को उपेक्षित रखने के कारण रुग्ण रहना और अकाल मृत्यु मरना पड़ता है।

चेतना की स्वस्थता का स्वरूप है गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता का समुचित समावेश रहना। चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में मानवोचित उत्कृष्टता का आभास मिलना। इसी उपलब्धि के आधार पर आत्मसंतोष का और लोक-सम्मान का अर्जन बन पड़ता है। इतना भर भी यदि हस्तगत न किया जा सके तो समझना चाहिए कि चेतना दलदल में फँसी रही, उसे स्वच्छ वातावरण में रहने का अवसर ही न मिला। यह अभाव इसलिए सहन करना पड़ता है कि आत्मचिन्तन के लिए अन्तर्मुखी होना नहीं आता। समीक्षा करने और आत्म-सुधार के लिए प्रयत्नशील होने की बात एक प्रकार से विस्मृत ही रखी जाती रहती है।

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली अति सूक्ष्म शक्तियाँ

समझा जाता है कि पदार्थ और पुरुषार्थ के बल पर मनस्वी और श्रमशील व्यक्ति अभीष्ट सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं। यह मान्यता एक अंश तक ठीक भी है और उसे सर्व-साधारण के लिए उपयोगी ही घोषित किया जाना चाहिए। सामान्य लोक व्यवहार में उसी प्रतिपादन को लाभदायक और महत्वपूर्ण माना जाता रहा है, जो उचित भी है।

पर जब अधिक गहराई में प्रवेश करते हैं तो कुछ ऐसे नये तथ्य सामने आते हैं, जो स्थूल चेष्टाओं को ही सब कुछ नहीं रहने देते वरन् इससे आगे की ऐसी झाँकी कराते हैं, जिनके आधार पर सूक्ष्म तत्व का महत्व अत्यधिक बढ़ा-चढ़ा सिद्ध होता है।

हमारे व्यक्तित्व के दृश्यमान अवयव ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के रूप में जाने जाते हैं। इन्हीं के माध्यम से रसानुभूति होती है, जानकारियाँ मिलती हैं और विविध कर्म करना सम्भव होता है। यह जीवन की सामान्य प्रक्रिया हुई। असामान्य स्थिति वह है, जिसमें व्यक्तित्व का आधारभूत ढाँचा खड़ा करने वाले विशिष्ट तत्व का अस्तित्व होता है। उनका नियंत्रण अन्तर्मन करता है। सामान्य पुरुषार्थ के बल पर न इन विशिष्ट तत्वों को प्रभावित किया जा सकता है और न अन्तर्मन के अभ्यासों को बदलने के लिए सरलतापूर्वक तैयार किया जा सकता है। व्यक्तित्व के इस गहन अन्तराल को प्रभावित, विकसित करना मात्र उसी आधार पर सम्भव होता है, जिसे तत्वज्ञानियों ने योग विद्या एवं साधना विज्ञान का नाम दिया है

नेपोलियन बोनापार्ट का पराक्रम प्रसिद्ध है। वाटरलू के युद्ध में वह हार गया। 'ग्लैण्ड्स ऑफ डेस्टिनी' के लेखक डा. ईवो के अनुसार इस पराजय का कारण यह था कि उसकी पिट्यूटरी ग्रन्थि विकृत हो गई थी, इसी से वह समय पर सही निर्णय न कर पाया; अन्तर्द्वन्द्व में फँसा रह गया और अवसर चूक गया।

हारमोन्स बनाने वाली ग्रन्थियों का महत्व अब स्पष्ट हो चुका है। इन्हें ही अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ कहते हैं।

पीनियल, पिट्यूटरी, थायराइड, थाइमस, पैराथाइराइड, एड्रिनल, पेन्क्रियाज, गोनड्स, स्प्लीन आदि ग्रन्थियों के स्थान, आकार स्रावा तथा उन स्रावों से शरीर पर प्रभाव-परिणाम अब शरीर-शास्त्र की किसी भी पुस्तक में विस्तार से पढ़े जा सकते हैं। इन ग्रन्थियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में भारी योगदान है। मनुष्यों का बौना रह जाना, असाधारण लम्बे हो जाना, मोटापा, पतलापन, नपुंसकता, प्रचण्ड कामवासना, बुद्धिदौर्बल्य, प्रखर-बुद्धि होना, मिताहारी होना, बहुत खाना, बिना सोए काम चलाना, बहुत अधिक सोना, अकारण रोगग्रस्त हो उठना आदि अनेक शारीरिक-मानसिक दशाएँ इन्हीं हारमोन्स-स्रावों से बनती-बिगड़ती रहती हैं। व्यक्तित्व के निर्माण में इनका ही योगदान है। प्रेम, उत्साह, उल्लास, आनन्द, चिन्ता, उद्वेग, विषाद आदि भावनाएँ इन्हीं स्रावों की प्रतिक्रियाएँ हैं। मानसिक-सन्तुलन और स्वभाव-निर्माण इन्हीं पर मुख्यत: अवलम्बित है। शारीरिक सुदृढ़ता, सुन्दरता, स्फूर्ति, इन्द्रिय-क्षमता, रोग निरोधक-शक्ति, मानसिक प्रखरता और स्वभाव तथा चरित्र का स्तर इन्हीं से सम्बन्धित पाया गया है। समग्र व्यक्तित्व के विकास में इन स्रावों की अति महत्वपूर्ण भूमिका है।

अब यह भी ज्ञात हुआ है कि इन्हीं स्रावों के समन्वित प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रत्येक मनुष्य के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध फैलती रहती है। प्रत्येक व्यक्ति की गन्ध दूसरे से भिन्न रहती है। वस्तुत: यह गन्ध मनुष्य की अनेक गन्धों का सम्मिलित प्रभाव होती है। इन गन्धों का मुख्य स्रोत है, मनुष्य की हथेलियाँ और तलुवों में स्थित स्वेद-ग्रन्थियाँ।

किसी व्यक्ति की गन्ध से युक्त वायु के नमूनों को विशेष पात्रों में लगभग दो वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की एक 'गन्ध-छाप' या 'गन्ध-प्रकृति' तैयार कर ली जा सकती है। अपराधों की खोज के सिलसिले में यह गन्ध-छाप बहुत काम की सिद्ध होगी। अपराध जिस कमरे में घटित हो, उसके वायु-नमूनों को एकत्र कर उन्हें प्रयोगशाला में विश्लेषित किया जा सकता है। सन्दिग्ध व्यक्ति की गन्ध के साथ इस नमूने की गन्ध का मिलान कर अपराधी की शिनाख्त की जा सकती है।

रूसी वैज्ञानिकों ने इस दिशा में विशेष अनुसंधान किये हैं। इससे ज्ञात हुआ है कि शरीर के पसीने की सरंचना में ऐसे अम्ल विद्यमान होते हैं, जिनका कोई अंश कमरे की किसी वस्तु पर, फर्श आदि पर फैल जाता है। यह अम्लांश पैरों में जूते पहने होने पर भी, जूतों को पार कर फर्श आदि पर अपना प्रभाव छोड़ देता है। इसकी गन्ध इतनी पर्याप्त होती है कि खोजी कुत्ता इसकी पहचान करते हुए इसका पीछा कर सकता है।

अब अमेरिकी वैज्ञानिकों ने ऐसे गन्ध-विश्लेषकों का निर्माण किया है, जो कुत्तों की घ्राण-शक्ति से सहस्त्रों गुणित अधिक संवेदनशील हैं। किसी स्थान पर, यदि एक व्यक्ति लगभग ४५ मिनट उपस्थित रहे, भले ही वह एक ही स्थान पर न बैठा रहकर वहाँ सीमित क्षेत्र में चलता-फिरता भी रहे, तो वहाँ के वायु नमूनों को शीशे के एक पात्र में एकत्र कर उसका विश्लेषण करके उस निश्चित गन्ध-छाप की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कुछ अन्य उपकरणों द्वारा यह तक जाना जा सकता है कि उस व्यक्ति ने उस समय कौन-सी चीजें खाई थीं, किन वस्तुओं को छुआ था।

अन्त:स्रावी हारमोन ग्रन्थियाँ ऐसी हैं, जिन्हें शल्य क्रिया द्वारा किसी भी शरीर की फाड़-चीर करके देखा जा सकता है। यह स्थूल शरीर में रहने वाली चमत्कारी विशेषताएँ, जिन पर स्थूल पुरुषार्थ का प्रभाव नहीं पड़ता वरन् अन्तर्मन ही उनका नियंत्रण परिवर्तन करता है। यों दवा-दारू और चीर-फाड़ से भी इन संस्थानों को प्रभावित किया गया है, पर सफलता नगण्य ही मिली है। इन प्रत्यक्ष ग्रन्थियों से भी अधिक प्रभावशाली वे ग्रंथियाँ हैं, जो सूक्ष्म शरीर में विद्यमान हैं और जिन्हें षट्-चक्रों एवं चौबीस उपचक्रों के रूप में जाना जाता है। इनकी अन्त:स्थिति ही व्यक्ति के मूलभूत ढाँचे को खड़ा करती है। संस्कार, प्रारब्ध आदि इसी को कहते हैं।

वैज्ञानिक व्यक्तित्व की गन्ध के रूप में इन दिनों जिसका विश्लेषण कर रहे हैं, वस्तुत: वह मानवी विद्युत है जो क्रिया और चिन्तन पर अपना भारी प्रभाव सँजोये रहती है, इसी के आधार पर अन्त: प्रेरणा उठती है और उसी ऊर्जा के सहारे मनुष्य दिशा निर्धारित करते, उठते एवं गिरते देखे जाते हैं। अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की स्थिति सुधरने और समूची वैयक्तिक स्थिति में परिवर्तन करने के लिए वैज्ञानिक उपाय सोचे और प्रयोग में लाये जा सकते हैं, पर उनसे अभीष्ट परिणाम निकल नहीं रहा है। कई बार तो उल्टे परिणाम भी देखे गये हैं। उपचार ने लाभ के स्थान पर हानि प्रस्तुत की है।

मानव-शरीर में विद्यमान अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के क्रिया-कलापों की जानकारी का क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। किन्तु अभी तक यह नहीं जाना जा सका है कि इन स्रावों को कम या अधिक करने अथवा नियंत्रित करने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है? औषधियों की तो वहाँ तक पहुँच अल्प ही होती है। शल्य-चिकित्सा और इंजेक्शन्स आदि द्वारा भी इन्हें नियन्त्रित करने की निर्दोष विधियाँ ज्ञात नहीं हो सकी हैं। छेड़छाड़ करने पर अनेक नवीन समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। उदाहरणार्थ—सौन्दर्यवृद्धि की ललक से, स्त्रियों के बढ़े हुए स्तनों को छोटा करने के लिए 'रिड्यूसिंग क्रीम' का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोग चला। इसी तरह छोटे स्तनों को बड़ा बनाने के लिए एस्ट्रोजन हारमोन शरीर में पहुँचाए गये। इससे तात्कालिक लाभ तो दृष्टिगोचर हुआ, पर थोड़े दिनों बाद अन्य शारीरिक विकृतियाँ पैदा हो गईं। एक फ्रेंच महिला इसी प्रयोग के चक्कर में दाढ़ी, मूँछों वाला बन बैठी और सौन्दर्यवृद्धि की साध पूरी होना तो दूर, रहा-सहा सौन्दर्य भी जाता रहा। विद्युत-संचार के प्रयोगों के भी प्रतिकूल परिणाम ही देखे गये हैं।

हार्मोन्स सम्बन्धी वैज्ञानिक गवेषणाएँ हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती हैं कि शरीर-संस्थान के विभिन्न अवयवों की अपेक्षा एक छोटी-सी ग्रन्थि से स्रवित चन्द बूँदें अधिक महत्वपूर्ण हैं। सफलता और समृद्धि का आधार बाहरी रूपाकार की विशालता-विराटता पर नहीं, आन्तरिक प्रवृत्तियों पर ही गतिशील है। शक्ति का स्रोत चेतना का प्रकृति-संस्थान ही है। उसकी ही उत्कृष्टता-निकृष्टता के आधार पर हमारा वास्तविक उत्थान-पतन होता है। इससे अधिक गम्भीर क्षेत्र में उतरना हो तो हमें उन चक्रों और उपचक्रों का अन्वेषण करना पड़ेगा, जिन्हें योग्य शास्त्र में मनुष्य की आधारशिला माना है।

योग विज्ञान उस रहस्यमयी किन्तु सुनिश्चित प्रक्रिया का नाम है, जिसके आधार पर व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सकता है और उस सफलता को प्राप्त किया जा सकता है, जिसे जीवन-लक्ष्य की पूर्ति कहा जाता है।

व्यक्ति में महानता का अवतरण ऐसे होगा

व्यक्ति और समाज में रूपान्तरण की जब घटना घटती है, तो उसके प्रमुख माध्यम होते हैं स्वाध्याय और सत्संग। स्वाध्याय से सत्प्रेरणा मिलती है और सत्संग से सद्भावना पुष्ट होती है। जब ये आचरण में उतरते हैं, तो परिवर्तन सामने आता है एक ऐसा परिवर्तन, जो यदि सतत् प्रवाहमान रहे तो मानव को महामानव और समाज को स्वर्ग बना देता है।

उदात्तीकरण का यह सामान्य सिद्धांत हुआ ? सिद्धांत और प्रक्रिया दो भिन्न बातें हैं। सिद्धांत संभावना प्रकट करता है और उसे साकार करने की विधि-प्रक्रिया है। प्रथम यदि द्वितीय में परिवर्तित न हो सके, तो थ्योरी मालूम होते हुए भी अभीष्ट की उपलब्धि किसी प्रकार संभव न हो सकेगी। पुस्तक और प्रवचन हमें रास्ता दिखाते हैं और संभावना व्यक्त करते हैं कि यदि व्यक्ति को अच्छा वातावरण मिले तो वह उत्कृष्ट बन सकता है। यह सिद्धांत मात्र है। इसे क्रिया रूप में बदले बिना परिवर्तन शक्य नहीं। जहाँ ऐसा दिखाई पड़ता है, वहाँ इसके पीछे उद्दीपन कार्य करता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है तो रूपांतरण घटित होता है, फलस्वरूप व्यक्ति व समाज का अभिनव रूप सामने आता है।

इसी आशय का मंतव्य प्रकट करते हुए जे. कृष्णामूर्ति कहते हैं कि श्रवण और अध्ययन आनन्ददायक तो होते हैं, पर परिवर्तन में इनकी भूमिका गणितीय सवालों को हल करने वाले सूत्रों जितनी ही होती है। सूत्र केवल संकेत मात्र होते हैं। विद्यार्थी को इनके आधार पर अपनी अकल भिड़ानी पड़ती है, तभी प्रश्न का सही उत्तर मिल पाता है। वैसे ही स्वाध्याय और सान्निध्य परिवर्तन की अनुकूलता तो उपलब्ध कराते हैं, पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। अंतस् की हलचल और उथल-पुथल भी अभीष्ट-आवश्यक है। जहाँ इस प्रकार की क्रियाएँ नहीं होतीं, वहाँ परिवर्तन की प्रतिक्रिया भी दृष्टिगोचर नहीं होती। एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इसे और स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि जब किसी व्यक्ति से दिन में अनेक बार अनेक लोग यह कहते हैं कि तुम बीमार जैसे लग रहे हो, तो शाम होते-होते वह निश्चित रूप से अस्वस्थ हो जाता है, कारण कि वह वाक्य उसके अंदर उद्दीपन आरंभ कर देता है। क्रिया चल पड़ती है, तो उसकी परिणति अस्वस्थता के रूप में तुरंत सामने आती है। वे लिखते हैं कि स्वाध्याय और सत्संग की अच्छी बातें अप्रभावी सिर्फ इसलिए सिद्ध होती हैं कि वे अंतराल की गहराई में उतरकर उस बिन्दु को नहीं छू पातीं, जो बदलाव उत्पन्न करता है। यदि इस संदर्भ में अध्येता और श्रोता गंभीर बने रहें और पढ़े अथवा सुने हुए प्रसंग के प्रति इतनी संवेदनशीलता उत्पन्न कर सकें कि वे अंदर चलकर सीधे मर्म में आघात करें, तो रूपांतरण तत्क्षण घटित होना आरंभ हो जायेगा, पर इन दिनों ऐसा यदा-कदा ही होता देखा जाता है अत: परिवर्तन भी कभी-कभी दृश्यमान होता है।

इसकी प्रक्रिया दो प्रकार से संपन्न होती है— एक तो संदेश के प्रति इतना आकर्षण उत्पन्न किया जाय कि वह अंतस्तल में धँसकर बदलाव को निष्पन्न कर दे। इसके दूसरे प्रकार में खिंचाव तो होता है पर उसका चुम्बकत्व उतना प्रबल नहीं होता कि वह अवचेतन में आविर्भूत हो सके। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को चेतन स्तर पर स्वयं प्रयास आरंभ करना पड़ता है। अपनी वासना और तृष्णाओं को बलपूर्वक दबाना और जो श्रेष्ठ व सुन्दर है, उसे विकसित करना पड़ता है। इतना कर लेने के उपरांत व्यक्ति का कायाकल्प हो जाता है, उसका भीतरी दैत्य मर जाता और उसकी जगह देव पैदा होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यही क्रांति है। इसे संपादित कर लेने वाला व्यक्ति महान और समाज गुणवान बन जाता है।

विवेकानन्द ने एक बार अपने व्याख्यान में कहा था-''युवको ! तुम महान बनना चाहते हो, तो महानता को अपने अंदर घटित होने दो, श्रेष्ठता को अंत:करण में प्रवेश पाने दो, हृदय कपाट को अनावृत्त रखो, ताकि इस संसार में जो कुछ उदात्त और उच्चस्तरीय है, वह तुम में आत्मसात् हो सके। याद रखो, मात्र शब्दों को श्रवण-तंत्र से होकर गुजार भर लेने से विशेष कुछ न होगा, जो होगा, वह इतना ही है कि तुम कष्ट- कठिनाइयों को भूलकर थोड़े समय के लिए शांति के समुद्र में डूब जाओगे, पर स्वयं शाश्वत शांति के सागर न बन सकोगे, वह गहराई व गंभीरता पैदा न हो सकेगी, जो ये सलिलागार अपने में सँजोये हैं। यह मत भूलो कि आने वाली पीढ़ियों के तुम भाग्य विधाता हो, भविष्य निर्माता हो। उज्ज्वल भविष्य का निर्माण वही कर सकता है, जो आत्म-निर्माण कर चुका हो। अत: इस गोष्ठी को अपने में उतर जाने दो, सिर्फ शब्दों से नहीं, वाक्यों से नहीं वरन् भावों व क्रियाओं से।''

सचमुच शब्द और संदेश जब तक कार्य रूप में न परिणित न हो जायँ, तब तक कर्त्ता के लिए निरर्थक और निरुद्देश्य हैं। सार्थक वे तभी बनते हैं, जब आचरण में उतरें और दूसरों को अनुकरणीय प्रेरणा दें, अन्यथा बुद्धि-विलास मात्र बनकर रह जायेंगे। बौद्धिक संपदा का अपना एक गुण है कि वह बुद्धि-क्षेत्र तक की सीमित होकर रह जाती है। उसका उपयोग इससे आगे और कुछ नहीं हो पाता। वह पढ़ने-सुनने भर की वस्तु बन जाती है और उसका बौद्धिक हस्तांतरण भर होता रहता है। किसी ने कहीं कोई अच्छी बात सुनी या पढ़ी, तो उसे वह अपनी बुद्धि में, मस्तिष्क में कैद कर लेता है और दूसरों को सुनाता रहता है। फिर वह क्रिया न बनकर ज्ञान का-अध्ययन का-श्रवण का-स्मरण का विषय बन जाती है। इसका ज्यादा से ज्यादा उपयोग यही हो सकता है कि उसे हम वाणी बना लेते हैं, जबकि जीवन बनाना चाहिए और अच्छाई यदि जीवन न बनी, तो अच्छी बातें पढ़ने-सुनने का कोई अर्थ और उद्देश्य नहीं रह जाता। इसीलिए मूर्धन्य मनीषी गुरुजिएफ कहा करते थे कि उत्तम बातों के प्रति अभिरुचि जगाओ-उत्कंठा बढ़ाओ-उन्हें सुनो और सुनाओ, पर यहीं रुक मत जाओ। इतना पर्याप्त नहीं है। यह आवश्यक तो है, क्योंकि इसके पश्चात् कुछ और संभव है किंतु इतना काफी नहीं है। यह मात्र विचार है। इससे आगे का चरण अनुभव है। विचार से अनुभव की ओर यात्रा करके ही जानकारी को जीवन बनाया जा सकता है, उसे जिया जा सकता है। जहाँ जानकारी जीवन बन जाती है, वहीं उसी क्षण श्रेष्ठता घटित होती है और व्यक्ति का रूपांतरण हो जाता है। इन दिनों चूँकि चिंतन से अनुभूति की ओर का प्रयाण व्यक्ति में रुका हुआ है, इसलिए प्रत्यक्ष में स्वाध्याय और सत्संग की नियमित दिनचर्या दिखाई पड़ने पर भी उनकी वह परिणति सामने नहीं आती, जो आनी चाहिए।

दुनिया में अच्छी बातों और विचारों का अभाव हो, सो बात नहीं। अभाव है, तो मात्र ग्रहणशील हृदय का। सुग्राहक मन यदि व्यक्ति के पास हो, तो बुराई में भी अच्छाई ढूँढ़ी और आत्मसात् की जा सकती है, किन्तु जहाँ हृदयंगम की क्षमता ही न हो, वहाँ लाख प्रवचन सुनने और पारायण करने की प्रवृत्ति मनोरंजन जितना उथला प्रयोजन ही पूरा करती है। ऐसी दशा में साधारण जन अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए अनेक प्रकार के बहाने गढ़ता है, तर्क यह देता है कि प्रभावशाली व्यक्तित्व के अभाव में ही सर्वसाधारण पर उसका असर नहीं पड़ सका। यह सच है कि उत्कृष्ट व्यक्तित्व का अपना पृथक् प्रभाव होता है, पर अवास्तविक यह भी नहीं है कि प्रभावकारी वह वहीं साबित होता है, जहाँ मनस्विता होती है। अमनस्विता युक्त समुदाय तो उन्हें इसलिए घेरे रहता है कि वे सुन्दर-सुन्दर बातें बताते हैं, मन को शांति पहुँचाते हैं, किंतु जहाँ बदलाव का प्रश्न आता है, चिकने घड़े बन जाते हैं। इस प्रकार लंबे समय का उनका पठन-श्रवण बेकार चला जाता है। नित्य पढ़ना और उसे भुला देना, नित्य सुनना और निकाल देना प्राय: यही उनका स्वाभाविक क्रम होता है। इससे स्पष्ट है कि ग्रहण करने की अभीप्सा की अनुपस्थिति और ग्राह्य के प्रति उपेक्षा भाव ही वे कारण हैं, जो अच्छे उपदेश को व्यवहार में नहीं उतरने देते। इस तरह उपदेश के अचुबंकीय व्यक्तित्व संबंधी आक्षेप निरस्त हो जाता है। जब पशु-पक्षियों से शिक्षा ग्रहण कर दत्तात्रेय अनुपलब्ध की उपलब्धि कर सकते हैं, तो मनुष्य द्वारा बतलायी गई उत्तम बात को धारण करने में किसी को क्यों आपत्ति होनी चाहिए ? यह समझ से परे है।

विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि यदि लोहा को सोना और सीसा को चाँदी बनाना हो तो एक ही कार्य करना पड़ेगा, उनकी परमाणु संख्या को परिवर्तित करना पड़ेगा। किसी प्रकार लोहे और सीसे को क्रमश: सोने और चाँदी वाली परमाणु संख्या प्रदान की जा सके तो उनका रूपांतरण संभव है पर यह सब कैसे किया जाय? इसकी प्रक्रिया उनके हाथ अभी नहीं लगी है। उन्होंने मात्र अभी सिद्धांत दिया है, किंतु केवल सिद्धांत से बदलाव संभव नहीं। इसके लिए प्रक्रिया का होना नितांत आवश्यक है। व्यक्तित्व निर्माण में पुस्तक और प्रवचन की ऐसी ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका है। वे मार्गदर्शन मात्र करते हैं, उनके आधार पर पुरुषार्थ स्वयं करना पड़ता है। यह प्रक्रिया है। प्रक्रिया यदि चल पड़े तो साधारण से असाधारण बन जाना सुनिश्चित है। फिर समाज को स्वर्ग बनते देर न लगेगी।

देवत्व का विकास ही अन्तिम समाधान

क्रौंच पक्षी को आहत, विलाप करते देखकर वाल्मीकि की करुणा जिस क्षण उभरी उसी समय वे आदि कवि के रूप में परिणत हो गये। ऋषियों के अस्थि-पंजरों की पर्वतमाला देखकर राम की करुणा मर्माहत हो गई और उनसे भुजा उठाकर यह प्रण करते ही बन पड़ा कि **"निशिचर हीन करौं मही।"** बाढ़, भूकम्प, दुर्भिक्ष, महामारी जैसे आपत्तिकाल में जब असंख्यों को देखा जाता है तो निष्ठुर भले ही मूकदर्शक बने रहें, सहृदयों को तो अपनी सामर्थ्य भर सहायता के लिए दौड़ना ही पड़ता है। इसके बिना उनकी अन्तरात्मा आत्म-प्रताड़ना से व्याकुल हो उठती है। दुर्घटनाग्रस्तों को चीखते-चिल्लाते देखकर भावनाशीलों को तो अपना काम हर्ज करके भी सहायता के लिए दौड़ना पड़ता है। यहाँ उन निष्ठुरों की चर्चा नहीं हो रही है, जो कुत्तों, कौओं और शृंगालों की तरह अर्द्ध मृतकों का माँस स्वादपूर्वक चखते और मोद मनाते हैं। निष्ठुरों को भी नर-पिशाच कह सकते हैं, उनका मनुष्य समुदाय में भी अभाव नहीं है।

विकास की अन्तिम सीढ़ी भाव-संवेदना को मर्माहत कर देने वाली करुणा के विस्तार में ही है। इसी को आन्तरिक उत्कृष्टता भी कहते हैं। संवेदना उभरने पर ही सेवा साधना बन पड़ती है। धर्म धारणा का निर्वाह भी इससे कम में नहीं होता। तपश्चर्या और योग साधना का लक्ष्य भी यही है कि किसी प्रकार संवेदनाशून्य निष्ठुरता के महादैत्य से बच निकलना संभव हो सके और उस देवत्व का साक्षात्कार जरूरतमंदों को दिये बिना रह ही नहीं सकता। देना ही जिनकी प्रकृति और नियति है, उन्हीं को इस धरती का देवता कहा जाता है। देवमानव के रूप में उन्हीं का अनुकरण और अभिनंदन करते विवेकवान भक्तजन देखे जाते हैं।

देने की प्रकृति वाली आत्माओं का जहाँ संगठन, समन्वय होता रहता है उसी क्षेत्र को स्वर्ग के नाम से संबोधित किया जाने लगता है। इस प्रकार का लोक या स्थान कहीं न होने की बात को तर्क और तथ्य की दृष्टि से भले ही अस्वीकार कर दिया जाय, पर इस प्रतिपादन को कोई चुनौती नहीं दे सकता कि सहृदय, सेवाभावी, उदार चेता न केवल स्वयं देवमानव होते हैं वरन् अपने कार्यक्षेत्र को भी ऐसा कुछ बनाये बिना नहीं रहते, जिसे स्वर्गोपम अथवा सतयुग का सामयिक संस्करण कहा जा सके।

अपने समय को अभूतपूर्व प्रगतिशीलता का युग कहा और गर्वोक्तियों को साथ बखाना जाता है। इस अर्थ में बात सही भी है कि जितने सुविधा-साधन इन दिनों उपलब्ध हैं, उतने इससे पहले कभी भी हस्तगत नहीं हो सके। विज्ञान के विकास से जलयान, वायुयान रेल, मोटर जैसे द्रुतगामी वाहन, तार, रेडियो, फिल्म, दूरदर्शन जैसे संचार साधन इससे पूर्व कभी कल्पना में भी नहीं आये थे। कल-कारखानों का पर्वताकार उत्पादन, सर्जरी अंग प्रत्यारोपण जैसी सुविधाएँ भूतकाल में कहाँ थीं ? कहा जा सकता है कि विज्ञान ने पौराणिक विश्वकर्मा को कहीं अधिक पीछे छोड़ दिया है।

बुद्धिवाद की प्रगति भी कम नहीं हुई है। तर्क, तथ्य, प्रमाण इस कदर विकसित हुए हैं कि पुरातन एकाकी धर्मशास्त्र, वर्तमान अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तर्कशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र जैसी अनेकानेक कलेवरों में असाधारण रूप से बढ़ा और भविष्य में और भी अधिक खोज लेने का दावा कर रहा है। शोध-संस्थानों की प्रयोगशालाओं की उपलब्धियाँ घोषणा कर रही हैं कि निकट भविष्य में मनुष्य इतना अधिक ज्ञान, विज्ञान खोज लेगा कि पुरातन काल की समस्त उपलब्धियों को उसके सामने बौना-बचकाना ठहराया जा सके।

इतने पर भी एक प्रश्न सर्वथा अनसुलझा ही रह जाता है कि यह तथाकथित प्रगति अपने साथ दुर्गति के असंख्यों बवण्डर क्यों और कैसे घसीटती-बटोरती चली जा रही है ? प्रदूषण, युद्धोन्माद, खाद्य संकट, अपराधों की भरमार समस्त तटबन्ध तोड़ती चली आ रही है। अस्वस्थता, दुर्बलता, कलह, विग्रह, छल-प्रपंच जैसी विडम्बनाएँ व्यवहार तथा चिन्तन को धुआँधार विकृतियों से भरती क्यों चली आ रही हैं ? निकट भविष्य के सम्बन्ध में मूर्धन्य विचारक यह भविष्यवाणी क्यों कर रहे हैं कि स्थिति यही रही, रेल इसी पटरी पर चलती रही तो विपन्नता बढ़ते-बढ़ते महाप्रलय जैसी स्थिति में पहुँचा जा सकता है। वे कहते हैं कि हवा और पानी में विषाक्तता इस तेजी से बढ़ रही है कि उसे धीमी गति से सर्वभक्षी आत्महत्या का नाम दिया जा सकता है। बढ़ता हुआ तापमान यदि ध्रुवों की बर्फ पिघला दे और समुद्र में भयानक बाढ़ ला दे, तो उससे थल निवासियों के लिए डूब मरने का संकट उत्पन्न कर सकता है। वनों का कटान, रेगिस्तान का द्रुतगामी विस्तार, भूमि की उर्वरता का ह्रास, खनिजों के बेतरह दोहन से उत्पन्न हुआ धरित्री

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असंतुलन, मौसमों में आश्चर्यजनक परिवर्तन, तेजाबी मेघ वर्षन, अणु-विकिरण, बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुरूप जीवन साधन न बढ़ पाने का संकट जैसे अनेकानेक प्रश्न ऐसे हैं जिनमें किसी पर भी विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि तथाकथित प्रगति ही उन समस्त विग्रहों के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है। वह प्रगति किस काम की, जिसमें एक रुपया कमाने के बदले सौ का घाटा उठाना पड़े। उन बढ़े हुए सुविधा-साधनों का आखिर होगा क्या, जो मनुष्य को प्रसन्नता प्रदान करने के स्थान पर उसके अस्तित्व को ही मिटा डालने के लिए नंगी तलवार तानकर सामने आ खड़े हों ?

आश्चर्य इस बात का है कि आखिर यह सब हो क्यों एवं कैसे रहा है ? इसे कौन करा रहा है?आखिर वह चौकड़ी कैसे चूक गई थी, जो बहुत कुछ पाने का सरंजाम जुटाकर अलाद्दीन का नया चिराग जलाने चली थी और कुछ ही दूर चलकर पैर पसार गई। पहुँचना तो उसे प्रकृति विजय के लक्ष्य तक था पर यह हुआ क्या कि तीनों लोक तीन डगों में नाप लेने की दावेदारी करारी मोच लगने पर सिहरकर बीच रास्ते में ही पसर गई। उसे इस असमंजस की स्थिति में रहना पड़ रहा है कि आगे कुआँ, पीछे खाई की स्थिति आ खड़ी होने पर आखिर चला किस तरह जाय? साँप-छछूँदर की इस स्थिति से कैसे उबरा जाय, जिसमें न निगलते बन रहा है और न उगलते। असमंजस की स्थिति लम्बे समय तक टिकती नहीं है। मनुष्य की बुद्धि इतनी कमजोर नहीं है कि वह उत्पन्न संकटों का कारण न ढूँढ़ सके और शान्तचित्त होने पर उनके समाधान न ढूँढ़ सके।

फूटे घड़े में पानी भरने पर वह देर तक ठहरता नहीं है। चलनी में दूध दुहने पर दुधारू गाय पालने वाला भी खिन्न-विपन्न रहता है। ऐसी ही कुछ भूल मनुष्य से भी बन पड़ी है जिसके कारण अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जुटायी गई उपलब्धियों को हस्तगत करने पर भी लेने के देने पड़ रहे हैं। इसी को कहते हैं– ''सिर मुड़ाते ही ओले पड़ना।''

अभी तक की उपलब्धि पर संतोष व्यक्त करते हुए मनीषी चिंतन दिव्य द्रष्टा कहते हैं कि अगले दिनों मनुष्य की समझदारी, सतर्कता और सूझबूझ जागेगी। भाव-संवेदनाओं से भरे-पूरे व्यक्ति आने वाली सदी में उस रीति-नीति पर चलेंगे, जिनके आधार पर सम्पदाओं का सदुपयोग, सुनियोजन करते बन पड़ेगा। तब आसन्न विभीषिकाओं, विपन्नताओं और बिडम्बनाओं पर क्षुब्ध न होना पड़ेगा। वह समय शीघ्र ही आ रहा है।

कैसे हो अंतस् में सत्य का अवतरण ?

सत्य का अर्थ है—यथार्थता। जो बात जैसी है उसे उसी रूप में समझना, मानना और प्रयुक्त करना सत्य की साधना है। दुर्भाग्य से हम इन दिनों बनावट, बिडंबना, भ्रांति और दुर्बुद्धि से भरे युग में रह रहे हैं। अज्ञान भरे अंधकार युग ने कुछ ऐसा कृत्रिम वातावरण बना रखा है जिसने बरसात की काली घटाओं में छिपे हुए सूर्य की तरह सत्य को एक प्रकार से छिपा दिया है। छल और कृत्रिमता का दूसरा नाम ही सभ्यता पड़ गया है। जो जितनी कृत्रिमता बरत सकता है, कुछ को कुछ बनाकर दिखा सकता है, वह उतना ही बड़ा सभ्य और कलाकार माना जाता है। पिछली शताब्दियों और सहस्राब्दियों से असत्य और कृत्रिमता की आराधना में मानवीय मस्तिष्क संलग्न रहे हैं और अब वह उपार्जन इतना विशालकाय, इतना सघन और प्रचलित हो गया है कि आमतौर से उसे ही सत्य माना जाने लगा है। आज सामान्य बुद्धि के लिए यह ढूँढ़ निकालना अति कठिन है कि प्रचलित मान्यताओं-प्रथा-परिपाटियों, विश्वासों, रीति-नीतियों एवं विचारणाओं में सत्य का कितना अंश है?

जिस कसौटी पर यथार्थता को कसा जा सकता है वह है—विवेक। विवेक उस साहस का नाम है, जिसके आधार पर बहु प्रचलित मान्यताओं की उपेक्षा करके भी सचाई को ढूँढ़ निकालने की भावना उत्पन्न होती है। यही भावना है जिसके आधार पर कोई व्यक्ति सत्य का दर्शन कर सकता है। जो यह सोचता है कि समाज का वर्तमान प्रचलन ही ठीक है और उसी का समर्थन ठीक है तो फिर उसके लिए सोचने और ढूँढ़ने के सारे रास्ते ही बंद हो जाते हैं। प्रचलन के ढर्रे से लुढ़कते-लुढ़कते अभ्यास परिपाटी के प्रति मनुष्य को मोह उत्पन्न हो जाता है, उसी के साथ पक्षपात जुड़ जाता है। अपनी यह दुर्बलता समझ में भी नहीं आती। लगता है हम जो सोचते हैं वही सत्य है, जो करते हैं वही सत्य है, जिस रास्ते पर चल रहे हैं वही सत्य है। विभिन्न व्यक्ति अपनी प्रचलित परिपाटियों और रीतियों-नीतियों को सत्य मानने लगते हैं। चूँकि सत्य का निरूपण तो किसी ने किया नहीं, अपनी-अपनी परिपाटियों को ही सत्य मान लिया है। इसलिए उनकी मान्यताएँ स्वभावत: एक-दूसरे से भिन्न अथवा विपरीत होती हैं।

इस भिन्नता एवं विपरीतता को स्वभावत: वे वर्ग नापसन्द करते हैं, कई बार घृणा भी करते हैं और यदि असहिष्णुता की मात्रा अधिक हुई तो परस्पर संघर्ष भी खड़ा हो जाता है। एक-दूसरे को असत्यवादी मानते हैं और अपने को सत्यनिष्ठ समझते हैं। उनकी लड़ाई का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधार तो सत्य का समर्थन और असत्य का निवारण होता है पर वस्तुतः दोनों ही असत्य का समर्थन और सत्य की हत्या कर रहे होते हैं क्योंकि वास्तविक सत्य ढूँढ़ने की किसी ने चेष्टा नहीं की। अपने चारों ओर घिरे मानसिक अथवा सामाजिक वातावरण को ही सही माना जबकि वस्तुतः वह एक पक्ष मात्र था। इतिहास के अगणित पृष्ठ इसी सत्य के आवरण में छिपे पक्षपात से लाखों-करोड़ों मनुष्यों के शोणित-तर्पण की करुण कथा से कलंकित हो रहे हैं। गौरी, गजनवी, नादिरशाह, औरंगजेब आदि ने धर्म की सेवा के नाम पर क्या नहीं किया था। ईसाई और गैर-ईसाई, मुस्लिम और गैर-मुस्लिम, आर्य और अनार्य आदि की भिन्नताओं ने कितनी नृशंसताएँ उपस्थित कीं इसका लम्बा इतिहास पढ़ने पर लगता है कि मनुष्य सत्य के अवलंबन की डींग मात्र हाँकता है वस्तुतः सत्य से कोसों दूर है।

आज के तमसापन्न युग में यह नितांत आवश्यक है कि सत्य और असत्य का नए सिरे से विश्लेषण किया जाय और उसका आधार विवेक, न्याय एवं औचित्य को माना जाय। दूसरों के प्रति जो व्यवस्था लागू की जा रही है वही यदि अपने प्रति भी लागू हो तो कैसी लगे ? इस कसौटी पर न्याय, अन्याय का निरूपण आसानी से हो सकता है। उसी प्रकार यदि यह मानकर चला जाय कि संसार के बहुसंख्यक व्यक्ति अनुपयुक्त विचारणा और क्रियापद्धति के अभ्यस्त हैं, उनकी गतिविधियों में अनौचित्य की मात्रा ही अधिक है तो फिर तथाकथित लोकभय से मुक्ति पायी जा सकती है और स्वतंत्र चिंतन के लिए उपयुक्त दिशा मिल सकती है। अपनी मनोभूमि के पक्षपात को भी समझना चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि हम जिस परम्परा में जन्मे, पले और बड़े हुए हैं, स्वभावतः उसी के समर्थन में बुद्धि काम करेगी। इसलिए स्वतंत्र चिंतन, सत्य का अन्वेषण करने के लिये इतना साहस भी एकत्रित करना होगा कि अपनी अभ्यस्त बुद्धि की भी उपेक्षा करके विश्वव्यापी सत्य का निरूपण कर सकने की भावना सही रूप से अपना काम कर सकने में समर्थ हो सके।

'हमारा सो सही आपका सो गलत' आज सही-गलत की यही मात्र परख है। अपनी जाति, भाषा, देश, वंश, परिवार, संप्रदाय, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं विचार पद्धति का जो अनावश्यक पक्षपात है, उसे हटाया जाना चाहिए और निष्पक्ष विश्व के निष्पक्ष नागरिक की तरह एक न्याय निष्ठ जज की तरह हमें हर प्रचलित रीति-नीतियों और विचारणाओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। न तो प्राचीन के प्रति मोह रहे और न नवीन के प्रति द्वेष। प्राचीन हो या नवीन इससे यथार्थता में कोई अंतर नहीं आता। किसी सड़ी-गली मृतप्राय वस्तु को इसलिए सँजोकर नहीं रखा जा सकता कि वह पुरानी है।

जिस प्रकार दूसरे लोगों के बारे में 'गलत राह अपनाने वाला' सोचा जा सकता है, उसी प्रकार बहुत संभव है कि विवेक की कसौटी पर अपनी मान्यताएँ अथवा गतिविधियाँ परखी जायँ तो वे असत्य निकलें। ऐसी दशा में हमें इतनी निष्पक्षता तो अपने भीतर उत्पन्न कर ही देनी चाहिए कि जो सत्य होगा उसे स्वीकार करेंगे। अपने और पराए का प्राचीन और नवीन का कोई भेद-भाव एवं पक्षपात पैदा न होने देंगे। इतना आधार यदि तैयार हो सका तो ही आशा की जा सकती है कि सत्य का अवतरण संभव हो सकेगा।'

मानव के परिष्कार एवं उत्कर्ष की भावी सम्भावनाएँ

मनुष्य मूलतः क्या है और उसकी मूलभूत-जन्म-जात प्रवृत्तियाँ क्या हैं ? इस सन्दर्भ में उसके उद्गम स्रोत पर ध्यान देना चाहिए। वह ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र युवराज है और उसकी विश्व-वाटिका को समुन्नत, सुविकसित करने के लिए एक कुशल माली की भूमिका निभाने आया है। उसका जन्मजात स्वभाव भी इस भूमिका का निर्वाह कर सकने के सर्वथा उपयुक्त है। शरीर, मानस तन्त्र और भावनाओं का त्रिविधि संस्थान ऐसी दिव्य क्षमताओं और विभूतियों से भरा-पूरा मिला है, जिससे जीवन सम्पदा को सार्थक बनाने वाली उच्चस्तरीय भूमिका निभा सके।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस सन्दर्भ में भ्रान्त धारणाएँ ही दी हैं और उसके अस्तित्व को हेय स्तर का ठहराया है। कहा है कि जन्मजात रूप से उसे पशु-प्रवृत्तियाँ ही मिली हैं। उनकी पूर्ति से ही उसे चैन पड़ता है। वही उसे करना चाहिए। इन तथाकथित अन्वेषणकर्त्ताओं का कहना है कि समुद्र में जैसे एक कोषीय प्राणियों के रूप में जीवन उत्पन्न हुआ, उसी से विभिन्न प्रकार के प्राणी विकसित हुए उसी विकास में से बन्दर की औलाद के रूप में मानव जीवन प्रकाश में आया। पशु-प्रवृत्तियों के इन विश्लेषणकर्त्ताओं ने यह कहा है कि सभी जानवर स्वार्थ प्रधान हैं। जहाँ अवसर मिलता है, वहाँ आक्रमण करने में नहीं चूकते। यौन स्वेच्छाचार उनकी स्वाभाविक मान्यता है। खतरे की स्थिति में वे लड़ने या भाग खड़े होने की दोनों ही नीतियाँ अपनाते हैं। चूँकि मनुष्य भी एक तरह का पशु है इसलिए उसमें भी यही प्रवृत्तियाँ काम करती हैं, जो अन्यान्यों में हैं। इस प्रतिपादन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिसाब से नीतिवादी-आदर्शवादी उत्कृष्टता की जड़ कट जाती है और वह नर-पशुओं की श्रेणी में ही जा खड़ा होता है। उस प्रतिपादन के अनुसार यदि मनुष्य चोर-उचक्का, व्यभिचारी आक्रमणकारी बनता है तो यह उसकी स्वाभाविकता ही मानी जायेगी।

हमें इन पाश्चात्य प्रतिपादकों की मान्यताओं पर तनिक भी ध्यान नहीं देना चाहिए और पूछना चाहिए कि यदि सभी जानवर विकसित हो रहे हैं तो मनुष्य शरीर का विकास कब से हुआ और भविष्य में क्या अन्तर पड़ेगा ? लाखों वर्षों से मनुष्य इसी स्तर के शरीरों में रह रहा है और उसकी प्रवृत्तियों एवं आदतों में भी कोई अन्तर नहीं पड़ा है। वह सदा से शाकाहारी रहा है। साथ ही उसे नीति, सदाचार, मर्यादा एवं परमार्थ की दृष्टि से भी अपनी गरिमा प्रकट करनी पड़ी है।

मनुष्य देवताओं की सन्तान है। आधुनिक अन्तरिक्ष विज्ञानी भी यह मानने लगे हैं कि मानवी सत्ता किन्ही उच्च लोकों के समुन्नत प्राणियों की वंशज है। पृथ्वी पर देवलोकवासी असाधारण क्षमता एवं भावना से भरे-पूरे लोग समय-समय पर यहाँ आते रहे हैं और धरती को मनुष्य को अधिक सुविकसित स्थिति में पहुँचाने के लिए भावभरा योगदान देते रहे हैं। इन दिनों भी उड़न-तश्तरियों के रूप में उस प्रयास के चलते रहने का परिचय मिलता है। पृथ्वी के कितने ही भागों में इस प्रकार के प्रमाण, अवशेष भी उपलब्ध हैं ?

इन पंक्तियों में उस श्रुति का प्रतिपादन किया जा रहा है, जिसमें कहा गया है कि ''मनुष्य पूर्ण से उत्पन्न हुआ। पूर्णता युक्त है और अन्त में पूर्ण ही होकर रहेगा।'' कभी-कभी कुप्रचलनों का दौर आ जाता है जैसे कि सूर्य चन्द्रमा के उदीयमान होते हुए भी ग्रहण के, बादलों के या कुहरा अन्धड़ के कारण उनका प्रकाश धुँधला पड़ जाता है। जरा-जीर्ण स्थिति में भी भवनों की, प्राणियों की दुर्दशा हो जाती है। ऐसा ही कुछ अवरोध मानवी गरिमा के सम्बन्ध में भी समझा जा सकता है। यह अस्थायी है और आशा की जानी चाहिए कि इसमें जल्दी ही उत्साहवर्द्धक परिवर्तन होने जा रहा है।

इन दिनों शरीर शास्त्री, मनोविज्ञानी, नृतत्ववेत्ता अपने-अपने ढंग से मनुष्य की भावी प्रगति की अपने-अपने ढंग से योजनाएँ बनाने में निरत हैं। भविष्य में मनुष्य अधिक बलिष्ठ, अधिक दीर्घजीवी, अधिक बुद्धिमान और अधिक सुयोग्य बन सके। इसमें सबसे कारगर और सूक्ष्म प्रभाव गुण-सूत्रों का, जीन्स का-जीव रसायनों की हेरा-फेरी का है। साइन्स ने एक सीमा तक इसमें प्रगति कर ली है। तो भी हारमोन्स को उभारने-दबाने का प्रयोग हाथ नहीं आया है। विकसित अध्यात्म विज्ञान इस कमी को पूरा कर देगा और आज की विकसित मनुष्य की कल्पनाओं-आकांक्षाओं को चरितार्थ होने का अवसर मिलेगा। आहार-विहार में जो इन दिनों व्यतिक्रम चल रहा है वह उतने ही दिन चलेगा जितने समय तक मनुष्य को आरोग्य, दीर्घजीवन और बलिष्ठता का महत्व हृदयंगम नहीं होता। मनुष्य जल्दी ही वस्तुस्थिति को समझ जायगा और जिह्वा तथा जननेन्द्रिय के असंयम पर अंकुश लगा लेगा।

अतिशय महत्वपूर्ण मनुष्य का मनःसंस्थान है। जीवन पर प्रमुख रूप से वही छाया रहता है। कल्पना-मन, विवेचन-बुद्धि, चित्त-अचेतन और अहं-मान्यता, यही चार क्षेत्र मिल-जुलकर मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को ऊँचा-उठाते या नीचा गिराते हैं। यही है मनःक्षेत्र की धुलाई और रंगाई, जिसे विज्ञान की भाषा में ब्रेन वाशिंग अथवा व्यक्तित्व परिष्कार कहते हैं। यह भी अब बहुत अधिक कठिन नहीं रहा है। विज्ञान ने विभिन्न प्रवृत्तियों के केन्द्र संस्थान खोज निकाले हैं और उनके साथ इलेक्ट्रोडों द्वारा विद्युत-प्रवाह जारी करके प्रवृत्तियाँ बदलने में बहुत हद तक सफलता प्राप्त कर ली है। इन प्रयोगों से प्रभावित शेर, बकरी की तरह सौम्य और बकरा शेर की तरह निर्भर आक्रामक होते देखा गया है। बुढ़ापे में बचपन की कोमलता लाई जा सकती है और बच्चे को बूढ़ों जैसा विचारशील बनाया जा सकता है। यह मानसिक नियन्त्रण यदि स्थायी हो सके और आकांक्षाओं, भावनाओं, मान्यताओं और विचारणाओं को बदल सके तो समझना चाहिए कि मानवी काया-कल्प का क्षुद्र को महान बनाने वाला वह सूत्र हाथ आ गया।

नीत्से के दर्शन ने हिटलर को जन्म दिया और समूचे जर्मनी को ऐसे आवेश में भर दिया कि वे लोग अपने समुदाय को अति श्रेष्ठ मानने और समस्त विश्व पर शासन स्थापित करने की तैयारी करने लगे। अरविन्द अपने पाण्डिचेरी प्रयोग में सुपरमैन ''उत्कृष्ट मानव'' की कल्पना भी वे अपने पूर्ण योग के माध्यम से मनुष्य में देवत्व के उदय के रूप में रहे थे। यों उनके जीवनकाल में वह प्रयास पूरा नहीं हो पाया, पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि वह काम अधूरा ही छूट गया। उसे आगे बढ़ाने के लिए पूर्ण योग का स्थान ''प्रज्ञायोग'' ले रहा है और लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्राणप्रण से जुटा है।

भावी देवमानव की विशेषता होगी उसके अन्दर देवत्व का उदय। यदि वह वन पड़ा तो इसकी परिणति निश्चित रूप से धरती पर स्वर्ग के अवतरण के रूप में होगी। देवता धरती पर जन्म लेने की प्रतीक्षा करते रहे हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भगवान इसी धरती पर अवतार लेने के लिए दौड़ते आते हैं।

मानवी परिष्कार और विकास का ठीक और सही समय यही है। अपनी-अपनी कौम-बिरादरियों को वरिष्ठ सिद्ध करने के लिए अनेक देश अनेक बार अपने-अपने ढंग से प्रयत्न एवं उद्घोष करते रहे हैं। किसी समय शक और हूणों की तूती बोलती थी। अँग्रेज भी कभी सारी दुनिया पर छाये रहे। इन दिनों रूस, अमेरिका कम से कम अस्त्रों, अन्वेषणों और अन्तरिक्ष पर आधिपत्य की दृष्टि से मूर्धन्य हैं ही। जापान की औद्योगिक क्षमता बढ़ती जा रही है। अन्यान्य देश भी सम्पदा और सामर्थ्य की दृष्टि से प्रगति-पथ पर बढ़ चलने के लिए अग्रसर हो रहे हैं।

इन सब में महती भूमिका भारत की होने जा रही है। ऋषि परम्परा का अब फिर अभिनव पुनरुत्थान हुआ है। उच्चस्तरीय व्यक्ति संख्या की दृष्टि से कम हों तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं। बुद्ध, गाँधी- अरविन्द जैसे आत्मशक्ति के धनी पिछली शताब्दियों में उँगलियों पर गिनने-जितने ही हुए हैं, पर उन्होंने आँधी-तूफान की तरह समय को उलट दिया। अब उस प्रक्रिया में फिर उफान आ रहा है। आवश्यक नहीं कि वे व्यक्ति ख्याति प्राप्त ही हों। ऋषि युग में छः पुरुष और एक महिला यह सात ही मूर्धन्य संत ऋषियों में गिने गए। पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उनके अतिरिक्त और उच्चस्तरीय आत्माएँ नहीं थीं। इन दिनों सप्त ऋषियों के अवतरण का पुण्य प्रभातकाल है। उनका प्रयास एक ही होगा कि मानवी गरिमा को निकृष्टता के दल-दल में से उबारकर परिशोधन किया जाय और आत्मिक दृष्टि से उसे उच्च शिखर तक पहुँचा दिया जाय।

समय की कठिनाइयों में एक ही सबसे बड़ी आवश्यकता है कि मानवी व्यक्ति को ओछेपन से विरत करके उसे आदर्शवादी उत्कृष्टता अपनाने के लिए सहमत ही नहीं, बाधित भी किया जाय। मनुष्य नीतिवान बने। वासना, तृष्णा और अहंता के भव-बन्धन से उबरे और लोभ-मोह की हथकड़ी, बेडियों को तोड़ फेंके। इतना भर मोड़-मरोड़ बन पड़ा तो मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य कहला सकेगा। उस पर नर-पशु या नर-पिशाच कहलाने का लांछन न लगेगा। पवित्रता और प्रखरता का पुण्य-परमार्थ में नियोजन हो सके तो हर किसी को महामानवों की श्रेणी में बैठने का अवसर मिलेगा। तब नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम, क्षुद्र को महान कहा जा सकेगा। लिप्सा, लालसा की कुत्साएँ जैसे ही सद्भावनाओं की ओर, सत्प्रवृत्तियों की ओर मुड़ीं कि सारा वातावरण ही बदल जायेगा। जो गतिविधियाँ चल रही हैं उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन दृष्टिगोचर होगा।

लोग हिल-मिलकर रहें-मिल-बाँटकर खाएँ और हल्की-फुल्की, हँसती-हँसाती जिन्दगी जिएँ तो किसी को किसी वस्तु का अभाव न रहे। इस धरती का उत्पादन और उत्खनन इतना वैभवशाली है कि उसके रहते किसी को किसी वस्तु की कमी अनुभव न हो। अभाव सर्वथा कृत्रिम है। वे लालसाओं के अत्यधिक बढ़ जाने पर दीखते भर हैं। आलसी और प्रमादी ही दरिद्रता की शिकायत करते हैं। क्षुद्र और संकीर्ण मन वाले क्रूरकर्मा ही विग्रह के बीज बोते और अशान्ति उत्पन्न करते हैं। मनुष्य यदि आत्म-सुधार के निमित्त तत्पर हो सके, गुण-कर्म-स्वभाव को अपनी गरिमा के अनुरूप ढाल सके तो पारस्परिक स्नेह, सद्भाव और सहयोग की कहीं कमी न रहे। यही देवत्व है। इन विशेषताओं और विभूतियों का भाण्डागार मानवी अन्तराल में भरा पड़ा है। उसे निखारने और उभारने भर की आवश्यकता है। यह परिवर्तन सरल भी है और सुखद भी।

अगले दिनों मनःस्थिति बदलते ही परिस्थितियाँ बदलने की सम्भावना सुनिश्चित है। अज्ञान, अशक्ति और अभाव से ही प्रायः विपन्नता छायी रहती है। दुर्गति ही दुर्गति की जन्मदात्री है। इन्हें झाड़ू लेकर बुहार डाला जाय तो कूड़ा-करकट जमने में जो दुर्गन्ध और कुरूपता छाई रहती है, उसका कहीं अता-पता भी न चलेगा। व्यक्ति के बदलने से युग के बदलने का तथ्य शत-प्रतिशत सत्य है। इस सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन निकट भविष्य में निश्चित रूप से किया जा सकेगा, इसमें सन्देह की कहीं गुंजाइश नहीं है।

आत्म-विकास के आधार स्तम्भ

युग निर्माण योजना मनुष्य में देवत्व के उदय का जो महान लक्ष्य लेकर चल रही है, उसके लिए मानवीय अन्तःकरण का विशिष्ट उपचार करना आवश्यक हो जाता है। अन्तःकरण का एक पक्ष है—विश्वास। इसका निर्माण, निर्धारण घटनाक्रमों, परिस्थितियों एवं चिन्तन की अनुकूलता के सहारे बन पड़ता है। ज्ञान-यज्ञ के चार चरण—स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन और मनन इसी प्रयोजन को पूरा करते हैं। अन्तःकरण का दूसरा पक्ष है—श्रद्धा। यह विश्वास से भी अधिक गहरी और अधिक शक्तिशाली होती है। दिव्य-संवेदना इसी क्षेत्र में अवतरित होती है। प्रेम के तत्व इसी श्रद्धा की भूमि में उपजते हैं और दृढ़ होते हैं। श्रद्धा की परिभाषा है, श्रेष्ठता से असीम प्यार। श्रेष्ठता का रूप समझना किसी के लिए कठिन नहीं है। उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयोगिता स्वीकार करने में भी किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। चोर भी ईमानदारी के और दुराचारी भी सदाचार के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। चोर अपने यहाँ चोर नौकर रखने को तैयार न होगा। व्यभिचारी को अपनी पुत्री या पत्नी के किसी व्यभिचारी के साथ होने की स्थिति स्वीकार नहीं होगी। बेईमान आदमी भी अपना लेन-देन ईमानदार के साथ करना पसन्द करता है। झूठा आदमी भी यह चाहता है कि दूसरे झूठ न बोलें। इससे स्पष्ट है कि भ्रष्ट आचरण करने वाले भी उत्कृष्टता के प्रबल समर्थक होते हैं। अन्तर केवल इतना हो सकता है कि वे मात्र उससे अपनी ही छूट माँगते हैं और यह चाहते हैं कि उन एक के अतिरिक्त अन्य सभी लोग सदाचरण का व्यवहार करें। अपने लिए छूट चाहने के अपवाद के अतिरिक्त शेष ऐसे लोगों की प्रतिशत मान्यता हर व्यक्ति की सदाचरण समर्थक होती है। पर इतने से कुछ बनता नहीं। हर व्यक्ति जब अपने लिए छूट माँगने लगे और यही हर एक की इच्छा रहेगी तो फिर सभी लोग इसी छूटने के पक्ष में हो जायेंगे और श्रेष्ठता को स्वयं अपनाने के लिए आना-कानी करेंगे, तो फिर उसकी अवधारणा बन ही कैसे पड़ेगी? इस समस्या का समाधान बुद्धि से भी, विश्वास से भी गहरी परत ''श्रद्धा'' के क्षेत्र में प्रवेश करने से ही सम्भव है।

श्रद्धा की धारणा श्रेष्ठता से असीम प्यार के रूप में होती है। जिससे प्यार होता है उसे अपनाने को जी करता है। प्रियजनों की समीपता एवं उनके साथ पक्षपात करने की प्रवृत्ति इसी लक्ष्य पर टिकी हुई है कि जिससे प्यार होता है, उसका सान्निध्य एवं उत्कर्ष चाहने के लिए प्रबल उत्कण्ठा उठती है और प्रबल प्रयत्न किये जाते हैं। श्रेष्ठता के साथ यदि श्रद्धा का समन्वय बन पड़े, उसके लिए असीम प्यार उमड़ने लगे, तो सहज ही उसे अपनाने को, अपने मर्म-स्थल में भर लेने के लिए आकांक्षा और अनुकूलता बनी रहेगी, जैसे कि घनिष्ट प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच पाई जाती है।

श्रद्धा संवर्धन का महत्व श्रेष्ठ विश्वासों की प्रतिष्ठापना से भी अधिक है। श्रद्धा आत्मा का निकटतम आवरण है। जीवन का मूल स्तर उसी गहराई में विनिर्मित होता है। गीताकार का कथन है—**''श्रद्धामयो यं पुरुषयो यच्छ्रद्धः स एव स।''** अर्थात् मनुष्य श्रद्धामय है, वह जैसी श्रद्धा करता है, वैसा ही बनता है। श्रद्धा का महत्व बताते हुए श्रुति कहती है—**''श्रद्धया सत्य माप्यते''** श्रद्धा से ही सत्य की प्राप्ति होती है। सत्य अर्थात् परब्रह्म-जीवन लक्ष्य-यथार्थ बोध, इसी स्थिति को जीवनमुक्ति एवं ब्रह्म प्राप्ति कहते हैं। इसे उपलब्ध करना श्रद्धा की मात्रा पर अवलम्बित है। श्रद्धा ही उच्चस्तरीय संवेदना उत्पन्न करती है। सद्भावनाओं की उमंगें इसी क्षेत्र में उत्पन्न होती हैं। उन्हीं के उभार से मनुष्य आदर्शों को अपनाने के लिए कटिबद्ध होता है। उनके लिए बड़े-बड़े त्याग, बलिदान करने को तत्पर होता है। परमार्थ-परायणता में भौतिक दृष्टि से प्रायः हानि ही होती है। इस तथ्य को जानते हुए भी महामानव उसे अपनाते हैं, तपस्वी जीवन जीते हैं और आदर्शों को अपनी गतिविधियों में जोड़े रहते हैं। जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उन्हें खुशी-खुशी सहन करते हैं। इस रीति-नीति को तपश्चर्या कहा जाता है। सामान्य प्राणी जब सब सुख-सुविधा ही चाहते हैं और उच्च आदर्शों का परित्याग करने में तनिक भी हिचक नहीं करते, तब श्रद्धावान व्यक्ति अपनी उच्चस्तरीय भाव संवेदनाओं से उल्लसित होकर आदर्श रक्षा को ही प्रधानता देता है और उसके लिए जो भी कष्ट सहने पड़ें, उन्हें सौभाग्य की तरह प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करता है। यही है, तपश्चर्या का विश्लेषण।

व्यक्तित्व की ऊपरी परत गुण, कर्म, स्वभाव के रूप में सामने आती है। मध्यवर्ती परत विश्वासों, मान्यताओं, आस्थाओं, निष्ठाओं के रूप में प्रस्तुत होती है। अन्तिम अति गहन परत 'श्रद्धा' की है। इसे आत्मा का अति सघन स्तर कह सकते हैं। उसी ढाँचे में जीव की मूल प्रकृति ढलती है और उसका उत्कृष्ट या निकृष्ट स्तर विनिर्मित होता है। श्रेष्ठता अपनाने के लिए सुविधा का परित्याग करा सकने की सामर्थ्य-उमंगें श्रद्धा की गंगोत्री से ही उमंगती हैं। जन-मानस के परिष्कार का व्यक्ति के स्तर का केन्द्र-बिन्दु इसी को समझा जाना चाहिए। व्यक्तित्व के बहिरंग एवं अन्तरंग रथचक्रों को गति देने वाली धुरी यही है।

श्रद्धा का उत्पादन, अभिवर्धन ईश्वर उपासना के माध्यम से होता है। ईश्वर भक्ति के लिए किये गये भावनात्मक पुरुषार्थ को उपासना कहते हैं। उपासना को आत्मिक प्रगति का विशेष व्यायाम कह सकते हैं। इसके सहारे जन-सत्ता को ब्रह्म-सत्ता से जुड़ने और अभीष्ट आदान-प्रदान करने का पथ-प्रशस्त होता है। अन्तःकरण के इसी मर्मस्थल की प्रगति आत्म-शक्ति के रूप में प्रकट होती है। यही वह सामर्थ्य है जिसके सहारे व्यक्ति आत्मबल-सम्पन्न बनता है और अपनी प्राण ऊर्जा से सम्पर्क क्षेत्र को तथा सुविस्तृत वातावरण को प्रभावित करता है।

उपासना का आरम्भ पूजा-पाठ से—जप, ध्यान से होता है। उसका विकसित स्वरूप योग और तप है। योग का अभिप्राय है चिन्तन का परम पर-ब्रह्म के साथ-परम श्रेष्ठता के साथ अति घनिष्ठतापूर्वक जोड़ना। ईश्वर को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा सदृश्य मानकर उसे महान आत्मा-परम आत्मा-उत्कृष्ट चेतना सत्ता के रूप में अपना प्रेमपात्र बनाया जाता है। उसके साथ अत्यन्तिक घनिष्टता स्थापित की जाती है। भगवद्-भक्ति का यही स्वरूप है। योग जोड़ने को कहते हैं। आत्मा और परमात्मा का जुड़ जाना ही योग है। इसके लिए जीव को अपना जीव-भाव-परब्रह्म के परमात्मा भाव में समर्पित-समन्वित करना होता है। समर्पण, विसर्जन, विलय, शरणागति, एकत्व, अद्वैत जैसी भावनाएँ योगाभ्यास से विकसित की जाती हैं। महान में तुच्छ को घुला देना—यही समर्पण है। भक्ति को समर्पण योग कहा गया है। इसका तात्पर्य होता है अहंता का-संकीर्णता का विराट में समापन। विश्वहित के लिए, परमार्थ के लिए, आदर्शों की प्रतिष्ठापना के लिए अपनी संकीर्ण-स्वार्थपरता का-व्यक्तिवादी लालसाओं का समापन, भावना के पथ में कामना को, उत्कृष्टता के पथ में अहंता को विसर्जित कर देना ही योग है। ईश्वर को श्रेष्ठता का समुद्र माना जाता है और उसी में व्यक्तिवादी अहन्ता को बूँद की तरह घुला दिया जाता है। नाले का नदी में, नमक का जल में, ईंधन का आग में, पतंगे का दीपक में विलय हो जाने की उपमा योग-साधना से की जाती है। यह विशुद्ध भावनात्मक प्रयास है। इसे उपासना का अनिवार्य अंग माना गया है। भक्त को भगवान के साथ एकत्व अद्वैत स्थापित करने के लिए अपनी कामनाओं, महत्वाकांक्षाओं और सुविधाओं को मन से निकालना पड़ता है। उसके स्थान पर ईश्वरीय इच्छाओं को, संदेशों को सच्चे मन से स्वीकार करना और उस स्वीकृति में परम प्रसन्नता अनुभव करना, यही है योग साधना का उद्देश्य। आत्मिक-शान्ति प्राप्त करने के लिए पूजा-पाठ से आगे बढ़ते-बढ़ते साधक को प्रभु-समर्पित बनना पड़ता है। अपने चिन्तन और क्रिया-कलाप का सारा ढाँचा इसी आधार पर खड़ा करना पड़ता है। यही है प्रचण्ड आत्म-शक्ति का उद्गम स्रोत जिससे इस विराट ब्रह्माण में संव्याप्त ब्राह्मी चेतना का अति महत्वपूर्ण अभिवर्षण साधक पर होता है और वह उस आत्म-शक्ति से सम्पन्न होता है जिसे इस जगत की सर्वोपरि सामर्थ्य कहा जाता है।

आत्म-शक्ति के अभिवर्षण का दूसरा क्षेत्र है—तप। तप का अर्थ है—काय-कलेवर में से निकृष्टता का परिशोधन। खदान में से धातुएँ मृतिका मिश्रित निकलती हैं। कच्ची स्थिति में उनकी उपयोगिता नगण्य होती है। आग में तपाने पर निरर्थक मृतिका का भाग हटाया जाता है और शुद्ध धातु से अति महत्वपूर्ण उपकरण बनने लगते हैं। अनगढ़ व्यक्तित्व को तप की आग में तपाकर उसके कुसंस्कारों का परिशोधन किया जाता है। आलस्य, प्रमाद, व्यसन, अचिन्त्य-चिन्तन, आत्महीनता, पशु-प्रवृत्तियाँ, भ्रष्टताएँ, दुष्टताएँ व्यक्तित्व के साथ आदिम कालीन विरासतों के रूप में प्राणी में लिपटी चली आती हैं। इनका परिशोधन तप की आग में होता है। काय-कलेवर ईश्वर प्रदत्त अत्यन्त सामर्थ्यवान यन्त्र है, उसमें अगणित शक्तियाँ प्रसुप्त रूप में पड़ी हैं, उन्हें तप की गर्मी देकर उभारा जा सकता है और आत्म-शक्ति-सम्पन्न बनाया जा सकता है।

गर्मी से मिलने वाले लाभों को आये दिन आँखों के सामने प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। कच्ची मिट्टी से बने मकान अल्पजीवी होते हैं, पर उसी मिट्टी को आग में पकाकर जब ईंटें पक्की कर ली जाती हैं तो उनसे बने मकान चिरस्थायी होते हैं। पानी को गरम करने से भाप बनती है और उससे प्रेसर कुकर से लेकर स्टीम इंजिन चलने जैसे कितने ही आश्चर्यजनक कार्य होते हैं। बारूद की शक्ति आग की चिन्नगारी छूने पर ही प्रचण्ड बनती है। पृथ्वी पर जीवन सूर्य की गर्मी से ही जन्मा है। गर्मी से ही बादल बनते और धरती की प्यास बुझाते हैं। मादा अपनी गर्मी से भ्रूण एवं अण्डे को पकाती है। अग्नि-संस्कार से सामान्य वस्तुएँ उपयोगी रसायनें, औषधियाँ बन जाती हैं। चूल्हा न जले तो भोजन पकने की बात ही न बने। शरीर में जब तक गर्मी है, तब तक जीवन है। गर्मी से हर वस्तु फैलती और विकसित होती है। वनस्पतियों का उगना और फूलना-फूलना उष्णता के अनुपात पर निर्भर रहता है। मशीनों का चलना ऊर्जा से ही सम्भव होता है। समस्त कल-कारखाने जलने वाला ईंधन मँगाते हैं। प्रकाश प्रकारान्तर से गर्मी ही है। यदि वह न हो तो अन्धकार और स्तब्धता ही इस संसार में शेष रह जायेगी। तब जीवन के चिन्ह भी दृष्टिगोचर न होंगे। गर्मी का महत्व भौतिक जगत में कितना है, इसे समझ लेने के उपरान्त किसी को यह सन्देह नहीं रहना चाहिए कि चेतना के, आत्मा के विकास के लिए तपसाधना द्वारा आध्यात्मिक उष्णता का उत्पन्न करना कितना अधिक आवश्यक है।

इतिहास, पुराणों को देखने से पता चलता है कि प्राचीनकाल के ऋषि, मुनि तप-साधना द्वारा आत्मःशक्ति विकसित करते थे। उच्च उद्देश्यों के लिए जो त्याग बलिदान भरे तप किये जाते हैं, इन्हीं के सहारे सामान्य मनुष्यों को ऐतिहासिक महामानव बनने का अवसर मिला है। जिनके चरणों पर संसार के श्रद्धा सुमन चढ़ते हैं, उन्हें यह सौभाग्य-सम्पन्नता या प्रतिभा के आधार पर नहीं व्यक्तित्व को परिष्कृत करने वाले-आदर्शों के लिए कष्ट सहने का साहस देने वाली तपश्चर्या के सहारे ही उपलब्ध हुआ है। चेतना में उत्कृष्टता उभारने का व्यायाम योग कहलाता है और काय-कलेवर की आदतों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादी गतिविधियों में रस लेने में अभ्यस्त बना लेना तप है। योग और तप को बिजली के ठण्डे और गरम तारों की तरह समझा जा सकता है, जिनका समन्वय होते ही आत्म-शक्ति की प्रचण्ड धारा प्रवाहित होने लगती है।

इतना समझ लेने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि लेखनी और वाणी के माध्यम से जिस भावनात्मक परिष्कार का प्रयास किया जा रहा है, उसमें ज्ञानयज्ञ का कितना महत्व है और उससे भी एक कदम आगे बढ़कर आत्मशक्ति के सम्वर्धन की कितनी अधिक आवश्यकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आत्मशक्ति के विकास में उच्चस्तरीय साधना, जिसमें त्याग और तप के तत्व मिले हुए हों, कितने अभीष्ट हैं। चेतना के परिष्कार का कार्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कठिन भी है। इस कार्य में वस्तुओं का उपयोग स्वल्प मात्रा में ही हो सकता है। प्रयोजन दो ही साधनों से सिद्ध होगा—एक सद्ज्ञान संवर्धन दूसरा आत्म-साधन। इनमें से एक को भी वरिष्ठ या श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है। दोनों की उपयोगिता गाड़ी के दो पहियों की तरह है, जिनके समन्वय से ही उस महान प्रयोजन की सिद्धि हो सकती है, जिसके लिए युग-निर्माण का अभियान चल रहा है। मिशन के प्रस्तुत कार्यक्रमों में इन दोनों ही तथ्यों का समान रूप से समन्वय रखा गया है। ज्ञानयज्ञ के विस्तार का जितना प्रयत्न है उतना ही आत्मोत्कर्ष की योग-तप परक साधनाओं पर भी जोर दिया जा रहा है। ''विचार क्रान्ति'' द्वारा विचारणा में श्रेष्ठता का संवर्धन और तप साधना द्वारा भाव संवेदना में श्रद्धा, भक्ति का देवत्व अवतरण करने के लिए समान रूप से प्रयास चलते हैं।

व्यक्ति और समाज का नव-निर्माण चेतनात्मक उत्कृष्टता के अभिवर्धन पर ही सम्भव है। इसके लिए ज्ञानयज्ञ और तप-साधना के दोनों पक्ष ऐसे ही हैं जैसे पक्षी के दो पंख, मनुष्य के दो हाथ, दो पैर। इन दोनों की ही समान उपयोगिता और समान आवश्यकता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। आत्म-शक्ति का उद्भव इन दोनों के समन्वय से ही संभव हो सकता है। सद्भाव-सम्पन्न वातावरण का निर्माण करने के लिए जिस सृजन क्षमता की, चेतनात्मक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। उस आत्मशक्ति का उद्भव युग परिवर्तन का प्रधान साधन है। इस उपार्जन को व्यक्तियों की प्रयोगशाला में किया जाता है। जलते हुए दीपक ही दूसरे दीपकों को जलाते हैं। दीपकों को तेल और बत्ती से सम्पन्न किया जाता है, तब उनमें ज्योति जलती है। जलती ज्योति से प्रकाश फैलता है और प्रकाश का अवलम्बन करके ही अन्धकार के भटकाव से छुटकारा मिल सकता है। प्रस्तुत अन्धकार युग से छुटकारा पाने के लिए ऐसे प्रकाश-स्तम्भों की जरूरत है, जो स्वयं प्रकाशवान हों और दूसरों को प्रकाश दे सकें। प्रखर प्रतिभाओं का निर्माण अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उन्हीं के पुण्य प्रयास से, प्रबल पुरुषार्थ से युग-परिवर्तन जैसा व्यापक कायाकल्प संभव हो सकता है।

युगशक्ति का उद्भव आत्मशक्ति के उदय के रूप में ही होगा। युग का परिवर्तन इसी क्षमता के उद्भव पर निर्भर है। इसके लिए युग-निर्माण योजना द्वारा ये तीन प्रयास चल रहे हैं—(१) ब्रह्मवर्चस् आरण्यक एवं शान्तिकुंज में योगाभ्यास तप-साधना में छोटे-बड़े प्रयोग। (२) लाखों साधकों को उनके निजी जीवन में उपासना एवं ज्ञान-साधना का मार्ग-दर्शन, प्रोत्साहन एवं सहयोग। (३) नवरात्रि के पुनीत पर्व पर व्यापक अभियान के रूप में तपश्चर्या एवं ज्ञान-साधना का सुव्यवस्थित सामूहिक प्रचलन। लोक-शिक्षण की दृष्टि से नवरात्रि पर्व के सामूहिक अनुष्ठान अत्यन्त प्रेरणाप्रद भूमिका निबाह रहे हैं। उनके माध्यम से नव-निर्माण का वातावरण बनने की पूरी-पूरी सम्भावना बन रही है।

मूलभूत है, अपने अंदर का देवत्व

पृथक्-पृथक् लगते हुए भी वस्तुतः हम सभी चेतना के धरातल पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। मनुष्य में जो चेतन-सत्ता क्रीड़ा-कल्लोल कर रही है, वही संपूर्ण जगत और प्राणी-प्रदार्थ में विद्यमान है। शास्त्रकारों एवं आप्त पुरुषों ने इसे ही व्यक्त करते हुए कहा है कि ब्रह्मांड और पिंड में, व्यष्टि और समष्टि में जितनी भी शक्तियाँ काम कर रही हैं, वह सभी प्राण-चेतना के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। कल्प के आदि में अपने मूल रूप ''महाप्राण'' से उद्भूत होकर यह शक्तियाँ अंततः उसी में समाहित हो जाती हैं।

इसी को दूसरे ढंग से पाश्चात्य मनीषियों ने भी स्वीकार किया है। सुविख्यात मनोविज्ञानी कार्लजुंग का कहना है कि परोक्ष एवं सूक्ष्म रूप से हम एक-दूसरे से सुसंबद्ध हैं। हम जो भी करते अथवा सोचते हैं, उससे दूसरे अवश्य प्रभावित होते हैं, ऐसा उनका मानना है। इस परोक्ष संपर्क को उन्होंने ''सामूहिक अवचेतन'' नाम दिया है। विज्ञान का ''पास्कल्स लॉ'' नामक एक प्रसिद्ध नियम है, जिसके अनुसार जब किसी द्रव पर दबाव पड़ता है, तो वह दबाव बिना घटे सम्पूर्ण द्रव क्षेत्र में संचारित होता है। हमारी चिंतन-चेतना जैसी होती है, उसी रूप में वह इस चेतना के समुद्र में संचारित हो जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है; पर इसे ग्रहण करना पूर्णतः ग्रहीता पर निर्भर करता है। यहाँ भी ग्रहण-अवधारण नियमानुसार होता है। जिस प्रकार समानधर्मी व्यक्ति और विचार परस्पर मिलते और घनीभूत होते हैं, वही बात चेतना के सम्बन्ध में भी कही जाती है। चिंतन-चेतना जिस स्तर की होती है, वह उसी ओर आकर्षित होती है। उत्कृष्ट स्तर की चेतना सदा सजातीय की ओर खिंचती चली आती है, जबकि निकृष्ट स्तर की प्राण चेतना अनुदात्त स्तर की ओर प्रवाहित होती है।

संसार की समस्त भौतिक शक्तियाँ प्राण चेतना के ही रूपांतरण हैं। वैज्ञानिकों ने इन्हें चार भागों में विभक्त किया है, ये हैं—(१) इलेक्ट्रो मैग्नेटिक फोर्स (२) वीक न्यूक्लियर फोर्स (३) स्ट्रांग न्यूक्लियर फोर्स (४) ग्रैवीटेशनल फोर्स। विज्ञानवेत्ताओं ने इन्हीं सत्ताओं के समष्टिगत रूप में चेतना जगत की झाँकी की है।

परामनोविज्ञानी रिचर्ड मोरिस बक ने भी अपनी पुस्तक ''कॉसमिक कॉन्शसनेस'' में चेतना के चार स्तर बताये हैं—(१) परसिप्चुअल माइंड (२) रिसिप्चुअल माइंड (३) कंसिप्चुअल माइंड (४) कॉसमिक माइंड अथवा कॉसमिक कॉन्शसनेस। उनके अनुसार परसिप्चुअल माइंड चेतना का निम्नतम स्तर है और बहुत अपरिष्कृत भी। इस स्तर की चेतना अत्यंत निम्नस्तरीय जीवधारियों में पायी जाती है। रिसिप्चुअल माइंड कुछ उन्नत स्तर की चेतना है और विकसित प्राणियों में देखी जाती है। कन्सिप्चुअल माइंड को मानवी चेतना कहकर वर्णित किया गया है और अंतिम श्रेणी को उन्होंने सर्वव्यापी ब्राह्मी चेतना कहा है। उनके अनुसार यह चेतना की सर्वोच्च स्थिति है, जिसमें पहुँच जाने पर व्यक्ति को एकत्व, अद्वैत का बोध होता है। सबमें स्वयं को और स्वयं में सबको देखने की विशालता इसी अवस्था में विकसित होती है। महर्षि अरविन्द ने भी चेतना को चार मुख्य सोपानों में विभाजित किया है? ये हैं—उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन और ओवर माइंड। चेतना के उच्चतर आयाम को उन्होंने ''सुपरामेंटल'' नाम दिया है। उनके अनुसार चेतना के इस सर्वोच्च स्तर का संपूर्ण मानव जाति में अवतरण तभी हो सकेगा, जब वह अपने गुण, कर्म, स्वभाव में परिष्कार लाकर विचारणा, भावना और संवेदना को उच्चस्तरीय बना सके, साथ ही ईश्वर के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण कर दे। इस संपूर्ण प्रक्रिया को उन्होंने इवोल्यूशन का नाम दिया है। इवोल्यूशन अर्थात् आरोहण। इसके अंतर्गत आत्म-परिष्कार कर स्वयं को ऊँचा उठाया जाता है, और इवोल्यूशन अर्थात् अवरोहण। यह वह प्रक्रिया है, जिसमें स्वयं को सत्पात्र बना लेने के बाद भगवद् करुणा उतरती है, अवरोहण करती है। व्यक्तित्व और चेतना का पूर्ण विकास इसी अवस्था में संभव बन पाता है और देवत्व की उपलब्धि भी तभी शक्य हो पाती है। यह अवस्था प्राप्त व्यक्ति को उन्होंने नास्टिक बीइंग अर्थात् अध्यात्मजीवी कहा है। रिचर्ड मोरिस ने चेतना की इसी स्थिति को ''ब्रह्मांडीय चेतना'' नाम दिया है और कहा है कि जब तक मानव जाति अपनी आत्म-चेतना को उस दिव्य चेतना के अनुरूप उच्चस्तरीय न बना ले, तब तक उसका अवतरण संभव नहीं ।

व्यक्ति जो कुछ भीतर सोचता है, वही बाद में शब्द के रूप में बाहर प्रकट होता है। विज्ञान ने शब्द को शक्ति के रूप में स्वीकारा है। शक्ति का न तो नाश होता है, न निर्माण वरन् रूपांतरण होता है। वह अपने मूल रूप में भी रह सकती है अथवा दूसरे में बदल सकती है; पर उसका विनाश कभी नहीं होता। इस आधार पर वैज्ञानिक बोली के विकास से लेकर अद्यावधि तक के छोड़े गये विचारों को अंतरिक्ष में एक विशेष क्षेत्र में अवस्थित बताते हैं। आयनोस्फीयर, एटमोस्फीयर की तरह इस क्षेत्र का नाम उन्होंने आइडियोस्फीयर दिया है। इस क्षेत्र में घूमने-फिरने वाली विचार-चेतना में से वैज्ञानिक अब यंत्रों के माध्यम से उन तरंगों को ग्रहण करने का प्रयास कर रहे हैं, जो महाभारत युद्ध के दौरान गीता के उपदेश के रूप में निकली थीं । यह तो विज्ञान का अपने ढंग का अपना प्रयास है; पर सर्वसामान्य तो आइडियोस्फीयर से अपनी स्वयं की चेतना के स्तर के अनुरूप ही लाभ उठा पाते हैं। संपूर्ण चेतनात्मक स्तर में से जिस स्तर का प्रतिनिधित्व वह करता है, उसी स्तर की विचार तरंगें उसकी ओर अंतरिक्ष से खिंची चली आती हैं और अपने अनुरूप क्रिया-कलाप अपनाने को बाधित करती हैं। यह स्थापित नियम है कि समानधर्मी तत्व समानधर्मी कणों को ही आत्मसात् कर पाते हैं। लोहा, लोहे के साथ और सोना, सोने के साथ ही संयुक्त हो सकता है। लोहा और सोने को परस्पर घुला-मिला देना कठिन है। अन्य धातुओं, वस्तुओं और तत्वों के साथ भी यही बात देखी जाती है। यही नियम मनुष्य और समाज में भी लागू होता है। शराबी, जुआरी, व्यभिचारी जितनी आसानी से अपनी बिरादरी वालों को जान और पहचान लेते एवं जिस सरलता व शीघ्रता से उनकी ओर खिंचते चलते हैं, वैसा शायद व्यसन और व्यभिचार न करने वाले लोग सहजता से न कर पायें। कला, प्रतिभा एवं सदाचार जितनी आसानी से कलाकार, प्रतिभाशाली और सदाचारी व्यक्ति को प्रभावित कर लेते हैं, वह सब विरोधी स्थितियों में संपन्न होता दिखाई नहीं पड़ता। जहाँ फूल खिलते हैं, वहाँ भ्रमर ही मँडराते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंदी नालियों में तो गुबरैले स्तर के कृमि-कीटक ही विचरते हैं।

तात्पर्य यह है कि श्रेष्ठता सदा श्रेष्ठ तत्वों को ही आकर्षित करती है। जहाँ निकृष्टता छायी रहती है, वहाँ अवांछनीय और अप्रिय तत्व ही घनीभूत होते हैं। इन दिनों हमारी निम्नस्तरीय गतिविधियों के कारण अंतरिक्ष से प्राय: हेय स्तर की चेतना बरसती और हम पर लदती रहती है, फलत: हमसे कुछ भी उदात्त करते-धरते और सोचते नहीं बन पड़ता। जिन हृदयों में श्रेष्ठता दिखाई पड़ती और उसके लिए भावनाएँ उमंगती हैं, उनके बारे में यह कहा जा सकता है कि उनने अंतरिक्ष के सद्विचारों से संपर्क स्थापित कर लिया है।

इसके अतिरिक्त स्थान और वस्तु से जुड़ी भली-बुरी चेतना से भी हम अपनी स्थिति और स्तर के हिसाब से प्रभावित होते रहते हैं। वेश्यागामी को जितना आनंद वेश्यालयों में मिलता है उतना कदाचित् कहीं नहीं मिलता प्रतीत होगा। उसे वहाँ संपूर्ण स्वर्ग उतरा अनुभव होता है, जबकि देवालयों का पवित्र वातावरण और महापुरुषों का सान्निध्य एकदम नीरस-निरानंद जैसा लगेगा। सत्पुरुषों के साथ स्थिति बिलकुल विपरीत दिखाई पड़ती है। उन्हें पवित्र सरोवरों, तीर्थों, देवमंदिरों में जितनी शांति और उत्फुल्लता की अनुभूति होती है वह कहीं अन्यत्र मिलती प्रतीत नहीं होती। दिन-रात मरघट में बिताने वाले अघोरियों को वहीं स्वर्ग-सुख की अनुभूति होती है, जबकि जनसामान्य को उस सन्नाटे की कल्पना से ही रोमांच और भय होने लगता है। स्थान एक ही है; पर परिणाम दो तरह के प्राप्त होते हैं। इसका एकमात्र कारण विरोधी चेतनात्मक स्तर ही है। अघोरी की चेतना उतनी ही निकृष्ट होती है, जितना श्मशान का वातावरण, फलत: दोनों एक-दूसरे में घुल-मिल जाते हैं और किसी प्रकार का व्यतिरेक उत्पन्न नहीं होता ; किंतु जब कोई सात्विक प्रकृति का व्यक्ति उक्त वातावरण में प्रवेश करता है, तो उसके अपेक्षाकृत परिष्कृत प्राण दूषित प्राण को स्वीकार नहीं कर पाते, जिससे दोनों प्रकार की प्राण-चेतना के बीच एक प्रकार का संघर्ष छिड़ जाता है, जो मानसिक विक्षोभ, घुटन, अवसाद का कारण बनता है।

मनुष्य दिव्यता प्रधान है। जैसे-जैसे अंतराल की परिष्कृति के कारण उसके अंदर इसकी मात्रा बढ़ती है, वैसे-ही-वैसे दिव्य चेतना से संपर्क सधने लगता है। इसकी अनुभूति उसे होने लगती है। जब यह चेतना संपूर्ण रूप में उसके अंदर व्याप जाती है तो उसे ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। चेतना का अन्तिम आयाम यही है। इसे ही तत्वज्ञानियों ने 'तुरीय' एवं मनोविज्ञानियों ने 'सुपर चेतन' के नाम से पुकारा है। इसी को जगाना, स्वयं को इस अंतिम स्थिति तक पहुँचाना, हम सबका लक्ष्य होना चाहिए। यह सिद्धि हमारे अपने ही अंदर छिपी पड़ी है। कुंजी ढूँढ़ने के लिए ही अध्यात्म के सारे उपचार, उपक्रम नियोजित होते हैं। यही हम सबके लिए श्रेय मार्ग भी है।

देव मानव बनने का आह्वान

नृतत्व वेक्ताओं ने विविध पर्यवेक्षणों और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि आदि मानव वन-मानुष स्तर का था। उसमें पशु- प्रवृत्तियों का ही बाहुल्य था। रहन-सहन और क्रिया-कलाप भी उसी स्तर का था, वह निज का उपार्जन कुछ भी नहीं करता था। प्रकृति के अनुदानों पर पशु- पक्षियों की तरह अपना निर्वाह करता था। प्रगति की दिशा में उसके कुछ चरण और बढ़े तो पुरुषार्थ- परायण हुआ। कृषि, पशुपालन जैसे उद्योग सीखे। वस्त्र, निवास, अग्नि प्रज्ज्वलन जैसी विधि-व्यवस्थाओं से अवगत हो गया। बोलना सीख गया और अपने-अपने समुदायों के प्रथा-प्रचलनों से अभ्यस्त हो गया। भौतिक प्रगति इसी दिशा में गतिशील होती चली आई है। विज्ञान, यंत्रीकरण, अर्थशास्त्र एवं शासन तंत्र की उपलब्धियों के सहारे वह वहाँ पहुँचा है जहाँ आज है। उसके सामने सुविधा-साधनों का बाहुल्य है। यह दूसरी बात है कि अपने व्यक्तित्व को घटिया बनाये रहकर वह उनका सही-समुचित उपयोग न कर सके। मानवी प्रगति का यही लेखा-जोखा है। मनुष्यों में से कुछ उद्दण्ड, अत्याचारी, छली, आक्रामक, विलासी, अहंकारी बन गये हैं और कुछ को अपनी नासमझी, कुशलता, प्रतिभा के अभाव में गई-गुजरी स्थिति में रहना पड़ रहा है। मनुष्य को बंदर की औलाद इसीलिए कहा जाता है कि उसकी भावना और विचारणा, पेट और प्रजनन के इर्द-गिर्द ही घूमती है। संकीर्ण-स्वार्थपरता ही उसकी प्रकृति है। पेट, प्रजनन के लिए वह मरता-खटता रहता है। बहुत हुआ तो ठाठ-बाट बनाता, हर्ष जताता और आक्रामक बनकर अपनी विशिष्टता सिद्ध करता है। जो इतना नहीं कर पाते, वे परिस्थितियों की प्रतिकूलता और भाग्य की विपरीतता को कोसते हुए दिन गुजारते हैं। मनुष्यों में से अधिकांश इन्हीं आदि मानव, वन मानुष या धूर्त शृंगाल प्रकृति के देखे जाते हैं। जनसंख्या की विपुलता ने न लोगों को निज की गौरव-गरिमा प्रदान की है और न समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में ही कोई योगदान दिया है। चकाचौंध उत्पन्न करने वाली बिडम्बना तो चारों ओर बिखरी अवश्य दिखाई पड़ती है, पर उसकी परिणति प्रतिक्रियाओं को देखते हुए निराश ही होती है और असमंजस होता है कि जिसे ईश्वर का युवराज, प्राणीवर्ग में शिरोमणि,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवमानव आदि नामों से सम्मानित किया गया है क्या वह यही है जिसे लोभ, मोह, स्वार्थ, शान, तृष्णा और अहंता के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं।

प्रकृति परायणता की सीमा इतनी ही है। जीवधारी अपने लिए ही जीते हैं। अपनी ही आवश्यकता जुटाते और अपनी ही प्रसन्नता, अनुकूलता संजोने में निरत रहते हैं। प्रकृतिपरावण रहकर मनुष्य भी उसी गई गुजरी मन:स्थिति में रह सकता है जिसमें कि अन्य जीवधारी मरते और मारते हैं, गिरते और गिराते हैं।

मानवी गरिमा का उज्ज्वल स्वरूप विकसित, प्रस्फुटित तब होता है, जब वह उत्कृष्ट आदर्शवादिता के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है। अपने चिन्तन, चरित्र, व्यवहार और प्रयास को अभिनन्दनीय, अनुकरणीय बनाता है। इसी ढाँचे में उसे ढालने के लिए ऋषियों ने शास्त्रों की रचना की है। अध्यात्म दर्शन का ढाँचा खड़ा हो गया है। योग तप के अनेकानेक विधान बनाये हैं। ईश्वर भक्ति के अनेकानेक उपचार, कर्मकाण्डों का सृजन किया है। इन आत्मोत्कर्ष की अनेकानेक विधि-व्यवस्थाओं का मूलभूत उद्देश्य एक ही है कि मनुष्य इसी जीवन में स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि प्राप्त करे। यह तीनों ही किसी अन्य लोक से संबंधित या जादू, चमत्कार जैसा नहीं है। वरन् उन्हें व्यक्ति की महानता के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। दृष्टिकोण का परिष्कार ही स्वर्ग है। दुष्प्रवृत्तियों से छूट निकलना, मुक्ति और अभिनन्दनीय स्तर पर जीवनचर्या को बनाये रहना सिद्धि। आत्मोत्कर्ष के लिए इतना करना ही पर्याप्त है। इससे कम में उस प्रयोजनों की पूर्ति होती नहीं। इससे अधिक और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। ऋषियों, मुनियों, योगियों, तपस्वियों, सिद्ध पुरुषों, महामानवों को इसी आत्मिक प्रगति प्रयास में संलग्न पाया गया है। उनने आकाशवासी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जो कुछ किया वह वस्तुत: अपने ही भीतर के देवत्व को जगाने के लिए किया था। शाप और वरदान भीतर से ही उभरते हैं। वे आसमान से नहीं बरसते। मनुष्य को सुनिश्चित रूप से अपने भाग्य का निर्माता कहा गया है। वह इसके लिए प्रबल प्रयास भी करता है। अपने आपको अधिकाधिक पवित्र, परिष्कृत, प्रमाणिक एवं प्रतिभावान बनाता है। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लेता है। अन्त:करण और बाह्याचरण में जब समानरूप से उत्कृष्टता का समावेश हो जाता है तो सामान्य शरीर में रहते हुए भी व्यक्ति देवमानव की गरिमा उपलब्ध कर लेता है। ऐसे लोगों के लिए देवमानव नाम दिया जाना सर्वथा उपयुक्त है। देवता अशरीर होते हैं, इसलिए उनके साथ प्रत्यक्ष घुलन-मिलन नहीं हो सकता है। पर देवमानवों को सन्त, सुधारक और शहीदों के रूप में प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है। परिचित परिकर में उनकी संख्या कम हो तो भी इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से उन्हें जीवन्त, जाज्वल्यमान देखा जा सकता है। ऐसे नर देव-पुरुष पुरुषोत्तम होते तो कम ही हैं पर उनका सर्वथा अभाव किसी भी युग में नहीं होता। सतयुग में ऐसे ही लोगों का बाहुल्य था। भारत भूमि के तैतीस कोटि निवासी संसार भर में तैतीस कोटि देवताओं के नाम से प्रख्यात थे। जिस धरती पर वे जन्मते-पलते थे वह 'स्वर्गादपि गरीयसी' हो जाती थी। उनके क्रिया-कलाप से वातावरण इतना दिव्य बन जाता था कि उसे सतयुग नाम दिया जाना उपयुक्त ही जँचता था। यह समय लम्बी अवधि तक बना रहा। इनके शरीर भर प्रकृति प्रदत्त थे पर उनके अन्त:करण में देवत्व कूट-कूट कर भरा था। डिब्बी के भीतर जो वस्तु रखी है उसी के आधार पर उसका मूल्यांकन होता है। जिनकी अन्तरात्मा प्रामाणिकता, शालीनता, सेवा और परमार्थ-परायणता से सराबोर है उन्हें देव- तुल्य ही नहीं वरन् उनसे बढ़कर भी माना जा सकता है। देवता अप्रत्यक्ष होते हैं। मनुहार करने और उपहार देने पर पसीजते हैं। इसके उपरान्त ही उनके अनुदान, वरदान साधकों पर बरसते हैं। किन्तु देवमानवों की कृपा, अनुकम्पा अहैतुकी होती है और बिना याचना की प्रतीक्षा किये मेघमाला की तरह बरसती और बसन्त की तरह शोभा, सुषमा से सर्वत्र उल्लास बखेरती है।

भारत देवभूमि है। स्वर्गलोक के अस्तित्व को चुनौती दिये बिना यह कहा जा सकता है कि उसका प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो ऐसे महामानवों की उपस्थिति अभी भी जहाँ-तहाँ देखी जा सकती है। सतयुग में तो वे साधु और ब्राह्मण के रूप में एक विकसित समुदाय के रूप में ही इस धरित्री की शोभा, सुषमा, संस्कृति एवं समृद्धि का संवर्धन करते थे।

आज मनुष्य की व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याएँ बेतरह उलझ गई हैं। साधन सामग्री घट गई हो सो बात नहीं। विज्ञान और कौशल ने साधनों का अतिशय विस्तार किया है किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से समुदाय अतिशय बौना हो गया है। कुछ उत्पीड़क हैं कुछ उत्पीड़ित। कुछ शोषक हैं कुछ शोषित। कुछ पर्वत की चोटी पर बैठे हैं तो कुछ खाई में गिरकर कराह रहे हैं। इस विषमता को समता के रूप में परिणित करने के लिए देवमानवों के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं हो सकता।

पौराणिक कथानकों में अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन के निमित्त अवतारों का प्रकटीकरण होता रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। इस अलंकारिक प्रतिपादन का व्यावहारिक स्वरूप यह हो सकता है कि प्रामाणिकता और परमार्थ-परायणता के पक्षधर उदारचेता सामन्त लोगों जैसी गतिविधियों से उबरकर देव प्रयोजनों में जुट जाने का एकाकी साहस करते हैं। सद्भावना पूर्वक अपनाई गई उच्चस्तरीय निर्धारणा को पूरी करने में कर्त्ता की अन्तरात्मा और दैवी शक्तियों की अनुकम्पा समान रूप में, संयुक्त रूप से काम करती है और जो परिणाम सामने आते हैं वे चमत्कारी स्तर के होते हैं। परमार्थी, पुरोहितों को ही ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है। वस्तुतः वे ही समाज का स्तर, परिस्थितियों का प्रवाह और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ते और सफल होकर रहते हैं। समय की पुकार है कि ऐसे उदारचेता उभरें। अपने इर्द-गिर्द के भव-बन्धनों की पकड़ से अपने को उबारें और साथ ही जन-कल्याण की उन प्रवृत्तियों में जुटें जिन्हें प्रकारान्तर से अधर्म का उन्मूलन और धर्म का संस्थापक भी कहा जा सकता है। परिस्थितियों की माँग इतनी प्रबल है कि इससे बच निकलने के लिए कोई बहाना नहीं ढूँढ़ा जाना चाहिए। सतयुग का माहौल बनाने के लिए भावनाशीलों को संकल्पपूर्वक आगे आना चाहिए। आज की परिस्थितियों में इस रीति-नीति को अपनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है।

साधु और ब्राह्मणों को भूसुर-पृथ्वी के देवता कहा जाता है। वे अपनी योग्यता, श्रमशीलता, सम्पदा का न्यूनतम अंश अपने निर्वाह के लिए रखते हैं और शेष को अन्यान्यों को उठाने, बढ़ाने में खर्च करने के लिए अवसर तलाशते रहते हैं। किसी के निवेदन की प्रतीक्षा नहीं करते। बादलों की तरह बिना बुलाये ही सर्वत्र पहुँचते हैं और हर किसी को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही देवमानवों की संख्या बढ़ने से धरती का वातावरण स्वर्गोपम बनता है।

लोकसेवियों की जिस जमाने में कमी पड़ती है, उन दिनों विकास का स्तर घट जाता है। जन साधारण का भावनात्मक परिष्कार-दृष्टिकोण का उदात्तीकरण नितान्त आवश्यक है। इस कार्य को वेतनभोगी, विलासी, स्वार्थी एवं घटिया स्तर के लोग नहीं कर सकते। भले ही वे क्रिया-कुशल अथवा ऊँचे पदाधिकारी ही क्यों न हों। परामर्श उनका माना जाता है जिनके प्रति सहज श्रद्धा होती है। यह विभूति किसी को अनायास ही नहीं मिलती। इसके लिए मात्र सेवा-भावना ही उच्चस्तरीय नहीं होनी चाहिए, वरन् चरित्र निष्ठा, आदर्शवादिता भी ऐसी होनी चाहिए, जिसे हर कसौटी पर खरा पाया जा सके और जिसे अनुकरणीय, अभिनन्दनीय ठहराया जा सके।

महामानवों की ढलाई करने वाला उच्चस्तरीय मनोविज्ञान

सामान्यतया जीवनक्रम की इतिश्री साधन- सुविधाओं को अर्जित करने और भोगने में मान ली जाती है। इतने पर भी हर युग में कुछ ऐसे व्यक्ति होते आए हैं जिन्होंने सामान्य से दीख पड़ने वाले जीवन को असामान्य बनाया। उसे इस रूप में ढाला कि देखने वाले कठिनतापूर्वक विश्वास कर सकें कि यह पहले वाला वही साधारण व्यक्ति है, जो अब कतिपय सूत्रों को अपनाकर असाधारण हो गया है।

बाहर से रूप-रंग-काया-ढाँचा के आधार पर विवेचन-विश्लेषण करने पर प्रायः सभी एक समान दिखाई देते हैं। इतने पर भी निर्विवाद रूप से यह स्वीकारा जाता है कि शंकराचार्य, विवेकानन्द, गाँधी, बुद्ध सरीखे व्यक्ति सामान्य से परे महान थे। कौन सी वह चीज है, जो उनकी महानता का कारण बनी ? शारीरिक ढाँचे में अन्तर तो कोई खास था नहीं। साधन-सुविधाओं की दृष्टि से भी वे बहुत अधिक समुन्नत नहीं कहे जा सकते थे। फिर इन्होंने इसका आश्रय भी नहीं लिया, जिससे कोई यह कह सके कि उनकी ख्याति इन्हीं से फैली हो। फिर वह कारण क्या है ? उत्तर मनोविज्ञान देता है। इस दिशा में प्रगति की ओर बढ़ते कदम इस महानता के रहस्य को बहुत करीब से अनुभव करने लगे हैं। इसमें जुटे हुए, वैज्ञानिकों ने अध्यात्म को "महामानव ढालने का विज्ञान कहकर स्वीकारा है। वास्तविकता भी यही है। व्यक्ति की महानता बाह्य परिस्थितियों, साधन-सामग्रियों अथवा किसी वस्तु पर निर्भर नहीं करती। यह तो मानवीय चेतना की एक अवस्था का नाम है, जिसकी प्राप्ति आध्यात्मिक प्रणाली के द्वारा काटने-छाँटने-तराशने से ही हो सकती है। कोई भी किसी स्तर का व्यक्ति बिना किसी भेद-भाव के इसे उपलब्ध कर सकता है।

मनुष्य के चिन्तन, चरित्र, व्यवहार की निर्भरता उसकी आन्तरिक चेतना की स्थिति पर निर्भर है। यदि यही अनगढ़ है, तो फिर जीवन में उत्कृष्टता आए कैसे? आन्तरिक चेतना को समझते हुए अध्यात्म मनोविज्ञान ने इसे कल्पना, मन, विवेचन बुद्धि, चित्त अचेतन संस्कार और अहं मान्यता कहकर स्पष्ट किया है। यही चार क्षेत्र मिल-जुलकर मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को ऊँचा उठाते या नीचा गिराते हैं। इसी को सुधारने-सँवारने पर जीवन सुधर-सँवर सकता है।"

अभी तक इसको सुधारने-सँवारने वाली अध्यात्म विद्या को गुह्य विद्या के रूप में जाना-माना जाता था अब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी इस प्रक्रिया के अस्तित्व से तो इन्कार नहीं किया गया है, पर इसके प्रति मान्यता कुछ ऐसी बन गई थी कि इसका उपयोग कुछ ही व्यक्तियों द्वारा सम्भव है। इसके उपचार भी सार्वजनिक व वैज्ञानिक नहीं हैं, न माने जाते थे। पर ये विगत युगीन मान्यताएँ अब समाप्त प्राय: हो गई हैं। आज अध्यात्म एक सशक्त उच्चस्तरीय मनोविज्ञान के रूप में सामने उभरकर आ गया है।

आधुनिक समय में मनोविज्ञान सिर्फ शरीर व मन तक सीमित नहीं रहा। इसका उपयोग न केवल गड़बड़ियों को ठीक करने में रहा, बल्कि इसकी और भी गति हुई कि अनगढ़ को सुगढ़ और सुगढ़ को और अधिक स्वरूपवान कैसे बनाया जाय? अध्यात्म के सूत्र-सिद्धान्तों को वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा साबित करने वालों के लिए कई धाराएँ हैं। इनमें से ''वृद्धि मनोविज्ञान'' प्रमुख है। जिसका विवेचन जी० डब्लू० आलपोर्ट की ''दि कोर्स ऑफ बिकमिंग'' सी० आर० राजर्स की ''टूवर्ड्स ए थ्योरी ऑफ क्रिएटिविटी एण्ड इट्स कल्टीवेशन'' आदि में मिलता है। इनके अतिरिक्त फ्रैंकल, इरा प्रोगाफ आदि ने एक अन्य धारा विकसित की है जिसे उन्होंने ''आर्थो साइकोलॉजी'' नाम दिया है। इसी तरह राबर्टी असागिओली ने साइको सिंथेसिस नामक पद्धति विकसित की है। इन सभी धाराओं का ''समूह मनोविज्ञान'' के क्षेत्र में तीसरी शक्ति के रूप में विख्यात हुआ है। कुछ ने इसे मनोविज्ञान के आध्यात्मीकरण की संज्ञा दी है।

प्रश्न नाम का नहीं है। सवाल यह है कि अध्यात्म के सूत्रों, तकनीकों, प्रक्रियाओं के वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरे उतरने मात्र से ही क्या मानव जाति अपनी विस्मृत सम्पदा को फिर से पहचान सकेगी?

मनोविज्ञान के समूचे खजाने में दो चीजें भरी हैं—सूत्र और तकनीक। सूत्रों में स्थिति का विवेचन होने के साथ तकनीकों के संकेत हैं। तकनीकों द्वारा स्थिति को ठीक करने के प्रयास किए जाते रहे। सारी पद्धति का एक ही उद्देश्य था कि रोगी को नीरोग कैसे किया जाय। अध्यात्म मनोविज्ञान न सिर्फ मानसिक परेशानियों से छुटकारा दिलाता है बल्कि उससे एक कदम और आगे बढ़कर महानता को उपलब्ध करने, जीवन को गरिमापूर्ण बनाने का राज खोलता है।

बात सही भी है, हमारे अन्तराल (चित्त) की पाँच अवस्थाएँ हैं— क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। पहली में आंतरिक स्थिति हमेशा चलायमान रहती है परिणामस्वरूप चिन्तन व व्यवहार भी अस्थिर होता है। समान्यतया इस स्थिति में छोटे बच्चे रहते हैं, पर कभी-कभी बड़ों में इसकी उपस्थिति रहने पर उनमें बचकानेपन के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। मूढ़ स्थिति जड़ता अथवा पागलपन की दशा है। इसमें समूचा जीवन-क्रम नष्टप्राय होता है। तीसरी स्थिति औसत व्यक्ति की है। कभी दु:खी, कभी सुखी, कभी हैरान-परेशान, कभी प्रफुल्ल-प्रसन्न। ऐसी दशा में मनुष्य साधारण सोच-विचार वाला प्राणी भर होता है। अन्तराल की गहराइयों में दिव्य क्षमताओं, शक्तियों का जो खजाना दबा छिपा है वह प्रकाश में नहीं आता। परिणामस्वरूप इस अमूल्य धन के रहते भी वह उस क्षेत्र में निर्धन-कंगाल सी जिन्दगी गुजारता रहता है।

अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रणाली इस स्थिति से आगे बढ़ने और स्वयं में निहित महानता को उजागर करने का मार्ग सुझाती है। यों तो इसके लिए बताई गई तकनीकों की संख्या सैकड़ों, हजारों में है, पर सामान्यजन इनमें से जप, ध्यान, प्राणायाम आदि उपचारों से ही थोड़ा-बहुत परिचित हैं। यद्यपि इनमें से हर एक के कई-कई प्रकार हैं। व्यक्ति की स्थिति के अनुरूप इनमें से किसी उपयुक्त प्रकार का अवलम्बन मन को एकाग्र स्थिति में ले जा सकता है। सारे अन्वेषण महत्त्वपूर्ण कार्य इसी स्थिति में सम्पन्न होते हैं। विभूतियों, महानताओं का दरवाजा इसी दशा में खुलना शुरू होता है। इस तत्व को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि संसार का हर महान व्यक्ति किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक रहा है भले ही वह इसके बारे में स्वयं पूरी तरह अवगत न हो।

आध्यात्मिकता और महानता परस्पर समानुपाती हैं। एक जितनी मात्रा में आयेगी दूसरी भी उतनी ही मात्रा में पनपेगी। बढ़ी हुई एकाग्रता-पवित्रता के साथ मिलकर एक नया सोपान पाती है निरुद्ध अवस्था का। यह मनुष्य की महानतम स्थिति है। अन्तराल के इसी विकास को उपलब्ध कर वह मानव से महामानव बनता है।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० इन्द्रसेन ने अपने शोध अध्ययन ''इन्टीग्रल साइकोलाजी'' में ''अध्यात्म विज्ञान'' को पूर्ण मनोविज्ञान का नाम दिया है। तथ्यत: यह बात ठीक भी है। मनोविज्ञान की पूर्णता और अध्यात्म की वैज्ञानिकता इसी बिन्दु पर आकर मिलती हैं। विभिन्न प्रयोगों द्वारा इसके परिणामों को जाँचा-परखा और खरा पाया गया है। इस विज्ञान का व्यापक स्तर पर प्रसार ही व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य में देवत्व का उदय और सामाजिक स्तर पर धरती पर स्वर्ग के अवतरण में सहायक सिद्ध हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवीय चेतना के परिष्कार और उसके महामानव स्तर तक के उन्नयन का ठीक और सही समय यही है। इस तरह के ढले व गढ़े गए व्यक्ति प्रारम्भ में संख्या की दृष्टि से कम हों तो कोई बात नहीं। बुद्ध, अरविंद जैसे महामानव पहले भी कम ही हुए हैं, पर उन्होंने अपनी महानता के बल पर अनेकों को दिशा दी। ऋषि युग में मूर्धन्य सप्त ऋषियों की ही गणना की गई, पर यह नहीं समझना चाहिए कि उनके अलावा और उच्चस्तरीय प्रतिभाएँ तब नहीं थीं। इन दिनों भी जरूरत इसी बात की है कि मानवी गरिमा को निकृष्टता के दलदल में से उबारा तथा आत्मिक दृष्टि से उच्च शिखर तक पहुँचा दिया जाय।

हम सभी के अन्तराल में दिव्य क्षमताओं का खजाना भरा पड़ा है। इसे निकालने के लिए स्वयं के जीवन में अध्यात्म, मनोविज्ञान को अविच्छिन्न रूप से समाविष्ट करना होगा। ऐसा करने पर क्रान्तिकारी परिवर्तन होने संभव नहीं, सरल भी हैं। यदि हम इस उच्चतर मनोविज्ञान की तकनीकों का अवलम्बन लेकर स्वयं की चेतना को परिष्कृत करने के निमित्त तत्पर हो सकें। गुण, कर्म, स्वभाव को अपनी गरिमा के अनुरूप ढाल सकें, तो जीवन उत्कृष्ट, समुन्नत, प्रखर बन सकेगा यही देवत्व है। इन विशेषताओं और विभूतियों से मानवी अन्तराल भरा पड़ा है। उसे निखारने और उभारने भर की जरूरत है। अध्यात्म की वैज्ञानिक तकनीकों के द्वारा इसे सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सकना हम में से प्रत्येक के लिए सम्भव है।

महामानवों की मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक ''एनाटॉमी''

मन:स्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है। मनुष्य के सुख-दु:ख, विकास अथवा पतन के लिए मुख्यत: वही जिम्मेदार है। परिस्थितियों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता तो है पर मनुष्य की प्रगति-अवगति में उनकी नगण्य भूमिका है। मूलत: कारण आन्तरिक स्थिति ही होती है। मन की विलक्षण सामर्थ्य और सम्भावनाओं को देखकर ही ऋषियों ने उसे व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष घटकों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना था तथा यहाँ तक कहा था कि मनुष्य का मन ही उसके बन्धन अथवा मुक्ति का कारण है।

प्रगति की आकांक्षा रखने तथा महानता का मार्ग चयन करने वालों को सर्वप्रथम मन को ही समझाना, सँभालना तथा सुधारना पड़ता है। अनगढ़ रहने पर वह अड़ियल घोड़े की तरह परेशान करता तथा विकास का मार्ग अवरुद्ध करता है। सुगढ़ता प्राप्त करते ही वह सधे घोड़े के समान सवारी ढोने, भार लादने की तरह इच्छाओं, आकांक्षाओं का सही नियोजन तथा पूर्ण मनोयोग का परिचय देकर अनेकों प्रकार का सहयोग देता है। उसका स्तर निकृष्ट हो तो पतन-पराभव का मार्ग स्वयमेव ही खुल जाता है। अनियन्त्रित, निरुद्देश्य इच्छाएँ हवा के साथ उड़ने वाले तिनकों की भाँति भटकती रहती हैं। उनसे कोई विशेष प्रयोजन पूरा नहीं हो पाता।

श्रेयस् का पथ अपनाने तथा महानता का वरण करने की जिन्हें आकांक्षा है, उन्हें साधनात्मक प्रयत्न करना जितना आवश्यक है, उतना ही जरूरी यह भी है कि मन को सही दिशा दें। इच्छाओं-आकांक्षाओं का सही स्वरूप समझें ताकि उनमें से उचित का ही वरण कर सकें। श्रेयस् के पथिक को लक्ष्य ही नहीं अपने चिन्तन का स्वरूप भी निर्धारित करना पड़ता है। कारण कि उत्कृष्ट जीवन की ओर चलने में सर्वाधिक सहायक अथवा बाधक अपना चिन्तन एवं दृष्टिकोण ही होता है।

फ्रायड से अलग हटकर मनुष्य के विकास की असीम संभावनाओं पर दृढ़ विश्वास रखने वाले मन:शास्त्री अब्राहम मैस्लो का कहना है कि व्यक्तित्व विकास के लिए एक विशिष्ट तरह की चिन्तन पद्धति भी अपनानी पड़ती है। मैस्लो ने परमार्थ-परायण महापुरुषों के चिन्तन एवं दृष्टिकोण का मन:शास्त्र के आधार पर विश्लेषण किया है। उन्होंने उस आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं वे अति उपयोगी तथा हर व्यक्ति का मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं।

मैस्लो के अनुसार श्रेष्ठ व्यक्ति सहज स्वभाव के होते हैं। उनमें कृत्रिमता का अभाव पाया जाता है। बाहर और भीतर से एक जैसे होते हैं। उनकी भावना, विचारणा एवं क्रिया तीनों ही में एकरूपता पायी जाती है। जैसा विचार करते हैं, हृदय में वैसे ही भाव उठते हैं तथा व्यवहार में उसी स्तर के कृत्य करते हैं। उनका स्वभाव स्वतन्त्र होता है उनकी बुद्धि प्रगतशीलता की, श्रेष्ठ प्रयोजनों की पक्षधर होती है। इसका अर्थ मर्यादाहीन होना कदापि नहीं है। इस स्वतन्त्रता का अभिप्राय कुरीतियों एवं रूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त हो, दूसरों को वैसा ही बनाने में सहायक सिद्ध होना है। विचारों की संकीर्णता भी उन्हें नहीं रुचती। नित नए प्रगतिशील विचारों का आह्वान करना उनकी विशेषता होती है। समाज एवं देश को वे उपयोगी विचार देते हैं साथ ही अनुपयोगी के खण्डन में भी वे पीछे नहीं रहते। मौलिकता उनमें कूट-कूट कर भरी होती है। अन्धानुकरण को वे पिछड़ेपन का चिन्ह मानते तथा उससे सदा बचते हैं। अपनी राह स्वयं बनाते तथा बिना किसी की परवाह किए चल पड़ते हैं। अपने मार्ग में आने वाले संघर्षों से विचलित होना उन्हें नहीं भाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस मनःशास्त्री के अनुसार ऐसे व्यक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समस्याओं को सर्वोपरि मानते तथा उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, जिनमें समाज, देश एवं जाति का हित जुड़ा हो। उनका अहम् विराट में विसर्जित हो जाता है। अपने ''स्व'' तथा उससे जुड़ी कामनाओं पर उनका कड़ा अंकुश रहता है। प्रसिद्ध विचारक कैप्टन शोटोवर का कहना था कि ''हमारी संसार में रुचि तभी होती है, जब हमारी रुचि स्वयं में से परितृप्त होकर बाहर निकलने लगे।'' प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि अपनी इच्छाओं को विगलित किए बिना समाज एवं संसार की सेवा सम्भव नहीं।

मैस्लो की अवधारणा है कि सभी परमार्थी रचनात्मक प्रवृत्ति के होते हैं। उनमें कलात्मक, वैचारिक तथा वैज्ञानिक स्तर की विशिष्टताएँ समायी रहती हैं। यही कारण कि उनके जीवन में एकरूपता का अभाव नहीं होता। एक ही वस्तु को सदा नए-नए रूप में देखते रहने से उसमें नवापन भासित होता है। जबकि सामान्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण में यह विशिष्टता नहीं पायी जाती।

''न्यू पाथवेज इन साइकोलॉजी'' के रचनाकार कोलिन विल्सन ने अपनी पुस्तक में मैस्लो के चिन्तन का निष्कर्ष दिया है। ''सामान्य लोगों की तुलना में महामानवों का अधिक प्रसन्नचित्त एवं प्रफुल्लित रहना उनके सन्तुलित एवं परिष्कृत दृष्टिकोण का परिणाम है। ऐसे व्यक्ति वास्तविक, अवास्तविक में विभेद करने तथा औचित्य को ग्रहण करने में परिपूर्ण सक्षमता रखते हैं। ऐसी समर्थ ग्राह्य क्षमता उनमें हर क्षेत्र में विद्यमान होती है।''

इसी पुस्तक में मैस्लो का कथन है कि स्नेह, सौजन्य की भावना अपेक्षाकृत अन्य लोगों के, महापुरुषों में अधिक होती है। उनका अन्तराल स्नेह, प्रेम, करुणा, दया से लबालब रहता है। उनके पास न तो बैर फटकता है न ही घृणा। एकान्त एवं शांतिप्रिय स्वभाव के ये पुरुष सामाजिक एवं नैतिक मर्यादाओं का पालन करते तथा सहनशक्ति एवं सामंजस्य की प्रवृत्ति अपनाते हैं। उनके स्वभाव में उथलापन, दूसरों की निन्दा, उपहास का दोष नहीं पाया जाता। उनका स्वभाव दूसरों को उठाने का होता है, गिराने का नहीं। चिन्ता, भय, परेशानी, संकटों की कंटकाकीर्ण परिस्थितियों के मध्य भी उनका धैर्य एवं संतुलन लुप्त नहीं होता। चिन्तन की धारा निषेध की उल्टी तरफ न बहकर विधेयात्मक मार्ग अपनाती है।

मनःशास्त्र के अध्येता मैस्लो ने सिगमण्ड फ्रायड की इस मान्यता का भी खण्डन किया है कि प्रत्येक मनुष्य की गतिविधियाँ यौन अभिप्रेरित हैं। उनका मानना है कि संसार में ऐसे अनेकों सन्त, महापुरुष हुए हैं जिनका आचरण यौन प्रवृत्ति से पूर्णतया ऊपर उठा हुआ था। उनका यौन प्रवृत्ति पर पूर्ण नियन्त्रण था। वे किसी ऊँचे लक्ष्य से प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करते थे। सुप्रसिद्ध मनःशास्त्री गोल्डस्टीन मैकडूगल तथा कार्ल गुस्तेव जुंग ने भी मैस्लो की इस मान्यता का समर्थन करते हुए कहा है। सेक्स से भी श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ मनुष्य में पायी जाती हैं। समाज, देश एवं संस्कृति के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले त्यागी, बलिदानी महापुरुषों का जीवन-चरित्र इस बात का साक्षी है। स्नेह, प्यार का उच्चस्तरीय आदर्शों के प्रति अटूट निष्ठा का विलक्षण सैलाब उनके हृदय में उमड़ता देखा गया है। देश की बलिवेदी पर मर मिटने वाले बलिदानियों, समाज के उत्थान के लिए जीवन होम देने वाले समाज-सेवियों, आविष्कार में एकनिष्ठ होकर जुटे वैज्ञानिकों की प्रेरक शक्ति सेक्स नहीं अपितु वह महानता होती है, जो उनके भीतर से प्रस्फुटित होती तथा कुछ विशेष प्रचलित ढर्रे से अलग हटकर कुछ करने को अभिप्रेरित करती है।

मनोविज्ञान के आधार पर समाज के नवनिर्माण की विचारधारा अब्राहम मैस्लो ने अपनी पुस्तक ''यूप साइकियन मैनेजमेन्ट'' में व्यक्त की है। प्रगतिशील विचार के समर्थकों ने इस पुस्तक की तुलना अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र की मूर्धन्य प्रतिभा कार्ल मार्क्स की सुप्रसिद्ध कृति ''दास कैपिटल'' से की है। इस पुस्तक में मैस्लो ने महानता का वरण करने के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव भी दिए हैं। उनके अनुसार लक्ष्य निर्धारित कर लेने के उपरान्त मनुष्य को कार्यों में छोटे- बड़े का भेदभाव नहीं करे, उनका स्तर श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए। प्रायः ऊब, नीरसता, अकर्मण्यता का कारण वह चिन्तन है, जिसमें मनुष्य के काम को छोटा मानकर उनमें रस नहीं लेता। सामान्य और असामान्य व्यक्तियों में मौलिक अन्तर यह पाया जाता है कि सामान्य व्यक्ति जिस काम को छोटा मानकर उपेक्षा कर देते अथवा उसे करने में मनोयोग का परिचय नहीं देते, महापुरुष उनमें भी पूरी तल्लीनता, मनोयोग से जुटे दिखाई पड़ते हैं। वे काम के प्रतिफल पर नहीं उसके स्तर पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। यह असाधारण मनोयोग ही अन्ततः श्रेष्ठ परिणामों का भी कारण बनता है।

मूर्धन्य मनःशास्त्री मेस्लो ने उपयुक्त विचारों में महानता के सिद्धान्तों एवं महापुरुषों की जिन विशिष्टताओं को निरूपित किया है, वे शाश्वत हैं। अध्यात्मवेत्ता भी इसी जीवनदर्शन का समर्थन विविध माध्यमों से समय-समय पर करते देखे जाते हैं। इन्हें चर्चा, श्रवण, अध्ययन तक सीमित न रखकर सचमुच आचरण व्यवहार में उतारने के लिए कटिबद्ध हुआ जा सके तो देखते ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखते सामान्य मानव से महामानव की स्थिति में जा पहुँचने का सौभाग्य इसी जीवन में हर किसी को मिल सकता है।

अंत:करण ही वास्तविक भाग्य निर्माता है

आधुनिक तकनीकी युग में व्यक्ति के मानसिक-बौद्धिक स्तर का विकास तो हुआ है, पर अंत:करण के गई-गुजरी स्थिति में पड़े रहने के कारण वह अनेकानेक प्रकार की समस्याओं में उलझा असहाय-अपंगों की तरह बेचैन दिखाई पड़ता है। जबकि मानवी अंतराल में शक्तियों का विपुल भांडागार भरा पड़ा है, पर मानसिक दुर्बलताओं के फलस्वरूप वह आत्मानुभव तथा अतिमानवी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता परिणामस्वरूप तृप्ति, तुष्टि और शांति से वंचित रहता है। आत्मोत्कर्ष की उपलब्धि एवं आत्मिक क्षुधा की निवृत्ति के लिए ही ऋषि, मनीषियों ने विविध-विधि योग-साधनाओं और तपश्चर्या का अविष्कार किया और परामर्श दिया है कि अंत:करण की भाव संवेदना को-उत्कृष्टता को जगाया-बढ़ाया जाय, कारण कि व्यक्तित्व के समग्र विकास की जड़ें अंत:करण की गहराई में ही विद्यमान हैं। नर से नारायण बनने का उद्‌गम स्थल यही है। ऋद्धि-सिद्धियों के भंडार इसी की तिजोरी में बंद हैं। इसे ही विकसित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

यों तो व्यक्तित्व के विकास में कई तथ्यों का समावेश रहता है। इनमें एक शरीर में जीवनी-शक्ति का प्रकटीकरण भी है जिससे वह हृष्ट-पुष्ट सुडौल-नीरोग एवं सुन्दर, आकर्षक बना रहे। आशा और उमंग मन में भरी रहे। उत्साह और साहस का स्वभाव में समावेश हो, हँसने-मुस्कराने की आदत हो तो व्यक्ति की आकृति-प्रकृति में उच्चस्तरीय आकर्षण का विकास होता है, भले ही उसकी बनावट में कुरूपता का ही बाहुल्य क्यों न हो। चेहरा मन:स्थिति का प्रतिबिंब है। निश्छल, भोले-भाले सज्जन और चरित्रवान व्यक्ति अपनी विशेषता अनायास भी प्रकट करते रहते हैं। प्रकृति ने कुछ ऐसी व्यवस्था की भी है जिससे व्यक्ति की भाव-भंगिमा, शिष्टता एवं कार्य-पद्धति को देखते ही यह पता लग सके कि वह कितने पानी में है। अपने को प्रतिभावान बनाने के लिए शरीर और मन को इस प्रकार ढाला जाना चाहिए कि वह सौंदर्य, सज्जा, शिक्षा, कौशल आदि के अभाव में भी अपनी विशिष्टता का परिचय दे सके। इसमें आदर्शवादी अवलंबनों को ग्रहण करना ही अधिक प्रतिभा को विकसित करने की भूमिका निभाता है।

शालीनता व्यक्तित्व को वजनदार बनाने की दूसरी शर्त है। इसी सत्प्रवृत्ति को सज्जनता, शिष्टता, सभ्यता, सुसंस्कारिता आदि नामों से पुकारते हैं। यह गुण, कर्म, स्वभाव में इतनी गहराई तक घुली रहती है कि किसी के पास कुछ समय बैठने, उसे सुनने-समझने का अवसर मिलने, निकट से रहन-सहन और स्वभाव-व्यवहार पर थोड़ी सी दृष्टि डालने भर से पता चल जाता है कि बचकानापन किस मात्रा में घट गया और वजनदार व्यक्तियों में पायी जाने वाली विशेषताओं का कितना उद्‌भव-समावेश हो गया।

व्यक्तित्व विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण परत अपना अंत:करण है। इसकी महत्ता को पाश्चात्य मनीषियों ने भी स्वीकार किया है। प्रख्यात मनोवेत्ता जुंग ने अंत:करण की ऊर्जा 'लिविडो' की महत्ता समझने-समझाने का भरपूर प्रयत्न-प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं "कि न जाने क्यों यह तथ्य बुद्धिमानों के गले नहीं उतरता कि वे मस्तिष्कीय चमत्कारों की तुलना में कहीं अधिक विभूतियाँ अंत:करण को विकसित एवं क्रियान्वित करते हुए प्राप्त कर सकते हैं। अंत:करण को यदि उच्चस्तरीय बनाया जा सके तो फिर कहीं किसी चीज की कमी नहीं रहेगी और तब अपने-पराये का भेद भी समाप्त हो जायगा।"

अंत:करण के व्यापक विकास में किन-किन साधनों की आवश्यकता पड़ेगी ? क्या साधन जुटाने पड़ेंगे ? यह सोचते समय एक विशेष बात का ध्यान रखना होगा कि आत्मिक क्षेत्र की सबसे बड़ी प्यास उस घनिष्टता-आत्मीयता की होती है, जिसे व्यवहार में सद्‌भाव-सम्पन्न मैत्री कहते हैं। पुरातन भाषा में इसी को अमृत कहते थे। अंतरंग प्रेम को ईश्वर-भक्ति और बहिरंग प्रेम को उदार मेवा साधना कहा जाता रहा है। बहिरंग प्रेम पारिवारिक और सामाजिक जीवन में उगाया-बढ़ाया जाता है तो ईश्वर-भक्ति अर्थात् अंत:करण के विकास के लिए अध्यात्मपरक साधना उपचारों का सहारा लिया जाता है।

महर्षि अरविंद कहते हैं कि सामान्य मनुष्य का व्यक्तित्व अनेकों जाल-जंजालों से बना हुआ अच्छा-खासा तमाशा होता है। उसमें कुसंस्कारों, निकृष्ट अभिलाषाओं और उफनते उद्वेगों की भरमार होती है। ऐसे लोगों के लिए न तो एकाग्र होते बन पड़ता है और न अंतर्मुखी होने की स्थिति आती है। ऐसे लोग वस्तुओं की माँग, परिस्थितियों की शिकायत और साथियों पर आक्षेप करते-करते ही दिन गुजारते हैं। उन्हें यह सूझता ही नहीं कि अंतराल में विकृति भर जाने से ही अनेकानेक विपन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। इस विषम स्थिति से छूटना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठिन नहीं है। मकड़ी की तरह स्वयं अपने हाथों बुने जाले को समेटने का साहस किया जा सके तो मुक्ति का आनंद ले सकना हर स्थिति के व्यक्ति को भी सरल हो सकता है।

मन:शास्त्री भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता-निकृष्टता का केन्द्रबिंदु मनुष्य के अंतराल का स्तर ही है। मन:संस्थान के इस सबसे गहरी-अंतिम परत को 'सुपर चेतन' कहा गया है। 'सुपर' इसलिए कि उसकी मूल प्रवृत्ति मात्र उत्कृष्टता से ही भरपूर है। उसे यदि अपने वास्तविक स्वरूप में रहने दिया जाय, अवांछनीयताओं के घेरे में जकड़ा न जाय, तो वहाँ से अनायास ही ऊँचे उठने-आगे बढ़ने की ऐसी प्रेरणा मिलेगी जिन्हें आदर्शवादी या उच्चस्तरीय ही कहा जा सके। प्रकारांतर से 'सुपर चेतन' को ईश्वर के समतुल्य ही माना जा सकता है। वेदांत दर्शन में **अयमात्मा ब्रह्म, 'प्रज्ञानंब्रह्म,' 'चिदानन्दोऽहम्', 'शिवोऽहम्' 'तत्वमसि,'** आदि सूत्रों में जिस सत्ता को परमतत्व परमात्मा माना है वह परिष्कृत अंत:करण ही है। उसी को विज्ञान की भाषा में 'सुपर चेतन' कहते हैं।

अंत:करण की इसी गहन परत को विकसित करने के लिए भक्तियोग का आश्रय लिया जाता है। कर्म योग से शरीर, ज्ञान योग से मस्तिष्क और भक्ति योग से अंत:करण की साधना की जाती है। अंत:करण को ब्रह्मा, मन:संस्थान को विष्णु और काय-कलेवर को रुद्र की उपमा दी गयी है। यही तीनों व्यक्तिगत त्रिदेव हैं जिनके वरदान-अभिशाप पर उत्थान-पतन की सारी संभावनायें अवलंबित हैं।

अध्यात्मवेत्ता अंत:करण को कहीं अधिक महत्त्व देते हैं और उसे मन:संस्थान से कहीं अधिक उच्चस्तरीय मानते हैं। कार्य-कौशल से लोक व्यवहार बनता है। बुद्धि वैभव से उपयुक्त निर्णय होते हैं, किंतु अंत:करण तो समूचे व्यक्तित्व का ही अधिष्ठाता है। उसकी परिष्कृत स्थिति ही सामान्य स्थिति के मनुष्य को महामानव, अतिमानव, ऋषि, देवात्मा, देवदूत स्तर तक पहुँचाने में समर्थ होती है। अपने ही भीतर विद्यमान इस देवलोक का माहात्म्य ऋषि-मनीषी सदा से ही बताते और उसकी अनुकंपा उपलब्ध करके जीवन लाभ लेने वाले विभिन्न प्रतिपादनों द्वारा समझाते रहे हैं। सिद्धांत और प्रयोग दोनों ही इस प्रयोजनों के लिए उनने गढ़े-परखे और प्रचलित किये हैं।

वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में अब भौतिकवादी, समाजशास्त्री, तत्वविज्ञानी, नीतिशास्त्री, मनोविज्ञानी सभी इस मिले-जुले निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि पतन-पराभव से छूटने और वरिष्ठता, उत्कृष्टता उपलब्ध करने के लिए 'सुपर चेतन' की अर्थात् अंत:करण की उच्चस्तरीय परतें खोजी-कुरेदी जानी चाहिए। परामनोविज्ञान, मेटाफिजिक्स आदि माध्यमों से भी पिछले दिनों मन:संस्थान की अचेतन परतों की महत्ता बखानी जाती रही है और उसे जगाने-उभारने के लिए तरह-तरह के प्रयोगों की चर्चा होती रही है। दूरदर्शन, दूरश्रवण, विचार संचालन, प्राणप्रत्यावर्तन, भविष्यज्ञान जैसी कितनी ही अतीन्द्रिय क्षमतायें इस संदर्भ में खोजी और परखी गयी हैं। इस दिशा में प्रयास चालू रखते हुए भी मूर्धन्य स्तर के मनीषी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि अचेतन से भी असंख्य गुनी उच्चस्तरीय संभावनाओं से भरे-पूरे 'सुपर चेतन' को नये सिरे से समझा-खोजा और उसके अभ्युदय का अभिनव प्रयास किया जाय। वे मानने लगे हैं कि अंत:क्षेत्र की उपलब्धियाँ व्यक्ति और समाज में उच्चस्तरीय परंपराओं का समावेश और नये युग का नया सूत्रपात कर सकने में समर्थ हो सकती हैं।

'साइकोलॉजी ऑफ इन्ट्यूशन' नामक अपनी कृति में प्रख्यात मनोवैज्ञानिक एमिली मारकाल्ट ने अंत:करण की चर्चा करते हुए कहा है—"यह शरीर एवं व्यक्तित्व की चेतना का अतिसूक्ष्म एवं उच्चस्तरीय भाग है। ज्ञानेन्द्रियों और तर्क बुद्धि से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनसे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समाधान उच्चचेतन मन की सहायता से मिल सकता है। इस तंत्र को उजागर कर लेने का अर्थ है, एक ऐसे देवता का साथ पा लेना जो उपयोगी सलाह ही नहीं देता, वरन् महत्वपूर्ण सहायता भी करता है। यही वह क्षेत्र है जहाँ से आदर्शवादी प्रेरणा में एवं उमंगें उभरती और मानव को महामानव बनाने में सहायता करती हैं।"

सुप्रसिद्ध मनीषी मार्टिन ट्रिनबी ने लिखा है "विचार बुद्धि की उपयोगिता कितनी ही क्यों न हो, पर वह रहेगी अपर्याप्त ही। चेतना की पूर्णता का केन्द्र मस्तिष्क नहीं, अंत:करण है। अब तक प्रकृति को खोजा, पाया और उसका दोहन किया गया है, परंतु अब परमात्मा की खोज और उसके पाने की बारी है। ऐसा संपर्क साधने के लिए एकमात्र स्थान मानवी अंत:करण है। सहायता इसी केन्द्र में बसती है।" हेनरी गाल्डर ने अपने ग्रंथ "एवोल्यूशन एण्ड मैन्स प्लेस इन नेचर" में इसी केन्द्र की विशालता को और अधिक गहरा बनाने पर जोर दिया है। उनका कहना है कि वस्तुओं का लाभ जिसे उठाना है, उसकी अंत:चेतना यदि निकृष्टतापरायण रही तो संपदा का दुरुपयोग ही होगा। संपदा कितनी ही क्यों न बढ़े, पर यह ध्यान तो रहे कि उपभोक्ता की गरिमा ही साधनों का सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस तरह परमाणु का ऊर्जा केन्द्र 'न्यूक्लियस' को माना जाता है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य की स्थिति और संभावनाओं का केन्द्र-बिन्दु उसके अंत:करण- अंतराल को समझा जा सकता है। यहीं से मन:संस्थान को निर्देश मिलता है और वह एक अच्छे सेवक की तरह वैसा ही सोचना आरंभ कर देता है जिससे कि आकांक्षा की पूर्ति संभव हो सके। मन की सोचने की दिशाधारा पूर्णतया अंत:करण के संकेतों के ऊपर निर्भर है। वह तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण इसी स्तर के ढूँढ़ता और क्रमबद्ध करता है जिससे अपने अधिष्ठाता अंत:करण की इच्छा पूर्ण हो सके। इसके लिए वह चिंतन तंत्र को ही नियोजित नहीं करता है, वरन् शरीर-वाहन को भी इसी प्रयोजन के लिए नियोजित करता है। अंत:करण का आदेश मन मानता है और मन के इशारे पर चलने वाला शरीर स्वामी- भक्त सेवक की भूमिका निभाने लगता है। इसमें उसे भला-बुला सोचने या किसी प्रकार का ननुनच करने की भी इच्छा नहीं होती। संक्षेप में अंतराल को ही मन:संस्थान और काय-कलेवर का सूत्रधार कह सकते हैं। जो किया और सोचा जाता है उस समूचे क्रिया तंत्र का अधिष्ठाता अंत:करण को ही कहा, माना जाय तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी।

मनोविज्ञान की भाषा में अंत:करण को ही 'सुपर चेतन' कहा गया है। अध्यात्मशास्त्र में इसी अंतराल को जीवात्मा का निवास-स्थान कहा गया है। मनुष्य की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने और उस पर अनुग्रह बरसाने वाला-वरदान देने वाला जो ईश्वर है और जो हर व्यक्ति के साथ रहता है वह इसी अंत:करण में बसता है। उसी की अनुकूलता-अनुकंपा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना, मंत्र, जप, अनुष्ठान से लेकर तप एवं योग साधनाओं का सृजन हुआ है। अंत:करण ही मनुष्य का भाग्य-विधाता है। इस क्षेत्र को उच्चस्तरीय भाव संवेदनाओं, आस्थाओं, आकांक्षाओं से अनुप्राणित करने पर ही व्यक्ति और समाज को वर्तमान से उबारा और उज्ज्वल भविष्य के निकट पहुँचाया जा सकता है।

अन्त:करण पवित्र भावों से अनुप्राणित हो

दुष्कर्मों से मनुष्य के अन्त:करण में अशांति, असन्तोष एवं विक्षोभ पैदा होता है। अनेक सफलताओं के बावजूद भी आत्मग्लानि के कारण उसे आन्तरिक सुख नहीं मिलता। बाहर से व्यक्ति को सफल और सम्पन्न माना जाता है, पर वस्तुत: उसकी आन्तरिक स्थिति असफल और दुखी ही बनी रहती है। इसलिए दुष्कर्मों से चाहे कितनी ही बड़ी सफलता मिलती हो, उन्हें घृणास्पद मानना चाहिए। बुरे कर्मों के फल कभी भी सुखकारी नहीं हो सकते।

शुभ कर्मों में वह शक्ति है, जिससे मनुष्य अल्प साधनों में भी सुख-शान्ति और सन्तोषपूर्वक जीवन का आनन्द भोग सके। सांसारिक सफलताएँ भले ही न मिलें पर उस व्यक्ति का मनोबल, आत्मबल इतना ऊँचा होगा कि उसे किसी बात का अभाव महसूस न होगा, उसके जीवन में मस्ती होगी, वह निर्भय होगा, स्वावलम्बी होगा, अनेकों औरों का मार्ग-दर्शन कर रहा होगा।

शुभ कामों का शुभ फल अनिवार्य है, पर यदि उसका सम्पादन आत्म-प्रशंसा के लिए हुआ तो फल में वह स्वच्छता स्थिति न रहेगी जिससे आन्तरिक शक्ति और सन्तोष प्राप्त होता है। यह बुराई अब सामान्य सी हो गई है। अच्छे कर्म अब केवल दिखावे के लिए ही होते हैं। एक तो उनका अभाव ही मनुष्य जीवन को छल रहा है उस पर जहाँ-जहाँ जो थोड़ी प्रवृत्तियाँ काम कर भी रही हैं, उनमें भी दिखावे की भावना इस तेजी से बढ़ गई है कि शुभ कामों से आत्मोत्कर्ष तथा लोक कल्याण की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रहीं। उल्टे अच्छे कर्मों के प्रति लोगों में अश्रद्धा उत्पन्न होती जा रही है। यह गम्भीर बात है कि लोग काम थोड़ा करें और दिखावा अधिक। हृदय की प्रेरणा वहाँ काम करती हुई नहीं दिखाई देती। इससे उन्हें सच्ची प्रशंसा भी नहीं मिल पाती। इससे उसके फल में भी कमी होना स्वाभाविक है।

शुभ कर्मों के साथ-साथ शुद्ध भावना का होना भी नितांत आवश्यक है। ऐसा न हुआ तो वह सत्कर्म भी अवसर मिलते ही कुकर्म में परिवर्तित हो जायेगा और इस तरह भले कार्यों के प्रति लोगों के दिलों की निष्ठा नष्ट हो जायेगी। धर्मशालाओं, अनाथालयों, गौशालाओं आदि अनेकों प्रवृत्तियों के पीछे लोगों की स्वार्थपूर्ण भावनाएँ काम किया करती हैं। बाहर से लोक-कल्याण का दिखावा मात्र होता है पर भीतर ही भीतर उन्हें आर्थिक साधन समझा जाता है और उन्हें लाभ प्राप्त करने का माध्यम मानकर काम किया जाता है। फलस्वरूप लोक-कल्याण की सच्ची प्रवृत्तियों का भी स्वरूप लोगों को नकली सा दिखाई दे रहा है। यह शुभ कर्मों के नाम पर सद्प्रवृत्तियों को लज्जित करना है। इनका कोई ठोस लाभ नहीं मिल सकता।

शुभ कर्मों का आडम्बर करने से कोई लाभ नहीं। इन्हें विचार और कर्मों में भली प्रकार स्थान देने वाला ही वास्तव में धर्मात्मा माना जाता है, ऐसे सुदृढ़ आधार पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही जीवन की इमारत का निर्माण करना चाहिये। शुभ कर्मों की प्रतिक्रिया अन्त:करण से उठनी चाहिये और यही आदर्श लेकर उसे लक्ष्य तक पहुँचना चाहिए इसमें अपनी आत्माहुति ही क्यों न देनी पड़े। ऐसी सच्ची निष्ठा यदि संसार में एक व्यक्ति की भी हो जाती है तो वह समग्र विश्व में हलचल मचा देता है और बिना कहे हुए बहुतों की सेवा करता हुआ चिरकाल तक जीवित बना रहता है।

हरिश्चन्द्र के हृदय में जो सत्य-निष्ठा जागृत हुई थी। वह आत्म-प्रेरणा से प्रभावित थी तभी वे अनेकों कठिनाइयों में भी नहीं झुके। जगद्गुरु शंकराचार्य ने अनेकों कष्ट सहे पर आध्यात्मिक प्रशस्ति का पथ न छोड़ा क्योंकि उनका अध्यात्म प्रेम आन्तरिक था। महात्मा गाँधी ने आजादी की माँग स्वार्थवश नहीं की थी। हजारों लोगों की मुक्ति का प्रश्न ही उनके हृदय में जाग्रत हुआ था तब उनमें वह शक्ति आई जिसमें गोराशाही के मृत्यु तुल्य कष्टों को वह हँसते-हँसते झेल गये। शुभ कर्मों के प्रति आत्मनिष्ठा हो तो उनकी पूर्ति का बल अपने आप आता है। साधन भी बनते हैं और परिस्थितियाँ भी साथ देती हैं। किन्तु बिना परिश्रम, बिना कष्ट झेले बाहरी दिखावे से ''वाह-वाह'' की इच्छा की जाती है, तो दुर्बल हृदय मनुष्य उसमें देर तक खड़ा नहीं रह पाता और उसे अपयश और अनादर ही मिलता है। इसमें न केवल औरों की हानि होती है वरन् स्वयं की भी खिन्नता और परेशानी बढ़ती है। ढोंग या मायाचार के कारण आध्यात्मिक पतन ही होता है।

फल तो मनुष्य को भावना के अनुसार मिलता है, फिर दिखावे का कोई लाभ नहीं। बाह्य आडम्बरों से कभी आन्तरिक शुद्धि नहीं हो सकती। इसलिए अच्छी प्रवृत्तियों को जीवन में धारण करने से पूर्व आपको यह विचार कर लेना होगा कि आप अन्त तक उसमें स्थिर बने रहेंगे। दूसरों को अधर्माचरण से लाभ उठाते देखकर उसकी नकल करने को न ललचाओ। काँटे में लिपटा हुआ आटे का टुकड़ा खाकर मछली की जो दशा होती है, जाल के नीचे फैलाये हुए अन्न के दानों को खाकर चिड़िया की जो गति होती है, माँस की लालसा से हड्डी के साथ अपने ही जबड़ों का रस चूसने में कुत्ते की जो दुर्दशा होती है, वही दशा अनीति द्वारा लाभ उठाने वालों की होती है। इस प्रकार के मार्ग का अनुसरण करने की कोई बुद्धिमान और दूरदर्शी मनुष्य आकांक्षा नहीं कर सकता। करुणा वृत्ति, उदारता और अन्त:प्रेरणापूर्वक किया हुआ थोड़ा सा कार्य भी फलदायक और सुखकारी होता है, सच्चाई का एक कण भी इतना स्वादिष्ट होता है कि उसकी तुलना बनावट से नहीं हो सकती। नकली फल देखने में सुन्दर भले ही लगे किन्तु उसमें कोई स्वाद नहीं होता।

इस युग में लोगों के दु:ख बहुत बढ़ गये हैं। इसका कारण यही है कि नकलीपन लोगों की नस-नस में समा गया है। खाद्यान्न से लेकर जीवनोपयोगी सभी वस्तुओं में नकलीपन, दिखावा और मिलावट बेहद बढ़ी है। बढ़िया से बढ़िया कपड़ों में लिपटे हुए शरीर को उघाड़कर देखें, तो हड्डियाँ ही दिखाई देंगी। असंयम के कारण सूखे चेहरों पर कलई पोतने से आज तक किसी को सुन्दरता नहीं मिली। हमारे जीवन का प्रत्येक अंग दिखावट मात्र रह गया है। भीतर ही भीतर असंतोष-अशांति और अभाव का घुन उसे खाये जा रहा है इसलिए आज लोग इतने दु:खी दिखाई पड़ रहे हैं।

आत्मीयता का गहरा प्रेम सम्बन्ध जैसा पहले दिखाई देता था वह अब स्वप्न हो गया है। मित्रता और प्रेम भी लोग स्वार्थवश करते हैं। शिष्टाचारवश अपने माता-पिता को रोटी देकर ही लोग अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। उनके कष्टों को, दु:खों और परेशानियों को मिटाने की रुचि किसमें है? हृदय में कायरता, मन में मैल, विचारों में वासना भरी पड़ी है इसलिए अब उस जमाने जैसी मातृभक्ति, भ्रातृत्व तथा गुरुनिष्ठा का पूर्णतया अभाव सा हो गया है।

सच्चाई आत्मोत्थान की प्रमुख आवश्यकता है। हमारे जीवन में सादगी और सरलता को प्रचुर स्थान मिलना चाहिए। हम जो कुछ करें उसे आत्मिक लाभ की दृष्टि से करें, तो लाभ की सम्भावनायें अधिक रहेंगी। सच्ची निष्ठा सदैव ही फलदायक होती है। गुणों को जीवन व्यवहार में फैलाना चाहिये, उनका दिखावा नहीं किया जाना चाहिये तभी समाज में सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिल सकता है।

''करना कम दिखावा अधिक'' यह ओछे व्यक्तित्व का लक्षण है। लोगों को धार्मिक अश्रद्धा न हो जाय इस दृष्टि से शुभ कर्मों का दिखावा न करें तो ही अच्छा। धर्म और सदाचार के नाम पर बाह्य प्रदर्शन करने की अपेक्षा तो साधारण जीवन जीते रहना अच्छा है। इससे कम से कम विचार विद्रूप तो नहीं उत्पन्न होगा और समाज में गलत परम्परा को स्थान तो नहीं मिलेगा।

अन्त:करण का विकास और उज्ज्वल भविष्य

मन:शास्त्री अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता-निकृष्टता का केन्द्र-बिन्दु उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तराल का स्तर ही है। मन:संस्थान की इस सबसे गहरी-अन्तिम परत को सुपर चेतन कहा गया है। सुपर इसलिए कि उसकी मूल प्रवृत्ति मात्र उत्कृष्टता से ही भरपूर है। उसे यदि अपने वास्तविक स्वरूप में रहने दिया जाय, अवांछनीयताओं के घेरे में जकड़ा न जाय तो वहाँ से अनायास ही ऊँचे उठने-ऊँचे बढ़ने की ऐसी प्रेरणाएँ मिलेंगी जिन्हें आदर्शवादी या उच्चस्तरीय ही देखा जा सके। प्रकारान्तर से 'सुपर चेतन' को 'ईश्वर' के समतुल्य ही माना जा सकता है। वेदान्त दर्शन में **अयमात्मा ब्रह्म 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'चिदानन्दोहम्' 'शिवोऽहम्' तत्वमसि** आदि सूत्रों में जिस आत्मा को परमत्त्व परमात्मा माना है वह परिष्कृतं अन्त:करण ही है। उसी को विज्ञान की भाषा में सुपर चेतन कहते हैं।

इसी परत को विकसित करने के लिए भक्ति- योग का आश्रय लिया जाता है। कर्मयोग में शरीर, ज्ञानयोग में मस्तिष्क और भक्तियोग में अन्त:करण की साधना की जाती है अन्त:करण को ब्रह्मा, मन:संस्थान को विष्णु और काय-कलेवर को रुद्र की उपमा दी गई है। यही तीनों व्यक्तिगत त्रिवेद हैं जिनके वरदान-अभिशाप पर उत्थान-पतन की सारी सम्भावनाएँ अवलम्बित हैं।

मनोविज्ञानी मन:संस्थान को अत्यधिक महत्व देते हैं और उसे अचेतन से भी कहीं अधिक उच्चस्तरीय मानते हैं। कार्य-कौशल से लोक-व्यवहार बनता है। बुद्धि वैभव से उपयुक्त निर्णय होते हैं। किन्तु अन्त:करण तो समूचे व्यक्तित्व का ही अधिष्ठाता है। उसकी परिष्कृत स्थिति ही सामान्य स्थिति के मनुष्य को महामानव, ऋषि, देवात्मा, देवदूत स्तर तक पहुँचाने में समर्थ होती है। अपने ही भीतर विद्यमान इस देवलोक का माहात्म्य अध्यात्मवेत्ता सदा से ही बताते और उसकी अनुकम्पा उपलब्ध करके जीवन लाभ लेने वाले विभिन्न प्रतिपादनों द्वारा समझाते रहे हैं। सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही इन प्रयोजनों के लिए उनने गढ़े, परखे और प्रचलित किये हैं।

'एमिली मारकाल्ट' ने अपनी ''साइकोलाजी ऑफ इन्ट्यूशन'' नामक पुस्तक में अन्त:करण की चर्चा करते हुए कहा है—''यह शरीर एवं व्यक्तित्व की चेतना का अतिसूक्ष्म एवं उच्चस्तरीय भाग है। ज्ञानेन्द्रियों और तर्क बुद्धि से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनसे भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण समाधान उच्च चेतन मन की सहायता से मिल सकता है। इस तन्त्र को उजागर कर लेने का अर्थ है—एक ऐसे देवता का साथ पा लेना जो उपयोगी सलाह ही नहीं देता, महत्त्वपूर्ण सहायता भी करता है।''

'हक्सली' अपनी पुस्तक ''वेस्टर्न एप्रोच टू मैन'' में कहते हैं कि बुद्धि-वैभव के माध्यम से अब तक संसार की जो सेवा हुई है, उसकी तुलना में उच्च चेतन की सहायता से थोड़े से लोगों ने जो कार्य किया है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। एक महामानव हजार प्रवक्ताओं से बढ़कर होता है। इसी प्रकार एक महान मनस्वी के द्वारा बनाया गया वातावरण हजारों अधिकारियों तथा अध्यापकों की तुलना में अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। मनीषियों का कर्तव्य है कि जिस प्रकार प्रकृति के रहस्यों को खोजकर सुविधा-सम्पन्नता की वृद्धि की गयी है उसी प्रकार के अन्तराल की उत्कृष्टता को खोजने, बढ़ाने तथा लाभान्वित होने के लिए जन-साधारण का पथ-प्रशस्त करें।

प्लूटो लिखते हैं जब हमारा शुद्धीकृत ''स्व'' से साक्षात्कार होता है तब हमें अपने स्वरूप का अपने त्रिआयामीय विस्तार का भान होता है। इस स्थिति में आने पर व्यक्ति परमतत्व से एकरूप हो जाता है एवं उसे किसी प्रकार के मार्ग-दर्शन, हाथ पकड़कर राह दिखाने वाले की आवश्यकता नहीं पड़ती।

'फ्रीडरिक नीत्से' ने घोषणा की थी कि ''स्वयं से परे हटकर स्वयं को देखना ही वस्तुत: सही ज्ञान की प्राप्ति है।'' क्या यह सम्भव है ? क्या हम स्वयं को अपने शरीर चिन्तन की परिधि से निकाल बाहर कर सकते हैं। जो शान्त चुपचाप खड़ा हमारी हर गतिविधि, हर परिस्थिति का अवलोकन करता रहे। वस्तुत: यह हमारे भीतर है जिसे हम 'सुपर माइन्ड' कहते हैं जो एक लाइट हाउस की तरह दूर-दूर तक अपनी घुमावदार किरणें (रिवाल्विंग बीम) छोड़ता रहता है। हिमखण्डों, तूफानों से जहाजों को बचाता है, पर स्वयं शान्त, बिना विचलित हुए खड़ा रहता है।

दार्शनिक हेनरी बर्सो का कथन है—''समय की जटिलताओं को न सुविधा-सम्वर्धन से सुलझाया जाय और न दाव-पेंच से। प्रवीण बुद्धि-कौशल ही पतन पराभव का निराकरण कर सकेगा। प्रस्तुत जटिलताओं और विभीषिकाओं का समाधान पाने के लिए उस महाप्रज्ञा के जगाने की आवश्यकता है जो अन्त:करण की गहराई में बसती है और ईश्वरीय प्रेरणाओं से मनुष्य को अवगत कराती है।

'मार्टिन ट्रिनबी' ने लिखा है—विचार बुद्धि की उपयोगिता कितनी ही क्यों न हो पर वह रहेगी अपर्याप्त ही। चेतना की पूर्णता का केन्द्र मस्तिष्क नहीं अन्त:करण है। अब तक प्रकृति को खोजा और पाया-दोहा गया है। अब परमात्मा की खोज और उसको पाने की बारी है। ऐसा सम्पर्क सधने के लिए एकमात्र स्थान मानवी अन्त:करण है। सहृदयता इसी केन्द्र में बसती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हेनरी गाल्डर ने अपने ग्रन्थ—'एवोल्यूशन' एण्ड मैन्सल्पेस इन नेचर, में लिखा है "विकास की दिशा में किये जा रहे प्रयास में एक कड़ी और जुड़नी चाहिए कि मनुष्य के हृदय की विशालता एवं गहराई को भी बढ़ाया जाय"। वस्तुओं का लाभ जिसे उठाना है उसकी अन्त:चेतना यदि निष्कृष्टतापरायण रही तो सम्पदा का दुरुपयोग ही होगा। सम्पदा कितनी ही क्यों न बढ़े पर यह ध्यान तो रहे कि उपभोक्ता की गरिमा ही साधनों का सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकती है।

'पियरे टेलचार्डिन' अपनी पुस्तक दि फिनोमिना ऑफ गैन में लिखते हैं—विग्रहों को सहकार में, खीज को मुस्कान में बदलने का एक ही तरीका है कि मनुष्य के वर्तमान चिन्तन और रुझान में भारी परिवर्तन किया जाय। यह महान कार्य सामान्य प्रयासों से सम्भव नहीं, उसके लिए अन्त:करण को टटोलने और उसमें ईश्वर प्रदत्त महानता को उभारने की आवश्यकता पड़ेगी। परिस्थितियों से जुड़ी हुई विभिन्नता का परिशोधन, सहृदयता उगाने एवं जगाने से ही सम्भव हो सकता है। सभी प्रख्यात भौतिकीविद् मनीषी इस बात पर जोर देते रहे हैं कि कब सहृदयता उभारने के लिए मानवी अन्त:करण में नई तैयारी के साथ नई कृषि की जानी चाहिए। इस क्षेत्र की उपार्जित फसल से ही मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भूख बुझेगी

"मैन द अननौन" और 'रिफलेक्शन ऑफ लाइफ' के नोबुल पुरस्कार प्राप्त लेखक अलेक्सिस कैरेल ने कई स्थानों पर इस एक ही बात को दुहराया है कि प्रकृति दोहन से भी बढ़ा क्षेत्र अन्त:करण की गरिमा उभारने का है। उस उपेक्षित क्षेत्र को नये सिरे से समझा एवं समुन्नत बनाया जाना चाहिए। मनुष्य के उच्च चेतन का विकास होने पर ही समस्याओं के समाधान और अभ्युदय का आधार खड़ा हो सकेगा। विश्व मनीषा को अपना ध्यान एक ही केन्द्र पर एकत्रित करना चाहिए कि मनुष्य को सहृदय बनाने के लिए उसकी प्रसुप्त अन्त:चेतना को किस प्रकार जाग्रत किया जाय।

असंख्य प्रतिपादनों में से कुछ की झाँकी ऊपर की पंक्तियों में करने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि व्यक्ति और समाज को वर्तमान से उबारने और उज्ज्वल भविष्य के निकट पहुँचाने के लिए मानवी अन्तरात्मा को समझा और जगाया जाना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार सामान्य जीवन में निर्वाह के साधन जुटाना।

हम अंत:करण की वाणी सुनें और उसका अनुकरण करें

महात्मा बुद्ध का कथन है कि अन्त:करण भी एक मुख है। दर्पण में हम अपना मुख देखते हैं तथा सौन्दर्य देखकर प्रमुदित होते हैं। हमारे मुँह पर यदि धब्बे या कालौंच आदि होती है तो उसे भी सप्रयास छुटाने की चेष्टा करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस अन्त:करण रूपी मुख को भी हम नित्यप्रति चेतना के दर्पण में देखें-परखें और उसके सौन्दर्य में अभिवृद्धि करें। आत्मनिरीक्षण करके देखें कि किन-किन कषाय-कल्मषों ने आत्मा के अनन्त सौन्दर्य को आच्छादित कर रखा है। कामनाओं और वासनाओं ने कहीं उसे पथ-भ्रष्ट तो नहीं कर रखा ? आशा और तृष्णा रूपी भयंकर ग्रहों ने अपने चंगुल में उसे जकड़ तो नहीं रखा ? स्वार्थ-संकीर्णता की भावना ने उसे ग्रसित तो नहीं कर रखा। जब इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' में मिलने लगेगा तो व्यक्ति तुच्छ से महान, लघु से विराट् और नर से नारायण बन जायेगा।

वस्तुत: अन्त:करण पर विश्वास करने का अभिप्राय है—ईश्वर पर विश्वास करना, ईश्वरीय आदेशों पर विश्वास करना, यह ऐसा अद्भुत बेतार का तार है जिसके माध्यम से ईश्वर मनुष्य तक अपना सन्देश पहुँचाता है और उसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। साथ ही हर क्षण हमारे हर कार्य का लेखा-जोखा लेता रहता है और तदनुसार दंड, पुरस्कार की भावी विधि-व्यवस्था का भी ताना-बाना बुनता है।

ईश्वर के इस अग्रदूत-अन्त:करण के आदेश की उपेक्षा करने पर व्यक्ति दंड भी खूब भुगतता है। जब साधारण से शासक की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति भी दंड-पात्र बनता है तो फिर उस महत्तम सत्ता के आदेश की अवहेलना करने वाला क्षम्य कैसे हो सकता है ? जब व्यक्ति निरन्तर ही अन्त:करण के आदेशों के विरुद्ध चलता है तो पाप और मलिनताओं का आवरण उस पर अच्छादित होता जाता है। दूषित अन्त:करण नरक का खण्डहर है जिसमें पापों की प्रेतवाणी प्रतिध्वनित होती रहती है जो व्यक्ति को कूकर-शूकर जैसी जिन्दगी जीने को अग्रसर करती है।

जाने किन-किन पुण्यों के आधार पर हमें ईश्वर का यह विरल वरदान-मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसकी सार्थकता तभी है जब इसे सद्कार्यों में लगाया जाये, जब व्यक्ति अन्त:करण को उज्ज्वलतम, निर्मलतम और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पवित्रतम बनाने की महत्तम साधना में प्राण-पण से जुट जाये।

जो काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष, ईर्ष्या-मत्सर आदि की भावनाओं से अपने अन्त:करण को कमल-पत्र की भाँति निर्लिप्त रखता है, उसे अद्भुत सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति ईश्वरीय चेतना के अत्यन्त निकट पहुँच जाता है। वह त्रिकालदर्शी बन जाता है। सद्विचारों और शुभकर्मों के सतत् आलेपन से अन्त:करण अत्यन्त निर्मल बन जाता है और तब इस चमत्कारी दर्पण में भूत और भविष्य स्वयं ही प्रतिबिम्बित होते रहते हैं।

निर्मल अन्त:करण प्रदीप के समान ज्योति का पुंज होता है। जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होकर समस्त विश्व को आलोकित करता है, उसी प्रकार निर्विकार अन्त:करण भी स्वयं प्रकाशमान होकर प्रकाश किरणों से समस्त विश्व को आभासित कर देता है। अतएव ईश्वर की सबसे बड़ी उपासना यही है कि अन्त:चेतना को जाग्रत कर आत्मोन्नति के पथ पर निरन्तर बढ़ते रहें तथा दूसरों को भी सन्मार्गगामी बनने की प्रेरणा देते रहें।

अन्तराल के उच्च स्तर का विकास

आत्मा के ऊपर तीन परिधान लिपटे हुए हैं। जिस प्रकार बनियान, कुर्ता, कोट एक के बाद एक पहन कर सुसज्जा बनाई जाती है, उसी प्रकार काया के ऊपर भी तीन शरीर चढ़े हैं। एक स्थूल शरीर है जो प्रत्यक्ष जीता है और इच्छानुसार कार्यों में लगाया जाता है। दूसरी गहरी परत सूक्ष्म शरीर की है। यह प्राणमय है। मरने के बाद यह कुहासे के रूप में बिखर जाती है। हृदयस्थ स्थान में ज्योतिवत् ध्यान करते हुए दिखाई देती है। शरीर के इर्द-गिर्द तेजोवलय के रूप में छाई रहती है। तीसरा शरीर कारण शरीर है। इसका स्थान अन्त:करण चतुष्टय है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का समुच्चय इसी के साथ जुड़ा हुआ है। यों आकांक्षा, मान्यता, प्रेरणा, उमंग इसी में उठती हैं। पर एक शब्द में इसकी प्रमुखता को देखते हुए भावना प्रधान कहा जा सकता है। उसकी स्थिति प्रधानतया भाव संवेदनाओं से ही जानी जाती है।

जीव-जन्तु, पशु-पक्षी स्थूल शरीर प्रधान होते हैं। वे काया की आवश्यकता एवं इच्छा पूरी करने में लगे रहते हैं। पेट भरने के लिए उनकी शारीरिक क्रियाएँ होती हैं और प्रजनन का ताना-बाना बुनने में उनका मन काम करता रहता है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था बनाने में भी अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग करते हैं। शत्रुओं से आत्म-रक्षा के लिए जितने बन पड़ते हैं, कौशल अपनाते हैं। झाड़ियों में रहने से लेकर गुफाओं में छिपने और झुण्ड बनाकर रहने की प्रवृत्ति आत्मरक्षा से ही संबंधित है। प्रजनन के लिए घोंसले, खोह, कोतर आदि का प्रबंध उन्हें करना पड़ता है।

मनुष्य भी इन्हीं कार्यों में अपनी काया की अधिकांश श्रम शक्ति को इन्हीं प्रयोजनों में जुटाये रहते हैं। गुजारे के लिए उत्पादन का श्रम करना पड़ता है। कामुकता बेचैन करती है तो जोड़ा बनाता है, विवाह करता है और उस समागम का प्रतिफल संतानोत्पादन के रूप में सामने आता है। बच्चों की असमर्थता को देखते हुए अभिभावक ही उसकी देखभाल तब तक करते हैं, जब तक कि वह शारीरिक, मानसिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हो जाता। यह उपरोक्त दोनों ही व्यस्त रखने वाले कार्य ''पेट और प्रजनन'' की परिधि में आते हैं। स्थूल शरीर को उत्पादनजन्य लोभ अपनाना होता है। कामुकता का फलितार्थ विवाह और संतान के रूप में सम्मुख आता है। यह सभी नवागन्तुक अपने प्रभाव और प्रयत्न से उत्पन्न किये गये होते हैं इसलिए इनके प्रति ममता जुड़ती है। ममता अपने प्रियजन की अनेकानेक आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए आतुरता प्रकट करती है, यही मोह है। मनुष्य का स्तर जब तक शरीर प्रधान-पशु स्तर का रहता है तब तक उसे लोभ और मोह की ललक, लगन छाई रहती है।

इसके अतिरिक्त मनुष्य बुद्धिमान होने के कारण अपने निजी व्यक्तित्व के बारे में भी विचार करने लगता है। जबकि पशुओं में उस स्तर का चिन्तन स्वल्प मात्रा में ही उभरता है। मनुष्य की शरीरगत प्रवृत्तियों में एक अहंकार भी है। इसे मानसिक चेतना का उद्भव भी कह सकते हैं। इन्द्रिय भोगों की वासना और उपभोग सामग्री की तृष्णा इन दोनों का बाहुल्य तो रहता ही है। पर साथ ही मानसिक विकास के रूप में निज के व्यक्तित्व की कल्पना भी प्रखर होती है। स्वाभिमान जगता है। अहंता प्रकट होती है। इसकी दो कामनाएँ हैं—एक यह कि अपना स्तर दूसरों से बढ़ा-चढ़ा सिद्ध करना। दूसरा सम्मान उपलब्ध करना। यह किस प्रकार संभव हो, इसके लिए शरीर की परिधि में अपनी सत्ता सीमित रखने वालों के लिए स्वकृत्य के रूप में, ठाठ-बाट बढ़ाने का उपाय उपचार समझ में आता है। वस्त्र, आभूषण, शृंगार, साधन, ठाठ-बाट, अमीरी जताने वाले साधनों का एकत्रीकरण यह इस स्तर के कौतुक हैं जिनमें समय, श्रम और साधन खर्च करते हुए भी इसलिए प्रवृत्त होना पड़ता है कि अपने से पिछड़ी स्थिति के लोग तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के उपरान्त यह विचार करें कि अमुक व्यक्ति हमारी तुलना में अधिक वैभववान होने के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बड़प्पन का अधिकारी है। मोटी बुद्धि अपने से अधिक समृद्ध को ही बड़ा मान लेती है। उससे दबती, झेंपती है। सौभाग्यवान समझती और सम्मान करती है। इसे पाने के लिए शरीर चेतना आतुर रहती है। वह बलवान, सम्पन्न, सुन्दर, पदाधिकारी आदि बनने के लिए कुछ न कुछ चेष्टाएँ करती रहती है। वैसा यदि सचमुच नहीं बन पड़ता तो उसका आडम्बर बनाती है। बिडम्बना एवं प्रवंचना रचती है ताकि स्वल्प बुद्धि वाले उसका रहस्य न जान सकें और आँखें चौधियाँ जाने से बड़प्पन का गौरव प्रदान करने लगें। यह उथले दर्जे का बड़प्पन है। इसे पाने के लिए लोग विवाह, शादियों में अन्धा-धुंध अपव्यय करने कर्मकाण्डों का प्रदर्शन करने, सभा-सोसाइटियों के अधिकारी बनने आदि के प्रपंच रचते रहते हैं। इस कौतुक के सहारे वे अपना सांसारिक मूल्य दूसरों के मूल्य की तुलना में अधिक सिद्ध करने में किसी कदर सफल भी हो जाते हैं। शारीरिक क्षेत्र की तुलना में मानसिक झलक की मात्रा अधिक है। शरीर तो अन्न, वस्त्र और निवास की आवश्यकताएँ पूरी हो जाने पर तृप्त हो जाता है। पर मन को कामुकता की अन्यान्य इन्द्रियों की ललक बुझानी पड़ती है और उसके लिए विवाह, संतान, परिवार को अपने साथ जोड़कर उनकी आवश्यकताओं को भी अपनी आवश्यकता मानना पड़ता है। बात ममता की पूर्ति तक ही सीमित नहीं रहती। मोह से अधिक अभीष्ट सुविधा-सम्पादन का क्रम बैठ जाने पर भी मन शान्त नहीं होता। विकसित मस्तिष्क पर अहंकार का उन्माद होता है और साधारण होते हुए भी असाधारण आडम्बर बनाकर अपनी वरिष्ठता का ढिढोंरा पीटना चाहता है। लोगों की दृष्टि में अधिक वैभववान सिद्ध होना चाहता है। इसके लिए खर्चीला ठाठ-बाट तो बनाना ही पड़ता है। उसके लिए ढेरों समय एवं साधनों का अपव्यय करना आवश्यक हो जाता है। इतना ही नहीं कई बार उद्धत आचरण अपनाकर अपनी आतंकवादी प्रचंडता प्रकट करने के लिए अनाचार तक अपनाना पड़ता है।

इससे कुछ कदम आगे बढ़कर कारण शरीर में एक जाग्रति भरी हलचल उत्पन्न होती है। वह है सम्मान की, स्नेह सद्भाव की आकांक्षा। जिस प्रकार स्थूल शरीर से सूक्ष्म और सूक्ष्म से कारण शरीर का स्तर ऊँचा है उसी प्रकार इन तीनों शरीरों की आकांक्षाएँ क्रमशः अधिक समय साध्य, श्रम साध्य एवं बुद्धिसाध्य हैं। स्थूल शरीर की आवश्यकताएँ सामान्य प्रयास से ही पूरी हो जाती हैं। पेट और प्रजनन की व्यवस्था पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े तक आसानी से बना लेते हैं। थोड़ा सा ही चिन्तन और परिश्रम करने से उनके साधन बन जाते हैं। अहंता के नाम पर अन्य प्राणी तो अपनी बलिष्ठता दिखाने के लिए आक्रमण भर करते हैं। आतंक भर मचाते हैं पर मनुष्य को इसके लिए आकुलता भी रहती है और आतुरता भी। जिसे स्नेह नहीं मिला समझना चाहिए कि उसका जीवन नीरस, निर्जीव, रूखा, कर्कश रह गया। इसी प्रकार जिसे सम्मान नहीं मिला उसे ऊँचा उठने के लिए जो आधार अवसर मिलना चाहिए था वही छिन गया। इन दोनों के न मिलने या छिन जाने के कारण शरीर की उर्वरता एवं गरिमा ही पलायन कर जाती है। पेट, प्रजनन से भी बड़ी भूख, अन्तरात्मा को स्नेह, सम्मान की रहती है, पर उसे प्राप्त करने के लिए स्तर के अनुरूप पुरुषार्थ करना पड़ता है। पेट भरने के लिए मेहनत करनी पड़ती है। कामुकता की बेल को समेटने के लिए सुविस्तृत ताना-बाना बुनना पड़ता है। जब स्थूल और सूक्ष्म शरीर अपनी इच्छाएँ पूरी करने के लिए समुचित श्रमशीलता एवं तन्मय, तत्परता चाहते हैं, व्यस्त किये रहते हैं तो कोई कारण नहीं कि काया का सर्वोच्च् स्तर जो माँगता है वह बिना कुछ किये अनायास ही न मिल जाय। उसके लिए और भी बढ़ा-चढ़ा वैभव उपार्जित करना होता है।

कारण शरीर की बलिष्ठता भाव संवेदना है। ठीक उसी तरह जैसे शरीर में बल और मन में बुद्धि का होना आवश्यक है। पशु भाव रहित होते हैं। उनमें मैत्री, करुणा, मुदिता, सेवा सहानुभूति, उदारता जैसी गरिमामयी भाव संवेदनाएँ कदाचित ही नगण्य मात्रा में होती हैं। उन्हें स्वार्थ ही सूझता है। कष्ट होते हैं तो अपने ऊपर संकट आने पर ही थोड़ी अनुभूति होती है। किन्तु मनुष्य का दर्जा कहीं ऊँचा है। वह **''आत्मवत् सर्व भूतेषु''** और **'वसुधैव कुटुम्बम्'** स्तर की भाव संवेदना संजोये रहता है। यही कारण है कि उसके अन्तराल में करुणा और उदारता का उद्गम उभरता है। दूसरों का दुःख बाँट लेने और अपना सुख बाँटने की उमंग उठती रहती है। इसी परमार्थ परायणता के मूल्य पर दूसरों का सहयोग एवं श्रद्धा, सम्मान खरीदा जाता है। उदारता भरी सेवा-साधना ही विचारशील लोगों के अन्तराल में शालीनता प्रदर्शित करने वालों के प्रति श्रद्धा उभारती है और साथ ही सम्मान और सहयोग की भी वर्षा करती है। उसमें स्थायित्व भी होता है। आदर्शवादियों के चरित्र एवं व्यवहार का अनुकरण स्थायित्व भी होता है। आदर्शवादियों के चरित्र एवं व्यवहार का अनुकरण अभिनन्दन किया जाता है। भाव संवेदना ही आत्मीयता, ममता, मित्रता की जड़ें मजबूत करती है। जिनका अन्तःकरण ऊसर, बंजर की तरह भावनात्मक उर्वरता से रहित है उस पर न तो सहयोग-सम्मान के मेघ बरसते हैं और न सेवा-उदारता के उपवन उगते, सुरभित फूल खिलते हैं। निष्ठुर, स्वार्थपरायण, सहानुभूति संवेदना रहित व्यक्ति के संबंध में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कहा जा सकता है कि उसका अन्तःकरण भाव संवेदनाओं की उस उर्वरता से सम्पन्न नहीं हो पाया, जिसके कारण व्यक्तिगत स्नेह और समूहगत सम्मान की अमृत वर्षा होती है। व्यक्तित्व को दैवी अनुकम्पा और अन्तरंग संतोष एवं उल्लास से निरन्तर भरे रहती है।

शरीरगत आवश्यकताएँ पशु भी पूरी करते हैं। मानसिक तृष्णाओं को चतुर लोग पूरा कर लेते हैं पर मानवी गरिमा इसमें है कि उसके अन्तःकरण में भावनाएँ उमंगें स्वयं विनम्र, निष्काम एवं संयमी अपरिग्रही रहें। अपनी क्षमताओं को सदाशयता के संवर्धन में समर्पित करें। देवमानवों का कारण शरीर इसी आधार पर विकसित होता है। इसी उपलब्ध विशेषता के कारण वे महामानव नर-नारायण एवं पुरुष-पुरुषोत्तम बनते हैं।

अन्तःकरण ही वास्तविक भाग्य-विधाता

चेतना की बौद्धिक और आदतों के समुच्चय वाली परतों की सही जानकारी और उन्हें उपयोग में लाने की विधि-व्यवस्था हाथ लग सके तो समझना चाहिए कि तथाकथित "कारू के खजाने" से भी अधिक बहुमूल्य सम्पदा हाथ लग गई। पिछड़ी हुई परिस्थिति वस्तुतः अनगढ़ मनःस्थिति की ही परिणति होती है। अन्यथा हर किसी के चेतन में इतनी क्षमता विद्यमान है कि आज का पिछड़ापन कल सुसम्पन्न वैभव में विकसित किया जा सके। कालिदास, वरदराज आदि कितने ही लोग ऐसे हुए हैं जो मस्तिष्कीय पिछड़ेपन के कारण मूर्ख माने जाते थे, किन्तु जैसे ही उनने उपेक्षित, अस्त-व्यस्त अन्तराल को समेटना, सुधारना और ढालना प्रारम्भ किया वैसे ही वे मूर्धन्य विद्वानों की श्रेणी में जा पहुँचे।

अचेतन तो उससे भी आगे है। आदतें सुधार लेने पर तो असंख्य पतितों को उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचते हुए देखा गया है। सूरदास, तुलसीदास, वाल्मीकि, अजामिल, अंगुलिमाल, अम्बपाली आदि अनेकों के गये-गुजरे जीवन सुधरे और ऊँचे उठे हैं। अचेतन हठी तो है पर ऐसा नहीं कि यदि संकल्पपूर्वक उसे बदलने, ढालने का प्रयत्न किया जाय तो सफलता नहीं ही मिले। आदतें आखिर अपनी ही विचारणा और कार्य-पद्धति की परिणति है। क्रमिक विकास प्रक्रिया के अनुरूप वे बदलती-सुधरती भी रही हैं। फिर कोई कारण नहीं कि अब उन्हें अधिक उपयुक्त परिष्कृत बनाने के लिए मोड़ा-मरोड़ा न जा सके। ढलाई में दबाव की आवश्यकता पड़ती है। संयंत्रों को चलाने के लिए ऊर्जा चाहिए। रेल, मोटर, हवाई जहाज बहुत भारी होने पर भी तेजी से दौड़ते हैं। शर्त यही है कि उन्हें आवश्यक ईंधन मिलता रहे।

सामान्य बुद्धि की तुलना में अचेतन चित्त की स्थिति अधिक भारी और अधिक गरिमामयी है। उसको आगे धकेलने के लिए आवश्यक ऊर्जा चाहिए। हाथ गाड़ी को ऐसे ही धक्का मारकर आगे बढ़ाया जा सकता है, किन्तु रेल चलानी हो तो शक्तिशाली ईंधन का प्रबन्ध करना पड़ेगा। बुद्धि को अध्ययन, परामर्श से अधिक तीक्ष्ण, समुन्नत बनाया जाना सरल है किन्तु अचेतन के अभ्यासों को नये ढाँचे में ढालने के लिए भट्टी जैसे सरंजाम जुटाने पड़ेंगे। धातुएँ कठोर होने पर भी पिघलती और ढलती रहती हैं। किन्तु इसके लिए आवश्यक तापमान तो चाहिए ही, आदतें धीरे-धीरे करके ढलती आई हैं। यदि नया कार्यक्रम शालीनतायुक्त बना लिया जाय तो वे धीरे-धीरे उसे भी अपना लेंगी। जिस प्रकार अब तक बदलने-सुधरने में आना-कानी करते हुए भी अन्ततः सहमत होती ही चली आई हैं।

किन्तु यदि धीरे-धीरे सुधारने की प्रतीक्षा न करनी हो तो फिर अधिक सुदृढ़, संकल्प, प्रखर साहस और सुनिश्चित कार्यक्रम बनाकर उसे अपनाने के लिए व्रतशील होना पड़ता है। धीमी आग पर वस्तुएँ धीरे-धीरे पकती हैं किन्तु उन्हें यदि जल्दी ही उबालना-खौलाना हो तो चूल्हे की आग तेज करनी पड़ती है। अन्तःक्षेत्र की सुधारात्मक प्रगति में यदि तीव्रता लानी हो तो उसके लिए दो ही उपाय रह जाते हैं —(१) बाहरी परिस्थितियों का ऐसा दबाव जिसमें नई रीति अपनाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न रहेगा (२) अन्तःक्षेत्र में से वह दबाव स्वयं उत्पन्न किया जाय। साधना या तपश्चर्या इसी को कहते हैं कि किसी बाहरी शक्ति से कुछ याचना की जा रही है और अभीष्ट वस्तु देने के लिए किसी बाहरी सत्ता के लिए नाक रगड़ने, गिड़गिड़ाने, लुभाने जैसी कुछ उथली, बचकानी रीति-नीति अपनाई जा रही है। किन्तु वस्तुतः वैसा है नहीं। आत्म-सत्ता इतनी समर्थ है कि उसे थोड़ा-सा कुरेदने और थोड़ा सा ईंधन डालने भर से चिन्गारी को ज्वाला बनने में कोई कठिनाई पड़ने वाली नहीं है।

मनःशास्त्री बताते हैं कि बुद्धि-वैभव से भी अधिक चमत्कारी अचेतन की रहस्यमय परतें हैं। उन्हें श्रेष्ठ प्रयोजन के लिए यदि थोड़ा कुरेदा, उकसाया जा सके तो व्यक्तित्व में चमत्कारी परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं। शरीर से बलिष्ठ, बुद्धि से प्रखर मनुष्यों को विविध-विधि सफलताएँ प्राप्त करते देखा जाता है। यदि उससे एक कदम आगे और बढ़कर अचेतन के प्रसुप्त देवता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाग्रत किया जा सके तो वह अंगद, हनुमान, भीम, अर्जुन जैसा समर्थ और सहायक सिद्ध हो सकता है।

मन:संस्थान का प्राय: सात प्रतिशत भाग ही सामान्यत: प्रयोग में आता है। अब तक इस सन्दर्भ में जो खोजें हुई हैं तथा उपलब्धियाँ हस्तगत हुई हैं, उन्हें समूची क्षमता का तेरह प्रतिशत माना जाता है। यदि इससे आगे की जानकारी, जागृति तथा क्षमता हस्तगत हो सके तो निश्चय ही मनुष्य सामान्य न रहकर असामान्य बन जाय। उसे महामानव, अति मानव की संज्ञा दी जा सकेगी। सामान्यजन इन्द्रियशक्ति के सहारे ही अपना ढर्रा चलाते हैं किन्तु यदि किसी को अचेतन के सम्हालने, सजाने में सफलता मिल सके तो वह अतीन्द्रिय क्षमता-सम्पन्न होगा। ऐसा बलिष्ठ जिसे देव या दैत्य कहा जा सके। ऋद्धि, सिद्धियों की चमत्कारी चर्चा पढ़ने, सुनने को मिलती रहती है। यह किसी देवी-देवता की अनुकम्पा का प्रसंग नहीं है वरन् अविज्ञात, अनगढ़ स्थिति में पड़ी रहने वाली अचेतन क्षमता की जाग्रति भर है।

मनुष्य क्या है? यह पूछने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि वह क्या नहीं है? ईश्वर ने अपने राजकुमार को, अपने स्तर का ही बनाया है और उसे अपनी सम्पदा का उत्तराधिकारी नहीं, साझेदार बनाया है। वयस्क, परिपक्व होने पर ही बहुमूल्य वस्तुओं का सदुपयोग करना आता है। इसी दृष्टि से भगवान ने अचेतन की तिजोरी में ऐसी रत्नराशि भर दी है जो तभी खाली होती है जब उसके सदुपयोग की पात्रता प्रामाणिकता अर्जित की जा सके। यह परिपक्वता साधना के आधार पर अर्जित की जाती है।

सामान्य चेतन लोक व्यवहार में काम आता है और बुद्धि-वैभव समझा जाता है। अचेतन से व्यक्तित्व के विकसित होने में सहायता मिलती है। प्रतिभावान नेतृत्व कर सकने में समर्थ, मनस्वी व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में सफलताएँ प्राप्त करता है। इसमें उसका विकसित व्यक्तित्व ही प्रधान भूमिका निभाता है। कहना न होगा कि व्यक्तित्व की विशेषता पूर्णतया अचेतन के स्तर पर निर्भर है। जिस प्रकार आहार-विहार से शरीरगत स्वास्थ्य बलिष्ठ बनाया जाता है, जिस प्रकार अध्ययन, अनुभव से बुद्धिमत्ता अर्जित की जाती है ठीक उसी प्रकार परिस्थितियाँ अथवा साधनाएँ अचेतन को किसी बड़ी छलाँग लगाने के लिए तत्पर करती हैं। यह व्यक्तित्व विकसित करने की प्रक्रिया है। जिसकी परिणिति प्रतिभाओं, विशिष्टताओं, सफलताओं, सम्पन्नताओं के रूप में हस्तगत होती है। इसे लौकिक जीवन को ऋद्धि-सिद्धियों से भरा-पूरा बनाने वाला क्षेत्र कह सकते हैं।

अब इससे आगे एक कदम और बढ़ाया जाय। एक और ऊँचे लोक में प्रवेश किया जाय तो चेतना के उच्चतम लोक में प्रवेश मिल सकता है। यह सुपर चेतन है। जिसे अन्त:करण कहा जाता है। उसमें आदतें नहीं, आस्थाएँ निवास करती हैं। मान्यता, अभिरुचि, आकांक्षा एवं संवेदना का समन्वय अन्त:करण कहा जाता है। यह श्रद्धा विनिर्मित है। श्रद्धा बुद्धि से कहीं ऊँची है। बुद्धि को न्यायाधीश कहा जाय तो श्रद्धा को राष्ट्रपति की उपमा देनी पड़ेगी। श्रद्धा हर व्यक्ति की मौलिक सम्पदा है। वह किन्हीं न किन्हीं मान्यताओं के साथ जुड़ी अवश्य रहती है। कुकर्मियों की भी अपनी श्रद्धा होती है। यह दूसरी बात है कि उन्होंने दुष्टता के सिद्धान्तों और प्रयोगों को अपनाना उपयुक्त समझा हो। शिकारी, नशेबाज, प्रपंची, आतातायी स्तर के व्यक्ति भी अपना अन्तराल एक खास किस्म का संजोये रहता है। उसी आधार पर उन्हें साहस करने और जोखिम उठाने में तत्पर होते देखा जाता है।

आमतौर से इस दुष्टता को श्रद्धा नहीं कहते हैं। इसे पवित्र एवं उत्कृष्ट मान्यताओं के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। श्रद्धा की गरिमा और क्षमता पर प्रकाश डालते हुए गीताकार ने उसे एक शब्द में समूचा व्यक्तित्व ही कह दिया है, कथन है कि "जिसकी जैसी श्रद्धा है वह ठीक वैसा ही है।" किसी का वास्तविक मूल्यांकन करना हो तो उसके अन्तराल में सन्निहित श्रद्धा के स्तर का पर्यवेक्षण करना चाहिए। अगणित प्रेरणाओं का उद्गम स्रोत वही है। हर व्यक्ति का अपना सत्य है और वह उसकी मान्यताओं के ढाँचे में ढला हुआ है। हर व्यक्ति का अपना प्रिय एवं अभीष्ट है। यह उसकी आकांक्षा द्वारा निर्धारित हुआ है। हर व्यक्ति की अपनी भाव संवेदनाएँ हैं। वे उसकी आस्थाओं के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। इस अन्तराल को मानवी सत्ता का उद्गम केन्द्र कह सकते हैं।

परमाणु का ऊर्जा केन्द्र "नाभिक" को माना जाता है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य की स्थिति एवं सम्भावनाओं का केन्द्र-बिन्दु उसके अन्त:करण, अन्तराल को समझा जा सकता है। यहीं से मन:संस्थान को निर्देश मिलता है। और वह एक अच्छे सेवक की तरह वैसा ही सोचना आरम्भ कर देता है जिससे कि आकांक्षा की पूर्ति सम्भव हो सके। मन की सोचने की दिशाधारा पूर्णतया अन्त:करण के संकेतों पर निर्भर है वह तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण इसी स्तर के ढूँढ़ता है, और क्रमबद्ध करता है। जिससे अपने अधिष्ठाता अन्त:करण की इच्छापूर्ण हो सके। इसके लिए वह चिन्तनतन्त्र को ही नियोजित नहीं करता वरन् शरीर वाहन को भी इसी प्रयोजन के लिए नियोजित करता है। अन्त:करण का आदेश मन मानता है और मन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के इशारे पर चलने वाला शरीर स्वामिभक्त सेवक की भूमिका निभाने लगता है। इसमें उसे भला-बुरा सोचने या किसी प्रकार का ननुनच करने की भी इच्छा नहीं होती। संक्षेप में अन्तराल को ही मन:संस्थान और कार्यकलापों का सूत्राधार कह सकते हैं। जो किया या सोचा जाता है उस समूचे क्रिया तन्त्र का अधिष्ठाता अन्त:करण को ही कहा—माना जाय तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी, यही है वह तथ्य जिसके आधार पर व्यक्तित्व का समूचा स्वरूप उसकी श्रद्धा पर अन्त:करण की स्थिति से अविच्छिन्न-सम्बद्ध माना गया है। गीताकार की उपरोक्त उक्ति में इसी यथार्थता को उजागर किया गया है।

मनोविज्ञान की भाषा में अन्त:करण को सुपर चेतन कहा गया है। अध्यात्मशास्त्र में इसे जीवात्मा का निवास कहा गया है। यह दुष्टता के साथ जुड़ जाने पर दर्पण की तरह कुरूपता से आच्छादित भी दिखाई पड़ सकता है। किन्तु यदि उसे उसकी वास्तविक एवं उच्चस्तरीय स्थिति में रहने का अवसर मिल सके तो इसे देवत्व का क्षेत्र कहा जा सकेगा। सुपर चेतन को ही भगवान कहा गया है। उसी की अनुकूलता- अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए पूजा-प्रार्थना की जाती है। परब्रह्म परमात्मा ही सृष्टि की नियामक सत्ता है। वह प्रवाह चलाने, व्यवस्था बनाने और सन्तुलन रखे रहने तक ही अपने मूलभूत उत्तरदायित्वों का वहन करती है। उसे न किसी से राग है न द्वेष। उसके लिए आस्तिक, नास्तिक सभी एक जैसे हैं। कर्म-व्यवस्था ही परब्रह्म का अनुशासन तथा परिपूजन है। मनुष्य की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने वाला, उस पर अनुग्रह करने वाला, वरदान देने वाला जो ईश्वर है, वह हर मनुष्य के साथ रहता और अन्तराल में बसता है। इसी को सुपर चेतन कहते हैं। तत्व दर्शन और योग विज्ञान पर आधारित ब्रह्म विद्या का एकमात्र उद्देश्य सुपर चेतन को अन्त:करण के उच्चस्तरीय भाव संवेदनाओं, आस्थाओं, आकांक्षाओं से अनुप्राणित करना है। यह ही मनुष्य का भाग्य-विधाता है जो व्यक्ति द्वारा अपनाई गई रीति-नीति को बारीकी से देखता और उसी अनुरूप अनुकम्पा एवं प्रताड़ना से पुरस्कृत, तिरस्कृत करता है।

अन्त:करण की उत्कृष्ट भाव संवेदना

ऋषि ने पुकारा है—**"तमसो मा ज्योतिर्गमय।"** हे प्रभु ! हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। असत् से सत की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर। देखना है कि यह अमृत कहाँ है सत् कहाँ है? और ज्योति कहाँ है? उन तक कैसे पहुँचा जा सकता है। इन तीनों देव विभूतियों को पाकर किस प्रकार कृत-कृत्य हुआ जा सकता है।

यह तीनों हृदय गुफा में अवस्थित हैं और अन्तर्मुखी होकर इस रत्नराशि को कोई भी विवेकशील व्यक्ति सरलतापूर्वक बटोर सकता है।

गुफा निवास एक बात है और गुफा की उपलब्धि दूसरी। भौतिक क्षेत्र की गुफाएँ पर्वतीय प्रदेशों में जगह-जगह पाई जाती हैं। वे प्रकृति की संरचनाएँ हैं। उनमें वन्य पशु अपने आश्रय बनाते हैं और अपना विश्राम काल उन्हीं में बिताते हैं। प्राचीनकाल में आत्म-चिन्तन, अन्त:क्षेत्र के अनुसन्धान के लिए ऐसा वातावरण अधिक उपयोगी माना जाता था। तब उसमें स्थान-स्थान पर अनेक योगी-यती रहते थे। उनका आत्म-बल ऐसा होता था कि शरीर निर्वाह के साधन भी अनायास ही मिल जाते थे और सुरक्षा-संकट उत्पन्न नहीं होता था।

अब वैसी स्थिति नहीं रही। तो भी लोग नकल बनाने में ही अपनी महत्ता समझते हैं। असली राजा या ऋषि बनना यदि सम्भव न हो तो लोग रंगमंचों पर उन्हीं वेषों का वस्त्र-विन्यास के आधार पर मुखौटे लगाकर वैसा ही प्रदर्शन करते हैं। इमारतों की तरह तहखाने की डिजायन भी बना लेते हैं और उसी को गुफा कहते हैं। उसमें बैठे-बैठे समय गँवाते हुए सोचते हैं कि वे भी पुरातन काल के ऋषियों जैसी सिद्धियाँ प्राप्त कर रहे हैं। वे भूल जाते हैं कि चिन्तन और लक्ष्य में जमीन-आसमान जितना अन्तर रहते हुए भी असली और नकली की एक जैसी स्थिति कैसे हो सकती है? यदि गुफा में रहने से ही सिद्धियाँ मिली होतीं तो सभी चूहे सिद्ध पुरुष हो गये होते। शीत आतप का जहाँ अधिक दबाव होता है, या दृष्टि से बचने की आवश्यकता होती है, वहाँ वन्य पशु प्राय: गुफाओं में रहते हैं या उसे अपने पंजों से खोदकर बना लेते हैं। नेवला, गोह, साँप आदि का अधिकांश जीवन गुफाओं में ही समय काटते हुए बीतता है।

अध्यात्म क्षेत्र में वातावरण की महत्ता तो है ही पर उस दिशा में प्रगति करने के लिए इतने भर से काम नहीं चल जाता। इससे अधिक भी कुछ करना होता है। अन्यथा वातावरण का लाभ शारीरिक स्वस्थता तक ही सीमित होकर रह जाता है।

तत्वदर्शियों ने हृदय क्षेत्र को गुफा कहा है। यहाँ हृदय के भौतिक और आत्मिक पक्ष के अन्तर को समझना होगा। भौतिक हृदय सीने में बायीं ओर नाशपाती जैसे आकार की एक छोटी सी माँसल संरचना है, जो अपनी रचना प्रयोजन के अनुसार धमनियों और छोटी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नलिकाओं द्वारा निरन्तर रक्त फेंकती और खींचती रहती है। इसकी धड़कन उस स्थान पर हाथ रखकर आसानी से पहचानी जा सकती है। इसी पर रक्तचाप की न्यूनाधिकता का प्रभाव पड़ता है और क्रिया-कलाप थोड़ी देर के लिए रुकते ही प्राणान्त हो जाता है।

अध्यात्म क्षेत्र की हृदय गुफा इससे भिन्न है। वह मेरुदण्ड में अनाहतचक्र के समीप है। पंचकोश गणना में यही विज्ञानमय कोश है। इसे भौतिक हृदय की सीध में तनिक पीछे हटकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रहने वाला माना गया है। संक्षेप में यही अन्तराल या अन्त:करण है—भाव सम्वेदनाओं का केन्द्र। कविता में किसी को दिल दे बैठना उस पर निछावर होने को कहते हैं। उर्दू का एक शेर है—''**दिल के आईने में है तसवीरे यार, जब जरा गरदन झुकाई देखली।**'' यह आइने जैसा दिल रक्त संचार ग्रन्थि से सर्वथा भिन्न है। हिम्मत, साहस, बहादुरी आदि के सन्दर्भ में भी उसी आत्मिक हृदय का उल्लेख किया जाता है।

भावनाओं का तो केन्द्र ही यह है। यहाँ भावनाओं से तात्पर्य आदर्शवादी, पुण्य-परोपकार में मिश्रित भाव सम्वेदनाओं से है। यह कार्य बुद्धि नहीं कर सकती। बुद्धि का आधार प्रत्यक्ष लाभ-हानि है। घाटा पड़ने पर उसे झटका लगता है और लाभ होने पर गर्व का उभार आता है। किसी वृद्धजन के मर जाने पर खुशी मनायी जाती, उसकी अर्थी को सजाया जाता है, मृत्युभोज में पैसा खर्चा जाता है। मानो कोई आकस्मिक लाभ हुआ हो। बुद्धि का यह निर्णय ठीक ही है कि बेकार आदमी घर घेरे हुये था, पैसा खर्च कराता था और आये दिन सेवा-सहायता की माँग करता था। ऐसे झंझट से पीछा छूटा तो अच्छा ही हुआ। उस घटना पर खुशी होनी ही चाहिए। किन्तु उसकी धर्मपत्नी को बिछोहजन्य जो दु:ख होता है उसे वही जानती है। छोटे बच्चे भी बुद्धि की दृष्टि में व्यर्थ ही होते हैं। माता को सदा हैरान ही करते रहते हैं। खर्च भी कराते ही हैं पर उनकी मृत्यु पर माता को कितना कष्ट होता है, यह भावना है। किन्तु बिडम्बना यह है कि लड़की के मर जाने पर बाप मन ही मन प्रसन्न होता है कि एक बड़े ऋण-भार से छुटकारा मिला। यही है तार्किक बुद्धि लाभ देखने वाली बुद्धि और भावना का अन्तर, उस भावना का जो अन्त:करण कहलाती और हृदय गुफा में रहती है।

बुद्धि को तर्क के आधार पर प्रभावित किया जा सकता है और प्रलोभन या दबाव से उसकी दिशा बदली जा सकती है किन्तु वह लुढ़केगी सदा स्वार्थ साधना की दिशा में ही। उसे मोड़ना इसी पक्ष में सम्भव है। घाटे का सौदा वह नहीं करना चाहती। इसीलिए ऐसे उच्च आदर्शों के परिपालन में उसे कटिबद्ध नहीं किया जा सकता, जिसमें प्रत्यक्षत: घाटा पड़ता हो। कारण है कि बुद्धिवादी धर्मोपदेश आदर्शों की बड़ी-बड़ी बातें तो कहते हैं। उनके भाषण बड़े लच्छेदार होते हैं, पर जब उस कथन को निजी जीवन में कार्यान्वित करने के अवसर आते हैं तो पीछे हट जाते हैं। इसका कारण एक ही है कि उसने धर्मचर्चा को बुद्धि क्षेत्र में तो अपनाया है पर अन्त:करण में, भावना-क्षेत्र में स्थान नहीं दिया।

संसार में अनेकों व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो आदर्शों को प्रमुखता देते हैं, उनकी भावनाएँ उस रंग में रंग जाती हैं और उस उत्कृष्टता को अपनाने में बड़े से बड़ा जोखिम उठाते हैं। शारीरिक कष्ट, पैसे की हानि, विरोधियों द्वारा हास-उपहास आदि की घटनाएँ उनके सामने आती हैं। यहाँ तक कि अपने पिछले कुसंस्कारों को उलटा-पुलटा करते देखा गया है। किसी के तनिक से बहकाने पर बहक जाते हैं। स्वार्थ त्यागने, परमार्थ अपनाने का श्रेय तो लेना चाहिए, पर उसके लिए जो त्याग, बलिदान करना पड़ता है, उसके लिए कदम बढ़ाने का साहस नहीं करते। करते हैं तो कुछ ही दिनों में क्षणिक उत्साह का बबूला फूटते ही पीछे लौट जाते हैं। इस लौटने में अपनी कमजोरी स्वीकार न करके किसी न किसी अन्य पर दोषारोपण करते हैं। परिस्थितियों की मजबूरी बताते हैं। यह भावनाओं का अधूरापन ही है।

भाव-सम्वेदना का क्षेत्र यदि समुन्नत-सुसंस्कृत हो तो उसमें सच्ची सहानुभूति उपजती है। दूसरों के कष्ट बँटा लेने और अपनी सुविधाओं को बाँट देने के लिए मन करता है, मन ही नहीं करता, साहस भी उभरता है और वे तथाकथित मित्र, स्वजनों को असहमत होते हुए भी वैसा आदर्शवादी साहस कर गुजरते हैं।

भाव संवेदनाओं की गंगोत्री

सूखने न पाए

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन भावनाओं-संवेदनाओं से संचालित होता है। दु:ख और आनन्द, घृणा और प्रेम, क्रोध और सहिष्णुता, कृपणता और उदारता, सन्देह और विश्वास आदि भावनायें अन्त:करण से उपजती हैं तथा मन-मस्तिष्क को प्रभावित कर मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों को संचालित-प्रेरित करती हैं। भावनाओं के क्रीड़ा केन्द्र को ही अन्त:करण कहा जाता है। इन भावनाओं का मानव जीवन पर, उसके शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है, मनोविज्ञानियों एवं मन:चिकित्सकों ने इस पर गहन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुसंधान किया है और पाया है कि विचारणा एवं भावना क्षेत्र की विकृतियाँ अनेकानेक बीमारियों को जन्म देती हैं, मनोविज्ञान की भाषा में जिन्हें ''साइकोसोमैटिक'' या ''साइकोजैनिक'' व्याधियाँ कहा जाता है। भावनाओं का विवेकयुक्त सुनियोजन ही शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मिक प्रगति का मूलाधार है।

मानव मन किसी न किसी कल्पना की उधेड़बुन में सतत् लगा रहता है। विचारों की, भावनाओं की, असंख्यों तरंगें जीवन में ज्वार-भाटे की तरह उठती-दबती रहती हैं और शरीर तथा मन:स्थिति को प्रभावित करती हैं। इनके प्रभाव को मुख्य रूप से दो भागों में समझा जा सकता है। पहले प्रकार की भावनायें वे हैं जिनके कारण शरीर के विभिन्न भाग अतिरिक्त रूप से उत्तेजित हो उठते हैं तथा दु:ख, संक्षोभ से लेकर तनाव, उद्वेग जैसे विकार उत्पन्न होने लगते हैं। इस श्रेणी की भावनाओं में क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष आदि को रखा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में उन भावनाओं को रखा जा सकता है जिनका प्रभाव मन:संस्थान पर अच्छा व अनुकूल पड़ता है। इसमें आशा, उत्साह, विश्वास, प्रेम, साहस, प्रफुल्लता आदि भावनाओं को रखा जा सकता है।

पहले प्रकार की भावनायें शरीर में रोग और मन में तनाव अथवा अवसाद के लक्षण पैदा कर देती हैं, जबकि वास्तव में शरीर में रोग का कोई कारण नहीं होता। लम्बे समय तक अध्ययन, परीक्षण करने के पश्चात् मन:शास्त्री एवं जीवविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वे स्नायुओं तथा नलिकाविहीन ग्रंथियों द्वारा शरीर को प्रभावित करती हैं। हमारे शरीर में ऐच्छिक तथा अनैच्छिक दो तरह के स्नायु मंडल-तंत्रिका तंत्र होते हैं, जिनके द्वारा समस्त शारीरिक क्रिया-कलापों का संचालन होता है। ऐच्छिक स्नायु तन्त्र (तंत्रिका तंत्र) से हम अपनी इच्छानुसार काम लेते हैं जैसे—उठना-बैठना, चलना-फिरना, किसी चीज को पकड़ना आदि। अनैच्छिक स्नायु तन्त्र पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता। हृदय की धड़कन, फेफड़ों द्वारा श्वसन, पाचन, संवेदन, गुर्दे की क्रिया आदि कार्य अनैच्छिक स्नायुओं द्वारा ही सम्पादित होते हैं। भावनाओं का प्रभाव इन्हीं स्नायुओं पर होता है। भाव चिन्तन में विकृति आने पर आटोनामिक तंत्रिका तंत्र की क्रिया-प्रणाली गड़बड़ा जाती है और तनाव, उद्वेग, बेचैनी, सिरदर्द जैसी कितनी ही बीमारियाँ मनुष्य को धर दबोचती हैं। अनेकों बीमारियों का उदय भावनात्मक असंतुलन के कारण ही होता है। इन्हीं को ऋषि चरक ने प्रज्ञापराध की श्रेणी में माना है।

प्रख्यात मनश्चिकित्सक डब्ल्यू० बी० कैनन ने अपनी कृति ''बाडिली चेन्जेज इन पेन हंगर, फियर एण्ड रेज'' में कहा है कि असंतुलित भावनायें, अव्यवस्थित कल्पनायें कायिक प्रणाली पर घातक प्रभाव डालती हैं। विचारणा एवं भावना का उत्कृष्ट-निकृष्ट जैसा भी स्तर होगा, स्वास्थ्य भी तदनुरूप ही होगा। उनका कहना है कि उत्तम भावनायें रोग-निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भावनात्मक उतार-चढ़ाव की स्थिति में व्यक्ति के स्नायु मंडल-तंत्रिका तंत्र की वैद्युतीय सक्रियता में भारी परिवर्तन होता है जिसे ई. ई. जी. जैसे यंत्रों के माध्यम से भी आंशिक रूप से देखा जा सकता है। मूलत: इसका प्रभाव अंत:स्रावी ग्रंथियों, एन्जाइम उत्पादक घटकों एवं सूक्ष्म जीवाणुओं के क्रिया-कलापों पर पड़ता है।

इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध मन:चिकित्सक एच. एफ. डनबार ने गहन अनुसंधान किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक ''इमोशन्स एण्ड बाडिली चेन्जेज'' में बताया है कि जिनके अन्त:करण में सदैव सद्भावनायें ही हिलोरें मारती रहती हैं तथा मन-मस्तिष्क से सद्विचारणायें ही फूलती रहती हैं, जिनका मन सदैव प्रसन्नता-प्रफुल्लता से भरा रहता है, उनका शरीर स्वस्थ रहता है, चेहरे पर दीप्ति छाई रहती है। ऐसे व्यक्तियों की आँखों की चमक एवं चेहरे की प्रदीप्ति-आभा उनकी प्रचण्ड जीवनी-शक्ति का प्रमाण स्वयं उपस्थित कर देती है। इसके विपरीत क्रोधोन्माद, आवेश आदि मनोविकार शरीर को विषैले रासायनिक पदार्थों से भर देते हैं जिससे कोशिकाएँ एवं ऊतक समूह सूखने लगते हैं और त्वचा का रंग बदल जाता है। वह शुष्क पड़ जाती है। विकृत भावनाओं से हृदय स्पन्दन की गति तीव्र हो जाती है, ऊर्जा का अनावश्यक क्षरण आरम्भ हो जाता है, जिससे इच्छाशक्ति बुझ जाती है और मनोबल को लकवा मार जाता है। इस तरह की भावनाएँ शरीर पर भले-बुरे दोनों तरह के असर डालती हैं। महान दार्शनिक अरस्तू ने कहा भी है कि ''भावनाओं का काया पर उसी प्रकार आधिपत्य रहता है जिस तरह स्वामी का गुलाम पर, मालिक का नौकर पर।''

मूर्धन्य मन:शास्त्री एवं लेखक बेंजामिन वाकर ने अपनी पुस्तक ''एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एसोटेरिक मैन'' में कहा है कि मानवी काया की व्याख्या मात्र उसके भौतिक, रासायनिक विश्लेषण या फिजियोलॉजी के आधार पर नहीं की जा सकती । वस्तुत: उसमें सन्निहित विचारणा, भावना, आस्था ही वह मूलभूत तत्व हैं जो समस्त शारीरिक क्रिया-कलापों, उसके क्रिया-व्यवहारों को दिशा देते, प्रेरित उत्तेजित करते रहते हैं। मन में उठी तीव्र भावना शरीर के स्नायु एवं हार्मोन प्राणाली को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभावित करती है। ब्रिटिश मनोचिकित्सा विज्ञानी ए० ओ० लुडविंग के अनुसार मन में उठने वाली विभिन्न भावतरंगें शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं। उनका कहना है कि भावनाओं की शरीर पर क्या प्रतिक्रिया होती है? इन तथ्यों पर ध्यान देने से यह सहज ही समझा जा सकता है कि क्रोध के कारण व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है, रक्तचाप बढ़ जाता है, शरीर से पसीना निकलने लगता है और वह पीला पड़ जाता है। इसी तरह कभी-कभी भय के कारण पेशाब छूट जाना, हृदय गति का बढ़ जाना, चेहरे का पीला पड़ना, घबराहट से पसीना छूटना, चिन्ता के कारण भूख न लगना, गुस्से में होने पर चेहरा तमतमा उठना, परेशानी से नींद न आना और लज्जा के मारे लाल हो जाना, चेहरा झुका लेना आदि स्थितियाँ दर्शाती हैं कि भावनाओं का प्रभाव मनुष्य शरीर के रक्त-प्रवाह और अन्दरूनी हलचलों पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। इसकी पुष्टि प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता ए० सिमन ने भी की है। अपनी पुस्तक "द फिजियोलॉजी आफ इमोशन्स" में उन्होंने कहा है कि साधारण सा भावात्मक उतार-चढ़ाव भी शरीर की फिजियोलॉजी को परिवर्तित कर देता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी इसकी पुष्टि हो गई है।

मनोकायिक चिकित्सा साइकोसोमैटिक मेडिसिन के जन्मदाता प्रख्यात मनोविज्ञानी जार्ज ग्रोडेक गहन अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शारीरिक रोगों की जड़ें मन में होती हैं। उनका कथन है कि चिन्तन एवं भावना क्षेत्र की विकृति ही रोगों का प्रमुख कारण है। तनाव, उन्माद जैसे मनोविकार एवं उच्च रक्तचाप, इरीटेबल, बॉवेल, कोलाइटिस, त्वचा रोग, दमा यहाँ तक कि कैंसर भी विकृत भावनाओं की ही देन है। सिरदर्द, आधाशीशी का रोग भावनात्मक उत्पादन माने गये हैं। मूर्धन्य चिकित्साविज्ञानी वोल्फ हेराल्ड ने अपनी कृति "स्ट्रस एण्ड डिसीज" में इसका प्रमुख कारण कामुकता, विद्वेष, अप्रसन्नता, कुढ़न आदि की हीन भावनाओं को बताया है। उनके अनुसार हृदय की बीमारियों, उच्च रक्तचाप आदि के अनेकों कारण हैं, पर इस कोमल एवं संवेदनशील अंग पर सबसे अधिक गहरा प्रभाव भावनाओं का पड़ता है। क्रोध, तनाव, चिन्ता आदि के भाव यदि लम्बे समय तक मस्तिष्क पर छाये रहें तो इससे हृदय को भारी क्षति झेलनी पड़ती है। श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र की अनेक बीमारियों के पीछे भाव-विकृतियाँ ही काम करती हैं।

प्रसिद्ध मन:चिकित्सक डेनियल हैक टूके ने अपनी पुस्तक "एन्फ्लुएन्स ऑफ दी माइन्ड अपॉन दी बॉडी" के दूसरे खण्ड में कहा है कि विकृत भाव चिन्तन के कारण व्यक्ति अनैतिक आचरण अपनाता और पापकर्म करता है। परिणामस्वरूप अनेकानेक मनोकायिक बीमारियाँ उसे धर दबोचती हैं। पापकर्मों को छिपाने से एक्जिमा, दमा, माइग्रेन जैसे रोग फूट कर व्यक्ति की मनोदशा का परिचय स्वयमेव दे देते हैं। सोरियेसिस रोग भी इसी की देन है। "साइको सोमैटिक मेडिसिन" नामक अपनी कृति में मनोचिकित्सक द्रव्य ई० वीस एवं ओ० एस० इंग्लिस ने भी कहा है कि मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियों का दबाव किसी भी रोग के रूप में फूट सकता है। वैज्ञानिक भी अब मानने लगे हैं कि कैन्सर एवं क्षय जैसी घातक बीमारियों का कारण मानसिक-भावनात्मक अस्त-व्यस्तता है। जर्मन मनश्चिकित्सकों ने इस संदर्भ में गहन अनुसंधान किया है।

"साइकोसोमैटिक डिसआडर्स" नामक अपनी कृति में प्रख्यात मन:चिकित्सा विशेषज्ञ शेल्डन जे० लेकमेन ने बताया है कि भावनात्मक उतार-चढ़ाव शारीरिक क्रिया-कलापों को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं और इनका असर देर तक बना रहता है। यह परिवर्तन रचनात्मक भी हो सकते हैं और विध्वंसक भी, जो भावनाओं की उत्कृष्टता-निकृष्टता पर निर्भर करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष की दूषित भावनाएँ अपने लिए एवं अन्यों के लिए हानि प्रस्तुत करती हैं जबकि सद्भावनाओं से लबालब भरा हृदय और मस्तिष्क स्वयं के लिए तथा साथी-सहयोगियों सभी के लिए सुखदायी परिस्थितियाँ विनिर्मित करता है। शेल्डन ने अपनी उक्त पुस्तक में विचारणाओं, भावनाओं में होने वाले परिवर्तनों एवं उनके दूषण से होने वाले विभिन्न रोगों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार दुश्चिंतन एवं विकृत भावनायें ही विभिन्न रोगों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं। सर्वप्रथम इसी क्षेत्र का परिष्कार सुधार किये जाने की आवश्यकता है। बाह्य औषधियाँ कुछ तात्कालिक लाभ पहुँचा सकती हैं, रोग को दबा सकती हैं परन्तु वह स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकतीं। मनोकायिक रोगों से छुटकारा पाने एवं भावना क्षेत्र को परिष्कृत करने के लिए उनने योगाभ्यास की ध्यान धारणा प्रक्रिया को महत्वपूर्ण बताया है।

यह बात निश्चित रूप से मानी जानी चाहिए कि मानवी जीवनचर्या भावनाओं की धुरी पर ही घूमती है। शरीर हमारे अन्त:करण की बहिरंग में अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र है। कामतंत्र में जो अव्यवस्थाएँ समय-समय पर उत्पन्न होती, रोगों के रूप में परिलक्षित होतीं हैं, वे अपने आप पर संतुलन स्थापित करने की चेतावनी मात्र हैं, रोग नहीं। चेतावनी पर ध्यान देकर रोग को अप्राकृतिक रूप से दबाने का प्रयास और जटिलताओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को जन्म देता एवं अनेकानेक व्याधियों के रूप में सामने आता है। भावना तंत्र का श्रद्धा-समर्पण द्वारा अभिसिंचन करते रहने से जड़ें कभी सूखने नहीं पातीं। भावनाओं की उत्कृष्टता हर दृष्टि से जीवन में जरूरी है। सतत् आत्मावलोकन मनुष्य को अपना मूल्यांकन करने में मदद करता है व यही निष्कर्ष उसे समझाता है कि बिना सरस भाव संवेदनाओं के न व्यक्ति का स्वस्थ एवं जीवनी शक्ति-मनोबल सम्पन्न रह पाना संभव है, न ही उसके जीवन की इसमें सार्थकता है। आवश्यकता है कि अन्तःकरण का उपचार किये जाने की महत्ता प्रतिपादित कर जनमानस को समझा जाय कि सरस, उदात्त भावनाओं की गंगोत्री कभी सूखने न पाये।

भावात्मक चेतना जीवन की सर्वोपरि सत्ता

मानव मस्तिष्क का एक और भाग है जिसकी ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया गया है और जिसकी खोज का कार्य अभी नितान्त आरम्भिक अवस्था में ही माना जा सकता है। यह भाग है—भावनात्मक मस्तिष्क।

मस्तिष्क के भीतर मोटी और काफी लम्बाई तक फैली हुई अन्तस्त्वचा के भीतर विशिष्ट प्रकार की तन्त्रिकाएँ फैली हुई हैं। यद्यपि यह मस्तिष्क के प्रचलित वर्गीकरण में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सकी हैं तो भी यह देखा जाता है कि सुख, दुख, भय, हर्ष, क्रोध, आवेश, करुणा, सेवा-स्नेह, कामुकता, उदारता, संकीर्णता, छल, प्रेम, द्वेष आदि भावनाओं का इसी स्थान से सम्बन्ध है और ये भावनाएँ ही हैं जो चेतन ही नहीं, अचेतन मस्तिष्क को भी प्रभावित करती हैं। इच्छा संचालित और अनिच्छा संचालित केन्द्रों में भारी उलट-पुलट प्रस्तुत करती हैं।

कुछ दिन पहले शारीरिक आवश्कतानुसार मानसिक क्रिया-कलाप की गतिविधियों का चलना माना जाता था। भूख लगती है तो पेट भरने की चिन्ता मस्तिष्क को होती है और पैर वैसी सुविधा वाले स्थान तक पहुँचते हैं, हाथ खाद्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं। मुँह चबाता है और पेट पचाता है। इसी प्रकार आहार के उपरान्त निद्रा, विश्राम के लिए, छाया-घर-निवास की, शैया, बिस्तर आदि की आवश्यकता अनुभव होती है। आत्मरक्षा के लिए वस्त्र, छाता, शस्त्र आदि संग्रह करने पड़ते हैं। काम-क्रीड़ा के लिए जोड़ीदार ढूँढ़ना पड़ता है और फिर सृष्टि संचालन के लिए सन्तान प्रेम की प्रेरणा से अन्य काम करने पड़ते हैं। इन्द्रिय रचनाएँ भी शारीरिक इच्छा, आवश्यकता की श्रेणी में आती हैं। काया की ऐसी ही आवश्यकताओं के अनुरूप मस्तिष्क की उधेड़-बुन चलती रहती है।

अचेतन मन शरीर को जीवित रखने के लिए निरन्तर चलने वाले क्रिया-कलापों का संचालन करता है। सोते-जागते जो कार्य अनवरत रूप से होने आवश्यक हैं, उन्हें सँभालना उसी के द्वारा होता है। रक्त संचार, श्वाँस-प्रश्वाँस, हृदय की धड़कन, आकुंचन-प्रकुंचन, पाचन-विसर्जन आदि अनेक कार्य अचेतन मस्तिष्क अपने आप करता-कराता रहता है और हमें पता भी नहीं लगता। जागते में पलक झपकने की और सोते में करवट बदलने की क्रिया सहज ही होती रहती है।

मस्तिष्क सम्बन्धी मोटी जानकारी इतनी ही है। प्रिय प्राप्ति पर हर्ष, अप्रिय प्रसंगों पर विषाद, भय, क्रोध, प्रेम-प्रसंग, छल, संघर्ष जैसी मानसिक क्रियाओं को भी सामाजिक एवं चेतनात्मक आधार पर विकसित माना जाता रहा है पर भूल उसके भी शरीर पर पड़ने वाले वर्तमान एवं भावी प्रभाव को ही समझा गया है। शरीरशास्त्रियों की दृष्टि में मस्तिष्क भी—शरीर में—शारीरिक प्रयोजनों की पूर्ति करने वाला एक अवयव ही है। मुँह में ग्रास जाने पर सहज प्रक्रिया के अनुसार रस ग्रन्थियों से स्राव आरम्भ हो जाता है। दाँत, जीभ आदि अपना काम सहज प्रेरणा से ही आरम्भ कर देते हैं। उसी प्रकार समझा जाता रहा है कि शरीर से सम्बद्ध समस्याओं को हल करने का उपाय ढूँढ़ने और उसकी व्यवस्था बनाने का कार्य मस्तिष्क करता है। विभिन्न अवयवों पर उसका नियन्त्रण है, तो पर क्यों है? किस प्रयोजन के लिए है? उसका उत्तर यही दिया जाता रहा है कि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही मस्तिष्क का अस्तित्व है।

पर भावानात्मक प्रसंगों का जब सिलसिला आरम्भ होता है और उनका प्रभाव इतना अधिक होता है कि शारीरिक और मानसिक समस्त चेष्टाऐं उसी पर केन्द्रित हो जायें, यहाँ तक कि शरीर जैसे प्रियपात्र को त्यागने में भी संकोच न हो, तब उस भाव प्रवाह का विश्लेषण करना कठिन क्यों हो जाता है। जब हर चिन्तन और प्रयत्न शरीर की सुविधा के लिए ही नियोजित होना चाहिए, तो फिर उन भावों का अस्तित्व कहाँ से आ गया जिनका शारीरिक लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं है वरन् और उल्टी हानि होती है। तब मस्तिष्क शारीरिक लाभ को, अपनी मर्यादा को छोड़कर हानि की सम्भावनाओं का समर्थन क्यों करता है? इस प्रश्न का उत्तर दे सकना भौतिक मनःशास्त्र के लिए अभी भी सम्भव नहीं हो सका है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों को दु:खी देखकर दया क्यों आती है? किसी की सेवा करने के लिए रात-भर जागने को तैयार क्यों हो जाते हैं? अपने सुविधा-साधनों का दान-पुण्य क्यों किया जाता है? प्रेम पत्र के मिलने पर उल्लास और वियोग में वेदना क्यों होती है? समाज, देश, विश्व की समस्याऐं क्यों प्रभावित करती हैं? धर्म-रक्षा के लिए त्याग-बलिदान का साहस क्यों होता है? व्रत, संयम, ब्रह्मचर्य, तप, तितीक्षा जैसे कष्टकर आचरण अपनाने के लिए उत्साह और सन्तोष क्यों होता है? भक्ति भावना में आनन्द की क्या बात है? इस प्रकार के भावनात्मक प्रयोजन जिनके साथ शारीरिक आवश्यकता एवं अभाव की पूर्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है, मनुष्य द्वारा क्यों अंगीकार किये जाते हैं और मस्तिष्क उनकी पूर्ति के लिए क्यों क्रियाशील हो उठता है?

भावनाऐं क्रियाशीलता उत्पन्न करती हों सो ही नहीं वरन् कई बार वे इतनी प्रबल होती हैं कि आँधी-तूफान की तरह शरीर और मन की सामान्य क्रिया को ही अस्तव्यस्त कर देती हैं। किसी प्रिय पात्र की मृत्यु का इतना आघात लग सकता है कि हृदय की गति ही रुक जाय या मस्तिष्क विकृत हो जाय। किसी नृशंस कृत्य को देखकर भयभीत मनुष्य मूर्छित हो सकता है। आत्महत्या करने वालों की संख्या कम नहीं और वे भावोत्तेजना में ही वैसा करते हैं। ये भावनाऐं मात्र शारीरिक आवश्यकता को लेकर ही नहीं उभरी होतीं।

चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, निराशा आदि आवेशों के द्वारा होने वाली निषेधात्मक हानियों से सभी परिचित हैं वे शारीरिक रोगों से भी भयावह सिद्ध होती हैं। चिन्ता को चिता से बढ़कर बताया जाता है और कहा जाता है कि चिता मरने पर जलाती है किन्तु चिन्ता जीवित को ही जलाकर रख देती है। यह भावना निषेधात्मक दिशा में गतिशील होने पर क्यों संकट उत्पन्न करती है और विधेयात्मक मार्ग पर चलकर क्यों अद्भुत परिणाम प्रस्तुत करती है। हमारे शरीर और मस्तिष्क क्यों उन्हें स्वीकार करता है जबकि प्रत्यक्षत: शरीर की आवश्यकताओं या सुविधाओं का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रश्न का उत्तर खोजते-खोजते विज्ञान ने अब मस्तिष्क का भाव चेतना केन्द्र तलाश किया है। उसकी स्वल्प जानकारी अभी इतनी मिली है कि मस्तिष्क के भीतर जो मोटी और लम्बाई में फैली हुई अन्तस्त्वचा है उसकी तन्त्रिकाऐं अपने में कुछ ऐसे रहस्य छिपाये बैठी हैं जो कारणवश भावनाओं को उद्दीप्त करती हैं अथवा उनसे प्रभावित होकर उद्दीप्त होती हैं। इस संस्थान को 'भावनात्मक मस्तिष्क' नाम दिया गया है।

अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्था के डॉ. पाल मैकलीन, येल विश्वविद्यालय के डॉ. जीसे डैलगेडी आदि प्रभृति वैज्ञानिकों ने मन:शास्त्र के गहन विश्लेषण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रखरता की कुंजी इस भावनात्मक मस्तिष्क में ही केन्द्रीभूत है। आहार-विहार का अपना महत्व है पर उतनी व्यवस्था ठीक रखने पर भी यह निश्चित नहीं कि स्वास्थ्य ठीक ही बना रहेगा। इसी प्रकार शिक्षा एवं संगति का मस्तिष्कीय विकास से सम्बन्ध अवश्य है पर यह निश्चित नहीं कि वैसी सुविधायें मिलने पर कोई व्यक्ति मनोविकारों से रहित और स्वस्थ मस्तिष्क सम्पन्न होगा ही। उन्होंने भावनाओं का महत्त्व सर्वोपरि माना है और कहा है सद्भाव-सम्पन्न मनुष्य शारीरिक सुविधाऐं और मानसिक अनुकूलताऐं न होने पर भी समग्र रूप से स्वस्थ हो सकता है। मनोविकारों से छुटकारा पाने से दीर्घजीवी बन सकता है और रोग-मुक्त रह सकता है।

कहना न होगा कि स्वास्थ्य को नष्ट करने में मनोविकारों का हाथ-विषाणुओं से भी अधिक है। साथ ही समग्र स्वास्थ्य के सम्पादन में भावात्मक उत्कृष्टता का असाधारण योगदान है। अस्तु, भावात्मक मस्तिष्क की गरिमा मानवीय सत्ता में सर्वोपरि सिद्ध होती है। अध्यात्म-विज्ञान इसी को अमृत घट मानता है और उसी के परिष्कार, अभिवर्धन की प्रक्रिया प्रस्तुत करता है।

भावनाओं का अमृत यों ही न बहायें

भाव सम्वेदनाओं से युक्त अन्त:करण को मानव जीवन की एक महान उपलब्धि कहा गया है। ऐसे अन्त:करण से युक्त व्यक्ति जिस भी समाज एवं देश में रहते हैं, उनकी सुख-शान्ति बढ़ाने में सहायक होते हैं। पवित्र अन्त:करण एवं उच्चस्तरीय भावों का गुणगान संसार के सभी धर्म एवं शास्त्र करते हैं। भावनाओं की महिमा गाते शास्त्र नहीं अघाते। सन्तों ने तो यहाँ तक कहा है। ''भावों के भूखे हैं भगवान''। तत्वदर्शियों के अनुसार वह परमात्मा भावनाओं में निवास करता है, उसी के सहारे अन्त:करण में दर्शन देता है। भावनाशील होना मानवी गरिमा के अनुकूल है एवं उत्कर्ष की ओर बढ़ने का प्रथम चिन्ह है।

परन्तु भावों के प्रवेश पर विवेक का अंकुश न हो तो वह कितनी ही प्रकार की समस्याओं को जन्म दे सकता है। अनियन्त्रित भावनाऐं भावातिरेक कहलाती हैं। इनकी प्रतिक्रिया मन: असन्तुलन, मानसिक विक्षोभ, चिन्ता, आतुरता जैसे व्यतिरेकों के रूप में दिखायी पड़ती है। ये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असन्तुलन समूचे विचार तन्त्र को ही गड़बड़ा देते हैं। फलतः किसी भी विषय पर सही सोचते अथवा निर्णय लेते नहीं बनता। मनःशास्त्रियों ने भावातिरेक को एक मानसिक रोग माना है। भावों पर अंकुश न रहने तथा उनमें औचित्य एवं दूरदर्शिता का समावेश न रहने से वे अति भावुकता के प्रवाह के रूप में प्रकट होते हैं।

उल्लेखनीय है कि मनोकायिक रोगों की चिकित्सा पद्धति में यह सर्वसम्मत से स्वीकार किया जाने लगा है कि शरीर के हारमोनल स्रावों की न्यूनाधिकता में विचारों एवं भावनाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। वे सन्तुलित न होने के कारण मानसिक असन्तुलन को ही जन्म देते हैं। फलतः समूचे शरीर की संचार प्रणाली अव्यवस्था की शिकार हो जाती है। उसकी प्रतिक्रिया अनेकानेक शारीरिक-मानसिक रोगों के रूप में प्रकट होती दिखायी पड़ती है।

प्रख्यात चिकित्साशास्त्री डॉ. फ्लैन्ड्स डूनेवर ने अपने प्रयोग परीक्षणों का निष्कर्ष ''इमोशन्स एण्ड बॉडिली चेन्जेज'' में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिसमें यह सप्रमाण उल्लेख किया गया है कि भावनाओं का शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भय, चिन्ता, क्रोध, आवेश जैसी उत्तेजनाओं से एड्रिनल ग्रन्थि के स्राव में कमी आती है। प्रायः देखा भी जाता है कि उत्तेजनाग्रस्त होने पर उसकी बाह्य प्रतिक्रिया जीभ सूखने, जीभ लड़खड़ाने के रूप में होती है। यह भी प्रयोगों में देखा गया है कि उत्तेजना से रक्त संचार की गति बढ़ जाती है। चेहरे का दमक उठना, आँखों का लाल हो जाना, उसका बाह्य संकेत है। ऐसी स्थिति में रक्त नलिकाओं के फटने तक की सम्भावना रहती है। अतिशय तनाव तथा बारम्बार इस तनाव की पुनरावृत्ति ब्रैन हैमरेज का भी कारण बन सकती है, कई बार बनती भी है।

नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. अलेक्सिस कैरेल ने अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला है कि घृणा, भय, क्रोध, चिन्तातुरता जो भावनातिरेक के कारण पैदा होते हैं, जब हमारी आदत के अंग बन जाते हैं तो कई कायिक परिवर्तनों व रोगों को जन्म देते हैं। प्रख्यात चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तक 'पाथवेज ऑफ साइन्स' में एक रूसी वैज्ञानिक ने रोगोत्पत्ति और भावनात्मक असन्तुलन में गहरा तादात्म्य स्थापित करते हुए कहा है कि ''मनुष्य का भाव जगत एक वरदान है और एक तरह से अभिशाप भी। वरदान इसलिए कि इस क्षेत्र से निस्सृत उच्चस्तरीय भावनाएँ स्वयं व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक विकास के लिए न केवल हितकारी हो सकती हैं वरन् समस्त समाज के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो सकती हैं। यह अभिशाप उन स्थिति में साबित होता है जब व्यक्ति भाव असन्तुलन का शिकार होता है। ऐसी हालत् में दूसरों का तो दूर, मनुष्य अपना स्वयं का विकास भी नहीं कर पाता। उल्टे ऐसी स्थिति मानसिक असन्तुलन को जन्म देती है। जिसकी परिणति शरीरगत एवं मनोगत रोगों के रूप में होती है।

''पेशेन्ट्स एण्ड डाक्टर्स देयर इन्टररिलेशन'' पुस्तक के लेखक हैं—एक ब्रिटिश मेडिकल अधिकारी। उनका कहना है कि ''भावनाओं की प्रतिक्रिया हम सम्पूर्ण शरीर में अनुभव कर सकते हैं। उन अनुभूतियों के आधार पर उचित, अनुचित का चयन भी कर सकते हैं। अर्थात् किस भाव को मन में स्थान देना चाहिए तथा किसे नहीं, इसका निर्धारण हर कोई कर सकने में सक्षम है। उदाहरणार्थ—किसी खतरे का अवसर सामने प्रस्तुत होते ही सम्पूर्ण शरीर में भय का संचार होने लगता है, रौंगटे खड़े हो जाते हैं। शरीर में कंपन, मुँह सूखना, त्वचा का पीला हो जाना, हृदय की धड़कन बढ़ना आदि शारीरिक संकेत मिलते हैं। देश-प्रेम की भावना से शरीर रोमांचित हो उठता है। त्याग, बलिदान, उत्सर्ग की प्रेरणाएँ उभरने लगती हैं। समाज-सेवा का भाव एक अद्भुत सन्तोष प्रदान करता है। ईर्ष्या, द्वेष के भावों से मन विक्षुब्ध हो उठता है। दया, करुणा, क्षमा से एक विशेष प्रकार की शान्ति मिलती है। सच्ची प्रेम भावना का प्राकट्य एक दिव्य मस्ती से मन को भर देता है। प्रतिस्पर्धा की भावना से शरीर एवं मन की गतिशीलता बढ़ जाती है। पुरुषार्थ में माँसपेशियाँ फड़कने लगती हैं।

भावनाओं का एक क्षेत्र वह है, जो विशेष प्रकार की प्रेरणाएँ उभारता तथा मनुष्य को एक दिशा विशेष में गतिशील होने को विवश करता है। दूसरा क्षेत्र वह है, जो स्वयं के शरीर एवं मन को प्रभावित करता है। स्वास्थ्य एवं सन्तुलन को बनाने अथवा बिगाड़ने में यही काम आता है। निषेधात्मक भावों की प्रतिक्रिया तत्काल मन एवं शरीर पर अनुभव की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर की जीवनी-शक्ति चुक रही हो। मन की प्रफुल्लता, प्रसन्नता, उत्साह एवं उमंग धीरे-धीरे समाप्त हो रही हो। ऊब, थकान एवं अशक्तता की अनुभूति होती है। विधेयात्मक भाव भी अपनी प्रतिक्रियाएँ मानसिक प्रसन्नता, शान्ति एवं सन्तोष, शारीरिक तत्परता, सजगता के रूप में बहिरंग में दृष्टिगोचर होते हैं। शरीर में जीवनी-शक्ति का स्वतः उभार होने लगता है और ऐसा अनुभव होता है जैसे कहीं से अतिरिक्त शक्ति का निर्झर फूट पड़ा हो। निराशा की घड़ियों में जब कभी भी आशावादी विचार उमड़ते हैं तो प्रतिकूलताओं में भी ऐसा प्रतीत होता है कि करने वाले के लिए कुछ भी असम्भव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है। अपनी सामर्थ्य पहले से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी नजर आने लगती है।

मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा भी ऐसे विधेयात्मक अथवा निषेधात्मक विचार उत्पन्न करके तदनुरूप प्रभाव प्राय: उन व्यक्तियों पर डाले जा सकते हैं जो कमजोर मनोभूमि के हैं। आज की मन:चिकित्सा प्रणाली भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है। आटोसजैशन एवं हेट्रोसजैशन के इर्द-गिर्द वह घूमती है। मन:चिकित्सक विधेयात्मक निर्देशन द्वारा ही मानसोपचार में सफल होते हैं। यह प्रक्रिया निषेधात्मक रूप में किसी-किसी के लिए प्राणघातक भी सिद्ध हो सकती है यदि वह व्यक्ति निराशावादी तत्वों से युक्त है। वह घटना प्रख्यात है कि योरोप के किसी देश में एक व्यक्ति को फाँसी दी जानी थी। वह हत्या अभियोग का मुजरिम था। फाँसी निर्धारित तारीख को होनी थी। मन:शास्त्र विशारदों ने एक प्रयोग विचार-शक्ति की महत्ता का उस पर किया। उन्होंने अपने प्रयोग का प्रारूप न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करके उसे पूरा करने की अनुमति प्राप्त करली। इन विशेषज्ञों का ऐसा विश्वास था कि अपराधी को बिना किसी हथियार के मात्र विचार सम्प्रेषण द्वारा भी मारा जा सकता है।

प्रयोग आरम्भ हुआ। अपराधी की आँख पर पट्टी बाँध दी गयी। चिकित्सकों ने उससे कहा कि तुम्हारे हाथ की नस काट दी जायेगी। उससे होकर शरीर का सारा खून बह जायेगा। इस तरह तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। प्रयोग में एक हल्का-सा चीरा हाथ में लगा दिया गया। पानी की एक ट्यूब इस ढंग से हाथ लगाकर रखी गयी कि अपराधी को उसका पता न चले, मात्र उससे नीचे एक बाल्टी में पानी के गिलास की आवाज सुनायी दे।

निर्देशन प्रक्रिया आरम्भ हुई। चिकित्सकों ने बताया कि तुम्हारी नस काट दी गयी है। पानी के हाथ के समीप हो रहे बहाव को घबराते हुए उसने तीव्र गति का रक्तस्राव समझा। नीचे बाल्टी में द्रव्य गिरने की आवाज उसे स्पष्ट सुनायी दे रही थी। चिकित्सक उसे हर क्षण यही बताते रहे कि शरीर से खून की कितनी मात्रा निकल चुकी है। आधे घण्टे तक यह प्रयोग चलता रहा। इस बीच उसके हृदय की गति दुगुनी हो गयी थी, होठ सूख चुके थे तथा भय के चिन्ह चेहरे पर प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे थे। प्रयोग समाप्ति के पूर्व ही एकाएक उसके हृदय की गति अपने आप रुक गयी और सचमुच ही वह बिना किसी रक्तस्राव के मर गया। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के इतिहास में विशेषज्ञों ने यह पहली बार अनुभव किया कि विचारशक्ति भी इतनी अधिक सामर्थ्यवान हो सकती है। भावनाओं की विधेयात्मक अथवा निषेधात्मक दिशाधारा इतनी प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है, इसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया। यह अनुभव किया गया कि दूसरे के ऊपर निर्देशन द्वारा इतना प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है तो स्वयं के ऊपर तो उनकी प्रतिक्रियाएँ असाधारण रूप से पड़ती ही होंगी। कम्युनिस्ट ने तो 'ब्रेन वाशिंग' की तकनीक में विशेष रूप से इसी पद्धति को अपनाया है। 'बायो फीड बैक' की आधुनिक योग-पद्धति भी इसी विधा की प्रशाखा है।

शरीर-संस्थान, बुद्धि-संस्थान की तरह भाव संस्थान भी मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है। शरीरबल बुद्धिबल की अपेक्षा भावबल कहीं अधिक सामर्थ्यवान है। व्यतिरेक होने अथवा बेलगाम छोड़ देने पर तो शरीर-तन्त्र और बुद्धि-तन्त्र दोनों ही बेलगाम घोड़ों की तरह हो जाते हैं। इन्द्रियों पर अंकुश न हो, उन्हें खुली छूट दे दी जाय तो शरीर का जर्जर, निर्बल अशक्त हो जाना सुनिश्चित है। बुद्धि की दिशाधारा निश्चित न हो, उसके चिन्तन को जहाँ-तहाँ बहने दिया जाय तो न केवल उसकी क्षमता मारी जाती है वरन् दुष्प्रयोजनों में निरत होकर कई बार तो अनेकों प्रकार के विग्रह, विक्षोभ उत्पन्न करती है। भाव सम्वेदनाएँ इन दोनों की तुलना में कहीं अधिक मूल्यवान हैं। वह जितनी सूक्ष्म है, उतनी अधिक गतिवान भी होती है। उनका उभार एवं उफान वेगवती नदी की भाँति उमड़ता है। अनियन्त्रित होने पर वे बुद्धि और शरीर को भी अपने साथ मनचाही दिशा में बहा ले जाती हैं। बाढ़ के पानी को रोकने के लिए बाँध बाँधे जाते हैं। गतिवान भाव-सम्वेदनाओं का नियन्त्रण भी होना चाहिए। उन्हें उपयुक्त दिशा देना भी उतना ही आवश्यक है। भावातिरेक की स्थिति की जाँच-पड़ताल विवेक की कसौटी पर भी करनी चाहिए। प्रयत्न यह हो कि वे हमेशा उच्चस्तरीय हों, महान प्रयोजनों से जुड़ी हों। यदि ऐसा सम्भव हो सके तो सचमुच ही भाव सरिता का अभिसिंचन पाकर जीवन रूपी उपवन में अगणित प्रकार के सद्गुणों के रंग-बिरंगे पुष्प खिल सकते हैं। उस उद्यान की सुवास से व्यक्ति का जीवन महक उठेगा, उसे धन्य बनायेगा और अपने सौरभ से असंख्यों का जीवन महकायेगा।

भावनाओं को ऊर्ध्वगामी बनाया जाय

मानवीय जीवन की बाह्य गतिविधियाँ व विविध क्रिया-कलाप अन्तराल की जिन हलचलों से संचालित हों, तदनुरूप क्रियान्वित होते हैं, मनीषियों ने उसे भावना का नाम दिया है। यह भावना विचारणा के रूप में परिपक्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती तथा क्रिया के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करती है।

मनस्तत्वविदों ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि भावनाओं का उद्‌गम क्षेत्र मनुष्य का अपना अन्तराल है। इस अन्तराल में निहित संस्कारों तथा बाह्य उद्दीपनों की सम्मिश्रित क्रिया के आधार पर ही इनकी बाह्यभिव्यक्ति होती है। इस सम्मिश्रित प्रक्रिया के आधार पर ही इनके दो वर्ग किये गये हैं, सद्‌भावनाएँ व दुर्भावनाएँ। इनकी परिपक्वावस्था के इसी तरह दो रूप हैं—सदविचार, दुर्विचार। परिपक्वता के साथ इनकी अभिव्यक्ति भी विविध रूपों में होती है, सत्कर्म—दुष्कर्म।

मन:शास्त्रियों तथा व्यवहारविज्ञानियों ने अपने व्यापक अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि यदि भावनाओं को परिष्कृत करना सम्भव बन पड़े तो व्यवहार भी उन्नत और प्रखर बन पड़ेगा। अध्येताओं ने बताया है कि विकास की प्रक्रिया के अनुरूप भावनात्मक क्षेत्र का विकसित होना भी अनिवार्य है।

अल्बर्ट आइन्स्टीन कालेज आफ मेडिसिन, न्यूयार्क में साइकियाट्री के प्राध्यापक तथा प्रोग्राम इवोल्यूशन एण्ड क्लीनिकल रिसर्च के निदेशक राबर्ट प्लुतचिक अपनी कृति ''ए जनरल साइको इवाल्यूशपरी थ्योरी आफ इमोशन में बताते हैं कि भावनात्मक विकास की सामान्य गति पशुत्व से मनुष्य की ओर होती है। पाशविक भावनाओं का जिक्र करते हुए फिलाडेल्फिया के. डी. ओ. हेब ''द बुक आफ साइकोलाजी'' में कहते हैं, पशुओं में भावनाओं का दायरा प्राय: कामुकता, घृणा, द्वेष, सन्तान के प्रति मोह आदि तक ही सीमित रहता है। इसी के अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति अपनी जनसंख्या में वृद्धि करने, भोजन खोजने आदि में होती है। डार्विन ने पशु व्यवहार की व्याख्या इसी परिधि में की है।

विकास के परिणामस्वरूप मनुष्य पर भावनात्मक व व्यवहारिक क्षेत्र भी विकसित होते हैं। किन्तु इस विकास के दौरान ये पाशविक संस्कार पूर्णतया नष्ट नहीं होते अपितु अवशेषी रूप में मन के अवचेतन स्तर में सतत् बने ही रहते हैं।

मनोविद् फ्रायड ने इसी कारण अवचेतन को गतिशील और आदिम कहा है। इसको उसने दमित इच्छाओं और स्मृतियों का भण्डार बताकर मानव को बर्बर, बालक और पशु का प्रतिनिधि के रूप में निरूपित किया है। फायड की सीमित दायरे में सिमटी खोज को मनोविज्ञानी जुंग ने और अधिक फैलाया है। उनके अनुसार अचेतन व्यक्तिगत भी है और सामूहिक भी। व्यक्तिगत अचेतन में फ्रायड के अधोचेतन अवचेतन सम्मिलित हैं। सामूहिक अचेतन में मूल प्रवृत्तियाँ एवम् आर्चीटाइप्स हैं।

फ्रायड के अध्ययन की सीमाबद्धता इस कारण है कि उसने समूचे मानवीय व्यवहार को इसी अचेतन क्षेत्र से उपजी पाशविक भावनाओं के द्वारा संचालित बताया है। इसी को उसने मानवीय प्रकृति कहा है। जबकि वह मानवीय प्रकृति न होकर इसमें उत्पन्न विकृति है। कार्लजुंग ने उसकी विवेचना की संकीर्णता का कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि फ्रायड ने चूँकि सारे विकृत मानसिकता वाले मनोरोगियों का अध्ययन किया इसी कारण वह मात्र इसी पक्ष को देख सके।

तथ्य भी यही है अचेतन क्षेत्र जिसमें अवशेषी पाशविक संसार है, बाह्य उद्दीपन प्राप्त होने पर पाशविक भावनाओं को जन्म देते हैं। तद्नुरूप विचारण व क्रिया में भी पाशविकता की झलक दिखाई देती है।

श्री अरविन्द ने इस स्तर को अवचेतन कहा है। उनके अनुसार यह अवचेतन सभी परिवर्तनों का विरोध करता है। वह उस आलस्य, दुर्बलता, अस्पष्टता और अज्ञान को सतत् स्थिर रखता और वापस लाता है। जो कि भौतिक शरीर मानस और प्राण को प्रभावित करता है अथवा छिपे हुए भय, इच्छाओं, क्रोध और वासनाओं को जाग्रत करता है।

फ्रायड ने अपना सारा मनोविज्ञान इसी क्षेत्र तक सीमित कर दिया है। अवचेतन स्तर के उपर्युक्त परिणाम बाह्य उद्दीपनों की सम्मिश्रित क्रिया के बाद ही घटित होते हैं। इसी स्तर में निहित पाशविक संस्कारों को नष्ट करने की प्रक्रिया भारतीय चिन्तन में मानसिक विकास के नाम से जानी जाती है। इसी विनिष्टीकरण की प्रक्रिया को वेदान्त ने मनोनाश का नाम दिया है।

मनोविश्लेषणवादी यह मानते हैं कि यौन वासनाओं व कला, धर्म, साहित्य का एक ही समान क्षेत्र अचेतन है। इस विरोधाभासपूर्ण उक्ति का समाधान और औचित्यपूर्ण दिशा दर्शन देते हुए श्री अरविन्द स्पष्ट करते हैं कि मानव जीवन की उच्चतर प्रक्रियाएँ, कला, धार्मिक व गुह्य अनुभव अचितेन स्तर से सम्बन्धित हैं। वे ''पेसेज आफ योग'' में बताते हैं कि अवचेतन नहीं अतिचेतन ही वस्तुओं का यथार्थ आधार है वस्तुत: यही हमारी वास्तविक प्रकृति है।

किन्तु वर्तमान परिवेश में भावनात्मक स्तर, व्यावहारिक क्रियाकलापों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि उनका संचालन क्षेत्र अवचेतन होकर रह गया है। इसका एकमात्र कारण है—तद्नरूप बाह्य उद्दीपनों की भरमार। सिनेमा और टेलीविजन द्वारा नंगे, फूहड़ दृश्यांकन, अश्लील साहित्य की बाढ़ चारों तरफ व्याप रहा प्रदूषित व तनाव पूर्ण वातावरण जो अवचेतन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्हीं पशु संस्कारों को उद्दीप्त कर ऐसी भावनाओं का सृजन कर रहा है जिसे दुर्भावनाओं की संज्ञा दी जानी ही उचित है। परिणामस्वरूप दुर्विचार, दुश्चिन्तन में अभिवृद्धि हो रही है एवम् दुष्कर्म ही अबोध गति से मानव स्वभाव के अंग बनते रहे हैं।

मनोविदों ने भावनाओं की इस गति को रिट्रोग्रेसिव नाम दिया है। जिसका सीधा तात्पर्य है मनुष्य का पशुत्व की ओर उन्मुख होना। यदि यह गति देवत्व की ओर होती है तो इसे प्रोग्रेसिव कहा जाता है। किन्तु स्थिति की विपरीतता के कारण प्रथम लक्षण अधिक उभरता दिखाई देता है।

भौतिकवादी सभ्यता जिस राष्ट्र, जिस समाज व जिस क्षेत्र में जितनी अधिक बढ़ी है उतने ही अधिक अवांछनीय उद्दीपन जन-मानस के अवचेतन स्तर को प्राप्त हुए हैं। तदनुरूप विचार और व्यवहार भी अधोमुखी बना है। मनोविज्ञानियों ने भारत की स्थिति का सर्वेक्षण करने के उपरान्त बताया है कि यहाँ के बड़े नगर जो भौतिकता की दृष्टि से उन्नत व सक्षम माने जाते हैं, उसी अनुपात में पाशविक उद्दीपन निस्सृत कर रहे हैं। अवचेतन के ऊपर इनकी क्रिया उसी के अनुपात में पाशविक घटनाओं, अपराधों की बाढ़ पैदा कर रही है।

मनःशास्त्री इंराप्रोगोफ ने अपने ग्रंथ "साइकोलाजी एल ए रोड टू पर्सनल फिलासफी" में कहा है कि भोगवादी संस्कृति जिस गति से बढ़ेगी उसी गति से जन मानस का अवचेतन सतत् पाशविक भावनाओं को जन्म देने वाले उद्दीपन प्राप्त करता रहेगा। परिणाम स्वरूप विचारणा व क्रिया भी पशुत्व की ओर गति करेगी। ऐसी स्थिति में हिंसा, अपराध, विघटन बढ़ते ही रहेंगे। इनको रोकने के लिए किये जा रहे सभी उपाय उसी तरह सिद्ध होंगे जैसे किसी पेड़ को बचाने के लिए उसकी जड़ को न सींचकर खाद-पानी पत्तियों को देकर उन्हें हरा-भरा रखने का प्रयत्न करना। भावनाओं की इस रिट्रोग्रेसिव गति के कारण मानव समुदाय पुनः पशुओं के झुण्ड के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। अतः यह आवश्यक हो गया है कि जन मानस के चिन्तन की उल्टी दिशाधारा को उलटकर सीधा किया जाय। उसे सही दिशा में सोचने और करने को विवश किया जाय। भावनाओं के परिष्कार में हुई उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ निहित हैं।

आत्म-शक्ति का उपार्जन एवं सुनियोजन

बाहर की वस्तुओं के सम्बन्ध में मनुष्य को बहुत सी जानकारियाँ रहती हैं। उनके द्वारा होने वाली हानि तथा उठाए जा सकने वाले लाभों का भी सहज बुद्धि से अता-पता रहता है, किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि अपने आपके संबंध में नगण्य जानकारियाँ ही रहती हैं। जो जाना जाता है उससे लाभ कैसे उठाया जाय और हानि से कैसे बचा जाय, इस सम्बन्ध में भी इतना ही परिचय होता है जिसे वस्तुस्थिति की तुलना में नगण्य ही कहा जा सके।

शरीर के छोटे-बड़े अंग-अवयवों को भली प्रकार देखा-समझा भी नहीं जाता, इतने पर भी उनकी सशक्तता आश्चर्यजनक होती है। किसी बड़े मिल कारखाने को चलाने में जितनी बिजली खर्च होती है उसकी अपेक्षा शरीर संचालन में उनके कल-पुर्जों को गतिशील रखने में ऊर्जा कहीं अधिक खप जाती है। फिर भी मोटी दृष्टि में इस उपयोग कुछ पता नहीं चलता और लगता है कि शरीर अपने आप जीवित है। इसका ढर्रा अपने आप चल रहा है। खाने-सोने का क्रम अनायास ही चलता रहता है। एक महिला घरेलू काम-काज करने में जितनी शरीर-शक्ति खर्च कर लेती है वह इतनी होती है कि उसके बल पर समूचे-भूमण्डल की कई परिक्रमाएँ लगाई जा सकती हैं। हृदय, आमाशय, गुर्दे आदि अवयव निरन्तर कार्यरत रहकर जितनी सामर्थ्य खर्च करते हैं, उसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि मोटी जानकारी की तुलना में वह हजारों गुनी अधिक होती है। इस विद्युत उत्पादन और उपयोग का लेखा-जोखा लिया जा सके तो प्रतीत होगा कि बाहरी दुनिया के बारे में हम भले ही कुछ आधा-अधूरा जानते हों, पर अपने सम्बन्ध में जितना समझा गया है उसे पर्वत की तुलना में अणुमात्र ही समझा जाना चाहिए।

मानसिक शक्ति के सम्बन्ध में भी यही बात है। सरकस में अनौखी करामातें दिखाने वाले, खेल के मैदानों में सामर्थ्य के कीर्तिमान स्थापित करने वाले जितने आश्चर्यजनक लगते हैं उससे कहीं अधिक मस्तिष्क की चेतन सत्ता है। वैज्ञानिक, दार्शनिक, कलाकार, मनस्वी जो प्रस्तुतीकरण करते रहते हैं उससे प्रतीत होता है कि मानसिक सूझबूझ लगती तो नगण्य है, पर उसकी कृतियों का चमत्कार किसी बड़े से बड़े कौतूहल से बढ़कर है। व्यसनी, प्रपंची अपराधी जैसी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं उसे देखते हुए बाजीगर की उपमा दी जा सकती है। शरीर से लेकर मानसिक क्षमता का समग्र आकलन कर सकना तथाकथित समर्थ व्यक्ति के लिए भी कठिन है जो उनका धारणकर्त्ता, नियोक्ता, प्रयोक्ता माना जाता है। चेतना ही है जो कुछ क्षण के लिए अवरुद्ध हो जाय तो समझना चाहिए कि समूचा खेल देखते-देखते बिखर गया। कुछ क्षण पहले का जीवित व्यक्ति इस स्थिति में पहुँचते भी देखा गया है जिसे मरते ही जल्दी से दूर हटाने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न किया जाय। शरीर अद्भुत है, उसी का पुरुषार्थ और रसास्वादन है जो जड़ समझे जाने वाले पदार्थों को सचेतन से भी अधिक सरस अनुभव करता है। अशक्त को शक्तिशाली बना देता है। मनुष्य ही है जो परमाणु जैसी नगण्य इकाई को शक्ति सत्ता के रूप में प्रकट करता है। फिर सचेतन के सम्बन्ध में तो कहा ही क्या जाय? वह अद्भुत है। स्रष्टा की असीम क्षमता उसकी छोटी सी दिखने वाली इकाई में लगभग पूरी तरह समाई हुई है। जड़ पदार्थों को सशक्त, सक्षम और अनुभूतिमय बना देने में उसी का कौतूहल काम करता देखा जा सकता है।

इस सचेतन सत्ता को प्राण कहते हैं। प्राणियों की चित्र-विचित्र हरकतें—हलचलें मात्र इसीलिए दृष्टिगोचर होती हैं कि उनमें प्राण की सशक्तता काम करती है। यदि वह क्षीण हो जाय तो समझना चाहिए कि अशक्ति के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं बचा। दुर्बल, दीन, असहाय, असमर्थ मात्र उन्हें कहते हैं जिनकी चेतना लड़खड़ा जाती है। तब फिर शरीर के अंग-अवयव भी जीवित रहने पर भी निर्जीववत् दीख पड़ते हैं। इसको शरीर से सम्बन्ध छूट जाना कहते हैं, जिसे जीवन का अन्त कहा जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यदि चेतना शरीर और मन पर अपना समुचित आधिपत्य बनाए हुए हो तो फिर काय-कलेवर के दुर्बल रहने पर भी व्यक्ति असीम सामर्थ्य का धनी बना रहता है। गान्धी जी की ऊँचाई पांच फुट दो इंच थी और वजन मात्र ९६ पाउण्ड। इतने पर भी उनकी चेतना इतनी समर्थ थी कि करोड़ों जनसाधारण में प्रचण्ड प्राण फूँका। व्यापक जन-मानस का स्तर कुछ से कुछ बनाकर दिखाया। समर्थ शासकों को धूल चटाने में सफल रहे। विश्व के कोने-कोने से अपने ढंग की अनौखी चेतना का संचार किया। यह शरीर या बुद्धि का नहीं प्राण चेतना की समर्थता का ही चमत्कार था। ऐसे उदाहरणों की इस संसार में कमी नहीं, जिनकी प्राण चेतना ने साधनों का एक प्रकार से अभाव रहते हुए भी असाधारण उपलब्धियों का पर्वत खड़ा कर दिखाया। तपस्वियों और सिद्ध पुरुषों द्वारा व्यक्तियों, परिस्थितियों एवं वातावण को किस प्रकार समय-समय पर पलटा और सुधारा है यह विवरण भी इतिहास का सर्वविदित प्रसंग है।

मनुष्य को शक्ति का स्रोत कहा जा सकता है। वह प्राणियों को भी इच्छानुसार परिवर्तित करता और पदार्थों को भी कुछ से कुछ बना देता है। घटनाएँ दुख सुख की, हानि-लाभ की निमित्त कारण प्रतीत होती हैं। पर वास्तविकता इससे भिन्न है। चेतना की अनुभूतियाँ ही चित्र-विचित्र अनुभव करतीं और तरह-तरह के अनुभव कराती रहती हैं। घटनाएँ एवं वस्तुएँ तो उस प्रसंग में नाममात्र की भूमिका निभा पाती हैं।

शास्त्रकारों का कथन है कि जिसने अपने को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। जिसने अपनी सत्ता और महत्ता का परिचय प्राप्त करने से लेकर प्रयोग करने तक की विद्या को जान लिया उसे समग्र सत्ता-सम्पन्न एवं अति महत्वपूर्ण ही समझना चाहिए।

सम्पदा किसके पास कितनी है? कहाँ है? उसे किस प्रकार प्राप्त किया जाय? पाने के उपरान्त उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग क्या है? यह सब जान लेना ही सम्पदा का होना और लाभ उठाना कहलाता है। जिनके पास यह जानकारी-लाभ पाने का उपक्रम है, जिन्हें ऐसी कुछ जानकारी नहीं है, उससे पैरों तले खजाना दबा पड़ा हो तो भी उसका कोई उपयोग नहीं। रत्नराशि पास में होने पर भी यदि उसे काँच का टुकड़ा भर समझा जाय तो व्यक्ति धनाध्यक्ष होते हुए भी गरीबी के दिन गुजारेगा। मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा चेतना पास होने का कारण आत्मशक्ति ही है। शरीर बल, बुद्धि आदि सभी उसके सामने तुच्छ हैं।

सही उपयोग विदित होने पर साधारण सी घास-पात भी संजीवनी बूटी सिद्ध हो सकती है। जानकारी के अभाव में सब कुछ निरर्थक सा है। सही उपयोग ही समुचित लाभ उठाने की स्थिति विनिर्मित करता है। बखेरते चलने पर तो सब कुछ बरबाद हो जाता है। छलनी में दूध दुहने पर तो दुधारू गाय का मालिक भी हाथ मलता और दुर्भाग्य को कोसता है।

आत्मबल भी अन्य बलों की तरह लोगों के पास होता है, पर उसे संभालना, सँजोना न बन पड़े तो कुछ लाभ उठ सकना संभव नहीं। आतिशी शीशे पर सूर्य की किरणों को एकत्रित कर लेने पर आग जलने लगती है। बन्दूक की नली द्वारा सही निशाने पर छोड़ी गई बारूद भयंकर विस्फोट करती और अपनी शक्ति का परिचय देती है। आत्मशक्ति होने पर भी उसको एकाग्र किए बिना सामर्थ्य की वृद्धि नहीं होती। इसीलिए योग साधनाओं, तपश्चर्याओं द्वारा आत्मशक्ति को उभारना, एकत्रीकरण करना और वरिष्ठता का परिचय देना संभव होता है। एकाग्रता, एकान्त साधना, मौन साधना जैसे प्रयोग इसीलिए किए जाते हैं कि आत्म-शक्ति का चमत्कारी उपयोग बन पड़े। इसी आधार पर सिद्ध पुरुष, अनेकों दिव्य विभूतियों के अधिष्ठाता बनते हैं और वह कर दिखाते हैं जो सामान्यजनों की कल्पना से भी बाहर होता है। नर पशु के समतुल्य विचरण करने वाले भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि ऋद्वि-सिद्धियों के अधिष्ठाता बन सकें तो समझना चाहिए कि उनने देव पुरुष की स्थिति प्राप्त कर ली।

योगीजन अपनी दिव्य शक्ति का एक कण भी बिखरने नहीं देते। उसे सँभाल-सँजोकर रखते हैं। जबकि साधारण जन अपना समय निरर्थक क्रियाकलापों में बरबाद करते हैं। साधन वनों में एकान्तसेवी, गुफा निवासी प्रयोगरत सिद्ध पुरुषों द्वारा असाधारण क्षमताएँ कैसे प्राप्त की जाती हैं? इसका लम्बा इतिहास है। ऋषि-महर्षि यही करते थे। विगत दिनों भी योगी महर्षि रमण आदि ने इसी मार्ग पर चलते हुए सिद्धियाँ पाईं। अपना, दूसरों का, विश्व की विविध समस्याओं का समाधान किया। अनुभवी बताते हैं कि जिसका प्राण वश में है, उसके लिए सब कुछ उसकी मुट्ठी में है। विभूतियों की उसके पास कुछ कमी नहीं रहती। पार्वती, भागीरथ, ध्रुव आदि की तपस्याओं के प्रतिफल सर्वविदित हैं।

वह राजमार्ग अभी भी सभी के लिए खुला हुआ है। तप साधना के सत्परिणामों की परम्परा अभी भी यथावत् है। यह दूसरी बात है कि उन उपलब्धियों को कोई क्षुद्र प्रयोजनों में बाजीगरी जैसे कौतुक-कौतूहल दिखाये जायें अथवा उसके साथ जन समस्या के हितार्थ लोक-कल्याण के महान प्रयोजन पूरा कर सके। युग परिवर्तन की इस बेला में ऐसी ही संग्रहीत परिष्कृत और प्रखर आत्मशक्ति के प्रयोग की आवश्यकता समझी गई है।

मानवी अन्तराल में प्रसुप्त दिव्य-क्षमता

सामान्य मनुष्यों में न पाई जाने वाली आध्यात्मिक विशेषताओं को अतीन्द्रिय चेतना कहते हैं। प्रयत्न करने पर इन्हें हर कोई जगा सकता है, मनुष्य की विदित क्षमता सीमित है किन्तु अविज्ञात सामर्थ्यों का ल्मेई अन्त नहीं। शरीर साधारणतया अन्न, जल और वायु पर जीवित रहता है, पर यदि उसकी असाधारण क्षमताओं को जगाया जा सके तो अदृश्य जगत की वायवीय स्थिति में विद्यमान आहार सामग्री को आकर्षित करने से काम चल सकता है और जिस अन्न, जल और हवा के ऊपर सामान्य प्राणी जीवित रहते हैं उन्हें अनावश्यक सिद्ध किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन एक महात्मा ''पौहारी बाबा'' का विवरण प्रकाशित किया था कि वह बिना अन्न, जल के मुद्दतों से जीवित है। उनकी घोषणा को जाँचा गया और सही पाया गया था। समाधि लेकर कई हठयोगी गुफा में बन्द हो जाते हैं और लम्बी अवधि तक बिना अन्न, जल एवं हवा के जीवित रहते हैं। जिस स्थिति में बैठे थे उसी स्थिति में बने रहते हैं। मल-मूत्र विसर्जन करने एवं सोने, उठने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कितने ही हठयोगी रक्त-संचार एवं हृदय की धड़कन बन्द करके भी जीवित रहने के प्रमाण विशेषज्ञों के परीक्षणों के साथ दे चुके हैं। सामान्य मनुष्य जीवन से कई गुनी आयु वाले तथा असह्य शीत में निर्द्वन्द निवास करने वाले योगी अभी भी विद्यमान हैं।

योगशास्त्र में शरीर को असाधारण रूप में हल्का या भारी बना लेने, अदृश्य हो जाने जैसी सिद्धियों का वर्णन है। यदा-कदा इनके प्रमाण भी मिल जाते हैं। सामान्य अभ्यास में नट, बाजीगर शरीर साधना के ऐसे कौतुक, कौतूहल दिखाते हैं जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। यह 'अतिरिक्त' वस्तुत: सामान्य ही होता है। मूर्छित स्थिति में ऐसी अगणित विशेषताएँ मानवी काया में विद्यमान हैं जो दैनिक जीवन में दृष्टिगोचर न होने से असामान्य अथवा चमत्कारी दीखती हैं, पर वस्तुत: यहाँ चमत्कार कुछ भी नहीं है। जो कुछ हो रहा है, हो सकता है वह प्रकृति की नियत विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत ही होता है।

परमाणु शक्ति कहीं आकाश से नहीं टपकती है, सृष्टि के आरम्भ से ही उस अदृश्य कण में वह विद्यमान थी। मूर्छित होने के कारण वह विदित नहीं होती थी। वैज्ञानिक उसे प्रयत्नपूर्वक जागृत करते हैं। फलत: वह अणु विस्फोट जैसे अवसरों पर अपनी जागृत क्षमता का परिचय देती है। समूचे शरीर के सम्बन्ध में यही बात है उसकी अतिरिक्त, असामान्य एवं विशिष्ट शक्तियों का कोई ठिकाना नहीं। जड़ परमाणु की शक्ति को देखकर चकित रह जाना पड़ता है फिर चेतना जीवाणु के भीतर कितनी क्षमता हो सकती है इसका अनुमान इसी गणित से लगाया जा सकता है कि जड़ की तुलना में चेतना को कितना अधिक महत्व दिया जा सकता है और समर्थ माना जा सकता है।

शरीर के उपरान्त मन का क्षेत्र आता है। मस्तिष्क उसका केन्द्र है और नाड़ी संस्थान के माध्यम से विस्तार सम्पूर्ण शरीर में देखा जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियों में अपने-अपने स्तर की सरसता और अनुभूतियाँ होती हैं। कर्मेन्द्रियों में अपने-अपने ढंग की कार्यक्षमता देखी जाती है। यह सब कुछ मन मस्तिष्क का ही चमत्कार है। आँखों के माध्यम से मस्तिष्क ही दृश्य देखता और उनसे किसी प्रकार का निष्कर्ष निकालता है। मस्तिष्क यदि अस्त-व्यस्त हो तो आँखों के खुले रहने और घटना-क्रम सामने से गुजरने पर भी दृश्य का समुचित निष्कर्ष न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकाला जा सकेगा। सौन्दर्य बोध आँखों का काम नहीं वरन् विकसित कलात्मक सम्वेदना की अनुभूति है। एक ही वस्तु को देखकर एक मनुष्य उसकी आकृति-प्रकृति मात्र को समझ पाता है जबकि दूसरा भावुक या अन्वेषक उसमें से सौन्दर्य सम्वेदना अथवा अन्यान्य विशेषताएँ अनुभव करता है। यह अन्तर आँखों की दृश्य शक्ति का नहीं वरन् मस्तिष्कीय चेतना की स्तर भिन्नता का है।

यही बात अन्य इन्द्रियों के सम्बन्ध में है। उनकी सामान्य सम्वेदनाओं का अनुभव भी स्थानीय नहीं, मस्तिष्कीय होता है। ज्ञान तन्तुओं को सुन्न कर देने पर रसास्वादन तो दूर, काट-पीट तक का पता नहीं चलता। कर्मेन्द्रियाँ भी मस्तिष्क का आदेश पाने पर सक्रियता एवं शिथिलता प्रकट करती हैं। यह तथ्य अब दिन-दिन अधिक स्पष्ट होता जाता है कि शरीर पर मन का पूर्णतया शासन है। आरोग्य शास्त्र अब धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँचता जाता है मनोविकार ही शारीरिक दुर्बलता एवं रुग्णता के प्रधान कारण होते हैं। विषाणुओं से, वात-पित्त-कफ से, अपच से, ऋतु प्रभाव से आहार-विहार से जितना प्रभाव शरीर पर पड़ता है उन सबके सम्मिलित प्रभाव की अपेक्षा अकेला मनोबल कहीं अधिक प्रभावित करता है। नवीनतम 'शोधों' ने मानसिक सन्तुलन को—हँसती-हँसाती, हलकी-फुलकी जिन्दगी को—आरोग्य रक्षा का सबसे बड़ा कारण और आधार माना है। रोगियों में से अधिकांश की मन:स्थिति ही विकृत एवं डाँवाडोल होती है। समर्थता प्रकट करने वालों में से कितने ही शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होते हुए भी मनस्वी एवं ओजस्वी होने के कारण शूरवीरों जैसे पराक्रम दिखाते हैं।

शरीर और मन का अविच्छिन्न सम्बन्ध होने से आरोग्य, दीर्घजीवन, पुरुषार्थ, सौन्दर्य, प्रतिभा, स्फूर्ति जैसे अनेक लक्षणों से मानसिक स्थिति का परिचय मिलता है। मन गिरा, हारा होने पर शरीर का गठन सही होने पर भी उसमें निर्जीवता, निराशा, थकान, उदासी छाई दीखती है और आकर्षण न जाने कहाँ चला जाता है। इसके विपरीत काली-कलूटी और गठन की दृष्टि से गई-गुजरी आकृति होने पर भी भीतरी उत्साह उस काया को असाधारण रूप से तेजस्वी और आकर्षक बना देता है। मुर्दों की आकृति देखकर उनकी मन:स्थिति जानना कठिन है, पर जीवित व्यक्ति का चेहरा देखकर उसकी आन्तरिक स्थिति का बहुत कुछ परिचय सहज ही मिल जाता है। यह मन का शरीर के माध्यम से अपनी स्थिति प्रकट करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

शरीर को कठपुतली की तरह नचाने वाला मन उसका केन्द्र-संस्थान मस्तिष्क अपने आप में कितना विचित्र और विलक्षण है यह उसके गठन और क्रिया-कलाप को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्य बुद्धि-वैभव का विकास-विस्तार जीवन की अनेकानेक सफलताओं का द्वार खोलता है। उसमें त्रुटि रह जाने पर मनुष्य को पिछड़ी स्थिति में रहना पड़ता है और पग-पग पर असफलताओं का मुँह देखना पड़ता है। ऐसे ही लोग उपेक्षित एवं उपहासास्पद स्थिति में पड़े हुए गुजर करते हैं; जीवन की बहिरंग परिस्थितियों को मन:स्थिति ही प्रभावित करती है। उसी की प्रतिक्रिया से व्यक्ति आकर्षित एवं उदासीन बनते हैं। सहयोग एवं असहयोग का सिलसिला भी इसी आधार पर चलता है। सफलताओं एवं असफलताओं के चक्र भी इसी धुरी पर घूमते हैं।

यह चर्चा शरीर पर, दैनिक जीवन पर पड़ने वाले मन:स्थिति के प्रभाव की है। आगे की बात और भी अधिक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण है। प्रकट व्यक्तित्व और उसके व्यापक प्रभाव की आधारभूत सत्ता, मानसिक चेतना का अपना स्वरूप देखने, समझने का प्रयत्न किया जाता है तो आश्चर्य चरम सीमा तक पहुँच जाता है। छोटे से शरीर में कैद तनिक सी चेतना हर दृष्टि से नगण्य है। उसका प्रभाव और कार्यक्षेत्र अपनी छोटी-सी सत्ता तक सीमित दीखता है, पर अन्वेषण यह बताता है कि यह समष्टि मन:तत्व के साथ भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है और चेतना के समुद्र में से जब जितना—जिस स्तर का-आदान-प्रदान चाहती है उतना निर्बाध रूप से उपलब्ध कर लेती है।

मस्तिष्कीय संरचना लगभग उसी स्तर की है जैसी कि पृथ्वी के ध्रुव प्रदेशों की। अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान के लिए इन दोनों छोटे क्षेत्रों की असाधारण रूप से अद्भुत होती है। मस्तिष्क की स्थिति भी ऐसी है। उसके सामान्य दीखने वाले वसा कण-वस्तुत: अनौखे चुम्बकत्व से भरे पूरे हैं। उनकी विद्युतीय ऊर्जा यों थोड़ी बहुत तो इलेक्ट्रोकार्डियोफोन जैसे छोटे उपकरणों से भी जानी, नापी जा सकती है, पर वस्तुत: वह चेतना स्तर की होने के कारण यान्त्रिक पकड़ एवं परख से बहुत आगे की है। यन्त्रों में जीवात्मा, जीवन तथा उसके सम्वेदनात्मक उतार-चढ़ावों को जताने का कोई उपकरण निकल नहीं सका है और भविष्य में वैसी संभावना भी नहीं है। क्योंकि भौतिक यंत्र मात्र पंचभूत प्रकृति के बने जड़ शरीर की हलचलें भर नाप सकते हैं। चेतना का स्वरूप और सम्वेदनाओं का प्रभाव यन्त्रों की पकड़ में नहीं आता।

मस्तिष्क घटकों का चुम्बकत्व जीवाणु को जितना प्रभावित करता है उतना तो प्रत्यक्ष से जाना भी जाता है और उतने को भी ऐसा माना गया है जिसकी तुलना में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यान्त्रिक विद्युत का स्तर बहुत ही घटिया बैठता है। इसकी गहरी परतें तो दो ही प्रकार से जानी जा सकती हैं। एक तो उसी स्तर की विकसित चेतना, योग दृष्टि—उसे परख सकती है। दूसरे उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के चमत्कारी घटना-क्रमों को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस सामान्य के पीछे कुछ असामान्य काम कर रहा है।

इस विश्व के कण-कण में अजस्र शक्ति का भण्डार भरा पड़ा है, पर वह है प्रसुप्त स्थिति में। छोटे स्तर के प्राणी उसमें से बहुत ही स्वल्प मात्रा की जानकारी रखते हैं। शरीर यात्रा के लिए प्रकृत पदार्थ जिस प्रकार काम आते हैं वे उतना भर जानते हैं। विकसित मानवी चेतना ने अग्नि का उपयोग, कृषि, चिकित्सा आदि प्रयोजनों में काम आने वाले रहस्यों को प्रयत्नपूर्वक जाना और लाभ उठाया। अब तो विज्ञान की गगनचुम्बी प्रगति हो चुकी है और एक के बाद एक दैत्य उपकरण उसके हाथ में आ गये हैं। भविष्य में इससे भी अनेक गुनी शक्ति हाथ में आ सकती है। इन उपलब्धियों के पीछे तथ्य इतना ही है कि विकसित चेतना ने प्रकृत पदार्थों के पीछे प्रसुप्त स्थिति में पड़ी शक्ति को पहचाना और उसे जाग्रत करके अपना काम बनाया। जीवाणु सत्ता के बारे में भी यही बात है। शरीर में विद्यमान विभिन्न वर्गों के जीवाणुओं पर शोध हो रही है और टैस्ट ट्यूबों में मनचाही आकृति-प्रकृति के मनुष्यों के अभिनव-सृजन का प्रयत्न चल रहा है। यह प्रसुप्ति के जागरण की चेष्टा भर है। मस्तिष्कीय क्षेत्र के प्रधान रूप से परिलक्षित होने वाली चेतना को जिन घटकों में काम करते देखा गया है वहाँ की खोजबीन भी उसी उत्साहपूर्वक चल रही है। अतीन्द्रिय चेतना के चमत्कार प्रत्यक्ष होने लगे हैं और समझा जाने लगा है कि मस्तिष्क की स्थिति जीवनयापन के सामान्य क्रिया-कलाप पूरे करने जितनी सीमित नहीं है अपितु उसके पीछे एक से एक बड़ी अद्भुत सम्भावनाएँ झाँकती देखी जा सकती हैं।

साधारणतया परमाणु में भार, घनत्व, विस्फुटन, चुम्बकीय क्षेत्र आदि भौतिक परिचय देने वाले लक्षण होते हैं। पर अब किशोरावस्था में प्रवेश करते हुए विज्ञान की पकड़ में ऐसे सूक्ष्म विद्युतीय कण आ गये हैं जिनमें भौतिक परमाणु में पाया जाने वाला एक भी लक्षण नहीं है। फिर भी वे प्रकाश की गति से शरीरों के भीतर और पोले आकाश में निर्बाध भ्रमण करते रहते हैं । वे भौतिक परमाणुओं को वेधकर आर-पार निकल जाते हैं। पदार्थ की कोई दीवार उन्हें रोक तो नहीं पाती, पर यदा-कदा उनमें टकराव उत्पन्न होते देखा गया है। इस टकराव के अवसर पर ही उनका अस्तित्व अनुभव में आता है। गणितशास्त्री एड्रियाड्राब्स आदि मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने उनको 'न्यूत्रिनी' कहा है। दूसरे वैज्ञानिकों ने इसी जाति के 'साइन्नोन' कणों के अस्तित्व का प्रतिपादन किया है। यह सोचा जा रहा है कि सम्भवत: न्यूत्रिनी एवं साइन्नोन कण ही मस्तिष्क के सामान्य न्यूरोन कणों के साथ साँठ-गाँठ करके अतीन्द्रिय चेतना उभारने का पथ-प्रशस्त करते हैं।

अब न्यूत्रिनी कणों का प्रभाव मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना और तन्तु समूह पर क्या हो सकता है इसकी गहरी खोजें चल रही हैं। वैज्ञानिक एक्सेल फरसेफिल का कथन है कि मानसिक चेतना पर वे जब प्रभाव डालते हैं और वहाँ एक नई जाति के ऊर्जा कणों का जन्म होता है जिन्हें माइन्जेन' नया नाम दिया गया है। अनुमान है कि यदि इनका उद्भव और विकास मस्तिष्क में होने लगे तो मनुष्य का अवचेतन मन ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के साथ सम्बद्ध होकर अपनी ज्ञान परिधि और क्रियाशक्ति असीम कर सकता है। तब शरीर बन्धनों के कारण उसकी सीमित क्षमता के असीम बनने में कोई कठिनाई न रहेगी।

जीव विज्ञानवेत्ता प्रो. फेंक्र ब्राउन की लम्बी शोधें इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि जिस प्रकार हमारे इर्द-गिर्द हवा भरी है उसी प्रकार इस ब्रह्माण्डव्यापी ऊर्जा के समुद्र में सृष्टि का प्रत्येक प्राणी जीवन प्राप्त करता है। उस महान प्रसारण की प्रत्येक प्राणी एक छोटे रेडियो रिसीवर की तरह अपनी पात्रता के अनुरूप ग्रहण करता है और उसमें अपना उपार्जन सम्मिलित करता है। इस प्रकार हर प्राणी अथवा पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए एक ही संयुक्त सत्ता का अंश है। भिन्नता के बीच एकता के वेदान्त सिद्धान्त को अब क्रमश: विज्ञान के क्षेत्र में भी मान्यता मिलती चली जा रही है।

मनुष्यों में जो अन्य प्राणियों से इतर दृष्टिगोचर होती है, जिसे शरीर संवेदना से आगे की चेतना कहा जा सकता है। यह आखिर है क्या? इस सम्बन्ध में शोधकर्त्ताओं ने कई निष्कर्ष निकाले हैं। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के डॉ० राबर्ट वेकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्डव्यापी विद्युत चुम्बकीय शक्ति विश्व के प्रत्येक पदार्थ को, जड़ चेतन को, अपने साथ जकड़े हुए है। विश्व की प्रत्येक इकाई उसी समष्टि की एक घटक है। अस्तु, पृथकता के बीच सघन एकता विद्यमान है और उस एकता के कारण ही पदार्थों और प्राणियों में दृश्य-अदृश्य आदान-प्रदान होता है। जो क्रम आये दिन अनुभव में आता रहता है वह सामान्य और जो यदा-कदा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दीख पड़ता है वह असामान्य, अतीन्द्रिय या चमत्कार कहा जाता है।

सृष्टि के रहस्यों की गहरी परतों के ऊपर चढ़े हुए आवरणों को उठाते हुए मनुष्य प्रकृति की अद्भुत क्षमताओं का अधिपति किस आधार पर बनता चला जाता है? उसने जल, थल और नभ पर आधिपत्य स्थापित करने में सफलता क्यों कर पाई? मानवी मस्तिष्क के विकास की सम्भावना किस आधार पर बन सकी, जबकि अन्य प्राणियों के मस्तिष्क अपने क्षेत्र में मनुष्य से भी अधिक विशिष्ट स्तर के होने पर भी निर्वाह परिधि से आगे किसी विकास क्षेत्र में प्रवेश न कर सके? मानवी मस्तिष्क को प्रस्तुत उपलब्धियाँ कहाँ से क्यों कर प्राप्त हो सकीं? इस प्रश्न के सम्बन्ध में सामान्य से समाधान नहीं होता उसके पीछे कुछ असामान्य होने की बात सोचनी पड़ती है।

परा मनोविज्ञान अनुसंधान की दिशा में विधिवत् प्रयत्न लगभग एक शताब्दी से चल रहे हैं। इसका श्रीगणेश, लन्दन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च के रूप में हुआ। इसके तीन वर्ष बाद वैसी ही शोध सभा अमेरिका में भी गठित हुई उसका नाम रखा गया—'अमेरिकन सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' इंग्लैण्ड में हेनरी लिजविक, सर कानन डायल, सर अलीवर लाज, सर विलयम क्रुक्स जैसे मनीषियों ने इन प्रयोगों में गहरी दिलचस्पी ली। अमेरिका में हुए शोध प्रयत्नों में पिछली पीढ़ी के मनीषियों में विलियम जेम्स, मैक्डागेल का नाम अग्रिम पंक्ति में है। रूस के शरीर शास्त्री बी. एम. वेख्तेरेफ की खोजों ने परा मनोविज्ञान शोध को आगे बढ़ाने में भारी प्रयत्न किये हैं।

इन दिनों कितने ही विश्वविद्यालयों में परा मनोविज्ञान सम्बन्धी शोध कार्य बड़े उत्साहपूर्वक चल रहे हैं। कैलीफोर्निया की स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, नीदरलैण्ड की ग्रोनिगन यूनिवर्सिटी, हारवर्ड युनिवर्सिटी शिकागो यूनिवर्सिटी, ड्यूक यूनिवर्सिटी आदि में चल रहे शोध प्रयत्नों ने इस विज्ञान के नये अध्याय आरम्भ किये हैं और ऐसे प्रमाण एकत्रित किये हैं। जिससे प्रतीत होता है कि मनुष्य के काम-चलाऊ व्यवहार बुद्धि के अतिरिक्त और ऐसा भी बहुत कुछ है जिसे असामान्य और अद्भुत कहा जा सके। ऐसा क्यों होता है। अचेतन और उपचेतन मन की विलक्षण क्षमताओं का स्वरूप और कारण समझने में इन शोध प्रयत्नों से बहुत सहायता मिली है और भविष्य में अधिक जान सकने की सम्भावना का पथ-प्रशस्त हुआ है।

'फाउण्डेशन ऑफ रिसर्च ऑन दि नेचर ऑफ मैन' से सम्बद्ध इन्स्टीट्यूट फार पैरासाइकोलोजी ने परा मन:शक्ति के संदर्भ में अति महत्वपूर्ण शोध सामग्री एकत्रित की है।

ड्यूक विश्वविद्यालय के डॉ० जे० वी० राइन द्वारा लिखित पुस्तक 'न्यू फ्रंटियर्स आफ माइण्ड' में मस्तिष्कीय विलक्षणता पर गम्भीर प्रकाश डाला गया है। इन को विकसित करने पर प्राप्त हो सकने वाले लाभों की ओर अँगुलि निर्देश किया है।

परा मनोविज्ञान कभी जादुई कौतूहल समझा जाता था पर अब उसे संसार भर में विशुद्ध विज्ञान का दर्जा मिल गया है और प्राय: सभी देशों में अपने-अपने स्तर के शोध-संस्थान सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर यह तलाश कर रहे हैं कि रहस्य मानस के पीछे क्या सिद्धान्त और कौन तत्व काम करते हैं?

यह सारा ब्रह्माण्ड सामान्य भी है और असामान्य भी। आकाश की नीली छत में टिमटिमाते जुगनू उड़ रहे हैं और दो बड़े झाड़-फानूस उजाले बखेरने की ड्यूटी पूरी तरह कर रहे हैं। इतनी छोटी सामान्य व्याख्या अन्तरिक्ष की कर देना बालबुद्धि के लिए पर्याप्त है। असामान्य को जब खोजा जाता है तो ग्रह-तारकों और नीहारिकाओं की आकृति-प्रकृति का विस्तार देखते हुए चकित रह जाना पड़ता है। उनकी दूरी-चाल, कक्षा और विस्तृति का विवरण सामने आता है तो सहसा उन पर विश्वास करने को जी नहीं करता। सौर-मण्डल के सदस्यों का पारस्परिक आदान-प्रदान इतना महत्वपूर्ण है कि उसे देखकर लगता है जैसे एक ही शरीर के विभिन्न अवयव मिल-जुलकर किसी कार्य-व्यवस्था को पूरी करने में संलग्न हों।

सामान्य दृष्टि से मानवी शरीर और मस्तिष्क भी सामान्य है-उसे भौतिकी विश्लेषण के अनुसार चलता-फिरता पौधा अथवा कोटि-कोटि जीवधारियों की सैन्य शृंखला का एक नगण्य सा घटक कहा जा सकता है, पर जब उसके अन्तराल में प्रसुप्त क्षमता का थोड़ा सा परिचय मिलता है तो लगता है यह अद्भुत है, असामान्य है। यदि यह प्रसुप्ति जागृति में बदली जा सके तो बीज के वृक्ष बन जाने की तरह नर को नारायण स्तर की भूमिका निभा सकने की पूरी-पूरी सम्भावना विद्यमान है।

मनश्चेतना के उच्चस्तरीय आयाम

मानव मस्तिष्क की क्षमता असीम एवं अप्रत्याशित है। उसे समस्त शक्तियों, अतीन्द्रिय क्षमताओं का केन्द्र माना गया है। उसका पूरा नियंत्रण सारे शरीर पर होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। उसकी इच्छा से ही नाड़ी- संस्थान काम करता है और ज्ञानतंतुओं के माध्यम से उसी का वर्चस्व छोटे से लेकर बड़े अंगों पर छाया रहता है। मस्तिष्क के अरबों स्नायु-कोषों में से प्रत्येक की अपनी विशेषता, अपनी दुनिया और अपनी संभावनायें हैं। वे प्राय: अपना अभ्यस्त काम निपटाने भर में दक्ष होते हैं। उनकी अधिकांश क्षमता प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है। काम न मिलने पर हर चीज निरर्थक रहती है। इसी प्रकार इन ज्ञान-तंतुओं से स्नायु कोषों से दैनिक जीवन की आवश्यकतायें पूरा कर सकने के लिए आवश्यक थोड़ा सा काम कर लिया जाता है, तो उतना ही करने में वे दक्ष रहते हैं। यदि अवसर मिला होता, उन्हें उभारा और प्रशिक्षित किया गया होता तो वे अबकी अपेक्षा लाखों गुनी क्षमता प्रदर्शित कर सके होते। इस रहस्य को यदि जाना-समझा जा सके तो अबकी अपेक्षा मनुष्य हजारों गुनी अधिक विभूतियों से भरा-पूरा हो सकता है।

हमारे मस्तिष्क के भीतर जिस ऊर्जा का सतत् निर्माण होता रहता है, उसका क्रियाशीलता में उपयोग होना आवश्यक है, किन्तु जब उसकी क्रियाशीलता पर अंकुश लगाकर उसे अवरुद्ध कर दिया जाता है तो उसके परिणाम अनेकानेक मनोरोगों के रूप में सामने आते हैं। इस संदर्भ में सुविख्यात मनोवेत्ता मैस्लो का कहना है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास को अवरुद्ध करने से उसमें न्यूरोसिस जैसे रोग विकसित होते हैं। उनके अनुसार मस्तिष्क को स्वस्थ क्रियाशीलता के लक्ष्य को प्राप्त करने की चाह होती है, कोई योग्य कार्य करने का भाव जाग्रत होता है और जब व्यक्ति को उस योग्य और उचित कार्य करने से वंचित किया जाता है अथवा उसकी प्रगति में बाधा उत्पन्न की जाती है, तो न केवल उसका मानसिक संतुलन बिगड़ता है, वरन् वह रोग का आकार ग्रहण कर लेता है। मस्तिष्कीय क्षमतायें कुंठित होने लगती हैं और वह व्यक्ति ऊब, निराशा, निष्क्रियता एवं अकर्मण्यता जैसी मनोविकृतियों की चपेट में जकड़ने लगता है। इसका विस्तार क्रमश: उसी प्रकार होता जाता है, जिस प्रकार से कि एक तालाब के बँधे हुए जल पर काई का विस्तार होता है।

सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी एल्डुअस हक्सले ने मानव मस्तिष्क की संभावनाओं पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि मानवी मस्तिष्क अनेकानेक विभूतियों एवं क्षमताओं का भाण्डागार है। शरीरशास्त्री एवं चिकित्साविज्ञानी अभी तक मात्र उसके स्नायुकोषों और ज्ञानतंतुओं की चेतन परतों में सन्निहित क्षमताओं का ही थोडा-बहुत आकलन भर कर पाये हैं, पर उन विशिष्ट क्षमताओं को नहीं खोज पाये हैं, जो मस्तिष्क की अविज्ञात अचेतन परतों में छिपी दबी पड़ी हैं। उनके अनुसार मानव मस्तिष्क का एक भाग चेतन है तो दूसरा अचेतन। जिसमें अतीन्द्रिय सामर्थ्य से लेकर मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरों के भले-बुरे संस्कार दबे हुए रहते हैं। इस परत को सामान्यतया देखा नहीं जा सकता। इसी तरह उसका सर्वोच्च स्तर परम चेतन है, जिसकी पिटारी में पराशक्तियाँ, दिव्य विभूतियाँ बंद हैं। परम चेतन की प्रक्रियाओं का रुचिकर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उनने बताया है कि आर्कविशप वॉटले ने पाँच वर्ष की आयु में ही परिकलन की एक असामान्य क्षमता का विकास कर लिया था। वह कठिन से कठिन गणितीय प्रश्नों को अपने मस्तिष्क में हल कर लिया करता था, किन्तु नौ वर्ष की आयु में उसमें इस क्षमता का पूर्णत: लोप हो गया। प्रोफेसर सेफोर्ड दस वर्ष की आयु में इसी तरह गणित के कठिन प्रश्नों को मानसिक रूप से हल कर दिया करते थे जिनके उत्तर ३६ अंकों तक हुआ करते थे। उन्होंने भी इस सामर्थ्य को कुछ वर्षों में ही खो दिया था। बेंजामिन-फ्रेंकलिन ने जबकि उसकी आयु छ: वर्ष की ही थी, अपने पिता से पूछा था कि उसके जन्म का ठीक समय क्या है? उत्तर मिलने पर उसने मौखिक रूप से अपनी आयु की अवधि को सेकण्डों में रूपांतरित कर दिया था। इस गणना में दो लीप ईयर के हिसाब का भी ध्यान रखा गया था। इसी तरह की कितनी ही घटनायें सामने आती हैं, जिनमें पूर्व जन्म की स्मृतियाँ भी सम्मिलित हैं।

अब प्रश्न उठता है कि एक छ: वर्ष के बच्चे में इतनी क्षमता कैसे विकसित हो सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि वह क्षमता उसमें पूर्व से ही विद्यमान थी, जो कि हम सब में भी विद्यमान है, किन्तु हम उसका उपयोग नहीं कर सकते। यही बात हमें मानसिक चेतना के उच्चस्तरीय आयामों के अस्तित्व में होने का बोध कराती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे मस्तिष्क में कुछ 'हायर सर्किट्स' भी होते हैं। वाटले, सेफोर्ड, फ्रैंकलिन जैसे बच्चों का आकस्मिक रूप से इस सर्किटों से सम्बन्ध जुड़ गया था, किन्तु जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती गयी, वे जीवन की वास्तविक समस्याओं, आवश्यकताओं के निकट पहुँचते गये और वह क्षमता क्षीण होती गयी। यद्यपि इस क्षमता का सर्वथा लोप नहीं हो जाता, वरन् वह मानसिक चेतना की किन्हीं अज्ञात परतों में जा छिपती है। इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए विश्वविख्यात, भौतिकविद् आइन्स्टीन ने कहा था कि जब वे एकांत में शांतचित्त होकर किसी पर गहराई से विचार मंथन करते हैं तो उन्हें चेतना की उच्चस्तरीय गहन परतों में छिपे गूढ़तम् सूत्रों की जानकारी हस्तगत हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय ऋषि-मनीषियों ने आदिकाल से ही ऐसे उपाय-उपचार खोज लिये थे और कहा था कि योग, साधना, तप तथा एकाग्रतापरक ध्यान की प्रक्रियाओं से मानव की मस्तिष्कीय क्षमताओं-मानसिक शक्तियों में असीम वृद्धि हो जाती है। इससे मस्तिष्क में विशेष प्रकार के रसायनों का उत्पादन होने लगता है, जिससे मानसिक क्षमताओं का विकास स्वत: बढ़ जाता है। आज विज्ञान भी एक ऐसे कगार पर आ खड़ा हुआ है जहाँ पर मस्तिष्कीय विकास के विभिन्न पक्षों पर व्यापक शोध कार्य चल रहा है। मानवजाति इन दिनों एक अद्भुत मानसिक क्रांति के दौर से गुजर रही है। आवश्यकता मात्र सही और विधेयात्मक दिशा देने की है।

सामर्थ्य सम्पदा से भरा-पूरा मानवी अन्तराल

अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान न होने से मनुष्य उनका लाभ नहीं उठा पाता। शरीर बल, बुद्धि बल तथा अन्यान्य भौतिक सम्पदाएँ जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती हैं, प्राय: उन्हें ही करतलगत करने का प्रयास किया जाता है। शरीर और उससे जुड़ी इन्द्रियों की बनावट ही ऐसी है कि मनुष्य दृश्य अथवा प्रत्यक्ष लाभ देने वाले घटकों को ही अधिक महत्त्व देता है। फलत: उनसे सीमित ही लाभ उठा पाता है। इतने पर भी प्रकृति एवं चेतना से समन्वित, सर्वांगपूर्ण काय-संरचना में सन्निहित सूक्ष्म शक्ति स्रोतों का महत्त्व कम नहीं हो जाता। उनकी गरिमा एवं सामर्थ्य यथावत् है।

शरीर एवं बुद्धि की तुलना में मन अधिक सूक्ष्म, विलक्षण एवं सामर्थ्यवान् है। जीवन पर प्रमुख रूप से यही छाया रहता है। इसी कारण मन:संस्थान को मनुष्य के व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण घटक माना गया है। पर उसकी क्षमता का विकास विरले कर पाते तथा विरले ही उससे लाभ उठा पाते हैं। व्यक्तित्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं समर्थ घटक उच्च चेतन मन के उपेक्षित पड़े रहने से ही अधिकांश व्यक्तियों का जीवन व्यर्थ भटकाव में व्यतीत होता है। शरीर एवं बुद्धि से समर्थ होते हुए भी वे अपने जीवन को सही दिशा एवं प्रेरणा देने में प्राय: असमर्थ सिद्ध होते हैं।

भारतीय ऋषियों की पहुँच प्रकृति एवं चेतना की गहन परतों तक थी। उन्होंने भौतिक जगत एवं उससे जुड़े उपादानों को उतना ही महत्त्व दिया जितना कि शरीर व्यापार को गतिशील रखने के लिए आवश्यक था। शरीर और बुद्धि का मन न केवल संचालक है, वरन् मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण भी है, यह वे भली-भाँति जानते थे। तभी उनका यह उद्घोष था—"जीव के बन्धन और मोक्ष के विधान में मन ही प्रधान कारण है।" यदि उसका सुधार, सम्भाल एवं विकास कर लिया जाय तथा उसकी शक्ति को जीवन लक्ष्य की दिशा में नियोजित कर लिया जाय तो मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव न रह जाये। यही कारण था कि उनकी अधिकांश चेष्टाएँ जप, तप की प्रकियाएँ मानसिक परिष्कार, शोधन अभिवर्धन एवं विकास के लिए चला करती थीं। अतिमानवी शक्तियों का प्राकट्य भी उस युग में इसी कारण संभव हो सका था।

मन:शास्त्री भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता-निकृष्टता का केन्द्र-बिन्दु मानसिक चेतना के गहन अन्तराल में सन्निहित है। मन:संस्थान की इस सबसे गहरी अन्तिम परत को उन्होंने 'सुपर चेतन' कहा है। सुपर इसलिए कि उसकी मूल प्रवृत्ति मात्र उत्कृष्टता से भी भरपूर है। उसे यदि अपने वास्तविक रूप में रहने दिया जाय- अवांछनीयताओं के घेरे में जकड़ा न जाय तो वहाँ से अनायास ही ऊँचे उठने-आगे बढ़ने की ऐसी प्रेरणाएँ मिलेंगी जिन्हें आदर्शवादी या उच्चस्तरीय ही देखा जा सके। प्रकारान्तर से सुपर चेतन को ईश्वर के समतुल्य ही माना जा सकता है। वेदान्त में जिसे परिष्कृत अन्त:करण माना जाता है, उसी को विज्ञान की भाषा में 'सुपर चेतन' कहते हैं।

मनोविज्ञान के अनुसार मानव मन के तीन स्तर होते हैं, जिन्हें क्रमश: अचेतन मन-अनकान्शसमाइन्ड, अवचेतन मन-सबकान्शसमाइण्ड तथा चैतन मन- कान्शस माइण्ड के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इससे आगे उच्चस्तरीय विकसित परत को अतिचेतन सुपर कान्शस या सुपर माइण्ड कहा जाता है। अचेतन से अवचेतन और अवचेतन से चेतन मन को प्रेरणा और प्रकाश मिलता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि कारण से सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म से स्थूल शरीर प्रेरित होता तथा प्राण ऊर्जा प्राप्त करता है।

महर्षि अरविन्द के अनुसार सुपर चेतन उच्चतम् कोटि की आध्यात्मिक चेतना है। उनका कहना है कि उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन और ओवर माइण्ड से भी ऊपर सुपर माइण्ड का स्तर है। यह मन का ऐसा उच्चतम सोपान है, जिसका उपयोग अभी तक विरले लोग ही कर सके हैं। बुद्धि के धरातल से ऊपर उठकर मन के उच्चतम सोपान अतिमन पर पहुँचकर ही मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है।

वस्तुत: सूक्ष्मातिसूक्ष्म कहे जाने वाले मन का अस्तित्व अब मात्र कोरी कल्पना नहीं रह गया है। राकफेलर यूनिवर्सिटी न्यूयार्क के प्रख्यात न्यूरोसाइंटिस्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जोनाथन विन्सन ने कई वर्षों के लगातार अथक् प्रयास और श्रम-साध्य अनुसंधान करने के पश्चात् मानव मस्तिष्क में मन के निवास स्थान को खोज निकालने में सफलता पाई है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''ब्रेन एण्ड साइक'' में लिखा है कि मन का निवास स्थान ''लिम्बिक सिस्टम'' के भीतर होता है। यह तंत्र ही मन का प्रधान कार्यालय है, जो यह निर्णय करता है कि किन स्मृतियों, घटनाओं, आँकड़ों तथा किन बातों को सुरक्षित रखना है और किन्हें विस्मृति के गर्त में धकेलना है? उनके अनुसार अचेतन की परत मन के हृदय केन्द्र में स्थित होती है। यह मानसिक अनुभवों को अपने अंदर संकलित-संग्रहीत करता रहता है और अपनी अभिव्यक्ति योजनाबद्ध तरीके से समयानुसार सांकेतिक भाषा में प्रकट करता रहता है। विन्सन का कहना है कि अचेतन से भी असंख्य गुनी उच्चस्तरीय संभावनाओं से भरा-पूरा सुपर चेतन है। उसको नये सिरे से समझा-खोजा और उसके अभ्युदय का अभिनव प्रयास किया जाना चाहिए।

मनोविज्ञानी, नीतिशास्त्री, तत्वविज्ञानी, समाज-शास्त्री आदि सभी इस मिले-जुले निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि पतन पराभव से छूटने और वरिष्ठता, उत्कृष्टता उपलब्ध करने के लिए अतिमन की-सुपर चेतन की उच्चस्तरीय परतें खोजी-कुरेदी जानी चाहिए। पैरासाइकोलाजी, सुपर साइकोलाजी, मेटाफिजिक्स आदि माध्यमों से पिछले दिनों अचेतन की महत्ता बखानी जाती रही है और जगाने-उभारने के लिए तरह-तरह के प्रयोग-परीक्षणों की चर्चा होती रही है। दूरदर्शन, दूर श्रवण, विचार-संप्रेषण, प्राण प्रत्यावर्तन, भविष्य ज्ञान जैसे कितने ही कला-कौशल इस सन्दर्भ में खोजे और परखे गये हैं। इस दिशा में प्रयास चालू रखते हुए भी मूर्धन्य स्तर के मनीषी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि चेतना के उस उच्चतर परत की कुरेद-बीन की जानी चाहिए, जिस क्षेत्र की उपलब्धियाँ व्यक्ति और समाज में उच्चस्तरीय परम्पराओं का समावेश और नये युग का नया सूत्रपात कर सकने में समर्थ हो सकती है।

प्रख्यात मनःशास्त्री कॉलिन विल्सन का कहना है कि मन की परतों को समझने में कुछ गलती हुई है। दृश्य पक्ष चेतन के क्रिया-कलापों के रूप में सामने आता है, जो बहिर्मुखी इन्द्रियों का प्रायः पक्षधर रहता है। इन्दियों का रुझान उपभोग में होता है। वह चेतन मन को भी अपने अनुरूप खींचती हैं। फ्रायड ने यह देखकर ही प्रतिपादित किया था कि मनुष्य अन्य पशुओं की तरह मूल प्रवृत्तियों का गुलाम तथा इन्द्रियों का दास है। पर विल्सन का मत है कि अदृश्य पक्ष अचेतन तथा सुपर-चेतन की चमत्कारी सामर्थ्य से अपरिचित होने तथा उपयोग में न आने के कारण ही ऐसा सोचा जाता है। बोध हो सके तो मनुष्य अपनी हर विकृत इच्छा, आकांक्षा तथा उनसे संचालित होने वाले अवांछनीय क्रिया-कलापों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है।

प्रचलित फ्रायडवादी मनोविज्ञान से अलग सुपर साइकॉलाजी का प्रतिपादन करने वालों में अमरीकी मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो का नाम प्रमुख है। उनका मत है कि मनुष्य के अन्तराल में सुपर चेतन केन्द्र का अस्तित्व विद्यमान है, जो प्रसुप्त पड़ा है। इस प्रसुप्ति का कारण है उस केन्द्र से उठने वाली दिव्य प्रेरणाओं की उपेक्षा। इस केन्द्र से दिव्य प्रेरणाएँ कभी न कभी उभरती हैं, पर अचेतन का अभ्यस्त स्वभाव उन्हें दबा देता तथा व्यवहार में आने से रोक देता है। यदि उन्हें सुना और तद्नुरूप क्रिया-कलाप अपनाया जा सके तो मनुष्य अपनी सामर्थ्य को कई गुना बढ़ा सकता है। मैस्लो से ही मिलता-जुलता प्रतिपादन प्रसिद्ध विद्वान मित्या करागाजोव का भी है। उनके अनुसार श्रेष्ठता की भावना का उद्भव ही मानवी विकास का सही अर्थों में कारण बनता है। ऐसी संभावनाएँ सुपर चेतन से समय-समय पर निस्सृत होती रहती हैं, जिसे अधिकांश व्यक्ति प्रायः अनसुनी कर देते हैं। फलतः व्यक्तित्व विकास की संभावनाएँ धूमिल पड़ी रहती हैं।

''साइकॉलाजी ऑफ इन्ट्यूशन'' नामक अपनी पुस्तक में एमिली मारकाल्ट ने कहा है कि उच्च चेतन मन, शरीर एवं व्यक्तित्व का अतिसूक्ष्म एवं उच्चस्तरीय भाग है। ज्ञानेन्द्रियों और तर्क बुद्धि से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण समाधान सुपर चेतन मन की सहायता से मिल सकता है। इस तंत्र को उजागार कर लेने का अर्थ है एक ऐसे देवता का साथ पा लेना जो उपयोगी सलाह ही नहीं देता वरन् महत्वपूर्ण सहायता भी करता है।

प्रख्यात मनोविश्लेषक जुंग कहते हैं कि मात्र अचेतन ही सब कुछ नहीं है, वरन् इससे भी आगे की परत 'उच्च चेतन' का भी अलग अस्तित्व है। आदर्शवादी प्रेरणाएँ एवं उमंगें वहीं से उठती हैं। अचेतन तो अभ्यस्त आदतों का संग्रह-समुच्चय भर है। ये बुद्धि एवं साहसिकता से भी अधिक अग्रणी संकल्प शक्ति का गुणगान करने हैं और कहते हैं कि व्यक्तित्व को विनिर्मित करने में मनुष्य के विश्वासों का ही प्रमुख योगदान रहता है।

एडलर के मतानुसार, अचेतन की सुदृढ़ता देखते हुए उसके सुधार संदर्भ में किसी को निराश नहीं होना चाहिए। स्वसंचित संकल्प, आत्म-विश्वास और आदर्शों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रति आस्थावान बनने से उन मूल प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन कर सकना संभव है, जिन्हें चिरसंचित, दुराग्रही एवं अपरिवर्तनशील माना जाता है।

मन:शास्त्री विलियम मैकडूगल कहते हैं कि अचेतन से भी ऊँची परत 'अतिचेतन' या 'उच्च चेतन' की अभी जानकारी भर मिली है। अगले दिनों उसे अच्छी तरह जाना समझा जा सकेगा और यह कहा जायगा कि सामान्य जीवन-क्रम का सूत्र संचालन करने वाले अचेतन की कुंजी इस 'अति चेतन' के पास ही है। अगले दिनों जब उच्चचेतन का स्वरूप और उपयोग ठीक प्रकार समझा जा सकेगा तब व्यक्तित्वों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों से सम्बन्ध में वैसी कठिनाई न रहेगी जैसी आज है।''

मानवी अन्तराल में सन्निहित उच्च चेतन की महत्ता एवं उसकी महान संभावनाओं का प्रतिपादन विभिन्न मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से किया है। जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने घोषणा की थी कि ''स्वयं से परे हटकर स्वयं को देखना ही वस्तुत: सही ज्ञान की प्राप्ति है।'' पर क्या यह संभव है ?, क्या हम स्वयं को अपने शरीर चिन्तन की परिधि से निकाल बाहर कर सकते हैं ? जो शान्त चुपचाप खड़ा हो हमारी हर गतिविधि-हर परिस्थिति का अवलोकन करता रहे ? वस्तुत: यह क्षमता हमारे भीतर है जिसे हम 'सुपर माइण्ड कहते हैं, जो एक लाइट हाउस की तरह दूर-दूर तक अपनी घुमावदार किरणें छोड़ता रहता है, पर स्वयं शान्त, बिना विचलित हुए खड़ा रहता है।

दार्शनिक हेनरी वर्सो का कथन है कि समय की जटिलताओं को न सुविधा सम्वर्धन से सुलझाया जाय और न दाँव-पेंच से। प्रवीण बुद्धि कौशल ही पतन पराभव का निराकरण कर सकेगा। प्रस्तुत जटिलताओं और विभीषिकाओं का समाधान पाने के लिए उस 'महाप्रज्ञा' को जगाने की आवश्यकता है, जो अन्त:करण की गहराई में बसती है और ईश्वरीय प्रेरणाओं से मनुष्य को अवगत कराती है।

''मैन द अननोन'' और ''रिफ्लेक्शन ऑफ लाइफ'' के नोबुल पुरस्कार प्राप्त लेखक अलेक्सिस कैरेल ने कई स्थानों पर एक ही बात को दुहराया है कि प्रकृति के दोहन से भी बड़ा संसाधनों का क्षेत्र अन्त:करण की गरिमा उभारने का है। उस उपेक्षित क्षेत्र को नये सिरे से समझा एवं समुन्नत बनाया जाना चाहिए। विचार-बुद्धि की उपयोगिता कितनी ही क्यों न हो पर वह रहेगी सीमित है। मनुष्य के उच्च चेतना का विकास होने पर ही समस्याओं के समाधान और अभ्युदय, उत्थान का आधार खड़ा होगा। विश्व मनीषा को अपना ध्यान एक ही केन्द्र पर एकत्रित करना चाहिए कि मनुष्य को सहृदय बनाने के लिए उसकी प्रसुप्त उच्च चेतना को किस प्रकार जागृत किया जाय?

''हाट मेक्स ए लाइफ सिग्नीफिकेण्ट'' पुस्तक में सुप्रसिद्ध मन:शास्त्री विलियम मोक्स ने मनुष्य की सुपर चेतन परतों पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि मनुष्य के भीतर अतिमानवी सामर्थ्य विद्यमान है, जिन्हें करतलगत कर सकना संभव है। इसका आरम्भिक क्रियात्मक चरण है ढर्रे की गतिविधियों को उलटने तथा सूझ-बूझ से भरी दूरदर्शिता युक्त महानता के मार्ग का अवलम्बन करने के लिए संकल्पों को परिपुष्ट तथा दृढ़ करना। इच्छा शक्ति-संकल्प शक्ति की प्रबलता पशुवत् अभ्यस्त स्वभावों से छुटकारा पाने तथा आत्म विजय प्राप्त करने का प्रमुख आधार है। इसका सम्पादन तथा अभिवर्धन निरन्तर के अभ्यास से ही संभव है।

बाह्य परिस्थितियों एवं बुद्धि-वैभव को ही सब कुछ मानने की अपेक्षा भीतर झाँका जा सके तो मालूम होगा कि कितनी ही प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ अपने ही अन्दर मौजूद हैं जिनका प्राय: सदुपयोग नहीं हो पाता। आत्मविस्मृति के कारण इच्छाओं, आकांक्षाओं का सुनियोजन नहीं हो पाता। वे मात्र सामान्य प्रयोजन पूरा करने तक रह जाती हैं। सुपर चेतन की दिव्य प्रेरणाओं के अनुरूप उन्हें गतिशील किया जा सके तो महानत: को वरण कर सकना हर व्यक्ति के लिए सुगम हो सकता है।

अन्तराल की प्रचण्ड ऊर्जा

पृथ्वी की गहराई में प्रवेश करते जाने पर पता चलता है कि वहाँ अनादिकाल जैसी गर्मी अभी भी मौजूद है। आरम्भ काल में पृथ्वी भी अन्य ग्रहों के जन्म काल में पाई जाने वाली स्थिति में थी। उन दिनों वह आग का गोला थी। ठंडी होने का क्रम चला तो छोटी बड़ी दरारें बन गईं। वर्षा ने उन्हें भरा और जलाशय बना दिया। यह हलचलें ऊपर परतों को ही प्रभावित करती रहीं। वनस्पति और प्राणियों का उद्भव तथा विकास इसी ऊपरी परत पर हुआ।

पृथ्वी, वायु और पानी के कारण क्रमश: ठंडी हुई है। उसके मध्यवर्ती अन्तराल में प्रचण्ड गर्मी मौजूद है। वह बहते हुए गर्म लाल लोहे की तरह है। ऊपर से ठंडा घेरा उस गर्मी को कैद किये हुए है। उसकी मोटाई और मजबूती भी बहुत है। इतने पर भी प्रकृति के नियम उस आतप को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहते। गर्मी से हर वस्तुत फैलती है। पृथ्वी का गहरा भीतरी भाग भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वभावत: फैलना, आगे बढ़ना चाहता है। ऊपरी परत उसे कसे रहती है। फिर भी भीतर का लावा चैन से नहीं बैठता और वह अपने विस्तार के लिए रस्सा-कसी करता रहता है। बाहर निकलने के लिए कोई खिड़की चाहता है। यह प्रयास निरन्तर चलता है। तनाव की यह खोज रहती है कि उसे फूट पड़ने के लिए अवसर मिले। जहाँ वह कमजोरी देखता है वहीं चढ़ दौड़ता है और छेद बनाकर बाहर निकलता है। ज्वालामुखी इसी स्थिति का नाम है। वे जब फटते हैं तो लावा उगलते हैं। भीतर की आग ऊपर की ठंडी परतों को ऊपर उछालती है तो जमीन पर लावा बहने लगता है। वह सुरंग फटने की तरह आकाश में भी उछलता है और बड़े क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लेता है, वहाँ विनाशलीला खड़ी हो जाती है। वृक्ष, वनस्पति, मकान, आश्रय, जलाशय सभी उस मलवे से भर जाते हैं।

इस विस्फोट के समय प्रभावित होने वाले क्षेत्र थरथराते भी हैं। उस हड़कम्प को भूकम्प कहते हैं। धरती काँपती जैसी प्रतीत होता है। जमी हुई वस्तुएँ उलट-पलट जाती हैं। इस उलट-पलट में जो गिरता है, वह नीचे वालों को दाब दबोच देता है। साथ ही यह भी होता है कि जो कुछ भला-बुरा नीचे दबा था, वह उलटकर ऊपर आ जाय और धरातल की स्थिति इतनी बदल जाय कि पूर्व स्वरूप का अता-पता भी न चले।

आँका गया है कि हर वर्ष प्राय: २४ हजार सशक्त भूकम्प आते हैं। एक हजार के करीब ज्वालामुखी फटते हैं। चूँकि समुद्र पृथ्वी का दो तिहाई हिस्सा घेरे हुए हैं, इसलिए ज्वालामुखियों से भूकम्पों की संख्या में अनुपात क्रम की अपेक्षा वहाँ कुछ अधिक ही रहता है। कारण कि समुद्र की गहराई वाला जल मध्य भूतल की आग्नेय परत के समीप पड़ता है, वहाँ से सीलन, नमी, रिसन क्रमश: नीचे उतरती रहती है। आग में पानी का स्पर्श होने से भाप बनती है। भाप में अपेक्षाकृत दबाव अधिक होता है। यही कारण है कि भाप से बादल, रेलगाड़ियों के इंजन एवं घरेलू प्रेसर कुकर तक छोटे उपकरण काम करते हैं। भाप स्नान से मैल फूलने और छूटने का अधिक उपयुक्त लाभ मिलता है। उससे रोमकूप खुलते और स्वेद बिन्दु निकलते हैं। इसी को जमीन द्वारा साँस लिया जाना कहते हैं। मात्र ऊपर से ही हवा के झौंके, अन्धड़, चक्रवात नहीं आते, अविज्ञात रूप से धरती भीतर से भी उफनती रहती है। झरने फूटते हैं। नदियों के स्रोत खुलते हैं। बहुत जगह गर्म जल के स्रोत भी पाये जाते हैं। खोदने पर जलने वाली गैसें निकल पड़ती हैं। खनिजों की जो परतें कभी बहुत गहरी थीं वे नीचे के दबाव से ऊपर उठती हैं और धरातल के इतनी समीप आ जाती हैं कि उनका आसानी से पता लगाया जा सके। खोदकर खनिजों को ऊपर निकाला जा सके।

उपरोक्त वस्तुस्थिति को भूगर्भ विधा के उच्च कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं। भूकम्पों, ज्वालामुखियों एवं अन्य प्रकार से नीचे की सम्पदा ऊपर आने के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं। पर यह रहस्य किन्हीं विरलों को ही प्रतीत है कि विराट ब्रह्म की तरह मनुष्य की एकाकी सत्ता भी पृथ्वी की तरह ही विशाल रहस्यमय और समानान्तर है।

पृथ्वी की भीतरी आग्नेय परत ही बाहर आकर समीपवर्ती स्थिति को प्रभावित करती है और उसी से गुरुत्वाकर्षण उत्पन्न होता है। गुरुत्वाकर्षण न केवल धरातल पर चलने वाली गतिविधियों को प्रभावित करता है वरन् स्वयं पृथ्वी को भी अपनी धुरी पर घूमने तथा सूर्य परिक्रमा के लिए चल पड़ने के लिए आगे धकेलता है। उस परिभ्रमण की एक कक्षा भी बनती है ताकि सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों के मार्ग में व्यवधान न पड़े, टकराव न हो। यह गतिशीलता ही पदार्थों में प्रवेश करके उनके अणु-परमाणुओं को गति देती है और संसार का उत्पादन-अभिवर्धन-परिवर्तन क्रम चलाती हैं। संसार में जो कुछ सम्पदा, प्रगति, सुन्दरता दीख पड़ती है, उसका निमित्त कारण पृथ्वी के अन्तराल की ऊर्जा और उसके कारण उत्पन्न होने वाले दबाव को ही माना जाना चाहिए।

मनुष्य के अन्तराल में भी ऊर्जा केन्द्र हैं। उन्हें शरीर क्षेत्र में हृदय एवं मन:क्षेत्र में ब्रह्मरंध्र कहा जा सकता है। यह ऊर्जा जब प्रबल-प्रखर होती है तो शरीरगत समर्थता, बलिष्ठता, सुन्दरता के रूप में उगती है। मस्तिष्क क्षेत्र में जब वह सक्रिय होती है तो बुद्धिमत्ता, गुणवत्ता और विवेकशीलता के रूप में काम करते देखा जा सकता है। मानवी अन्तराल में दबी ऊर्जा को ही आत्म चेतना, प्रेरणा के रूप में समझा जा सकता है। वही उमंग, आकांक्षा, भावना के रूप में उभरती है। जब उसका स्तर उत्कृष्ट एवं ऊर्ध्वगामी होता है तो उसे श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा के रूप में भाव संवेदन स्तर की देखा जाता है। शरीर क्षेत्र में वही पराक्रम, कौशल, संयम बनकर काम करती है, उसकी समग्रता ओजस, तेजस् और वर्चस् के रूप में जानी जाती है। यह उसका सौम्य पक्ष है—सृजनात्मक। यही जब विद्रूप होने लगता है तो शरीर में आधि-व्याधि बनकर फूटता है। स्वभाव एवं चरित्र में दुष्टता, भ्रष्टता, अनाचार, आतंक, दुर्व्यसन, जैसे आसुरी कहे जाने वाले लक्षणों के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार का प्रकटीकरण ज्वालामुखी या भूगर्भ के भयावह उपद्रवों के समतुल्य समझा जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भीतरी अग्नि अन्त:चेतना है। यही प्राण है जिसके रहने तक शरीर जीवित रहता है। उसमें सौम्य पक्ष चिन्तन चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्ट आदर्शवादिता बनकर छलकता है। उसी के परिपोषण हेतु व्रत नियमों का निर्धारण, परिपालन आध्यात्मिक अग्नि क्षेत्र कहा जाता है।

पृथ्वी के अन्तराल के अग्नि का किस दिशा में निष्क्रमण हो यह प्रकृति परमेश्वर के हाथ में है। वह उसके सौम्य, भयावह निष्क्रमण की उपयोगिता समझता और व्यवस्था बनाता है। किन्तु मनुष्य अपनी ऊर्जा और उसकी दिशाधार का इच्छित उपयोग करने में स्वतंत्र है। वह अनुशासन में रहकर अपने जीवन काल और बुद्धिबल का उत्साहवर्धक उपयोग भी कर सकता है और उसके लिए यह भी सम्भव है कि घुटन असंयम, विद्रोह का मार्ग अपनाकर न केवल अपने लिए संकट उत्पन्न करे वरन् सम्बन्धित लोगों को भी उस विनाशलीला की चपेट में ले ले। आत्मिक अग्नि ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति और सम्पदा है उसे सही दिशा देना विवेकशील मनुष्य का अपना काम है।

अन्तराल में निहित सिद्धि वैभव

बीज में प्राण तत्व होता है। वही नमी और आरंभिक पोषक अनुकूलता प्राप्त करके अंकुरित होने लगता है। इसके उपरान्त वह बढ़ता, पौधा बनता और वृक्ष की शक्ल पकड़ता है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि उसे जड़ें जमाने का आवश्यक खाद, पानी व पोषण प्राप्त हुआ या नहीं। यदि उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती चलें, तो बढ़वार रुकती नहीं, किन्तु यदि बीज अपने स्थान पर बोरे में ही बन्द रखा रहे, उसे सुखाया और कीड़ों से बचाया जाता रहे तो वह मुद्दतों तक यथास्थिति अपनाये रहेगा। बहुत पुराना हो जाने पर काल के प्रभाव से वह हतवीर्य हो जायेगा अथवा घुन जैसे कीड़े लगकर उसे नष्ट कर देंगे।

बीज में उगने की शक्ति होती है, यदि वह पका हुआ हो। यदि उसे कच्ची स्थिति में ही तोड़ लिया गया है तो वह खाने के काम भले ही आ सके, बोने और उगने की क्षमता विकसित न होगी। वह देखने में तो अन्य बीजों के समान ही होगा पर परखने पर प्रतीत होगा कि उसमें वह गुण नहीं है, जो परिपक्व स्थिति वाले बीजों में पाया जाता है।

हर मनुष्य में प्राणशक्ति होती है पर उसकी मात्रा में न्यूनाधिकता बनी रहती है। यह इस बात पर निर्भर रहता है कि प्राणरूपी बीज को प्रौढ़ बनाने के लिए जानकारी अथवा गैर-जानकारी में परिपक्वता लाने वाले प्रयत्न होते रहे या नहीं।

मानवी प्राणशक्ति का विकास और परिपाक इस बात पर निर्भर है कि उसमें पूर्व संचित संस्कारों का समूह था या नहीं। गर्भधारण करते समय माता-पिता के रज-वीर्य में अभीष्ट उत्कृष्टता या परिपक्वता थी या नहीं ? उसे आरंभिक पोषण मिला या नहीं ? प्राण प्रक्रिया के अनुदान समुचित मात्रा में मिले या नहीं ? यह सब भ्रूणावस्था में पूरी की जाने वाली आवश्यकताएँ हैं। इसके बाद जब परिपक्व बालक संसार के खुले वातावरण में साँस लेता है और समीपवर्ती लोगों द्वारा विनिर्मित वातावरण का प्रभाव ग्रहण करता है तब भी उस स्थिति में मनुष्य प्रभाव ग्रहण करता है। खान-पान से, जलवायु से स्थूल शरीर के स्तर का निर्माण होता है किन्तु प्राण प्रभाव समीपवर्ती लोगों की चेतना से ही उपलब्ध होता है। खोटे और ओछे लोगों के सम्पर्क से व्यक्ति स्तर की दृष्टि से ऊँचा नहीं उठ सकता। माँसलता की दृष्टि से वह मोटा, पतला या सुन्दर, कुरूप हो सकता है, पर व्यक्ति में जो प्रतिभा पाई जाती है, विशिष्ट स्तर की विशेषता देखी जाती है। वह इस बात पर निर्भर रहती है कि सम्पर्क-वातावरण में किस स्तर की जीवट एवं क्षमता विद्यमान थी। अन्न-जल से रक्त-माँस बनता है किन्तु व्यक्तित्व विकसित करने की क्षमता उन लोगों में होती है, जो अपने बड़प्पन के कारण छोटों पर प्रभाव छोड़ते हैं। मनुष्य का स्वयं का चिन्तन-मनन भी इस संदर्भ में काम करता है। वह अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प शक्ति से भी अपने आप को प्रभावित करता है। पूर्व संचित संस्कार भी ऐसा वातावरण पाकर स्वत: उभरते हैं। ग्रीष्म ऋतु में घास सूख जाती है फिर भी जमीन के अन्दर उसकी जड़ों में किसी प्रकार नमी बनी रहती है। वर्षा होते ही वह जड़ें अनायास ही अंकुरित हो चलती हैं और तेजी से अपना विस्तार करती हुई जमीन पर फैलकर हरीतिमा बिखेरती हैं।

यह सब वे कारण हैं जिनके बलबूते विशेष साधन न बन पड़ने पर भी मनुष्य का आत्मबल विकसित स्थिति में देखा जा सकता है और उसे भी सिद्ध पुरुषों जैसी विभूतियाँ अनायास ही प्रकट होती हुईं, प्रकाश में आती दृष्टिगोचर हो सकती हैं। कई व्यक्ति योग, तप, साधना, अनुष्ठान जैसे कृत्य प्रयास न करने पर भी सूक्ष्म विशेषताओं से सम्पन्न पाये जाते हैं। यह उपहार उन्हें जन्मजात रूप से भी मिलता है अथवा नितान्त बचपन से आगे बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होने लगती है। यह अनायास का प्रकटीकरण भी संयोगवश नहीं होता। उसके पीछे ऐसे कारण सन्निहित होते हैं, जिन्हें घटनाएँ या प्रयास तो नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जा सकता पर अदृश्य और अविज्ञात कारण ऐसे होते हैं जिनके कारण कुछ विशेष व्यक्ति अपने में चमत्कारी क्षमताएँ प्रकट करते हैं किन्तु उनके साथी पड़ौसी उन विशेषताओं से वंचित बने रहते हैं।

प्रयत्न करने पर तो उसका लाभ कोई भी उठा सकता है। साहित्यकार, संगीतज्ञ, शिल्पकार, चिकित्सक, इंजीनियर आदि विशेषज्ञ अपने में यह विशेषताएँ अभ्यास द्वारा अर्जित करते हैं। पहलवान व्यायामशालाओं में, विद्वान पाठशालाओं में, शिल्पी कारखाने में आवश्यक अभ्यास करते हुए समयानुसार सुयोग्य बनते हैं। किन्तु आश्चर्य तब होता है जब प्रशिक्षण के अभाव में अथवा स्वल्प प्रशिक्षण के सहारे किसी-किसी की प्रतिभा अनायास ही फूट पड़ती है। उदाहरण के लिए मोजार्ट ८ वर्ष की अल्पायु में ही संगीतज्ञ बन गये थे। पास्कल १२ वर्ष की उम्र में प्रख्यात गणितज्ञों की श्रेणी में गिने जाने लगे थे। १३ वर्ष की किशोरावस्था में वुडरफ प्रसिद्ध कलाकार बन गये थे। संत ज्ञानेश्वर ने १६ वर्ष की आयु में गीता का भाष्य किया था तो सिख धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक देव १० वर्ष की छोटी अवस्था से ही भावपूर्ण सबद की रचना करने लगे थे। इन प्रतिभाओं को देखने पर मोटी दृष्टि से सुयोग, संयोग, भाग्य वरदान आदि समझा जाता है पर वस्तुत: उस अनायास के पीछे भी कारण होते हैं। भले ही यह प्रत्यक्ष घटनाक्रम सामने आया हो या न आया हो।

प्रयास-अभ्यास तो कई लोगों का सफल होता है। मनोयोगपूर्वक कड़ा परिश्रम करने पर तो कालिदास और वरदराज जैसे मूर्ख समझे जाने वाले व्यक्ति भी उच्चकोटि के विद्वान बन गये थे। सेन्डो और चाँदगी राम ने अपने गये-गुजरे स्वास्थ्य को ऐसा बना लिया था कि उनकी गणना विश्व के मूर्धन्य पहलवानों में होने लगी। अमेरिका का जैक ब्लाटिन पिछले दिनों कई वर्ष तक कैंसर से पीड़ित रहने के उपरान्त जब किसी तरह रोगमुक्त हुआ तो वह पहलवानी पर उतर आया। संकल्प, साहस और अभ्यास के सहारे उसने अपना शरीर बल इस स्तर तक बढ़ा लिया कि ओलंपिक कुश्ती की सुपर हैवीवेट का खिताब जीतकर न केवल अपने राष्ट्रीय गौरव को ऊँचा उठाया वरन् समूची मानव जाति के लिए एक अनूठा और प्रेरणाप्रद उदाहरण प्रस्तुत किया। यह प्रयास का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

किन्तु आश्चर्य तब होता है, जब प्रत्यक्ष घटनाक्रमों के रूप में अभ्यास न किये जाने पर भी दिव्य क्षमताएँ विकसित होती हैं। विश्व में ऐसे अनेकों व्यक्ति हुए हैं जिनमें यह प्रतिभा जन्मजात रूप से विकसित पाई गई है। हालैण्ड का क्रोसेट नामक एक बालक बचपन से ही भविष्यवाणियाँ करने के लिए विख्यात था। उसके द्वारा किये गये भविष्य कथन शत- प्रतिशत सही उतरते थे। इजराइल का यूरीगेलर अपनी अतीन्द्रिय क्षमताओं के लिए प्रसिद्ध है। भविष्य दर्शन की विशेषता के कारण संसार भर में जिन लोगों ने विशेष ख्याति अर्जित की है उनमें एण्डरसन, सेमवैंजोन, पीटर हरकौस, हंसक्रेजर आदि के नाम प्रमुख हैं। नास्त्रेदमस तो अपनी भविष्यवाणियों के लिए विश्वविख्यात ही है। फ्लोरेंस स्टर्न फेल्स नामक ८ वर्षीय बालिका में दिव्य दर्शन की क्षमता अनायास ही फूट पड़ी थी। इसका पता लोगों को तब लगा जब उसने सदियों पुरानी टूटी-फूटी एक कब्र के खोदे जाने की न केवल तिथि व समय बता दिया था वरन् उसमें सोये हुए व्यक्ति का नाम भी बता दिया था। वह कब्र विलियम जान्सन की थी जिस पर किसी का नाम तक नहीं खोदा गया था और न किसी को उसकी जानकारी थी। रजिस्टर के पुराने पन्नों को पलटने पर फ्लोरेंस द्वारा दी गई जानकारी सही निकली।

वस्तुत: इस संसार में अनायास कुछ भी नहीं होता है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस असाधारण प्रक्रिया के पीछे कोई अविज्ञात कारण रहे हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में नहीं देखा जा सकता है।

विशिष्ट क्षमताओं हेतु अन्त: का परिशोधन अनिवार्य

''राष्ट्रीय पूर्वाभास विभाग।'' यह अतीन्द्रिय क्षमता सम्बन्धी न्यूयॉर्क, अमेरिक में शोधशाला का वह प्रभाग है, जिसमें घटना से पूर्व उसका सही-सही आभास कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इस पर अनुसंधान कार्य चल रहा है। संस्था के संस्थापक एवं निदेशक डब्ल्यू. ई. कॉक्स ने इसी संदर्भ में अपनी एक आत्मकथा लिखी है। इसके ''प्रिकॉगनीशन् बिफोर इन्सिडेन्स'' अर्थात् घटना से पूर्व पूर्वाभास नामक अभ्यास में ऐसी ढेरों घटनाओं का वर्णन है, जिनकी उन्हें घटना से पूर्व ही जानकारी मिल जाती है।

ऐसी बात नहीं कि वे कोई अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न व्यक्ति हों। थे तो वे सामान्य व्यक्ति ही, फिर घटनाओं का पूर्वाभास कैसे हो जाता था? इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि कुछ अनहोनी होने से पहले ही उन्हें स्वत: इसकी अन्त:प्रेरणा हो जाती थी। यह प्रश्न किये जाने पर की क्या हर कोई इस प्रकार की अन्त:प्रेरणा प्राप्त कर सकता है? सकारात्मक उत्तर देते हुए वे लिखते हैं कि अवश्य ही ऐसा संभव है, पर इसके लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवनक्रम में चिन्तन चेतना और भावना में तनिक परिवर्तन करने, उन्हें उच्चस्तरीय बनाने की आवश्यकता है। ऐसा बन पड़ने पर यह संभव है, अपने दीर्घ अनुभव के आधार पर वे लिखते हैं।

इस निष्कर्ष पर वे इसलिए पहुँचे हैं क्योंकि वे स्वयं एक सन्त-सज्जन पुरुष हैं। अपनी आत्मकथा में इस आशय का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उत्तरार्ध जीवन में उन्होंने किसी व्यक्ति को कोई हानि पहुँचायी हो, यह बात तो दूर, उनने ऐसा विचार भी किया हो अथवा कभी कटु वाणी का प्रयोग किया हो, ऐसा कोई प्रसंग किसी को स्मरण नहीं है। अपनी पुस्तक ''माइ लाइफ एण्ड दि ग्रेस ऑफ प्रोविडेंस'' में जीवन की एक आरंभिक घटना का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि जब एक ट्रेन दुर्घटना का शुरू में मुझे पूर्वाभास हुआ, तो मैंने इसे मन का भय मात्र माना, पर कुछ दिन बाद जब वह दुर्घटना सचमुच घटित हुई तभी मुझे अपनी मनःशक्ति पर विश्वास हो सका।

वे कहते हैं कि इस घटना के बहुत दिनों तक सब कुछ सामान्य रहा। पूर्वाभास अथवा अन्तःप्रेरणा जैसी कोई विशेष घटना नहीं घटी। इसका आत्मविश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं कि संभवतः ऐसा उनकी तामसिकता की ओर रुझान के कारण हुआ हो, क्योंकि इन्हीं दिनों कॉक्स अपने एक मित्र की बुरी संगत में पड़ गये थे। शराब और माँस भोजन के अभिन्न अंग बन गये थे और देर रात तक क्लबों में समय बिताना एवं महिलाओं के साथ नृत्य करना यही उनका नित्य का कार्यक्रम था।

एक दिन उनके एक परिचित ने उनकी यह दुर्दशा देखकर कहा, ''कॉक्स ! तुम कहाँ थे और कहाँ पहुँच गये। क्या तुम्हारे दिवंगत माता-पिता को तुम्हारी यह दशा देखकर कष्ट नहीं पहुँच रहा होगा?''

वे लिखते हैं ''यह वाक्य क्या थे, दिन-रात मेरे मर्म को काँटे की तरह चुभते रहते थे और मैं छटपटाता रहता था, अपनी बुराइयों से त्राण पाने के लिए। बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे कर मैं अपनी बुराइयों से छुटकारा पा सका। जब पूर्णरूपेण मैंने उन पर विजय प्राप्त कर ली, उच्च जीवन की ओर अग्रसर हुआ, तो मुझे इतनी खुशी हुई, जितनी शायद नेपोलियन को आलप्स विजय पर भी न हुई हो। इसी के बाद से मेरी खोयी क्षमता पुनः प्राप्त हो गई और फिर मुझे घटनाओं का नियमित रूप से पूर्वाभास होने लगा।''

यह कॉक्स की आत्मकथा पुस्तक से उद्धृत कुछ अंश हैं, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि यदि आत्मशोधन कर अपनी भाव संवेदनाओं को परिष्कृत और उच्चस्तरीय बना लें, तो वह भी पूर्वाभास की क्षमता को अर्जित कर सकता है इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

अंतःशक्ति की विलक्षणता के तथ्य-प्रमाण

समुद्र की ऊपरी सतह पर ज्वार, सीपें और घोंघे ही मिलते हैं पर तल में इतनी मूल्यवान सम्पदा छिपी पड़ी है कि उसे प्राप्त कर लिया जाय तो पाने वाला मालामाल हो सकता है। समुद्री गोताखोर सतह पर नहीं गहराई में गोता लगाकर तह से मोती बीन लाते हैं। धरती की ऊपरी परत कूड़े-कचरे, धूल-मिट्टी और कंकड़ पत्थरों से भरी हुई है, पर उसे गहरे खोदते जाते हैं तो पानी से लेकर अनेकानेक प्रकार की बहुमूल्य खनिज सम्पदाएँ मिलती चली जाती हैं। रेत के एक कण का स्थूल मूल्य नगण्य जैसा है। बाजार में उसकी कीमत कुछ भी नहीं है, पर जब उसकी भीतरी शक्ति की कुरेद-बीन की जाती है तो सहज ही इस बात का पता चल जाता है कि पदार्थ का वह तुच्छातितुच्छ घटक शक्ति का महान् और अजस्र शक्ति भांडागार अपने में दबाये पड़ा है। परमाणु विस्फोट के समय उसकी शक्ति का लाखवाँ हिस्सा ही प्रयोग में आ पाता है, शेष भाग अन्तरिक्ष में विलीन हो जाता है। परन्तु परमाणु शक्ति के लाखवें हिस्से का भी जो प्रभाव और परिणाम देखने में आता है, उसी से पदार्थ की महान शक्ति के बारे में पता चलता है। परमाणु में निहित यदि सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया जा सके और उसे ध्वंस में लगाया जाय तो उतने से ही सारे भूमण्डल का विनाश हो सकता है। इसी प्रकार यदि उस शक्ति का प्रयोग सृजन कार्य में किया जाय तो इतनी ऊर्जा प्राप्त हो सकती है जितनी कि सूर्य से पृथ्वी को मिली है।

परमात्मा की यह सृष्टि विचित्र रहस्यों और अनबूझ पहेलियों से भरी पड़ी है। उन्हीं में से एक रहस्य यह भी है कि गहराई में जाकर जो कुछ खोज-बीन की जा सकती है, उससे इतना अधिक उपलब्ध किया जा सकता है, जितने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। स्थूल और बाह्य के प्रभाव तथा परिणाम स्वल्प हैं। स्थूल की गहराई में उतरकर जैसे-जैसे सूक्ष्म से सम्पर्क किया जाता है, उसी स्तर के अनुदान-वरदान मिलने लगते हैं।

मनुष्य यों दिखाई देने में अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत ही स्वल्प सामर्थ्य वाला दिखाई पड़ता है, पर उसके पास बुद्धि के रूप में एक ऐसी सूक्ष्म शक्ति विद्यमान है, जिसके बल पर ही वह अपने से बलवान, भीमकाय प्राणियों को पीछे छोड़ने के समर्थ हुआ और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्य प्राणियों की तुलना में अपनी दुनिया को अधिक उन्नत और विकसित बना सका है। मनुष्य समाज में ही कितने ही लोग बुद्धिबल के द्वारा सामान्य तथा पिछड़ी हुई हालत में आगे बढ़े, ऊँचे उठे और समर्थ-सम्पन्न व्यक्तियों की अग्रिम पंक्ति में जा बैठे। इसके विपरीत विरासत में प्राप्त हुई उच्च स्थिति में भी लोग बुद्धि बल के अभाव में पतन के गर्त में जा गिरे।

बुद्धि बल की सूक्ष्म सत्ता का यह आंशिक परिचय हुआ। मनुष्य में उससे भी चमत्कारी और रहस्यमयी क्षमताएँ विद्यमान हैं। यदि उन्हें उबारा और अर्जित किया जा सके तो सचमुच ही मनुष्य ईश्वर तुल्य बन सकता है। उस शक्ति को मनुष्य की अन्त:शक्ति कहा जा सकता है। यह शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान हैं, आवश्यकता उसे प्राप्त भर करने की है। योग साधनाओं का उद्देश्य मनुष्य की अन्त:शक्ति को अनगढ़ स्थिति से उबारकर उसे शुद्ध एवं प्रखर बनाना ही है। इस शक्ति को अर्जित और परिष्कृत कई-कई प्रकार की अलौकिक क्षमताएँ उत्पन्न की जा सकती हैं और उसका उपयोग सत्प्रयोजनों में करके अपना व समाज का इतना बड़ा हित साधन किया जा सकता है, जितना सामान्य भौतिक क्षेत्र में सम्पन्न किये जाने वाले पुरुषार्थ द्वारा सम्भव नहीं है।

समय-समय पर कई उदाहरण देखने में आते हैं, जिनसे मनुष्य की अन्तर्निहित इस क्षमता के प्रमाण मिलते हैं। विश्व-इतिहास में ऐसे अनेकों प्रसंग बिखरे पड़े हैं जिनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि मनुष्य सर्व-समर्थ और सर्व-शक्तिमान परमात्मा का पुत्र है तथा उसे अपने पिता द्वारा कई एक अमूल्य वरदान प्राप्त हैं। इनमें से कुछ प्रसंग तो इन दिनों काफी चर्चित रहे हैं। उदाहरण के लिए फ्रांस की एक लड़की ऐनेट फ्रेलन की पिछले दिनों प्राय: चर्चा होती रही। जब वह बारह वर्ष की आयु में थी उसकी चमड़ी पर सामने वाले व्यक्ति के मन की बातें, उसके विगत और भावी के बारे में कई बातें इस तरह उभर आती थीं, जैसे किसी ने कागज पर कलम से लिख दिया हो। यह अक्षर अपने आप ही उभरते थे और कुछ ही मिनट में गायब हो जाते थे।

दक्षिण अफ्रीका का एक साधारण-सा युवक पीटरवाम डेनवर्ग योग विद्या के अपने चमत्कारों के लिए काफी दिनों तक प्रसिद्ध रहा। २८ जुलाई, १९६९ को उसने न्यूकेसिल नगर में एक बड़ी भीड़ के सामने अपने इन चमत्कारों का प्रदर्शन किया। इसके कुछ वर्ष पूर्व वह चाय का एक छोटा-सा होटल चलाता था। वहीं से उसके हाथ में योग विद्या की एक पुस्तक लग गई। जिसे पढ़कर उसने योग के बारे में जाना। उस पुस्तक ने डेनवर्ग की उत्सुकता बढ़ा दी और वह ऐसे ग्रन्थों को खोज-खोजकर पढ़ने लगा। अपने इसी स्वाध्याय क्रम में उसने भारत को योगियों के देश के नाम से जाना। उसकी उत्कण्ठा इतनी बढ़ गई कि अपनी सारी जमा पूँजी समेटकर वह भारत चल दिया और हिमालय क्षेत्र में भ्रमण करता हुआ चमत्कारी योग विद्याएँ सीखता रहा।

हिमालय के अनेक योगियों से सम्पर्क कर, उसने सान्निध्य में रहकर डेनवर्ग ने अनेक विद्याएँ सीखीं। जब वह अपने देश लौटा तो वहाँ के लोगों ने उसे चमत्कार दिखाने के लिए कहा। पहले तो वह मना करता रहा, पर जब लोगों ने चुनौती, उलाहने दिये और व्यंग्य-परिहास किया तो वह एक तरह से विवश हो गया। न्यूकेसिल नगर में प्रदर्शन की व्यवस्था की गई। एक लम्बे-चौड़े चबूतरे पर पत्थर के दहकते कोयलों की लपटों में डेनवर्ग को देर तक चहलकदमी करनी थी। प्रदर्शन के लिए जोरदार विज्ञापन किया गया अस्तु, उसे देखने के लिए दूर-दूर से हजारों लोग एकत्रित हुए। भारी संख्या में उपस्थित दर्शकों से प्रदर्शन का विस्तृत मैदान भर गया। नियत समय पर प्रदर्शन हुआ और डेनवर्ग ज्वालाओं के बीच नंगे पैर करीब ४५ मिनट तक टहलता रहा। निकला तो उसके शरीर पर कहीं एक छाला भी नहीं था।

अन्त:शक्ति को जागृत करने में मन्त्र विद्या भी बड़ा महत्व रखती है। यों मन्त्र विद्या के नाम पर धूर्तता और ठगी भी कम नहीं है, उसकी आड़ में धूर्त लोग अपना स्वार्थ भी कम सिद्ध नहीं करते, पर इतने मात्र से ही यह नहीं मान बैठना चाहिए कि इस क्षेत्र में कुछ भी तथ्य नहीं है। एक अंग्रेज शिकारी डेविड लेजली ने अपनी अफ्रीकी शिकार यात्राओं के विवरणों की एक पुस्तक लिखी है। ''जुलुओं के बीच'' इस पुस्तक में एक तांत्रिक से सम्बन्धित घटना भी है। लेजिली ने लिखा है कि एक बार उसके साथी हाथियों के शिकार में घेराबन्दी कर रहे थे। घेराबन्दी के बाद देखा गया कि उनके कुछ साथी गायब हो गये। बहुत ढूँढ़-खोज की गई, पर एक का भी कहीं पता नहीं चला। अन्त में किसी के परामर्श पर तलाश के लिए एक जुलु तांत्रिक की सहायता ली गई। तांत्रिक ने अपने मन्त्र बल से उन सभी साथियों को शक्लें, नाम, वस्तुएँ और उनसे सम्बन्धित अनेक बातों को बताया जो अक्षरश: सही थीं। इसके बाद उसने यह भी बता दिया कि वे सभी साथी अमुक स्थान पर हैं। बताये हुए स्थान पर जाकर उन्हें खोज लिया गया।

युगांडा के एक आतंकवादी संगठन 'दि नीबा मंसाबूबा' जो छिपकर अपनी गतिविधियाँ चलाता था, का पता लगाने के लिए नियुक्त एक ब्रिटिश गुप्तचर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकारी ने भी अपनी संस्मरण पुस्तक में इसी तरह की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख किया है। उक्त ब्रिटिश अधिकारी जानक्राफ्ट अन्धविश्वासों से सर्वथा मुक्त, प्रगतिशील विचार रखने वाले, कुशाग्र बुद्धि और साहसी व्यक्ति हैं। उन्हें जादू-टोनों पर भी रंचमात्र विश्वास नहीं था। जब वे आतंकवादी संगठन का पता लगाने के लिए सक्रिय हुए तो उन्हें चेतावनी दी गई कि वे इस कार्य में हाथ न डालें। गुप्तचरों को इस तरह की धमकियाँ तो प्राय: अपने प्रत्येक अभियान में उन्हें मिलती रहती हैं। जानक्राफ्ट पर उस धमकी का कोई प्रभाव नहीं होना था सो नहीं हुआ। जब वे न माने तो उनके ऊपर आतंकवादियों ने अप्रत्याशित व अस्वाभाविक ढंग से महा विषैले सर्पों के आक्रमण की योजना बनाई।

जानक्राफ्ट एक बार कहीं से लौट रहे थे। जिस स्थान से वे लौट रहे थे, वहाँ से और भी कई व्यक्ति आ जा रहे थे पर क्राफ्ट जैसे ही सीढ़ियाँ उतरने लगे न जाने कहाँ से सीढ़ियों पर एक विषधर साँप उन पर झपटा। संयोग ही कहना चाहिए कि क्राफ्ट तुरन्त उछलकर कई सीढ़ियाँ फलाँग गये। नहीं तो उस समय उनकी मृत्यु निश्चित थी। एक बार वे अकस्मात् एक सहयोगी के यहाँ पहुँचे तो वहाँ भी एक भयंकर फणिधर ने तीखी विषधार उनकी आँखों की ओर छोड़ी। सहकर्मी सतर्क व चुस्त था। उसने तुरन्त क्राफ्ट को नीचे गिरा दिया और जहरीली धार ऊपर से निकल गई। अन्यथा उनका वहीं प्राणांत हो जाता या वे जन्म भर के लिए अन्धे हो जाते। फिर एक बार उन्हें अपनी कार में दरवाजे के पास, दूसरी बार बिस्तर पर ही भयंकर विषैले सर्प दीखे। एक बार साँप उनके दफ्तर में एक अंधेरे कोने से निकलकर क्राफ्ट पर झपटा।

इस तरह की घटनाएँ कई बार घटीं और क्राफ्ट संयोग अथवा सौभाग्यवश हर बार बच गए। इन घटनाओं का विश्लेषण करते हुए स्वयं जानक्राफ्ट ने लिखा है कि प्रत्येक बार घटी यह घटनाएँ संयोग मात्र नहीं हो सकती थीं। उनके अकस्मात् दूर कहीं पहुँचने की सूचना उनके शत्रुओं को तुरन्त नहीं मिल सकती थी, इसलिए इस बात की भी बहुत कम सम्भावना थी कि वे लोग चुपके से ये साँप छोड़ जाते थे। फिर जहाँ अनेक लोग आ-जा रहे हों वहाँ केवल क्राफ्ट पर ही साँप क्यों झपटा ? घटनाओं का विश्लेषण करते हुए जान क्राफ्ट ने युगांडा में प्रचलित इस मान्यता की पुष्टि की है कि वहाँ के तान्त्रिक सर्पों को वश में करके उनका इस तरह मनचाहा प्रयोग कर सकते हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित एक लेख के अनुसार 'मध्य प्रदेश' के सरगुजा नरेश के सामने सन् १९३४-३५ में एक ऐसी महिला की पेशी हुई, जिसके बारे में आरोप लगाया गया था कि उसने मारण मन्त्र द्वारा कई लोगों की हत्याएँ की हैं तथा सरगुजा में एक वर्ष तक जलवृष्टि न होने का कारण भी उक्त महिला द्वारा किया गया मन्त्र प्रयोग ही था।' उस आदिवासी महिला ने भरे दरबार में अपना अपराध स्वीकार कर लिया। आदिवासियों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने द्वारा किये गये भले-बुरे कामों को निस्संकोच स्वीकार कर लेते हैं। जब सरगुजा नरेश ने उसके मारण मन्त्र की शक्ति का प्रदर्शन देखना चाहा तो एक स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट मुर्गा, एक निश्चित दूरी पर खड़े होकर घास का एक तिनका अपने हाथ में पकड़ा और मन्त्र बोलकर उस तिनके को बीच से तोड़ दिया। तिनका टूटने के साथ ही राजकर्मचारी की गोद में बैठा स्वस्थ मुर्गा सहसा ऐंठा, छटपटाया और निष्प्राण हो गया।

मन्त्र साधनाओं या योग विद्या के चमत्कार और कुछ नहीं मनुष्य की अन्त:शक्ति के ही परिणाम हैं। यदि वह बढ़ाई या विकसित की जा सके तो मनुष्य शरीर चलते-फिरते बिजलीघर के रूप में परिणत हो सकता है। इस शक्ति का प्रयोग योगीजन भले कार्यों में और दुष्ट प्रकृति के लोग बुरे प्रयोजनों में करते हैं। आग से भोजन भी बनाया जा सकता है और घर भी जलाया जा सकता है। यही बात साधना द्वारा उत्पन्न अन्त:शक्ति के बारे में भी लागू होती है। इसीलिए योग विद्या के आचार्यों ने यम, नियमों द्वारा अपने स्वभाव, प्रकृति और आदतों को परिमार्जित करने के बाद अगली सीढ़ियों पर कदम रखने का निर्देश दिया है।

शस्त्रों से भी अधिक सामर्थ्यवान मन की शक्ति

सन् १९१० में जर्मनी की एक ट्रेन में एक सोलह वर्षीय किशोर यात्रा कर रहा था। पैसे के अभाव में वह टिकट न ले सका। टिकट निरीक्षक को देखते ही उसने सीट के नीचे छिपने की कोशिश की। पर वह टिकट निरीक्षक की निगाहों से बच न सका। उसने किशोर से टिकट माँगा। टिकट तो उसके पास था नहीं। पास में अखबार का टुकड़ा पड़ा था। किशोर ने उसे हाथ में उठाया, मन में संकल्प किया कि यह टिकट है और उसने टिकट निरीक्षक के हाथों में वह टुकड़ा थमा दिया। मन ही मन यह संकल्प दुहराता रहा हे ! परमात्मा उसे वह कागज का टुकड़ा टिकट दिखायी पड़ जाय। उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्चर्य का तब ठिकाना न रहा जब देखा कि निरीक्षक ने उस कागज के टुकड़े को वापस लौटाते हुए यह कहा कि "क्या तुम पागल हो गये हो। तुम्हारे पास जब टिकट है तो सीट के नीचे छिपने की आवश्यकता क्या है ?"

"एबाउट माई सेल्फ" पुस्तक में बुल्फ मेसिंग नामक एक रशियन परामनोवैज्ञानिक उपरोक्त घटना का उल्लेख करते हुए लिखता है कि "उस दिन से मेरा पूरा जीवन बदल गया। पहले मैं अपने आप को असमर्थ, असहाय तथा मूर्ख मानता था पर उस घटना के बाद यह विश्वास पैदा हुआ कि मेरे भीतर कोई महान शक्ति सोयी पड़ी है जिसे जगाया-उभारा जा सकता है। उन प्रयत्नों में मैं प्राणपण से लग गया तथा सफल भी रहा।"

सन् १९१० से १९५० तक मैसिंग को दुनिया भर में ख्याति मिली। उसकी संकल्प शक्ति की विलक्षणता का परीक्षण अनेकों बार विशेषज्ञ, वैज्ञानिकों के समक्ष किया गया। स्टालिन जैसा मनोबल सम्पन्न व्यक्ति भी मैसिंग से डरने लगा। भयभीत होकर स्टालिन ने उसे गिरफ्तार करा लिया। स्टालिन को सुनी हुई बातों पर विश्वास न था। मैसिंग की परीक्षा उसने स्वयं ली। उसने मैसिंग से कहा "तुम मेरे सामने अपनी सामर्थ्य का परिचय दो। वह सहर्ष इसके लिए राजी हो गया।"

स्टालिन ने आदेश दिया "बन्द कमरे से कल दो बजे तुम्हें छोड़ा जायेगा। एक व्यक्ति तुम्हें मास्को के एक बड़े बैंक में ले जायेगा। तुम्हें बैंक के कैशियर से एक लाख रुपये निकलवाकर लाना होगा। पर ध्यान रहे तुम मात्र अपनी वाणी का प्रयोग कर सकते हो किसी शस्त्र का नहीं।"

दूसरे दिन पूरी बैंक को सैनिकों से घिरवा दिया गया। दो व्यक्ति पिस्तौलें लिए छद्म वेश में मैसिंग के पीछे-पीछे चल पड़े ताकि वह किसी प्रकार की चाल न चल सके। ट्रेजरर के सामने उसे खड़ा कर दिया गया। मैसिग ने जेब से एक कोरा कागज निकाला, एकाग्र नेत्रों से देखा तथा ट्रेजरर को दे दिया। ट्रेजरर गौर से उस कागज को उलट-पुलट कर देखकर आश्वस्त को गया कि वह एक चैक है एवं सही है। उसे अपने पास रखकर उसने एक लाख रुपये मैसिंग को दे दिए। उसे लेकर वह स्टालिन के पास पहुँचा तथा सौंप दिया। सारा विवरण जानकार स्टालिन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इतने पर भी स्टालिन को उसकी संकल्प शक्ति पर पूर्ण विश्वास न हुआ। उधर मैसिंग वह धनराशि लेकर खजान्ची के पास पहुँचा—पूरी बात बतायी। उसने चैक समझकर रखे हुए कागज को दुबारा देखा तो वह अब मात्र कोरा कागज था। धन राशि को वापस करते हुए मैसिंग ने खजान्ची से कहा "महोदय! क्षमा करें, यह संकल्प शक्ति का यह एक छोटा-सा प्रयोग था। आपको इसका दण्ड न भुगतना पडे, इस कारण लौटाने आया।" वह क्लर्क इस घटना से इतना अधिक हतप्रभ हुआ कि उसे हार्ट अटैक का दौरा पड़ा और कई दिनों तक भयावह सपने आते रहे।

इस रहस्य की और भी पुष्टि करने की दृष्टि से उधर स्टालिन ने मैसिग को दूसरा आदेश दिया कि सैनिकों की देखरेख में बन्द कमरे से निकलकर वह ठीक बारह बजे रात्रि को स्टालिन से मिले। स्टालिन के लिये सैनिकों की कड़ी सुरक्षा वैसी भी रखी जाती थी लेकिन यह व्यवस्था और कड़ी कर दी गयी ताकि किसी प्रकार मैसिंग निकलकर स्टालिन तक पहुँचने न पाये। पर इन सबसे बावजूद भी निर्धारित समय पर वह स्टालिन के समझ पहुँचकर वह मुस्कराने लगा। स्टालिन को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था, पर जो सामने घटित हुआ था उससे इन्कार भी कैसे कर सकता था ? भय मिश्रित स्वर में उसने मैसिंग से पूछा कि यह असंभव कार्य तुमने किस प्रकार, किस शक्ति के सहारे किया, थोड़ा विस्तार में बताओ।

मैसिंग बोला—यह और कुछ भी नहीं संकल्प बल का एक छोटा चमत्कार है। मैने मात्र इतना किया कि मन को एक विचार एक लक्ष्य के लिए एकाग्र किया। तत्पश्चात् दरवाजे पर आकर सैनिक से निर्देश के स्वर में बोला "मैं वेरिया हूँ" ज्ञातव्य है कि तब वेरिया को रूसी फौज का सबसे बड़ा अधिकारी, स्टालिन के बाद सर्वशक्तिमान अधिकारी माना जाता था।

"आपसे मिलने की इच्छा जाहिर करते ही सैनिकों की पहली कतार ने मुझे एक कमरे का नम्बर बताया। वहाँ पहुँचने पर मैंने पुन: अपना परिचय पहले की भाँति दिया। सुरक्षा पर तैनात सैनिकों ने एक दूसरे दिशा वाले कमरे की ओर संकेत किया। वहाँ भी सशस्त्र सैनिकों की एक टोली मौजूद थी। जनरल वेरिया का नाम सुनकर व उन्हें प्रत्यक्ष सामने देखकर उन सैनिकों ने भी अभिवादन करते हुए आगे का रास्ता बताया। इस प्रकार सैनिकों की सात टोली पार करने के बाद निश्चित रूप से यह मालूम हुआ कि आप कहाँ हैं। अपना पूर्व की भाँति परिचय देकर मैं यहाँ आ सकने में सफल हुआ।

मैसिंग के द्वारा स्टालिन को एक नया सूत्र हाथ लगा कि मनुष्य के भीतर कोई ऐसी अविज्ञात शक्ति विद्यमान है जो प्रत्यक्ष सभी आयुधों से भी अधिक समर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। उसके द्वारा असम्भव स्तर के कार्य भी पूरे किये जा सकते हैं। स्टालिन ने मैसिंग की अतीन्द्रिय सामर्थ्य के परीक्षण के लिए 'नामोर' नामक एक मनःशास्त्री को नियुक्त किया जो अपने समय का मनोविज्ञान का मूर्धन्य विशेषज्ञ माना जाता था। लम्बे समय तक उसने मैसिंग का अध्ययन किया। अन्ततः उसने घोषणा की कि "मन की अचेतन शक्ति चेतन की तुलना में अधिक सबल है। उसे उभारकर अच्छे-बुरे दोनों ही तरह के काम लिए जा सकते हैं। मैसिंग के भीतर का अचेतन प्रचण्ड रूप से जाग्रत है। उसी के माध्यम से वह प्रचण्ड संकल्प की प्रेरणा देकर दूसरों को सम्मोहित कर लेता है तथा अपने प्रयोजन में सफल हो जाता है।"

संकल्प शक्ति के एक छोटे से भाग को जाग्रत करते मनःशास्त्री अगणित प्रयोग करते हैं। इन दिनों सम्मोहन के माध्यम से उपचार की एक नयी 'पैथी' विकसित हुई है। बच्चों के मानसिक विकास के लिए भी उसका प्रयोग मानसविद् करने लगे हैं। विचार सम्प्रेषण की प्रक्रिया में भी संकल्प शक्ति का ही प्रयोग निहित है। दैनन्दिन जीवन में भी उस सामर्थ्य का एक छोटा पक्ष देखने को मिलता है। कितने ही व्यक्ति दूसरों को अपनी बातों, अपने विचारों से प्रभावित कर असम्भव कार्य करा लेते हैं। इच्छानुरूप दिशा में दूसरों को मोड़ने में भी सफल हो जाते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि वे प्रभावित व्यक्तियों की तुलना में कहीं अधिक संकल्पवान हैं।'

वह शक्ति बीज प्रत्येक में विद्यमान है। उसे अंकुरित एवं विकसित किया जा सकता है। साधना के, तप-तितीक्षा के छोटे-बड़े प्रयोग इसलिए किये जाते हैं कि किसी प्रकार संकल्प शक्ति के जगने एवं सुदृढ़ होने का अवसर मिले। भौतिक क्षेत्र में अभीष्ट स्तर की सफलता के लिए तदनुरूप प्रयास करने पड़ते हैं। मनःक्षेत्र आत्मिकी की परिधि में आता है। किसी-किसी में संस्कारोंवश सहज ही उभर आता है। जबकि किसी-किसी को पुरुषार्थ साधना करनी पड़ती है आवश्यकता अपने पुरुषार्थ को पहचानने, आत्मशोधन एवं आत्मविकास के प्रयोजन पूरे कर संकल्प शक्ति के सुनियोजन भर की है।

इनका कारण ढूँढ़ना अभी शेष है

लन्दन के नीरवेक कालेज में भौतिकी के प्राध्यापक जान हस्टेड ने इस प्रसंग में भी रुचि लेनी आरम्भ की कि क्या मानवी चेतना में कुछ ऐसी विलक्षणताएँ भी हैं जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सके। इस सन्दर्भ में उनने तथाकथित कितने ही गूढ़ विद्या विशारदों से सम्पर्क स्थापित किया कि वे अपने सम्बन्ध में तथाकथित किम्वदन्तियों के सम्बन्ध में निराकरण करें और जन-साधारण को यथार्थता से अवगत करने के सम्बन्ध में अवसर प्रदान करें।

इस चुनौती को अधिकांश ख्यातिनामाओं ने टाल दिया। कइयों ने अपनी तलाशी देने और जिन उपकरणों का वे प्रयोग करते हैं, उनकी पूर्व परीक्षा करने के अवसर दें, इस बात को भी उनने अस्वीकार कर दिया। इससे हस्टेड को निराशा हुई, उनने समझा जादूगरी के हथकण्डों को सिद्धि कहा और विश्वासी भावुकों की श्रद्धा का दोहन किया जा रहा है।

किन्तु एक सज्जन ने अपने को उनकी शर्त के अनुरूप अपनी परीक्षा करने और जो वे अद्भुत दिखा सकते थे उसके लिए तैयार हुए। उनका नाम था यूरी गेलर। इस इजराइली युवक ने अपने को क्रेम्ब्रिज यूनिवर्सिटी को प्रस्तुत किया और विभिन्न विचारों के तथा विभिन्न योग्यताओं के निरीक्षकों की एक मण्डली बुलाये जाने का अनुरोध किया। इनमें हस्टेड प्रमुख थे।

यूरी गेलर ने आत्मिकी क्षेत्र का भौतिक पदार्थों पर प्रभाव सिद्ध करने के लिए कुछ वस्तुएँ प्रस्तुत कीं।

(१) उनने एक अति कठोर काँच का गोला कपड़ों में लपेटकर बक्से में बन्द कराया। स्वयं उससे एक फुट दूर रहे। सिर्फ उसे घूरते भर रहे। थोड़ी देर में बक्से में छेदकर उसी गोले में से छोटी-छोटी गोलियाँ निकलीं। जिन्हें बीन लिया गया। अब गोला खाली गया। वह अपने पूर्व रूप में ही था। पर वजन घट गया था। बाहर उछली हुई गोलियों को गोले के साथ रखा गया तो उसका पूर्व वजन पूरा हो गया। उपस्थित निरीक्षकों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि इस प्रयोग में कोई चालाकी नहीं हुई है।

(२) दूसरा प्रयोग उनने एक हाथी दाँत की माला आकाश से टपकने का वायदा किया। अपने हाथ पीछे की तरफ बँधवा लिए और लेबोरेटरी की पूरी तरह सफाई कराली कि कहीं उस तरह की माला छिपी हुई तो नहीं है। उनके कपड़े भी बदल दिये गये। इस पर उनके कथनानुसार मेज पर तीन फुट ऊपर से माला गिरी। उसे भी परीक्षण के लिए इसलिए भेजा गया कि कहीं हिप्नोटिज्म के आधार पर मति भ्रम तो उत्पन्न नहीं किया गया है। माला असली पाई गई।

(३) एक क्लॉक घड़ी कमरे में टाँगी गई उसमें चाबी नहीं। जिस फिनर के दबाव से घड़ी चलती है उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी हटा दिया गया। पर नियत समय पर घण्टे बजते रहे। जबकि टाइम बताने वाली सुई स्थिर ही बनी रही।

(४) चौथा प्रयोग उनने लन्दन से शिकागो की लैबोरेटरी में भेजा। वहाँ भी निरीक्षकों की एक मण्डली बैठी थी। हवा में तैरता हुआ एक पार्सल वहाँ पहुँचा। इस पार्सल को लन्दन के निरीक्षकों ने स्वयं ही अपने हाथ से बन्द किया था। उसमें एक गुलदस्ता, एक टमाटर और एक छोटा टेलीविजन सैट था। वह सभी वस्तुयें आधे घण्टे के भीतर उड़कर पहुँच गईं। जबकि इतनी तेजी से उड़कर और किसी साधन से उन्हें नहीं पहुँचाया जा सकता था।

इसके अतिरिक्त इसी जाँच-पड़ताल में कुछ स्वतन्त्र घटनाएँ और भी जुड़ गईं। पश्चिम जर्मनी के अन्वेषक प्रो. हैन्स जैण्डर ने बताया कि एक बार उनके कमरे में जमीन से छत तक गरम पत्थर उछलने-गिरने का सिलसिला चला। उन्होंने किसी की दुष्टता हो तो उसे पकड़ने के लिए कई गार्ड नियुक्त किये। पर उनके होते हुए भी जब घटना न रुकी तो उनहें वह मकान बदलना पड़ा। उनका कहना था कि इन घटनाओं को भूतों का उपद्रव समझने के अतिरिक्त और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके।

इसी प्रकार उनने यह भी बताया कि उनकी ताला बन्द अलमारी में रखी हुई वस्तुएँ अलमारी बन्द रहते हुए भी उड़ीं, एक-एक करके सारे मकान में बिखर गईं।

यह दो घटनाएँ यद्यपि यूरी गेलर से सम्बन्धित नहीं पर वे इतना तो बताती ही हैं कि भौतिकी के नियमानुसार सारा जगत चलता हो ऐसी बात नहीं है। उसमें ऐसी विलक्षणताएँ भी मौजूद हैं जिनका कारण ढूँढ़ निकालना अभी विज्ञान के लिए शेष है।

मानव में अन्तर्निहित रहस्यमय शक्तियाँ

मनुष्य के अन्तराल में अनेकानेक रहस्यमयी गुप्त शक्तियों का भाण्डागार विद्यमान है। स्थूल काया की अपेक्षा सूक्ष्म एवं कारण शरीर में अनुपम दिव्य क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। पर हैं ये सभी प्रसुप्त स्थिति में दबी हुई। यदि इन्हें जागृत और विकसित किया जा सके तो वह उन अलौकिक शक्तियों का स्वामी बन सकता है, जिनहें सामान्यजन आश्चर्यजनक कहते समझते हैं।

इस तरह की घटनाएँ कभी-कभी प्रकाश में भी रहती हैं जिनसे मानवी काया में अन्तर्निहित असीम क्षमताओं का परिचय मिलता है। एक घटना सत्रहवीं सदी की है। मूर्धन्य वैज्ञानिक एवं अनुसंधानकर्त्ता लार्ड एडोर ने एक व्यक्ति को हवा में पक्षियों की तरह उड़ते और तैरते हुए देखा था। इस विलक्षण विवरण को उन्होंने ''रिपोर्ट आफ दि डायलेक्टिकल सोसायटी आन स्प्रिचुएलिज्म'' नामक पत्रिका में प्रकाशित कराया था। प्रारम्भ में तार्किकों, प्रत्यक्षवादियों एवं वैज्ञानिकों को इस तथ्य पर विश्वास ही नहीं हुआ कि कोई व्यक्ति हवा में ही उड़ सकता है। किन्तु इसी तरह की जब एक घटना इटली नगर में सन् १६६३ में घटी तो समस्त विचारकों, तार्किकों एवं वैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया। हुआ यह कि इटली के पादरी जोसेप अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही चिकित्सा कर रहे एक डाक्टर को भी अपने साथ लेकर आकाश में उड़ गये। उस चिकित्सक ने अपने संस्मरण में लिखा कि ''जब मैं फादर जोसेप की देखभाल कर रहा था तो अचानक उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और हवा में तैरने लगे। उनसे जकड़ा हुआ मैं भी हवा में उड़ रहा था। वह मुझे उड़ाते हुए फ्रांस के गिरजाघर तक ले गये और वहाँ उतरकर प्रार्थना की। इसके बाद बोले, अब मुझे आपकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब मेरे शरीर त्यागने का समय आ गया है। मैं जल्दी ही भगवान के पास जाने वाला हूँ। यह सुनकर मैं सन्न रह गया। इसके बाद दूसरे ही दिन उनकी मृत्यु हो गयी।''

एडोर द्वारा प्रकाशित विवरण की यथार्थता को जानने के लिए ''द रॉयल एस्ट्रोनामिकल सोसायटी'' के मूर्धन्य अनुसंधानकर्त्ताओं ने व्यापक गवेषणाएँ कीं। इन शोधकर्मियों ने अपनी गहन खोजों के आधार पर पता लगाया कि इटली के सरकारी कागजातों में श्री जोसेप के हवा में तैरने के एक नहीं, अनेकानेक प्रसंग रिकार्ड हैं, जो कि पुलिस वालों तथा अन्य कई प्रत्यक्षदर्शियों ने संग्रह किये थे। जोसेप के सम्बन्ध में पूरे इटली भर में यह ख्याति फैल चुकी थी कि प्रार्थना-उपासना करते वह हवा में उड़ने लगते हैं। हवा में उड़ने वाला साधु के नाम से प्रसिद्ध इस पादरी गिसप देसा जोसेप का जन्म १६०३ में इटली के कापरटिनो नामक स्थान पर हुआ था। पिता बढ़ईगीरी का काम करते थे। बचपन से ही अन्तर्मुखी जोसेप घण्टों पूजावेदी के सामने बैठे उपासना किया करते थे।

एक दिन चर्च में प्रार्थना करते समय तीव्र गर्जन करते हुए वह हवा में ऊपर उठ गए तथा दोनों बाँहों को फैलाकर अधर में तैरने लगे। थोड़ी देर बाद वह मोमबत्तियों व फूलों से सुसज्जित पूजा वेदी पर उतर आए। कुछ समय पश्चात् पुनः उसी तरह गर्जन करते हुए उड़े और वापस नीचे उतरकर अपने स्थान पर पहुँचकर प्रार्थना करने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक बार रोम में पोप अर्बन अष्टम को देखकर जोसेप भावावेश में इतना उत्साहित हो गए कि आधार छोड़कर हवा में उड़ चले तथा तब तक उड़ते ही रहे जब तक कि पोप ने उन्हें नीचे उतरने का संकेत नहीं दिया। रोम से वापस लौटने पर चर्च में अंकित चित्रों से प्रभावित होकर जोसेप ने एक चीत्कार के साथ लगभग १५ गज ऊँची उड़ान भरी। उसके बाद जोसेप ने एसेसी तथा कोपरटिनो में भी अनेकानेक उड़ानें भरीं। यह सब वह भावावेश में आने पर ही करते थे, प्रदर्शन के लिए नहीं। दूसरों को साथ लेकर भी जोसेप कभी-कभी उड़ाने भरा करते थे। उनके बाल्यकाल की घटना है। एक बार जब वह अपने पिता का हाथ पकड़ हुए थे एकाएक उन्हें लेकर आकाश में उड़ गए। इसी प्रकार का समय वह किसी पागल की आध्यात्मिक चिकित्सा कर रहे थे, तभी उसके सिर के बालों को हाथ से पकड़े हुए वह उड़ गए तथा काफी समय तक इसी तरह उड़ते रहे।

फादर जोसेप की उड़ान देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। जर्मनी के ड्यूक आफ ब्रन्शविक ने छिपकर देखा कि जोसेप कहीं सामान्य जनता को सम्मोहित तो नहीं करते ? वह अभी इसी ऊहापोह में उलझे थे कि गर्जन करते हुए वह प्रार्थना की मुद्रा में घुटना मोड़े हुए ही हवा में उड़ने लगे। दूसरे दिन पुनः उनने इस उड़ान की पुनरावृत्ति देखी। तब उन्हें इस साधु की अलौकिक सामर्थ्य पर विश्वास हो गया।

दरअसल ये प्रसंग उस विभूति का परिचय देते हैं जिसका उल्लेख अणिमा, लघिमा जैसी सिद्धियों के रूप में एवं पवनपुत्र हनुमान की आकाश यात्रा व सुरसा से उनकी भेंट रूप में पौराणिक आख्यानों में आता है। पूर्व जन्मों के संचित संस्कार या साधना-पराक्रम से जब अन्तर्निहित क्षमताएँ जाग उठती हैं तो असंभव चमत्कारी कृत्य मानवी काया द्वारा संभव होते देखा जाने लगता है।

अठारहवीं शताब्दी के एक बौद्ध भिक्षु बेनेडिक्टायन के बारे में प्रख्यात है कि वह हवा में उड़ जाते थे। एक बार वह संघाराम में चहल-कदमी कर रहे थे तभी उपस्थित जन-समूह के सामने वह हवा में विहंगवत् उड़ने लगे। ऊँचाई पर वह उठते ही जा रहे थे कि जैतून की शाखाओं से टकरा गये और घंटों अधर में ही लटके रहे। शिष्यों ने सीढ़ी लगाकर प्रयत्नपूर्वक उन्हें धरती पर उतारा फिर भी वे जमीन से ६ इंच ऊपर ही टँगे रहे और उनको संबोधित करते रहे।

उन्नीसवीं सदी में वैज्ञानिकों का ध्यान उपरोक्त आध्यात्मिक विभूतियों की ओर आकृष्ट हुआ। जब ये चमत्कारिक घटनाएँ लोकचर्चा का विषय बनने लगी थीं और संशयवादी इस पर अविश्वास व्यक्त करते हुए इसे अफवाह और धोखा-धड़ी की संज्ञा दे रहे थे। उस समय की इन घटनाओं से प्रभावित हो महान अध्यात्मवेता एवं सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री सर विलियम क्रुक्स ने एक शोध समिति बनाई। उन्होंने इन चमत्कारिक प्रदर्शनों की व्यापक छानबीन की एवं तत्सम्बन्धित अनुसंधानों-परीक्षणों की विशद् व्याख्या अपने प्रसिद्ध शोधग्रन्थ ''रिसर्च इन द फेनामेना ऑफ स्प्रिचुएलिज्म'' में प्रकाशित किया। होम नामक एक व्यक्ति की विलक्षणताओं का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''जब मैं उससे वार्तालाप कर रहा था, तभी वह जिस कुर्सी पर बैठा हुआ था उस कुर्सी सहित हवा में तैरने लगा।'' एक अन्य दूसरे साक्षात्कार का विवरण इस प्रकार दिया है ''मेरी उपस्थिति में कुर्सी पर बैठी हुई एक महिला को भी उसने हवा में काफी ऊँचाई तक उठा दिया था। इस स्थिति में वह महिला लगभग दस सेकण्ड तक रही। इसके बाद धीरे-धीरे जमीन पर अपनी कुर्सी सहित वापस आई।''

क्रुक्स ने अपने एक अन्य शोध ग्रन्थ ''मिसलीनियस अकरेन्सेस आफ ए कॉम्पलेक्स करैक्टर'' में एक सौ से अधिक आकाशगामिता की अद्भुत घटनाओं का वर्णन किया है।

'मास्टर ऑफ लिडेन्सी' नाम से प्रख्यात एक अन्य शोधकर्मी वैज्ञानिक ने इस तथ्य को प्रमाणित किया है कि व्यक्ति अपनी सूक्ष्म शक्तियों को जाग्रत करके कई ऐसे कार्य कर सकता है जो स्थूल काया से बन पड़ना संभव नहीं है। एडोर द्वारा और होम के साथ बैठा आकाशगमन पर चर्चा कर रहा था, तभी एकाएक श्री होम धरती से आकाश की ओर उठने लगे। देखते-देखते वह जमीन से पचासी फीट ऊँचाई तक पहुँचकर हवा में स्थिर हो गये। काफी समय तक इस स्थिति में रहने के पश्चात् वह धीरे-धीरे जमीन पर उतर आये।

उपरोक्त प्रदर्शन अथवा अद्भुत कही जाने वाली घटनाएँ सदा से वैज्ञानिकों, भौतिकशास्त्रियों एवं प्रत्यक्षवादियों के लिए चुनौती बनी रही हैं। उनके समाधान खोजने में भी उनने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी परन्तु शोध परिधि स्थूल शरीर तक ही सीमित होने के कारण उनकी खोजें अधूरी ही रहीं। इस संदर्भ में ''साइन्स एण्ड रिलीजन बाई सेविन मैन आफ साइन्स'' के लेखक प्रो. डब्ल्यू. बी. वाटमाली द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार, ''भौतिक अथवा रासायनिक विज्ञान मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर सकता है। स्थूल से बढ़कर और भी कोई सूक्ष्म सत्ता है। हममें से प्रत्येक के हृदय में ऐसी कोई गुप्त शक्ति है जो उच्च उद्देश्यों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर प्रेरित करती है। इसकी व्याख्या विवेचना विज्ञान के द्वारा नहीं हो सकती।''

भारतवर्ष में स्वामी विशुद्धानंद तथा स्वामी निगमानंद भी अपनी ऐसी अनुभूतियों को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर चुके हैं। कहा जाता है कि तैलंग स्वामी को नंगे फिरने के अपराध में काशी के एक अंग्रेज अधिकारी ने हवालात में बन्द करा दिया। लेकिन दूसरे दिन वे जेल से बाहर टहलते हुए देखे गए। उन्हें किसी ने कभी कुछ खाते-पीते नहीं देखा फिर भी प्रतिवर्ष उनका वजन १ पौंड बढ़ जाता था। इस ३०० वर्ष की अवस्था में उनका वजन ३०० पौण्ड हो गया था। ऐसे अनेकानेक उदाहरणों का नाथ सम्प्रदाय के मछीन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धर नाथ, कणप्पा आदि योगियों के जीवन-प्रसंगों में भी ऐसा उल्लेख पाया जाता है। अभी भी हिमालय की दुर्गम एवं सामान्य जनों की पहुँच से दूर निर्जन गुफाओं में ऐसे कितने ही योगी तपस्वी साधनारत हैं।

वस्तुत: विशिष्ट साधनाओं और तपस्या द्वारा साधक, योगीजन अनादि काल से उन विभूतियों एवं ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बनते रहे हैं जिन्हें अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राकाम्य, वाशित्व आदि नामों से जाना जाता है। छोटे-बड़े आकार धारण करने, अदृश्य और प्रकट होने आकाश-गमन करने अपने कार्यक्षेत्र को प्रभावित करके इच्छित दिशा में जन-मानस को मोड़ने- मरोड़ने आदि कार्य से सहजता से सम्पन्न कर लेते हैं। इस तरह के उदाहरणों से भारतीय अध्यात्मशास्त्र के पन्ने भरे पड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सूक्ष्म की सामर्थ्य को महत्व दिया जाय एवं ऐसे घटनाक्रमों को कपोल कल्पित अथवा कौतूहल न मानकर सूक्ष्म को साधने का प्रयास किया जाय। उड़ने की कला तो मक्खी-मच्छरों को भी आती है। उसे सीखने के लिये जीवन खपाना जरूरी नहीं। जरूरी तो यह है कि अध्यात्म अनुशासनों को महत्व देने हेतु जन साधारण को सहमत किया जाय। इन्हें बताया जाय कि साधना द्वारा इस काया में वांछित परिवर्तन कर बहुत कुछ कर दिखाना मनुष्य के लिए संभव है। असीम संभावनाओं से भरे इस पिण्ड में कितना कुछ भरा पड़ा है, इसे जाना व आत्मसात् किया जा सके तो भौतिकी की दिशा में अग्रसर मानव को आत्मिकी के अवलम्बन हेतु भी सहमत किया जा सकता है।

विलक्षण मानसिक शक्तियाँ और उनका आधार

मास्को (रूस) की एक अधेड़ ग्हिला नेल्या मिखाइलोवा सिर्फ घड़ी की ओर देखकर उसका चलना रोक सकती है। वह मेज पर रखे बर्तनों और भोज्य पदार्थों को भी खिसका सकती है। दिशासूचक यन्त्र (कम्पास) की सुई जो केवल चुम्बकीय शक्ति (मैगनेटिक फील्ड) से ही प्रभावित होती है उसे भी अपनी इस शक्ति से घुमा देती है।

रूसी 'मास्कोवास्काया' समाचार-पत्र ने इस महिला की गहरी ध्यानशक्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''मनुष्य के मन में वस्तुत: विज्ञान से परे विलक्षण शक्तियाँ विद्यमान् हैं। उनका विकास करके वर्तमान वैज्ञानिक उपकरणों को ही नहीं पछाड़ा जा सकता, मानव से सम्बन्धित गहन आध्यात्मिक तथ्यों का भी पता लगाया जा सकता है।''

प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान लुई जकालियट जो भारतवर्ष में बहुत दिन रहे ओर योगविद्या का गहन अन्वेषण किया। उन्होंने गोविन्दस्वामी नामक एक दक्षिणी योगी के सम्बन्ध में लिखा है—''पानी से भरे हुए घड़े को वह दूर बैठकर अपनी मानसिक या दैवी शक्ति से आगे-पीछे और ऊपर हवा में उठा देता था। उसके आदेश पर जल से भरा हुआ घड़ा भी अधर में लटक जाता हुआ मैंने देखा है। भारतीय योगियों के इन विलक्षण करतबों को कई लोग मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं पर मुझे उस कौतूहल से पीछे किसी बड़े रहस्य की अनुभूति होती है, ऐसा लगता है मनुष्य के मन में वह शक्तियाँ हैं, जिनका विकास यदि किया जा सके तो मनुष्य जीवन के अनेक दार्शनिक सत्यों का रहस्य जान सकता है।''

वैज्ञानिक और डाक्टर भी यह मानते हैं कि शरीर में इन्द्रियों की चेतना भी अस्थायी महत्व की है। स्थायी रूप से दृष्टि, श्रवण, घ्राण, प्रेरक और सम्वेदन सभी क्षमतायें मस्तिष्क में विद्यमान हैं। थैलामस नामक एक ग्रन्थि (ग्लैण्ड) भीतरी मस्तिष्क में होती है और जो सिर के केन्द्र में अवस्थित है, यही स्थान सभी तन्मात्राओं के ठहरने का स्थान (स्टेशन) है, यहीं से पीनियल ग्रन्थि निकलती है, जो देखने का काम करती है। पीनियल ग्लैण्ड को तीसरा नेत्र भी कहते हैं। पिट्यूटरी ग्लैण्ड्स और सुषुम्ना शीर्षक (मेडुला ऑवंगलेटा) जो शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का नियन्त्रण करती है वे सब भी मन से ही सम्बन्धित हैं मस्तिष्क का यदि यह केन्द्र काट दिया जाये तो शरीर के अन्य सब संस्थान बेकार हो जायेंगे।

विज्ञान और शरीर रचना शास्त्र (एनॉटामी) की उपरोक्त आधुनिक जानकारियों का यद्यपि काफी विस्तार हो चुका है किन्तु योग पद्धति और भारतीय तत्वदर्शन की जानकारी की तुलना में यह उपलब्धियाँ समुद्र में एक बूँद की तरह ही हैं। भारतीय तत्ववेत्ताओं ने मन की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वशक्तिमय इन्द्रियातीत ज्ञान का आधार और अनन्त परमब्रह्म का ही लघुरूप माना है। मन की शक्तियों को ही ब्रह्म में तादात्म्य कर देने से हाड़-माँस का मनुष्य भगवान् हो जाता है। उसकी शक्तियों का आश्चर्यजनक और चमत्कारिक विकास इसी अवस्था पर होता है। मन की अनन्त सामर्थ्यों का उल्लेख करते हुए योगवासिष्ठ में बताया गया है—

मनो हि जगतां कर्तृ मनो हि पुरुषः स्मृत । ३।९९।४,

स्वरूपं सर्वकर्तृत्वं च शक्तत्वं च महात्मनः।३।९१।१६,

प्रतिभासमुपायाति यद्यदस्य हि चेतसः ।

तत्तत्प्रकटतामेति स्थैर्य सफलतामपि ॥ ३। ९१। १७,

कल्प क्षणीकरोति क्षण नयति कल्पताम् ।

मनस्तदार्यत्तमतो देशकाल क्रमे बिदुः॥ ३। १०३। १४,

अर्थात्-संसार को रचने वाला पुरुष भी स्वयं मन ही है, मनमें सब प्रकार की शक्तियाँ हैं। मन अपने भीतर जैसी भावना करता है, क्षण भर में वैसा ही हो जाता है। देश-काल का विस्तार और क्रम भी मत के आधीन ही है। मन ही कल्प को क्षण, क्षण को कल्प बना देता है।

इस तरह की महत्वपूर्ण शक्ति का स्वामी होकर भी खेद है कि मनुष्य तुच्छ भोग-वासनाओं पर पड़ा हुआ निरन्तर अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का विघटन करता रहता है। यदि मानसिक शक्तियों के उत्थान का मार्ग मनुष्य ढूँढ़ ले, उसे संतुलित कर ले, साध ले, असंयम के द्वरा नष्ट होने से बचाकर उसे आदि पुरुष ब्रह्म के साथ तादात्मय कर ले तो फिर संसार का जीवन का रहस्य अपने आप ही प्रकट हो जाये। तब मनुष्य दीन न रहे वरन् स्वयं ब्रह्म हो जाये।

हमारे मन में चूँकि ईश्वरीय शक्ति का बड़ा बढ़ा-चढ़ा रूप है। इसलिये इन बातें पर एकाएक विश्वास नहीं होता। मन की शक्तियों से सम्बन्ध न होने के कारण यह बातें कुछ भ्रम-सी लगती हैं और सहसा यह समझ में नहीं आता कि प्रत्येक मनुष्य के मन में सब कुछ जान लेने, दूसरों के अन्तरंग के मनोभाव तक पढ़ लेने, जो कुछ संसार में है उसे प्राप्त कर लेने, ब्रह्माण्ड के विस्तार को जिससे किसी प्रकाश की गति से चलने पर भी करोड़ों मनुष्य संसार में जो कुछ हैं, उसे कैसे जान सकता है। दूसरों के अन्तरंग में क्या भाव है उसे कैसे पढ़ा जा सकता है, मनोवांछित वस्तुओं को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? ब्रह्माण्ड का विस्तार इतना अनन्त है कि प्रकाश की गति से चलकर भी उसे लाखों प्रकाशवर्षों में नहीं नापा जा सकता। उस अनन्तता को ज्ञान में, अनुभव में दृष्टि में छोटा-सा मन किस प्रकार ला सकता है।

इससे पूर्व कि इसका संक्षिप्त वैज्ञानिक रहस्य, समझाया जाये, इन सम्भावनाओं की संक्षिप्त घटना- परक जानकारी बड़ी उपयोगी होगी।

५ अक्टूबर, १९५० को लन्दन में एक भारतीय महिला शकुन्तला देवी जिन्हें गणित की जादूगरनी (विजार्ड आफ मैथेमेटिक) कहा जाता है, टेलीविजन पर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही थीं। तभी एक सज्जन ने उन्हें एक गणित का प्रश्न हल करने को कहा। बिना एक क्षण का विलम्ब किये हुये उन्होंने कहा यह प्रश्न गलत है। यह प्रश्न ब्रिटेन के बड़े-बड़े गणिताचार्यों ने तैयार किया था, इसलिये सब लोग एकदम आश्चर्य में डूब गये प्रश्न गलत कैसे हो सकता है ? बी. बी. सी. कार्यक्रम के आयोजनकर्ता ने प्रश्न की जाँच कराई तो वह विस्मित रह गया कि प्रश्न सचमुच गलत है। उसने भी यह माना कि "हम जितना समझ पाये हैं, मन की शक्ति और सामर्थ्य उससे बहुत अधिक है।"

कम्प्यूटर मशीन (संगणक) को आज बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है किन्तु मन की शक्ति की तुलना में उसका मूल्य और महत्व एक कौड़ी से अधिक नहीं है। यह लोगों ने तब जाना, जब श्रीमती शकुन्तला देवी से एक सज्जन ने पूछा "८ फरवरी, १९३६ को रविवार था या शनिवार" कोई और व्यक्ति होता तो इतनी गणना (कैलकुलेशन) करने में उसे पूरे दो घण्टे लगते, कम्प्यूटर भी १०-१५ सेकिण्ड तो लेता ही, किन्तु शकुन्तला जी को बताते एक सेकिण्ड समय भी नहीं लगा होगा।

शकुन्तला देवी बँगलौर के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मीं। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री बी. एस. शास्त्री ने उन्हें "जीते-जागते आश्चर्य" का विशेषण दिया है। सिडनी (आस्ट्रेलिया) स्थित न्यू साउथ वैल्स विश्वविद्यालय में उनकी प्रतिद्वन्द्विता २० हजार पौण्ड मूल्य के संगणक (कम्प्यूटर) से हुई। यह कम्प्यूटर विद्युत चालित था और उसका आपरेशन प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री आर. जी. स्मार्ट और बेरी थार्नटन कर रहे थे, किन्तु जब भी कोई प्रश्न पूछा जाता था, शकुन्तला उसका तुरन्त उत्तर दे देती थी, जबकि मशीन के उत्तर की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। शकुन्तला के उत्तर शत प्रतिशत (सेन्ट-पर-सेन्ट) सही पाकर वे सब चौंक पड़े और कहने लगे "सचमुच मन में ऐसी कोई विलक्षण क्षमता है, जिसका विकास भारतीय योग पद्धति से करके मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है।" शकुन्तला जी अब तक ४२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंकों की संख्याओं का २०वाँ रूट (वर्गमूल) तक निकालने में सफल हुई हैं। यह गणित जगत् के लिये लोहा मनवाने जैसी बात है। किन्तु शकुन्तला जी की मान्यता है कि यह विकेन्द्रित मन की साधारण-सी शक्ति है। मन की नाप-तौल करना कठिन है। वह एक सर्वसमर्थ तत्व जैसा कुछ है।

इन्हीं बातों को देखकर ही वैज्ञानिक शरीर में आत्मा जैसी किसी सर्वव्यापक शक्ति के अस्तित्व की बात स्वीकार करने लगे हैं, भले ही अभी उसका विस्तृत अध्ययन वे लोग न कर पाये हैं। अमेरिका के एक हृदय विशेषज्ञ डॉ. एम. डी. कुले ने चारलोट्सविल (वर्जीनियाँ) में डाक्टरी का अध्ययन करने वाले सैकड़ों छात्रों के सामने बोलते हुए बताया कि "मनुष्य की आत्मा का वास मस्तिष्क में है।" उन्होंने मृत्यु के सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि मृत्यु एक अकेली घटना नहीं बल्कि वह एक प्रक्रिया है और वह मस्तिष्क के मरने के बाद आरम्भ होती है, शरीर के कई अंग जैसे—दिल तो मृत्यु के कई मिनट बाद तक जीवित रह सकता है किन्तु मस्तिष्क के अणुओं की चेतना समाप्त होते ही मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है।"

इस बात को को हमारे पितामह, ऋषि और योगी काफी समय पूर्व जान गये थे। समाधि अवस्था में आत्म-चेतना को ब्रह्माण्ड (खोपड़ी) में चढ़ाकर बिना साँस लिये हुए कहीं भी दबे पड़े रहने के अनेक प्रयोग भारत में हुए हैं, उनका कहीं अन्यत्र वर्णन करेंगे। यहाँ डॉ. एम. डी. कुले की बात का समर्थन करते हुए यदि यह कहा जाये कि मनुष्य शरीर के प्रत्येक सेल के अन्दर जो चेतना है, उस सामूहिक प्रक्रिया का ही नाम मन या जीवन है और उसमें सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता जैसे विलक्षण गुण भी विद्यमान हैं।

योगवासिष्ठ में भगवान राम को वसिष्ठ ने बताया—

यथा बीजेषु पुष्पादि मृदौराशौ घटोयथा ।
तथान्तः संस्थिता साक्षी स्थावरेषु स्व वासना।।

६।११०।१९,

एतच्चित्तशरीरत्वं विद्धि सर्वगतोदयम् ।३।४० ।२०,

चिच्छक्तिर्वासना बीज रूपिणी स्वात्मधर्मिणी।
स्थिता रस तथा नित्यं स्थावरादिषु वस्तुषु।।

६।१।१०।२३,

बीजेधूल्लास रूपेण जाडयेन जड़रूपिषु।
दव्येषु द्रव्यभावेन काठिन्येनेतरेषु च।।

६।१। १०। २४,

प्रारणी वीर्य रसान्तस्था संविज्जंगममाततम्।
तनोति लतिकान्तस्थो रसः पुष्पफल यथा ।।

६। २ । २८।१८,

हे राम ! जैसे बीज के भीतर पुष्प डाल, पत्ते तथा मिट्टी में घड़े आदि की सम्भावनायें छिपी रहती हैं। जड़ पदार्थों के भीतर भी वासना छुपी रहती है। जड़ की वासना की तरह ही संसार की सब वस्तुओं के भीतर चित्त (मन) विद्यमान है। यह शक्ति सम्पूर्ण जड़-चेतन में वासना के रूप में सोई हुई उसके रस के रूप में सदैव वर्तमान् रहती है। यह शक्ति बीजों में उल्लास, जड़ पदार्थों में जड़ता, द्रव्यों में द्रव्य भाव और ठोस में ठोस भाव से बना रहता है। जिस प्रकार लता के भीतर रहने वाला रस ही फूल और फल आदि के आकार में विकसित होता है, उसी प्रकार प्राणियों के वीर्य के रस के भीतर वास करती हुई यह चेतन सत्ता ही सब वस्तुओं का विकास करती है।

इन पंक्तियों में शास्त्रकार ने जहाँ गहन दार्शनिक सत्य का उद्घाटन किया है वहाँ उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का भी प्रयत्न किया है। अर्थात् संसार में जितनी भी धातुयें या पदार्थ हैं, चेतना (मन) उन सब से सूक्ष्मतम है। वह यद्यपि मनुष्यों में वासना रूप में सोई रहती है, किन्तु यदि उसे संयमित कर लिया जाये तो मनुष्य अपने में उन सभी शक्तियों को विकसित देख सकता है, जिनकी कल्पना हम परमात्मा, ईश्वर या ब्रह्म में करते हैं अर्थात् वासनाओं से उन्मुक्त मन ही ईश्वर है। जो भी मनोभूमि में रम गया वह ईश्वर हो गया। नरतन में ऐसे अनेक महापुरुष भगवान् हुए हैं, जिनकी विलक्षण शक्तियों के बारे में इन्कार नहीं किया जा सकता है।

भारतवर्ष की बात नहीं करते-अमेरिका के अलाबामा राज्य में गाड्स डेन नगर के समीप रहने वाले श्री फ्रेंक रेन्स में ऐसी ही एक विलक्षण शक्ति है, जो व्यक्ति में ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व को प्रमाणित करने में सहायक ही सिद्ध होगी।

श्री फ्रैंक रेन्स अंग्रेजी अच्छी तरह बोल सकता है। शेष दुनिया की भाषाओं से वह पूर्णतया अनभिज्ञ है, किन्तु आप दुनिया की कोई भी भाषा किसी भी लहजे में बोलें बिना एक सेकिण्ड का अन्तर किये हुए वही शब्द उसी लहजे में आपके साथ बोलते चले जायेंगे। होठों की फड़कन देखकर भी कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि यह व्यक्ति क्या बोलेगा, फिर यदि उस भाषा का ज्ञान न हो जिसमें वक्ता बोले तब तो वह क्या कहेगा, इसका बिल्कुल भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आप चाहे पीठ फेरकर खड़े हो जायें या बीच में पर्दा लगाकर, फ्रेंक रेन्स आपके साथ ही उन शब्दों को दोहराते हुए (कौन्सीडेन्स) चले जायेंगे। देखने में ऐसा लगेगा जैसा एक ही ग्रामोफोन से दो लाउडस्पीकरों का सम्बन्ध हो। टेलीविजन के कुछ कार्यक्रमों में वक्ता बोलने के साथ गाने भी लगे तो श्री फ्रैंक रेन्स ने उसी तान और स्वर में गा भी दिया। एक बार विख्यात हास्य अभिनेता जेरी ल्यूविस ने एक कार्यक्रम संचालित किया, उसमें लोलो ब्रिगिडा ने भी भाग लिया। उक्त महिला कई भाषायें बोल सकती थी। फ्रैंक रेन्स उन सब भाषाओं को दोहराते गये। लोलो ब्रिगिडा ने कुछ बनावटी शब्द जिनका न तो कुछ अर्थ हो न किसी भाषा के हों बोलना प्रारम्भ किया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये कि फ्रैंक रेन्स वह शब्द भी उसी तरह स्वर मिलाकर बोलता चला जा रहा है।

दूसरा अमुक शब्द बोलेगा इसकी इन्द्रियातीत जानकारी फ्रैंक रेन्स को क्यों हो जाती है? भाषा न जानने पर भी वह अनजाने शब्द किस तरह बोल लेता है? यह दो विलक्षण आश्चर्य हैं, जिनकी व्याख्या करने में डाक्टर, वैज्ञानिक और अनेक विशेषज्ञ भी असफल रहे है। फ्रैंक रेन्स कहते हैं मैं स्वयं भी नहीं जानता कि इस विलक्षण शक्ति का स्रोत क्या है पर यह भारतीय तत्ववेत्ताओं और सिद्ध पुरुषों के लिये बहुत छोटी-सी बात है। मन की एक धारा का विकास ही इस सामर्थ्य का आधार है और कुछ हो या न हो पर इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि मन में कोई ऐसी अज्ञात शक्ति है अवश्य, जो दूसरों के मन में जो कुछ है और जो कुछ नहीं भी है, वह सब जान सकती है।

मन में ऐसी-ऐसी असंख्य सामर्थ्यों का भण्डार छुपा हुआ है। मन जीवन है, मन ही सब सिद्धियों का साधन है, मन ही भगवान है, मन का पूर्ण विकास ही एक दिन मनुष्य को अनन्त सिद्धियों, सामर्थ्यों का स्वामी बना देता है पर इसके लिये गहन संयम, साधना और तपश्चर्या के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

ऊर्ध्वगामी मन की सामर्थ्य

मैस्मरेजम के आविष्कर्ता डॉ. मैस्मर ने लिखा है ''मन को यदि संसार के पदार्थों और तुच्छ इन्द्रिय भोगों से उठाकर ऊर्ध्वगामी बनाया जा सके तो वह ऐसी विलक्षण शक्ति और सामर्थ्यों से परिपूर्ण हो सकता है, जो साधारण लोगों के लिये चमत्कार सी जान पड़े। मन आकाश (स्पेस) में भ्रमण कर सकता है और उन घटनाओं को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है, जिन्हें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण न कर सकें और हमारा तर्क जिन्हें व्यक्त करने में असमर्थ हो।''

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. जे. बी. राइन ने भी उक्त तथ्य की बाद में विस्तृत खोज की और पाया कि विचार चिन्तन और किसी भी अभ्यास द्वारा यदि मन को विचारणाओं के सामान्य धरातल से ऊपर उठाकर आकाश में घुमाया जा सके तो वह भूत और भविष्य की अनेक घटनाओं को बेतार के तार के सन्देश की तरह प्राप्त कर सकता है। 'न्यू फ्रान्टियर्स ऑफ माइन्ड' नामक पुस्तक में उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण भी दिया है, जो उक्त कथन की सत्यता प्रतिपादित करती हैं।

'अनुभव से अभ्यास तक' (फ्रॉम एक्सपीरियन्स टू एक्सपेरीमेन्ट्स) नामक प्रथम अध्याय में पश्चिमी राज्य के एक बैंकर का महत्वपूर्ण प्रसंग उन्होंने इस प्रकार दिया है—

बैंकर एक अध्ययनशील धार्मिक मनोवृत्ति का व्यक्ति था। ईश्वर चिन्तन के लिये वह प्रतिदिन कुछ समय निकालता। एक दिन शाम आठ बजे उसे एकाएक ऐसा लगा कि 'विला कैथस' की पुस्तक 'डेथ कम्स फार दि आर्क विशप' पढ़नी चाहिये। इसके प्रसंग पाठक की अन्तर्वेदना का स्पर्श करते हैं। यह उपन्यास बैंकर पहले भी पढ़ चुका था। फिर अकारण वही पुस्तक दुबारा पढ़ने का मन क्यों हुआ यह उसकी समझ में नहीं आया। तो भी उसने पुस्तक निकाली और उसे पढ़ने में तल्लीन हो गया।

आर्क विशप की मृत्यु का विवरण इस उपन्यास में बहुत ही कारुणिक है। उसे पढ़ते-पढ़ते बैंकर का हृदय आर्द्र होता गया। आँखों में आँसू झरने लगे। संवेदना के एकाकार में भगवान जाने क्या विज्ञान है, मनुष्य दूसरे के दुःख को अपना दुःख जैसा समझने लगता है। आत्म-चेतना के विकास की भारतीय आध्यात्मिक और योग प्रणाली लगता है उसी का विकसित रूप है, जब व्यक्ति व्यक्ति न रहकर अपने को समष्टिगत अनुभव करने लगता है।

बैंकर जी भर कर रो लिया, तब जी हल्का हुआ। तभी एकाएक उसे ध्यान आया, एक बार जब उसकी माँ की मृत्यु हुई थी तब यह उपन्यास पढ़ा था और इसी प्रकार रोया था, कहीं ऐसा तो नहीं यह अकारण वेदना पिता की मृत्यु का सन्देश या अनुभूति हो। आशंका विश्वास में बदलती गई। रात भर वह इसी चिन्ता में डूबा रहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रात: बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की मीटिंग थी। बैंकर ने उस मीटिंग को अपना शाम का अनुभव सुनाया। डाइरेक्टरों ने सत्य जानने की जिज्ञासा से वहीं पत्र लिखाया। उसका उत्तर चौथे-पाँचवें दिन आया तो सभी आश्चर्यचकित थे कि ठीक उसी दिन उसी समय सवा आठ बजे सचमुच उसके पिता की मृत्यु हो गई थी।

हमारे यहाँ जप और ऊर्ध्वगामी चिन्तन का उद्देश्य वैज्ञानिक मन को विकसित करना ही रहा है। उसके द्वारा अनेक अज्ञात बातें साधक को सिनेमा के पर्दे की भाँति मालूम हो जाती हैं। पर उस विज्ञान को आज लोग भूलते जा रहे हैं। जप से हमारे भीतर भरा आकाश तत्व शुद्ध होता है और ऐसी अनेक अनुभूतियों का द्वार खुलता है, जिसका संकेत डा. मैस्मर ने किया और इस घटना द्वारा पुष्टि डा. राइन ने की।

बड़ा विलक्षण-अद्भुत है, मानवी मन

यदा-कदा व्यक्ति को ऐसी सद्प्रेरणाएँ मिल जाती हैं, जिनसे उसका कोई बड़ा नुकसान टल जाता है, प्रियजन अथवा स्वयं उसकी आत्मरक्षा हो जाती है। इसे वह बड़ा चमत्कार मानने लगता है और तरह-तरह की संज्ञा-संबोधन इसे देने लगता है। कभी भगवान की अहैतुकी कृपा मान बैठता है पर इस बात को भुला देता है कि जिसे वह अचम्भा मान बैठा है वस्तुत: इसमें वैसा कुछ है नहीं। परिष्कृत अन्त:करण ही वह कारण है, जिसकी उपलब्धि बन पड़ने पर ऐसी घटनाएँ घटने लगती हैं, किन्तु तनिक उच्च भाव-भूमि की उपलब्धि हो जाने पर यह घटनाएँ सामान्य जीवनक्रम का अभिन्न अंग बन जाती हैं और फिर व्यक्ति अनवरत् रूप से ऐसी सूक्ष्म तरंगों से संबंध स्थापित बनाये रह सकता है।

आये दिन ऐसी घटनाएँ घटित होती ही रहती हैं। एक घटना साउथ गेट, कैलिफोर्निया की है। वहाँ के एक सज्जन समाजसेवी श्री आर. एल. बेनेडिक्ट अपनी एक सहयोगिनी श्रीमती एम. बी. जीन के साथ फिलाडेल्फिया के लिए अपनी कार में यात्रा कर रहे थे। कुछ खराबी के कारण एक स्थान पर कार खड़ी करनी पड़ी। कार पार्किंग के लिए वहाँ विशाल क्षेत्र था। श्रीमती जीन कार खड़ी कर रही थीं तभी अचानक श्री बेनेडिक्ट के अन्त:करण में एक प्रवाह आया और वह स्वाभाविक रूप से कहने लगे ''कृपया यहाँ गाड़ी खड़ी न करें कुछ अनर्थ हो जायेगा।'' जीन उस पर विश्वास करती थीं, उन्होंने स्थान बदल दिया। सभी उतरकर आवश्यक वस्तुएँ खरीदने लगे इसमें काफी समय लग गया जब वे लोग वापस लौटे तो दृश्य देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जिस स्थान पर कार खड़ी करने के लिए मना किया गया था उसे स्थान पर खड़ी दूसरी कार बिल्डिंग गिरने से चकनाचूर हो गई। सभी बाल-बाल बच गये। यह दैवी प्रेरणा का ही मार्गदर्शन था।

दूसरी घटना का उल्लेख करते हुए श्री आर. एल. बेनडिक्ट बताते हैं कि ''हम सभी परिवार के सदस्यगण यात्रा कर रहे थे और एक ऊँचे पहाड़ी एवं घनघोर जंगल से गुजर रहे थे। मेरा छोटा लड़का कार चला रहा था। अनायास ही मैं अनुभव करने लगा कि कुछ दुर्घटना होने वाली है मैं जोरों से चिल्लाया'' मिक्, तुरन्त गति कम करो, ऐसा न करने पर कोई बड़ी दुघटना होने वाली है, इसके कारणों की व्याख्या करने के लिए समय नहीं है।'' तुरन्त ही मिक् ने आज्ञा का पालन किया और गति कम की। दूसरे मोड़ पर तीस फीट सामने हिरणों का झुण्ड गुजर रहा था। यदि गति कम नहीं की जाती तो सुनिश्चित रूप से दुर्घटना घटती। ब्रेक लगाने पर कुछ इन्च ही दूरी पर अपनी गाड़ी रुक गई और बडी दुर्घटना टल गई।'' ऐसे ही अनेकों विधेयात्मक निर्देश प्रत्येक मनुष्य को कोई महत्वपूर्ण कार्य करने से पहले प्राप्त होते हैं, किन्तु जो अपने स्वच्छ अन्त:करण के पट को खोले रहते हैं ऐसे निश्छल हृदयों को इसका लाभ मिलता रहता है, कषाय-कल्मष एवं लोभ-मोह, अहंकार जैसी वृत्तियाँ स्फुरणा के उन रास्तों को बन्द कर देती हैं, जहाँ से दिशा निर्देश का प्रवाह फूटता है।''

मनुष्य के मस्तिष्क क्षेत्र में इतनी क्षमता है कि वह अपने मित्र 'परिजन' सम्बन्धी अथवा वैचारिक साम्यता वाले लोगों तक अपनी सूक्ष्म संवेदना का अंश भेज सकता है, जिससे उन्हें मार्गदर्शन मिले एवं गलत कदम न उठाकर परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति प्राप्त करें। इसी आधार पर ऋषि, मनीषी अपने परिकर में जुड़े लोगों को वैचारिक दबाव देकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते थे। यही है विचार सम्प्रेषण पूर्वाभास, अब पूर्णत: विज्ञान-सम्मत माना जाता है। एरलिंगटन टेक्सेस की श्रीमती बी. एन. केन्योन अपने जीवन में घटी घटनाओं से इसकी पुष्टि करती हैं। वे लिखती हैं मेरे पति वैचारिक तनाव से गुजर रहे थे। उन्हें महत्वपूर्ण कार्य के लिए बैंक से लोन लेना पड़ा, जिसको समय पर पूरा करने के लिए उनके बड़े भाई ने आश्वासन दिया किन्तु समय पर पूरा न होने के कारण बैंक मैनेजर दबाव देने लगे। परिस्थिति इतनी बिगड़ गई कि मेरे पति को कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। वे रात्रि में देर तक काम करते रहे और फिर कमरे से बाहर चले गये किन्तु उनका यह व्यवहार मुझे विचित्र नहीं लगा, क्योंकि वे प्राय: ऐसा किया करते थे। रात्रि में टहलने के लिए पास के पार्क में चले जाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते थे किन्तु उस रात जब पुत्र सो गया मुझे ऐसा लगने लगा कि कुछ अनर्थ होने वाला है। मैं उठ बैठी और जोर से कहने लगी "टोवी कृपया ऐसा मत करो।" अचानक उठने वाले ये भाव अत्यन्त गहराते चले गये और अपना विचार प्रवाह उन तक पहुँचाने की मनःस्थिति बनाकर कहने लगी टोवी! जल्दी घर आओ, हमें इस तरह छोड़कर न जाओ। अपने बच्चों के बारे में सोचो, ऐसा मत करो। मुझे आपकी आवश्यकता है, जल्दी आओ। मैं ऐसा अनुभव करने लगी कि उन्हें बुला रही हूँ। इतने में दरवजा खुला और उनके आते ही मैं बोल पड़ी। "कृपया वादा कीजिए ऐसा कभी नहीं करने के लिए सोचेंगे।" उन्हें आश्चर्य हुआ पूछा "तुम कैसे जानती हो, तुम्हें कैसे मालूम कि यहाँ से दूर में क्या योजना बना रहा था।" "मैंने उनसे कहा कि मैं नहीं जानती कि मुझे कैसे भान हुआ पर कुछ अनिष्ट होने वाला है। इसकी स्पष्ट अनुभूति हो रही थी।" उन्होंने बताया कि उनके टेबिल की दराज में पिस्तौल थी और वे योजना बना रहे थे कि इससे आत्म-हत्या की जाय किन्तु अचानक एक तीव्र प्रवाह आया और ऐसा लगा मानो कोई उन्हें खींच रहा है। इस तीव्रता से कि रुकते ही नहीं बना और वे घर की ओर चल पड़े।

इन घटनाओं से सुस्पष्ट है कि मनुष्य चाहे तो दूसरों तक अपना विचार प्रवाह सम्प्रेषित कर उसे आवश्यक मार्गदर्शन दे सकता है एवं स्वयं मौका पड़ने पर इस तरह की विचार तरंगें ग्रहण कर सकता है। यह क्षमता हर व्यक्ति में सन्निहित है पर भाव-संस्थान अनगढ़ होने के कारण यदा-कदा ही संयोग अथवा भाग्यवश अपनी इस क्षमता का व्यक्ति लाभ उठा पाता है। यदि वह अपनी भावनाओं को तनिक उच्चस्तरीय बना ले तो फिर अनायास ही उसे इस प्रकार के सूक्ष्म मार्गदर्शन एवं प्रेरणाएँ मिलते रह सकते हैं जिससे आड़े समय में वह इससे लाभ उठा सके। इतना बन पड़ने पर वह न सिर्फ दूरस्थ व्यक्ति से ही सम्पर्क साधने में समर्थ हो सकेगा वरन् आस-पास उमड़ते- घुमड़ते उन समस्त श्रेष्ठ विचार प्रवाह के अतिरिक्त ब्रह्मी चेतना से भी तादात्म्य स्थापित करने में सफल हो सकेगा, जो उसके आत्मिक विकास में सहायक हो सके।

मन में निहित विलक्षण अतीन्द्रिय सामर्थ्य

मानव शरीर दिव्य शक्तियों का भाण्डागार है। योग साधनाओं के द्वारा इन्हें जाग्रत करके मनुष्य त्रिकालज्ञ बन जाता है और भूत, वर्तमान एवं भविष्य की सब बातें जान लेता है। उसके लिए देश, काल और समय की दूरी समाप्त हो जाती है। भारतीय दर्शन के अनुसार तत्कालीन सभी ऋषि-मुनि इस स्तर को प्राप्त थे।

मानव सुषुम्ना में स्थित कुण्डलिनी षट्चक्र, ग्रन्थियाँ एवं उपग्रन्थियाँ रूपी विभूतियों का भण्डार है। अनेक जन्मों के जमे कषाय-कल्मषों को योग उपासना के माध्यम से मिटाने पर ये प्रज्वलित अग्नि की तरह दिव्य प्रकार एवं ज्ञान से चमक जाते हैं और सारे ज्ञान का रहस्य व्यक्त कर देते हैं। तप, संयम एवं सादगी से कोई साधारण-सा मनुष्य भी ऐसा कर सकता है। आधुनिक जगत में भी अनेक लोगों ने यह सफलता पाई है।

गेरार्ड क्राइसे को यह अतीन्द्रिय शक्ति बाल्यकाल से ही मिली थी। संभवतः यह उसके पूर्व जन्मों के सत्कर्मों एवं उपासना का परिणाम था जो बिना प्रयास के उसे इस जन्म में मिली। परामनोविज्ञानी होनहॉफ ने गेरार्ड की अतीन्द्रिय शक्ति की परीक्षा ली, जिसमें वह सफल पाया गया। सिनेमा हाल के एक निश्चित नम्बर की सीट पर पाँच दिनों तक बैठने वाले व्यक्तियों का नाम एवं हुलिए को सीट को स्पर्श करके गेरार्ड ने बता दिया। इस छोटी-सी परीक्षा के बाद वह अधिक लोकप्रिय हो गया और सर्वत्र उसकी चर्चा होने लगी।

हालैण्ड की पुलिस ने गेरार्ड की अतीन्द्रिय शक्ति से अनेक क्लिष्ट अपराधियों का पता लगाया। २३ मई, १९५० को एक नवयुवती के हत्यारे का पता गेरार्ड की अतीन्द्रिय शक्ति के द्वारा लगाया गया। उन्होंने नवयुवती के कपड़ों को स्पर्श करके सब बातें बता दीं, जिससे अपराधी पकड़ा गया। एक अमरीकी महिला ने अपनी चप्पलें दूसरे व्यक्ति के द्वारा गेरार्ड के पास भेजीं और उसके पहनने वाले का परिचय पूछा। चप्पल को स्पर्श करके उन्होंने उस युवती का नाम, पता एवं हुलिया बता दिया। एक जर्मन सेनाधिकारी के कंकाल को छूकर उन्होंने एक दिन बताया कि यह अधिकारी जर्मन सेना का है, उसके गर्दन पर घातक हमला करके एक व्यक्ति ने उसकी हत्या की थी क्योंकि उसने उसकी बेटी के साथ पाशविक बलात्कार किया था।

फ्रांस के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक काउन्ट एगनर डि गैसपैरिन ने 'सुपर नेचुरल' कहे जाने वाले विलक्षण प्रदर्शनों एवं परीक्षणों का संकलन किया है। उन्होंने सत्य एवं प्रमाणित अनेक घटनाओं का इसमें वर्णन दिया है। रूस के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने भी सुपर नेचुरल घटनाओं का संकलन किया है। अमेरिका के शोधकर्त्ता डा. विलियम ए. मैकगेरे अपने अनेक सहयोगियों के साथ १९७० में रूस में साइकिक रिसर्च हेतु आए। वहाँ उन्होंने परीक्षण में यह सत्य पाया कि श्रीमती सार्जेन्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नेल्या मिरबाहलोवा की दृष्टि में बेधक-क्षमता है। इसे टेलीकाम ने 'सीस' नाम दिया गया है।

रेडियोमीटर के निर्माता मूर्धन्य वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्स ने डेनियल डगलस होम की संकल्प शक्ति की परीक्षा ली। उनहोंने पाया कि डगलस अपनी संकल्प शक्ति से भारी–भरकम मेज को अपने स्थान से हटाने एवं उछल-कूद कराने में पूर्ण सफल रहे। इसमें किसी तरह का छल-कपट या जादूगरी उन्होंने नहीं पायी। १९७२ में क्रुक्स ने होम के ५२ प्रदर्शनों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने के बाद घोषणा की कि डगलस होम में विलक्षण संकल्प-शक्ति कार्य करती है, जिसका पता नहीं लगाया जा सकता। जाली के कटघरे में रखे खाद्य यंत्रों को स्पर्श किए बिना मात्र दृष्टि डालने से होम ने अनेक स्वर, लय एवं मधुर ध्वनियाँ निकालीं। जिनेवा के प्रोफेसर यूरी ने भी 'मैटर ओवर दि माइन्ड' विषय पर अत्यधिक अनुसंधान एवं शोध परीक्षण किया है। उन्होंने भी अतीन्द्रिय शक्ति की विलक्षण सामर्थ्य को अनेक परीक्षणों में सत्य पाया है। वस्तुतः इस चिरन्तन सत्य को स्वीकार करने हेतु अब क्रमशः सभी बाध्य हो रहे हैं।

मनोनिग्रह और आत्मिक उत्कर्ष

मानसिक एकाग्रता के सुनियोजित अभ्यास से हर व्यक्ति अपने अन्दर छिपी उन विभूतियों को जगा सकता है, जिन्हें अतीन्द्रिय कहा जाता है। लोग जिन्हें चमत्कार समझते हैं वे वस्तुतः शरीरिक योगाभ्यास की अनेकों परिणतियों का एक छोटा-सा भाग भर है। इसमें ऐसा कुछ नहीं है जो असम्भव माना जा सके।

मैरीक्रैग किमब्रो अमेरिका की एक जानी-पहचानी अतीन्द्रिय क्षमता-सम्पन्न महिला रही है। उनके पति अगट्रान सिनक्लेयर भी इस विषय पर एक जाने-माने लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। दोनों पति-पत्नी ने मिलकर दूरानुभूति (टैलीपैथी) सम्बन्धी अनेकों प्रयोग-परीक्षण कर उन्हें सही पाया है। अपने लम्बे अनुभव के उपरान्त उन्होंने पाया है कि मन की क्षमता अपार है। यदि थोड़ा भी इसे साध दिया जाय तो इससे अनेकों करतब दिखाए जा सकते हैं जो सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में चमत्कार होते हैं। वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। ये मानसिक चेतना की परिधि में आने वाली क्षमताओं का विस्तार भर हैं।

एक प्रयोग में मैरीक्रैग को एक बन्द लिफाफा दिया गया और उसके अन्दर बन्द तस्वीर के बारे में पूछा गया। क्रैग ने थोड़ी देर तक उसे अपने शरीर से चिपकाये रखा, ध्यानावस्था में चली गयी। १५ मिनट पश्चात् उसने कागज पर घोंसले की एक तस्वीर बनायी। इसके बाद लिफाफा खोला गया। उसके अन्दर भी पक्षी के घोंसले का चित्र बना हुआ था।

दक्षिणी कैलिफोर्निया में एक अन्य विदेशी युवक 'जान' रहता था, जो घूम-घूमकर ऐसे ही विलक्षण मानसिक करतब दिखाता था। जब वह गहरे ध्यान की स्थिति में जाता तो उसका सम्पूर्ण शरीर कठोर व ठण्डा हो जाता था। ऐसी स्थिति में उसके सिर को एक कुर्सी पर तथा टांग के अन्तिम सिरे को दूसरी कुर्सी में रखकर कोई उसके ऊपर खड़ा हो जाय, तो उसे कुछ पता नहीं चलता था। अनेक अवसरों पर समाधि की स्थिति में जान के पेट पर भारी-भरकम चट्टान रखकर वजनी हथौड़े के प्रहार से तोड़ा जाता पर इसका भी उसकी समाधि पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं देखा गया, न ही उसे कोई तकलीफ अनुभव होती। इतना ही नहीं इस स्थिति में वह वायुरुद्ध ताबूत में बन्द होकर अनेक घण्टों तक जमीन के अन्दर पड़ा रह सकता था।

'जान' के इन प्रदर्शनों में किसी प्रकार की धोखाधड़ी अथवा छल-कपट की कोई गुंजायश नहीं थी, क्योंकि सारी नुमाइशें योग्य वैज्ञानिकों व मूर्धन्य शरीर-शास्त्रियों के तत्वावधान में सम्पन्न होतीं, प्रदर्शन किसी कमरे में न होकर इसके लिए किसी पार्क अथवा खुले मैदान का चयन किया जाता, ताकि प्रदर्शक के लिए हाथ की सफाई का कोई अवसर ही न रह जाय।

इसी प्रकार का एक कौशल जान ने अपट्रान सिनक्लेयर के घर पर अनेक वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों की उपस्थिति में दिखाया था। वह एक बेंच पर लेट गया। कोई हाथ की सफाई प्रस्तुत न करे इसलिए जान के हाथ-पैरों को सिनक्लेयर के कुछ मित्र दृढ़ता से पकड़े हुए थे। उसने आँखें बन्द कीं और थोड़ी देर पश्चात् सामने पड़ी ३४ पौण्ड वजनी मेज हवा में धीरे-धीरे ऊपर उठने लगी। शनैः-शनैः वह चार फुट ऊपर उठकर अधर में लटक गयी फिर मन्थर गति से हवा में वह तैरने लगी और दर्शकों के सिर के ऊपर करीब आठ फुट की दूरी तय की।

इसके अतिरिक्त जान में टेलीपैथी और फेस रीडिंग की अद्भुत क्षमता विद्यमान थी। इस प्रदर्शन के दौरान वह कमरे से बाहर आ जाता और उपस्थित लोगों में से किसी एक से कमरे की कोई वस्तु मानसिक रूप से चुन लेने व उसे स्वयं तक सीमित एवं अप्रकट रखने को कहता। इसके बाद वह कमरे में प्रवेश कर उक्त व्यक्ति को अपने पीछे खड़ा होने तथा उस वस्तु पर विचार करते हुए पीछे-पीछे आने का निर्देश देता। कुछ देर तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह कमरे का चक्कर लगाता रहता, फिर कमरे से उस वस्तु को उठाकर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत कर देता, जिसका उस व्यक्ति ने मानसिक रूप से चयन किया था।

जॉन जब अपट्रान के घर से चला गया, तो क्रैग एक दिन ध्यान करने को बैठी। उसने अपने अवचेतन मन से कहा, कि इस वक्त जॉन कहाँ है और क्या कर रहा है ? इसकी सूचना उसे दे। थोड़ी देर पश्चात् श्यान् में क्रैग को जॉन सड़क पर गुलदस्ता लेते हुए कहीं जाता दिखाई पड़ा। बाद में जॉन को टेलीफोन कर क्रैग ने तथ्य का पता लगाया। उसने बताया कि सचमुच उस समय वह लॉस एन्जिल्स की सड़कों पर गुलदस्ता लिए अपने एक मित्र को भेंट करने जा रहा था। इसके बाद क्रैग ने जॉन पर इस प्रकार के ढेर सारे प्रयोग किये।

एक ऐसे ही प्रदर्शन में कुछ लोगों ने सैकेण्ड की जानकारी रखने के लिए स्टॉप वॉच रख रखी थी। जितने समय में जान ने समाधि से उठ बैठने का वचन दे रखा था, बिल्कुल उतने ही समय में समाधि तोड़ी एक सैकण्ड का भी आगे-पीछे नहीं हुआ।

मनोनिग्रह के दो रूप हैं। एक उथला—जिसमें मन की अनावश्यक दौड़ धूप की उच्छृंखलता को रोका, निर्धारित उपयोगी क्रिया-कलाप में केन्द्रित किया जाता है। यह विशुद्ध भौतिक है। हाथ, पैर आँख कान को प्रयोजन विशेष में लगाये रहने के समान।

इससे भी कई उपयोगी कार्य सम्पन्न होते हैं। गणितज्ञों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, मदारियों, बाजीगरों, बन्दूक का निशाना लगाने वालों में इस विशेषता के कारण ही प्रवीणता पाई जाती है। सृजन प्रयोजनों में, अध्ययन में यह एकाग्रता आवश्यक होती है और पहलवान, सरकस के नट नायक प्राय: इसी कला में अभ्यस्त होते हैं। रस्सी पर चलना, खेल दिखाना इसी प्रवीणता का प्रतिफल है।

व्यावहारिक मन की ही तरह अचेतन मन भी मस्तिष्क के ही एक के एक स्तर विशेष हैं। उसका नियमन अभ्यास करने से वे क्षमताएँ जागृत होती हैं जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमताएँ कहते हैं। इसके द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्य भी भी मन में सन्निहित सूक्ष्म इन्द्रिय शक्ति से ही सम्पन्न होते हैं। आँखों से एक सीमित दूरी तक ही देखा जा सकता है। कानों से अमुक स्तर की आवाजें सुनी जा सकती हैं पर उनके साथ यदि निग्रह मन का संयोग बन पड़े तो दूर के दृश्यों को देख सकना और दूरवर्ती वार्तालाप को सुन सकना सम्भव हो सकता है। इसी प्रकार से एक इन्द्रिय का काम दूसरी इन्द्रिय से भी लिया जा सकता है। आँखों का काम नाक, कान या अँगुलियों से भी लिया जा सकता है। एक इन्द्रिय के न होने पर उस कार्य को अचेतन मस्तिष्क शरीर में किसी भी संवेदनशील अंग से पूरा करा सकता है। इस अभ्यास से प्राण शक्ति जासूसी कुत्तों जैसी भी हो सकती है। इसके सहारे किसी खोये या अविज्ञात व्यक्ति को ढूँढ़ा या पकड़ बुलाया जा सकता है। अन्य जीव जन्तुओं में कई प्रकार की विलक्षणताएँ देखी जाती हैं। मकड़ी, बिल्ली आदि में मौसम ढलने या किसी दुर्घटना के घटित होने की पूर्वाभास क्षमता पाई जाती है। इस स्तर की विशेषताओं के लिए भौतिक मन का केन्द्रीकरण एक ज्ञानविधि का अभ्यास ही पर्याप्त है। मैस्मरेज्म, हिनोटिज्म जैसे खेल सामान्य स्तर के लोग भी विकसित कर लेते हैं। कइयों में ये बिना किसी अभ्यास के जन्मजात रूप में भी पाई जाती हैं। पैरासाइकोलाजी—परामनोविज्ञान के आधार पर ऐसी ही क्षमता-सम्पन्न मनुष्यों की खोज-बीन की जा रही है। जिससे जाना जा सके कि किनमें अनायास ही यह विभूतियाँ प्रकट हुईं और किनने इसके लिए कुछ साधन या अभ्यास किया। इस सन्दर्भ में मस्तिष्क को और भी तीव्रग्रामी परिवर्तित स्थिति का बनाने के लिए कतिपय विश्व-विद्यालयों द्वारा शोध प्रयास चल रहे हैं। इनमें सफलता भी मिल रही है। पर यह समझा जाना चाहिए कि यह समस्त घटनाक्रम मानसिक चातुर्य तक ही सीमित हैं। मनुष्य के कण-कण में विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं। एक शुक्राणु अपने जैसा एक नया मनुष्य गढ़ सकता है। इसे क्षमता के अन्तर्गत ही समझा जाना चाहिए। मस्तिष्क शरीर का ही एक अंग है।

कितने ही व्यक्ति कई प्रकार के आश्चर्यजनक शारीरिक पराक्रम दिखाते हैं। खेल प्रतियोगिताओं में ऐसा बहुत कुछ देखने को मिलता है। कई व्यक्ति अनौखेपन के कई कीर्तिमान स्थापित करते हैं। यह शारीरिक पुष्टाई का प्रमाण है। इसी प्रकार मन भी शरीर का ही एक अंग-अवयव है। वह भी ग्यारहवीं इन्द्रिय है। उसके चमत्कारों को भी भौतिक विशेषताओं की परिधि में लाना पड़ेगा। बहुत से छोटी आयु के बच्चे, संगीत बजाते और प्रवचन रट लेते हैं यह उनकी बौद्धिक प्रवीणता है। इन्हें आश्चर्यजनक मानते हुए भी शारीरिक या मानसिकता की नैतिक दासता ही कहा जायगा।

आध्यात्मिक उत्कर्ष इससे आगे का चरण है। उसमें चित्त का नहीं, चित्त-वृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। चित्त वृत्तियाँ अर्थात दुष्प्रवृत्तियाँ संयम से लेकर योगाभ्यास तक यही विषय प्रधानता पाता रहा है। इस स्थिति से उबरने पर ही मनचाही आध्यात्मिक साधना बन पड़ती है। जिसमें वासना के लिए ही नहीं, तृष्णा के लिए भी कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। फिर अहन्ता की चाहवाही लूटने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की, दूसरों पर छाप छोड़ने, किसी को नीचा दिखाने की गुंजाइश कैसे हो सकती है। माँसाहार, मद्यपान जैसे आत्मा पर कषाय-कल्मष चढ़ाने वाले व्यवहारों की भी गुंजाइश नहीं है। ऐसे लोगों को आध्यात्मिक वातावरण में ही रहना पड़ता है। उनहें मदारी, नट, बाजीगर एवं अविश्वासी तार्किकों के बीच में निर्वाह कर सकना कठिन होता है।

जादूगरी प्रत्यक्षतया हाथ की सफाई या छल है। भले जादूगर इस बात को प्रकट भी कर देते हैं कि यदि उनके पास सिद्धियाँ रही होतीं तो तमाशा दिखने का व्यवसाय क्यों अपनाते। अध्यात्मवेत्ता छल क्यों करेंगा और किसलिए आत्म-प्रवंचना अपनाकर धूर्तों की बिरादरी में सम्मिलित होगा ?

आध्यात्मिक सिद्धियाँ वे हैं जिनमें वे उच्चस्तरीय व्यक्ति किसी को अपना संचित विभूतियों का एक अंश देकर उसे अपनी बिरादरी में घसीट ले जाता है। ऊँचा उठाता और आगे बढ़ाता है। दोष-दुर्गुणों से छुड़ाता और कन्धे पर बिठाकर गहरी नदी में तैरते हुए अपने प्रियजनों को पार लगाता है।

मणि-मुक्तकों से भरा चेतन शक्ति का भाण्डागार-मानव मन

सामर्थ्य का असीम भण्डार हमारे चारों ओर बिखरा पड़ा है। जड़ परमाणु का लघुतम घटक परमाणु अपने में कितनी प्रचण्ड ऊर्जा छिपाये हुए है, इसका परिचय उसके विस्फोट का लेखा-जोखा लेने पर किसी महादैत्य जैसा लगता है। परमाणु में छिपे बैठे न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवं उसमें भी समाये न्यूट्रीनो जैसे सूक्ष्मतम कण कितने सामर्थ्यवान होंगे, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक इंच की परिधि में ऐसे अरबों-खरबों महादैत्य सटे बैठे होते हैं। समूचे भूमण्डल पर वे कितने होंगे और उन सबकी संयुक्त शक्ति कितनी प्रचण्ड होगी, इसका अनुमान लगाना मानवी मस्तिष्क के लिये सम्भव नहीं।

चेतना का संसार और भी अद्भुत है। जीवकोष, बीजकोष अपने में एक अनौखा लीला-जगत सँजोये बैठे हैं। उनकी सामर्थ्य काया को गतिशील रहने में तनिक सा सहयोग करते जितनी ही अनुभव में आती है, पर यदि उनकी निजी सत्ता और विस्तार क्षमता का परिचय किया जाय तो प्रतीत होता है कि सुई की नोंक पर सहस्रों की संख्या में बैठ सकने जैसे छोटे आकार के इन चेतना घटकों में से प्रत्येक की दुनिया कितनी अद्भुत, रहस्यमय एवं रोमांचकारी है। फिर एक शरीर में कितनी बीजकोष व जीवकोष होते हैं, कोटि-कोटि मानवों में वे कितने होंगे ? सृष्टि में मनुष्यों के अतिरिक्त प्राणियों की जातियों और उनमें से प्रत्येक की संख्या की गणना नहीं हो सकती। अगणित जीवकोषों से भरे इस जीव-जगत की विशेषताओं को देखते हुए उसे देवोपम मानने में कोई अत्युक्ति नहीं। तैतीस कोटि देवताओं के प्रतिपादन को कभी असंगत माना जाता था पर अब तथ्यों के प्रकाश में आने पर जब प्रत्येक घटक-जीवकोष मान्यता प्राप्त देवताओं से भी अधिक विभूति सम्पन्न सिद्ध हो रहा है तो उन्हें असीम, अनन्त, अचिन्त्य, कल्पनातीत ही कहा जा सकता है।

जड़-जगत के परमाणुओं को महादैत्य और चेतन जगत के जीवकोषों को महादेव कहा जा सकता है। उनके बीच जो सहयोग चल रहा है उसे समुद्र मन्थन की उपमा दी जा सकती है। साथ ही अदृश्य क्षेत्र में उनकी जो विग्रह प्रक्रिया चल रही है, उसे अनादि काल से अनन्त काल तक चलने वाले देवासुर संग्राम के समतुल्य ठहराया जा सकता है। इस संयोग-वियोग की पेण्डुलम क्षमता जितनी प्रकार की जिस-जिस स्तर की शक्ति सामर्थ्य उपजाती-बखेरती है उसका तनिक-सा आभास मिलने पर हतप्रभ होना पड़ता है और उसे **'अणोरणीयान महतो महीयान्'** से रोमांचित होकर उसी प्रकार नेत्र बन्द करके नमन करना पड़ता है जैसा कि विराट् दर्शन से भयाक्रान्त हुए अर्जुन को करना पड़ा था।

जड़-जगत से चेतन और चेतन से जड़-जगत की शक्ति सत्ता की तुलना नहीं हो सकती। दोनों ही अपने आप में परिपूर्ण एवं महान हैं। इस विश्व-ब्रह्माण्ड में पराप्रकृति और परब्रह्म की आँख-मिचौनी जितनी सुन्दर लगती है उतनी ही हतप्रभ कर देने वाली भी है।

इसी विभूतियों से भरे-पूरे संसार में हम सब अपने जीवन संकट घसीटते हैं। जीवित तो सभी हैं और इसके लिये जितनी सुविधा सामग्री चाहिये उतनी किसी प्रकार जुट भी जाती है। इतने पर भी मन:स्थिति और परिस्थिति को देखते हुए प्रतीत यही होता है कि इन जीवितों में से कई अभावग्रस्त, दरिद्र-पतित, पीड़ितों, असहाय, असमर्थ जैसी स्थिति में रह रहे हैं। दरिद्रता और आशंका से कईयों को उद्विग्न देखा जा सकता है। उल्लास से उछलते हुए हँसता-हँसाता समर्थ सम्पन्न जीवन जीने वाले कठिनाई से ही कहीं कोई विरले मिलेंगे।

व्यक्ति के भीतर और बाहर सामर्थ्य का असीम भण्डार, सुविधा-साधनों से भरा-पूरा अनन्त वैभव जब इस समूचे ब्रह्माण्ड में संव्याप्त है और उसी के बीचों-बीच मनुष्य निवास-निर्वाह कर रहा है तो फिर यह कैसी विडम्बना है कि अप्रसन्नता की मन:स्थिति घिरी रहे और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दैन्य-दारिद्रय से, पतन-पराभव से घिरी परिस्थितियों में गुजारा करना पड़े। ईश्वर के युवराज को अपने पिता के इस नन्दन वन जैसे सुरम्य उद्यान में आनन्द और उल्लास से भरे-पूरे दिन बिताने चाहिए थे, तब क्यों उसे शोक-संतापों से युक्त जीवन जीना होता है ? विपत्तियों और समस्याओं का पग-पग पर सामना करना पड़ता है ?

गुत्थी का कारण और निवारण ढूँढ़ने पर एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य है तो चेतन किन्तु उसे चेतना की सुरक्षा एवं प्रगति की वैसी जानकारी नहीं जैसी होनी चाहिए। वस्तु उपलब्ध तो हो पर उसका उपयोग विदित न हो तो दुरुपयोग ही बन पड़ेगा। दुरुपयोग का दुष्परिणाम होता ही है। वही हो भी रहा है। साधनों की न पहले कमी थी, न अब है। इतने पर भी सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक कि चेतन शक्ति, जो पिण्ड व ब्रह्माण्ड में समायी है, के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग की प्रक्रिया को जाना न जायेगा। इस प्रक्रिया को ही 'साधना' कहते हैं जो पदार्थ के सदुपयोग से आरम्भ होते हुये चेतना के परिष्कार एवं व्यष्टि तथा समष्टि चेतन शक्ति में परस्पर आदान-प्रदान के क्रम के बनने तक सतत् क्रियाशील रहती है। यही है वह मूलभूत तत्वदर्शन, जिसकी जानकारी के अभाव में आत्म-विस्मृति बनी रहती है एवं सामान्य अथवा निम्न स्तर का जीवन जीते हुए अधिकांश व्यक्तियों द्वारा जैसे-तैसे जीवन-यात्रा पूरी कर ली जाती है।

अपने अन्दर क्या छिपा पड़ा है ? यह जानने का प्रयास करने पर बहुमूल्य मणि-मुक्तकों से भरा चेतनशक्ति का भाण्डागार दिखाई देने लगता है। बाहर से सामान्य व एक से ही दृष्टिगोचर होने वाले व्यक्ति कैसे असम्भव कर दिखाते हैं एवं ऋद्धि-सिद्धियों से सम्पन्न बन जाते हैं। इसका मूल कारण खोजते हैं, तो एक ही तथ्य हाथ लगता है कि उन्होंने अपने अन्दर छिपे 'महान' तत्व को पहचान साधना द्वारा उसे जगाया एवं स्वयं को ऊँचा उठाया। ऋषि, देवदूत, महामानव स्तर तक पहुँचने में उन्हें आत्म-परिष्कार-व्यक्तित्व निर्माण की जीवन-साधना से लेकर अपने सुपर चेतन को जगाने की साधना करनी पड़ी और उन्होंने वह सब कुछ पा लिया जिसे मानव के लक्ष्य की चिरन्तन प्यास एवं समय की तत्कालीन आवश्यकता कह सकते हैं।

कैसा है यह विराट्-विलक्षण जो अपने ही भीतर समाया है और हम स्वयं ही उससे अनजान बने हुए हैं। जानकारी होने पर इस भाण्डागार के सदुपयोग की व्यवस्था बनायी जाने पर पिण्ड के चेतन पक्ष को ऊँचा उठाया जा सकना एवं ब्राह्मी चेतना के विराट समुद्र से उसका सम्बन्ध जोड़ पाना सम्भव है।

योग वाशिष्ठ में उपदेश देते हुए महर्षि वशिष्ठ भगवान राम से कहते हैं—

''रम्येय देह नगरी राम सर्व गुणान्विता ।
अज्ञस्येय मनन्तानां दुःखानां कोशमालिका।।
अस्यत्विय मनन्तानां सुखानां कोशमालिका।''

अर्थात हे राम ! यह देह नगरी बड़ी सुरम्य और गुण-सम्पन्न है। यह ज्ञानियों के लिये सुख और अज्ञानियों के लिये दु:ख देने वाली है।

कुछ वर्षों पूर्व बम्बई के एक विद्वान श्री वी. जे. रेले ने एक पुस्तक लिखी थी ''दी वैदिक गॉड्स एज फिगर्स ऑफ बायोलाजी।'' इस पुस्तक में उन्होंने सिद्ध किया था कि वेदों में वर्णित आदित्य, वरुण, मरुत, मित्र, अग्नि, आदि मस्तिष्क के स्थान विशेष में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ हैं, जिन्हें जागृत करके अद्वितीय क्षमता-सम्पन्न एवं विशिष्ट बना जा सकता है। डॉ. नाडगिर एवं एडगर जे. टामस ने संयुक्त रूप में पुस्तक की भूमिका लिखते हुए कहा है कि वैदिक ऋषियों के इस शरीरशास्त्र सम्बन्धी गहन ज्ञान पर आश्चर्य होता है। उस साधन हीन समय में कैसे उन्होंने इतनी जानकारियाँ प्राप्त की होंगी, यह शोध का विषय है।

मस्तिष्कीय संरचना पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि यह एक माँसपिण्ड नहीं है वरन् जीवन्त विद्युत भण्डार है। उसमें चल रही हलचलें ठीक वैसी ही हैं जैसी किसी शक्तिशाली बिजलीघर की होती हैं। जितने हमारी आकाशगंगा में तारे हैं, करीब उतने ही (एक खरब से भी अधिक) न्यूरान्स (स्नायुकोष) मस्तिष्क में हैं। इन तन्त्रिकाओं को आपस में जोड़ने वाले तन्तु और उनके इन्सुलेशन खोपड़ी में खचाखच भरे हैं। एक तन्त्रिका कोशिका का व्यास एक सेन्टीमीटर के हजारवें भाग से भी कम है और उसका वजन एक औंस के साठ अरबवें भाग से अधिक नहीं है। तन्त्रिका तन्तुओं से होकर बिजली के जो इम्पल्स दौड़ते हैं, वही ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से आवश्यक सूचनाएँ उस केन्द्र तक पहुँचाते हैं। इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध सूचनाओं और विचारों की हलचलें हर क्षण सोते-जागते मस्तिष्क को इतना अधिक व्यस्त रखती हैं कि इन्हें इलेक्ट्रो एनसेफैलोग्राम (ई. ई. जी.) द्वारा विद्युतीय तूफान की तरह देखा जा सकता है।

मानव निर्मित सर्वोत्तम कम्प्यूटर में अधिक से अधिक दस लाख इकाइयाँ होती हैं और प्रत्येक इकाई के पाँच-छः से अधिक सम्पर्क सूत्र नहीं होते। किन्तु मस्तिष्क

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की अरबों कोशिकाएँ और उनमें से प्रत्येक के लाखों लाख सम्पर्क सूत्र और उनके भीतर प्रवाहित न्यूरोट्रांसमीटर्स की भिन्नता वैज्ञानिकों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि इन अद्भुत शक्तियों को समाहित करने वाले कम्प्यूटर को बनाने लायक सामर्थ्य मानव में नहीं है। यदि सैद्धान्तिक स्तर पर एक ढाँचा भी ऐसा खड़ा करने का प्रयास किया जाय तो वह इतना बड़ा होगा कि उसके लिये यह पृथ्वी भी छोटी पड़ेगी।

मस्तिष्क रूपी इस चेतन शक्ति भण्डार के न्यूरान समूहों में से यदि एक को भी किसी प्रविधि द्वारा सजग-सचेत किया जा सके तो दस अरब न्यूरान्स-दस अरब डायनोमों का काम कर सकते हैं। उस गर्मी-प्रकाश एवं विद्युत क्षमता का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। इसी कारण वैज्ञानिक कहते हैं कि अभी वे मस्तिष्क के कुल सत्रह प्रतिशत भाग को जान पाये हैं एवं शेष ८३ प्रतिशत के बारे में उन्हें कुछ जानकारी नहीं है। इस सत्रह प्रतिशत में से भी दैनन्दिन जीवन में मात्र सात प्रतिशत विद्युत-क्षमता उपयोग में आ पाती है शेष का या तो प्रयोग ही नहीं हो पाता या प्रयासों के अभाव में वह व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है।

जिस मस्तिष्क रूपी संसार में इस पृथ्वी पर बसे मनुष्यों से भी कई गुनी अधिक स्नायुकोषों की आबादी बसी हुई है, उसकी सामर्थ्य कितनी विलक्षण है, इसका अनुमान इन व्यक्तियों की उपलब्धियों को देखकर लगाया जा सकता है जिन्होंने अपने प्रतिभा के बलबूते वैज्ञानिकों को भी आश्चर्यचकित किया है।

कैपटाउन में एक इन्जीनियर वानवाण्डे निवास करते हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि समय उनकी इच्छा के अनुसार चलता है। उनका दिमाग उन्हीं निर्देशों का पालन करता है जो वे स्वयं को देते हैं। वे सोने जा रहे हों और आप कहें महोदय ! अभी आठ बजे हैं, आप ठीक बारह बजकर सात मिनट, उनसठ सैकिण्ड पर उठें। ''एक सैकिण्ड का भी अन्तर किये बिना वे उसी समय जग जाते हैं। इसका रहस्य बताते हुए वे कहते हैं'' मैंने अपने मस्तिष्क को इस प्रकार साधा है कि अचेतन-चेतन दोनों ही स्थिति में मैं अपने क्रिया-कलाप नियन्त्रित कर सकता हूँ।

लार्डमैकाले ने इंग्लैण्ड का इतिहास आठ जिल्दों में लिखा। इसके लिये उन्हें किसी सन्दर्भ पुस्तक की आवश्यकता नहीं पड़ी। लोग उन्हें चलता-फिरता पुस्तकालय कहते थे। उन्हें सैकड़ों घटनाएँ, तिथियाँ, व्यक्तियों के नाम जवानी याद थे। इसी प्रकार ब्रिटिश संग्रहालय के अधीक्षक रिचर्ड गार्नेट अपनी स्मरण शक्ति, सैकड़ों सन्दर्भों व अनेकों भाषाओं को कण्ठस्थ रखने के कारण विश्वविख्यात हैं। इन्हें अपने पुस्तकालय की सहस्रों पुस्तकों के नाम एवं रखने का स्थान तक याद थे।

एक बार फ्रांस की अदालत में एक मुकदमा पेश हुआ जिसमें प्रस्तुत साक्षियों व कानूनी तथ्यों के कारण अपराधी के बचने की कोई आशा न थी। एकमात्र आशा की किरण थी, राजा का क्षमादान। परन्तु राजा ५ दिनों के लिए बाहर थे। अपराधी के एटार्नी प्रख्यात विधिवेत्ता लुई बर्नार्ड ने अपराधी के पक्ष में तर्क देने आरम्भ किये और जूरी के समक्ष वह १२० घण्टे तक अर्थात् पाँच दिन पाँच रात तक बराबर बोलता रहा। इस अवधि में उसने कानून शास्त्र के दुनिया भर के पन्ने जबानी अदालत के सामने रखकर अपनी आश्चर्यजनक बौद्धिक क्षमता का सिक्का जमा दिया। इसी बीच राजा आ गये, अपराधी को राजा के समक्ष प्रस्तुत होने का अवसर मिला और तदुपरान्त क्षमादान भी।

'गणित की जादूगरनी' कही जाने वाली भारतीय महिला शकुन्तला देवी अपनी अद्वितीय मानसिक शक्ति के कारण विश्वभर में जानी जाती हैं। जितनी तेजी से वे गणित की गुत्थियों का हल निकालती हैं, उस शीघ्रता से कम्प्यूटर भी काम नहीं कर पाता। अपनी मन:शक्ति के बारे में उनकी मान्यता है कि ''यह केन्द्रित मन की मात्र छोटी-सी शक्ति का नमूना भर है। यदि समग्र मन:सामर्थ्य का सुनियोजन किया जा सके तो इससे भी विलक्षण उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।''

उपरोक्त उदाहरण पिण्ड के एक घटक मस्तिष्क की सामर्थ्य की एक छोटी-सी झाँकी भर देते हैं। चेतन जगत से प्रत्यक्ष जुड़े इस माँसपिण्ड को भानुमती का पिटारा कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। मस्तिष्क में भरे एक खरब से भी अधिक स्नायुकोषों को अद्भुत विशेषताओं से सम्पन्न महादेव कहा जा सकता है। इनमें संचित स्मृतियाँ माइक्रोफिल्म की भाँति सुरक्षित रहती हैं और उत्तेजित किये जाने पर वे उभरकर आती हैं। डॉ. पेनफील्ड एवं डा. डेलगार्डों के इस विषय में मनुष्यों व पशुओं पर प्रयोग पहले ही ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनसे ज्ञात होता है कि मस्तिष्क का टेम्पोरल कार्टेक्स, पेराइटललोव व लिम्बिक सिस्टम इतना रहस्यमय, तिलिस्मों से भरा हुआ है कि इस विषय में किये गये अनेकानेक प्रयोगों ने वैज्ञानिकों को अपनी अज्ञानता का बोध तो कराया ही है, एक अद्भुत रोमांचकारी लीला जगत भी दिखाया है जो इस पिण्ड में विद्यमान है।

काया की सूक्ष्म संरचना का वर्णन करते हुये ऋषि-गणों ने एक ऐसे विद्युत प्रवाह के मस्तिष्क में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवस्थित होने की कल्पना की है, जो मस्तिष्क के अनेकानेक महत्वपूर्ण केन्द्रों, स्नायुकोषों की परतों तथा स्नायु-रसायन सन्देश वाहकों के रसस्रावों को उत्तेजित करता है। मस्तिष्क में स्थित इस फब्बारे को वांछित केन्द्रों तक भेजकर उन्हें उत्तेजित कर प्रसुप्त को जगाया जा सकना सम्भव है, इससे अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। सम्भवत: इस तथ्य को उपनिषद्कार ने इस तरह अभिव्यक्त किया है।

''तस्य सर्वेष लोकेष कामचारो भवति।'' छान्दोग्य

अर्थात्-सहस्रार को प्राप्त कर लेने वाला योगी सम्पूर्ण भौतिक विज्ञान का अधिष्ठाता बन जाता है, सर्व-समर्थ हो जाता है।

विपुल सम्पदा से भरे-पूरे इस पिण्ड में बहुत कुछ भरा पड़ा है। 'साधना से सिद्धि' के समस्त उदाहरण इसी एक तथ्य के साक्षी हैं कि साधकों ने इसी चेतना घटक को सामर्थ्यवान बनाया और बदले में ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ पायीं। यह सिद्धान्त सदा से ही शाश्वत रहा है और आगे भी जब भी किसी को इस मार्ग पर चलना होगा-इसी को अपना आधार बनाना होगा।

विराट् मन ही इस विश्व का नियामक

अदृश्य जगत न अब उतना अविश्वस्त रहा है और न अप्रामाणिक, जैसा कि एक शताब्दी पूर्व वैज्ञानिकों द्वारा कहा जाता था। कभी उसे कपोल कल्पित एवं उपहासास्पद ठहराया जाता था और कहा जाता था कि प्रकृति की परिधि से बाहर और कुछ नहीं है। यहाँ तक कि मानवी चेतना भी कुछेक रासायनिक पदार्थों एवं विद्युत तरंगों का सम्मिश्रिण होने के कारण प्रकृति का ही एक अनौखा घटक है। उन दिनों इसी आधार पर आत्मा और परमात्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व से भी इन्कार किया जाता था, पर अब समय बहुत आगे बढ़ गया। प्रकृति का लघुतम घटक कभी परमाणु माना जाता था। पर उसके अन्तराल में भी एक अणु परिवार स्वीकृत हो चुका। इतना ही नहीं अणु की स्वतन्त्र सत्ता भी समाप्त हुई और उसे विद्युत तरंगों का एक गुच्छक मात्र स्वीकार किया गया।

प्रकृति अनुसंधान की गहराई में उतरने वालों ने एक समानान्तर विश्व का, समानान्तर परमाणु का अस्तित्व खोज निकाला है जो प्रत्यक्ष उपकरणों की पकड़ में तो नहीं आता पर गणितीय सिद्धान्तों के आधार पर उसे जो मान्यता मिली है उससे इंन्कार भी नहीं किया जा सकता। पदार्थ का प्रतिद्वंद्वी प्रति पदार्थ एन्टी मैटर अब एक तथ्य है। इसी प्रकार विश्व के प्रतिद्वंद्वी प्रति विश्व एन्टी यूनिवर्स की जो जानकारी मिली है, उसे कपोल-कल्पना ठहराने का साहस कोई भी नहीं कर सकता है। अदृश्य जगत का यही क्षेत्र है। वह काया और छाया की तरह परस्पर घनिष्ट है। दृश्य जगत और अदृश्य जगत दोनों ही जुड़वाँ भाई बनकर विज्ञान जगत की नवीनतम मान्यताओं में सम्मिलित हो चुके हैं।

विज्ञान जगत में अब 'न्यूट्रिनो' एवं 'साइकोट्रॉन' नामक ऐसे विद्युतीय कणों का पता चल गया है, जिनकी गति निर्बाध है, पदार्थ की एक भी दीवार उसे रोक नहीं पाती। सम्भवत: इन्हीं कणों के सहकार से मस्तिष्क के न्यूरोन्स में अतीन्द्रिय चेतना की सामर्थ्य आ जाती है। परामनोवैज्ञानिक भी अब धीरे-धीरे इसी निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं।

'प्रो. फ्रेंक ब्राउन' की लम्बी शोधें इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि चारों ओर हवा की तरह एक ब्रह्माण्ड व्यापी ऊर्जा विद्यमान है जिससे अपनी पात्रता के अनुसार सभी का सम्पर्क जुड़ा रहता है। सभी आवश्यकतानुसार एवं अपनी आकर्षण सामर्थ्य के अनुरूप उससे शक्ति खींचते और सामर्थ्यवान बनते हैं।

साधारणतया परमाणु में भार, घनत्व, विस्फुटन, चुम्बकीय क्षेत्र आदि भौतिक परिचय देने वाले लक्षण होते हैं। पर अब विज्ञान की पकड़ में ऐसे सूक्ष्म विद्युतीय कण आ गये हैं जिनमें भौतिक परमाणुओं में पाया जाने वाला एक भी लक्षण नहीं है। फिर भी वे प्रकाश की गति से शरीरों के भीतर और पोले आकाश में निर्बाध परिभ्रमण करते हैं। वे भौतिक परमाणुओं को बेधकर आर-पार निकल जाते हैं। पदार्थ की कोई दीवार उन्हें रोक तो नहीं पाती, पर यदा-कदा उनमें टकराव उत्पन्न होते देखा गया है। इस टकराव के अवसर पर ही उनका अस्तित्व अनुभव में आता है। अब यह सोचा जा रहा है कि सम्भवत: पल्सार्स से आने वाले न्यूट्रीनों एवं साइकोट्रान जैसे कण ही मस्तिष्क के सामान्य न्यूरान कणों के साथ साँठ-गाँठ करके अतीन्द्रिय चेतना उभारने का पथ-प्रशस्त करते हैं। अब न्यूट्रीनों कणों का प्रभाव मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना और तन्तु समूह पर क्या हो सकता है? इसकी गहरी खोजें चल रही हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक चेतना पर वे जो प्रभाव डालते हैं और जिन नई जाति के ऊर्जा कणों का जन्म होता है उस कम से उन्हें माइन्जेन नामक नाम दिया जाना चाहिए। अनुमान है कि यदि इनका उद्भव और विकास मस्तिष्क में होने लगे तो मनुष्य का अवचेतन मन ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के साथ सम्बद्ध होकर अपनी ज्ञान परिधि और क्रियाशक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असीम कर सकता है। तब शरीर बन्धनों के कारण उसकी सीमित क्षमता के असीम बनने में कोई कठिनाई न रहेगी।

जीवविज्ञान वेत्ता प्रो. फ्रेंकब्राउन की लम्बी शोधें इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि जिस प्रकार हमारे इर्द-गिर्द हवा भरी है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड-व्यापी ऊर्जा के समुद्र से सृष्टि का प्रत्येक प्राणी जीवन प्राप्त करता है। उस महान प्रसारण को प्रत्येक प्राणी एक छोटे रेडियो रिसीवर की तरह अपनी पात्रता के अनुरूप ग्रहण करता है और उसमें अपना उपार्जन सम्मिलित करता है। इस प्रकार हर प्राणी अथवा पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी एक ही संयुक्त सत्ता का अंश है। भिन्नता के बीच एकता के शास्त्रवर्णित सिद्धान्त को अब क्रमशः विज्ञान के क्षेत्र में भी मान्यता मिलती जा रही है।

ब्रह्माण्ड विराट् है, पिण्ड स्वल्प सीमित। इतने पर भी विभु की समग्र सत्ता अणु में विद्यमान है। दावानल की विकरालता कैसी ही क्यों न हो। चिन्गारी में उसकी मूलभूत क्षमता का अस्तित्व पूरी तरह समाविष्ट है। विराट् मन ही इस विश्व का सृजेता एवं नियामक है। काया में सीमाबद्ध मन भी उन समस्त सम्भावनाओं से भरा-पूरा है जिन्हें परमात्मसत्ता में देखा एवं पाया जाता है।

मन की अद्भुत और अलौकिक सामर्थ्य इतनी है कि वह सामान्य व्यावहारोपयोगी बुद्धि से कहीं अधिक ही क्षमता-सम्पन्न स्वयं को बना सकता है। इस दिशा में काफी अन्वेषण कार्य चल रहा है। कैलीफोर्निया की ''स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, नीदरलैण्ड की ग्रोनिगन यूनिवर्सिटी, हारवर्ड यूनिवर्सिटी, शिकागो यूनिवर्सिटी, ड्यूक यूनिवर्सिटी इत्यादि स्थानों पर इस सम्बन्ध में बड़े स्तरों पर शोध प्रयत्न जारी है। वस्तुतः अतीन्द्रय-सामर्थ्य मनःशक्ति की ही दृश्यमान हो सकने वाली सामर्थ्य है जिसे इतना असम्भव, दुर्लभ नहीं मानना चाहिए जितना कि समझा जाता रहा है।''

यह एक अद्भुत एवं विचारणीय तथ्य है कि जितने हमारी आकाशगंगा में तारे हैं, लगभग उतने ही स्नायुकोश हमारे मस्तिष्क में भी फैले हुए हैं। पिछले दिनों वैज्ञानिकों का सर्वाधिक ध्यान इन स्नायुकोशों को परस्पर मिलाने वाले सन्धि केन्द्रों (सिनेप्सों) पर स्रवित होने वाले रसायन पदार्थों न्यूरो ट्रान्समीटर्स पर गया है। अब प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया जा रहा है कि सिरोटोनिन, डोपामीन, एसिटाइल कोलीन तार एड्रीनेलिन के रूप में विराजमान ये रसायन ही सारी विद्युत-संचार प्रणाली के लिये जिम्मेदार हैं। बौद्धिक क्षमता की घट-बढ़ में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

इसी के साथ-साथ एक और विद्युत्स्फुल्लिंग के फब्बारे की मस्तिष्क में अवस्थित होने की ऋषिगणों द्वारा वर्णित सहस्रार की कल्पना अब वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित की जाने लगी है। उनके अनुसार एसेन्डिन्ग रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम (ए. आर. ए. एस.) नामक यह तन्तु-जाल रसायन सन्देश वाहकों एवं प्रसुप्त पड़े केन्द्रों को उत्तेजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

समझा जाता है कि मस्तिष्क की सीमा स्वल्प है और वह थोड़े से श्रम में थक जाता है पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। वह लम्बे समय तक बिना विराम विश्राम के अनवरत श्रम कर सकता है और यथावत् स्वस्थ सक्षम बना रह सकता है। कुछ व्यक्ति मस्तिष्क की उपयोगिता मात्र रोजमर्रा के काम आने हेतु व्यवहार तथा निद्रा तक सीमित मानते हैं। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि इसकी अपनी भी एक महती भूमिका है। नींद आहार की तरह ही आवश्यक मानी जाती है। 'थकान उतारने का यही एक प्रमुख साधन है।'

आवश्यकता है ईश्वर प्रदत्त अनन्त विभूतियों के भाण्डागार-इस सृष्टि से अनुपम उपहार मस्तिष्क को विकारग्रस्त, असन्तुलित न होने दिया जाय और उपयुक्त दिशाधारा में नियोजित करके वह लाभ उठाया जाय जिससे मानवी काया में देवत्व की सम्भावनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन सम्भव हो सके।

चेतना की उदात्तीकरण प्रक्रिया

आदिमकाल में मनुष्य बन्दरों, वन-मानुषों की तरह रहता था और शारीरिक श्रम के आधार पर ही निर्वाह के साधन जुटाता था। तब उसके पास सम्पदा के नाम पर मिट्टी के बर्तन और पत्थरों के उपकरण भर थे। लम्बे पत्तों से काया को ढकता और ऋतु प्रभाव से अपने को बचाता था। निवास के लिए पेड़ों के झुरमुट और पहाड़ों की गुफा खंदक ही उसका आश्रय थे। यह स्थिति चिरकाल तक चली।

कालान्तर में इच्छाशक्ति उभरी, प्रगति की कामना जगी, तो बुद्धि के कल-पुर्जे अधिक सक्रिय हो गये। अग्नि जलाना, पहिए बनाना, कृषि करना, पशु-पालन, आवास खड़े करना, बस्ती बनाना जैसी जीवनोपयोगी कलाएँ सीखीं। भाषा और लिपि का विकास हुआ। आयुध एवं औजार बने। इसी प्रकार क्रमशः भौतिक विज्ञान की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति होती गई। सहकार बढ़ा। कुटुम्ब बने और एक का ज्ञान अनुभव दूसरे को हस्तान्तरित होने लगा। यही प्रक्रिया बढ़ते-बढ़ते आज उस स्थिति तक आ पहुँची है कि मनुष्य विद्युत शक्ति का दैनिक प्रयोजनों में, व्यावसायिक उद्देश्यों में भरपूर प्रयोग कर रहा है एवं प्रकृति के अनेकों अविज्ञात रहस्य उसने खोज लिए हैं।

अद्यावधि हस्तगत हुई उपलब्धियों तथा भावी सम्भावनाओं की विभूतियाँ क्यों कर हाथ लगीं ? इसका उत्तर देते हुए यही कहना होता है कि यह विज्ञान का चमत्कार है। यदि इस विश्व में प्रगति न हुई होती तो यह किसी भी प्रकार सम्भव न था कि वन-मानुषों की बिरादरी से आगे बढ़कर सृष्टि का मुकुट-मणि बनने की स्थिति तक पहुँच सकना बन पड़ता तथा सम्पदा, सुविधा और साधनों के अम्बार उसके सामने खड़े होते।

भौतिक विज्ञान की जितनी प्रशंसा की जाय, जितनी महिमा बखानी जाय, उतनी ही कम है। पदार्थ प्रकृतितः अनगढ़ और अस्त-व्यस्त था। उसे सुनियोजित मानवी बुद्धि, श्रमशीलता और कुशलता ने ही संभव किया है। विज्ञान पदार्थों के अनुकूलन की विद्या सिखाता है। इसके लिए गतिशील रहा गया तो भविष्य में इस प्रत्यक्ष प्रगति के और भी अधिक आधार हाथ लगेंगे । इतने पर भी यह सब रहेगा एक पक्षीय ही। उससे सुविधा-साधनों के अतिरिक्त और कुछ मिलने वाला नहीं है। शरीर पंच तत्वों का, पदार्थों का बना है। उसे सुविधा प्रदान करने तक की पदार्थ विज्ञान की सीमा नियत, निर्धारित है।

इतने पर भी यह सब अपूर्ण, अधूरा है। क्योंकि मानवी सत्ता का एक पक्ष चेतना का भी है। चेतना जहाँ अपने प्रभाव से शरीर को जीवित सक्रिय रखती है। वहाँ वह नीति-निष्ठा, भाव, संवेदना, धर्मधारणा, आदर्शवादिता से भी भरी-पूरी है। मानवी गरिमा उसकी सुसंस्कारिता पर निर्भर है। उसी के संकल्प से संयम बरतते बन पड़ता है। मर्यादा पालन एवं वर्जनाओं का अनुशासन भी उसी की प्रेरणा से निभता है। चरित्र-निष्ठा का निर्वाह उसी के संकेतों पर अवलम्बित है। गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता जिस अन्तःकरण के संवेदनशील होने पर निर्भर है, उसे परिष्कृत चेतना के साथ सघन रूप से जुड़ा हुआ समझा जा सकता है। मानव जीवन का विचार पक्ष उसी पर अवलम्बित है। उच्चस्तरीय प्रगति उसी पर निर्भर है। महापुरुषों जैसी महानता उसी क्षेत्र से उद्भूत होती है। व्यक्तित्व का निखार, प्रतिभा का उभार इसी उद्गम से होता है। दृश्य शरीर की तुलना में चेतना का अदृश्य पक्ष सहस्रों गुना अधिक श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ है।

चेतना यों रहती तो सभी जीवधारियों में है। उसी की उपस्थिति तक जीवन रहता है। विलग होते ही मरण निश्चित है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि प्रखर, परिष्कृत होने पर वह अन्तःकरण की भाव-संवेदना की, मस्तिष्क की दूरदर्शी-विवेकशीलता और शरीर की तन्मय, तत्परता का विकास संभव कर दिखाती है। चेतना का उत्कर्ष ही नर-पशु को महामानव बनाता है।

इस ब्रह्माण्ड की संरचना दो भागों में बँटी हुई है—एक जड़ तथा दूसरा चेतना। एक प्रकृति दूसरा पुरुष। सब जानते हैं कि बिना संचालक के ऑटोमेटिक मशीनें भी नहीं चल सकतीं और न कम्प्यूटर, रोबोट ही काम कर सकते हैं। प्रकृति को भी सचेतन परब्रह्म ने ही बनाया है। अस्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि जड़ से चेतन का मूल्य-महत्व असंख्य गुना होना चाहिए। जड़ पदार्थों के सहारे जब अनेकानेक सुख- साधन विनिर्मित हो सकते हैं तो चेतन की बुद्धिमत्ता एवं भाव-संवेदना कितनी अधिक श्रेय, साधना सम्पादित कर सकती है ? इसे सहज ही समझा जा सकता है।

भौतिक विज्ञान पदार्थों के अनुकूलन पर आधारित है। उसमें वस्तुओं को इच्छानुरूप स्थिति में बनाने की क्रिया-प्रक्रिया सीखी-सिखाई जाती है। दूसरा समानान्तर विज्ञान है चेतना का। उसके परिशोधन, उन्नयन का। इसे अध्यात्म कहते हैं। इसका प्रथम चरण है—चिन्तन। विचार पद्धति का सुसंतुलन। सर्वविदित है कि क्रियाकलापों के मूल में विचारणा ही काम करती है। विचार प्रवाह यदि अनुपयुक्त दिशा में बह रहा है तो उसके सूत्र-संचालन पर निर्भर क्रिया-कलाप भी हेय स्तर के ही बन पड़ेंगे, हेय कृत्यों का प्रतिफल दुःखद संकटापन्न एवं अपयश, विरोध विग्रह के रूप में ही सामने आना चाहिए। उस कुचक्र में फँसे मनुष्य खिन्न, विपन्न से बने रहते हैं और वर्जनाओं का उल्लंघन नहीं करते। चरित्र में गुण, कर्म, स्वभाव के सभी पक्ष आते हैं। निज की विनम्रता, संयमशीलता और दूसरों को सम्मान प्रदान करते रहने, मधुरता का पुट लगाते रहने, प्रसन्नता-सफलता व्यक्त करने वाली हल्की मुस्कुराहट चेहरे पर बनाये रहने पर व्यक्तित्व का स्तर प्रकट होता है। इस चुम्बकत्व से जनसाधारण का सहयोग, सद्भाव खिंचता चला आता है। वैसे चरित्र-निष्ठा के आवश्यक अंग समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी के रूप में जाने जाते हैं।

तीसरा पक्ष व्यवहार का है। जैसा सोचा जाता है वैसा ही व्यक्तित्व बनता है, चरित्र ढलता है। चरित्र अपनी गरिमा के अनुरूप लोकोपयोगी कामों में हाथ डालता है। उदार, परमार्थ-परायणता का परिचय देता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के रूप में दूसरों से यथोचित व्यवहार बन पड़ता है। योजना ऐसा कुछ कर गुजरने की रहती है, जिसका प्रभाव ग्रहण करने वाले-हर किसी को ऊँचा उठने, आगे बढ़ने की प्रेरणा मिल सके।

आत्मीयता की स्नेह-संवेदनाओं से भरा-पूरा उदारसेवी सहयोग, सम्मिश्रित सद्व्यवहार हर किसी से नहीं बन पड़ता। ओछे व्यक्ति तो अहंकार भरी अशिष्ट उजड्डता बरतते देखे गये हैं। सज्जनता, चरित्र-निष्ठा का ही एक अंग है। नीतिवान मानवी गरिमा का मनुष्य जन्म का मूल्य-महत्व समझते हैं। अस्तु, अपना व्यक्तित्व ऐसा बनाये रहते हैं जिससे अन्तरात्मा प्रफुल्लता-प्रसन्नता अनुभव करे और सम्पर्क क्षेत्र के लोग सराहना करते रहें। किसी को किसी भी कारण उँगली उठाने का अवसर न मिले। शत्रु भी लोहा मानें और उसका मूल्यांकन अजातशत्रु के रूप में करें। चरित्र चिन्तन का परिणाम है। चिन्तन बीज है, उसमें चरित्र और व्यवहार का खाद-पानी लगाने से जीवन कल्पवृक्ष जैसा फलता है, चन्दन जैसा महकता है। चिन्तन आमतौर से अचिन्त्य चिन्तन की रँगीली उड़ानें उड़ता और आवारागर्दी में भटकता देखा गया है। पर जब उसे आदर्शवादिता का अवलम्बन मिलता है तो सही मार्ग पर चलने लगता है। उच्छृंखलता अवरुद्ध होती है और निर्धारित उद्देश्यों के लिए वह एकनिष्ठ, तन्मयता अपनाता है। ऐसों की एक भी विचार तरंग अनगढ़ नहीं होती। न उनमें भटकाव देखा जाता है और न ही असंयमी, स्वच्छंदता का दौर उभरता है। विचारों का मूल उद्गम अन्तःकरण में उत्कृष्ट स्तर का होता है, वहाँ विचार तरंगों का उत्पादन भी आदर्शवादी अभिव्यंजनाओं से आपूरित रहता है। अन्तःकरण ही है जिसमें संस्कार जड़ जमाये रहते हैं। जहाँ कुसंस्कारों का उन्मूलन करके सुसंस्कारों को आरोपित कर लिया गया है, वहाँ चिन्तन, चरित्र और व्यवहार के सभी स्तर आदर्शों से भरे-पूरे रहते हैं।

चेतना का उदात्तीकरण जीवन के अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्रों का परिशोधन, परिष्कार करने की प्रक्रिया जारी रखने पर सहज संभव है। इसके लिए आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के चार कदम उठाने पड़ते हैं। एकान्त में बैठ एक एकाग्र मन से अपने गुण, कर्म, स्वभाव में घुसी हुई अवांछनीयता को समझने, पहचानने का प्रयत्न करना पड़ता है। जो अनुपयुक्तता समझ में आवे, उसे कूड़े-कचरे की तरह बुहार फेंकने का साहस भरा प्रयत्न करना चाहिए। प्रबल इच्छा शक्ति के सामने कोई दुष्प्रवृत्ति टिक ही नहीं सकती। यह परिशोधन हुआ। यह आवश्यक है किन्तु पर्याप्त नहीं। दुष्प्रवृत्तियों के हटाने पर जो स्थान खाली हुआ है उसे रिक्त नहीं रहने देना चाहिए वरन् उसमें सत्प्रवृत्तियों का आरोपण करना चाहिए। उन्हें स्वभाव का अंग बनाने के लिए, अभ्यास में उतारने के लिए तदनुरूप आचरण करने की क्रमबद्ध योजना बनानी चाहिए और उसे कार्यान्वित करते रहने के निश्चय पर आरूढ़ रहना चाहिए।

आत्म विकास का अर्थ है—अपने ''स्व'' का दायरा बढ़ाना। जिस शरीर, परिवार में अपनी ममता सँजो रखी है। उसे सुविस्तृत करते हुए ''आत्मवत् सर्व भूतेषु'' की, **''वसुधैव कुटुम्बकम''** की मान्यता अपनानी चाहिए। दूसरा तात्पर्य है, स्वार्थ को परमार्थ में विकसित करना। विराट ब्रह्म का विशाल विश्व के रूप में दर्शन करना। लोक-सेवा का व्रत लेना और सत्प्रवृत्ति संवर्धन में जुट जाना।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए अध्यात्मवादी तत्व दर्शन के अनुरूप अपने श्रद्धा, विश्वास को उकृष्टता के ढाँचे में ढाला जाना चाहिए। इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, सेवा और साधना के चारों आधार जीवन-चर्या के अविच्छिन्न अंग बनाये जाने चाहिए। चिन्तन और मनन की प्रक्रिया में अधिकाधिक समय लगाना चाहिए। चिन्तन का प्रयोजन होना चाहिए परिशोधन तथा मनन का उद्देश्य रहे-भावी गतिविधियों को सत्प्रवृत्तियों में सुनियोजित करने की उमंग भरी विचारणा रहनी चाहिए।

मन में निहित विकास की उच्चतर अवस्थाएँ

मानव विकास की समस्त संभावनाओं का उद्गम स्थल उसका अपना मन है। अध्यात्मवेत्ता इसे ही बन्धन-मोक्ष का कारण बताते हैं। मनोविज्ञानी भी अब इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं और मनःसंस्थान की गहन खोज में निरत हैं। उन्होंने इसे सचेतन, अचेतन और अतिचेतन के स्तरों में विभाजित किया है। सचेतन वह स्तर है, जिससे जाग्रत अवस्था में रोजमर्रा के सारे कामों का संचालन होता है। अचेतन में संस्कार , आदतें समायी होती हैं। सोते-जागते अंतरंग की गतिविधियों का संचालन भी इसी से होता है। इन दोनों से परे सबसे गहरी और आखिरी परत को अतिचेतन कहा गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस अतिचेतन की मूल प्रवृत्ति उत्कृष्टता से भरपूर है। श्री अरविन्द ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर इसे पाँच भागों में निरूपित किया है। पहला है, 'उच्च मन' जो ज्योतिर्मय चिन्तन के माध्यम से प्रकट रूप से संसार में समाये सत्य को अनुभव कराता है। दूसरी ऊँची परत प्रबुद्ध मन है, जिसके द्वारा शान्ति, शक्ति, ज्योति एवं सत्य प्रतिफलित होता है। इसके द्वारा सत्य को देखा या सुना जा सकता है। इसके ऊपर तीसरा स्तर है—'प्रज्ञा मानस' का, जहाँ ज्ञान-ज्ञाता व ज्ञेय में कोई भेद नहीं रह जाता। व्यक्ति सत्य के साथ गहन तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

इसके भी ऊपर जो स्तर है—अरविन्द ने उसका नाम रखा है—'अधिमानस' (ओवर माइण्ड) यहाँ तक विकास करने पर पहले अनुभूति में—फिर उपलब्धि में परम तत्त्व का साक्षात होता है। इस समीपता के बाद सायुज्यता का भाव आता है। इस एकता के बाद चेतना के सबसे गहरे स्तर 'अतिमानस' (सुप्रामेण्टल) की ओर बढ़ा जाता है। इस स्तर को पाने पर सभी कुछ सत्य व संगतिपूर्ण है, इसका साफ-साफ अनुभव होने लगता है। वैदिक ऋषियों ने इसी स्तर में पहुँच कर **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** का अनुभव किया था।

भारतीय चिन्तन में बताये गये मानसिक विकास के इस क्रम को अब पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी स्वीकारने लगे हैं। उन्होंने सचेतन-अचेतन के उलझाव से परे अतिचेतन के उच्चस्तरीय स्तरों की बात को भी स्वीकारा है और इस उपलब्धि को जीवन का ध्येय भी माना है। वस्तुतः कार्य-कौशल से लोक-व्यवहार बनता है। बुद्धि-विवेक से ठीक-ठीक निर्णय होते हैं। पर अन्तराल तो समूचे व्यक्तित्व का अधिष्ठाता है। इसकी परिष्कृत और विकसित स्थिति सामान्य मनुष्य को ऋषि-देवमानव स्तर तक पहुँचाने में समर्थ होती है। अपने भीतर विद्यमान इस देवलोक का माहात्म्य अध्यात्मवेत्ता सदा से बताते चले आ रहे हैं। उन्होंने उसकी अनुकम्पा उपलब्ध करके जीवन लाभ देने वाले अनेक प्रतिपादनों को समझाया है। सिद्धान्त और प्रयोग दोनों को उन्होंने गढ़ा, परखा और प्रचलित किया है।

मानव-जीवन में विकास की उच्चस्तरीय सम्भावनाएँ मन की उच्चस्तरीय परत अतिचेतन की असीम क्षमता को, आज जिसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक खोजने में लगे हैं, ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अपने अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर जान लिया था। आधुनिक युग में मानसिक विकास की उन अवस्थाओं की सिलसिले वार व्याख्या श्री अरविन्द ने अपनी कृतियों ''लाइफ डिवाइन'' ''सिन्थेसिस ऑफ योग'' आदि में करके ऋषि चिन्तन को एक वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया है। उनके अनुसार मन में निहित विकास की इन उच्च अवस्थाओं को प्रकट करने के लिए शारीरिक, मानसिक एवं व्यावहारिक परिष्कार करने की जरूरत पड़ती है। गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश करना पड़ता है। महर्षि अरविन्द की सहयोगिनी श्री माँ के शब्दों में इसके लिए सरल तरीका है- अपनी एकाग्रता को प्रगाढ़ बना लेना। काम-छोटा हो या बड़ा, उसे समूची एकाग्रता के साथ किया जाय। यह बढ़ी हुई एकाग्रता पहले अचेतन की शक्तियों को प्रकट करती है। धीरे-धीरे इसके अन्तर्मुख होने पर अतिचेतन की एक-एक परतों के रहस्य उजागर होते जाते हैं।

इस तरह प्रत्येक क्षण का उपयोग विकास के साधन के रूप में किया जा सकता है। जीवन के सामान्य कार्यों में भी इसकी पवित्रता, प्रखरता की झलक आने लगती है।

परमात्मा ने हमें उच्चस्तरीय मानसिक एवं आत्मिक चेतना के जिस अगाध सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया है, उसे यों ही कुसंस्कारों की मिट्टी-धूल से ढँका रहना ठीक नहीं है। इसके लिए ऋषियों-महामानवों द्वारा बताये गये कारगर, परिष्कार उपायों को सतत् अभ्यास, उपयोग में लाकर देव मानव स्तर का विकसित जीवन प्राप्त किया जा सकता है। नर से नारायण बनने का जीवन लक्ष्य साधा जा सकता है।

योगी अरविन्द का अतिमानस और धरती पर स्वर्ग

श्री अरविन्द के दर्शन की विशिष्टता यह है कि वे किसी अतिवादी मार्ग पर चलकर लक्ष्य तक पहुँचने को गलत मानते हैं और बुद्ध दर्शन पर ही विश्वास करते हैं, जिन्होंने हर क्षेत्र में मध्यम वर्ग को ही औचित्य पूर्ण बताया है, जैसा कि उनके दर्शन से स्पष्ट होता है। महर्षि अरविन्द योग एवं भोग दोनों की समन्वयात्मक मध्य स्थिति को ही सही मानते व अपनाने पर जोर देते हैं। इसी में पूर्वार्त्त और पाश्चात्य दोनों जगत का हित साधन है। उनके विचार में योग के लिए घर-संसार छोड़ना जरूरी नहीं है। वे दैनन्दिन कर्म को ही योग मानते हैं और गीता के **''योग कर्मसु कौशलम्''** सूत्र का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि योग साधना जिस तन्मयता से मन्दिर-मस्जिद गिरजाघरों में भिन्न रूपों में चलती है, उसी तत्परता व लगन से वह ऑफिस-कारखानों में दैनिक दिनचर्या के साथ भी चलती रह सकती है। आवश्यकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है सिर्फ इसमें रस लेने की, अभिरुचि अन्तः से पैदा करने की।

अरविन्द-दर्शन की सबसे बड़ी खासियत यही है कि उन्होंने अपनी कल्पना में आध्यात्मिक जीवन को पूरी मनुष्य जाति के लिए संभव बताया है और कहा है कि यह शक्ति हर व्यक्ति के अन्दर विद्यमान है और प्रयत्नपूर्वक उसे प्रकट किया जा सकता है। उनने अपने दर्शन में न सिर्फ इसी संभावना को अभिव्यक्त किया है वरन् इससे भी आगे की बात कही है कि सम्पूर्ण पृथ्वी को अतिमानवी, अतिमानस से अभिपूरित किया जा सकता है। सम्पूर्ण मानव जाति को अध्यात्मजीवी जाति के रूप में परिणत कर देव-स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। फिर वह इसी मानव शरीर में इसी लोक में उन समस्त सुखों व आनन्द को भोग सकेगा, जिसे अभी धरती पर अलभ्य, स्वर्ग में उपलभ्य माना जाता है। इस तथ्य का उद्घाटन उन्होंने अपने महाकाव्य ''सावित्री'' में किया है। उसमें उनने दावा किया है कि यह रूपान्तरण आयेगा और अवश्य आयेगा, परन्तु यह कोई दैवी चमत्कार के रूप में घटित नहीं होगा, न ही आकस्मिक रूप में आयेगा, वरन् इसकी प्रगति धीमे-धीमे होगी। वे कहते हैं कि ''मनुष्य का रूपान्तरण अवश्यम्भावी है। वह होकर रहेगा और मनुष्य अध्यात्मजीवी अवश्य बनेगा। परम चेतना के भीतर जो अद्भुत शक्तियाँ छिपी हैं, उसका प्रकटीकरण मानव में होकर रहेगा।'' महर्षि अरविन्द ने इसी जीवन को दिव्य जीवन की संज्ञा दी है।

वस्तुतः यह कोरी कल्पना नहीं, अपितु एक ऐसा सर्वांगपूर्ण जीवन दर्शन है, जो आत्मिकी के मूलभूत सूत्रों से जनसाधारण को परिचित कराता है। यह दर्शन यह सिखाता है कि अध्यात्म कायरों का नहीं, हिम्मत वालों, जीवट वालों के लिये है। अध्यात्म का अवलम्बन किसी को पराश्रित, निठल्ला नहीं बनाता बल्कि उसे नरमानव से देव मानव बनाता, ऊँचे सोपानों पर चढ़ाता है।

योगीराज अरविन्द का ''अतिमानस'' वस्तुत भगवद्चेतना का ही पर्याय है जो कि कालक्रम में निकट भविष्य में प्रकट होने वाला है। यह विकास की अन्तिम स्थिति होगी। चरम विकास का अन्तिम सोपान। इससे पूर्व मन के चार निम्न सोपानों का योगीराज ने उल्लेख किया है—उच्चत्तर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन तथा ओवर माइण्ड। अतिमानस इन सभी से ऊपर की व अन्तिम स्थिति है।

अरविन्द कहते हैं कि आज जो गहन अन्धकार मानवी बुद्धि के सामने अज्ञानवश छाया हुआ है, उसे दूर कर पाना मानव के बस की बात नहीं। जब कभी यह धुंधलका छँटेगा तो वहाँ कोई चिन्तक अथवा विचारक नहीं होगा, होगा सिर्फ एक दृष्टा मानव-आत्म दृष्टा। फिर उसके लिए कुछ भी जानना, समझना असंभव न होगा। योगीराज के अनुसार ज्ञान का अरुणोदय बुद्धि के अवसान के बाद ही होता है। अगले दिनों यही क्रम चलेगा और इससे अतिमानव की उत्पत्ति होगी।

बुद्धि के धरातल से ऊपर उठने के बाद मनुष्य में तीन प्रकार के रूपान्तरण का उल्लेख श्री अरविन्द ने अपने दर्शन में किया है—चैत्तिक, आध्यात्मिक और अतिमानसिक। अहं के विसर्जन को उनने चैत्तिक अथवा ''साइकिक'' रूपान्तरण कहा है। ज्ञान के अवतरण को आध्यात्मिक परिवर्तन के अन्तर्गत रखा, जबकि आरोह-अवरोह के अवलम्बन द्वारा अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति को उनने अतिमानसिक उत्थान बताया है। संभवतः यही धरातल तैतिरीयोपनिषद् का विज्ञानमय कोश है।

यद्यपि श्री अरविन्द को इस रूपान्तरण-प्रक्रिया की पूर्णता की कोई निश्चित अवधि नहीं बतायी है, किन्तु यह उनने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरम्भ में यह रूपान्तरण स्वल्प लोगों को प्राप्त होगा। बाद में यही लोग समाज की धुरी साबित होंगे, जिसके गिर्द सारा समाज, सारा विश्व परिभ्रमण करेगा और अन्ततः उसका भी रूपान्तरण हो जायेगा।

यह तो उनने भविष्य-दर्शन के आधार पर कहा है, पर वस्तुतः श्री अरविन्द के योग का मूल उद्देश्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक बार कहा था—''पूर्ण योग उस शक्ति को, उस प्रकाश को, उस चेतना को, उस वास्तविकता को पृथ्वी पर अवतरित करता है, जो पार्थिव चेतना को ऊपर उठा सके, उसे सामान्य से असामान्य बना सके और जो कुछ भी इस धरित्री पर है, उसे पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सके। एक ऐसा देवोपम वातावरण बनाने में समर्थ हो, जो धरती पर ही स्वर्ग की अनुभूति करा सके।''

वे कहते हैं कि ''किसी अन्य लोक की झलकी प्राप्त करना, ज्योति दर्शन होना, कोई आध्यात्मिक अनुभूति होना, 'स्व' की स्थिति से ऊपर उठ जाना, सार्वभौम आत्मा का अनुभव होना, यह तो हमारी आत्मिक प्रगति के आरम्भिक सोपान भर हैं। प्राचीन योगी इसी को इतिश्री मानकर स्वर्ग-मुक्ति की कल्पना करते थे, यही उनका परम लक्ष्य होता था।''

''पर हमारा उद्देश्य तो इससे बहुत उँचा है। हम चाहते हैं कि महत् चेतना, ब्राह्मी चेतना को उतार कर शरीर स्तर तक लाया जाय, जिससे हममें सार्वभौमता पूर्ण रूप से संव्याप्त हो सके। यदि यह प्रथम शर्त ही पूरी न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो सकी तो रूपान्तरण का पहला ही अनुबन्ध अधूरा रह जायेगा।''

रूपान्तरण की इस प्रक्रिया में प्रकृति मानव से महामानव, नर से नारायण, क्षुद्र से महान बनाने के लिए अपने ताने-बाने बुनने लगी है, मगर श्री अरविन्द का विचार है कि चूँकि मनुष्य इस सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है, उसमें सोचने-समझने की क्षमता है, अस्तु, अगले विकास-क्रम में उसे प्रकृति के साथ कंधे-से कंधा मिलाकर चलना पड़ेगा, तभी ऐसा संभव हो सकेगा। उनका कहना है कि अब तक की विकास-प्रक्रिया में पदार्थ से जीवन एवं जीवन से मन प्रादुर्भूत हो चुके हैं। अब अतिमन की बारी है, जो मन के भीतर अन्तर्निहित है। विकास के अगले क्रम में मनुष्य को इसी सोपान पर पहुँचना है।

वे आगे कहते हैं कि बुद्धि की क्रिया-प्रतिक्रिया मनुष्य बहुत देख चुका है। अब उसे ऊँचा उठाने में बुद्धि असमर्थ है, किन्तु फिर भी यदि मनुष्य उसी पर निर्भर रहा तो फिर संभव है कि आगे उसका अस्तित्व ही न बच पाये। उनका विश्वास है कि प्रकृति की ओर से बुद्धि मानव को सहायक के रूप में प्रदान की गयी थी, परन्तु यह उसका दुर्भाग्य ही है कि वह बुद्धि को ही अपना सर्वस्व मान बैठा और आज वही बुद्धि उसे पतन-पराभव के गर्त में धकेल रही है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य को अपना अस्तित्व बचाना है तो उसे अतिमन, अतिमानस को अपने अन्तःकरण में उतारना ही पड़ेगा। यही उसका दैवी अनुग्रह का अगला पड़ाव है और संकेत भी। बुद्धि का आश्रय छोड़कर प्रज्ञा में प्रवेश करना ही अब मनुष्य के लिए अभीष्ट है एवं यह उसे करना ही पड़ेगा।

इस संदर्भ में अरविन्द-दर्शन की सबसे अधिक समानता पियरे टेलहार्ड द चार्डिन के चिन्तन के रूप में देखी जाती है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''दि फिनोमिना ऑफ मैन'' में अनेक संभाव्यताओं के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानवी विकास की अगली पद-यात्रा चेतना की ओर होगी और समाज अध्यात्मजीवी बनेगा, जिसमें न तो पारस्परिक विद्वेष होगा न आपसी वैमनस्य। वह अपनी समस्त विपत्तियों, समस्त समस्याओं-संघर्षों से मुक्त होकर रहेगा। किन्तु टेलहार्ड का विश्वास है कि यह सब कुछ विज्ञान ही सम्पन्न करेगा, जबकि श्री अरविन्द इसका प्रतिवाद करते हैं। उनके विचार में विज्ञान में वह सामर्थ्य नहीं कि वह समाज को बदल सके, रूपान्तरण अध्यात्म ही कर सकने में समर्थ है, ऐसा वे मानते हैं।

''मैन दि अननोन'' ''रिफ्लेक्शन्स ऑफ लाइफ'' के बहुचर्चित लेखक अलेक्सिस कैरल की मूर्धन्य वैज्ञानिकों में गणना है। अनेकानेक तथ्यों-आँकड़ों के आधार पर वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मानवी सभ्यता बड़ी तेजी से विनाश की ओर अग्रसर हो रही है और सर्वनाश अब सिर्फ बुद्धि पर निर्भर रहकर नहीं टाला जा सकता। यहाँ पर वे भी योगी अरविन्द के स्वर-में-स्वर मिलाकर बोलते हैं कि यदि आगे विनाश को रोकना है, तो मनुष्य को बुद्धि से आगे विकास करना पड़ेगा। उसे आत्मा और चेतना की ओर लौटना पड़ेगा और उन देवोपम गुणों को फिर से अपने अन्दर प्रतिष्ठापित करना होगा, जो कभी धर्म और अध्यात्म के साथ पुष्पित, पल्लवित हुए थे।

कुछ बिन्दुओं पर नीत्से की भी श्री अरविन्द के साथ समानता देखी जा सकती है। कहा जाता है कि महर्षि से पूर्व सुपरमैन की कल्पना नीत्से ने ही की थी। किन्तु दोनों की इस संबंध में अवधारणा में जमीन-आसमान का अन्तर है। किन्तु एक अन्य स्थान पर दोनों का मतैक्य स्पष्ट झलकता है। योगिराज ने अब तक की विकास-यात्रा को अतिमानस के अवतरण की तैयारी मात्र कहा है, जबकि नीत्से का कथन भी इसी से मिलता-जुलता है। उसने स्वीकारा है कि अब तक सम्पूर्ण मानवी इतिहास सुपरमैन के पदार्पण की पूर्व तैयारी भर है। नीत्से ने इस बात को बार-बार दोहराया है कि मनुष्य का विकास अधूरा है और उसका अतिक्रमण होना ही है।

हेनरी बर्सो और मार्टिन हेडेगर की तरह प्रसिद्ध उर्दू शायर मुहम्मद इकबाल ने भी मानवी बुद्धि को विकास का रोड़ा कहा है और सम्पूर्ण मनुष्य जाति को उससे आगे बढ़ने का संदेश दिया है। उनकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है-**''गुजर जा अक्ल से आगे कि यह चिरागे-राह है, मंजिल नहीं है।''** और कहना न होगा कि अरविन्द के भी लगभग यही शब्द हैं।

एक पूर्ण मनुष्य की कल्पना करते हुए कबीर कहते थे—**''पाछे-पाछे हरि फिरैं कहत कबीर कबीर''**। यह उक्ति पूर्णतः परिपूर्ण रूप से विकसित मानव पर चरितार्थ होती है। इकबाल ने अध्यात्मवादी विकास की परिकल्पना कर मुहम्मद साहब के ''तखल्लकुबी अखलाक अल्लाह'' अर्थात् ''देवत्व को धारण करो'' का पुरजोर समर्थन किया है। स्वयं वे कहते है—**''खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तदबीर के पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।''** यही वह पूर्ण मनुष्य है जिसे अरविन्द ने अध्यात्मजीवी महामानव कहा है और मार्टिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हेडेगर ने ''आर्थेंटिक बिइंग''। इकबाल ने इसी को ''नायबे इलाही'' की संज्ञा दी है।

वस्तुत: आने वाला समय मनुष्य के चरम विकास, परिस्थितियों के आमूलचूल परिवर्तन का युग है। दार्शनिक, दूरदृष्टा मनीषी यह कहते ही आ रहे हैं, हमें अपनी भूमिका पहचाननी व निभानी भर है।

हमें प्रज्ञा का आश्रय लेना पड़ेगा

भौतिक विज्ञान के जन्म से ही जीवन सत्ता में मन को और उसी के साथ बँधी हुई प्राण विद्युत को महत्त्व दिया जाता रहा है। मन को विचारों का स्रोत माना गया है और समझा गया है कि मनुष्य की प्रगति और अवगति का कारण वही है।

मन का परिष्कृत पक्ष है—बुद्धि। बुद्धि के द्वारा समस्याओं और योजनाओं पर हम विचार करते हैं और उनका समाधान ढूँढ़ने में समर्थ होते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों का उद्‌गम भी यह बुद्धि संस्थान है। समझा जाता है कि सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भी बुद्धि विवेचना से ही संभव है।

तत्वदर्शी बुद्धि से भी ऊँची एक परत को समझते हैं, उसे प्रज्ञा नाम देते हैं। यह मन, बुद्धि चित्त से ऊँची और अन्त:करण की दिव्य चेतना के समीप है।

विश्व की अतीव उलझी हुई अड़चनों को सुलझाने में तत्वदर्शी प्रज्ञा की शक्ति का प्रयोग आवश्यक मानते हैं। उनका कथन है कि धरती पर स्वर्ग का अवतरण इसी आधार पर संभव है कि प्रज्ञा को उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों में अवतरित, प्रखर, प्रचंड किया जाय और फिर उसे व्यापक वातावरण में प्रकीर्ण किया जाय। मानवी चेतना को मन, बुद्धि तक सीमित न रहने देकर प्रज्ञा के साथ जोड़ा जाय।

योगी अरविन्द ने उच्च मन, प्रकाशमान मन एवं संबुद्ध मन की कल्पना इस रूप में की है कि मन-शरीर की अपेक्षा आत्मा के अधिक निकट है। ऐसा लगता है कि जब योगी अरविन्द यह समझने लगे थे कि अब आगे का मानवी विकास बुद्धि और मन के वश की बात नहीं और यह विकास इस धरातलों से ऊपर उठकर ही संभव है, तो उनने अतिमानस का अनुसंधान किया, उसी प्रकार शायद अब विज्ञान भी यह मानने लगा कि मात्र बुद्धि के बल पर इस विश्व-ब्रह्माण्ड का रहस्य जाना-समझा नहीं जा सकता, न ही इससे मानवी गुत्थियों का समाधान ही निकाला जा सकता है।

विज्ञान चाहे माने या न माने इसे, पर उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के दार्शनिकों ने तो इसे करीब-करीब स्वीकार ही लिया है कि बुद्धि का चरमोत्कर्ष आ पहुँचा है। अब आगे की प्रगति की आशा बुद्धिवाद से नहीं की जा सकती। उनका कहना है कि अब आगे भी यदि बुद्धिवाद पर ही आश्रित रहा गया तो दुनिया का सर्वनाश सुनिश्चित है। इसीलिए अनेक दार्शनिकों ने बुद्धि की बड़ी कटु आलोचना की है। आरम्भ में इस क्षेत्र में महर्षि अरविन्द एकाकी थे, किन्तु बाद में अन्य अनेकों के साथ मूर्धन्य दार्शनिक पारस्कल और किर्केगार्ड भी इसी पंक्ति में आ खड़े हुए। इनने भी एक स्वर से यही कहा कि आज के बुद्धिवाद का एकमात्र विकल्प यही है कि व्यक्ति ईश्वर के उस स्वरूप पर विश्वास करे जिसकी शिक्षा वर्षों से आर्ष ग्रन्थ देते आ रहे हैं।

फ्रांस के मूर्धन्य दार्शनिक हेनरी बर्सो ने मानवी बुद्धि को अनुपयोगी और अपंग बताया है। उनका मानना है कि इण्ट्युशन अथवा संबुद्धि स्तर का विकास किये बिना मनुष्य की गति नहीं। उनका कहना है कि इससे कम में उसका उद्धार हो नहीं सकता। बर्सो ने स्पष्ट कहा है कि ''मनुष्य जीवनधारा के साथ बहते हुए ईश्वर में समाहित हो जाय, यही उसकी अन्तिम नियति है, भाग्य है। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।''

मार्टिन हेडेगर और महर्षि अरविन्द समसामयिक थे, किन्तु वे एक-दूसरे को जानते नहीं थे, फिर भी उनके विचारों में काफी साम्यता देखी जाती है। महर्षि की तरह हेडेगर भी तर्क-बुद्धि को पर्याप्त नहीं मानते थे। उनका मत था कि मात्र विचारणा-कल्पना से हम सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकते। सत्य को हमें जानना पड़ेगा, अपने जीवन में उतारना पड़ेगा, उसकी अनुभूति प्राप्त करनी पड़ेगी, तभी वह सत्य सही अर्थों में सत्य कहलायेगा। वैयक्तिक मोक्ष की कामना को श्री हेडेगर भी हेय मानते हैं और स्वीकारते हैं कि दु:ख-तकलीफ से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य के पास अब एक और अन्तिम उपाय ही शेष है और वह है, धरित्री का रूपान्तरण। अरविन्द के ''नास्टिक बीइंग'' (अध्यात्म जीवी मनुष्य) को हेडेगर ने ''आर्थेंटिक बीइंग'' (प्रामाणिक जीव) के नाम से पुकारा है।

मूर्धन्य दार्शनिक हेनरी काल्डरवुड ने भी कुछ इसी प्रकार का मन्तव्य अपनी पुस्तक ''इवाल्यूशन एण्ड मेन्स प्लेस इन नेचर'' में प्रकट किया है। वे लिखते हैं कि ''प्रतीत ऐसा होता है कि परिवेश की अपनी सीमाएँ हैं और विकास की पूर्णता तभी संभव है जब इसके लिए अभ्यान्तरिक प्रयास हों।'' तात्पर्य यह है कि विकास का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मक्षेत्र अब शरीर नहीं, चेतना है। मनुष्य को अब प्रकृति पर आश्रित न रहकर परिवेश की सरहदों से बाहर निकलने के लिए अन्दर से जोर लगाना पड़ेगा।

हेनरी बर्सो ने यह स्वीकारते हुए लिखा है कि ''प्रकृति और जीवन के सारे रहस्यों को भौतिकी और रसायन शास्त्र के माध्यम से ही नहीं समझा जा सकता। इनकी एक निश्चित सीमा है, जिस सीमा तक विज्ञान पहुँच चुका है। अब आगे के रहस्यों को समझना चेतना-स्तर पर ही संभव है। वे यह भी स्वीकारते हैं कि चेतना विकास के आरम्भ से ही सृष्टि में विद्यमान है।''

पर विज्ञान इसे नहीं स्वीकारता और जड़ से ही चेतन के विकास सिद्धान्त को मानता है। आरम्भ से ही वैज्ञानिक मानते आये हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में संभवत: परमाणु, विद्युत, वाष्प, ईथर स्तर का कोई तत्व रहा हो। उसमें भीतर अथवा बाहर से कोई ऊर्जा प्रकट हुई हो, जिससे वह द्रव्य विकास की ओर अग्रसर हो चला।

किन्तु योगी अरविन्द विकास के इस सिद्धान्त से संतुष्ट नहीं हुए और इसका प्रतिवाद यह कहकर किया कि ''**नथिंग केन इवाल्व ह्विच इज नाट इनवाल्वड**'' अर्थात् जो जिसमें विद्यमान है ही नहीं उसकी उत्पत्ति उससे कैसे हो सकती है? और इसी के साथ उनने विज्ञान के सम्मुख कुछ मूलभूत प्रश्न उठाये कि यदि द्रव्य के भीतर ऊर्जा उत्पन्न हुई तो वह कहाँ से आई? अचानक प्रकट क्यों हो उठी और इतने काल तक निष्क्रिय क्यों पड़ी रही?

विज्ञान को मौन पाकर इसका उत्तर वे स्वयं देते हुए कहते हैं कि ''अब हमें यह स्वीकारना ही पड़ेगा कि चेतना पदार्थ में पहले से ही सक्रिय अथवा निष्क्रिय अवस्था में विद्यमान थी, यह हो सकता है वह प्रच्छन्न रही हो। आत्मा जो आज शरीर में दिखाई पड़ती है, निश्चित रूप से वह प्रारम्भ से ही मैटर में विद्यमान थी। इसी प्रकार जीवन, मन और यहाँ तक कि उससे भी आगे कि शक्तियाँ, जिसका अभी उद्घाटन होना है, सब उसी मैटर में छिपी पड़ी हैं। यदि आदिम द्रव्य जड़ होता तो उससे चेतन उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता।'' श्री अरविन्द का विकासवाद इसी उद्भावना पर आधारित है।

मानवी सत्ता का उद्भव कोशिकाओं से नहीं दिव्य चेतना से हुआ है। दिव्य चेतना की अनेक परतों में से हम प्रज्ञा को अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक समझा और प्रयत्नपूर्वक प्रयुक्त कर सकते हैं। प्रस्तुत दल-दल में से निकालकर समूची मनुष्य जाति को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाकर इसी आधार पर जिया जा सकता है।

चेतना का सर्वोच्च आयाम एवं उसकी प्राप्ति

मानव जीवन को स्रष्टा का सर्वोत्तम उपहार कहा गया है। इस निर्माण में परमात्मा ने अपना सारा कला-कौशल सँजो दिया है। प्राणियों में इसके समकक्ष और कोई नहीं है। उसे विशिष्ट काया, मन, बुद्धि, प्रतिभा, सुविधा सभी कुछ उपलब्ध हैं। विकास क्रम में भी वह समस्त जीवधारियों से आगे है। इतना सब कुछ होने पर भी अभी मनुष्य का विकास अधूरा रह गया है। उसके पास जो बुद्धि-वैभव है, वह जीवन को सुव्यवस्थित रखने, चेतना के उच्चतम स्थिति तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त नहीं है। सामान्य बुद्धि के रहते वह सृष्टि के मुकुटमणि के शीर्षस्थ पद से सम्मानित नहीं हो सकता। मन के जिस धरातल पर वह आज खड़ा है उससे भी अधिक उच्चस्तरीय चेतना की परतें उसके अन्तराल में विद्यमान हैं जिन्हें अब तक कुरेदा नहीं गया है। पूर्णता की प्राप्ति के लिए उसे मन के उच्चतर धरातल अतिमानसिक चेतना की ओर छलाँग लगानी होगी जिस पर पहुँचकर मनुष्य सर्वज्ञ बन जाता है। मानव से अतिमानव, महामानव, पुरुष से पुरुषोत्तम बनना, यही उसके विकास की अगली मंजिल है।

परमेश्वर के दस या चौबीस अवतारों की मान्यता में मत्स्य, कच्छप, बारह, नृसिंह, वामन से लेकर क्रमश: कलाओं का बढ़ते जाना और मर्यादा पुरुषोत्तम राम को बारह कलाओं वाला, पूर्ण पुरुष कृष्ण को सोलह कलाओं वाला माना जाना यही बताता है कि अवतारों में भी विकास क्रम के अनुरूप स्तर बढ़ता चला आया है। बुद्ध को बीस कलाओं का तथा उनके उत्तरार्द्ध निष्कलंक, प्रज्ञावतार को चौबीस कलाओं वाला निरूपित किया गया है। समस्त कलाएँ चौंसठ मानी गई हैं। उनमें से अवतारों का विकास अभी आंशिक रूप में ही हुआ है। जो होना शेष है, उसमें अभी यह प्रगतिशीलता का क्रम चलता ही रहेगा।

मनुष्य के बारे में भी यही बात है। आदिम काल में उसकी काया भले ही अधिक परिपुष्ट रही हो, पर वह चेतना की दृष्टि से निश्चय ही पिछड़ा हुआ रहा होगा। अब उसकी समझदारी, साधन-सम्पन्नता और कला के रूप में प्रकट होने वाली भाव सम्वेदना पहले की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह प्रगति क्रम भविष्य में भी तब तक चलता रहेगा जब तक कि पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचने की बात बन न जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव की सर्वतोमुखी प्रगति का कल्पना चित्र जो आप्त पुरुषों ने खींचा है, उसे एक शब्द में देवता कहा गया है। यही उसकी विकसित अवस्था है। वैदिक ऋषि का उद्घोष है—**कृधि मा देववन्तम्।** अर्थात् विकास में हमें दिव्यता उपलब्ध करनी है, देवता बनना है। दिव्यता का मूर्धन्य स्वरूप देवताओं में मिलता है। कहते हैं कि देवता स्वर्ग में रहते हैं। वे श्वेत वर्ण होते हैं तथा अजर अर्थात् जरा रहित प्रौढ़, परिपक्व रहते हैं। वे अमृत पीते और अमर रहते हैं। काया से प्रौढ़, सुन्दर, युवा, स्वस्थ, परिपुष्ट एवं सौन्दर्य सज्जित होते हैं। उनका व्यक्तित्व धवल, प्रखर एवं परिपक्व होता है। वे समूचे अन्तरिक्ष में उड़ते और कहीं भी जा पहुँचने की क्षमता रखते हैं। श्रेष्ठता का समर्थन-सहयोग करना उनका रुचिकर विषय और स्वभाव होता है।

मनुष्यों में जिनकी भावनाएँ सदा दूसरों को समुन्नत, सुसंस्कृत देखने को उमँगती रहें, जिनकी गतिविधियाँ सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में निरत रहें, उन्हें देव स्वभाव का अधिष्ठाता कहा जा सकता है। सद्भाव सम्पन्न, उदार, सेवाभावी, परमार्थ-परायण व्यक्ति इसी वर्ग में गिने जा सकते हैं। जिनकी आत्मिक विभूतियाँ, भौतिक सम्पत्तियाँ उत्कृष्टता की समर्थक, आदर्शवादिता में सहयोगरत हों उन्हें देव प्रकृति का कहा जा सकता है। दैवी ज्योति से सम्पन्न ऋतम्भरा की प्रज्ञा से देदीप्यमान आत्माओं की संज्ञा ही देव है। दिव्यता की इसी कोटि में पहुँचने पर आत्मा मानवी उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँची मानी जा सकती है। जबकि भौतिक विकासवादियों की मान्यता है कि वर्तमान मनुष्य विकास की चरम अवस्था है। उनकी भौतिकवादी बुद्धिमत्ता यह स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है कि इसके आगे भी मानवी विकास और परिष्कार की संभावनाएँ विद्यमान हैं और वह अपनी वर्तमान प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करके महामानव बन सकता है। डार्विन की विकासवादी मान्यता ही उनके गले उतरती है, जिनने अपनी पुस्तक "द ओरिजन ऑफ स्पेशीज" में कहा है कि मनुष्य बन्दर की औलाद है। देवताओं की संतान न होकर वह पशुयोनि से विकसित हुआ है। अत: पाशविकता उसके भीतर जन्मजात रूप से विद्यमान है। इसके साथ ही उनने "सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट" में यह भी कहा है कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्राणियों के मध्य संघर्ष छिड़ा हुआ है और इस संघर्ष में वही जीवित बचेगा जो शक्तिशाली होगा। मनोविज्ञानी फ्रायड ने भी मनुष्य को मूल प्रवृत्तियों का गुलाम बताकर प्रकारान्तर से डार्विन की उक्त मान्यता का ही समर्थन किया था। इन मान्यताओं ने न केवल मनुष्य से उसका देवत्व छीन लिया वरन् उसे नर-पशु भी बना दिया।

उपरोक्त मान्यताओं का खण्डन करते हुए प्रख्यात मनीषी डिजराइली ने अपनी कृति "आदमी बन्दर है या देवता" में कहा है कि मनुष्य देवता के अधिक निकट है। मेरा स्वयं का निर्णय देवता के पक्ष में है, न कि डार्विन के पशु-मानव के पक्ष में। महर्षि अरविन्द ने भी उक्त मान्यताओं को निराधार बताया है। उनका कहना है कि स्रष्टा के निर्माणों में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। ईश्वर का अंशधर आत्मा होने के कारण उसमें अपने सृजेता की समस्त दिव्यताएँ, विभूतियाँ, क्षमताएँ बीज रूप में सन्निहित हैं। यद्यपि मन उसका सबसे बड़ा यंत्र है किन्तु इससे भी सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम् शक्तिशाली यंत्रों की संभावनाएँ उसके भीतर विद्यमान हैं। उन शक्तियों को जाग्रत और विकसित करके वह देवता भी बन सकता है और स्वाधीन भी हो सकता है। चेतना के आकाश में ऊपर उठकर वह विकास क्रम में अतिमानस, सुप्रामेण्टल अवस्था को प्राप्त करके अतिमानव बन सकता है। इतना ही नहीं वह स्वयं पूर्णता को प्राप्त कर सम्पूर्ण मानव जाति का अध्यात्मीकरण कर सकने में भी समर्थ हो सकता है।

श्री अरविन्द ने विकासवाद का समाधान वेदान्त के आधार पर प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मनुष्य ही वह चिन्तनशील प्रयोगशाला है, जिसमें से प्रकृति अतिमानव अथवा देवता उत्पन्न करने में लगी है। किन्तु मनुष्य स्वयं सोचने, विचारने और निर्णय करने की क्षमता वाला प्राणी है। उसे विवेक, बुद्धि का अनुपम उपहार जो मिला है, अत: उसका उपयोग करते हुए उसे अगले विकास की प्रक्रिया के साथ सहयोग करना पड़ेगा। पंचभौतिक तत्वों से जीवन, जीवन से मन उत्पन्न हो चुके हैं। अब मन के भीतर से अतिमन-सुपरमाइन्ड प्रकट होने वाला है। उसके विकास का यही अगला सोपान है। प्रकृति उसे इसी सोपान पर ले जाने के लिए प्रयास कर रही है, ईश्वरीय करुणा का भी यही संकेत है। अपने सावित्री महाकाव्य में उन्होंने कहा है कि मनुष्य के भीतर विश्वभर की संभावनाएँ उसी प्रकार प्रतीक्षा में हैं, जैसे बीज में छिपा हुआ वृक्ष अपने विकास की प्रतीक्षा करता है। अतिमानवी चेतना मनुष्य के अन्तराल में छिपी हुई है और वह अब प्रकट होने के समीप है। मनुष्य यदि सावधानीपूर्वक उस चेतना को ग्रहण करने का प्रयास करे तो सुपर-चेतना अवश्य अवतीर्ण होगी और मानव अपनी समस्त समस्याओं का समाधान अपने आप पा लेगा।

श्री अरविन्द का विकासवादी सिद्धान्त विज्ञान पर नहीं, अध्यात्म पर आधारित है। चेतना के उच्चस्तरीय सोपानों को उन्होंने चार भागों में विभक्त किया है, वे हैं क्रमश: उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबद्ध मन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओवर माइंड। सुपरमाइन्ड का स्तर ओवरमाइन्ड से ऊपर है। ये चेतना के ऐसे आयाम हैं, जिन्हें अब तक विरले लोग ही कुरेद सके हैं और उनमें छिपी शक्तियों का लाभ उठा सके हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव को निर्मल बनाये, परिष्कृत करे। विचारणा, भावना, संवेदना में उत्कृष्टता का समावेश करके ही महानता का वरण किया जा सकता है। अरविन्द के अनुसार अतिमानसी धरातल की ओर बढ़ने की पहली शर्त यह है कि मन को शान्त किया जाय और साथ ही सर्वतोभावेन ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाया जाय। इसी को उन्होंने इवोल्यूशन और इन्वाल्यूशन की प्रक्रिया के नाम से सम्बोधित किया है। इवोल्यूशन अर्थात् आरोह में मनुष्य अपनी चेतना को परिष्कृत करके प्रयत्नपूर्वक ऊपर को उठाता है। आत्म-विकास की साधना, उपासना के विविध-विधि उपचारों का सृजन इसीलिए हुआ है। दूसरी प्रक्रिया इन्वाल्यूशन-अवरोह में अतिमानवी विकास के लिये योग्य मार्ग का आश्रय लेकर भागवत् करुणा का आह्वान करना पड़ता है। सच्चे अर्थों में अध्यात्म जीवी-नास्टिक बीइंग होने का यही राजमार्ग है। इस अध्यात्मजीविता को प्राप्त करना ही व्यक्तित्व की पूर्णता है, वही उसका पूर्ण विकास भी है, यही मनुष्य में देवत्व की कल्पना है।

सुपरमैन अर्थात् उत्कृष्ट मानव की कल्पना, अरविन्द से पूर्व विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों, मनीषियों ने भी अपने-अपने ढंग से की थी। प्रख्यात् दार्शनिक शोपेनहावर का यदि वह जीनियस प्रतिभा सम्पन्न पुरुष था तो कार्लाइल का ''वीरपुरुष'' हीरो तथा दार्शनिक वेगनर का 'शीजफ्रेड' एवं शिलर का 'कार्लमूर' था। दार्शनिक गेटे ने पूर्ण पुरुष का वर्णन देवता तुल्य शांत भाव वाले 'गोज' के रूप में किया है, जिसने अपने समस्त अव्यवस्थित मनोभावों, भावातिरेकों, मनोविकारों, मनोवेगों, दुष्प्रवृत्तियों को नियंत्रित एवं परिष्कृत कर लिया है। अपने चरित्र को विशिष्ट बना लिया और सर्जनात्मक हो गया है। ऐसा महामानव जीवन को बिना किसी अमर्ष-रोष के स्वीकार करता है।

'सुपरमैन' वस्तुत: जर्मन शब्द अवरमेन्श्च का रूपान्तरण है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'ओवरमैन' अतिमानव। इसको सर्वप्रथम विवादास्पद जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने अपनी दार्शनिक विचारधारा में प्रयुक्त किया था। इस परिकल्पना को उसने गेटे की रचनाओं से ग्रहण किया था। चूँकि उस पर डार्विन के विकासवाद के 'सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का भूत सवार था, अत: उसने इसे एक अलग ही विशिष्ट श्रेणी प्रदान की। एक को शासक एवं अन्यान्यों को शासित बताया। इसका बृहद वर्णन ओर्टेगा वाइ गैसेट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''द रिवोल्ट ऑफ दी मासेज'' में किया है।

नीत्शे ने अपनी पुस्तक ''दस स्पेक जरथुस्त्र'' में कहा है कि मनुष्य के अन्दर अतिमानव का अस्तित्व विद्यमान है और वह सूर्य की भाँति काले बादलों को चीरकर बाहर आने की प्रतीक्षा में है। जरथुस्त्र के माध्यम से उसने कहा है कि—सुपरमैन क्या है? यह मैं बताता हूँ। मनुष्य जो कुछ है, उस पर विजय पाना ही अतिमानव बनना है। क्या तुममें यह क्षमता है कि उस पर विजय प्राप्त कर सको? नीत्शे का अतिमानव नैतिक, अनैतिक, सदाचार, दुराचार का सम्मिश्रण एवं क्रूरता की प्रतिमूर्ति था जो सभी को मारपीट और दबा कर रखना तथा उन पर शक्तिपूर्वक आधिपत्य करना चाहता था। इसके इस दर्शन ने ही नाजी तानाशाह हिटलर को जन्म दिया और समूचे जर्मनी को ऐसे आवेश से भर दिया कि वे लोग अपने समुदाय को अति श्रेष्ठ मानने और समस्त विश्व पर शासन स्थापित करने की तैयारी करने लगे थे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रख्यात् रहस्यवेत्ता जेजी. गिचेल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''थियोसोफिया पैक्टिका'' में उत्कृष्ट मानव का चित्र खींचा है। उनने उसे पूर्ण पुरुष (परफेक्ट मैन) कहा है। उनके अनुसार मनुष्य अपनी अन्तरात्मा के जितने नजदीक पहुँचता जाता है और उसमें गहराई तक प्रवेश करता जाता है, उसी अनुपात से वह दिव्यता की ओर अग्रसर होता जाता है। आत्मा की अनन्त गहराइयों में पहुँचने पर ही ईश्वर के दर्शन होते हैं और तभी मनुष्य पूर्णता को प्राप्त करता है। उन्होंने मानवी काया में पाँच ऐसे केन्द्रों का वर्णन किया जिनमें देवता, अवतारों, ईश्वर और आत्मा का निवास माना गया है। इनमें से किसी एक अथवा सभी केन्द्रों को जाग्रत करके तद्नुरूप मानव से महामानव बना जा सकता है। उनकी यह मान्यता प्रकारान्तर से तैत्तरीय उपनिषद् की उस आख्यायिका से मिलती है जिसमें पंचकोश अनावरण का उपदेश किया गया है।

ख्याति प्राप्त ब्रिटिश लेखक जार्ज बर्नाड शा ने अपनी पुस्तक ''मैन एण्ड सुपरमैन'' में मानवी विकास के दर्शन का प्रतिपादन किया है, जो उसे दिव्यता की ओर ले जाता है। अरविन्द के समकालीन दार्शनिक मार्टिन हेडेगर ने भी मनुष्य में देवत्व की कल्पना की है। अरविन्द जिसे नास्टिक बीइंग अध्यात्मजीवी कहते हैं, हेडेगर ने उसे आथेन्टिक बीइंग अर्थात् प्रामाणिक जीव कहा है। उनके अनुसार पृथ्वी का रूपान्तरण ही मनुष्य के सामने एकमात्र उपाय है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर मुहम्मद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इकबाल ने अपनी रचना ''असरारे खुदी'' और ''बाले जिबरील'' में अतिमानव की कल्पना की है। उन्होंने इसके माध्यम से मनुष्य को आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ने को अभिप्रेरित किया है। मनुष्य की पूर्ण विकसित अवस्था को उन्होंने 'नायबे इलाही' की संज्ञा दी है।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक गुरजिएफ की गणना सिद्ध एवं संत पुरुषों में की जाती है। उनने भी अध्यात्म जीवी के रूप में दिव्य-मानव का वर्णन किया है। उनका कहना है कि मनुष्य को चाहिए कि सबसे पहले वह अपने आपको पहचाने और अपना आध्यात्मिक विकास करके पूर्णता प्राप्त करे। उन्हीं के शिष्य पी. डी. औस्पेंकी ने इसी संभावना को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''ए न्यू माडल ऑफ दी यूनिवर्स'' में विशद् रूप में गूढ़ तर्कों के माध्यम से सिद्ध किया है।

वस्तुत: मनुष्य की चेतन क्षमता असामान्य एवं अनन्त है। वह जैसा सोचता और करता है वैसा ही बन जाता है। उसकी विचारणा और कार्य करने की क्रिया पद्धति ने उसे इस वैज्ञानिक युग तक पहुँचाया है। अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने के सभी साधन सृष्टा ने उसे बीज रूप में सौंपे हैं। देव-मानव बनना ही उसका लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने वाले अध्यात्मजीवी अति-मानव के लक्षण क्या होंगे? इस संदर्भ में विभिन्न मनीषियों के अपने-अपने अनुमान अलग-अलग हैं। किसी का कहना है कि वह दानवी शक्ति सम्पन्न दीर्घजीवन जीने वाला होगा तो किसी का मानना है कि वह अमर हो जायेगा। अन्यों की धारणा है कि वह स्वेच्छा मृत्यु का वरण करेगा। इस बारे में श्री अरविन्द की अपनी पृथक् धारणा थी कि वह अमरता के लोक से आकर पृथ्वी पर स्वर्ग बसाने वाला अमरता का साकार रूप होगा। अपने प्रत्येक कार्य के पीछे वह प्रेरणाप्रद पद-चिन्ह छोड़ जायेगा जो भविष्य में आने वाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक आधार स्तम्भ सिद्ध होंगे। ऐसे व्यक्ति की व्यष्टिगत चेतना समष्टिगत चेतना से एकाकार हो जायेगी और वह अपने में सबको तथा सबमें अपने को देखने वाला तथा समस्त प्राणियों का हित साधन करने वाला बन जायेगा। तब उसके भीतर न ईर्षा होगी न द्वेष, न कीर्ति की कामना और न ही प्रभुत्व जमाने, शासन करने का लोभ होगा। वह स्वयं तो मुक्त होगा ही, अपनी नाव पर बिठाकर अन्य असंख्यों को भी भवसागर से पार लगायेगा, पूर्णता तक पहुँचायेगा।

मानवी विशेषता में उसके अतिचेतन स्तर सुप्रामेण्टल को ही दैवी विभूति माना गया है। वह उसे प्रचुर परिणाम में उपलब्ध भी है, पर कषाय-कल्मषों से आच्छादित होने के कारण प्रसुप्त स्थिति में पड़ी है। अन्त:चेतना की इस उत्कृष्टता को ऋषियों, महामानवों, सिद्धपुरुषों में से प्रत्येक को किसी न किसी प्रकार अर्जित करना ही पड़ा है।

बलिष्ठता के लिए व्यायाम, विद्वता के लिए अध्ययन, उपार्जन के लिए पराक्रम की जिस प्रकार आवश्यकता है, उसी प्रकार नर से नारायण, मानव से अतिमानव-देवमानव बनने के लिए उच्चस्तरीय योग साधना का स्वरूप समझने तथा उनका सही रूप में प्रयोग करने की दिशा में कदम बढ़ाना अनिवार्य है।

चेतना क्षेत्र में विज्ञान का प्रवेश हो

विज्ञान भौतिक जगत की एक महाशक्ति है। प्रकृति के भण्डार में असीम प्रयोजनों में काम आने वाली अगणित क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उनमें से क्रमश: प्रयत्नपूर्वक मनुष्य के हाथों में कितनी ही सामर्थ्य लगती गयी हैं। एक के बाद एक खोज करते हुए उसने सुख-समृद्धि के अनेकों सुविधा-साधन जुटा लिए हैं। विज्ञान ने मनुष्य के हाथों असीम सामर्थ्य प्रदान की है। इस आधार पर वह सम्पन्न भी हुआ है और बुद्धि-बल बढ़ाता प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा है। यह प्रकृति के रहस्य को खोजते जाने और उसके ज्ञान के सहारे उपयोगी उपकरण बनाते जाने का ही प्रतिफल है।

परन्तु संसार में पदार्थ क्षेत्र ही सब कुछ नहीं है, उसके समतुल्य एवं अधिक महत्त्वपूर्ण चेतना क्षेत्र भी है। विज्ञान को मात्र भौतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, उसे चेतना क्षेत्र में भी प्रवेश करना चाहिए और व्यक्तित्व निखारने वाले कामों में भी हाथ डालना चाहिए। यह काम अध्यात्म विज्ञानियों का है। मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, कला-कौशल, व्यवहार, संयम आदि की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानियों-प्रज्ञावान मनीषियों-योगी, तपस्वियों का काम है। उनका कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान से भी कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अधिक उपयोगी है। पदार्थ विज्ञान सुविधा विनिर्मित कर रहा है। उन साधनों का उपयोग जिसे करना है, उस मनुष्य का दृष्टिकोण परिष्कृत करना असामान्य काम है। उसने अनेकों कुटेवें अपना ली हैं और ऐसे क्रिया-कलाप अपना लिये हैं, जो मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए हानिकारक हैं। ढेरों प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनसे पीछा छूटना और छुड़ाया जाना चाहिए। ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी अपनाया नहीं गया अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्ति भी महामानव स्तर का बन सकता था। इस सन्दर्भ में प्रयोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना और उपलब्धियों से जनसाधारण को अवगत कराना यह आत्म-वेत्ताओं का, मनीषियों का काम है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क बहुमूल्य यन्त्र है, उसके अन्तराल में प्रकृति की पदार्थ परक और परब्रह्म की चेतना परक विभूतियाँ समाविष्ट हैं। वे बीज रूप में प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं, उन्हें अंकुरित और पल्लवित किया जा सके तो नर के भीतर सोया हुआ नारायण जगाया जा सकता है और पुरुष को पुरुषोत्तम की झाँकी करने को मिल सकती है। इस स्तर के प्रयत्नों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या कहते हैं। साधना भी इसी को कहा जाता है। पुरातनकाल के तत्वदर्शी अपनी काया में सन्निहित उन सूक्ष्म केन्द्रों को समझते थे, साथ ही उन्हें प्रखर बनाने की विद्या का प्रयोग करके न केवल अपने को असामान्य बनाते थे वरन् अन्यान्यों को भी इस कौशल से लाभान्वित करते थे। यह गुह्य विद्या है। तो भी है यह यथार्थ और प्रचण्ड। जिनमें श्रद्धा हो वे अनुभवी, प्रवीण, पारंगतों के मार्ग- दर्शन में यह प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं और अभ्यास की परिणतियों से लाभान्वित हो सकते हैं। पिण्ड में ब्रह्माण्ड का समग्र ढाँचा विद्यमान है। बीज में समग्र वृक्ष और शुक्राणु में परिपूर्ण मनुष्य रहता है। इसी प्रकार पिण्ड में ब्रह्माण्ड है। मनुष्य में देवत्व का उदय करने के लिए उसे प्रसुप्ति को जाग्रति में बदलना होगा। यह योगाभ्यास का विषय है। इसे चेतना परक विज्ञान क्षेत्र ही समझना चाहिए। पिछले दिनों यह क्षेत्र पाखण्डियों के हाथों रहा है, अब उसे मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी हाथ में लें, तो विज्ञान के अधूरेपन की भी पूर्ति हो चले और उस प्रगति से ऐसा लाभ मिले जो भौतिक विज्ञान से भी उपलब्ध नहीं हुआ है।

इन दिनों ब्रेनवाशिंग के नाम से किये जाने वाले प्रयोग की महती आवश्यकता है। इस क्षेत्र में भौतिक विज्ञानियों ने भी यत्किंचित प्रयोग किया है और विरोधियों को समर्थक बनाने में आंशिक सफलता पाई है। उनकी कल्पना है कि सशक्तों द्वारा दुर्बलों के मनों पर आधिपत्य करने के उपरान्त पालतू पशुओं जैसा इच्छानुवर्ती होने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। उनके प्रयोग सफल हुए तो समर्थ नफे में रहेंगे, किन्तु मनुष्य का स्वतन्त्र चिन्तन और आत्मबल समाप्त हो जायेगा। अस्तु, यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से अध्यात्मवादियों का है, उन्हें लोक-कल्याण की दृष्टि से उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए जन-साधारण को प्रशिक्षित करना चाहिए। 'ब्रेन वाशिंग' उन्हीं का काम है। इसे हाथ में लेकर वे मनुष्य जाति की महती सेवा-साधना कर सकते हैं।

विज्ञान ने पंच भौतिक मानवी काया के हृदय, फुफ्फुस आदि अवयवों और रक्त-माँस, अस्थि आदि घटकों का स्वरूप और क्रिया-कलाप समझ लिया है। शल्य क्रिया क्षेत्र में उसने श्रेय भी प्राप्त किया है। मस्तिष्कीय घटकों व रसायन स्राव के स्थान एवं क्रिया-कलाप समझकर इलेक्ट्रोडों द्वारा उस क्षेत्र को वशवर्ती बनाया जा सकता है। वस्तुत: मन:क्षेत्र चेतना से जुड़ता है और इसे सँभालने की जिम्मेदारी तत्वज्ञानियों-अध्यात्मवादियों पर आती है। पर उनने गहराई में उतरना छोड़ दिया है। वे पाखण्ड के सहारे अपनी गाड़ी चला रहे हैं। यह जादू का खेल तभी तक चल सकता है जब तक भारत में अन्ध श्रद्धा वाले अनगढ़, भावुक भक्तजनों का अस्तित्व बना रहेगा। भौतिक विज्ञानियों ने जब अध्यात्म क्षेत्र का मोर्चा खाली देखा तो उसमें भी अपनी टाँग अड़ानी प्रारम्भ कर दी और प्रसन्नता की बात है कि कुछ न कुछ सफलता प्राप्त कर ली है। मैस्मेरिज्म-हिप्नोटिज्म का सिद्धान्त बहुत दिन पहले ही हाथ लग गया था। अब मैटाफिजिक्स साइको साइवरनेटिक्स एक मान्यता प्राप्त विज्ञान की शाखा है। दूरदर्शन, दूरवार्ता, भविष्य कथन, मन को पढ़ना आदि इसमें कई नई धाराएँ सम्मिलित हो गई हैं। परामनोविज्ञान ने मरणोत्तर जीवन, अतीन्द्रिय क्षमता आदि पर नया प्रकाश डाला है। फिर भी सन्देह इस बात का है, वे अध्यात्म के आत्मापरक अन्त:करण से संबंधित पक्षों पर अधिक सफलता न प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि उसके लिए चारित्रिक पवित्रता की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। जबकि पाश्चात्य विज्ञानी इस सन्दर्भ में काफी पिछड़े हुए होते हैं।

जिन रहस्यों पर अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है, उनमें मानवीय विद्युत, मस्तिष्कीय घटकों के कम्पन, अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ और उनसे निकलने वाले स्रावों पर नियन्त्रण करने की पद्धति मानवी चेतना को समुन्नत करने की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक है। हार्मोनों पर नियन्त्रण की तरह ही गुण- सूत्रों को इच्छानुरूप प्रवाह दे सकने की बात भी असामान्य है। शरीर में संव्याप्त रासायनिक पदार्थों में हेरा-फेरी की बात भी है। जीव कोषों और ज्ञानतन्तुओं की सूक्ष्म संरचना को प्रभावित करना, मस्तिष्क की विभिन्न कोशिकाओं के प्रवाह में परिवर्तन करना वह तथ्य है, जिनके ऊपर आध्यात्मिक ऋद्धि-सिद्धियों का आधार है।

मनुष्य को हर दृष्टि से समुन्नत स्तर का बनाना है, उसमें देवत्व का अभ्युदय करना है तो इन रहस्यों का समझना ही नहीं, वशवर्ती भी करना आवश्यक है। यह कार्य भौतिक यन्त्रों, उपकरणों एवं क्रिया-कलापों से संभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं। इसके लिए अध्यात्म क्षेत्र पर अधिकार रख सकने वाले पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न लोगों की कार्यक्षमता एवं विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ेगी।

भौतिक उपलब्धियों के समान ही यदि आत्म-विज्ञान अन्त:क्षेत्र की विभूतियों को करतलगत कर सके तो ही समझना चाहिए कि समग्र विज्ञान में प्रवेश पाना सम्भव हुआ। मात्र पदार्थों पर अधिकार करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिनके बिना मानवी विशिष्टता अवरुद्ध बनी रहे। बिना सुविधा-साधनों के भी काम चल सकता है। आत्मवेत्ता तो विशेष रूप से कम से कम साधनों से काम चलाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि यह अब इतना आवश्यक नहीं कि इनके बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का न बनाया जा सके और सच्चे अर्थों में विभूतिवान न बना जा सके। भौतिक साधनों की प्राचीनकाल में कमी थी। इतनी बहुलता न थी, जितनी इन दिनों है, तो भी मनुष्य आत्मबल के सहारे सुखी भी रहते थे और समुन्नत एवं सुसंस्कृत भी। इसके विपरीत इन दिनों जिनके पास साधनों की बहुलता है, वे भी बहिरंग एवं अंतरंग क्षेत्रों में विपन्न-उद्विग्न माने जाते हैं।

मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में उल्लसित-विकसित रहे तथा आनन्द से परिपूर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि उभयपक्षीय उपलब्धियाँ हस्तगत करके वह सच्चे अर्थों में अपनी गरिमा उपलब्ध कर सका। ऐसे व्यक्तित्वों को जितनी बहुलता होगी, उतना ही वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा होगा और स्वल्प साधनों में भी प्रगति एवं समृद्धि की परिस्थितियों का अनुभव होगा।

ऋषियों ने इतने उच्चस्तर की विभूतियाँ उपलब्ध की थीं जिन पर आज तो सहसा विश्वास करना कठिन होता है। समूचे मानव समाज को आगे बढ़ाने एवं ऊँचा उठाने की क्षमता जिस प्रवाह एवं वातावरण में है उसकी उपलब्धि आत्म विज्ञान की प्रगति से ही संभव हो सकती है।

अविज्ञात को मिलेगी अब विज्ञान की मान्यता

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के सुविख्यात न्यूक्लीयर भौतिक विज्ञानी डॉ. जॉन जुंगर मैन के अनुसार वैज्ञानिक खोजें वस्तुनिष्ठ होती हैं और यह अंतिम सत्य पर नहीं पहुँच सकतीं क्योंकि नित नूतन आविष्कारों से उनकी सत्यता पर प्रश्न चिन्ह लगता चला जाता है। अत: खोज अनुसंधान मानवी काया में सन्निहित सूक्ष्म दिव्य सत्ता की करनी चाहिए, जिसका समय-समय पर आइन्स्टीन, आइजक, न्यूटन, लुईपाश्चर, जेम्स जीन्स जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिक मनीषियों तथा प्राच्य अध्यात्मवेत्ताओं ने अपनी कृतियों में प्रतिपादन किया है और कहा है कि मानवी चेतना एवं उसकी प्रचंड विचारशीलता का प्रभाव आस-पास के वातावरण, प्राणियों और निर्जीव पदार्थों को प्रभावित करता है।

प्रख्यात खगोलवेत्ता जेम्स जीन्स की मान्यता है कि विश्व ब्रह्माण्ड की संरचना जटिल रासायनिक क्रिया-प्रक्रियाओं के जोड़-तोड़ से बनी एक बड़ी मशीन की अपेक्षा महान विचारों की पूँजीभूत शक्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। मानवी चेतना का प्रभाव और आधिपत्य सृष्टि के कण-कण में अनुभव किया जा सकता है। डॉ. जुंगर मैन के अनुसार मानवी चेतना अपने आस-पास के वातावरण एवं उन उपकरणों, मशीनों, पदार्थों को भी प्रभावित करती है जिनके साथ वह कार्य करती है। इस तथ्य की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए जुंगर मैन ने एक अत्यंत संवेदनशील उपकरण 'इण्टरफेरोमीटर' लेसर उपकरण का आविष्कार किया और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की सामान्य उपस्थिति से भी उपकरण को प्रभावित होते देखा।

''स्टेनफोर्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट'' के मूर्धन्य भौतिक विज्ञानी डॉ. हेराल्ड फुथाफ ने इसी तरह का प्रयोग प्रतिभाशाली अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न इंगोस्वान नामक मनोविज्ञानी के साथ किया। डॉ. फुथाफ ने वैज्ञानिकों की उपस्थिति में एक शक्तिशाली मैग्नेटोमीटर धरती के गर्भ में छिपाकर उस कंक्रीट से बन्द कर दिया। स्वान ने अपनी अतीन्द्रिय मानसिक दक्षता के बल पर बिना किसी उपकरण की सहायता के मैग्नेटोमीटर की सुई में विक्षेप पैदा कर दिया। यह कार्य स्वान ने दूर से ही चेतन क्षमता द्वारा मशीन को प्रभावित करके दिखाया।

काया की विलक्षण क्षमताओं का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों ने परामनोविज्ञान से सम्बन्धित ''साइक्रोटानिक्स'' नामक एक स्वतंत्र विज्ञान का विकास किया है। जिसके अंतर्गत शरीर में सन्निहित बायोइलेक्ट्रिसिटी, बायोमैग्नेटिज्म, बायोप्लाज्मा, आभामंडल-प्रभामंडल जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों के साथ मनुष्य और पदार्थों-जीवित और निर्जीव के मध्य होने वाली अन्यान्य क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान में पाया है कि मानवी काया सदैव चहुँओर से एक रहस्यमय शक्ति से घिरी रहती है। शक्ति प्रवाह के उस अदृश्य घेरे का इटली के मूर्धन्य वैज्ञानिक प्रोफेसर गैलवानी ने ''एनीमल इलेक्ट्रिसिटी'' तथा सुप्रसिद्ध आस्ट्रियन चिकित्सक अन्टन मेस्मर ने ''एनिमल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैग्नेटिज्म'' नाम से सम्बोधित किया है। उस समय इन आविष्कारों को धोखा-धड़ी और हैण्डट्रिक कहकर इन वैज्ञानिकों को अपमानित, प्रताड़ित किया गया था, किन्तु आज मानवी काया की विलक्षण क्षमता, उससे सतत् निकलने वाले प्राण वैद्युतीय उर्जा प्रवाह, व्यक्तित्व का प्रभाव आदि वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान का स्वतंत्र विषय बन गये हैं। वैज्ञानिकों ने इसे बायोप्लाज्मा, बायोग्रेविटी, ''ओर्गोन एनर्जीफील्ड'', माइटोजेनेटिक रेडियेशन, बायोल्युमूनीसेन्स, अल्ट्रासोनिक रेडिएशन, बायोफ्लक्स आदि कितने ही नाम दिये हैं।

दक्षिण कजाकिस्तान के अल्माअता स्थित किरोव यूनीवर्सिटी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर विक्टर इन्यूशिन ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में कहा है कि प्रत्येक जीवित प्राणी का मात्र भौतिक शरीर ही नहीं होता वरन् 'बायोप्लाज्मा' से निर्मित उसका एक ऊर्जा शरीर-'एनर्जी बाडी' भी होती है। अध्यात्म शास्त्रों में इसे ही सूक्ष्म शरीर ''इथरिक बाडी'' कहा गया है और बताया गया है कि प्राण ऊर्जा का विराट् समुद्र शरीर को घेरे रहता है। सूक्ष्म शरीर के माध्यम से प्राण तत्व समस्त नस-नाड़ियों-तंत्रिका तंत्रों में संचरित, संवहित होता रहता है। सूक्ष्म शरीर के कण स्थायी रूप से सतत् परिवर्तित होते रहते है भौतिकविदों के अनुसार ठोस, द्रव, गैस के अतिरिक्त पदार्थ की चौथी अवस्था 'प्लाज्मा' है, जो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इसी से सूर्य का निर्माण हुआ है। योगशास्त्रों में प्राण ऊर्जा को सूर्य-सविता के निर्माण में भाग लेने वाले तत्व से सम्बन्धित माना गया है और कहा गया है कि यह प्राण ऊर्जा विश्व ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक को प्रभावित परिवर्तित करने में सक्षम होती है।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि यह भौतिक संसार विभिन्न विकरणों, प्रकम्पन्नों, तरंग लम्बाइयों, ऊर्जा तथा बल क्षेत्रों में वाष्पीकृत हो रहा है। विश्व-ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ ऊर्जा स्वरूप ही हैं, जैसा कि काया के संवेदी अंग हमें इसका आभास कराते, और उन्हें प्रभावित करते हैं। सोवियत संघ के मूर्धन्य एकैडेमिशियन प्रोफेसर अलेक्जेण्डर डुब्रोव ने जैव गुरुत्वाकर्षण ''बायोग्रैविटी'' पर महत्त्वपूर्ण खोज की है और अपने शोध निष्कर्ष में बताया है कि जीवित प्राणियों में गुरुत्वाकर्षण तरंगों को उत्पन्न करने और उन्हें अलग पहचानने की क्षमता होती है। डुब्रोव के अनुसार मनुष्य की शारीरिक कोशिकाएँ इन तरंगों को सतत् विकिरित करती रहती हैं और यही तरंगें दूरश्रवण, दूरभाष, दुरानुभूति, पूर्वाभास, आकाशगमन जैसे अतीन्द्रिय कार्यों को सम्पन्न कराती हैं। कोशिका विभाजन के समय कोशिकाओं से फोटोन कणों की ऊर्जा युक्त विकिरण किरणें तथा दस घात छह से दस घात सात साइकल्स प्रति सेकण्ड की उच्च फ्रिक्वेन्सी युक्त अल्ट्रासोनिक तरंगें भी निकलती हैं। नोवोसीविर्स्क विश्वविद्यालय (रूस) में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों-सिमोन एस्चूरिन, एल. पी. मिखाइलोवा तथा उनके सहयोगियों ने अपने ५०० से अधिक प्रयोग परीक्षणों के आधार पर भी यही निष्कर्ष निकाला है कि काया की प्रत्येक कोशिका से अल्ट्रावायलेट रेडिएसन, बायोग्रैविटेशनल वेब्स एवं अल्ट्रासोनिक वेब्स निकलती रहती हैं और तथा दूरस्थ की कोशिकाओं को अपने अदृश्य तरंगों-प्रकम्पनों के माध्यम से प्रभावित करती हैं। इनके अपने सुनिश्चित एवं गुप्त—'कोडेड इन्फॉर्मेशन सूचना-संदेश होते हैं। इन्हीं के आधार पर मनुष्य का अदृश्य प्रवाह आस-पास के वातावरण, सजीव तथा निर्जीव पदार्थों को भी प्रभावित करता और अपने अनुकूल मोड़ता-मरोड़ता है।

साइक्रोट्रानिक अनुसंधान के क्षेत्र में किर्लियन फोटोग्राफी के आविष्कारक रूसी दम्पत्ति श्री सेम्योन और वैलेन्तीना किर्लियन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इलेक्ट्रिकल फोटोग्राफी की इस विधा पर सोवियत यूनियन के अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया, इंग्लैण्ड और अमेरिका के वैज्ञानिक अनुसंधानरत हैं। भारत के डॉ. नरेन्द्रन तथा डॉ. रमेश सिंह चौहान जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिक चिकित्सक भी इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। शीला ओस्ट्रैण्डर और लिन ग्रोइडर की प्रसिद्ध पुस्तक ''साइकिक डिस्कवरीज विहाइन्ड द आयरन कर्टेन'' तथा सुविख्यात परामनेविज्ञानी डा. थेल्मामॉस की पुस्तक ''द प्रोबेबिलिटी ऑफ द इम्पासिबुल'' में प्राण ऊर्जा पर वैज्ञानिक अनुसंधानों का वर्णन किया गया है। इन अनुसंधानों से प्राण ऊर्जा-जैव वैद्युतीय ऊर्जा के अनेक अविज्ञात तथ्य उद्घाटित हुए हैं।

सुप्रसिद्ध चेक इंजीनियर राबर्ट पैवलिता ने प्राण ऊर्जा का अध्ययन करने के लिए ''साइक्रोट्रानिक जेनरेटर'' नामक एक उपकरण का आविष्कार किया है। इसकी विशेषता यह है कि यह बायोएनर्जी से परिचालित है और एक बार चार्ज कर देने के बाद इससे कई प्रकार के प्रयोग-परीक्षण किये जा सकते हैं। पैवलिता इसे स्वयं अपने प्राण ऊर्जा से चार्ज करते हैं और मटमैले मिट्टी युक्त पानी से भरे जार को जनरेटर के पास रखकर इच्छानुसार कीचड़ का अवक्षेपण शीघ्र करा देते हैं। इसी तरह किसी पौधे की वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी करा लेते हैं, आदि। चैकोस्लोवाकिया के ही एक दूसरे इंजीनियर जुलियस क्रामेस्की ने पैवलिता से मिलते-जुलते प्राण ऊर्जा के अनेक प्रयोग-परीक्षण वैज्ञानिकों के समक्ष प्रस्तुत किये। क्रामेस्की अपने प्राण विद्युतीय ऊर्जा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माध्यम से पानी पर तैरती हुई वस्तुओं की गति में अभिवृद्धि कर उसे मनोनुकूल दिशा में आगे-पीछे तैरने के लिए बाध्य कर देते हैं। जार के अन्दर धागे से लटके हुए किसी वस्तु को दूर से ही हाथ से प्राण प्रवाह द्वारा उसे दक्षिणावर्त या वामावर्त दिशा में घुमाने लगते हैं। वे बोर्ड पर लगे स्विच पर आँखों को एकाग्र कर उसे ऑन-ऑफ करके प्रकाश बल्ब को जला देते हैं। सुप्रसिद्ध न्यूरोफिजियोलाजिस्ट ई. ग्रे वाल्टर के अनुसार मनुष्य अपने मस्तिष्क के कार्टेक्स को इलेक्ट्रोड्स के माध्यम से टी. वी. सेट से सम्बन्धित करके इच्छाशक्ति के सहारे अपने कल्पना लोक को पर्दे पर देखने की क्षमता रखता है। वाल्टर इस तरह के कई प्रयोग कर चुके हैं और सफलता के प्रति आशान्वित हैं।

किर्लियन फोटोग्राफी से अर्जित ज्ञान का प्रयोग अब चिकित्सा विज्ञानी शारीरिक एवं मानसिक रोगों का पता लगाने में करने लगे हैं। कैंसर जैसी घातक बीमारियों को इस विधि द्वारा समय से पूर्व ही पहचान लिया जाता है। प्रख्यात चिकित्सा विज्ञानी डॉ. थेल्मार्मोस और फ्रांसिस सावा ने अपने अनुसंधान में पाया है कि सिर दर्द जैसे मामूली स्वास्थ्य परिवर्तन से भी आभामण्डल में परिवर्तन आ जाता है। स्वस्थ स्थिति में अँगुलियों के सिरे का आभामण्डल लम्बे परिमण्डल युक्त होता है तथा बीमारी की स्थिति में यह बदलकर व्रणनुमा धब्बेदार हो जाता है, साथ ही इसका रंग भी परिवर्तित हो जाता है। शरीर में होने वाले विभिन्न रासायनिक परिवर्तनों और रुग्णावस्था में शरीर से निकलने वाले पसीने का स्वरूप और उसके गंध परिवर्तन की तरह ही शारीरिक, मानसिक परिवर्तन के साथ आभामण्डल भी परिवर्तित होता रहता है। इन अध्ययनों और अनुसंधानों के आधार पर शरीर क्रिया विज्ञान का अध्ययन करने वाले डॉ. डेविड शीनकिन, डॉ. जॉन ह्यूबेकर तथा टेड डॉन जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों की यह धारणा अब बलवती होती जा रही है कि मानवी आभामण्डल या बायोफ्लक्स में होने वाले ये परिवर्तन भौतिक न होकर मानवी विचारणा तथा भाव संवेदना से बहुत हद तक सम्बन्धित होते हैं। यही वैज्ञानिक कहते हैं कि एकाग्रता की स्थिति में जब साधक ध्यान धारणा की पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो उसका आभामण्डल बहुत विस्तृत होता देखा गया है। इसमें रुग्णावस्था में पाये जाने वाले धब्बे नहीं पाये जाते। इससे यह सिद्ध होता है कि आभामण्डल की उज्ज्वलता मनुष्य की भावनात्मक, चेतनात्मक उत्कृष्टता पर निर्भर करती है। कोई आश्चर्य नहीं कि अगले दिनों रोगों के निदान के साथ-साथ साधना क्षेत्र में प्रगति की जाँच-पड़ताल आभामण्डल मापने वाले उपकरणों द्वारा होने लगे।

विज्ञान की उपलब्धियाँ यदि अध्यात्म शास्त्र की मान्यताओं एवं सिद्धान्तों से जोड़ी जा सकें, तो मानव मात्र के लिए एक हितकारी चिकित्सा पद्धति, सार्थक जीवन जीने की पद्धति-साधना उपचार विकसित की जानी भी संभव है। बायोफीड बैक की दिशा में चल रहे प्रयोगों को यदि सही दिशा देकर आभामण्डल परीक्षण प्रक्रिया तथा साधना निर्देशों से सूत्रबद्ध किया जा सके तो आत्मिक प्रगति के महत्त्वपूर्ण सोपानों को पार किया जा सकता है। हम मात्र चिकित्सा तक सीमित न रहकर यदि अंतरंग की सामर्थ्य को विकसित करने हेतु जैवभौतिकी क्षेत्र में हुए इन अनुसंधानों का आश्रय लें तो न केवल बहुमूल्य रत्न हस्तगत होंगे, बल्कि वैज्ञानिक जगत की जिज्ञासा को भी शान्त किया जा सकेगा, क्योंकि यह उन्हीं की भाषा में यंत्रों द्वारा सम्पन्न किए गए पूर्णत: विज्ञान सम्मत प्रयोग होंगे।

भौतिकी का सूक्ष्मीकरण-चेतन सत्ता से एकीकरण

शरीर एक जड़ पिण्ड मात्र नहीं चेतन सत्ता का समुच्चय है जिसे काया को कलेवर रूप में ओढ़कर चलना पड़ता है। वैज्ञानिकों की स्थूल दृष्टि अभी तक प्रत्यक्ष को प्रमाण मानकर चलती रही है, इसी कारण चेतना के अस्तित्व को जान-बूझकर नकारा जाता रहा। लेकिन जैसे-जैसे भौतिकी भी सूक्ष्मीकरण की गहराईयों में प्रवेश करने लगी, चेतना के आयाम सम्बन्धी कई नये क्षेत्र ऐसे प्रकाश में आने लगे, जिन्हें स्वीकार करने पर उन्हें अब विवश होना पड़ रहा है।

आइन्स्टीन कहा करते थे ''अनिश्चितता के सिद्धान्त पर टिकी ''पार्टीकल फिजीक्स'' के आधार लूले-लँगड़े हैं। ईश्वर कभी पासे नहीं फेंका करता। दुनिया एवं इसमें रहने वाले जीवधारियों का समुदाय भले ही ऊपर से कितना ही अव्यवस्थित क्यों न लगे, उसके पीछे एक सुलझी हुई चेतना है जो लीलामयी तो है, झक्की नहीं है।'' अन्याय वैज्ञानिकों से विपरीत उन्होंने विचार तरंगों के आधार (प्योर थॉट) ''यथार्थता'' को पकड़ने एवं तदनुसार सृष्टि की परिकल्पना करने को कहा था। वास्तव में सारे बलों के एकीकरण के सिद्धान्त के माध्यम से विभिन्न प्रतिपादनों को प्रस्तुत कर अब वैज्ञानिकों के कदम सत्य की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं।

भौतिकी का यह सूक्ष्मीकरण आखिर है क्या? जो मानवी बुद्धि के लिये अगम्य है? सम्भवत: इसे बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहले आद्यशंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि में उद्धृत करके रख दिया था—

ऐक्यं तयोर्लक्षितयो र्न वाच्यय।
निगद्यतेन्योय विरुद्ध धर्मिणो:।
खद्योत धान्योरिव राजभृत्ययौ:।
कूपाम्बुराश्यो: परमाणुमेवो:॥ —२४४। वि. चू.

अर्थात्—उन दोनों, जीव एवं ब्रह्म की एकता को लक्ष्यार्थ में समझना चाहिए, वाच्यार्थ में नहीं, क्योंकि उनके आचार-व्यवहार एक न होकर अलग-अलग हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। उनकी इस एकता को वैसा ही समझना चाहिए 'जैसे जुगनू और सूर्य की एकता को, राजा और भृत्य की, कुएँ और समुद्र की तथा परमाणु और पर्वत की एकता को।''

इस एकीकरण की दिशा में बढ़ता हर कदम क्रमश: भौतिकी के अविज्ञात आयामों को खोलने में तथा उसे आत्मिकी के समीप ला पाने में समर्थ हुआ है। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व अलवर्ट आइन्स्टीन ने देश (स्पेस) की परिकल्पना दो बलों के एकीकरण के रूप में की थी—एक गुरुत्वीय (ग्रेविटेशनल) एवं दूसरा विद्युतचुम्बकीय (इलेक्ट्रो मेग्नेटिक)। दोनों ही चार मूल बलों में से दो प्रमुख बल हैं। अन्य दो बल है 'बीक फोर्स' एवं ''स्ट्रॉग फोर्स'' जिनकी खोज बाद में हो पाई। आज वैज्ञानिक इन चार बलों के एकीकरण के माध्यम से एक ''यूनिफाइड फील्ड'' की परिकल्पना भर करते हैं लेकिन उस समय, जबकि इनकी अत्यल्प जानकारी भर उपलब्ध थी, ''फोर डाइमेंशनल कवर्ड स्पेस टाइम'' को प्रयोगों के माध्यम से आइन्स्टाइन जैसे दृष्टा वैज्ञानिक ने प्रमाणित कर दिखाया था। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है कि गुरुत्वरूपी ज्यामितीय विचार एवं विद्युत चुम्बकत्व रूपी देशकाल संरचना का एकीकरण उन्होंने उसी समय सोच लिया था। उनका तबका एकीकरण सिद्धान्त सूक्ष्म भौतिकी अर्थात् ब्रह्माण्ड की चेतना-सत्ता के मूल प्रेरक बल की गहराईयों में जाने हेतु आने वाली वैज्ञानिक पीढ़ी को ऐसी दिशाएँ दे गया जो कि शाश्वत, सनातन हैं। यही कारण है कि आज आइन्स्टीन को विज्ञान जगत में वही स्थान प्राप्त है जो आर्ष साहित्य में व्यास एवं साधना के क्षेत्र में पातञ्जलि एवं विश्वामित्र को।

चर्चा सूक्ष्मीकरण के सन्दर्भ में चल रही थी एवं यह समझाने का प्रयास किया जा रहा था कि अन्तत: यह सूक्ष्म जगत है क्या? कणों-प्रतिकणों की दुनिया की इतनी चर्चा होती है। कहीं शास्त्र वर्णित लोकोत्तर जीवन इन प्रतिकणों की दुनिया में तो छुपा नहीं है, जिसे भौतिकी और आत्मिकी के तालमेल के अभाव में जाना न जा सका हो।

सत्य के प्रति प्रेम एवं निर्भीकता से उसकी खोज उपनिषदों की एक विशेषता रही है। राबर्ट अर्नेस्ट ह्यूम अपने ग्रंथ ''द थर्टीन प्रिंसीपल उपनिषद्स'' में लिखते हैं—''सत्य की खोज करने की उत्सुकता, उपनिषदों की एक आनन्ददायी और प्रशंसनीय विशिष्टताओं में से एक है।'' मैक्समूलर जैसे प्रख्यात पूर्वार्त्त दर्शन के अध्येता का मत रहा है कि ''उपनिषदों के रचयिताओं ने किसी भी ऐहिक या पारलौकिक सुख को सत्य की खोज के मार्ग में बाधक नहीं बनने दिया। इस अन्वेषण में वे सदैव पूर्वाग्रहों से मुक्त रहे हैं। यही कारण है कि पूर्वात्त अध्यात्म के माध्यम से ऋषियों ने कुछ ऐसे रहस्यों का उद्घाटन किया है जो आज के वैज्ञानिकों के लिये दिशा-निर्देशक सूत्र की भूमिका बखूबी निभा रहे हैं।''''लेक्चर्स ऑन द वेदान्त फिलासफी'' मैक्समूलर द्वारा लिखित पुस्तक से उद्धृत)।

ईशोपनिषद् के प्रारम्भ में कही जाने वाली ऋचा ''पूर्णमद: पूर्णमिदं'' वह पूर्ण है-यह भी पूर्ण है, के माध्यम से ब्रह्माण्डव्यापी व्यक्त एवं अव्यक्त सत्ता के उसी स्वरूप को प्रकाशित करती है, जिसे आइन्स्टीन ने अपने सूत्रों में इस सदी के प्रारम्भ में कहा था। वेदान्त में भी तकनीकी भाषा का प्रयोग हुआ है एवं उपनिषद्कार जब 'वह' तथा 'यह' उनकी पूर्णता का उद्घोष करता है तो 'वह' परोक्ष सत्ता-परब्रह्म के तात्पर्य में तथा 'यह' एक ऐसी वस्तु की ओर संकेत करता है जो इन्द्रिय गम्य है। यह मन्त्र देश, काल और परिणाम की अभिव्यक्ति के प्रतीक इस व्यक्त जगत का बोधक है।

इस प्रकार जहाँ तक परोक्ष जगत की सूक्ष्मीकृत संरचना एवं उसके विभिन्न आयामों के प्रकटीकरण का प्रश्न है, भारतीय चिन्तन और आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन दोनों एक मत हैं। दोनों इस प्रत्यक्ष जगत की विविधता के पीछे परोक्ष में निहित मूल एकता को मानते हैं। लेकिन न ही उपनिषद् एवं न ही प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक बहिरंग से सन्तुष्ट होकर रह जाते हैं। दोनों ही वस्तुओं के अन्तस् को, सत्य के चैतन्य पहलू को जानना चाहते हैं। भौतिकी को दार्शनिक ढंग से समझने-समझाने वालों ने यह प्रयास पूर्वार्त्त दर्शन के सहयोग से भली प्रकार किया है।

१९७४ में आइन्स्टीन की एकीकरण की मान्यता को मूर्त रूप देने का प्रयास योगेशपति एवं नोबेल पुरस्कार विजेता अब्दुस्सलाम (दोनों ही एशियन किन्तु अमेरिका के नागरिक) ने एक ओर तथा होवर्ड जार्जी एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शेल्डन ग्लाशोव ने दूसरी ओर आरम्भ किया। इसे उन्होंने ग्राण्ड यूनिफिकेशन नाम दिया। क्वार्कस एवं लेप्टान कणों की गहराई में हम प्रवेश न करें तो भी भारत की पुणे के समीप कोलाई स्वर्ण खान में पकड़े गये दीर्घजीवी प्रोटानों एवं न्यूट्रॉनों कणों के आधार पर द्रव्य (पदार्थ) की वर्तमान अवस्था प्रतिद्रव्य का उसके ऊपर हावी होना तथा इसके माध्यम से एक पाँच आयामीय जगत की कल्पना करना अब आसान हो गया है। अब प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि इलेक्ट्रॉन-न्यूट्रॉनों का भार शून्य से अधिक है। प्रो. ग्लाशोव इस आधार पर कहते हैं कि चार मूल बलों का एकीकरण अब सिद्ध किया जा सकता है एवं यह भी कि आइन्स्टीन अपने इस कथन में असत्य नहीं कह रहे थे कि इस विराट् जगत के मूल में चेतन सत्ता कार्यरत है। आइन्स्टीन ने भौतिकी से अधिक महत्त्व ज्यामिती को दिया जो कि किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों पर तो आधारित है। वे कहते थे ''क्वाण्टम फिजीक्स'' में अनिश्चयता को महत्त्व दिया गया है जबकि ''पार्टीकल फिजीक्स'' (कण भौतिकी) में सम्भाव्यता के सिद्धान्त को। उन्हें ये दोनों बातें पसन्द नहीं थीं। उन्होंने 'सपोज' के आधार पैर नहीं बल्कि ''प्योर थॉट'' के आधार पर परोक्ष के रहस्यों को जानने हेतु प्रयास करने पर बल दिया।

अब उन्हीं दो मूल बलों से चार बल, उनके एकीकरण एवं तदनुसार भौतिकी के सूक्ष्म परिसर की परिकल्पना के बाद पिछले ६ वर्षों में परागुरुत्व (सुपर ग्रेविटी) एवं प्रति गुरुत्व (एण्टी ग्रेविटी) का सिद्धान्त एकीकरण की नींव को और भी मजबूत करने को आ खड़ा हुआ है। सम्भव है इसी एण्टीग्रेविटी में सूक्ष्म जगत का सारा ढाँचा निहित हो, जिसमें कण-प्रतिकण प्रकाश की गति से भी तीव्र परिभ्रमण करते हों—सारा पारलौकिक गतिक्रम यहीं संचालित होता हो। परागुरुत्व भौतिकी का नवीनतम अजूबा है एवं सम्भव है आत्मिकी के समीप आने का एक माध्यम भी। इसके प्रमुख प्रवक्ता प्रो. न्यूवेन ह्यूजेन का कथन है कि पूवर्ति दर्शन वर्णित सभी ''गप्पबाजियाँ'' (जैसा कि वे पूर्व में मानते थे) सम्भवत: परा एवं प्रति गुरुत्व के माध्यम से वैज्ञानिकों को समझ में आने लगे एवं आइन्स्टीन का वह कथन सत्य लगने लगे कि ''ईश्वर समझदार है, वह कभी उल्टे-सीधे पासे नहीं फेंकता। काल विवर (ब्लैक होल्स) आदि की कल्पना सत्य हो सकती है पर है वह भी तर्क सम्मत वैज्ञानिकता का ही एक अंग न कि अनिश्चितता के आधार पर की गयी परिकल्पना।''

१९३४ से लेकर अब तक भौतिकीविद् दार्शनिकता, वैज्ञानिकता के पलड़े में झूलते रहे हैं और यह भूलते रहे हैं कि वह 'विज्ञान के दर्शन' का एक ही पलड़ा है। सर जेम्स जीन्स इसीलिए कहते थे कि ''भौतिक जगत की समस्त घटनाएँ सामन्जस्य पूर्ण हैं, यहाँ तक कि वे भी जिन्हें हम संयोग मान बैठते हैं। इन सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को गणित की भाषा में सही ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। भौतिक जगत में सामंजस्यपूर्ण घटनाओं को रचने वाली अवश्य ही कोई विचार बुद्धि युक्त सत्ता है। वह महान गणितज्ञ प्रतीत होती है अत: उसे परमेश्वर कहना अत्युक्ति पूर्ण नहीं है।''

भौतिक जगत में पग-पग पर हर पहलू में हमें गणितीय प्रतिरूप दिखाई पड़ते हैं। अत: इसे किसी भी हालत में यान्त्रिक जगत, जड़ जगत नहीं कहा जा सकता। जो भी कुछ दृश्य रूप में घटित होता है, वह विराट् चेतन सत्ता की ही अभिव्यक्ति मात्र है। मस्तिष्क यदि उन्हें स्थूल रूप में देखे तो वे उसी सीमा में उसे दिखा देंगी लेकिन चेतना के जागरण द्वारा, सूक्ष्मीकृत मानवी चेतना सत्ता के माध्यम से अदृश्य—पराभौतिक घटनाक्रमों को देख सकना, उनमें भाग ले सकना भी पूर्णरूपेण सम्भव है। वस्तुत: मानवीय न जो स्थूल मस्तिष्क का चेतन प्रतिबिम्ब है, अपनी जागृति की पराकाष्ठा की स्थिति में जड़ व चेतन भौतिक सत्ताओं का अन्तर भूलकर सूक्ष्म जगत का ही एक अंग बन जाता है।

भौतिकी के माध्यम से क्लिष्ट शब्दावली को भी सरल करते हुए यहाँ यह समझाने का प्रयास किया गया कि इस काय-कलेवर में निवास करने वाली चेतन सत्ता अन्तत: जीवित अवस्था में ही कैसे वह भूमिका निभा लेती है जो दृश्यमान नहीं है ? मात्र अणु-परमाणुओं, कण-प्रतिकणों पर ही लागू होती है। सूक्ष्म मन सूक्ष्म विराट् सत्ता का ही एक अंग है। दोनों का एकीकरण सम्भव है एवं इसी में परोक्ष का सारा लीला सन्दोह चलता रहता है।

पदार्थ और चेतना—दो भिन्न अस्तित्व

इन्द्र, अग्नि, वायु, आकाश आदि सभी देवताओं का ब्रह्म ने आवाहन किया। उनके सामने एक तिनका रखा और कहा—इसे उठाओ, जलाओ और उड़ाओ पर एक नन्हें से तिनके को हस्तान्तरित करने में कोई भी समर्थ न हुआ, तब ब्रह्म ने उस तिनके को उठाया, फूँक मारकर उड़ाया और जलाकर भी दिखा दिया। पराभूत देवताओं को उपदेश देते हुए केनोपनिषद में ब्रह्म ने समझाया कि शक्ति का केन्द्र शरीर नहीं आत्म-चेतना है, शरीर तो जड़ है, उसका अभिमान नहीं करना चाहिये।

इस आख्यायिका में बताया है कि मनुष्य के शरीर में विभिन्न पदार्थों की सम्मिलित शक्ति होने पर भी यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना नहीं है, तो मात्र पिण्ड कुछ नहीं कर सकता। सर्वशक्तिमान चेतना है, आत्मा है, जड़ शरीर नहीं, यह चेतना शरीर से स्वतन्त्र अस्तित्व है।

ऋग्वेद का कथन है—

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा चपथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विचूचीर्वसान आवरी वर्ति भुवनेष्वन्तः।।

—ऋग्वेद १।१७७।३

अर्थात्-यह जीवात्मा अनेक मार्गों द्वारा शरीर में आता है (शरीर से पैदा नहीं होता) शरीर से पृथक् होता है, अविनाशी और इन्द्रियों का रक्षक होता है। वह शरीर के साथ भी रहता है, शरीर को छोड़कर भी रहता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी कोई ऐसा प्रयोग नहीं कर पाये जिससे आत्म-चेतना के अस्तित्व की पृथक् अनुभूति की जा सके। पर योग-साधनाओं द्वारा आत्मा को बोधगम्य बनाने वाले भारतीय योगियों ने ऐसे प्रमाण प्रत्यक्ष प्रदर्शनों द्वारा प्रस्तुत किये हैं जिनसे पता चलता है कि आत्मा अज्ञानवश शरीर के व्यापार में आसक्त पड़ा रहे, यह अलग बात है पर वह है स्वशासी, अपने नियन्त्रण में आप। एक बार सुप्रसिद्ध योगी देशबन्धु की इस मान्यता को कुछ डाक्टरों ने अमान्य किया, फलस्वरूप बम्बई मेडिकल यूनियन की ओर से श्री देशबन्धु का प्रदर्शन कराया गया। उसे देखने के लिये बम्बई मेडिकल कालेज के छात्र स्टाफ तथा अन्य विशिष्ट नागरिक भी एकत्र हुये। डॉ. बसन्त जी रैले उनके शरीर परीक्षण के लिये नियुक्त किये गये। श्री देशबन्धु से कहा गया यदि आप जानते हैं कि चेतना को शरीर से भिन्न किया जा सकता है तो आप दाहिने हाथ की नाड़ी-क्रिया को शून्य करके दिखाइये?

श्री देशबन्धु ने लम्बी श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया की। गहरी साँस ली और उसे बाहर निकाल दिया। दाहिना और बायाँ दोनों हाथ बाहर निकाल दिये। श्री रैले ने देखा बायें हाथ की नाड़ी यथावत् धक्-धक् कर रही थी पर दाहिने हाथ की नाड़ी में संचालन की जरा भी गति नहीं थी। दुबारा फिर वैसा ही करके उन्होंने दाहिने हाथ की नाड़ी चलाकर दिखा दी और बायें हाथ की नाड़ी गति को शून्य कर दिया। डॉक्टरों की टीम आश्चर्यचकित रह गई जबकि योगी देशबन्धु ने विभिन्न प्राणायाम क्रियाओं द्वारा सारे शरीर की नाड़ी संस्थानों को तो गतिशील रखा किन्तु हृदय गति को बिल्कुल रोक दिया। हृदय गति रुक जाने पर मनुष्य एक भी क्षण जीवित नहीं रह सकता। पश्चिम अभी तक कोई ऐसा प्रयोग नहीं कर सका कि शून्य गति हृदय को गति देकर मृतक को जिन्दा कर दिया हो जबकि प्रत्यक्ष उदाहरण यह था कि शेष शरीर जी रहा था और शरीर का इंजिन हृदय फेल पड़ा था। श्री देशबन्धु ने कहा—आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है उस पर केन्द्रस्थ होकर आश्चर्यजनक दिखने वाला हर काम सम्भव है।

डॉक्टरों ने उस समय यह तर्क किया कि सम्भव है यह सब आपने हिप्नोटिज्म द्वारा लोगों को सम्मोहित करके दिखाया हो, इस पर उन्होंने दुबारा प्रयोग किया इस बार एक्सरे कार्डियोग्राम द्वारा विधिवत् हृदय-गति की जाँच की तो भी परिणाम ज्यों का त्यों रहा। श्री देशबन्धु ने इसे महज खेल बताते हुये कहा आत्म-चेतना नाड़ी संस्थानों द्वारा इस शरीर से सम्बद्ध है यह क्रियायें और कुछ नहीं केवल मात्र 'वेगस नर्व' के नियन्त्रण का परिणाम है। भली-भाँति नियन्त्रित आत्म-चेतना से दूरगमन परलोक अनुभूति, परकाया प्रवेश, ईशत्व, वशित्व आदि विलक्षण सिद्धियाँ और सामर्थ अर्जित की जा सकती हैं। अणु से विराट् बनने का श्रेय इन साधनाओं द्वारा ही समुपलब्ध होता है।

योग मार्ग न सही ऐसे अनुभव पाश्चात्य लोगों ने भी किये हैं और माना है कि शरीर की मुख्य चेतना अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में वस्तुतः रह सकती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अगस्त सन् १९४४ को एक फौजी अफसर को हुआ। वह आफिसर स्काउट कार द्वारा जा रहा था तभी जर्मनी की एण्टी टैंक तोपों का सीधा प्रहार हुआ। आफीसर जिस गाड़ी में था उसमें और भी विस्फोटक पदार्थ भरे थे, उसमें भी विस्फोट हो गया। उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए आफिसर ने द्वितीय विश्वयुद्ध के मित्र राष्ट्र गजेटियर में लिखा है—जैसे ही विस्फोट हुआ मैं २० फूट दूर जा गिरा, ऐसा लगा मैं दो भागों में विभक्त हो गया। मेरा एक शरीर नीचे जमीन में पड़ा तड़प रहा है, उसके कपड़ों में आग लगी है भय से वह अपने हाथ-पैर बुरी तरह हिला रहा है किन्तु दूसरा शरीर इस शरीर के ऊपर आकाश में हवा की तरह तैर रहा था। मैं अपने रूप को स्वयं पहचानने में असमर्थ था पर वहाँ की हर वस्तु सड़क के पार का युद्ध दृश्य, झाड़ियाँ, जलती कार में सब कुछ देख रहा था। मुझे भीतर से एक अन्तःप्रेरणा उठी कि तड़फड़ाने से कुछ लाभ नहीं जल्दी-जल्दी शरीर को जमीन से रगड़ो ताकि आग बुझ जाये। शरीर ने ऐसा ही किया। वह लुढ़क कर बगल की खाई में जा गिरा। खाई में कुछ नमी थी, आग बुझ गई और मुझे ऐसा लगा जैसे एक पक्षी द्वारा घोंसले में प्रवेश की तरह मैं फिर उसी शरीर में आ गया। अब मुझे शरीर की पीड़ा का पुनः भान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने लगा, जबकि थोड़ी देर पूर्व यही दृश्य मैं मात्र दर्शक बना देख रहा था।

यह उदाहरण विवेक चूड़ामणि की इस सत्यता का ही बोध कराते है—

असङ्गोऽहमनङ्गो हमलिङ्गोऽहमभंगुरः।
प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहमतान्तोऽहं चिरन्तनः॥

मैं (आत्म-चेतना) असंग हूँ, अशरीर हूँ, मेरा कोई संग नहीं, मेरा नाश नहीं होता, अत्यन्त शांत अनंत अतान्त और पुरातन हूँ मेरा कोई आदि अन्त नहीं।

भारतीय दर्शन के इन गूढ़ रहस्यों का मर्म श्री रामकृष्ण परमहंस बहुत सीधे सादे उदाहरण से समझाया करते कहा करते—जिस तरह प्याज की गाँठ का छिलका उतार दो दूसरा छिलका आ जाता है छिलके उतारते जाओ अन्त में उसका बीज मात्र रह जाता है, उसी प्रकार शरीर के पदार्थ की समीक्षा, उसका विश्लेषण करते जाओ तो समस्त स्थूल पदार्थों के बाद जो शेष बचेगा वह आत्म-चेतना ही होगी।

इसकी विधिवत अनुभूति लम्बी योग-साधनाओं से सम्भव है पर कई बार आकस्मिक घटना भी आत्म-चेतना के पृथक् अस्तित्व का बोध करा देती है। जम्मू में शिक्षा विभाग के एक मध्यम श्रेणी कर्मचारी श्री गोपीकृष्ण ने किसी पुस्तक में पढ़ा—मस्तिष्क के मध्य ज्योतिर्लिंग का ध्यान करने से परमात्मा की अनुभूति होती है। एक दिन वे इसी तरह ध्यान कर रहे थे। जिज्ञासा की प्रखरता में बड़ी प्रबल शक्ति है। मन की चंचलता के कारण ध्यान का जो लाभ कुछ लोग वर्षों अभ्यास के बाद भी नहीं ले पाते वह उनकी तीव्र जिज्ञासा ने क्षण भर में प्रदान कर दिया। उन्हें सहस्रार की स्पष्ट अनुभूति अकस्मात हो गई। वे समझ न सके यह क्या हुआ वे एक दिव्य लोक में खोये से रहने लगे। एक दिन वे तवी पुल पार कर रहे थे, तभी उस प्रकार के बोध के साथ ही उनके मस्तिष्क में बहुत ही दिव्य भाव, छन्द बद्ध काव्य के रूप में उदित हुये। साधारण शिक्षित व्यक्ति में असाधारण कवित्व शक्ति का उदय उनके लिये एक आश्चर्य बन गया। वे कवितायें लिखने लगे। आश्चर्य तब और भी गहरा हो गया जब उनके मस्तिष्क के जर्मन, फ्रेंच इटैलियन, संस्कृति, अरबी जिनका कि उन्हें ज्ञान भी नहीं था, की भाषाओं में नियमित काव्य धारायें उतरने लगीं। उनके इन काव्यों और विलक्षण मानसिक शक्तियों का परीक्षण अनेक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भी किया और उन विचारों को शृंखलाबद्ध नियमित और व्याकरण के नियमों से नियन्त्रित पाया। रहस्य को न समझने पर भी सबने माना कि श्री गोपीकृष्ण के शरीर में किसी ऐसी सत्ता का विकास हो गया है जो शरीर और मन की पहुँच से बहुत व्यापक पहुँच वाली है। यह विलक्षण घटनायें देखकर योग वाशिष्ठ के यह कथन याद आते हैं—

नात्मा शरीर सम्बन्धी शरीरमपि नात्मनि मिथो विलक्षणवेतो प्रकाश तमसी यथा। ६।१।६।६

देहेनास्य न सम्बन्धो मनागेवामलात्मनः।
हेम्नः पङ्कलवेनेव तद्व तस्यापि मानवः॥ ५।५।२५

अर्थात्-आत्मा का शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं। अन्धकार और प्रकाश की तरह दोनों दो विलक्षण पदार्थ हैं। सोना कीचड़ में गिर जाने से उस पर कीचड़ का आवरण चढ़ गया जान पड़ता है तथापि सोने के कणों की शुद्धता में कोई अन्तर नहीं आता, उसी प्रकार शरीर में आ जाने पर भी आत्मा के अस्तित्व में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।

आधुनिक वैज्ञानिक चेतना को प्राकृतिक मानते हैं। उनका कहना है कि चेतन 'प्रोटोप्लाज्म' (नमक को इतना पीसा जाय कि फिर उसके टुकड़े न हो सकें उसे नमक का परमाणु कहते हैं, शरीर जिस पदार्थ से बना है उसकी लघुतम इकाई का नाम "सेल" है। सेल का कोश जिन तत्वों से बनता है, उसे प्रोटोप्लाज्म कहते हैं। प्रोटोप्लाज्म में शहद के समान नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन, फास्फोरस आदि बारह पदार्थों से बना एक तरल पदार्थ होता है, जिसे साइटोप्लाज्म कहते हैं। यह भौतिक पदार्थ भी इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन, पाजिट्रॉन और नाभिक से बने हैं। हक्सले के हवाले से वैज्ञानिक कहते हैं कि इलेक्ट्रॉन निरन्तर गतिशील रहते हैं। प्रकृति के बदलते रहने से इलेक्ट्रॉनों धारा निरन्तर बहती रहती है उसी से निरन्तर चेतना का क्रम बना रहता है उसे ही चेतना या जीवन कहते हैं।

किन्तु, प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ओलिवर लाज ने अपनी पुस्तक विज्ञान और धर्म (साइन्स एण्ड रिलीजन) के पेज १८ में स्पष्ट किया है कि प्रत्येक परमाणु कई इलेक्ट्रॉनों से मिलकर बना होता है यह इलेक्ट्रॉन गति भी करते हैं पर वे एक-दूसरे से चिपके नहीं रहते वरन् जिस तरह आकाश में ग्रह-नक्षत्र दूर-दूर परिभ्रमण करते हैं उसी तरह यह भी अलग-अलग रहकर परिभ्रमण करते हैं । इसे इलेक्ट्रान्स की निरन्तर प्रवाह प्रक्रिया को चेतना या जीवन नहीं कहा जा सकता। किसी निश्चित निष्कर्ष पर न पहुँच पाने पर भी आज के विज्ञान ने यह मान लिया है कि चेतना अजर-अमर तत्व है। इलेक्ट्रॉन तो मन जैसी प्रचण्ड वेग वाली पदार्थजन्य शक्ति का नाम है। आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उससे भी भिन्न है। सम्भव है उसकी खोज में भारतीय तत्व दर्शन मदद कर सके।

सच क्या है? चेतना या पदार्थ

पदार्थ विज्ञान के अद्भुत चमत्कार के रूप में हम जो-जो विलक्षणताएँ देख पा रहे हैं और अगले दिनों देख सकेंगे, उनकी यदि योग विज्ञान से तुलना की जाय, तो पायेंगे कि दोनों के बीच तिल और ताड़ जितना भारी अंतर है। भौतिक विज्ञान के आविष्कार निश्चय ही सराहनीय हैं और आश्चर्यजनक भी, पर जब योग विज्ञान की उपलब्धियों की चर्चा होती है, तो यही कहना पड़ता है कि वह यदि प्रखर सूर्य है, तो पदार्थ विज्ञान एक टिमटिमाता दीपक।

योग विज्ञान चेतना का विज्ञान है। उसमें प्रगति और परिवर्तन जैसी क्रियाओं में उसकी इसी शक्ति का प्रयोग होता है, जबकि पदार्थ विज्ञान में विद्युत, ताप, गैस एवं परमाणु ऊर्जा जैसी पदार्थगत शक्तियों का उपयोग किया जाता है। यहाँ विज्ञान के जितने भी कौशल हैं, सब इन्हीं के खेल हैं। यह ऊर्जाएँ सूक्ष्म होते हुए भी पदार्थ स्तर की हैं, इसलिए इनके द्वारा लाये गये परिवर्तन भी भौतिक या पदार्थगत होते हैं चाहे वह रसायनों की आपसी क्रिया द्वारा रसायन निर्माण संबंधी हों अथवा धातुओं के मिलन संयोग द्वारा मिश्रधातुओं के उत्पादन संबंधी, सभी एक ही प्रकार के परिवर्तन के परिणाम हैं।

पदार्थ को प्रभावित करने का यह एक तरीका हुआ, किन्तु एक दूसरे उपाय से भी इस प्रक्रिया को घटित किया जा सकता है और क्षणमात्र में रूपांतरित कर किसी वस्तु को दूसरे-तीसरे पदार्थ में बदला जा सकता है। यह प्रणाली चेतना विज्ञान की है। योग विज्ञान इसी से संबंधित है। इसमें पदार्थ सत्ता के साथ किसी प्रकार की छेड़खानी नहीं करनी पड़ती, उसे धारण करने वाली चेतना के अणुओं को सक्रिय मात्र कर देना होता है। इतने से ही वस्तु का लोप होकर दूसरे का निर्माण हो जाता है।

चेतना विज्ञान में योगियों द्वारा केवल व्यक्तिगत चेतना-अणुओं को विशेष प्रकार से उत्तेजित कर दिया जाता है। इतने से ही शरीर तंत्र एवं अंग-अवयव प्रभावित होकर उच्चस्तरीय ढंग से स्वयमेव क्रिया करने लग जाते हैं। इस क्रम में कई बार वस्तु तो अपरिवर्तित बनी रहती है, पर उसकी कार्य-पद्धति बदलकर असाधारण हो जाती है और अनेक बार क्रिया के साथ-साथ वस्तु में भी थोड़ा-बहुत रूपांतरण हो जाता है। महाभारत युद्ध में इसी विद्या का प्रयोग करते हुए लड़ाई लड़ी गई थी। उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उसमें प्रयुक्त होने वाले शस्त्र-अस्त्र देखने में तो बिल्कुल सामान्य से थे, पर प्रयोग के दौरान कहर बरपाने वाले परिणाम प्रस्तुत करते थे। इसे पढ़-सुनकर आज ऐसा लग सकता है कि वे या तो दिव्य ढंग से निर्मित दिव्य आयुध रहे होंगे या फिर वस्तुस्थिति की अतिरंजना मात्र, जिसे उस महासमर को महिमामंडित करने के लिए कथाकारों या इतिहासकारों ने गढ़ दी हो, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। तथ्य यह है कि उसमें युद्ध-कौशल और योगबल का अद्भुत समन्वय हुआ था। इसे नहीं समझ पाने के कारण ही इन दिनों उसे अत्युक्ति मान लिया जाता है किन्तु जब संशयशील आँखें उसको प्रत्यक्ष देख लें, तो फिर उसे झुठलाया कैसे जाय?

घटना परमहंस विशुद्धानंद से संबंधित है और उन दिनों की है, जब वे अपने झाल्दा स्थित आश्रम में प्रवास कर रहे थे। एक रोज उद्धवनारायण नामक एक शिष्य ने आकर पूछा कि महाभारत में जिन अग्निवाण, वृष्टि वाण जैसे आयुधों की चर्चा है, क्या ऐसे वाण तब सचमुच ही अस्तित्व में थे ? अथवा यह सब अलंकारिक उल्लेख मात्र हैं? परमहंस देव ने सिर हिलाते हुए सहमति प्रकट की और कहा कि निश्चय ही तब ऐसे अस्त्र-शस्त्र थे। इसके साथ ही उन्होंने सामने उगे हुए सरकंडों में से तीन को तोड़ लाने को कहा और शिष्य से पूछा—"क्या तुम उसे देखना चाहोगे?" शिष्य ने "हाँ" कहकर अपनी अभिलाषा प्रकट की। इसके बाद उन्होंने एक सरकंडे का छिलका उतारा, उसको प्रत्यंचा बनाकर सरकंडे के दोनों सिरों पर बाँध दिया। इस प्रकार एक धनुष बन गया। फिर कुछ मंत्र पढ़े। इसके साथ ही वह एक सुन्दर धात्विक धनुष में परिवर्तित हो गया। तत्पश्चात् दूसरे सरकंडे को अभिमंत्रित किया। वह धातु का तीक्ष्ण नोक वाला तीर बन गया।"

अब शिष्य को संबोधित किया—"यह एक सामान्य तीर-कमान है। योग बल द्वारा अब मैं इसे असाधारण बनाऊँगा।" इतना कहकर बड़े विनीत भाव से ऊपर आकाश की ओर निहारते हुए कोई स्तुति की, तदुपरांत सामने खड़े एक विशाल बरगद वृक्ष को लक्ष्य कर उसे छोड़ दिया। घनघोर गर्जन करता हुआ वह तीव्र वेग से चल पड़ा और पेड़ को विदीर्ण कर दूसरी ओर निकल गया। इसके साथ ही वृक्ष में आग लग गई। विशुद्धानंद जी का स्वर पुनः उभरा—"विज्ञान की समस्त युक्तियाँ और सारे साधन मिलकर भी इस अग्नि को शांत नहीं कर सकते। इसके पश्चात् उन्होंने तीसरा सरकंडा उठाया। पूर्ववत् उसे भी धात्विक तीर में बदला। फिर वरुण देवता का आव्हान कर उसमें प्रतिष्ठित किया। पीछे उसका भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संधान सामने के बरगद पर कर दिया। तीर लगते ही तरुवर की आग कुछ ही क्षण में बुझ गई।

तदुपरांत धनुष-वाण को हाथ में लेकर उनने आँखें बंद कर लीं। वह देखते-देखते पुनः तीन सरकंडों में रूपांतरित हो गये।

यह चेतना विज्ञान की उपलब्धि है। योग विज्ञान उसी से संबंधित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें चेतना कणों को सक्रिय, निष्क्रिय कर देने मात्र से एक वस्तु का तिरोभाव होकर उसमें दूसरे का आविर्भाव हो जाता है। दूसरे शब्दों में यहाँ किसी भी पदार्थ से दुनिया के किसी भी पदार्थ को प्रकट किया जा सकना संभव है। भौतिक विज्ञान में यह सुविधा नहीं। उसमें एक द्रव्य को दूसरे में परिवर्तित करने के लिए उच्चस्तर की साधन-सुविधाएँ चाहिए। इतने पर भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि इच्छित पदार्थ को प्राप्त कर ही लिया जायेगा।

इस मूलभूत अंतर को जान लेने के बाद यह निश्चय करना हमारी निजी समझ पर निर्भर है कि हम किसे श्रेष्ठ और सर्वोपरि मानें एवं जीवन में किसकी महत्ता को स्वीकार करें, पदार्थ विज्ञान को या चेतना विज्ञान को?

चेतना का पदार्थ जगत पर नियंत्रण

डॉ. भगवानदास ने अपनी पुस्तक—''दि एसैन्शियल यूनिटी ऑफ आल रिलीजन्स'' में कुछ विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के उन वक्तव्यों का संग्रह किया है, जिसमें मन (माइण्ड) को पदार्थ (मैटर) से श्रेष्ठ तथा उसकी नियामक सत्ता स्वीकार किया गया है। उन वक्तव्यों का हिन्दी अनुवाद निम्नांकित है:

(१) विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ऑलिवर लॉज—''वह समय निश्चित रूप से आयेगा, जब विज्ञान द्वारा अज्ञात (मन) के ये भाग खोजे जायेंगे और कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो सोचते हैं कि वह समय बहुत समीप आ गया है, जब ऐसा होने की आशा की जा सके। जितना हमने सोचा था, विश्व उससे अधिक आध्यात्मिक सत्ता है। वास्तविक तथ्य यह है कि हम भौतिक जगत को शासित करने वाले आध्यात्मिक जगत में निवास करते हैं। यह आध्यात्मिक जगत उस महान और नित्य विद्यमान वास्तविकता की रचना करता है जिसकी शक्तियों का अनुभव करना हमने प्रारम्भ ही किया है। वे शक्तियाँ सचमुच खतरनाक भी हो सकती थीं यदि ढाढ़स बाँधने के लिए हमें यह आश्वासन नहीं दिया गया होता कि वे समस्त प्रचण्ड ऊर्जाएँ उस कल्याणकारी पितृ-सत्ता द्वारा नियन्त्रित है, जिसका नाम 'प्रेम' है।

(२) गणितज्ञ और खगोलविद् सर जेम्स जीन्स—यह जगत महान ''यन्त्र'' के बजाय महान ''विचार'' अधिक समझ पड़ता है। वस्तुओं की प्रातीतिक वस्तुनिष्ठता (बाह्य आकार आदि) मन में उनके विद्यमान होने के कारण है। जगत की धारणा को हम विशुद्ध विचार का संसार मानते हैं। पदार्थ-राज्य में अब मन आकस्मिक घुसपैठिये के रूप में प्रतीत नहीं होता। अब हमारा यह अनुमान होता जा रहा है कि हमें पदार्थ-राज्य के रचयिता और शासक के रूप में उसकी जय-जयकार करनी चाहिए। निश्चित रूप से यह वैयक्तिक मन नहीं है, वरन् वह मन है जिसमें हमारे वैयक्तिक मनों को उत्पन्न करने वाले परमाणु विचार के रूप में रहते हैं।''

एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं—''सापेक्षवाद, निरन्तरता, न्यूनतम अवकाश, वक्र आकाश (कवर्ड स्पेस), संभावना-तरंगें, अनिश्चितता तथा घटनाएँ—ये सभी अवधारणाएँ हैं, जिनका हम चित्रण, कल्पना और वर्णन नहीं कर सकते।''

''जगत में पाये जाने वाले नियम तथा व्यवस्था माया या कल्पनावाद की भाषा में सबसे अधिक सरलता से वर्णित किये और समझाये जा सकते हैं। विज्ञान की अधिकतम जहाँ तक पहुँच है, उसमें से अधिकांश या कदाचित् सम्पूर्ण जो मानसिक नहीं है वह लुप्त हो गया है तथा कुछ भी नया जो मानसिक नहीं है, प्राप्त नहीं हुआ है। परिवर्तन की अन्तिम दिशा कदाचित् भौतिकवाद से और 'मनुष्य के कार्य स्वतंत्र नहीं है' के उस कठोर सिद्धान्त से भिन्न होगी जो उन्नीसवीं सदी की भौतिकी की विशिष्टता थी।''

'मिस्टीरियस यूनीवर्स' में वे लिखते हैं—''नया ज्ञान हमें जल्दबाजी में लिए गए अपने प्रथम अनुमान पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करता है। ठोस पदार्थ का अपने मूल भागों में विश्लेषण करने पर वह मन की रचना और मन की अभिव्यक्ति के रूप में जब से प्रतीत हुआ है, तब से मन और पदार्थ का पुराना द्वन्द्व लुप्त होने की सम्भावना हो चली है।''

(३) प्रोफेसर सर ए. एस. एडिंगटन—'कोई अज्ञात कर रहा है, हम नहीं जानते क्या कर रहा है यह हमारे सिद्धान्त का सार है। आधुनिक भौतिकी ने पदार्थ की कल्पना को हटा दिया है। हमारे अनुभवों में मन पहला और सबसे सीधा तत्व है। मैं चेतना को मूल आधार मानता हूँ।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(४) गणितज्ञ और सापेक्षवाद के विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन—''मैं परमात्मा में विश्वास करता हूँ, जो स्वयं को जगत की व्यवस्थित लय के रूप में अभिव्यक्त कर रहा है। मैं विश्वास करता हूँ कि ज्ञान सम्पूर्ण प्रकृति में अभिव्यक्त हुआ है। वैज्ञानिक कार्य का आधार यह विश्वास है कि जगत व्यवस्थित, बुद्धिगम्य विस्तृत सत्ता है तथा मात्र संयोग का परिणाम नहीं है।''

(५) भौतिकीविद् जे. बी. एस. हाल्डेन—''आंशिक एवं अपूर्ण ढंग से देखे जाने पर जो जगत एक अर्ध यान्त्रिक-रचना माना जाता है, वह वास्तव में आध्यात्मिक जगत है। एकमात्र वास्तविक जगत आध्यात्मिक जगत ही है। सत्य यह है कि पदार्थ नहीं, बल नहीं, कोई भौतिक वस्तु नहीं वरन् मन, व्यक्तित्व ही जगत का केन्द्रीय तथ्य है।''

(६) भू-गर्भ शास्त्री किर्टले एफ. माथर—''पदार्थ और ऊर्जा के विश्लेषण में, परम सत्य तक हमारी अब तक की निकटतम पहुँच यह दर्शाती है कि मन ही सार्वभौमिक वास्तविकता है।''

(७) भौतिकीविद् रॉबर्ट ए. मिलिकन— ''परमात्मा जगत को एकीकृत करने वाला कारण तत्व है। मनुष्य के मन के सम्मुख विकासवाद की अवधारणा के समान उन्नत अन्य कोई अवधारणा प्रस्तुत नहीं की गई है, जो अनन्त युगों से अवयवी पदार्थ में जीवन की श्वाँस भरते हुए तथा मनुष्य में आध्यात्मिक प्रकृति एवं उसकी समस्त ईश्वर समान शक्तियों के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुए परमात्मा को पुनः प्रस्तुत करती है।''

(८) ''दि ग्रेट डिजाइर'' पुस्तक में सर जे. ए. थॉमस— ''समस्त पशु जीवन के संसार में, (उनकी) कुछ अभिव्यक्तियाँ हममें उपस्थित मन से मिलती-जुलती हैं। अमीबा (प्रथम जीव) तथा उससे ऊपर आन्तरिक जीवन की धारा बह रही है, जीवन की यह धारा पतले नाले के समान हो सकती है और कभी-कभी बलवान धारा भी होती है। इस (जीवन धारा) में अनुभव करना, कल्पना करना, आकांक्षा करना और कभी-कभी विचार करना सम्मिलित है। उसमें अचेतन का समावेश है। पौधों में वह तन्द्रावस्था में है या घोर निद्रा में या कभी नहीं जागी है, कौन कह सकता है। पशुओं में मन की सर्वव्यापकता हममें उनके प्रति साथी की भावना भरती है। इमर्सन के इन शब्दों में हमें मन की क्रमशः बढ़ती हुई मुक्ति दिखाई देती है। वे लिखते हैं—

''मन की यह मुक्ति ही विकास का उद्देश्य है। किसी सतत् प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रारम्भ में जो बीज रूप में उपस्थित नहीं था, वह अन्त में भी नहीं पाया जा सकता। अतः अपने ही मन से और उसकी दासत्व मुक्ति की कहानी से प्रारम्भ कर (मूल की ओर) पीछे लौटते हुए हम सर्वोच्च मन तक पहुँच जाते हैं 'जिसके बिना कुछ भी निर्मित नहीं था, जो निर्मित किया गया था।' जीवन के ऐसे संसार में जो हमारी वैज्ञानिक अंगुलियों द्वारा नहीं छोड़ा-पकड़ा जा सकता, वस्तुओं के सामने खड़े होकर हम यह दुहराने के सिवा और क्या कर सकते हैं '(हे प्रभु) मेरी आँखें खोल, ताकि मैं तेरे नियम के अन्तर्गत बनी आश्चर्यजनक वस्तुएँ देख सकूँ।''

गहन अन्तःचेतना को प्रभावित करने की आवश्यकता

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तर्क, प्रमाण, विचार-परामर्श आदि देकर प्रभावित कर सकता है, इसकी जानकारी सभी को है। अध्यापक अपने छात्रों के मस्तिष्क को विकसित करते हैं। पहलवान अपने शागिर्दों को कुश्ती, कसरत सिखाकर बलवान बनाते हैं। वक्ता, लेखक विचारों से हलचल उत्पन्न करते और लोगों के सोचने के तरीके में परिवर्तन करते हैं। नर-नारी के बीच शारीरिक आकर्षण ही काम करता है और प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने रौब-दौब, आतंक का भी उपयोग करते हैं।

उपरोक्त प्रभाव प्रक्रिया का स्तर उथला ही रहता है। अध्यापक गणित, इतिहास, भाषा, भूगोल आदि की जानकारी करा देने पर अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा लेते हैं। वे चिन्तन की शैली, आकांक्षा और दिशा नहीं बदल सकते। अखाड़े के पहलवान शागिर्दों की माँस-पेशियाँ मजबूत कर सकते हैं, उनमें मनोबल उत्पन्न नहीं कर सकते। अखाड़े में जाकर कोई संयमी, सदाचारी, मनस्वी, साहसी बन जाय यह आवश्यक नहीं, क्योंकि पहलवानी की शिक्षा उथले स्तर पर ही समाप्त हो जाती है, वह अन्तरंग की गहराई में नहीं उतरती है।

इसी प्रकार लेखक, वक्ता, नेता, प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अपनी तेजस्विता सम्मोहन से तत्काल तो कुछ भी सोचने-करने को आवेश उत्पन्न कर सकते हैं पर वह क्षणिक होता है और उथला रहता है। वह नशा उतरते ही लोग अपने पुराने ढर्रे पर आ जाते हैं और वह कृत्रिम उत्साह अपनी क्षणिक चमक दिखाकर तिरोहित हो जाता है। कारण स्पष्ट है जो शिक्षण दिया गया था, वह अन्तःकरण की गहराई तक प्रवेश न कर सका केवल उथले बौद्धिक स्तर तक टकराकर बिखर गया। उस टकराहट की प्रतिक्रिया जितनी देर रह सकती थी, उतनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देर रही और इसके बाद व्यक्ति की वही संस्कारगत स्थिति आ गई।

मनुष्य का समग्र व्यक्तित्व विकसित एवं परिवर्तित करने से ही उसकी गरिमा और महत्ता बढ़ सकती है। महामानव इस विश्व की सच्ची सम्पत्ति होते हैं। कोई देश और समाज इन्हीं के कारण गौरवशाली बनते हैं और इन्हीं के अभाव में पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं। राष्ट्रीय सम्पदा का मूल्यांकन, धन के आधार पर नहीं मनस्वी, तेजस्वी और आत्म बल सम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ही किया जाना चाहिए। वे यदि उद्भूत नहीं तो विपुल सम्पदा सम्पन्न होते हुए भी कोई समाज दरिद्र ही रहेगा। उसकी वह आर्थिक उन्नति भी ठोस प्रगति की दिशा में कुछ अधिक सहायता न कर सकेगी।

यह उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों का निर्माण कैसे हो? इसके लिए उसी स्तर के साँचे चाहिए। टकसाल के साँचे जैसे होते हैं वैसे ही सिक्के ढलते चले जाते हैं। बुद्ध के अनुगामी ढाई लाख व्यक्तियों ने संसार भर में सत्य, अहिंसा का संदेश पहुँचाया था। गान्धी के अनुचर स्वतंत्रता संग्राम में एक से एक बढ़े-चढ़े अनुदान लेकर आगे आये। यह प्रेरणाएँ बौद्धिक आधार पर नहीं-भावना स्तर पर दी जाती हैं और इसके देने के लिए वैसा ही आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व चाहिए। आज आवश्यकता ऐसी ही हस्तियों की है, जो अपने आत्मबल से जन साधारण के भाव स्तर को विकसित और परिष्कृत कर सकें। विज्ञान इस संभावना को स्वीकार करता है कि अदृश्य शक्ति प्रवाह के द्वारा भी मानवीय चेतना को अभीष्ट दिशा में मोड़ा या ढाला जा सकता है।

मानव मस्तिष्क की अन्तस्त्वचिका के भीतर एक विशेष प्रकार की तंत्रिकाएँ पाई जाती हैं, उनका समूह भावात्मक मस्तिष्क कहलाता है। भय, क्रोध, शोक, चिन्ता, अवसाद, हर्ष, संतोष, प्रेम, त्याग, संयम और कामोद्वेग जैसी प्रवृत्तियाँ इसी भाग से सम्बन्धित हैं। इसका स्वरूप बहुत कुछ वंश परम्परा से उत्तराधिकार में मिला था, कुछ वातावरण एवं संगति में और कुछ व्यक्तिगत चिन्तन की दिशा के आधार पर विकसित होता है। अविकसित और विकसित प्राणियों का यों मानसिक अन्तर कुछ तो बुद्धि के आधार पर भी होता है पर मुख्य अन्तर यह भावात्मक ही है। भावनाओं के आवेश में ही मस्तिष्क उत्तेजित होता है और मस्तिष्क सक्रिय होता है। इन दोनों की बिखरी हुई दशाओं को एक केन्द्र पर एकत्रित करने और क्रियाशील बनाने का श्रेय इस भावात्मक मस्तिष्क केन्द्र को ही है।

येल विश्वविद्यालय के न्यूरोलोजिस्ट डा. जोसे डैलगेडो ने ऐसे विद्युदग्र रेडियो उपकरणों का आविष्कार किया है, जिनके आधार पर बिना शल्य चिकित्सा के ही रेडियो किरणों द्वारा मस्तिष्क के किसी भाग से सम्पर्क बनाना और उसे प्रभावित कर सकना सम्भव हो सके। भावानात्मक मस्तिष्क की तंत्रिकाओं और कोशिकाओं को उन्हीं शरीर के आर-पार जा सकने वाली किरणों के द्वारा वहाँ के असंतुलन को मिलाया जा सकेगा। विशेष प्रकार का भावावेश उत्पन्न किया जा सकेगा। यह किरणें 'एक्स' किरणों से मिलती- जुलती हैं, जिन्हें शरीर के आर-पार जाने में मस्तिष्क की कठोर खोपड़ी में भी कोई बड़ी बाधा नहीं पहुँचती।

अब तक भावनाओं का समाधान भावनाओं से ही किया जाता रहा है। क्रोध को विनय से, घृणा को प्रेम से, असंतोष को उपलब्धियों से शमन किया जाता रहा है। इसके लिये सामने वाले व्यक्ति को अपनी वाणी, व्यवहार और क्रिया द्वारा असंतुलित व्यक्ति को वैसा विश्वास दिलाकर उस उद्वेग का समाधान करना पड़ता था, जिसके अभाव में उसे असंतुलित होना पड़ा। इतनी लम्बी प्रक्रिया के बाद तब कहीं उत्तेजित व्यक्ति सामान्य स्थिति में आता था। उसके समाधान के लिए व्यक्ति विशेष को माध्यम बनाकर अथवा वातावरण को बदलकर मनोविकार ग्रस्त मनुष्य की शान्ति सम्भव की जाती थी। उचित ही नहीं अनुचित समाधान भी प्रस्तुत करने पड़ते थे। पर अब उपरोक्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण यह कठिन प्रक्रिया सरल हो गई। रेडियो विद्युतधाराएँ आवेशग्रस्त मस्तिष्कीय खण्ड का शमन कर दिया करेंगी और मनुष्य चिकित्सक के इशारे पर अपने भाव-संस्थान में आवश्यक परिवर्तन कर लिया करेगा। इस सफलता के कारण न केवल भावानात्मक रुग्ण ग्रन्थियों को खोला जा सकेगा वरन् उनमें उपयोगी ऐसे भाव बीज भी जमाये जा सकेंगे जो उसे किसी दिशा विशेष में चलने के लिये आवश्यक रुचि एवं स्फूर्ति पैदा कर सकें।

मानवीय मस्तिष्क पर इलेक्ट्रोनिक नियमन की इस प्रक्रिया पर विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य बहुत तेजी से चल रहा है और काफी प्रगति भी हुई है। दो दशक पूर्व स्विटजरलैण्ड के विज्ञानी डा. डबल्यू. आर. हेस ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ किया था उन्होंने जीवित प्राणी के मस्तिष्क में एक सुई घुसेड़कर उसके माध्यम से विविध स्तरों की विद्युत तरंगें पहुँचाई थीं और उनके प्रभाव का अध्ययन किया था। उन्होंने पाया कि चेतन और अचेतन मस्तिष्क भागों में विभिन्न स्तर के जो चेतन केन्द्र बने हुए हैं, उनसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन केन्द्रों को उत्तेजित करके उसी स्तर की विचारणा से प्राणी को ओत-प्रोत किया जा सकता है।

इसके बाद अमरीकी मस्तिष्क विद्या विशारद डॉ. जेम्स ओल्डस् ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया। उन्होंने मानवी मस्तिष्क को हाथ में लिया जबकि पूर्ववत् स्विस विज्ञानी वैसे प्रयोग अन्य प्राणियों पर करते रहे। भूख, भय, इच्छा, कामुकता, क्रोध, पीड़ा, निराशा, उत्साह जैसे मस्तिष्क क्षेत्र तो पहले भी मालूम थे पर उनके केन्द्रीय कण उन्होंने ढूँढ़े और इस खोज के बाद उन्होंने वह पद्धति खोजी जिसके अनुसार उस केन्द्र तक बाह्य प्रभाव को पहुँचाया जा सकना सम्भव हो सके। इसमें सबसे बड़ी बाधा खोपड़ी को चारों ओर से जकड़ी हुई कपाल-अस्थियों की थी। यह अस्थियाँ सिर की केवल सर्दी-गर्मी चोट आघात आदि से ही रक्षा नहीं करती वरन् बाहरी विद्युत प्रभावों को भी भीतर जाने से रोकती हैं। विचारों की बिजली अति सूक्ष्म होने से भीतर प्रवेश कर सकती है। एक संकल्पशील व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करने का सफल प्रयोग तो जर्मनी के डॉ. शेक्सर पहले ही कर चुके थे। मैस्मरेजम हिप्नोटिज्म आविष्कारों ने उनमें इसी तथ्य को प्रत्यक्ष किया था। पर यह तो प्रश्न विचार तरंगों का नहीं—विद्युत तरंगों के प्रवेश का था, इसमें कपाल-अस्थियाँ प्रधान रूप से अवरोध उत्पन्न कर रही थीं। इसलिए उन्होंने चोर रास्ते से प्रवेश किया। रेडियो प्रभावित रसायनों को रक्त में मिलाकर और उस प्रभावित रक्त में विद्युत तरंगें पहुँचाकर नया रास्ता खोज लिया गया और अमुक केन्द्र को उत्तेजित करने के लिए अमुक स्तर की विद्युत का प्रयोग करने की पद्धति का निर्धारण कर लिया गया।

यह प्रयत्न और भी अधिक तेज कर दिये गये हैं और वह सरलता खोजी जा रही है, जिसमें जिसे प्रभावित करना हो उसके सहयोग की आवश्यकता न रहे। अभी तो यह कार्य तभी हो सकता है, जब व्यक्ति पर लोहपट्टी बँधवाने और औषधालय सेवन के लिए सहायता हो। बाँधकर, बलात्कारपूर्वक तो यह किया नहीं जा सकता। यदि व्यक्ति अपने ऊपर इस प्रकार का प्रभाव डलवाने के लिए सहमत न हो तब तो सारी योजना ही निरस्त हो जायेगी। अस्तु शोध के चरण इस दिशा में चल रहे हैं कि मनुष्य को पता भी न चले और परोक्ष रूप से उसे बौद्धिक पराधीनता के पास से मजबूती से जकड़ा जा सके। अभी तो मछली पकड़ने के लिए काँटा फेंकने वालों की सफलता मछली की इच्छा पर निर्भर रहती है।

ये वैज्ञानिक मछुए यह प्रयत्न कर रहे हैं कि काँटा डालने की जरूरत ही न पड़े, मछली का सहयोग अपेक्षित ही न रहे वरन् उनमें ऐसी प्रेरणा उत्पन्न की जाय कि ये जाल में आने के लिए खुद ही दौड़ती चली आयें। मानवी मछलियों को फाँसने के लिये यह शोध प्रयास इसी स्तर का है। प्रकृति की शक्तियों को वशवर्ती करने में बहुत बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद अब चेतना की स्वतंत्रता को विज्ञान की मुट्ठी में कैद करने के लिये अन्वेषण गतिविधियाँ तीव्र कर दी गई हैं और विज्ञान क्षेत्र में समुन्नत देश गुपचुप इस दौड़ में परस्पर बाजी मारने के लिये खुले हुये हैं। अन्तरिक्ष पर नियंत्रण करने से भी बढ़कर यह आविष्कार होगा।

इस दिशा में संतोषजनक सफलता मिलती है तो फिर युद्ध का सबसे बड़ा माध्यम यही होगा। अणु बम, हाइड्रोजन बम जैसे अस्त्रों को बेकार समझकर त्याग दिया जायेगा क्योंकि उससे शत्रु देश के विनाश के साथ-साथ विश्वव्यापी वातावरण में विकरण उत्पन्न होने से मित्र देशों को भी खतरा उपस्थित होता है। फिर उसमें कई तरह के खतरे और झंझट भी हैं। खर्चीली तो वह प्रक्रिया है ही उसकी सुरक्षा के लिये भी कम चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

प्रगति जिस चरण में पहुँची है उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के इस संदर्भ में संलग्न विज्ञानी डा. ओटोशिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गई है, पर आशा की जानी चाहिये कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिये ही होगा; किन्तु साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा कि इस नव उपार्जित शक्ति का प्रयोग निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं राष्ट्रीय विस्तारवाद के लिये भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे अधिक विघातक अस्त्र सिद्ध होगा।

कुछ दिन अमरीका प्रतिरक्षा विभाग ने एक गधे पर यह प्रयोग किया गया था और उसे उपकरणों से प्रभावित करके अकेला छोड़ा गया था। उसे जिधर चलने और जो करने के लिये निर्देश किया उसने वही सब कर दिखाया।

इस अन्वेषण के आधार पर कई उपयोगी चमत्कार अमेरिका के मेयो क्लिनिक ने कनाडा के मोन्ट्रियल न्यूरोलोजिकल इन्स्टीट्यूट ने तथा नार्वे के गुस्टाड मेन्टल हास्पिटल ने दिखाये हैं। रोगी को खुशी-खुशी बिना डरे आपरेशन करा लेने के लिए इस आधार पर तैयार करने में आश्चर्यजनक सफलता पाई गई है। एक प्रयोग में तो एक १८ वर्ष से अन्धी चली आई महिला को उसका मस्तिष्कीय दृष्टि संस्थान उत्तेजित करके देख सकने की शक्ति ही प्रदान कर दी। यह इस अन्वेषण का उपयोगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पक्ष है। निस्संदेह इन आविष्कारों का उपयोग मानवी सुविधाओं की वृद्धि भी कर सकता है पर खतरा तो उस दिशा से है, जिस पर कि आज के विश्व राजनेता धृष्टतापूर्वक चलते हुए एकदूसरे से बाजी मारने में तुले हुये हैं और तथाकथित शत्रु पक्ष को सर्वथा अपंग बनाने की बात सोच रहे हैं।

अवांछनीय दृष्टिकोण लेकर किया हुआ इस आविष्कार का उपयोग किसी भी अधिनायकवादी के हाथ में चक्रवर्ती विजय सौंप सकता है। इस क्षेत्र में प्रगति सम्पन्न देश अपने विरोधी या असहयोगियों की जनता तथा सैन्य शक्ति में निराशा, भीरुता एवं भयाक्रांत मन:स्थिति व्यापक रूप से उत्पन्न कर सकता है और उस व्यामोह में फँसे हुये विशाल जन समाज को मुट्ठी भर लोग अपने काबू में रखने और इशारे पर चलने के लिये विवश कर सकते हैं। गुलामी के बंधनों में जकड़ने के अब तक के प्रयासों में यह सबसे घृणित प्रयास होगा। जब आदमी सोचने की निजी क्षमता ही खो बैठा तो फिर उसका 'अपनापन' तो कुछ रहा ही नहीं, तब उसे जीवित होते हुए भी मृतकों की तरह कहीं भी खींचा घसीटा जाता रहेगा। ऐसे शक्ति सम्पन्न लोगों के चंगुल से तो मुक्त होने की भी फिर कोई आशा न रहेगी।

रूस के लौह आवरण में क्या हो रहा है इसका पता चलना कठिन है पर अमेरिका के समाचार हैं कि कुछ उच्च कोटि के वैज्ञानिकों ने मनुष्य समाज की वर्तमान मनोदशा में इस आविष्कार के खतरे को देखते हुये इस प्रयास में भाग लेने और काम करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया है। जो लगे हुये हैं उनका तर्क यह है कि हम इस प्रयास में इसलिये लगे हुए हैं कि रूस हमसे आगे न निकल जाये और कहीं उसके चंगुल में हमारा देश ही न फँस जाये। वे कहते हैं अन्तरिक्ष यानों की प्रतिस्पर्धा का भी तो यही कारण है फिर मस्तिष्क पर नियन्त्रण प्राप्त करने की इस खोज में ही क्या दोष है ?

भौतिक विज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क तक ही पहुँच सकता है। क्योंकि मस्तिष्क भी शरीर का ही एक अंग होने से उसे भी भौतिक क्षेत्र में सम्मिलित रखा गया है। मन को छटी या ग्यारहवीं इन्द्रिय ही माना गया है। वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा मस्तिष्कों को प्रभावित करने की विधि लगभग खोज निकाली गई है और वह निकट भविष्य में सामने आ भी रही है। इसका भला-बुरा प्रभाव जल्द ही देखने के लिये मिल जायेगा।

पर भाव क्षेत्र फिर भी सूना ही पड़ा रहेगा। वह भौतिक विज्ञान की परिधि से बाहर है क्योंकि अन्तरात्मा विशुद्ध चेतना का अंश है, उसे प्रभावित परिणत और परिष्कृत करने में केवल आत्मसत्ताएँ ही समर्थ हो सकती हैं।

आज आत्मसत्ता की दुर्बलता के कारण भौतिक वादी असुर सत्ता संसार की समस्त सम्पदाओं पर हावी होती जा रही है। मस्तिष्क की स्वतन्त्र चिन्तन शैली पर भी उसका दाँत है और आश्चर्य नहीं कि वह भी उसकी पकड़ में आ जाये। ऐसी विषम घड़ियों में इस बात की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है कि आत्म-सत्ता का पक्ष इतना प्रबल हो कि उसके द्वारा संसार की भावचेतना को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर किया जा सके। ऐसा हो सका तो भौतिक विज्ञान और उसकी समस्त उपलब्धियों को विश्व कल्याण में नियोजित किया जा सकेगा। यदि ऐसा न हो सका तो भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुये चरण मनुष्य को एक मशीन मात्र बनाकर छोड़ेंगे और कुछ सत्ताधारियों की कठपुतली बनकर समस्त मनुष्य समाज को सबसे बुरी पराधीनता—मस्तिष्कीय गुलामी के निविड़-बंधनों में बँधकर दयनीय स्थिति में जीना पड़ेगा। ऐसे विषम समय में आत्म विज्ञान पक्ष को अधिक समर्थ और अधिक सक्रिय होने की आवश्यकता है।

परिष्कृत चेतन तत्त्व की अनुभूतियाँ

अनुभूतियाँ क्या हैं ? मानसिक उपज ? भ्रांति ? या सच्चाई ? इन पर यदि गइराई से विचार किया जाये, तो ज्ञात होगा कि न तो यह मन की कल्पना है, न भ्रम। ऐसा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि तब घटित हमारे लिए अघटित स्तर के बने रहते हैं, किन्तु जब घटना की, स्फुरणा से सही-सही संगति बैठ जाती है, तब ज्ञात होता है कि उसमें कितनी सच्चाई थी और तभी यह भी विदित होता है कि कोई अलौकिक सत्ता हमारी चेतना से छेड़-छाड़ करती रहती है। इस प्रकार का प्रसंग जब कभी भी घटित होता है, तो मनुष्य में उसका परिणाम अघटित की अनुभूति के रूप में सामने आता एवं अनागत की महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

घटना २८ जून, १९५४ की है। न्यूयार्क अमेरिका के डॉक्टर रेमर की पत्नी एल्सा विश्राम कर रही थी। उनकी पुत्री जेस्सी एक माह पूर्व ही कैलिफोर्निया जा चुकी थी। माँ-बेटी के बीच की भौगोलिक दूरी ३ हजार किलोमीटर थी। अकस्मात् एल्सा चीखकर पलंग से उठ बैठी। रेमर ने जब इसका कारण जानना चाहा तो कहा कि अभी-अभी उसने जेस्सी की भयपूर्ण चीख सुनी, ऐसा लगा कि वह किसी विपदा में है। डॉक्टर ने अपनी पत्नी का शारीरिक परीक्षण किया। हृदय, नाड़ी, रक्तचाप सभी असामान्य थे। यह पूछे जाने पर कि उसने कोई भयंकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वप्न तो नहीं देखा, एल्सा ने कहा कि वह बिल्कुल जाग्रत अवस्था में थी और केवल जेस्सी की तीक्ष्ण चीख सुनी।

उस समय और कोई बात नहीं हुई। दो दिन बीत गये। इन दो दिनों तक घर का वातावरण बड़ा उदास बना रहा। तीसरे दिन वह उदासी पूर्ण विषाद में तब बदल गई, जब सचमुच जेस्सी के दुर्घटनाग्रस्त होने का तार मिला। आश्चर्य की बात यह थी कि एल्सा ने जिस समय यह चीख सुनी, ठीक उसी समय कैलिफोर्निया में कार दुर्घटना में उसका प्राणांत हुआ।

एक अन्य घटना फ्रांस के रियर एडमिरल गैलरी की आत्मकथा से उद्धृत है। ''आठ घंटियाँ'' (एट बेल्स) नामक उक्त आत्मकथा में गैलरी लिखते हैं कि उन्हें सोमवार को अपनी ड्यूटी पर जाना था। रविवार की रात जब वे सोये, तो एक स्वप्न देखा कि वे अपने जहाज पर बैठे हैं। जहाज चलने की तैयारी में है। यात्रीगण जल्दी-जल्दी ऊपर आ रहे हैं। इनमें दो युवक भी हैं। वे उन दोनों से नाम पूछते हैं। एक ने अपना नाम डिकग्रेन्स तथा दूसरे ने पॉप कनवे बताया। तभी जहाज में अचानक विस्फोट होता है। दोनों युवक घायल हो जाते हैं। बाद में पॉप की मृत्यु हो जाती है। शेष सभी यात्री सुरक्षित बच जाते हैं। वे लिखते हैं कि स्वप्न इतना स्पष्ट और गम्भीर था कि सोकर उठने के उपरान्त भी मानस पटल पर वह ज्यों-का-त्यों बना रहा।

आश्चर्य वहाँ से प्रारम्भ हुआ, जब उसने ऑफिस जाकर जहाज के यात्रियों की सूची देखी। उन्हें यह देखकर भारी हैरानी हुई कि जो नाम उसने स्वप्न में देखे थे, वे सचमुच उस लिस्ट में सम्मिलित थे। उनके मन में एक अज्ञात भय समा गया, पर उन्हें ड्यूटी में तो हर हालत में जाना ही था, अत: बुझे मन से जहाज में सवार हुए। जलयान ने ठीक समय पर प्रस्थान किया, पर उसने अभी ठीक तरह बंदरगाह भी नहीं छोड़ा था कि एक इंजन में विस्फोट हुआ। निकट बैठे हुए वही दो युवक घायल हुए , जिनमें से पॉप कनवे की थोड़ी देर पश्चात् मौत हो गई।

एक तीसरी घटना डरहम की एक स्त्री से सम्बन्धित है। क्रिस्टीना की लड़की लीला अपने छोटे भाई के साथ समुद्र में स्नान के लिए एक दिन गई हुई थी। अभी दो घण्टे भी नहीं बीते होंगे कि क्रिस्टीना ने चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया। पति ने जब कारण पूछा, तो बोली लीला डूब रही है, उसे बचा लो। पति ने आरम्भ में इसे पत्नी की अति कल्पनाशीलता समझी, पर पत्नी के बार-बार के आग्रह पर पति को तथ्य का पता लगाने के लिए जाना ही पड़ा। जब वह समुद्री किनारे पर पहुँचा, तब सचमुच लीला डूब चुकी थी और उसका छोटा पुत्र डिकी बैठा विलाप कर रहा था।

ऊपर लगभग एक ही तरह की तीन घटनाओं का उल्लेख है। यह घटनाएँ न तो भाव-संप्रेषण (टेलीपैथी) हैं और न ही दूरदर्शन (क्लेयरवायेन्स), वरन् इन्हें एक सर्वथा पृथक् श्रेणी में रखा जा सकता है, जिसे प्राय: 'अनुभूति' कहते हैं। टेलीपैथी यह इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि इसमें प्रयासपूर्वक ग्रहण और संप्रेषण की कार्यविधि अपनायी जाती है। दोनों पक्षों के बीच गहन भावानात्मक तादात्म्य होता है और उनके मध्य इसे सम्पन्न करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित किया जाता है। ऐसे ही भौगोलिक दूरी को किसी अतीन्द्रिय क्षमता के माध्यम से पारकर किसी प्रसंग का आभास प्राप्त कर लेना सम्पूर्ण घटनाचक्र को दृश्यमान बना लेना, दूरदर्शन है। उपरोक्त घटनाओं में से एक वर्तमान से सम्बन्धित है और शेष दो भविष्य से। जो हो रहा है, उसे देखा जा सकता है। जो हो चुका है, उसे भी जाना जा सकता है, किन्तु जो अभी भविष्य के गर्भ में है, यदि उसकी जानकारी येन-केन प्रकारेण होती है, तो इसे न तो दूरसंचार कहा जायेगा, न दूर संप्रेषण। यह आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हैं, जो यदा-कदा जीवन में प्रकट होती रहती हैं माध्यम चाहे स्वप्न हो, जागृति या तुरीयावस्था हो।

वेदांत दर्शन के अनुसार सृष्टि में ब्राह्मी चेतना या परमात्मा ही एक ऐसा तत्व है, जो सर्वव्यापी है। इसे प्रकारान्तर से यों भी कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड उसीमें अवस्थित है। वह काल की सीमा से परे है, अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों ही उसमें समाहित हैं। ''एक्सप्लोरिंग साइकिक फेनामेना बियांड मैटर'' नामक कृति में डी. स्कॉट रोगों इस सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि विचारणाएँ तथा भावनाएँ प्राणशक्ति का उत्सर्जन (डिस्चार्ज ऑफ वाइटल फोर्स) हैं। यही उत्सर्जन अंत:करण में यदा-कदा स्फुरणा बनकर प्रकट होते हैं। इस स्फुणा की क्रिया-प्रणाली जब दो व्यक्तियों के मध्य सम्पन्न होती है, तब वह टेलीपैथी होती है, किन्तु जब वह समय की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सूचना सुदूर भविष्य की देती है, तो इसका आधारभूत कारण ब्राह्मीचेतना होती है। इस चेतना की कल्पना आइन्स्टीन ने भी सापेक्षवाद के सिद्धान्त में की है और लिखा है कि यदि प्रकाश की गति से भी तीव्र गति वाला कोई तत्व हो तो वहाँ समय रुक जायेगा। दूसरे शब्दों में वहाँ बीते कल, आज और आने वाले कल में कोई अन्तर न रहेगा। भारतीय शास्त्र ब्राह्मीचेतना को ही ऐसा परम तत्व बताते हैं और मनुष्य व उसमें गहन सम्बन्ध होने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पग-पग पर उल्लेख करते हैं। उपरोक्त घटनाएँ इसी सत्य की पुष्टि करती हैं, साथ ही यह भी बताती हैं कि जब उस सत्ता का क्षणिक सम्पर्क इतना आश्चर्यजनक हो सकता है, तो सम्पूर्ण सम्पर्क कितना सामर्थ्य प्रदान करने वाला होगा यह विचारणीय है।

ऋग्वेद में एक ऋचा आती है—**अग्निना अग्नि समिध्यते,** अर्थात् अग्नि से अग्नि प्रदीप्त होती है। ब्रह्मानुभूति से ब्रह्म प्राप्ति इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि हम अधिकाधिक अपने आपे को आत्मचेतना को उस ब्राह्मीचेतना के समीप लायें और फिर अंतत: उसी में अपना विलय-विसर्जन कर दें। आत्म चेतना परमात्म-चेतना बन जाय और परमात्म चेतना आत्मचेतना की अनुभूति कराये। यह एकात्म-अद्वैत की स्थिति है। सर्वसाधारण में यह स्तर विकसित नहीं हो पाने के कारण ही ''काल'' रहस्यमय बना रहता है। जहाँ जिस अनुपात में दो सत्ताओं का सम्मिलन होता है, वहाँ उसी अंश में अविज्ञात ज्ञात बनता चलता है। उपरोक्त घटनाएँ उसी शृंखला की कड़ियाँ हैं, और आत्मजागृति की क्षणिक अनुभूतियाँ भीं। विस्तृत अनुभूति, ज्ञान प्राप्ति और ईश्वर साक्षात्कार के लिए तो आत्म-परिष्कार की गहन साधना अपनानी पड़ती है, जिसके उपरान्त ही अनुभूतियों के निमित्त कारण को भलीभाँति जाना और समझा जा सकता है।

अविज्ञात को जानने के लिए , चलें चेतना के सर्वोच्च आयाम में

काल-खण्ड तीन हैं-भूत, वर्तमान और भविष्यत। इनका अस्तित्व सिर्फ इस कारण है कि सृष्टि और समय की गति में जमीन-आसमान जितना अन्तर है, यदि इस मध्यांतर को मिटा दिया जाय, तो काल के विभाग भी स्वत: समाप्त हो जायेंगे। फिर जो शेष बचेगा, वह वर्तमान के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

यह वर्तमान और सद्य: समय दोनों एक ही हैं। जगत की हर क्रिया वर्तमान से आरम्भ होती है, पीछे वह अतीत बन जाती है। जीवन का प्रादुर्भाव वर्तमान है। तत्पश्चात् उसकी गति काफी मंद पड़ जाती है और समय बहुत आगे निकल जाता है, फलत: वह आगत-अनागत के दो अतिरिक्त खंडों में बँट जाता है। संसार की समस्त घटनाएँ सारी गतिविधियाँ ऐसी ही हैं, वह समय के सापेक्ष होती हैं, निरपेक्ष वहाँ कुछ भी नहीं। जो निरपेक्ष है, वह मात्र ईश्वर है और ईश्वर समय से बँधा नहीं। जो काल से मुक्त है, उसके लिए काल-खण्डों का कोई अस्तित्व नहीं। जहाँ इनकी सत्ताएँ हैं, वहाँ काल और घटनाक्रमों की गति-भिन्नता भी स्पष्ट है। कई बार इस भिन्नता को मिटाते हुए मनुष्य जब समय की गति के साथ चल पड़ता है, तो वह अनागत में पहुँच जाता है और कितनी ही बार उक्त भिन्नता को बढ़ाते हुए गति धीमी करता है, तो वही भूतकाल का प्रवेश द्वार बन जाता है। प्राय: ऐसे कौशल सूक्ष्म-जगत में गति रखने वाले आध्यात्मिक पुरुष ही कर पाते हैं, पर अनेक अवसरों पर यह सब आम आदमियों में भी अनायास सम्पन्न होता देखा जाता है।

ऐसी ही एक घटना का उल्लेख मार्टिन एबोन ने अपनी पुस्तक ''प्रोफेसी इन आवर टाइम'' (पृ० १४२) में किया है। प्रसंग ४ सितम्बर, १९५६ का है। इंगलबुड, कैलिफोर्निया निवासी श्री एवं श्रीमती पाल मैककैहन उक्त दिन जल्दी ही ''ग्रैंड केन्यॉन'' (अमेरिका का एक दर्शनीय स्थल) पहुँच गये। जब शाम घिरने को आयी, तो उन्होंने एक महिला को उसके पति और बच्चे के साथ देखा, जो अपना सामान लिए पास से गुजर रहे थे। श्रीमती मैककैहन ने उस स्त्री को पहचान लिया। वह उनकी एक परिचिता श्रीमती नैश थीं, जिसके साथ पिछले ही साल उनने यात्रा की थी। मैककैहन की पत्नी ने सोचा कि श्रीमती नैश अभी बहुत थकी होंगी, इसलिए उनने उस परिवार से तत्काल मिलने का विचार त्याग दिया।

इस सम्बन्ध में ''अमेरिकन सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च'' की अपनी रिपोर्ट में वे लिखती हैं कि दूसरे दिन प्रात: उसने उसे बरामदे में बैठी देखा। मैककैहन दम्पत्ति वहाँ गये और बातें करने लगे। प्रसंगवश जब उन्होंने नैश परिवार से यह बात कही कि कल ही उन्होंने उन सब को आते हुए देख लिया था, पर यात्रा की थकान के कारण कष्ट देना उचित नहीं समझा, तो श्री और श्रीमती नैश आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने विस्मय प्रदर्शित करते हुए बताया कि वे तो अभी-अभी यहाँ बस से आये हैं। कल तो वे अन्यत्र थे। इस पर बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए श्री मैककैहन ने कहा कि उसने भी उन सबको देखा था और जब दृष्टि पड़ी, तब दोनों के बीच की दूरी मुश्किल से दस फुट रही होगी, पर नैश परिवार उनकी बात को आश्चर्य के साथ इन्कार करते रहे और यही कहते रहे कि वे अभी-अभी यहाँ आये हैं। सम्भव है मैककैहन दम्पत्ति ने भविष्य दर्शन किया हो। किन्तु जो वे कह रहे थे वह सत्य था क्योंकि प्रत्येक दृश्य जो बताया गया, वैसा ही था।

एक ऐसी ही घटना की चर्चा करते हुए माइनर ब्रुस अपने ग्रंथ ''साइलेंट सिटी ऑफ अलास्का'' में लिखते हैं कि सन् १८९७ की गर्मियों में ड्यूक ऑफ एबूजी के नेतृत्व में एक यात्री दल ने अलास्का की तटवर्ती पहाड़ियों सेंट एलियास की यात्रा की। पर्वतारोहण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दल जब पहाड़ के मध्य के समतल मैदान में पहुँचा तो उन्हें एक पुराने शहर का भव्य दृश्य दिखाई पड़ा। यात्रीदल के एक सदस्य सी. डब्ल्यू. थार्नटन का कहना था कि शहर की इमारतें, गलियाँ, वृक्षावलियाँ सब कुछ इतना सुस्पष्ट थीं कि उसे भ्रम या दिवास्वप्न कहना उचित न होगा। वे लिखते हैं कि अभियान दल जब उसका निकट से परीक्षण करने पहुँचा, तो दृश्य अचानक विलुप्त हो गया। इस दिव्य दृश्य के बारे में दल के सदस्यों में परस्पर मतभेद था। कुछ का मानना था कि वह प्राचीन ब्रिस्टल शहर (इंग्लैण्ड) का दृश्य था, जबकि अन्य सदस्य इससे सहमत नहीं थे। उनके अनुसार यह प्राचीन अलास्का की एक झलकी थी। कुछ भी हो, इतना सुनिश्चित है कि उनने जो कुछ देखा, उसका वर्तमान में कोई अस्तित्व नहीं है। सेण्ट एलियास पहले भी निर्जन था और अब भी आबादी रहित जनहीन क्षेत्र है। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार हर वर्ष २१ जून से १० जुलाई के बीच उस अज्ञात शहर का दिव्य दर्शन किया जा सकता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त अवधि में लोग समयावरोध को लाँघकर पीछे चलते हुए उसके गर्भ में उतरते और अतीत की झाँकी करते हैं।

क्या यह सम्भव है ? हाँ, अब विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि ऐसा सर्वथा अशक्य भी नहीं। उसके अनुसार समय के अनेक आयाम हैं। जब किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित समय के उच्चआयाम में व्यक्ति प्रयासपूर्वक अथवा अनायास पहुँच जाता है, तो वह उस वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित भूत और भविष्य की बातें जान लेता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो व्यक्ति अतीत एवं भविष्य के गर्भ में प्रवेश कर जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि समय भूत, वर्तमान एवं भविष्य के एक रैखिक क्रम में स्थित है। विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि समय का यह एक आयाम हुआ। अपनी दूसरी भूमिका में अतीत, वर्तमान और भविष्य साथ-साथ रहते हैं। यदि सचमुच ऐसा है, तो फिर उन आयामों तक पहुँचा कैसे जाय, जहाँ एक समय में तीनों काल खण्ड एक साथ रहते हों ? वैज्ञानिकों का इस सम्बन्ध में सुनिश्चित मत है कि इन अविज्ञात स्तरों तक उन आयामों द्वारा आसानी से पहुँचा जा सकता है, जो हमें ज्ञात है, अर्थात् लम्बाई, ऊँचाई और गइराई। इन तक एक प्रारम्भिक बिन्दु, जिसमें स्थान तो होता है, पर आयाम नहीं। इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

यदि कोई कण आकाश (स्पेस) में गतिशील हो, तो उससे एक आयामीय रेखा का निर्माण होता है। यह आयामीय लम्बाई है। जब इस प्रकार की कोई रेखा आकाश से गुजारी जाय, तो उसके लम्बाई और चौड़ाई के दो आयामीय तल विनर्मित होंगे। यदि ऐसे किसी तल को पुनः आकाश में परिभ्रमण कराया जाय, तो जिस आकृति की संरचना होती है, उसके लम्बाई, चौड़ाई (या ऊँचाई) और गहराई तीन आयाम होंगे।

क्रिया इसके विपरीत भी सम्पन्न की जा सकती है। यदि गति उल्टी कर दी जाय, तो त्रिआयामीय भूमिका से पुनः प्रारम्भिक बिन्दु पर पहुँचा जा सकता है। विशेषज्ञों का कहना है कि किसी ऐसी वस्तु की, जिसके तीन आयाम हों, अनुप्रस्थ काट (क्रॉस सेक्शन) काटी जाय, तो उससे दो आयामों वाला तल प्राप्त होगा। फिर इस तल की अनुप्रस्थ काट से एक आयामयुक्त लाईन प्राप्त होगी। यदि आगे पुनः इसे अनुप्रस्थ रूप से काटा जाय, तो जिस बिन्दु की उपलब्धि होगी, वह सर्वथा आयामरहित कण मात्र होगा।

इस तरह यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि तीन डायमेन्सनों वाला पदार्थ किसी चार आयामों वाली वस्तु की अनुप्रस्थ काट है। जब ऐसी किसी त्रिआयामी वस्तु को एक विशिष्ट तरीके से, विशिष्ट दिशा में भ्रमणशील बनाया जाय, तो वह एक चार आयामों वाला पदार्थ का निर्माण करेगी। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि वह किस प्रकार की वस्तु होगी, जिसकी अनुप्रस्थ काट में तीनों डायमेन्सन्स उपस्थित हों एवं उसे किस विशिष्ट दिशा में चलाया जाय कि उससे चार प्रकार की भूमिकाओं का निर्माण हो ? क्योंकि आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दायें-बायें इस प्रकार की गतियाँ केवल वृहद् आकृतियों का सृजन करती हैं, किसी नये आयाम का नहीं। इसके उत्तर में वैज्ञानिक कहते हैं कि चूँकि समयावधि एक नवीन भूमिका है, अतः हर आयामों वाले पदार्थ का चौथा आयाम इसे माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक त्रिआयामी पदार्थ चार आयामों वाला होता है और ऐसी सभी वस्तुओं की विवेक संगत परिभाषा यही हो सकती है कि उनके दृश्य तीन ही आयाम हैं—लम्बाई, चौड़ाई और गइराई, जबकि समयावधि का चतुर्थ डायमेन्सन अदृश्य स्तर का बना रहता है। तो क्या इस तरह की अवस्था और वस्तु सम्भव है ? विशेषज्ञ इसका उत्तर 'हाँ' में देते हुए कहते हैं कि यह शक्य तो है, पर केवल परिकल्पना स्तर पर ही, क्योंकि वास्तव में बिन्दु , रेखा और तल का यथार्थ अस्तित्व सदा उसी रूप में बना नहीं रहता। किसी लाईन के, जब वह गत्यात्मक अवस्था में आ जाय, तो लम्बाई के साथ-साथ उसमें चौड़ाई (और समयावधि भी) हो सकती है, जैसा कि किसी तल के गतिमान बनने पर लम्बाई, चौड़ाई के साथ-साथ उसमें मोटाई भी आ उपस्थित होती है। सवाल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह शेष रह जाता है कि ऐसे किसी द्रव्य (त्रिआयामी) की गति क्या हो कि वह चतुर्थ आयाम वाले पदार्थ को जन्म दे ?

विज्ञान विशारदों का इस सन्दर्भ में विचार है कि जब किसी वर्गाकार तल को ऊँचाई के आयाम में (ऊपर-नीचे) चलाया जाता है, तो इससे घन की उत्पत्ति होती है। ऐसे ही यदि उक्त (परिकाल्पनिक) घन को समय आयाम में गति दी जाय, तो जिस आकृति का जन्म होगा, वह एक चार डायमेन्सन वाली संरचना होगी।

यहाँ, ''समय के आयाम में गति'' का तात्पर्य भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है-इसका अर्थ एक अभिनव दिशा में गति से है, न कि पार्श्व, ऊर्ध्व और अधोगतियों से। शंकालु हृदय में यहाँ यह संदेह पैदा हो सकता है कि ऐसी दूसरी गतियाँ हैं क्या ? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ऐसी कई ज्ञात गतियाँ हैं और अनेक अविज्ञात गतियों की सम्भावना विज्ञान जगत में प्रकट की जाती है। उदाहरण के लिए एक तो वह वेग हो सकता है, जो हर प्राणी और पदार्थ को पृथ्वी से मिलता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से वेगरहित होने के बावजूद उन्हें वेगवान कहा जा सकता है। यह प्रच्छन्न गति है। इस तरह यह मानने में हर्ज नहीं कि त्रिआयामी दृश्य एक यथार्थ वस्तु की परिकाल्पनिक रूप से गति रहित अनुप्रस्थ काट है, जिसका चौथा आयाम-अवधि, पृथ्वी की उस दैनिक गति से अविच्छिन्न रूप से संलग्न है, जो हर पृथ्वीवासी पदार्थ और प्राणी को उक्त ग्रह से मिलती रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य गतियाँ हैं—पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण गति, सूर्य द्वारा किसी महासूर्य की परिक्रमा एवं अपनी आकाश गंगा द्वारा किसी अन्य अविज्ञात केन्द्र की प्रदक्षिणा गति। चूँकि प्रत्येक दृश्य पदार्थ पर यह गतियाँ साथ-साथ क्रियाशील हैं, अतः यह कहा जा सकता है कि उन सभी को उक्त सारे आयाम उपलब्ध हैं। यह बात और है कि सामान्य स्थिति में उनकी अनुभूति नहीं हो पाती, पर इतने से ही सत्य और तथ्य से इन्कार तो नहीं किया जा सकता। इतना स्वीकार लेने के उपरान्त इस यथार्थ को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि उपरोक्त गतियों और आयामों को समय के परिप्रेक्ष्य में ही जाना, समझा और अनुभव किया जा सकता है। चूँकि समय-संदर्भ के अतिरिक्त इनकी अनुभूति और कोई उपाय नहीं, अस्तु इन सबको सरलता के लिए ''समय का आयाम'' कहा जाता है।

यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि अवधि यदि समय का एक पक्ष है, तो इसके दूसरे अन्य पहलू क्या होंगे ? इस सम्बन्ध में इस विषय के निष्णात् विभिन्न प्रकार की सम्भावनाओं में से जिन संभाव्यताओं के बारे में अपना मत प्रकट करते हैं, वे हैं—दृश्य-अदृश्य एवं परिवर्तन व पुनरावृत्ति की घटनाएँ। वैज्ञानिकों का कहना है कि समय के अगणित पहलुओं में से मात्र ''अवधि'' ही एक ऐसी है, जो मानवी इंद्रियों के लिए ग्राह्य है। जब किसी वस्तु के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसका आविर्भाव हुआ, तो इसका आशय मात्र इतना होता है कि हमें अकस्मात् उसके अस्तित्व का पता चला। ऐसे ही किसी के तिरोभाव से उसकी अस्तित्वहीनता का बोध होता है, किन्तु जन्म-मरण की मध्यावस्था इंद्रियगम्य नहीं है। उसे इंद्रियों द्वारा जाना नहीं जा सकता। यदि अनुभूति की जा सकती है, तो मात्र समयावधि के परिप्रेक्ष्य में ही वह सम्भव है। इसी प्रकार परिवर्तन को भी देखा नहीं जा सकता। जो दिखाई पड़ता है, वह परिवर्तनों का समुच्चय होता है। सूर्योदय-सूर्यास्त, ऋतुओं का गुजरना, पौधे एवं बच्चों का बढ़ना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्हें हम देख नहीं पाते, किन्तु फिर भी यह घटित तो होती ही हैं। इसीलिए इन्हें परिकाल्पनिक माना जाता है और ऐसा स्वीकार किया जाता है कि समय के किसी अन्य आयाम में इनका वास्तविक अस्तित्व है, वैसे ही जैसे किसी परिकाल्पनिक त्रिआयामी वस्तु की यथार्थ सत्ता अवधि के आयाम में होती है, अर्थात् उसी डायमेंन्सन में वह इंद्रिय-ग्राह्य बन पाती है।

इस दृष्टि से समय और उसके आयामों की महत्ता काफी बढ़ जाती है। यदि किसी व्यक्ति की इन आयामों में गति हो, तो उसके लिए वह सब सम्भव हो जाता है, जो सामान्य स्थिति और परिस्थिति में सर्वसाधारण के लिए असम्भव स्तर का बना रहता है। फिर उसके लिए काल की विभाजन-भित्ति समाप्त हो जाती है और सब कुछ वर्तमान हो जाता है; अर्थात् वह किसी भी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित चाहे किसी काल-खण्ड में अप्रतिहत प्रवेश कर उससे सम्बन्धित जानकारी उसी प्रकार उतनी ही आसानी से अर्जित कर सकता है, जैसे कोई व्यक्ति अपने सम्मुख की चीज के बारे में सरलतापूर्वक ज्ञानार्जन कर लेता है, किन्तु यह सब शक्य उसी अवस्था में है, जब चेतना अत्यन्त परिष्कृत स्तर की हो। अपरिष्कृत चेतना तो मनुष्य को पशुतुल्य बनाये रखती है, जबकि अपनी परिशोधित स्थिति में वह मानव को देवताओं की श्रेणी में ला खड़ा करती है। हम परिष्कृत चेतना सम्पन्न बनें, काल-खण्डों के अवरोध को तभी मिटाया जा सकता है और अविज्ञात को ज्ञात तभी बनाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिष्कृत अंतरंग चेतना की उपलब्धियाँ

दृश्यमान जगत की अदृश्य, रहस्यमयी परतों को यदि समझा जा सके और उनसे सम्पर्क स्थापित किया जा सके तो निश्चय ही वे विभूतियाँ अर्जित की जा सकती हैं, जिनके आधार पर अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का जीवन जिया सकता है और इस जीवन को सफल बनाया जा सकता है। भौतिक विज्ञान स्थूल जगत में बिखरी हुई शक्ति को देखकर ही चकित है और यह नहीं समझ पा रहा है कि उसका उपयोग किस प्रकार किया जाये ? सामान्य के भीतर जो असामान्य छिपा पड़ा है, उसमें से बहुत कुछ को अब भली-भाँति समझा जाने लगा है। उदाहरण के लिए, सूर्य को ही लें। वह गर्मी और रोशनी देने वाला, रोज उगने और डूबने वाला अग्नि पिंड मात्र है, परन्तु गम्भीरतापूर्वक उसका विश्लेषण अध्ययन करने पर यही पता चलता है कि वह शक्ति का असीम भाण्डागार है।

सूर्य के मध्य भाग में जितनी गर्मी भरी पड़ी है उसके दो लाखवें हिस्से से ही प्रकृति के विकास और विनाश का सन्तुलन क्रम चलता है। शेष भाण्डागार किस प्रयोजन के लिए सुरक्षित है ? इसका कोई पता नहीं है। यह भी समझा जा सकता है कि वह शक्ति किसी आपत्तिकाल के समय प्रयुक्त करने के लिए सुरक्षित हो या यों भी कहा जा सकता है कि परमात्मा ने वह शक्ति सूर्य के सुरक्षित कोष में इसलिए जमा कर रखी हो कि कोई उपयुक्त पात्र आए और किसी ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता अनुभव करे तो उसे इतनी शक्ति उपलब्ध हो सके कि ध्वंस और निर्माण का कार्य सुभीते के साथ चल सके।

प्रकृति में उपलब्ध शक्ति भण्डार की तुलना में मानव उपार्जित समस्त साधन इतने स्वल्प हैं कि वे समुद्र की तुलना में एक बूँद के बराबर भी नहीं ठहरते। मनुष्य का अपना शरीर भी कुछ कम विचित्र या विलक्षण नहीं है। पूरा शरीर जिन छोटी-छोटी कोशिकाओं से मिलकर बना है, यदि उन्हें खींचकर लम्बाई में बढ़ाया जाए और फैलाया जाए तो वह समूचे ब्रह्माण्ड के विस्तार जितना लम्बा होगा। इतने लम्बे फीते में यदि अक्षरों को अंकित किया जाए तो वह स्मृति कोष इतना विपुल होगा कि उसे भरने के लिए उपलब्ध जानकारियाँ एक अंश भी नहीं भर सकेंगी। ऐसा मनुष्य सर्वज्ञ ही कहा जा सकता है। योगविद्या के जानकार यह जानते हैं कि योग सिद्ध व्यक्ति के लिए संसार में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ होगा और जो हो गया है वह सब कुछ जान लेना सम्भव है। इस तथ्य को स्थूल विवरणों के आधार पर साढ़े पाँच फीट लम्बे और करीब सवा सौ पौंड वजनी शरीर में जो कुछ है उसे आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है।

शरीरशास्त्रियों का मत है कि शरीर में विद्यमान खरबों कोषों में से प्रत्येक में उस शरीर की शारीरिक तथा मानसिक विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं। ये विशेषताएँ आगे चलकर मनुष्य शरीर में परिपक्व होने वाली होती हैं। बच्चे की आकृति-प्रकृति का सारा ढाँचा इन नगण्य से घटकों में छिपा रहता है। शरीर के सम्बन्ध में सबसे निकटवर्ती विचित्रताओं में सबसे अधिक विलक्षण है। मस्तिष्क की टोकरी में रखा हुआ, सूक्ष्म शक्तियों और दिव्य क्षमताओं का भण्डार। लेकिन कठिनाई यह है कि जिस प्रकार अपनी ही आँखों को स्वयं सीधे देख पाना कठिन है और अपने ही भीतर चल रही रक्त की हलचलों को जाना-पाना दुरूह है, उसी प्रकार मस्तिष्क को समझना कठिन है। उससे भी ज्यादा कठिन मानसिक चेतना पर नियन्त्रण कर पाना है। यदि वैसा सम्भव हो सके तो शक्ति का लगभग उतना ही बड़ा स्रोत हाथ लग सकता है जितना कि बाह्य जगत में दिखाई देने वाले सूर्य में निहित है। पुस्तकीय शिक्षा, विचार-विनिमय, दृश्य चिन्तन आदि के सहारे जो ज्ञानवृद्धि होती है, उससे मस्तिष्क का बहुत छोटा अंश ही विकसित हो पाता है। जिसके सहारे उपार्जन, लोक व्यवहार तथा निर्वाह के सामान्य प्रयोजन ही पूरे होते हैं। शक्ति का स्रोत तो अचेतन है और उसे प्रभावित कर सकना ही कठिन है। यदि उसे प्रभावित किया जा सके, अचेतन तक पहुँच पाना सम्भव हो जाए और उसे अभीष्ट दिशा में बदला जा सके तो व्यक्तित्व का स्वरूप ही बदल सकता है। तब सामान्य को असामान्य के रूप में विकसित हुआ देखा जा सकता है।

अचेतन को प्रभावित करने की दिशा में भी कितने ही वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे हैं और उनमें सफलताएँ भी मिल रही हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक और मन:शास्त्री डॉ० डेलगाडो ने इस सम्बन्ध में कई सफल प्रयोग किये हैं और उन प्रयोगों में से कुछ का प्रदर्शन भी किया है। एक प्रदर्शन में उन्होंने एक बन्दर को केला खाने के लिए दिया। जब वह केला खा रहा था, तब डॉ. डेलगाडो ने इलेक्ट्रो ए. सी. फैलोग्राफ के द्वारा बन्दर के मस्तिष्क को सन्देश दिया कि केला खाने की अपेक्षा तो भूखे रहना ज्यादा अच्छा है। यह सन्देश ग्रहण करने पर बन्दर ने केला फेंक दिया। इलेक्ट्रो ए. सी. फैलोग्राफ एक ऐसा यन्त्र है, जिसमें विभिन्न क्रियाओं के समय मस्तिष्क में उठने वाली भाव-तरंगों को अंकित कर लिया जाता है। इस यन्त्र द्वारा मस्तिष्क में अभीष्ट प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की भाव-तरंगों को विद्युत यन्त्र द्वारा तीव्र कर देते हैं तो मस्तिष्क के शेष सब भाग दब जाते हैं और वह एक ही भाव तीव्र हो उठने से मस्तिष्क केवल वही काम करने लगता है।

इस तथ्य को डॉ. डेलगाडो ने एक खतरनाक प्रयोग करके सिद्ध कर दिखाया। इस प्रयोग का उन्होंने सार्वजनिक प्रदर्शन भी किया। प्रदर्शन को देखने के लिए हजारों लोग एकत्र हुए। सिर पर इलेक्ट्रोड जड़े हुए दो खूँखार साँड़ लाये गये। यह एक प्रकार का एरियल था जो रेडियो ट्रान्समीटर द्वारा छोड़ी गई तरंगों को पकड़ लेता था। जब दोनों साँड़ मैदान में आये तब उनका खूँखारपन देखते ही बनता था, लगता था दोनों डेलगाडो का कचूमर ही निकाल देंगे। लेकिन दोनों साँड जैसे ही डेलगाडो के पास पहुँचे, उन्होंने अपने यन्त्र द्वारा शान्ति की भाव तरंगें प्रेषित कीं। इन तरंगों के प्रेषण के साथ ही साँड आक्रामक मुद्रा को फुंसकारते हुए ऐसे शान्त भाव से खड़े हो गए, जैसे दो बकरियाँ खड़ी हों। उल्लेखनीय है कि जानवर मनुष्यों की भाषा भले ही न समझें किन्तु भावों की भाषा तो समझते ही हैं। यदि प्रयत्न किया जाए तो मनुष्य अपनी भावशक्ति को इस सीमा तक बढ़ा सकता है कि उसके द्वारा सिंह और गाय को एक साथ रखने की उक्ति चरितार्थ की जा सकती है।

यह मस्तिष्क की ही शक्ति है। टैक्सास विश्वविद्यालय के रॉबर्ट थाम्पसन और जोंस मैक कौनेल वैज्ञानिकों ने प्लेनोरिया नामक जीव पर परीक्षण करके यह सिद्ध किया है कि विद्युत उपकरणों की सहायता से मस्तिष्कीय क्षमता को घटाया और बढ़ाया जा सकता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ. एलन जेकवसन ने प्रशिक्षित चूहों के मस्तिष्क में से आर० एन० ए० नामक रसायन निकालकर अनाड़ी चूहों के मस्तिष्क में पहुँचाया तो वे भी प्रशिक्षित चूहों की तरह व्यवहार करने लगे। मस्तिष्क को प्रभावित करने और उसे इच्छित दिशा में मोड़ने के लिए किये जा रहे प्रयासों की प्रगति जिस चरण में पहुँच गई है, उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ. ओटोशिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गई है, पर आशा की जानी चाहिए कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिए ही होगा। लेकिन साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा, इस शक्ति का प्रयोग कहीं निजी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं साम्राज्यवादी विस्तार के लिए भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे विघातक अस्त्र सिद्ध होगा। उल्लेखनीय है कि डॉ. ओटो स्वयं भी इस दिशा में प्रयोगरत हैं।

विद्युत शक्ति या अन्य उपकरणों का सहारा लेकर मस्तिष्कीय क्षमता को विकसित करने या उसे प्रभावित करने की अपेक्षा योग साधन का मार्ग निरापद है। योग का उद्देश्य बिना वैज्ञानिक उपकरणों के अन्तःचेतना को अभीष्ट स्तर पर परिवर्तित और विकसित करना है। यह इसलिए उपयुक्त है कि हर व्यक्ति अपनी चेतना का परिष्कार होने पर उसी दिशा में अपनी क्षमता को अपने और दूसरों के कल्याण में लगाया जा सके। इसके विपरीत वैज्ञानिक साधनों द्वारा दूसरों के मस्तिष्कों को प्रभावित करने का आधार अपना लिया गया, तो जनसाधारण को किसी महत्त्वाकांक्षी सत्ताधारी की इच्छा के अनुरूप ढलना पड़ेगा और आत्मोत्कर्ष से वंचित रहकर किन्हीं औरों के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह जाना पड़ेगा।

विलक्षणताओं की दृष्टि से देखा जाए तो छोटे-छोटे जीव-जन्तु भी असाधारण सूक्ष्म चेतना से सम्पन्न पाये जाते हैं। वैरियन कीड़े की घ्राण शक्ति सबसे तीव्र मानी जाती है। वह मीलों दूर के मुर्दा माँस का पता लगा लेता है और उड़ता-फुदकता हुआ वहाँ तक पहुँच जाता है। समुद्र में हल्के ज्वार-भाटे पचास मिनट के अन्तर से आते हैं। केंकड़े भी इसी क्रम से अपना रंग बदलते रहते हैं। कीड़ों के कान नहीं होते, यह काम वे अगली टाँगों के जोड़ों में रहने वाली ध्वनि ग्रहण शक्ति द्वारा पूरा कर सकते हैं। तितलियों के पंखों में श्रवण शक्ति पाई जाती है। झींगुर आदि जो आवाज करते हैं वह उनके मुँह से नहीं बल्कि टाँगों की रगड़ से उत्पन्न होती है। कीड़ों की अपनी विशेषता है। उनके फेंफड़े नहीं होते पर वे साँस लेते हैं। उनके कान नहीं होते पर वे सुन सकते हैं। नाक न होने पर भी वे सूँघने में समर्थ होते हैं। रगफर्ड जाति का कीड़ा सीधा माँ के द्वारा ही जन्मता है। बाप का कोई योगदान उसके जन्म लेने में नहीं होता। क्वारी एफिड अपने बलबूते पर बच्चे जनने लगती है। नेस, सलासोमिना, आइस्टर, स्नेल (घोंघा) फ्रेस वाटर मसल आदि कृमियों में भी यही विशेषता होती है।

इस प्रकार प्रकृति ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को कोई न कोई विलक्षणता बाँट रखी है। मनुष्य में इन सभी विलक्षणताओं का समुच्चय बीज रूप से विद्यमान है, जिन्हें आत्मचेतना के विकास द्वारा जागृत किया जा सकता है। इस विकास के लिए सर्वप्रथम आन्तरिक उत्कृष्टता का विकास आवश्यक है। इस आवश्यकता को पूरा करने के बाद भले ही ये विलक्षणताएँ विकसित न हों, परन्तु हर घड़ी आनन्द की स्थिति बनी रहती है। इसके अतिरिक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अचेतन की क्षमता इतनी प्रखर हो उठती है कि उसके सहारे देव जीवन जी पाना सम्भव हो पाता है और दूसरों को सुखी-समुन्नत बनाकर असीम आत्म-सन्तोष देने वाला श्रेय प्राप्त किया जा सकता है।

अविज्ञात रहस्यों से भरी मानवी चेतना

मानवी काया का बहिरंग ढाँचा अस्थि चर्म से विनिर्मित दीखता है, जिसके साथ जुड़ी हुई ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करती रहती हैं और जिस-तिस प्रकार जीवन की गाड़ी आगे धकेलती रहती हैं। सामान्यजनों की जानकारी में यही है स्थूल काया का स्वरूप और उसका उपयोग।

किन्तु सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि स्थूल की तुलना में सूक्ष्म की सत्ता, प्राण चेतना की क्षमता असीम, अपरिमित है। जितना कुछ मनुष्य को अपने शरीर एवं ज्ञानेन्द्रियों के बारे में ज्ञात है, उसकी तुलना में अविज्ञात बहुत अधिक है। यह समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होकर अपनी सामर्थ्य-क्षमता का परिचय देता रहता है।

मूर्धन्य परामनोविज्ञानवेत्ता डॉ. गेल्डीन का कहना है कि ज्ञानेन्द्रियों के सुनने, बोलने, देखने, सूँघने तथा स्पर्शानुभूति की क्षमता से हम सभी परिचित हैं, पर इससे भी महत्त्वपूर्ण एवं अत्यन्त सामर्थ्यवान एक और शक्ति है, जिसके बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है। इसे छठी इन्द्रिय या पराचेतना शक्ति कहते हैं। प्रयत्नपूर्वक इसे जागृत एवं अभिवर्धित किया जा सकता है। किन्हीं-किन्हीं में यह संयोगवश भी प्रकट हो जाती है।

नवम्बर १९६७ में जर्मनी के बवेरिया क्षेत्र के राशेनहेम स्थिति एक पदाधिकारी के मकान की ट्यूब लाइटों का प्रकाश एकाएक मंद पड़ गया। बिजली के सभी स्विच अपने आप ऑफ हो गये। कार्यालय के चारों टेलीफोन एक साथ घनघना उठे और रिकार्ड में हजारों लोगों के बातचीत करने का लेखा बिल पर अंकित होने लगा। कारणों की छानबीन बहुत की गई; पर सुराग कुछ भी हाथ नहीं लगा। अंततः प्रो० हंस वेन्डर जैसे मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक की सहायता ली गई। उन्होंने पता लगाया कि यह सब परिवर्तन १९ वर्षीय नौकर एनीमैरी की उपस्थिति में घटित होता है। उसकी प्राण वैद्युतीय ऊर्जा असाधारण रूप से बढ़ी हुई है जो काया से निस्सृत होकर आसपास के वातावरण को प्रभावित करती है।

एनीमैरी में यह क्षमता अनायास ही फूट पड़ी थी जिसने उसे असाधारण सामर्थ्य वाला व्यक्ति बना दिया। वैज्ञानिकों ने परखने पर पाया कि उसकी उपस्थिति के कारण दीवाल पर टँगी तस्वीरें उल्टी हो जाती हैं। बल्ब फ्यूज होने लगते हैं। मेजों की दराजें स्वयमेव खुल जाती हैं। फाइलों से खचाखच भरी लौह अलमारियाँ अपने स्थान से एक फुट दूर खिसक जाती हैं। घड़ी की सुइयाँ अपनी गति को तीव्र करके २० मिनट में ही एक घण्टा पूरा कर लेती हैं। विद्युत सप्लाई काट देने पर भी वैद्युतीय उपकरण ५० एम्पियर की करेन्ट को रिकार्ड करते देखा गया। टेलीविजन से जुड़े एक वीडियो रिकार्डर ने तत्कालीन वातावरण का जो चित्रांकन किया, उससे स्पष्ट भुतहा दृश्य दिखाई देने लगा। राशेनहेम के फोटो कैमरे के प्रयुक्त होने वाली बैटरी बिना पावर हाउस कनेक्शन के चला करती थी। इतना ही नहीं मैरी के चलने पर बिजली के बल्ब जलने से लगते थे।

चेकोस्लोवाकिया के परामनोविज्ञान संस्थान के प्रध्यापक मेलिन रिज्ल एवं लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के प्रध्यापक वासिलियेव ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि मनुष्य में इस तरह की अनेकानेक क्षमताओं का अस्तित्व होता है। किन्हीं-किन्हीं में यह अचानक विकसित हो जाती हैं और मनुष्य आँखों या कानों का काम शरीर के अन्य अंगों से लेने जैसे चमत्कृत करने वाले अनेकों करतब करने लगता है। विश्व में ऐसे अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं।

सोवियत संघ में कुलेशोवा नामक एक महिला आँखें रहते हुए भी देखने का काम उँगलियों के पोरुओं से कर लेती थी। परखने पर वैज्ञानिकों ने पाया कि आँख पर पट्टी बाँधने के पश्चात् भी वह न केवल अक्षरों को सही रूप में पढ़ लेती वरन् उनके रंग, डाक टिकटों के अक्षर, मूल्य आदि ज्यों का त्यों बता देती थी। बाद में जाँच करने पर यह और ज्ञात हुआ कि इस प्रकार की विलक्षण शक्ति उसके बायें पैर की उँगलियों, जीभ और टखनों में बहुलता से विद्यमान थी।

इसी प्रकार सेन्ट्रल चीन के वुहन क्षेत्र में रहने वाली १३ वर्षीय लू विंग नामक एक किशोरी किसी भी लिखावट को कान से पढ़ सकती है। वैज्ञानिकों ने 'इन्ना', 'एलिक्ट्रिसिटी' जैसे कठिन शब्द कागज पर लिखकर उसे आठ बार मोड़ा और उनका पुलिन्दा बनाकर लू विंग के कान के पास छोड़ दिया। उसने इन शब्दों को कर्ण-नेत्रों से पढ़कर स्पष्ट बता दिया। किसी भी कठिन शब्द को समझने में उसे सात से दस मिनट का समय लग जाता है।

चीनी पत्रकारों के एक दल ने अपने देश के कई प्रान्तों में ऐसे अद्भुत क्षमता सम्पन्न बीस बच्चों का अध्ययन किया है जो कान, नाक, हाथ, पैर, पेट अथवा आँख द्वारा पढ़ लेते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिव्य दृष्टि के अस्तित्व के सम्बन्ध में अनुसंधानरत मूर्धन्य वैज्ञानिक गेविन मैक्सवेल ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि यह क्षमता सभी मनुष्यों में होती है। लगातार प्रयत्न और अभ्यास करने पर उसे जागृत एवं विकसित किया जा सकता है। अपवाद स्वरूप ऐसे व्यक्ति भी देखे जाते हैं, जिनमें दूरदर्शन की सामर्थ्य सहज ही विकसित होती है। उदाहरण के लिए वेलरुयोयांग नामक १२ वर्षीय चीनी बालक को लिया जा सकता है। इसमें विलक्षण दूरदर्शन क्षमता है। १९८१ से वह वैज्ञानिकों के लिए चुनौती बना हुआ है। उसकी आँखें इतनी तीक्ष्ण हैं कि पत्थर की मोटी दीवार के दूसरी ओर देखने में भी सक्षम हैं। वैज्ञानिकों के एक दल ने जब इस तथ्य का परीक्षण करना चाहा तो उसने सात मंजिले एक मकान की छत पर चढ़कर सबसे नीचे वाली मंजिल में रखे हुए सभी वस्तुओं का यथावत् वर्णन कर दिया। वेल कानों से भी भली-भाँति देख लेता है। जब उसके कान में एक कागज पर कुछ लिखकर बाँध दिया तो उसने अपनी कर्ण दृष्टि से पढ़कर लिखे गए अंश को अक्षरशः सुना दिया। मनुष्य तो क्या अन्य प्राणियों के शरीर से निकलने वाले प्रभामण्डल को भी वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देख लेता है और उनके रंगों को बता देता है। भूगर्भ में बहने वाले जल स्रोतों का पता लगा लेना और उनके नक्शे बनाना उसके लिए सामान्य-सी बात है। किसी भी व्यक्ति के अन्तर्मन के विचारों-भावनाओं को वह आसानी से पढ़ लेता है।

लेनिनग्रांड के सुविख्यात परामनोविज्ञानी डॉक्टर वासिलियोव का कहना है कि यदि हम अपनी मूलशक्ति प्राण चेतना की खोज कर सकें तो भौतिक शक्तियों की तुलना में अनन्तगुना सामर्थ्यवान बन सकते हैं। पिछले दिनों विश्व की विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जा रहे अनुसंधानों से जो तथ्य सामने आये हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य यदि अपनी चेतना को ब्रह्मांडीय चेतना की सूक्ष्म धारा प्रवाह के साथ जोड़ सके तो वह ऐसे उच्चस्तरीय लाभ प्राप्त कर सकता है जो अभी तक काल्पनिक और अविश्वसनीय समझे जाते रहे हैं।

मन:शास्त्री विक्टर ई. क्रोमर मानवी प्राण ऊर्जा की चर्चा करते हुए कहते हैं कि यह ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाली ऐसी चाबी है, जिसका सही उपयोग करने पर भौतिक जगत में भारी उथल-पुथल उत्पन्न की जा सकती है और अपनी निजी क्षमता में विशिष्ट स्तर की भारी मात्रा में अभिवृद्धि की जा सकती है।

मनुष्य अपनी प्राण चेतना को परिष्कृत एवं अभिवर्धित करके उसे स्थूल काया से अलग कर सकता है। परामनोविज्ञानी कर्नल टाडन सेंड ने प्राणायाम के अभ्यास से प्राणमय शरीर के नियंत्रण में सफलता प्राप्त की थी। एक बार उन्होंने सैकड़ों वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों से खचाखच भरे हाल में इस प्रकार का प्रदर्शन किया। वह स्वयं एक स्थान पर बैठ गये, एवं दीवाल के सहारे टिके ब्लैक बोर्ड के साथ एक चाक का टुकड़ा बाँध दिया गया। सेंड अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही अपनी प्राण चेतना को स्थूल काया से बाहर निकालकर अदृश्य सूक्ष्म शरीर से बोले गये अक्षरों को बोर्ड पर लिखने लगे। बीच-बीच में वे अपने स्थूल शरीर में भी आ जाते और वस्तुस्थिति भी लोगों को समझाते जाते।

यदि हम उपरोक्त घटनाक्रमों को पूर्वार्त्त मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में देखें तो पाते हैं कि योगविज्ञान में प्राण साधना द्वारा मिलने वाली अणिमा-शरीर को भाररहित कर लेना। गरिमा-भारी भरकम वजन बढ़ा लेना। लघिमा-छोटा हो जाना। प्राप्त्य-कठिन वस्तुओं की सरलता से प्राप्ति। प्राकाम्य-इच्छापूर्ति। ईशत्व- सर्वज्ञता। वशित्व-सभी को वशवर्ती कर लेना इन आठ सिद्धियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने जो अतीन्द्रिय क्षमताएँ खोजी हैं, वे उन्हें चार वर्गों में विभक्त करते हैं— (१) क्लेअरवायेन्स-परोक्ष दर्शन, अर्थात् वस्तुओं या घटनाओं की वह जानकारी जो ज्ञान प्राप्ति के सामान्य आधारों के बिना ही उपलब्ध हो जाय। (२) प्रीकॉग्नीशन-भविष्य ज्ञान-बिना किसी मान्य आधार के भविष्य की घटनाओं का ज्ञान। (३) रेट्रोकॉग्नीशन-भूतकालिक ज्ञान-बिना किन्हीं मान्य साधनों के अविज्ञात भूतकालीन घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी। (४) टेलीपैथी-विचार-सम्प्रेषण बिना किसी आधार या यन्त्र के अपने विचार दूसरों के पास पहुँचाना तथा दूसरों के विचार ग्रहण करना। इस वर्गीकरण को और भी अधिक विस्तृत किया जाय तो उन्हें ११ प्रकार की गतिविधियों में बाँटा जा सकता है। चमत्कारी अनुभवों का यह वर्गीकरण इस प्रकार है—(१) बिना किन्हीं ज्ञातव्य साधनों के सुदूर स्थानों में घटित घटनाओं की जानकारी मिलना। (२) एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की मन:स्थिति तथा परिस्थिति का ज्ञान होना। (३) भविष्य में घटित घटनाओं का बहुत समय पहले पूर्वाभास। (४) मृतात्माओं के क्रिया-कलाप जिससे उनके अस्तित्व का प्रत्यक्ष परिचय मिलता हो। (५) पुनर्जन्म की वह घटनाएँ जो किन्हीं बच्चों, किशोरों या व्यक्तियों द्वारा बिना सिखाये-समझाये बताई जाती हों और उनका उपलब्ध तथ्यों से मेल खाता हो। (६) किसी व्यक्ति द्वारा अनायास ही अपना ज्ञान तथा अनुभव इस प्रकार व्यक्त करना जो उसके अपने व्यक्तित्व और क्षमता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भिन्न व उच्च श्रेणी का हो। (७) शरीरों में अनायास ही उभरने वाली ऐसी शक्ति जो सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करती हो। (८) ऐसा प्रचण्ड मनोबल जो असाधारण दुस्साहस के कार्य विनोद की साधारण स्थिति में कर गुजरे और अपनी तत्परता से अद्भुत पराक्रम कर दिखाये। (९) अदृश्य आत्माओं के सम्पर्क से असाधारण सहयोग सहायता प्राप्त करना। (१०) शाप और वरदान जिससे दीर्घकाल तक व्यक्तियों व वस्तुओं पर प्रभाव बना रहता है। (११) परकाया प्रवेश या एक आत्मा में अन्य आत्मा का सामयिक प्रवेश सिद्ध होता है।

इन समस्त सिद्धियों का आधार प्राण साधना है, जिसके आधार पर प्राणमय कोश या प्राणमय शरीर का विकास, नियन्त्रण और उपयोग किया जाता है। यह तथ्य अब तक भले ही श्रद्धाभूत रहे हों किन्तु अब विज्ञान उन तथ्यों को स्वीकारने लगा है। प्राण चेतना एक ऐसी ऊर्जा है, जिसका पूरी तरह उद्घाटन किया जा सके तो मनुष्य उन दिव्य शक्तियों का स्वामी बन सकता है, जो सामान्य व्यक्ति के लिए महान चमत्कार जैसी लगती हैं। चूँकि सामान्य व्यक्ति भी इन क्षमताओं से युक्त पाये गये हैं। यह सम्भावना कपोल कल्पित नहीं लगती कि पुरुषार्थ द्वारा इन्हें अर्जित किया जा सके। विज्ञान के विकास की चरमावस्था में भी ऐसे घटनाक्रमों का कोई विज्ञान सम्मत प्रतिपादन न प्रस्तुत किया जाना क्या उसे बौना नहीं ठहराता ?

चेतना के महासागर में दबी विलक्षण संभावनाएँ

ऐसा क्यों होता है कि किसी व्यक्ति को देखकर अपनापन महसूस होता है व लगता है, उससे ढेरों बात की जाय ? उसके व्यक्तित्व का आकर्षण क्यों किसी को सम्मोहित कर देता है ? उल्टे कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें देखकर न जाने क्यों मन करता है कि इस मनहूस सूरत से जितना दूर रहा जाय, उतना ही अच्छा। प्रश्न शक्ल की बदसूरती का नहीं, वरन् विचारों की, भावनाओं की, मनहूसियत का है, जो सामने वाले को, बातचीत के माध्यम से सम्पर्क में आने वाले को सतत् विकर्षित करती रहती है।

इसका कारण बताते हुए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अन्यान्य शक्तियों की तरह मानवी चेतना के साथ जैव चुम्बकत्व भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वही किसी व्यक्ति के अन्दर ऐसी विशेषताएँ भर देता है कि परिकर पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। कभी-कभी, यदा-कदा यह चुम्बकत्व परोक्ष रूप में ही न रहकर सक्रिय शक्ति के रूप में भी उभरकर अपनी उपस्थिति का परिचय देने लगता है। वस्तुतः आत्म-चेतना सम्पूर्ण शरीर में संव्याप्त है। यह आवश्यक नहीं कि वह अमुक इन्द्रियों के सहारे ही अभीष्ट ज्ञान प्राप्त करे। यह भी हो सकता है कि वह एक इन्द्रिय की अपेक्षा दूसरे अवयव को माध्यम बना ले और प्राण ऊर्जा के विभिन्न उपादानों के सहारे आवश्यक ज्ञान प्राप्त करे।

एक उल्लेखनीय घटना पश्चिम जर्मनी के लुई हैंबर्गर की है। यह लड़का जिन धातु पदार्थों को छूता, वे उससे चिपक जाते और किसी दूसरे द्वारा बलपूर्वक छुड़ाये जाने पर ही छूटते। उसके अन्दर एक शक्तिशाली चुम्बक सक्रिय स्थिति में विद्यमान पाया गया। मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय ने इस विचित्रता पर बहुत खोजबीन की पर वैज्ञानिक किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये।

ओण्टोरिया (कनाडा) के वॉन्डन क्षेत्र में जन्मी एक लड़की मात्र १७ वर्ष तक जीवित रही। पर जब तक वह जीवित थी, चर्चा का विषय बनी रही। वह जहाँ भी जाती, धातु का सामान उसके शरीर से आकर्षित हो, चिपक जाता था। उसके भोजन हेतु लकड़ी या काँच के पात्र एवं निवास भी लकड़ी का बनाया गया था। उसकी अल्पायु में मृत्यु के बारे में वैज्ञानिक मनीषी जेफ्री मिशलेख का मत है कि शक्ति धारा जब तक जीव कोशों के बन्धन में रहती है, तब तक तो जीवन-चक्र सुव्यवस्थित चलता रहता है। परन्तु इसके निस्सृत होने का मार्ग बनने व किसी और शक्ति के रूप में प्रकट हो क्षीण होते चले जाने पर आयु उसी अनुपात में कम हो जाती है।

शारीरिक, मानसिक चुम्बकत्व पर वैज्ञानिकों ने गहन अनुसन्धान किया व इसे भी एक विभूति माना है। डॉ. फ्रैंज एण्टन मैस्मर उस चिकित्सक का नाम है, जिसने मेस्मेरज्म-सम्मोहन विद्या की खोज की थी। अपने अनुसन्धान कार्य में उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि अविज्ञात नक्षत्रों से एक चुम्बकीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में इस धरती पर आता है और सारे धरतीवासियों को प्रभावित करता है। इस पदार्थ का जब भी शरीर में सन्तुलन गड़बड़ाता है तो विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इस संतुलन को ठीक करने के लिए डॉ. फ्रैंज एण्टन मेस्मर चुम्बकों का प्रयोग करते थे। बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों के शरीर से सहज रूप में चुम्बकीय धारा प्रवाहित होती रहती है, जिसे उन्होंने ''एनिमल मैग्नेटीज्म'' नाम दिया। ये व्यक्ति हीलर या डिवाइन थेरेपीस्ट कहलाये जाने लगे। स्वयं मेस्मर ने सन् १७७८ में पेरिस में इस चिकित्सा पद्धति द्वारा अगणित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों को ठीक कर अच्छा खासा नाम कमा लिया था। ऐसा कहा जाता है कि प्रसिद्ध संगीतज्ञ मोजार्ट किंग लुई १६ व महारानी, मेरी एण्टोइने एवं ऑस्ट्रिया की महारानी मारिया थेरेसा उन रोगियों में से थे, जिन्हें मेस्मर की चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति से लाभ मिला। मेस्मर की हिप्नोटिज्म एवं परामनोवैज्ञानिक शक्ति द्वारा लायी गयी कृत्रिम निद्रा की स्थिति (सोम्नेम्बुलिज्म) बाद में अच्छा खासा विवाद का विषय बनी, परन्तु उसका मूलभूत सिद्धान्त मेस्मरवादियों ने एनिमल मेग्नेटिज्म को ही माना व आज भी सायकिक हीलिंग के मूल में परामनोविज्ञानी चुम्बकीय धाराओं का चिकित्सक से रोगी में प्रवेश ही प्रधान मानते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने मैग्नेरोमीटर्स का प्रयोग कर हृदय एवं मस्तिष्क में बहने वाली चुम्बकीय धाराओं का मापन करने में सफलता पायी है। सुपरण्डक्टींग क्वान्टम इन्टरफरेन्स डिवाइस (स्क्वीड) ऐसे ही एक संयत्र का नाम है, जो बहुत ही क्षीण धारा पर काम कर डी० सी० एवं आल्टरनेटिंग मैग्नेटीक फील्ड, जिसकी इकाई 'टेस्ला' है, का पता लगा लेता है। स्क्वीड इतना संवेदनशील यन्त्र है कि एक नाल चुम्बक से ४०० मीटर दूर खड़े व्यक्ति में उसके कारण शरीर की चुम्बकीय धाराओं में हो रहे परिवर्तनों को मापने की यह क्षमता रखता है। हो सकता है कि ऐसे अपवाद जो लुई हैंबर्गर व अन्य व्यक्तियों के रूप में जन्म लेते हैं, अब शोध प्रतिपादनों से शरीर के सूक्ष्म संस्थान की ओर भी विशद् जानकारी अगले दिनों दे सकें। इसी संयत्र द्वारा मैग्नेटोकार्डियोग्राम (एम० सी० जी०) एवं मैग्नेटोएनसेफेलोग्राम (एम. ई. जी.) की रिकार्डिंग भी अब सम्भव होने लगी है एवं ऐसी सूक्ष्म व्याधियों का पता लगाने में सफलता पाई है, जो सामान्य उपकरणों-इलेक्ट्रोकार्डियो एवं एनसेफेलेग्राफी- इकोग्राफी इत्यादि के माध्यम से पकड़ में अक्सर नहीं आती।

अथर्ववेद में रेत द्वारा चुम्बकीय शक्ति से ओत-प्रोत लौह कणों के माध्यम से शरीर से रक्त-स्राव रोकने एवं चुम्बक द्वारा स्त्री रोगों के उपचार का प्रसंग स्थान-स्थान पर आया है। ज्ञातव्य है कि चुम्बक में भी रेत, बेरियम एवं आयरन ऑक्साइड होता है। मिस्र की सुन्दरी क्लियोपेट्रा के बारे में प्रसिद्ध था कि वह अपनी सुन्दरता बनाये रखने के लिए सदैव माथे पर एक छोटा-सा चुम्बक लगाये रखती थी।

मेस्मर से भी पहले स्विस चिकित्सक पैरासेल्सस ने जैव चुम्बकत्व की विशेषता एवं बाह्य चुम्बक द्वारा मानवी काया के विभिन्न दोषों एवं मनोविकारों की चिकित्सा की संभावनाओं का वर्णन किया है। मेस्मर ने इसी सिद्धान्त को आगे चलकर प्रचारित कर मेस्मेरिज्म-हिप्नोटिज्म को प्रचलित किया।

टाइम पत्रिका ने मानवी चुम्बकत्व पर एक विचित्र केस वैज्ञानिकों के समक्ष कुछ वर्षों पूर्व रखा था। ओण्टोरियो (कनाडा) की कैरोलिन क्लेयर नामक एक महिला को स्नायु-संस्थान सम्बन्धी एक रोग ने आ घेरा। धीरे-धीरे आंशिक पक्षाघात की स्थिति से ठीक होते-होते वह जब स्वस्थ स्थिति में पहुँचने को ही थी कि उसमें एक नया परिवर्तन देखा गया कि वह धातु से बनी किसी भी चीज को छूती तो वह उससे चिपक जाती। बड़ी कठिनाई से उसे छुड़ाया जाता। जैव चुम्बकत्व का यह प्रवाह स्नायु-संस्थान की किस गड़बड़ी के ठीक होने अथवा नयी गड़बड़ी या "लीकेज" होने के कारण होने लगा, इसका वैज्ञानिक कोई समाधान खोज नहीं पाये।

शरीर जितना भी कुछ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है, एनाटॉमी की दृष्टि से जितनी भी जानकारियाँ हमें विदित हैं, आवश्यक नहीं कि वह यहीं तक सीमित हों। बहुत कुछ अविज्ञात है, जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होकर अपनी सामर्थ्य-क्षमता का परिचय देता रहता है। कभी प्राणाग्नि के रूप में आत्म-चेतना शोलों की तरह शरीर से फूटते देखी जाती है, तो कभी चुम्बकत्व की आकर्षण शक्ति के रूप में। किसी-किसी में यह विलक्षण अतीन्द्रिय सामर्थ्य के रूप में प्रकट होने लगती है। इससे एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का रहस्योदघाटन तो होता ही है कि असीम सम्भावनाओं की पिटारी चेतना के महासागर में दबी पड़ी है। साधना द्वारा उसे निकालने-प्रसुप्त से जगाकर, प्रकट करने का प्रयास तो किया जाय। तब यह सब अविज्ञात संयोग या चमत्कार नहीं लगेगा।

मनुष्य की बलिष्ठ आत्म चेतना

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ० नेलसन वाल्ट का कथन है कि मनुष्य के अन्दर एक बलवती आत्म-चेतना रहती है, जिसे जिजीविषा एवं प्राणधात्री कह सकते हैं। यह न केवल रोग निरोध अथवा अन्य आत्म-रक्षा जैसे अस्तित्व संरक्षण के अविज्ञात साधन जुटाती है वरन् चेतना जगत में चल रही हलचलों का पता लगा लेती है, जो अपने आगे विपत्ति के रूप में आने वाली है। पूर्वाभास बहुधा अपने तथा अपने सम्बन्धियों के ऊपर आने वाले संकटों के ही होते हैं। सुख-सुविधा की परिस्थितियों का ज्ञान कभी-कभी या किसी-किसी को ही हो पाता है।

मनःशास्त्री हेनबुक ने अपनी शोधों में इस बात का उल्लेख किया है कि अतीन्द्रिय क्षमता पुरुषों की अपेक्षा नारियों में कहीं अधिक होती है। दिव्य अनुभूतियों की अधिकता उन्हें ही क्यों मिलती इसका कारण वे नारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वभाव में कोमलता, सहृदयता जैसे सौम्य गुणों के आधिक्य को ही महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि में अध्यात्म क्षेत्र नारी को अपनी प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के कारण सहज ही अधिक सफलता मिलती रहती है।

पाया गया है कि अब लोगों में एक अपूर्व जिज्ञासा विकसित होती जा रही है कि आखिर मनुष्य शरीर और उसकी बुद्धि में ऐसे कौन-से तत्त्व विद्यमान हैं जो बहुत अधिक समय बाद में होने वाली घटनाओं का भी बोध करा देते हैं। अब तक मनुष्य शरीर और उसकी रचना को मात्र भौतिक दृष्टि से देखा जाता था, पर समय की इन सिमटती हुई दूरियों ने मनुष्य को अब इतना ध्यानस्थ कर दिया कि उसे मनुष्य जीवन के प्रति सुनिश्चित दृष्टिकोण प्राप्त किये बिना चैन न मिलेगा।

इन भविष्यवाणियों से जहाँ उच्चसत्ता की उपस्थिति, मानवता के उज्ज्वल भविष्य, इस देश की अकल्पित प्रगति और इससे आध्यात्मिक पुनरुत्थान की आशा बँधती है, वहीं हमारे चिन्तन में स्वस्थ अध्यात्मवादी दृष्टिकोण का भी समावेश होता है, जो व्यक्ति, समाज और संसार सभी के लिए उज्ज्वल सम्भावनाओं का अध्याय है। संसार की शान्ति और प्रगति इसी दृष्टिकोण पर आधारित है यह सुनिश्चित मानना चाहिए।

महायुद्ध छिड़ने से पहले की बात है। लन्दन के स्पेन दूतावास में एक भोज दिया जिसमें ब्रिटेन के तत्कालीन विदेश मन्त्री लार्ड हैली फैक्स सम्मिलित थे। आमन्त्रित अतिथियों में भविष्य वक्ता डी. ह्वोल भी थे संयोग से विदेश मन्त्री महोदय भी बगल में ही बैठे थे। उन्होंने चुपके से भावी महायुद्ध और उसके सम्बन्ध में हिटलर को पूर्व योजनाओं की जानकारी बताने का अनुरोध किया। उसके उत्तर में ह्वोल ने कई ऐसी बातें बताई जो अप्रत्याशित थीं। हैली फैक्स ने वायदा किया कि यदि उनकी भविष्यवाणी सच निकली तो उन्हें सम्मानित सरकारी पद दिया जायेगा। पद की उन्हें आकांक्षा नहीं थी। उनकी बताई सभी बातें सच निकलीं।

हिटलर के सलाहकारों में पाँच दिव्यदर्शी भी थे उनका नेतृत्व विलियम क्राफ्ट करते थे। उनकी सलाह को हिटलर बहुत महत्त्व देता था। इस मण्डली के एक सदस्य किसी समय ह्वोल भी रह चुके थे। वे जानते थे हिटलर के ज्योतिषी उसे क्या सलाह दे रहे होंगे। उस जानकारी को इंग्लैण्ड के अधिकारियों को बता देता। इन जानकारियों से ब्रिटेन बहुत लाभान्वित हुआ और उसने अपनी रणनीति में काफी हेर-फेर किये। फौज के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व कुछ फौजी अफसरों को सौंपे जाने थे। उनमें से किसी का भविष्य उज्ज्वल है, इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक आदमी से जनरल मान्टगुमरी की ओर इशारा किया। उन्हें ही वह पद दिया गया और अन्ततः उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करके दिखाई। जापान के जहाजी बेड़े को बुरी तरह नष्ट करने की जो सफल योजना बनाई गयी थी उसमें से भी ह्वोल से गम्भीर परामर्श किया गया था। महायुद्ध समाप्त होने तक ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भविष्यवाणियों का लाभ दिया। पीछे उन्होंने वह कार्य पूरी तरह छोड़ दिया और अपने पुराने धार्मिक लेखन कार्य में लग गये।

विज्ञानी डॉ० मोरे बर्सटीन ने लेडी वंडर के बारे में एक दिन अपने एक मित्र से सुना, इसके पूर्व विमान-यात्रा में उनका बिस्तर व सामान खो गया था जिसमें जरूरी कागजातों वाला बक्सा भी था। विमान कम्पनी ने खोए सामान के न मिलने की घोषणा कर दी थी तथा मुआवजे का प्रस्ताव रखा था, जिसे वर्सटीन ने अस्वीकार कर खोज जारी रखने को कहा था।

अब मित्र से सुन वर्सटीन को अपने सामान की चिन्ता तो जाती रही। भीतर की जिज्ञासा-वृत्ति उमड़ उठी। वे चल पड़े लेड वन्डर से मिलने। वहाँ सर्वप्रथम वर्सटीन ने पूछा—बताइये, पेरिस में मैंने जो बिल्ली पाल रखी थी, उसका नाम क्या था ? लेडी वंडर ने उसे विस्मित करते हुए बताया—भर्तिनी। फिर वर्सटीन ने अपने सामान की बावत पूछा। लेडी वन्डर ने बताया तुम्हारा सामान न्यूयार्क हवाई अड्डे में है।

पहले तो वर्सटीन को अविश्वास हुआ क्योंकि न्यूयार्क हवाई अड्डा छाना जा चुका था। पर फिर उसने हवाई अड्डे के अधिकारियों को फोन किया—"महोदय, मुझे विश्वस्त सूत्रों से जानकारी मिली है कि मेरा सामान न्यूयार्क हवाई अड्डे के भवन के ही भीतर है। कृपया दुबारा तलाश करें।" तलाशी शुरू हुई और सामान सचमुच मिल गया।

"लन्दन से हांगकांग तक" पुस्तक के विद्वान लेखक हुसेन रोफे एक बार अपने घनिष्ठ मित्र श्री जे. बी. से मिलने गये। यह अवसर बहुत दिन बाद आया था, इसलिए हुसेन रोफे अनेक कल्पनायें अनेक योजनाएँ लेकर मित्र महोदय के पास गये थे, किन्तु जैसे-जैसे वह घर के समीप पहुँचते गये न जाने क्यों उनके मस्तिष्क में निराशा बढ़ती गई। अपनी इस अनायास स्थिति पर स्वयं रोफे को भी हैरानी थी। धीरे-धीरे उनके मस्तिष्क में न जाने कहाँ से दबे-दबे विचार उठने लगे कि "जे० बी० की आत्महत्या" और भी इतना जोरदार कि उन विचारों के आगे कोई और विचार टिक ही न पा रहा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोफे के आश्चर्य का उस समय ठिकाना न रहा जब मित्र के घर पहुँचते ही उसने पाया कि वह जहर खरीद लाया है और आत्महत्या की बिल्कुल तैयारी में ही है। हुसेन रोफे ठीक समय पर न पहुँच गये होते तो उन सज्जन ने अपना प्राणान्त ही कर लिया होता।

इस प्रकार की अतीन्द्रिय दिव्य शक्ति कोई भी अपने में विकसित करा सकता है। इसके लिए योग साधनाओं का विधान है।

मैस्मरेज्म के आविष्कर्त्ता डॉ० मैस्मर ने लिखा है—''मन को यदि संसार के पदार्थों और तुच्छ इन्द्रिय भोगों से उठाकर ऊर्ध्वगामी बनाया जा सके तो वह ऐसी विलक्षण शक्ति और सामर्थ्यों से परिपूर्ण हो सकता है, जो साधारण लोगों के लिये चमत्कार-सी जान पड़ें। मन आकाश में भ्रमण कर सकता है और उन घटनाओं को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है, जिन्हें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण न कर सकें और हमारा तर्क जिन्हें व्यक्त करने में असमर्थ हो।''

सन् १७५९ की वह घटना प्रामाणिक उल्लेखों में दर्ज है, जिसके अनुसार स्वीडन के इमेनुअल स्वीडन वर्ग नामक साधक ने सैकड़ों मील दूर पर ठीक उसी समय हो रहे भयंकर अग्निकाण्ड का सुविस्तृत विवरण अपनी मित्र मण्डली को सुनाया था। इस अग्निकाण्ड में घायल तथा मरने वालों के नाम तक उसने सुनाये थे जो पीछे पता लगाने पर अक्षरशः सच निकले।

''इन सर्च ऑफ दि ट्रुथ'' पुस्तक में श्रीमती रूथ मान्टगुमरी लिखती हैं कि युद्धों के समय पाशविक वृत्तियाँ एकाएक आत्म-मुखी हो उठती हैं, तब कैसे भी व्यक्तियों को अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ स्पष्ट रूप से होने लगती हैं। युद्ध के मैदानों में लड़ने वाले सैनिक और उसके सम्बन्धी रिश्तेदारों के बीच एक प्रगाढ़ भावुक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वही इन अति मानसिक अनुभूतियों की सत्यता का कारण होता है। ध्यान की गहन अवस्था में होने वाले भविष्य की घटनाओं के पूर्वाभास भी इसी कारण होते हैं कि उस समय एक ओर से मानसिक विद्युत दूसरी ओर से पूरी क्षमता के साथ सम्बन्ध जोड़ देती और जिस प्रकार लेजर यन्त्र, टेलीविजन, राडार आदि हमें दूर के दृश्य व समाचार बताने दिखाने लगते हैं, उसी प्रकार यह भाव सम्बन्ध हमें दूरवर्ती स्थानों की घटनाओं के सत्य आभास कराने लगते हैं।

यह जीव-कोशों के मन ही मिलकर अवयव मन का निर्माण करते हैं, इसलिये मन को एक वस्तु न मानकर अध्यात्म-शास्त्र में उसे 'मनोमय कोश' कहा गया है। एक अवस्था ऐसी होती है, जब शरीर के सब मन उसके अधीन काम करते हैं, जब यह अनुशासन स्थापित हो जाता है तो मन की क्षमता बड़ी प्रचण्ड हो जाती है और उसे जिस तरफ लगा दिया जाये उसी ओर वह तूफान की सी तीव्र हलचल पैदा कर देता है।

इन सभी का वैज्ञानिक समाधान ढूँढ़ें तो हम पाते हैं कि इलेक्ट्रॉन और प्रकाश यदि शक्ति है तो पदार्थ भी है। कण हैं तो लहर भी। इलेक्ट्रॉन सृष्टि के हर कण में हैं, पर वह अपनी उत्पादकता न होकर नाभिक से बँधा है उसी प्रकार प्रकाश ब्रह्माण्ड भर में कहीं विचरण कर सकता है पर वह स्वयं उसका अपना उत्पादन नहीं है अपने जीवन के अन्तिम समय में आइन्स्टीन, जो कि ऋषियों के मायावाद सिद्धान्त तक पहुँच गये थे, ने यह बताया कि काल और स्थान सापेक्ष हैं और वे प्रकाश की माप पर निर्भर हैं, वे अब यह सिद्ध करना चाहते थे कि कोई यूनीफाइड फील्ड ऐसा है, जिसमें एलेक्ट्रोमेगनेटिक फोर्स भी है और गुरुत्वाकर्षण भी। वह क्षेत्र इन दोनों से युक्त भी है और मुक्त भी। यह इलेक्ट्रॉन की तरह ही द्वैत गुण युक्त था तथा आइन्स्टीन ने उसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया वरन् माना था कि ''मस्तिष्कीय द्रव्य'' में वह गुण है, वह समय और पदार्थ से परे तत्व है, उसकी गति और अगति में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् वह मस्तिष्कीय-द्रव्य-माइण्ड स्टाफ एक ही समय में मद्रास या बम्बई में भी हो सकता है और उसी समय वह हरिद्वार में भी उपस्थित रह सकता है। यही वह तत्व है, जो प्रकाश को धारण करके उसकी गति से किसी भी वस्तु का स्थानान्तरण कर सकता है। पदार्थ को शक्ति में बदलकर उसे कहीं भी सूक्ष्म अणुओं के रूप में बहाकर ले जा सकता है और उसे सैकिण्ड से भी कम समय में बदल सकता है।

योगी और साधक ध्यान द्वारा मस्तिष्क के इसी एकान्त क्षेत्र पर अवस्थित होकर इलेक्ट्रॉन और प्रकाश कणों द्वारा E = M. C. के आधार पर वह शक्ति अपने भीतर से उत्पन्न करते हैं, जो किसी भी परमाणविक शक्ति से बढ़कर होती है उसमें इलेक्ट्रॉन और प्रकाश कणों की द्वैत शक्ति ही होती है। जिससे वे स्थूल और क्रियायें सम्भव हैं, जो अतीन्द्रिय घटनाओं के रूप में प्रकट होती हैं।

हमें सामान्य जानकारियाँ इन्द्रिय शक्ति के आधार पर मिलती हैं। पर यदि प्रसुप्त अतीन्द्रिय शक्ति को जागृत किया जा सके तो व्यापक ब्रह्माण्ड सत्ता के साथ अपना सम्पर्क जुड़ सकता है और असीम से सअसीम स्थिति में पहुँचा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस विश्व में जड़ और चेतना की द्विधा अपने-अपने नियत प्रयोजनों में संलग्न है। उनका वैभव भी महासमुद्र की तरह है जिसके किनारे पर बैठकर मनुष्य ने सीप और घोंघे ही ढूँढ़े हैं। प्रकृत परमाणुओं में और जीवाणु घटकों में जो सामर्थ्य तथा चेतना विद्यमान है उसका बहुत छोटा अंश ही जानना, हथियाना सम्भव हो सका है। सब कुछ पाना खींचतान से—झीना झपटी से नहीं उसमें घुल जाने से ही सम्भव हो सकता है। समुद्र के पानी को कोई घड़ा कितनी मात्रा में अपने में भर सकेगा ? सम्पूर्ण समुद्र के साथ एकता स्थापित करनी हो तो घड़े को अपना जल समुद्र में मिला देना पड़ेगा तभी तुच्छता को सुविस्तृत स्थिति में अनुभव कर सकना सम्भव होगा।

अतिमानवी चेतना की उपलब्धि

मस्तिष्कीय क्षमता से हर कोई परिचित है। बुद्धिमान, दार्शनिक, कलाकार, वैज्ञानिक अपनी पैनी सूझ-बूझ के आधार पर ही अनौखी सफलताएँ प्राप्त करते हैं। परिचित मस्तिष्क से ऊपर एक और दिव्य चेतना स्रोत है, जहाँ चित्तशक्ति निवास करती है। मनोवैज्ञानिकों की भाषा में इसे अचेतन मन कहते हैं। सुपर ईगो के रूप में इसी की विवेचना की जाती है। योग शास्त्रों में इसे देवलोक अतीन्द्रिय चेतना का केन्द्र एक ऋद्धि-सिद्धियों का भण्डार माना गया है। इस क्षेत्र पर अधिकार प्राप्त करने वाला अलौकिक-असाधारण अतिमानव एवं सिद्ध पुरुष बन सकता है।

यह एक अद्भुत संयोग है कि जब अचेतन जागता है, तब प्रबुद्ध मस्तिष्क सोता है और जब प्रबुद्ध मस्तिष्क जागता है तो चित्त सोता रहता है, दोनों एक साथ कार्यरत नहीं रह सकते। योगनिद्रा उत्पन्न करके पूर्ण या आंशिक समाधि में जाया जा सकता है और अति मानवी अनुभूतियों के क्षेत्र में प्रवेश किया जा सकता है। कभी-कभी संयोगवश, संस्कारवश योगनिद्रा सामान्य निद्रा में सामान्य लोगों को भी प्राप्त हो जाती है और वे ऐसे स्वप्न देखते हैं, जो तथ्यपूर्ण भविष्य का आभास देने वाले होते हैं। सामान्य स्वप्न तो आमतौर से निरर्थक ही होते हैं पर सार्थक स्वप्नों के प्रमाण भी कम नहीं मिलते।

शिकागो विश्वविद्यालय के एक मनोविज्ञानी डा. डेविड नीडर ने स्वप्नों के साथ जुड़े रहने वाले तथ्यों पर लम्बे समय तक खोज की है। उनका कथन है कि बहुत सपने आश्चर्यजनक रीति से तथ्यपूर्ण होते हैं। उनसे कई बार समस्याओं के ऐसे समाधान मिलते हैं जैसे जागृत अवस्था में बहुत माथा फोड़ी करने पर भी नहीं मिल पाते।

मनःशास्त्री डा. हेवलाक एलिस का कथन है हमारा अचेतन स्वप्नों की भाषा में ऐसे तथ्यों को प्रकट करता है, जिसे समझने पर हम अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त कर सकते हैं। कई बार तो वे हमें हमारी समस्याओं के अद्भुत किन्तु सही समाधान प्रस्तुत करते हैं।

रोम में भी ऐसी ही एक घटना हुई जिसमें स्वप्नों की सचाई का आभास मिला। श्रीमती ऐमीलिया का व्यापारी पति अचानक गायब हो गया। उसने पुलिस में इसकी रिपोर्ट की और साथ ही यह भी लिखाया कि उसने ऐसी हुलिया के व्यक्ति को उसकी हत्या करते सपने में देखा है। सपना नोट कर लिया गया पर उसकी प्रामाणिकता पर किसी को विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि खोये व्यक्ति के मर जाने तक का कोई सबूत न था फिर हत्या की बात कैसे सच मानी जाय। बहुत दिन बाद हत्या के प्रमाण मिले और गुप्तचर विभाग ने छद्म रूप में पादरी बनकर रह रहे हत्यारे को खोज निकाला। सुराग आगे चले और हत्या उसी व्यक्ति द्वारा किये जाने की बात पूरी तरह प्रमाणित हो गई।

आयरलैण्ड की पुलिस ने एक हत्यारे को पकड़ने और उसका अपराध सिद्ध करके फाँसी दिलाने में सपने द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर सफलता प्राप्त की थी। तियेरासी निवासी एक व्यक्ति हिकी ने अपने मित्र को पैसा लूटने के उद्देश्य से चाकू मारकर कत्ल कर दिया। मृतक के गायब होने भर की सूचना पुलिस को दी वह यह पता लगाने में व्यस्त थी कि आखिर उस व्यक्ति का क्या हुआ ? इस खोज-बीन में एक छोटे होटल के मालिक रोजर्स ने पुलिस को बताया कि उस युवक की हत्या हो गई है और वह उस हत्या का सुराग दे सकता है। पूछ-ताछ में रोजर्स की पत्नी ने बताया कि कुछ दिन पूर्व यह दोनों उसके होटल में जलपान करने आये थे। इससे पूर्व उसने ठीक उसी हुलिया के दो व्यक्तियों में से एक के द्वारा दूसरे की हत्या किये जाने का सपना देखा था। इस समता से उसे बहुत आश्चर्य हुआ और उसने उन्हें उस भवतव्यता की सूचना देकर कुछ दिन होटल में ही ठहरे रहने की सलाह दी किन्तु वे चले गये। सपने में जिस स्थान पर हत्या हुई उसका चित्र पत्नी के मस्तिष्क में है; वह उस जगह को खोजने में सहायता दे सकती है। पुलिस ने इस दम्पत्ति की सहायता ली और उस झाड़ी को खोज निकाला जहाँ युवक की लाश पड़ी थी। हत्यारे का जो हुलिया बताया गया था, वह हिकी से मिलता था अस्तु उसे पकड़ा गया। अन्ततः हत्या को प्रमाणित करने वाले ऐसे अनेक सूत्र मिल गये, जिनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधार पर अदालत द्वारा हत्यारे को फाँसी की सजा दी जा सकी।

विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञों में से कई ऐसे हैं जो अपने आविष्कृत सिद्धान्तों की सफलता का श्रेय स्वप्नों में उपलब्ध हुई प्रेरणाओं को देते हैं। इन गणितज्ञों में फुडसियनस्त्रित और हेनरीफार—के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सम्राट सीजर और हेनरी तृतीय को अपनी हत्याओं की पूर्व सूचना सपनों में मिल चुकी थी जिसे उन्होंने अपने प्रियजनों को बता भी दिया था। प्रयत्न करने पर भी, वे हत्याएँ टाली न जा सकीं। चर्चिल, लार्ड किचनर और जनरल गेडार्ड को कई भयंकर दुर्घटनाओं की पूर्व सूचना सपनों में मिल गई थी। अवसर आने पर उन्होंने सपने की बात को ध्यान में रखते हुए विशेष सतर्कता बरती और अपनी जानें बचा लीं।

एक-दूसरे नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ० पाडलिंग ने भी यह बताया था कि उन्हें अनेक नये वैज्ञानिक विचारों की प्रेरणा सपनों में मिली है।

बैंजीन परमाणुओं के सम्बन्ध में नई खोज करने के लिए वैज्ञानिक केकुल ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी उन्होंने अपनी खोज की प्रेरणा का स्रोत अपने एक स्वप्न से उपलब्ध किया था।

ऐसा ही अनुभव विज्ञान वेत्ता लुई ऐगासिज का है, उनकी जीवाश्म सम्बन्धी खोजें कैसे सफल हुईं इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा मुझे स्वप्नों के इशारे से अपनी खोजें आगे बढ़ाने की अक्सर प्रेरणा मिलती रही है।

अमेरिका के औषधि शास्त्रज्ञ डॉ० आट्टोलोबी ने जिन आविष्कारों के आधार पर नोबेल पुरस्कार जीता, उसकी मूल प्रेरणा उन्हें स्वप्नों में ही मिली थी। शारीरिक तन्तुओं, स्नायुओं और कोशाओं पर वे कुछ शोध कर रहे थे पर ऐसे आधार नहीं मिल रहे थे, जिनके सहारे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। ईस्टर की पहली रात को सपने में उन्हें आवश्यक सूत्र हाथ लगे जिन्हें उन्होंने आँख खुलते ही नोट कर लिया। एक दिन दोपहर को भी इसी खोज के सम्बन्ध में ऐसा सपना दीखा, जिसमें वे कुछ प्रयोग कर रहे थे उसे भी उन्होंने नोट किया। यद्यपि आरम्भ में वे नोट अटपटे लगे पर अन्ततः वे उसी आधार पर अपने प्रयोगों में सफलता प्राप्त करने में समर्थ हुए।

अपनी अद्भुत कल्पनाओं के उठने का मूल स्रोत कहाँ है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महा वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने एक बार कहा था प्रायः निद्रित अथवा अर्ध-निद्रित स्थिति में कभी-कभी ऐसे समय आते हैं जब मस्तिष्क अपनी सामान्य मर्यादाओं का उल्लंघन कर सूचनायें देने लगता है जिनके आधार पर आविष्कारों की आधारशिला रखी जा सके।

आइन्स्टीन कहते थे विज्ञान और गणित के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह दृश्य संसार स्वप्नों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उन्होंने 'लाइफ' पत्रिका के प्रतिनिधि को भेंट देते हुए कहा था—सामने खड़ा हुआ वृक्ष यद्यपि अपना अस्तित्व भली प्रकार प्रमाणित कर रहा है तो भी वस्तुतः यह एक स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मैस्मरेज्म, हिप्नोटिज्म, क्लेरोवायन्स, टैलीपैथी आदि की स्थिति प्रबुद्ध मस्तिष्क को प्रसुप्त करके ही उत्पन्न की जाती है। यदि चेतन मस्तिष्क पूर्ण सजग रहे और तर्क बुद्धि के साथ निद्रित न होने का संकल्प किये रहे तो उनमें से एक भी आध्यात्मिक स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती है। जागृत मन को निद्रित करके ही अचेतन को अध्यात्म भूमिका में कुछ अधिक योगदान दे सकने योग्य बनाया जा सकता है।

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह चार अवस्थाएँ प्रबुद्ध मन की स्वाभाविक चंचलता को निग्रहीत करके एकाग्रता के केन्द्र बिन्दु पर रोके रखने के लिए की जाती है। इनमें जितनी सफलता मिलती जाती है, मस्तिष्क शान्त और समाहित होता चला जाता है साथ ही चित्तशक्ति का जागरण आरम्भ हो जाता है। हठयोगी कई प्रकार की समाधि लगाते हैं, उसे थोड़े समय में आरम्भ करके लम्बे समय तक ले जाते हैं। कई घण्टे से लेकर कई महीने तक समाधि लगाने वाले योगियों का वर्णन प्रामाणिक प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि मानवी संकल्प बल न केवल बाह्य प्रयोजनों में वरन् अपने शरीर की अनिवार्य गतिविधियों को इच्छानुसार नियन्त्रित अवरुद्ध करने में भी सफल हो सकता है।

पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह से अंग्रेजों ने एक राजनैतिक सन्धि की। इसी संदर्भ में अंग्रेज सरकार का एक प्रतिनिधि मण्डल महाराजा से मिलने अदीना नगर पहुँचा। उन दिनों वे वहीं ठहरे हुए थे। अंग्रेजी दल में पोलिटिकल सेक्रेटरी डब्ल्यू० एच० मैकनाटन, पोलिटिकल ऐजेन्ट कप्तान वार्ड, मिलिटरी सेक्रेटरी डबल्यू. जी. ओसवार्न, कप्तान जी. मैकग्रेवर, डॉ० डूमण्ड आदि थे। घटना १८३८ की है।

उन दिनों पंजाब में एक ऐसे योगी की बहुत ख्याति थी जो महीनों तक समाधि लगाकर भूमि में गढ़ा रहता था। अंग्रेजी दल ने राजनैतिक बातों से निपटकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाराजा से उस योगी के चमत्कार दिखाने की व्यवस्था कर देने का अनुरोध किया। महाराजा ने साधु से पुछवाया और उसके सहमत होने पर प्रदर्शन की व्यवस्था बना दी। इस भूमि समाधि का विस्तृत विवरण उस दल के एक सदस्य डबल्यू. जी. ओसवार्न ने एक पुस्तक लिखी है। पुस्तक का नाम है—''रणजीत सिंह।''

उस पुस्तक में लिखा है—महाराज, अनेक सरदार और अंग्रेजी दल की उपस्थिति में योगी ने अपने मुख, नाक, कान के छिद्रों को छोड़कर शेष सारा शरीर मौम से बन्द किया ताकि किसी रोमकूप से उसके भीतर वायु का आवागमन न हो। इसके बाद योगी समाधिस्थ हो गया। शरीर को एक मजबूत बोरी में बन्द किया गया। और उस पर सील मुहर लगा दी गई। बोरी को सन्दूक में बन्द दिया गया। और उस पर ताला लगा दिया गया गड्ढे में मिट्टी भरी गई मिट्टी पोली न रहे इसलिए उसे भली प्रकार रोंदा गया। इसके बाद उस जमीन पर जौ बो दिये गये ताकि कोई उखाड़-पछाड़ की जाय तो उसकी साक्षी जौ के पौधे दे सकें। यह सारी क्रिया जनरल वेनट्रा ने अपने हाथों पूरी की ताकि उसमें कहीं किसी आशंका की गुन्जायश न रहे। समाधि भूमि पर मिलिटरी का कड़ा पहरा बिठा दिया गया।

दस महीने बाद गड्ढा खोदा गया। खोदते समय सारे अफसर मौजूद थे। कप्तान वार्ड ने अपने हाथों सन्दूक निकाला और सील खोली। योगी की नाड़ी और हृदय की धड़कन बिल्कुल बन्द थी तो भी वे जीवित थे। सारा शरीर ठण्डा था सिर्फ कपाल गर्म था। उन्हें गर्म पानी से स्नान कराया गया। धीरे-धीरे दो घण्टे में वे होश में आ गये। इस लम्बी अवधि में योगी के नाखून और बाल नहीं बढ़े थे।

इसी प्रकार की एक अन्य भूमि-समाधि का वर्णन डाक्टर मैक ग्रेवर ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ द सिख्स में दिया है। उसमें हरिदास नामक एक योगी द्वारा लाहौर में ४० दिन के लिए ली गई समाधि का वर्णन है। यह भी महाराजा रणजीत सिंह और अंग्रेज अफसरों की उपस्थिति में ली गई और खोली गई थी। इन्हीं साधु ने एक समाधि जैसलमेर में भी ली थी।

समाधि स्थिति को प्राप्त करने में कई प्रकार के लाभ उठाये जा सकते हैं। (१) प्रबुद्ध मस्तिष्क को गहरा विश्राम देकर उसे अधिक स्वस्थ, सक्रिय एवं बुद्धिमान बनाया जा सकता है। (२) अचेतन मस्तिष्क को जागृत करके उसकी अतीन्द्रिय क्षमता बढ़ाई जा सकती है और चमत्कारी सिद्ध पुरुषों की देव भूमिका में पहुँचा जा सकता है। (३) शरीर की गतिविधियाँ रोक सकने में समर्थ संकल्प बल की आग में संसार की कठिनाइयों को गलाया जा सकता है। जो कठिन हैं, उन्हें सरल बनाया जा सकता है। दूसरों को आध्यात्मिक योगदान देकर सुखी बनाया जा सकता है। (४) दीर्घ जीवन का उद्देश्य पूरा करने के लिए कायाकल्प का रहस्यमय अमृत प्राप्त किया जा सकता है। यह चार लाभ प्रत्यक्ष हैं अन्य छोटे-बड़े वरदान और भी इस स्थिति के साथ जुड़े हुए हैं।

रामायण कथा के अनुसार रावण का भाई कुम्भकरण छै महीने जागता था। यदि यह कथा सही है तो उस प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य को जरा मरण से मुक्त किया जा सकता है। छै महीने की सुषुप्तावस्था में कोषाओं की इतनी क्षतिपूर्ति हो सकती है कि वे पुनः कायाकल्प की तरह नये सिरे से नव-जीवन जैसा कार्य प्रारम्भ कर सकें। इस प्रकार आमदनी तथा खर्च बराबर होते रहने की प्रक्रिया अनन्त काल तक चलती रह सकती है और मनुष्य को अमरता का लाभ मिल सकता है। वृद्धावस्था थकान का नाम है। थकान का अर्थ है आमदनी से खर्च का अधिक होना—विकृतियों के निराकरण में अवरोध उत्पन्न होना। मौत के निकट घसीट ले जाने वाली यही कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें प्रसुप्त निद्रा पद्धति अपनाकर निरस्त करने की बात आजकल वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में चल रही है।

विज्ञान ने यह स्वीकार कर लिया है कि यदि मनुष्य को चिर निद्रा में सुलाया जा सके तो उसे रोगों और थकान के पंजे से छुड़ाकर नव-जीवन प्रदान किया जा सकता है। समाधि की विधि-व्यवस्था तो भौतिक विज्ञान में नहीं है पर उनने शीत निद्रा का एक नया तरीका ढूँढ़ा है। विज्ञानी डेल कारएन्टर का कथन है कि मनुष्य को ठण्डा करके गहरी सुषुप्तावस्था में सिद्धान्ततः पहुँचाया जा सकता है। अब उसका व्यावहारिक रूप ही सामने लाना बाकी है। न्यून तापमान में भी जीव कोषों में पाया जाने वाला 'ग्लाइसकोल' रसायन प्राणी को जीवित रख सकता है। इस प्रयोजन से एक विशेष रसायन खोज निकाला गया है। 'डाय मिथाहुल सल्फो आक्साइड' इसकी सहायता से गहन शीतनिद्रा में मनुष्य को भेजा जा सकेगा साथ ही उस स्थिति में उत्पन्न हो सकने वाले संकटों की संभावना से भी उसे बचाया जा सकेगा।

शीत निद्रा की समाप्ति कैसे होगी, इसके सम्बन्ध में अभी कल्पना यही है कि वैसा करना वातावरण में तापमान बढ़ाकर ही सम्भव हो सकता है। जो प्राणी शीत ऋतु में निद्रा मग्न होते हैं, वे गरम ऋतु के प्रभाव वातावरण में आने से उत्तेजना ग्रहण करते हैं। अभीष्ट तापमान उपलब्ध होने पर उनकी जीव कोशिकाएँ सजग होने लगती हैं। शीत ऋतु में सोये मेंढ़कों को पकड़कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरम कमरे में रखा गया तो वे जग पड़े और भोजन की तलाश में उछल-कूद करने लगे। शीत निद्रा में सुलाये गये मनुष्य को भी जब जगाना हो तब उसके लिए प्रयत्नपूर्वक अथवा स्वसंचालित पद्धति से ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि नियत समय पर आवश्यक गर्मी उत्पन्न होने लगे और सोया हुआ मनुष्य उस निद्रा को त्यागकर पुनः सक्रिय हो सके।

प्रयत्न शीत निद्रा के भौतिक हों-हिप्नोटिज्म स्तर के मानसिक हों-अथवा समाधि स्तर के आध्यात्मिक हों। हर हालत में सर्वतोमुखी विश्राम एवं शांत, एकाग्र समाधान की आवश्यकता अति महत्त्वपूर्ण समझी जाती रहेगी। उसे प्राप्त करके हम अतीन्द्रिय शक्ति सम्पादन से नये क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। निस्संदेह वह क्षेत्र इतना बहुमूल्य है कि जो उसमें प्रवेश करेगा वह असामान्य अतिमानवी विभूतियाँ, उपलब्ध करके रहेगा।

प्रत्यक्ष ही सब कुछ नहीं है

इन्द्रियों से मात्र स्थूल जगत का परिचय मिलता है। आँखों से दृश्य पदार्थ ही दिखाई पड़ते हैं। कान भी सीमित ध्वनियों को ही सुन पाते हैं। नाक की गंध-क्षमता सीमित है। जिह्वा भी समस्त रसों का आस्वादन करने में असमर्थ है। त्वचा हर चीज नहीं छू सकती। अनेकों पदार्थ वायु में उड़ते रहते हैं उनकी सत्ता विद्यमान है किन्तु इन्द्रियों से उनकी जानकारी नहीं मिलती। इन्द्रियातीत पदार्थों की जानकारी सूक्ष्मदर्शी एवं दूरदर्शी यन्त्रों से होती है। छोटे जीवाणुओं की माइक्रोस्कोप की और दूरवर्ती दृश्यों की टैलिस्कोप की सहायता से जानकारी मिलती है। स्पष्ट है कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान ही सब कुछ नहीं है उससे बाहर की परिधि और भी बड़ी है। वैज्ञानिकों ने इस अविज्ञान को ज्ञान सीमा में लाकर आश्चर्यजनक आविष्कारों में सफलता पाई है।

स्थूल जगत की भाँति ही एक सूक्ष्म जगत भी है और स्थूल शरीर की तरह ही एक सूक्ष्म शरीर की सत्ता भी इसी संसार में विद्यमान रहती है। उसे इन्द्रियों से तो नहीं देखा जा सकता, पर बुद्धि के सहारे उसके अस्तित्व का परिचय भली-भाँति मिल जाता है। मरणोत्तर जीवन इस सूक्ष्म जगत में ही अपना गुजारा करता है। कर्म की परिणित इसी हाँडी में पकती रहती है और समयानुसार खिचड़ी बनकर थाली में आती है। भविष्यवक्ता इस अदृश्य को देखकर ही भूत और भविष्य की जानकारी प्राप्त करते हैं। देव सत्ता का साम्राज्य इसी क्षेत्र पर है। प्रेत-पितरों का निवास एवं क्रीड़ा-कल्लोल की लीला भूमि यही है।

अदृश्य वातावरण का दृश्य जगत पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका बहुत कुछ पता ऋतु विज्ञानी एवं अन्तरिक्ष के जानकार लगाते रहते हैं और वर्षा, तूफान आदि की सम्भावनाओं से सर्वसाधारण को अवगत कराते रहते हैं।

व्यक्ति की सत्ता के साथ जुड़ा हुआ एक प्रति व्यक्ति रहता है इसका परिचय 'तेजोवलय' के रूप में और छाया पुरुष की चमत्कारी सामर्थ्य को देखकर लगाया जा सकता है।

स्थूल और सूक्ष्म के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध सूत्र को अधिक प्रत्यक्ष करने और आदान-प्रदान का द्वार खोलने की चेष्टा योगी, तपस्वी करते रहते हैं। साधना द्वारा मनुष्य भीतरी और बाहरी जगत में विद्यमान सूक्ष्म शक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। अतीन्द्रिय क्षमताएँ सभी में विद्यमान रहती हैं, पर उनकी सूक्ष्म सत्ता को अनुभव में लगाने तथा अभीष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त करने की स्थिति साधना प्रयासों द्वारा ही सम्भव होती है। उसी प्रकार ब्रह्माण्डव्यापी देव शक्तियों के साथ सम्बन्ध जोड़ना और उन्हें अनुग्रह बरसाने के लिए सहायता करना इन साधन प्रयत्नों के सहारे सुलभ बनता है।

प्रकृति स्थूल है और ब्रह्म सूक्ष्म। एक इन्द्रियगम्य है, दूसरा इन्द्रियातीत। शरीर और जीव के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। ज्ञान सूक्ष्म है और स्थूल। इस समस्त विस्तार पर दृष्टिपात करने से अदृश्य का अस्तित्व भी स्पष्ट हो जाता है। बुद्ध का भौंडापन ही अदृश्य की सत्ता को अस्वीकार करता है। प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानना, बालकों जैसा दुराग्रह है।

अदृश्य भी हमारे लिए दृश्य की तरह ही उपयोगी है। व्यक्ति की निर्भरता मात्र पदार्थ सम्पदा पर ही नहीं है। वरन् पारस्परिक स्नेह, सहयोग भी उसकी महत्ती आवश्यकता है। प्रचुर सम्पत्ति होते हुए भी सद्भाव सम्पदा की दृष्टि से-धनवान व्यक्तियों की तुलना में मनस्वी और ओगावीर तेजस्वी अधिक सामर्थ्यवान माने जाते हैं। श्रमिक की तुलना में विद्वान की गरिमा अधिक भरी होती है। यह दृश्य की तुलना में अदृश्य की गरिमा का ही प्रमाण है। विज्ञ व्यक्ति अदृश्य को न तो अस्वीकार करते हैं और न उसके प्रति उपेक्षा बरतते हैं। उनकी मान्यता इससे भी आगे की होती है। उन्हें स्थूल के साथ श्रम करने से भी अधिक लाभदायक सूक्ष्म के साथ सम्बन्ध बढ़ाने का प्रयास लगता है। वैज्ञानिकों से लेकर योगियों तक की प्रयत्न परायणता अपने-अपने ढंग से अदृश्य क्षेत्र के अवगाहन में ही नियोजित रहती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदृश्य की एक नई सत्ता का रहस्योद्घाटन अभी-अभी हुआ है। पता चला है कि पदार्थ की सबसे छोटी इकाई की प्रतिद्वन्दिता में प्रति परमाणु की सत्ता भी विद्यमान है। प्रति पदार्थ–प्रति विश्व का अस्तित्व अब न तो काल्पनिक रह गया है, न उपहासास्पद, न अप्रमाणिक। भौतिक विज्ञानी इस तथ्य को एक स्वर से स्वीकार करने लगे हैं कि दृश्य जगत की प्रतिद्वन्दी एवं पूरक एक अदृश्य जगत इसी विराट् के भीतर अपनी सत्ता जमाये बैठा है और अविज्ञात रूप से इस दुनिया को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है। प्रकारान्तर से उन अध्यात्म मान्यता की स्वीकृति है जिससे स्थूल की तुलना में सूक्ष्म को अधिक बलिष्ठ एवं सम्पन्न बताया गया है और उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले साधना प्रयासों पर बल दिया गया है।

यहाँ प्रति पदार्थ एवं प्रति विश्व के सम्बन्ध में उपलब्ध नवीनतम जानकारियों पर थोड़ा प्रकाश डालना उपयुक्त होगा। ताकि अदृश्य को उपहासास्पद कहने वाले लोग यह समझ सकें कि प्रत्यक्ष तो कलेवर भर है। समस्त विश्व वैभव का प्राण अदृश्य जगत में सन्निहित है। इसी प्राण सत्ता को 'प्रति पदार्थ' एवं 'प्रति विश्व' समझा जा सकता है।

नवीन तथ्यों के अनुसार यह ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक पदार्थ के साथ जुड़ा उससे कहीं अधिक सामर्थ्यवान छाया पुरुष-प्रति पदार्थ–अदृश्य जगत में क्रियाशील है। इसकी कल्पना बहुत समय पूर्व प्रसिद्ध गणितज्ञ पाल० ए० एम० डिराक ने की, जो कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित शास्त्र के प्रोफेसर थे। आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त का स्पष्ट स्वरूप वैज्ञानिक किस्नोडिगर ने दिया। पदार्थ के ऊर्जा में रूपान्तरित होने के सिद्धान्त से वैज्ञानिक डिरॉक को विशेष सहयोग मिला। इलेक्ट्रॉन के ऊर्जा दर्शाने वाले सूत्र से डिरॉक की कल्पना को बल मिला। उन्होंने प्रतिपादित किया कि ऋण आवेशयुक्त इलेक्ट्रान के साथ ही धन आवेशयुक्त इलेक्ट्रॉनों का अस्तित्व परमाणु में विद्यमान होता है। उन्होंने इसका नाम प्रति इलेक्ट्रॉन (एण्टी इलेक्ट्रॉन) दिया। अपने प्रयासों द्वारा श्री डिरॉक की इस परिकल्पना की पुष्टि अमेरिका के प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डॉ० कार्ल डी० एण्डरसन ने भी की। उन्होंने घोषणा की कि इलेक्ट्रॉन के साथ ही विपरीत आवेशयुक्त इलेक्ट्रॉनों का अस्तित्व भी परमाणु के भीतर ही विद्यमान है। उन्होंने इस नये कण का नाम 'पाजीट्रॉन' रखा। इस नवीन शोध के लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला। तब से लेकर अब तक परमाणु में ही विद्यमान अनेकों प्रति कणों का अस्तित्व उभरकर सामने आया है। अमेरिका के वैज्ञानिक एमेलियो जी० सेगरे , 'ओवेन चेम्बर लेन' सी. वीगेन्द्र तथा पी० वाइपसीलेन्टिस के सामूहिक प्रयास से ऐण्टी प्रोटॉन एवं ऐण्टी न्यूट्रॉन कणों का पता लगा है। इन मूलभूत कणों के अतिरिक्त ऐण्टीन्यूट्रिनोस, ऐण्टीमेसान्स, एण्टी हाइपेरान्स जैसे कणों की भी खोज हुई है। पाकिस्तान के श्री अबदुस्सलाम को पोजीट्रॉन की खोज होने पर ही १९७९ का नोबेल पुरस्कार मिला था।

भौतिकविद् के जानकार इस तथ्य से अवगत हैं प्रोटान्स, न्यूट्रान्स, न्यूट्रिनोस एवं मेसान्स से नाभिक बनता है। इलेक्ट्रान नाभिक के बाहर चक्कर लगाते हैं इन सभी कणों के संयुक्त होने से परमाणु बनता तथा सुव्यवस्थित एवं टिकाऊ बना रहता है। प्रति कणों की खोज से, ऐण्टीप्रोटान्स, ऐण्टीन्यूट्रान्स एवं ऐण्टीमेसान्स, एण्टीमेसान्स के संयुक्त होने से ऐण्टी न्यूक्लियस की कल्पना की गई। इस कल्पना को साकार किया कोलम्बिया विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र के डॉ. लियोन लेडरमेन ने। सन् १९६५ में ऐण्टी न्यूक्लियस की संरचना करके ऐण्टीएटम का स्वरूप प्रदान किया गया। पदार्थ के साथ 'प्रति पदार्थ' के अस्तित्व को अब वैज्ञानिक जगत में निर्विवाद रूप से स्वीकारा जा रहा है।

प्रति पदार्थ के अस्तित्व में आने से वैज्ञानिकों ने नये सिरे से सोचना आरम्भ किया है। अब सोचा यह जा रहा है कि न केवल पदार्थ वरन् प्रत्येक संरचना का एक स्वतन्त्र प्रतिरूप स्थूल सृष्टि में विद्यमान होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार 'प्रति जगत', 'प्रति मानव', 'प्रति जीव', 'प्रति वनस्पति' भी जगत, मनुष्य, जीव एवं वनस्पति के साथ संलग्न होना चाहिए। प्रो. डिराक के अनुसार सृष्टि में विद्यमान सभी कणों के साथ अदृश्य रूप में उनके प्रतिकण मौजूद हैं।

पदार्थों की प्रतिच्छाया के समान प्रति पदार्थ भी पदार्थ के साथ ही बनते हैं। ऊर्जा रूपान्तरित होकर प्रति पदार्थ एवं पदार्थ को जन्म देती है। यहाँ एक प्रश्न सहज ही उठता है कि पदार्थ तो दीखता है किन्तु क्या कारण है कि प्रति पदार्थ दिखायी नहीं पड़ता। तथ्यों एवं प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पदार्थ प्रति पदार्थ का विकर्षण करता है। इस विकर्षण के फलस्वरूप सभी प्रति पदार्थ एक ऐसे लोक में पहुँच जाते हैं, जिसे 'प्रति विश्व' के नाम से पुकारा जा सकता है। सम्भव है कि वह एक विशेष स्थिति हो। जिसे आइन्स्टीन ने दिक्-काल से परे 'चतुर्थ आयाम' के नाम से सम्बोधित किया है। जिसमें पहुँचकर पदार्थ का स्थूल स्वरूप लुप्त हो जाता हो। तथ्य चाहे जो भी हो यह तो स्पष्ट हो चुका है कि पदार्थ, विश्व, मनुष्य तथा अन्यान्य प्रकृति की संरचनाओं के साथ उनके प्रति-स्वरूप भी यहाँ विद्यमान हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परस्पर विरोधी प्रकृति के कारण पदार्थ एवं प्रति पदार्थ के मिलने से भयंकर विस्फोट की सम्भावना की जाती है। कुछ वर्षों पूर्व रूस के साइबेरिया क्षेत्र में एक भयंकर विस्फोट हुआ। यह स्थान आर्कटिक क्षेत्र से ४०० मील दूर 'टान्गनेयूकी' में स्थित है। एक अनुमान के अनुसार यह विस्फोट ३० मेगाटन हाइड्रोजन बम की सामर्थ्य के बराबर था। इसकी विध्वंसक शक्ति का अनुमान इसी से लगता है कि यह हिरोशिमा पर छोड़े गये परमाणु बम से १५०० गुना शक्तिशाली था। रसायन शास्त्र के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. विलिमर्ट एफ. लिब्बी का कहना है कि उक्त विस्फोट पदार्थ के टकराने से हुआ। इन दोनों के विकर्षण से ही सन्तुलन बना रह सकता है। असन्तुलन के कारण किसी प्रकार यदि यह दोनों मिल जाते हैं तो ऐसी स्थिति में ही यह विस्फोट होता है। अन्तरिक्ष में प्रवेश करते समय अब इस संकट की भी सम्भावना की जा सकती है कि कहीं हमारी स्पेस शटल एवं अन्तरिक्ष यात्रा प्रति विश्व में न प्रवेश कर जायें। यदि ऐसा हुआ और प्रति-विश्व पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता तो महाविनाश का, महा प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायेगा। प्रति जगत एवं जगत के बीच भयंकर युद्ध छिड़ जायेगा और देखते ही देखते सम्पूर्ण विश्व नष्ट हो जायेगा।

प्रति पदार्थ एवं प्रति विश्व का अस्तित्व स्पष्ट होने के उपरान्त एक बड़ी समस्या यह सामने आ गई है कि इस अदृश्य एवं अविज्ञात सत्ता के साथ छेड़खानी करने पर कहीं उल्टी प्रतिक्रिया उपस्थित न होने लगे। पदार्थ और प्रति पदार्थ के असहयोग एवं विग्रह से असंख्यों समस्याएँ खड़ी हो सकतीं और विश्व के वर्तमान ढाँचे को पूर्णरूपेण बदल जाने से लेकर महाप्रलय जैसा संकट खड़ा हो सकता है। इसी आशंका, असमंजस में इस दिशा में शोध प्रयत्न को दिशा में कदम फूँक-फूँककर धीरे-धीरे बढ़ाये जा रहे हैं।

अध्यात्म विज्ञान द्वारा अदृश्य जगत एवं अदृश्य सत्ता के साथ सम्बन्ध बनाने के बारे में भी यही बात है। उसमें दैवी सृजन और दानवी विध्वंस की दोनों सत्ताएँ विद्यमान हैं। अदृश्य पर, सूक्ष्म पर, अविश्वास करने के जो कारण पिछले दिनों बहुत उछाले जाते थे, वे अब धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। प्रति पदार्थ एक प्रति विश्व के अस्तित्व ने भौतिक विज्ञानियों को सूक्ष्म की सत्ता की पदार्थ तक ही नहीं चेतना तक में विद्यमान होने की बात स्वीकार करने के लिए विवश किया है। यह आध्यात्मिकी आत्मिकी की—भौतिकी की विजय यात्रा का श्रीगणेश मात्र है।

आत्मा क्या है ?

मनुष्य की आत्मा क्या है ? दार्शनिकों के एक समुदाय का मत है कि सत्ता ईश्वर की है और उसके अतिरिक्त अपरिमित आत्मायें हैं, जो रूप, गुण तथा अन्य समस्त बातों में उस ईश्वरीय सत्ता-ब्रह्म-से सर्वथा भिन्न है। यह सिद्धान्त है। इसके उत्तर में एक-दूसरे सम्प्रदाय ने कहा कि आत्मा एक अत्यन्त अपार्थिव सत्ता का अंश है। मानो यह शरीर स्वयं एक छोटा-सा संसार है। इस शरीर के अन्तराल में मन और बुद्धि हैं और इन दोनों ही के अन्तराल में आत्मा। ठीक इसी प्रकार यह सारा संसार एक शरीर है इसके अन्तराल में आत्मा। जिस तरह यह शरीर विश्वव्यापी शरीर का एक अंश है, उसी तरह यह मन विश्व मन का तथा आत्मा का एक अंश है। इस तरह का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

अब हम यह जानते हैं कि विश्वव्यापी आत्मा अनंत है। परन्तु भला अनन्तता के खण्ड कैसे हो सकते हैं ? वह तोड़ा कैसे जा सकता है ? उसमें विभाग कैसे होगा ? यह कहना कि मैं उस अनन्त का एक कण हूँ, बहुत ही कवित्वमय है। परन्तु विवेकशील मन के लिए यह बात एक बहुत ही बेतुकी है। अनन्त के विभक्त करने का तात्पर्य क्या है ? क्या कोई परिमेय पदार्थ है, जिसे आप खण्ड-खण्ड विभक्त कर सकेंगे ? जिस वस्तु में परिमाण नहीं है, जिसे हम नाप नहीं सकते, उसके खण्ड भी नहीं किये जा सकते, जिससे खण्ड करना सम्भव है, उससे फिर अपरिमेयता नहीं रह जाती। इसका निष्कर्ष यह निकला कि आत्मा जो कि विश्वव्यापी है वह 'तुम' हो और तुम एक खण्ड नहीं, बल्कि उसके पूर्ण अंश हो। तुम ईश्वर के पूर्ण अंश हो। परन्तु ये सब विभिन्नतायें क्या हैं ? इस संसार में हमें लाखों विभिन्न आत्मायें मिलती हैं। ये सब क्या हैं ? जिस समय पानी के लाखों बुलबुलों पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस समय उसमें से हर एक सूर्य की प्रतिमूर्तियाँ दिखाई देती हैं। हर एक बुलबुले में सूर्य की अविकल मूर्ति परिलक्षित होती है। इस प्रकार उस समय हमें लाखों सूर्य दिखाई देते हैं, यद्यपि वास्तविक सूर्य केवल एक ही है। इस प्रकार यह माया, विशिष्ट आत्मा जो कि हममें से प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में विद्यमान है, ईश्वर की प्रतिमा मात्र है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तविक सत्ता जो कि अन्तराल में है, वह एक मात्र ईश्वर है। उसके समीप हम सभी लोग एक हैं।

इस विश्व ब्रह्माण्ड में आत्मा केवल एक है और वही हम, तुम संसार के अन्य समस्त प्राणियों के शरीर में प्रतिबिम्बित होती है और वह भिन्न-भिन्न आत्मा के रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में प्रदर्शित होती है। परन्तु हम यह बात नहीं जानते। हमारी धारणा है कि हम सब एक-दूसरे से भिन्न हैं और उससे ईश्वर से भिन्न है। जब तक हमारी यह धारणा बनी रहेगी, तब तक संसार से दु:खों का भी अन्त न होगा। यह भ्रान्ति है। इसके अतिरिक्त दु:ख, क्लेश और बहुत बड़ा कारण भय है।

भला एक व्यक्ति दूसरे के स्वार्थ का विघातक क्यों बनता है ? कारण वह डरता है कि मैं यथेष्ट सुख न प्राप्त कर सकूँगा। मनुष्य को भय रहता है यथेष्ट धन न प्राप्त कर सकूँगा। इस भय के ही कारण वह दूसरों को हानि पहुँचाता है, इसी से वह दूसरों को धोखा देता है, ठगता है। यदि समस्त विश्व में केवल एक मात्र सत्ता होती तो, भला इस प्रकार का भय क्यों होता ? यदि मेरे ऊपर वज्र गिर पड़े, तो मैं अपने ही ऊपर स्वयं भी गिर पड़ता हूँ , क्योंकि इस समस्त विश्व में मैं ही एक मात्र सत्ता हूँ। यदि प्लेग आता है, तो वह मैं हूँ, यदि कोई सिंह आता है, तो मैं हूँ, यदि मृत्यु आती है, तो वह मैं हूँ। मैं जन्म और मृत्यु दोनों ही हूँ।

विश्व में दो सत्ताओं का अस्तित्व मानने पर भय का संचार होता है। इस तरह का उपदेश हम सदा से सुनते चले आ रहे हैं कि एक-दूसरे को प्रेम करो। किसलिए ? हमें प्रत्येक व्यक्ति को प्रेम दृष्टि से क्यों देखना चाहिए ? वह इसलिए कि मैं तथा संसार के अन्य समस्त प्राणी अभिन्न हैं। मैं अपने भाई से प्रेम क्यों करूँ ? इसलिए कि वह और मैं एक हूँ। इस प्रकार समस्त विश्व के सुख-दु:ख को समान मानने में ही यह एकता है। हमारे पैरों से कुचले जाने वाले छोटे से छोटे कीड़ों से लेकर सृष्टि के बड़े से बड़े प्राणी तक पृथक्-पृथक् शरीर धारण करते हुए भी एक ही जीव हैं। सभी मुखों द्वारा तुम खाते हो, सभी हाथों के द्वारा तुम काम करते हो और सभी नेत्रों के द्वारा तुम देखते हो। इन लाखों शरीरों के द्वारा तुम स्वास्थ्य का उपयोग करते हो तथा रोगों की यंत्रणा भी सहन करते हो, जब मन में इस तरह की भावना आ जाती है और हम इसका अनुभव करने लगते हैं, तब दु:खों, क्लेशों और भयों का अन्त हो जाता है।

आत्मा का अस्तित्व झुठलाया न जाय

जड़ जगत को ही सब कुछ मान लेना और चेतना को भी जड़ के पीछे काम करने वाली हलचलों की प्रतिक्रिया समझ बैठना जड़वाद का अन्ध समर्थन मात्र है। चेतना के अस्तित्व को झुठलाया जाना अपने युग का बौद्धिक दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। जिस चेतना ने जड़ पदार्थों को आज सँभालकर उपयोगी एवं सुन्दर बनाया-जिस चेतना ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों को जाना और उनसे लाभान्वित हो सकने की स्थिति तक मनुष्य को पहुँचाया, उसी चेतना के अस्तित्व तक से हम इन्कार करने लगे तो इसे आत्म-विस्मृति के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा ?

चेतना का अस्तित्व हम शरीर के माध्यम से भी अनुभव करते हैं, पर वह उतने तक ही सीमित नहीं है। शरीर के बिना भी उसका अस्तित्व बना रहता है। प्रकृति का सूक्ष्म स्वरूप यों तो यन्त्र उपकरणों की सहायता से खोजा-पकड़ा जा सकता है, पर चेतना की परख के लिए कोई भौतिक साधन बनकर तैयार नहीं हुए हैं। वे हो भी नहीं सकेंगे क्योंकि भौतिक उपकरण अपने सहधर्मी भौतिक पदार्थों को ही पकड़ सकते हैं। शरीर और उसकी इन्द्रियाँ पंचभूत तत्त्वों से बनी हैं। इसलिए उनकी अनुभूतियाँ भी तत्त्वों से बने परमाणुपरक पदार्थों के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकालती एवं रस लेती हैं। मशीन भी प्राय: धातुओं से बनी और विद्युत जैसी भौतिक ऊर्जाओं से चलती हैं। ऐसी दशा में उनका परख क्षेत्र भी स्थूल अथवा सूक्ष्म-दृश्य अथवा अदृश्य जड़ जगत तक ही सीमाबद्ध रहता है। चेतना को तो चेतना ही अनुभव कर सकती है। चेतना को समझने का कोई यन्त्र बन सका तो वह चेतना ही होगा। आत्मा और परमात्मा को प्रयोगशालाओं में अब तक सिद्ध नहीं किया जा सका और वह भविष्य में भी सिद्ध न हो सकेगा। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने इन दोनों की सत्ता को अस्वीकार किया है। वे शरीर को चलता-फिरता पौधा मानते हैं और उसकी चेतना की मस्तिष्कीय हलचल कहते हैं। मस्तिष्क तो शरीर का ही अंग है। इसलिए वे आत्मा की परिभाषा शरीर तक ही सीमित रखते हैं और मरने के बाद आत्मा की समाप्ति की बात कहते हैं परमात्मा के सम्बन्ध में भी उनका ऐसा ही कथन है। प्रकृति व्यवस्था को वे स्वसंचालित मानते हैं। सृष्टि में चल रही विभिन्न व्यवस्थाओं को वे अपने आप-अपने ढर्रे या धुरी पर घूमती हुई कहते हैं और इसमें किसी ईश्वर का दखल स्वीकार नहीं करते।

कठिनाई यह है कि विज्ञान जगत् प्रत्यक्ष भौतिक प्रयोग-परीक्षणों को ही सब कुछ मान बैठता है और प्रयोगशालाओं की सिद्धि को ही प्रमाणिक ठहराता है जबकि तर्क और तथ्य यह भी कहते हैं कि इस विश्व के रहस्यों को-विशेषतया चेतन तथ्यों को जानने के लिए प्रयोगशालाओं की उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता।

पदार्थों में पाई जाने वाली हलचल स्वसंचालित हो सकती है यह प्रतिपादन गले नहीं उतरता। चेतन संचालक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बिना वस्तुएँ निश्चेष्ट और अस्त-व्यस्त पड़ी रहती हैं। बहुमूल्य जलयान, वायुयान, रेल इन्जन आदि बिना ड्राइवर के नहीं चलते, फिर असीम ब्रह्माण्डव्यापी अन्तर्ग्रही और सीमित परमाणु सत्ता में जो सुव्यवस्थित अनवरत गति चक्र चल रहा है, वह अनायास स्वसंचालित कैसे हो सकता है ? इसके पीछे चेतन शक्ति की प्रेरणा एवं व्यवस्था होनी आवश्यक है। इसे तर्क बुद्धि सहज ही समझ सकती है। यदि विवेक, तर्क एवं बुद्धि को भी यान्त्रिक उपकरणों की तरह ही साक्षी साधन मान लिया जाय तो फिर ईश्वर के अस्तित्व को समझने-स्वीकार करने में कोई कठिनाई न रहेगी।

आत्मा के अस्तित्व को प्रयोगशालाओं में तो सिद्ध नहीं किया जा सका, पर अन्य ऐसे अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि मरने के बाद भी जीव चेतना का अस्तित्व बना रहता है। इस तथ्य की साक्षी में प्रेतात्माओं की हलचलें तथा पुनर्जन्म की ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जो प्रमाणिक व्यक्तियों के अनुभव में आई हैं और उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता इसी प्रकार पुर्नजन्म के भी अगणित प्रमाण मिलते हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि पिछले जन्म की ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण नये जन्म में स्मरण बना रह सकता है, जो अन्य लोगों को विदित नहीं था। किसी ने सिखा-पढ़ाकर पूर्व जन्म विवरण का कौतूहल तो खड़ा नहीं कर दिया है। इस आशंका की काट उन प्रमाणों से हो जाती है, जिनमें बालकों ने अपने पूर्वजन्म के सम्बन्धियों को पहचाना और नाम लेकर पुकारा है। इसी प्रकार उनने नितान्त व्यक्तिगत ऐसी घटनाएँ सुनाई हैं, जो सम्बद्ध व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को विदित नहीं हो सकती थीं। जमीन में अपना गढ़ा हुआ धन बताकर उसे निकलवाना पूर्वस्मृति का ठोस प्रमाण समझा जा सकता है। प्रेतात्माओं के अस्तित्व और पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाणों को यदि प्रयोगशाला सिद्ध तथ्यों की तुलना में माना जा सके तो फिर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व के संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह सकती।

''दी ह्यूमन परसनैलिटी एण्ट इट्स सरवाइबल आफ बॉडिली डैथ'' नामक पुस्तक में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जो शरीर से पृथक् आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। कई उदाहरण एक व्यक्ति के शरीर पर किसी दूसरी आत्मा द्वारा आधिपत्य रखने और फिर उसे मुक्त कर देने के हैं। साथ ही संगीत, गणित, ललित कलाओं आदि में अद्भुत क्षमता व प्रवीणता वाले बच्चों के विवरण भी हैं, जिनका असाधारण ज्ञान पूर्वजन्म की संचित ज्ञानसामग्री ही सिद्ध होता है।

गणितशास्त्री ओस्पेन्स्की ने तीन ग्रन्थों में गणित के आधार पर चेतना के व्यापक अस्तित्व को सिद्ध करने का अकाट्य प्रयत्न किया है। इस सन्दर्भ में उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में 'इन सर्च ऑफ दि मिरेकुलस—टर्टियम आर्गेनथ्योरी ऑफ इन्टरनल लाइफ—अधिक प्रसिद्ध हैं।

भौतिकी के आचार्य राबर्ट मायर ने ऊर्जा के दर्शन पर जो खोजें की हैं, वे बताती हैं कि उसकी अधिकाधिक सूक्ष्म स्थिति में जो तत्त्व शेष रह जाता है, उसे चेतना की संज्ञा दी जा सकती है। यह उच्चस्तर पर एकरस और सर्वव्यापी स्थिति में बनी रहती है। उसका उत्पादन और विलयन क्रम तो स्थूल रूप से ही चलता है।

मनोविज्ञानी जे० बी० राइन ने मानवी मन:चेतना को पराजागतिक और पराभौतिक की संज्ञा दी है। वे उसका स्वरूप विद्युतीय एवं चुम्बकीय स्तर की ऐसी स्वतन्त्र इकाई के रूप में मानते हैं, जो मरने के बाद भी अपनी सत्ता बनाये रहता है। उसमें इतने प्रबल संकल्प भी जुड़े रहते हैं, जिनके सहारे पुराने स्तर की तथा नये प्रकार की किसी आकृति का सृजन और धारण कर सके। उनकी दृष्टि में यह व्यक्ति चेतना दृश्य अथवा अदृश्य स्थिति में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहने में पूर्णतया समर्थ है।

आइन्स्टीन ने सृष्टि के मूल में चेतना को सक्रिय माना था। जे० ए० थामसन, जेम्स जोन्स, ए. एस. एडिग्रन आदि ने विज्ञान की नवीन दिशाओं का अलग-अलग विवेचन करते हुए एक ही बात कही है—विज्ञान के पास जीवन के प्रारम्भ होने की कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण अब चेतना और विचार जगत की ओर बढ़ रहे हैं।

भारतीय दर्शन और संस्कृति आदिकाल से आत्मा की अखण्डता पर आस्थावान है। अणुमात्र होकर भी वह सम्पूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखता है। भावनात्मक परिष्कार से आत्मबल बढ़ता है और अपने स्वरूप को जानने वाला जीवात्मा परमात्म-सत्ता से एक रूप हो जाता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिकीविद् श्री पिपरे दि कोम्ते ने आत्मा को विश्वात्मा से सम्बन्धित बताया है तथा इसी आधार पर उसे अमर भी कहा है, क्योंकि विश्व चेतना अमर है और आत्मा उसी की छोटी इकाई मात्र है।

इलेक्ट्रोडायनेमिक सिद्धान्तों के अनुसार 'ईगो' की छानबीन की जाने पर ये तथ्य सामने आये हैं कि जन्म-मरण चक्र में भ्रमण करती हुई, भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति अपनाते हुए भी, मूल-सत्ता अक्षुण्ण रहती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभिन्न खोजों के बाद विश्वविख्यात वैज्ञानिक फ्रेड हायल तथा जयंत विष्णु नार्लीकर ने यह स्थापना की है कि विश्व रचना में कारणभूत अणु और मानवीय शरीर की संरचना में कारणभूत जीवाणु की मूल संरचना एक-सी है।

''दि सूट्स ऑफ कोइन्सिडेन्स'' के लेखक आर्थरडा कोएस्लर ने जीवसत्ता को आणविक या रासायनिक संघात से सर्वथा भिन्न माना है।

''यू डू टेक इट विद यू'' के लेखक डिविट मिलर ने मस्तिष्कीय कोषों में ही घुली हुई एक अतिरिक्त चेतना को माना है तथा उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है। यह चेतना मस्तिष्क के कोष को प्रभावित करती है।

हमारा विश्व एक विराट शक्ति-सागर है। यह शक्ति-सागर जड़-चेतन से मिश्रित है। प्राणियों की सत्ता इसमें एक बुलबुले की तरह स्वतन्त्र अस्तित्व बनाती है, विकसित होती है और समयानुसार विलीन हो जाती है।

मूर्धन्य वैज्ञानिकों की मान्यता है कि इस विराट् शक्ति-सागर में एक भौतिक शक्तिधारा है, दूसरी प्राणिज। दोनों एक अविच्छिन्न युग्म बनाती हैं।

विकासमान विज्ञान अब जीवन को रासायनिक संयोग मात्र नहीं मानता। मनश्चेतना की मरणोत्तर सत्ता तो स्वीकार ही कर ली गई है। अब चेतना जगत की स्वतन्त्र सत्ता को एक घटक मानने की बारी है।

इन दिनों ब्रह्माण्डीय चेतना की वैज्ञानिक क्षेत्रों में बहुत चर्चा है। उसे परा प्रकृति की स्वीकृति, माना जाना चाहिए। प्रकृति के दो स्तर हैं एक 'परा' दूसरा 'अपरा'। 'परा' वह है जिसे पंच भौतिक कह सकते हैं। इन्द्रिय चेतना से जो अनुभव की जा सकती है अथवा यन्त्र उपकरणों की सहायता से जो प्रत्यक्ष हो सकती है। भौतिक विज्ञान का कार्यक्षेत्र यहाँ तक सीमित है। कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक इतने को ही सब कुछ मानते थे। चेतना की व्याख्या आणविक एवं कम्पन परक हलचलों की ही प्रतिक्रिया कहते थे। अब बात आगे बढ़ गई। विज्ञान के बचपन ने किशोरावस्था में प्रवेश किया है। फलतः अपरा प्रकृति का अस्तित्व सहमते-झिझकते स्वीकार किया गया है। इस नये कार्य क्षेत्र को सूक्ष्म जगत कहा जाने लगा है। इसकी हलचलें आणविक गतिविधियाँ नहीं कही जा सकतीं और न ताप, प्रकाश शब्द के कम्पनों से उसकी कोई तुलना है। उसे समष्टि मस्तिष्क माना गया है। बल्ब में जलने वाली बिजली-अन्तरिक्ष में व्यापक विद्युत शक्ति की एक चिन्गारी समझी जाती थी और दोनों का परस्पर सघन सम्बन्ध स्वीकार किया जाता था। अब व्यष्टि मस्तिष्क की एक चिनगारी और समष्टि मस्तिष्क की व्यापक अग्नि के समकक्ष माना गया है। व्यक्तिगत मस्तिष्क की अपनी सत्ता और क्षमता है किन्तु वह सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है वरन् वह समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है जिसे इन दिनों वैज्ञानिक क्षेत्र में 'ब्रह्माण्डीय चेतना' नाम दिया गया है। व्यक्ति समाज का एक अविच्छिन्न अंग है। एकाकी रहने लगे तो भी वह समष्टि से पृथक् होने का दावा नहीं कर सकता। उसे अब तक जो ज्ञान अनुभव, संस्कार, कौशल आदि मिला है, शरीर पोषण हुआ है, वह सब समाज का ही अनुदान है। एकाकी निर्वाह में भी आखिर कुछ उपकरण तो साथ रखे ही गये हैं। माला, कमण्डल, कोपीन, कुल्हाड़ी, जैसे साधनों के बिना तो गुफा में रहने वाले भी काम नहीं चला पाते। अग्नि का आविष्कार उस एकाकी व्यक्ति ने स्वयं नहीं किया है। इस प्रकार एकान्तवासी कहलाने वाले का भूतकालीन और वर्तमान क्रियाकलाप समाज सम्बद्ध रहा। आगे भी अन्तरिक्ष में चलने वाली असंख्य व्यक्तियों की असंख्य विचार तरंगें अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करेंगी और वह स्वयं दूसरों को अपनी मनःतरंगों से प्रभावित करेगा, यह भी सामाजिक आदान-प्रदान हुआ।

व्यक्ति का शरीर निर्वाह एवं विकास समाज पर आश्रित है और अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ठीक इसी प्रकार व्यष्टि मस्तिष्क स्वतन्त्र दीखने पर भी वह समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है। युद्ध और शान्ति के दिनों वातावरण में कितना अन्तर होता है और लोक-मानस की चिन्तन प्रक्रिया में कितना उतार-चढ़ाव रहता है, यह सर्वविदित है। एक समय की लोक रुचि-मान्यता दूसरे समय से भिन्न होती है लोगों का चिन्तन-प्रवाह अपने समय में प्रायः एक ही दिशा में होता है। मनस्वी और स्वतन्त्र चिन्तकों के कुछ अपवाद तो सर्वथा पाये जाते रहते हैं पर सामान्यतः चिन्तन-प्रवाह की धारा एक ही दिशा में बहती है। अपने समय में पूर्वजों के कथन को प्रामाणिक मान लेने की श्रद्धा उखड़ रही है और तर्क तथा प्रमाणों पर आधारित बुद्धिवाद को मान्यता मिली है। किसी जमाने में त्याग बलिदान और आदर्शवाद अपनाने में मनुष्य एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा लगाता था और इस क्षेत्र में जो जितना सफल होता था, उतना ही गौरव अनुभव करता था। आज स्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। अपने समय में विलासिता की धूम है। संग्रह, उपभोग, पद प्रदर्शन के प्रलोभन को भूत हर मस्तिष्क पर छाया हुआ है। इसे लोक-मानस कहा जा सकता है। समय-समय पर कई तरह के फैशन-कई तरह के व्यसन कई तरह के क्रिया-कलाप अनायास ही पनपते और देखते-देखते एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रथा प्रचलन बन जाते हैं। सामान्य लोग उस प्रवाह में अनजाने ही बहने लगते हैं। इसे लोक-प्रवाह कहा जा सकता है।

'समूह मस्तिष्क' के अस्तित्व और उसके 'व्यक्ति मस्तिष्क' के साथ आदान-प्रदान की बात अब दिन-दिन अधिक स्पष्ट होती और अधिक प्रमाणिक बनती चली जा रही है। मनुष्य का अचेतन मन अत्यधिक अद्भुत और रहस्यमय होने की बात तथ्यरूप में स्वीकार कर ली गई है। चेतन मन की बुद्धि क्षमता उसकी तुलना में अति तुच्छ है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष में मनुष्यों के छोड़े हुए विचार और उनके आदान-प्रदान की जानकारी भी ऐसी ही उथली और कम महत्त्व की समझी जाने लगी है और रहस्यमय उस प्रवाह को माना जाने लगा है जो समष्टि की अचेतन चेतना से सम्बद्ध है।

मानवी चेतना मोटेतौर से शरीर-निर्वाह एवं अहंता की तुष्टि तथा विस्तृति में संलग्न हलचल मात्र दृष्टिगोचर होती है। उसका प्रयोजन शरीर को सुखी तथा सक्रिय बनाये रहना भर प्रतीत होता है। लगता है शरीर मुख्य है और उसकी तृप्ति, पुष्टि, सुरक्षा एवं प्रगति के लिए सरंजाम जुटाने भर के लिए उसका सृजन एवं उदय हुआ है। आमतौर से ऐसा ही समझा जाता है। उपयोग भी इसी स्तर पर होता है। मस्तिष्क का शरीर सुख के लिए जितना अधिक उपयोग हो सके उतनी ही उसकी सफलता एवं सार्थकता मानी जाती है।

गहराई में उतरने पर बात कुछ दूसरी ही दृष्टिगोचर होती है। मस्तिष्क चेतना के निवास का केन्द्रीय शक्ति संस्थान है। यहाँ ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जीव चेतना का मिलन संगम होता है और उस आदान-प्रदान के आधार पर प्राणि जगत को अनेकानेक सुविधाएँ एवं सम्वेदनाएँ उपलब्ध होती हैं। यह मस्तिष्कीय केन्द्र इतना अधिक शक्तिशाली है कि उसके माध्यम से पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का अनुभव एवं लाभ आश्चर्यजनक मात्रा में उपलब्ध किया जा सकता है।

पृथ्वी यों मोटेतौर से एकाकी लगती है। उसकी सम्पदा एवं हलचल अपनी ही परिधि में अपने ही लिए काम करती दिखाई पड़ती है, पर वस्तुत: वह अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान पर जीवित है। सूर्य की ऊर्जा का शोषण पृथ्वी का वातावरण करता है और उस ईंधन से जड़ परमाणुओं और चेतन जीवाणुओं की विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चल सकने की सामर्थ्य मिलती है। पृथ्वी अपनी विशिष्टताओं को बनाये रहने में बहुत कुछ सूर्य पर निर्भर है। दूर रहते हुए भी वह पृथ्वी को इतना उदार दुलार देता है कि उसे देखते हुए पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका जैसा रिश्ता मानने को जी करता है। पृथ्वी भी तो उसी का मुँह निहारते और परिक्रमा करते रहने में अपने जीवन की सार्थकता मानती है।

चन्द्रमा का पृथ्वी पर कितना प्रभाव पड़ता है यह समुद्र तट पर जाकर प्रतिदिन के सामान्य और पूर्णिमा, अमावस्या के ज्वार-भाटे देखकर सहज ही जाना जा सकता है। चन्द्रमा को रसराज कहा गया है। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में वनस्पतियों तथा प्राणियों में सरसता की जो घट-बढ़ होती रहती है उससे पता चलता है कि न केवल समुद्र को वरन् पृथ्वी की समग्र सरसता को वह व्यापक रूप से प्रभावित करता है।

यही बात अन्य ग्रहों की है। सौरमण्डल के ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्तर के रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े उपहार पृथ्वी को अनवरत् रूप से भेजते हैं। पृथ्वी भी चुप नहीं बैठी रहती वह भी आदान-प्रदान का शिष्टाचार और समूह-कर्त्तव्य समझती है तदनुसार अपने अनुदान अन्य ग्रहों को भेजती है। इन प्रेषणों का लाभ वे ग्रह भी उसी प्रकार उठाते हैं जिस प्रकार कि पृथ्वी उनसे। इस आदान-प्रदान का महत्त्वपूर्ण केन्द्र ध्रुवीय क्षेत्र है। अन्तर्ग्रही ही आदान-प्रदान इन्हीं छिद्रों से आते-जाते हैं। उत्तरी ध्रुव से ग्रहण की और दक्षिणी ध्रुव से विसर्जन की प्रक्रिया सम्पन्न होती रहती है। उत्तर में आदान का और दक्षिण में प्रदान का संयंत्र नियति ने फिट करके रखा है। उत्तर को मुख और दक्षिण को मलद्वार कह सकते हैं। जितना उपयोगी है उतना पचाकर पृथ्वी का शरीर अपने में धारण कर लेता है जो अनावश्यक है, उसे मलरूप में विसर्जित कर देता है। प्राणि शरीर की तरह धरती भी एक शरीर है, जिसे अपनी जीवनचर्या की सामग्री अन्तर्ग्रही शक्ति भण्डार से उपलब्ध करनी पड़ती है। शरीर को हवा, पानी और अन्न भी तो बाहर से ही उपलब्ध करना पड़ता है। अन्तर्ग्रही हाट से आवश्यक वस्तुएँ खरीदे बिना धरती की गुजर नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार प्राणी को भी अपनी सूक्ष्म चेतनात्मक उपलब्धियों के लिए अन्तर्ग्रही ब्रह्माण्डीय चेतना पर निर्भर रहना पड़ता है। मस्तिष्क मुख है। ग्रहण शक्ति उसी में है। जननेन्द्रिय विसर्जन संस्थान है। दोनों की प्राणि सत्ता को ध्रुव केन्द्र कहा जा सकता है। ऊर्ध्व केन्द्र को शिव और अध: संस्थान को शक्ति संस्थान माना गया है। इन्हें ब्रह्मवर्चस् और कुण्डलिनी केन्द्र भी कहते हैं। इनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध संतुलन ठीक बना रहे तो सब कुछ ठीक बना रहेगा और अभीष्ट प्रगति का लक्ष्य पूरा होता रहेगा। इनके बीच असन्तुलन या अवरोध उत्पन्न होने से अपच और तज्जनित अनेकों रोग-विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

इन पंक्तियों में चर्चा दक्षिण ध्रुव की नहीं, उत्तर ध्रुव की मस्तिष्क की, की जा रही है। सामान्य मस्तिष्क शरीर और उससे सम्बन्धित अनेकों प्रयोजनों पर सोचता, निर्णय करता एवं व्यवस्था बनाता है। असामान्य की स्थिति उच्चस्तरीय होती है, वह ब्रह्माण्ड चेतना के आदान-प्रदान की गति को तीव्र करता है और ऐसी उपलब्धियाँ उपार्जित कर लेता है, जिन्हें आश्चर्यजनक सिद्धियों के नाम से पुकारा जा सके।

योग साधना का प्रयोजन अपनी ससीमता को असीमता के साथ जोड़ देना है। इस प्रयोजन में जितनी ही सफलता मिलती जाती है, उतनी ही मात्रा में मनुष्य उस वैभव पर आधिपत्य जमाता जाता है, जिसके प्रभाव को हम जड़-चेतन जगत में अपने चारों ओर फैला हुआ देखते हैं। सीमाबद्ध स्थिति में हम तुच्छ और दरिद्र होते हैं, पर असीम के साथ जुड़ जाने पर महानता प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रह जाती। सम्पन्नता से—भरे-पूरे भण्डार से हमारी भागीदारी जितनी अधिक होती है उतनी ही अपनी स्थिति भी विभूतिमयी बनती चली जाती है। सिद्ध पुरुषों में देखी गई विशिष्ट क्षमताएँ और कुछ नहीं विराट् के साथ उनकी घनिष्ठता का आरम्भिक उपहार भर है। बढ़-चढ़ी स्थिति तो ऐसी बन जाती है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के बीच कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं रह जाता, दोनों समतुल्य ही दीखते हैं।

मन से छीनकर प्रधानता आत्मा को दीजिये

मनुष्य सामान्यत: जो बाह्य में देखता, सुनता और समझता है वह यथार्थ ज्ञान नहीं होता। किन्तु वह भ्रमवश उसी को यथार्थ ज्ञान मान लेता है। अवास्तविक ज्ञान को ही ज्ञान समझकर और उसके अनुसार ही अपने कार्यों को करने के कारण ही मनुष्य अपने मूल उद्देश्य सुख-शांति की दिशा में अग्रसर न होकर विपरीत दिशा में चल पड़ता है।

यथार्थ ज्ञान का अनुभावक मनुष्य का अन्तरात्मा ही है। शुद्ध, बुद्ध एवं स्वयं चेतन होने से उसको अज्ञान का अन्धकार कभी नहीं व्याप्त हो सकता। परमात्मा का अंश होने वे वह उसी की तरह सत्चित् एवं आनन्दमय है। जिस प्रकार परमात्मा के समीप असत्य की उपस्थिति असम्भव है, उसी प्रकार उसके अंश आत्मा में भी असत्य का प्रवेश सम्भव नहीं है।

मनुष्य का अन्तरात्मा जो कुछ देखता, सुनता और समझता है वही सत्य है, वही यथार्थ ज्ञान है। अन्तरात्मा से अनुशासित मनुष्य ही सत्य के दर्शन तथा यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि कर सकता है। यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर मनुष्य के सारे शोक-सन्तापों एवं दु:ख-द्वन्द्वों का स्वत: समाधान हो जाता है। जहाँ प्रकाश होगा वहाँ अन्धकार और जहाँ ज्ञान होगा वहाँ दु:ख रह ही नहीं सकता। प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है और ज्ञान की अनुपस्थिति ही दु:ख है। वस्तुत: दु:ख का कोई अपना मौलिक अस्तित्व नहीं है।

अन्तरात्मा की बात सुनना और मानना ही उसका अनुशासन है। शंका हो सकती है कि क्या मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता भी है ? हाँ, मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता है। किन्तु उसकी वाणी स्थूल, ध्वनिपूर्ण नहीं होती। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है, जिसे बाह्य एवं स्थूल श्रवणों से नहीं सुना जा सकता। मनुष्य का अन्तरात्मा बोलता है किन्तु मौन विचार स्फुरणा की भाषा में, जिसे मनुष्य अपनी कोलाहलपूर्ण मानसिक स्थिति में नहीं सुन सकता। अन्तरात्मा की वाणी सुनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का मानसिक कोलाहल बन्द हो।

अन्तरात्मा का सान्निध्य मनुष्य को उसकी आवाज सुनने योग्य बना देता है। यों तो मनुष्य की अन्तरात्मा उसमें सदा ओत-प्रोत है किन्तु वह तब तक उसका सच्चा सान्निध्य नहीं पा सकता, जब तक वह उससे परिचय नहीं करता, उसे जान नहीं पाता। परिचयहीन निकटता भी एक दूरी ही होती है। रेल-यात्रा में कन्धे से कन्धा मिलाये बैठे दो आदमी अपरिचय होने के कारण समीप होने पर भी एक-दूसरे से दूर ही होते हैं। अजनबी आदमी को छोड़ दीजिये। जिन्दगी भर एक-दूसरे के पास रहने पर भी आन्तरिक परिचय के अभाव में एक-दूसरे से दूर ही रहते हैं। वे कभी भी एक-दूसरे को ठीक से नहीं समझ पाते।

अन्तरात्मा को जानने का एक ही उपाय है कि उसके विषय में सदा जिज्ञासु एवं सचेत रहना। जो जिसके विषय में जितना अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहता है। वह उसके विषय में उतनी ही गहरी खोज करता है और निश्चय ही एक दिन उसे पा लेता है। अपनी आत्मा के विषय में अधिक से अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहिये। आप अपनी आत्मा से परिचित होंगे, उसकी वाणी सुनेंगे, सच्चा मार्ग निर्देशन पायेंगे तो अज्ञान से मुक्त होंगे और जीवन में यथार्थ सुख-शांति के अधिकारी बनेंगे।

मनुष्य जो काम करता है वह अधिकतर करता अन्त:प्रेरणा से ही है। किन्तु वह अन्त:प्रेरणा अन्तरात्मा की नहीं होती है। वह होती है मन की, जो कि स्वभावत:पतन पथगामी, चंचल, निरंकुश एवं अनुशासनहीन ही होता है। चंचल एवं उच्छृंखल मन मनुष्य के लिए यातना का महामूल है। वह इन्द्रियों द्वारा कार्य रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्फुरित होकर मनुष्य को अन्धकार की ओर ही खींच ले जाता है।

जब तक मनुष्य उच्छृंखल मन की प्रेरणा से गतिशील होता रहता है, उसकी आवाज का अनुगमन करता रहता है तब तक निरन्तर ऐसे मार्ग पर ही चलता रहता है जिस पर दुःख-द्वन्द्वों एवं शोक-संतापों की कंटकित झाड़ियाँ ही उगी रहती हैं। यथार्थ बात यह है कि मनुष्य अपने अन्तरात्मा की आवाज इसी मन के कोलाहल के कारण नहीं सुन पाता। जहाँ मन का स्वभाव उछल-कूद मचाना और शोर करने का है, वहाँ मनुष्य का अन्तरात्मा शान्त एवं सुस्थिर होता है। न तो वह मन की तरह कोलाहल कर पाता है और न उछल-कूद मचा पाता है। अपनी इसी चटुलता के कारण ही मन मनुष्य की अन्तरात्मा के आगे बना रहता है और उसे तरह-तरह की अवांछनीय प्रेरणाएँ दिया करता है। आवाज में प्रबलता एवं निर्देश में शासन का भाव रखकर मन मनुष्य को शीघ्र ही अपने अनुकूल प्रभावित कर लेता है। हठपूर्वक उसे अपना आज्ञापालक बना लेता है, जबकि शुद्ध-बुद्ध एवं शांत आत्मा कभी भी मनुष्य से किसी बात का दुराग्रह नहीं करता।

अन्तरात्मा के जिज्ञासु को चाहिये कि वह मन के कोलाहल की ओर से कान-मूँदकर अन्तरात्मा की आवाज सुनने का अभ्यास करे। जिस दिन वह अन्तरात्मा का निर्देश सुनने और पालन करने लगेगा, निश्चय ही उस दिन से यथार्थ सुख-शांति का अधिकारी बन जायेगा। जिज्ञासा की प्रबलता से मनुष्य के कान उस तन्मयता को सरलता से सिद्ध कर सकता है, जो अन्तरात्मा की आवाज सुनने में सफलतापूर्वक सहायक हो सकती है। आत्मा मनुष्य का सच्चा मित्र है। वह सदैव ही मनुष्य को सत् पथ पर चलने और कुमार्ग से सावधान रहने की चेतावनी देता रहता है। किन्तु खेद है कि मनुष्य मन के कोलाहल में खोकर उसकी आवाज पाता। किन्तु यदि मनुष्य वास्तव में उसकी आवाज सुनना चाहे तो ध्यान देने से उसी प्रकार सुन सकता है, जिस प्रकार बहुत-सी आवाजों के बीच भी उत्सुक शिशु अपनी माँ की आवाज सुनकर पहचान लेता है।

अन्तरात्मा मनुष्य का मित्र है और सदैव ही उसका हित चाहता रहता है तो फिर वह उसके लिए प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता, लुका-छिपी क्यों रहता है ? यह प्रश्न किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क में उठ सकता है। इसका सीधा-सा उत्तर यही है कि आत्मा सदा- सर्वथा प्रत्यक्ष ही रहता है। किन्तु यह मनुष्य का ही दृष्टिदोष है कि वह उसे देख नहीं पाता। सूर्य सदैव प्रत्यक्ष है, अब उसके तथा दृष्टि के बीच में कोई व्यवधान आ जाये तो सूर्य उसके लिए अप्रत्यक्ष ही है। मनुष्य तथा उसकी आत्मा के बीच मन की प्रधानता का परदा पड़ा हुआ है, जिसके कारण प्रत्यक्ष आत्मा भी मनुष्य के लिए अप्रत्यक्ष ही रहता है। यदि मनुष्य इस मन की प्रधानता की उपेक्षा कर सके तो निश्चय ही उसका अन्तरात्मा उसके लिए प्रकाश के समान ही प्रत्यक्ष हो जाये।

मन को प्रधानता देने वाले सदैव ही अपनी आत्मा से वंचित रहा करते हैं और उससे मिलने के लिए उत्सुक होने पर भी प्राप्त नहीं कर पाते। मन को प्रधानता देने वाले उसके निर्देश एवं संकेत से ही संचालित हुआ करते हैं। बहुत बार बहुत-से मनीषीजन अपने मन को साधन द्वारा शुद्ध एवं प्रबुद्ध भी कर लिया करते हैं। किन्तु तब तक भी वह शुद्ध और प्रबुद्ध मन विश्वस्त नहीं माना जा सकता, जब तक उसकी सत्ता आत्मा में अन्तर्हित नहीं हो जाती। बहुत बार तो संस्कृत एवं सुशिक्षित होकर मन और अधिक प्रबल हो जाता है, उसकी सत्ता इतनी बढ़ जाती है कि वह आत्मा को अनुशासित करने का प्रयत्न ही नहीं करता बल्कि अपने को मनुष्य का अन्तरात्मा ही घोषित करने लगता है। किन्तु आत्मा के प्रति उत्सुक मनीषीजन उसकी इस दुरभिसंधि को अच्छी तरह जानते हैं और कभी भी उसके छल में नहीं आते।

मन जितना अधिक प्रबल एवं प्रबुद्ध होता है उतना ही अधिक दुराग्रही हो जाता है। वह जो कुछ देखता, सुनता, अनुभव करता तथा स्वीकार करता है उसे ही सत्य मान लेता है और हठपूर्वक इस बात का प्रयत्न किया करता है कि जिस बात को उसने सत्य स्वीकार किया मनुष्य भी उसे सत्य माने तथा यथावत् स्वीकार कर ले। अपने आपेक्षिक ज्ञान को भी दुराग्रही मन सत्य सिद्ध करने के लिए ऐसे-ऐसे समर्थ तर्कों का अनुसन्धान कर लेता है कि जिनको सुनकर मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है और उनको स्वीकार कर लेता है। किन्तु वास्तविकता यह होती है कि मन का अनुभूत ज्ञान कभी भी सत्य नहीं हो सकता। मन की सत्ता भौतिक है, सांसारिक है अस्तु उसका अनुभव किया हुआ जड़-जन्य ज्ञान सत्य नहीं हो सकता। मन की प्रेरक प्रबलता से बचने का एक ही उपाय है कि किसी भी स्थिति में उस पर विश्वास न किया जाये और प्रधानता मन से छीनकर अन्तरात्मा को दी जाये। प्रधानता के अभाव में उसका दुराग्रह कम हो जायेगा और मनुष्य की आत्मा अमर उभरने लगेगी।

मनुष्य का मन तब तक विश्वस्त नहीं हो सकता जब तक जन्म-जन्म के संस्कारों का जमा मैल उस पर से पूर्णरूपेण धुल नहीं जाता। निर्मल हो जाने पर मन की विक्षिप्तता नष्ट हो जाती है और वह शान्त एवं सुस्थिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाता है। मन की स्तब्धता स्थिति में अन्तरात्मा की आवाज वैसे ही सुनाई देने लगती है जैसे मेघों का गर्जन बन्द हो जाने पर पपीहे की आवाज सुनाई देने लगती है। मनुष्य के मन का वांछित संस्कार तभी सम्भव है, जब उसकी प्रधानता विनष्ट कर दी जाय और आत्मा को प्रधानता देकर उसके प्रति अधिकाधिक सजग, सचेत एवं समुत्सुक बन जाये।

स्तब्ध हो जाने पर मन की कोई स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं रहती, स्तर के अनुसार या तो वह आत्मा के वशवर्ती हो जाता है अथवा सिन्धु के बिन्दु और प्रकाश के अन्धकार की तरह समाहित हो जाता है ? मन के स्तब्ध हो जाने का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि मनुष्य की अन्त:प्रेरणाओं में कोई द्वन्द्व, कोई विरोध अथवा कोई संकल्प, विकल्प ही न रहे। उसके हृदय में केवल एक निर्द्वन्द्व, निर्विघ्न, निर्विरोध एवं निश्चित विचार उठे और जिसे क्रियात्मक रूप देने में मनुष्य के मस्तिष्क में उसके अशुभ होने का सन्देह ही न रहे।

मनुष्य के वैचारिक द्वन्द्व का कारण यही होता है कि अन्तरात्मा एवं मन की विरोधी सत्ताएँ बनी रहती हैं। निश्चय ही स्वाभाविक विरोध होने से अपने धर्मानुसार मन मनुष्य को गलत रास्ते पर प्रेरित करेगा और आत्मा अवश्य ही उसका विरोध करेगा। आत्मा मनुष्य को सत्पथ पर चलने के लिए कहेगा मन उसमें वितर्क करेगा। ''किया जाये अथवा न किया जाये'' का विरोधी द्वन्द्व आत्मा के साथ मन की सत्ता बनाये रखने के कारण ही उत्पन्न होता है।

जब तक मनुष्य अपनी आत्मा द्वारा पूरी तरह अनुशासित नहीं हो पाता, आत्मा की ओर से निषेधात्मक निर्देश आते ही रहते हैं। जब तक किसी भी संकल्प का निषेध होता रहे समझना चाहिये कि अभी मन की कुछ न कुछ स्वतंत्र सत्ता बनी हुई है और वह हमको गलत रास्ते पर प्रेरित करने का प्रयत्न कर रहा है, जिसका कि आत्मा विरोध कर रही है। विरोध तो मन भी करता है किन्तु मन के उस विरोध का भी एक सूक्ष्म विरोध होता रहता है, जो कि आत्मा की ओर से होता है और जिसे थोड़ा-सा ध्यान देने पर मनुष्य अनुभव कर सकता है।

आत्मा अमर है, शाश्वत है, सत्य है इसलिए उसका विनाश नहीं हो सकता और न उसकी स्थिति ही बदल सकती है। मन भौतिक है, अनक्षर है, उसी को मरना अथवा आत्मा के वशवर्ती होकर उसी में अपने को विसर्जित करना होगा। आत्मा की आवाज सुनने और उसका साक्षात्कार करने के लिए मनुष्य मन की प्रधानता का अपहरण करके आत्मा को दें। आत्मा के प्रति सजग, सचेत व उत्सुक बनकर अपना भविष्य बनायेगा और शाश्वत सुख का अधिकारी बनेगा।

अपनी ही आत्मा सर्वत्र बिखरी पड़ी है

सुकरात कहते थे कि—सबसे बड़ा ज्ञान है—''अपने को पहचानना।'' हम बहुत कुछ जानते हैं पर अपने बारे में अनजान ही बने हुए हैं। अपने स्वरूप और लक्ष्य को भूलकर सचमुच हम अज्ञानग्रस्त रहते हैं और भव-बन्धनों में बँधते हैं। हमें किस तरह सोचना, रहना और करना चाहिए यदि इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम कर लें—तदनुरूप आचरण करें तो समझना चाहिए कि आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया और जीवन को सार्थक बनाने वाला मार्ग अपना लिया।

यूनान के स्तोइक दर्शन के अनुसार ही ब्रह्म एवं जगत दो भिन्न सत्ता नहीं है। यह संसार ब्रह्म का सजीव शरीर है। सृष्टि में संव्याप्त शक्ति एवं चेतना का बीज यह सर्वव्यापक ब्रह्म सत्ता ही है। स्तोइक दार्शनिक एपिकतेतु ने प्राणि मात्र में ईश्वर का प्रकृति अंश विद्यमान प्रतिपादित किया है और विश्व बन्धुत्व पर जोर देते हुए मानव मात्र को एक पिता की सन्तान भाई-भाई के रूप में माना है।

अद्वैतवाद के व्याख्याता आद्य शंकराचार्य ने वेदान्त की संक्षिप्त व्याख्या इन शब्दों में की है—मनुष्य को सर्वप्रथम अपने में ब्रह्म चेतना की अनुभूति करनी चाहिए, तदुपरान्त जड़ चेतन जगत में अपनी ही आत्मा का विस्तार अनुभव करना चाहिए। एक ही आत्मा को सबमें संव्याप्त की दृढ़ अनुभूति होने पर अपने पराये का भेद कहाँ सम्भव है ?

भौतिक जगत में आर्थिक, जातीय, सामाजिक राजनैतिक एवं बौद्धिक आधार पर ही समता एकता स्थापित करने के प्रयत्न चलते रहते हैं।

गीता कहती है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।
यस्मिन सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानत:।
तत्र को मोह: क: शोक एकत्वमनुपश्यत:।।

'जो सब जीवों में अपनी ही आत्मा देखता है तथा सब जीवों में अपने ही स्वरूप को देखता है, उसके भीतर किसी भी जीव के प्रति जुगुप्सा, निन्दा, द्वेष आदि का भाव ही नहीं रह पाता।'

'समस्त जीवों में एक ही आत्मा समाया हुआ है, ऐसा जानकर जिस ज्ञानी पुरुष के लिए समस्त संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना ही स्वरूप आत्मस्वरूप हो जाता है, उस एक आत्मतत्त्व का अनुभव करने वाले को किसका भय, किसका मोह, किसके लिए शोक होगा ?

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन :॥

'अर्जुन ! जो व्यक्ति ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते, चाण्डाल आदि सभी जीवों में एक ही आत्मतत्त्व का दर्शन करता है, वही पण्डित है।'

अद्वैतवाद को दूसरे शब्दों में 'एकात्मवाद' 'एक जीववाद' कहा जा सकता है, भेदभाव मिटाकर एकता उत्पन्न करने की प्रेरणा वेदान्त सिद्धान्त की है। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो ऊँच-नीच, नर-नारी, धनी-निर्धन, योग्य-अयोग्य आदि कारणों से जो अगणित भेद-विभेद फैले हुए हैं, उन्हें हटाने और सर्वजनीन एकता, समता स्थापित करने के लिए वेदान्त प्रतिपादित एकात्मवाद का—अद्वैतवाद का ही विस्तार करना पड़ेगा। उसमें ईश्वर और जीव के बीच का ही भेद-भाव नहीं मिटाया गया है। वरन् प्राणियों के बीच जो विभेद की दीवारें हैं, उन्हें भी गिराया गया है।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की वेदान्त आस्था मनुष्य में दया, करुणा, स्नेह, सद्भाव, सौजन्य का उदय कर सकती है। नागरिकता, सामाजिकता का विकास ममता और आत्मीयता के साथ जुड़ा हुआ है। इस भावना का जितना अधिक विकास होगा उतनी ही व्यक्ति की महानता बढ़ेगी और समाज की शान्ति, समृद्धि एवं सुस्थिरता में अभिवृद्धि होगी। अपने पास आत्मीयता का पारस हो तो हर लोहे जैसी काली कलूटी और अल्प मूल्य वस्तु को, व्यक्ति को, सोने जैसा सुन्दर और बहुमूल्य स्तर का बनाया जा सकता है।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ स्नेह, सौजन्य का व्यवहार वहीं तक कर सकता है, जहाँ तक कि उसकी ममता का प्रकाश फैल रहा हो। **''आत्मोपम्येन न सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन''** की मन:स्थिति वाला व्यक्ति ही दूसरों के दु:ख में अपने दु:ख की तरह दु:खी हो सकता है और दूसरों के सुख में अपने सुख की अनुभूति कर सकता है और दूसरों के सुख में अपने सुख की अनुभूति कर सकता है। ऐसी मनोभूमि में ही कोई व्यक्ति सच्चे अर्थों में लोकसेवी, परमार्थ परायण, उदार, सज्जन बन सकता है। संयम और त्याग की आकांक्षा ऐसी ही मन:स्थिति में बन पड़ेगी।

उपनिषद् ने कहा है—**'द्वितीया द्वै भयं भवति'** अर्थात्-दूसरे से ही भय होता है। संसार में—परमेश्वर से यदि अपनी आत्मीयता समावष्टि कर ली जाय तो जैसे ही परायापन मिटेगा वैसे ही 'अभय' का आनन्द मिलता बढ़ता चला जायेगा।

जीवन का सबसे बड़ा रस प्रेम है। विभिन्न व्यक्ति या पदार्थ तभी प्रिय लगते हैं, जब उनसे प्रेम होता है। उदासीनता या उपेक्षा जहाँ भी होगी वहाँ सूनेपन का, निरर्थकता का, अनुभव होगा, जिस वस्तु से भी आत्मीयता हट जायगी वह नीरस, निष्प्राण लगने लगेगी। प्रिय न कोई पदार्थ है न व्यक्ति, अपना आपा ही सबको प्रिय है। वह जहाँ कहीं—जिस किसी पर भी प्रतिबिम्बित होता है, वहीं सुन्दर, सुखद और प्रिय लगने लगता है। यदि सर्वत्र प्रिय पात्रों से भरी-पूरी दुनिया दीखती हो तो उसका एक ही उपाय है कि आत्मीयता को, प्रेम भावना को अधिकाधिक व्यापक, विस्तृत किया जाय। यह आत्म-विस्तार न केवल वैयक्तिक आनन्दानुभूति अभिवर्धन की दृष्टि से वरन् लोकमंगल की, समाज व्यवस्था की दृष्टि से भी आवश्यक है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, समृद्धि सिद्धान्त व्यक्तिगत प्रेम भावनाओं के विस्तार पर ही निर्भर है।

मनुष्य के विकास की सर्वोच्च अवस्था वह है, जहाँ ''उसके सभी सन्देह तथा वासनाएँ सदैव के लिए नष्ट हो जाती हैं, हृदय की समस्त स्वार्थपूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं तथा कारण, कार्य का, अनन्त क्रम उसके लिये समाप्त हो जाता है।''

मुण्डकोपनिषद् २।२।८ में ऋषि ने इसी स्थिति का दिग्दर्शन इस प्रकार कराया है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया: ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

इस ब्रह्म चेतना से परिपूर्ण जीवन मुक्ति स्थिति को प्राप्त करने में अस्तित्व के अन्त का भय करना निरर्थक है, वस्तुत: वह तो पूर्ण अभय की स्थिति है। डर तो दूसरे से होता है, जहाँ केवल अपना ही आपा बिखरा पड़ा हो वहाँ भयभीत होने या आशंका करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

आत्म-शक्ति का अकूत भण्डार

संसार की रचना छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर हुई है। जड़ और चेतन परमाणुओं के विचित्र संयोग से ही यह संसार गतिमान हो रहा है। जड़ परमाणुओं की शोध बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। कहते हैं जब इस परमाणु-शक्ति का पूर्णरूपेण उपयोग होने लगेगा, तब मनुष्य के लिए इस संसार में कुछ भी असंभव न रहेगा। वह स्वेच्छापूर्वक ग्रह-नक्षत्रों में ऐसे ही विचरण कर सकेगा जैसे इस पृथ्वी में एक गाँव से दूसरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गाँव को चले जाते हैं। यह शक्ति कितनी बड़ी होगी इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

जिस परमाणु की शक्ति और महत्ता इतनी बढ़-चढ़कर है, वह इतनी सूक्ष्म वस्तु है कि उसे बड़ी से बड़ी खुर्दबीन लगाकर भी देख पाना सम्भव न हुआ। केवल उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका नामांकन हुआ है। पदार्थ का सबसे छोटा से छोटा टुकड़ा जिसके और अधिक अंश न हो सकें वह 'अणु' कहलाता है। इस अणु में भी 'न्यूक्लियस' या केन्द्र पिण्ड और इसके किनारे अण्डाकार कक्षा में गति करता हुआ ''इलेक्ट्रॉन'', स्थिर न्यूट्रॉन और 'प्रोट्रॉन' से मिलकर बना हुआ परमाणु होता है, जिसको हम देख भी नहीं सकते। उस एक परमाणु का जब विस्फोट होता है तो आइन्स्टीन के 'मास कनवर्जन' सिद्धान्त के अनुसार ३३ लाख किलो कैलोरी ताप पैदा होता है। यह शक्ति एक विशाल भू-भाग को जलाकर खाक कर देने में पूर्णतया समर्थ है। अभी तो उस पर अनेकों खोजें और भी होनी शेष हैं।

प्रत्येक पदार्थ इन छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बना है। मिट्टी के छोटे-छोटे कणों का वृहत्स्वरूप यह पृथ्वी है, समुद्र का आधार पानी की एक छोटी-सी बूँद है। विशाल वट-वृक्ष का निर्माण उसके बीज के एक बहुत छोटे अंश से होता है। परमाणु एक प्रकार से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नक्शा है, जो कुछ शक्तियाँ इस सृष्टि में दिखाई देती हैं, वे सब बीज रूप में एक परमाणु में विद्यमान हैं। इस शक्ति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

जड़ परमाणु की इतनी सामर्थ्य देखकर आश्चर्य होता है पर चेतन-अणु की शक्ति उससे भी अधिक है। जड़ पदार्थ स्वाधीन नहीं होते। उनकी अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं होती। किन्तु चेतना शक्ति स्वच्छन्द है। वह पदार्थ पर शासन करती है। शासित से शासक कीशक्ति अधिक होना भी चाहिये। जड़ से चेतना का महत्त्व अधिक है, उसे जानकर ही मनुष्य के वास्तविक प्रयोजन की सिद्धि होती है।

आत्मा को विश्व-चेतना का परमाणु ही समझना चाहिये। पदार्थ के परमाणु की शक्ति का हिसाब लगा चुके हैं, उससे आत्म-शक्ति की तुलना कर सकते हैं।

संसार में जो कुछ चल रहा है, उसका सृष्टा परमात्मा अनन्त शक्तिशाली है। उसी का यह सब खेल चल रहा है इस विश्व में। परम शक्तिशाली परमात्मा की प्रत्येक शक्तियाँ हमारी अन्तरात्मा में उसी तरह समायी हुई हैं, जिस तरह वृक्ष की सम्भावना उसके बीज में होती है। उपनिषद्कार के कथन से इस आत्म-शक्ति का परिचय मिलता है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः ।
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः ।
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

अर्थात्—वह परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा रूप में विद्यमान है। वह सर्वव्यापक है, सर्वान्तर्यामी है, वही कर्मों का अधिष्ठाता है, सम्पूर्ण भूतों का निवास, सब का साक्षी, चेतन-स्वरूप और सबको जीवन देने वाला परम पवित्र और गुणातीत भी है।

सारे संसार में जो शक्ति परमात्मा की है। मनुष्य देह में वह सारी योग्यतायें जीवात्मा को उपलब्ध हैं। यह शक्तियाँ हमारी अपनी हैं किन्तु अज्ञान-वश हम उन्हें भूल चुके हैं। देह अर्थात् पदार्थ के सुखों में आसक्ति हो जाने के कारण आत्मा की इस सूक्ष्म-सत्ता की ओर हमारा ध्यान भी आकृष्ट नहीं होता। यही हमारे दुःखों का कारण है। आत्म-हीनता का कारण मनुष्य की आत्म-अज्ञानता ही है।

आत्म-ज्ञान के मूल में वह शक्ति वह सामर्थ्य और विशेषतायें सन्निहित हैं कि उन्हें यदि जाग्रत कर लिया जाय तो मनुष्य अपने आप में महामानव, देवत्व तथा परमात्मा की-सी शक्ति अनुभव कर सकता है। आत्मा वह कल्पतरु है, जिसकी छाया में बैठने से कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहती।

महापुरुषों के जीवन को फूल के समान खिला हुआ, सिंह की तरह अभय, सद्गुणों से ओत-प्रोत देखते हैं तो स्वयं भी वैसा होने की प्रसुप्त आकांक्षा जागती है। आत्मा की यह आध्यात्मिक माँग है। उसे अपनी विशेषतायें प्राप्त किये बिना सुख नहीं होता। पारलौकिक कामनाओं में डूबे रहकर हम इस मूल आकांक्षा पर पर्दा डाले हुए पड़े रहते हैं। इससे किसी भी तरह जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती।

श्रेष्ठता मनुष्य की आत्मा है। इसलिए जहाँ कहीं भी उसे श्रेष्ठता के दर्शन मिलते हैं वही आकुलता पैदा होती है। मोर के पंखों की-सी सुन्दरता पाने को हर कोई लालायित रहता है। किसी कवि की परिपूर्ण कविता पढ़कर ऐसा लगता है काश ! हम भी ऐसा ही लिख पाते। पक्षियों को आकाश में उड़ता हुआ देखकर लगता है, अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द आकाश में विचरण करने में सामर्थ्य मिली होती तो कितना अच्छा होता। यह अभिलाषायें जागती तो हैं किन्तु यह विचार नहीं करते कि यह आकांक्षा आ कहाँ से रही हैं ? आत्म-केन्द्र की ओर आपकी रुचि जागृत हो तो आपको भी अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महानता जगाने का श्रेय मिल सकता है, क्योंकि लौकिक पदार्थों में जो आकर्षण दिखाई देता है वह आत्मा के प्रभाव के कारण ही है। आत्मा की समीपता प्राप्त कर लेने पर वह सारी विशेषतायें स्वत: मिल जाती हैं, जिनके लिए मनुष्य जीवन में इतनी सारी तड़पन मची रहती है। सत्य, प्रेम, धर्म, न्याय, शील, साहस, स्नेह, दृढ़ता-उत्साह, स्फूर्ति, विद्वता, योग्यता, त्याग, तप और अन्य नैतिक सद्गुणों की चारित्रिक विशेषताओं के समाचार और दृश्य हमें रोमांचित करते हैं क्योंकि ये अपनी मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इन्हीं का अभ्यास डालने से आत्म तत्त्व की अनुभूति होती है।

आत्म-ज्ञान का सम्पादन और आत्म-केन्द्र में स्थिर रहना मनुष्य मात्र का पहला और प्रधान कर्त्तव्य है। आत्मा का ज्ञान चरित्र के विकास से मिलता है। अपनी बुराइयों को छोड़कर सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा इसी से दी जाती है कि आत्मा का आभास मिलने लगे। आत्म-सिद्धि का एक मात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीवमात्र की सेवा करना है। इन सद्गुणों का विकास न हुआ तो आत्मा की विभूतियाँ मलिनताओं में दबी हुई पड़ी रहेंगी।

बुराइयाँ आत्मा को प्रिय नहीं हैं। आप जब किसी चोर या डाकू को सजा पाते हुये देखते हैं तो आपको भय प्राप्त होता है, तुरन्त जी में आता है कि कहीं हम भी चोरी न करने लग जायँ। कसाई को जानवर काटते देखकर, शिकारी को पक्षियों को मारने की हिंसात्मक क्रिया देखकर दु:ख होता है। दुष्टता और राक्षसी प्रवृत्ति से दूर भागने का प्रयास सभी करते हैं। अनीति, अत्याचार, अन्याय, आततायीपन, द्वेष, त्रुटि, कुरूपता, चोरी, ठगी आदि के क्षण, संस्मरण तथा घटनायें बड़ी अप्रिय लगती हैं। यह अपनी मूल स्थिति के अनुरूप होता है। आत्मा कभी निकृष्ट होना नहीं चाहतीं क्योंकि उत्कृष्टता उसका सहज स्वभाव है। भय उसे इसलिए पसन्द नहीं है कि वह चिरअभय है। कुरूपता इसलिए अप्रिय है कि आत्मा का सौन्दर्य बड़ा मोहक है। यह स्थिति प्राप्त न होने तक छटपटाहट अवश्य रहेगी। असंतुष्ट होना यह व्यक्त करता है कि अभी तक आपको 'निजत्व' का ज्ञान नहीं मिला है।

देवत्व हमारी आवश्यकता है, दुष्प्रवृत्तियों से भय लगता है, पवित्रता हमें प्रिय है। अपवित्रता से दु:ख मिलता है, निश्छलता से सुख मिलता है। छल और कपट के कारण जो संकीर्ण स्वभाव बनता है, उससे अपमान मिलता है। जो कुछ श्रेष्ठ है, सार्थक है वही आत्मा है और उसी को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य है। जब तक इस बात को समझ नहीं लेते, कोई भी समस्या हल नहीं होती।

श्रेष्ठता से सुख मिलता है यह सच है, इसे प्राप्त करना ही जीवन लक्ष्य है, इसे भी मानते हैं तो सन्मार्ग और सत्प्रवृत्तियों द्वारा अपने दायित्व को जगाना पड़ेगा। प्रत्येक गुण का अमृतकुण्ड हमारी आत्मा में है इसलिए अपने आत्मभाव का परिष्कार करना पड़ेगा। आत्मीयता की भावना उठती है तो उच्च प्रवृत्तियों का प्रकाश हमारे जीवन में लहराने लगता है।

यह जागृति प्रत्येक अवस्था में अभीष्ट है। यह संसार स्वप्न की तरह है। जिस प्रकार जागने पर स्वप्न मिथ्या प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने पर लौकिक कामनायें झूठी मालूम पड़ने लगती हैं। अभी जो अपनी शक्तियों को लौकिक-संघर्षों में अपव्यय करना पड़ता है, उसे यदि पतनकारी दुष्प्रवृत्तियों से हटाकर सद्गुणों के रचनात्मक कार्यक्रमों में लगायें तो शक्तियों का सदुपयोग भी होता है और आत्मा के अकूत शक्ति भण्डार का अधिकार भी मिलने लगता है।

संसार में जो कुछ भी विभूतियाँ एवं श्रेष्ठतायें हैं उन सब में अपना आत्म-तत्त्व ही प्रवाहित हो रहा है। सत्, चित्, आनन्दस्वरूप आत्मा ही सम्पूर्ण श्रेष्ठता और सौन्दर्य का स्रोत है। जन्म और मरण का, निर्माण और विनाश का जो विश्वव्यापी खेल चल रहा है, वह विश्व-आत्मा की शक्ति का प्रतीक है। यह शक्ति पुंज हमारे भीतर भरा पड़ा है। जब तक हम उससे विमुख रहकर लौकिक कामनाओं में डूबे रहते हैं, तब तक बड़े दीन-दु:खी बने और दरिद्रता से घिरे रहते हैं, किन्तु जब पारमार्थिक जीवन की उमंग आती है तो हमारी शक्तियों का स्रोत भी उमड़ पड़ता है। तब हमारा जीवन विशाल आनन्दमय और शक्ति सम्पन्न बन जाता है।

परमाणु शक्ति से बढ़कर है आत्मसत्ता

पदार्थों को बड़ी मात्रा में एकत्रित करके अधिक वैभव, बल या सुख पाया जा सकता है, यह मान्यता अब बहुत पुरानी हो गई। मात्रा की अपेक्षा अब गुण को महत्व मिलने लगा है। जो उचित भी है। ''खोदा पहाड़ निकली चुहिया'' वाली कहावत वहाँ लागू होती है जहाँ यह सोचा जाता है कि जो जितना बड़ा है, साधन सम्पन्न है, वह उतना ही सशक्त है। शक्ति का स्रोत हर छोटे पदार्थ, व्यक्ति एवं साधन में मौजूद है। यदि हम बारीकी से ढूँढ़ना, परखना और सही रीति से प्रयुक्त करने की विद्या जान जायँ तो थोड़ी-सी सामग्री से ही प्रचुर शक्ति सम्पन्न बन सकते हैं। हमारे छोटे-छोटे व्यक्तित्व ही ऐसे महान कार्य सम्पन्न कर सकते हैं, जिन्हें देखकर दाँतों तले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उँगली दबानी पड़े। अणु से भी सूक्ष्म आत्म सत्ता की शक्ति सामर्थ्य असीम और अनन्त है।

अणु शक्ति इस तथ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित करती है। पदार्थ का छोटे से छोटा घटक 'अणु' कितना सशक्त है और वह कितने बड़े कार्य कर सकता है, इसे देखने, समझने पर इस सच्चाई को हृदयंगम करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि छोटा समझा जाने वाला व्यक्ति भी यदि अपने को पहचान सके तो जो कुछ वह है उतने का ही सही उपयोग कर सके तो वह कर सकता है, जिसके लिए सामान्य बुद्धि बहुत बड़े साधनों की आवश्यकता अनुभव करती है।

अब परमाणु पदार्थ की सबसे छोटी इकाई नहीं रहा, उसके भीतर ११० से भी अधिक सूक्ष्म ऐलिमेन्टरी पार्टिकल खोज निकाले गये हैं। इनको भी अंतिम इकाई नहीं कहा जा सकता। इनके भीतर जो सूक्ष्मता के अनुपात से अधिक रहस्यमय स्पंदन, स्फुरण भरे पड़े हैं उनका रहस्योद्घाटन होना अभी शेष है। अब विज्ञान अधिक गहराई में प्रवेश कर रहा है। पिछले दशकों के प्रतिपादन अब झुठलाये जा रहे हैं। यथा 'ईश्वर' की कल्पना का अस्तित्व पिछले दिनों प्रख्यात भौतिक विज्ञानी मोर्स तथा माइकेलसन ने सिद्ध किया था। शब्द-तरंगों के वहन करने वाले इस ईथर की खोज पर वैज्ञानिकद्वय फिट्ज गेराल्ड और लारेन्टज को बहुत ख्याति मिली थी और उनकी शोध को बहुत उपयोगी मानकर सर्वत्र मान्यता मिली थी। पर अब उसके नकारात्मक प्रबल प्रतिपादन ने विज्ञान की अन्य मान्यताओं के भी खोखली होने की आशंका उत्पन्न कर दी है। आइन्स्टीन का सापेक्षवाद अब उतना उत्साहवर्धक नहीं रहा। उसमें बहुत-सी शंकाओं और त्रुटियों की संभावना व्यक्त की जा रही है। गैलिलियो, न्यूटन आदि की मान्यताएँ अब पुरातन पंथी वर्ग की कल्पनायें ठहराई जा रही हैं।

महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में अपने ढंग से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह संसार छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यूनानी दार्शनिक देमोक्रेटस भी अणुवाद का प्रतिपादन करते थे। इससे पूर्व यह जगत पंच तत्वों का बना माना जाता था। अब यह पंच तंत्वों वाली वर्गीकरण की मान्यता बहुत छोटी पड़ जाती है। पानी अपने आप में मूल सत्ता नहीं रहा। इसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण मात्र स्वीकार किया गया है। पुरानी मान्यताएँ अपने समय में बहुत सम्मानित थीं, पर वे अब त्रुटिपूर्ण ठहरा दी गई हैं।

न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त एक सीमा तक ही सही है। यदि कोई राकेट प्रकाश की गति से एक सेकण्ड में तीन लाख किलोमीटर उड़ने लगे तो वे गुरुत्वाकर्षण नियम गलत हो जायेंगे। रेडियम धातु द्वारा उत्पन्न होने वाले विकिरण की खोज होने तक यही मान्यता थी कि पदार्थ को ऊर्जा में नहीं बदला जा सकता है। दोनों का अस्तित्व स्वतंत्र है पर अब अणु विस्फोट के पश्चात् यह स्वीकार कर लिया गया है कि पदार्थ और ऊर्जा वस्तुतः एक ही सत्ता के दो रूप हैं और उन्हें आपस में बदला जा सकता है।

क्वान्टम और मैक्सवेल के सिद्धान्तों को आइन्स्टीन की नई खोजों ने बहुत पीछे छोड़ दिया है। चुम्बक सम्बन्धी पुरातन मान्यताओं में रदरफोर्ड ने नये तथ्य जोड़े। उन्होंने सिद्ध किया कि रेडियोधर्मी विकिरण का एक भाग एक दिशा में मुड़ता है तो उसे 'अल्फा' विपरीत दिशा में मोड़ता है तो 'बीटा' और बिल्कुल न मुड़ने वाला प्रवाह 'गामा' किरणों के रूप में निस्सृत होता है। यह तीनों प्रवाह अपने-अपने ढंग के अनौखे हैं। पुरानी मान्यता का परमाणु ठोस था। पीछे उसमें भी ढोल में पोल पाई गई है। आकाश में घूमने वाले पिण्डों की तरह परमाणु के गर्भ में कुछ प्राथमिक कण भ्रमण करते हैं फिर भी उसमें खाली जगह बहुत बच जाती है। यदि इलेक्ट्रॉन रहित परमाणुओं के नाभिकों को पूरी तरह सटाकर दबाया जा सके तो एक घन सेन्टीमीटर नाभिकीय द्रव का भार १० करोड़ टन के लगभग हो जायेगा। यूरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम जैसे रेडियो सक्रिय तत्वों की सामर्थ्य तो सर्वविदित ही है। धूल मिट्टी का अत्यन्त छोटा घटक होने के कारण उसका प्रत्यक्ष मूल्य नगण्य है, पर यदि उसका वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया जा सके तो शक्ति का असाधारण स्रोत करतलगत किया जा सकता है। नाभिक में प्रसुप्त शक्ति की खोज करने वाले प्रख्यात भौतिक विज्ञानी प्रो० एनारेको के शब्दों में—"हम छोटी-छोटी वस्तुओं में उलझे पड़े हैं। वस्तुतः संसार में महान शक्तियाँ भी हैं, जिनसे सम्बन्ध बनाकर हम अपने आप को शक्तिशाली तथा और अधिक प्रसन्न बना सकते हैं।"

अणु शक्ति की झाँकी तो कर ली गई है और उसकी क्षमता के सदुपयोग या दुरुपयोग की कला भी मानव बहुत कुछ जान गया है, किन्तु जड़ अणु शक्ति से भी उच्चकोटि की चेतन शक्ति मौजूद है। जड़ से चेतन की गरिमा सर्वविदित है। अणु से भी जीवाणु की क्षमता अत्यधिक प्रचण्ड होना स्वाभाविक है। अणु समूह का थोड़ा-सा यूरेनियम इतनी ऊर्जा शक्ति उत्पन्न कर सकता है, जिससे उत्पादित विद्युत सारे क्षेत्र को प्रकाशित कर सकती है। ईश्वर की अंशधारी आत्मचेतना युक्त मानवी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व की क्षमता कितनी महान हो सकती है कितनों को प्रकाश दे सकती है, इसका अनुमान लगाया जाना कुछ कठिन नहीं होना चाहिए।

वस्तुत: अणु शक्ति से भी बढ़चढ़कर मनुष्य की चेतना शक्ति है, जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त, आत्मबोध को अन्त:करण के रूप में जाना जाता है। लगन, तत्परता, एकाग्रता, तन्मयता, निष्ठा, दृढ़ता, हिम्मत जैसे मानसिक गुण ऐसे हैं, जिनसे आधार पर अणु शक्ति से भी करोड़ों गुनी अधिक प्रखर आत्मिक शक्ति को जगाया, बढ़ाया, रोका, सँभाला और प्रयुक्त किया जा सकता है।

अणु विज्ञान से बढ़कर आत्म विज्ञान है। जड़ अणु में जब इतनी शक्ति है तो जड़ की तुलना में चेतन का जो अनुपात है, उसी हिसाब से आत्म शक्ति की महत्ता होनी चाहिए। अणु विज्ञानी अपनी उपलब्धियों पर गर्वान्वित हैं और उस सामर्थ्य को युद्ध शस्त्र से लेकर बिजली की कमी को पूरा करने जैसी योजनाओं में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। आत्मविज्ञानियों का कर्त्तव्य है कि उसी लगन और तत्परता के साथ आत्म-शक्ति की महत्ता और उपयोगिता को इस प्रकार प्रमाणित करें कि सर्वसाधारण को उसकी गरिमा समझा सकना सम्भव हो सके।

परमाणु के नाभिक की शक्ति की जानकारी से वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हैं। वे उसी का विस्फोट कराते और उस ऊर्जा को भले-बुरे प्रयोजनों में प्रयुक्त करते हैं। अध्यात्मवेत्ता योगियों की सूक्ष्म दृष्टि भी वैज्ञानिकों की तरह ही रही है। उन्होंने चेतन सत्ता के नाभिक की जानकारी कर ली है और उसमें सन्निहित ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति की त्रिवेणी को केन्द्रित कर उससे उत्पन्न सामर्थ्य को रचनात्मक दिशा में प्रयुक्त कर सकने की विधि-व्यवस्था को अध्यात्म विज्ञान कहा है। पदार्थ का परमाणु हमें सूक्ष्म से सूक्ष्म सत्ता की शक्ति की अनुभूति तो कराता है, पर वह चेतन सत्ता की जानकारी नहीं देता। भारतीय तत्व वेत्ताओं ने भी ऐसे ही चेतन परमाणु और उसके विभु नाभिक का पता लगाया है। उसे चेतन सत्ता आत्मा या ईश्वरीय प्रकाश के रूप में माना है और उसकी विस्तृत खोज की है। उपलब्धियाँ दोनों की एक तरह की हैं। उपनिषद् उसे **अणोरणीयानमहतो महीयानात्मा** (आत्मोपनिषद्-१५/१) अणु से अणु और महान से महान बताती है। योग वाशिष्ठ (५/१७/१५/५/७३/१०; ४/३३/५१) इसे मुक्ति दिलाने वाला, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, दृश्य पदार्थों से विलग रहने वाला तथा सब कुछ जानने वाला बताया गया है।

नि:सन्देह इस जड़ जगत में सर्वत्र शक्ति का विपुल सागर भरा पड़ा है। पदार्थ के कण-कण में से ऊर्जा की प्रचण्ड लहरें उठ रही हैं। इस बिखराव को समेटने और सही ढंग से प्रयुक्त करने की विद्या जब मनुष्य के हाथ लग जायेगी तो फिर अशक्तिजन्य सभी कठिनाइयों का निवारण हो जायेगा। मनुष्य के हाथ में सामर्थ्य का अजस्र स्रोत होगा। इससे भी अधिक असंख्य गुना सामर्थ्य का स्वामी तब वह बनेगा जब चेतना जगत में संव्याप्त अनन्त और उल्लास से लेकर सिद्धियों, समृद्धियों और विभूतियों को वह हस्तगत कर लेगा। जीवन चेतना के प्रत्येक घटक में समाई सत्ता को देखना, परखना, समेटना और प्रयुक्त करने की कला में निष्णात बन जायेगा। इस स्थिति में पहुँचकर ही हम नर से नारायण रूप में विकसित हो सकेंगे। अपूर्णता से पीछा छुड़ाकर पूर्ण बन सकने का जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे।

मानवी सत्ता ब्रह्माण्डीय सत्ता की प्रतिकृति है

एक परमाणु सौर मण्डल की सूक्ष्म अनुकृति है। उसका मध्य भाग केन्द्रक हमारे सूर्य सौर मण्डल का प्रतिनिधित्व करता है। परमाणु के इस केन्द्रक सूर्य के चारों ओर इलेक्ट्रॉन नामक परमाणु उसी तरह घूमते रहते हैं, जिस तरह कि सौर मण्डल के ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। सौर मण्डल के घेरे में जिस प्रकार बहुत बड़ा आकाश रहता है, उसी तरह परमाणु मण्डल के बीच भी पोल रहती है। विभिन्न सौर मण्डलों की स्थिति में एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्नता होती है। इसी प्रकार परमाणुओं के वर्गों के भीतरी भाग में भारी भिन्नता रहती है, यद्यपि वे बाहर से एक जैसे दीखते हैं। यूरेनियायस्क के एक परमाणु में ९२ इलेक्ट्रॉन होते हैं। कार्बन में उनकी संख्या केवल छ: होती है।

प्रत्येक मनुष्य एक ब्रह्माण्ड है। उसका आत्मा सूर्य है जिसके इर्द-गिर्द ग्रह-परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। मानवी काया में भ्रमण करने वाले अणु जीवाणु एक विशेष प्रकार की विद्युत उत्पन्न करते हैं।' उसी विद्युत से प्रभावित होकर मस्तिष्क से लेकर इन्द्रियाँ तथा अन्य अवयव अपना काम करते हैं। जड़ में चेतना उत्पन्न होने का माध्यम यही है। साधारणतया अणुओं में हलचल भर रहती है। चिन्तन तथा अनुभूति उनमें नहीं है। पर मानवी विद्युत जिसे 'प्राण' कहा जाता है, जड़ अणुओं के समूह में चेतना, विचारणा और अनुभूति उत्पन्न कर देती है और सजीव जीवन आरम्भ कर देती है। निर्जीव, अनुभूतिरहित जीवन तो पत्थर चट्टानों में भी रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

पृथ्वी के ध्रुवों के आस-पास चुम्बकीय आधियाँ चलती रहती हैं। अस्थिर रंग-बिरंगा प्रकाश—आरोरा वेरियस छाया रहता है। यही ध्रुव स्थान अन्य ग्रहों के विकरण, प्रकाश एवं प्रभाव को पृथ्वी पर लाता है और यहाँ विशेषताओं को अन्य लोकों तक ले जाता है। इस ध्रुवीय क्षेत्र को ब्रह्माण्ड का सम्पर्क सूत्र कह सकते हैं। इन ध्रुव केन्द्रों के माध्यम से चलने वाले अर्न्तग्रहीय प्रत्यावर्तन के बलबूते ही धरती अपनी वर्तमान परिस्थितियों में बनी हुई है। इतना ही नहीं अन्य ग्रहों की वर्तमान परिस्थितियों में भी इस भू-ध्रुवों में चलने वले अनवरत् प्रत्यावर्तन का महान योगदान है। यदि किसी कारण यह आदान-प्रदान बन्द हो जाय तो पृथ्वी की स्थिति में इतना विषम परिवर्तन होगा कि तब यहाँ जीवन का अस्तित्व भी संदिग्ध हो जायेगा। साथ ही ग्रहों की कक्षाओं और स्थितियों में परिवर्तन होने से सौर-मण्डल की प्रस्तुत गतिविधियों में भारी पुलट-उलट हो जायेगी। भू-ध्रुवों के माध्यम से होने वाला शक्ति प्रत्यावर्तन ही अपने सौर-मण्डल की वर्तमान स्थिति बनाए हुए हैं। तनिक से क्षेत्र में होने वाला तनिक-सा क्रिया-कलाप पृथ्वी, सौर-मण्डल और उस सौर मण्डल के महा सूर्य के प्रदक्षिणा क्रम में कितना भारी योगदान कर रहा है। इस तथ्य पर जितनी गहराई से विचार किया जाय उतना ही अधिक मार्मिक रहस्योद्घाटन होता चला जाता है।

मनुष्य का अन्त:करण भी ऐसा ही चेतना ध्रुव संस्थान है। उसके भीतर इच्छा शक्ति, भावना शक्ति, संकल्प शक्ति, आकर्षण शक्ति, विकर्षण शक्ति जैसा अगणित ज्ञात' और अविज्ञात क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, यदि उन्हें जागृत किया जा सके, उनका उपयोग करना सीखा जा सके तो इस विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त समस्त विभूतियाँ करतलगत हो सकती हैं। मानवी अन्त:करण सौरमण्डल को कार्य करने का पथ-प्रशस्त करते रहने वाले आकाश की तरह ही असीम है और उसमें जो कुछ भरा पड़ा है, उसे अन्तरिक्ष आकाश से कहीं अधिक शक्तिशाली समझा जाना चाहिए। दुर्भाग्य इतना ही है कि हम अपनी करतलगत सम्पदा से अपरिचित ही रहते रहे हैं।

मानवी चेतना में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ

मानवी चेतना का मोटा उपभोग वस्तुओं के उपभोग और प्राणियों के साथ व्यवहार, कौशल के रूप में ही प्रतीत होता है, पर जैसे-जैसे रहस्यमय पर्दे उठते जा रहे हैं वैसे-वैसे सिद्ध होता जा रहा है कि इस स्थूल के भीतर कोई दिव्य चेतना लोक जगमगा रहा है और उसमें प्रवेश करके बहुमूल्य रत्न-राशि ढूँढ़ लाने की क्षमता भी मनुष्य में विद्यमान है। मन को साधारणत: इच्छा, ज्ञान और क्रिया में संलग्न रखने वाली चेतना के रूप में जाना जाता रहा है, पर अब उसकी अतीन्द्रिय चेतना पर विश्वास किया जाने लगा है। ऐसे अगणित प्रमाण सामने आ रहे हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि हाड़-माँस का सोचने, बोलने वाला पिण्ड जो कर सकता है उससे कहीं अधिक परिधि मानवी चेतना की है। उसमें अति मानवी असाधारण शक्तियाँ भी सन्निहित हैं।

अमेरिका के टोरेन्टो टेलीविजन स्टूडियो में एक व्यक्ति की कल्पनाएँ मूर्तिमान रूप में किस प्रकार दिखाई देती हैं, इस रहस्य के प्रामाणिक चित्र लिये गये। ४९ वर्षीय ट्रक ड्राइवर थियोडर सेरिओस का दावा था कि उसके विचार इतने स्पष्ट होते हैं कि उन्हें शायद चित्र रूप में भी उतारा जा सके। उपरोक्त प्रयोगशाला में उसे प्रस्तुत किया गया। इसके लिए कम्पनी में बना सीलबन्द पोलारायड कैमरा खरीदा गया और फिल्म बनाने वाली कम्पनी से सीधे ही उसमें फिल्म भराई गई। यह कैमरा ऐसा है जो अपने आप ही एक मिनट में तैयार फोटो हाथ में रख देता है। यह प्रयोग उपकरण इसलिए ऐसी सावधानी के साथ प्रयुक्त किये गये कि किसी को यह सन्देह न रहे कि किसी व्यक्ति विशेष की ख्याति के लिए कोई बाजीगरी की गई है। उपकरणों की और फोटोग्राफी की शुद्धता के लिए कई साक्षी के साथ रखे गये।

थियोडर ने जो-जो कल्पनाएँ कीं मस्तिष्क के सामने लगे कैमरे ने ठीक उन्हीं चित्रों को उतार दिया। इस विशिष्टता की चर्चा जब अधिक हुई तो कोलरेडो विश्वविद्यालय ने उस व्यक्ति के सम्बन्ध में गहराई तक जाँच करने का निश्चय किया और इसके लिए डा० आइसनवद के नेतृत्व में एक विशेष विभाग ही बना दिया जो न केवल इस चमत्कार की वरन् उसके कारणों की भी जाँच करे। जाँच दो वर्ष तक चली और उसका निष्कर्ष इतना ही निकला कि उस व्यक्ति में निश्चित ही यह अद्भुत शक्ति है। उसके कारण नहीं जाने जा सके केवल कुछ सम्भावनाओं की चर्चा की गई।

यूरीगैलर को आरम्भ में बाजीगर माना जाता था पीछे उसने अपनी शक्तियों को वैज्ञानिक प्रयोग के लिए प्रस्तुत किया और उसके दावे सही निकले तो योरोप भर के पत्रों में उसकी चर्चा छापी। उसे प्रयोग प्रदर्शन के लिए योरोप भर में बुलाया गया। वह इच्छा शक्ति के चमत्कार दिखाता था। एक प्रदर्शन में उसने मजबूत अँगूठी के दो टुकड़े कर दिये। लंदन में उसने एक घड़ी को देखा जिसमें ४-४५ बज रहे थे उसने दूर बैठकर घड़ी की सुइयाँ उलटी घुमाईं और ३-१२ पर रोकी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसने दूर रखे चम्मच को बीच में से मोड़कर दुहरा कर दिया। म्युनिख प्रदर्शन में तो उसने कमाल ही कर दिया सड़कों पर दौड़ती ट्रामों और मोटरों को उसने अपने संकल्प बल से रोक कर खड़ा कर दिया और वे जहाँ की तहाँ निस्तब्ध खड़ी रह गईं।

इंग्लैण्ड के वायुयान इन्जीनियर जे० डन अपने सपनों को एक प्रकार की भविष्यवाणी सिद्ध करते रहे। उसने इस विलक्षणता की यथार्थता का पता लगाने के लिए उसे प्रस्तुत किया। उन्हें जो सपने आते थे, उन्हें वे दूसरों को नोट कराते, लोग कौतूहलपूर्वक प्रतीक्षा करते और अन्ततः एक समय ऐसा आ जाता जब स्वप्नों को एक तथ्य रूप में सिद्ध करने वाली घड़ी सामने आ पहुँचती।

रूस में अतीन्द्रिय घटनाओं को जालसाजी और किम्बदन्ती मात्र कहकर हँसी में उड़ाया जाता था, तीस वर्ष पूर्व प्रकाशिक रूसी शब्दकोश में चमत्कार की भरपूर खिल्ली उड़ाई गई थी। पर अब उस देश में ही सबसे अधिक दिलचस्पी इस दिशा में ली जा रही है और जो शोध निष्कर्ष सामने आ रहे हैं, उनसे वे लोग उसे तथ्य रूप में स्वीकार करने लगे हैं। वैज्ञानिकों की सभा में मेज पर रखी वस्तुओं को इच्छा शक्ति के आधार पर खींचने, धकेलने और इधर-उधर करने का सफल प्रदर्शन श्रीमती मिखाइलोबी ने किया तो सभी को यह मानने के लिए विवश होना पड़ा कि मनुष्य की संकल्प शक्ति में असामान्य बल हो सकता है।

'टाइम' पत्रिका ने रूस की उन तीन लड़कियों का विवरण विस्तारपूर्वक छापा था जो आँखों से पट्टी बाँधकर किसी भी वस्तु की आकृति और रंग बिना छुए बता देती थी। उनमें से एक को घोर अन्धेरे में पुस्तक पढ़कर सुना देने का कमाल हासिल है इनके नाम हैं नाडियालोवानोवा, रोशाकुले शोवा, लेनाडिलजनोवा। एक अन्य रूसी महिला नेग्या मिखेलोवना की यह विशेषता है कि वह अपने संकल्प बल से चलती घड़ियों की चाल रोक देती है, उनकी गति में तेजी या मन्दता उत्पन्न कर देती है। रूस में बाजीगरी करके जनता को भ्रम में डालने की गुंजायश नहीं है। वहाँ के जादूगरों को सबसे पहले यह घोषणा करनी पड़ती है कि यह सिर्फ धोखाधड़ी और हाथ की सफाई भर है। वहाँ अतीन्द्रिय शक्ति का दावा करने वाले को सर्वप्रथम वैज्ञानिकों की कठिन परीक्षा के लिए अपने को प्रस्तुत करना पड़ता है अन्यथा कठोर कारावास भुगतना पड़ता है।

परा मनोविज्ञान यह पता लगाने के लिए प्रयास कर रहा है कि अतीन्द्रिय क्षमता के स्रोत आखिर हैं कहाँ ? संसार भर के प्रायः प्रत्येक देश में इस प्रकार की अगणित घटनाएँ अभी भी होती रहती हैं, जिनसे मनुष्य में असामान्य क्षमताओं के होने का प्रमाण मिलता है। भूतकाल की चमत्कारी घटनाओं को किम्बदन्ती कहा जा सकता है, पर जो सामने प्रत्यक्ष खड़ा है और अपनी सच्चाई को हर कसौटी पर कसे जाने का दावा प्रस्तुत कर रहा है, उसे झुठलाया कैसे जाय ? अस्तु मस्तिष्क दिशा की एक विशेष भाग पैरासाइकोलोजी के अन्तर्गत अतीन्द्रिय शक्ति सम्बन्धी खोज सभी विकसित देशों में बड़े उत्साह के साथ चल रही है।

मनःशास्त्री के महामनीषी डा० जोसेफ राइन ने सर्वप्रथम अतीन्द्रिय विज्ञान पर अपनी वैज्ञानिक आधार पर लिखी हुई पुस्तक 'एक्ट्रा सेन्सरी पर्सेरशन' प्रकाशित कराई थी। तब से लेकर अब तक इस सन्दर्भ में शोधकार्य बहुत आगे चला गया है। डा० जोसेफ ने प्रायः ८५ हजार घटनाओं की साक्षियों का विश्लेषण करके कुछ निष्कर्ष निकाले थे। उन्होंने कहा है 'बिना संचार साधनों की सहायता के एक मन दूसरे मन को प्रभावित कर सकता है। मन में पदार्थों को प्रभावित करने की सामर्थ्य मौजूद है। मनःशक्ति की लम्बी दौड़ में दूरी ताप, ऊँचाई, गइराई अथवा अन्य कोई भौतिक कारण व्यवधान उत्पन्न नहीं करते।'

रूसी परा मनोविज्ञानवेत्ता एल० एल० वेसिलियेव ने एलेक्ट्रो मैग्नेटिज्म-एक्सरेज आदि के व्यवधान उत्पन्न करके यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि मन की दूरबोध शक्ति में उनके कारण कोई अड़चन उत्पन्न होती है या नहीं। पर पाया यही गया कि जिनमें यह शक्ति मौजूद है उनका कार्य प्रत्येक वैज्ञानिक बाधा के बावजूद यथावत् चलता रहता है। मन की क्षमता को कोई भौतिक शक्ति प्रभावित नहीं करती। इससे वह यह सोचने को बाध्य होते हैं कि मन की शक्ति कोई अभौतिक शक्ति हो सकती है।

अब विज्ञान के मूर्धन्य क्षेत्रों में यह सोचा जा रहा है कि ज्ञात पदार्थ भौतिकी से आगे कोई अविज्ञात अतिभौतिकी होनी चाहिए। तरंग यांत्रिकी, ऊर्जाणुवाद सापेक्षवाद आदि सिद्धान्तों ने पदार्थ विज्ञान को असमंजस भरे एक ऐसे गतिरोध केन्द्र पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से आगे की बात कुछ सूझ नहीं पड़ रही है। विज्ञान की भूतकालीन सरल व्याख्याओं से अब कुछ काम नहीं चल रहे हैं। वे बाल-बोध के लिए गढ़ी गई लाल बुझक्कड़ की कहानियों जैसी रह गई हैं। खोज की गहराई ने विज्ञान को उन मूल तथ्यों तक पहुँचा दिया है जहाँ से आगे क्या हो सकता है इस सन्दर्भ में कुछ भी सोच सकना सम्भव नहीं हो रहा है। इस असमंजस ने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक नई अतिभौतिकी के आविष्कार की सम्भावना को बहुत बल दिया है।

डॉ० जोसेफ राइन अपने ग्रन्थ 'दि रीच ऑफ माइन्ड' में इस सम्भावना के बीज छोड़े गये हैं कि—'भविष्य में अध्यात्म को उच्चस्तरीय विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करना पड़ेगा और एक नई अतिभौतिकी का जन्म होगा।'

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का आधार अब विज्ञानवेत्ताओं को एक विशिष्ट तत्व 'ग्रेविटी' के रूप में हाथ लगा है। यह ग्रेविटी प्रत्येक पिण्ड से निकलता है और उसकी आकर्षण शक्ति के स्तर की संरचना करता है। इसी के आधार पर एक ग्रह दूसरे को खींचता है और यह विश्व-ब्रह्माण्ड एक व्यवस्थित सम्बन्ध शृंखला में जकड़ा हुआ है।

ग्रह-नक्षत्रों की तरह ही मनुष्य में भी एक विशिष्ट विद्युत का प्रवाह निःसृत होता है। वह एक- दूसरे को बाँधता है। इस प्रकार समस्त मनुष्य जाति का प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के साथ अनजाने ही बँधा हुआ है और जिन धागों को इस बन्धन कार्य को करना पड़ता है वही एक से दूसरे तक उसकी सत्ता का भला-बुरा प्रभाव पहुँचाता है। एक व्यक्ति दूसरे के विचारों से अनायास ही परिचित और प्रभावित होता रहता है यह आगे की बात है कि वह प्रभाव कितना भारी-हल्का था और उसे किस कदर, किसने, स्वीकार या अस्वीकार किया।

आइन्स्टीन 'समग्र ज्ञान' को सामान्य ज्ञान की परिधि से आगे की बात मानते थे वे कहते थे जिज्ञासा, प्रशिक्षण, चिन्तन एवं अनुभव के आधार पर जो जाना जाता है उतना ही 'ज्ञान' नहीं है वरन् चेतना का एक विलक्षण स्तर भी है जिसे अन्तर्ज्ञान कहा जा सकता है। संसार के महान आविष्कार इस अन्तर्ज्ञान प्रज्ञा के सहारे ही मस्तिष्क पर उतरे हैं। जिन बातों का कोई आधार न था उनकी सूझ अचानक कहाँ से उतरी? इसका उत्तर सहज ही नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उसका कोई संगत एवं व्यवस्थित कारण नहीं है। रहस्यमय अनुभूतियाँ जिस प्रज्ञा से प्रादुर्भूत होती हैं, उन्हें अति मानवीय मानना पड़ेगा।

अध्यात्म शास्त्र में जिन पाँच कोशों की विवेचना की वे भौतिक विज्ञान सम्मत भी हैं। अन्नमय कोश को 'मैटर'—प्राणमय कोश को 'सेल'—मनोमय कोश को 'माइण्ड', विज्ञानमय कोश को 'पर्सनालिटी' और आनन्दमय कोश को—'इण्ट्यूशन' कहा जा सकता है।

अब तक विज्ञान मैटर के बारे में ही कुछ कहने लायक जानकारी प्राप्त कर सका है। कुछ कदम 'सेल' और 'माइण्ड' के बारे में भी बढ़े हैं। पर्सनालिटी और 'इण्ट्यूशन के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए अब वैज्ञानिकों को कटिबद्ध होना होगा। समुद्र जैसी अगाध सम्भावनाओं से युक्त मेरुदण्ड में छैः चक्रों के अति महत्त्वपूर्ण रत्न भाण्डागार अपने भीतर विद्यमान हैं; यदि उन्हें ढूँढ़ा, कुरेदा जा सके तो भौतिक जगत में जो कुछ है उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण विभूतियाँ करतलगत हो सकती हैं।

षट् चक्रों में से चार का अस्तित्व अब विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है। मूलाधार चक्र-पैल्विक प्लेक्सस, मणिपुर चक्र-सोलर प्लेक्सस, अनाहत चक्र-कार्डियल प्लेक्सस, विशुद्ध चक्र-फैरिंजियल प्लेक्सस के रूप में जाने जा चुके हैं। इनके दृश्यमान स्वरूप की झाँकी कर लेने पर अब यह पता लगाया जाना शेष है कि शरीर संचालन की सामान्य भूमिका के अतिरिक्त इनकी अतीन्द्रिय गतिविधियाँ एवं क्षमताएँ क्या हो सकती हैं।

आशा की जानी चाहिए कि स्थूल जगत से जो चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकी हैं उसकी तुलना में असंख्य गुनी दिव्य शक्तियाँ हमें अपनी अन्तःचेतना में सन्निहित मिलेंगी। उनका प्राप्त करना और सत्प्रयोजन के लिए प्रयुक्त कर सकना सम्भव हो सका तो निःसन्देह मनुष्य, नर-शरीरधारी होते हुए भी सच्चे अर्थों में देव-दिव्य सत्ता सम्पन्न सिद्ध होकर रहेगा।

चेतना को प्रखर बनायें और सामर्थ्यवान बनें

भौतिकवादी जीवन दर्शन इसलिए भ्रान्त और अपूर्ण है कि वह पंच तत्वों से बने शरीर को ही सब कुछ समझता है और खाओ, पीओ, मौज करो की रीति-नीति को ही जीवन का मूल मन्त्र मानता है। जबकि असलियत कुछ और है। बाह्य दृष्टि हिम पर्वत के उसी भाग को देखती है, जो समुद्र की सतह से ऊपर रहता है। जब उसका तीन-चौथाई भाग समुद्र के पानी में रहता है। भौतिक विज्ञान इस बाह्य स्वरूप पर जो आँखों से देखा जाता और इन्द्रियों से अनुभव किया जाता है तक ही पहुँचकर रह जाता है। वास्तविकता तो इससे अधिक अदृश्य और इन्द्रियों के अनुभव से परे है।

मान्य किया जाय या न किया जाय इससे क्या होता है? सच्चाई तो सच्चाई है और जब वह सामने आती है तो भौतिक दृष्टि से सोचने वाले हक्के-बक्के रह जाते हैं और आत्मा के अस्तित्व को, चेतना की शक्ति को न समझने के कारण हतप्रभ हो उठते हैं। घटना ७ नवम्बर, १९१८ की है। तब पहला विश्व युद्ध चल रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था। एक फ्राँन्सीसी लड़का टैड जिसका पिता फ्राँन्स के मोर्चे पर लड़ रहा था, खेलते-खेलते एकदम चिल्लाया—मेरे पिता का दम घुट रहा है। वे एक तंग कोठरी में बन्द हो गये हैं और उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है। घर के लोग कुछ भी नहीं समझ पाये। टैड इतना कहकर बेहोश हो गया था। कुछ देर बेहोश रहने के बाद उसे होश आया और वह बोला—अब वे ठीक हो जायेंगे। घर के लोगों ने टैड के बेहोश होने से पूर्व कहे गये शब्दों और बाद में होश आने पर कहे शब्दों से इतना ही अन्दाज लगाया कि टैड ने अपने पिता के सम्बन्ध में कोई दु:स्वप्न देखा होगा। बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गयी।

प्रथम विश्वयुद्ध, जब समाप्त हुआ और टैड के पिता घर लौटे तो स्वजनों को उस दिन की घटना याद आ गयी, जब टैड के पिता ने बताया कि ७ नवम्बर को मैं मरते-मरते बचा। पूछा गया कि क्या बात हुई थी तो उन्होंने बताया कि मैं उस दिन एक गैस चैम्बर में फँस गया था, जिसमें मेरा दम घुटने लगा था। मुझे दिखायी देना भी बन्द हो गया था। तभी मैंने देखा कि टैड जैसा एक लड़का उस युद्ध की विभीषिका में न जाने कहाँ से आ पहुँचा और उसने चैम्बर का मुँह खोलकर, मुझे हाथ पकड़ कर बाहर खींचा। तभी मेरी यूनिट के सैनिकों की दृष्टि मुझ पर पड़ी और उन्होंने मुझे अस्पताल पहुँचाया। यह विवरण सुनकर ही घरवालों को उस दिन टैड के चीखने, बेहोश होने तथा होश में आने पर आश्वस्त ढंग से बात करने की घटना याद आयी।

इंटली के एक पादरी अलफोन्सेस लिगाडरी के साथ २१ सितम्बर, १९७४ को ऐसी ही घटना घटी। उस दिन वे ऐसी गहरी नींद में सोये कि जगाने की बहुत कोशिशें करने के बाद भी न जगाये जा सके। यह भ्रम हुआ कि कहीं वे मर तो नहीं गये हैं। इस भ्रम की परीक्षा के लिए उनकी जाँच की गयी तो पता चला कि वे पूरी तरह जीवित हैं। कई घण्टों तक वे इसी स्थिति में रहे। उन्हें जब होश आया तो देखा कि आसपास लगभग सभी साथी सहयोगी खड़े हुए हैं। उन्होंने अपने साथियों से कहा—"मैं आपको एक बहुत ही दु:खद समाचार सुना रहा हूँ कि हमारे पूज्यनीय पोप का अभी-अभी देहान्त हो गया है।" साथियों ने कहा—"आप तो कई घण्टों से अचेत हैं, आपको कैसे यह मालूम हुआ ?"

लिगाडरी ने कहा—मैं इस देह को छोड़कर रोम गया हुआ था और अभी-अभी वहाँ से ही लौटा हूँ। उनके साथियों ने समझा कि वे कोई सपना देख कर उठे हैं और सपने में ही उन्होंने पोप की मृत्यु देखी होगी। चार दिन बाद ही यह खबर लगी कि पोप का देहान्त हो गया है और वह उसी समय हुआ जबकि लिगाडरी अचेत थे तो उनके मित्र साथी चकित रह गये।

एक स्थान पर रहते हुए भी मनुष्य अपनी आत्मा की शक्ति द्वारा दूरवर्ती क्षेत्रों में सन्देश पहुँचा सकता है। उपरोक्त घटनाओं में जाने अनजाने सूक्ष्म शरीर ही सक्रिय रहा है। यदि सूक्ष्म शरीर की शक्ति को जाग्रत कर लिया जाय तो उससे जब चाहें तब मन चाहे करतब किये जा सकते हैं। १९२९ में अल्जीरिया में कैप्टन दुबो के साथ ऐसी ही घटना घटी, जिससे सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी शक्तिमत्ता का प्रमाण मिलता है। कैप्टन दुबो जब अल्जीरिया के एक छोटे से गाँव से कुछ रोगियों को देखकर लौट रहे थे, गाँव का मुखिया अब्दुल उन्हें धन्यवाद देने के लिए उनके साथ-साथ आया, बातों ही बातों में अब्दुल ने कैप्टन से सूक्ष्म शरीर के अनेक चमत्कारों का उल्लेख कर दिया। दुबो ने अब्दुल की बातों में कोई रुचि नहीं दिखाई और उल्टे इसे गप्पबाजी कहा। इस पर अब्दुल ने कहा कि मैं इसे प्रमाणित कर सकता हूँ। कैप्टन ने जब उसकी यह बात सुनकर भी अविश्वास से सिर हिलाया तो अब्दुल कुछ देर के लिए ध्यानस्थ हुआ और फिर आँखें खोलकर बोला—आप अपने पीछे मुड़कर देखिए। जैसे ही उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्होंने दीवार पर एक ऐसी कलाकृति टँगी पायी जो उन्हें बहुत प्रिय थी और इस समय वहाँ से हजारों मील दूर पेरिस में उनके घर पर थी।

उसी दिन कैप्टन दुबो के पिता पियरे ने पेरिस की पुलिस में रिपोर्ट लिखाई कि उनके घर से १० लाख रुपये मूल्य की एक अद्वितीय कलाकृति चोरी चली गयी। पुलिस कमिश्नर पियरे के अच्छे मित्र थे, उन्होंने शिकायत मिलते ही अपने सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर कलाकृति की खोज में लगा दिये। कई दिन तक लगातार खोज चली, पर कलाकृति की खोज न की जा सकी। जिस कमरे में कलाकृति टँगी थी, उसमें किसी के जबरन प्रवेश करने या उँगलियों के निशान नहीं मिले थे। पियरे ने इस कलाकृति की चोरी की खबर अपने पुत्र को भी दी। तब सारी बात जान कर कैप्टन दुबो, पुलिस कमिश्नर और अन्य अधिकारियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

इन घटनाओं के कारण जो अनेक देशों एवं अनेक लोगों के साथ घटी हैं, वैज्ञानिकों का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। विज्ञान भी यह सोचने के लिये विवश हुआ है कि क्या स्थूल शरीर से परे भी मनुष्य का कोई अस्तित्व है, जो उसके संदेशों को सुदूर क्षेत्रों में पहुँचाता है। तथा ऐसे-ऐसे काम कर डालता है, जो शरीर द्वारा ही किये जा सकते हैं। बिना किसी स्थूल माध्यम के एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य के विचारों और देशों को पहुँचाने की इस प्रक्रिया का नाम है, परामानसिक संचार (टैलीपेथी)। रूस के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में फिजियोलौजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलयेव ने अभी कुछ समय पूर्व एक अनूठा प्रयोग किया है। स्मरणीय रहे रूस का शासनतंत्र धर्म, ईश्वर और आत्मतत्व की मान्यता को न केवल अनावश्यक मानता है वरन् उसे अफीम भी बताता है। फिर भी इस तरह की घटनाओं के कारण वास्तविकता की ओर उनका ध्यान गये बिना नहीं रहा। प्रो० वासिलयेव ने टैलीपेथी द्वारा कई मील दूर स्थित एक प्रयोगशाला में कार्यरत अनुसंधानकर्त्ताओं को सम्मोहित कर दिया और वे लोग जो प्रयोग कर रहे थे, उनसे वह प्रयोग छुड़वा कर किसी दूसरे प्रयोग में लगा दिया। अनुसंधानकर्त्ता वैज्ञानिक अनजाने में ही परवश से होकर वासिलयेव के सन्देशों का पालन करने लगे और उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे क्या कर रहे हैं? इस प्रयोग के द्वारा प्रो० वासिलयेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को केवल अपने संकल्पों के द्वारा ही प्रभावित कर सकता है और उसे अपना आज्ञानुवर्ती बना लेता है। इसके लिए न किसी भौतिक माध्यम की आवश्यकता होती है तथा न ही किसी और साधन की। यहाँ तक कि स्थान की दूरी भी इस प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करती।

स्थूल शरीर से परे मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व अब विज्ञान द्वारा भी प्रभावित होने लगा है। सन् १९६३ से अब तक रूस के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कई सफल प्रयोग किये हैं। वहाँ के एक इलेक्ट्रॉन विशेषज्ञ से मयोन किर्लियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी वेलिण्टाना के सहयोग से फोटोग्राफी की एक विशिष्ट प्रविधि का आविष्कार किया। इस विधि द्वारा सजीव प्राणियों के आस-पास होने वाले सूक्ष्म कम्पनों और देह ऊर्जा के क्रिया-कलापों का छायांकन किया जा सकता है।

एक-दूसरे प्रयोग में किर्लियान दम्पत्ति ने एक रुग्ण पत्नी की फिल्म खींची। इसमें प्रकाश कणों का वह वलय आरम्भ से जीर्ण था और वह शीघ्र ही समाप्त भी हो गया। अगले प्रयोग में किर्लियान दम्पत्ति ने एक मनुष्य के पास से उसके शरीर के चित्र इसी विशेष विधि से लिये। ये छाया चित्र उसके शरीर के विभिन्न भागों के लिये गये थे। गर्दन, हृदय और उदर प्रदेश के अत्यन्त निकट से खींचे गये इन चित्रों में बहुत ही सूक्ष्म धब्बे दिखाई दिये, जो इन अंगों से विसर्जित होने वाली विद्युतीय ऊर्जा के द्योतक थे। इन छाया चित्रों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला प्राकृतिक अथवा भौतिक जो आँखों से दिखाई देता है। और दूसरा सूक्ष्म शरीर जिसकी सब विशेषतायें प्राकृतिक शरीर जैसी होती हैं, पर जो दिखाई नहीं देता। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह सूक्ष्म शरीर ऐसे सूक्ष्म पदार्थों से बना होता है जिनके इलेक्ट्रॉन ठोस शरीर के इलेक्ट्रॉनों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से चलायमान होते हैं। उनके अनुसार सूक्ष्म शरीर, भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

रूस के अतिरिक्त अमेरिका में भी इस विषय पर काफी वैज्ञानिक खोजें चल रही हैं। न्यूयार्क राज्य विश्वविद्यालय ने परामानसिक तत्वों की खोज के लिए एक स्वतन्त्र विभाग भी खोला है जिसके अध्यक्ष डॉ० राबर्ट वेफर हैं। अधिकांश लोगों का दृष्टि केन्द्र चर्मचक्षुओं से दिखाई पड़ने वाला भौतिक शरीर है और वे इसी की सुख-सुविधा के लिए सारे जोड़-तोड़ बिठाते रहते हैं। सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया जाय तो काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जब मनुष्य केवल इस शरीर को ही सुखी बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करेगा वरन् वह अपनी आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होगा। भारतीय अध्यात्म इस क्षेत्र में पहले ही काफी आगे बढ़ चुका है। कहना न होगा, प्राचीनकाल में जन-सामान्य का सदाचार निष्ठ और सत्यपरायण होना अध्यात्म के गहन आधारों पर अवलम्बित रहने का सुपरिणाम ही था।

अन्तर्सत्ता का प्रचण्ड सूक्ष्मीकरण पुरुषार्थ

सूक्ष्म जगत की संरचना वैज्ञानिकों के लिये उतनी ही बड़ी चुनौती है जितनी कि मानवी काया के अविज्ञात रहस्यमय क्रिया-कलाप। प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक फ्रेड व्हाइल के अनुसार परमाणु जो पदार्थ की एक इकाई है, इतने सूक्ष्म होते हैं कि दस अरब परमाणुओं को यदि एक के ऊपर एक सीधी रेखा में खड़ा कर दिया जाय तब वे मनुष्य की ऊँचाई के बराबर होंगे। एक वयस्क मनुष्य में सात घात सत्ताइस शून्य जितने सूक्ष्मतम घटक परमाणु होते हैं एवं प्रत्येक के अन्दर एक नाभिक होता है जो परमाणु के अन्दर दस खरब वें भाग के बराबर स्थान घेरती है।

मानवी इन्द्रियाँ एक मर्यादा से बँधी हुई हैं। वे निश्चित लम्बाई व आवृत्ति की तरंगें देख या सुन पाती हैं। इससे सूक्ष्म स्थिति के लिये वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों का सहारा लेते हैं। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप जैसे यन्त्रों के बावजूद अभी भी सूक्ष्मतम घटकों को देखा जा सकना सम्भव नहीं हुआ है। ये तथ्य बताते हैं कि सूक्ष्म जगत कितना विलक्षण, विराट् एवं विचार जगत से परे है। योगी-ऋषि आत्मसत्ता का सूक्ष्मीकरण कर जीवन्मुक्त स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ही इस परोक्ष सत्ता से, समष्टि चेतना से स्वयं को एकाकार कर लेते हैं एवं उन क्रिया-कलापों को देख पाने, उनमें भाग ले पाने में सक्षम हो पाते हैं जो भविष्य के गर्भ में विकास को पाने की स्थिति में होते हैं। इसी कारण उन्हें सूक्ष्म दृष्टा दृष्टि सम्पन्न महामानव कहा जाता है। ऐसी स्थिति में उनकी सत्ता बहुगुणित हो जाती है और अनेकानेक भूमिकाएँ एक ही समय में एक साथ निभा पाने में समर्थ हो पाती हैं।

सूक्ष्म की सामर्थ्य को चेतना के परिप्रेक्ष्य में समझने से पूर्व जड़ जगत में ही देखें तो विस्मित होकर रह जाना पड़ता है। रेत का छोटा-सा कण आँखों से देखने पर नगण्य मूल्य का होता है। लेकिन जब इसे अणु व परमाणु के रूप में विखण्डित कर लिया जाता है तो तुच्छ से घटक में महान शक्ति छिपी पाते हैं। यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि परमाणु ऊर्जा के दोहन में मात्र उसका एक लाखवाँ भाग प्रयुक्त होता है। जो शक्ति निस्सृत होती है, वह असीम होती है। इस सन्दर्भ में यूरेनियम धातु का उदाहरण महत्त्वपूर्ण है। रेडियो किरणें छोड़ने वाली यह बहुमूल्य धातु शोधन उपचार के उपरान्त बहुत शक्तिशाली बन जाती है। इस धातु का एक घन फुट टुकड़ा भार में लगभग आधा टन होता है। जब इसके परमाणुओं पर न्यूट्रॉन कणों की बौछार की जाती है तो नाभिकीय विखण्डन प्रक्रिया से शक्तिशाली ध्वंस करने में समर्थ परमाणु बम तैयार होता है। इस ऊर्जा का प्रयोग सारे भूमण्डल को नष्ट करने हेतु भी हो सकता है जबकि विधेयात्मक सुनियोजन पर इसकी एक पौण्ड मात्रा इतनी ऊर्जा पैदा कर सकती है जो ३० लाख पौण्ड कोयले को जलाने पर प्राप्त होती है।

मनुष्य की अर्न्तसत्ता की तुलना इस यूरेनियम धातु से की जा सकती है जिस पर ब्राह्मी सत्ता की किरणों की वर्षा होने पर वह सूक्ष्मीकृत, विखण्डित होती चली जाती है एवं विराट् शक्ति का पुंज बन जाती है। दृश्यमान पदार्थ व ऊर्जा का भेद मात्र अवस्था का ही भेद है। इन्द्रियातीत स्थिति में योग साधनाजन्य ऊर्जा दृश्यमान काया का ही परिवर्तित रूप है जो तेजस् , वर्चस् के रूप में बहुमूल्य निधि की भूमिका निभाती देखी जाती है। **''अणोरणीयान महतो महीयान''** का श्रुति वचन इसी तथ्य का साक्षी है कि लघुतम से घटक में महानतम सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं। इसीलिये श्रुति में ऋषि कह बैठते हैं—

''यो सावसा पुरुषः सोऽहमस्मि''

अर्थात्-''सूर्य में जो परम पुरुष है, वह मैं हूँ। सूर्य में अर्थात् ब्राह्मी चेतना के विराट् समुच्चय में जो आध्यात्मिक तत्व है, वही मुझ में भी है। आध्यात्मिक दृष्टि से हम दोनों एक हैं, कहीं कोई भेद नहीं है।''

प्रसंग सूक्ष्मीकरण साधना का है। इस सन्दर्भ में मानवी काया का नहीं, चेतन सत्ता की गरिमा का महत्त्व है। जड़ पदार्थों पर लागू सूक्ष्मीकरण सिद्धान्त जब चेतना क्षेत्र में प्रयुक्त होता है तो उसकी चमत्कारी परिणतियाँ देखने में आती हैं। सुगठित अंग अथवा गौरवर्ण काया मनुष्य की महत्ता नहीं बढ़ाते, उसकी ज्ञान-गरिमा एवं भाव-सम्वेदना की प्रखरता ही उसे आत्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाते हैं। ज्ञान को मस्तिष्क रूपी खरल में जितना घोंटा जाता है, साधना, स्वाध्याय-सत्संग द्वारा जितना प्रखर बनाया जाता है, उतना ही वह सूक्ष्मतम बनते हुए मस्तिष्क कोष्ठों में समाहित होता जाता व मनुष्य को प्रज्ञावान बनाता है। यही ज्ञान की पूँजी जन्म-जन्मान्तरों के लिये फिक्स्ड डिपॉजिट का काम करती है। आगामी जन्मों लोकोत्तर जीवन, वर्तमान जीवन में सूक्ष्म स्थिति में अनेकों महत्त्वपूर्ण कार्यों हेतु यही ज्ञान-निधि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अल्पायु में विशेष प्रतिभा के जितने उदाहरण मिलते हैं, उनमें स्थूल मस्तिष्क की संरचना-विशिष्टता को नहीं, मन की सूक्ष्म परतों में निहित ज्ञान की पूर्व जन्मों में अर्जित सम्पदा को महत्ता दी जानी चाहिए। आइन्स्टीन, हाइजेन वर्ग, रवीन्द्रनाथ ठाकुर सी० वी० रमन, जगदीश चन्द्र बसु प्रभृति प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एक जन्म की अकेले की नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की ज्ञान साधना की उपज होते हैं। विधाता का नियम है कि वह पूर्वजन्मों की घटनाक्रमों की स्थूल मस्तिष्क को विस्मृति करा देता है। लेकिन अपवाद रूप में आग के शोलों के रूप में कुछ महापुरुषों में जब-जब मस्तिष्कीय भाण्डागार का अपवाद रूप में प्रस्फुटन होता है वहाँ भौतिकीविद् स्तम्भित होकर रह जाते हैं। वे स्थूल मस्तिष्क में उन विशेषताओं को ढूँढ़ते हैं जो वहाँ हैं ही नहीं, वे तो चेतना की गहन सूक्ष्म परतों में निहित होती हैं। जब खोजा ही गलत जाएगा, तो मिलेगा क्या ? सूक्ष्म चेतना के इस स्वरूप पर अनुसन्धान किए बिना मानवी विलक्षणताओं एवं सामर्थ्य के विस्तारों पर प्रकाश पड़ने वाला है नहीं ?

भाव-सम्वेदनाएँ आस्था केन्द्र के गहन अन्तराल से उद्भूत होती हैं। वे चेतना के सबसे गहरे धरातल से उपजी होने के कारण विचारणा से सूक्ष्मतम होती है। इनकी संरचना के विषय में वैज्ञानिक अनभिज्ञ हैं। किन्तु भावनाओं की प्रतिक्रिया को शरीर के क्रिया-कलापों एवं बहिरंग में अनायास ही देखा जा सकता है। भावना के रसायन शास्त्र को प्रतीक रूप में, कुछ अन्तःस्रावी रसों, न्यूरो ह्यूमरल स्रावों के रूप में रक्त में, नर्व-सिनेप्सों में उभरा देखा जा सकता है। प्रसन्नता एवं दुःख के आँसुओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के स्वरूप को सीटी स्फैन, इकोएनसेफेलो ग्राफी, न्यूरोकेमीस्ट्री, न्यूरोहिस्टो पैथालॉजी से नहीं जाना जा सकता। यौन उन्माद-कामोत्तेजना एवं नारी का माता के रूप में, ममतामय रूप कहाँ व कैसे विभाजन रेखा को पार करता है, इसे स्नायु रसायन शास्त्र नहीं समझा सकता। सूक्ष्म की महत्ता की यह झलक-झाँकी भर है, जिसे अनुभूत भर किया जा सकता है पर चर्म-चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता।

सूक्ष्मीकरण अध्यात्म विद्या की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे ऋषि-मुनिगण समय-समय पर अपनाते रहे हैं। इसे अन्तर्मुखी साधना कहा जा सकता है जो युग समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में समष्टि चेतना को मथने के लिये सम्पादित की जाती है। यह साधना रई की भूमिका निभाती हैं जो महाकाल के इशारे पर युग ऋषियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। प्रत्यक्ष में तो कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता लेकिन इससे परोक्ष वातावरण बनता है एवं परमाणु विखण्डन की पूर्व भूमिका बनती है। चेतना के समुद्र का यह मन्थन नियन्ता की विधि-व्यवस्था का ही एक अंग है, जिसे सम्पन्न करने ऋषि आत्माएँ स्वयं आगे आती हैं।

आज की विषम परिस्थितियों में उस प्रचण्ड तप पुरुषार्थ की अप्रतिम भूमिका है। चारों ओर अनास्था के दावानल में जलती मानव जाति को त्राण दिलाने हेतु ऋषि परम्परा के नूतन संस्करण के रूप में युग ऋषि का जो साधना क्रम चल रहा है वह ऐसी ही प्रक्रिया का एक अंग है। इसमें सहभागी बनने हेतु जन्मी जाग्रतात्माएँ जो भूमिकाएँ निभाएँगी, वह समय के दृश्य पटल पर शीघ्र ही परिलक्षित होगा।

मानवी सत्ता -हर दृष्टि से अनुपम, अद्भुत एवं आश्चर्यजनक

बाजीगर कभी-कभी ऐसे अनौखे खेल दिखाते हैं कि बच्चे तो क्या, बड़े-बड़े भी चकित रह जाते हैं और उन रहस्यों एवं करामातों के सम्बन्ध में हतप्रभ होकर रह जाते हैं ? कि यह सब किस आधार पर, क्यों कर प्रदर्शित किया गया।

भगवान की कलाकृतियाँ सदा आँखों के आगे गुजरती रहती हैं इसलिए वे एक प्रकार से अभ्यास में सम्मिलित हो जाती हैं और साधारण एवं स्वाभाविक लगती हैं। पर गम्भीरतापूर्वक उन्हें देखा जाय तो प्रतीत होगा कि यहाँ सब कुछ आश्चर्य ही आश्चर्य है। आसमान, सूरज, चाँद, सितारे, बादलों के घटाटोप उनका बरसना और कड़कना लगता है कि यह किसी बड़े शक्तिशाली एवं असाधारण बुद्धि वाले का कौशल है। धरती पर ऊँचे पर्वत और नीचे समुद्र अपनी अनौखी छटा दिखाते हैं। बीच-बीच में जलाशय, घने जंगल, लम्बे रेगिस्तान और नदियों का प्रवाह देखकर चकित रह जाना पड़ता है कि आखिर यह सब कैसे सम्भव हो सका। इस भिन्नता भरी संरचना का निर्माण किन हाथों से किन उपकरणों के सहारे बन पड़ा।

प्राणियों की आकृति और प्रकृति और भी हैरत भरी है। मिट्टी में रहकर वनस्पति उत्पादन में सहायता करने वाले अदृश्य सूक्ष्म, जीवी, पानी में रहने वाले अदृश्य कीटाणु, झींगुर, टिड्डी से लेकर गरुड़ जैसे पक्षी और हाथी, व्हेल जैसे प्राणियों का चित्र-विचित्र निर्माण ही नहीं, आहार-विहार के साधन भी इस प्रकार बनाये गये हैं कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और कठिनाइयों का निराकरण आसानी से कर सकें।

इसके उपरान्त आता है, सर्वोच्च श्रेणी का प्राणी मनुष्य। उसकी शारीरिक संरचना इतनी सूक्ष्म, इतनी विचित्र और इतनी अद्भुत है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है कि समझ में नहीं आता कि सागर को गागर में किस तरह भरा गया। ब्रह्माण्ड के सुविस्तृत घटकों की इस छोटी-सी काया में किस प्रकार समाविष्टि किया गया। किस प्रकार विशाल ब्रह्माण्ड की छोटी किन्तु समग्र इकाई के रूप में इस काय-कलेवर के कण-कण में अनौखापन भरा गया यह देखते ही बनता है।

इतना ही नहीं कि सृष्टा ने अपनी निज की सत्ता और विलक्षणता भी मनुष्य को उत्तराधिकारी युवराज के रूप में प्रदान की है। परन्तु इतनी सतर्कता भी रखी है कि कहीं इसका अत्यधिक दुरुपयोग न होने लगे। इसलिए विभूतियों को इतनी कुशलता के साथ छिपाया है कि साधारणों को उनका आभास तक न मिले किन्तु अर्न्तमुखी हो गईं। पनडुब्बों की तरह गहरे उतर सकें तो बहुमूल्य मणि-मुक्तक टोकरे भर-भरकर समेट सकें।

मनुष्य प्रत्यक्षत: गया-गुजरा प्राणी है। वह न जल में डूबा रह सकता है, न आसमान में पक्षियों की तरह उड़ सकता है। बन्दर की तरह वह पेड़ पर भी नहीं चढ़ सकता। प्रतिद्वन्द्विता में छोटे से रोग-वायरस ही उसका कचूमर निकाल सकते हैं। हिरन की तरह, छलाँग मारना और घोड़े की तरह दौड़ना तो उसके वश की बात है ही नहीं। टक्कर में असंख्य जीव-जन्तु ऐसे हैं जो उसे देखते-देखते धराशायी कर सकते हैं। इतने पर भी वह सृष्टि का मुकट मणि है। अपने पराक्रम के बलबूते नहीं, मिले हुए दिव्य अनुदानों के आधार पर। शरीर की संरचना ही देखिए। हाथों का इतनी जगह से इस प्रकार मुड़ना और इतनी उँगलियों का होना ऐसी विलक्षणता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसी अन्य किसी प्राणी में नहीं मिल सकती। शरीर को सीधा होकर चलने में मेरुदण्ड की आर्चेज ऑफ फुट की जो समर्थता है, उसकी तुलना में कोई प्राणी नहीं ठहरता। सामान्य संरचना की तुलना में कितने ऊँचे स्तर के कौशल वह दिखा सकता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन ओलम्पिक खेलों और सधे हुए सरकस खिलाड़ियों के करतब देखकर जाना जा सकता है कि इस काया को कितना साधा और कितना समुन्नत बनाया जा सकता है।

एक कदम और आगे बढ़ें तो उसका कौशल वैज्ञानिकों के प्रकृति के गहरे परतों को खोलकर एक से एक बढ़कर आविष्कार करने की कृतियों में देखा जा सकता है। सृष्टि के अन्य प्राणी जहाँ जलती आग को देखकर मुसीबत मानते हैं और देखते ही भाग खड़े होते हैं वहाँ मनुष्य है जो मृत्यु की सहेली बिजली को घरेलू सेविका की तरह काम करते रहने और दिन-रात में कभी छुट्टी न माँगने पर विवश करता है। देश-देशान्तरों के मध्यवर्ती दूरी को समाप्त करके रख देने वाले टेलीफोन, टेलेक्स, रेडियो, टेलीविजन, प्रक्षेपणास्त्र, वायुयान आदि साधनों के माध्यम से मीलों की लम्बाई वाली दूरी का कोई अस्तित्व नहीं रहा। वर्षों में हो सकने वाला कार्य मिनटों और सैकिण्डों में पूरा किया जा सकता है।

शल्य क्रिया ने यह सम्भव कर दिया है कि गोलियों से बिंधे हुए व्यक्ति भी बचाये जा सकते हैं। अंगों का प्रत्यारोपण हो सकता है। अपंगों को कार्य कर सकने योग्य बनाने के लिए अनेकों उपकरण बन चुके हैं। यह चिकित्सा क्षेत्र की करामात है। महादैत्यों और विश्वकर्माओं को चुनौती देने वाले विशालकाय कल-कारखाने मनुष्य की प्रतिभा से ही खड़े किये गये हैं। पूर्वकाल में देवलोक में इन्द्र के पास एक वज्र था। अब अणु बमों और हाइड्रोजन बमों के रूप में ऐसे हजारों वज्र बनाकर अपनी तिजोरियों में बन्द कर रखें हैं। कभी तान्त्रिक सम्मोहक स्त्री का प्रयोग करके जीवितों को मृतकवत् बना देते थे आज उस कार्य को क्लोरोफार्म, पैथीडीन आदि अनेकों रसायन बाजार में उपलब्ध हैं। सोमरस पीकर कभी देवता अलौकिक अनुभूतियों का रसास्वादन करते थे। अब हीरोइन, हशीश, चरस की इतनी किस्में चल पड़ी हैं जो सेवन- कर्त्ता को किसी विचित्र लोक में पहुँचा देती हैं।

लेखन और भाषण उसकी विलक्षण उपलब्धि है। तत्वज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करके उसने धर्म, अध्यात्म, मनोविज्ञान ही नहीं गढ़ा है वरन् ईश्वर को भी अपनी मनमानी आकृति एवं प्रकृति का गढ़ा है। यह ठीक है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है पर उससे भी अधिक सत्य है कि ईश्वर को मनुष्य ने ही गढ़ा है। सृष्टि के असंख्य प्राणियों को उसकी सत्ता के सम्बन्ध में ज्ञान तक नहीं है।

अन्तरिक्ष को उसने धरती के समान अपना कार्यक्षेत्र बना लिया है। देवता समझे जाने वाले चन्द्रमा का कोना-कोना छान डालने वाले और उसे सिर्फ एक घूमता हुआ मृतिका पिण्ड सिद्ध करने वाला मनुष्य ही है। सौरमण्डल की जामा तलाशी उसने ले ली है और इसके आगे ब्रह्माण्ड की टोह लेने का उसका हौसला देखने ही योग्य है। प्रकृति के बहुत कम रहस्य उसकी जानकारी से बाहर रह पाये हैं। लैसर किरणों जैसी शक्तियाँ उसने हस्तगत कर ली हैं। और वह दिन दूर नहीं जब वह प्राणियों का मुकुट मणि ही नहीं प्रकृति का अधिष्ठाता भी बन सकेगा।

कभी दैत्य, देवताओं और अवतारों को दिव्य सत्ताओं द्वारा शक्तियाँ हस्तगत करनी पड़ती हैं और इसके लिए प्रचण्ड तप का आश्रय लेना पड़ता था। आज अस्त्रों और कुटिलताओं, उद्दण्डताओं के सहारे मनुष्य ने भूतकालीन दैत्यों की तुलना में अपने को वरिष्ठ ही सिद्ध करके दिखा दिया है। इतिहास के विगत दिनों में ही ऐसे दैत्य उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी सनकें पूरी करने के लिए लाखों-करोड़ों को अपने दाँतों से पीस डाला, उनके आतंक और कृत्यों को देखकर रावण, कुम्भकरण जैसे भी पराभूत होकर एक कोने में बैठ सकते हैं

प्रश्न देवताओं और अवतारों का है। लगता है मनुष्य को वह भूमिका निभाने में देर लगेगी किन्तु बुद्धों, गाँधियों की परम्परा निकट भविष्य में कार्यान्वित होने जा रही है तब मनुष्य ही दृश्यमान देवताओं की तरह सर्वसाधारण के परिचय क्षेत्र में होगा। उन्हीं में से कुछ विश्व को काया-कल्प कर सकने में समर्थ अवतार भी हो सकते हैं।

आदिमकाल के अनगढ़ और आज के सुविकसित मनुष्य में जमीन-आसमान जितना अन्तर है। कभी देवता चूहे और हंस की सवारी करते थे अब मोटर और वायुयान अपेक्षाकृत अधिक सशक्त वाहन हैं। सरस्वती ने आदमी की आधीनता स्वीकार कर ली है। प्रेस और प्रकाशन होते ही ज्ञान की देवी सरस्वती को पेन्शन देकर मनुष्य ने उस पद को अपने आधिपत्य में ले लिया है। विचारों के विस्तार के स्वामी गणेश अब घुड़-दौड़ में रेडियो, टेलीविजन में पीछे रह गये हैं।

यह सब क्या है? यह मनुष्य के रहस्यमय मस्तिष्क के प्रायः सोलहवें भाग की करामात है। परामनोविज्ञान ने पता लगाया है कि अतीन्द्रिय क्षमताओं के भंडारों में खोपड़ी में कैद लिवलिवा पदार्थ भरा पड़ा है। अतीन्द्रिय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षमतायें मात्र ऋषियों को ही उपलब्ध हों ऐसी बात नहीं। अनेकों उस सम्पदा को लेकर जन्म के आरम्भ से ही आते हैं और भविष्य कथन से लेकर अदृश्य दर्शन के ऐसे विवरण बताते हैं जिन्हें देखते हुए वह अविश्वास उठ गया जो मनुष्य की सीमित शक्ति से प्रतिबद्ध मानता था।

यह प्रतिपादन ऋषियों और शास्त्रकारों का ही नहीं कि मनुष्य की काया एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला है। उस अभिमत से भौतिक विज्ञानी और तत्वज्ञानी भी सहमत हो गये हैं। संसार में अनेकों प्रयोगशालाएँ हैं जो आविष्कारों और चमत्कारों का सृजन करती हैं। पर उन सबका एक स्थान पर समन्वय कहीं देखना हो तो उसे मानवी कार्य की अदृश्य परतों को उघाड़कर देखा जा सकता है कि मनुष्य कितना सुसम्पन्न है। तत्वज्ञान के क्षेत्र में वह उतना ही सुसंस्कृत भी है जितनी कि ऋषियों और देवताओं के सम्बन्ध में मान्यता है। सामर्थ्यों की कमी नहीं पर भूल एक ही होती चली आ रही है कि हृदय को विशाल एवं उदार न बनाया जा सका। उपलब्धियों को संकीर्ण स्वार्थपरता के लिए प्रयुक्त किया गया और यह भुला दिया कि क्रिया की प्रतिक्रिया भी होती है—और दुष्कृत्यों का दुष्परिणाम भी होता है। कदाचित् आस्तिकता का प्रकाश उसे उपलब्ध हो सका होता तो इतना सामर्थ्यवान होने पर उपलब्ध क्षमताओं का सदुपयोग कर सकने पर स्वयं भी धन्य बनता और इस धरातल के वातावरण को स्वर्गोपम बना देता।

एक समय ऐसा भी रहा है कि कुछ अधिनायकों और आतंकवादियों को छोड़कर साधारण मनुष्य यह सोचता रहा है कि वह तुच्छ, नगण्य एवं भाग्य शृंखला में बँधा हुआ है। पर अब विज्ञान ने उन मान्यताओं को बदल दिया और महर्षि व्यास के युधिष्ठर के कान में कहे हुए वाक्य कि 'मैं एक रहस्य बताता हूँ, मनुष्य से श्रेष्ठ और कहीं कुछ नहीं है।'' इन्हीं शब्दों को अब विज्ञान ने ढिंढोरा पीटते हुए सिद्ध कर दिया है। मनुष्य की अद्यावधि प्रगति आश्चर्यजनक हुई है किन्तु उसकी संरचना को देखते हुए सम्भावनाएँ अत्यधिक ही नहीं असीम भी हैं।

आकाश में जब-तब बिजली कौंध जाने से यह अनुमान लगता है कि अनन्त आकाश में असीम विद्युत भण्डार भरा पड़ा है। इसी प्रकार मनुष्यों में से कितने ही जब अपने कला-कौशल और प्रभावी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं तो पता चलता है कि जो भूतकाल में हो सका वह भविष्य में भी हो सकता है। जो एक कर सका उसे दूसरा भी कर सकता है। कारण स्पष्ट है कि जिस प्रकार प्रकृति की परत खुलने पर उसके अन्तराल में असीम शक्ति का भण्डार भरा दीखता है उसी प्रकार मनुष्य की शारीरिक और मानसिक संरचना को देखते हुए यह सहज विश्वास है कि जो प्रसुप्त है उसे जगाया जा सके तो हर मनुष्य महामानव बन सकता है और दैत्य या देव में से किसी की भी भूमिका निभा सकता है। वह सीमित दीखते हुए भी असंख्यों सम्भावनाओं और क्षमताओं से भरा-पूरा है।

आत्मिकी के प्रतिपादन आरम्भ से ही यह रहे हैं कि समस्त दैवी शक्तियाँ और भौतिक सम्पदाएँ मनुष्य के अन्तराल में विद्यमान हैं। पर उनका प्रत्यक्षीकरण या उपयोग करने के लिए आत्म-परिष्कार का प्रयत्न करने की आवश्यकता है। योग और तप द्वारा, आत्मशोधन द्वारा इसी की पूर्ति ऋषि युग में होती है और वे अपने को ऋद्धि सिद्धियों का भण्डार सिद्ध करते रहे हैं। देवताओं की भूमिका स्वयं निभा सकने के प्रमाण प्रस्तुत करते रहे हैं। अब विज्ञान ने भी उसी स्वर में स्वर मिलाया है और व्यक्ति के शारीरिक सूक्ष्म संरचना और मस्तिष्क की विलक्षणता को देखते हुए यह कहा वह अद्भुत है, अनुपम है, आश्चर्य है। कदाचित हम अपनी इस वस्तुस्थिति को पहचानें और सक्षम बनाने में समर्थ हो सकें तो उतना आगे बढ़ा जा सकता है जिसकी कि आज की परिस्थितियों में तो कल्पना कर सकना भी कठिन है।

अन्दर छिपा वैभव का जखीरा

मनुष्य के मस्तिष्क को यदि भानुमति का पिटारा कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि इसमें इतनी और ऐसी-ऐसी अद्भुत और आश्चर्यजनक क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें यदि जीवन्त-जागृत कर लिया जाय, तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि मनुष्य दीन-हीन स्थिति में पड़ा नहीं रह सकता। यदा-कदा यही क्षमताएँ दुर्घटनावश जग पड़ती हैं, तो हर कोई यह विश्वास करने लगता है कि यदि प्रयासपूर्वक मनुष्य इन्हें जगा ले, तो मनुज-चोले में ही वह नारायण जैसी क्षमता अर्जित करने में सफल हो सकता है।

ऐसी ही एक महिला थी मोली फेंचर। बुकलीन के एक सामान्य परिवार में जन्मी, पली, बढ़ी फेंचर जब बड़ी हुई, तो उसे घुड़सवारी का शौक चर्राया। अपने मित्रों की तरह वह भी नित्य घुड़सवारी करने लगी, पर दुर्भाग्यवश १० मई, १८६४ को घुड़सवारी के दौरान वह अचानक घोड़े की पीठ से गिर पड़ी, मस्तिष्क में कुछ चोटें आयीं, किन्तु सब कुछ सामान्य रहा। ८ जून, १८६५ को इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। इसके बाद उसने खाना-पीना बन्द कर दिया।लाभ भी इसी क्रम में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धीरे-धीरे मिलने लगा । ३ फरवरी, १८६६ को ७ माह बाद डॉ० रावर्ट स्पाइयर ने जब मोली का परीक्षण किया, तो मोली की चाची ससन कासबी एवं पड़ौसी अत्यन्त प्रसन्न हुए कि चलो स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रही है। उसी दिन अचानक न जाने क्यों उसने आँखें बन्द कर लीं और कई महीनों तक नहीं खोलीं। जब आँखें खुलीं, तब अपने जीवन काल के किसी भी व्यक्ति को पहचानने से इन्कार कर दिया। यहाँ तक कि अपने निजी डा० एवं चाची तक को नहीं पहचान सकी। इसके बाद सदा लेटी ही रहती। उसका बायाँ हाथ सिर के नीचे ९ साल तक पड़ा रहा। इसी अवधि में उन्होंने ६००० अद्भुत पत्र लिखे, जो अपने आप में विलक्षण एवं मित्रों को प्रभावित करने वाले थे।

फरवरी १८७५ को नौ वर्ष के बाद अकस्मात वह बिस्तर से उठी और चलने लगी, तो सीढ़ी से गिर पड़ी। आँख खुलते ही अपने निजी डॉक्टर के भाई डॉ० एस० फ्लीट स्पाइयर से बोल पड़ी ''क्यों डाक्टर ! आपके भाई नये घर में क्या कर रहे हैं।'' अपनी चाची को देखकर वह कहने लगी ''क्यों चाची! तुम्हारे तो बाल काले दीखते थे, इतनी जल्दी बूढ़ी हो गईं।'' स्वयं के द्वारा लिखित पत्रों को देखकर कहने लगी ''यह तो किसी मृतात्मा द्वारा लिखाये गये पत्र हैं।''

यह मोली की असाधारण शक्तियों के जागरण का श्रीगणेश मात्र था। इसी बीच न जाने किन कारणों से उसकी आँखों की दृश्य क्षमता लुप्त हो गई और वह चिकित्सकीय दृष्टि से अन्धी हो गई। परन्तु उसने अनुभव किया कि अन्धी आँखों के बावजूद भी वह सब कुछ देख सकती है। इस सम्बन्ध में उसका कहना था ''मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं अपने दोनों भौंहों के बीच में विद्यमान तीसरी आँख से देख रही हूँ।'' कई बार तो दूर की रखी चीजों को भी देख लेती थी और कहती ''मुझे ऐसा लगता है कि मस्तिष्क के ऊपरी हिस्से से प्रकाश किरणें निकल रही हैं, जो वस्तुओं से टकराकर मेरे पास आती हैं और मैं उन्हें देख लेती हूँ।''

१८७५ में बुकलीन यूनिवर्सिटी के भौतिकीविद् प्रोफेसर हेनरी एम० पार्श्बस्ट्र ने मोली की अतीन्द्रिय क्षमताओं के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल की। वे दो चीजों को विशेष रूप से जानना चाहते थे कि क्या मोली के पास वस्तुत: अतीन्द्रिय क्षमता है अथवा कोई हाथ की सफाई जैसा कुछ है। दूसरी, मोली इसका प्रयोग कैसे करती है। इसके लिए उन्होंने कई प्रयोग किये। एक मोटे कागज वाले लिफाफे में कुछ लिखकर मोली को दिया गया, तो वह बिना किसी कठिनाई के पढ़ने लगी। जब कोर्ट के पुरानी फाइल से एक कागज लाया गया, उसे भी जब लिफाफे में बन्दकर पढ़ने को दिया गया, तो वह उसे भी आसानी से पढ़ने लगी। इन सब परीक्षणों के बाद डॉ० हेनरी सन्तुष्ट हुए और इसे उन्होंने उसकी मौलिक अतीन्द्रिय क्षमता की संज्ञा दी व कहा कि हर दृष्टि से दृष्टिहीन होने के बावजूद वह छठी इन्द्रियों से सब कुछ देख सकती है। इसका कोई वैज्ञानिक प्रतिपादन उनके पास नहीं था।

संभव है, इसे कोई दुर्घटना से मस्तिष्क के किसी न्यूरान के अस्त-व्यस्त होने व अतीन्द्रिय क्षमता के जाग पड़ने की प्रक्रिया बताए। पर एक तथ्य तो सुनिश्चित है कि यह सम्भावना मस्तिष्क में विद्यमान है। कभी ऐसा समय भी था जब साधक स्तर के प्राणवान व्यक्ति अपनी इन्हीं सम्भावनाओं को साकार कर दिव्य क्षमताओं को हस्तगत कर लिया करते थे। ऋद्धि-सिद्धियों का भण्डार हमारे अपने ही अन्दर विद्यमान है व हम चमत्कारों को बहिरंग में तलाशते रहते हैं। अंतर्मुखी ही साधना पुरुषार्थ किया जा सके तो उद्देश्यपूर्ण प्रयोजनों के लिए भी अतीन्द्रिय सामर्थ्यों को जगाना सम्भव है।

अलौकिक शक्तियों का उद्गम-अन्तराल में

मनुष्य देखने में एक साधारण प्राणी प्रतीत होता है। उसका काय-कलेवर बन्दर से मिलता-जुलता है। बोलने, सोचने और खोजने की विशेषताओं ने ही उसे प्रगति के उस स्तर तक पहुँचाया है, जिस पर कि आज वह है।

देखने में इन साधारण विशेषताओं से युक्त असंख्य मानव-प्राणी पाये जाते हैं। वे अपनी विकसित शरीर संरचना और मानसिक विकास की असीम सम्भावनाओं के कारण अपनी विभिन्न विलक्षणताओं के प्रमाण प्रस्तुत करते रहते हैं।

किन्तु गहराई से खोजा जाय तो प्रतीत होता है कि उनकी विदित क्षमताओं की तुलना में अविज्ञात सामर्थ्यों का भण्डार और भी बड़ा है। सूक्ष्म शरीर की अलौकिकता को प्रत्यक्ष न होने के कारण झुठलाया भी जा सकता है। पर प्रत्यक्ष शरीर का विश्लेषण तो ऐसा है जिसे देखते हुए उसकी रहस्यमय संरचना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

अरबों, खरबों की संख्या में ज्ञान तन्तु शरीर के प्रत्येक क्षेत्र में, विशेषतया मस्तिष्क में भरे पड़े हैं। इनमें जो विद्युत प्रवाह बहता है, उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति इसलिए नहीं हो पाती कि वह विकेन्द्रित रहता है। यदि उसे समेटकर एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत किया जा सके तो उससे इतनी बिजली बन सकती है जिससे एक बड़ा मिल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलाया जा सके। मस्तिष्कीय चिन्तन के आधार पर अनेक योजनायें बनतीं और कार्यान्वित होती हैं, तो भी प्रबुद्धों में पाई जाने वाली शक्ति समस्त क्षमता का एक बहुत छोटा अंश होती है। यदि उस सब को एकत्रित किया जा सके तो उससे कोई व्यक्ति देव-दानव स्तर का बन सकता है। अपने शरीर की, अपने संसार की और समस्त ब्रह्माण्ड की स्थिति के सम्बन्ध में ऐसी जानकारियाँ प्राप्त कर सकता है जिन्हें अलौकिक एवं अद्भुत कहा जा सके। ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन कलोप कल्पना नहीं है। उन्हें किसी अन्य का दिया हुआ अनुदान-वरदान भी नहीं कहा जा सकता। वे भीतर से ही उगतीं और प्रस्फुटित होती हैं। इसके लिए मूलभूत सामग्री उसे जन्मजात रूप में उपलब्ध है। प्रश्न केवल उन्हें जागृत करने भर का है। यह जागरण साधनाओं द्वारा सम्भव हो सकता है।

स्थूल शरीर की क्षमतायें प्रत्यक्ष हैं। उन्हें खेल प्रतियोगिताओं में, सर्कस में बढ़े-चढ़े रूप में देखा जा सकता है। पर सूक्ष्म शरीर की सामर्थ्य के बारे में उतनी सघन घटनायें प्रत्यक्ष देखने में नहीं आतीं। वे चिरस्थायी नहीं होतीं जिससे उनके अस्तित्व एवं प्रभाव का पर्यवेक्षण गम्भीरतापूर्वक किया जा सके।

तिब्बत में सूक्ष्म शरीर को मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिकायें निभा सकने सम्बन्धी काफी प्रयत्न हुए हैं। इनका वर्णन 'टिबेटन बुक ऑफ दी डेड' एवं 'सीक्रेट योग ऑफ टिबेट' पुस्तक में विस्तारपूर्वक दिया गया है। एक रूसी ग्रन्थ ''हार्ट ऑफ एशिया'' में तिब्बत तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में विद्यमान सूक्ष्म शरीरधारी शक्तियों के क्रिया-कलापों का महत्त्वपूर्ण विवरण है।

दृश्यमान स्थूल शरीर के आगे की सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की शक्तियों एवं विभूतियों का वर्णन ''दी प्रोजेक्शन ऑफ दी ऐस्ट्रल बाडी'' में इस प्रकार किया गया है कि वैज्ञानिक एवं प्रत्यक्षवादी लोग भी इनके सम्बन्ध में सारगर्भित जानकारी प्राप्त कर सकें। इस सन्दर्भ में विधिवत् शोध कार्य फ्लोरिडा की ''वर्ल्ड पैरासाइकालिजिकल रिसर्च फाउन्डेशन'' कर रही है।

प्रथम विश्वयुद्ध की एक घटना है कि एक समुद्री जहाज का बेड़ा जर्मनी पर हमला करने के लिए समुद्र के किसी अज्ञात क्षेत्र में जमा हो रहा था। जासूसों ने यह सूचना तो सेनापति तक पहुँचा दी पर वे यह न बता सके कि बेड़ा किस स्थान पर है।

इस हेतु अध्यात्मवेत्ता 'डिवाइनर' की सहायता ली गई, उसने समुद्र का पूरा नक्शा मँगाया। कुछ देर ध्यान करके उसने उस स्थान पर चिन्ह लगाया जहाँ बेड़े के होने की सम्भावना थी। उस क्षेत्र के लिए तुरन्त मुहिम भेजी गई।

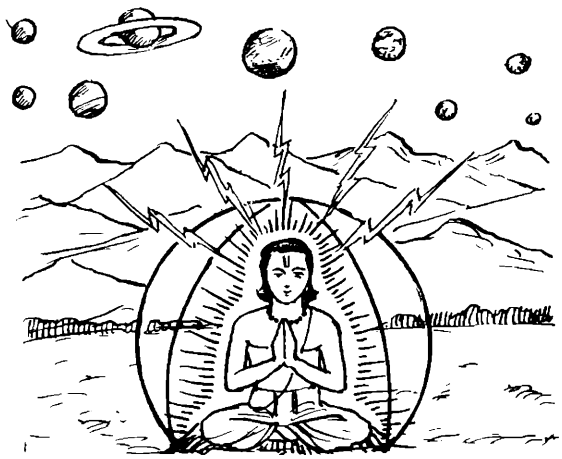

सर विलियम बैरेट ने अपनी पुस्तक ''दी डिवाइनिंग राड'' में ऐसी घटनाओं का संग्रह करने के अतिरिक्त यह बताया है कि ऐसा क्यों कर होता है। वे कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी के परिकर से अपने-अपने ढंग की विद्युत चुम्बकीय तरंगें निकलती हैं। वे उड़कर आकाश में फैलती और मानवी चुम्बक के साथ टकराती हैं। संवेदनशील व्यक्ति उन्हें पकड़ और समझ लेते हैं कि यह संकेत कहाँ से आ रहा है और कहाँ कैसी स्थिति है।

इसी आधार पर भूगर्भ से कितनी ही धातु खदानें खोजी गई हैं और जल स्रोतों का पता लगाया गया है। यह शक्ति तत्वत: हर व्यक्ति में होती है, पर उसे विश्वासपूर्वक कार्यान्वित कर सकने की क्षमता विकसित कर सकना किसी-किसी से ही बन पड़ता है। किन्हीं में यह क्षमता जन्मजात रूप से अनायास ही प्रकट होती देखी गई है।

मार्टिन इंगले ने अपनी खोजपूर्ण पुस्तक ''दी एक्सपीरियन्स इन प्रोफेसी'' में छानबीन करने के उपरान्त ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे पता चलता है कि मनुष्य शरीर में कितनी अद्भुत दिव्य क्षमतायें विद्यमान रहती हैं। पर उन्हें विकसित और कार्यान्वित करने का अवसर किसी-किसी को ही मिलता है।

संकलित घटनाओं में कैलीफोर्निया के एक दम्पत्ति द्वारा किसी हत्या का पूर्वाभास मिलने और उसकी सूचना पुलिस में नोट कराये जाने का उल्लेख है। वाल्टर नामक एक लेखक की पत्नी मैसी चाय बना रही थी। उसने भरे प्याले में एक फिल्म जैसा दृश्य देखा। एक हत्यारा दो व्यक्तियों की हत्या करके डाका मार ले गया। पुलिस ने मोटरसाइकिल पर उसका पीछा किया। डाकू एक अधबनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झोपड़ी में घुस गया, जहाँ उसे धर दबोचा गया। यह अनुभूति पुलिस में दर्ज कराई गई तब उसे भ्रान्ति बताकर मजाक में उड़ा दिया गया। किन्तु पन्द्रह दिन भी बीतने न पाये थे कि घटना ठीक उसी प्रकार घटित हुई और पुलिस ने डाकू को लूटी गई सम्पत्ति के साथ धर दबोचा।

उपरोक्त पुस्तक एवं डा० थेल्मा मॉस की "द प्रोबेबिलीटी ऑफ इम्पॉसीबिल" पुस्तक में ऐसी चार सौ से भी अधिक घटनाओं का वर्णन है; जो अद्‌भुत हैं और जिन्हें जाँच-पड़ताल के उपरान्त वैज्ञानिक मान्यता मिली है।

एक घटना सन् १९१३ की है। तब वाइसराय ने अपना शासन तो दिल्ली में जमा लिया था पर वहाँ की गर्मी अंग्रेज मण्डली को रास नहीं आ रही थी। वे किसी ठण्डी जगह को समीपवर्ती क्षेत्र में ही तलाश रहे थे। इस दृष्टि से उन्हें शिमला कालका वाला क्षेत्र अनुकूल और निरापद लगा। वहाँ बसने के लिए रेल का रास्ता जरूरी था। अधपक्की सड़कें पर बसें तो चलने लगी थीं पर ऊँचे पहाड़ी मार्ग पर रेल निकालना टेढी खीर थी। फिर भी निश्चय किया गया और काम चल पड़ा।

कुछ दिनों ही काम चला पर सही पैमायश न बन पड़ने के कारण आगे की ऊँचाई आड़े आ गई। लगने लगा कि रेल के छोटे इंजन इतनी ऊँचाई तक चल न सकेंगे। काम छोड़ बैठने में भी हेठी होती थी और उपाय भी कोई सूझ नहीं रहा था।

इस असमंजस से एक उसी काम में लगे हुए मजदूर ने उबारा। वह पढ़ा लिखा तो न था पर तंत्र मंत्र में गति रखता था। उसने अपनी अन्तःप्रेरणा के आधार पर कहा—"आगे की छः मील जमीन पर सुरंग बना दी जाय तो समस्या हल हो जाएगी। इतनी लम्बी सुरंग बन पड़ेगी, इसका उस काम पर लगे हुए इन्जीनियरों को भरोसा न हो रहा था फिर भी उस मजदूर मलखू के बहुत जोर देने पर काम चालू किया गया। आगे की कठिनाइयों में भी वह मार्ग दर्शन करता रहा। साथ ही इस निमित्त पूजा-पाठ के अनेक विधि-विधान भी करता रहा। उसे साधारण कुली से पदोन्नत करके जमादार बना दिया गया। हर छोटी बड़ी कठिनाई का हल उससे पूछा जाता। मानो वह कोई बड़ा इन्जीनियर हो। उसके दबाव देने पर सफलता हाथ लगती देख उस योजना में लगे हुए अंग्रेज भी उसके पूजा-पाठ में सम्मिलित होते। निदान लम्बी अवधि में वह रेलमार्ग बनकर तैयार हुआ। उन दिनों उस सफलता का श्रेय मलखू को ही दिया जाता रहा। उसकी मंत्र विद्या किसी प्रवीण इन्जीनियर की योग्यता से कम महत्त्व की सिद्ध न हुई।

अमेरीका के दक्षिण पश्चिम में फोनिक्स से कुछ किलोमीटर दूर स्थित माइकेलटाउन का वायुसेना का एक हवाई अड्डा जब बन्द किया गया तो उस देश में इन अफवाहों को और भी अधिक बल मिला कि वहाँ चित्र-विचित्र भुतही घटनाओं का अड्डा है। वहाँ चिनाटी पहाड़ियों की ढलानों पर संध्या समय रंग-बिरंगी रोशनियाँ जलती-बुझती दिखाई देती थीं। मैक्सिको से लगे टेक्सास राज्य में कितनी ही जगह इन जलती-बुझती रोशनियों ने आतंक पैदा कर दिया। यह रोशनियाँ कई बार जीप, गाड़ियों और यात्रियों का पीछा करती देखी गईं। एक बार तो उन्होंने कई जीपों को इस प्रकार जला दिया माना वे तेज आग की भट्ठी में पिघला दी गई हों। इन रोशनियों की खोज में निकला एक वैज्ञानिक दल ही विलुप्त हो गया। इस हेतु बनाया गया एक शोध संस्थान ही जलकर खाक हो गया। ऐसे घटना प्रसंगों का कोई विज्ञान सम्मत समाधान नहीं मिलता। पर उससे परोक्ष जगत के रहस्यमय एवं अतिशक्तिशाली क्रिया कलापों की झलक मिलती है। सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ संभवतः "आदमी" नामक इस असभ्य जीव को वहाँ बसने नहीं देना चाहती थीं।

सोवियत रूस के क्रीव प्रान्त के चेरनोबिल संयंत्र में अचानक आग, अणु-आयुधों से भरी रूसी पनडुब्बी का डूबना एवं चन्द्रमा पर पहुँच जाने वाले अमेरीकी अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा अन्तरिक्ष में उपग्रह छोड़ने की लगातार चार असफलताओं से भी यह लगता है कि कोई परोक्षसत्ता इन विनाशकारी कृत्यों को रोक रही है।

ब्रह्माण्ड जड़ पदार्थों से ही भरा हुआ नहीं है उसमें सचेतन का भी बहुत बड़ा भाग है। यह सचेतन मनुष्य की ओर आकृष्ट होता है या उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। दोनों पक्षों में आदान-प्रदान की भी आकांक्षा रहती है। इसलिए मिलन की आतुरता सिद्ध करने वाली कितनी ही घटनाएँ भी घटित होती रहती हैं। यदि इन उभय-पक्षीय प्रयत्नों को निष्फल न जाने दिया जाय तो ब्रह्माण्डीय चेतना के अनुदानों से मनुष्य अपने आप को देवोपम सामर्थ्यों से भरा-पूरा बना सकता है।

परिष्कृत अन्तराल
विभूतियों का भाण्डागार

प्राणियों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रकृति ने भविष्यज्ञान की क्षमता प्रदान की है। शीतऋतु में मक्खी, मच्छर जैसे प्राणी कहीं सुरक्षित स्थान में छिप कर अपने प्राण बचाते हैं, पर जैसे ही उनके फलने-फूलने का अवसर आता है, प्रजनन कृत्य में लगते और असाधारण रूप से वंश वृद्धि करते देखे गये हैं। हिम प्रदेशों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

रहने वाले सफेद भालू जैसे प्राणी घोर शीत के दिनों आहार उपलब्ध न होने की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए किसी गुफा में लम्बे समय के लिए निद्राग्रस्त हो जाते हैं। मेंढ़क और साँप भी प्राय: ऐसा ही करते हैं। सर्दी के दिनों वे किसी बिल में इस प्रकार शिथिलता धारण करते हैं कि उन दिनों उन्हें भोजन की आवश्यकता ही न पड़े। धरती में गहराई में छिपे पड़े रहने पर भी अनुकूल मौसम का भविष्यज्ञान उन्हें हो जाता है और वे उपयुक्त समय में बाहर निकल आते हैं।

पक्षियों में से अनेकों ऐसे हैं जो ऋतु प्रतिकूलता का आभास होते ही अनुकूल क्षेत्रों में पहुँचने के लिए लम्बी उड़ानें भरते हैं। समय काटते हैं और जब अनुकूलता उत्पन्न होती है, तो फिर अपने पूर्व निवास पर लौट आते हैं। यह सब भविष्य ज्ञान की पूर्वानुभूति के आधार पर सम्भव होता है। ऋतुओं के अनुरूप मकड़ी अपना ताना फैलाती और समेटती देखी गई है। उपयुक्त ऋतु का ध्यान रखते हुए भी प्राणिवर्ग में उत्साह उभरता है, पर प्रतिकूलता का अनुमान रहने पर वे सर्वथा शान्त बने रहते हैं। कितने ही प्राणी भूकम्प, तूफान, महामारी जैसे प्रकोपों की समय से पहले ही जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। अपने-अपने समुदाय को चिल्ला-चिल्ला कर सचेत करते हैं और कहीं अन्यत्र सुरक्षित स्थान के लिए पलायन कर जाते हैं।

मनुष्यों में भी कितनों में ही ऐसी अतीन्द्रिय क्षमताएँ पाई जाती हैं जिसके आधार पर वे अपने या दूसरों के सम्बन्ध में किन्हीं विशेष परिवर्तनों का आभास पा सकें और उस निमित्त पूर्व तैयारी कर सकें। ऐसी कितनी ही घटनाएँ होती रहती हैं जिसमें मृत्यु का आभास समय से पहले ही मिल जाता है। कितनों को ही स्वयं के भावी घटनाक्रम की जानकारी मिल जाती है और वे समय पर सही भी उतरती हैं। कई वैज्ञानिकों को भी अपने आविष्कारों सम्बन्धी गुत्थियाँ हल करने में स्वप्न संकेतों के आधार पर सहायता मिली है। अतीन्द्रिय क्षमताओं के अभ्यासी अनेक बार ऐसी अद्भुत जानकारी देते हैं जैसा कि घटित होने की उन दिनों आशंका तक न थी।

फ्रान्स के प्रख्यात साहित्यकार जैक कजोट को अपने देश में होने वाली महाक्रान्ति का आभास बहुत पहले हो गया था और पेरिस नगर में आयोजित एक समारोह में उसकी उन्होंने सार्वजनिक घोषणा भी कर दी थी। उक्त समारोह में देश के प्राय: सभी मूर्धन्य दार्शनिक, वैज्ञानिक, मनीषी, साहित्यकार, पत्रकार एवं गणमान्य नागरिक उपस्थित थे। उनमें उस काल के बहुमुखी प्रतिभा के धनी विख्यात दार्शनिक एवं संगीतकार मारकस, नाटककार निकोलस एवं आलोचक जॉन हार्पी भी सम्मिलित थे। जैक ने यह कहकर सभा में उत्तेजना पैदा कर दी थी कि यहाँ एकत्र सभी लोग सन्निकट खूनी क्रान्ति में मारे जायेंगे, फ्रान्सीसी क्रान्ति के नायक मारकस के बारे में उसने भविष्यवाणी की थी कि उन्हें बन्दी बना लिया जायेगा और फाँसी की सजा सुनायी जायेगी, किन्तु उससे पूर्व ही वह जहर खाकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेंगे। इतिहासवेत्ता जानते हैं कि मारकस को जो उस समय क्रान्तिकारियों के सर्वोच्च कमेटी के सदस्य भी थे और साथियों की दमनकारी नीति का विरोध करते थे, उन्हें जेल में डाल दिया गया। फाँसी की तिथि निश्चित हो चुकी थी, किन्तु उससे पूर्व ही उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली।

सुप्रसिद्ध नाटककार निकोलस की ओर देखते हुए जैक ने कहा था—'मरने से पूर्व वह बाइस बार ब्लेड से अपनी नाड़ियाँ काटकर मरने का प्रयास करेगा, किन्तु इसमें सफल नहीं होगा। हुआ भी ऐसा ही सन् १७१३ में उसे गिरफ्तार कर लिया गया। कैदी जीवन में उसने आत्महत्या करने की इच्छा से २२ बार प्रयत्न किया पर हर बार असफलता ही हाथ लगी। बाद में उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई।

इसी तरह ख्याति प्राप्त नाटककार एवं आलोचक हार्पी के बारे में किया गया भविष्य कथन अक्षरश: सही सिद्ध हुआ। उसके बारे में कहा गया था कि वह नास्तिक से आस्तिक बन जायेगा। जेल की कोठरी में बन्द रहने पर एकान्तिक जीवन अंतर्मुखी बन गया। आत्मचिंतन करते रहने के कारण जब वह कैद से छूटे तो सच्चे आस्तिक एवं कैथोलिक मत के अनुयायी बन कर निकले। उनके जीवन में कायाकल्प स्तर का परिवर्तन हो गया था। जैक को न केवल दूसरों के भविष्य में झाँकने की अतीन्द्रिय सामर्थ्य प्राप्त थी वरन् अपने बारे में भी उसने स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें कई बार जेल की यात्रा करनी पड़ेगी और अंत में मृत्यु दंड दे दिया जायेगा। सभी घटनाएँ समायानुसार घटित होकर रहीं।

पीटर हरकौस का नाम मूर्धन्य भविष्यवक्ताओं में लिया जाता है। उनकी अतीन्द्रिय क्षमता का विकास एक दुर्घटना में हुआ, जिसमें सीढ़ी से गिर जाने के कारण सिर में गम्भीर चोट लग गई थी। दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल गया और दिव्य-दर्शन की क्षमता का नया आयाम लेकर सामने आया। अपराधियों, हत्यारों की तलाश करने में एवं खोये हुए व्यक्तियों की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में पुलिस भी उनकी मदद लेती थी। अपने जीवन में उसने जितनी भी भविष्यवाणियाँ की थीं, समायानुसार सभी सच निकलीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवी अन्तराल में एक से बढ़कर एक अद्भुत क्षमताएँ विद्यमान हैं जिन्हें अभ्यास द्वारा हर कोई विकसित कर सकता है। दूरश्रवण, दूरानुभूति, दूरदर्शन, पूर्वाभास, भविष्य कथन जैसी अगणित क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में दबी पड़ी हैं और कभी-कभी किन्हीं व्यक्तियों में किसी कारणवश उभर भी आती हैं, पर कितने ही व्यक्ति इन्हें सतत् अभ्यास द्वारा विकसित कर लेते हैं। न्यूजर्सी की परामनोविज्ञानी श्रीमती डोरोथी एलीसन एक ऐसी ही महिला हैं जिन्होंने भविष्य के गर्भ में झाँकने की सामर्थ्य विकसित कर ली है। इसके माध्यम से उसने अब तक कितनी ही जटिल गुत्थियों को सुलझाया है। खोये हुये व्यक्तियों, हत्याओं एवं अपराधों के रहस्य खोले हैं। न्यूयार्क के प्रसिद्ध परामनोवेत्ता रिचार्ड रिचनर ने डोरोथी की अतीन्द्रिय क्षमता को जाँचा, परखा है और सही पाया है। एक दिन तो वह स्वयं यह जानकर आश्चर्यचकित रह गये कि उनके कमरे में बैठा व्यक्ति आत्महत्या करने की सोच रहा है। यह रहस्योद्घाटन भी डोरोथी ने ही किया था और बताया कि यदि उस व्यक्ति को बचाया जा सके तो एक दृढ़ मनोबल वाला सफल व्यक्ति होगा। पूछताछ करने पर बात सही निकली। उपचार हो जाने पर बाद में वह एक सफल उद्योगपति बनकर रहा।

इसी तरह इंग्लैण्ड की सुजेन पेडफील्ड, न्यूयार्क की एस्टेला राबर्ट्स एवं डर्बन-दक्षिण अफ्रीका के नेल्स पामर ने भी अभ्यास द्वारा अतीन्द्रिय सामर्थ्य विकसित कर ली हैं। ये सभी व्यक्ति किसी वस्तु को देखकर ही उसके प्रयोक्ता के सम्बन्ध में सारे रहस्य उद्घटित कर देते हैं। खोये हुए व्यक्तियों एवं छिपे हुए अपराधियों को, जिसका पता लगाने में प्रशिक्षित पुलिस भी असमर्थ रहती है, उनकी दूरदर्शी आँखें खोज निकालती हैं। सुप्रसिद्ध परामनोविज्ञानी जोसेफ बुकनन ने अपनी कृति में इस तरह की अनेकों घटनाओं का वर्णन किया है जिसमें दिव्यदर्शियों की सहायता ली गई और सफलता मिली।

दिव्यदर्शन की एक घटना महात्मा गाँधी की अन्यतम् सहयोगिनी रेहाना व्याबजी के जीवन से सम्बन्धित है। गाँधी जी उन दिनों पूना के आगारवान महल में कैद थे और रेहाना नासिक में रहकर इनकी गतिविधियों का संचालन कर रही थी। गाँधी जी के साथ जेल में कब कैसा व्यवहार हो रहा है? महाभारत कालीन संजय की तरह प्रत्येक घटनाक्रम का वे बारीकी से नासिक में रहकर ही अनुभूति करतीं और उसे अपनी डायरी में अंकित करती रहतीं। जेल से छूटने के पश्चात् जब इसे बा और बापू को दिखाया तो उन्होंने सभी घटनाक्रमों को सही ठहराया। सुविख्यात अमेरिकी खगोलविज्ञानी डॉ० जार्ज डाडवेल के बारे में प्रसिद्ध है कि बिना किसी दूरदर्शी उपकरण के ही उनकी आँखें सुदूर आकाश में स्थिति सौर मण्डल के सदस्यों-ग्रह-नक्षत्रों, धूमकेतुओं आदि में हो रहे परिवर्तनों की स्पष्ट झाँकी प्राप्त कर लेती थीं।

वस्तुतः मनुष्य की चेतना में असीम एवं अप्रत्याशित क्षमता विद्यमान है। यदि उसे परिष्कृत एवं विकसित किया जा सके तो न केवल भविष्य कथन जैसी अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का वरन् भौतिक सिद्धियों एवं आत्मिक ऋद्धियों का भी स्वामी बना जा सकता है। आवश्यकता मात्र अन्तःकरण को पवित्र एवं प्रखर बनाने तथा अध्यात्म सिद्धान्तों को अभ्यास एवं व्यवहार में उतारने भर की है। उच्चस्तरीय चेतनात्मक विभूतियाँ तभी हस्तगत होती हैं।

अन्दर छिपी पड़ी अलौकिक सामर्थ्य

अपने काय-कलेवर में मनुष्य रक्त-माँस, मज्जा और हड्डियों का समुच्चय मात्र दीखता है। विज्ञान भी अपने अध्ययन एवं विशेषण द्वारा इन्हीं की जानकारी देता है। अधिक से अधिक यह कहकर चुप हो जाता है कि शरीर के भीतर कोई चेतना काम कर रही है जो समस्त शारीरिक हलचलों का कारण है। आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार काया तो स्थूल भाग है जिसकी सामर्थ्य सीमित है और सीमित ही प्रयोजन पूरा कर पाती है। शरीर के भीतर ही एक अदृश्य सूक्ष्म शरीर निवास करता है जिसके भीतर एक से बढ़कर एक सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं। सन्निहित सुषुप्त सूक्ष्म शक्ति संस्थानों का जागरण यदि सम्भव हो सके तो मनुष्य असाधारण शक्ति का स्वामी बन सकता है और इन अतीन्द्रिय सामर्थ्यों के जागरण से वे कार्य भी सम्पन्न किए जा सकते हैं जो विज्ञान की दृष्टि में असम्भव प्रतीत होते हैं।

किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों के जीवन में ये क्षमताएँ अनायास प्रकट हो जातीं हैं और ऐसे कारनामे कर गुजरती हैं जिन्हें देखकर विस्मित रह जाना पड़ता है। अन्तःशक्ति के आकस्मिक जागरण का प्रत्यक्ष कारण भले ही समझ में न आए, पर ये उपलब्धियाँ पूर्व जन्मों के संचित साधना पुरुषार्थ का ही प्रतिफल होती हैं। जिन्हें करतल गत कर असम्भव काम भी पूरे किए जा सकते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान 'फ्रैंकिस किंग' ने एक पुस्तक लिखी है—'मिस्टीरियस नालेज' इस पुस्तक में उन्होंने एक ऐसे विलक्षण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति का उल्लेख किया है जो बिना किसी वैज्ञानिक उपकरणों के शल्य चिकित्सा करता तथा कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति दिला देता था। ब्राजील के एक छोटे से गाँव में जन्मे 'जीस एरीगो' नामक इस व्यक्ति को अपनी विलक्षण सामर्थ्य के कारण भारी ख्याति मिली। शल्य-चिकित्सा में अपनी अतीन्द्रिय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति का उपयोग करना भी उसने विचित्र ढंग से आरम्भ किया।

रिश्ते में लगने वाली एक बूढ़ी औरत पेट के ट्यूमर के कारण मरण शैया पर पड़ी थी। मिलने गये व्यक्तियों में से एक 'एरीगो' भी थे। स्नेही-सम्बन्धी सभी उस औरत को घेर कर खड़े थे। इतने में एरीगो को जाने क्या सूझी वह दौड़कर रसोई घर में गया और एक छोटा सा जंग लगा चाकू उठा लाया और कमरे में उपस्थित सभी व्यक्तियों को यह कहते हुए कि वह मरीज के उपचार के लिए एक विशेष प्रयोग करना चाहता है, सबसे बाहर निकल जाने के लिए कहा। एरीगो तथा घर के एक अभिभावक को छोड़कर सभी बाहर निकल आए। कमरे में मौजूद दूसरा व्यक्ति उसे रोके इसके पूर्व ही उसने छोटे चाकू से वृद्धा को पेट कुछ ही सेकेण्ड में चीर डाला। पर आश्चर्य कि मरीज को जरा भी तकलीफ नहीं हुई। पेट के भीतर मौजूद नारंगी के आकार के ट्यूमर को उसने काटकर बाहर निकाल दिया और उसके बाद दोनों हाथों से कटाव को आपस में जोड़कर दबा दिया। पूरे इस विचित्र आपरेशन में कुछ ही मिनट लगे होंगे। सबसे रहस्यमय बात यह थी कि पेट के ऊपर आपरेशन का कोई निशान भी नहीं था। और न तो महिला को किसी प्रकार की पीड़ा हुई और न ही रक्तस्राव। ट्यूमर के निकलते ही महीनों से मरणान्तक पीड़ा से छुटकारा मिल गया।

एक दिन एक राजनीतिक सभा में भाषण देने के लिए एरीगो के चिर-परिचित मित्र का आना हुआ। सभा की समाप्ति के बाद दोनों मित्र एक होटल में मिले। बातचीत के सिलसिले में मित्र ने बताया कि अपने फेफड़े में मौजूद ट्यूमर की मर्मान्तक पीड़ा से जिन्दगी की लाश ढो रहा है। चिकित्सकों ने किसी प्रकार इतने नाजुक स्थान पर आपरेशन करने से इन्कार कर दिया है क्योंकि उसमें जीवन के लिए खतरा है। वार्ता के उपरान्त दोनों सो गये।

रात्रि के समय राजीनितिक मित्र ने अनुभव किया जैसे किसी का हाथ उसके शरीर के ऊपर रेंग रहा हो। कुछ मिनटों तक यह क्रम जारी रहा। दूसरे दिन प्रात: उन्होंने देखा कि उनके कपड़े फटे हुए थे जैसे किसी ने जान-बूझकर दर्द वाले स्थान के ऊपर चीरा लगाया हो। और दूसरे ही दिन से उस कष्ट सें छुटकारा मिल गया जिसके उपचार में मूर्धन्य चिकित्सकों ने भी अपनी असमर्थता व्यक्त की थी।

अब तक एरीगो की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। ब्राजील ही नहीं अमेरिका एवं यूरोप के अन्य देशों से भी अधिक संख्या में रोगी, परीक्षक एवं वैज्ञानिक उसके पास आने लगे। उसकी शल्योपचार की चमत्कारी प्रक्रिया एवं असाधारण सफलता को देखकर वैज्ञानिकों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। अनेकों प्रयोगों को प्रामाणिकता की कसौटी पर कसने के उपरान्त सभी ने एक स्वर से स्वीकार किया कि एरीगो के भीतर कोई अलौकिक शक्ति है जिसके द्वारा वह उपचार करता है।

'टाइम' पत्रिका के सम्वाददाता डेविट सेण्ट क्लेर उसकी प्रसिद्धि सुनकर वास्तविकता को जानने पहुँचे। उनके सामने ही एरीगो ने एक अन्धे लड़के की आँख का आपरेशन किया। आँख के गोलक के बाहर हाथ से निकालकर उन्होंने उसकी झिल्ली को थोड़ा इधर-उधर किया और पुन: गोलक के भीतर बैठा दिया। लड़के को किसी तरह का कोई कष्ट नहीं हुआ। इस छोटे से कुछ मिनटों के, बिना किसी पीड़ा के हुए आपरेशन से बच्चे को वरदान के रूप में नेत्र ज्योति मिल गई।

प्रत्यक्ष प्रमाणिकता की जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त सम्वाददाता डेविट सेण्ट क्लोर ने लिखा कि ''निस्सन्देह एरीगो के भीतर कोई ऐसी अलौकिक शक्ति है जिसके द्वारा वह इस प्रकार के असम्भव काम करने में सफल होता है। विज्ञान के आधार पर उस रहस्यमय शक्ति का कोई कारण समझ में नहीं आता।''

एरीगो का जन्म सन् १९१८ में ब्राजील के एक छोटे से गाँव में हुआ। बचपन से ही उसे विलक्षण अनुभूतियाँ होने लगी थीं, कभी उसे रहस्यमय दृश्य दिखायी पड़ते तो कभी विचित्र प्रकार के सन्देश मिलते थे। आरम्भ में तो वह स्वयं भी इनका कारण नहीं जान पाता था, किन्तु अपने माता-पिता के अक्सर अपनी अनुभूतियों की चर्चा करता था। मन का भ्रम कहकर उसके अभिभावक उसकी बातों की उपेक्षा कर देते थे। कुछ वर्षों तक तो इसी प्रकार चलता रहा। एरीगो के असामान्य जीवन की शुरूआत तब आरम्भ हुई, जब उसने अनायास उस वृद्धा की सर्जरी कर डाली।

इस प्रकार की अनेकों दिव्य क्षमताएँ मनुष्य के भीतर विद्यमान हैं जो हर व्यक्ति में सोई पड़ी हैं। साधना पुरुषार्थ द्वारा उनका जागरण सम्भव है। स्थूल काया तो खाने, पीने, सोने, श्रम करने एवं मस्तिष्क सोचने-विचारने लौकिक गुत्थियों को सुलझाने जितना सामान्य प्रयोजन ही पूरे कर पाते हैं। शरीर के भीतर विद्यमान सूक्ष्म एवं कारण शरीर की क्षमताएँ स्थूल शरीर एवं मस्तिष्क की तुलना में कई गुनी अधिक हैं। उसमें एक से बढ़कर एक आश्चर्यजनक सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। उनका जागरण यदि सम्भव हो सके तो स्थूल उपचार द्वारा दूसरों को राहत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचाना ही नहीं, अदृश्य की जानकारियाँ भूत एवं भविष्य का ज्ञान जैसी कितनी ही चमत्कारी शक्तियाँ करतलगत की जा सकती हैं। उच्चस्तरीय साधनाओं द्वारा इन शक्तियों को प्राप्त कर सकने का मार्ग हर किसी के लिए खुला पड़ा है।

न ज्ञान न विज्ञान फिर भी निर्बाध आदान-प्रदान

२२ अगस्त सन् १९६४ की घटना है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी व्यापारी फ्रेंड स्पेडलिंग अपनी मोटर कार से हेरी की ओर बढ़ रहे थे। हेरी वेस्टइंडीज द्वीप समूह के एक टापू पर स्थित सुरम्य स्थान है। अटलांटिक महासागर के फरोपियन द्वीप हिस्पानोलिया के पश्चिमी स्थान पर उस स्थान में स्पेडलिंग प्राय: व्यापार के सिलसिले में आया जाया करते थे। उस दिन जब वे हेरी की ओर बढ़ रहे थे कि रास्ते में अचानक तूफान आ गया। तूफान भी ऐसा कि पहले कभी नहीं आया था। उस तूफान में करीब १५० व्यक्ति मर गये थे। स्पेडलिंग भी उस अंधड़ में फँस गये फिर भी उन्होंने आगे चलने का निश्चय किया और किसी तरह होटल तक पहुँच जाने की बात सोचने लगे। अपने होटल तक पहुँचने के लिए वे नक्शे की सहायता से आगे बढ़ना चाह ही रहे थे कि उन्हें सुनाई दिया "पीछे लौट जाओ, यह रास्ता खतरनाक है।"

आवाज बहुत समीप से आई थी, लगता था कोई कार की पिछली सीट पर बैठा था। स्पेडलिंग ने चौंककर इधर-उधर देखा। कोई दिखाई नहीं दिया। उन्होंने समझा कोई भ्रम हुआ है। स्पेडलिंग ने अपनी यात्रा जारी रखी। कुछ दूर आगे बढ़े ही थे कि फिर वही आवाज सुनाई दी। वही शब्द तो थे किन्तु इस बार स्वर पहले की अपेक्षा ऊँचा था। स्पेडलिंग ने स्वर को पहचाना भी वह आवाज उनकी पत्नी से बहुत मिलती जुलती थी। मिलती-जुलती इसलिए कि उस समय श्रीमती स्पेडलिंग तो उस स्थान से हजारों मील दूर कनेक्टीकट (अमेरिका) में थीं। स्पेडलिंग को फिर भी उस आवाज पर भरोसा न हुआ और वे बराबर आगे बढ़ते रहे। रह-रहकर वह आवाज सुनाई देती, स्पेडलिंग चौंक जाते, सहम उठते और रुक कर थोड़ी देर विचार करने लगते फिर आगे बढ़ जाते।

यह आवाज कहाँ से आई ? कौन आगे बढ़ने से रोक रहा है ? पत्नी तो हजारों मील दूर है, फिर उसकी आवाज इतनी स्पष्ट कैसे सुनाई दे रही है ? और उसे कैसे मालूम कि यहाँ अंधड़ आया हुआ है तथा मैं उसी में यात्रा कर रहा हूँ ? आदि ऐसे प्रश्न थे, जिन पर स्पेडलिंग जितना ही विचार करते उतना ही असमंजस बढ़ जाता था। रुकते-रुकते वह कुछ घण्टों में समुद्र तट के पास बह रही एक नदी के पुल तक पहुँचे। वह पुल पार करने जा ही रहे थे कि अंधड़ तूफान में उफन रहे समुद्र ने अपनी एक तेज लहर फेंकी और उस लहर के दबाव से नदी पर बना पुल टूटकर ऐसे बहने लगा जैसे नदी में डूबता, उतरता पत्ता यह अचानक दृश्य देखकर स्पेडलिंग काँप उठे। कुछ क्षण पहले भी यदि उन्होंने अपनी कार पुल पर बढ़ा दी होती तो निश्चय ही उनका कहीं पता नहीं चलता।

पर यह रहस्य रहस्य ही रहा। जबकि स्पेडलिंग को अपनी पत्नी की आवाज और चेतावनी कहाँ से तथा कैसे सुनाई दे रही थी ? घर पहुँचने पर तो इसमें रहस्य का एक और अध्याय जुड़ गया। स्पेडलिंग जब घर पहुँचे तो उहोंने अपनी पत्नी से इस घटना की चर्चा की। उनकी पत्नी ने बताया कि ठीक उसी रात को उसने सपना देखा कि उसका पति हेरी के जंगल में भयानक तूफान में फँस गया है। आगे गहरी नदी है, उसमें उसकी मोटर डूबने ही वाली है। इस दृश्य से वह बुरी तरह घबड़ा उठी और सोते-सोते ही चीख उठी फ्रेंड वापिस लौट जाओ। वह अपने पति को इसी नाम से पुकारती थी। खतरे से बचो। आगे खतरा है। यह एक रहस्य ही था कि हजारों मील दूरी पर रह रही श्रीमती फ्रेंड को उसी समय ऐसी अनुभूति कैसे हुई, जो न केवल भविष्य बताती थी वरन् एक की स्थिति का दूसरे को तत्क्षण आभास भी देती थी।

ब्रिटेन की सारकिक रिसर्च सोसायटी ने श्री मायर्स की अध्यक्षता में ऐसी अनेक घटनाओं की जाँच पड़ताल की है, जिनमें मनुष्य की अन्तर्निहित अतीन्द्रिय क्षमताओं का रहस्योद्घाटन होता है। जिन घटनाओं को मनुष्य के भीतर देव दानव का आवेश कहा जाता है, उनमें से कई घटनाएँ भी इसी प्रकार की अतीन्द्रिय क्षमताओं से सम्बद्ध बताई गई हैं। उपरोक्त घटना से मिलती-जुलती एक और घटना सान फ्रांसिस्को की है। वहाँ का एक ट्रक ड्राइवर लुइ फिशर अपनी पत्नी हैजल रेफर्टी से झगड़ा होने के कारण घर छोड़कर चला गया। झगड़ा इतना बढ़ गया कि दोनों ने आवेश में आकर एक दूसरे से कभी न मिलने की कसम खाली। इतना ही नहीं उन्होंने वह शहर छोड़कर अन्यत्र चले जाने की बात भी कही, ताकि वे फिर कभी एक-दूसरे का मुख न देख सकें।

इन दोनों में घनिष्ठ प्रेम था। इतना प्रेम कि दूसरे लोग उन्हें देखकर ईर्ष्या से जला करते थे। किसी बात पर उन्हें आवेश आ गया और गुस्सा-गुस्से में वे चले गये। किन्तु गुस्सा शान्त होने पर वे अनुभव करने लगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि जरा से आवेश में आकर उन्होंने इतना बड़ा कदम उठा लिया है, जो नहीं उठाना चाहिए। वे सोचने लगे कि इतने समय से वे कितनी अच्छी तरह घनिष्ठ मित्रों की भाँति रह रहे थे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, दोनों का पश्चाताप बढ़ने लगा और वापस मिलने की बेचैनी भी होने लगी, इस बेचैनी को शांत करने के लिए वे ऐसा उपाय ढूँढ़ने लगे कि साथी को ढूँढ़ सकें और अपनी गलती स्वीकार कर एक-दूसरे से क्षमा माँग सकें।

लेकिन समस्या यह थी कि लुई हैजल को और हैजल लुई को कहाँ ढूँढ़े ? दोनों में किसी को भी तो यह पता नहीं था कि उनका साथी कहाँ है ? एक दिन सबेरे हैजल ने सुना कि लुई लांस एजिल्टा शहर में है। वह तुम्हारा इन्तजार ग्रिफिथ की वेधशाला के पास बैठा कर रही है। हैजल वहाँ तुरन्त पहुँच जाओ। यह आवाज ऐसे सुनाई दी जैसे पास ही कोई रेडियो बज रहा हो और उससे यह सूचना प्रसारित हो रही हो।

ठीक इसी प्रकार की आवाज लुई ने भी सुनी ग्रिफिथ की वेधशाला में पहुँचो, वहाँ बैठी हैजल तुम्हारा इन्तजार कर रही है। यह आवाज सुनकर दोनों ही तत्काल दौड़ पड़े और नियत स्थान पर पहुँचते ही दोनों ने एक दूसरे को देखा, आँखों में झाँका। वहाँ पश्चाताप के आँसू इस तरह भरे हुए थे कि पुतलियाँ किसी झील में तैरती सी प्रतीत हो रही थीं। एक-दूसरे को देखकर आँसुओं का यह बाँध टूट गया और दोनों फूट-फूटकर रोये।

अब दोनों के लिए आश्चर्य का विषय यह था कि मिलन की पृष्ठभूमि बनाने वाला यह प्रसारण कहाँ से और कैसे हुआ ? लुई को हैजल से मिलने और 'हैजल' को लुई से मिलने के लिए यह अलग-अलग शब्दावली कैसे प्रसारित हुई ? अगर यह रेडियो प्रसारण था तो एनाउन्स किसने किया ? रेडियो स्टेशन पहुँचकर दोनों ने मालूम किया तो पता चला कि वहाँ से ऐसी कोई सूचना, प्रसारित नहीं की गई फिर भी लुई और हैजल ने यह शब्द सुने थे और इसी आधार पर दोनों एक दूसरे से मिले। जब ऐसी कोई सूचना रेडियो द्वारा प्रसारित नहीं की गई तो आश्चर्य का विषय था कि यह सूचना उनके कानों ने कैसे सुनी ? परामनोविज्ञानवेत्ता इस घटना को सुनकर और विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अतीन्द्रिय चेतना ऐसा ताना-बाना बुन सकती है जिसके कारण दो घनिष्ठ व्यक्तियों के विचार एक-दूसरे से वार्तालाप कर रहे हों।

अमेरिका के मन:शक्ति संस्थान के निर्देशक डा० ब्रूकेल्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में इस प्रकार की अतीन्द्रिय क्षमताएँ विद्यमान हैं, जिन्हें वह प्रयत्नपूर्वक जागृत कर सकता है। कभी-कभी यह शक्तियाँ अनायास भी जागृत हो जाती हैं और व्यक्ति में ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो आमतौर पर हर किसी में नहीं दिखाई पड़तीं। परामनोविज्ञान भी शोध, अन्वेषण और परीक्षणों के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ इतनी सीमित नहीं हैं जितनी कि वह प्रतिदिन के कार्यकलापों में प्रयुक्त होती दिखाई देती हैं। उस का एक बहुत बड़ा अंश तो प्रसुप्त ही पड़ा रहता है और लोग उसका कोई उपयोग नहीं कर पाते, जिस प्रकार गढ़ा या गाढ़ा हुआ धन व्यक्ति के पास कितनी ही सम्पदा हो सकती है पर कोई भी व्यक्ति अपनी सारी जमा पूँजी का उपयोग नहीं कर पाता। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी कुल जमा पूँजी मानसिक शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर पाता।

उनके प्रसुप्त ही पड़े रहने का एक कारण यह भी है कि दैनंदिन जीवन में उनकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती यदि यह आवश्यकता अनुभव की जाने लगे कि उनका जागरण होना चाहिए तो ऐसी परिस्थितियाँ सहज ही विकसित होने लगती हैं, जिनसे व्यक्ति परोक्षानुभूति की उन विशेषताओं से सम्पन्न दिखाई पड़ता है जो चमत्कारी और अद्भुत कही जा सकती हैं। इस तथ्य को प्रमाणित करने वाली अगणित घटनाएँ आये दिन मिलती रहती हैं और उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि उस क्षमता को विकसित कर पाना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव है। इस तथ्य पर की गई खोजों ने परामनोविज्ञान को और अधिक गहन अन्वेषणों के लिए प्रेरित किया है। तथा टैलीपैथी (विचार सम्प्रेषण) क्लेयर बायस (दूरानुभूति) प्रिकाग्नीशन (पूर्वाभास) अब परामनोविज्ञान की स्वतंत्र धारा बन गई है।

कुछ समय पूर्व तक इस तरह की बातों पर संदेह किया जाता था और उनकी यथार्थता अविश्वसनीय समझी जाती थी। ऐसी घटनाओं को मात्र जादूगरी के अतिरिक्त कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। किन्तु अब विज्ञान क्रमश: इन्हें ऐसे प्रामाणिक तथ्य मानता चला जा रहा है जिसकी खोज भौतिकी के अन्य क्रिया-कलापों की तरह ही आवश्यक है। चेतना के सम्बन्ध में अभी तक जितनी जानकारी प्राप्त हो सकी है, उससे स्पष्ट हो चला है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच पड़ी हुई गोपनीयता की दीवार उठ सकती है और न केवल एक-दूसरे की अंत:स्थिति को जाना जा सकता है अपितु कार्यक या भौतिक उपकरणों का प्रयोग किये बिना भी दूरस्थ रहे व्यक्तियों से भावनात्मक आदान-प्रदान सम्भव है।

परामनोविज्ञान के अनुसार विश्व मानस (यूनिवर्सल माइण्ड) एक समग्र विचार सागर है और व्यक्तिक चेतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी अलग-अलग लहरें हैं। ये लहरें अलग-अलग दिखाई देने पर भी एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप में संबद्ध हैं। उस समग्र विचार सागर से ही व्यक्तिगत चेतना अनेक विधि चेतनाएँ और स्फुरणायें उपलब्ध करती हैं। अध्यात्म शास्त्र तो इस मान्यता को काफी पहले से प्रामाणिक और अनुभव सिद्ध मानता रहा है। उसके अनुसार समस्त प्राणी एक ही विराट् चेतना का अस्तित्व है। काय-कलेवर की दृष्टि से अलग दीखते हुए भी सभी प्राणी आत्मिक दृष्टि से एक ही हैं। व्यक्तिगत भौतिकता और स्वभावगत विभिन्नताएँ एक दूसरे के विपरीत स्तर की दिखाई देने पर भी न केवल उनकी मूल प्रवृत्ति में साम्य है; वरन् ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध भी है जिसे पूर्णतया अलग कर पाना सम्भव नहीं हो सकता। अतीन्द्रिय क्षमताओं को प्रमाणित करने वाली घटनायें इसी तथ्य को सिद्ध करती हैं। भविष्य में जब इनका रहस्योद्घाटन होगा तो मनुष्य की सत्ता के बारे में यह विश्वासपूर्वक सप्रमाण कहा जा सकेगा कि वह उतना ही नहीं है जितना कि शारीरिक और मानसिक क्षमता के आधार पर जाना समझा जाता है।

आत्मचेतना विराट की प्रतिनिधि

एक समय था जब आधुनिक विज्ञान और आत्मविद्या कभी भी न मिल सकने वाले दो परस्पर विरोधी बिन्दु माने जाते थे। इसी कारण विज्ञान की प्रगति के साथ आध्यात्मिक अवमानना हुई, किन्तु आधुनिक विज्ञान भी बढ़ते-बढ़ते एक ऐसी स्थिति में आ गया है जब उसे यह विचार करना आवश्यक हो गया है कि क्या शरीर ही आत्मा है या आत्मा की अभिव्यक्ति के लिये शरीर अपर्याप्त माध्यम नहीं ? मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना की भौतिक परिधि और उसकी विराट् अवस्था दोनों के व्यापक अध्ययन से धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि सारे शरीर में मस्तिष्क के विद्यमान होने की तरह विराट् चेतना सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। शरीर उसका एक स्टेशन और मन्दिर मात्र है जिसमें वह अपने अंश या जीव रूप में कुछ क्षण विश्राम के लिये आता है। उसका अन्तिम लक्ष्य विभु या विराट् बनना है। इस उद्देश्य की पूर्ति न होने तक सन्तोष नहीं होता।

मनुष्य की चिन्तन शक्ति, भावनाओं, संवेदनाओं को मात्र रासायनिक संवेग मानकर मनुष्य जीवन को नितान्त भौतिक मानने की भूल थोड़े से वैज्ञानिकों ने की है। अधिकांश ने या तो तथ्यों को अत्यन्त गूढ़ कहकर निष्कर्ष निकालने का विचार ही त्याग दिया या फिर श्रद्धापूर्वक उसने यही स्वीकार किया कि मानवीय चेतना का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। वह भौतिकीय तत्वों का सम्मिलन मात्र नहीं, अपितु विराट् चेतना का ही अंश है। वह शरीर रूप नाम का पिंड मात्र नहीं, अनादि, अनन्त गुण वाला चेतन तत्व है। शरीरों का इन्द्रियों का विकास उसकी इच्छानुसार उसके संकल्प के आधार पर हुआ है।

भौतिक विज्ञान के जो पण्डित स्नायु-तंत्र (नाड़ी मंडल) को ही आत्मा मानते और उन्हीं से विचारों को उद्भूत हुआ मानते हैं उनमें जर्मनी के शरीर विज्ञानी डा० काल ह्राक्ट तथा डा० टेन्डाल आदि प्रमुख हैं। अपने सिद्धान्त की पुष्टि में उन्होंने अनेक प्रयोग शरीर पर किये। स्नायु-मण्डल की विस्तृत खोज की। उन्होंने उस गति की माप की जो शरीर में किसी अंग पर आघात के बाद उस अंग से भाव संदेश के रूप में मन तक और मन से शरीर के किसी अंग तक पहुँचते हैं। मस्तिष्क बोध की सूक्ष्मता का भी पता लगाया तथा विद्युत आवेश देकर उन संदेशों को घटाने-बढ़ाने में भी सफलता प्राप्त की। विचारों की उत्पत्ति को उन्होंने कहा यह मस्तिष्क की वैसी ही उपज होते हैं जैसे यकृत की पित्त। हालांकि अब तक वैज्ञानिक मस्तिष्क के गहन अन्धकार में झाँक कर जितना जान सके हैं वह अधिकतम १३ प्रतिशत है। मस्तिष्क के शेष ८७ प्रतिशत भाग की कोई जानकारी नहीं है। इतनी कम जानकारी को पूर्णता की संज्ञा देना वैसे ही अविवेकपूर्ण कहा जायेगा।

फिर कुछ ऐसी घटनायें और प्रसंग भी आये, दिन आते रहते हैं जो इस वैज्ञानिक मान्यता के सामने चुनौती बनकर खड़े हो जाते हैं। वैज्ञानिक उन कारणों की कोई व्याख्या करने में असमर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, इटली में गियोबानी गलान्ती नामक एक ऐसा बालक था जो रात के अंधेरे में भी पढ़ सकता था। १९२८ में उसे इसी स्वास्थ्य परीक्षा के बाद अमेरिका नहीं जाने दिया गया था। पढ़ते समय मुख्य कार्य मस्तिष्क करता है और कोई भी मस्तिष्क प्रकाश के बिना पढ़ नहीं सकता, फिर इस बालक में यह क्षमता कहाँ से आई ?

स्काटलैण्ड में जेम्स क्रिस्टन नाम के एक बालक ने १२ वर्ष में ही अरबी, ग्रीक, यहूदी तथा फ्लेमिश सहित विश्व की १२ भाषायें सीख ली थीं। २० वर्ष तक वह विज्ञान की सभी भाषाओं का पण्डित हो गया था। उसके और सामान्य व्यक्ति के आहार और जीवन क्रम में जब कोई विशेष अन्तर नहीं था तब बौद्धिक क्षमता में आकाश-पाताल जैसे अन्तर का कारण क्या हो सकता है? फ्रान्स में जन्मे लुईस कार्डक ४ वर्ष की आयु के थे तभी अंग्रेजी, फ्रान्सीसी, जर्मनी तथा अन्य योरोपीय भाषायें बोल लेते थे। इससे भी बड़ा आश्चर्य यह था कि वह ६ माह में ही बाइबिल पढ़ लेते थे। ६ वर्ष की आयु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक पहुँचने पर कोई भी प्रोफेसर गणित, इतिहास और भूगोल में इनकी बराबरी नहीं कर सकता था। जो ज्ञान और बौद्धिक क्षमतायें इतने अधिक अध्ययन और अभ्यास से विकसित हो पाती हैं और वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार जिन्हें पदार्थ की परिणति होना चाहिए था, वह शरीरिक विकास के अभाव में ही इतने विकास तक कैसे पहुँची ?

ब्लेइस पास्कल ने १२ वर्ष की आयु में ही ध्वनि-शास्त्र पर निबन्ध प्रस्तुत कर सारे फ्रान्स को आश्चर्य में डाल दिया था। जीन फिलिप बेरोटियर को १४ वर्ष की आयु में ही डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि मिल गयी थी। उनकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि दिन याद कराने की देर होती थी उस दिन की व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें भी टेप की भाँति दुहरा सकते थे। जोनी नामक आस्ट्रेलियाई बालक को जब तीन वर्ष की आयु में विद्यालय में प्रवेश कराया गया तो वह उसी दिन से ८वीं कक्षा के छात्रों की पुस्तकें पढ़ लेता था। उसे हाईस्कूल में केवल इसलिये प्रवेश नहीं दिया जा सकता क्योंकि उस समय उसकी आयु कुल ५ वर्ष थी जबकि निर्धारित आयु १२ वर्ष न्यूनतम थी।

कोई भी अल्पबुद्धि व्यक्ति यह स्पष्ट समझ सकता है कि यह असामान्य ज्ञान पूर्व जन्मों के ही संस्कार हो सकते हैं। हमारे मनीषी निरन्तर स्वाध्याय की आवश्यकता अनुमोदित करते रहे और यह बताते रहे कि ज्ञान आत्मा की भूख-प्यास की तरह है। उससे उसका विकास होता है। यह बात समझ में आने वाली है कि चेतना का विकास ज्ञान साधना से ही सम्भव है जो अद्भुत क्षमता के रूप में हर किसी को मिलती है। बालकों के आहार, वातावरण, पोषण आदि की समान सुविधायें होने पर भी बौद्धिक असमानता इन्हीं भारतीय मान्यताओं की समर्थक हैं।

इटली के डॉ. लोम्ब्रोसो जिन्होंने एक समय एक प्रतिष्ठापना दी थी कि रचना विज्ञान की दृष्टि से एक पागल और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों में समरूपता होती है। इस बात को भौतिकवादियों ने बहुत अधिक उछाला किन्तु वे यह भूल गये कि देखने में नमक और शक्कर दोनों में समानता दिखाई देने पर भी उनके गुणों में कितना अन्तर होता है एक के भाव ५ रु० किलो होते हैं तो दूसरे के १० पैसे किलो। प्रतिभाशाली व्यक्तियों, आध्यात्मिक, धार्मिक संतों के विचारों में रचनात्मक जागरूकता और मार्गदर्शन की क्षमता होती है। उन्होंने सैकड़ों लोगों के जीवन में शान्ति, सुरुचि और सुव्यवस्था दी जबकि पागल के विचार अस्त-व्यस्त होते हैं। उसे लोग दुत्कारते ही हैं, उसकी सुनता कोई नहीं।

लोम्ब्रोसी के उक्त प्रतिपादन का खण्डन अनेक वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने भी किया है। डा० मोर्शले ने उपरोक्त मत से असहमति व्यक्त की है और लिखा है कि सामान्य मस्तिष्क में दुनियादारी की प्रवृत्ति तो होती है, किन्तु सूक्ष्म चिन्तनशक्ति असाधारण लोगों में ही होती है।

मैडम ब्लैवटस्की का कथन है कि मस्तिष्क उस वीणा व बायलिन की तरह है जिसके तार को जितना अधिक खींचा व कसा जायेगा, ध्वनि कम्पन उतने ही सूक्ष्म और मोहक होंगे। असामान्य मस्तिष्क की असामान्य उपलब्धियाँ ऐसी ही हैं। तार कसने में उसके टूटने का भय होता है। इसलिये उसे धीरे-धीरे सावधानी से कसते हैं। मस्तिष्क को जिन साधनों (योग विद्या) से सूक्ष्म, तत्वग्राही और संवेदनशील बनाया जाता है उनकी भी यही प्रवृत्ति होती है। एकाएक कठोर अभ्यास पागल और विक्षिप्त कर सकते हैं, इसलिये साधना का क्रम मार्गदर्शकों की देख-रेख में धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। शारीरिक अभ्यास, उपवास आदि से शरीर शोधन, विचारों में प्रकाश अवधारणा आदि से ही उच्च क्षमतायें विकसित होती हैं। योगियों पर कोई स्नायविक दबाव नहीं पड़ता, कोई बीमारी नहीं होती। अतएव सूक्ष्म विचारों की महत्ता के साथ-साथ योग साधनाओं की भी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। चिन्तन के सूक्ष्मतर होने से ज्ञान चेतना के कोश परस्पर जुड़ते हुए चले जाते हैं और सामान्य मस्तिष्क जो सन्देश, प्रेरणायें, अनुभूतियाँ नहीं ग्रहण कर पाते उनके लिये सुलभ हो जाती हैं। सर आलिवर लाज ने भी अपनी बौद्धिक क्षमतायें इसी आधार पर विकसित की थीं और यह माना था कि हमारी ज्ञान चेतना पदार्थ जन्म न होकर विराट चेतना का ही एक अंश और अंग है। जब तक इस बात को नहीं समझते तब तक हमारे दृष्टिकोण भी भौतिकतावादी बने रहते हैं। तब पाप-पुण्य में कोई अन्तर ही नहीं रहता, नैतिकता को कोई अर्थ ही नहीं होता। आज जो सर्वत्र पीड़ा और पतन के दृश्य हैं, स्वार्थ-संकीर्णता ने पुण्य-परमार्थ को दबोच रखा है, वह उसी मान्यता का दुष्परिणाम है।

पूर्वी मनोविज्ञान या भारतीय दर्शन के पीछे शोधों की एक लम्बी विज्ञान सम्मत शृंखला है जबकि पश्चिमी मनोविज्ञान अभी ३०-४० वर्ष का बालक मात्र है जो सतह पर खड़ा स्नान करता है, उसमें इतनी क्षमता भी नहीं कि गहरे जाकर गोता लगा सके। इसीलिये वह जितने समाधान प्रस्तुत करता है, उतने ही प्रश्न और समस्यायें उठ खड़ी होती हैं। ऊपर मस्तिष्क की जिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदम्य क्षमताओं का वर्णन किया गया है उन्हें कुछ देर के लिये भूल भी जायें तो भी जब मस्तिष्क सामान्य नहीं होता तब भी चेतन क्रियायें चलती रहती हैं। न केवल जाग्रत अवस्था में अपितु स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था में भी चेतना बनी रहती है उसका भी समाधान आवश्यक है। डा० ड्यूप्रेल ने अपनी पुस्तकों में ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे यह सिद्ध होता है कि समय या अनुभूति के एक सेकण्ड के करोड़वें भाग में ही महाकाल या अनेक वर्षों में हुए ज्ञान की अनुभूति कैसे सम्भव हो जाती है। इसका अर्थ तो स्पष्टत: यही होता है कि कोई एक ऐसी चेतना है जो विराट है और उसके लघुतम अंश में भी वही सम्भवनायें सन्निहित हैं। अपनी पुस्तक में डा० प्रेल ने एक व्यक्ति के स्वप्न का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस व्यक्ति की गर्दन का एक उँगली से स्पर्श किया गया उसकी नींद टूट गई। जब उससे अनुभव के बारे में पूछा गया तो उसने बताया कि उसने स्वप्न देखा कि मैंने किसी की हत्या कर दी, उस व्यक्ति के घरवालों ने पुलिस को रिपोर्ट लिखाई, पुलिस ने पकड़ा, जेल भेजा, मुकद्दमा चला, वकीलों की जिरह हुई, मुझे फाँसी की सजा हो गई। नियत समय पर जल्लाद आया, उसने मेरी गर्दन पर चाकू रखा और मेरी नींद टूट गई।

डॉ० प्रेल लिखते हैं—जिस तरह ज्ञान के अंश में ही विराट-काल व्याप्त होने का यह उदाहरण है उससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात है सम्मोहन की अवस्था में (हिप्नोटिजम) व्यक्ति अचेत हो जाता है, उसे अपनी स्थिति का भी बोध नहीं रहता, आँखें देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, पलकें तीव्र विद्युत प्रकाश में भी सिकुड़ती हैं, त्वचा स्पर्श ज्ञान से शून्य हो जाती है। हृदय की धड़कन बन्द-सी हो जाती है, अत्यन्त संवेदनशील यंत्रों से ही जीवन का बोध होता है। कार्बन तत्व अत्यधिक बढ़ जाने से मस्तिष्क संज्ञा शून्य हो जाना चाहिये था। जड़ता, अगति या मृत्यु हो जानी चाहिये थी किन्तु तब ज्ञान की क्षमतायें जाग्रति से भी अनेक गुनी अधिक बढ़ जाती हैं। अर्थात् सम्मोहन की अवस्था में बाल्यावस्था की जो घटनायें याद नहीं रहती वह भी स्मरण शक्ति में आ जाती हैं। सामान्य स्थिति में कोई पुस्तक का एक पैराग्राफ पढ़े तो तीव्र बुद्धि शक्ति ही उसके कुछ शब्द दोहरा सकते हैं पर सम्मोहित अवस्था में तो यदि भाषा उसकी पढ़ी हुई नहीं तो भी अक्षर-ब-अक्षर दोहरा सकता है। जाग्रत अवस्था में आँख की शक्ति सीमित होती है, किन्तु उस स्थिति में कमरे में बन्द रहकर भी सैकड़ों मील दूर की वस्तुयें तक दिखाई देती हैं यह सब कैसे सम्भव है ?

तब फिर यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्म-चेतना विराट चेतना का ही अंश है, जिसमें असीम ज्ञान की शक्ति सन्निहित है। भूत, भविष्य और वर्तमान उसी में अवस्थित है, वह पदार्थ से परे है, उसे जानने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

देखने वाली आत्मा को आँखें आवश्यक नहीं

कई वर्ष पूर्व अप्रैल में मास्को से टेलिविजन पर एक अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्यक्रम प्रसारित किया गया। निजनी तगिन की एक २२ वर्षीया तरुणी रोसा कुलेशोवा ने अपने दाहिनें हाथ की तीसरी और चौथी उँगलियों से स्पर्श करके अखबार का एक लेख पढ़ा और फोटों, चित्रों को बिना आँख की मदद से देखकर पहचाना। इस कार्यक्रम को हजारों रूसियों और दूसरे देशवासियों ने देखा और बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया।

रोसा निजनी के अन्ध विद्यालय में अध्यापन का कार्य करती है। एक दिन जब वह पढ़ा रही थी, तब एकाएक उसने अनुभव किया कि वह बिना आँखों की सहायता उँगलियों के पोरों से देख सकती है। उसने धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाया। स्पर्श से ही वह अंक पहचानने लगी। कुछ दिन में तो वह कागजों पर हुए रंग को भी केवल स्पर्श से जानने लगी। दिसम्बर ६२ को उसने सोवियत संघ, मनोवैज्ञानिक संघ की यूराल शाखा के सदस्यों के सामने प्रदर्शन किया। तुरन्त प्रेस से आये अखबार को उँगलियों की मदद से पढ़कर सुना दिया। यही नहीं अखबार पर जहाँ चित्र थे, उनके पोज और वह चित्र कैसे कपड़े पहने थे, यह सब अत्यन्त सूक्ष्म विभाजन तक उसने केवल स्पर्श से बता दिये, स्पर्श से वह किस प्रकार अक्षर रंग या चित्रों को पहचान लेती है, इसका कोई निश्चित उत्तर रोसा नहीं दे सकी किन्तु उसने इतना अवश्य बताया कि कोई भी वस्तु छूने से कुछ तरंग जैसी लाइनें मस्तिष्क तक दौड़ने लगती हैं और सब कुछ स्पष्ट होने लगता है।

वैज्ञानिक बहुत हैरान हुए, खारकोव विश्वविद्यालय के एक मनोविज्ञान शास्त्री ने कहा—"सम्भव है वस्तुओं से इन्फ्रारेड किरणें निकलती हों और उनके स्पन्दन से पता चलता हो, इसलिए रोसा पर कुछ प्रयोग किये गये। पालिस किये हुए काँच के पार से वस्तुयें दिखाई गईं। अब इन्फ्रारेड किरणों की सम्भावना को रोक दिया गया था तो भी रोसा ने पहले की तरह ही सब कुछ बता दिया। यही नहीं उसे एक लम्बी नली के पार से रंग दिखाये गये, तब उसने नली के मुँह पर उँगली रखकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब कुछ सही-सही बता दिया। वैज्ञानिक कोई कारण समझ न सके, अन्त में रूसी अखबार 'इजवेस्तिया' ने स्वीकार किया, यह किसी दिव्य दृष्टि का चमत्कार है।

टेलिविजन पर हुए कार्यक्रम को देखने के बाद खार्कोव के एक डाक्टर ओल्गा ब्लिजनोव ने अपनी पुत्री पर भी इस तरह का प्रयोग किया और देखा कि रोसा कुलेशोवा की तरह नीले, काले, हरे, लाल सब रंगों को केवल स्पर्श से जान लेती है। उसका भी परीक्षण किया गया। लेना ब्लिजनोव के सामने चौकोर कागजों का पूरा बण्डल रखा गया और उसके नीचे एक कागज पर कुछ लिखकर छुपा दिया गया। आश्चर्य कि उसने बण्डल के ऊपर वाले कागज को छूकर यह बता दिया कि सबसे नीचे वाले कागज में क्या लिखा हुआ है। इतना ही नहीं वह दो-ढाई इन्च दूर उँगलियाँ रखकर भी फोटो, चित्र, रंग और अक्षर पहचान लेती है, जबकि उसकी आँखों में मजबूत पट्टी बँधी होती है।

प्रोफेसर अलेक्जांदेर स्मिर्नोव ने इस विद्या का गहन अध्ययन किया। उन्होंने ऐसी क्षमता के कुछ लड़के भी खोज निकाले, पर इस रहस्य का सही पता न लगा सके। इन चर्चाओं को न्यूयार्क में बारनार्ड कालेज के प्रोफेसर डॉ० रिचार्ड पी० यूज ने भी सुना तो उन्होंने बताया कि १९३९ में कैण्टकी के हाईस्कूल में पैट्रीशिया आइन्सवर्थ नाम की एक लड़की भी इस तरह की दिव्य-दृष्टि रखती है। अब तक वह स्त्री कई बच्चों की माँ हो चुकी थी, इसलिये श्री डॉ० यूज ने कालेज के लड़कों पर प्रयोग दोहराये और बाद में उन्होंने बताया कि १३५ विद्यार्थियों में से १५ प्रतिशत छात्रों में इस तरह की क्षमता पाई गई, जो अभ्यास के द्वारा अपनी दिव्य दृष्टि बढ़ा सकते हैं। उनकी इस घोषणा से वैज्ञानिकों में हलचल उत्पन्न हो गई कि क्या सृष्टि का प्रत्येक प्राणी सचमुच आदिकाल से ही ऐसी क्षमतायें अपनी भीतर छुपाये हुये है। इतना स्पष्ट ज्ञान होते हुए भी वह सर्वथा अज्ञानी बना हुआ है। उसे भविष्य और दूरस्थ वस्तुओं का तो दूर कई बार तो पास की वस्तुयें भी पहचानना कठिन हो जाता है। अपने माता-पिता और बच्चों के मन की भी बात न जान सकने वाले मनुष्य में कोई विलक्षण दिव्य दृष्टि का होना सचमुच आश्चर्यजनक है, पर योग-विद्या और आत्मा का रहस्य जानने वाले भारतीय आचार्यों के लिये यह कोई कठिन बात नहीं रही। यहाँ आदि काल से सूक्ष्म तत्वों का ही परीक्षण, विश्लेषण, शोध और अभ्यास किया जाता रहा है।

ध्यान बिन्दूपनिषत् के ९४वें शोध मन्त्र में बताया है—

अथात्म निणयं व्याख्यास्ये हृदि स्थाने अष्टदल पद्मं वर्तते तन्मध्ये रेखा वलयं कृत्वा जीवात्म रूपं ज्योतीरूप मणु मात्रं वर्तते, तस्मिन सर्व प्रतिष्ठितं भवति सर्व जानाति----------।

अर्थात्—अब आत्मा के विषय में विचार करते हैं। हृदय स्थान में अष्टदल कमल है, उसमें रेखाओं का आश्रय लेकर जीवात्मा ज्योतिरूप अणुमात्र रूप में रहता है। उसी में सब कुछ प्रतिष्ठित है, वही सब कुछ जानता है (बिना इन्द्रियों की मदद से अपनी सूक्ष्म इन्द्रियों के माध्यम से)———।

गणपत्युपनिषत् की छःवीं ऋचा का एक अंश—

त्वं चत्वारि वाक्परिमिता पदानि। त्वं गुणमयातीतः त्वं मूलाधारे स्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः।

वाणी के चार रूप परा, पश्चन्ति, वैखरी और मध्यमा भी तुम हो, गुणातीत हो———मूलाधार में स्थित, इच्छाशक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति यह तीनों रूप तुम्हारे ही हैं।

योग उपनिषदों में आत्मानुभूति और आत्म-साक्षात्कार के साधनों का विस्तृत विवरण दिया गया है और यह बताया गया है, आत्मा को जान लेने पर मनुष्य की सम्पूर्ण चेष्टायें आत्मा बन जाती हैं, तब वह न केवल छिपी से छिपी वस्तु के रहस्य को समझ सकती है, वरन् लाखों मील दूर की वस्तु को देख, सुन-समझ और कोई सन्देश भी भेज सकती है। यह सब उसकी परा-शक्ति का प्रतिफल है। इन उपनिषदों में यह भी बताया गया है कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध और निर्विकार है, इसलिये यह आवश्यक नहीं कि उसकी अनुभूति के लिये कठिन योग क्रियायें ही की जायें, मनुष्य अभ्यास द्वारा अपने मन के मैल और आत्मा पर चढ़ी बुराइयाँ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि को त्याग डाले तो ही उन अनुभूतियों और शक्तियों का सहज स्वामी बन सकता है। योग का मार्ग वैसे कठिन है पर वह पूर्ण विज्ञान सम्मत तरीका है, इसलिये उसकी उपयोगिता भी कम नहीं है।

मेरुस्तम्भ के शिखर के सीधे ऊपर खोपड़ी के बीचों-बीच से थोड़ा हटकर लालिमा लिये हुये भूरे रंग की कोण शक्ल की एक वस्तु मस्तिष्क की पिछली कोठरी के आगे तीसरी कोठरी की तह से मिली हुई पाई जाती हैं। यह गुद्दी का पुंज है, जिसमें छोटे-छोटे खुरखुरे चूनेदार अणु होते हैं, इन्हें 'मस्तिष्क बालुका' कहा जाता है। इसे पाश्चात्य वैज्ञानिक 'पाइनल ग्लैण्ड' या 'पाइनल बाड़ी' कहते हैं, पर वे अभी उसके कार्य अभिप्राय और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयोग से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। मोटी जानकारियाँ ही इस सम्बन्ध में मिलती हैं।

दूरवर्ती वस्तुओं और सूक्ष्म से सूक्ष्म मन तक के लगाव का कारण योगी लोग इसी स्थान को मानते हैं। यह आत्मा की ज्ञान-शक्ति का कोष कहा जा सकता है। इस अवयव के लिये यह आवश्यक नहीं कि इसमें कोई बाह्य द्वार हो जैसा कि कान, नाक, मुँह में होता है। इसमें से उठने वाले विचार कम्पन स्थूल पदार्थों का भेदन भी उसी तरह कर जाते हैं, जिस तरह 'एक्सरेज'। वह सूक्ष्म विचार कम्पन पहाड़ों की चट्टानों, लोहे आदि का भी भेदन कर उसके भीतर की आणविक संरचना का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि जमशेद जी टाटा को खनिज और इस्पात का कारखाना खड़ा करने का स्थान स्वामी विवेकानन्द ने लन्दन में तब बताया था, जब श्री टाटा जी वहाँ उसकी स्वीकृति लेने गये थे। खनिज पदार्थ, पानी और तेल के कुओं तक का पता धरती के भीतर हजारों फीट निचाई में हो तो वहाँ भी यह विचार कम्पन पहुँचकर वहाँ की स्थिति का रहस्य आत्मा को बता सकते हैं।

मस्तिष्क का 'कोनीला अणु' बेतार के तार की तरह अदृश्य जगत् के सूक्ष्म से सूक्ष्म कम्पन को भी पकड़ लेता है, इसलिये जो बात मन में तो न हो पर अवचेतन मन में हो, उसे भी जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये कौड़ी वाले बैल देखे होंगे, जो अपने स्वामी के संकेत पर बता देते हैं कि ५ का नोट किसकी जेब में है—बैल चलता है और उस आदमी के पास जा पहुँचता है। वह आदमी पूछता है—इनमें 'रामशंकर' कौन है, उस समय भीड़ में खड़ा रामशंकर अपने मन में अपना नाम भी नहीं लेता, उस समय तो उसे केवल कौतूहल होता है पर चूँकि उसके अवचेतन मस्तिष्क में यह बात रहती है कि मैं रामशंकर हूँ, उसी को बैल का यह अवयव पकड़ लेता है और उस व्यक्ति के पास जाकर बता देता है।

ऐसे खेल प्रायः सभी ने देखे होंगे। अभी तक इनको चमत्कार माना जाता है पर मनुष्य और जीव दोनों में इस तरह की ज्ञान-शक्ति के आधार पर कुछ दिन में यह भी पता चल जायेगा कि आत्मा का अस्तित्व मनुष्य में ही नहीं अन्य प्राणियों में भी है। जिस दिन यह मान्यता लोगों के मस्तिष्क में उतर जायेगी, उस दिन पुनर्जन्म और कर्मफल के अनेक रहस्य भी मालूम होने लगेंगे और तब अबकी तरह चोरी, छल-कपट, धोखा, अपराध, अत्याचार करने वाले लोगों को मालूम होगा कि इनके कारण उन्हें दूसरी योनियों में रहकर किस तरह कष्ट उठाना पड़ा और देहासक्ति से अब किस तरह बचा जा सकता है। तब लोग बिना समझाये हुए भी शुभ और पवित्र जीवन के अभ्यास के लिए समुद्यत होंगे।

आत्मा की यह गुप्त इन्द्रियाँ सब के होती हैं, जैसा कि अमेरिका के डाक्टर मूज ने माना। अभी उसे जीवन के क्रिया-कलापों के संगति देना शेष है। थोड़े से मनुष्यों ने ही इनका ऐसा विकास किया है कि वे इनका सचेतन उपयोग कर सके। रूस की यह घटनायें उसी का उदाहरण हैं, भारतवर्ष में ऐसी घटनायें तो आये दिन स्थान-स्थान पर घटित होती रहती हैं।

पाण्डिचेरी के चीफ जस्टिस श्री जंकालियट अन्धविश्वासी व्यक्ति नहीं थे, उनकी समालोचना शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, जब पाल ब्रन्टन भारतवर्ष आये और यहाँ की गुप्त अध्यात्म विद्या पर एक पुस्तक लिखी तो उसकी भूमिका उन्होंने जंकालियट से लिखाई, उन्होंने लिखा है—"मैं ऐसे कई साधुओं से मिला हूँ, जो मन की बात ऐसे बता देते हैं, जैसे वह उनकी ही बात हो। एक बार एक साधु ने मुझसे कुछ लिखकर अपने पास रखने को कहा, मैंने कुछ लिखा और उसे थैली में बन्द कर लिया, साधु ने ध्यान लगाया और एक कागज पर लिखकर दिया। उस पर लिखा था—"एलबेन बूनियर, बोर्ग इन ब्रेस्सी (एन) में ३ जनवरी सन् १८५६ में मरा था।" मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि मेरे प्रश्न का ठीक यही उत्तर था। नाम, स्थान और तिथि इतने सही ढंग से बताया जायेगा, उसकी मैंने कल्पना ही न की थी। अब मुझे ऐसा लगता है कि सचमुच कोई ऐसी नैसर्गिक शक्ति है, जिसने मेरे और साधु के बीच बातचीत का मार्ग स्थापित किया।"

कुछ दिन पूर्व अणुव्रत संघ के तत्त्वावधान में एक योग प्रदर्शन कार्यक्रम रखा गया था, उसमें अणुव्रत आन्दोलन के एक मुनि ने ऐसे चमत्कार दिखाये थे। तमाम देशों के राजदूत उसमें सम्मिलित थे। योगी ने अरब के राजदूत की धर्मपत्नी के बटुये में कितने नोट हैं, बताये थे।

मास्को न्यूज के २२ अगस्त अंक में एक वोल्दया देन्शिक नामक आठ वर्षीय बालिका का विवरण छपा है। यह बालिका अंधेरे में भी अपने होठों से देख लेती है। अत्यन्त सूक्ष्म लिखे कागज के ऊपर पच्चीसों कागज ढक देने पर भी वह सब कुछ बता देती है कि नीचे वाले कागज में क्या लिखा है।

यह सब आश्चर्य सी दिखने वाली बातें आत्म-विद्या की एक अरबों अंश सी छोटी किरण हैं। आत्मा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान-शक्ति अनन्त और अपार है, अपने शुद्ध और सनातन रूप में उसे जान लेने पर मनुष्य उसी तरह त्रिकालदर्शी हो जाता है, जैसे हमारे ऋषि थे।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्

ब्रह्माण्डव्यापी चेतना को ब्रह्म के नाम से सम्बोधित कर भारतीय ऋषियों ने कहा है कि वह निराकार और निर्गुण होते हुए भी सब ओर से हाथ-पैर वाला तथा सब ओर से नेत्र, सिर और मुख वाला है। वस्तुतः ब्रह्म का या चेतना का कोई स्थूल स्वरूप आँखों से नहीं देखा जा सकता फिर भी ऐसी कोई घटना नहीं होती जिससे चेतना को अनभिज्ञ रखा जा सके अथवा किसी घटनाक्रम में उसके अस्तित्व को, कारण को अस्वीकारा जा सके।

जो विभु में है वही अणु में भी है, जो ब्रह्माण्ड में है वह कण में भी है तथा जो ब्रह्म में है; वही चेतन में भी है—भारतीय दर्शन के अध्येताओं से यह सिद्धान्त अनावगत नहीं है। सामान्य जगत में भी यह देखा जा सकता है। एक बीज में वृक्ष की तमाम विशेषतायें और सम्भावनायें सन्निहित होती हैं। समुचित खाद-पानी और पोषण प्राप्त कर बीज ही वृक्ष बनता है। माता-पिता के रजवीर्य में अपने ही समान एक नया प्राणी जन्म देने की क्षमता अन्तर्हित होती है। आत्मा, जिसे शरीर तक सीमित रहने वाली चेतना का एक कण समझा जाता है, विकसित होकर परमात्मा के समान विभूतियों और विशेषताओं की भण्डार बन जाती है।

विज्ञान पहले इन तथ्यों को नकारता आ रहा था; पर नकारने से तो कोई तथ्य असत्य नहीं हो जाता। जो घटनायें अनादि काल से घटती आ रही हैं, आज भी घटती हैं। यदा-कदा घटने के कारण वे विचित्र और चमत्कारी भी लगती हैं, परन्तु उनके पीछे चेतना विज्ञान के सुनिश्चित नियम काम करते हैं। पहले लम्बे समय तक उन्हें गप्प, भ्रम या मनगढ़न्त कहा जाता रहा; परन्तु विज्ञान उनकी ओर से और अधिक आँखें मूँदे नहीं रह सका।

अब इन घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन भी किये जाने लगे हैं, उनके निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए प्रयोगशालाओं में परीक्षण भी होते हैं तथा जो तथ्य विदित होते हैं उन्हें निर्विवाद रूप से प्रकाशित किया जाता है। उदाहरण के लिए बिना किसी बाहरी संसाधनों के मीलों दूर घटी घटनाओं का आभास ही लिया जाय। अध्यात्म की भाषा में इसे दूरबोध कहते हैं। आत्मा की यह सामर्थ्य लम्बी योग साधनाओं के अनवरत अभ्यास से प्राप्त होती है किन्तु यदा-कदा सामान्य स्थिति में भी इसकी अनुभूति हो जाती है।

कई व्यक्तियों को रहस्यमय अनुभव होते हैं और कभी पता चलता है कि उन्होंने जो अनुभव किया है वह अमुक स्थान पर ठीक उसी प्रकार घटा है। वैज्ञानिकों ने जब इन रहस्यों को उद्घाटित करने का बीड़ा उठाया तो एक से एक चौंका देने वाले तथ्य सामने आये और सिद्ध हुआ कि साढ़े पाँच फुट ऊँची सौ पौण्ड वजनी काया में ब्रह्माण्ड व्यापी चेतना संयुक्त और ओतप्रोत है।

प्रसिद्ध जीवशास्त्री प्रो० फ्रैंक ब्राउन ने कई प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि सृष्टि में जो असंख्य प्राणी है वे ऐसे संग्राहक रिसीवर हैं जो ब्रह्माण्ड के स्पन्दन तथा संवेदन ग्रहण करते रहते हैं। संग्राहक का काम करने वाले बहुत सूक्ष्म परमाणु बताये जाते हैं जिनमें घनत्व, भार, विस्फुटन, चुम्बकत्व आदि कोई भौतिक लक्षण नहीं होते हैं।

अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में खोज की पाया कि प्रो. फ्रैंक ब्राउन का मत एकदम सही है। संग्राहक का काम करने वाले इन चेतन परमाणुओं को 'न्यूगिनी' नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ये अणु अरबों की संख्या में प्रकाश की गति से बहते रहते हैं। यहाँ तक कि ये अणु के भीतर से भी पार हो जाते हैं, इतने सूक्ष्म होते हैं। यदा-कदा इनमें कुछ विशेष क्रियाशीलता आती है। इसी से इन्हें देख पाना सम्भव होता है।

एण्ड्रिया ड्राब्स नामक वैज्ञानिक ने न्यूर्टिन के आधार पर ही साइन्ट्रोन अणु का पता लगाया और कहा कि साइन्ट्रोन ही मस्तिष्क के न्यूरॉन कणों से जुड़कर पराचेतना को जाग्रत करता है। एक्सेल फरसॉफ नामक अन्तरिक्ष वैज्ञानिक ने तो तथ्यों और प्रयोगों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिखाया कि मनुष्य को कभी अनायास ही विचित्र अनुभूतियाँ होती हैं। उनमें से कुछ खास तरह की अनुभूतियाँ माइण्डोन नामक कणों के हलचल में आने से होती हैं। जब ये कण सक्रिय होते हैं तो हमारा अवचेतन मन (सब काशंस) ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जुड़ जाता है। यदि उन अनुभूतियों को पहचाना, जगाया अथवा समझा जा सके तो व्यक्ति बैठे ठाले ही किसी भी ग्रह-नक्षत्र की बातें जान सकता है।

योग साधना भी एक विज्ञान है और उसके अपने सुनिश्चित सिद्धान्त हैं। विज्ञान का यह सिद्धान्त जिस प्रकार अपने आप में अकाट्य है कि हाइड्रोजन के दो अणु और ऑक्सिजन का एक अणु मिलकर पानी बनता है उसी प्रकार योगविज्ञान के भी अकाट्य, अनुभूत और परीक्षित सिद्धान्त हैं, जिन्हें अपनाकर अभीष्ट दिशा में असाधारण सामर्थ्य अर्जित कर लेता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैज्ञानिक परीक्षणों से जिस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि मनुष्य के भीतर कई केन्द्रों में ऐसी गुप्त सामर्थ्य छिपी पड़ी है जो अनुकूल परिस्थितियों में ही प्रकट होती है। योगाभ्यास द्वारा उन परिस्थितियों का निर्माण ही किया जाता है। रूस, जहाँ के स्कूलों में यह सिखाया जाता है कि धर्म अफीम है और ईश्वर फ्रॉड है—में ही अब इस दिशा में बहुत कार्य होने लगा है। पिछले दिनों इन घटनाओं की वास्तविकता जाँचने के लिए कई परीक्षण किये गये।

गत २९ अप्रैल, १९७६ को कार्ल निकोलायेब नामक युवा वैज्ञानिक को मास्को से साइबेरिया भेजा गया। उद्देश्य था—दूरानुभूति के कुछ सिद्धान्तों का प्रायोगिक परीक्षण। साइबेरिया के नियत स्थान पर गोल्डन वैली होटल में कुछ सोवियत वैज्ञानिकों के साथ बैठा हुआ था। उसी समय सैकड़ों मील दूर मास्को स्थित एक 'इन्सुलेटेड' कक्ष में वैज्ञानिक यूरी कामेस्की अपने कुछ साथियों के साथ बैठा था। यूरी को नहीं बताया गया था कि उसे किस प्रकार का सन्देश भेजना है। ठीक आठ बजे एक वैज्ञानिक ने कामेस्की के हाथ में एक सीलबन्द पैकिट पकड़ा दिया। उस पैकिट में धातु की बनी एक स्प्रिंग थी जिसमें सात क्वाइल लगे थे।

कामेस्की ने उस स्प्रिग को उठा लिया और क्वाइलों पर उँगुलियाँ फेरने लगा। उस समय कामेस्की ने कार्लनिकोलायेव का ध्यान किया और पूरी एकाग्रता के साथ यह कल्पना की कि वह उसके सामने बैठा है तथा उस स्प्रिग को देख रहा है—फिर वह कार्ल की आँखों से वह स्प्रिग और क्वाइल देख रहा है।

उसी समय, मास्को से १८६० मील दूर अपने वैज्ञानिक साथियों के बीच बैठे कार्ल ने कुछ अजीब सा अनुभव किया। जैसे उसे अपने हाथों में कोई वस्तु दिखाई दे रही हो। कुछ ही क्षणों बाद वह बोला गोल, चमकती हुई चीज; धातु से बनी हुई है—क्वाइल है।

इसके बाद कामेस्की ने मास्को से एक पेचकश का चित्र देखा तो कार्ल ने उसका विवरण भी शब्दश: बता दिया। कार्ल निकोलायेव ने टैलीपैथी को सिद्ध करने में बड़ी मेहनत की है। एक प्रेस सम्मेलन मे कार्ल ने इन प्रयोगों के सन्दर्भ में कहा है—टैलीपैथी के क्षेत्र में मैंने जो सफलता प्राप्त की है वह हर कोई प्राप्त कर सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अन्त:शक्ति विद्यमान होती है। इसीलिए मैं अपनी योग्यता को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाना महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। यदि मैं ऐसी योग्यता प्राप्त कर सकता हूँ तो कोई कारण नहीं कि आप ऐसी योग्यता प्राप्त न कर सकें।

'यह विद्या आपने कहाँ से सीखी ?' इस प्रश्न के उत्तर में कार्ल निकोलायेव ने बताया कि 'बचपन में उन्हें योग पर किसी भारतीय महात्मा द्वारा लिखी हुई एक पुस्तक प्राप्त हो गयी थी। उसी से प्रेरणा प्राप्त कर मैं अपने मित्रों से कहने लगा कि वे मुझे कोई मानसिक आदेश दें। आगे चलकर मैंने योगदर्शन, राजयोग, प्राणायाम आदि साधनाओं का ११ वर्ष तक अभ्यास किया। इसका परिणाम वर्तमान सफलता के रूप में प्रस्तुत है।

इस क्षेत्र का और अधिक गहरा अध्ययन करने के लिए रूस ने भारत सरकार से कुछ योगियों को जिन्होंने योग साधना के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलतायें अर्जित की थीं—रूस भेजने के लिए भी आग्रह किया था। न केवल रूस में वरन् अन्य पश्चिमी देशों में भी इस प्रकार के प्रयोग सफलतापूर्वक किये गये हैं। तथा इस दिशा में बहुत आगे पहुँच गये व्यक्तियों से कई महत्त्वपूर्ण कार्यों में सहयोग लिया गया है।

चेकोस्लोवाकिया के व्रतिस्लाव काफ्का ने पराशक्ति के सम्बन्ध में अनेकों अद्‌भुत प्रयोग किये हैं। उन्होंने एक प्रयोगशाला भी स्थापित कर रखी है। कहते हैं कि द्वितीय महायुद्ध में जब मित्र राष्ट्रों के अधिकारियों को युद्ध की स्थिति के बारे में कुछ पता नहीं चलता था तो वे बेतिस्लाव काफ्का की ही सहायता लेते थे। काफ्का अपनी प्रयोगशाला में कार्यरत दूसरे मनोवैज्ञानिक को समाधिस्थ कर देते तथा उससे वही प्रश्न करते। प्राय: यह जानकारी सही निकलती थी।

प्रश्न उठता है कि परमात्मा ने यह सामर्थ्य क्या केवल मनुष्य को ही प्रदान की है ? उत्तर एक ही है—उसे अपनी सभी सन्तानें समान रूप से प्रिय हैं और उसने सभी प्राणियों में विभिन्न सम्भवनाओं के बीज बो रखे हैं। क्योंकि शरीर भेद होने पर भी आत्मा तो सबमें समान रूप से विद्यमान है। अन्य प्राणियों की अलौकिक क्षमता का अध्ययन करने के लिए पिछले दिनों रूस में ही खरगोश पर एक प्रयोग किया गया।

सर्वविदित है कि पानी के भीतर पनडुब्बी से जमीन पर बैठे व्यक्ति का किसी भी प्रकार कोई सम्पर्क सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि रेडियो और बेतार के तार भी काम नहीं कर सकते। पराशक्ति की अनुभूति का प्रयोग करने के लिए रूस के वैज्ञानिकों ने एक पनडुब्बी में खरगोश के बच्चों को बन्द कर दिया और उनकी माँ को बाहर जमीन पर एक प्रयोगशाला में रखा गया। खरगोश के बच्चों को पानी में उतारने से पूर्व उनके मस्तिष्क में 'इलेक्ट्रोड्स' लगा दिये गये थे। जब पनडुब्बी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समुद्र में बहुत नीचे चली गयी तो उसमें मौजूद व्यक्तियों ने एक-एक करके खरगोश के बच्चों की हत्या कर दी। मादा खरगोश को इस हत्या के विषय में कोई जानकारी नहीं थी; पर ठीक उसी समय जबकि समुद्रतल में उसके बच्चों की हत्या की जा रही थी, मादा खरगोश के मस्तिष्क में वैसी ही प्रतिक्रियायें नोट की गयीं जैसे उसके सामने ही बच्चों को मारा गया हो।

यह चेतना हर प्राणी में विद्यमान देखी गयी है। कारण स्पष्ट है कि आत्मा केवल मनुष्य में ही नहीं है, जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों में भी है। कई बार आत्मा की यह सामर्थ्य मनुष्यों की अपेक्षा दूसरे प्राणियों में ज्यादा देखी जाती है, जिन्हें अबोध, बुद्धिहीन और मनुष्य की तुलना में सृष्टि का तुच्छ घटक समझा जाता है। इस सन्दर्भ में तत्वदर्शियों का कहना है कि मनुष्य ने अपने जीवन में कृत्रिमता, राग-द्वेष, ईर्ष्या, डाह आदि विकारों के कारण उस शक्ति स्रोत को कमजोर बना लिया है अथवा उस पर पर्दा डाल दिया है।

महर्षि पातञ्जलि ने यम-नियमों के दृढ़तापूर्वक पालन करने और व्यक्तित्व, चरित्र को निष्कलुष, निर्विकार बना लेने मात्र से उन सभी सिद्धियों के करतलगत होने की बात कही है, जिन्हें लोग लम्बी तप-साधनाओं से प्राप्त होने की बात करते हैं। मैले दर्पण को साफ कर लेने पर जिस प्रकार उसमें स्पष्ट छवि देखी जा सकती है, उसी प्रकार अपनी अन्तरंग चेतना पर चढ़े मलीनता के आवरणों को हटाकर उसमें संसार की दृष्ट-अदृष्ट सभी वस्तुओं, घटनाओं को देखा जा सकता है, इसमें कोई दोराय नहीं है।

न यंत्र न विज्ञान फिर भी दूरवर्ती का ज्ञान

शरीर के एक भाग में चोट पहुँचती है तो पूरे शरीर को इसकी तत्काल सूचना पहुँच जाती है और प्रत्येक अंग अपनी सामर्थ्य के अनुसार संकटग्रस्त अंग की सहायता के लिए तत्पर हो जाते हैं। पैर के अँगूठे में घाव हो जाने पर आँख में आँसू, चेहरे पर घबड़ाहट, हाथ में कँपकँपी और मस्तिष्क में विचार, समस्याओं से उबरने के उपाय उत्पन्न होने लगते हैं। इसका कारण यह है कि पूरा शरीर एक ही चेतना से ओत-प्रोत है। परन्तु यह भी नहीं मान लेना चाहिए कि वह चेतन सत्ता केवल शरीर तक ही सीमित है। शरीर के बाहर भी वह चेतना अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और अपने शरीर में विद्यमान चेतना को परिष्कृत, निर्मल तथा विशुद्ध बनाया जा सके तो संसार के किसी भी कोने में घटने वाली घटना का तत्काल पता लगाया जा सकता है जैसे वह अभी भी आँखों के सामने घट रही हो।

सैकड़ों मील दूर टेलीविजन स्टेशन पर कोई फिल्म का दृश्य दर्शाया जाता है और वह दूर पड़े टी० वी० सैट पर ज्यों का त्यों देखा जा सकता है। रेडियो से हजारों मील दूर स्थित रेडियो स्टेशन पर प्रसारित समाचारों, सूचनाओं और विवरणों को शब्दशः सुना जा सकता है। आधुनिक विज्ञान ने जड़ साधनों द्वारा भी हजारों मील दूर सम्पर्क सूत्र तत्काल स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली है फिर चेतना तो उससे हजार गुना समर्थ और लाख गुना शक्तिशाली है।

महाभारत का युद्ध कहीं लड़ा जा रहा है और अन्धे धृतराष्ट्र के पास राजमहल में बैठा संजय युद्ध का आँखों देखा विवरण बता रहा होता है। दूरबोध-परोक्ष दर्शन की सैकड़ों घटनायें शास्त्रों में भरी पड़ी हैं। प्रत्येक धर्म के इतिहास में इसके प्रमाण बिखरे पड़े हैं परन्तु आधुनिक विज्ञान का ध्यान करीब १०० वर्ष पूर्व ही इस ओर गया था। दूरबोध (क्लेअरवायेन्स) की ही तरह चेतना के माध्यम से दो विभिन्न दूरियों के बीच सम्बन्ध सूत्र जोड़ने का एक और प्रकार है, विचार संप्रेषण (टैलिपैथी)। लगभग १०० वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के वैज्ञनिक ए० ए० क्रीरी ने विचार सम्प्रेषण के सफल प्रयोग किये। इसके लिए उन्होंने कुछ छोटे-छोटे प्रयोग किये। इन प्रयोगों में उन्होंने अपनी पुत्रियों अथवा नौकरानियों को कमरे से बाहर भेजकर कमरे के भीतर की किसी वस्तु पर अपना ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा। इन प्रयोगों के उत्साहजनक परिणाम सामने आये। बाहर गयी हुई युवतियों द्वारा दिये गये सही उत्तरों की संख्या इतनी अधिक पायी गयी कि उनके निष्कर्षों की ओर अनेक शोधकर्त्ताओं का ध्यान गया। डबलिन विश्वविद्यालय के प्रो० सर विलियम बैरट इंग्लैण्ड की सोसायटी फोर साईकिकल रिसर्च के अध्यक्ष प्रो० सिजविंग व सोसायटी के सदस्यों ने भी क्रीरी के इन प्रयोगों की जाँच की और सामान्य अवस्था में भी विचार-सम्प्रेषण को थोड़े से अभ्यास द्वारा सम्भव, साध्य बताया।

रेडियो और टी० वी० कार्यक्रमों के प्रसारण में ध्वनि तथा दृश्य को तरंगों में रूपान्तरित भर कर दिया जाता है। उन तरंगों की रेडियो या टी० वी० सैट पकड़ते हैं तथा वापस ध्वनि या दृश्य में बदल देते हैं। विचारों की तरंगें ध्वनि और प्रकाश की तरंगों से बहुत अधिक सूक्ष्म होती हैं। ध्वनि और दृश्य तो कान और आँखों से भी सुने, देखे जा सकते हैं। इस तरह उनका एक प्रकट स्वरूप भी है परन्तु विचार तो जब तक स्थूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माध्यमों द्वारा व्यक्त नहीं किये जाते, तब तक किसी को उनका पता ही नहीं चलता अर्थात् स्वरूपत: ही वे सूक्ष्म हैं और चेतना के निकट भी। पश्चिमी देशों में आजकल इस क्षेत्र में काफी शोध की जा रही है और इसमें काफी सफलता भी प्राप्त हो रही है। यह अनुभव किया जाने लगा है कि टैलीपैथी एकाग्रचित्त, ध्यान के केन्द्रियकरण तथा मानसिक शक्तियों की साधना से सिद्ध की जा सकती है। परन्तु परोक्ष दर्शन (क्लेयर वायन्स) के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अभी भी मौन हैं।

डॉ० एण्डरीना पुहरिच ने, जो अमेरिका के सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक हैं, टैलीपैथी पर वर्षों तक अध्ययन किया तथा उनके आधार पर कुछ सिद्धान्त निश्चित किये। उनके अध्ययन में आयी दो प्रमुख घटनायें इस प्रकार हैं। सॉलिनॉस (कैलिफोर्निया) निवासी श्रीमती हायेस ने सुबह होते-होते एक सपना देखा। उनका पुत्र जॉन हायेस कार में घूमने जा रहा है। रास्ते में कार दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है। जॉन का शरीर बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण पीला पड़ गया है। जॉन लेटा हुआ है और उसका शरीर कपड़े से ढका है।'' यह सपना देखकर श्रीमती हायेस की नींद टूट गयी और नीचे आकर उन्होंने सेंट जोंस स्टेट कॉलेज में फोन किया जहाँ जॉन पढ़ता था। उस समय तक कॉलेज अधिकारियों को ऐसी किसी भी दुर्घटना की जानकारी नहीं थी। उन लोगों को यह भी मालूम नहीं था कि इस समय जॉन कहाँ है?

इस घटना का उल्लेख डा० एण्डरीना पुहरिच ने अपनी पुस्तक ''बियॉण्ड टैलिपैथी'' में किया है तथा लिखा है कि कॉलेज फोन करने के बाद भी श्रीमती हायेस का चित्त बेहद् अशान्त रहा। बारह घण्टे बाद हायेस के फोन की घण्टी बजी। हायेस ने फोन उठाया। फोन उसी कालेज से आया था और बताया जा रहा था कि कार दुर्घटना में जॉन को चोटें आयीं हैं। उस समय लगभग साढ़े पाँच बजे का समय था।

श्रीमति हायेस ने भी इसी समय स्वप्न में दुर्घटना का आभास प्राप्त किया था। इस घटना और श्रीमति हायेस को हुए परोक्ष आभास की संगति के कारणों का अध्ययन करने के लिए डा० पुहरिच ने जॉन से पूछा कि क्या वह दुर्घटना के समय अपनी माँ के बारे में सोच रहा था तो जॉन का कहना था कि दुर्घटना इतने कम समय में हो गयी कि उसके पास अपनी माँ या किसी और बात के बारे में सोचने के लिए समय नहीं था।

इसी पुस्तक में एक और प्रमाणिक घटना का उल्लेख किया गया है। अमेरिका के ही बोस्टन शहर में जैक सुल्लीवान नाम का एक मजदूर खाइयों में लगे पानी के पाइप ठीक करने का काम किया करता था एक दिन वह वाशिंग्टन स्ट्रीट में अकेला खाई में पाइप की बेल्डिंग कर रहा था। काम का समय समाप्त हो गया था। तभी खाइयों को बन्द करने वाला एक दस्ता वहाँ आया और उन्होंने यह समझकर कि खाई में कोई नहीं है, खाई को बन्द कर दिया। सुल्लीवान उसी खाई में दब गया।

उस स्थान के पाँच मील दूर काम कर रहे सुल्लीवान के मित्र वेल्डर टामी विटकर को अचानक इस प्रकार की कल्पना आयी कि उसके मित्र को खाई में बन्द कर दिया गया है। टामी का कहना था कि पता नहीं किस प्रकार यह विचार मेरे दिमाग में आया और काम करते-करते ही मैं सोचने लगा कि वाशिंगटन स्ट्रीट जाऊँ और अपने मित्र के बारे में मालूम करूँ। मैं वाशिंगटन स्ट्रीट पहुँचा तो मैंने देखा कि वास्तव में गलती से सुल्लीवान खाई में दब गया है और इस बात का किसी को पता नहीं चल सका है। टामी ठीक समय पहुँचा था, उस समय सुल्लीवान अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। सुल्लीवान को खाई खोदकर बचा लिया गया।

''बियाण्ड टैलीपैथी'' में डॉ० पुहरिच ने बताया है कि शरीर की दो अवस्थाएँ दूरवर्ती घटनाओं का आभास करा देती हैं। पहली दशा को ''कोलिनर्जिया'' कहा गया है, जिसमें शरीर पूर्णत: शिथिल होता है तथा आराम कर रहा होता है। दूसरी दशा को ''एडरेनजिया'' बताया गया है, उस स्थिति में शरीर पूरी तरह तनावग्रस्त रहता है। ऐसी स्थिति में शरीर या चेतना सन्देशों का सम्प्रेषण करती है।

योग साधनाओं द्वारा मनुष्य वह सामर्थ्य भी विकसित कर लेता है, जिसमें एक स्थान पर बैठे-बैठे ही दूरवर्ती स्थानों पर क्या हो रहा है ? यह जान लेता है। उस स्थिति में व्यक्ति की चेतना शरीर तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि विराट चेतना से एकाकार हो जाती है। जिस प्रकार अँगूठे में आयी चोट की सूचना तुरन्त मस्तिष्क को और वहाँ से रोम-रोम तक पहुँच जाती है, उसी प्रकार विश्व ब्रह्माण्ड के किसी भी क्षेत्र में घटने वाली घटना का प्रभाव वहीं तक सीमित नहीं रह जाता। पानी में फेंके गये ढेले के कारण उठने वाली लहरों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह उसकी तरंगें सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। योग साधनाओं द्वारा परिष्कृत अन्तःकरण और निर्मल चित्त हुए व्यक्ति उन तरंगों को पकड़ने में समर्थ हो जाते हैं। अनायास होने वाली परोक्ष अनुभूतियाँ चेतना की इसी सामर्थ्य का परिचय देती हैं और व्यक्ति को जड़ में ही उलझे न रहकर उससे भी सामर्थ्यवान चेतन को विकसित करने की प्रेरणायें देती हैं।

रहस्यमयी आत्मविद्या के अन्वेषण की आवश्यकता

यह संसार जितना विस्तृत है उसके रहस्य उससे भी अधिक गहन हैं। हमें उन रहस्यों को समझने के लिए मस्तिष्क खुला रखना चाहिए और तथ्य एवं प्रमाणों के आधार पर जो भी सत्य सिद्ध हो उसे स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

जो हम जानते या मानते हैं सर्वांगपूर्ण नहीं है। अभी उसमें सुधार और परिष्कार की बहुत गुंजायश है। यह क्रम अनन्तकाल तक चलता रहेगा क्योंकि मनुष्य की बुद्धि का क्षेत्र और विकास का क्रम बढ़ते रहने पर भी उसमें अपूर्णता बनी ही रहेगी। प्रकृति की परिधि निस्संदेह मनुष्य की समझ से कहीं अधिक बड़ी है। इसलिए बौद्धिक विकास के साथ-साथ नवीन तथ्यों के सामने आने और नवीन रहस्यों का उद्घाटन होने का सिलसिला बना ही रहेगा।

किसी समय मनुष्य ने आत्म-विज्ञान पर बहुत अधिक ध्यान दिया था और प्रयत्न करके अनेक ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त की थीं, जिन्हें आज अद्भुत और आश्वस्त समझा जाता है। आज भौतिक विज्ञान पर ध्यान दिया गया है और ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त की गई हैं जो प्राचीनकाल के लोगों की दृष्टि में अद्भुत और आश्वस्त समझी गई होंगी। आज से हजार वर्ष पूर्व का मनुष्य यह विश्वास करने को शायद ही तैयार होगा कि भविष्य में रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, रेल, मोटर, वायुयान, कम्प्यूटर, अणु, आयुध जैसे आविष्कार सम्भव हो जायेंगे। जब जो वस्तु सामने होती है, उसे सामान्य कहते हैं और जिसका प्रचलन नहीं है उसी को अद्भुत और अविश्वस्त मानते हैं।

आध्यात्मिक अन्वेषणों, रहस्यों और उपलब्धियों के बारे में भी यही बात है। इस प्रकार के प्रसंग जब सामने आते हैं तो उन अलौकिकताओं को आश्वस्त ठहरा दिया जाता है। किम्बदन्तियों और दन्त कथाओं का प्रचलन अधिक हो जाने से ऐसा अविश्वास उचित भी है। किन्तु हमें आग्रही होना चाहिए और तथ्यों के आधार पर अपनी मान्यताओं में हेर-फेर करने की कोमलता मस्तिष्क में बनाये रहनी चाहिए।

भौतिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रकृति के अन्तराल में छिपे हुए नित नये रहस्यों का उद्घाटन होता रहता है। आत्मिक-विज्ञान की दिशा में भी यदि वैसा ही अन्वेषण-परीक्षण चल पड़े, उस दिशा में भी प्रयोग के लिए उत्साह उत्पन्न हो जाय तो ऐसे तथ्य सामने आ सकते हैं, जो आज समझ में नहीं आते किन्तु कल उन्हें सिद्धान्त घोषित किया जा सकता है।

अन्वेषण के लिए व्यापक क्षेत्र खाली पड़ा है। फिलीपीन के एक तान्त्रिक की ऐसी ही एक उपलब्धि साप्ताहिक 'धर्म-युग' में छपी है। उससे प्रतीत होता है कि संसार में ऐसी रहस्यमय शक्तियाँ भी विद्यमान हैं, जिनको यदि सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध किया जा सके तो मानवीय कष्टों की निवृत्ति में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है। घटना इस प्रकार है—

फिलीपीन में एक आश्चर्यजनक चिकित्सक है—टोनी एप गोआ। उसकी चिकित्सा प्रणाली इस युग के चिकित्साशास्त्रियों को अचरज में डालती है। वे उसे देखने जाते हैं। उसकी प्रणाली देखते हैं, तो चकित रह जाते हैं पर समझ नहीं पाते कि उसका कारण क्या है और यह सब कैसे सम्भव होता है?

२७ वर्षीय तान्त्रिक टोनी चिकित्सा व्यवसाय करता है। मुख्य रूप से वह शल्य-चिकित्सक है। ट्यूमर कैन्सर, मोतियाबिन्द के आपरेशन करता है और विकृत बाधा शरीर में से निकालकर बाहर रख देता है। उसके पास न चाकू है और न कैंची, न सुई फिर भी आपरेशन करते रहना एक अद्भुत काम है। जो जादू जैसा प्रतीत होता है।

टोनी क्लेजन के कुवाओं इलाके में दो मंजिल मकान में रहता है। ऊपर अपने परिवार सहित खुद रहता है नीचे उसका अस्पताल। विभिन्न रोगों से ग्रस्त आपरेशन योग्य रोगी ही उसके पास आते हैं, उन्हें वह एक मेज पर लिटाता है मन्त्र पढ़ता है। चाकू का काम उसका हाथ करता है। काटने-फाड़ने चीरने की क्रिया वह उंगली से करता है। ट्यूमर, कैन्सर, गाँठ, मवाद आदि को भीतर से निकालकर बाहर रख देता है। इसके बाद वह बिना सुई के घाव को जोड़ देता है। इस बीच उसका चचेरा भाई एल्फ्रेडो उसके साथ रहता है और तौलिया देने, चीजें उठाने का काम करता रहता है। थोड़ा खून तो निकलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखा जाता है पर रोगी को दर्द जरा भी नहीं होता और आपरेशन ठीक और सम्पन्न हो जाता है। प्रतिदिन ऐसे १० से लेकर बीस तक आपरेशन उसे करने पड़ते हैं।

रोगियों की—प्रशंसकों की भारी भीड़ उसे घेरे रहती है। पहले वह फिलीपीन की राजधानी मनीला में रहता था। ख्याति के साथ-साथ भीड़ बढ़ी तो उसने वह स्थान छोड़ दिया। नई जगह में उसने नाम का बोर्ड आदि कुछ नहीं लगाया है तो भी लोगों ने पता वहाँ पर लगा लिया और रोगी वहाँ भी पहुँचते हैं। जो आधुनिक आपरेशनों से सम्भव है वह कर देने का दावा टोनी भी करता है। उसकी चिकित्सा विधि देखने डाक्टर वैज्ञानिक आते हैं और सारे क्रिया-कृत्य के फोटो फिल्म ले जाते हैं पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते कि यह असम्भव दीखने वाली बात सम्भव कैसे हो पाती है।

टोनी एप गोआ अपने इस कार्य का श्रेय किसी देवता को देता है। कहता है—उसका 'अद्भुत रक्षक' जो कराता है वह वही करता है। आपरेशनों में वही उसके साथ रहता है और सहायता करता है। इसके अतिरिक्त उस देवता के बारे में वह कुछ अधिक नहीं बताता।

मियामी फ्लोरिडा के वेल्क पैरा साइकोलोजी रिसर्च फाइण्डेशन के प्रतिनिधि डॉ. बनर्जी वहाँ गये। यह सब देखा, क्रिया-कलाप के फोटो भी लाये पर इस निष्कर्ष पर न पहुँच सके कि यह सब कैसे और क्यों कर सम्भव होता है ?

क्या मनुष्य के भीतर ऐसी अद्भुत शक्तियाँ हैं, जिनसे वह मानवीय कष्टों के सरल करने की जटिल प्रक्रियाओं को सरल कर सके ? क्या कोई अदृश्य शक्ति और आत्माएँ विद्यमान हैं जो इस प्रकार के कार्यों में मनुष्य का सहयोग कर सकें ? क्या अतीन्द्रिय विज्ञान और गूढ़-विद्या में ऐसी सम्भावनायें विद्यमान हैं, जो मनुष्य की वर्तमान क्षमता में अधिक वृद्धि कर सकें और उसे अधिक सुखी एवं सफल बना सकें ? इन प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने के लिए हमें अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिए। फिलीपीन जैसी घटनायें प्राय: हर देश में समय-समय पर उपलब्ध होती रहती हैं। हमें बिना अन्ध-विश्वासी और अविश्वासी बने तथ्यों का अन्वेषण करना चाहिए।

उपेक्षित और लुप्त प्राय: आत्म-विज्ञान की यदि अन्वेषण और प्रयोगों का क्षेत्र मान लिया जाय और उसके लिए भौतिक विज्ञानियों जैसी तत्परता बरती जाय तो अगले दिनों ऐसे अनेक उपयोगी रहस्य उद्घटित हो सकते हैं जो भौतिक आविष्कारों से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें।

अद्वैत आत्मा की अद्वैत अनुभूतियाँ

सन् १९४३ की रात, द्वितीय महायुद्ध, पैसफिक् सागर में तेरहवीं एअर फोर्स बटालियन के कमाण्डर जनरल नेथान एफ ट्वीनिंग दुर्भाग्यवश युद्ध के दौरान अपने बेड़े से अलग-अलग पड़ गये। वे एस्पेराइट सान्तो एअर बेस के लिए अपने चौदह साथियों के साथ रवाना हुये थे। युद्ध के दिन थे ही, बहुत खोज की गई पर उनका व उनके साथियों का कुछ भी पता नहीं चला।

जनरल नेथॉन की पत्नी उस समय अमरीका में अपने घर में सो रही थीं। प्रगाढ़ निद्रा के समय उन्हें लगा उनके पति उनके पास खड़े हैं और बेचैनीपूर्वक उसे जगा रहे हैं। श्रीमति ट्वीनिंग ने अपने पति का मुँह और हाथ स्पष्ट देखा उन्होंने पति के हाथ पकड़ने चाहे तभी उनकी एकाएक नींद टूट गई। स्वप्न उन्होंने पहले भी देखे थे किन्तु यह स्वप्न उनसे विचित्र था। जग जाने पर भी वह ट्वीनिंग को इस प्रकार रोमांचित कर रहा था कि उनकी गर्दन के बाल सिहरकर खड़े हो गये थे।

उसके बाद उन्हें नींद नहीं आई। रात पूरी जागकर बिताई। सबेरा हो चला था। तभी एकाएक टेलीफोन की घण्टी बजी। उनकी एक सहेली का फोन था। उसके पति भी दक्षिणी पैसफिक सागर पर सैनिक अफसर थे इसलिये श्रीमती के हृदय में रात की रोमांचकारी घटना ने फिर एक बार उत्तेजना उत्पन्न की। उन्होंने जल्दी-जल्दी में पूछा—कहो सब ठीक तो है ना! उधर से आवाज आई सब ठीक है पर मेरा मन न जाने क्यों बड़ी देर से बार-बार तुम्हें ही याद कर रहा है। मैंने तुम्हारे पास आने का निश्चय किया है कहीं जाना मत, मैं दो तीन दिन में ही तुम्हारे पास आ रही हूँ।

श्रीमती ट्वीनिंग को अब भी आशंका थी कि उसे कोई बात कहनी है, जो अभी छिपाई जा रही है किन्तु जब वे घर आईं, तब भी ऐसी कोई बात उन्होंने नहीं बताई। इतने पर भी श्रीमती ट्वीनिंग की उस स्वप्न आशंका गई नहीं।

दो दिन रहकर जब उनकी सहेली वापस लौट गई तब श्रीमती ट्वीनिंग को सरकारी तौर पर जानकारी दी गई कि उनके पति अपने बेड़े के साथ लापता हैं, उनकी खोज की जा रही है। खोज करने वाले अधिकारी नियुक्त कर दिये गये हैं। इस समाचार से उनका मन बड़ा व्यग्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसमें यह बताया गया था कि जहाज मिल गया है और श्री ट्वीनिंग शीघ्र ही उनसे मिलने आ रहे हैं।

भेंट होने पर श्रीमती ट्वीनिंग ने उस रात के स्वप्न वाली बात बताई इस पर श्री ट्वीनिंग ने बताया कि सचमुच उस दिन ठीक उसी समय वे संकट में पड़े थे जिस समय उन्होंने स्वप्न देखा। उन्होंने यह भी बताया कि कितने आश्चर्य की बात है कि ठीक उसी समय मुझे तुम्हारी (उनकी पत्नी की) तीव्र याद आई थी इस पारस्परिक अनुभूति का कारण क्या हो सकता है? इसके अतिरिक्त जिस आफीसर ने खोज की वह उनकी सहेली का ही पति था, उसे किसने वहाँ आने के लिये प्रेरित किया यह सब ऐसे रहस्य हैं, जो मनुष्य को बताते हैं जीवन में जो कुछ प्रकट है वही सत्य नहीं वरन् सत्य का सागर तो अदृश्य में छुपा हुआ है और वह विचित्र संयोगों के मध्य प्रकट हुआ करता है।

सत्य की खोज में ''इन सर्च ऑफ दि ट्रुथ'' पुस्तक में इस घटना का हवाला देते हुये श्रीमती रूथ मान्टगुमरी लिखती हैं कि युद्धों के समय पाशविक वृत्तियाँ एकाएक आत्म-मुखी हो उठती हैं, तब कैसे भी व्यक्तियों को अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ स्पष्ट रूप से होने लगती हैं। युद्ध के मैदानों में लड़ने वाले सैनिक और उनके सम्बन्धी रिश्तेदारों के बीच एक प्रगाढ़ भावुक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वही इन अति मानसिक अनुभूतियों की सत्यता का कारण होता है। ध्यान की गहन अवस्था में होने वाले भविष्य की घटनाओं के पूर्वाभास भी इसी कारण होते हैं कि उस समय एक ओर से मानसिक विद्युत दूसरी ओर से पूरी क्षमता के साथ सम्बन्ध जोड़ देती है और जिस प्रकार लेजर यन्त्र, दूरदर्शी (टेलीविजन) यन्त्र हमें दूर के दृश्य व समाचार बताने दिखाने लगते हैं, उसी प्रकार यह भाव सम्बन्ध हमें दूरवर्ती स्थानों की घटनाओं के सत्य आभास कराने लगते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध की ही एक अन्य घटना का उल्लेख अपने इसी अध्याय में करते हुये श्रीमती रूथ मान्टगुमरी ने लिखा है कि चेकोस्लोवाकिया तथा थाईलैण्ड के भूतपूर्व राजदूत जो उसके बाद ही जापान के राजदूत नियुक्त हुये, श्री जानसन तब मुकड़ेन नगर में थे। युद्ध की आशंका से बच्चों को अलग कर दिया गया। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पेट्रोसिया जानसन ने कैलीफोर्निया के लैगुना बीच में एक मकान ले लिया और वहीं रहने लगीं।

इसी बीच श्रीमती जानसन ने कई बार जापान के समाचार जानने के लिये अपना रेडियो मिलाया पर रेडियो ने वहाँ का मीटर पकड़ा ही नहीं। एक दिन पड़ौस की एक स्त्री ने बताया कि उनका रेडियो जापानी प्रसारणों को (रेडियो ब्राडकास्टिंग) खूब अच्छी तरह पकड़ लेता है। तीन महीने तक श्रीमती जानसन ने इस तरफ कुछ ध्यान ही नहीं दिया। एक दिन उन्हें एकाएक रेडियो सुनने की इच्छा हुई। वे तुरन्त पड़ोसन के घर गईं। रेडिया का स्विच घुमाया ही था कि आवाज आई—''हम रेडियो स्टेशन मुकड़ेन से बोल रहे हैं अब आप एक अमेरिकन आफिसर वी० जानसन को सुनेंगे।''

विस्मय विस्फारित श्रीमती जान्सन एकाग्रचित्त बैठ गईं। अगले ही क्षण जो आवाज आई वह उनके पति की ही आवाज थी। वे बोल रहे थे—मैं वी. एलेक्सिस जानसन मुकड़ेन से बोल रहा हूँ जो भी कैलीफोर्निया अमेरिका का नागरिक इसे सुने कृपया मेरा सन्देश मेरी पत्नी पैट्रोसिया जानसन या मेरे माता-पिता श्री व श्रीमती कार्ल टी० जानसन तक पहुँचायें और बतायें कि मैं यहाँ कैद में हूँ। स्वस्थ हूँ, खाना अच्छा मिलता है और आशा है कि कैदियों की अदला-बदली में शीघ्र ही छूट जाऊँगा, अपनी पत्नी और बच्चों को प्यार भेजता हूँ।

दो माह पीछे जानसन कैदियों की बदली में छूट कर आ गये। पैट्रोसिया पति से मिलने गई तो वहाँ उसे पति से क्षणिक भेंट होने दी गई क्योंकि कुछ समय के लिये श्री एलेक्सिस जानसन को तुरन्त जहाज पर जाना था। पैट्रोसिया को थोड़ी ही देर में घर लौटना पड़ा। उसकी सहेलियाँ उसे घुमाने ले गईं पर अभी वे एक सिनेमा में बैठी ही थीं कि पैट्रोसिया एकाएक उठकर बाहर निकल आईं और अपने घर को फोन मिलाया तो दूसरी ओर से अलेक्सिस जानसन बोले और बताया कि मैं यहाँ हूँ मुझे जहाज में नहीं जाना पड़ा। पैट्रोसिया सिनेमा छोड़कर घर चली आईं।

३ माह तक कभी भी रेडियो सुनने की आवश्यकता अनुभव न करना और ठीक उसी समय जबकि पति संदेशा देने वाले हों रेडियो सुनने की अन्त:करण की तीव्र प्रेरणा का रहस्य क्या हो सकता है? कौन-सी शक्ति थी जिसने पैट्रोसिया को सिनेमा के समय फोन पर पहुँचने की प्रेरणा दी जब इन बातों पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि कोई एक अदृश्य शक्ति है अवश्य, जिसने मानव मात्र को एक भावनात्मक सम्बन्ध में बाँध अवश्य रखा है। हम जब तक उसे नहीं जानते तब तक मनुष्य शरीर की सार्थकता कहाँ ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन की परतों में छिपी विलक्षणताएँ

अन्तराल को यदि व्यक्ति तनिक साध-सुधार, और परिष्कृत-विकसित कर ले, तो वह न सिर्फ अपना, वरन् अन्य अनेकों का कल्याण उससे कर सकता है।

घटना सन् १९१४ की जनवरी माह की है। एक व्यक्ति अपने सीने से चिपकाये एक किशोर को लिये बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा था और किशोर बुरी-तरह चीखता-चिल्लाता जा रहा था। अलबामा नदी तट पर स्थित सेल्मा शहर के मिनोटा मुहल्ले की खिड़कियाँ और उसके साथ दरवाजे खड़खड़ाकर खुलने लगे, यह देखने के लिए कि आखिर बात क्या है? उस मुहल्ले में रहने वाले डॉ. युजिन भी जिज्ञासावश निकल पड़े, तो पता चला कि एक व्यक्ति अपनी गोद में एक बालक को लेकर दौड़ रहा है जो कि जल गया है। पीछे-पीछे वे भी अस्पताल पहुँच गये। वहाँ पहले से ही भीड़ इकट्ठी थी। उन्होंने बालक को देखा तो पता चला कि उसका चेहरा बुरी तरह झुलस गया है। यह सब कैसे हुआ ? उसके जवाब में पिता ने संभावना व्यक्त की कि "फोटो फ्लैश का पाउडर फर्श पर बिखरा पड़ा था। अनुमान लगाया जाता है कि मेरी अनुपस्थिति में किशोर ने उसे इकट्ठा किया और माचिस जलायी होगी। इससे ज्वलनशील पाउडर में आग लगने और विस्फोट होने से इसका चेहरा जल गया।"

बालक को अस्पताल के गहन चिकित्सा कक्ष में लाया गया और उपचार आरंभ कर दिया गया। जब पिता पुत्र को लेकर अस्पताल के कमरे में पहुँचे, तो बाहर खड़ी भीड़ में से किसी ने उन्हें पहचानते हुए कहा कि ये सम्मोहन विद्या के विशेषज्ञ, विलक्षण क्षमता सम्पन्न विश्वप्रसिद्ध व्यक्ति एडगर केसी हैं और बालक उनका पुत्र हगलीन।

चिकित्सालय में अवलोकन कर विशेषज्ञ डॉक्टरों के दल ने अनुमान लगाया कि बालक को तो निसंदेह बचाया जा सकता है, पर उसकी आँखों को बचा पाना मुश्किल ही नहीं असंभव भी है। चिकित्सा चलती रही। एक सप्ताह बाद एक आँख में तेज दर्द आरंभ हुआ। डॉक्टरों ने विचार-विमर्श कर एडगर केसी से कहा कि बच्चे की एक आँख निकालनी पड़ेगी, अन्यथा स्थिति काबू से बाहर हो सकती है। किसी प्रकार यह बात बालक को ज्ञात हो गई तो उसने चिकित्सकों का विरोध करते हुए कहा "नहीं आप ऐसा नहीं कर सकते। हमारे पिता स्वयं आध्यात्मिक चिकित्सक हैं। उन्होंने कईयों का सफल उपचार किया और गंभीर रोगों से उन्हें मुक्ति दिलायी है।"

आप कृपया इस संदर्भ में उन्हें अपनी चिकित्सा करने की अनुमति प्रदान करें।" चिकित्सकों ने किशोर की प्रार्थना स्वीकार कर ली और एडगर केसी से अपना उपचार आरंभ करने को कहा। एडगर केसी बैंच में बैठे और थोड़ी ही देर में स्वसम्मोहन द्वारा गहन तन्द्रा की स्थिति में चले गये। पत्नी को इसके बाद क्या करना है इसे उसने पहले ही समझा दिया था।

पत्नी ने एडगर की बतायी प्रक्रिया आरंभ की। उसने पति के सम्मोहन अवस्था में प्रश्न करने प्रारंभ किये। इसी क्रम में एडगर ने बताया कि हगलीन की नेत्र ज्योति समाप्त नहीं हुई है। क्षति तो थोड़ी पहुँची है, पर उपचार द्वारा उसे पूर्व स्थिति में लाया जा सकता है। उनने आगे कहा कि डॉक्टर जो दवा चला रहे हैं वह ठीक है, पर उसमें तनिक टेनिक एसिड भी स्वल्प मात्रा में मिलाना आवश्यक है। ऐसा ही किया गया। यद्यपि चिकित्सकों को विश्वास नहीं था कि नेत्र-दृष्टि लौट सकेगी, किन्तु सोलह दिनों के उपरान्त जब आँखों से पट्टी हटायी गयी तो बालक उत्फुल्लता से चीख पड़ा "मैं देख सकता हूँ" और यह कहकर डॉक्टरों को अचम्भे में डाल दिया।

एक सामान्य-सा व्यक्ति नेत्र-विशेषज्ञ की वैज्ञानिक जानकारी से भी अधिक गहराई में कैसे प्रवेश कर सका ? यह प्रश्न इस घटना के बाद से अनेकों के मन में उभरा, जिसका समाधान स्वयं एडगर केसी ने यह कहते हुए किया कि जिन्हें अवचेतन मन की विलक्षण क्षमता का थोड़ा भी ज्ञान है, उनके लिए यह आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए। यदि मन को परिष्कृत कर उसकी उस सामर्थ्य को जाग्रत किया जा सके, तो ऐसा करतब हर कोई कर दिखा सकता है यह माना हुआ तथ्य है और एक सत्य भी।

मनुष्य की सूक्ष्म आध्यात्मिक संरचना एक वैज्ञानिक विवेचन

प्रकृति का अन्तराल अपार विद्युत सम्पदा से भरा हुआ है। जब से मानव की अन्वेषण बुद्धि जाग्रत हुई उसने इस विपुल सामर्थ्य की जानकारी एवं सदुपयोग में स्वयं को लगाया तथा उसे अपना घनिष्ठ सहयोगी बना लिया। वैज्ञानिक बताते हैं कि पृथ्वी की तरह और वायुमण्डल के आयनोस्फियर्स के मध्य लगभग तीन लाख वोल्ट की शक्ति का घन विद्युत विभव है। इसकी तुलना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में पृथ्वी उतनी ही ऋण विद्युत से युक्त है। ५ वोल्ट प्रति मीटर की औसत से विद्युत का दबाव पृथ्वी के हर जीवधारी पर ६० किलोमीटर ऊँचाई पर अवस्थित आयनोस्फियर की सबसे निचली परत से सतत् बना हुआ है। यह भण्डार कितना समर्थ व सशक्त है, उसकी कल्पना मात्र से वैज्ञानिक हतप्रभ हैं। यह भी एक सर्वविदित तथ्य है कि मानवी काया एक अच्छी विद्युत चालक है। उल्लिखित विद्युत दबाव मानव शरीर में एक विद्युतधारा को प्रवाहित करता है। जिसका सूक्ष्मतम उपकरणों द्वारा मापन भी कर लिया गया है और यह लगभग १० पर ऋण सोलह धातु एम्पियर सैकिण्ड प्रति वर्ग सेण्टीमीटर बैठती है। मोटे अनुमान से लगभग दस पीको एम्पियर की ताकत (एक एम्पीयर का एक अरबवाँ भाग) का यह विद्युत प्रवाह नगण्य-सा दिखाई पड़ता है पर वस्तुत: तथ्य कुछ और ही है। यह कितना सामर्थ्यवान हो सकता है, इसकी चर्चा करने से पूर्व मानवी काया के कुछ अदृश्य सूत्रों की मोटी रूपरेखा जान लेना समीचीन होगा।

यहाँ जिस वैज्ञानिक विवेचन की चर्चा की गयी है उसका आशय है, मनुष्य के इस सूक्ष्म काय-कलेवर की खोज जो विद्युत एवं चुम्बकत्व के रूप में हर काया में विद्यमान है और जिसे घटा-बढ़ाकर मानवी काया को सामर्थ्यवान तथा परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा सकता है। यह विद्युत शक्ति ही जीवधारियों के शरीर-संस्थान व मन:संस्थान का मूल प्राण-प्रेरक बल कहा जा सकती है। वैज्ञानिक तो मात्र उतना ही जान पाये हैं। जितना मापा जा सका या देखा जा सका, पर ऐसा भी कुछ अदृश्य इस ढाँचे में विद्यमान है जो भौतिकी के सिद्धान्तों के आधार पर अति सामर्थ्यशाली पॉवर हाउस के रूप में सिद्ध किया जा चुका है। मानव शरीर को एक प्रकार का महासागर कह सकते हैं, जिसमें असंख्यों नस-नाड़ियाँ, नदी-नालों की तरह बहतीं हैं, श्वाँस-प्रश्वाँस के रूप में ज्वार-भाटे उठते रहते हैं। अब तो समुद्र में उठने वाले साइक्लोन्स व ज्वार भाटों से भी विद्युत उत्पन्न करने की तकनीक खोज कर ली गयी है, परन्तु मानव शरीर एक मिनट में १५ से १५ बार जो श्वाँस-प्रश्वाँस लेता-निकालता रहता है, उससे वायुमण्डल सें विद्युत आयनों का अन्दर प्रवेश एवं उसके शक्तिशाली विद्युत संचार के रूप में सारे शरीर में प्रवाहित होने की जानकारी पुरातन काल से मनीषियों को है। मस्तिष्क रूपी जेनरेटर और हृदय रूपी विद्युत्त उत्सर्जन केन्द्र मिलकर जिस स्तर की ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, वह सारे जीवकोषों में समान रूप से प्रवाहित होकर कुछ स्थान विशेष पर प्रचुर मात्रा में विद्यमान पायी गयी है। इस सूक्ष्म स्तर की विद्युत व चेतन स्तर की प्राणसत्ता का जब मिलन-संयोग होता है, तो वही समन्वित स्वरूप व्यक्ति विशेष के आस-पास परिलक्षित होने वाले आकर्षण क्षेत्र के रूप में प्रकट होता है। यह एक सुविदित तथ्य है कि जहाँ विद्युतधारा प्रवाहित होती है, वहाँ चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण होता है। इस चुम्बकीय क्षेत्र को 'ऑरा' या 'तेजोवलय' नाम से पुकारते हैं।

यान्त्रिक दृष्टि से तो चुम्बक शब्द से सामान्य अर्थ लोहे के कणों को आकर्षित करने वाले चुम्बक से किया जाता है जिसे 'मैग्नेट' कहते हैं। पर उसकी चर्चा जब जीवधारियों के सन्दर्भ में होती है तो उसे ऐसी सचेतन विद्युत के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, जो न केवल पदार्थ-परमाणुओं को वरन् वातावरण में अपने प्रवाह को फेंकती और सजातीय जीवधारियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करती पायी जाती है। यदि इस आणविक ऊर्जा-प्रवाह तथा चेतना में संव्याप्त प्राण तत्व के सम्मिश्रण से उत्पन्न ब्रह्मवर्चस् की सामर्थ्य को किसी प्रकार मापा जा सके तो यह मानवी सत्ता की सबसे सशक्त-विभूति-सम्पदा कही जा सकती है। आध्यात्मिक भाषा में जिसे तेजोवलय कहते हैं और योगियों, देवपुरुषों के आस-पास जो इस स्तर का चुम्बकत्व पाया जाता है, वह वैयक्तिक चुम्बकत्व विचार शक्ति के माध्यम से अपने ऊपर सम्पर्क क्षेत्र में तथा समस्त ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होने वाले संक्षोभों के आधार पर अनुभव किया जा सकता है। इसी शक्ति के सहारे अतीन्द्रिय क्षमताएँ उभरती हैं और ब्रह्माण्डीय चेतन प्राण प्रवाह के साथ सम्पर्क मिलाते हुए सूक्ष्म जगत की गतिविधियों को समझ सकना सम्भव हो पाता है।

ब्रह्म की अंशधर जीवसत्ता का चिन्तनपरक तथा संवेदनात्मक गतिविधियों का उभार एवं अवसाद इसी प्राणशक्ति पर निर्भर है, जो अपने सूक्ष्म रूप में प्राण प्रवाह का स्वरूप लेकर, जीवकोषों-ऊतकों से लेकर मस्तिष्क सुषुम्ना से स्नायु सिनेप्सों तक तथा एन्जाइम केमीकल्स के रूप में ग्रन्थि उपत्यिकाओं तक इसी प्रकार संव्याप्त है, जैसे समुद्र में घुला नमक। इस प्राण शक्ति की प्रखरता ही शरीर में चारों और वितरित-विस्तरित होकर मनुष्य को ओजस्वी बनाती है। मन:संस्थान में गतिमान होने पर उसे मनस्वी तथा अन्त:करण में सक्रिय होने पर मनुष्य को तेजस्वी बनाती है।

ऐसे व्यक्ति जिसमें तीनों ही काया के स्तर समुचित रूप से प्रभावित हो सक्रिय होते हैं अपने आत्मतेज से समीपवर्ती वातावरण को भी प्रभावित करते हैं। इन आत्मबल सम्पन्न व्यक्तियों के समीप आने पर एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचित्र-सा आकर्षण, खिंचाव प्रतीत होता है। उनकी आँखों, वाणी, चेहरे की भाव-भंगिमाओं, हाथों-उँगलियों से मानो ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर गतिशील बना रहता है। महामानव, ऋषि, देवदूत, अवतारी महापुरुष ऐसे ही होते हैं। उनके समीपस्थ वातावरण ऐसा बन जाता है कि व्यक्ति नजदीक आने पर अपने अन्दर भी उत्कृष्टता के भाव बढ़ते अनुभव करता है। इसके विपरीत अपराधी, छली, द्विमुखी व्यक्तित्व वाले, हीन-निषेधात्मक चिन्तन प्रधान, कामुक-लम्पटों के चेहरे, शरीर से एक अलग प्रकार का विकर्षण करने वाला (रिपेलिंग) प्रवाह निस्सृत होता है। ऐसे व्यक्तियों से दूर हरने को ही मन करता है, साथ ही आस-पास का वातावरण तक वे अभिशिप्त बना डालते हैं। यह सारी मानवी विद्युत चुम्बकत्व-प्राण प्रवाह से युग्म की न्यूनाधिकता की ही परिणति है।

यह एक अकाट्य तथ्य है कि हर व्यक्ति अपने इस चुम्बकत्व को, ब्रह्मवर्चस् को साधना-उपचारों के माध्यम से बढ़ाते रह सकता है। शरीर में सतत् प्रवाहित इस प्राण-प्रवाह का ही कमाल है कि व्यक्ति स्वयं को समर्थ आत्मबल सम्पन्न अनुभव करता है। मानवी अन्तराल की इस सूक्ष्म संरचना की जानकारी व कैसे इस प्रवाह को बढ़ाया जाय, इनका अध्यात्मशास्त्र के ग्रन्थों में विशद् रूप में विवेचन किया गया है। ओजस् , तेजस्वर्चस् को उभारने की विधाओं का ही साधना उपक्रमों के माध्यम से ऊहापोह किया जाता है। ध्यानयोग, क्रियायोग, प्राणयोग इत्यादि की साधनाओं के माध्यम से जिन उपचारों का वर्णन व साधकों का मार्ग-दर्शन प्रस्तुत विशेषांकों में किया जा रहा है, वे इस आध्यात्मिक कार्य-कलेवर की क्षमता मानवी चुम्बकत्व के सम्वर्धन से ही सम्बन्धित हैं। यह उचित समझा गया कि साधकों को इस सूक्ष्म काय-कलेवर की भी जानकारी करायी जाय जिसे माइक्रोसटलर (अति सूक्ष्म) कहा जा सकता है व जिसकी विकृति से ही अदृश्य रूप में रोगों का आक्रमण तथा जिसके परिष्कार-सम्वर्धन से व्यक्तित्व में आकर्षण, ऋद्धि-सिद्धियों का प्रवेश सम्भव हो पाता है। यह सारी आध्यात्मिक संरचना पूर्णत: विज्ञान- सम्मत है, सारे भौतिकीय व गणितीय प्रमाण इसकी पुष्टि भी करते हैं।

भूमण्डल पर बैठा मनुष्य वातावरण से न जाने क्या-क्या अदृश्य प्रवाह ग्रहण करता व उन्हें विसर्जित करता रहता है। गामा, बीटा, लेसर, एक्स किरणों तथा इंफ्रा-रेड व अल्ट्रा वायलेट स्तर की तरंगों की शक्ति वायुमण्डल में काम करती रहती है। इन सबका ही समग्र समावेश मानवी काया में भी है। स्थूल शरीर तो पंच तत्वों में बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर में इन शक्तियों की कोई सीमा नहीं। बाहर से एक जीवधारी नजर आते हुए भी इस कारण मनुष्य असीम सामर्थ्यों का पुंज है। चूँकि वे प्रसुप्त पड़ी रहती हैं व उन्हें बाहर से ग्रहण करने का भी कोई आधार नहीं बन पाता, सामान्य जन इस शक्ति-स्रोत का लाभ नहीं उठा पाते।

पृथ्वी पर जिस भूमण्डलीय दबाव तथा विद्युत विभव के आकर्षण क्षेत्र में जीवधारी रहते हैं, वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर रूपी जेनरेटर तथा मन:संस्थान की विद्युत को सक्रिय बनाये रखने के लिये वह अत्याधिक आवश्यक है। यह विशेषकर तब देखा गया जब अन्तरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी के वातावरण से दूर भेजा गया व उनमें स्फूर्ति का अभाव, निर्णय लेने में अक्षमता व अत्याधिक शारीरिक थकान पाई गयी। कृत्रिम रूप से अन्तरिक्ष यानों के अन्दर जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की गयीं जैसी पृथ्वी पर होती हैं, तब ये लक्षण समाप्त हो गये। इससे स्पष्ट होता है कि मानव जिस वातावरण में रहता है, वहाँ से विद्युतबल अपने अन्दर अवशोषित कर निरन्तर सक्रिय बना रहता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक द्वय डाण्डेनियल एवं कार्ट वर्ग ने तो यह भी सिद्ध कर दिया है कि मानव का दीर्घजीवन तथा प्रजनन क्षमता अदृश्य बाह्य क्षेत्रों से आ रही विद्युत वर्षा पर निर्भर है। आज के आधुनिक युग में आयुष्य कम होने व नपुंसकता बढ़ने का कारण वे वातावरण की विद्युत सत्ता में कमी व मनुष्य की कृत्रिमता को अपनाने के कारण जो कुछ भी उपलब्ध है, उसे ग्रहण करने में अक्षम बताते हैं।

इस विशाल विद्युत संधारक को, जिसके मध्य हम सब बैठे हैं वैज्ञानिक 'ग्लोबल 'कंपेसीटर' कहते हैं। यह शान्त नहीं बैठा रहता वरन् उसमें प्राकृतिक हलचलें व विद्युत स्खलन निरन्तर होता रहता है। इस कंपेसीटर' से जो तरंगें निस्सृत होती हैं उनकी मूल आवृत्ति लगभग ७-८ तरंगें प्रति सेकण्ड होती है। वे पृथ्वी सतह तथा आयनोस्फियर के बीच निरन्तर गुंजायमान होती रहती हैं। इन तरंगों को 'शूमेन रेजोनेन्स कहते हैं और यह एक अद्भुत साम्य है कि हमारे मस्तिष्क की विद्युत तरंगें इनसे हर गुण में मिलती-जुलती हैं। एक ही आवृत्ति फ्रिक्वेन्सी' पर दोनों चलायमान हैं। श्री आर० ए० वेद ने तो अपनी पुस्तक दि सर केडियन रिदम्स ऑफ मैन "में यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के रिद्म् (क्रिया-कलाप) विद्युतीय क्षेत्रों और विद्युत चुम्बकीय तरंगों से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं तथा आस-पास के वातावरण को अपने अन्दर चलायमान इन हलचलों से प्रभावित करने में भी पूर्णत-सक्षम होते हैं।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके अतिरिक्त मनुष्य जिस धरती पर रहता है उसके गर्भ में एक प्रचण्ड, प्रभावशाली विद्युतीय शक्ति क्षेत्र पाया गया है। प्रति वर्ग सेण्टीमीटर एक एम्पियर के लगभग प्रवाहित यह शक्ति धारा सारे पृथ्वी क्षेत्र में कुण्डलाकार व्याप्त होने के कारण कई गुना हो जाती व चुम्बकीय विद्युतीय तूफानों का रूप ले लेती है और मानवी काया के हर अंग-अवयव को, जीवकोषों, रक्त-कोषों तथा चक्र-उपत्यिकाओं को प्रभावित करती है। रूस में इस दिशा में परामनोवैज्ञानिक शोधों ने बताया है कि अतीन्द्रिय क्षमता का जागरण बहुत कुछ अपने अन्दर के प्रवाह का इस चुम्बकीय धारा से साम्य बिठाना सम्भव है।

ऊपर वर्णित गूढ़ वैज्ञानिक विवेचन का सार समझने का प्रयास करें तो हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। ब्रह्माण्ड में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक सत्ता विद्यमान है, जो ग्रह-नक्षत्रों की भ्रमणशीलता और आकर्षण शक्ति के उभयपक्षीय प्रयोजन तो पूरा करती ही है, साथ ही अणु जगत की हलचलों के लिये भी जिम्मेदार होती है। ईथर के ब्रह्माण्डव्यापी महासागर पर इसी विद्युत चुम्बक का आधिपत्य छाया है। यह जड़ शक्ति नहीं है वरन् प्राण शक्ति का प्रवाह है। अणु परमाणुओं की संरचना व गतिविधियों के रूप में हर जीवधारी के अन्दर वह दृश्यमान होती है।

यह प्राण एक चेतन ऊर्जा है, जो मनुष्य में काय के इर्द-गिर्द फैली दिखाई देती है। इसे ही तेजोवलय कहते हैं। विश्वव्यापी महाप्राण के वैभव-भण्डार से हर जीवधारी अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार इसे पाते रहते हैं। यह मानव के लिये ही सहज सम्भव है कि वह प्रयत्न करे, उत्साह सँजोये और संकल्प बल के माध्यम से इस समष्टिगत प्राण प्रवाह को अधिकतम अपने अन्दर खींच सके।

इस प्राण प्राण-चुम्बक को काया में प्रविष्ट कर कैसे प्रयोग किया जाता है, उसे जानने से पूर्व मानवी काया की संरचना की भी थोड़ी जानकारी ली जाय। मनुष्य शरीर लगभग ७५ हजार अरब कोषों का समन्वय है। हर जीवकोष के आर-पार ६० से ९० वोल्ट का विद्युत विभव होता है। इस प्रकार मानव शरीर एक शक्तिशाली-साधन एवं सम्पन्न बिजलीघर है। हर अवयव की गतिविधि-हृदय की धड़कन, माँस पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन, मस्तिष्क में संदेशों व प्रेरणाओं का आवागमन, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से रस स्रावों का उत्पादन आदि इसी विद्युत के क्रिया-कलाप हैं। वैज्ञानिक बताते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने वायु मण्डल से ऋणविद्युत आयनों को श्वाँस द्वारा सोखता रहता है। ये आयन (विद्युत आविष्ट कण) रक्त के माध्यम से शरीर के सभी भागों में फैलकर समस्त ऊतकों और कोषों को ऋण विद्युत से संतृप्त कर देते हैं। ये विद्युत आयनत्वचा से निष्कासित हो वातावरण में फैल जाते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक फ्रेड ब्लेस के अनुसार शरीर में एक विद्युत चक्र सतत् चलता रहता है।

सुषुम्ना को वैज्ञानिक स्थायी विद्युतीय द्विध्रुव केन्द्र (परमानेन्ट इलेक्ट्रिक डायपोल) मानते हैं। इसका निचला भाग जो मूलाधार चक्र में अवस्थित है। (कॉडा इक्वाइना स्थित) ऋण विद्युत आवेशयुक्त तथा ऊपरी सिरा सहस्रार (सेरिब्रम स्थित) धन विद्युतधारी है। असामान्य स्थिति में यह प्रवाह नीचे से प्रबल होकर उल्टी दिशा में अर्थात् ऊपर की ओर ऊर्ध्वगमन करता बह सकता है व मस्तिष्क को सतत् जाग्रत व अति सामर्थ्यवान बनाये रख सकता है। वैसे सामान्यतः जीवधारियों में इसका प्रवाह ऊपर से नीचे होता है। मात्र मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह प्राण-प्रहार विद्युत केन्द्रीकरण के माध्यम से लोअर पोल को सशक्त बनाकर अपने प्रवाह को क्षरण से रोककर ऊर्ध्वगमन की ओर दौड़ा दे। वैज्ञानिकों का चिन्तन अभी इस विषय में और भी सम्भावनाओं को लेकर गतिशील है और अध्यात्म विज्ञान तो इन मान्यताओं को पहले से ही प्रतिपादित करता आया है कि ओजस् का संग्रह किया जाता है व यही मनःशक्ति संकल्पबल को बढ़ाकर मनुष्य के तेजोवलय को प्रभावशाली बना देता है। यह 'ऑरा' और कुछ नहीं त्वचा से, आँखों से वाणी से सतत् प्रवाहित होते रहने वाला विद्युत प्रवाह ही है।

शरीर में कुल मिलाकर १ लाख वोल्ट प्रति सेण्टीमीटर का विद्युत दबाव होता है। अन्य जीवधारियों की भाँति यह भी श्वाँस से, त्वचा से, जननेन्द्रियों से क्षरित हो वातावरण में बहता रहता है। यदि इस विद्युतधारा को सुनियोजित किया जा सके तो इसी से उस चुम्बकत्व का निर्माण किया जा सकना सम्भव है, जो व्यक्ति को आकर्षक, शक्ति-सम्पन्न बनाता है। मनःक्षेत्र में यही साहस, विवेक, सन्तुलन आदि गुणों के रूप में तथा अन्तःक्षेत्र में संवेदनाओं आत्मबल ओज के रूप में विकसित होकर समीपवर्ती लोगों पर गहरी छाप छोड़ता है। ऐसे व्यक्तियों का लोग अनुगमन करने को बाध्य होते हैं।

ध्रुवीय प्रदेशों में जिस प्रकार चुम्बकीय तूफानों का प्रकाश "अरोरा बोरिएलिस" के रूप में छाया रहता है। उसी प्रकार महापुरुषों का चुम्बकत्व विद्युत ऊर्जा के प्रकाशवलय के रूप में उनके चतुर्दिक व्याप्त रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह प्रकाश वलय भी आन्तरिक चुम्बकत्व व विद्युत प्रवाहों के अनुरूप भिन्न-भिन्न होता है। तत्वदर्शी, मनीषी किसी व्यक्ति के चतुर्दिक व्याप्त इसी तेजोवलय से उसका आन्तरिक चेतना स्तर व अन्तःकरण में जन्म ले रही प्रवृत्तियों की झाँकी देख लेते हैं।

ब्रह्मतेजस् संवर्धन की इस विद्या को और विस्तार से समझने के लिये आध्यात्मिक काय-कलेवर के सूक्ष्म पक्ष को अभी और भी खोलना है, उसके विभिन्न प्रसुप्त पक्ष पर वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया जाना है। साधना विज्ञान के वटवृक्ष की जड़ों के रूप में इस विधा को उपमा दी जा सकती है। इसका ज्ञान भी उतना ही अनिवार्य है जितना कि साधना उपचारों के विभिन्न पक्षों का।

सूक्ष्म शरीर की सामर्थ्य को समझें

'नोवोत्सी' न्यूज एजेन्सी ने 'सोते समय अंग्रेजी पढ़ाने का परीक्षण' शीर्षक से समाचार छापा है। समाचार पीछे, पहले शीर्षक पढ़कर ही पाठक चौंक पड़ेंगे। जाग्रत अवस्था में कई बार पुस्तकें पढ़ते हैं, अध्यापक पाठ याद कराते हैं तो भी विद्यार्थियों को एक ही रोना बना रहता है, पाठ याद नहीं होता। फिर सोते हुए व्यक्ति को पढ़ाना तो एकदम असम्भव बात है।

इसी बात को हम यह कहते हैं कि आत्मा इतनी सम्वेदनशील है कि अपने सूक्ष्म प्रकाश-शरीर से वह सोते-जागते किसी भी अवस्था में पढ़ती और ज्ञान सम्पादन करती रह सकती है। कोई सामर्थ्यवान् व्यक्ति अपने विचार, ज्ञान, प्रज्ञायें और सन्देश कैसी भी अवस्था में किसी और को भी दे सकता है। तब तो लोग यह बात न मानते पर मास्को के पास दूबना स्थान पर विज्ञान इस बात को प्रत्यक्ष सत्य सिद्ध करने में लगा हुआ है, लगभग एक हजार लोगों को सोते समय गहरी निद्रा में अंग्रेजी सिखाई जा रही है। प्रयोगकर्त्ताओं का कहना है कि ये लोग ४० दिन में सोते-सोते ही अंग्रेजी सीख जायेंगे।

इस प्रणाली के अन्तर्गत गहरी नींद में सोने वाले लोग ही भाषा शिक्षण के लिये छाँटे जाते हैं, उन्हें सोते समय भाषा के टेप-रिकार्ड सुनाये जाते हैं। वे नींद में ही व्याकरण के नियम और शब्द और उनका प्रयोग सीख लेते हैं। अब तक हुये परीक्षण बहुत सफल हुये हैं।

एक ओर यह प्रयोग और दूसरी ओर वैज्ञानिकों की निरन्तर की शोध दोनों प्रक्रियाओं ने यह सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया है कि स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व और उस सूक्ष्म शरीर में मन आदि सम्पूर्ण इन्द्रियों व चेष्टाओं का पाया जाना असम्भव नहीं, असंदिग्ध तथ्य है। अभी यह विज्ञान अपनी भ्रूण अवस्था में है, अभी तो उसे कारण शरीर तक पहुँचाने में वर्षों लगेंगे पर अब तक की उपलब्धियाँ ही भारतीय तत्व-दर्शन का जिस तेजी से समर्थन कर रही हैं, उसे देखकर सारा पाश्चात्य जगत भारतीय दर्शन की ओर मुड़ने लगा है।

अणुओं में ज्ञान के अस्तित्व की यह खोजें वैज्ञानिकों की दृष्टि में अभी अन्तिम नहीं है तथापि यह सिद्ध हो गया है कि ज्ञान विचार या चेतना का स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह प्रकाश अणुओं के भीतर है। अमेरिका के जीव-वैज्ञानिक डॉ. इर्वन केमरान ने कुछ चूहे लेकर उन्हें एक विशेष बाक्स में संकेत पाने पर भोजन के लिये प्रशिक्षित किया। चूहे कुछ ही दिन के अभ्यास से प्रशिक्षित हो गये। जब भी उन्हें टार्च का प्रकाश दिखाया जाता, वे तुरन्त भागते हुए आते और बाक्स में रखे भोजन को प्राप्त कर लेते। इसके बाद इन प्रशिक्षित चूहों को मारकर उनके मस्तिष्क का 'न्यूक्लिइक एसिड' निकाल लिया गया और फिर उसका इन्जेक्शन बनाकर कुछ ऐसे चूहों को दिया गया जिन्हें इस तरह का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। उस समय डा० केमरान के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब यह चूहे भी टार्च का प्रकाश देखते ही भोजन के लिए उस विशेष बाक्स में बिना बताये ही प्रवेश कर गये। यही प्रयोग चूहों के अतिरिक्त दूसरे जन्तुओं जैसे—छछूँदर, गिलहरी आदि पर भी किया गया और वहाँ भी यही आश्चर्यजनक सत्य देखने को मिला। इससे यह तो निश्चित ही साबित हो गया कि ऐसी कोई चेतन शक्ति प्रकाश के अणुओं में ही है।

डॉ० केमरान ने यह प्रयोग कुछ मनुष्यों पर भी 'मैग्नीशियम पैमुलीन' नामक दवा का प्रयोग करके देखा कि एक व्यक्ति जो ताश के पत्ते नहीं पहचान पाता था, इस तरह की औषधि का सेवन करने के बाद फिर पत्ते पहचानने लगा। एक मैकेनिक वृद्धावस्था के कारण मशीनों के पुर्जे भूल जाने लगा, इस तरह की औषधि से उसकी ज्ञान क्षमता में विकास हुआ।

यह न्यूक्लिक एसिड क्या है, यह समझ लें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। हमें पता है कि जिस प्रकार कोई भी पदार्थ का टुकड़ा छोटे-छोटे परमाणुओं से बना है, उसी तरह मनुष्य का शरीर जिन छोटे-छोटे परमाणुओं से बना है, उन्हें कोश (सेल) कहते हैं। एक कोश में जीवन के सारे लक्षण अमीबा की तरह विद्यमान रहते हैं। अमीबा एककोशीय जीव है, उसमें आहार, निद्रा, भय आदि वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब गुण पाये जाते हैं, जिनसे किसी पिण्ड में चेतना के अस्तित्व की जानकारी होती है। इसी तरह 'कोश' में मनुष्य जीवन के सारे लक्षण विद्यमान रहते हैं।

यह कोश मुख्यतया दो भागों में विभक्त है—(१) नाभिक या केन्द्रक (न्यूक्लियस), (२) साइटो- प्लाज्म। नाभिक एक तरह का तारा या प्रकाश कण होता है और जीवन की यही अन्तिम इकाई है, दूसरे साइटोप्लाज्म में तो सभी प्रोटीन तत्व हाइड्रोजन आक्सीजन, फास्फोरस आदि तत्व पाये जाते हैं, यह तभी तक क्रियाशील रहते हैं जब तक नाभिक (न्यूक्लियस) बना रहता है। न्यूक्लियस के निकलते ही यह पदार्थ वाला अंश मृत हो जाता है, निष्क्रिय हो जाता है। यद्यपि इस केन्द्रक (न्यूक्लियस) को वैज्ञानिक स्वतन्त्र स्थिति में प्रकट नहीं कर सके तथापि ऊपर जिस 'न्यूक्लिक एसिड' की चर्चा की गई है, वह इसी में पाया जाता है, इससे स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि ज्ञान विचार या अन्तर्चेतना प्रकाश कणों का गुण है और यदि वह मनुष्य के स्थूल से भिन्न पदार्थ है तो शरीर से विलग होने के बाद भी उसमें यह गुण विद्यमान बने रहने ही चाहिये।

एक स्वस्थ मानव शरीर में लगभग ६०० खरब कोशिकायें होती हैं। ६०० खरब कोशिकाओं में ६०० खरब नाभिक होते हैं। प्रत्येक नाभिक में गुण-सूत्र (क्रोमोसोम) और प्रत्येक गुण-सूत्र के भीतर एक बटी हुई रस्सी की सीढ़ी के समान संस्कार कोश (जीन्स) विद्यमान होते हैं, यह संस्कार कोश जो प्रकाश की भी सूक्ष्म अवस्था है, न्यूक्लिक एसिड कहलाते हैं। यह एक प्रकार की विद्युत चुम्बकीय शक्ति है और कोश के भीतर सारे स्थूल द्रव्य में, तिल में तेल के समान व्याप्त है, इसीलिये वैज्ञानिकों को उसके स्वतन्त्र होने पर भी एसिड होने का भ्रम हो रहा है। वस्तुत: मृत्यु के उपरान्त यह संस्कार कोश ही प्रकाश-कणों का एक स्वतन्त्र शरीर बनाये हुए निकल जाते हैं, उनमें वह सारी याददाश्तें बनी रहती हैं, जो जीवित अवस्था में ज्ञान में आई थीं । इतना ही नहीं इस अवस्था में भी वह ज्ञान-सम्पादन की क्षमता से परिपूर्ण होता है, केवल स्थूल क्रियायें जैसे—बोलना, पकड़ना, उठाना-बैठाना आदि उससे नहीं हो सकता, यह किसी विशेष अवस्था में ही सम्भव है।

उपरोक्त प्रयोग इस बात का साक्षी है कि हमारी मानसिक चेष्टायें, जिन्हें विचार, इच्छायें या ज्ञान कुछ भी कहें, मनुष्य शरीर की रासायनिक प्रक्रिया मात्र नहीं, प्रकाश मानव कणों का सूक्ष्म शरीर के कारण है, यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जो यदि सिद्ध हो जाता है तो न केवल पुनर्जन्म, भूत-प्रेत, दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, विचार सम्प्रेषण, परकाया, प्रवेश, परलोक आदि की भारतीय मान्यताओं की ही पुष्टि नहीं होगी वरन् योगाभ्यास की उन क्रियाओं का भी समर्थन होगा, जो शरीरधारी आत्मा-चेतना के विराट् विकास के लिये बड़ी तपश्चर्या और कष्टसाध्य प्रयोगों के द्वारा भारतीय तत्वदर्शियों ने आविष्कृत की हैं। केन्द्रक स्थित यह तत्व जो स्मृतियाँ अर्जित करता है, मनुष्य शरीर की समस्त ६०० खरब कोशिकाओं में पाया जाता है, यदि उसे खींचकर लम्बाई में बढ़ाया जाये तो वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अर्थात् अब तक की खोज के अनुसार १८६००० × ६० × ६० × २४ × ३६५१/४ × ५००००००० मील लम्बा होगा। इतने लम्बे फीते में प्रत्येक कोश में १०००००००० अक्षरों के हिसाब से उपरोक्त संख्या में इसका गुणा करने से जो संख्या बनेगी, उतने अक्षरों की और उन अक्षरों से बने शब्दों की स्मृति मनुष्य रख सकता है। ऐसा मनुष्य लगभग सर्वज्ञ ही हो सकता है। भारतीय योग-दर्शन में यह बताया जाता है कि योग सिद्ध व्यक्ति संसार में जो कुछ भी हो रहा है, जो कुछ होगा और जो हो गया है, वह सब कुछ जानते हैं। इस तथ्य को स्थूल घटनाओं के आधार पर भले ही सिद्ध न किया जा सके पर अनेक प्रमाण अब इन तथ्यों की निरन्तर पुष्टि कर रहे हैं।

लार्ड मैकाले १९वीं शताब्दी के विश्व-विख्यात ब्रिटिश इतिहास लेखक ने इंग्लैण्ड का इतिहास आठ जिल्दों में लिखा। उसके लिये उन्होंने दूसरी पुस्तक उठाकर नहीं देखी। सैकड़ों घटनाओं की तिथियों और घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम उन्हें जबानी याद थे। यह नहीं स्थानों के परिचय दूसरे विषय और अब तक जितने भी व्यक्ति उनके जीवन में, उनके सम्पर्क में आ चुके थे, उन सब के नाम उन्हें बाकायदा कंठस्थ थे। लोग उन्हें चलता-फिरता पुस्तकालय कहते थे।

पोर्सन ग्रीक भाषा का अद्वितीय पण्डित था, उसने ग्रीक भाषा की सभी पुस्तकें और शेक्सपियर के नाटक मुँहजबानी याद कर लिये थे। ब्रिटिश संग्रहालय के सहायक अधीक्षक रिचर्ड गार्नेट बारह वर्ष तक एक संग्रहालय के मुद्रित पुस्तक विभाग के अध्यक्ष थे, इस संग्रहालय में पुस्तकों की हजारों अलमारियाँ थीं और उनमें करोड़ों की संख्या में पुस्तकें थीं। री गार्नेट अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे न केवल प्रत्येक पुस्तक का ठिकाना बता देते थे वरन् पुस्तक की भीतरी जानकारी भी दे देते थे।

अभी तक वैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि हम जो कुछ पढ़ते और सुनते हैं, मस्तिष्क में पाये जाने वाले राख की तरह के भूरे पदार्थ में उसकी ऐसी रेखायें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(साइनेप्सिस) बन जाती हैं, जैसी राख में या समतल धूलि में किसी कीड़े के रेंग जाने से आड़ी-टेढ़ी रेखायें खिंच जाती हैं। किन्तु वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि मस्तिष्क के तीव्र आवेग जैसे— क्रोध, प्रतिशोध, ईर्ष्या आदि के कारण यह रेखायें मिटती भी रहती हैं। कई बार मस्तिष्क में धक्के और चोटें भी आती हैं, उससे भी यह रेखायें मिट जाती हैं, फिर वर्षों पहले का ज्ञान ज्यों का त्यों सुरक्षित रखना तब तक असम्भव है, जब तक ज्ञान को संग्रहीत करने वाला कोई ऐसा बीज न हो, जो न तो कभी नष्ट होता हो ओर न जिस पर बाहरी आघातों का प्रभाव ही पड़ता हो।

आत्म-चेतना स्वयं ही वह शक्ति, वह बीज, वह केन्द्र है, जिसमें सम्पूर्ण संसार का ज्ञान अति सूक्ष्म रूप से भरा हुआ है, उस पन्ने को खोलें और साफ करें तों हम न केवल ज्ञान-सम्पदा का अक्षय संचय कर सकते हैं वरन् परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल आदि सिद्धान्तों को, भी अच्छी तरह समझ और उनका निराकरण कर सकते हैं। ज्ञान की इस सूक्ष्म अवस्था पर पहुँचकर ही अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ, विचार-संचालन और आकाश में व्याप्त सूक्ष्म विचार-तरंगों का ग्रहण आदि सम्भव होता है। ऊपर के उदाहरण इसी बात की पुष्टि करते हैं।

सूक्ष्म शरीर का आणविक विश्लेषण

बच्चा प्रश्न करता है—''माँ ! भगवान राम या कृष्ण के मुख-मण्डल पर गोलाकार प्रकाश की आभा क्यों दिखाई जाती है? प्रकाश तो दीपक से ही निकलता है, सूर्य अथवा चन्द्रमा से भी निकलता है, फिर मनुष्य के मुख-मण्डल से दर्शाया जाने वाला यह प्रकाश क्या है?'' माँ जानती नहीं, कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाती और इस तरह महापुरुषों के मुख-मण्डल पर दीखने वाले तेजोवलय का रहस्य, रहस्य ही बना रह जाता है।

महापुरुषों के मुख-मण्डल पर ही नहीं, इस तरह का प्रकाश प्रत्येक मनुष्य के शरीर से प्रतिक्षण स्फुरित होता रहता है। परमाणु विज्ञान जानने वाले लोगों को पता होगा कि प्राकृतिक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं। पदार्थ के परमाणु के मूल में जब हम प्रवेश करते हैं तो पता चलता है कि वहाँ भी सूर्य की सी चमक वाला एक सितारा विद्यमान है, उसे नाभिक, केन्द्रक या नाभिकेन्द्र (न्यूक्लियस) कहा जाता है। अणु आवेश की दृष्टि से पूर्ण उदासीन होता है। अर्थात् न तो उसमें धन आवेश होता है, न ऋण आवेश। किन्तु केन्द्रक स्थित प्रोटान अर्थात् धन आवेश अणुओं और केन्द्रक के आस-पास चक्कर काटने वाले इलेक्ट्रॉनों अर्थात् ऋण आवेश अणुओं का सन्तुलन रखने में उसका बड़ा हाथ होता है। यदि परमाणु के भीतर का यह सन्तुलन बिगड़ जाता है तो उसका विस्फोट हो जाता है। उसमें कितनी जबर्दस्त शक्ति होती है हीरोशिमा प्रकरण से यह बात सारा संसार भली-भाँति जान गया है।

इसी बात को जब हम प्राण-धारी के ऊपर लागू करते हैं तो पता चलता है कि उसमें कोई एक अति विचारशील सत्ता काम कर रही है। यदि उसके अच्छे या बुरे दोनों भावों को निकाल दें तो मनुष्य एक प्रकार का मननशील पदार्थ ही है। महापुरुषों के मुख-मण्डल पर दिखाई देने वाला यह तेजोवलय उस विचार-सत्ता की तीव्र इच्छा-शक्ति, विचार-शक्ति या दिव्य संकल्प शक्ति का ही प्रतीक है। उसे ही इच्छा शरीर कह सकते हैं, क्योंकि यह प्रकाश अणु केवल मुख-मण्डल से ही प्रस्फुटित नहीं होते वरन् सम्पूर्ण शरीर से प्रस्फुटित होते रहते हैं। अमेरिका की सुप्रसिद्ध अध्यात्म साधिका श्रीमती डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने इस प्रकार स्फुरित होने वाले प्रकाश अणुओं को मानव-अणु नाम दिया है।

इन अणुओं की शक्ति का पता लगाना हो तो हमें भगवान राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य, ईसा आदि महापुरुषों के जीवन-चरित्र का अध्ययन करना होगा। इन मानव अणुओं में परमाणु विस्फोटक से भी अधिक कड़ों व्यक्तियों को बदल डालने वाली सामर्थ्य होती है।

इन मानव-अणुओं में भी कुछ धन आवेश (अग्नि प्रधान) कुछ ऋण आवेश (आप:प्रधान) होते हैं, किन्तु वह पदार्थ-अणुओं से भिन्न कोटि के होते हैं। पदार्थ से यद्यपि संसार को शक्ति मिलती है पर उनमें प्रकाश-अणु के निर्माण की क्षमता नहीं होती। यह मानव-अणुओं या प्रकाश-आभा अपने आप में एक नया ही विज्ञान है, पश्चिम में यद्यपि उनकी खोज का श्रेय श्रीमती ट्रस्ट को ही दिया जाता है, क्योंकि उन्होंने ही पहली बार अमेरिका के डेल कार्नेगी हॉल में विश्व के अनेक वैज्ञानिकों के समक्ष यह रहस्योद्घाटन करते हुये बताया था कि इन अणुओं की संख्या २० लाख से भी अधिक है। तथापि इस खोज का श्रेय भी भारतीय तत्वदर्शियों को ही है। इस लेखमाला से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जायेगी।

उस समय तक वैज्ञानिक ९५ भौतिक तत्वों की ही खोज कर सके थे, मानव के शरीर के इन सूक्ष्म प्रकाश अणुओं के बारे में उनमें से किसी ने भी नहीं सोचा था, इसलिये इस तथ्य का बड़ा उपहास किया गया, किन्तु बाद में संसार के सभी वैज्ञानिकों ने माना कि मनुष्य के शरीर में सचमुच ऐसे प्रकाश अणु विद्यमान हैं, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्युत चुम्बकीय रसायन-पदार्थ निकालते रहते हैं। उसी से केवल उनकी उपस्थिति का निश्चय होता है।

सूक्ष्मदर्शी भारतीय तत्वदर्शियों ने यह बात डॉ० जे० सी० ट्रस्ट से भी हजारों वर्ष पहले मालूम कर ली थी। ८४ लाख जीवों का अस्तित्व ८४ लाख प्रकार के मानव-अणुओं की ही खोज है। यह बात डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने भी अपनी पुस्तक 'अणु और आत्मा' (एटम एण्ड सोल) में स्वीकार की है कि मानव-अणुओं की प्रकाश-वाष्प न केवल मनुष्यों में वरन् अन्य जीवधारियों, वृक्ष-वनस्पति, औषधि आदि में भी होती है। यह प्रकाश अणु ही जीवधारी के यथार्थ शरीरों का निर्माण करते हैं खनिज पदार्थों से बना मनुष्य या जीवों का शरीर तो तभी तक स्थिर रहता है, जब तक यह प्रकाश-अणु शरीर में रहते हैं। इन प्रकाश अणुओं के हटते ही स्थूल शरीर बेकार हो जाता है, फिर उसे जलाते या गाड़ते ही बनता है। खुला छोड़ देने पर तो अपनी सड़ाँद से उसके पास एक क्षण भी ठहरना कठिन हो जाता है।

स्वभाव, संस्कार, इच्छायें, क्रिया-शक्ति यह सब इन प्रकाश-अणुओं का ही खेल है। हम सब जानते हैं कि प्रकाश का एक अणु (फोटान) भी कई रंगों के अणुओं से मिलकर बना होता है। मनुष्य शरीर की प्रकाश आभा भी कई रंगों से बनी होती है। डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने अनेक रोगियों, अपराधियों तथा सामान्य व श्रेष्ठ व्यक्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण करके बताया है कि जो मनुष्य जितना श्रेष्ठ और अच्छे गुणों वाला होता है, उसके मानव-अणु दिव्य तेज और आभा वाले होते हैं, जबकि अपराधी और रोगी व्यक्तियों के प्रकाश अणु क्षीण और अंधकारपूर्ण होते हैं। उन्होंने बहुत से मनुष्यों के शरीरों के काले धब्बों को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उनके रोगी या अपराधी होने की बात को बताकर लोगों को स्वीकार करा दिया था कि सचमुच रोग और अपराधी मनोवृत्तियाँ काले रंग के अणुओं की उपस्थिति का प्रतिफल होते हैं, मनुष्य अपने स्वभाव में चाहते हुये भी तब तक परिवर्तन नहीं कर सकता, जब तक यह दूषित प्रकाश-अणु अपने अन्दर विद्यमान बने रहते हैं।

यही नहीं जन्म-जन्मान्तरों तक खराब प्रकाश अणुओं की यह उपस्थिति मनुष्य से बलात् दुष्कर्म कराती रहती है, इस तरह मनुष्य पतन के गड्ढे में बार-बार गिरता और अपनी आत्मा को दु:खी बनाता रहता है। जब तक यह अणु नहीं बदलते या निष्क्रिय होते, तब तक मनुष्य किसी भी परिस्थिति में अपनी दशा नहीं सुधार पाता।

यह तो है कि अपने प्रकाश अणुओं में यदि तीव्रता है तो उससे दूसरों को आकस्मिक सहायता दी जा सकती है। रोग दूर किये जा सकते हैं। खराब विचार वालों को कुछ देर के लिये अच्छे सन्त स्वभाव में बदला जा सकता है। महर्षि नारद के सम्पर्क में आते ही डाकू वाल्मीकि के प्रकाश अणुओं में तीव्र झटका लगा और वह अपने आपको परिवर्तित कर डालने को विवश हुआ। भगवान् बुद्ध के इन प्रकाश अणुओं से निकलने वाली विद्युत विस्तार सीमा में, आते ही डाकू अंगुलिमाल की विचारधारायें पलट गई थीं। ऋषियों के आश्रमों में गाय और शेर एक घाट पानी पीने आते थे, वह इन प्रकाश अणुओं की ही तीव्रता के कारण होता था। उस वातावरण से निकलते ही व्यक्तिगत प्रकाश अणु फिर बलवान हो उठने से लोग पुन: दुष्कर्म करने लगते हैं इसलिये किसी को आत्म-शक्ति या अपने प्राण देने की अपेक्षा भारतीय आचार्यों ने एक पद्धति का प्रसार किया था, जिसमें इन प्रकाश अणुओं का विकास कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार कर सकता है। देव उपासना उसी का नाम है।

उपासना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें हम अपने भीतर के काले, मटमैले और पापाचरण को प्रोत्साहन देने वाले प्रकाश-अणुओं को दिव्य, तेजस्वी, सदाचरण और शांति एवं प्रसन्नता की वृद्धि करने वाले मानव-अणुओं में परिवर्तित करते हैं। विकास की इस प्रक्रिया में किसी नैसर्गिक तत्व, पिण्ड या ग्रह-नक्षत्र की साझेदारी होती है। उदाहरण के लिये जब हम गायत्री की उपासना करते हैं तो हमारे भीतर के दूषित प्रकाश अणुओं को हटाने और उनके स्थान पर दिव्य प्रकाश अणु भर देने का माध्यम गायत्री का देवता 'सविता' अर्थात् सूर्य होता है।

वर्ण रचना और प्रकाश की दृष्टि से यह मानव-अणु भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते हैं। मनुष्य का जो कुछ भी स्वभाव आज दिखाई देता है, वह इन्हीं अणुओं की उपस्थिति के कारण होता है। यदि इस विज्ञान को समझा जा सके तो न केवल अपना जीवन शुद्ध, सात्विक, सफल, रोग-मुक्त बनाया जा सकता है, वरन् औरों को भी प्रभावित और इन लाभों से लाभान्वित किया जा सकता है। परलोक और सद्गति के आधार भी यह प्रकाश अणु या मानव अणु ही हैं।

महान शक्तियों यथा—राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, गुरु नानक आदि के मुख-मण्डल पर प्रदर्शित प्रकाश-वलय इस बात के प्रतीक हैं कि उन्होंने अपने आपके उन सभी अन्य प्रकार के अणुओं को निकाल या नष्ट कर दिया है जो अज्ञान और पाप मूलक हो सकते हैं। उनमें दिव्य प्रकाश की उपस्थिति उनकी सर्वशक्तिमान सत्ता, सबके मन में प्रविष्ट होकर अन्तरंग की जान लेने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की क्षमता, किसी भी रोगी को अच्छा और आचरणहीन व्यक्ति को दंड देने की शक्ति का आधान उनमें हो चुका होता है। यह कोई अवैज्ञानिक तथ्य नहीं वरन् प्रकाश-अणुओं के विकास की प्रक्रिया मात्र है और उस अभ्यास को करके कोई भी व्यक्ति इन सत्यों की अनुभूति अपने वर्तमान जीवन में ही कर सकता है। क्योंकि प्रकाश ही एक ऐसी सत्ता है जो न केवल देखती, सुनती वरन् विचार और प्रज्ञायें एकत्रित करती है। मस्तिष्क के वह सभी केन्द्र जिनमें देखने सुनने, सूँघने आदि की क्रियायें सम्पन्न होती हैं, प्रकाश-परमाणुओं से ही बने होते हैं, इसलिये मानना पड़ता है कि प्रकाश के कुछ कण ऐसे हो सकते हैं, जो अन्तरंग अनुभूति की क्षमता से भी सम्पन्न हों। अपने प्रकार के अनजाने ज्योति स्रोतों (क्वासार) आदि की खोज ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि प्रकाश के भिन्न-भिन्न और क्रमशः अधिक दिव्य केन्द्र ब्रह्मांड में विद्यमान हैं।

आत्मा या चेतना शक्ति जिन अणुओं से अपने को अभिव्यक्त करती है, वह यह प्रकाश अणु ही हैं, जबकि आत्मा स्वयं उनसे भिन्न है। प्रकाश-अणुओं को प्राण, विषायक शक्ति, अग्नि, तेजस् कहना चाहिये, वह जितने शुद्ध, दिव्य और तेजस्वी होंगे, व्यक्ति उतना ही महान तेजस्वी, यशस्वी, वीर, साहसी और कलाकार होगा। महापुरुषों के तेजोवलय इसी बात के प्रतीक हैं, जबकि निकृष्ट कोटि के व्यक्तियों में यह अणु अत्यन्त शिथिल, मन्द और काले होते हैं। हमें चाहिये कि हम इन दूषित प्रकाश-अणुओं को दिव्य अणुओं में बदलें और अपने को भी महापुरुषों की श्रेणी में ले जाने का प्रयत्न करें।

सूक्ष्म शरीर विज्ञान की दृष्टि में

सूर्य, चन्द्रमा, शनि, वरुण, यम, गुरु जितने भी ग्रह-नक्षत्र हैं, उनमें एक थरथराहट या कम्पन काम करता है, उसी के द्वारा वे अपना प्रकाश स्फुरित करते हैं। यह प्रकाश उनमें सूर्य से आता है। सूर्य यह प्रकाश किसी आकाश-गंगा से लेता है और अब 'क्वासार' किरणों की शोध से यह भी सिद्ध हो गया है कि ब्रह्मांड में ऐसे अनजाने शक्ति-स्रोत हैं, आकाश-गंगायें उन्हीं से प्रकाश लेकर दौड़ती हैं। ऐसी-ऐसी आकाश-गंगायें या नीहारिकायें दस करोड़ से भी अधिक हैं। सूर्य, ग्रह-नक्षत्रों का तो पता ही नहीं, वे कितने हैं।

सौर-मंडल में आने वाला प्रकाश और अन्य प्रकाशस्रोत जहाँ से भी चलता है, उस स्थान से भी प्रभावित होता है। उदाहरण के लिये, पृथ्वी में प्रस्फुटित होने वाली प्रकाश किरणों में प्रकाश के मूल स्रोत के गुण तो होंगे ही, प्रथ्वी तत्व का सूक्ष्म प्रभाव भी उसमें होगा। इसी तरह संसार के सभी पिण्ड सूक्ष्म, स्थूल और कारण प्रक्रिया धारण किये हुये, प्रकाश कणों की निरन्तर बौछार करते रहते हैं, आकाश इन प्रकाश कणों की उपस्थिति से पूरी तरह आच्छादित है, भले ही स्थान-स्थान पर उनका वर्ण, स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकार का हो।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि दिखाई तो किरणें देती हैं, प्रकाश में परमाणु कहाँ से आ गये ? पर अब इसका उत्तर देना सम्भव हो गया है। प्रकाश के ऐसे टुकड़े बनाये गये हैं, जो एक क्षण के एक लाख हिस्से के करोडवें भाग में सीमित हैं। इस समय की अवधि को 'पिको सेकिन्ड' कहते हैं, ऐसे प्रकाश खंडों के उत्पादन तथा परीक्षण के लिये लेसर (एक प्रकाश यन्त्र) का प्रयोग किया जा रहा है। प्रकाश को सोखने वाले विरंजनों 'नीयोडाइमियम ग्लास लेसर' के भीतर प्रयोग करके इन प्रकाशखंडों को प्राप्त किया जाता है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि पोले आकाश में प्रकाश अणुओं की उपस्थिति अदृश्य है पर अयथार्थ नहीं है। पृथ्वी के पास सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों के प्रकाश-कणों के साथ विद्युत आवेषित धूलिकणों की बहुतायत है तो सूर्य के समीप किसी और तरह के सम्मिश्रण की बहुतायत होगी। इस तरह आकाश एक प्रकार अणुओं का अन्तर्जाल अथवा व्यूहाणु बन गया है।

जो कुछ आकाश में है, वह मनुष्य शरीर में है **'यत् ब्रह्मांडे तत् पिण्डे'** के अनुसार जहाँ शरीर में स्थूल पंच भौतिक पदार्थ हैं, वहाँ उसके पोले भाग में यह अदृश्य प्रकाश अणु भी विद्यमान हैं, इसमें सन्देह नहीं। हड्डियों के पोले भाग में अदृश्य लोकों के प्रकाश-अणु संकुल और सघन हो जाने से वहाँ उन लोकों का ही भान होने लगता है, इन्हें भारतीय भाषा में 'सूक्ष्म लोक' और अंग्रेजी में इन्हें ही 'एस्ट्रल बॉडी' के नाम से जाना जाने लगा है। योग ग्रन्थों में षट-चक्रों को स्थान-स्थान पर चर्चा हुई है। यह ६ चक्र, सूक्ष्म लोकों के ही प्रतिनिधि हैं। सातवाँ लोक शून्य लोक या सहस्रार चक्र मस्तष्क में अवस्थित बताया गया है।

इनके अतिरिक्त शरीर में जितना भी पोला भाग है वहाँ विभिन्न वर्ण, रचना और गुण वाले वह प्रकाश अणु भरे पड़े हैं, जो आकश में तैरते रहते हैं। श्वाँस, भोजन आदि के द्वारा भी ये प्रकाश-कण शरीर में विकसित होते रहते हैं और उनके योजनापूर्वक धारण की दूसरी प्राणायाम जैसी हठयोगी क्रियायें भारतीय योग में प्रचलित हैं, वह सब श्रीमती जे. सी. ट्रस्ट के मानव-अणु विकास के द्वारा आत्मोन्नति के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर में सबसे अधिक प्रतिशत खनिज तत्वों का है, क्योंकि वे अधिक स्थूल होते हैं। ६० प्रतिशत तो केवल जल है। इस ६० प्रतिशत में ४० भाग हाइड्रोजन और २० भाग तो ऑक्सीजन के ही अणु होते हैं। शेष ४० प्रतिशत में फास्फोरस, कैल्सियम, सोडियम, आयरन, सोना, चाँदी और दूसरे खनिज होते हैं। सबसे कम भार इन प्रकाश-अणुओं का होता है, पर उनकी उपस्थिति में कोई सन्देह नहीं रह गया है।

कर्नल अलवर्ट डेरोचस ने मृत्यु के पूर्व एक व्यक्ति का भार लिया और फिर उसे अत्यन्त सूक्ष्म नाप तक करने वाले तराजू से सम्बन्धित कर लिया दिया। मृत्यु हो जाने के बाद शव के भार में सवा दो औंस की कमी आ गई। इस प्रयोग के आधार पर ही श्री डेरोचस ने सूक्ष्म शरीर का भार २ औंस बताया संसार के दूसरे कई वैज्ञानिकों ने भी इसकी पुष्टि की है।

सूक्ष्म शरीर का भार इतना कम होते हुए भी उसके अणु इतने हल्के और सूक्ष्म होते हैं कि वह सारे शरीर में आच्छादित रहकर रासायनिक क्रिया का प्रसार करते रहते हैं। शरीर के आस-पास इन्हीं की आभा-प्रदीप्तमान होती है। श्री डॉ० डेरोचस के अनुसार स्वतन्त्र अवस्था में यह प्रकाश अणुओं वाला सूक्ष्म शरीर तीन इन्च का होता है पर प्रकाश-अणुओं के द्वारा उसका कई गुना विस्तार हो सकता है।

हाइड्रोजन संसार का सबसे हल्का तत्व है और वह सारे विश्व में व्याप्त है। उसके एक अणु का विस्फोट कर दिया जाय तो उसकी शक्ति संसार के किसी भी तत्व की तुलना में अधिक होगी। जो जितना हल्का वह उतना ही आग्नेय, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान और विश्वव्यापी; यह कुछ अटपटा सा लगता है पर है ऐसा ही।

किसी गुब्बारे में ३०० पौंड हवा भरी जा सकती है तो हाइड्रोजन उतने स्थान के लिये १०० पौंड ही पर्याप्त होगा। उसी प्रकार जितने स्थान में एक औंस पानी या २/३ औंस हाइड्रोजन रहेगा, उतने स्थान को मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के प्रकाश-अणुओं का १२२४ वाँ भाग ही घेर लेगा। यदि प्रयत्न किया जाये तो इन अणुओं की सूक्ष्मतम अवस्था में पहुँचकर विराट् विश्वव्यापी आत्म-चेतना के रूप में अपने आपको विकसित और परिपूर्ण बनाया जा सकता है।

प्राण-विद्या के द्वारा इस रहस्य की जानकारी संसार में आज तक केवल भारतवर्ष ही कर सका है। इन प्रकाश अणुओं की शक्ति तुलना हाइड्रोजन के परमाणुओं से करें तो लोग अनुमान कर सकेंगे, भारतीय योगी के पास कितनी अकूत शक्ति का भण्डार होता होगा। पूर्ण पुरुषों, अवतारों की क्षमता का तो अनुमान करना ही कठिन है।

सूक्ष्म शरीर, नैसर्गिक प्रकाश-अणुओं या आग्नेय-अणुओं को ही भारतीय तत्वदर्शियों ने एक शब्द 'प्राण' से सम्बोधित किया है। उसकी स्थान-स्थान पर विशद व्याख्या हुई है, जो ऊपर दिये गये विश्लेषण के अनुसार ही विज्ञान सम्मत है।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानष

वायुः एष पृथिवी रपिदेवः सहसच्चामृतं चयत्।

—एतरेय,

यही प्राण अग्नि रूप से तपता है, सूर्य मेघ, इन्द्र, वायु, पृथ्वी, रवि (चन्द्रमा) यही है। सत्, असत् भी यही है और यही अमृत भी है।

एतमेकेदन्त्याग्नि मनुमन्ये प्रजापतिम्।

इन्दुमेके परे प्राणम् परब्रह्मशाश्वतम्।।

—मनुस्मृति अ. १२,

उसे ही अग्नि कहते हैं, वही प्रजापति (मनु) कहलाता है। उसे ही इन्द्र या प्राण कहते हैं, कोई उसे ब्रह्म कहता है।

यथाग्नेः क्षुद्रविस्फुल्लिंगाव्युच्चन्तरेव मेवास्यादात्मनः सर्वप्राणाः।

—वृहदारण्यक २/१/२/२०,

जैसे अग्नि से छोटी चिन्गारियाँ निकलती हैं, वैसे ही इस आत्मा से समस्त प्राण निकलते हैं।

इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद के ६/७/८ मंत्रों तक विस्तार से कहा है—

अराइव रथ नाभौ प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम् ।

ऋचो यंजूषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च।।६।।

प्रजापतिश्चवरसि गर्भे त्वमेव प्रति जायसे।

तुभ्यं प्राण प्रजास्तित्वया बलि हरिन्तिमः प्राणे प्रतिष्ठिसि ।।७।।

देवनामासि वन्हितमः पितृर्णा प्रथमः स्वधा।

ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वांगिरसामसि ।।८।।

जिस प्रकार रथ के पहियों की धुरी में अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार चारों वेद, यज्ञ, ज्ञान-बल ये सब प्राण में हैं। हे प्राण! आप ही प्रजापति हैं, आप ही गर्भ में विचरण करते हैं। जन्म लेते ही प्राणी आप में ही मिल जाते हैं । आपके ही साथ स्थित रहते हैं।।७।। हे प्राण ! आप ही देवताओं को हवा पहुँचाने वाली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अग्नि हैं। ऋषियों द्वारा अनुभूत सत्य आप ही हैं।

उपरोक्त प्रसंगों में यद्यपि शास्त्रकार ने स्वत्र 'प्राण' की व्याख्या एकवचन में की है पर उसके विभिन्न प्रकाश स्रोतों से निसृत होने के प्रमाण भी उपयुक्त श्लोकों में है।

सूक्ष्म शरीर की अति समर्थ सूक्ष्म शक्तियाँ

प्रकाश एक शक्ति है पर वह अपने मौलिक रूप में पदार्थ भी है क्योंकि वह टुकड़ों में विभक्त हो जाता है, यह प्रकाश-परमाणु 'फ्लेटो-सेल्स' कहलाते हैं। उनमें भी इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन और न्यूक्लियस की रचना होती हैं। अर्थात् प्रकाश से भी सूक्ष्म सत्तायें इस संसार में हैं, यह मानना पड़ता है।

वस्तुयें हम प्रकाश की सहायता से देख सकते हैं। किन्तु साधारण प्रकाश कणों की सहायता से हम शरीर के कोश (सेल) को देखना चाहें तो वह इतने सूक्ष्म हैं कि उन्हें देख नहीं सकते। इलेक्ट्रॉनों को जब ५०००० वोल्ट आवेश पर सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) में भेजा जाता है तो उनकी तरंग दैर्ध्य श्वेत प्रकाश कणों की तुलना में १/१००००० भाग सूक्ष्म होती है, तब वह हाइड्रोजन के परमाणु का जितना व्यास होता है, उसके भी ४२.४वें हिस्से छोटे परमाणु में भी प्रवेश करके वहाँ की गतिविधियाँ दिखा सकती हैं। उदाहरण के लिये, यदि मनुष्य की आँख एक इन्च घेरे को देख सकती है तो उसे भी ५०० अंश कम को प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी और १००८० अंश छोटे भाग को इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी। इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि मनुष्य शरीर के कोश (सेल्स) का चेतन भाग कितना सूक्ष्म होना चाहिये। इस तरह के सूक्ष्मदर्शी से जब कोश का निरीक्षण किया गया तो उसमें भी एक टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई दिया। चेतना या महतत्व इस प्रकार प्रकाश की ही अति सूक्ष्म स्फुरणा है, यह विज्ञान भी मानता है।

मास्को के जीव वैज्ञानिक प्रो० तारासोव ने यह देखकर ही बताया था कि मनुष्य शरीर का प्रत्येक सेल एक टिमटिमाते हुये दीपक की तरह है, कुल शरीर ब्रह्माण्ड के नक्षत्रों की तरह तो यह सूक्ष्मतम चेतना ही उसमें जीवन है।

यह जीवन तत्त्व शरीर के प्रत्येक अंग में छिटका हुआ पर उसका एक नियत स्थान भी है, जहाँ से वह प्रभासित होता है। हम देखते हैं कि आत्मा नामक कोई वस्तु शरीर में है तो उसे प्रकाश-अणुओं के रूप में पाया जाना चाहिये। पर जैसे सूर्य सारे ब्रह्मांड में बिखर गया है, यह चेतना भी सारे शरीर में संव्याप्त है और विचार तथा भावनाओं के रूप में निःसृत होती रहती है, इस तरह प्रत्येक व्यक्ति के साथ उसके विचारों की तरंगदैर्ध्य चलती रहती है। जो अधिक स्थूल स्वभाव दैर्ध्य और आचार-विचार के व्यक्ति होते हैं, उनका यह तरंग बहुत सीमित और दुर्गन्धित होता है, इसलिये बुरे लोग अपने पास वाले को भी प्रभावित नहीं कर पाते, जबकि विचारशील लोग, विशेष प्राणवान् लोग सभा-मंडप में बैठे हजारों लोगों को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति भाषणों द्वारा इतनी शक्ति और प्रेरणा दे सकते हैं कि सैंकड़ों लोग थोड़ी ही देर में अपने विचार पलटकर रख देते हैं। इस तरह के प्राणवान् व्यक्ति आदिकाल से हो लोगों की जीवन दिशायें बदलते और युगों में परिवर्तन लाते आये हैं।

हमारा शरीर एक प्रकार से आकाश है। यदि त्वचा के आवरण बाँधकर उसे एक विशेष गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा पृथ्वी से बाँध नहीं दिया गया होता तो हम आकाश में कहीं विचरण कर रहे होते। सूक्ष्म रूप से हमारी चेतना विचार और संकल्पों के रूप में आकाश तत्व में तरंगित होती रहती है। भारतीय योगियों ने उसे चेतना की विभिन्न प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग क्रियाओं द्वारा मन के रूप में नियन्त्रित किया था। आज्ञा चक्र नामक स्थान जो माथे में दोनों भौंवों के बीच पाया जाता है, ध्यान द्वारा देखा गया तो उस बिखरी हुई ज्योति के एकाकार दर्शन ऐसे ही हुये जैसे हजार दिशाओं में बिखरे होने पर भी सूर्य का एक पुंजीभूत रूप भी है और वह उन बिखरे हुए अस्त-व्यस्त कणों की तुलना में जो कि सारे सौर-मंडल की प्रकृति का निर्धारण करते हैं, कहीं अधिक ऊर्जा (प्रकाश, विद्युत, ताप) से सम्पन्न होता है। ऐसे ही मन जब शरीर के सब कोषों की ऊर्जा के रूप में नियन्त्रित हो जाता है तो उसकी शक्ति-सामर्थ्य और विभेदन क्षमता का कोई पाराबार नहीं रहता है। इस तरह का मन ही सर्वत्र गमनशील सर्वदर्शी और सर्वव्यापी होता है। वही क्षण में कहीं का कहीं पहुँचकर बेतार के तार की तरह सन्देश पहुँचाता रहता है।

ऊर्जा का प्रकाश में बदलना एक अत्यन्त जटिल प्रणाली है पर वैज्ञानिक यह जान चुके हैं कि जब यह ऊर्जा किसी वस्तु में प्रवेश करती है तो उसके परमाणु उत्तेजित हो उठते हैं। फिर थोड़ा शान्त होकर जब वे अपने मूल स्थान को लौटते हैं तो उस सोखी हुई ऊर्जा को प्रकाश में बदल देते हैं। इस क्रिया को 'संदीप्ति' कहते हैं। यह गुण संसार के सभी प्राणियों में पाया जाता है, हम उसे जानते नहीं, पर यह वैज्ञानिकों को पता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि मनुष्य जो कुछ सोचता है, वह कितना ही छुपाये, छुप नहीं सकता। वह इसी प्रकार सूक्ष्म प्रकाश-तरंगों के रूप में बाहर निकलता रहता है, यदि हम उन तरंगों से भी सूक्ष्म आत्म-चेतना द्वारा उन तरंगों में प्रवेश पा सकें, जैसा कि ऊपर के प्रयोग में बताया गया है तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि यह व्यक्ति क्या सोच रहा है, भविष्य की इसकी योजनायें क्या हैं, आदि-आदि। पर यह सब तभी सम्भव है, जब नितान्त शुद्ध रूप में हम मन पर नियंत्रण कर चुके हों।

पहले लोगों का विश्वास था कि प्रकाश छोड़ने का यह गुण (संदीप्ति) केवल जड़ वस्तुओं का ही गुण है पर अब यह स्पष्ट हो गया है कि यह गुण जीवधारियों में भी पाया जाता है। 'अणु और आत्मा' पुस्तक में श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट ने इसी विज्ञान की व्याख्या की है और इस आत्म-विज्ञान के पहलू को प्रकाश में लाकर उन्होंने वैज्ञानिकों को शोध की नई दिशा भी दी है। हम उस बात को सामान्यत: फुंगी, मधुरिका, जुगनू आदि जीवों से समझ सकते हैं, जुगनू की तरह कई जीव-समुद्र में भी पाये जाते हैं, जो अपने शरीर में 'एंजाइमी आक्सीकरण' की प्रक्रिया में मुक्त होने वाली ऊर्जा को प्रकाश में बदल देते हैं। यही प्रकाश इनमें टिमटिमाता दिखाई देता है। मादा जुगनू जब कभी कामोत्तेजित होती है तो उसके शरीर में एक जैव-रासायनिक क्रिया उत्पन्न होती है, जिसमें रासायनिक द्रव्य लूसी फेरस एन्जाइम, लूसीफिरिन और ए० टी० पी० कम्पाउण्ड भाग लेते हैं, इससे एक विशेष प्रकार की रासायनिक ऊर्जा-तरंग उत्पन्न होती है अर्थात् उस विद्युत-तरंग में उस मादा की गन्ध भी रहती है, इसीलिये उस विशेष सिंगनल को नर जुगनू पहचान लेता है और मादा के पास जा पहुँचता है।

योग साधनाओं द्वारा जब किसी को कोई सन्देश देना होता है तो उसके शरीर के पसीने से लगा कोई कपड़ा इसीलिये आवश्यक होता है कि ठीक उस व्यक्ति के स्वभाव से मिलते-जुलते तत्वों वाली ऊर्जा उसके पास भेजी जाये और उसके मस्तिष्क में सन्देश भरकर अपनी ओर से उसे इतना प्रभावित कर दिया जाये कि वह वैसा ही करने को विवश हो जाये। यह सब शरीर में प्राप्त विद्युत के उन सूक्ष्म विकिरणों के फलस्वरूप ही सम्भव होता है, जिसकी चर्चा ऊपर कर चुके हैं।

एन्जाइम एक प्रकार के सूक्ष्म नाड़ी तन्तु हैं, जो साँस द्वारा प्राप्त आक्सीजन को सारे शरीर में पहुँचाकर जीवन-शक्ति बनाये रखते हैं। मानसिक शक्तियों का शुद्ध परिष्कार भी अधिकांश प्राणायाम के अभ्यास पर ही निर्भर है, उसमें वायु में पाये गये प्राण-तत्व (प्राकृतिक ऊर्जा) के द्वारा मन को प्रखर और शुद्ध बनाया जाता है।

डॉ० हर्टलाइन ने सन् १९६७ में पहली बार नेत्र कोशिकाओं में उत्पन्न विद्युत आवेगों को इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों से रिकार्ड करके बताया कि प्रत्येक कोश में उस बिम्ब की सारी बारीकियाँ अर्थात् रंग आकार, उभरी-धँसी रेखायें आदि निहित होती हैं, प्रत्येक कोश एक सेकिंड के भी करोड़वें हिस्से में उस प्रतिबिम्ब को, अगले कोष को पार कर देता है और इस प्रकार सामने दिखाई देने वाले बिम्ब की सूचना प्रकाश की गति के हिसाब से मस्तिष्क के दृश्य-स्थान (आप्टिक सेन्टर) में पहुँच जाती है।

इस दृश्य को मन के द्वारा प्रकृति के प्राण विद्युत प्रवाह में घोलकर वह दृश्य जो हमारे मस्तिष्क में है किसी भी दूरवर्ती व्यक्ति को भेज सकते हैं। उपग्रह-संचार पद्धति के विकास ने इस मान्यता को भी पुष्ट कर दिया है, अब लन्दन में होने वाली शल्य-चिकित्सा को हजारों मील दूर के अस्पतालों में भी देखा जा सकेगा। अभी रायल फ्री हॉस्पिटल के सर्जनों द्वारा सम्पर्क परीक्षणों को मैनचेस्टर और बर्मिंघम स्थित मेडिकल स्कूल के विद्यार्थियों ने देखा। इसमें भारतीय विद्यार्थियों सहित २००० विद्यार्थी सम्मिलित थे। इस प्रणाली से किसी भी दृश्य को फोटो-सेल्स के माध्यम से संचार उपग्रह (टेलस्टार) जो पृथ्वी की परिक्रमा लगा रहा है, को भेजा। संचार उपग्रह ने उसे एक नियत फ्रिक्वेन्सी पर सारे संसार में फैला दिया। इस तरह एक ही दृश्य को सारे संसार में पहुँचाना तक सम्भव है। दूरदर्शी दृश्यों को देखने के पीछे प्रकाश-परमाणुओं पर पड़े बिम्बों को ऊर्जा की एक धारा में बहाकर लाना या ले जाना होता है, जिसे नियन्त्रित मन से पूरा किया जा सकता है। हम किसी के मन में अचानक सन्देश और दृश्य भेज ही नहीं, सुन और देख भी लेते हैं, वह सब इन प्रकाश-अणुओं और उसमें व्याप्त चेतना की ही करामात होती है।

अपनी उपस्थिति को कोई व्यक्ति और यन्त्र न पकड़ सके, प्रकाश-कणों के नियन्त्रण में ऐसी भी शक्ति है। 'देहरादून उपकरण अनुसंधान एवं विकास संस्थान' ने एक ऐसे उपकरण का आविष्कार किया है, जो अवरक्त प्रकाश (इन्फ्रारेड लाइट) उत्पन्न करके प्रकाश किरणों के मार्ग में इन किरणों का जाल फैला देता है, फलस्वरूप आपका यह शरीर ही दुश्मन के पास खड़ा हो तो वह भी आपको देख न सकेगा, जबकि आप उसे अच्छी तरह देख रहे होंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाश के यह जादू ही मन के वह चमत्कार हैं, जिनका प्रयोग योगियों ने चेतना के स्तर पर किया और बिना पाँव-गमन, बिना आँखों-देखना तथा बिना कान के सुनना, जैसे चमत्कारों का स्वामित्व प्राप्त किया। मन की सामर्थ्य उससे हजार गुना अधिक है, उसे अच्छी प्रकार साध लिया जाये तो मारण, मोहन वशीकरण, उच्चारण, ईशत्ववशत्व जैसी दुर्लभ सिद्धियाँ भी मनुष्य इस शरीर में रहकर ही प्राप्त कर सकता है।

भाव चेतना को प्रभावित करे, ऐसी विधा की खोज हो

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तर्क, प्रमाण, विचार, परामर्श आदि देकर प्रभावित कर सकता है, इसकी जानकारी सभी को है। अध्यापक अपने छात्रों के मस्तिष्क को विकसित करते हैं। पहलवान अपने शागिर्दों को कुश्ती, कसरत सिखाकर बलवान बनाते हैं। वक्ता, लेखक विचारों के हलचल उत्पन्न करते और लोगों के सोचने के तरीके में परिवर्तन करते हैं। नर-नारी के बीच शारीरिक आकर्षण भी काम करता है और प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने रौब, दौब, आतंक का भी उपयोग करते हैं।

उपरोक्त प्रभाव प्रक्रिया का स्तर उथला ही रहता है। अध्यापक गणित, इतिहास, भाषा भूगोल, आदि की जानकारी करा देने पर अपने कर्तव्य से छुट्टी पा लेते हैं। वे चिन्तन की शैली, आकांक्षा और दिशा नहीं बदल सकते। अखाड़े के पहलवान शागिर्दों की माँस-पेशियाँ मजबूत कर सकते हैं, उनमें मनोबल उत्पन्न नहीं कर सकते।

इसी प्रकार लेखक, वक्ता, नेता, प्रतिभासम्पन व्यक्ति अपनी तेजस्विता के सम्मोहन से तत्काल तो कुछ भी सोचने, करने का आवेश उत्पन्न कर सकते हैं पर वह क्षणिक होता है और उथला रहता है। वह नशा उतरते ही लोग अपने पुराने ढर्रे पर आ जाते हैं और वह कृत्रिम उत्साह अपनी क्षणिक चमक दिखाकर तिरोहित हो जाता है। कारण स्पष्ट है जो शिक्षण दिया गया था वह अन्त:करण की गहराई तक प्रवेश न कर सका, केवल उथले बौद्धिक स्तर तक टकरा-कर बिखर गया। उस टकराहट की प्रतिक्रिया जितनी देर रह सकती थी उतनी देर रही और इसके बाद व्यक्ति की वही संस्कारगत स्थिति आ गई।

मनुष्य का समग्र व्यक्तित्व विकसित एवं परिवर्तित करने से ही उसकी गरिमा, महत्ता बढ़ सकती है। महामानव ही इस विश्व की सच्ची सम्पत्ति होते हैं। कोई देश और समाज उन्हीं के कारण गौरवशाली बनते हैं और उन्हीं के अभाव में पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं। राष्ट्रीय सम्पदा का मूल्यांकन, धन के आधार पर नहीं मनस्वी, तेजस्वी और आत्मबल सम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ही किया जाना चाहिए। वे यदि उद्भूत नहीं तो विपुल सम्पदा सम्पन्न होते हुए भी कोई समाज दरिद्र ही रहेगा। उसकी वह आर्थिक उन्नति भी ठोस प्रगति की दिशा में कुछ अधिक सहायता न कर सकेगी।

उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों का निर्माण कैसे हो ? इसके लिए उसी स्तर के साँचे चाहिए। टकसाल के साँचे जैसे होते हैं वैसे ही सिक्के ढलते चले जाते हैं। बुद्ध के अनुगामी ढाई लाख व्यक्तियों ने संसार भर में सत्य, अहिंसा का संदेश पहुँचाया था। गान्धी के अनुचर स्वतंत्रता संग्राम में एक से एक बढ़े-चढ़े अनुदान लेकर आगे आये। यह प्रेरणायें बौद्धिक आधार पर नहीं-भावना स्तर पर दी जाती हैं। और इनको देने के लिए वैसा ही आत्म-शक्ति-सम्पन्न व्यक्तित्व चाहिये। आज आवश्यकता ऐसी ही हस्तियों की है जो अपने आत्मबल से जन साधारण के भावस्तर को विकसित और परिष्कृत कर सकें। विज्ञान इस संभावना को स्वीकार करता है कि अदृश्य शक्ति प्रवाह के द्वारा भी मानवीय चेतना को अभीष्ट दिशा में मोड़ा या ढाला जा सकता है।

मानव मस्तिष्क की अन्तस्त्वचिका के भीतर एक विशेष प्रकार की तंत्रिकाऐं पाई जाती हैं, उनका समूह भावात्मक मस्तिष्क कहलाता है। भय, क्रोध, शोक, चिन्ता, अवसाद, हर्ष, संतोष, प्रेम, व्यंग, संयम और कामोद्वेग जैसी प्रवृत्तियाँ इसी भाग से संबंधित हैं। इनका स्वरूप बहुत कुछ वंश परम्परा से उत्तराधिकार में मिला था, कुछ वातावरण एवं संगति में और कुछ व्यक्तिगत चिन्तन की दिशा के आधार पर विकसित होता है। अविकसित और विकसित प्राणियों का यों मानसिक अन्तर कुछ तो बुद्धि के आधार पर भी होता है पर मुख्य अन्तर यह भावात्मक ही है। भावनाओं के आवेश में ही मस्तिष्क उत्तेजित और मस्तिष्क सक्रिय होता है। इन दोनों की बिखरी हुई दिशाओं को एक केन्द्र पर एकत्रित करने और क्रियाशील बनाने का श्रेय इन भावात्मक मस्तिष्क केन्द्र को ही है।

येल विश्वविद्यालय के न्यूरोलोजिस्ट डॉ० जोसे डैलगेडो ने ऐसे विद्युत रेडियो उपकरणों का आविष्कार किया है, जिनके आधार पर बिना शल्य चिकित्सा के ही रेडियो किरणों द्वारा मस्तिष्क के किसी भाग से सम्पर्क बनाना और इसे प्रभावित कर सकना संभव हो सके। भावनात्मक मस्तिष्क की तंत्रिकाओं और कोशिकाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर के आर-पार जा सकने वाली किरणों के द्वारा वहाँ के असंतुलन को मिलाया जा सकेगा। विशेष प्रकार का भावावेश उत्पन्न किया जा सकेगा। यह किरणें 'एक्स' किरणों से मिलती जुलती हैं जिन्हें शरीर के आर-पार जाने में मस्तिष्क की कठोर खोपड़ी में भी कोई बड़ी बाधा नहीं पहुँचती।

अब तक भावनाओं का समाधान भावनाओं से ही किया जाता रहा है। क्रोध को विनय से, घृणा को प्रेम से, असंतोष को उपलब्धियों से शमन किया जाता रहा है। इसके लिये सामने वाले व्यक्ति को अपनी वाणी, व्यवहार और क्रिया द्वारा असंतुलित व्यक्ति को वैसा विश्वास दिलाकर उस उद्वेग का समाधान करना पड़ता था जिसके अभाव में उसे असंतुलित होना पड़ा। इतनी लम्बी प्रक्रिया के बाद तब कहीं उत्तेजित व्यक्ति सामान्य स्थिति में आता था। उसके समाधान के लिए व्यक्ति विशेष को माध्यम बनाकर अथवा वातावरण को बदलकर मनोविकार ग्रस्त मनुष्य की शान्ति संभव की जाती थी। उचित ही नहीं अनुचित समाधान भी प्रस्तुत करने पड़ते थे पर अब उपरोक्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण यह कठिन प्रक्रिया सरल हो गई। रेडियो विद्युत-धाराएँ आवेशग्रस्त मस्तिष्कीय खण्ड का शमन कर दिया करेंगी और मनुष्य चिकित्सक के इशारे पर अपने भाव-संस्थान में आवश्यक परिवर्तन कर लिया करेगा। इस सफलता के कारण न केवल भावनात्मक रुग्ण ग्रन्थियों को खोला जा सकेगा वरन् उनमें उपयोगी ऐसे भाव बीज भी जमाये जा सकेंगे जो उसे किसी दिशा विशेष में चलने के लिये आवश्यक रुचि एवं स्फूर्ति पैदा कर सकें।

मानवीय मस्तिष्क पर इलेक्ट्रोनिक नियमन की इस प्रक्रिया पर विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य बहुत तेजी से चल रहा है और प्रगति भी काफी हुई है। दो दशक पूर्व स्विटजरलैण्ड के विज्ञानी डॉ० डब्ल्यू० आर० हेस ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ किया उन्होंने जीवित प्राणी के मस्तिष्क में एक सुई घुसेड़कर उसके माध्यम से विविध स्तरों की विद्युत तरंगें पहुँचाई थीं और उसके प्रभाव का अध्ययन किया था। उन्होंने पाया कि चेतन और अचेतन मस्तिष्क के भागों में विभिन्न स्तर के जो चेतन केन्द्र बने हुए हैं, उनसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और उन केन्द्रों को उत्तेजित करके उसी स्तर की विचारणा से प्राणी को ओत-प्रोत किया जा सकता है।

इसके बाद अमरीकी मस्तिष्क विद्या विशारद डा० जेम्स औल्डस् ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया। उन्होंने मानवी मस्तिष्क को हाथ में लिया जबकि पूर्ववत् स्विस विज्ञानी वैसे प्रयोग अन्य प्राणियों पर करते रहे। भूख, भय, इच्छा, कामुकता, क्रोध, पीड़ा, निराशा, उत्साह जैसे मस्तिष्क क्षेत्र तो पहले भी मालूम थे पर उनके केन्द्रीय कण उन्होंने ढूँढ़े और इस खोज के बाद उन्होंने वह पद्धति खोजी जिसके अनुसार उस केन्द्र तक बाह्य प्रभाव को पहुँचाया जा सकना संभव हो सके। इसमें सबसे बड़ी बाधा खोपड़ी को चारों ओर से जकड़ी हुई कपाल अस्थियों की थी। यह अस्थियाँ सिर की केवल सर्दी-गर्मी, चोट-आघात आदि से ही रक्षा नहीं करतीं वरन् बाहरी विद्युत प्रभावों को भी भीतर जाने से रोकती हैं। विचारों की बिजली अति सूक्ष्म होने से भीतर प्रवेश कर सकती है। एक संकल्पशील व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करने का सफल प्रयोग तो जर्मनी के डा० शेक्सर पहले ही कर चुके थे। मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्म आविष्कारों ने उनमें इसी तथ्य को प्रत्यक्ष किया था। पर यह तो प्रश्न विचार तरंगों का नहीं विद्युत तरंगों के प्रवेश का था, इसमें कपाल अस्थियाँ प्रधान रूप से अवरोध उत्पन्न कर रही थीं। इसलिए उन्होंने चोर रास्ते से प्रवेश किया, रेडियो प्रभावित रसायनों को रक्त में मिलाकर और उस प्रभावित रक्त में विद्युत तरंगें पहुँचाकर नया रास्ता खोज लिया गया और अमुक केन्द्र को उत्तेजित करने के लिए अमुक स्तर की विद्युत का प्रयोग करने की पद्धति का निर्धारण कर लिया गया।

यह प्रयत्न और भी अधिक तेज कर दिये गये हैं और वह सरलता खोजी जा रही है जिसमें जिसे प्रभावित करना हो, उसके सहयोग की आवश्यकता न रहे। अभी तो यह कार्य तभी हो सकता है जब व्यक्ति पर लोहपट्टी बँधवाने और औषधालय सेवन के लिए सहायता हो। बाँधकर बलात्कार पूर्वक तो यह किया नहीं जा सकता। यदि व्यक्ति अपने ऊपर इस प्रकार का प्रभाव डलवाने के लिए सहमत न हो तब तो सारी योजना ही निरस्त हो जायगी। अस्तु शोध के चरण इस दिशा में चल रहे हैं कि मनुष्य को पता भी न चले और परोक्ष रूप से उसे बौद्धिक पराधीनता के पाश से मजबूती से जकड़ा जा सके।

प्रकृति की शक्तियों को वशवर्ती करने में बहुत बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद अब चेतना की स्वतंत्रता को विज्ञान की मुट्ठी में कैद करने के लिये अन्वेषण गतिविधियाँ तीव्र कर दी गई हैं और विज्ञान क्षेत्र में समुन्नत देश गुपचुप इस दौड़ में परस्पर बाजी मारने के लिये तुले हुये हैं। अन्तरिक्ष पर नियन्त्रण करने से भी बढ़कर यह आविष्कार होगा।

इस दिशा में संतोषजनक सफलता मिलती है तो फिर युद्ध का सबसे बड़ा माध्यम यही होगा एक अणु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बम, हाइड्रोजनबम जैसे अस्त्र को बेकार समझकर त्याग दिया जायेगा क्योंकि उससे शत्रु देश के विनाश के साथ-साथ विश्वव्यापी वातावरण में विकरण उत्पन्न होने से मित्र देशों को भी खतरा उपस्थित होता है। फिर उसमें कई तरह के खतरे और झंझट भी हैं। खर्चीली तो वह प्रक्रिया है ही, उसकी सुरक्षा के लिए भी कम चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

प्रगति जिस चरण में पहुँची है उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के इस संदर्भ में संलग्न विज्ञानी डा० ओटो शिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गई है पर आशा की जानी चाहिये कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिए ही होगा किन्तु साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा कि इस नव उपार्जित शक्ति का प्रयोग निजी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति एवं राष्ट्रीय विस्तार वाद के लिये भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे अधिक विघातक अस्त्र सिद्ध होगा।

कुछ दिन अमरीका प्रतिरक्षा विभाग के एक गधे पर यह प्रयोग किया गया था और उसे उपकरणों से प्रभावित करके अकेला छोड़ा गया था। उसे जिधर चलने और जो करने के लिए निर्देश किया उसने वही सब कर दिखाया।

इस अन्वेषण के आधार पर कई उपयोगी चमत्कार अमेरिका के मेयो क्लिनिक ने कनाडा के मोन्ट्रियल न्यूरोलोजिकल इन्स्टीट्यूट ने तथा नार्वे के गुस्टाड मेन्टल हास्पिटल ने दिखाये हैं। रोगी को खुशी-खुशी बिना डरे आपरेशन करा लेने के लिए इस आधार पर तैयार करने में आश्चर्यजनक सफलता पाई गई है। एक प्रयोग में तो एक १८ वर्ष से अन्धी चली आई महिला को उसका मस्तिष्कीय दृष्टि संस्थान उत्तेजित करके देख सकने की शक्ति ही प्रदान कर दी। यह इस अन्वेषण का उपयोगी पक्ष है। निस्संदेह इन आविष्कारों का उपयोग मानवी सुविधाओं की वृद्धि भी कर सकता है पर खतरा तो उस दिशा से है जिस पर कि आज के विश्व राजनेता धृष्टतापूर्वक चलते हुए एक दूसरे से बाजी मारने में तुले हुये हैं और तथाकथित शत्रु पक्ष को सर्वथा अपंग बनाने की बात सोच रहे हैं।

अवांछनीय दृष्टिकोण लेकर किया हुआ इस आविष्कार का उपयोग किसी भी अधिनायकवादी के हाथ में चक्रवर्ती विजय सौंप सकता है। इस क्षेत्र में प्रगति-सम्पन्न देश अपने विरोधी या असहयोगियों की जनता तथा सैन्य शक्ति में निराशा, भीरुता एवं भयाक्रांत मनःस्थिति व्यापक रूप से उत्पन्न कर सकता है और उस व्यामोह में फँसे हुये विशाल जन समाज को मुट्ठी भर लोग अपने काबू में रखने और इशारे पर चलने के लिये विवश कर सकते हैं। गुलामी के बंधनों में जकड़ने के अब तक के प्रयासों में यह सबसे घृणित प्रयास होगा। जब आदमी सोचने की निजी क्षमता ही खो बैठा तो फिर उसका 'अपनापन' तो कुछ रहा ही नहीं, तब उसे जीवित होते हुए भी मृतकों की तरह कहीं भी खींचा घसीटा जाता रहेगा। ऐसे शक्ति सम्पन्न लोगों के चंगुल से तो मुक्त होने की भी फिर कोई आशा न रहेगी।

भौतिक विज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क तक ही पहुँच सकता है। क्योंकि मस्तिष्क भी शरीर का ही एक अंग होने से उसे भी भौतिक क्षेत्र में सम्मिलित रखा गया है। मन को छठी या ग्यारहवीं इन्द्रिय ही माना गया है। वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा मस्तिष्कों को प्रभावित करने की विधि लगभग खोज निकाली गई है और वह निकट भविष्य में सामने आ भी रही है। इसका भला-बुरा प्रभाव जल्द ही देखने के लिये मिल जायगा।

पर भाव क्षेत्र फिर भी सूना ही पड़ा रहेगा। वह भौतिक विज्ञान की परिधि से बाहर है क्योंकि अन्तरात्मा विशुद्ध चेतना का अंश है। उसे प्रभावित, परिणत और परिष्कृत करने में केवल आत्मसत्ताऐं ही समर्थ हो सकती हैं।

आज आत्मसत्ता की दुर्बलता के कारण भौतिकवादी असुर सत्ता संसार की समस्त सम्पदाओं पर हावी होती जा रही है। मस्तिष्क की स्वतन्त्र चिन्तन शैली पर भी उसका दाँत है और आश्चर्य नहीं कि वह भी उसकी पकड़ में आ जाय। ऐसी विषम घड़ियों में इस बात की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है कि आत्म सत्ता का पक्ष इतना प्रबल हो कि उसके द्वारा संसार की भाव चेतना को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर किया जा सके। ऐसा हो सका तो भौतिक विज्ञान और उसकी समस्त उपलब्धियों को विश्व कल्याण में नियोजित किया जा सकेगा। यदि ऐसा न हो सका तो भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुये चरण मनुष्य को एक मशीन मात्र बनाकर छोड़ेंगे और कुछ सत्ताधारियों की कठपुतली बनकर समस्त मनुष्य समाज को सबसे बुरी पराधीनता-मस्तिष्कीय गुलामी के निविड़ बंधनों में बाँधकर दयनीय स्थिति में जीना पड़ेगा। ऐसे विषम समय में आत्म-विज्ञान पक्ष को अधिक समर्थ और अधिक सक्रिय होने की आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मिकी का अवलम्बन एवं उसके प्रतिफल

यह विशाल ब्रह्माण्ड असीम और अनन्त शक्तियों का महान भाण्डागार है। इस विशालता के महासागर में कितने प्रचुर परिमाण में दिव्यता, विचित्रता एवं क्षमता भरी पड़ी है, इसकी मनुष्य की सीमित बुद्धि परिकल्पना तक नहीं कर सकती।

ब्रह्माण्ड की विशालता को देखते हुए अपनी आकाश-गंगा, अपना सौरमण्डल और उसके अत्यन्त छोटे भाग को घेरे हुए भू-मण्डल का अस्तित्व नगण्य है। धरती पर बसने वाले कोटानुकोटि प्राणियों में मनुष्य जाति मुट्ठी भर है। इसमें भी एक मनुष्य की क्षमता तो इतनी नगण्य है जिसे बाल की नोंक से भी कम माना जा सकता है। मनुष्य की सत्ता में उसका शरीर, मस्तिष्क एवं साधन-सम्पदा ही गिने जाने योग्य है। इस परिधि में भी इतनी अधिक आश्चर्यजनक रहस्यमयी सामर्थ्यें सन्निहित हैं, उनका एक अत्यंत ही छोटा भाग कार्यान्वित होता है शेष अधिकांश भाग तो प्रसुप्त स्थिति में ही पड़ा रहता है। यदि मनुष्य की दृश्यमान कलेवर की शक्तियाँ ही जगाई, काम में लाई जा सकें तो उतने भर से मनुष्य अगणित विभूतियों का स्वामी बनकर अत्यन्त विशिष्ट विकसित सामर्थ्यों का भण्डार बनकर प्रकट हो सकता है। उसकी निजी क्षमता ऋद्धि-सिद्धियों से भरी-पूरी दृष्टिगोचर हो सकती है। इसके आगे वे अनेकों सूत्र ब्रह्माण्ड के अनेक घटकों के साथ जुड़ते हैं जो अपनी सशक्त मानवी सत्ता पर उड़ेलकर उसे देवोपम बना सकते हैं। उसे कुबेर जैसा सम्पन्न, इन्द्र जैसा सशक्त देखा जा सकता है। यह असंभव उपलब्धियाँ कैसे हस्तगत हों ? उस प्रश्न का एक ही उत्तर हो सकता है कि अध्यात्म विज्ञान के आधार पर जैव चुम्बकत्व को प्रखर, प्रचण्ड बना लिया जाय।

भौतिक विज्ञान के आधार पर कोई कितना ही उपार्जन, संग्रह क्यों न कर ले पर उसके उपयोग उपभोग की एक छोटी परिधि है जिससे अधिक के लिए हाथ-पैर मारना अपने आपको संकट में फँसाना है। पेट में अधिक खाना, शरीर सीमा से बढ़कर पहनना संभव नहीं। उपार्जन वैभव कितना ही अधिक क्यों न हो, पर वह अपने स्थल पर ही रखा रहता है। बचत का दूसरे उपयोग करते हैं। किन्तु चेतना क्षेत्र इससे सर्वथा भिन्न है, उसकी परिधि विशद है। सूक्ष्म शक्तियों के रूप में सम्पदा का अजस्र परिवार उसमें बीज रूप में भरा जा सकता है। उपलब्ध शक्तियों का जागरण और प्रभाव क्षेत्र का परिकर दोनों मिलकर इतने अधिक हो जाते हैं, जिसका मूल्यांकन करने में देव-दानवों को ही मापदण्ड बनाया जा सकता है।

देवता मनुष्य लोक में आने के लिए ललचाते रहते हैं। उनकी उत्सुकता उससे कहीं अधिक है जैसा कि मनुष्य स्वर्ग लोक के सम्बन्ध में सोचता और वहाँ के आनन्द का रसास्वादन करने के लिए उत्सुक रहता है। इतिहास साक्षी है कि देवताओं ने मनुष्य से सहायता प्राप्त करने के लिए अनेक बार याचना की है। दशरथ अपना रथ लेकर देवताओं की सहायता करने गये थे। साथ में कैकेयी भी थी, जिनने पति की सहायता करके तीन वरदान प्राप्त किये थे। अर्जुन का इसी प्रयोजन के लिए देवलोक जाना प्रसिद्ध है जहाँ उनके सम्मुख अनिद्य सुन्दरी उर्वशी प्रस्तुत की गई थी और गाण्डीव धनुष उपहार में दिया गया था। देवताओं में मानुषी नारी के साथ सम्पर्क साधने में अप्सराओं की सेवा से अधिक रसास्वादन माना है। इन्द्र और चन्द्र का अहिल्या पर मन डिगाना। कुन्ती से अनुरक्त होकर उसके गर्भ से सन्तानोत्पादन का उपक्रम करना यही बताता है कि धरती का वैभव स्वर्ग से अधिक है। यदि ऐसा न होता तो देव सुन्दरी मेनका विश्वामित्र की सहचरी बनने के लिए क्यों आतुर होती और क्यों इतनी लम्बी दौड़ लगाती ?

भगवान को ब्रह्माण्ड के असंख्य लोगों की व्यवस्था का दायित्व सँभालना पड़ता है पर वे धरित्री का विशेष ध्यान रखते हैं। जब भी यहाँ असंतुलन पैदा होता है तभी प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए अधर्म के उन्मूलन और धर्म के अभिवर्धन के लिए इसी धरातल पर विशेषतया भारत क्षेत्र में अवतार धारण करते हैं। दस या चौबीस अवतार इसी मनुष्य लोक में विशेषतया भारत देश में हुए हैं। इस भूमि को 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहा गया है। पुरातन काल के सतयुगी मनुष्य देव मानव कहे जाते थे। मनुष्य जन्म को सुरदुर्लभ कहा गया है। देवता यज्ञादि उपासनात्मक कर्मकाण्डों द्वारा अपना पोषण प्राप्त करने के लिए आशा, उपेक्षा करते रहते हैं। जब वैसा कुछ मिल जाता है तो प्रसन्न होकर मनोवांछित वरदान प्रदान करते हैं। मनुष्यों की संकल्प शक्ति देवताओं को स्वर्ग से पृथ्वी पर आने के लिए विवश करती रही है। भागीरथ ने गंगा को स्वर्ग से उतारकर पृथ्वी पर बहने के लिए विवश किया था। वृत्रासुर से संत्रस्त होकर देवगण महर्षि दधीचि से अस्थियाँ लेकर वज्र बनाने और संकट से त्राण पाने में सफल हुए थे। हरिश्चन्द्र की आदर्शवादिता पर पुलकित होकर देवता स्वर्ग से पुष्प वर्षा करने के लिए दौड़ पड़े थे। सूर्य पुत्र कर्ण का पराक्रम और आदर्शवाद प्रख्यात है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवी सत्ता देव वर्ग से कहीं अधिक है। पर वह आमतौर से प्रसुप्त स्थिति में मूर्छित पड़ी रहती है। जग पड़े तो कुण्डलिनी बनकर अपनी ज्वाल-माल से क्षेत्र विशेष को प्रचण्डता से ओत-प्रोत करती देखी गई है यदि वैसा न बन पड़े तो मात्र हाड़-माँस के पिटारे जैसा दोष-दुर्गण से लिपटा हुआ मनुष्य दीन, दुर्बल, दरिद्र, अनगढ़, उपेक्षित, तिरस्कृत बनकर रहता है। आत्म-प्रताड़नाएँ और लोक-भर्त्सनाएँ उसे शूलती- हुलाती रहती ही हैं। भव बंधन में जकड़ा हुआ, कोल्हू के बैल की तरह घिसता, पिसता हुआ किसी प्रकार मौत के दिन पूरे भर कर पाता है।

काया स्वस्थ, समर्थ हो तो मात्र युवावस्था की थोड़ी-सी अवधि में बलिष्ठ, सुन्दर, प्रबुद्ध सम्पन्न, स्वतंत्र-स्वच्छन्द रहा जा सकता है। बचपन और बुढ़ापे का अधिकांश समय तो अपंग, असमर्थ, परावलम्बी जैसी स्थिति में किसी प्रकार गुजर करता है। जरा-जीर्ण स्थिति तो रोग शोक में कलपते-कराहते दिन बीतते हैं। उस स्थिति में मौत के दिन गिनने पड़ते हैं। उसी के अंचल में मुँह छिपा लेने के लिए विवशता भरी उत्सुकता चढ़ी रहती है किन्तु आत्मिक प्रगतिशीलता इससे सर्वथा भिन्न है। यदि उस दिशा में प्रगति कर सकना बन पड़े तो लोक-परलोक में समान रूप सन्तोष छाया, ओजस् उभरा और उल्लास-आनन्द का सास्वादन करते रहने की परिस्थिति निरन्तर बनी रहती है। आत्मिक प्रगति अकेली ही ऐसी है जिस पर अनेकानेक भौतिक सफलताओं को निछावर किया जा सकता है। बुद्ध, गाँधी सरीखे आत्मवान अस्सी वर्ष से अधिक समय तक सन्तोष, सम्मान भरा जीवन जीते रहे और सदा-सर्वदा के लिए अजर-अमर हो गये। अपनी अनुकरणीय, अभिनन्दनीय स्तर की उपस्थिति इतिहास के पृष्ठों पर युग-युगान्तरों के लिए छोड़ गये। आत्मिक प्रगति की महिमा जितनी बखानी जा सके उतनी ही कम है। आत्मवान् स्वयं तो विभूतिवान होकर जीता ही है अपने अनुदानों से अपने समय और परिकर को हर दृष्टि से कृतकृत्य करता है। भौतिक क्षेत्र में केवल स्वल्पकालीन उन्नति ही की जा सकती है। चिरस्थायी प्रगति का अर्थ तो आध्यात्मिक उपलब्धियाँ उपार्जित करने के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं। उसी के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष श्रेय जुड़ा हुआ है। अस्तु, दूरदर्शिता इसी में है कि आत्मोत्कर्ष का ताना-बना बुना जाय। भले ही वह कष्टसाध्य ही क्यों न हो ? भले ही उसके लिए सामयिक सुख- सुविधाओं में, तृष्णा-महत्वाकांक्षाओं में, कटौती ही क्यों न करनी पड़े ? आत्मा को ऊँचा उठाना आरम्भ कर दिया जाय तो वह विकसित होते-होते देवात्मा परमात्मा का स्तर प्राप्त कर लेती है।

शरीर सर्वाधिक उपलब्धियों की एक सीमा है। तृष्णा बढ़ी-चढ़ी कितनी ही क्यों न हो पर प्रकृति अंकुश के कारण उसका संग्रह एवं उपभोग एक सीमा तक ही हो सकता है। सीमित समय तक ही वह वैभव पास में रह सकता है। मृत्यु का ग्रास बनना हर किसी के लिए अनिवार्य ही है। ऐसी दशा में यदि असीम और अनन्त की स्थिरता के सम्बन्ध में सोचा जाय तो फिर आत्मिक प्रगति और आध्यात्मिक सिद्धि-सम्पदा पर ही विचार करना पड़ेगा। उसी दिशा में कदम बढ़ाना पड़ेगा।

सांसारिक क्षेत्र के सुसम्पन्नों के साथ सम्पर्क साधना और उनकी अनुकम्पा अर्जित करना सरल नहीं है। पर अदृश्य क्षेत्र में जिन सूक्ष्म सत्ताओं का स्वच्छन्द निवास है उनके साथ आत्मिक मार्ग पर चलते हुए सरलता के साथ जुड़ सकता है। उनका परामर्श, सहयोग विपुल परिणाम में प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार याचक को सम्पन्न दानशीलों की तलाश रहती है उसी प्रकार हर क्षेत्र के सुसम्पन्न अपने मित्र, साथी तलाशते रहते हैं। उत्तराधिकारी को खोज सभी को रहती है। पाने की तरह देने का भी आनन्द होता है। इसे माता संतान के, पति पत्नी के संबन्धों का विश्लेषण करते हुए सहज ही जाना जा सकता है। सूक्ष्म जगत की महान शक्तियाँ अपनी अनुकम्पा बरसाने के लिए बादलों की तरह आतुर रहती हैं। वे उपयुक्त भूमि पर बरसती भी हैं। रेगिस्तानों पर से तो मेघ मालाएँ बिना रुके पलायन कर जाती हैं।

साधना से सिद्धि का सिद्धान्त शत-प्रतिशत सही है। श्रम-शीलता के सहारे मात्र सम्पदा अर्जित की जा सकती है सो भी 'येन केन प्रकारेण' आगे चलने के लिए अपना रास्ता बना लेती है। किन्तु अध्यात्म सम्पदा के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। वह स्थिर ही नहीं रहती, बैंक ब्याज की तरह बढ़ती भी रहती है। पल्लवित वृक्षों की टहनियों की तरह फलती-फूलती भी रहती है। बाँटने पर विद्या की तरह उसकी अभिवृद्धि होती, परिपक्वता बढ़ती देखी जाती है।

भौतिक क्षेत्र में सफलता, असफलता के, सम्पन्नता विपन्नता के, ज्वार भाटे आते रहते हैं। दिन-रात की तरह अनुकूलता-प्रतिकूलता का उलट कर परिवर्तन होता रहता है किन्तु अध्यात्म क्षेत्र में ऐसा कुछ है नहीं। उस दिशा में बढ़ता हुआ हर कदम आगे की मंजिल ही पार करता है उसमें पीछे लौटने जैसी आशंका है नहीं। जब कभी इस राजमार्ग के पथिक को असफलता मिले तो समझना चाहिए कि दिशा भूल के भटकाव में उसे कहीं उलझना पड़ गया है। सही मार्ग पर सही गति से सही तैयारी के साथ जो भी इस क्षेत्र में बढ़ा है, उसे क्रमिक प्रगति का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समुचित लाभ मिलता रहा है। उसे निराश होने का, पछताने का कुयोग कभी भी मिला नहीं है। उसे भाग्य को कभी कोसना नहीं पड़ा है।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का त्रिविधि संयोग साधक को अपने साथ सँजोये रखना चाहिए। परमात्मसत्ता के साथ अपने आपे को समर्पित, विसर्जित कर देना ही ईश्वरावलम्बन है। ईश्वर जिसकी उपासना की जाती है, वह है सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय। उत्कृष्टता एवं भाग्यवादिता का समन्वय। मात्र पूजा करने से नहीं, आत्मा को परमात्मा के साँचे में ढाल लेना ही योगाभ्यास है।

चिन्तन और चरित्र को शालीनता से समन्वित करना, आत्म-परिशोधन में निरत रहना, आध्यात्मिकता और कर्तव्यों के परिपालन में कटिबद्ध रहना एवं धार्मिकता, इन चारों को अपनाये रहने वाला ही सच्चा अध्यात्मवादी और सफल साधक होता है।

आत्मिकी की प्रगति एवं सुनियोजन की आवश्यकता

विज्ञान, भौतिक जगत की एक महती शक्ति है प्रकृति के भण्डार में असीम प्रयोजनों में काम आने वाली अगणित क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उनमें से क्रमशः प्रयत्न-पूर्वक मनुष्य के हाथों कितनी ही सामर्थ्यें लगती चली गई हैं। अग्नि का, कृषि, पशु पालन, धातुओं के उपकरण बनाने का, पहिये के निर्माण का सिद्धान्त प्रगति के आरम्भिक दिनों में हस्तगत हुआ। तब का मनुष्य इतने भर से भौतिक जीवन में असाधारण सुविधाएँ हस्तगत करता गया। यह लोभ आगे भी संवरण न हो सका। एक के बाद एक खोज करते हुए वह विद्युत ही नहीं, अणु-शक्ति और लेसर किरणों तक का अधिष्ठाता बन गया। यान्त्रिक वाहन, जलयान, नभयान, उसने बनाये और मुद्रण कला जैसे अनेकों सुविधा-साधन ढूँढ़ निकाले। अब वह अन्तरिक्ष पर अधिकार जमाने के फेर में है। प्रक्षेपणास्त्र उसके हाथ आ गये हैं। अनेकों उपग्रह अन्तरिक्ष में विचरण कर रहे हैं। कल-कारखानों के सहारे अनेकों सुविधा-साधन बनते चले गये हैं विज्ञान ने मनुष्य के हाथों असीम सामर्थ्य प्रदान की है। इस आधार पर वह सम्पन्न भी हुआ है और बुद्धि-बल बढ़ाता प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा है। यह प्रकृति के रहस्यों को खोजते जाने और उसके ज्ञान के सहारे उपयोगी उपकरण बनाते जाने का ही प्रतिफल है।

इन प्रशंसनीय प्रयासों के साथ एक दुर्भाग्य भी पीछा करता आया है कि मारक और घातक उपकरणों का निर्माण भी कम नहीं हुआ और उपार्जित पूँजी का कम अंश उसमें नहीं लगा। इनके द्वारा करोड़ों को जान गँवानी पड़ी और उनके आश्रित बिलखते रह गये। ऐसे महायुद्ध का प्रतिफल यही तो हो सकता था।

विज्ञान ने सुखोपभोग के जहाँ अनेकों साधन प्रदान किये, वहाँ मनुष्य को आलसी, प्रमादी भी बनाया। नशे को ही लें। उसने अच्छे-खासों को निकम्मा बनाकर रख दिया। यान्त्रिक उत्पादन ने अमीरों की अमीरी, गरीबों की गरीबी बढ़ाकर दोनों के मध्य खाई चौड़ी कर दी। हर हाथ को काम मिलना सम्भव न रहा। बेकारी-बेरोजगारी के कुचक्र में असंख्यों पिसने लगे। वैज्ञानिक प्रगति में मानवी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा तो की जा सकती है, पर उसके द्वारा अपनाये मार्ग को देखते हुए यह भी कहना पड़ता है कि उपलब्धियों का सदुपयोग नहीं हुआ। उससे लाभ थोड़ों को हुआ और हानिकारक दुष्परिणाम असंख्यों को भुगतने पड़े। अभी भी जिस मार्ग पर कदम बढ़ रहे हैं, उन्हें देखते हुए भविष्य और भी अधिक अन्धकारमय दीखता है। स्वसंचालित विशालकाय मशीनें अगणित लोगों को बेरोजगार-भूखों मरने के लिए विवश करेंगी। उत्पादन को खपाने के लिए, मण्डियों पर अधिकार करने के लिए समर्थों की लिप्सा, युद्धोन्माद बढ़ाकर नये-नये युद्धक्षेत्र रचेगी। वाहन और कारखाने जो जहरीला धुआँ उगलते रहते हैं उससे वायु मण्डल विषाक्त हो चला है। कारखानों की गन्दगी नदी-नालों के मारफत समुद्र में पहुँचती है जिससे जल-जीवों का ही सफाया नहीं होता, वर्षा भी जहरीली होती है। हवा की तरह पानी भी क्रमशः अधिक जहरीला होता चला जा रहा है। अधिक अन्न उपजाने के लिए रासायनिक खाद और फसल के कीड़े मारने के लिए बनने वाले जहरीले छिड़कावों ने खाद्य-पदार्थों को विषाक्त करना आरम्भ कर दिया है। अणुशक्ति का उपयोग चाहे युद्ध के लिए हो या बिजली बनाने के लिए, वह हर हाल में विकिरण उत्पन्न करती है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति जितनी सुविधाएँ उत्पन्न कर रही है उससे कहीं अधिक जीवन-संकट उत्पन्न करने वाले दुष्परिणाम भी खड़े कर रही है। मारक औषधियों ने स्वास्थ्य का संरक्षण कम और भक्षण अधिक किया है।

अच्छा होता, वैज्ञानिकों को पैसे के बल पर मुट्ठी में रखकर उनके द्वारा नई शोधें कराने और नये उपकरण बनवाने वाले सत्ताधीश एवं धनाध्यक्ष अपनी बिरादरी को अधिक समर्थ बनाने की अपेक्षा सर्वसाधारण का हित सोचते और ऐसे निर्माण करते जिससे देहातों में बिखरे अशिक्षित भारत में छोटे-छोटे उपकरणों के सहारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुसंख्यक लोगों को उपयोगी उत्पादन में सुविधा मिलती। इस सन्दर्भ में मानवता की एक बड़ी चुनौती विज्ञान के सामने है। उसे एक दो हॉर्श पावर की बिजली से चल सकने वाली कुटीर उद्योगों के यन्त्र बनाने चाहिए। हवा और पानी की शक्ति से चलने वाले सस्ते बिजलीघर बनाने चाहिए। जमीन से ऊपर पानी लाने वाले पम्प, छोटे हल, ट्रैक्टर, करवे, लकड़ी चीरने और लोहा गलाने की भट्टियाँ बना सकना कुछ अधिक कठिन नहीं होना चाहिए। वजन ढोने की हल्की गाडियाँ, बैलों पर कम वजन डालने वाले जुए, छोटी पवनचक्कियाँ जैसे यन्त्र मनुष्यों का, पशुओं का श्रम हलका कर सकते हैं, साथ ही रोजगार भी देते रह सकते हैं। अन्न के बाद मनुष्य की दूसरी आवश्यकता कपड़े की है। इसके लिए रुई बनाने, कातने-बुनने, धोने, रंगने की छोटी-छोटी मशीनें बन सकती हैं और क्षेत्र में बड़े मिलों की प्रतिद्वन्द्विता रोककर लाखों बेरोजगारों को काम दिया जा सकता है। सरकार ही शिक्षा का सारा भार अपने ऊपर उठाए, यह आवश्यक नहीं। निजी विद्यालय चलाने को भी एक स्वतन्त्र व्यवसाय (प्राइवेट सेक्टर) के रूप में छूट दी जा सकती है। इस प्रकार सरकार, जनता एवं वैज्ञानिक मिलकर देश के लिए एक ऐसा रचनात्मक तन्त्र खड़ा कर सकते हैं, जिसमें स्वल्प पूँजी वाले भी अपने लिए तथा दूसरे साथियों के लिए आजीविका, उपार्जन के नये स्रोत खोल सकें। विज्ञान को ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए और सदा काम आने वाले छोटे यन्त्रों के निर्माण में तत्परतापूर्वक लगना चाहिए। इससे यन्त्र बनाने वाले उद्योगी और उनसे काम लेने वाले प्रयोक्ता सभी का हित साधन हो सकता है। यों अभी कुछ तो यन्त्र बने हैं पर वे बेमन से उपेक्षापूर्वक चलाये गये हैं, उनकी खामियाँ दूर नहीं की गईं। अन्यथा अम्बर चरखा जैसे उपकरण असफल क्यों होते ? इस दिशा में अब नये सिरे से सोचा और सहकारिता के आधार पर कारगर कदम उठाया जाना चाहिए।

बड़े लोग इस दिशा में कम ध्यान दें तो छोटे लोग मिल-जुलकर सहकारी स्तर पर बड़ी पूँजी वाले कारखाने खड़े कर सकते हैं। करोड़ों की पूँजी वाले कारखाने शेयरों में, बैंकों के ऋण से सरकारी अनुदान से बनकर खड़े हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि देहातों में काम आ सकने वाले गृह उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरण न बन सकें। शहरों पर आबादी का बढ़ता हुआ दबाव और बढ़ता हुआ गन्दगी का प्रभाव कम करने के लिए कस्बों को विकसित किया जाना चाहिए। सड़कों का जाल इस तरह बिछाया जाना चाहिए कि पास वाले कस्बों तक सस्ते वाहन आसानी से पहुँच सकें। सरकारी कोष में धन कम हो तो वाहनों पर टैक्स लगाकर उसकी पूर्ति उसी प्रकार की जा सकती है। जैसे कि नये पुल बनाने पर यातायात टैक्स लगता है। विज्ञान को सब कुछ अमीरों के लिए बड़े पैमाने पर काट करने वाले साधन ही नहीं जुटाने चाहिए वरन् देहातों में चल सकने वाले उपकरण भी बनाने चाहिए। जिससे बेरोजगारी का निराकरण हो सके। कृषि में शाक और सस्ते फल उत्पादन की काफी गुंजायश है। आवश्यकता लगनपूर्वक काम करने भर की है।

यह सुविधा-साधन उत्पन्न करने वाले अर्थ प्रधान उपायों की चर्चा हुई। यह भौतिक विज्ञानियों का और उनके लिए बड़ी पूँजी जुटाने वालों का क्षेत्र हुआ। विज्ञान को इतने क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। उसे चेतना क्षेत्र में भी प्रवेश करना चाहिए और व्यक्तित्व निखारने वाले कामों में भी हाथ डालना चाहिए। यह कार्य अध्यात्म-विज्ञानियों का है। संसार में पदार्थ क्षेत्र ही सब कुछ नहीं है, उसके समतुल्य एवं अधिक महत्वपूर्ण चेतना क्षेत्र भी है। मनुष्य को, अन्य प्राणियों से स्वास्थ्य, बुद्धि, प्रतिभा, कला-कौशल, व्यवहार, संयम आदि की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानियों- प्रज्ञावान मनीषियों, योगी, तपस्वियों का काम है। उनका कार्यक्षेत्र भौतिक विज्ञान से भी कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अधिक उपयोगी है। पदार्थ विज्ञान सुविधा-साधन विनिर्मित कर रहा है। उन साधनों का उपयोग जिसको करना है उस मनुष्य का दृष्टिकोण परिष्कृत करना असामान्य काम है। उसने अनेकों कुटेबें अपना ली है। और ऐसे क्रिया-कलाप अपना लिये हैं जो मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए हानिकारक हैं। ढेरों दुष्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिससे पीछा छूटना और छुड़ाया जाना चाहिए। ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी अपनाया नहीं गया। अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में रहने वाला व्यक्ति भी महामानव स्तर का बन सकता था। इस सन्दर्भ में प्रयोग करना और उपलब्धियों से साधारण को अभ्यास कराना यह आत्म-वेत्ताओं का, मनीषियों का काम है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क बहुमूल्य यन्त्र है। उसके अन्तराल में प्रकृति की पदार्थपरक और परब्रह्म की चेतना परक अनेकानेक विभूतियाँ समाविष्ट हैं। वे बीज रूप से प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं। उन्हें अंकुरित और पल्लवित किया जा सके तो नर के भीतर सोया हुआ नारायण जगाया जा सकता है और पुरुष में पुरुषोत्तम की झाँकी देखने को मिल सकती है। इस स्तर के प्रयत्नों को योगाभ्यास एवं तपश्चर्या कहते हैं। साधना भी इसी को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जाता है। पुरातन काल के तत्वदर्शी अपनी काया में सन्निहित उन सूक्ष्म केन्द्रों को समझते थे, साथ ही उन्हें प्रखर बनाने की विद्या का प्रयोग करके न केवल अपने को असामान्य बनाते थे। वरन् अन्यान्यों को भी इस कौशल से लाभान्वित करते थे। यह हय विद्या है तो भी यथार्थ और प्रचण्ड। जिनमें श्रद्धा हो वे अनुभवी, प्रवीण, पारंगतों के मार्गदर्शन में यह प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं और अभ्यास की परिणतियों से लाभान्वित हो सकते हैं। पिण्ड में ब्रह्माण्ड का समग्र ढाँचा विद्यमान है। बीज से समग्र वृक्ष और शुक्राणु से परिपूर्ण मनुष्य को उदय करने के लिए उस प्रसुप्ति को जागृति में बदलना होगा। यह योगाभ्यास का विषय है। इसे चेतना परक विज्ञान क्षेत्र ही समझना चाहिए। पिछले दिनों यह क्षेत्र पाखण्डियों के हाथों रहा है। अब उसे मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी हाथ में लें तो विज्ञान के अधूरे भाग की भी पूर्ति हो चले और उस प्रगति से ऐसा लाभ मिले जो भौतिक विज्ञान से भी उपलब्ध नहीं हुआ है।

इन दिनों ''ब्रेन वाशिंग'' के नाम से जाने-जाने वाले प्रयोग की महती आवश्यकता है। इस क्षेत्र में भौतिक विज्ञानियों ने भी यत्किंचित प्रवेश किया है और विरोधियों को समर्थ बनाने में आंशिक सफलता पाई है। उनकी कल्पना है कि सशक्तों को दुर्बलों के मनों पर आधिपत्य करने के उपरान्त पालतू पशुओं जैसा इच्छानुवर्ती होने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। उनके प्रयोग सफल हुए तो समर्थ नफे में रहेंगे किन्तु मनुष्य का स्वतन्त्र चिन्तन और आत्मबल समाप्त हो जायेगा। अस्तु यह क्षेत्र विशुद्ध रूप से अध्यात्मात्मवादियों का है। उन्हें लोककल्याण की दृष्टि से उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए जन-साधारण को प्रशिक्षित करना चाहिए। ''ब्रेन वाशिंग'' उन्हीं का काम है। इसे हाथ में लेकर वे मनुष्य जाति की महती सेवा साधना कर सकते हैं।

पंच भौतिक मानवी काया के हृदय, फुफ्फुस आदि अवयवों और रक्त-माँस-अस्थि आदि घटकों का स्वरूप और क्रिया-कलाप समझ लिया है। शल्य-क्रिया क्षेत्र में उसने श्रेय भी प्राप्त किया है। मस्तिष्कीय घटकों के स्थान एवं क्रिया-कलाप समझकर इलेक्ट्रोडों द्वारा उस क्षेत्र को वशवर्ती किया जा रहा है।

जिन रहस्यों पर अधिक प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है उसमें मानवीय विद्युत मस्तिष्कीय घटकों के कम्पन अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और उनसे निकलने वाले स्रावों पर नियन्त्रण करने की पद्धति मानवी चेतना को प्रभावित करने की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यकता है। हारमोनों पर नियन्त्रण की तरह ही गुण-सूत्रों को इच्छानुसार प्रवाह दे सकने की बात भी असामान्य है। शरीर में संव्याप्त रासायनिक पदार्थों में हेराफेरी की बात भी है। जीव-कोशों और ज्ञान तन्तुओं की सूक्ष्म संरचना को प्रभावित करना, मस्तिष्क की विभिन्न कोशिकाओं के प्रवाह में परिवर्तन करना वह तथ्य है जिनके ऊपर आध्यात्मिक ऋद्धि-सिद्धियों का आधार टिका है।

मनुष्य को हर दृष्टि से समुन्नत स्तर का बनाना है, उसमें देवत्व का अभ्युदय करना है तो इन रहस्यों को समझना ही नहीं, वशवर्ती करना भी आवश्यक है। यह कार्य भौतिक यन्त्रों, उपकरणों एवं क्रिया-कलापों से सम्भव नहीं। इसके लिए अध्यात्म क्षेत्र पर अधिकार रख सकने वाले पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न लोगों की कार्य-क्षमता एवं विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता पड़ेगी। भौतिक उपलब्धियों के समान ही यदि आत्म- विज्ञान अन्तःक्षेत्र की विभूतियों को करतल-गत कर सके तो ही समझना चाहिए कि समग्र विज्ञान में प्रवेश पाना सम्भव हुआ। मात्र पदार्थों पर अधिकार करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जिनके बिना मानवी विशिष्टता अवरुद्ध बनी रहे। बिना सुविधा साधनों के भी काम चल सकता है। आत्मवेत्ता तो विशेष रूप में कम से कम साधनों से काम चलाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि यह सब इतना आवश्यक नहीं कि इनके बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का न बनाया जा सके और सच्चे अर्थों में विभूतिवान न बना जा सके। भौतिक साधनों की प्राचीनकाल में कमी थी। इतनी बहुलता न थी जितनी इन दिनों है तो भी मनुष्य आत्मबल के सहारे सुखी भी रहते थे और समुन्नत एवं सुसंस्कृत भी। इसके विपरीत इन दिनों जिनके पास साधनों की बहुलता है वे भी बहिरंग एवं अन्तरंग क्षेत्र में विपन्न, उद्विग्न पाये जाते हैं।

मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में उल्लसित, विकसित रहें तथा आनन्द से अपरिपूर्ण दिखाई पड़ें तो समझना चाहिए कि उभयपक्षीय उपलब्धियाँ हस्तगत करके मनुष्य सच्चे अर्थों में अपनी गरिमा उपलब्ध कर सके। ऐसे व्यक्तित्वों की जितनी बहुलता होगी उतना ही वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा होगा और स्वल्प साधनों में भी प्रगति एवं समृद्धि की परिस्थितियों का अनुभव होगा।

ऋषियों ने इतने उच्चस्तर की विभूतियाँ उपलब्ध की थीं जिन पर आज तो सहसा विश्वास करना कठिन होता है। समूचे समाज को आगे बढ़ाने एवं ऊँचा उठाने की क्षमता जिस प्रवाह एवं वातावरण में है, उसकी उपलब्धि आत्म-विज्ञान की प्रगति से ही सम्भव हो सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे मानव! तू पहले अपनी आत्मा को पहिचान

जीवन का महत्व, स्वरूप और उद्देश्य यदि सही रूप में समझा जा सके, तो वह दूरदर्शिता जगे, जिसके सहारे इस सुयोग के सार्थक बन सकने की सम्भावना उभरती है। आम आदमी दर्पण में शरीर को ही देखता है और उतने भर को 'स्व' अनुभव करता है। लोक व्यवहार में भी शरीर ही काम करता है और उसी को श्रेय अथवा अपयश का भागी बनना पड़ता है। सुख-सुविधाओं का उपयोग भी इन्द्रियाँ ही करती हैं। रोग, शोक भी शरीर को ही त्रास देते हैं। शरीर व्यवहार के कारण जुड़े हुए लोग ही सम्बन्धी परिवार कहलाते हैं और उनके साथ शरीर को लक्ष्य रखकर ही वार्तालाप चलता है। अनेक प्रकार के आदान-प्रदानों का माध्यम भी शरीर रहता है। चारों ओर फिरते और चित्र-विचित्र व्यवहार करते हुए भी शरीर ही दीखते हैं। ऐसी दशा में लोग सम्मोहन के दबाव से यदि सामान्य बुद्धि आत्मसत्ता को शरीर ही मान बैठे तो उसमें आश्चर्य जैसी कोई बात भी नहीं है।

वातावरण का प्रभाव इसी को कहते हैं। भेड़ों के झुण्ड में रहने वाला सिंह शावक अपने को भेड़ मानने लगा था। शरीर समुदायों के बीच घिरा हुआ, शरीरगत आचरणों में निमग्न रहने वाला चिन्तन यदि समूची आत्म-सत्ता को शरीर मान बैठता है और उसी के लिए सब कुछ करने की बात सोचता है, तो इसे माया की प्रबलता ही कहा जायेगा। ऐसे ही प्रसंगों को देखते हुए ब्रह्मा से माया को बलवती कहा जाता है। माया अर्थात् भ्रान्ति। संसार की अनेकानेक भ्रान्तियों में सर्वोपरि यह है कि मनुष्य अपने आपको शरीर मात्र मान बैठता है। उसका सूत्र-संचालन करने वाली आत्मा को आँख से न देख पाने की बात ही नहीं, समझ का प्रयोग करके उसकी सत्ता का अनुभव तक न करने की दूसरी कठिनाई भी है।

नितान्त बौढ़मपन से काम न लिया जाय और विवेक-बुद्धि का तनिक-सा प्रयोग किया जाय, तो यह प्रतीत हुए बिना न रहेगा कि जीवन-सत्ता शरीर पर नहीं, चेतन-आत्मा पर अवलम्बित है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आत्मा के निकलते ही शरीर अपना अस्तित्व तक बनाये रहने में समर्थ नहीं रह पाता। मरण के तत्काल बाद काया स्वयमेव सड़ने लगती है, और विघटित होकर कलेवर को अति शीघ्र समाप्त कर डालने के लिए आतुरता दिखाती है। मुर्दे को देर तक रखा रहने दिया जाय तो उसे सड़ते, बिखरते, कृमि-कीटकों का शिकार बनते देखा जाता है। सम्बन्धी लोग विधिवत् अन्त्येष्टि न करें तो गिद्ध, कौए, कुत्ते और उसके निमित्त आ पहुँचते हैं। आत्मा के अभाव से शरीर द्वारा कुछ करना-धरना तो अलग अपना स्वरूप यथावत् बनाये रहना तक सम्भव नहीं हो पाता है।

सबसे महत्वपूर्ण समस्या मनुष्य के सामने एक ही है कि वह अपने को पहचाने। इस सन्दर्भ में चले आ रहे भटकाव को, अवांछनीय प्रतिक्रिया को समझें और उल्टी राह पर न चले। आत्म-बोध की सबसे बड़ी उपलब्धि कहा गया है। भगवान बुद्ध को यह लाभ जिस दिन हुआ, उस दिन वे सनकी राजकुमार के रूप में अपना जाना-पहचाना केंचुल छोड़कर सच्चे अर्थों में सन्त, ऋषि, अवतार-भगवान बन गये। आत्म विभ्रम एक जादुई सम्मोहन है। जब सभी अपने को शरीर मात्र मानते हैं और उसी की वितृष्णाओं के लिए खपते दृष्टिगोचर होते हैं तो कोई एकाकी क्यों झुण्ड छोड़कर अकेला चलने की बात सोचे और नई राह खोजे। प्रवाह में बहना जितना सरल होता है इसे सभी जानते हैं। बहती धारा में पड़कर पत्ते भी अविज्ञात की ओर मजे में बहते रहते हैं। साथियों के झुण्ड में उड़ना पक्षी भी जानते हैं। भेड़ों के बारे में कहा जाता है कि वे एक के पीछे एक चलने में इतनी अभ्यस्त और मस्त रहती हैं कि खाई-खड्ड में गिरते चलने तक में आगा-पीछा नहीं सोचती। हवा के रुख के साथ पतंग दिशा पकड़ती है, धूलि-तिनकों तक को दौड़ लगाने की सूझती है। माहौल का प्रभाव ही कुछ अजीब होता है।

मनुष्य समुदाय भी ऐसे प्रसंगों में सर्वथा रुढ़िवादी सिद्ध होता है। धूमधाम, दान-दहेज वाली खर्चीली शादियों के दुष्प्रचलन से असन्तुष्ट-अप्रसन्न रहने पर भी लोग जब प्रचलन के साथ-साथ रहने का प्रश्न सामने आता है तो सिद्धान्त सोचना छोड़कर उसी सड़े-गले ढर्रे को अपनाते और उसी तरह का सरंजाम जुटाते हैं। ऐसी दशा में इस वर्ग के प्रचलनवादियों का समूह आत्म-स्वरूप समझने में अनुकरण के अतिरिक्त और कुछ कर सकेगा, इसकी आशा नहीं की जाती है। आम आदमी अपने को शरीर ही मानता है और उसी की ललक-लिप्साओं के लिए अन्यान्यों की तरह मरने-खपने लगता है। औचित्य और यथार्थ का विचार कर सकने की विवेकशीलता मुट्ठी भर लोगों में भी तो नहीं होती।

अपने चारों ओर भ्रान्तियों का समुद्र लहरा रहा है। पृथ्वी बन्दूक की गोली से भी अधिक चाल से दौड़ती और लट्टू से अधिक तेजी से धुरी पर घूमती है, पर सहज बुद्धि को कोई क्या कहे, जो इस लक्ष्य को आँखें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न देख पाने पर सहज स्वीकारती नहीं। अदृश्य परमाणु के समुच्चय ही हमें पदार्थों के रूप में दीखते हैं, इसको कौन माने ? सूर्य किरणों के सात रंग होने की बात भी हर किसी को समझाना मुश्किल है। स्वाद मात्र खाद्य पदार्थ का नहीं होता, मुख के स्राव आहार से मिलकर जो प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, उसी की अनुभूति मनःक्षेत्र में स्वाद के रूप में की जाती है। नीम मनुष्य के लिए ही कड़ुआ है, ऊँट के मुँह में प्रवेश करने पर वह नितान्त स्वादिष्ट बन जाता है। रात्रि को ऐसा लगता है, सूर्य समुद्र में डूब गया, पर वस्तुतः वह धरती की दूसरी ओर होने से आड़ में छिपा भर होता है, डूबता नहीं। ऐसी अनेकों अनूबूझ पहेलियों में ही एक यह भी है कि मनुष्य की सत्ता चेतन आत्मा होने पर भी शरीर के साथ जुड़ी रहने के कारण शरीर रूप में ही प्रतिभासित होती है। इसी भ्रान्ति को माया कहा जाता है।

तत्वज्ञानी इस विडम्बना की कठपुतली के नृत्य से तुलना करते हैं और लकड़ी के टुकड़ो का दृश्यमान नाच एक भ्रान्ति भर मानते हैं। छिपे बाजीगर की उँगलियाँ न दीख पड़ने वाले तारों के सहारे ही यह बहकाने वाला खेल खड़ा करती हैं। बाल बुद्धि उसे दृश्यमान कठपुतलियों का नाच देखकर तालियाँ बजाती है। मृत्यु का दृश्य आमतौर से आँखों के सामने रहता नहीं, अन्यथा यह सहज ही समझा जा सकता था, कि जीवन शरीर है या प्राण। इस श्मशान को यदि गम्भरतापूर्वक समझा और देर तक टिकाये रखा जा सका होता तो फिर बुद्धि पर पड़ा हुआ वह पर्दा हट सकता था, जिसके अनुसार व्यक्ति अपने को शरीर भर मानता और उसी की अनगढ़ उचंगों पर सर्वस्व निछावर करता रहता है।

कहने-सुनने में तो आत्मा की चर्चा नित्य ही होती रहती है और उसके अनश्वर होने का कथा-प्रवचन, पठन-पाठन एक ढर्रे की तरह चलता रहता है पर उस तथ्य पर गम्भीरतापूर्वक कोई ध्यान नहीं देता। बाजारू मजाक की तरह उसे भी परी-कथाओं की तरह कथन-श्रवण का एक शुगल समझकर हवा में उड़ा दिया जाता है। यदि इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा सका होता, तो फिर उसके साथ जुड़े हुए अनेकों प्रश्न उभरकर सामने आते और वे सभी अपना समाधान पूछने के लिए नाक में दमकर रहे होते। सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि यह मनुष्य आत्मा है, तो उसकी कुछ इच्छा, आवश्यकता भी है क्या? उसे स्वच्छ रखने और पोषण देने के लिए भी कुछ करना पड़ता है क्या ? प्रगति और प्रसन्नता के लिए उसे भी अवसर और साधन चाहिए क्या ?

यह एक ज्वलन्त प्रश्न है, जिसका समाधान खोजने वाले को कम-से-कम शरीर जितना महत्व तो आत्मा को भी देना पड़ेगा और उसकी इच्छा, आवश्यकता, स्वच्छता एवं प्रगति के लिए सरंजाम जुटाने, श्रम करने की बात को उभरकर ऊपर आने देना होगा। जबकि इस सन्दर्भ में मात्र सन्नाटा ही छाया रहता है। यदि विचार में गम्भीरता का पुट रहा होता तो फिर यह भी सोचा गया होता कि आत्मा के निमित्त भी जीवनसम्पदा का उतना अंश लगना ही चाहिए जितना कि शरीर के लिए लगता है। यों आत्मा को सवार और शरीर को सवारी कहा जाता है। सवारी की तुलना में सवार का महत्व अधिक है तो फिर उसकी गरिमा को देखते हुए उसकी प्रतिष्ठा और व्यवस्था भी अधिक ऊँचे स्तर की होनी चाहिए। इतना न बन पड़े तो भी दोनों को समान महत्व और समान साधन तो मिलना ही चाहिए। जीवन को यदि आत्मा और शरीर को संयुक्त व्यवसाय माना जाय तो उपलब्धियों में दोनों की कम-से-कम बराबर की हिस्सेदारी भी होनी चाहिए। पूँजी और मेहनत आत्मा की, चेतना की लगे और मात्र हलचल करने वाले उपकरण के हिस्से में सारी कमाई लगती रहे तो इसे अनुचित ही कहा जायेगा। अनुचित को छूट देने वाली बुद्धि को भी उस पद की गरिमा गिराने वाली कहा जायेगा, जिसे न्यायाधीश की न सही, पुलिसमैन की भूमिका तो निभानी ही चाहिए थी। पता चलने पर अन्याय को रोकने के लिए अपनी ओर से कदम बढ़ाया जाना चाहिए था। शरीरगत सुविधाओं के लिए जितना समय श्रम मनोयोग लगता है, और उससे कम में आत्मा की स्वच्छता, तृप्ति एवं प्रगति के साधन जुटाने में किसी भी प्रकार काम चल ही नहीं सकता। यह विभाजन यदि बन पड़े तो समझना चाहिए कि जीवनचर्या के क्षेत्र में चल रही अनीति और अवस्था में सुधार-परिवर्तन आरम्भ हुआ।

ईश्वर का अंश होने के नाते आत्मा के कन्धों पर वे उत्तरदायित्व भी लदे हैं, जिनके कारण उसे अन्य प्राणियों से वरिष्ठ बनाया और विशिष्ट साधनों से सँजोया गया है। अतिरिक्त उत्तरदायित्वों के आधार पर ही किसी को अतिरिक्त साधन दिये जा सकते हैं, अन्यथा ईश्वर को अन्यायियों और पक्षपातियों का सरताज कहा जाता। मनुष्य को मौज उड़ाने के लिए इतना साधन सम्पन्न-बनाने के विरोध में सभी जीवधारी मिल-जुलकर आवाज उठाते और नीति-न्याय की कचहरी में इन मिली-भगत वाले ईश्वर और मनुष्य की चौकड़ी को कड़ी सजा दिलाकर रहते। ईश्वर बड़ा है। पर बड़े अर्थ यह तो नहीं, वह अपनी ही बनाई मर्यादाओं को तहस-नहस करदे और मात्र एक ही प्राणी पर स्वेच्छाचार सुख-साधनों का अम्बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बरसा दे तथा दूसरे सभी उस सबके लिए तरसते भर रहें।

निश्चित रूप से मनुष्य को दो कुछ अन्य प्राणियों से अतिरिक्त मिला है, उसके दो ही प्रयोजन हैं। एक आत्म-कल्याण अर्थात् आदर्शों की दृष्टि से अपने को पूर्णता के स्तर तक पहुँचाना। दूसरा विश्व कल्याण अर्थात् विश्व उद्यान को अधिक व्यवस्थित और समुन्नत बनाने में सृष्टा का हाथ बँटाना, क्रिया कुशल माली की भावभरी भूमिका निभाना। इन दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही मनुष्य को युवराज जैसी वरिष्ठता दी गई है। इसकी उपेक्षा करके यदि वह शरीरचर्या में निरत रहकर असंयम बरतता है तो उसकी विलासिता, तृष्णा और अहिंसा द्वारा अपनाई गई उद्दण्डता अपराध श्रेणी में गिनी जायेगी। महत्वपूर्ण पदों पर अवस्थित अधिकारी जब उत्तरदायित्वों की अवहेलना करते हैं तो उन्हें भर्त्सना एवं प्रताड़ना भी उतनी ही बड़ी मिलती है। सेनानायकों को तनिक-सा प्रमाद बरतने पर कोर्टमार्शल होते और गोली से उड़ाये जाते देखा गया है। प्रमादी मनुष्य के साथ भी नियति के न्यायालय में इससे कम कठोरता नहीं बरती जा सकती।

माला घुमाकर, धूपबत्ती जलाकर, स्तवन सुनाकर, कर्मकाण्डों से फुसलाकर भगवान को उल्लू बना देने और निर्धारित जिम्मेदारी से मुक्त करके मन-माना स्वेच्छाचार बरतने की छूट पा लेना ऐसे ही लोगों की कुकल्पना है जिसने छल ही सीखा और सिखाया है। पूजा-पाठ का अपना उद्देश्य और स्वरूप है, पर वह मानवी कर्त्तव्य पालन का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। वह अनुशासन तो चट्टान की तरह अटल है। उसकी अवहेलना के लिए कोई विकल्प नहीं ढूँढ़ा जा सकता। पूजा-पाठ भी नहीं। भक्त और पुजारी का लबादा ओढ़ लेने पर भी कर्त्तव्य की आँखें भी धूलि झोंकने की चाल चलती नहीं। आत्मा को यदि जीवन में भागीदार मानना है तो ईमानदारी इसी में है कि उसकी आवश्यकता समझी जाय, उपलब्धियों में हिस्सेदारी दी जाय। प्रगति और प्रसन्नता का लाभ शत-प्रतिशत शरीर को ही न मिलता रहे। उसकी व्यवस्था आत्मा के लिए भी होनी चाहिए।

अपने को जानें, भव बन्धनों से छूटें

संसार में जानने को बहुत कुछ है। पर सबसे महत्वपूर्ण जानकारी अपने आप के सम्बन्ध की है। उसे जान लेने पर बाकी जानकारियाँ प्राप्त करना सरल हो जाता है। ज्ञान का आरम्भ आत्मज्ञान से होता है, जो अपने को नहीं जानता वह दूसरों को क्या जानेगा ?

आत्मज्ञान जहाँ कठिन है वहाँ सरल भी बहुत है। दूसरी वस्तुयें दूर भी हैं और उनका सीधा सम्बन्ध भी अपने से नहीं है। किसी के द्वारा ही संसार में बिखरा हुआ ज्ञान पाया और जाना जा सकता है। पर अपना आपा सबसे निकट है, हम उसके अधिपति हैं। आदि से अन्त तक उसमें समाये हुए हैं, इस दृष्टि से आत्मज्ञान सबसे सरल भी है। शोध करने योग्य एक ही तथ्य है, आविष्कृत किये जाने योग्य एक ही चमत्कार है—वह है अपना-आपा। जिसे पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

बाहर की चीजों को ढूँढ़ने में मन इसलिए लगा रहता है, कि अपने को ढूँढ़ने के झंझट से बचा जा सके। क्योंकि जिस स्थिति में आज हम हैं उसमें अँधेरा दीखता है और अकेलापन। यह डरावनी स्थिति है। सुनसान को कौन पसन्द करता है? खालीपन किसे भाता है? अपने को इस विपन्न स्थिति से परक है, स्वयं ही अपने को डरावना बना लिया है और उससे भयभीत होकर स्वयं ही भागते हैं। अपने को देखने खोजने और समझने की इच्छा इसी से नहीं होती और मन बहलाने के लिए बाहर की चीजों को ढूँढ़ते फिरते हैं। कैसी है विडम्बना?

क्या वस्तुत: भीतर अँधेरा है ? क्या वस्तुत: हम अकेले और सूने है ? नहीं, प्रकाश का ज्योति-पुंज अपने भीतर विद्यमान है और एक पूरा संसार ही अपने भीतर विराजमान है। उसे पाने और देखने के लिए आवश्यक है कि मुँह अपनी ओर हो। पीठ फेर लेने से तो सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ता और हिमालय तथा समुद्र भी दीखना बन्द हो जाता है। फिर अपनी ओर पीठ करके खड़े हो जायें तो शून्य के अतिरिक्त और दीखेगा भी क्या ?

बाहर केवल जड़ जगत है। पञ्चभूतों का बना हुआ निर्जीव। बहिरंग दृष्टि लेकर तो हम मात्र जड़ता ही देख सकेंगे। अपना जो स्वरूप आँखों से दीखता है, कानों से सुनाई पड़ता है जड़ है। ईश्वर को भी यदि बाहर देखा जायेगा तो उसके रूप में जड़ता या माया ही दृष्टिगोचर होगी। अन्दर तो है वही सत् है। इसे अन्तर्मुखी होकर देखना पड़ता है। आत्मा और उसके साथ जुड़े हुए परमात्मा को देखने के लिए अन्त:दृष्टि की आवश्यकता है। इस प्रयास में अन्तर्मुखी हुए बिना काम नहीं चलता।

स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, शान्ति आदि विभूतियों की खोज में कहीं अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं है। बाहर भरी हुई जड़ता में चेतना कैसे पाई जा सकेगी। जिसे ढूँढ़ने की प्यास ओर पाने की चाह है वह तो भीतर ही भरा पड़ा है। जिसे कुछ मिला है यहीं से मिला है। कस्तूरी वाला हिरन तब तक उद्विग्न और अतृप्त ही फिरता रहेगा जब तक कि अपने ही नाभि केन्द्र में कस्तूरी ही सुगन्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्निहित होने पर विश्वास न करेगा, बाहर जो कुछ भी चमक रहा है सब अपनी ही आँखों व प्रकाश का प्रतिबिम्ब मात्र है।

श्रुति कहती है—अपने आपको जानो, अपने को प्राप्त करो और अमृतत्व में लीन हो जाओ। उसी को ऋषियों ने दुहराया है और तत्वज्ञानियों ने उसे ही सारी उपलब्धियों का सार कहा है। क्योंकि जो बाहर दीख रहा है वह भीतरी तत्व का ही विस्तार है। अपना आपा जिस स्तर का होता है संसार का स्वरूप भी वैसा ही दीखता है। बाहर हमें जैसा देखना पसन्द हो उसे भीतर से खोज निकालें। यही अन्वेषण की चरम सीमा है।

दु:ख, दारिद्रय, शोक, सन्ताप और अभाव, उद्वेग का निवारण करने के लिये इन अनात्म तत्वों की अन्तरंग में जमी हुई जड़ों को खोदना पड़ेगा। भीतर का दीपक जलने पर ही बाहर फैले हुए अन्धकार का समाधान होगा। जो कुछ हमारे लिए अभीष्ट और आवश्यक है उसकी समस्त सम्भावनायें अपने भीतर सुरक्षित रखी हुई हैं। आवश्यकता उन्हें प्रयोग करने की है। अपने आपे का प्रयोग करना यदि हमें आया होता तो हम दूसरे ईश्वर बन सकने में समर्थ होते। अपने को खोकर हमने खोया ही खोया है। बाहर ढूँढ़ने में जीवन गँवा डाला, पर मिला कुछ नहीं, मिलता तब जब बाहर कुछ होता।

अनात्म तत्वों की जो गन्दगी भीतर भर गई है उसे निकाल दें तो शेष वही रह जाता है, जो हमारा स्वरूप है। कुछ पाने के लिए कुछ खोने के लिए तप साधन किये जाते हैं। आत्मा तो स्वयं उपलब्ध ही है। उसे पाने के लिए कुछ करना नहीं है। करने की बात इतनी ही है कि जो अनुपयुक्त और अवांछनीय अपने भीतर भर लिया है उसे निकालकर फेंक दें। यह परिशोधन ही उपलब्धि का निमित्त बन जाता है।

किसी तत्ववेत्ता से जिज्ञासु ने पूछा—गुरुदेव, तप साधना से आपने क्या पाया ? उन्होंने उत्तर दिया—खोया बहुत पाया कुछ नहीं। जिज्ञासु ने आश्चर्य से पूछा—ऐसा क्यों ? ज्ञानी ने कहा—जो पाने लायक था वह तो पहले से ही प्राप्त था। जो खोने लायक विषय, विकार और अज्ञान, अन्धकार के अनात्म तत्व भीतर घुस पड़े थे, उन्हें साधना ने निकाला भर है। इस तरह साधक—साधना में खोता ही खोता है पाता कुछ नहीं। हम स्वप्न खोते हैं तब सत्य पाते हैं।

रोवर गोडंल ने अपनी पुस्तक 'दी कन्टेन्योटेरी साइन्सेज एण्ड दी लिवरेटिव एक्सपीरियेन्स ऑफ योग' में लिखा है—'मनुष्य के यह जानने से पहले कि वह वास्तव में क्या है, अब तक के जाने हुए को भूलना होगा। वर्तमान नकारात्मक मान्यताओं के कारण मानव अपने भीतर स्थूल अहंवाद के साथ जुड़ी हुई मिथ्या मान्यताओं से ही परिचित हो पाया है। आत्मिक प्रगति के लिए हमें आत्म-बोध का प्रशिक्षण आरम्भ से ही करना होगा। क्योंकि उन तथ्यों को जिन पर आत्मोन्नति निर्भर है एक प्रकार से हमने भुला ही दिया है।'

कालीदास ने कहा है—अपने को जानने का प्रयत्न करो। अपने स्वरूप को समझो और जिस लिये जन्मे हो उस पर विचार करो। तुम्हें दिशा मिलेगी और सही दिशा में कदम उठ गये तो वह प्राप्त करके रहोगे जिसके पाये बिना अपूर्णता और अतृप्ति घेरे ही रहेगी।

स्वामी विवेकानन्द ने एक कथा सुनाई—'एक तत्व ज्ञानी अपनी पत्नी से कह रहे थे, सन्ध्या आने वाली है, काम समेट लो। एक सिंह कुटी के पीछे यह सुन रहा था उसने समझा सन्ध्या कोई बड़ी शक्ति है जिससे डरकर यह निर्भय रहने वाले ज्ञानी भी अपना सामान समेटने को विवश हुए हैं। सिंह चिन्ता में डूब गया और उसे सन्ध्या का डर सताने लगा।

पास के घाट का धोबी दिन छिपने पर अपने कपड़े समेटकर गधे पर लादने की तैयारी करने लगा। देखा तो गधा गायब। उसे ढूँढ़ने में देर हो गई। रात घिर आई और पानी बरसने लगा। धोबी को एक झाड़ी में खड़खड़ाहट सुनाई दी, समझा गधा है। सो लाठी से उसे पीटने लगा—धूर्त यहाँ छिपकर बैठा है। सिंह की पीठ पर लाठियाँ पड़ीं तो उसने समझा यही सन्ध्या है, सो डर से थर-थर काँपने लगा। धोबी उसे घसीट लाया सो कपड़े लादकर घर चल दिया। रास्ते में एक दूसरा सिंह मिला उसने अपने साथी की दुर्गति देखी तो पूछा—यह क्या हुआ ? तुम इस प्रकार लदे क्यों फिर रहे हो। सिंह ने कहा—सन्ध्या के चंगुल में फँस गये हैं यह बुरी तरह पीटती है और इतना वजन लादती है।''

सिंह को कष्ट देने वाली सन्ध्या नहीं उसकी भ्रांति थी, जिसके कारण धोबी को कोई बड़ा देव दानव समझ लिया गया और उसका भार एवं प्रहार बिना सिर हिलाये स्वीकार कर लिया गया। हमारी यही स्थिति है अपने वास्तविक स्वरूप को न समझने और संसार के साथ, जड़ पदार्थों के साथ अपने सम्बन्धों का ठीक तरह ताल-मेल न मिला सकने की गड़बड़ी ने ही हमें उन विपन्न परिस्थितियों में धकेल दिया है जिनमें अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं। इस भ्रान्ति को ही माया कहा गया है। माया को ही बन्धन कहा गया है और दु:खों का कारण बताया गया है। यह माया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ नहीं वास्तविकता से अपरिचित रखने वाला अज्ञान ही है।

गीता में माया की व्याख्या और प्रतिक्रिया समझाते हुए भगवान ने कहा है—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।

ज्ञान अज्ञान के द्वारा ढँक दिया गया है, इस कारण सब प्राणी मोह को प्राप्त होते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।

अपनी योग माया से ढँके हुए होने के कारण मैं सबके लिए दृश्य नहीं हूँ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

तीन गुणों से युक्त इस मेरी माया को पार करना बड़ा कठिन है।

शरीर को आत्मा समझ बैठने—शरीर के सुख-दुःख, हानि-लाभ और संयोग-वियोग को आत्मा पर घटित हुई मान लेने से मनुष्य दुःखी होता है, उपलब्धियों की अपेक्षा यदि अपना ध्यान आत्मा के निर्मल, निर्विकार स्वरूप में बना रहे और जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्त्तव्य कर्मों को करते रहने एवं दिव्य विचारों में रमण करने की प्रवृत्ति अपना ली जाय तो न दुःख की गुंजायश रहे न शोक की। अपने को आत्मा बना इस संसार को परमेश्वर का स्वरूप मानकर परमात्मा के लिए आत्मा द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अनुदानों, कर्त्तव्य कर्मों को अपनाते हुए जीवन यात्रा पूरी करने लगे तो सारे दुःख दूर हो जायें जिन्हें अज्ञता के कारण मायाबद्ध जीव पग-पग पर भुगतता रहता है।

मानव जीवन का परम पुरुषार्थ—आत्मज्ञान

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। जब महर्षि ने संन्यास लेना चाहा, तब अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर कहा—'हम सब संन्यास लेने वाले हैं, तुम दोनों घर की सम्पूर्ण सम्पत्ति को आधा-आधा बाँट लो। यह सुनते ही मैत्रेयी बोल उठी देव ! क्या इन धन-सम्पदाओं को प्राप्त कर मैं अमर हो जाऊँगी ? नहीं—याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। 'जिस प्रकार धन-सम्पत्ति वालों का लोभ-मोह से भरा जीवन होता है, देवि ! उसी प्रकार का तुम्हारा भी जीवन हो सकेगा।' तब तो ऐसे धन की हमें आवश्यकता नहीं मैत्रेयी ने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा। पुनः निवेदन किया कि—'देव हमें तो अमरत्व का साधन बताइये। हमें धन-सम्पदा नहीं चाहिए।

मैत्रेयी के बार-बार आग्रह करने पर महर्षि को विवशतः अमरत्व का साधन आत्म-कल्याण का साधन बताना ही पड़ा। उन्होंने सूत्र रूप में कहा—

आत्मा वाऽरे मैत्रेयि ! द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च। आत्मनः खलु दर्शनेन इदं सर्वं विदितं भवति। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

'हे मैत्रेयी ! आत्मा ही देखने योग्य, सुनने योग्य, मनन करने योग्य और अनुभव करने योग्य है।' अपने आपको-आत्मा को-जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है।' यही अमरत्व का साधन है—यही आत्मकल्याण का मार्ग है।

'अपने को जान लेना ही सबसे बड़ी उपलब्धि है। गीताकार ने आत्मोत्कर्ष की गरिमा समझाते हुए कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

'अपनी आत्मा द्वारा अपना उद्धार करो, आत्मा को पतित न करो। 'आत्मा' ही अपना बन्धु है और 'आत्मा ही अपना शत्रु' है।

व्यक्ति को दुनिया की, विश्व-ब्रह्माण्ड की यत्किंचित् जानकारी कितना सन्तोष प्रदान करती है। जान-पहचान के लोगों से मिलने पर कितनी प्रसन्नता होती है, कदाचित् अपने को पहचाना जा सके—आत्मा को जाना जा सके—तो कितने महान् आनन्द की प्राप्ति हो। उपनिषद्कार के शब्दों में अपने आपको जान लेने वाले को ही सर्वोपरि सुख की प्राप्ति होती है—

'तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

—कठोपनिषद् २/२/१२

'उस अपने में स्थित आत्मा को जो विवेकी पुरुष देख लेते हैं, जान लेते हैं, उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं।'

अपनी आत्मा को जान लेने पर भवबन्धनों से मुक्ति हो जाती है—

न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवास शतैरपि ।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति जीवभूत ॥

जप, हवन, तथा सैकड़ों उपवास से भी मुक्ति नहीं मिल पाती, आत्मज्ञान हो जाने पर 'जीव और ब्रह्म की एकता की अनुभूति' होने पर आत्मा मुक्त हो जाती है।'

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं,
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते। —कठो० १।३।१५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'उस अनादि, अनन्त, महतत्व (बुद्धि) से परे तथा ध्रुव (निश्चल) आत्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है।'

'महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शेचति' ।

—कठो० २।१।४

'उस महान और विभु (सर्वसमर्थ) आत्मा को जानकर बुद्धिमान पुरुष शोकाकुल नहीं होता।

इस प्रकार अनेकानेक श्रुतिवचनों द्वारा आत्मज्ञान की गरिमा को प्रतिपादित कर उसे प्राप्त करने की प्रेरणा दी गई है। व्यक्ति को जिसमें अपना लाभ दिखाई पड़ता है, उस कार्य को बड़े परिश्रम, मनोयोग व प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न करता है। यदि आत्मज्ञान के लाभों को जाना जा सके तथा इसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा सके तो व्यक्ति धन्य हो जायेगा।

व्यक्ति जब अपने को ईश्वर का परम पवित्र अविनाशी अंश समझता है, आत्मा के रूप में अनुभव करता है और शरीर को एक उपकरण भर स्वीकारता है तब वह दीन-हीन स्थिति से ऊपर उठकर, उन कार्यों को ही करता है, जो उसके गौरव के अनुरूप होते हैं—आत्म-सन्तोष प्रदान करते हैं।

'आत्मा' के इस स्वरूप को जानने की एक लम्बी प्रक्रिया है। आत्म-बोध, आत्म परिष्कार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास की लम्बी मंजिल पार करके ही आत्मा के सही स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है।

सर्वप्रथम अपने को शरीर से भिन्न होने की धारणा को पुष्ट करना पड़ता है। हम दूसरे हैं और हमारा शरीर दूसरा है। शरीर केवल उपकरण है, साधन है, साध्य नहीं। हम अपनी सारी शक्ति शरीर को ही सुख पहुँचाने में न झोंक दें। शरीर से भिन्न भी कुछ है—वही मैं हूँ। इस प्रकार का बोध हो जाने पर अपने द्वारा किये जाने वाले ओछे कार्यों को छोड़ना पड़ता है। यहीं से आत्म-परिष्कार आरम्भ होता है।

दोष-दुर्गुणों के दूर हो जाने पर उनके स्थान पर सद्गुणों—श्रेष्ठताओं का समावेश करना आवश्यक होता है। कषाय-कल्मषों से रहित होने पर शुद्ध अन्तःकरण में श्रेष्ठ-सद्गुणों की अभिवृद्धि होने लगती है। यही आत्म-निर्माण है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्ट स्तर के चिन्तन एवं कर्त्तव्य को स्थान देना आत्मज्ञान का तृतीय चरण है।

इसके उपरान्त आत्म-विकास आता है। अपने ही समान सभी प्राणियों को, जीव-जन्तुओं को समझाना ही आत्म-विकास है। **'आत्मवत् सर्व भूतेषु'** का यही आदर्श है।

किन्तु 'आत्मज्ञान' की लक्ष्य प्राप्ति इतनी सुगम नहीं होती। अनेकानेक विघ्न-बाधाएँ चुनौती बनकर साधक के समक्ष आ खड़ी होती हैं। बिना परीक्षा के तो सामान्य कार्य की दक्षता भी प्रमाणित नहीं हो पाती, तो इतने महान लक्ष्य की कौन कहे ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—यह छः दोष, छः बाधक तत्व, आत्मिक प्रगति के मार्ग में अवरोधक बनकर आड़े आ जाते हैं—

तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्न करानघ ।
काम, क्रोधौ, लोभमौहौ, मदमात्सर्य संज्ञकौ ॥

—देवी भागवत ७।३५।३

'काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—यह छः योग मार्ग के—आत्मिक उन्नति के शत्रु हैं, जो इस कार्य में विघ्न डाला करते हैं।'

आत्म-साधना के अधिकांशतः साधक इन बाधकों द्वारा विचलित कर दिये जाते हैं। काम-क्रोध की लिप्सा में फँसकर अपनी साधन-सम्पत्ति को गँवा बैठते हैं। इस स्थिति को संभालना बहुत आवश्यक होता है। आत्मलाभ की फसल की रखवाली काम-क्रोधादि पक्षियों से इन्हीं दिनों करनी पड़ती है। इन बाधक तत्वों से बच निकलना बड़े पुरुषार्थ की बात होती है। इसी स्थिति को 'साधना-समर' कहा गया है।

आत्मज्ञान की प्राप्ति सर्वोपरि उपलब्धि है। 'अपने आपको जान लेने वाला पुनः कुपथगामी नहीं होता है, फलतः दुष्कर्म जन्य दुष्परिणामों की ही तरह निर्विकार और शुद्ध हो जाता है—

'यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कामक्षये ज्ञानमपस्तदोषाम्।'

—विष्णु पुराण

'आत्मज्ञान प्राप्त होने पर मानव निर्दोष हो जाता है, तथा सभी कर्मों के क्षय हो जाने से अपने शुद्ध स्वरूप को पहचान लेता है।' इस समय व्यक्ति अपने पराये में कोई भेद नहीं देखता है, क्योंकि अपने और पराये का भेद तो संकीर्णता की स्थिति में ही रहता है। संकीर्णता से ऊपर उठने वाले को ही आत्म-लाभ हो पाता है। उस समय सम्पूर्ण संसार को ही वह अपना परिवार मानने लगता है—

'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥'

'यह हमारा है, वह दूसरे का है—ऐसा विचार क्षुद्र हृदय वाले—संकीर्ण-विचारों वाले करते हैं, उदार चेता आत्मज्ञानी तो सम्पूर्ण विश्व को ही अपना परिवार समझते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके अतिरिक्त आत्मज्ञान हो जाने पर अपने सच्चे स्वरूप को पहचान लेने पर व्यक्ति परमात्म-शक्तियों से ओत-प्रोत हो जाता है। 'आत्मज्ञान' हो जाने पर 'ब्रह्मज्ञान और ब्रह्माण्ड ज्ञान' भी हो जाता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड में तात्विक अन्तर कुछ भी नहीं है अन्तर है तो केवल स्वरूप का। इसलिए पिण्ड (आत्मा) को जानने वाला 'ब्रह्माण्ड' को भी जान लेता है—

ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति पिण्डमध्ये च ते स्थिताः।

ब्रह्माण्ड में जो गुण हैं, वे पिण्ड में भी विद्यमान हैं। 'आत्मज्ञान' के महान लाभ से लाभान्वित होना ही सर्वोपरि बुद्धिमत्ता है। उसी में जीवन की सार्थकता है।

आत्मज्ञान से ही दुःखों की निवृत्ति संभव है

संसार को दूरदर्शी दार्शनिकों ने दुःखालय की संज्ञा दी है। इस संज्ञा का आधार यही है कि मनुष्य संसार में जन्म लेकर सदा ही किसी न किसी प्रकार के दैहिक, दैविक अथवा मानसिक दुःखों से घिरा रहता है। मनुष्य का सारा परिश्रम, पुरुषार्थ एवं प्रयत्न दुःखों से बचने का ही एक उपक्रम है। किन्तु जीवन भर प्रयत्न करते रहने पर भी मनुष्य का प्रायः छुटकारा नहीं हो पाता और अन्त में वह कष्ट-क्लेशों की मानसिक अथवा शारीरिक स्थिति में ही इस संसार को छोड़ जाता है।

अनेक लोग अभावों को ही दुःख का कारण मानते हैं। संसार में एक से एक बढ़कर साधन-सम्पन्न व्यक्ति पड़े हैं किन्तु क्या वे सुखी अथवा सन्तुष्ट होते हैं? अपने विपुल साधनों के बीच भी वे तरसते-तड़पते और आह-कराह करते नजर आते हैं। जिनको अभाव का दुःख नहीं, उन्हें रोग-दोष आदि के शारीरिक दुःख से पीड़ित देखा जाता है, जिन्हें शारारिक दुःख नहीं वे काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, ताप, अनुताप, पश्चाताप, तृष्णा अथवा एष्णाओं के मानसिक दुःखों से घिरे पाये जाते हैं। ऐसे भी अनेक लोग हो सकते हैं जिनको शारीरिक, मानसिक अथवा अभावजन्य दुःख न भी हों तो वे अज्ञान के दुःख से पीड़ित पाये जा सकते हैं। यदि एक बार कोई सज्जन अथवा साधु पुरुष इन दुःखों से न भी दुःखी हों तब भी उसके आस-पास रहने वाले दुष्ट लोग अकारण ही उसके लिये अप्रिय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। कोई दुर्घटना अथवा आधि-व्याधि ही उनके दुःख का कारण बन सकती है। प्रकृति वाहित न जाने ऐसे कितने दुःख-क्लेश इस संसार में आते रहते हैं जिनसे अमीर, गरीब, साधु और खल सभी एक समान पीड़ित होते हैं और कोई दुःख न भी हो तो जन्म, जरा और मृत्यु का दुःख ही क्या कम है ?

महात्मा बुद्ध एक राजकुमार थे। उनके जीवन में अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। वे स्वस्थ, सुन्दर और सच्चरित्र भी थे, शारीरिक कष्ट का उन्हें कोई अनुभव न होता था। सावधानीपूर्वक उनकी किसी भी इच्छा की आपूर्ति की जाती थी। हर प्रकार से हर दशा में उन्हें पूर्ण प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने का सफल प्रयत्न किया जाता था। ऐसी स्थिति में मानसिक दुःख का उनके जीवन से कोई सम्बन्ध न था। उनकी पत्नी यशोधरा सुन्दर, स्वस्थ, पतिव्रता एवं प्रिया थी। उनका पुत्र राहुल मनभावन तथा प्यारा था। तात्पर्य यह कि राजकुमार सिद्धार्थ को अपनी प्रिय एवं अनुकूल परिस्थितियों में किसी प्रकार का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा आकस्मिक कोई दुःख न था। तब भी दुःख की अनुभूति से पीड़ित होकर वे अपनी प्रिय परिस्थितियों को छोड़कर संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजने के लिये साधु हो गये।

राजकुमार सिद्धार्थ केवल एक बार ही अपनी अनुकूल परिस्थितियों तथा प्रिय वातावरण से निकलकर बाहर फैले हुए संसार में आये और एक रोगी, वृद्ध तथा मुर्दे को देखकर अनुभव कर लिया कि यह संसार दुःख-दर्दों से भरा हुआ दुःखालय है। उनका यह अनुभव सत्य यथार्थ एक वास्तविक था। इसने उन्हें इतना कातर कर दिया कि आखिर वे संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजते-खोजते राजकुमार सिद्धार्थ से वैरागी बुद्ध बन गये।

वैदिक, औपनिषदक, दार्शनिक एवं धार्मिक जितना भी आध्यात्मिक और ज्ञान-विज्ञान आदि का जो भी उच्च सहित्य है, वह सब किसी न किसी रूप में उन उपायों एवं सिद्धान्तों का ही विस्तार है, जिनके द्वारा मनुष्य दुःख से निवृत्त होकर सुख की ओर अग्रसर हो सके। ऋषियों, मुनियों तथा दार्शनिकों से लेकर जो भी तपस्वी, महात्मा एवं मनीषी, चिन्तक तथा विद्वान हुए हैं उनहोंने सारा जीवन मनुष्य के दुःख दूर करने और सुख पाने के उपाय खोजने में लगा दिया है। इन पावन प्रयत्नों एवं महान जीवनों को देखते हुए यही मानना पड़ता है कि यह संसार वास्तव में दुःखालय ही है और दुःख से बचने का प्रयत्न ही मानव जीवन का उपक्रम है।

यह भी माना जा सकता है कि संसार में सुख का भी एक अंश है, जिसका प्रमाण, लोगों के हँसने-बोलने, गाने-बजाने, खेलने-कूदने तथा आनन्द मनाने से मिलता है। लोग हास-विलास तथा भोग-भाग्यपूर्ण जीवन बिताते भी दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु यह सारे सुख क्षणभंगुर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अस्थायी, परिवर्तनशील एवं दुःख के परिणाम वाले ही हैं। न तो इनमें स्थायित्व ही है और न वास्तविकता। सुखों का यह सारा आयोजन भी एक तरह से दुःख से बचने का उपक्रम मात्र ही है। संसार में सुखों की अपेक्षा दुःखों का ही बाहुल्य एवं स्थायित्व अधिक है।

संसार में दुःखों का आधिक्य है और मनुष्य को संसार में रहना ही है, तो क्या दुःखों में उलझ-उलझ कर उसे अपना बहुमूल्य जीवन नष्ट कर देना उसका अटल प्रारब्ध है ? नहीं मनुष्य का प्रारब्ध दुःख भोगना नहीं है। उसका लक्ष्य दुःखों पर विजय प्राप्त करना एक स्थायी सुख प्राप्त करना ही है। यही मनुष्य का पुरुषार्थ है और यही उसका श्रेय भी। दुःख से पूर्ण होने के कारण संसार को दुःखालय मानकर कष्ट एवं क्लेशों के बीच तड़प-तड़पकर मर जाना मनुष्य की लज्जास्पद पराजय है। मनुष्यता की शोभा इसी में है कि दुःख से छूटने और सुख प्राप्त करने के लिये अखण्ड पुरुषार्थ किया जाये। मनुष्य को चाहिये कि वह संसार को परीक्षास्थल समझे और इस दुःख सागर को संतरण कर सुख-शांति के सुहावने किनारे पर पहुँचकर अपने को श्रेय का अधिकारी बनाये।

जहाँ रोग हैं वहाँ उपचार भी, जहाँ उलझनें हैं वहाँ उपाय भी हैं। जहाँ चाह है वहाँ राह भी, जहाँ दुःख हैं वहाँ उनसे छूटने का मार्ग भी है। आवश्यकता केवल इतनी है कि मनुष्य के हृदय में सच्ची जिज्ञासा हो। वह अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान तथा अखण्ड, पुरुषार्थ एवं प्रयत्न करने का साहस रखता हो।

भारतीय मनीषियों ने परोपकारार्थ अपना पूरा जीवन तपकर दुःख निवारण के जो अमोघ उपाय खोज निकाले हैं वे बड़े ही सरल एवं सुकर हैं। उनका अवलम्बन लेकर न जाने कितने लोग इस दुःख-सागर से तरे हैं और तरते रहे हैं। उनके द्वारा खोजे हुये दुःख निवारण के उपाय सार्वभौम एवं सर्वमान्य हैं। उन आध्यात्मिक उपायों का अवलम्बन किये बिना न तो आज तक कोई दुःख से निस्तार पा सका है और न पा सकेगा। इसके विपरीत जो बुद्धिमान उन उपायों को काम में लाता है वह अवश्य ही दुःखों पर विजय पाकर सुख पाता है।

अधिकांश चिन्तकों का मत है कि मनुष्य की विषय तृष्णा ही सारे दुःखों का मूल है। यदि मनुष्य तृष्णा की मरु-मरीचिका में फँसने से अपने को बचा सके तो निश्चय ही दुःखों से उसका निस्तार हो जाये। संसार में जो कुछ देखा उसी को पाने के लिये लालायित हो उठना और पाये हुए से सन्तुष्ट न होकर अधिकाधिक पाने की इच्छा करना। इच्छा करना ही तृष्णा है जो कभी भी पूरी नहीं होती। पाये हुए में सन्तुष्ट रहकर यदि अधिकाधिक पाने की अनावश्यक पिपासा को छोड़ दिया जाये तो मनुष्य अवश्य ही अनेक शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक दुःखों से बच सकता है।

विषयों का अत्यधिक भोग और वस्तुओं में सुख की कल्पना दुःख का एक विशेष हेतु है, यह एक अनुभूत सत्य है कि विषय-भोगों की प्राप्ति अन्य दुःख रूप में सामने आती है। मनुष्य भोगों को कितना ही क्यों न भोगे तृप्ति नहीं हो सकती। शरीर शिथिल होकर नष्ट हो जाता है किन्तु भोगों की वासना ज्यों की त्यों बनी रहती है। विषयों का भोग करने में लवलीन मनुष्य समझता तो यह है कि वह विषयों का भोग कर रहा है किन्तु वास्तव में होता इसके विपरीत है, विषय भोगी को स्वयं ही भोगकर नष्ट कर देते हैं। विषय भोग की अतृप्त तृष्णा के रहते हुए मनुष्य दुःख से मुक्त हो सके यह सम्भव नहीं। भोगों को मर्यादा की सीमा तक भोग कर अतृप्त तृष्णा के रहते हुए मनुष्य दुःख से मुक्त हो सके, यह सम्भव नहीं। भोगों को मर्यादा की सीमा तक भोगकर जो मनुष्य उनमें लिप्त नहीं होता और उन्हें दुःखदायी विषय मानकर उनसे विरक्त रहता है उसे सुखी होने से कोई बाधा रोक नहीं सकती।

संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है। यहाँ तक कि शरीर भी। ऐसा जानकर जो बुद्धिमान उनके प्रति आसक्ति नहीं रखता, वह दुःख के विशेष हेतु मोहरूपी कटार से बचा रहता है। अन्यथा इनमें आसक्त व्यक्ति इनके क्षीण, क्षय अथवा नाश, वियोग से क्षण-क्षण पर दुःखी होता रहेगा। यदि यह वस्तुयें उसके देखते-देखते नष्ट न भी हों तब भी उनके नष्ट हो जाने अथवा बिछुड़ जाने की शंका सताया करती है। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर एवं क्षयमान है। ऐसी बुद्धि रखकर जो मनीषी उनसे आत्मिक सम्बन्ध न रखकर व्यावहारिक सम्बन्ध रखता हुआ अनासक्ति का आचरण करता है संसार की कोई भी हानि उसे दुःखी अथवा विचलित नहीं कर सकती है। दुःख असल में वस्तु के विनाश अथवा वियोग से नहीं होता। दुःख का कारण वास्तव में उसके प्रति मनुष्य का वह मोह होता है जिसे वह अज्ञानवश वस्तु से स्थापित कर लेता है।

महात्मा बुद्ध की खोज के अनुसार दुःखों की निवृत्ति निर्वाण में है। अपने को राग-द्वेष से मुक्त कर लेना ही निर्वाण है, जिसे थोड़े से प्रयत्न द्वारा मनुष्य जीवन-काल में ही पा सकता है। बुद्ध प्रतिपादित निर्वाण अवस्था को वैराग्य द्वारा शुद्धाचरण करते हुए, इस नाशशील संसार के चिरन्तन सत्यों में विश्वास रखने से, मनुष्य विषयों की विभीषिका और तृष्णाओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मरु-मरीचिकाओं से सुरक्षित रहकर दु:खों से निवृत्त हो सकता है।

सांख्य दर्शनकार ने आत्मा एवं अनात्मा के बीच अन्तर न समझने के अज्ञान को दु:खों का कारण बतलाया है। उनका कहना है कि मनुष्य जब अज्ञानवश अपने को शरीर मान लेता है तभी वह दु:खों का अनुभव करता है। दु:खों का अनुभव करना शरीर का धर्म है। शीत, घाम, वर्षा, भूख, प्यास, वियोग, बिछोह आदि अप्रिय परिस्थितियाँ शरीर को ही व्यापा करती हैं और वही इनका अनुभव करता है। जब मनुष्य अपनी अनुभूतियों को शरीर तक सीमित कर लेता है अथवा अपने को शरीर मान लेता है तो स्वाभाविक ही है कि शरीर का कष्ट उसे अपना कष्ट अनुभव हो।

मनुष्य वास्तव में शरीर नहीं है। वह अनादि, अनन्त, चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप आत्मा है। उसमें अज्ञान अथवा दु:खानुभूतियों का कोई विकार नहीं है। वह निर्विकार, एकरस चेतन तत्व है जिसको न तो शस्त्र काट सकता है, न पानी गीला कर सकता है, न हवा सुखा सकती है और न आग जला सकती है। वह अपनी ज्योति से स्वयं प्रकाशमान ऐसा शिव एवं शाश्वत दीपक है जिसको न तो विपरीततायें प्रभावित कर सकती हैं और न काल बुझा सकता है। आत्मा, शरीर, मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि से भिन्न अविनाशी तत्व है जो कि सदा-सर्वदा स्वयं सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहता है। उसे सुख के लिये न तो किसी वस्तु की अपेक्षा है और न किसी भोग की आवश्यकता। वह स्वयं ही आनन्दस्वरूप एवं शाश्वत है। मनुष्य ही अविचल एवं अविनाशी आत्मा है, शरीर नहीं। अब जो व्यक्ति अज्ञानवश अपने इस परमपद आत्मा से भिन्न होकर शरीर को निम्न पद पर उतार लायेगा वह उसकी विकृतियों से त्रस्त होगा ही। मनुष्य अपने को अविकल आत्मा समझे, अपने सत्यस्वरूप में विश्वास करे और शरीर को नश्वर संसार का एक अंश मानकर उसकी विकल्पनाओं को अप्रभावित रहकर दर्शन के रूप में देखे तो निश्चय ही वह दु:ख के बन्धनों से मुक्त होकर सुख का अधिकारी बन सकता है।

वेदान्त दर्शन के व्याख्याकार जगदगुरु शंकर ने दु:खों के निवारण का उपाय मोक्ष बतलाया है। मोक्ष की परिभाषा करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि—'इस सत्य ज्ञान की स्थायी अनुभूति ही मोक्षावस्था है कि आत्मा देश से परे, शरीर तथा मन, बुद्धि से विलग स्वभावत: मुक्त, नित्य एवं अविकल्पी है।' ऐसी अनुभूति का साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य का शरीर अथवा मन के विकारों में प्रभावित होना समाप्त हो जाता है।

एक अज्ञात समय से निरन्तर शरीर एवं संसार के संसर्ग में रहते-रहते मनुष्य अपने सत्य-स्वरूप आत्मा को ही नहीं भूल गया, बल्कि जगत के परम कारण परमात्मा को भी भूल गया है। संसर्गजन्य अविद्या के कारण वह परमात्मा के स्थान पर उसकी माया, इस संसार को ही सत्य समझ बैठा है जहाँ दु:ख के सिवाय उसे कुछ भी हाथ नहीं लगता।

इस प्रकार यदि मनुष्य अपने सत्य-स्वरूप आत्मा में आस्था रखकर संसार में परिव्याप्त कारणभूत परमात्मा को देखे और उसके दिये हुए पदार्थों, विषयों तथा भोगों को मर्यादापूर्वक भोगते हुए भी उनसे अप्रभावित रहने के अभ्यास के साथ जीवनयापन करे तो निश्चय ही उसके सारे बन्धन कट जायें और वह अपने जीवनकाल में ही मुक्ति, मोक्ष एवं निर्वाण की चिदानन्द स्थिति को पा सकता है।

आत्म-ज्ञान की आवश्यकता

जब तक ड्राइवर को यह ज्ञान नहीं होता कि किस मशीन के संचालन से मोटर चलेगी और किसके द्वारा वह ठहरेगी तथा किसके द्वारा उसकी गति का नियंत्रण होगा, वह कुशलतापूर्वक मोटर चला नहीं सकता और यदि उसने चलाई भी तो दुर्घटना में निज को, दूसरों को व मोटर को भी साथ ले डूबेगा। ऐसा ही हाल हमारा भी हो सकता है, जो ''अपने आप'' को पहचानते नहीं। आत्मा इस जीवन के द्वारा प्रगति की ओर उन्मुख होता है, किन्तु उसके वास्तविक स्वरूप के प्रति अनभिज्ञ होने की अवस्था में दुर्घटना का ही अंदेशा रहता है, जिसमें अमूल्य जीवन की विनष्टि के साथ आत्मा भी पतन के मार्ग पर चला जाता है और पतित आत्मा अपने कुप्रभाव से अन्य जीवों को भी अपने साथ ले डूबता है।

आत्मस्वरूप के प्रति अनभिज्ञता का एक प्रधान कारण यह भी है कि हमारे देश का बहुत बड़ा हिस्सा 'अवतारवाद' में विश्वास करता है। **'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'** के सिद्धान्तानुसार संसार को संकटों से उबारने के लिए स्वयं ईश्वर ही भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न रूप में अवतरित होते हैं। कभी राक्षसों के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए ''नरसिंह'' तो कभी ''राम'' और ''कृष्ण'' रूप लेकर उन्होंने संसार की गति को सत्पथ की ओर मोड़ा। इसके सिवाय वे लोग यह भी विश्वास रखते हैं कि वही ईश्वर सृष्टि का कर्ता भी है तथा उसकी मर्जी के बिना धरती का एक भी कण और पेड़ का एक भी पत्ता नहीं हिलता। मनोवैज्ञानिक रूप से सोचें तो इस मान्यता के पीछे साधारण जनता में आत्मविस्मृति व अकर्मण्यता का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाव फैलता गया। निज की शक्ति के प्रति अविश्वास समाता गया और यह सोचा जाने लगा कि इस विशाल विश्व में उनका अस्तित्व किसी महत्व का धारक नहीं। इस प्रकार की हीन मान्यता की भावना ने जनता में फैलने वाली सजगता व चेतनता का विनाश किया और उसे यह मानने पर मजबूर किया कि परमात्मा ही सब कुछ है; जो उनकी आत्म-शक्तियों से परे एक अलग विशिष्टतम तथा अनौखी आत्म-शक्ति है। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इस अन्धवादिता से दूर होने की और यह समझने की आवश्यकता है कि हमारा अपना अस्तित्व हमारे लिए क्या महत्व रखता है और वह किस विकास की तरफ जाने से प्रगमनशीलता के क्षेत्र में पूर्णतया प्रस्फुटित हो सकता है।

जैन दर्शन स्पष्ट कहता आया है कि जीवन का विकास किसी बाह्य शक्ति की प्रेरणा से नहीं, अपितु निज में रही हुई शक्ति को पहचान लेने से होता है। मानव स्वयं अपने जीवन का निर्माता है और उसके उत्थान-पतन का उत्तरदायित्व केवल उसी पर है। जितने भी महापुरुष होते हैं, वे कठिन विपदाओं के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर ही महानता को प्राप्त करते हैं और इसीलिए उनका आदर्श समाज के लिए अनुकरणीय व प्रेरणा प्रदायक बन जाता है। अवतारवाद में इस प्रेरणा का अभाव ही मिलेगा, क्योंकि अवतार का जीवन तो एक अभिनेता के समान होता है, जिसके जीवन में वास्तविकता कुछ नहीं, बल्कि दूसरों के लिए की गई क्रियाओं का पुंज होता है और अस्वाभाविक क्रियाओं में कभी प्रेरणा नहीं रहती। अत: यह समझना अनिवार्य है कि प्रत्येक प्राणी ही अपनी समस्याओं को उलझाता और सुलझाता है तथा उनका उचित निराकरण करते हुए आगे बढ़ जाता है, जो आगे बढ़ना उसे मुक्ति की सीमा तक ले जा सकता है। नर से नारायण की रीति जैन-दर्शन मानता है और उसी के द्वारा समाज में प्रगति के प्रति उत्साह, कर्मण्यता के भाव तथा स्वशक्ति की परिचय-प्रेरणा व्याप्त हो सकती है।

इसलिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मोटर चालक की तरह हमको यह जानना जरूरी है कि आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या है और उसका सही संचालन करने के लिए किन साधनों का प्रयोग अति आवश्यक है।

भौतिकवादियों की मान्यता के अनुसार आत्मा कोई ऐसा तत्व नहीं जो इस जीवन के साथ ही पैदा होता है और जीवन की समाप्ति के साथ विनष्ट। किन्तु केवल भौतिक द्रव्यों के सम्मिश्रण से समुत्पन्न इस देह में निवास करने वाली सूक्ष्म चेतना की झलक ही आत्म-तत्व के अस्तित्व का प्रमाण है। यह आत्म-तत्व ही नासिका, चक्षु, कर्ण आदि इन्द्रियों का संचालक तथा शरीर के प्रत्येक प्रदेश में व्याप्त होता है। वह इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म है कि चर्म-चक्षु की दृष्टि उसे नहीं देख सकती।

"मैं कौन हूँ" का रहस्य प्रतिक्षण उद्‌भूत होता रहता है। 'मेरा हाथ, मेरा काम, मेरा शरीर' ऐसी अर्न्तध्वनि का जो संचालक है वह इन्द्रियातिरिक्त है और वही चैतन्य शक्ति है। इसके साथ ही 'मेरा घर', 'मेरी पुस्तक' जिस प्रकार सम्बन्धित होने पर भी हम से अलग है, इसी तरह शरीर की पौराणिक माया भी आत्म-तत्व से पृथक् है। इसका प्रमाण यह है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का, जो नास्तिक होते हैं, अपने अनुसन्धान आदि में आत्मानुभव नहीं होता तो यह आत्मानुभव जड़ पदार्थों के संसर्ग में भले हो किन्तु उनके अस्तित्व से पृथक् एक अनुभूति होती है और उसी का नाम आत्मिक अनुभूति है। आचारांग सूत्र में कहा है—

'तक्का तत्थ न विज्जदूह'

अर्थात् तर्क से आत्मिक शक्ति की अनुभूति नहीं हो सकती। उपनिषद् में तर्क करने वालों के लिए 'नेति—नेति' शब्द का प्रयोग किया गया है। अत: आत्म-स्वरूप को समझने के लिए सच्ची जिज्ञासा वृत्ति ही आवश्यक है।

अनादि काल से आत्मा का देह के साथ सम्बन्ध है, अत: दोनों एक समान ही प्रतिभासित होते हैं, किन्तु वस्तुत: दोनों भिन्न-भिन्न हैं, क्योंकि शरीर जड़ ज्ञान रहित तथा स्वरूप को पहचानने में अयोग्य होता है। चैतन्य आत्मा के द्वारा ही आत्मा के तथा आत्मा जड़ के स्वरूप को पहचाना जा सकता है। घड़ी, मोटर, रेल चलते जरूर हैं, किन्तु वे चैतन्य की प्रेरणा से ही चलते हैं। केवल चलने से उनमें चैतन्य नहीं माना जाता, उसी प्रकार शरीर स्वयंचालित नहीं, बल्कि चैतन्य शक्ति द्वारा चलाया जाता है। किन्तु अज्ञान की प्रबलता के कारण आत्मा स्वयं अपने अस्तित्व के विषय में शंकित रहता है। इसके लिए इन प्रश्नों पर रोज चिन्तना की जाय कि 'मैं कौन हूँ ? इस 'मैं' की अनुभूति का उद्‌गम कहाँ से होता है? मेरा क्या स्वरूप है ? मेरी गति और प्रगति की दिशा क्या है ?

इस महान शक्तिशाली आत्म-तत्व को पहचानना और उस व्यापक शक्ति को पूर्ण प्रकाशित करना ही हमारे जीवन की पुनीत लक्ष्य होना चाहिये। इसी शक्ति में पूर्णत्व के चरम विकास या मुक्ति का आवास रहा हुआ है। भगवान महावीर की अमर वाणी यही सन्देश सुनाती है—

एवं भव संसारे संसरई सुहासुहेहिं कम्मेहिं ।
जीवो पमाय बहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥
उत्तराध्ययन सूत्र अ० १० गा० १५ ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् प्रमाद बहुल जीव अपने शुभाशुभ कर्मो व आत्म-स्वरूप को न पहिचानने के कारण इस प्रकार अनन्त भवचक्र में इधर से उधर पर्यटन करते हैं। अत: हे गौतम, तू समय मात्र का भी प्रमाद न कर और आत्म-स्वरूप को समझते हुए उस शक्ति को प्रकाशित करने में पराक्रम फोड़ ! उपनिषद् से भी ऐसे ही भाव झलकते हैं—

आत्मैव वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो नान्यतोऽस्ति विजानत: ।

अर्थात्—आत्मा के सम्बन्ध में श्रवण, मनन और चिन्तन करना ही हमारी जिज्ञासा का चरम बिन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहिचानना ही परमात्मपन को उपलब्ध करना है, जहाँ से संसार के बदलते हुए भावों का अवलोकन किया जा सके। आत्म-स्वरूप को न पहिचानने के कारण ही आज संसार में इतना अज्ञानान्धकार व दु:ख छाया हुआ है।

यह निश्चय है कि जब तक मनुष्य को 'मैं हूँ' की आध्यात्मिक एकता प्राप्त नहीं होगी, तब तक वह इच्छा, वासना और परस्पर विरोधी मनोविकारों का शिकार होता ही जायगा और इनका गुलाम बना ही रहेगा। मनुष्य बार-बार यह सोचता रहता है कि वह स्वयं को तो जानता है, किन्तु अन्य पदार्थों के विषय में ही सन्देह है। परन्तु बाह्य शरीर का ज्ञान आत्मा का ज्ञान नहीं है और इसीलिए आप अनुबूझ रहकर औरों को भला कैसे भली प्रकार से बुझा सकते हैं ?

जीवन में नित्य परिवर्तन होते रहते हैं और विचार एवं भावनाओं में नई क्रान्तियाँ हो जाती है, किन्तु यदि हम आत्म-तत्व को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास करेंगे तो ज्ञात होगा कि मूलत: जीवन में एक ऐसा स्थल है, जो शाश्वत, स्थिर और शान्त है और जिसे विशाल प्रभंजन, महान् भूकंप, प्रचंड ज्वालामुखी तथा इस भौतिक युग में संहारक शस्त्र और बम भी स्पर्श तक नहीं कर सकते। अशान्ति का ताण्डव नर्तन भी आत्म-शक्ति को बाधित नहीं कर सकता।

आत्म-शक्ति का अन्तर्दर्शन ही व्यक्ति विकास की कुंजी है। आत्मिक शक्ति को प्रकाशित करने का अपूर्व साधन है—आध्यात्मिक ज्ञान। आज के जड़वादी युग ने इस ज्ञान को लुप्त करने के प्रयास किये हैं, किन्तु भारतीय-संस्कृति पटल से इसे मिटाया नहीं जा सकता और जिस दिन यह पुनीत स्थिति पूर्णरूप से हमारे हृदयों से लुप्त हो जायेगी, उस दिन एक सांस्कृतिक प्रलय आयेगा, जो मानवता को क्रूर 'बर्बरता में परिणित कर देगा। अत: सच्चे विकास के लिए हमें आत्म-स्वरूप को यथार्थ अर्थ से समझ लेने के बाद आध्यात्मिक ज्ञान द्वार में प्रगति की पावन मंजिल तक आत्मा को पहुँचाना है।

आत्मा अपना विकास करने के लिए स्वतन्त्र है। उसके विकास को अवरुद्ध करने वाली दुनिया में कोई शक्ति नहीं और यह विकास भी पूर्ण विकास जहाँ उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहता। भगवान महावीर गौतम स्वामी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवती सूत्र में कहते हैं—

हे गौतम ! अस्तित्व रूप भावना और नास्तित्व रूप भावना क्रमश: अस्तित्व और नास्तित्व रूप में जिस प्रकार मेरे अन्दर परिणित हो जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे अन्दर और सम्पूर्ण लोक की आत्माओं के अन्दर परिणित होती है। उनकी, तुम्हारी और मेरी आत्मा चेतना में आत्म-शक्ति में कोई भेद नहीं है।

अत: मनुष्य को अपने स्वरूप को समझकर विवेक रखने की आवश्यकता है। संसार में रहते हुए भी आध्यात्मिक ज्ञान संसार से भागना नहीं सिखाता। वह तो मानव को अनासक्ति योग की शिक्षा देता है। आत्म-ज्ञान भी खाते-पीते व सब कुछ करते हैं, किन्तु उनमें आसक्ति का रंचमात्र भी भाव नहीं होता है और यही कारण है कि वे दुखों में घबराते नहीं और सुखों में लुब्ध नहीं होते। सम्पत्ति और विपत्ति की अनुभूति से उनका मानस परे हो जाता है।

अध्यात्म-ज्ञानी 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को केवल समझता ही नहीं, अपितु अपने जीवन में उसका पूर्ण आचरण करता है। वह समझता है कि वह जैसा व्यवहार दूसरों के प्रति करेगा, यदि वैसा ही व्यवहार उसके प्रति भी किया जाय तो उसकी अनुभूति कैसी होगी तथा उसी विचारणा के अनुसार वह अपनी सारी प्रवृत्तियाँ निर्धारित करता है।

इस प्रकार 'सोऽहम्' का स्पष्ट ज्ञान ही हमको मुक्ति के द्वार तक पहुँचा सकेगा और हमारे जीवन को तेजोमय व प्रकाशमय बना सकेगा।

आत्मज्ञान जीवन की महानतम् उपलब्धि

बाहरी दुनिया की जानकारी चाहे कितनी ही अधिक क्यों न प्राप्त कर ली जाय पर अपने सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त किये बिना वह बहुत कुछ जानना भी अधूरा रहेगा। यह ठीक है कि हमें सांसारिक वस्तुओं तथा परिस्थितियों से पाला पड़ता है और उनके सहारे प्रगति-अवनति का आधार बनता है, इसलिए दुनिया की जानकारी अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त करना आवश्यक है। यह भी ठीक है कि सम्पर्क में आने वाले और विविध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूत्रों से अपने जीवन-क्रम में जुड़े हुए व्यक्ति हमें असाधारण रूप से प्रभावित करते हैं—उनकी गतिविधियों का अपनी प्रसन्नता अप्रसन्नता के साथ सघन सम्बन्ध रहता है इसलिए उनके सम्बन्ध में ध्यान देना एवं व्यवस्था बनाना आवश्यक है। पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का सही तरह निर्वाह किया जा सके, इसलिए लोक व्यवहार की जानकारी संग्रह की जानी चाहिए।

यह दोनों ही बातें आवश्यक हैं। इसलिए उनसे सम्बन्धित जानकारियाँ बढ़ाने और परिस्थितियों के साथ सफलतापूर्वक निपटने के साधन जुटाने में निरत रहना भी आवश्यक है। सांसारिक ज्ञान की उपयोगिता सर्वमान्य है। स्कूल, कालेजों से लेकर सभा, गोष्ठियों तक विविध-विधि क्रिया-कलाप इस प्रयोजन के लिए चलते हैं। साहित्य सृजन और प्रचार तन्त्र इसी निमित्त खड़े किये जाते हैं। विचार-विनिमय, परामर्श और भावनात्मक आदान-प्रदान के लिए लेखन और वाणी के उपयोग अनेक स्तर पर होते रहते हैं। यह जानकारियाँ जितनी अधिक होंगी उतनी ही बुद्धि प्रखर होगी और प्रतिभा निखरेगी। सफलताओं की दिशा में इन्हीं साधनों के सहारे ही तो आगे बढ़ा जाता है।

इतना सब होते हुए भी यदि अपने सम्बन्ध में अभीष्ट ज्ञान प्राप्त न किया जा सका तो समझना चाहिए कि संसार में सम्बन्धित सुविस्तृत ज्ञान अपूर्ण और अपंग रह गया। अपने सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का तात्पर्य है आत्म-ज्ञान। मोटी जानकारियाँ तो अपने सम्बन्ध में सभी को होती हैं। नाम, पता, वंश, स्वास्थ्य, शिक्षा, धन, परिवार, पद आदि के सम्बन्ध में पूछने पर कोई भी व्यक्ति आसानी से अपना परिचय दे सकता है पर यह तो बहिरंग परिचय हुआ। भौतिक जानकारी रही। आत्मज्ञान का तात्पर्य इससे गहरा है। अपनी सत्ता का तात्विक स्वरूप, जीवन का लक्ष्य, अन्तः चेतना की गरिमा, इच्छा और संकल्प शक्ति का महत्व, आदतों एवं आस्थाओं की प्रतिक्रिया आदि कितनी ही जानकारियाँ ऐसी हैं जिन्हें यदि ठीक तरह हृदयंगम न किया जाय तो व्यक्तित्व का विकास सम्भव न हो सकेगा। प्रस्तुत समस्याओं का हल न निकाला जा सकेगा और कोई कहने लायक जीवन-लाभ भी उपलब्ध न किया जा सकेगा। अपूर्ण और अविकसित, विपन्न और उलझे, टूटे हुए व्यक्ति प्रायः वही होते हैं जिन्हें अपनी आन्तरिक विशेषताओं और क्षमताओं के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी से वंचित रहना पड़ा।

चुम्बक लौह कणों को खींचकर अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लेता है। मनुष्य का आन्तरिक व्यक्तित्व ऐसा अद्भुत चुम्बक है कि सजातीय परिस्थितियों एवं व्यक्तियों को अनायास ही अपने निकट जमा कर लेता है। भली या बुरी परिस्थितियाँ अनायास ही कहीं से नहीं टपक पड़तीं। मनुष्य की निज की जैसी भी स्थिति होती है उसी के अनुरूप समस्त परिकर धीरे-धीरे बनता रहता है और उनका एकत्रीकरण विशिष्ट परिस्थितियों के रूप में सामने आता है। जैसे भी कुछ हम होते हैं वस्तुतः वैसा बनने का, बनाने का पूरा-पूरा उत्तरदायित्व अपना ही रहा होता है। व्यक्तियों तथा परिस्थितियों का योगदान तो उसमें नगण्य जितना ही रहता है।

मनुष्य जिस प्रकार जिस दिशा में सोचता है—उसी प्रकार की उसकी जानकारी बढ़ती है और क्षमता विकसित होती है। सम्पर्क बनता है और साधन जुटते हैं। जो कुछ सोचा जाता रहेगा क्रमशः उसी दिशा में प्रगति होती जायेगी। प्रगति की दिशा में सोचा जाय अथवा अवगति की दिशा में, यह पूर्णतया अपने हाथ की बात है पर उस निषेधात्मक या विधेयात्मक चिन्तन के बुरे-भले प्रतिफल से बचा नहीं जा सकता है। व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है—हाँ, फल प्राप्त करने में उसे नियति का पराधीन रहना पड़ता है। अशुभ चिन्तन करते रहें और समुन्नत परिस्थितियाँ प्राप्त हो जायें, यह नहीं हो सकता। यदि हेय स्तर के विचार मन में भरे रहेंगे तो कुकर्म करने की सुविधाएँ बढ़ती चलेंगी और निकृष्ट स्तर का कर्त्तव्य दुखद, दुष्परिणामों को दल-बल सहित सामने लाकर खड़ा कर देगा। इस तथ्य को यदि ठीक तरह समझ लिया जाय तो जिस स्थिति में रहना या पहुँचना अभीष्ट हो उसी प्रकार के विचारों का संचय करने और निरन्तर मस्तिष्क में भरे रहने का सर्वप्रथम कदम उठाना पड़ेगा। चिंतन की अवगति एवं अस्त-व्यस्तता को यदि देखा-समझा न जाय उसमें सुधार परिवर्तन न किया जाय तो बाह्य क्षेत्र में भी अभीष्ट परिवर्तन सम्भव न होगा। जैसे विचार होते हैं वैसा जीवन का स्वरूप बनता है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि जैसा बनना है उसी स्तर के विचारों की मनःक्षेत्र में स्थापना की जानी चाहिए।

विचारों के आधार पर क्रिया-कलाप की दिशा बनती है। दोनों के समन्वय से अभ्यास का स्वभाव बन जाता है। मन के रुझान को स्वभाव और शरीर के अभ्यास को आदत कहते हैं। स्वभाव और आदतों का नाम ही व्यक्तित्व है। विचारणाओं की असंख्य धाराएँ इस संसार में बिखरी पड़ी हैं। वे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न स्तर की हैं। उनमें से किन्हें अपनाया और किन्हें दूर रखा जाय यह निर्णय करना आस्थाओं का काम है। मूल मान्यताएँ इन्हीं को कहते हैं। हमें क्या बनना है, क्या करना है, क्या प्रिय है—क्या हितकर है? जैसे महत्त्वपूर्ण निर्णय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्थाओं के क्षेत्र में ही किये जाते हैं। बुद्धि इन निर्णयों का सहज, समर्थन करने लगती है। उसका काम आस्थाओं के पक्ष में तर्क, प्रमाण, उदाहरण आदि एकत्रित करके कुशल वकील की तरह अपने ग्राहक का केस तैयार करना होता है। बुद्धि के निर्णय स्वतन्त्र नहीं होते, उनकी पीछे संचित आस्थाओं के साथ पूरा-पूरा पक्षपात जुड़ा रहता है। निष्पक्ष चिन्तन कर सकने वाले तत्वदर्शी विवेकवान तो कोई विरले ही होते हैं।

हमें क्या बनना है, क्या प्राप्त करना है? यह निष्कर्ष आस्थाएँ ही प्रस्तुत करती हैं। इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए पहले मस्तिष्कीय शक्तियाँ आगे आती हैं इसके बाद शरीर की हलचलें भी उसी दिशा में चल पड़ती हैं। मन स्वेच्छाचारी नहीं है और न बुद्धि में स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता है। उन्हें आस्थाओं का गुलाम बनकर रहना पड़ता है। सबको समान वस्तुएँ या समान परिस्थितियाँ प्रिय नहीं होतीं। लोगों की अभिरुचियों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है। एक को जो कुछ प्राणप्रिय लगता है वह दूसरे को फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। यह अन्तर पूर्णतया स्वनिर्मित है। भले ही हम उसे आगत या दैव प्रदत्त मानें। वस्तुत: प्रकृति प्रदत्त मूलभूत प्रवृत्ति शरीर रक्षा के मोटे प्रयोजन पूरे करने तक ही सीमित है। व्यक्तित्व को ढालने और उसे दिशा देने का काम पूरी तरह अपनी चेतना ही करती है। इस मर्मस्थल को सही रूप से समझा जा सके और उसे अवांछनीयता से हटाकर दूरगामी श्रेय साधना में लगाया जा सके तो समझना चाहिए कि आत्मज्ञान और आत्मबल की प्रखरता सिद्ध हो गई।

आमतौर से लोग बाह्य परिस्थितियों को ही प्रगति-अवगति का, सुख-दुख का कारण मानते हैं। इसलिए बाह्य साधनों को तलाशते अथवा मनुष्यों या देवताओं के अनुग्रह की याचना करते रहते हैं। असफलताएँ या कठिनाइयाँ आती हैं तो भी ये किसी कारणों को अथवा व्यक्तियों को दोषी ठहराते हैं। सस्ते छूटने के लिए बेचारे ग्रह-नक्षत्रों को, अथवा भाग्य प्रारब्ध को दोषी ठहराकर सन्तोष कर लेते हैं। घटना- क्रम गुजर चुका हो और जो हो चुका उसे बदला न जा सकता हो तो भाग्य प्रारब्ध की बात करना मन समझाने की दृष्टि से बुरा नहीं है। पर वस्तुत: वैसा कुछ होता नहीं। किसी का भी भाग्य पूर्व निश्चित नहीं है। प्रयत्नों और परिस्थितियों के आधार पर पूर्व कल्पनाओं, सम्भावनाओं, आकांक्षाओं एवं योजनाओं में जमीन आसमान जैसा अन्तर हो सकता है। अपने भाग्य का निर्माण मनुष्य स्वयं ही करता है। प्रारब्ध की बात पर जोर दिया जाय तो वह भी पूर्वकृत कर्मों का प्रतिफल ही ठहरता है। ताजी या वासी का विवाद भर ही पुरुषार्थ और प्रारब्ध का झंझट है। कल के पुरुषार्थ को आज का प्रारब्ध परिपाक मानना पड़ता है। प्रारब्ध भी तो हम स्वयं ही बनाते हैं।

प्रस्तुत परिस्थितियों से छुटकारा और अभीष्ट आकांक्षाओं का आधार निर्माण, यह दोनों का कार्य हम सरलतापूर्वक स्वयं ही सम्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए करना इतना भर पड़ेगा कि आत्म-निरीक्षण की गइराई में उतरें, अपनी आस्थाओं और अभिरुचियों को टटोलें, विचार प्रवाह की समीक्षा करें और आदतों का विश्लेषण करने में सूक्ष्म बुद्धि के सहारे जुट जायें। यह आत्म-समीक्षा जितनी ही प्रखर होगी उतनी ही सरलतापूर्वक यह समझ में आ जायेगा कि प्रस्तुत अवगति का मूलकारण अन्त:क्षेत्र में क्या-क्या हैं और उन्हें किस प्रकार बदला-सुधारा जा सकता है। अन्त: प्रदेश को सुधारने और बदलने में यदि सफलता मिल सके तो समझना चाहिए कि भविष्य में जो कुछ बनने की आकांक्षा है उसके लिए रुका हुआ मार्ग खुल गया और प्रगति की सम्भावना सुनिश्चित हो गई।

भौतिकवाद का अर्थ है, सुख साधनों को बाहर खोजना और उसके लिए साधन जुटाना। अध्यात्मवाद का तात्पर्य है, अभीष्ट प्रयोजन के लिए आन्तरिक क्षमताओं को विकसित एवं व्यवस्थित बनाना। यदि भौतिक प्रगति ही लक्ष्य हो तो भी यह आवश्यक है कि मान्यताओं, विचारणाओं एवं आदतों का तदनुरूप ढाला जाय। प्रगति की दिशा कुछ भी क्यों न हो सफलता इसी आधार पर मिलेगी। ऊपर से थोपी हुई मात्र समेटे हुए साधनों के आधार पर प्राप्त की गई सफलता न तो स्थिर रहेगी और न लाभदायक सिद्ध होगी। दूसरों के सहारे या आकस्मिक कारणों से यदि कुछ सफलता मिल भी जाय तो उससे दूरगामी प्रगति का आधार नहीं बनता और न आत्म-सन्तोष का गर्व-गौरव भरा आनन्द ही उपलब्ध होता है।

उच्च आदर्शों के अनुरूप जीवन ढालने, महामानव की भूमिका में विकसित होने एवं अध्यात्म लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम साधना, अपनी आस्थाओं–विचारणाओं और आदतों को उसी स्तर का विनिर्मित करना पड़ता है। कदाचित वैसा लक्ष्य न हो और भौतिक सफलताएँ ही प्राप्त करने तक बात सीमित रखी जानी है, तो भी सफल मनोरथ मनस्वी पुरुषार्थी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का गहन पर्यवेक्षण करते हुए हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि जो बनना हो उसके अनुरूप ढलना आवश्यक है। सफलताएँ चाहे आत्मिक हों, चाहे भौतिक उनके लिए गुण, कर्म, स्वभाव की अनुकूलता का होना अनिवार्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाह्य जगत की जानकारियाँ अधिकाधिक मात्रा में एकत्रित करते रहने में कुछ हर्ज नहीं पर उस ज्ञान के उपार्जन में भी दत्त-चित्त रहना चाहिए कि व्यक्तित्व का विकास ही सर्वतोमुखी प्रगति का केन्द्रबिन्दु है। इसलिए आत्म-ज्ञान का गहनतम अनुशीलन होना चाहिए। अवांछनीय मान्यताएँ एवं आस्थाएँ तो अन्तःस्थल में नहीं जमी बैठी हैं, इन्हें परखना चाहिए और बुद्धि को यथार्थवादी समीक्षा कर सकने योग्य बनाना चाहिए। जो इतना कर सकेगा उसके लिए यह भी सम्भव होगा कि अभीष्ट प्रयोजन के लिए आवश्यक क्षमता उत्पन्न करने के लिए मनोयोगपूर्वक जुट जायँ और जिन अयोग्यताओं एवं अभावों के कारण मार्ग अवरुद्ध पड़ा था, उस व्यवधान का सरलतापूर्वक निराकरण कर लें। व्यक्तित्व का निर्माण, सफलता की किसी दिशा में बढ़ चलने का द्वार खोलता है। यह उपलब्धि आत्म-ज्ञान के आधार पर ही प्राप्त की जाती है। इसलिए हमारी उपलब्धियों में उसे प्रथम स्थान की विभूति का स्थान दिया जाना चाहिए।

आत्म-ज्ञान का तत्व दर्शन

भारतीय दर्शन के प्रणेता ऋषियों ने मानव जीवन में जिज्ञासा के अन्यतम महत्व को जाना-पहचाना तथा प्रत्येक श्रेयार्थी को जिज्ञासु का सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करने की प्रेरणा दी—

''नान्योवरस्तुल्य एतस्य कश्चित्।''

(कठ०-१।२२)

—''सत्य की प्राप्ति में जिज्ञासा से श्रेष्ठ अन्य कोई सहायक नहीं।''

मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मैं भविष्य में भी रहूँगा या नहीं ? प्राणी दुःखी क्यों होता है ? सच्चा सुख क्या है ? इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला ज्ञान विश्वसनीय है या नहीं ? कर्मों का फल मिलता है या नहीं ? इस जन्म से पूर्व मेरा अस्तित्व था या नहीं? इत्यादि असंख्य प्रश्नों की जिज्ञासा न केवल संसार के दुःखों से पीड़ित प्राणी को ही झकझोरती है, अपितु कई बार सब प्रकार से सुखी मनुष्यों के मन में भी ये प्रश्न उथल-पुथल मचा देते हैं। यह जिज्ञासा दिव्य अग्नि के समान है जिसमें तपने पर मनुष्य का हृदय सत्य के अवतरण का पुण्य तीर्थ बन जाता है।

जिस समय मनुष्य के मन में इन विचारों का चक्र चलता है, उस समय उसे समस्त सांसारिक सुख विषवत् प्रतीत होने लगते हैं। राजमहलों के वैभव-विलास में सुकुमारता से पले राजकुमार सिद्धार्थ, महाराजा भर्तृहरि और महावीर जैसे असंख्यों की जीवन-गाथाएँ इतिहास के पृष्ठों में बिखरी पड़ी हैं। विचारों का यह झंझावात ही सच्ची जिज्ञासा है जिससे दर्शन का जन्म होता है।

जिज्ञासु के लिए दर्शन का अर्थ मात्र बौद्धिक कलाबाजियाँ खाने से नहीं है। वह कमरे के भीतर बन्द होकर कुर्सी पर बैठा हुआ अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझता। आंग्ल भाषा में दर्शन के लिए प्रयुक्त होने वाला 'फिलॉसफी' शब्द यूनानी भाषा के 'फिलो' और 'सोफिया' के मिलने से बना है, जिसका अर्थ होता है—ज्ञान का प्रेम। यहाँ ज्ञान का तात्पर्य बुद्धिकृत मीमांसा से है। तत्सम्बन्धी रुचि ही 'फिलॉसफी' है। इसके विपरीत भारतीय शब्द दर्शन का तात्पर्य 'देखने' से है जिसका अर्थ है, तत्व का साक्षात्कार करना। ज्ञान के जिस विवेचन में सत्य या तत्व को स्वयं न देखा जाय उसे 'दर्शन' कहना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है। अतः वही तत्व सत्य है, जिसके सम्बन्ध में हम यह कह सकें कि हमने उसका साक्षात्कार किया है, यह हमारे अनुभव का विषय है अर्थात् यह हमारा 'दर्शन' है।

बिना सच्ची जिज्ञासा के तत्वज्ञान की उधेड़-बुन बुद्धि का कौतूहल मात्र बनकर रह जाती है। आर्ष साहित्य में जिज्ञासा वृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण नचिकेता है। नचिकेता शब्द यथार्थ जिज्ञासु का सूचक है और यह जिज्ञासा वृत्ति मनुष्य में प्रायः मृत्यु (यम) के सन्निकट होने अर्थात् मृत्यु का भय उपस्थित होने पर जाग उठती है।

मृत्यु के नाटक को नजदीक से देखते हैं तब **'कस्त्वम् कोऽहम्'** वे प्रश्न हमें सच्चे और आवश्यक जान पड़ते हैं। नचिकेता की जिज्ञासा का उदय भी यम के सान्निध्य में ही होता है। नचिकेता (न +चिकेतस्) शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसके अन्दर जानने की इच्छा हो, परन्तु जो जानता न हो।

भगवान बुद्ध अपने उपदेशों में बहुत जोर देकर कहा करते थे कि—''मैं जिस मार्ग का पथिक हूँ, मैंने उसे स्वयं देख लिया है।'' जब तक किसी उपदेष्टा या ज्ञानी की ऐसी विश्वस्त स्थिति न हो तब तक वह मानव जीवन के लिए असंदिग्ध या महत्त्वपूर्ण तत्व का व्याख्यान नहीं कर सकता।

यास्काचार्य ने लिखा है—

ऋषिर्दर्शनात् **(निरुक्त-२।११)**

अर्थात् 'ऋषि' शब्द का अर्थ है, द्रष्टा या देखने वाला। शुष्क ऊहापोह करने वाला तार्किक भारतीय अर्थ में 'दार्शनिक' की पदवी का अधिकारी नहीं बनता। दार्शनिक बनने के लिए 'दर्शन' होना चाहिए दूसरे शब्दों में दार्शनिक में ऋषित्व का होना आवश्यक है। जो व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने आपको ज्ञान का अधिकारी कहता है, उससे पूर्व उसमें यह कहने की सामर्थ्य होना जरूरी है कि "मैंने ऐसा देखा है।" यजुर्वेद की परिभाषा के अनुसार सच्चा **'एवं मया श्रुतं'** (ऐसा मैंने सुना) नहीं, बल्कि आत्मविश्वास के साथ कहता हूँ—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।'

अर्थात् मैं उस परमसत्ता को जानता हूँ जो आदित्य के सदृश भास्वर और तम से परे है।

दर्शन का अर्थ है—'आत्मानुभव'। दूसरों के दर्शन के आधर पर सच्ची तृप्ति सम्भव नहीं है। तार्किक, प्रश्नात्मक-जिज्ञासा का अर्थ श्रद्धा का अभाव नहीं है। इसके विपरीत जिज्ञासा का अभाव अश्रद्धा है। जिज्ञास्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता से अनुभव का विषय बना लेना श्रद्धा का लक्षण है।

दार्शनिक काण्ट ने कहा है—"नीतिमय जीवन का प्रारम्भ होने के लिए विचार-क्रम में परिवर्तन तथा आचार का ग्रहण आवश्यक है।" जिज्ञासा उत्पन्न हो जाने पर यदि जीवन-क्रम में परिवर्तन नहीं होता है तो इसका अर्थ है कि व्यक्ति वास्तविकता के साथ अपना सीधा सम्बन्ध जोड़ना नहीं चाहता है।

सन्देह या प्रश्नों को परास्त करने की शक्ति ही जिज्ञासु की श्रद्धा है। सत्य को जानने के लिए मात्र प्रश्नों या तर्कों का उदय ही पर्याप्त नहीं है। गीता के अनुसार इसके लिए योगमुक्त एकनिष्ठ अभ्यास की भी आवश्यकता है—**"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।"**

'ज्ञान' का सामान्य अर्थ जानकारी है। भौतिक पदार्थों एवं परिस्थितियों की एवं प्रयोग विधियों की जानकारी में ही लोक-व्यवहार में ज्ञान कहा जाता है किन्तु आत्म-विज्ञान में उसे आत्मसत्ता की स्थिति एवं परिणिति के सम्बन्ध में आवश्यक अनुभव कराने वाली अनुभूति को 'ज्ञान' कहा गया है। इसी की उपलब्धि मानव जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। अपने सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ बनी रहने पर लोक-व्यवहार एवं पदार्थों का उपार्जन, उपयोग सभी गलत हो जाता है और सुख-सम्वर्धन के लिए किया गया पुरुषार्थ उल्टा संकट भरे जाल-जंजालों में फँसाता जाता है। शान्ति एवं प्रगति का सही मार्ग उसी को मिल सकता है जो आत्म-चेतना और लोक-व्यवस्था के मध्यवर्ती अन्तर को—जोड़ने वाली सूत्र शृंखला को भली प्रकार समझ लेता है। उसी जानकारी को शास्त्र में 'आत्म-ज्ञान' कहा गया है। यह आत्म-ज्ञान ही वह अमृत है जिसे पाने के उपरान्त और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

'छान्दोग्य उपनिषद् में एक कथा आती है, प्राचीन काल में दो पुरुष थे एक का नाम विरोचन था दूसरे का इन्द्र। दोनों के मन में यह प्रश्न उठा कि 'मैं' कौन हूँ ? शिष्य भाव से जिज्ञासु की भाँति दोनों हाथ में समिधाएँ लिए प्रजापति के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने प्रश्न किया आचार्य श्रेष्ठ हमें बताइये कि हम कौन हैं ?

प्रजापति ने उत्तर देने के पूर्व उनकी योग्यता की परीक्षा लेना उचित समझा। उन्होंने कहा थाली में पानी भर लो और उसमें अपना मुख देखो, अपने आपका साक्षात्कार कर लोगे। उत्तम वस्त्र धारण करके दोनों ने जल में अपनी आकृति देखी। विरोचन अपना सौन्दर्य देखकर प्रसन्न हो उठा और कहने लगा। मैं कितना सुन्दर हूँ। वह अपने सभी साथियों से कहने लगा, हमने 'मैं' का पता लगा लिया है। अपने शरीर को ही 'मैं' समझकर वह उसे ही पुष्ट करने एवं सँवारने में लग गया।

किन्तु इन्द्र दूरदर्शी थे। उसने सोचा यदि वस्त्र, आभूषण एवं शरीर ही मेरा स्वरूप है, तो इसका अर्थ यह है कि उनके मैले होने, जरा-जीर्ण पड़ने पर मेरी भी वैसी ही स्थिति हो जायेगी। निश्चित ही यह मेरा स्वरूप नहीं हो सकता। वह कहने लगा, **नाहमाम भोग्य पश्यामि'** अर्थात्—मैं तो उसमें कुछ भी कल्याण नहीं देखता।

इन्द्र की आशंका उचित थी। जिन आकर्षक वस्त्रों द्वारा हम शरीर को सजाते-सँवारते हैं, वह मैला होता है और फटता भी है। किन्तु 'मैं' का भाव तो सदा एक जैसा बना रहता है। सम्बोधन किये जाने वाले स्थूल अवयव का स्वरूप बदल जाता है।

बचपन में भी मैं का सम्बोधन किया जाता था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था में भी। शरीर तो परिवर्तित होता जाता था किन्तु 'मैं' सदा एक जैसा बना रहता है। स्पष्ट है नित्य परिवर्तनशील यह शरीर 'मैं' नहीं हो सकता है। 'मैं' का भाव शाश्वत्, अपरिवर्तनशील होना इस बात का प्रमाण है कि उसे कोई शाश्वत्, अविनाशी एवं परिवर्तनरहित सत्ता होनी चाहिए।

'मैं' की सत्ता का शरीर से अलग होना अन्य प्रमाणों से भी स्पष्ट हो जाता है। उँगली कटने, बीमार पड़ जाने पर सामान्यतया यह कहा जाता है कि मेरी उँगली कट गई या मेरा शरीर रोगग्रस्त हो गया। कोई भी यह नहीं कहता कि मैं कट गया। यह इस बात का परिचायक है कि मैं की सत्ता शरीर नहीं है।

उपनिषद् के इस सम्वाद, सन्देह का निष्कर्ष यह है कि आत्मसत्ता को शरीर से पृथक् और स्वतन्त्र मानकर चला जाय। अपना हित साधन, आत्म-कल्याण एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मोत्कर्ष की समस्याओं एवं उपलब्धियों के साथ जोड़ा जाय। इस स्तर का दृष्टिकोण न अपनाया जाय जैसा कि पेट और प्रजनन तक अपनी आकांक्षा तथा चेष्टा को सीमाबद्ध रखने वाले नर पशु अपनाते देखे जाते हैं। वासना और तृष्णा—लोभ और मोह के भव-बन्धन उन्हीं को बाँधते हैं जो अपने को शरीर मानकर चलते हैं और उसी के साथ जुड़े हुए परिकर के साथ बाल-क्रीड़ा करते रहते हैं। इस स्तर से ऊँचे उठकर जीवन सम्पदा का महत्व एवं सदुपयोग को समझते हुए परम लक्ष्य की दिशा में चल पड़ने की प्रेरणा आत्मज्ञान पर अवलम्बित है। इसी प्रेरणा को ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं ब्रह्मविद्या गायत्री कहते हैं।

व्यक्ति के तीन चित्र हैं—(१) लोग उसे किस रूप में समझते हैं (२) दूसरे वह किस रूप में जीता है (३) तीसरे वह किस रूप में अपने आपको प्रस्तुत करता है। तीनों चित्रों में से पहला मान्यता का, दूसरा यथार्थ का और तीसरा अयथार्थ का है।

राजा भोज की राज्यसभा जुड़ी हुई थी। बड़े-बड़े विद्वान अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। उसी समय एक भद्र सा पुरुष आभूषणों से विभूषित राज- सभा में उपस्थित हुआ। राजा भोज सिंहासन से उठे। अभिवादन किया और सम्मान दे ऊँचे आसन पर बिठाया। उसी समय एक दूसरा व्यक्ति फटे-पुराने, कपड़े पहिने हुए सभा में आया। राजा में उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वह एक किनारे पर बैठ गया।

विद्वानों के वक्तव्य हुए, चर्चा-परिचर्चा चलने लगी। फटे कपड़े पहने हुआ व्यक्ति प्रभावशाली वक्ता एवं विद्वान था। सभा विसर्जन होने पर राजा स्वयं उसके साथ दरवाजे तक विदा करने के लिए गया और उसे विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से सम्मानित किया। जाते समय जो व्यक्ति वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आया था उसकी ओर राजा ने ध्यान तक नहीं दिया।

इतने में एक विदूषक घूँघट लगाये रूपसी जैसे आवरण पहनकर दरबार में दाखिल हुआ और फरियाद सुनने की प्रार्थना करने लगा। आरम्भ में सभी का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ, पर पीछे जब वास्तविकता का पता चला तो सभी दरबारी उस छद्म पर ठहाका भरकर हँस पड़े और बहरूपिये को कुछ दे दिला-कर भगा दिया।

उपस्थित विद्वानों ने तीन प्रकार के लोगों के प्रति तीन तरह का व्यवहार करने और आरम्भ में प्रदर्शित किये रुख को बदल देने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—प्रथम व्यवहार में प्रारम्भिक परिचय, दूसरे में यथार्थ निरूपण और तीसरे में भ्रम निवारण के तथ्यों ने काम किया और प्रारम्भिक मान्यता को बदल दिया।

पूर्णत्व की प्राप्ति का एक ही राजपथ

सीढ़ियाँ चढ़नी हों, तो एक के बाद एक कदम बढ़ाना पड़ता है और एक-एक सीढ़ी पार करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। कोई यदि छलाँग लगाकर शीर्ष पर पहुँचना चाहे, तो दुर्घटना घटे बिना नहीं रह सकती। यही बात आत्मोत्थान के संदर्भ में भी है। मनुष्य जिस परिवार में, समाज में, राष्ट्र और युग में जीता है, वह उसके लिए आगे बढ़ने-ऊँचा उठने के एक-एक सोपान के समान है। इनसे होकर ही आगे बढ़ना पड़ता है। प्रगति-क्रम में इनकी उपेक्षा करते हुए कोई यह सोचे कि वह कोई बजरंगी छलाँग मारकर चरम लक्ष्य तक पहुँच जायेगा, तो इसे उसकी प्रवंचना और अध्यात्म विज्ञान की अवमानना ही समझना चाहिए।

बालक जब छोटा होता है, तो पहले अक्षर ज्ञान कराना पड़ता है, तभी वह उस स्थिति में पहुँच पाता है कि पुस्तकें पढ़ सके। फिर जैसे-जैसे उसकी योग्यता बढ़ती जाती है, वैसे-ही-वैसे एक-एक कक्षा ऊपर उठते हुए वह स्कूल से कॉलेज में पहुँचता और स्नातक एवं स्नातकोत्तर की डिग्रियाँ प्राप्त करता है। यह प्रगति का स्वाभाविक क्रम है। भौतिक सफलता से लेकर आत्मोन्नति तक में इसी सिद्धान्त का अनुसरण करना पड़ता है, तभी वह पद प्राप्त होता है, जिस पर गर्व-गौरव अनुभव किया जा सके। हाथ पर सरसों जमाने जैसी जल्दबाजी तो बाजीगरी में ही देखी जाती है, इसलिए तुर्त-फुर्त का प्रतिफल वहाँ तत्क्षण में समाप्त हो जाता है। अध्यात्म न तो बाजीगरी है और न ऐसा कुछ, जिसमें सुनिश्चित कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हुए कुछ कहने लायक उपलब्धि की आशा की जा सके। इसमें तो परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के निर्धारित मार्ग से होकर गुजरना पड़ता है, और स्वयं को उन कसौटियों में खरा सिद्ध करना पड़ता है, जिसे साधना विज्ञान में आवश्यक अनुबन्ध के रूप में स्वीकारा गया है। संसारी व्यक्तियों के लिए यह दुनिया ही साधना-भूमि है। इससे बढ़कर अनुकूल स्थान साधना के लिए कोई दूसरा हो नहीं सकता। इस साधना स्थल में उसे उपासना के प्रथम चरण के रूप में पहले परिवार की प्रारम्भिक भूमिका से होकर गुजरना पड़ता है। इसके पूरा होने के उपरान्त उसे दूसरी भूमिका-समाज-साधना में प्रवेश करना पड़ता है। इसके पश्चात् राष्ट्र-साधना की तीसरी अवस्था में अवस्थान करना होता है। अन्तिम भूमिका विश्व-साधना की है, जिसे ठीक-ठीक ढंग से पूरा कर लेने के बाद व्यक्ति की अवस्था योग-सिद्ध योगी स्तर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाती है। इस दशा में वह योग साधना की वह सारी विभूतियाँ हस्तगत कर सकता है, जिसका अधिकारी एक यती है। जो संसार छोड़ने और वैरागी बनने की बात करते हैं, तो उनका वैराग्य भी समाज के बिना अधूरा है। भला साधन-सुविधाहीन वन में वैराग्य की परीक्षा किस भाँति हो सकेगी ? यदि कोई ऐसी अभावग्रस्त स्थिति में रह भी रहा हो, तो इसे उसकी मजबूरी कहना चाहिए, वैराग्य नहीं। जो जीवन भर सरोवर में कभी उतरा नहीं, वह बढ़-चढ़कर जल में नहीं डूबने का दंभ करे, तो इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है ? डूबने, नहीं डूबने की परख तो उसके पानी में प्रवेश करने के बाद ही हो सकती है, बाहर रहकर नहीं। जो दुनिया में रहकर भी निर्लिप्त बना रहता है, वास्तविक वैरागी वही है और जिसने यह अवस्था प्राप्त कर ली, उसके लिए कंदरा और वन का एकांत सब कुछ दिखावा है। इस आडंबर में वही पड़ते, जिन्हें बड़प्पन की, मान-सम्मान की चाह होती है, अन्यथा जो सही-सही योग साधना चाहते हैं, उनके लिए समाज से बढ़कर कोई दूसरी उपयुक्त योगस्थली नहीं।

महाकवि गेटे ने अपने नाटक 'फास्ट' में एक ऐसे चरित्रनायक का वर्णन किया है, जो आत्मज्ञान-संग्रह का अभिलाषी है। संसार में रहकर ही वह इसे प्राप्त करना चाहता था, पर कुछ समय पश्चात् उसे ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे इस ज्ञान-संपादन में दुनिया सबसे बड़ी बाधा है। वह इसे छोड़ समाज से बहुत दूर कहीं एकांत वन-प्रांत में चला जाता और तपस्या करने लगता है, पर यहाँ भी उसकी एकाग्रता सध नहीं पायी। अभावजन्य पीड़ा और कुटुंबियों की याद उसे सताती रही। थक-हारकर वह पुनः समाज में आ जाता है, किंतु अब तक उसकी अधिकांश आयु चुक चुकी थी। वह हताश हो जाता है। उसे संतोष था, तो मात्र इतना ही कि जीवन के अंतिम समय में उसे उस सत्य का बोध हो गया, जिसके न होने के कारण ही वह अब तक संसार के अंदर और बाहर वनों में भटकता रहा।

कुछ ऐसा ही निष्कर्ष भारतीय पृष्ठभूमि पर आधरित उपन्यास ''विराट्'' में आस्ट्रियाई उपन्यासकार स्टीफन ज्वीग ने प्रस्तुत किया है। नायक विराट् निष्कर्म योग का पक्षधर है। वह अपने अनुयायियों समेत समाज से दूर चला जाता है, फिर भी अनुभव करता है कि पूर्ण निष्कर्म नहीं हो सका। वह वहाँ से और घने जंगल में आ जाता है। यहाँ भी वह बिल्कुल निष्कर्म नहीं हो पाता। यह अहसास होते ही विराट् पुनः समाज में आकर निष्कर्म अवस्था त्यागकर कर्ममय जीवन अपना लेता है।

समाज में रहते हुए, कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए ऐसा लग सकता है कि सांसारिक उलझनों में पड़कर व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटक जायेगा। शायद इसीलिए इनसे बचने के लिए वह दूर चला जाता है, सोचता है कदाचित् इससे लक्ष्य-प्राप्ति में शीघ्रता होगी, पर सच्चाई यह है कि अपने ढंग से वह जितनी जल्दबाजी करता है, ध्येय से उतना ही दूर हटता जाता है, विलंब उतना ही ज्यादा होता जाता है, क्योंकि दायित्वों की उपेक्षा द्वारा आत्मलाभ कराने वाला कोई मार्ग दुनिया में है नहीं। जो रास्ता निर्धारित है, वह मध्यम मार्ग का राजपथ ही हो सकता है, जिसमें आवश्यक कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। यहाँ एकदम भौतिकवादी बन जाने में भी हानि है और पलायनवादी बनने में भी घाटा है। नफा तो, अतिवाद तो त्यागकर ही उठाया जा सकता है। सांसारिकता में आकंठ डूब जाना जीवन का एक सिरा है, तो वैरागी बनकर संसार त्यागना इसका दूसरा छोर। जीवन में इन दोनों का समन्वय करके चलने से ही कुछ कहने लायक सफलता अर्जित की जा सकती है। वस्तु का ग्रहण और विसर्जन, बंधन और वैराग्य-यह दोनों ही आवश्यक हैं। किसी एक को छोड़कर और दूसरे को अपनाकर सत्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती, वरन् इनका सम्मिलित स्वरूप ही पूर्णता तक ले जाने में सफल हो सकता है। शंकर त्याग की और अन्नपूर्णा भोगी की प्रतिमूर्ति है, दोनों मिलकर जब परिवार में, समाज में, राष्ट्र व विश्व में एक हो जाते हैं, तो पूर्णता का वास्तविक आनन्द-लाभ मिलता है, अन्यथा जहाँ कहीं भी बंधन और मुक्ति में, भोग एवं त्याग में, अनुराग व विराग में वैर-विरोध हुआ, वहीं नाना प्रकार के अशांति और असंतोष पैदा होने लगते हैं। इन दिनों के भटकाव का एकमात्र कारण इस संसार-व्यूह को भलीभाँति न समझ पाना ही है। इस व्यूह में हमें प्रवेश करना भी आना चाहिए और उससे बाहर निकलना भी। केवल प्रवेश करना आता हो और बाहर निकलने की कला नहीं मालूम हो, तो उसी में उलझकर हमारी मौत हो जायेगी। निस्संदेह इसमें भी हम वीरता दिखा सकते हैं, किन्तु इसे तो विजय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हमारी मंजिल जीत अर्जित करना है, बहादुरीपूर्वक मर जाना नहीं। यह वीरोचित मरण युद्ध का एक अच्छा पहलू हो सकता है, किन्तु है अधूरा। दूसरी ओर जो इस चक्रव्यूह में अन्दर जाने से डरते हैं, उन कायरों के लिए वीरगति नहीं है। इस तरह यह दोनों प्रकार के लोग अपूर्ण हैं। अपूर्णता से संपूर्णता की प्राप्ति भला कैसे हो सकती है ? यह तो तभी सम्भव है, जब निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति, शिव के साथ शक्ति और सत्य के साथ सुन्दर भी हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस दिशा में गड़बड़ी तब पैदा होती है, जब जीवन के किसी एक पक्ष को पूर्ण मान लिया जाता है और उसी एक क्रियाविधि को पूरा करने में सारा जीवन खपा दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति स्वयं को राज्य रक्षा का उपकरण मान बैठा हो, तो वह अपने को सैनिक बना लेगा। यदि किसी को सामाजिक समृद्धि का आधार माना गया है, तो हम उसे वणिक बनाने की चेष्टा करेंगे। किसी के जिम्मे शासन-संचालन का भार है, तो वह राजनेता से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता। कोई नाट्यकार, रंगकर्मी और अभिनेता है, तो अपना श्रेय-सौभाग्य वह स्वयं को विदूषक बनाने में ही मानता रहेगा और उसी के गिर्द जीवन भर उसके क्रिया-कलाप चलेंगे, पर मनुष्य इतना ही है, सो बात नहीं। यथार्थ तो यह है कि मनुष्य न तो केवल सैनिक है, न व्यापारी है, न नेता, न अभिनेता है। यह तो उसके गुण, अभिरुचि, स्वभाव, संस्कार के हिसाब से विकसित हुआ व्यक्तित्व का एक हिस्सा है। उसका वास्तविक आपा इन्हें नहीं कहा जा सकता। मूलतः वह ब्रह्म का प्रकाश है। प्रकाश की पूर्णता उद्गम में मिलकर ही हो सकती है, पृथक् रहने में नहीं। संसारी लोगों की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वह व्यक्तित्व के इन अंगोपांगों को ही सब कुछ मान बैठते और समस्त ध्यान इन्हीं को निखारने, उभारने, सुधारने, सँवारने में लगा देते हैं, जबकि मूल प्रयोजन अछूता बना रहता है। व्यक्तित्व की प्रखरता भौतिक सफलता के लिए आवश्यक तो है, पर साथ ही इस बात पर भी विचार करते रहना चाहिए कि लौकिक समृद्धि के साथ आत्मिक प्रगति कितनी हुई ? हुई या नहीं ? समय-समय पर ऐसी समीक्षा के द्वारा ही इस प्रवृत्ति मार्ग में निवृत्ति मार्ग जैसी भावभूमि और अंतःकरण विकसित किये जा सकते हैं। इस दिशा में जितनी और जैसी गति होगी उसी हिसाब से मनुष्य लक्ष्य के करीब पहुँचता जायेगा।

इस प्रकार का समन्वयात्मक मार्ग वर्तमान समय की ही अनिवार्यता है, सो बात नहीं। प्राचीनकाल में भी इसकी आवश्यकता अनुभव की गई थी। उपनिषदों में यत्र-तत्र इस बात की झलक-झाँकी मिल जाती है—

ईशोपनिषद् में स्पष्ट उल्लेख है—

अंधं तमः प्रविशंति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रतः।।

अर्थात्—जो केवल अविद्या अर्थात् संसार की ही उपासना करते हैं, वे अंध तमस् में प्रवेश करते हैं और उससे भी अधिक अंधकार में वे प्रवेश करते हैं, जो केवल ब्रह्मचर्चा में निरत रहते हैं। अन्यत्र कहा गया है—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वाविद्ययामृतमश्नुते ।।

अर्थात्—विद्या और अविद्या दोनों को ही जो एकत्र करके जानते हैं, वे अविद्या के द्वारा मृत्यु से उत्तीर्ण होकर विद्या द्वारा अमृत को प्राप्त करते हैं।

श्रुति कहती है—"**एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।**" हे नर ! कर्म करो। कर्म में लिप्त न होना पड़े, ऐसा कोई पथ इस संसार में नहीं।

स्पष्ट है, प्राचीन समय में कर्म करते हुए, समाज और संसार में रहते हुए ही ईश्वर-प्राप्ति का सर्वसम्मत मार्ग निर्धारित था, पर साथ ही इस बात की भी कड़ी चेतावनी थी कि संसार को साध्य न मान लिया जाय। साध्य तक पहुँचने का यह साधन मात्र है। इसका उपयोग और उपभोग तो हो, पर लक्ष्य प्राप्ति के निमित्त। ऐसा आज भी संभव है। यदि ऋषि निर्दिष्ट "**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा**" के आदर्श को अपनाया और जीवन में उतारा जा सके, तो इन दिनों की विषमताजन्य विष-व्रण को न सिर्फ मिटाया जा सकना सम्भव है, वरन् स्थिर शांति और सुव्यवस्था को भी प्रतिष्ठापित करना शक्य है।

ऋषियों ने इस भूमा के सुर में ही समाज को कभी बाँधने की चेष्टा की थी। समाज को इन मर्यादाओं में बाँधकर फिर मनुष्य को ब्रह्म-उपलब्धि कराने का प्रयास किया था। शरीर को अधम बताकर उसे पीड़ा देना नहीं चाहा, समाज को कलुषित कहकर उसका परित्याग करना नहीं चाहा, जीवन को अनित्य घोषित करके उसकी अवज्ञा करना नहीं सिखाया। उसने सब कुछ को ही ब्रह्म के द्वारा अखण्ड-परिपूर्ण करना चाहा था। इसके लिए चार आश्रमों की विशिष्ट व्यवस्था थी। प्रथमावस्था में गलाई और ढलाई की क्रिया सम्पन्न होती, ताकि उसमें भावी व्यक्तित्व की मजबूत इमारत खड़ी की जा सके। श्रद्धा, संयम, शिक्षा और ब्रह्मचर्य के द्वारा इसका संपादन होता। द्वितीय चरण में गृहस्थ की जिम्मेदारियों को निबाहते हुए परिवार और समाज की सुव्यवस्था में योगदान करना पड़ता। इसी में अग्रिम भूमिका की पृष्ठभूमि विनिर्मित होने लगती है। तृतीय चरण अर्थात् वानप्रस्थ में द्वितीय भूमिका का ही विराट् विस्तार हो जाता और जो कर्त्तव्य पहले घर-परिवार तक सीमित थे, वह अपरिमित बनकर कार्यक्षेत्र पूरी पृथ्वी हो जाता। इसी अवस्था में "**वसुधैव कुटुम्बकम्**" की भावना विकसित होती और व्यक्ति समस्त संसार को अपना वृहत्तर परिवार और यहाँ के निवासियों को भगवान की साकार प्रतिमा मानकर उनकी सेवा करता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार विराट् ब्रह्म की सेवा करते-करते वह 'जीवन मुक्ति' की चतुर्थ और अंतिम अवस्था संन्यास में अवस्थान करता।

पूर्णता प्राप्ति के यहाँ चार क्रमिक सोपान थे, पर अब जबकि समाज और संसार के साथ-साथ संपूर्ण नियम, मर्यादाओं की ही अवहेलना करने पर मनुष्य उतारू हो गया है, तो देखना यह है कि उसकी मुक्ति किस हद तक कितनी जल्दी हो सकेगी। आज सात्विकता के सुनिश्चित राजमार्ग को हम भूल चुके हैं। राजसिकता का ऐश्वर्य भी हमारे लिए दुर्लभ हो गया है। अभी तो हम केवल तामसिकता के छीना-झपटी वाले पतनोन्मुख पथ पर बढ़ते चले जा रहे हैं। ऐसे में हमारे प्राचीन आदर्श मात्र कहने भर के सिद्धान्त बनकर रह गये हैं। सरोवर की पूर्णता किसी समय चाहे कितनी ही सुगम्भीर क्यों न रही हो, शुष्क अवस्था में उसकी रिक्तता का गड्ढा भी उतना ही बड़ा कहलायेगा। हमारी स्थिति भी संप्रति लगभग ऐसी ही है। इन दिनों मैत्रेयी की तरह **''येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ?''**—''जब इनसे हमारी सद्गति नहीं हो सकती, तो इन्हें लेकर मैं क्या करूँगी ?'' कहने और करने वाले दुनिया में कुछ गिने-चुने लोग ही दिखाई पड़ते हैं। अधिकांश तो **''ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत''** वाला निम्न आदर्श ही चरितार्थ करते देखे जाते हैं। यह स्थिति तब तक बनी ही रहेगी, जब तक हम पूर्णता को संसार के बाहर के वैराग्य एवं वस्तुओं में तलाशते रहेंगे। मुक्ति कहीं बाहर नहीं, वरन् वह अपने ही अन्दर की एक विशेष अवस्था है। इसको समाज में रहते हुए ही विकसित करना पड़ता है, तभी जीते जी उस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, जिसे स्वर्ग, सद्गति, शांति कहकर पुकारा गया है।

समर्थ सत्ता को देखें, सुनें, प्राप्त करें

न्यूरोसाइक्रेटिक संस्थान कैलीफोर्निया के डाइरेक्टर प्रो० क्रेग को नियेशन नाम की एक ऐसी महिला की जानकारी मिली, जिसके बारे में यह कहा जाता था कि वह किसी भी अज्ञात व्यक्ति की कोई भी वस्तु स्पर्श करके उसके सम्बन्ध में गोपनीय से गोपनीय बातें बता देती है न केवल अतीत अपितु वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी उनके उद्घोष सर्वथा सत्य पाये गये। विज्ञान ने दूर से दूर स्थान से शीघ्रतम सन्देश के टेलीफोन, बेतार के तार माइक्रोवेव यन्त्र बनाये तो हैं, ऐसे यन्त्र भी बने हैं, जो ऋतु और उसमें परिवर्तनों की कुछ भविष्यवाणी भी कर सकते हैं। किन्तु संसार के अरबों व्यक्तियों में से किसी भी एक व्यक्ति के अज्ञात, विश्वसनीय और गोपनीय भूत व भविष्य का सत्य उल्लेख विज्ञान के लिये एक चुनौती है इसका अर्थ तो स्पष्टत: आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त के उस तत्व की खोज होनी है जिसके बारे में उन्होंने यह कहा था, कि यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति से भी अधिक वेग ले सकती हो तो उसे अपने स्थान से चलकर ब्रह्माण्ड की परिक्रमा लगा आने में ऋण-समय लगेगा अर्थात् यदि वह अपने स्थान से २१ नवम्बर, १९९५ को चलती है तो ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाकर वह २० नवम्बर, १९९५ को ही उसी स्थान पर आ जायेगी। यह स्पष्टत: आत्मा या परमात्मा की ही विशेषता हो सकती है अतएव प्रो० क्रेग ने घटना की विस्तृत शोध का निश्चय किया।

उन्होंने श्रीमती नियेशन को एक बन्द कमरे में रखा और एक उनके सर्वथा अजनबी व्यक्ति की एक वस्तु दी। उस वस्तु को हाथ में लेते ही उन्होंने उस व्यक्ति का न केवल नाक-नक्शा अपितु उसके पूर्व जीवन की अनेक घटनाएँ यों कह सुनाईं, मानो वे चलचित्र में सब देख रही हैं। कु० एडम नामक एक अन्य लड़की की अतीन्द्रिय क्षमता के बारे में भी प्रो० क्रेग ने लिखा है कि वह सूँघकर टेलीफोन पकड़कर दूरवर्ती वस्तुओं को ऐसे बता देती थी मानो वह सामने पड़ी पुस्तक पढ़ रही हो।

इन घटनाओं का उल्लेख करने के बाद प्रो० क्रेग ने लिखा—परामनोविज्ञान ने (१) दूरानुभूति (२) क्लेसर वापेन्स (३) दूरदृष्टि (४) विचार संचालन (टेलेपैथी) सम्बन्धी अन्य घटनाओं की प्रामाणिक खोजें की हैं उनसे मनुष्य की विलक्षण अतीन्द्रिय क्षमता का पता चलता है कि घटनाओं को इनमें से किसी भी कोटि में नहीं रखा जा सकता। यदि कोई ऐसी शक्ति जो भूत, भविष्य को एक ही बिन्दु पर देख सकती हो वह शक्ति आत्मा की या परमसत्ता ही हो सकती है विज्ञान उसे झुठला नहीं सकता।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० फर्नीनिड वान न्यूट्राइटर को उनके एक सहयोगी ने बताया कि ल्यूथिनियन लड़का किसी भी भाषा का कितना ही बड़ा वाक्य गद्य अथवा पद्य आप कहें, बच्चा उसी भाषा में अर्द्ध विराम, पूर्ण विराम सहित दोहरा देता है, यही नहीं आप बोलना प्रारम्भ करें तो वह स्वयं भी वही शब्द, उसी मोड़ और लचक के साथ इस तरह शब्द से शब्द मिलाकर, बोलता चला जाता है मानो उसे स्वयं ही वह पाठ कंठस्थ हो। प्रो० फर्नीनिंड ने कहा—सम्भव है वह होठों की हरकत से उच्चारण पहचानने में सिद्धहस्त हो सो उन्होंने स्वयं जाँच करने का निश्चय किया। उन्होंने उस बच्चे को एक कमरे में और दूसरे व्यक्ति को दूसरे कमरे में बैठाकर उसे कई भाषायें बदल-बदल कर लगातार बोलने को कहा दोनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमरों से माइक एक सामने के कमरे में लाकर रक्खे गये जिसमें डा० फर्नीनिंड स्वयं बैठे, प्रयोग प्रारम्भ हुआ तो वस्तुत: आश्चर्यचकित रह गये कि लड़का एक दो भाषाओं का तो ज्ञाता हो सकता है पर वह तो किसी को भी लाकर खड़ा करने से उसकी की भाषा दोहरा देता था इसका अर्थ यह हुआ कि बिना पढ़े हर विद्या में निष्णात होना। ऐसा किसी भी पार्थिव या भौतिक सिद्धान्त से सम्भव नहीं। उन्होंने माना कि स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्तियाँ और क्षमतायें अधिक अलौकिक हैं जो भौतिकी, बायोलॉजी सबसे परे। इन साक्षियों में तो उस तत्व का मृत्यु के उपरान्त भी जीवित बने रहना सम्भव है क्योंकि किसी भी भूत की जानकारी का अर्थ ज्ञाता की उपस्थिति अनविार्य है। अभी तक इन बातों को इमेजिनरी (काल्पनिक) मानता था किन्तु अब उनकी वास्तविकता पर कतई सन्देह नहीं रहा।

जीवशास्त्री कैरिंग्टन ने लिखा है जब तक मैं इस घटना से दूर था तब तक धर्म और अध्यात्म के प्रति मेरी मान्यतायें बड़ी निर्जीव और निर्बल थीं किन्तु (उक्त घटना का उल्लेख) जब मैं अपनी प्रयोगशाला से लौट रहा था, मुझे एकाएक सामने से आता हुआ मेरा मित्र इलियट दिखाई दिया, मैं सहमा, आँखें मलीं कि कहीं भ्रम तो नहीं हो रहा। इलियट की मृत्यु हुये ३ माह हो चुके थे मैं उसकी शव यात्रा में स्वयं रहा हूँ और इन्हीं आँखों से दफन होता देखा है कि फिर इलियट यहाँ, वैज्ञानिक के नाते मैं भ्रम पर ही विश्वास कर रहा था मुझे डर नहीं थातभी क्षीण से आवाज सुनाई दी—''मित्र ! मेरी पत्नी आर्थिक तंगी का जीवन जी रही है। मैंने उसके लिए एक लाख डालर जोड़कर अमुक तहखाने में रखे हैं, जिसकी चाबी गुप्त रूप से अमुक स्थान पर छिपी है वह आप उसे चुपचाप बता दें आप से अधिक विश्वासपात्र कोई और नहीं इसीलिए यह बात आप तक पहुँचा रहा हूँ।'' इन्हीं शब्दों के साथ ऐसा लगा जैसे पानी में पड़ने वाला नंगा प्रतिबिम्ब लहर आ जाने से हौले-हौले ओझल हो रहा हो, मैंने उस सूक्ष्म अस्तित्व को अनुभव किया, सुना, स्पर्श किया और वह मेरे सामने ही घुल गया (मेल्टेड) इसे भ्रम (इलूजन) भी मान लेता पर उन कही हुई बातों की सत्यता पर अविश्वास करुँ, तो अपने आपसे धोखा होगा। लगता है इससे प्राणिशास्त्र में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। पदार्थ का शक्ति और शक्ति का पदार्थ में इच्छाभूत परिवर्तन व पंजीकरण की इस घटना से तो यही लगता है कि अतीन्द्रिय तत्व बहुत अधिक समर्थ है। इससे मरणोत्तर जीवन तो प्रमाणित होता ही है। नैतिकता का धर्म सम्मत सिद्धान्त पुष्ट होता है। आज भौतिकता की बाढ़ आ गई है। उसने नैतिकता को मानवीय दुर्बलता माना है, पर अब यह लगता है कि मनुष्य की मनुष्यता नीति, सदाचार और उसकी परमार्थ-परायणता आदि शाश्वत महत्व रखते हैं। इनको व्यावहारिक और सामयिक लाभ समाज की सुख, शान्ति और व्यवस्था के रूप में गौण है। पारलौकिक जीवन में उनका मूल्य और महत्व और अधिक सिद्ध होता है।

कैपटाउन में एक बिल्डिंग इन्जीनियर वानवान्डे के बारे में कहा जाता है कि समय उनकी इच्छा से चलता है, ज्ञात नहीं रहस्य क्या है किन्तु वे सोने जा रहे हों और आप कहें महोदय आप ८ बजे सो रहे हैं पर जगिये आप ठीक बारह बजे सातृ मिनट उनसठ सैकिण्ड पर और आप घड़ी लेकर बैठ जाइये क्या मजाल कि उनकी नींद एक भी सैकिण्ड आगे पीछे टूटे। परीक्षण के लिए उन्हें कई दिनों तक किसी से न तो मिलने दिया गया, उनकी घड़ी भी छीन ली गई। एक टूटी घड़ी रखकर उसकी चाबी घुमाकर ८ बजे का समय लगा दिया गया और प्रात:काल ८ बजे सोने को कहा गया और सांयकाल ८ बजे जगने का आग्रह किया गया और तब भी जब उनकी नींद टूटी तो लोग आश्चर्यचकित रह गये कि ठीक ८ ही बजे थे।

बिना किसी संकेत और वह भी सुषुप्त अवस्था में समय का ज्ञान इस बात का प्रमाण है कि उस स्थिति में भी घटनाएँ चलती रहती हैं क्योंकि समय कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं वह घटनाओं का सापेक्ष माप मात्र है।

डॉ० केमिले फ्लेमेरियन लिखते हैं बिना इन्द्रिय सहयोग दूर से कार्य करने की क्षमता से ओत-प्रोत होना आश्चर्यजनक बात है। यह नहीं छिपाना चाहिये कि उपरोक्त प्रकार की घटनायें अज्ञात लोक में प्रवेश करती हैं, इस सन्दर्भ में और विस्तृत जानकारियों की अपेक्षा है ताकि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं उसकी अलौकिक क्षमताओं की ओर भी अधिक सार्थक जानकारियाँ उपलब्ध हो सकें।

श्रद्धा और विश्वास के द्वारा आत्मा और परमात्मा की अनुभूति किन्हीं संस्कारवान् आत्माओं को पूर्व जन्मों में की गई साधनाओं के पुण्य स्वरूप हो सकती है किन्तु सर्वसाधारण उसका लाभ नहीं ले सकता इसलिये भारतीय तत्वदर्शियों ने उस क्रिया विज्ञान की खोज की जिसे ''योग साधना'' कहते हैं। भले ही आत्म-सत्ता अशरीरी, अतीन्द्रिय, चैतन्य मन से भी परे हो पर अन्तत: वह अपने भौतिक शरीर में भी तो निवास करती है। दूर के देव-दर्शन दुर्लभ हो सकते हैं किन्तु अपने ही भीतर बैठे अधिदेव की प्राप्ति असम्भव कैसे हो सकती है ? ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, प्राणायाम, मनोलय आदि यौगिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रियाओं से क्रमशः शरीर की चंचलता पर विजय, मन की एकाग्रता, प्राणों पर नियन्त्रण करते हुये अपना अहंकार उसी तत्व में घुल जाता है और ''तत्वमसि'' अर्थात् जो तत्व वह है वही ''मैं हूँ'' के रूप में विकसित हो जाता है।

भौतिकीय चेतना से परे चेतना के अस्तित्व को इन वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है और माना है कि वह सर्वसमर्थ सत्ता है। दूरदर्शन, दूर अनुभूति, विचार संचालन जैसी सामर्थ्य उसके नन्हें-नन्हें खेल हैं। वह इन सबसे भी अधिक अति समर्थ एवं सर्वव्यापी चेतना है। उसे देखें, सुनें और उसी को प्राप्त कर अपनी क्षुद्रता मिटायें यही मनुष्य जीवन का ध्येय है उसे प्राप्त करने में ही उसकी सार्थकता है।

आत्मा में परमात्मा की निकटतम अनुभूति

ईश्वर ज्ञान की वस्तु नहीं है, इसलिये वैज्ञानिक उस सम्बन्ध में कोई निश्चित विचार देने से हिचकिचाते हैं तो भी वह इस बात को मानते हैं कि संसार में एक कोई ऐसी वस्तु अवश्य है, जिससे निकलकर ही यह विविधतापूर्ण संसार आया। निर्माण-कर्त्ता और पालनकर्त्ता के रूप में विज्ञान भगवान् को नहीं देखता। १७वीं शताब्दी ईश्वर के अस्तित्व की मान्यता का सबसे बुरा युग था, क्योंकि इस शताब्दी के अधिकांश वैज्ञानिकों ने तो यही माना कि ईश्वर की कल्पना भ्रामक है। जे० बी० एस० हाल्डेन ने पाश्चात्यों के ईश्वर विश्वास का खण्डन करते हुए बताया—''जब मैं कोई प्रयोग करने बैठता हूँ, तब मैं विचार करता हूँ कि कोई ईश्वर अथवा देवदूत अपने क्रियाकलापों द्वारा मुझको बाधा नहीं डाल रहे, इसलिये मैं कह सकता हूँ कि ऐसी कोई सत्ता नहीं है, जिसे ईश्वर कहा जा सके।

बरनाल ने भी ऐसी विचारधारा व्यक्त की और सन्देह व्यक्त किया—''ईश्वर का कार्य या दायित्व रौल वस्तुवादी संसार में भी धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है, भौतिक-शास्त्र में ईश्वर की आवश्यकता केवल विश्व की उत्पत्ति व्यक्त करने के लिये तो हो भी सकती है।''

न्यूटन ने इस स्थिति को न सम्भाला होता तो सम्भवतः आज ईश्वर के सम्बन्ध में थोड़ी-सी मान्यतायें शिक्षित वर्ग में बनी हुई हैं, वह भी समाप्त हो जातीं। न्यूटन ने कहा—''सृष्टि के उत्पादन में जो एक सिद्धान्त और क्रम है, उसे न तो विज्ञान बिगाड़ सकता है, न ही उस पर शासन या निर्माण थोप सकता है। इसलिये हम एक ऐसी सत्ता से इन्कार नहीं कर सकते जिसको ईश्वर कहा जा सके।''

इस प्रकार विज्ञान भी एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें ईश्वरीय अस्तित्व के सम्बन्ध में शंकायें भी हैं और धारणायें भी। तथापि सभी बड़े वैज्ञानिकों का विश्वास ईश्वरवादी रहा है। पिछले दिनों आइन्स्टीन सबसे बड़े वैज्ञानिक होकर चुके हैं, उनसे जब इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने को कहा गया तो उन्होंने बताया— ''संसार के सम्पूर्ण उच्च वैज्ञानिक कार्यों में अपराध स्वीकृति, बौद्धिकता और निपुणता का सन्निहित होना यह व्यक्त करता है कि धार्मिक भावनायें गलत नहीं हैं, इसलिये गहन भावनाओं से घिरे हुये इस विश्वास को हमें मानना ही पड़ेगा कि ईश्वर है और वह एक श्रेष्ठ मस्तिष्क है, जो संसार के अनुभवों में स्वयं व्यक्त होता है।''

गैलीलियो का कथन है—''प्रकृति की वृहद् पुस्तकें गणित की भाषा में लिखी हुई हैं, उसे कोई बुद्धि ही लिख सकती है, इसलिये हम भगवान को बुद्धि या विचार कह सकते हैं।'' ईश्वर सदैव रेखागणित कर रहा है (गॉड इज आलवेज डूइंग ज्योमेट्री) यह मान्यता प्लूटो की है। इसी प्रकार एडिंग्टन ने भी बौद्धिक सूक्ष्म दर्शन को ईश्वरीय अस्तित्व के रूप में प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है।

संसार में बुराइयों, कष्टों की विद्यमानता कभी-कभी ईश्वर की सत्यता पर शंका उत्पन्न करती है कि किस प्रकार ईश्वर निर्दयता, अन्याय और युद्ध की अनुमति देता है। अन्यथा विश्व के सभी धर्म और महापुरुषों ने ईश्वरीय सत्ता को माना और उसकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वन्याय प्रियता, करुणाशीलता, सुरक्षा-शक्ति पर विश्वास किया है।

महापुरुषों के रूप में ईश्वर की प्रामाणिकता का प्रयत्न भी प्रायः सभी धर्मों में किया गया है। किसी-किसी धर्म में वह पैगम्बर या फरिश्ते के रूप में प्रकट होता है, किसी-किसी में अवतार के रूप में। पर ईश्वर की सत्यता के बारे में संसार के सभी धर्म एकमत हैं। किसी ने उसे न्यायकारी गुणवाचक से संबोधित किया और किसी ने उसे धर्म-उद्धारक के रूप में। पर उसका पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण कोई धर्म नहीं कर सका, ऐसा कि जिसमें संसार की सम्पूर्ण परिस्थितियों में उसे विश्वस्त ठहराया जा सका होता। इसीलिये संसार के सभी धर्म अपनी इस मान्यता पर लड़खड़ाते रहे हैं।

मुसलमानों में से अनेक ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अल्लाह की सत्ता को प्रवंचना कहा। अनेक कैथोलिकों ने ईसा को भगवान मानने से इन्कार किया, 'प्रोटेस्टैंट' मत उसीका परिणाम था। अवतारवाद का झगड़ा हिन्दू-धर्म में भी कम नहीं है। वे राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर आदि को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर के रूप में मानते हैं, जैन तीर्थंकरों के रूप में, तो सिख गुरुओं के रूप में। अनेके प्रकार के ईश्वरों का अस्तित्व ही इस संसार को भ्रमित करता है। प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा उसे सिद्ध करना वैसे ही कठिन था। जब धर्मों में भी प्रतिद्वन्द्विता दिखाई दी तो तर्कवादी लोगों का उस मान्यता से फिसलना स्वाभाविक ही था।

इस स्थिति में वेदान्त ही एक मात्र ऐसा धर्म है, जिसकी ईश्वरीय व्याख्या को पूर्ण शुद्ध और बुद्धि-संगत कहा जा सकता है। सम्पूर्ण मीमांसा पढ़ने के बाद किसी के भी मन में तर्क या सन्देह नहीं रह जाता है। क्योंकि वह व्याख्यायें विज्ञान के आधार-भूत सिद्धान्तों को लेकर चली हैं और उनमें सम्पूर्ण दार्शनिक एवं लौकिक परिस्थितियों का विवेचन भी आ जाता है।

वेदान्त ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति के लिये सबसे पास से अपने आपसे चलने को कहता है। हम शरीर की स्थूलता में भी गुण हैं और गुणों को अपने शरीर से अधिक महत्त्व देते हैं। आत्म-तुष्टि के लिये माता-पिता अपनी प्रिय वस्तुयें अपने बच्चों को दे देते हैं, जबकि उसका उपभोग करने से उन्हें सुख मिल सकता था। शरीर की आकांक्षा को मन की आकांक्षा से निम्नतर मानने के साथ ही संसार में दो तत्वों की विलगता का स्पष्ट आभास हो जाता है, एक को चेतन और दूसरे को जड़ कहते हैं। जड़ एक देशीय पदार्थ है और चेतन सर्वव्यापी। यहीं से ईश्वर के सिद्धान्त का तात्विक विकास वेदान्त ने प्रारम्भ किया है।

ईश्वर साकार है या सशरीर है, यह एक तथ्य नहीं अपितु कल्पना मात्र है और चूँकि मृत्यु का प्रभाव उस पर पड़ता है, जिसके शरीर है किन्तु जब हम इस विश्वास को पुष्ट कर लेते हैं कि हमारी चेतना का अन्त नहीं होता, हम विश्वात्मा या परमात्मा के बिल्कुल अनुरूप हैं तो मृत्यु भी इस विचार के सामने शक्ति और सामर्थ्य-विहीन हो जाती है। यह एक कल्पना मात्र नहीं वरन् सत्य भी है कि शरीर ही मरता है, अहंभाव या अपना मन, अपनी चेतना का नाश नहीं होता, वह एक अविनाशी तत्व है। हम जब स्वप्न की अवस्था में होते हैं, तब भी हमारी क्रियायें शरीरधारी जैसी ही होती हैं, वैसे ही संवेगों से हम प्रभावित होते रहते हैं, वैसा ही दुःख-सुख हमारे अनुभव में आता है। इसलिये उस स्थिति में भी हम जीवन से बँधे होते हैं, ऐसा कहना कोई निराधार कल्पना नहीं है।

दुःख और सुख इन दोनों से जब हम अपने आपको रहित मानने लगते हैं और इस विश्वास को अन्तिम स्थिति तक सिद्ध कर लेते हैं कि हमारे लिये संसार में मोह-माया की भ्रान्ति कुछ है ही नहीं, न यहाँ कोई अपना है, न हम किसी के हैं, सब चेतना ही अपनी इच्छा से बनती-बिगड़ती रहती है, तब हमारे सामने उसका तात्विक रूप प्रकट होता है और हम अपने आपको मुक्त अनुभव करने लगते हैं।

कत्थक उपनिषद् में कहा है—

हम ब्रह्म हैं और मृत्यु हमारे लिये एक खाद्य है, (१।२।२५) छांदोग्य (६-८-७) में उसे ही **'तत्वमसि'** तू वही है—कहा है। वृहदारण्यक (२४।४।५) **अहं ब्रह्मास्मि** 'मैं ही ब्रह्म हूँ', एतरेय उपनिषद (३।१।३) शुद्ध ज्ञान ही ब्रह्म है, वृहदारण्यक ४।४।५ में **अयमात्मा ब्रह्म**—यह आत्मा ही ब्रह्म है। इसी उपनिषद के ४।४।१९ मंत्र में कहा है कि यहाँ इस संसार में कुछ भी बहुतायत नहीं है और यथार्थ ही संसार के प्राणियों में जो गुण बर्तते हैं अर्थात् इच्छाओं, आकांक्षाओं को यदि निकालकर मानसिक चेतना का विश्लेषण किया जाय तो ऐसा समझ में आ जाता है, चेतना एक अगाध सिन्धु की तरह है और मनुष्य उसमें से इच्छाओं की लहरों की तरह है। **'अहं ब्रह्मास्मि'** इच्छाओं और वासनाओं से ग्रस्त मानसिक स्थिति को नहीं कहा गया तो उस सबसे परमपद में अर्थात् विश्व चेतना तादात्म की स्थिति होती है, जिसमें न तो किसी प्रकार का राग होता है और न द्वेष, वह कर्म भी करता है और किसी से आसक्त भी नहीं होता इसीलिये सर्व न्यायकारी है। उसमें व्यक्ति के गुणों का समावेश हो गया है, वह गुण है, प्रेम, दया, करुणा, उदारता, पर वहीं वह स्वयं इन गुणों से प्रभावित नहीं होता अर्थात् उनसे अलग नहीं है, शुद्ध चेतन अवस्था में वह यह गुणों की ही संज्ञा मात्र है, भाव मात्र है। इस बात को 'बर्कले' ने भी स्वीकार किया था और कहता था—''सारे जगत् के पदार्थ मानसिक संवेदना ही हैं।'' माण्डूक्यकारिका २।११ में उसे ही **'क एतान्बुध्यते भेदान्को वै तेषां विकल्पकः ?'** अर्थात् कौन इस भिन्न-भिन्न विश्व में दिखाई देने वाले पदार्थों का दृष्टा और कौन इनकी कल्पना करता है ?

इसी अवस्था में वेदान्त ने मन का तादात्म ब्रह्म से कराने का यत्न किया है। शास्त्रों में स्थूल अन्न की सात अवस्थायें कही हैं—अन्न से रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मज्जा, मेदा, अस्थि और वीर्य बनता है। वीर्य अन्न की सूक्ष्म अवस्था है और शरीर में व्याप्त है पर किसी एक स्थान को काटकर उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वह मन्थन से ही दिखाई देता है। वीर्य ही अन्तःकरण चतुष्टय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के रूप में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता चला गया है। यह क्रमशः इच्छा, आवेग और भावनाओं की गहराइयाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं, जो अन्त में जाकर एक ही विश्व चेतना—अहंकार में ढल जाती हैं।

पैंगल उपनिषद् में इस बात को और स्पष्ट कर दिया है कि चूँकि अहंभाव प्रत्येक क्षुद्र प्राणी में होता है, इसलिये शास्त्र की उक्त मान्यताओं को लेकर ही कोई अपने को ब्रह्म न कहने लगे। बहुत से पाखण्डी और दम्भी लोग ऐसा करते भी हैं, इसीलिये वेदान्त ने पहले ही स्पष्ट कर दिया कि—"हृदय को निर्मल करके और अनामय ब्रह्म का चिन्तन करके यह अनुभव करना चाहिये कि मैं ही सर्वरूप ब्रह्म हूँ, मैं ही परम सुख रूप हूँ। जल में जल डालने से, दूध में दूध डालने और घी में घी मिला देने से वे एकरूप हो जाते हैं। उसी प्रकार परमात्मा के मिल जाने पर उनमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। जब इस तरह ज्ञान द्वारा देहाभिमान नष्ट हो जाता है और बुद्धि अखण्डाकार हो जाती है। कर्मों में कोई आसक्ति नहीं रह जाती, मोह और वासनायें जलकर नष्ट हो जाते हैं, तभी अद्वैत ब्रह्म की प्राप्ति होती है।"

इस स्थिति में मनुष्य पृथ्वी पर ही निवास करता हुआ भी उससे भिन्न रहता है, उसका नियन्त्रण भी करता है। उत्पत्ति, रक्षा और विनाश इसी प्रकृति के स्पष्ट गुण हैं, वह अच्छाई और बुराई से परे तत्व रूप मात्र है। यह कल्पना और वैज्ञानिक शोध केवल वेदान्त ही संसार को दे सका है और इन तथ्यों का जितना अधिक चिन्तन, मनन और धारण किया जाता है, ईश्वरीय सत्ता का बोध उतना ही निर्मल होता चला जाता है। उसके लिये न तो मनुष्य को कहीं अलग जाने की आवश्यकता है और न कुछ और अध्ययन की। गीता के ९वें अध्याय मे इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा था—

मया ततमिदं सर्वं जगद व्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववास्थितः ॥४॥
सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृति यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतु नानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

हे अर्जुन ! मैंने (विश्व-चेतना) अपने अव्यक्त स्वरूप से इस समग्र जगत् को फैलाया अथवा व्याप्त किया है, परन्तु यह आश्चर्य देख कि मुझमें ही सब सृष्टि सन्निहित है पर मैं उनमें नहीं हूँ, कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति में आ मिलते हैं और फिर कल्प के आरम्भ में मेरी अध्यक्षता में प्रकृति ही सब चराचर सृष्टि को उत्पन्न करती रहती है।

अदृश्य की इतनी अच्छी शोध किसी धर्म में नहीं हुई। यहाँ उसका विकास भी किया गया है, जीव को ही ब्रह्म रूप में शुद्ध करके उसके सर्वव्यापी, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त, कर्माध्यक्ष, साक्षी, दृष्टा स्वरूप को प्रमाणित किया है।

आत्मा की परमात्मा से गुहार

आत्मा ने परमात्मा से याचना की **"असतो मा सद्गमय"। "तमसो मा ज्योतिर्गमय"। "मृत्योर्मा अमृतं गमय"** यह तीनों ही पुकारें ऐसी हैं, जिन्हें द्रौपदी और गज की पुकार के समतुल्य समझा जा सकता है। निर्वस्त्र होते समय द्रौपदी ने अपने को असहाय पाकर भगवान को पुकारा था। गज जब ग्राह के मुख में फँसता ही चला गया, पराक्रम काम न आया, जब जौ भर सूँड़ जल से बाहर रह गई तो उसने भी गुहार मचाई। दोनों को ही समय रहते सहारा मिला। एक की लाज बच गई दूसरे के प्राण बच गये। जीवात्मा की तात्विक स्थिति भी ऐसी ही है। उसका संकट इनसे किसी भी प्रकार कम नहीं है।

मोटेतौर पर मनुष्य खाता, सोता, रौब गाँठता और शान दिखाता है। विलास वैभव का यथास्थिति लाभ उठाता है। किन्तु यह सारा संरजाम शरीर तक ही सीमित है और अवस्थित भी है। समय गतिशील है। वह तेजी से बदलता और आगे बढ़ता है। साथ ही उपलब्धियों की अनुभूतियाँ भी भूतकालीन बनती जाती हैं। इसी बीच इच्छाएँ प्रबल हो लेती हैं। पिछली उपलब्धियाँ स्मरण आती रहती हैं और उससे भी अधिक अच्छी स्थिति पाने की ललक उभरती है। लिप्सा जगती है। पिछले दिन जो मिला था, अगले दिन उससे भी अधिक पाने का मनोरथ इस आतुरता से उभरता है कि वर्तमान की स्थिति असंतोष से ही भरी रहती है। जो मिल चुका वह चला गया। जो इच्छित है, उसके मिलने का कोई निश्चय या समय नहीं। इसलिए मृग-तृष्णा स्तर की प्यास से हर घड़ी गला सूखता रहता है। संतोष और चैन का अनुभव हो नहीं पाता, न विगत को वापस बुलाया जा सकता है और न आगत कोई निश्चित आश्वासन ही देता है। इस स्थिति में अशान्त, उद्वेग के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता।

प्रश्न सहज ही उठता है कि इस स्थिति का कारण क्या है ? जब इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाता है, तब पता चलता है कि जो असत् था, अस्थिर था, नाशवान था, जाने वाला था, उसे चाहा गया, उसे पकड़ा गया। जो स्थिर था, शाश्वत् था, सनातन था, सत् चित् और आनन्द से ओत-प्रोत था, उसकी ओर से मुँह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोड़ लिया गया उपेक्षा की गयी और नगण्य समझा गया। इसी भूल का परिणाम है कि भीतर और बाहर से सब प्रकार सम्पन्न होते हुए भी अभावग्रस्तों की तरह, दीन-हीन की तरह, अभागी जिन्दगी जियी गई। सान्तवना न मिल सकी और न किसी को दी जा सकी।

सत् स्थिर आत्मा है। गुण-कर्म-स्वभाव में सन्निहित मानवी गरिमा ही सत् है। जो सत् को पकड़ता है, अपनाता है और धारण करता है, उसका आनन्द सुरक्षित रहता है। कस्तूरी नाभि में है, यह पता चलने पर हिरन की भगदड़ बन्द हो जाती है और अपनी ही सुवास सूँघते हुए हर घड़ी आनन्द-विभोर रहता है। भीतर से उभरी गरिमा बाह्य जीवन को भी उल्लसित, विकसित, विभूतिवान बना देती है। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में ऐसी शालीनता भर देती है, जिसका प्रतिफल दसों दिशाओं में अमृत तुल्य अनुदान बरसाता है। आत्मा ने उसी के लिए पुकार की है कि उसे ''सत्'' की उपलब्धि हो। असत् की ओर आँखें मूँदकर दौड़ने की प्रवृत्ति रुके। शान्ति का सरोवर सामने रहते हुए भी सड़न भरे दल-दल में घुस पड़ने और चीखने-चिल्लाने की आदत पर अंकुश लगे। इतना बन पड़े तो किसी से कुछ माँगना-चाहना न पड़े। अपने अन्तराल से ही आनन्द का ऐसा निर्झर बहे जो अपने को भी गौरव प्रदान करे और दूसरों की हित साधना करते हुए धन्य बने।

आत्मा की दूसरी पुकार है—**''तमसो मां ज्योतिर्गमय''**। हे सर्व-शक्तिमान ! हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल। जो क्रम अपनाया गया है, वह अन्धकार में भटकने के समान है। रात्रि की तमिस्रा में कुछ पता नहीं चलता कि किस दिशा में चल रहे हैं। यथार्थता का बोध न होने से ठोकर खाते और कंटकों की चुभन से मर्माहत होते हैं। कुछ का कुछ समझ में आता है, कुछ का कुछ दीख पड़ता है। शरीरगत सुविधाएँ भी लक्ष्य रखती हैं। जड़ का जड़ता के साथ पाला पड़ता है। चेतना का अमृत कुंभ कहाँ रखा है ? इसकी प्रतीति ही नहीं होती। वर्तमान और भविष्य अन्धकारमय दीखता है। वैभव बटोर लेता है, पर वह अंगार बनकर जलता भर है। सदुपयोग न बन पड़ने से उत्तम वस्तु भी घातक और निकृष्ट बन जाती है। मनुष्य जीवन में भरी हुई विभूतियाँ यदि सही रूप में पहचानी और प्रयुक्त की गई होतीं, तो उसका लाभ भी मिला होता। पर अन्धकार में तो सर्वत्र भय ही भय है। मृत्यु का भय, हानि का भय, अपहरण का भय अपनों से भय, बिरानों से भय। अन्धकार का-अज्ञान का, ही दूसरा नाम भय है। भयानकता कितनी डरावनी होती है, इसे हम रोज ही अनुभव करते हैं। प्राप्त करना चाहते हैं पर कुछ के बदले कुछ हाथ लगता है। अपने बिराने दीखते हैं और बिराने अपने। सुन्दर आकृतियाँ भी अंधेरे में भूत-प्रेत जैसी कुरूप और भयंकर लगती हैं। डर से जीवन भर सा गया है। यह अज्ञान अन्धकार की ही करतूत है। प्रकाश भीतर दबा पड़ा है। ऊपर से बरसता नहीं। इस विपन्नता से घिरी हुई आत्मा अपने सृजेता से पुकारता है—''अन्धकार से प्रकाश की ओर''। ''अज्ञान से ज्ञान की ओर ले चल''। भटकाव से निकाल और उस राह पर खड़ा कर जिसे अपनाकर सफलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

तीसरी पुकार जीवात्मा की है कि मृत्यु की ओर नहीं अमृत की ओर ले चल। कुसंस्कारिता के कषाय-कल्मष सम्पर्क क्षेत्र के प्रचलन, उस ओर घसीट लिए जा रहे हैं, जिस पर मरण ही मरण है। आत्म हनन के उपरान्त जो कुछ हस्तगत होता है, उसे मरण धर्मा ही कहा जा सकता है। आकांक्षाओं की बाढ़ के बहाव में न धैर्य टिक पाता है, न विवेक। जीवन कूड़े-करकट की तरह एक गंदे नाले में बहा जा रहा है। न ही किनारा दीखता है, न ठहराव न आश्रय।

मनुष्य को जीवन रूपी अनुपम सम्पदा विभूतियों से भरी-पूरी मिली है। पर उनमें से किसी को भी जाग्रत जीवन्त करने का अवसर नहीं मिला। जिस संचित पुण्य के आधार पर यह अनुदान मिला था, उसे कौड़ी मोल बेचा, लुटाया और बहाया जा रहा है। यदि बन पड़ा होता तो पंचतत्वों की काया चले जाने के उपरान्त यश शरीर जीवित रहता—अनुकरणीय, अभिनन्दनीय बनता। प्रकाश स्तम्भ की तरह भटकते, टकराते जलयानों को सचेत करता और उनकी विपत्ति टालता। पर ऐसा भी तो कुछ नहीं बन पा रहा है। वासना और तृष्णा के दो पाटों के बीच अपना अस्तित्व पिसता जा रहा है। अपहरण और शोषण ही रुचिकर लग रहा है। शरीर को, इन्द्रियों को, विचारणा को, भविष्य को, सभी को बर्बाद करने वाली विडम्बना ने चेतना पर आधिपत्य जमाया हुआ है। पत्नी से लेकर संतान तक को ऊँचा उठाने की अपेक्षा नीचे गिराने में ही मोह की पूर्ति होती दिखाई पड़ती है। ऐसी है अपनी अनगढ़ समझ जो अमृत बरबाद करती और विष चाटती है।

हे परमात्मन ! अपनी सत्ता का मरण हो रहा है। मौत एक-एक कदम आगे बढ़ती आ रही है, और अब-तब में दबोचने ही वाली है। इससे पूर्व हम अपने अन्तःकरण को, आनन्द को, भविष्य को निरन्तर मारते-कुचलते रहते हैं। हे परमप्रभु ! इस महामरण से हमें बचा ले और हमें अपनी गोद में बिठाकर अमृत का रसास्वादन करा दे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमात्मा को जानने के लिए अपने आपको जानो

सन्त वास्वानी से एक दिन कुछ लोगों ने प्रश्न किया—"भगवान क्या है ?" "भगवान् ज्योतियों की ज्योति है—"मध्यवर्ती सूर्य है" उन्होंने उत्तर दिया। लोगों ने फिर प्रश्न किया—"इस ज्योति से, इस मध्यवर्ती सूर्य से अपना नाता कैसे जोड़ें ?" वास्वानी ने पुन: समझाया—"बस सूर्यमुखी बन जाओ। जैसे सूर्यमुखी सदैव सूर्य के प्रति मुख किये रहता है यद्यपि उसकी देह में अन्य क्रियायें अपनी-अपनी मर्यादा में चलती रहती हैं, जड़ें रस खींचती रहती हैं, पत्तियाँ साँस लेती रहती हैं, हवा में वह हिलता-डुलता रहता है पर उसका सूर्यमुखी नाम इसीलिये पड़ा क्योंकि वह सदैव सूरज की ओर मुख किये रहता है, इसी तरह परमात्मा को पाने के लिये सदैव परमात्मा की ओर मुख किये रहो।

"किन्तु सूर्यमुखी बनें कैसे ? लोगों ने तीसरा प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया—"अपने हृदय को तीव्र अभीप्सा से भर लो। एक बार खूब अच्छी तरह निश्चित कर लो कि मनुष्य जीवन का ध्येय अनन्त ऐश्वर्य, सुख-सन्तोष, शान्तिप्रद परमात्मा की प्राप्ति है। जब वह तुम्हारा लक्ष्य बन जायेगा तो भगवान की ओर मुख किये रहोगे और धन्य हो जाओगे।"

ईश्वर प्राप्ति की सच्ची आकांक्षा का होना ही प्रधान बात है, परमात्मा कहीं अन्यत्र नहीं। उसे ढूँढ़ने, प्राप्त करने और पहचानने का प्रयत्न नहीं किया जाता, इसीलिये अधिकांश लोगों के हृदय अन्धकार से भरे हैं। लोगों के भीतर तामस का, रात का, अज्ञान का राज्य है। जब अपने हृदय को ही जीवन का केन्द्र- बिन्दु बना लिया जाता है तो आनन्दस्वरूप परमात्मा का अस्तित्व वहीं झलकने लगता है, उसे ढूँढ़ने के लिये कहीं भागने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

हमारा हृदय हमारी आत्मा के विश्वास का ही अंश है। जिस तरह सूर्य की किरणें सूर्य का अंश है, पर पृथक् दीखती हैं, उसी तरह आत्मा भी परमात्मा का अंश है पर पृथक् दीखता है। अपने को, अपनी गहनतर आत्मा को विश्वात्मा का अंश जान लेना ईश्वर को जान लेना है।

मनुष्य अपने शरीर के बाह्य क्रिया-कलापों की व्यस्तता से कुछ क्षण बचाकर शरीर, भावनायें, मन और बुद्धि इनके परे अपनी चेतना की गहराई में डूब सकता है, यह सभी उसके गुण हैं, विशेषतायें हैं, पर वह स्वयं इनसे परे है। वह इनसे परे जाकर अपने को इनसे भिन्न, शक्तिशाली और परम तेजस्वी, सर्वदृष्टा, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, विशुद्ध आनन्द-स्वरूप प्रकाश अनुभव कर सकता है।

जिन लोगों ने अपने भीतर ईश्वर की शोध की है वे सब अन्तत: इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। सबने यही बताया है कि मनुष्य चिन्तन के द्वारा मन, बुद्धि और भावनाओं पर ध्यान जमाता हुआ आत्मा के अस्तित्व तक पहुँचता है और इस अनुभव के बाद इस बोध को प्राप्त करता है कि वह परमात्मा जिसमें आत्मा विकसित हो जाती है, आत्माओं से भी परे और सभी में एक ही प्रकार से व्याप्त है

एक गाँव में एक बार नानक का आगमन हुआ। वे कहते थे—ईश्वर सबके अन्दर है। हिन्दू, मुसलमान का कोई भेद नहीं। उस गाँव के नवाब ने उनसे कहा—आपके लिये तो मन्दिर और मस्जिद एक बराबर हैं तो क्या आप आज हमारे साथ मस्जिद में नमाज पढ़ने को तैयार हैं ? नानक ने बहुत आनन्दित होकर कहा—जरूर ! जरूर !! परमात्मा की प्रार्थना में सम्मिलित होने से बड़ा आनन्द और क्या है ?

फिर सब लोग मस्जिद गये और नमाज शुरू हुई। सब लोग नानक की नमाज देखना चाहते थे किन्तु नानक चुपचाप एक कोने में खड़े हो गये और सबको देखने लगे। उनको इस प्रकार खड़ा देखकर नमाजिये बहुत गुस्सा हुए। वे नमाज भी पढ़ते जाते थे और बीच-बीच में नानक की ओर क्रोध से देख भी लेते थे। जल्दी-जल्दी किसी तरह बेचारों ने नमाज पूरी की और सब एकदम नानक पर टूट पड़े। किसी ने उन्हें धोखेबाज कहा, किसी ने वचन तोड़ने वाला। नवाब ने आँखें लाल-पीली करके डाँटा, आपने नमाज क्यों नहीं पढ़ी ? नानक हँसे और बोले आप लोगों ने भी नहीं पढ़ी, इसलिये हमने भी नहीं पढ़ी। आप लोगों का खेल देखता रहा, यदि आप नमाज पढ़ते रहते तो फिर मेरे लिये भी चुपचाप खड़ा रहना कठिन ही हो जाता।

उन नमाजियों की तरह जो लोग ईश्वर प्राप्ति की बात तो करते हैं किन्तु उनकी सारी उलझन जीवन के बाह्य क्रिया-कलापों तक सीमित रहती है इसलिये उनका नानक, (उनका मन) भी आत्मानुभूति में खो नहीं पाता। जिस दिन शरीर और मन की सारी चेष्टायें सिमटकर आत्मा में केन्द्रित हो जाती हैं, अन्धकार उसी दिन दूर हो जाता है और मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँचा हुआ अनुभव करने लगता है।

'मज्झिम निकाय' में तथागत का एक सुन्दर उपदेश है, वह कहते हैं—कल्पना करो कि किसी मनुष्य के पैर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में विष बुझा तीर चुभ गया है। यदि यह मनुष्य कहे, मैं तब तक तीर नहीं निकलवाऊँगा जब तक मुझे ज्ञात न हो जाये कि तीर चलाने वाले का नाम, कुल और गोत्र क्या था ? वह ऊँचा था या मझले कद का। धनुष कैसा था, प्रत्यंचा कैसी थी, तीर कैसा था ?

लोग परमात्मा के सम्बन्ध में भी ऐसे ही तर्क-वितर्क, वाद-विवाद करते हैं पर अपने हृदय में जीवन के बोझ, दु:ख, कठिनाइयों, दैवी आपत्तियों का जो तीर चुभा हुआ है उसे निकालने की ओर किसी का ध्यान नहीं। हमें सर्वप्रथम आत्मा के दर्द को अनुभव करने की आवश्यकता है। बाह्य जीवन के प्रपंचों को छोड़कर अन्तर्मुख होने की बड़ी आवश्यकता है। बाहरी क्रियाओं को केवल सहयोगी मानना चाहिये। वे लक्ष्य सत्य या परमात्मा की प्राप्ति की साधन बनाई जा सकती हैं नहीं, इसलिये अपने शरीर मन और भावनाओं के केन्द्र बिन्दु को बेधने की आवश्यकता है, यह जानने की आवश्यकता नहीं कि कौन-सा तत्व कितना सुखद है ? किस सुख की प्राप्ति के लिये किधर दौड़ना चाहिये ? जब इन सब बातों को साधन बना लिया जाता है तो आवश्यकतायें भी घट जाती हैं और लक्ष्य भी अपने समीप ही स्पष्ट होने लगता है। उसे पाने के लिये न तो लम्बे साधनों के लिये दौड़ना पड़ता है और न घर ही छोड़ना पड़ता है।

उपनिषदों में—**आत्मावारे श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितध्य: नान्दतोऽस्ति विजानत:**—कहकर इसी तथ्य को व्यक्त किया है और बताया है कि विभिन्न साधनों से तुम अपने आपको पहचानो। जिस दिन आत्मशक्ति का विश्वास जाग जाता है उस दिन परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास घूमते देर नहीं। विश्वास का जमना उतना ही आनन्ददायक जितना परमात्मा की प्राप्ति।

मनुष्य अपनी छुपी हुई शक्तियों को पहचाने बिना शक्तिशाली नहीं बन सकता। जो जैसा अपने को जानता है या जिसकी जैसी अभीप्सा है वह वैसा ही बन जाता है। अपने को जानना सब सिद्धियों से बड़ी सिद्धि है। लाखों में एक-दो होते हैं जो अपने को जानने का यत्न करते हैं, यत्न करने वालों में भी थोड़े से ऐसे होते हैं जो आत्मा के अस्तित्व को पहचानने के लिये देर तक अपने आपको निर्दिष्ट किये रहते हैं। जिसने भी मनुष्य देह में जन्म लिया है वह आत्मा के समीप पहुँचा दिया गया है, किन्तु थोड़े ही हैं जो उसमें प्रवेश पाते हैं।

शरीर में काम-क्रोध, मोह, सन्तोष, दण्ड, दया आदि अनेकों भावनायें हैं, यह सब या तो आनन्द की प्राप्ति के लिये हैं अथवा आनन्द में विघ्न पैदा होने के कारण हैं। आनन्द सबका मूल है वैसे ही आनन्द सबका लक्ष्य है। लक्ष्य और उसकी सिद्धि दोनों ही आत्मा में विद्यमान हैं, जो आत्मा को ही लक्ष्य बनाकर आत्मा के ही द्वारा अपने आपको बेधता है वह उसे पाता भी है। आत्मा ही परमात्मा का अंश है, इसलिये आत्मा का ज्ञान हो जाने पर परमात्मा की प्राप्ति अपने आप हो जाती है।

अन्तरात्मा की प्यास और तृप्ति

पौधे खाद-पानी और भूमि की उर्वरता प्राप्त करके ऊँचे उठते हैं। मनुष्य का शरीर भी आहार, व्यायाम और संयम के सहारे परिपुष्ट होता है। दूसरी अगली भूमिका अन्त:चेतना की है। विचारणा एवं भावना उसी क्षेत्र में आती हैं। इस क्षेत्र का विकसित होना और भी अधिक आवश्यक है। यह तत्व शरीरगत स्वर्ण घटकों को देखता है। दुर्बल या रुग्ण रहने पर व्यक्ति अपने और अपने स्वजन सम्बन्धियों के लिए भारभूत हो जाता है। उपार्जन करने की क्षमता गँवा बैठने पर परावलम्बी एवं तिरस्कृत जीवन जीना पड़ता है। इस प्रकार दिन गुजारने वाला व्यक्ति सोचता है यदि उसने आहार, श्रम, और संयम का संतुलन नाप रखा होता तो इस प्रकार की दुर्गति क्यों सहन करनी पड़ती ? मनोभूमि को समुन्नत बनाने के लिए शिक्षा, स्वाध्याय, सत्संग के अतिरिक्त मनन-चिन्तन की भी आवश्यकता पड़ती है। इन्हें व्यक्ति स्वयं भी जुटा सकता है। आवश्यक नहीं कि इस सन्दर्भ में दूसरों की सहायता अनिवार्य ही हो। सद्ज्ञान स्रोतों की कमी नहीं, उनके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए उत्सुक व्यक्ति गई—गुजरी स्थितियों में अवसर प्राप्त कर लेते हैं जिनके सहारे वह विज्ञजनों की पंक्ति में बैठ सकें, सभ्य और सुसंस्कृत रहना सीखें। शारीरिक स्वास्थ्य के समतुल्य ही मानसिक विकास-परिष्कार की भी अपनी महत्ता है। उपलब्ध उसे भी किया जाना चाहिए।

अन्त:करण की ऊँचे स्तर वाली तीसरी भूमिका है। उसमें आस्थाएँ विराजती हैं। मान्यताएँ, आकांक्षाएँ, संवेदनाएँ उसी परिकर में रहती हैं। साहस, उत्साह एवं संकल्प जैसे सद्गुण उसी क्षेत्र में उभरते हैं। पोषण अन्त:करण को भी चाहिए। खुराक की वहाँ भी आवश्यकता पड़ती है। विकास के लिए आवश्यक साधन जुटाए बिना काम नहीं चलता।

अन्त:करण की तीन आवश्यकताएँ हैं। एक प्यार, दूसरा प्रोत्साहन, तीसरा प्रशंसा। इनका सुयोग जितनी मात्रा में मिलता है, मनुष्य उतना ही अधिक आत्मबल अर्जित करता है। उस अर्जन के सहारे उस प्रकार का पुरुषार्थ बन पड़ता है जिसके सहारे महापुरुष स्तर के गुण, कर्म, स्वभाव से सुसम्पन्न बना जा सके। इसी को व्यक्तित्व की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वरीयता कहते हैं। शालीनता और प्रतिभा इसी आधार पर हस्तगत होती हैं। इनके होने पर अपने लिए आप प्रगति का मार्ग ढूँढ़ निकाला जा सकता है। मार्ग के अवरोधों को निरस्त कर सकना इसी वर्चस्व के आधार पर बन पड़ता है। जो इन विभूतियों से वंचित हैं उन्हें गई-गुजरी, अनगढ़ स्थिति में पड़े रहने का दुर्भाग्य ही सहना पड़ता है।

मनुष्य भीतर से उठता है। वृक्ष का विकास जड़ों की गहराई पर निर्भर रहता है। छोटे पौधों को बाहरी खाद पानी चाहिए पर बड़े वृक्ष अपनी जड़ें गहराई में प्रवेश करके स्वावलम्बी बन जाते हैं। उन्हें गहरी जड़ें ही आवश्यक पोषण प्रदान करती रहती हैं। जड़ें वह दृढ़ता भी प्रदान करती हैं जिनके सहारे ग्रीष्म ऋतु को सहन कर सके और आँधी-तूफानों के बीच भी तनकर खड़े रह सके।

मानवी सत्ता का वास्तविक उद्गम उसका अन्तराल ही है। मन, मस्तिष्क और काय-कलेवर उसके आवरण मात्र हैं। आवरणों को स्वच्छ, सुन्दर होना भी आवश्यक है। उनसे भी शोभा-सज्जा की आवश्यकता पूरी होती है, किन्तु जिस आधार पर किसी का मूल्यांकन किया जाता है, वह उसका अन्तराल ही है। इसी के बलबूते उच्चस्तरीय सफलताएँ प्राप्त होती हैं।

कहा जा चुका है कि अन्तराल को विकसित करने के लिए तीन आधार चाहिए। प्यार, प्रोत्साहन, प्रशंसा। यह तीनों ही ऐसे प्रतीत होते हैं, जो बाहर कहीं से उपलब्ध होने चाहिए। कोई प्यार करने वाला होना चाहिए। प्रोत्साहन दे सकने वाले मनस्वीजनों का सहयोग मिलना चाहिए, साथ ही ऐसे शुभ-चिन्तक भी होने चाहिए जो सद्गुणों की, सफलताओं की प्रशंसा करते रहें और मनोबल बढ़ाते रहें। अन्तराल को इन्हीं की प्यास रहती है। वह जिसकी जितनी मात्रा में पूरी होती रहती है उसे अपना पौरुष, पराक्रम दिखाने में उतनी ही सफलता मिलती है।

जिन्हें इनकी उपलब्धि स्वाभाविक रूप से नहीं मिल पाती, वे उन्हें खरीदकर जुटाने का प्रयत्न करते हैं। प्यार की प्यास बुझाने वैश्यालयों के चक्कर काटते हैं। प्रोत्साहन के लिए दरबारियों की ऐसी भीड़ जुटाते हैं, जो मित्र प्रशंसक जैसा दीख पड़ें। प्रशंसा खरीदना तो और भी अधिक सस्ता है। पुराने जमाने में इसके लिये चारणों को मोटी रकमें दी जाती थीं। वे प्रशंसा के पुल बाँधने वाले गीत लिखा करते थे और उन्हें उत्तेजक ढंग से राज-दरबार में सुनाया करते थे। अब यह कार्य प्रेस के माध्यम से कराया जा सकता है। समारोह प्रवचनों में माइक, रिकार्ड बजाने, साथियों से पहचान कराने पर भी यह कार्य बन पड़ता है। विज्ञापन माल-असबाब को बेचने के लिए अनेक रंग से किये जाते हैं। अब आत्म-श्लाघा की पूर्ति पैसा देकर विज्ञापन-बाजी के रूप में भी कराई जा सकती है। इसके लिए पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठ सदा स्वागत की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इन माध्यमों से अन्तःकरण की प्यास बुझाने का जो उपक्रम किया जाता है, वह बहुत ही उथला होता है। छद्म को अपना मन तो पहचानता ही है। दूसरे लोग तो धोखे में आ सकते हैं, पर अपने को तो असली-नकली का भेद विदित ही रहता है। औरों को प्रपंच में फँसाकर किसी प्रकार बहकाकर फुसलाया जा सकता है परन्तु अपने आप पर स्वनिर्मित वह छद्म कैसे लगे ? अपने ही पाखण्ड में अपनी अन्तरात्मा संतोष अनुभव कैसे करे ? कीचड़ से प्यास कैसे बुझे ?

अन्तरात्मा को जिन तीन उपहारों की आवश्यकता है, वे देखने में तो नितान्त बाजिव और सस्ते प्रतीत होते हैं वस्तुतः वे उतने उथले हैं नहीं जिन्हें प्रवंचना के रूप में पाकर मन को संतोष दिया जा सके। खरीदने पर नकल मिलती है असल नहीं। सस्ते मोल के शेर हाथी खिलौने के रूप में ही पाये जा सकते हैं उनसे वह प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता है जो सरकस में पलने पर वे कौतूहल करके दीख पड़ते रहें। वनराज या गजराज को अलमारी के किसी कोने में बन्द करके नहीं रखा जा सकता।

प्यार बहुमूल्य है, वह सच्चे रूप में किसी की प्रगाढ़ आत्मीयता में से झाँकता है। माँ बच्चे को निःस्वार्थ प्यार करती है। इसके बाद उसे उस दाम्पत्य जीवन में जहाँ-तहाँ देखा जाता है, जिसमें दोनों एक-दूसरे के लिए समर्पित होकर जी रहे हैं। इसके बाद तो मित्रता शिष्टाचार की तरह निभती है, जिससे जिसका जितना स्वार्थ सिद्ध होता है, वह उसी अनुपात से मित्रता का दम भरता है। स्वार्थ में कमी आने पर आँखें बदल जाती हैं। परिस्थितियाँ बदलने पर कल के मित्र कल अपरिचित और परसों शत्रु बन जाते हैं।

प्रोत्साहन भी इसी आधार पर दिये जाते हैं। दूसरों को बड़ी जिम्मेदारियाँ लादने के लिए उन्हें गुब्बारे की तरह फुला दिया जाता है। भावावेश में किसी से कुछ कराया जा सकता है। पर पीछे उसका वजन लादने पर प्रोत्साहन देने वाले पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं। सामर्थ्य से अधिक कर गुजरने वाले मित्रों से जिस सहायता की आशा करते थे, उन्हें मिल नहीं पाती, तो अकेले ही भार वहन करते हैं। उसी में दिवाला निकाल बैठते हैं, खर्चीली शादियों में, मृतक भोजों में, असाधारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आयोजन करने, धन जुटाने के लिए प्रोत्साहन देने वाले ही पतंग की डोरी चढ़ाते हैं। जीत की आशा न होते हुए भी चुनाव लड़ने के लिए मूजी को भी खड़ा कर देना और उसके पीछे उपहास में सम्मिलित होकर मूर्ख बताना भी उन्हीं का काम होता है, जो प्रोत्साहन देने में सर्वप्रथम अग्रणी थे।

प्रशंसा अब एक अत्यन्त सस्ता ठगी का व्यवसाय बन गया है। चाटुकारिता, चापलूसी ही प्रशंसा के विविध रूप बनाती और चित्र-विचित्र नजारे दिखाती है। जो आघात शत्रु अस्त्र-शस्त्रों से नहीं पहुँचा पाते उसे मित्र का मुखौटा पहनकर प्रशंसा के तीर छोड़े हुए बड़ी आसानी से सम्पन्न कर लेते हैं। किसी का विश्वास अर्जित करने और फिर उसे भयानक जाल-जंजाल में फँसा देने का सरल तरीका प्रशंसा ही ढूँढ़ निकाला गया है। कभी इस कार्य को मात्र चारण वर्ग के लोग किया करते थे, अब उस कला को अधिकांश लोगों ने सीख लिया है। इसी हुनर के सहारे वे कितनी ही चिड़ियाँ, कितनी ही मछलियाँ आये दिन फँसाते रहते हैं।

पहचानने वालों ने यह मान लिया है कि किसी को दावत खिलाकर, उपदेश देकर, ज्ञान साधन जुटाकर अब उतनी जल्दी किसी को कृतज्ञ अथवा मित्र नहीं बनाया जा सकता। इसके बिना एक शिकार पर शिकंजा कैसे कसा जाय ? उसका उत्तर प्रवंचना की दीवार से यही मिला है कि प्यार दिखाने, प्रोत्साहन देने, प्रशंसा करने के अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया जाय और लक्ष्य को वेध कर दिखाया जाय। निशाने को धराशायी बनाया जाय। इन दिनों इसी छद्म का सर्वत्र विभिन्न आकार-प्रकारों में प्रयोग होता देखा जाता है। यह कला अब व्यवहार कौशल में सम्मिलित हो गई है। बीन की मधुर झंकार सुनकर कितने ही मृग बहेलियों के घर गरदन कटाने के लिए पहुँचते देखे गये हैं।

ऐसी दशा में मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ रह जाता है कि आत्मोत्कर्ष के लिए जिन तीन साधनों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है, उन्हें सच्चे रूप में प्राप्त कर सकने का सुयोग किस प्रकार बिठाया जाय। इन्हें जहाँ से वस्तुतः पाया जा सकता है, उस भाण्डागार तक पहुँच सकने के लिए किस प्रकार आधार खड़ा किया जाय ?

इस हेतु दूर जाने की आवश्यकता नहीं। न किसी के सामने पल्ला पसारने की। याचना तो उनसे की जाय जिनके पास मनोरथ पूरा कर सकने वाली वस्तु हो। आत्मीयता भरा गहन गम्भीर जो प्यार कर सकते वे कहाँ हैं ? यदि हैं भी तो क्या आवश्यक है कि वे हमें इसका पात्र समझें और अपनी आत्मा का रस निचोड़ने की अनुकम्पा दिखायें ? प्रोत्साहन देना सरल है। किसी को भी एक के बदले लाख मिलने का सब्ज-बाग दिखाकर लाटरी को खरीदने के लिए सहमत किया जा सकता है। सामर्थ्य से बड़ी छलाँगें लगाने वालों में से अधिकांश ऐसे ही होते हैं, जिन्होंने दलाली के लालच में दिवान्ध बना दिया है। प्रशंसा के पुल बाँधते देखकर किसी भी समझदार को सावधान होना चाहिए कि दाल में कहीं काला है। ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों में क्या किसी भी प्यासे अन्तःकरण को मन मसोसकर ही बैठना पड़ेगा या कोई ऐसा रास्ता भी मिल जायेगा जहाँ से अन्तरात्मा की प्यास बुझाने का अवसर मिल सके।

इसके लिए नाभि में कस्तूरी होने पर भी सुगंध के लिए दिशा-दिशा में भटकने वाले हिरन का उदाहरण सही सिद्ध होता है। उसे शान्ति तब मिलती है, जब बाहर की ढूँढ़-खोज करने की अपेक्षा अपनी नाभि पर नाक रखकर देखता है कि जो अभीष्ट था वह तो अपने ही निकटतम मौजूद है।

दूसरों का आश्रय तकने की अपेक्षा यही अच्छा है कि हम अपने आप से स्वयं सच्चा प्यार करें। अपने कल्याण की बात स्वयं सोचें। शरीर के प्रति सच्ची मैत्री प्रदर्शित करके उसे संयम साधना द्वारा स्वस्थ सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाय, उसे सर्वत्र सुन्दर और दीर्घजीवी बनने का अवसर दिया जाय। मन को ज्ञानवान, विचारवान, एकाग्र एवं दूरदर्शी, विवेकवान बनाने के लिए निजी प्रयत्न किया जाय। यह अपने निजी प्रयत्न से भी किया जा सकता है। सत्संग न मिले तो संसर्ग से काम चलाया जा सकता है। तर्क और तथ्य पर आधारित विवेक जगाया और उसका आश्रय लिया जा सकता है। कुटेबों का परिमार्जन किया जा सकता है। दोष-दुर्गुणों को ढूँढ़ और खोज-खोजकर उन्हें बाहर फेंकना चाहिए। अपनी स्वच्छता और सुसज्जा की कमान स्वयं ही सँभालनी चाहिए। दूसरों की हम सहायता करें या दूसरे हमारी सहायता करें ? दूसरों की आशा करने, खोज तलाश करने की आशा सँजोये रहने से कुछ काम बनने वाला नहीं है। अपने आप को ही अपने में सीमित करना चाहिए और वे सब साधन स्वयं ही जुटाने चाहिए जिनकी अपने को आवश्यकता है।

रोटी स्वयं कमाई जा सकती है, अध्ययन अपने बलबूते किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि अपने को प्यार न दिया जा सके। अपने को प्रोत्साहित न किया जा सके। अपनी गरिमा का स्मरण करके स्वयं की प्रशंसा न की जा सके। जो वस्तुएँ दूसरों को दी जा सकती हैं। उन्हें अपने को अपने भण्डार में से निकाल कर दिया न जा सके ऐसी कोई बात नहीं। आत्मा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अजस्र भाण्डागार में किसी वस्तु की, किसी विभूति की कोई कमी नहीं जो अभीष्ट है उसे जानना जगाना भर है। अन्तराल की चुम्बकत्व सक्षम होते ही वह सभी सामग्री खिंचती चली आती है, जिसकी आवश्यकता समझी और चेष्टा की जाती है।

अपने आपे को, शरीर तथा मन को सच्चा प्यार करें ताकि इन तीनों का ही समग्र हित साधन हो सकें। अपने को अग्रगमन के लिए प्रोत्साहित करें और अपने उद्‌गम को, भविष्य को, वर्तमान को जगा सकने को निरन्तर सराहें ताकि वह वैसा ही बन सके, जिसे सर्वत्र प्रशंसा के योग्य समझा जा सके। हर कोई प्रोत्साहन भरा सहयोग प्रदान करें। अपने को प्यार करने वाले, उसकी प्रखरता उभरने वाले आत्म-भाव के धनी पर सभी प्यार उछालते हैं। अपने भी, पराये भी, देवता भी।

सच्चिदानन्द स्वरूप—अन्तरात्मा

परमात्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप कहा गया है। विराट का ही एक अंश होने से जीवात्मा भी उन्हीं गुणों से सुशोभित है। सत्, चित्, आनन्द ये तीनों मिलकर कारण शरीर का ढाँचा बनाते हैं। सत् अर्थात् शाश्वत, अजर, अमर और अविनाशी स्वरूप। चित् अर्थात् चेतना दिव्य गुणों से सुसज्जित, उच्चस्तरीय आदर्शों, आस्थाओं से युक्त। आनन्द अर्थात् भाव संवेदनाओं, सरसता मृदुलता से सिक्त अन्तःकरण। आशा, उत्साह, संतोष के परस्पर समन्वय पर आधारित जीवन क्रम। आत्मा का सहज स्वभाव है ऊँचा उठना, अपने विराट स्वरूप की स्वयं को प्रतिमूर्ति बनाने के लिए इन्हीं गुणों से स्वयं को समृद्ध करना तथा अंततः समस्त आवरणों को हटाते हुए अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करना। परिष्कृत जीवात्मा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आध्यात्मिक पुरुषार्थ करती है एवं जीव-ब्रह्म सम्मिलन से निसृत परमानन्द की स्थित को प्राप्त करती है।

इस आत्म-गरिमा से अपरिचित मनुष्य भटकता है। यह विस्मृति अनेकानेक समस्याओं को जन्म देती है। इन्हें ही माया का आवरण, मनुष्य का विभ्रम कहा जा सकता है। ये ही रोग-शोकों के रूप में अंततः बाहर प्रकट होते हैं। सच्चिदानन्द का पहला चरण है सत्। 'सत्' मनुष्य को जीवन के क्षणभंगुर होने का बोध कराता है। हम अजर-अमर अविकारी हैं। पंचतत्वों से बनी इस काया को बिखर जाने पर भी हमारी सत्ता बनी ही रहेगी। यह बोध बना रहे तो भटकाव से बचा रहा जा सकता है। पर कायिक इन्द्रियों की बनावट ही कुछ ऐसी हैं कि वह बहिर्जगत को देखती और जड़ पदार्थों के प्रति सहज ही आकर्षित हो जाती है। सत् की अनुभूति व्यक्ति को यह विचार करने पर विवश करती है कि यह शरीर मरणधर्मा है। परन्तु आत्मा कभी नष्ट नहीं होती है। वह तो एक सतत् प्रवाह है। आत्मा का स्वास्थ्य ही मनुष्य की सारी सफलताओं का प्राण है। यह तभी संभव है, जब मानव अपने वर्तमान जीवन को श्रेष्ठ, उदार तथा उदात्त भावनाओं से युक्त करने का प्रयास करता है।

सत् में आस्था रखने वाला व्यक्ति सृष्टि को चलाने वाली बुद्धिमान, उद्देश्यपूर्ण व्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखता है। वह जानता है कि विधि-विधानों, नियमों के अनुरूप चलने वाली इस सृष्टि की व्यवस्था में किसी तरह की अनुशासनहीनता, अनियन्त्रण, अदूरदर्शिता का स्थान नहीं है। कर्मफल से पूर्णतः अवगत यह व्यक्ति अपनी समस्त गतिविधियों का निर्धारण सुघड़तापूर्वक करता है। वह जानता है कि आत्मा कभी नहीं बदलती। बदलता तो यह चोला है। फिर उसके लिए व्यर्थ मोह क्यों करना ? अनावश्यक संग्रह एवं उपभोगों में स्वयं को लीन करना इस सृष्टि के मुकुटमणि मानव के लिए कतई शोभनीय नही है। ऐसा चिन्तन प्रखर होने पर स्वयं को ऊँचा उठा हुआ पाता है। आत्मिक प्रगति के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है।

आत्मा की दूसरी विशेषता है 'चित्' । उच्च-स्तरीय आस्थाओं, मान्यताओं एवं आदर्शों से युक्त व्यक्ति चित् परायण कहलाता है। चित् अर्थात् स्वयं के विषय में उत्कृष्टतापूर्ण मान्यता, अपने लक्ष्य के प्रति चेतनता, सजगता। ये वे निष्ठाएँ हैं, जो मनुष्य की जीवनयात्रा की रूपरेखा बनाती हैं। देवत्व में आस्था, आदर्शवादी उत्कृष्टता में अटूट विश्वास, सुपर सत्ता के प्रति समर्पण भाव 'चित्' के परिष्कृत स्वरूप है।

'चित्' एक गुण है जो परिष्कृत स्वरूप में व्यक्ति को महामानव बना देता है। पर जब यही विकृति की ओर अग्रसर हो जाता है, जो अनेकानेक समस्याओं, मानसिक असंतुलनों एवं शारीरिक-संतापों को जन्म देता है। आदर्शवादिता से निष्ठा हटते ही पतन तेजी से होता है। दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण स्वयं के विषय में मान्यताएँ गरिमायुक्त नहीं रहती। श्रेष्ठ चिन्तन का अभाव एवं उत्कृष्टता के प्रति अनास्था अंततः उद्दण्डता को जन्म देती है। विकृत चिन्तन से सद्‌विचारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। सिद्धान्तों के प्रति, अपनी दिव्यताओं के प्रति अनास्था मनुष्य को एकाकी, स्वार्थी एवं अहंकारी बनाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

आवेश तथा जल्दबाजी के कारण व्यक्ति को जो भौतिक दृष्टि से हानि होती है। वह अविज्ञात नहीं है। परन्तु वह व्यक्ति स्वयं इस तथ्य से अनजान बना रहता है कि वह व्यक्ति उद्धत आचरण उलटकर उस पर ही हमला करेगा। मानसिक तनाव और उससे होने वाली समस्त मनोशारीरिक व्याधियाँ ऐसे व्यक्तियों को होती है, जो स्वयं उच्छृंखल हैं, उसके अंग, अवयव, ऊतक भी क्यों कर किसी का कहा मानेंगे। आवेश-क्रोध से होने वाला स्राव समस्त शरीर-संस्थानों के परस्पर संतुलन को गड़बड़ा देता है। इसके विपरीत स्वयं की गरिमा व महत्ता में चित्त की विशिष्टता में, आदर्शों के प्रतिनिष्ठा रखने वाला व्यक्ति, आत्मिक दृष्टि से तो संपन्न होता है ही, मानसिक संतुलन व समस्वरता तथा शरीगत सुव्यवस्था भी उसकी एक बहुमूल्य वर्जित सम्पत्ति है।

सच्चिदानन्द आत्मा का तीसरा ओर अंतिम पक्ष है 'आनन्द'। इसके बिना आत्मा की परिपूर्ण व्याख्या संभव नहीं। जीवात्मा का लक्ष्य ही आनन्द है। इसे परिष्कृत भाषा में कहा गया है **'रसो वै सः'** वह परमात्मा रस से, आनन्द से परिपूर्ण है। इस रस को प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्गों से साधक पुरुषार्थ करता है एवं संतोष का आनन्द लेता है। इस रस का अंतरंग पक्ष है—भाव-संवेदनाओं से लबालब अन्तःकरण करुणा, दया, सेवा भावना, भक्ति भाव रस के परिष्कृत स्वरूप हैं। जब इनका विकास सहज स्वाभाविक रूप से होता है, तो ये व्यक्ति को भावनात्मक दृष्टि से ऊँचा उठाते है। ऐसे महामानव विश्व मानवता की सेवार्थ अपने जीवन की आहुति दे देते हैं। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला आनन्द क्षणिक है, ऐसी मान्यता रखने वाले ये महापुरुष अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग उच्च उद्देश्यों की ओर नियोजित करने में करते हैं।

चेतना पर काया, काम, क्रोध, लोभ, मोह-मत्सर के जो आवरण पड़े हैं। उनके कारण जीव इस उद्गम स्रोत तक नहीं पहुँच पाता। प्यास निरन्तर बनी रहती है। कस्तूरी अपनी नाभि में लिये गये हिरन जिस प्रकार सुगन्ध की खोज में चारों ओर मारा-मारा फिरता है, उसी प्रकार जीव आनन्द की खोज में विविध योजनायें बनाता, कल्पना करता एवं अथक् प्रयत्न करता है। यह पुरुषार्थ असफल असमाधान कारक ही होता है। अन्तःकरण की गहन परतों में छिपे आनन्द के स्रोत की खोज बाह्य जगत में जलने के कारण भटकाव, थकान, अशांति, निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता।

आनन्द की मिठास और भी गहन है। इसकी विकृति वासना, तृष्णा, अहंता के रूप मे बाहर परिलक्षित होती है। आनन्द की प्रतिच्छाया होने के कारण वासना आकर्षक एवं लुभावनी लगती है। विषयों के सेवन में मन लगने लगता है तो व्यक्ति विलासी, प्रमादी, आलसी होता चला जाता है। जिव्हा का असंयम, कामेन्द्रियों का उपभोग, संग्रह का लोभ अनेकानेक मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों को जन्म देता है।

विषयों के सेवन में जब इतनी तृप्ति और तुष्टि मनुष्य को मिलती है तो उसके मूल स्रोत में कितनी मिठास होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही हृदय पुलकित हो उठता है। भगवान रसयम है। इस रस को आत्मा-सत्ता के रूप में ईश्वर ने मनुष्य को धरोहर बनाकर दिया है। यह रस भौतिक नहीं आत्मिक है। इसे अन्तःकरण के उल्लास, संतोष, शान्ति जैसी दिव्य संवेदनाओं के रूप में अनुभव किया जाता है। भक्ति रस की धाराएँ ऐसे ही अन्तःकरण में बहती हैं। ये ही कभी मीरा, कभी चैतन्य एवं कभी रामकृष्ण परमहंस जैसी विभूतियों के रूप में प्रकट होती है। सुपर सत्ता परंब्रह्म से मिलन संयोग की स्थिति ऐसी ही जागृति पर आती है।

आनन्द की गंगोत्री अपने ही भीतर

कस्तूरी की खोज में हिरन भटकता रहता है। वनों, कन्दराओं में वह ढूँढ़ता है, पर कहीं नहीं मिलती। जो भीतर है, उसे बाहर खोजने में उसका जीवन खप जाता है। व्यर्थ की इस भाग-दौड़ से उसे निराशा ही हाथ लगती है। अतृप्ति यथावत् बनी रहती है। यह बोध हो सके कि जिसे प्राप्तः करने की आकुलता में वह वन एवं कन्दरा में विचरता रहता है, वह उसके अपने ही भीतर विद्यमान है, तो उसे तृष्णा की आग में इस तरह न जलना पड़े। उसकी निकटता प्राप्त कर मृग स्वयं परितृप्त हो जाय।

मृग ही क्यों? मनुष्य भी तो आनन्द की खोज में मृग-मारीचिका की तरह जीवनपर्यन्त भटकता रहता है। आनन्द की प्राप्ति उसकी मूलभूत माँग है। बचपन से लेकर जरावस्था तक वह इस आकांक्षा की पूर्ति में लगा रहता है। पर हिरन की भाँति दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण मनुष्य सोचता है कि आनन्द के स्रोत बाहर हैं। दृश्य संसार और उससे सम्बद्ध परिवर्तनशील पदार्थों के आकर्षण में वह स्थायी और शाश्वत आनन्द की खोज करता है। इन्द्रियों की तुष्टि के लिए विषय रूपी साधन जुटाता है। पर उनका उपभोग अतृप्ति की आग को और भी अधिक भड़काता और बढ़ाता है।

बचपन से लेकर वृद्धावस्था की मध्यावधि में शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में अनेकों तरह से परिवर्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं। उन परिवर्तनों के साथ-साथ आनन्द प्राप्ति के बाह्य साधन भी बदलते रहते हैं। शैशव अवस्था की माँग अलग प्रकार की होती है और किशोरावस्था की अलग। युवा वय की मन:स्थिति और वृद्धों की मन:स्थिति सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न प्रकार की होती है। इस कारण आनन्द प्राप्ति के बाह्य स्रोत भी क्रमिक रूप से बदलते रहते हैं। नवजात शिशु माँ की छाती से चिपका रहता है। पयपान में ही उसे सामयिक तृप्ति मिलती है। पर थोड़ा बड़ा होते ही दुग्ध पान के प्रति उसकी अभिरुचि प्राप्त हो जाती है। जो कभी माँ के हृदय से चिपका रहता था, वह अब चित्र-विचित्र खिलौने में रमण करता है। सुखानुभूति के केन्द्रबिन्दु खिलौने बनते है। पर यह स्थिति भी अधिक दिनों तक नहीं चलने पाती। खिलौने जो बचपन में अत्यन्त ही आकर्षक मनोरंजक लगते थे, किशोरावस्था में नहीं भाते। घर की सीमा से बाहर वह प्रवेश करता है। मित्रों की टोली में उसका अधिकांश समय व्यतीत होता है। पढ़ने-लिखने की आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा चल पड़ती है।

बचपन में जो खिलौनों से चिपका रहता था अपना भविष्य बनाने में जीतोड़ परिश्रम करता है। उसकी प्रसन्नता इस बात में सन्निहित रहती है कि वैसी अधिक से अधिक योग्यता सम्पादित की जाय। सन्तुष्टि इस आकांक्षा की पूर्ति से भी नहीं होती। एक की आपूर्ति दूसरे तरह की इच्छा को जन्म देती है। वयस्क होते ही अनूकूल साथी जीवनसंगिनी की खोज चलती है। मिलते ही पत्नी के यौवन, रूप और लावण्य पर वह मुग्ध बना आनन्द की अनूभूति करता है। किन्तु यह स्थिति भी अधिक दिनों तक नहीं रहने पाती। शरीराकर्षण कुछ ही दिनों बाद समाप्त हो जाता है। तब तक प्रजनन का दौर चल पड़ता है।

नवागन्तुक शिशु प्रसन्नता का नवीन केन्द्रबिन्दु बनता है। उसकी किलकारियाँ सुनकर वह बड़े से बड़ा दु:ख भी भूल जाता है। उसकी एक मुस्कान के लिए अपना सर्वस्व लुटाने के लिए मनुष्य तैयार रहता है। जिससे प्रेरित होकर मानव बच्चे के लिए कष्ट उठाने के लिए तत्पर रहता था।

धनोपार्जन सम्पदा संग्रह तथा लोकयश पाने की आकांक्षा पूर्ति में वह अब सुख, आनन्द ढूँढ़ने लगता है। तदनुरूप प्रयासों का ताना-बाना बुनता है। वह सब मिलने के बाद भी संतोष नहीं होता। अतृप्त और अशान्त मन:स्थिति पुन: नये तरह के खेल-खिलौने मन बहलाने के साधन ढूँढ़ती है। सम्पूर्ण जीवन ही इन बाह्य प्रयासों में खप जाता है। जितना मनुष्य आनन्द पाने का प्रयत्न करता है उतना ही वह उससे दूर होता चला जाता है।

हर मनुष्य की प्रकृति एक जैसी नहीं होती। परस्पर एक-दूसरे की अभिरुचियाँ भी भिन्न होती हैं। एक को एक तरह के काम में आनन्द आता है, दूसरे को भिन्न प्रकार के काम में। स्वास्थ्य, धन, ऐश्वर्य, यश, सम्मान योग्यता की प्राप्ति में अधिकांश व्यक्ति जीवन खपाते और तदनुरूप सफलता मिलने पर मोद मनाते है। पर वह प्रसन्नता भी चिरस्थायी नहीं होती। कुछ ऐसे भी होते है जो समाज के ढर्रे से अलग हटकर अपना मार्ग चुनते हैं। वे असामान्य दुस्साहस का परिचय देते तथा ऐसे काम कर गुजरते हैं। जिन्हें देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। जीवन के धनी व्यक्तियों को संकटों से युक्त कार्यों को करने में ही आनन्द आता है। कुछ व्यक्तियों की मन:स्थित विकृत स्तर की बन जाती है। निकृष्ट कामों में ही उन्हें रस आता है। व्यसनी शराब के प्याले में आनन्द देखता और ढूँढ़ता है—उसी में डूबा रहता और अपना सर्वस्व गँवाता है। कामी कामतृप्ति की क्षणिक रसानुभूति में अपने शरीर को गलाता, मन:शक्ति को क्षीण करता रहता है। क्रूर आताताइयों को जघन्य अपराधों को करने में प्रसन्नता होती है। दूसरों को रोते-कलपते, पीड़ा से कराहते-तड़पते देखकर आनन्द आता है। इसकी विकृति उनसे हत्या जैसे पाप कराती है।

बाह्य संसार में आनन्द प्राप्ति के लिए मनुष्य भटकता रहता है, यह इस बात परिचायक है कि शाश्वत सुख की अनुभूति उसके जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए कभी वह एक तरह का माध्यम ढूँढ़ता है तो कभी दूसरे प्रकार का। व्यक्ति के सुख का केन्द्र सदा बदलता रहता है। शैशव काल माँ की गोद में, बाल्यावस्था खिलौने में, छात्र जीवन पुस्तकों में, यौवन पत्नी तथा धन संचय में, गृहस्थाश्रम पुत्र, मोह, यश प्राप्ति में नियोजित रहता है। गम्भीरता से विचार करने पर पता चलता है कि जिन भौतिक चीजों से आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। वे पदार्थ वस्तुत: आनन्द से रहित हैं। यदि आनन्द होता तो मन सदा उनमें लीन रहता, पर आनन्द प्राप्ति के केन्द्र सतत् बदलते रहना इस बात का प्रमाण है कि यह विशेषता उन भौतिक वस्तुओं में नहीं है।

सुख एवं आनन्द का केन्द्र भीतर है, बाहर नहीं। आनन्द की भावना मनुष्य की अन्तरात्मा में विद्यमान है। यह भावना ही विभिन्न वस्तुओं में आरोपित होकर हमें आनन्ददायक प्रतीत होती हैं। इसी करण भ्रमवश लोग वस्तुओं को ही आनन्द का हेतु समझ लेने की भूल कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठते हैं। भ्रमवश विभिन्न वस्तुओं में उसे ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। फलस्वरूप असफलता ही हाथ लगती है। यह स्थिति उस हिरन जैसी ही है जो कस्तूरी की गंध से मोहित होकर उसे बाहर तो खोजता है पर भीतर नहीं झाँकता।

आनन्द आत्मा का शाश्वत गुण है। वही भीतर बैठा आनन्द प्राप्ति का भाव सम्प्रेषित करता तथा अपनी आनन्दमय स्थिति का भान कराता है। इन्द्रियों की बनावट बहिर्मुखी है। अन्तर्मुखी होकर मूल केन्द्र को तलाश ने की अपेक्षा वे बाहर की ओर चंचल रहती हैं। सांसारिक आकर्षणों में वे सुख और आनन्द खोजती हैं। उन्हें ही सुख का आधार मान लेती हैं।

आनन्द की प्रतिच्छाया भावों के रूप में आरोपित होकर जड़ वस्तुओं तक को आकर्षक बना देती है, जबकि उनमें अपना कोई आकर्षण नहीं होता और न ही आनन्द। लुभावने दृश्य तथा संसार वही रहते हैं। समग्र इन्द्रियों से युक्त काया का स्वरूप भी नष्ट नहीं, होता, पर चैतन्य आत्मा में शरीर से निकलते ही सब खेल समाप्त हो जाता है। कहीं कोई आकर्षण नहीं दीख पड़ता। जड़ काया के भीतर विद्यमान अन्तरात्मा सौन्दर्य प्रवाह किरणें ही वस्तुओं पर पड़कर सुन्दरता का आभास कराती हैं। दर्पण में दिखायी पड़ने वाली मुखाकृति की प्रतिच्छाया को देखकर दर्पण को माना जाय तो यह मान्यता अविवेकपूर्ण ही होगी। प्रतिच्छाया से आनन्द प्राप्ति का भ्रमपूर्ण प्रयास असफल ही सिद्ध होगा।

विषयों में कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ रमण करती कुछ क्षणों के लिए आनन्द की अनुभूति करती हैं। पर उनकी ये विशेषताएँ तब तक ही रहती है जब तक कि आत्मा काया में निवास करती है। इन्द्रियाँ उसी से गति एवं सामर्थ्य प्राप्त करती है। उनकी विभिन्न तरह की क्षमताएँ आत्मशक्ति का ही अनुदान है। रंग, रूप गंध स्पर्श स्वाद आदि कायिक अनुभूतियों से लेकर प्रसन्नता, प्रफुल्लता, उत्साह, उमंग आदि की मानसिक विशेषताएँ तक उस आन्तरिक चेतन शक्ति की ही प्रतिच्छाया है। शरीर एवं मन से जुड़ी हुई विभिन्न इन्द्रियाँ काय-कलेवर में आत्मसता के बने रहने से ही पदार्थों, दृश्यों एवं विषयों में सुख की अनुभूति कर पाती हैं। ऐसे सुख की जो क्षणिक, अस्थायी और अतृप्ति को और भी अधिक बढ़ाने वाला है। आत्मा के शरीर छोड़ते ही इन्द्रियाँ किसी प्रकार की अनुभूति नहीं कर पातीं। पार्थिव शरीर मिट्टी तुल्य हो जाता है। उसे गाढ़ने-दफनाने-जलाने की तुरन्त बात सोची जाती है।

आनन्द का केन्द्रबिन्दु अन्तरात्मा है। वह चैतन्य गतिविधियों का प्रेरणा-स्थल भी है। पर चेतना की यह विशेषता होती है कि वह जड़ वस्तुओं में अधिक समय तक नहीं टिक सकती। जब तक उसका प्रकाश आनन्द की किरणें वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा विषयों पर पड़ती हैं, तब तक वे आकर्षक लगती हैं। जैसे ही किरणें सिमटती हैं। वह दृश्यमान सौन्दर्य लुप्त हो जात है। वस्तुत: अन्तरात्मा से निकली भाव तरंगें दृश्य संसार तथा उससे सम्बद्ध वस्तुओं में अपने उद्‌गम स्थल की खोज करती हैं। बाहर वह नहीं मिलता। अतृप्ति मिटाने के लिए वह सांसारिक चीजों का सहारा लेती हैं। मिटने के स्थान पर वह और भी बढ़ती हैं तथा उसकी स्थिति उस प्यासे व्यक्ति की तरह होता है जो पानी की तलाश में निकलता है, पर मदिरालय पहुँचकर मद्यपान से अपना होश-हवाश गवाँ बैठता है। शराबी की तरह ही हालत जीवात्मा की हो जाती है, जो सदा अतृप्त बनी आकुल-व्याकुल रहती है।

यह एक विडम्बना ही है कि जीव स्वयं आनन्द का स्रोत होते हुए भी जीवनपर्यन्त उस अमृतत्व से वंचित रहता है। खेल-खिलौने, भोग विलास, इच्छाओं आकांक्षाओं, ऐषणाओं की पूर्ति में बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था खप जाती है। तब वृद्धावस्था में मनुष्य हाथ-मलता रह जाता है। व्यतीत हुए भूतकाल के जीवन को स्मरण करके हर व्यक्ति हर व्यक्ति की अन्तर्व्यथा जेम्स एलन की भाँति मूक रूप से प्रस्फुटित होती है-''मैंने सांसारिक जीवन एवं उससे जुड़ी वस्तुओं में आनन्द की खोज का प्रयास किया किन्तु वह नहीं मिल सका। विद्याभ्यास किया, ऐश आराम के साधन जुटाये, श्रेय-सम्मान अर्जित किया पर अशान्ति बढ़ती ही गयी। मैंने दर्शनों का अनुशीलन किया किन्तु मेरा हृदय अहंभाव से विदग्ध हो गया तब पहली बार मुझे अनुभव हुआ है कि शान्ति एवं आनन्द का केन्द्र बाहर नहीं भीतर है।''

ऐसी व्यथा-वेदना की अनुभूति हर व्यक्ति को कभी न कभी अवश्य होती है। जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रकार की होती है। यह एक ऐसा अभाव है, जिसकी आपूर्ति भौतिक वस्तुओं, विषयों अथवा भौतिक ज्ञान द्वारा नहीं हो सकती । वे मनुष्य के अन्तराल को तृप्त नहीं कर सकती। अन्तराल में इस पीड़ा का होना इस शाश्वत तथ्य की परिचायक है कि शाश्वत आनन्द की प्राप्ति जीव की प्रमुख माँग है। उसे पाने की उत्कंठा भी उसमें प्रबल है। भीतर की यह आकांक्षा और उत्कंठा उस दिव्य आनन्द की प्राप्ति के लिए सतत् प्रेरित करती रहती है। दृष्टि बहर्मुखी होने के कारण मानव उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाह्य संसार में ढूँढ़ता है। उसका पुरुषार्थ एवं सामर्थ्य इस प्रयास में ही खप जाता है। इन्द्रियों की क्षणिक तृप्ति आग में घी डालने का काम करती है तथा अतृप्ति अग्नि को और भी तीव्र करती है। एक कामना की पूर्ति दूसरी कामना को और दूसरी तीसरी को, इस तरह अनेकों प्रकार की कामनाओं की शृंखला चल पड़ती है। उन सभी की पूर्ति कभी नहीं हो पाती। छोटा जीवन और अनन्त कामनाएँ। ईश्वर प्रदत्त अलभ्य अनुपम जीवन कामनाओं की पूर्ति में होकर नष्ट होता है और अन्ततः पल्ले पड़ती है—अशान्ति, अतृप्ति, असन्तोष और पश्चाताप।

आन्तरिक भावों पर ध्यान दिया जा सके तो प्रतीत होगा कि आनन्द का अजस्र अन्दर बैठा सतत् अपना प्रवाह संप्रेषित कर रहा है। यह समझते ही दुश्चिन्तन, कुचेष्टाएँ समाप्त होने लगती हैं। लालसाएँ कम होने लगती तथा चेष्टाएँ अन्तर्मुखी बन जाती हैं। ऐसा आत्म-बोध चेतना के उद्गम स्थान पर ही पहुँचने पर सम्भव है।

अजस्र शान्ति के बीज अन्तःभूमि में उगते हैं

संसार के कोलाहल एवं अशान्त वातावरण में एक विशेषता यह दिखायी देती है कि प्रत्येक व्यक्ति शान्ति पाने के के लिए व्याकुल है। सारे प्रयत्न पुरुषार्थ इसीलिए किये जा रहे हैं। इस बात का प्रमाण है कि शान्ति शाश्वत है, अशान्ति तो बाह्य हलचलों की प्रतिक्रिया मात्र है। शान्ति का भाव मानव के अन्तःकरण में बीज रूप से विद्यमान है। अनन्त कोलाहल के मर्मस्थल से भी एक मंत्र ध्वनित हो रहा है— 'शान्तिः शान्तिः'। शान्ति, वह प्रेरक शक्ति शान्त स्वरूप में समस्त जड़, चेतन में विराजमान है मनुष्य की अन्तरात्मा में स्थिति होकर वह अपनी सत्ता प्रेरणा देती रहती है।

उस शान्त स्वरूप परमात्मा का दर्शन अपने अन्तःकरण में किस प्रकार किया जाय? इसका एक ही उत्तर है— अनन्त शान्ति का अनुभव शान्त मनःस्थिति द्वारा ही किया जा सकता है। आन्तरिक चंचलता का कोलाहल हमें अपनी ही अन्तरात्मा से दूर रखता है। हमारी प्रवृत्तियाँ अनेकों दिशाओं में दौड़ती हुई शक्ति को छिन्न-भिन्न किये दे रही है। बाह्य भाग-दौड़ के असंयमित कारणों से मन सदा अशान्त बना रहता है। मन की व्यग्रता से वह एकाग्रता बन ही नहीं पाती कि वृत्तियाँ को अन्तर्मुखी करके उस शान्तस्वरूप आत्मा का दर्शन कर सकें।

सामान्यतः लोग जीवन के ह्रास और शक्ति के अभाव को शान्ति समझ लेते हैं। किन्तु जीवन विहीन शान्ति तो मृत्यु है। शक्तिहीन शान्ति जड़ता की परिचायक है। गति एवं क्रिया से रहित निश्चेष्ट होना शान्ति नहीं है। शान्ति तो एक सुसन्तुलित मनःस्थिति है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य सांसारिक कोलाहल एवं विपन्नताओं में भी निर्लिप्त बना रहता है। जीवन को सम्पूर्ण शक्ति के स्वरूप में जो विद्यमान है वही शान्ति है। जो सृष्टि के सौन्दर्य को प्रकाशित एवं प्रमाणित के कल्याण करने के लिए सचेष्ट है वह शान्ति है।

इसे एक सामान्य उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। विशालकाय रेल इंजन चलता है। उसके पहिये घूमते हैं किन्तु इंजन का चलना ही चालक नहीं है। वरन् चालक वह है जो इंजन में बैठा उसे गति दे रहा है। गतिशील संसार के मध्य अदृश्य रूप में विद्यमान चेतना शान्त स्वरूप है। रेल के डिब्बे में बैठे यात्री उसकी तीव्र गति से भयभीत नहीं होते। वे जानते हैं कि इंजन को चलाने एवं नियंत्रित करने वाला बुद्धिमान ड्राइवर बैठा है। यह अभय की भावना तभी बनती है जब यात्री इस बात से परिचित होते हैं कि रेल की भयंकर गति अनियंत्रित नहीं है।

विशाल कारखाने में यदि कोई अनभिज्ञ व्यक्ति पहुँचे तो यही समझेगा कि यहाँ कोई दानवीय काण्ड हो रहा है। चक्रों की तीव्र ध्वनि, मशीनों की गड़गड़ाहट उसके मन को विक्षुब्ध बना देगी। किन्तु जब उसे पता चलता है कि उनको नियंत्रित संचालित करने वाला कोई विशिष्ट मनुष्य मौजूद है तो उसे वह भयरहित होकर शान्ति का अनुभव करेगा। कारखाने के कोलाहल एवं गति में परिणाम की सार्थकता में उसे शान्ति का दिग्दर्शन होगा।

जगत के प्रचण्ड शक्ति वेग एक विभीषिका के रूप में मानव मन को उद्वेलित कर रहे हैं। रेल की गड़गड़ाहट एवं कारखाने की भयंकर ध्वनि के समान सृष्टि के आवेग क्रिया-प्रतिक्रियाओं से मनुष्य विक्षुब्ध बना रहता है। सामान्य प्राकृतिक आघातों से भयभीत हो जाता है। इसका मुख्य कारण है—अर्न्तदृष्टि का अभाव, मन की उद्विग्नता। उसे जगत के मध्य विद्यमान शान्त सत्ता के दिग्दर्शन से वंचित रखती है। फलस्वरूप जीवनपर्यन्त मनुष्य सांसारिक अभावों, आघातों से भयभीत होकर विक्षुब्ध बना रहता है। अपने अज्ञान के कारण उस दिव्य सत्ता का अनुभव नहीं कर पाता जो निर्लिप्त भाव से बैठी संसार को गति प्रदान कर रही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह प्रकृति को चेतना से, प्राण और सौन्दर्य से भरपूर बनाकर मंगलमय बना रही है। सृष्टि के शक्ति के वेग को भी एक मंगलमय लक्ष्य की ओर लिए जा रही है। धात्री के समान अनादि काल से जगत की रक्षा कर रही है। समस्त ग्रह-नक्षत्रों को जड़ पदार्थों को आबद्ध किये सुव्यवस्थिति ढंग से संचालित कर रही है। चेतन प्राणियों का पालन-पोषण कर रही है। अनेकों स्वरूपों में वह पालन-शक्ति के रूप में जगत में विचरण कर रही है। जीवन उसका एक स्वरूप है मृत्यु दूसरा । सुख-दुख, हानि-लाभ उसके ही विभिन्न रूप हैं। जीवन व्यापार की समस्त गतिविधियों में कल्याणकारी भाव में शान्ति रूप में विराजमान है। यदि ऐसा न होता तो आज संसार में जो सौन्दर्य, आकर्षण दिखाई दे रहा है। वह आघातों द्वारा लुप्त हो जाता । मानव-मानव अन्यान्य प्राणियों के बीच जो सम्बन्ध बन्धन आकर्षित कर रहा है वह समाप्त हो जाता । वह शान्त स्वरूप कल्याणकारी परमात्मा हो जाता। वह शान्त स्वरूप कल्याणकारी परमात्मा ही समस्त संसार की रक्षा कर रहा है।

मन की चंचलता ही उस शान्त स्वरूप को जो अन्तरात्मा में बैठा अपना भाव प्रेषित करता रहता है, के सानिध्य लाभ से वंचित रखती है। बाह्य संसार में मन शान्ति की तलाश में भटकता रहता है। कभी उसे वस्तुओं के आकर्षण में ढूँढ़ता है तो कभी व्यक्तियों में। आकर्षणों के ये बन्धन उसे और भी आबद्ध करके अशान्त बनाते हैं। वस्तुओं व्यक्तियों से बद्ध होकर मनुष्य अपने आन्तरिक स्रोत से दूर हटता चल जाता है। जीवन-पर्यन्त मन की भाग-दौड़ चलती रहती। तथा मनुष्य को व्यग्र बनाये रहती है। भाग-दौड़ का परिणाम यह होता है कि मनुष्य की शक्ति क्षीण हो जाती है। शक्ति क्षीण होने से अशान्ति उसी अनुपात में बढ़ती जाती है। शान्ति प्राप्त करने का यह अविवेक पूर्ण प्रयास अशान्ति के परिणाम के रूप में मिलता है। थकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट जीवन की बाह्य स्थिरता को शान्ति का स्वरूप मान बैठने की भूल करती हैं। शक्ति के ह्रास होने पर भी मन की चंचलता उसी प्रकार बनी रहती है। फलस्वरूप मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम दिनों में और भी अधिक व्यग्र बना रहता है तथा आन्तरात्मा के अमृत पान से सदा वंचित रहता है।

अन्तरात्मा के शान्त स्वरूप का दर्शन शान्त मनःस्थिति द्वारा कर सकना सम्भव है। इसके लिए मन को नियमित करना अति आवश्यक है। असंयमित मन सदा चलायमान रहता है। शास्त्रकार इसी कारण मन को निग्रहीत करने का निर्देष देते हुए कहते हैं— **''मनएव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:''** **(गीता)**

मन बन्धन और मुक्ति का कारण है। बाह्य आकर्षणों में आबद्ध मन के कारण ही अशान्ति बनी रहती है। अशान्ति दूर करने एवं शान्ति प्राप्त करने का मन तो करता है। किन्तु उसका प्रयास बहिर्मुखी होता है। जड़ वस्तुओं के क्षणिक आकर्षणों में शान्ति पा सकना सर्वथा असम्भव है। आन्तरिक भाव प्रेरणाओं को समझा जा सके तथा मन की घुड़-दौड़ को अन्तर्मुखी बनाया जा सके तो स्पष्ट होगा कि न केवल अपनी अन्तरात्मा में वरन् सृष्टि में शान्तिस्वरूप परमात्मा विद्यमान है। बाह्य कोलाहल सुख-दुःख तो परिवर्तनशील तरंगें हैं। उन तरंगों का प्रेरणा स्रोत तो इन हलचलों के प्रभाव से रहित कल्याणकारी परमात्मा है, जो निर्लिप्त भाव में सम्पूर्ण चराचर में शान्त रूप में स्थित है। मानवी काया में अंतरात्मा के रूप में वही विराजमान होकर अपने दिव्य गुणों का आभास प्रेरणाओं के रूप में कराता रहता है। उन प्रेरणाओं को समझा जा सके तथा अपनी चेष्टाओं को अन्तर्मुखी बनाया जा सके तो जिस की प्राप्ति के लिए मन सदा व्यग्र बना रहता है उस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

सांसारिक सुख-दुःख, एवं अभाव उसे ऐसी स्थिति में पहुँचने पर प्रभावित नहीं कर पाते। सर्वत्र आनन्द की शान्ति की निर्झरिणी बहती दिखायी देती है। जगत के कोलाहलों में भी उसे कल्याणकारी भाव का दर्शन होता है। मन का भटकाव बन्द हो जाता है। अनन्त कोलाहल में भी उसे एक ही ध्वनि सुनायी पड़ती है—**शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।**

स्रोत अन्दर है, बाहर नहीं

आनन्द आत्मा का शाश्वत गुण है। मनुष्य जब प्रसन्नचित होता है तो उसकी आत्मा प्रफुल्लित हो उठती है। शरीर में जीवनी शक्ति का प्रवाह तीव्र हो जाता है। समस्त आत्मिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। आत्मिक शक्ति की स्फुरणा से शरीर की आकृति एवं मन की प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है। मुख से चेतनता एवं सजीवता टपकने लगती है। शरीर रोमांचित हो उठता है। कभी-कभी इस प्रकार का आभास प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवनकाल में होता है।

जन्म से मृत्यु तक की अवस्थाओं पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि व्यक्ति के सुख का केन्द्र सदा बदलता रहता है। शैशव काल माँ की गोद में, बाल्यावस्था खिलौने में, छात्र जीवन में पुस्तकों में यौवन पत्नी तथा धन संचय में, गृहस्थाश्रम पुत्र में, यश की प्राप्ति में रहता है। गहराई से विचार करने पर पता चलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि जिन चीजों में आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। वस्तुतः वे भौतिक पदार्थ आनन्द से रहित हैं। यदि उनमें आनन्द होता तो मन सदा उनमें लीन रहता किन्तु आनन्द प्राप्ति का केन्द्र सतत् परिवर्तित होते रहना इस बात का प्रमाण है कि यह विशेषता भौतिक वस्तुओं में नहीं है।

सुख, आनन्द का केन्द्रबिन्दु आत्मा है जो मनुष्य के अन्दर विराजमान है। वही आनन्द प्राप्ति का भाव प्रेषित करती तथा अपनी आनन्दमय स्थिति का भान कराती है। किन्तु मनुष्य अन्तर्मुखी होकर उसे प्राप्त करने के स्थान पर बहिर्मुखी होकर भौतिक पदार्थों में ढूँढता है। वस्तुओं को सुख का आधार मान लेता है।

अन्तरात्मा की प्रकाश किरणें वस्तुओं में आरोपित होकर सौन्दर्य पैदा करती हैं। जिसके फलस्वरूप उनको प्राप्त करने तथा उनके उपभोग से आनन्द प्राप्त करने का लोग असफल प्रयास करते हैं। कुछ समय तक तो वे आनन्ददायक लगती है। किन्तु यह थोड़े समय उपरान्त ही समाप्त हो जाती है। वे निस्सार तथा आकर्षणरहित प्रतीत होने लगती हैं। वस्तुतः अन्तरात्मा की प्रकाश किरणें वस्तुओं से हट जाती हैं, जिसके फलस्वरूप जो कभी सुन्दर आनन्ददायक प्रतीत हो रही थीं वे ही असुखकर लगने लगती हैं।

यह कैसी विडम्बना है कि जीव का उपहासास्पद प्रयास जीवनपर्यन्त चलता रहता है। जीव पृथ्वी पर अवतरित होते ही आनन्दप्राप्ति का प्रयास विभिन्न रूपों में आरम्भ कर देता है। स्वयं आनन्द स्रोत होते हुए भी जीवनपर्यन्त उस अमृत्व से वंचित रह जाता है। बचपन के खेल-खिलौने, किशोरावस्था के अध्ययन एवं युवावस्था के भोग-विलास से गुजरते हुए थके हुए खिलाड़ी की भाँति अपनी वृद्धावस्था पूरी करता और काल के गर्भ में चला जाता है। आनन्द प्राप्ति का भ्रम पूर्ण, पदार्थवादी प्रयास उसे अपने ही आनन्द स्रोत अन्तरात्मा से दूर रखते हैं। फलस्वरूप मनुष्य विक्षुब्ध बना रहता है।

आन्तरिक भावों पर ध्यान दिया जा सके तो प्रतीत होगा कि आनन्द का अजस्र स्रोत अन्दर बैठा अपना प्रवाह संप्रेषित कर रहा है। इस प्रकार के भावों के उत्पन्न होते ही कुप्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती हैं। चेष्टाएँ अन्तर्मुखी बन जाती हैं तो भौतिक लालसाएँ नष्ट हो जाती हैं। उनका स्थान दया, करुणा, प्रेम, जैसी सत्प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं। प्राणिमात्र के दुःखों को दूर करने में मनुष्य को आनन्द आने लगता है। प्रेम का सतत् प्रवाह चारों ओर बहता दिखायी देता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के उपरान्त कोई कामना अवशेष नहीं रह जाती है।

मृग के कस्तूरी के लिए जंगल में भटकते रहने के समान बाह्य-वस्तुओं मे आनन्द ढूँढ़ने का अविवेकपूर्ण प्रयास करने की अपेक्षा आवश्यकता इस बात की है कि अपनी चेष्टाओं को अन्तर्मुखी के दर्शन एवं उससे मिलने वाले अजस्र आनन्द के अनुदान को प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक साधनाओं का ही अवलम्बन लेना होगा। चेतना अपने उद्गम स्थल पर पहुँचकर सी शान्ति एवं आनन्द की शाश्वत अनुभूति कर सकती है। जीवनपर्यन्त मनुष्य जिसकी प्राप्ति के लिए सांसारिक आकर्षणों में भटकता रहता है, आत्म दर्शन से ही सम्भव है।

आत्म विस्तार-अखण्ड आनन्द का एकमात्र साधन

आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से ही होती है। यह सारा संसार पंचतत्वों से बना है। पंचतत्वों की स्थिति जड़ है। जड़ता में न तो सुन्दरता होती है, न आकर्षण और न आनन्द। इस प्रकार यह सारा संसार एक प्रकार से असुन्दर एवं अनाकर्षक ही है। तब भी लोगों का मन संसार में लगता है। उसमें आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है।

यह बात सही है कि संसार में लोगों का मन लगता है, आनन्द आता है। किन्तु यह बात भी गलत नहीं है कि सन्त को न तो संसार की सब चीजें अच्छी लगती हैं और इन सब बातों में आनन्द ही आता है। किसी को आनन्द केवल उसी विषय अथवा वस्तु में प्राप्त होता है, जो उसे प्रिय होती है। उदाहरण के लिए, परस्पर विरोधी वस्तुएँ होने पर भी किसी को दूध पसन्द आता है, उसे सेवन करने में आनन्द मिलता है और किसी को शराब पीने में। यदि उनमें से किसी एक ही वस्तु में आनन्द होता तो वही एक चीज सबको प्रिय एवं पसन्द होती। लेकिन ऐसा नहीं होता। वास्तविक बात यह है कि जिस मनुष्य की जिस वस्तु में प्रियता संलग्न होती है, वही चीज उसे पसन्द आती है और उसी में आनन्द प्राप्त होता है। इस सारे विवेचन का अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि आनन्द और आकर्षण वस्तु अथवा विषय में नहीं बल्कि मनुष्य की प्रियता में होता है।

प्रियता की उत्पत्ति आत्मीयता से होती है। जमीन, जायदाद, घर, मकान, पशु-पक्षी जो भी जब तक अपने रहते हैं उनके प्रति आत्म-भाव बना रहता है। बड़े प्रिय लगते हैं, उनकी सुरक्षा, सुन्दरता और पालन-पोषण में बड़ी रुचि रहती है। उनकी जरा-सी क्षति होते ही हृदय पर चोट लगती है। उन्हें देख-देखकर बड़ा आनन्द मिलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है किन्तु जब किन्हीं कारणों से वे अपनी वस्तुएँ पराई हो जाती हैं तो आत्मीयता का भाव समाप्त हो जाने से उनके प्रति किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रह जाता। उन वस्तुओं के प्रति प्रियता का भाव नहीं रहता और तब उनके टूट-फूट कर मिट जाने पर भी अपने को कोई कष्ट नहीं होता। यदि आनन्द और प्रियता उन वस्तुओं में रही होती तो अवश्य ही अपनी न रहने पर भी उनके प्रति वही प्रियता और आकर्षण बना रहता। आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से ही होती है और प्रियता की उत्पत्ति आत्मभाव से।

आत्मीयता में प्रियता की उपलब्धि इसलिए होती है कि आत्मा अपने को बहुत प्यार करता है। जिस वस्तु अथवा विषय में वह अपनी छाया की झलक पाता है वही उसे प्रिय लगने लगती है। अन्य बच्चों की अपेक्षा मनुष्य को अपने बच्चे अधिक प्यारे लगते हैं दूसरे के बच्चे चाहे जितने सुन्दर और सुशील क्यों न हों तब भी वे उतने प्रिय नहीं लगते जितने कि अपने बच्चे। इसका कारण यही होता है कि अपने बच्चे अपनी आत्मा के अंश होते हैं। वे आत्मा का ही एक प्रतिबिम्ब होते हैं। चूँकि आत्मा अपने को प्यार करता है। इसलिये अपने अंश रूप बच्चों को भी प्यार करता है। परमात्मा की तरह निराकार होने पर भी आत्मा बड़ा सुन्दर और आनन्दमय है और उसी की तरह वह अपने स्वरूप को भली-भाँति जानता है। अपनी सुन्दरता, गुण और विशेषताओं से अच्छी तरह परिचित होता है। इसलिए उसका अपने को प्यार करना स्वाभाविक ही है। इसमें किसी प्रकार को प्यार करना स्वाभाविक ही है। इसमें किसी प्रकार की अवगति नहीं है। एक सामान्य मनुष्य जो सुन्दर होता है, गुणी और विशेषतापूर्ण होता है, जब वह भी अपने को प्यार करता है, तब आत्मा तो अलौकिक सुन्दरता और गुणों का निधान होता है। फिर भला वह अपने को प्यार क्यों न करेगा। यही वह नैसर्गिक कारण है, कि जहाँ-तहाँ जिस वस्तु में आत्मा को अपना आभास मिलता है, वहाँ-वहाँ वह उस वस्तु को प्यार करने लगता है और उसी में रसानुभूति और आनन्द पाने लगते हैं।

सौन्दर्य और आनन्द आत्मा का सहज धर्म है। जहाँ-जहाँ तक आत्मा का विस्तार होता जायेगा वहाँ-वहाँ तक सौन्दर्य और आनन्द का विस्तार होता जायेगा। यों तो संसार में न तो आनन्द है और न सुन्दरता। लेकिन आत्मा की उपस्थिति से वह सुन्दर भी भासता है और आनन्दपूर्ण भी लगता है। यदि हम सांसारिक जीवन में वास्तविक रूप में आकर्षण और आनन्द चाहते हैं और इच्छा रखते हैं कि इसके दुख क्लेश और शोक-संताप न व्यापें। सब ओर और सब काल सुख और उल्लास की ही प्राप्ति होती रहे तो हमें अपनी आत्मा का विस्तार करना होगा। इस दुःखपूर्ण संसार में भी अखण्ड और अर्निवचनीय आनन्द की सम्भावना है और उसको प्राप्त किया जा सकता है। इसका प्रमाण हमारे ऋषि-मुनियों का जीवन रहा है। उन्होंने इस तथ्य को समझा कि इस नीरस और नश्वार संसार में जो भी सुख, जो भी आनन्द और जो भी रस है वह सब आत्मा की उपस्थिति से है। इसलिए उन्होंने आनन्द की खोज विषय अथवा वस्तु में न करके आत्मा में करने की बुद्धिमानी की। उन्होंने अपनी इस बुद्धिमता के बल पर आनन्द के आदि स्रोत आत्मा को प्राप्त किया और अपने जीवन में अक्षय और अनन्त आनन्द की स्थापना कर ली। महान ऋषि-मुनियों का आनन्द किसी वस्तु अथवा विषय पर निर्भर नहीं था। वे स्वतः आत्मा से आनन्दित रहते थे, विषय वस्तु के सम्बन्ध में वे इतने निरपेक्ष रहते थे कि सामान्य जीवनयापन के साधन भी उनके पास अपर्याप्त मात्रा में ही रहते थे। तब भी वे पूर्ण सन्तुष्ट, पूर्ण शान्त और पूर्ण सुखी रहते थे। आनन्द का उद्गम स्रोत आत्मा ही है उसी की उपस्थिति से इस संसार में सुख की प्रतीति होती है। सच्चा आनन्द आत्मा को ही प्राप्त करने पर मिल सकता है, दूसरे उपाय से नहीं।

आत्मा के विस्तार का महत्व अकथनीय है। उसकी सफलताएँ अनन्त हैं। इसीलिए विवेकवान व्यक्ति भौतिकता के हाथ न बिककर आध्यात्मिक जीवन को महत्व देते थे। वे बड़े से बड़ा कष्ट सहकर और त्याग करके भी आत्मिक विस्तार के प्रयत्न में संलग्न रहते थे। यह सोचना कि आध्यात्मिक जीवन को प्रमुखता देने पर व्यवहार जगत की अपेक्षा हो जायेगी, गलत है भारतीय आर्ष पुरुष अज्ञानी नहीं थे। वे व्यवहार जगत का महत्व समझते थे और बड़े कुशल व्यवहारवादी थे। अन्तर केवल इतना था कि भौतिकवादी दृष्टिकोण रखने वालों का व्यवहार स्वार्थ पर ही निर्भर रहता था और उनके व्यवहार का आधार हर प्रकार से परमार्थ रहता था। अपने व्यवहार जगत की क्रियाओं को स्वार्थ से हटाकर परमार्थ पर निर्भर कर देने से रंचमात्र भी हित की हानि नहीं होती है। बल्कि जहाँ स्वार्थ पर आधारित हितों के नष्ट हो जाने का भय रहता है, वहाँ परमार्थ पर निर्भर हित सदैव सब प्रकार से सुरक्षित रहता है। परमार्थपूर्ण व्यावहारिक नीति का गृहण सब प्रकार से पवित्र और कल्याणकारी होता है। उससे लोक और परलोक दोनों की सफलता निश्चित होती है।

मनुष्य जब तक स्वार्थ के संकीर्ण दायरे में बन्दी रहता है, तब तक ही दुःख पाता है। संकीर्णता का परिणाम दुःख है। किन्तु जब संकीर्णता से निकलकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशालता में प्रवेश करता है तो आनन्द की अनुभूति अनायास ही उसके पास आ जाती है। जब तक मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर यह मेरा है, इतना मेरा है, की संकीर्ण भावना से अभिभूत है, उसकी उपलब्धियाँ उसकी भावना के अनुसार सीमित तथा संकीर्ण बनी रहेगी। किन्तु जब वह संकीर्णता के दायरे से निकल कर यह सोचने लगता है कि यह सारा संसार हमारा है इसकी हर वस्तु मेरी अपनी है, संसार के सारे प्राणी परम पिता परमात्मा के नाते मेरे भाई बन्धु हैं। मेरे आत्मीय जन हैं तो सम्पूर्ण संसार पर सकी सम्पूर्ण वसुधा के साथ अपना अधिकार अनुभव होने लगता है और वह अपने इस आत्म-भाव से ही तृप्त यथा सन्तुष्ट हो जाता है। उसकी ऐषणाऐं, तृष्णायें, लिप्सायें एक साथ नष्ट हो जाती हैं, जिसका फल उसे अखण्ड एवं अनिवर्चनीय आत्मसुख के रूप में ही मिलता है। आत्म विस्तार के अनुपात से मनुष्य संकीर्णता के बन्धन से मुक्त होकर व्यापकता की ओर बढ़ता और तदनुसार ही आनन्द तथा तृप्ति पाता चला जाता है।

आत्मीयता के अभाव में आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती फिर उसके लिए चाहे वस्तुओं के विधान संचय कर लिए जायें या विषयों में आजीवन आकंठ निमग्न रहा जाय। इस कुरूप तथा क्लेशपूर्ण संसार में सुख अथवा सुन्दरता कहाँ? यदि सच्चे सौन्दर्य और वास्तविक आनन्द की अनुभूति करनी है तो आत्मा को दिशा में अभियान करना होगा। आत्मा को प्रबुद्ध कर उसको सब और सबके साथ सम्बद्ध करना होगा। अपनी आत्मा का ही सौन्दर्य और उसी की रसानुभूति बाह्य संसार में प्रतिभासित होकर संसार को सौन्दर्य तथा आनन्दपूर्ण बनाती है। यह जड़ संसार न तो अपने में सुन्दर है और न आनन्दपूर्ण। प्रियतम आत्मा का आनन्द छलक-छलककर जब संसार के पदार्थों पर प्रक्षेपित होता है, तभी वे अपने को प्रिय तथा आनन्ददायक अनुभव होते हैं। संसार का कोई पदार्थ कोई व्यक्ति क्यों न हो, उसका प्रिय-अप्रिय लगना उसकी विशेषता पर निर्भर नहीं है। वह अपनी उस नि:स्वार्थ आत्मीयता पर निर्भर है, जो उसके साथ सम्बन्धित होती है। इस आध्यात्मिक क्रम को सदा याद रखना चाहिये कि आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से, प्रियता की उत्पत्ति आत्मीयता से होती है।

यदि सच्चे सुख और वास्तविक आनन्द की आकांक्षा है तो सांसारिक वस्तुओं अथवा विषयों का नहीं आत्मा की शरण में जाना होगा। उसी की आराधना एवं उपासना से आनन्द की यह आकांक्षा पूर्ण होगी। बाहर संसार में कुछ भी नहीं है। जो भी सुख आनन्द और रूप स्वरूप है वह सब अपने अन्दर और अपनी आत्मा में ही है। बाह्य संसार में जो रसानुभुति होती है। वह सभी अपने अन्तर की ही छाया मात्र होती है। जिसका आत्मा जितना-जितना स्पष्ट और व्यापक होता जाता है। उसकी छाया भी उतनी ही उतनी गहरी और स्थायी होती जाती है आभास के अनुपात से ही बाहर संसार के पदार्थों में भी उसी के अनुपात से सुख-सौन्दर्य की अनुभूति होती जाती है।

बाह्य वस्तुओं तथा विषयों से आत्मा को सुखी करने का प्रयास गलत है। सही प्रयास यह है कि आत्मा द्वारा उसके विकास और आभास द्वारा बाह्य संसार की विषय वस्तुओं को सुख एवं सौन्दर्य के योग्य बनाना चाहिए। जो कुछ है अपने अन्दर ही है। इसलिए अपने अन्दर, अपनी आत्मा को ही खोजना, समझना, पाना और बनाना चाहिए आत्मा के जागरण, विकास तथा विस्तार के उपलक्ष में ही यह कुरूप तथा क्लेश-पूर्ण संसार आनन्ददायक तथा आकर्षक बन सकता है। शाश्वत सुख और अक्षय आनन्द पाने का एक ही उपाय है, वह है आत्मीयता का भाव बढ़ाना। आनन्द की उत्पत्ति प्रियता से और प्रियता की उत्पत्ति आत्मीयता से होती है। जिस दिन मनुष्य का आत्म विस्तार संसार के अणु-अणु से आत्मीयता का सम्बन्ध बना लेगा। उस दिन उसके लिए यह सारा संसार आनन्द और सौन्दर्य का निधान बन जायगा और उसके लिए उसी प्रकार इस अनुभूति की कमी न रहेगी जैसे हमारे ऋषि मुनियों के लिए नहीं रहती थी।

शाश्वत आनन्द का अनुसंधान

आनन्द को पाना चाहते हो तो उसकी ओर कदम बढ़ाओ, लम्बी मंजिल पर एक-एक डग भरते चलने से ही उसकी समीपता का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

इसके लिए किसी साधन कुन्ज में एकान्त साधना की आवश्यकता न पड़ेगी। कर्म को त्यागकर कल्पना लोक में विचरने से कुछ काम न चलेगा। सत्कर्मों में निरत रहकर स्वेद बिन्दुओं के साथ-साथ आनन्द के मणि-मुक्तकों का संचय किया जा सकेगा। प्रभु को भेंट करने योग्य यंही सर्वोत्तम हार-उपहार है। उसको सत्प्रयासों में बहने वाले स्वेद सीकरों से गूँथा गया है।

आनन्द की खोज बालकों के भविष्य चिन्तन जैसी काल्पनिकता के आधार पर नहीं हो सकती है। और न बूढ़ों की तरह उसे अतीत की स्मृतियों की चर्चा करते रहकर पाया जाता है। उसके लिए कर्मनिष्ठ तरुणों की तरह वर्तमान से जूझना पड़ेगा। आनन्द गहरे कुऐं का जल है, जिसे ऊपर लाने के लिए देर तक प्रबल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरुषार्थ करना पड़ता है। मोती लाने वाले गहराई में उतरते और जोखिम उठाते हैं। आनन्द पाने के लिए गोताखोरों जैसा साहस और कुआँ खोदने वालों जैसा संकल्प होना चाहिए।

यदि सचमुच ही आनन्दित रहने की इच्छा हो तो फूलों से कुछ सीखो। वे स्वयं खिलते हैं और जो उधर से निकलता है, उसके होठों को खिलाते हैं। अपना सौरभ उदारतापूर्वक वायुमण्डल में बखेरते हैं। यह नीति अपनाकर कोई भी भीतरी आत्म-सन्तोष और बाहरी सम्मान का भाजन बन सकता है। मधु मक्षि- काएँ अनवरत श्रम करती हैं। वे उसका लाभ नहीं उठातीं। उपभोग तो दूसरे ही करते हैं। पर इस श्रम में संलग्न उनकी कर्मनिष्ठा सहज ही आनन्द का उपहार देती रहती हैं। यदि ऐसा न होता तो दूसरों द्वारा मधु निचोड़ लिये जाने के उपरान्त वे दूसरे दिन फिर क्यों उसी प्रयास में संलग्न होतीं। उद्देश्यपूर्ण सत्कर्मों की प्रतिक्रिया ही आनन्द के रूप में अनुभव की जाती है। जिन्हें सरसता की खोज है, उन्हें इसी राह पर चलना पड़ता है।

आनन्द का चिन्तन बुरा नहीं, पर उसे बीज की तरह गलना और उगना चाहिये अन्यथा नयनाभिराम वट वृक्ष की छाया में बैठकर सरसता का आस्वादन सम्भव न हो सकेगा। ध्यान और योग की अपनी उपयोगिता है, पर उतने भरसे सच्चिदानन्द का सान्निध्य सम्भव नहीं। भगवान का कोई स्थिर रूप नहीं, वे सक्रियता के रूप में गतिशील हो रहे हैं। इस विश्व की शोभा, स्वच्छता जिस दिव्य गतिशीलता पर निर्भर है। हम उसका अनुसरण करके ही प्रभु प्राप्ति के राजमार्ग पर चल सकते हैं। चिन्तन इसके लिये प्रेरणा देता है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए चलना तो पैरों को ही पड़ेगा। भावनाओं में प्राणों की प्रतिष्ठापना कर्मनिष्ठा ही काम करती है। सत्कर्मों में निरत हुए बिना आनन्द की अनुभूति आज तक किसी को भी नहीं हो सकी है।

नीरसता क्या है? निष्क्रियता, उद्विग्नता क्या है? अनर्थ में अभिरुचि। हमारे जन्मजात आनन्द अधिकार को इन दोनों ने ही छीना है। जीवन नीरस लगता है। क्योंकि सत्प्रयोजन की दिशा में हम निष्क्रिय बने रहते हैं। हम उद्विग्न रहते हैं क्योंकि अकर्म और कुकर्म करके आत्मा को चिढ़ाते और बदले में चपत खाते हैं। यदि आनन्द अभीष्ट हो तो निरानन्द की दिशा में चल रही अपनी दिगभ्रान्त यात्रा का क्रम बदलना पड़ेगा। एक क्षण के लिए रुकें और देखें कि जो चाहते हैं उसे पाने की दिशा और चेष्टा सही भी है कि नहीं। चिन्तन के फलस्वरूप आनन्द की प्राप्ति का जो माहात्म्य बताया गया है, उसका आधार यही है कि वस्तुस्थिति को नये सिरे से समझें और जीवन-नीति का नये सिरे से निर्धारण करें।

आत्मानुसंधान देगा सहजानन्द

'आनन्द' अध्यात्म की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जो व्यक्ति इसे प्राप्त कर लेता है, उसकी अवस्था आध्यात्मिक दृष्टि से काफी उच्च मानी जाती है। इस आनन्द का उद्घाटन हर एक में हो सकता है। पर सर्वसामान्य में इसका निमित्त कोई दूसरा होता है, इसलिए वह क्षणभंगुर है और भौतिक भी, जबकि आध्यात्मिक आनन्द चिरस्थायी और अभौतिक अर्थात् आत्मिक है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि बाह्य वस्तुओं में हमें जहाँ-जहाँ, जब-जब सुख की अनुभूति होती है, वह वस्तुतः हमारे अंतस के आनन्द की ही छाया मात्र है, क्योंकि बाहरी उपादानों में सुख कभी होता नहीं। जो होता है, वह मात्र दुःख है। यदि भौतिक पदार्थ आनन्द के स्रोत रहे होते तो जिस चीज से एक को प्रसन्नता मिलती है। दूसरे के लिये भी वह उत्फुल्लतादायक ही होनी चाहिए थी। पर दैनिक जीवन में जो अनुभव होते हैं। वह इसके ठीक विपरीत हैं। देखा जाता है कि जो सामग्री हमारे जीवन में सुख और शान्ति बनकर आती है, दूसरे के लिए वही महान दुख का कारण बन जाती है। जड़ पदार्थ सचमुच ही यदि प्रसन्नता के उद्गम हैं, तो आकुलता विपन्नता का निमित्त उन्हें क्यों बनना चाहिए। यदि बनते हैं, तो निश्चय ही समझने में कोई भूल हुई और हम कुछ के कुछ मान बैठे हैं। कुत्ता सुखी हड्डी चबाता है तो समझता है कि खून हड्डी से निकल रहा है। वह जोर-जोर से चूसता है और आनन्दित होता रहता है। जबकि वास्तविकता यह है कि रक्त उसके जबड़ों से निकलता रहता है। उसे वह अस्थि से बाहर आता मान चबाता रहता है। रस उसे मिलता है, यह सत्य है, पर आस्वादन उसके अपने ही रस-रक्त का है, हड्डी का नहीं-अन्दर का है, बाहर का नहीं। पानी से यदि प्यास बुझती है तो उससे सबकी बुझनी चाहिए, ऐसा नहीं कि किसी की बुझे और किसी की नहीं। कोई यदि यह कहे कि सभी की तो बुझती है, पर वह अतृप्त बना रहता है, तो इसमें त्रुटि उसकी अपनी है, पानी की नहीं।

आत्मगत सत्य और वस्तुगत सत्य में यही अंतर है। एक से सम्बन्धित सत्य की उपलब्धि दूसरे में नहीं की जा सकती और न यही संभव है कि एक सच दूसरे का पर्याय बने। द्रव्य का गुण आत्मा में ढूँढ़ना बेईमानी है और आत्मा का धर्म पदार्थ और संसार में तलाशना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नासमझी। संसार में सौन्दर्य भरा पड़ा है। कोई उसको निहार कर गद्‌गम होता रहता है, जबकि दूसरे को उससे वह सुख नहीं मिल पाता। यदि सौन्दर्य है, तो इसकी खोज करने वाले प्रत्येक अन्वेषक को इससे सुख मिलना चाहिए, पर ऐसा कहाँ होता है। जिस सौन्दर्य से भोग और विलासिता से हमें आनन्द मिलता है, उसी से कोई 'बुद्ध' भाग खड़ा होता है, विरागी बन जाता है। यदि सौन्दर्य सच्चा है, तो यह विरोधाभास नहीं दिखाई पड़ना चाहिए। कोई नयनाभिराम सौन्दर्य के बीच रहकर भी अतृप्त बना रहता है, जबकि दूसरा घोर नरक जैसी परिस्थितियों में भी स्वर्गीय सुख की प्रतीति करता है। आखिर ऐसा क्यों?

गहराई से विचार करने पर यही ज्ञात होता है कि जिस शाश्वत संतोष की तलाश हम बाहर करते रहते हैं। वस्तुतः वह अन्दर की वस्तु है। बाहर यदि उसकी अनुभूति होती है, तो वह भी भीतर का ही विस्तार है। जैसे-जैसे हम गहराई में प्रवेश करते चलते हैं। वैसे-वैसे इस तथ्य की अनुभूति और अधिक स्पष्ट होती जाती है। हम सुख को बाहरी वस्तुओं में ढूँढ़ना चाहते हैं। सुख वहाँ है नहीं, इसलिए दुख भोगना पड़ता है। इतना जानते समझते हैं हुए भी व्यक्ति आज संसार में साधनों के पीछे शांति के लिए भागता फिर रहा है। कोई इसे किसी चीज में खोजने का प्रयास कर रहा है तो दूसरा किसी अन्य विषय में इसके अन्वेषण का प्रयत्न कर रहा है। सभी प्रयत्नशील हैं, पर आज तक इनमें से कोई भी इस सनातन सुख को उपलब्ध कर पाने में सफल न हो सका। पत्नी सोचती है कि उसे पति में सुख मिलेगा और पति सोचता है कि वह इसे पत्नी से प्राप्त कर लेगा। माँ, बेटे में सुख ढूँढ़ रही है, जबकि बेटे को इसकी तलाश माँ में है। पिता, पुत्र में-पुत्र पिता में, संसारी, संसार में और वैरागी विराग में इसे अपने-अपने ढंग से खोज रहे हैं। पर उनकी अब तक की यह खोज यात्रा पूरी न हो सकी है और न भविष्य में पूरी होने की आशा है, क्योंकि जिन्हें हम सुख का स्रोत मान बैठे हैं, वे इसके उद्‌गम हैं नहीं

आश्चर्य तो तब होता है, जब यह विदित होता है कि जिनमें हमें शान्ति की तलाश है, वे इसकी खोज कहीं अन्यत्र कर रहे हैं। शरीर उनका कुछ कर रहा है, मन कुछ और ढूँढ़ रहा है। शरीर कहीं है और मन कहीं और है। अधिकांश व्यक्तियों की आज ऐसी ही स्थिति है। वे अपने में होते नहीं। उनका शरीर यन्त्रचालित सा चलता रहता है। काम करता रहता है। किन्तु संपूर्ण आपा वहाँ उपस्थिति नहीं होता। इसलिए उनसे भेंट सम्पूर्ण रूप से होती नहीं। मिलन मात्र शरीर से हो पाता है। जो मन-प्राण के बिना अधूरा है। जो तृप्ति का अन्वेषण बाह्य विश्व में करते रहते हैं, उनकी सत्ता हर वक्त अधूरी बनी रहती है। ऐसे लोगों को थोडी भी ठोकर लगती है तो एकदम असंतुलित होकर गिर पड़ते हैं और फिर गिरते ही चलते हैं। गिरने पर या तो आत्महत्या कर लेते हैं या फिर पागल हो जाते हैं। जो तनिक बुद्धिमान हैं वे नाम मात्र के वैरागी बन कर इधर-उधर भटकने लगते हैं। यही कारण है कि इन दिनों विक्षिप्तों, अर्ध विक्षिप्तों और वैरागी कहे जाने वाले वेशधारियों की संख्या कुकुरमुत्तों की तरह द्रुतगति से बढ़ती ही जा रही है, क्योंकि वर्तमान में लोगों की यात्रा भीतर से बाहर की ओर हो गई है, जबकि होना इसके विपरीत चाहिये।

कभी यही स्थिति भर्तृहरि के समक्ष भी उपस्थिति हो गई थी। उनका विश्वास था कि संतुष्टि बाहरी विषय-वासनाओं द्वारा संभव है। इसकी प्राप्ति के लिए न जाने वे कितने मार्गों में, विषयों में, वासनाओं और स्थानों में भटकते रहे, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हर जगह उन्हें निराशा हाथ लगी, फिर भी वे हताश नहीं हुए। एक सामान्य व्यक्ति और उनमें यही मूलभूत अंतर था। वे सजग रहते हुए अन्वेषक भाव से उस बात की पुष्टि कर लेना चाहते थे, जिसमें आनन्द को संसार में बिखरा बताये गया। आरंभ में कुछ क्षण तो उन्हें बताया गये विषयों और वस्तुओं में आनन्द तो मिला, पर चिरस्थायी न रह सका। फिर दूसरे, तीसरे और चौथे में उनकी खोज आरम्भ हुई। हर बार स्थिति एक जैसी अनुभव हुई। इस प्रकार भटकाव भरी लम्बी जिन्दगी के उपरान्त उनने जिस पुस्तक की रचना की, उसका नाम है— "श्रृंगार शतक" इस पुस्तक में उन्होंने बाह्य जगत में सुखोपलब्धि की व्यर्थता का विस्तार से उल्लेख किया है। इसके बाद उनकी अंतर्यात्रा शुरू हुई। इसके अनुभवों को उनने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "वैराग्य शतक" में लिपिबद्ध किया है और बताया है कि स्थिर आनन्द की उपलब्धि आंतरिक एवं मात्र आंतरिक है। लगभग मिलता-जुलता भाव प्रकट करते हुए मूर्धन्य मनीषी जुंग ने अपनी पुस्तक "मॉडर्न मैन इन सर्च ऑफ ए सोल" में कहा है कि आरंभ में मनुष्य सम्बन्धी मान्यता यह थी कि वह मात्र एक शरीर है और यह संसार उसके उपभोग के निमित्त है। ऐसी स्थिति में वह तुष्टि का संधान साधन-सामग्रियों में करता था और उसी के अधिकाधिक भोग में लिप्त रहता था। इसमें कइयों को संतुष्टि अनुभव हो भी जाती थी और कई अशांत बने इधर-उधर शांति की तलाश में करते रहते थे। अब जबकि शरीर के अन्दर आत्मा की उपस्थिति को विज्ञान ने भी करीब-करीब स्वीकार लिया है, संभव है उसकी उपलब्धि से व्यक्ति को संपूर्ण सुख की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धि हो जाय और उसे पहले की तरह निरर्थक भटकना न पड़े। इसीलिये वे सलाह देते हुए कहते हैं कि यदि सचमुच ही मनुष्य के अन्दर वैसा कोई अद्भुत तत्व है, जिसकी प्राप्ति ही चरम प्राप्ति साबित हो और जिसके उपलब्ध हो जाने से सब कुछ उपलब्ध हो जाता हो, तो मनुष्य को उसी परम तत्व की शोध में जुट जाना चाहिए।

''स्प्रिचुअल क्राइसिस ऑफ मैन'' नामक ग्रंथ में विख्यात विचारक पाल ब्रण्टन लिखते हैं कि अध्यात्म की खोज वस्तुतः अपने ही अन्दर की खोज है, जबकि संसार जड़ पदार्थों के अनुसंधान की यात्रा है। विज्ञान जड़युक्त है। अध्यात्म चेतनायुक्त है। जड़ में जड़ की ही शोध की जानी चाहिए। उससे जो कुछ हस्तगत होगा, वह जड़वत् होगा, जबकि आनन्द चेतनामय है। यह आत्मा का गुण है। आत्मा चैतन्य है, अस्तु इसे प्राप्त कर ही उस अवस्था में प्रतिष्ठित हुआ जा सकता है, जिसे भारतीय अध्यात्म में ''सच्चिदानन्द''कहकर निरूपित किया गया है। वे लिखते हैं कि इन दिनों भूल यह हो गई कि हम जड़ में चेतना को 'आत्मा को खोजते फिर रहे है। परा प्रकृति को अपरा प्रकृति में ढूँढ़ रहे हैं, जबकि दोनों दो पृथक् विज्ञान हैं। जिस दिन यह निरर्थक प्रक्रिया बंद होगी, उसी दिन से मनुष्य की वास्तविक आध्यात्मिक यात्रा शुरू होगी। फिर उसे शाति और संतोष के लिए बाहर भटकना नहीं पड़ेगा।

इसके लिए उपाय यही है कि हम उपलब्ध साधनों में ही संतुष्ट रहें और धीरे-धीरे संतोष को बढ़ाते हुए साधन को घटाते चलें तो एक दिन उस अवस्था में पहुँच सकते हैं। जिसको ''सहजानन्द'' कहा गया है। शुरूआत यदि इससे उलटी हुई अर्थात् साधन को बढ़ाया और संतोष को घटाया गया, तो वह त्रासदायी अवस्था आ पहुँचेगी, जो आजकल चारों ओर छायी दिखाई पड़ती है। प्रथम स्थिति में हमारी यात्रा अंतर्जगत की ओर होती है। जबकि दूसरी अवस्था हमें बहिर्जगत की ओर ले जाती है। प्रथम सुखदायी है, दूसरी दुःखदायी। इस अर्थ में कि यदि हम बाहरी दुनिया और उसकी वस्तुओं से अपना सुख जुड़ा मानते हैं। तो उसके दुख भी हमसे संलग्न होते चले जायेंगे। यह पंचभौतिक विश्व नश्वर है। उसकी एक-एक चीज नाशवान है। हमारा मोह जिससे संयुक्त है, वह भी एक-न-एक दिन समाप्त होगा ही। इसीलिए तत्ववेत्ताओं ने प्रेम की वस्तु परमात्मा को बतलाया है। हमारी आत्मा उसी का अंशधर है। योग द्वारा आत्मा के माध्यम से परमात्मा को उपलब्ध करना ही अध्यात्म का उद्देश्य है। सर्वोच्च शांति एवं परमानंद इसी अवस्था में प्राप्त की जा सकती है। इसी के निमित्त हमारा प्रयत्न होना चाहिए।

अन्तकरण की पुकार अनसुनी न करें

परमात्मा हमसे निरन्तर बात करना चाहता है—करता है—पर एक हम हैं जो उसकी स्नेह भरी वाणी सुनने तक से इन्कार करते रहते हैं। परमात्मा का सबसे निकटवर्ती निवास-स्थान हमारा अन्तकरण ही है। वहाँ बैठकर वह हमारे हित का कल्याण का परामर्श निरन्तर देता रहा है। वह चाहता है उनका परमप्रिय पुत्र उसी के जैसा महान बने, अपनी महान गरिमा का परिचय दे और उसी तरह सत्-चित् आनन्द की अनुभूति का निरन्तर रसास्वादन करता रहे जैसा कि यह स्वयं करता है।

यदि ध्यानपूर्वक सुना तो प्रतीत होगा कि कोई अविज्ञात देव सत्ता हमारे अन्तःकरण में से ऐसी उमंगें उत्पन्न करती रहती है जिनमें देवत्व की ओर बढ़ चलने के स्पष्ट संकेत होते हैं। मनुष्य जीवन की गरिमा का, आत्मा के उच्चस्तर का बोध हो सके इसके लिए आवश्यक प्रकाश हृदय गुफा में निरन्तर टिम-टिमाते रहते हैं ताकि हम अपनी सत्ता और महत्ता के सम्बन्ध में यथार्थता से परिचित हो सकें हम क्षुद्र प्रयोजनों के लिए नहीं जन्मे हैं। कीट पतंगों से हमारी स्थिति कहीं ऊँची है उसी अनुपात से हमारा कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्व भी अत्यधिक है। कृमि-कीटक और पशु-पक्षी, पेट और प्रजनन की सीमित परिधि में आबद्ध हेय जीवन जीकर सन्तुष्ट रह सकते हैं, पर यदि मनुष्य ने भी उतनी ही संकीर्ण सीमा में मरना, खपना अंगीकार कर लिया तो फिर समझना चाहिए कि उस पर किया गया ईश्वर का विशेष परिश्रम निरर्थक ही चला गया।

ईश्वर ने मनुष्य को बड़े-बड़े स्वप्नों और अरमानों की पूर्ति के लिए बनाया है। प्रभु के सहायक के रूप में, सृष्टि में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने के लिए मानव प्राणी का आविर्भाव हुआ है। शासन-सत्ता का केन्द्र राजा में निहित होता है। पर शासकीय सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व तो मन्त्री तथा अधिकारी लोग ही वहन करते हैं। इसी प्रकार ईश्वर, सृष्टि का सूत्रधार अवश्य है। पर उसके सुसचांलन का कार्य उसने मनुष्य को ही सौंपा है। जो साधन अन्य किसी प्राणी को नहीं मिले वे केवल मनुष्य को इसीलिए दिये गये हैं कि उनकी सहायता से अपना प्रयोजन ठीक तरह पूरा कर सके। मंत्रिपरिषद के सदस्यों को मोटर, बँगला, सहायक कर्मचारी, टेलीफोन आदि के सुविधा-साधन तथा अतिरिक्त अधिकार इसीलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रदान किये जाते हैं कि वे सौंपे गये कर्तव्यों का निर्वाह उन उपकरणों की सहायता से अधिक अच्छी तरह कर सकें।

ईश्वर अन्त:करण में बैठा हुआ अपनी मंद किन्तु स्पष्ट वाणी से उन तथ्यों का स्मरण कराता रहता है। जो मानव जीवन के साथ विशेष रूप से जुड़े हुए हैं। टेलीफोन की आवाज तब सुनाई देती है जब चोंगा कान पर लगाया जाय यदि चोंगा उठाकर दूर रख दिया जाय तो उससे आने वाली आवाज सुनी न जा सकेगी। अन्त:करण एक तरह का ईश्वरीय टेलीफ्रोन है। उसे समीप रखकर यदि ध्यानपूर्वक सुना जाय तो वहाँ ऐसे संकेत, निर्देशों की तरंगें निरन्तर उठ रही होंगी जो मनुष्य जन्म के साथ जुड़े हुए महान उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए परामर्श देते हैं और सचेत करते हैं कि इस संदर्भ में उपेक्षा करते रहने से भयंकर अनर्थ का सामना करना पड़ेगा।

जो अनुदान अन्य किसी प्राणी को नहीं मिले, वे यदि मनुष्य को अकारण या अनायास ही दिये गये होते तो यह ईश्वर का अन्याय और पक्षपात ठहरता। हम सामान्य मनुष्य भी अपने बालकों को समान प्यार देने का प्रयत्न करते हैं। कूकरी और शूकरी तक अपने सभी बच्चों को समान उदारता से दूध पिलाती है। फिर ईश्वरीय सत्ता इतनी निर्दय कैसे हो सकती थी कि एक ही जाति के प्राणी को बोलने, सोचने, कमाने, उपभोग करने के अनेकानेक सुखद साधन प्रदान करे और शेष प्राणियों को उन सुविधाओं से सर्वथा वंचित कर दे। निस्संदेह परमेश्वर को सभी प्राणी समान रूप से प्यारे हैं, और उसने शरीर यात्रा के आवश्यक साधन सभी को समान रूप से प्रदान किये हैं। मनुष्य को जो अतिरिक्त मिला है वह तो विशुद्ध रूप से एक अमानत है।

बैंक के खजांची भी तो बैंक की विपुल सम्पदा अपने अधिकार में रखते हैं; पर वे उसका उपयोग बैंक के कार्य में ही करते हैं। उस सम्पत्ति को अपनी व्यक्तिगत समझलें और निजी सुविधा के लिए खर्च कर डालें तो उस अपराध में उन्हें कठोर कारावास भुगतना पड़ेगा। मनुष्य को मिला विशेष वैभव एक पवित्र धरोहर है जो लोक मंगल में नियोजित करने के लिए दी गई है। ईश्वर ने अपने जेष्ठ पुत्र पर यह विश्वास किया है कि उसे जो वस्तु जिस काम के लिए दी गई है वह उसी में खर्च करेगा। यदि ऐसा न करके उस सम्पदा को मनुष्य अपनी विलासिता, अहंता की पूर्ति में खर्च करने लगे, वासना और तृष्णा के क्षुद्र प्रयोजनों में नष्ट कर डाले तो समझना चाहिए कि अनर्थ ही किया गया है और न्यायाधीश की प्रताड़ना से बचा न जा सकेगा।

अन्त:करण में विराजमान परमेश्वर निरन्तर यही संकेत करता है कि जीवन सम्पदा के बहुमूल्य क्षण घटते चले जा रहे हैं, दीपक का तेल शनै:-शनै: चुकता जा रहा है। जो किया जाना था वह नहीं किया गया-इस भयावह भूल का समय रहते परिमार्जन कर लिया जाय अन्यथा कष्टकर पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ शेष न रह जायेगा। यह चेतावनी आसानी से सुनी जा सकती है कि मनुष्य जीवन इन्द्रिय लिप्सा और तृष्णा की बाल-क्रीड़ा में गँवा नहीं दिया जाना चाहिए। इसका वह उपयोग होना चाहिए जिसका अरमान लेकर सृजेता ने इस दिव्य अनुदान को उदारता पूर्वक प्रदान किया था। मनुष्य को विश्वस्त समझा गया है, इसीलिए इतनी बहुमूल्य अमानत उसके हाथ में थमा दी गई है। विश्वासघात की आशंका रही होती तब तो वह मिला ही न होता जिसे पाकर हम गर्वोन्मत्त हो रहे हैं और वह कर रहे हैं जिनके करने की कुछ भी आवश्यकता न थी।

जब हम अपने मस्तिष्क में उच्चस्तरीय विचारों को भरे होते हैं और हृदय में उच्च भावनाएँ सँजोये रहते हैं तो प्रतीत होता है अन्त:क्षेत्र में एक सन्तोष भरा निर्झर प्रवाहित हो रहा है। जब हम सत्कर्म-परायण होते हैं, पेट और प्रजनन के पशु-क्षेत्र से आगे बढ़कर परमार्थ प्रयोजन में निरत रहते हैं। तब अन्तकरण की शान्ति एवं शीतलता देखते ही बनती है। लगता है अपना आपा सहस्र भुजाएँ उठाकर आशीर्वाद दे रहा है, सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों में जितने समय निमग्न रहा जाय उतने समय तक यह प्रतीत होता रहेगा मानो देवताओं द्वारा पुष्प वृष्टि की जा रही है और अमृत में स्नान करने की तरह अपना रोम-रोम पुलकित हो रहा है। कर्तव्य-पालन और सेवा साधन के लिए भले ही कष्ट उठाया गया है-भले ही हानि सही गई हो, अन्त:क्षेत्र में यही अनुभूति होती रहे मानो कोई बड़ा लाभ कमा लिया गया।

जब हम दुष्कर्म करते हैं तो पैर काँपते हैं, गला सूखता है, दिल धड़कता है यह आत्म-प्रताड़ना है जो भीतर ही भीतर कोंचती-कचोटती है। अवांछनीय स्वार्थ सिद्ध करके कोई भी चैन से नहीं बैठ सकता उसके भीतर ही विद्रोह की आग भड़केगी और लगेगा अन्त:क्षेत्र में देवासुर संग्राम छिड़ गया। असुर हमें पाप कर्म की ओर खींचता है इसके विपरीत देवता का आग्रह होता है कि कुमार्ग का अनुसरण करके विनाश के गर्त में न गिरा जाय न आत्म-गौरव का हनन किया जाय। जब तक हम अनौचित्य का परित्याग न करेंगे आन्तरिक विद्रोह के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण उत्पन्न घोर अशान्ति से छुटकारा न मिल सकेगा। प्रतीत यही होता रहेगा कि हम तुच्छ को पाने के लिए महान को बर्बाद करते चले जाने वाले पतित स्तर के नर-पशु बन रहे हैं। मानवी सौभाग्य से वंचित होते चले जा रहे हैं।

अन्त:करण की वाणी सुनें, उसके परामर्श पर चलें तो समझना चाहिए ईश्वर के स्नेह, दुलार का समझना, स्वीकार करना हमने सीख लिया। सर्वतोमुखी श्रेय प्राप्त करने के लिए एकमात्र यही राजमार्ग है।

प्रभु दर्शन की पूर्व-भूमिका

भगवान की कृपा मनुष्य पर बरसी या नहीं। इसकी पहचान क्या है? इस सम्बन्ध में ईश्वर विश्वासियों की इच्छा निरन्तर बनी रहती है। कई सोचते हैं कि ईश्वर जिस पर प्रसन्न होते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, आदि के रूप में उनके सामने आ खड़े होते हैं। साथ ही यह भी कहते है कि "वरदान माँग" अर्थात् "इच्छित मनोकामना को पूरी कराने के लिए जो सहायता चाहता हो उसे कह और ले।" मोटी धारणा यही है।

कई हृदयाकाश में प्रकाश ज्योति का दर्शन करते हैं। समाधिस्थ एकाग्र हो जाते हैं। वैराग्य धारण करके ऐसा सोचते हैं कि संसार को कुटुम्ब परिवार को भवबन्धन समझकर उन्हें त्याग दिया तो जीवन-मुक्त हो गये। जन्ममरण के बंधन से छूट गये। कई 'सोदम' साधना में श्वाँस के साथ चलने वाली आवागमन की ध्वनियों को सुनते हैं। कइयों को कान बन्द कर लेने पर घंटा, शंख, मृदंग, मंजीर गर्जन आदि के शब्द सुनाई पड़ते हैं और लगता है कि ईश्वर के सांकेतिक वचन सुन रहे हैं। उसका अर्थ समझने लगेंगे तो त्रिकालदर्शी बन जायेंगे।

कुछ को षट्चक्रभेदन की कल्पना उभरती रहती है। चिर सेवित कल्पना भावना बन जाती है। इस भावना की मस्ती में वे चक्र आदि प्रगाढ़ ध्यानावस्था का पुट लगाकर यथार्थवत् दीखने लगते हैं। वस्तुत: वे सूक्ष्म शरीर में अवस्थित हैं। स्थूल शरीर में जहाँ-तहाँ नाड़ी गुच्छक ही हैं। उन्हें सूक्ष्म शरीर में चक्रों की उपस्थिति बताने वाले संकेत भर कहा जा सकता है। प्लेक्सस को ही चक्र मान लेना उचित नहीं।

ध्यान के लिए शरीर के भीतर ही कई महत्वपूर्ण स्थान हैं, जिनमें सघन एकाग्रता की साधना करके कई प्रसुप्त पड़े केन्द्र के सूक्ष्म प्राण को जगाया जा सकता है। मस्तिष्क के मध्य में सहस्रदल कमल है। उसे विष्णु भगवान की शेष शैया की अलंकारिक महत्ता दी गयी है। उसी को कैलाश मान-सरोवर की भी उपमा दी गयी है। मस्तिष्क के ग्रे मैटर रूपी समुद्र में जहाँ-तहाँ पड़े नाभिक केन्द्र रूपी द्वीप भी होते हैं। जिनकी जागृति परामानसिक शक्तियों को जन्म देती है। मस्तिष्क में भरे द्रव्य सी० एस० एफ० को ही विष्णु भक्त क्षीरसागर की उक्ति देते हैं।

ध्यान की परिपक्वावस्था में यह सहस्रार कमल और ब्रह्मरंध्र शिव या विष्णु का निवास स्थान प्रतीत होता है। इस प्रतीति को श्रद्धा के समन्वय से और भी अधिक प्रगाढ़ बनाया जा सकता है। मस्तिष्क मध्य हृदय भाग और नाभि मध्य में ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं शिव ग्रन्थि भी है, जिनके संबंध में कहा जाता है कि इन गाँठों के बंधनों में जीव बँधा है। यदि उन्हें खोला जा सके तो मुक्ति मिल सकती है।

नादयोग और सोहम् साधना के विषय में भी उनके बढ़े-चढ़े माहात्म्यों की चर्चा की जाती है। कुण्डलिनी जागरण भी ऐसा ही प्रसंग है, जिसकी उपमा ज्वालामुखी फटने से दी जाती है। इतना सब होते हुए भी साधारणतया साधना क्षेत्र को जिज्ञासुओं में यही भ्रम बना रहता है कि यह शक्ति केन्द्र स्थूल शरीर में विद्यमान है और ध्यान, मर्दन, योगासन आदि करने से यही स्थान अपना चमत्कारी प्रतिफल दिखाने लगते हैं।

इस भ्रम से जितनी जल्दी उबरा जाय उतना ही उत्तम है। शरीर के अंग-अवयवों की संरचना और कार्य पद्धति काय विज्ञानी भली प्रकार जानते हैं। इस जानकारी के सम्बन्ध में कोई भ्रम हो तो उसे किसी मृत शरीर के शल्य क्रिया करके जाना जा सकता हैं। विशेषज्ञों के मतानुसार यह भी समझा जा सकता है कि किस अवयव की कार्य-पद्धति क्या है और उनमें क्या-क्या गुण-दोष उत्पन्न होते रहते हैं या हो सकते है इस कथन और अध्यात्मिक विवेचन का परस्पर कोई तालमेल नहीं खाता। आध्यात्म का आरम्भ सूक्ष्म शरीर से होता है। स्थूल शरीर तो रक्त, माँस, अस्थि, मज्जा आदि का समुच्चय है। वह तनिक सी बीमारी के चोट के आघात से कुम्हलाते, तिलमिलाते देखा गया है। वृद्धावस्था की जीर्णता भी ऐसी होती है। जिसमें कई साधनाएँ संभव नहीं रहतीं। आँख में दृष्टि दोष आने पर त्राटक नहीं हो सकता। कान में बहरापन छा जाने के उपरान्त नादयोग की साधना सम्भव नहीं। इसी प्रकार मनोबल घट जाने पर ध्यान की स्थिति अस्तव्यस्त जैसी रहने लगती है। घुटने जकड़ जाने पर वे पूरी तरह खुलते नहीं। ऐसी दशा में विभिन्न प्रकार के आसन लगाना असम्भव हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमर झुक जाने पर वे प्राणायाम नहीं हो सकते, जिनके लिए कमर सीधी रखने की आवश्यकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि युवावस्था के नीरोग शरीर में ही शरीरगत साधनाएँ बन पड़ती है।

इन कठिनाइयों के रहते यह नहीं कहा जा सकता कि साधना का उपयुक्त काल तो आयुष्य की चौथी अवस्था में है। इसीलिए चतुर्थ आश्रम बनाया गया है, यह कहाँ तक ठीक है। यदि स्थूल शरीर ही साधना केन्द्र रहा होता तो बालकपन ढलती आयु-वृद्धावस्था से घिरा हुआ जीवन निरर्थक चला जाता। मात्र तरुणाई ही इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त काल माना जाता है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। ध्रुव के बालकपन में, च्यवन ने वृद्धावस्था में, आद्य शंकराचार्य ने भगंदर के फोड़े से ग्रसित रहते हुए रुग्णावस्था में भी कठोर साधनाएँ की थीं। समाधि अवस्था में तो शरीरगत स्पंदन अधिकतम रुक जाते हैं। ऐसी दशा में शरीर के किन्हीं अंग विशेषों को प्रभावित करने की प्रक्रिया कैसे चल सकती है। वह तो मृत मूर्च्छित जैसी स्थिति होती है।

इन समस्त तथ्यों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर द्वारा उच्चस्तरीय साधनाएँ बन पड़ना असंगत है। वह तो सूक्ष्म शरीर में समाहित दिव्य केन्द्रों द्वारा ही बन पड़ती है। इसलिए उसे शरीर के साथ गुँथा नहीं रहने देना चाहिए। उसका शरीराभ्यास घटाना या मिटाना चाहिए। इसी उपाय से शरीर इस लायक बन पाता है कि वह समयानुसार सूक्ष्म शरीर को आवश्यक छूट देकर उसे साधनारत रह सकने की सुविधा प्रदान कर सके। लोभ, मोह और अहंकार के बंधनों को हथकड़ी-बेड़ी तक की उपमा दी जाती है। इन बंधनों के पूरी तरह कसे रहने पर सूक्ष्म शरीर के लिए इतना संकट भय नहीं रहता कि वह शरीर बोध से विरत होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता में विकसित हो सके और उन उच्चस्तरीय साधनाओं का अभ्यास कर सके, जिन से दिव्य क्षमताओं, दिव्य विभूतियों की प्राणी को उपलब्धि होती है।

शरीर के स्वस्थ रहने से मन स्वस्थ रहता है और सौंपे गये दायित्वों को पूरा कर सकता है। इसलिए उचित है कि साधना के प्रथम सोपान में प्रवेश करते हुए काया को बलिष्ठ और नीरोग रखा जाय इस प्रकार के नियमों का पालन, उपायों को अपनाना साधना का प्रथम चरण कहा गया है। संयम, ब्रह्मचर्य, आहार-विहार की संतुलित, सात्विकता का अपनाया जाना आवश्यक है ताकि शरीर की नीरोगता और मन की सौम्यता अक्षुण्ण रहे। राजयोग के आठ सोपानों में से प्रथम यम और नियम इसी निमित्त है कि शारीरिक सात्विकता अपनाकर चौथाई योगाभ्यास किया जा सके। इसके बिना मन के कषाय-कल्मष न घटते हैं न मिटते हैं। साथ ही चंचलता भी उद्वेगों से भरी होती है। वह ध्यान धारणा की प्रधान बाधा है। आसन प्राणायाम में शारीरिक क्रियाओं को जितना करना पड़ता है। उनसे अधिक मनोयोग का नियोजन करना पड़ता है। मन यदि सांसारिक ताना-बाना बुनने में व्यस्त और मस्त रहे तो किसी समय विशेष पर एकाग्रताजन्य ध्यान धारणा में लगाना कठिन होता है। आकाश में उड़ते पंछी को हाथ पसारकर कैसे पकड़ा जाय? जाल में तो उसे तभी फँसाया जा सकता है जब जमीन पर बैठा हो। शरीर को सौम्य सात्विक और मन को सुसंस्कारी बना लेने के उपरान्त ही यह सम्भव है कि मन शान्ति का आश्रय लेने लगे और निर्धारित धारणा में किसी प्रकार जमे। इसलिए जहाँ तक शरीर साधना का सम्बन्ध है वहाँ तक समग्र संयम की साधना का ही पूर्वार्द्ध समझा जा सकता है। उत्तरार्द्ध इसके उपरान्त ही सध पाता है। सूक्ष्म शरीर में जिन ऋद्धि-सिद्धियों के रत्न भण्डार भरे हुए बताये गये हैं। उन तक साधक की पहुँच तभी हो पाती है जब वह शरीर को साधने की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करले, संयम साध ले। आहार-विहार में सात्विकता का समावेश कर ले। मन को सुसंस्कारी बनाले। उसमें घुसी हुई कीचड़ को तृष्णा लिप्सा, वासना, अहंता को निरस्त करके सच्चे अर्थों में सज्जन, सुसंस्कृत, सभ्य बना ले।

त्रुटि सबसे बड़ी यही होती है कि वर्णमाला सीखे बिना लोग-बाग कालिज में पढ़ाया जाने वाला गणित पढ़ना आरम्भ कर देते है। ऐसी दशा में कोई कहने लायक सफलता कैसे मिले? किये गये अनेकों योगाभ्यास निष्फल चले जाते हैं। भव-बंधनों से जकड़ा मन आत्मिक उत्कर्ष के लिए कुछ करना चाहता है। मजबूरियों के निविड़ बंधन ऐसे बँधे रहते हैं कि उनके कारण कुछ करते धरते ठोस एवं स्थिर रूप से बन नहीं पाते, अतएव सफलता की दिशा में कुछ कहने लायक सफर नहीं बन पड़ता। यात्रा रास्ते में ही रुकी पड़ी रहती है।

सूक्ष्म शरीर की ही अधिकांश साधनाएँ हैं। कुण्डलिनी जागरण से लेकर ब्रह्मरंध्र, सहस्त्रकमल के प्रस्फुरण तक के सभी महान प्रयोजन सूक्ष्म शरीर में ही अवस्थित हैं। षटचक्रों से लेकर ग्रन्थि भेद तक की प्रक्रिया सूक्ष्म शरीर से ही सम्पन्न होती है। खेचरी मुद्राओं में अमृत पान किया जाता है। यह सूक्ष्म शरीर का ही अनुदान है। जिनने भी महत्वपूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। उनने चतुर्विधि मुक्त पाने के लिए यही प्रयास किया है कि शरीर और आत्मा के बीच बँधे हुए निविड़ बंधनों को शिथिल किया, खोला है। इस प्राथमिक मुक्ति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलने पर दूसरी परोक्ष मुक्ति सरल हो सकती है। परमात्मा के साथ आत्मा को जोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि भवबंधन से छुटकारा पाया जाय। इसकी उपेक्षा करके ऊँची छलांगें लगाना ऐसा ही है, जैसा पंखों के जकड़े रहने पर भी उन्मुक्त आकाश में विचरण करने के लिए मनोरथ करना।

भगवान की कृपा का प्रत्यक्ष दर्शन एक ही कसौटी पर कसा जा सकता है कि शरीर और आत्मा के बंधन ढीले हुए या नहीं? मनुष्य अन्तर्मुखी हुआ या नहीं। अपने स्वरूप महत्व एवं लक्ष्य को समझ पाया या नहीं? महत्त्व एवं लक्ष्य को समझ पाया या नहीं? ये अनुभूतियाँ यदि होने लगे तो समझना चाहिए कि भगवान की प्रत्यक्ष कृपा का दिव्य सत्ता का-दर्शन होने लगा और उसका चमत्कार प्रतिफल बंधनमुक्ति के रूप में ऊर्ध्वगमन के रूप में दीख पड़ने लगा।

ग्राह रूपी जीवात्मा की बंधनमुक्ति

गज और ग्राह की कथा है कि गज ग्राह के मुँह में फँस गया। एक पैर उसने निगल लिया और खींचकर जलाशय में ले गया। हाथी ने किनारे पर निकलने की बहुत कोशिश की, ग्राह की शक्ति गज से कम न थी। जब हाथी गहराई में चला गया और सूँड का सिरा मात्र बाहर रह गया तो उसने बचने की कोई सूरत न देखकर, भगवान को पुकार लगाई। भक्त- वत्सल आये और उनने ग्राह के मुख से गज को छुड़ाया। इस प्रकार गजेन्द्र मोक्ष का कथानक पूरा हुआ।

इस कथा का आध्यात्मिक रहस्य यह है कि जीव रूपी गज शरीर रूपी ग्राह के मुँह में फँस गया। निकलने का प्रयत्न करने के रूप में वह पूजा-पाठ, जप-तप भी बहुत करता है। पर बाहर निकल नहीं पाता। पुरुषार्थ निरर्थक चला जाता है। अन्त में स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि नाम मात्र को सूँड़ का अग्र भाग बाहर रह जाता है और उसकी अपनी समूची सत्ता ग्राह के क्षेत्र में सरोवर के कीचड़ फँस जाती है। ग्राह खींचता है। मायारूपी कीचड़ हाथी के भारी भरकम शरीर को और भी अधिक जकड़ती जाती है। फिर निकलना कैसे हो पाए?

आत्मा अपने स्वरूप, लक्ष्य, दायित्व को एक प्रकार से पूरी तरह भूल जाती है। उसकी सत्ता शरीराध्यास में पूरी तरह जकड़ जाती है। कहने को आत्मा और शरीर दो नामों से जाने जाते हैं। दोनों की भिन्नता भी सर्वविदित है। इस पृथकता पर आमतौर से चर्चा भी होती है। इतना ही नहीं, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण भी आये दिन मिलते रहते हैं। यदि थोड़ी देर भी लाश रखी रहे तो वह स्वयं सड़ने लगती है। सड़न तभी तक रुकी रहती है जब तक प्राण हैं। अन्यथा कायकलेवर उन्हीं तत्वों में मिल जाने के लिए व्यग्र हो उठता है। जिससे मिलकर वह बना था। स्पष्ट है कि काया और आत्मा की सत्ता पृथक्-पृथक् है। आत्मा प्रमुख है। काया उसका वाहन, आवरण, उपकरण। दोनों परस्पर मिल-जुलकर काम तो करते हैं पर उनकी पृथकता बनी ही रहती है।

आश्चर्य इस बात का है कि जीवात्मा अपनी मूलभूत सत्ता, महत्ता, गरिमा और दिशा-धारा को पूरी तरह भूल जाता है। शरीरगत इच्छाएँ, कामनाएँ, लिप्साएँ, जिधर भी चाहती हैं उधर ही उसे घसीट ले जाती हैं। यात्री नाव पर बैठता तो अपनी इच्छा से पर बैठने के बाद पराधीन हो जाता है। नाविक असावधान हो तो नाव-लहरें के साथ किसी भी दिशा में चल पड़ती है। लहरें की ठोकरों खाते-खाते किसी चट्टान से टकराकर उलट भी सकती है। किसी भँवर में फँसकर डूब भी सकती है। यात्री को तैरना न आता हो तो फिर बेचारे का ईश्वर ही मालिक है।

शरीर उन्हीं पंचतत्वों का बना है। जिनसे कि यह विचित्र आकृति और प्रकृति वाला संसार इसलिए सजातीय होने के कारण वे एक दूसरे को परस्पर खींचते और खिंचते हैं। शरीर को संसार में बहुरंगे स्वादों एवं आकर्षणों में बहुत रस आता है। उसका सोना-जागना सब इसी क्षेत्र में होता है। इसलिए असाधारण तन्मयता की डोर में वे गुँथ जाते हैं। मछली और पानी यद्यपि अलग-अलग हैं, फिर भी मछली उसके साथ इतनी तादात्म्य होती है कि साथी के बिना जीवित नहीं रह सकती। शरीर इन्द्रिय लिप्सा और ममताजन्य तृष्णा में पूरी तरह लिपटा रहता है। इन्हें न छोड़ना चाहता है और न साधारणतया यह बंधन टूटता है। भवबंधन इसी को कहा जाता है। उसका अर्थ है, मनुष्य का लिप्सा-लालसा के साथ पूरी तरह जकड़ जाना।

शरीर और संसार के प्रति यह बंधन अत्यधिक घनिष्ठ बन जाते हैं और दोनों की स्थिति अविछिन्न जैसी लगती है। इस स्थिति का दुर्विपाक यह है कि आत्मा अपने मूलभूत आधार परमात्मा की ओर से मुँह मोड़कर इस शरीर को ही अपना सर्वस्व मानने लगती है, जो स्वयं जड़ पदार्थों से बनता और उन्हीं में अहर्निश रमण करता रहता है।

मान्यता की दृष्टि से शरीर और आत्मा को पृथक् मानने में सैद्धान्तिक रूप से किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पर व्यवहारत सब कुछ उलटा ही होता है। 'स्व'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परक सभी अनुभूतियाँ इस प्रकार होती हैं मानो 'अहम्' की समूची परिधि शरीर और इच्छा, इच्छाओं एवं मान्यताओं के साथ एकाकार हो गई है। दूध पानी की तरह घुलकर एकात्म स्थापित कर चुकी है। अनुभूतियाँ ही अभ्यास बन जाती हैं। मनुष्य जो कुछ सोचता, चाहता, मानता और करता है। वह समग्र रूप से शरीर से ही सम्बन्धित होता है। शरीरगत स्वार्थ ही इष्ट बन जाता है। आत्मकल्याण का प्रयोजन साधने वाले परमार्थ की पूरी तरह उपेक्षा करने लगते हैं।

आत्मा ईश्वर का अविनाशी अंश है। उसका सघन सम्पर्क ब्रह्म चेतना के साथ ही है। मनुष्य जन्म उसकी सर्वोपरि कलाकृति है जो इसलिए मिली है कि उसे धरोहर समझा जाय तो और परमार्थ प्रयोजन की सिद्धि की जाय। परमार्थ के दो भाग हैं सिक्के को दो पक्षों की तरह एक आत्मा-कल्याण दूसरा लोक-मंगल। यही है जीवन लक्ष्य। इसी में इस जन्म की सार्थकता सन्निहित है। किन्तु इसके लिए प्रायः कुछ भी करते धरते नहीं बन पड़ता। शरीर की वासना, तृष्णा और अहंता की जकड़ इतनी मजबूत होती है कि उसे छोड़कर अन्य किसी कार्य के लिए अवकाश ही नहीं रहता। उत्साह ही नहीं जगता। जन्म से मरणपर्यन्त शरीर भाव ही छाया रहता है और उसी की कामना पूर्ति के लिए अहर्निशि प्रयास चलता रहता है। आत्म- कल्याण के लिए, जीवन-लक्ष्य की पूर्ति के लिए जो किया जाना चाहिए उसे करने में पग-पग पर व्यस्तता आड़े आती रहती है। अरुचि और उपेक्षा का भाव भी बना रहता है। आत्म-प्रवंचना के लिए-पूजा पाठ की औंधी-सीधी लकीर भर पीटी जाती है। मानो ईश्वर मनुहार और उपहार पाने के लिए ही लालायित बैठा रहता हो। उसे उस प्रयोजन की चिन्ता एवं स्मृति ही नहीं है जिसके लिए इस सुर दुर्लभ जन्म को बड़ी आशाओं के साथ धरोहर रूप में सुपुर्द किया गया था।

शरीर भाव और आत्म-भाव का गुँथ जाना ही माया की ग्रन्थि है। यही हथकड़ी, बेड़ी और ताले की तरह भवबंधन में बाँधती है एवं भ्रम जंजाल में भटकाती है। दोनों की पृथकता का भार जाग्रत होने पर कर्तव्य भी बँट जाते हैं। शरीर को कार्यरत रह सकने योग्य बनाये रखने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं का प्रबंध करने पर काम चल जाता है और इसके उपरान्त इस कलेवर से उन कार्यों को करने के लिए योजनाबद्ध रूप से अग्रसर होना पड़ता है जो लक्ष्य एवं इष्ट है। स्वार्थ को सीमित करके परमार्थ को असीम बनाना ही वह निर्धारण है, जिसे अपनाने पर उन विभूतियों की प्राप्ति होती है, जिन्हें स्वर्ग मुक्ति एवं ऋद्धि-सिद्धि के नाम से जाना जाता है।

परम पुरुषार्थ के नाम से एक ही सफलता को माना गया है कि शरीर और आत्मा की पृथकता एवं विधि व्यवस्था को भली प्रकार आत्मसात कर लिया जाय। उसी दृष्टि से सोचा और उसी विधि से योजनाबद्ध क्रिया-विधान बनाया जाय।

ऐसी सूझबूझ ही ईश्वर की वास्तविक अनुकम्पा है। गज की पुकार पर भगवान चक्र-सुदर्शन लेकर दौड़े थे और अपने भक्त को ग्राह के पाश से सरोवर के दलदल से उबारा था। शरीराभ्यास ही ग्राह है और सांसारिक प्रलोभनों का आकर्षण ही दलदल भरा सरोवर। इससे त्राण पाने में गज सफल हुआ था। देखना है कि अपने जीवात्मा को यह सुयोग मिलता है या नहीं।

ईश्वर विकास का चरम बिन्दु है

प्रख्यात पश्चिमी विचारक एडमण्ड लुसेण्ड का कहना है कि "मनुष्य का पूरा जीवन ही एक "इन्टेशनिलिटी"—अर्थात् एक गहन तीव्र इच्छा है। वह तीव्र इच्छा जिस भी दिशा में लग जाती है। उसी ओर मनुष्य की गति बन जाती है। यदि एक व्यक्ति चित्रकार होना चाहता है। मूर्तिकार होने की इच्छा रखता है अथवा उसकी प्रबल आकांक्षा वैज्ञानिक बनने की है। यदि वह अपनी समस्त प्राण ऊर्जा को अभीष्ट दिशा में नियोजित कर दे तो तदनुसार ढल भी जाता है पर जिसकी आकांक्षा प्रबल नहीं है अथवा जो कुछ बनना नहीं चाहता उसकी गति किसी भी दिशा में नहीं हो पाती। वह अपनी चैतन्य ऊर्जा को संग्रहीत करके किसी भी दिशा में गतिमान नहीं कर पाता। जिसके भीतर संकल्प का आविर्भाव ही नहीं होता, उसकी प्रगति कभी सम्भव नहीं हो पाती" । उप- निषद्कारों ने समय-समय पर इसी अभिव्यक्ति को विभिन्न रूपों में उद्धृत किया है।

सृष्टि का स्वयं का अस्तित्व भी किसी सुदृढ़ संकल्प की परिणित ही है। उपनिषदकारों ने इसे **'एकोऽहं बहुस्यामि'** के ब्राह्मी संकल्प के रूप में चित्रित किया है। सृष्टि के बाहर भी निरंतर विकास की प्रक्रिया सतत चल रही है। यहाँ प्रत्येक वस्तु विकास की प्रक्रिया से गुजर रही है। संसार "स्टेटिक"— ठहरा हुआ नहीं—सतत् चेतनशील—"डायनामिक" है। यहाँ प्रत्येक चीज बढ़ रही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है—क्रमशः उपर उठ रही है। जो ठहरा, गतिहीन प्रतीत हो रहा है, उसमें भी तीव्र वेग है। स्थिरता कहीं भी नहीं है। छोट-छोटे परमाणुओं में भी तीव्र हलचल है। प्रसुप्त शरीर में भी चेतना की असंख्यों दृश्य गतिविधियाँ चल रही हैं तथा जाने-अनजाने जीवन को गति दे रही हैं। निश्चेष्ट सोये शरीर के भीतर पाचन, परिवहन, श्वसन आदि के रूप में कितने ही तन्त्र हर क्षण सक्रिय हैं।

जगत का एक सुनिश्चित विकास क्रम है। जो सचेतन है। डार्विन ने भी इस सत्य को स्वीकार किया तथा अपने तथ्यों एव प्रमाणों के आधार पर उस सत्य को वैज्ञानिक शब्दावली में प्रतिपादन किया। विकास, की प्रक्रिया यह दर्शाती है कि सारा जड़-चेतन जगत किसी निश्चित मंजिल पर पहुँचना चाहता है। जीवन का सतत् प्रवाह भी किसी गन्तव्य पर पहुँचने का इच्छुक है। निश्चित ही कोई ऐसी मंजिल है, जहाँ जीव की पहुँचने की आकांक्षा है। सम्भव है उस मंजिल का ही नाम परमात्मा हो। विकास प्रक्रिया के कारण ही यह पता चल पाता है. कि संसार किसी गहन इच्छा से प्रवाहित होकर गतिशील है।

विकास के चरण में ही मुक्ति का बोध मनुष्य को होता है। बच्चा जब पहली बार जमीन पर चलना शुरू करता है तो उसकी प्रफुल्लता देखते ही बनती है। हिलते-डुलते, काँपते पैर एक सुदृढ आधार की, आत्म विश्वास की खोज करते हैं। कदमों के सँभलते ही वह अर्जित हो जाता है. उसके विश्वास को एक बड़ा सम्बल मिलता है। जीवात्मा को अपनी शक्ति पहचानने का अवसर प्राप्त होता है। उसे पहली बार अनुभव होता है कि वह अपने पैरों चल सकता– अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। विकास की एक मंजिल पूरी हुई। अर्जित विश्वास को तब और भी बल मिलता है जब बालक बोलना आरम्भ करता है तो तुतलाती भाषा में भावाभिव्यक्ति करते हुऐ आत्मा एक नयी शक्ति जुटा लेती है। बच्चे शब्दों की पुनराभव्यक्ति करते रहते हैं। यह भोली तुतलाहट भी नयी उपलब्धि से अर्जित विश्वास की ही सहज अभिव्यक्ति होती है। उसमें वे प्रसन्न होते व उस प्रसन्नता को अन्यों को जताते हैं।

बचपने से लेकर प्रौढ़ावस्था तक ऐसे अनेकों अवसर आते हैं। जिनमें आत्म-विश्वास को सुदृढ़ आधार मिलता है। शारीरिक एवं मानसिक विकास के अनेक चरण पूरे होते हैं। व्यक्ति ही नहीं समस्त सृष्टि विकासमान है। विकास की अनन्त धाराएँ स्वयं इस बात का प्रमाण हैं कि विकास का जो अन्तिम रूप है चरम परिणिति की जो हम कल्पना करते हैं, वह ईश्वर ही है।

विचारक टेल्हार्ड डि चार्डिन ने एक शब्द का इस सम्बन्ध में प्रयोग किया है। 'द ओमेगा पाइन्ट' शब्द माना जाता है। 'अल्फा का अर्थ है पहला तथा 'ओमेगा' का अर्थ है अन्तिम। डि चार्डिन ने कहा है, गॉड इ जि दि ओमेगा प्वाइन्ट। अर्थात् ईश्वर विकास का अन्तिम बिन्दु है।

हर विकासवान वस्तु में चेतना का ईश्वर का अस्तित्व मौजूद है। खिलता हुआ फूल कुरूप भी हो तो भी वह जड़ पत्थर से अधिक कीमती, अधिक अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है, जीवन्त है। पत्थर में विकास की कोई सम्भावना नहीं है, जड़ता उसकी प्राकृति में समाहित है।

डि चार्डिन का यह भी कहना है कि ''ओमेगा' इज आल्सो दि अल्फा'—अर्थात् जो अन्तिम है, वह पहला भी है। यदि ईश्वर विकास की चरम अवस्था अनुभूति का परम शिखर है तो निश्चित ही वह आरम्भ में भी मौजूद होना चाहिए।

गीता में भगवान कृष्ण द्वारा कहे गये सत्य की ही उपरोक्त तथ्य वस्तुतः पुष्टि करते है।

''सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामिकाम्। कल्पक्षये पुनस्तान कल्पादी विम्जारभ्यहम्।।''

अर्थात्— ''हे अर्जुन? कल्प के अनन्त में सभी प्राणी मेरी प्रकृति में विलीन हो जाते हैं और पुनः कल्प के प्रारम्भ में, मैं उन्हें उत्पन्न कर देता हूँ।''

जिस स्रोत से जीवन का आरम्भ होता अथवा जहाँ से वह आता है। एक चक्र में घूमने के बाद पुनः उसी में जाकर विलीन हो जाता है। वह चक्र जब तक चलता है। जीवन विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाता है। कर्मों का सम्बल पाकर वह विकास की अगणित अवस्थाओं में से होकर गुजरता है। अपनी पूर्णावस्था में उस चक्र को पार कर मूल स्रोत से जा मिलता है। अतृप्ति, असन्तुष्टि अपूर्णता के कारण अनुभव होता है मनुष्य अपूर्ण है। पूर्णता का बीज उसके भीतर ही विद्यमान है तथा वह विकसित होने के लिए भीतर भीतर छटपटाता है तथा अपनी स्थिति का आभास परोक्ष रूप में कराता रहता है। मनुष्य की चेतना अपूर्ण है। पामरों, पशुओं की स्थिति अपने में पूर्ण है। एक कुत्ता अपने में पूरा कुत्ता है। कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुत्ता अपने में अधूरा नहीं है। प्रकृति एवं स्वभाव की विशेषता लगभग एकसी, एक वर्ग विशेष के जीवों के मिली हुई है। पर मनुष्य के साथ ऐसे बात नहीं है। अन्य जीवों को पास तो पूरा व्यक्तित्व है पर मनुष्य में पूर्णता की अनन्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। वह पशु की तरह पैदा होता पर विकसित भिन्न रूप में होता है। वह गिर भी सकता है तथा इतना ऊँचा भी उठ सकता है कि महानता के विकास के चरम शिखर को छू ले। मनुष्य मनुष्यता की परिधि तक सीमित रह सकता है। नीचे गिरकर पशु अथवा ऊपर उठकर देवता भी बन सकता है। वह दोनों ही दिशाओं मे विकास अथवा पतन की ओर उन्मुख हो सकता है।

इस सत्य को सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि मनुष्य जीवन में ठहराव कभी नहीं आता। ठहराव का, स्थिरता का अर्थ है, मृत्यु। यदि गति ईश्वर की ओर, महानता की ओर नहीं हो तो पतन का सिलसिला अपने आप शुरू हो जाता है। विकास कभी भी यथास्थिति में रुकता नहीं, वह सतत् गतिशील रहता है। पतन सरल है, स्वाभाविक है, उत्थान उतना ही कठिन है लेकिन सम्भाव्य भी है। मनुष्य यदि अपनी गरिमा के अनुरूप विकसित नहीं होता पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य कोई और क्या हो सकता है। मानवी चेतना के साथ जुड़ा सहज सौभाग्य वस्तुतः विकास ही है। मुक्ति जिसकी चरम स्थिति है एवं ईश्वरत्व की प्राप्ति अन्तिम लक्ष्य। यही पुरुषार्थ सतत् किया जाता रहे, यह परब्रह्म को, ब्रह्मी सत्ता को अभीष्ट भी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत:स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❐❐❐

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org